* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

श्रीशिवमहापुराणाङ्क

[हिन्दी भाषानुवाद—उत्तरार्ध, श्लोकाङ्कसहित]

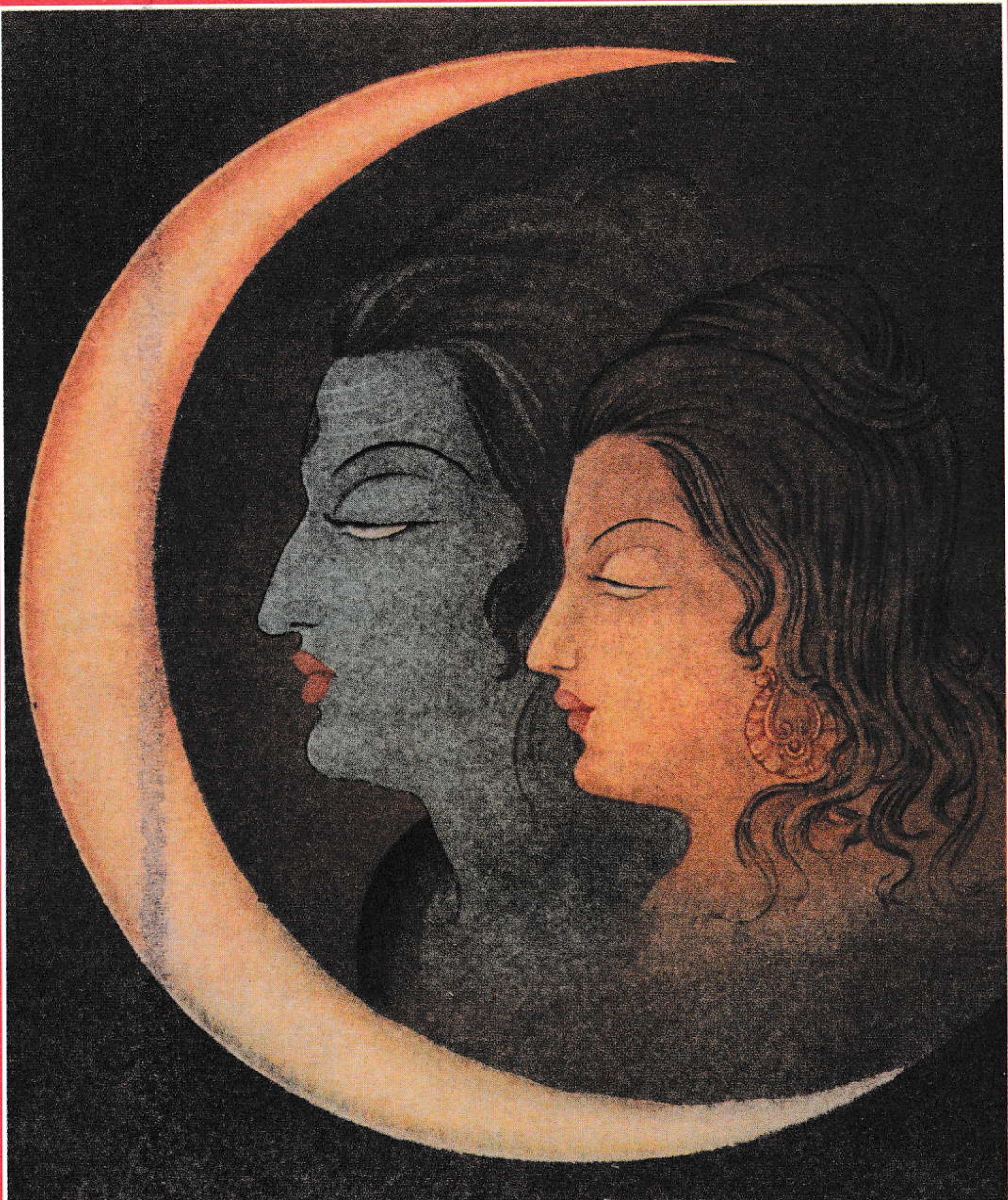
[जनवरी सन् २०१८ ई०]

वर्ष : ९२ संख्या · १

गीताप्रेस, गोरखपुर

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण



नित्य-अभिन्न-उमा-महेश्वर

वर्ष ९२

श्रीशिवमहापुराणाङ्क

संख्या १

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,००,०००)

परब्रह्म परमात्मा सर्वेश्वर शिव

प्रणवार्थः शिवः साक्षात्प्राधान्येन प्रकीर्तितः। श्रुतिषु स्मृतिशास्त्रेषु पुराणेष्वागमेषु च॥
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं यस्य वै विद्वान्न बिभेति कुतश्चन॥
यस्माज्जगदिदं सर्वं विधिविष्ण्विन्द्रपूर्वकम्। सह भूतेन्द्रियग्रामैः प्रथमं सम्प्रसूयते॥
न सम्प्रसूयते यो वै कुतश्चन कदाचन। यस्मिन्न भासते विद्युन्न च सूर्यो न चन्द्रमाः॥
यस्य भासा विभातीदं जगत्सर्वं समन्ततः। सर्वैश्वर्येण सम्पन्नो नाम्ना सर्वेश्वरः स्वयम्॥

[**भगवान् स्कन्द कहते हैं**—हे मुनीश्वर वामदेव!] प्रणवके अर्थ साक्षात् शिव ही हैं। श्रुतियों, स्मृति-शास्त्रों, पुराणों तथा आगमोंमें प्रधानतया उन्हींको प्रणवका वाच्यार्थ बताया गया है। जहाँसे मनसहित वाणी आदि सभी इन्द्रियाँ उस परमेश्वरको न पाकर लौट आती हैं, जिसके आनन्दका अनुभव करनेवाला पुरुष किसीसे डरता नहीं, ब्रह्मा-विष्णु तथा इन्द्रसहित यह सम्पूर्ण जगत् भूतों और इन्द्रिय-समुदायके साथ सर्वप्रथम जिससे प्रकट होता है, जो परमात्मा स्वयं किसीसे और कभी भी उत्पन्न नहीं होता, जिसके निकट विद्युत्, सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश काम नहीं देता तथा जिसके प्रकाशसे ही यह सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे प्रकाशित होता है, वह परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं ही सर्वेश्वर 'शिव' नाम धारण करता है। [**श्रीशिवमहापुराण, कैलाससंहिता**]

* कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹२५०

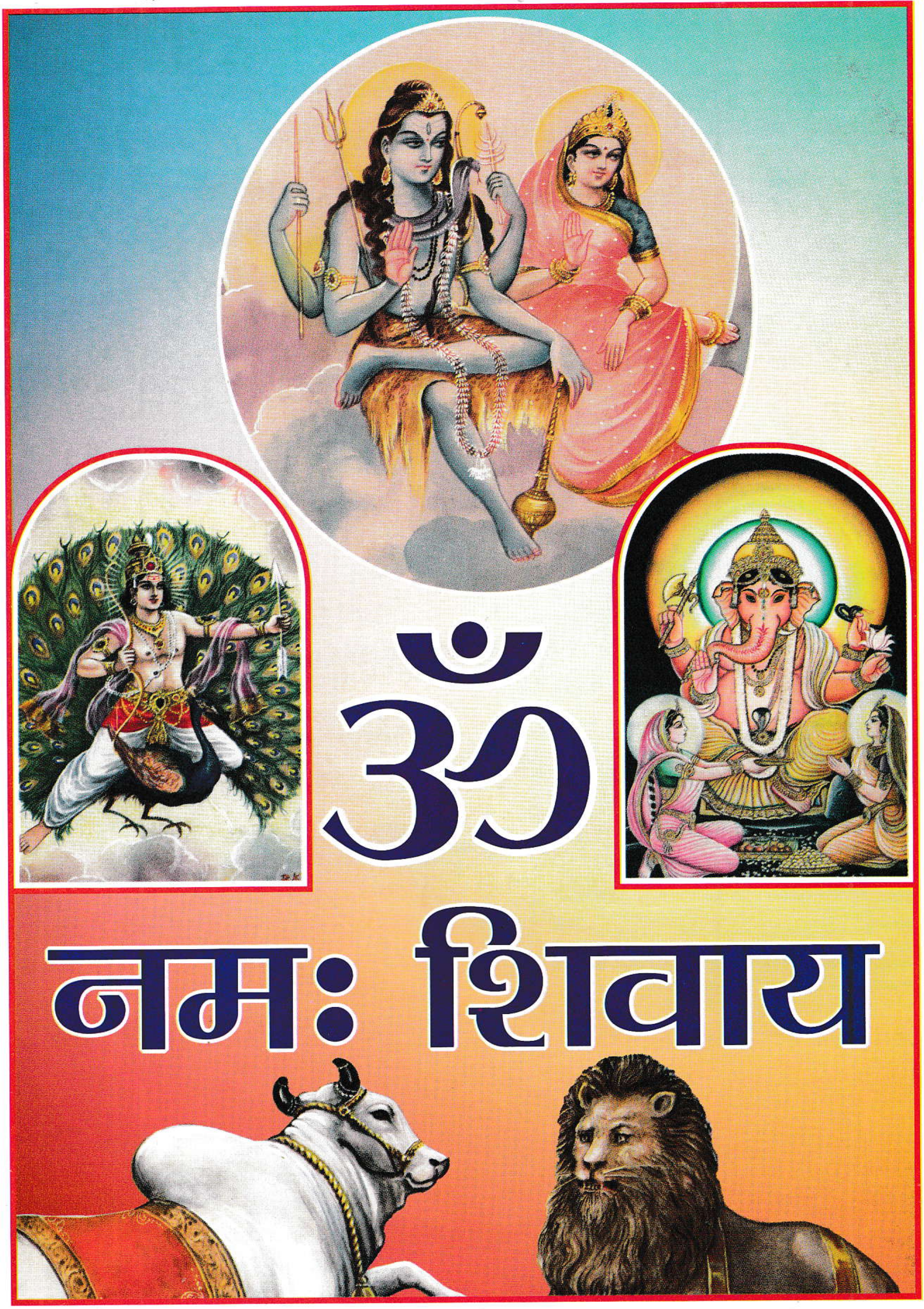
पंचवर्षीय शुल्क ₹१२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	**09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।



ॐ नमः शिवाय

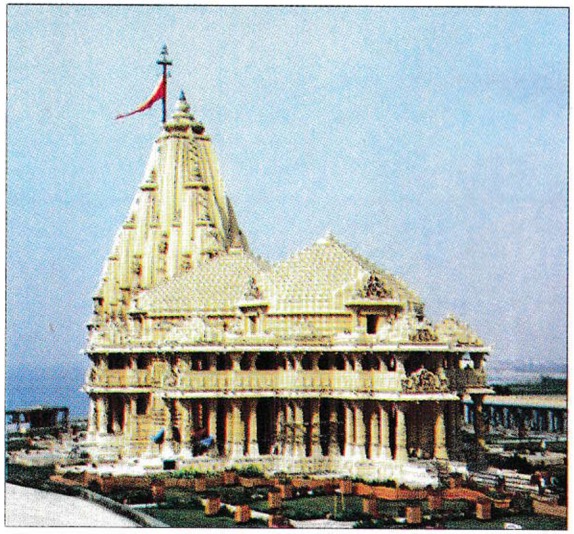


भगवान् सदाशिवद्वारा विष्णुजीको चक्र प्रदान



भगवती शाकम्भरी देवी

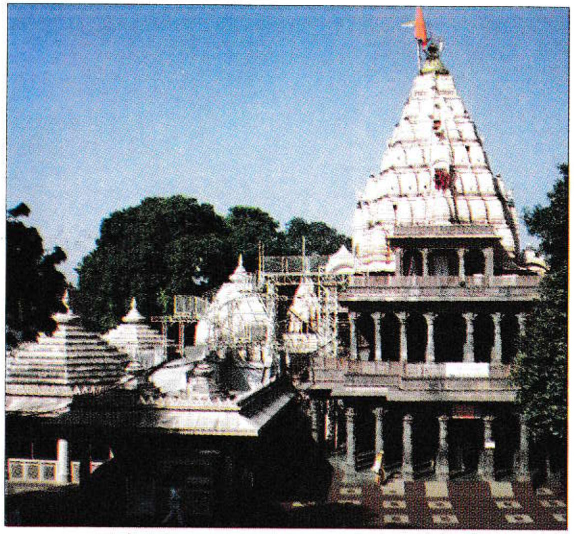
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग—१



श्रीसोमनाथका वर्तमान मन्दिर



श्रीमल्लिकार्जुनका वर्तमान मन्दिर



श्रीमहाकालेश्वरका वर्तमान मन्दिर



श्रीसोमनाथ ज्योतिर्लिङ्ग (गुजरात)

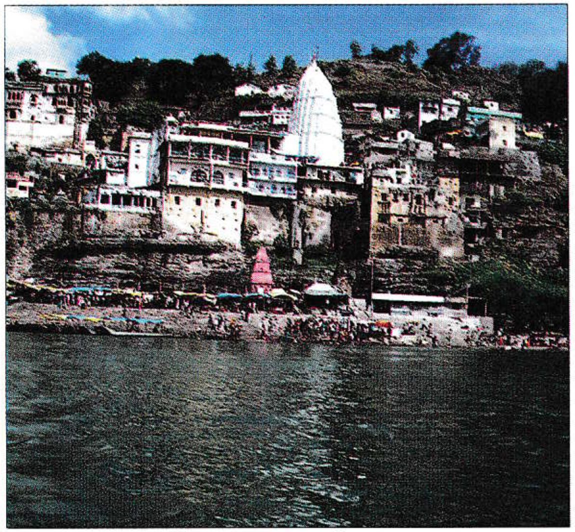


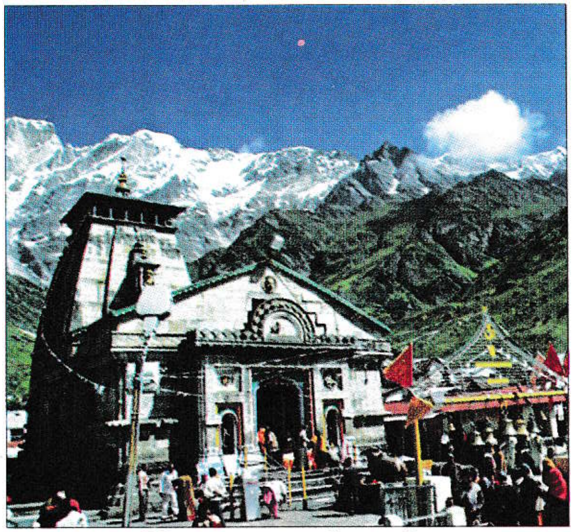
श्रीमल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्ग (आ०प्र०)

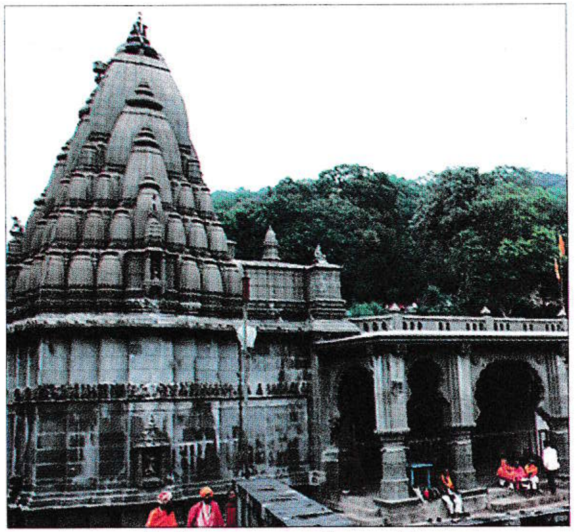


श्रीमहाकालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (म०प्र०)

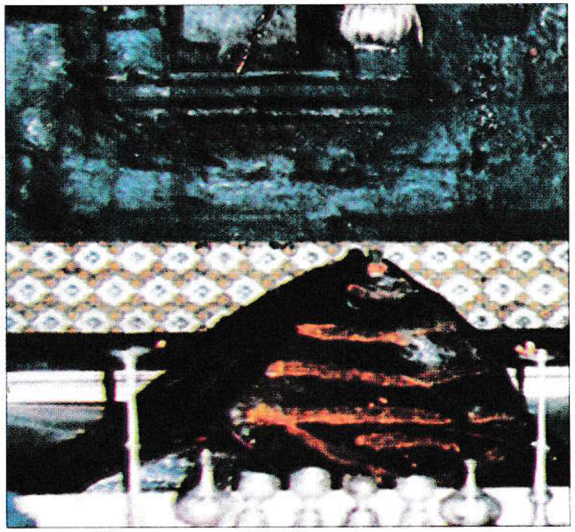
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग—२

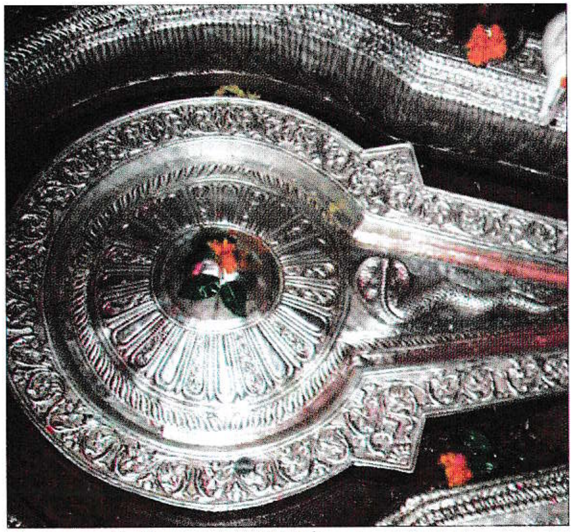

श्रीओङ्कारेश्वरका वर्तमान मन्दिर


श्रीकेदारनाथका वर्तमान मन्दिर

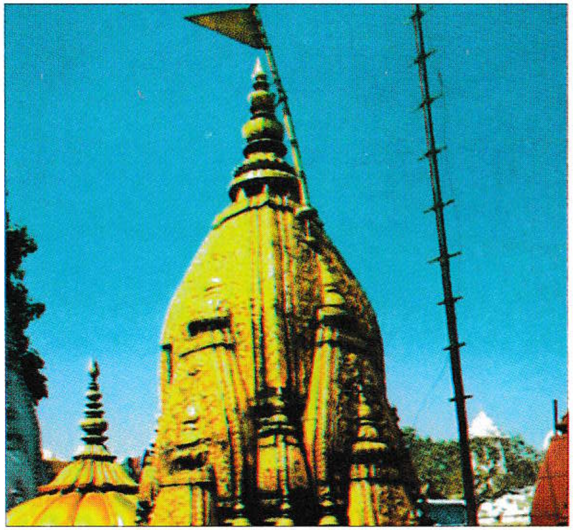

श्रीभीमशङ्करका वर्तमान मन्दिर


श्रीओङ्कारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (म०प्र०)


श्रीकेदारनाथ ज्योतिर्लिङ्ग (उत्तराखण्ड)


श्रीभीमशङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग (महाराष्ट्र)

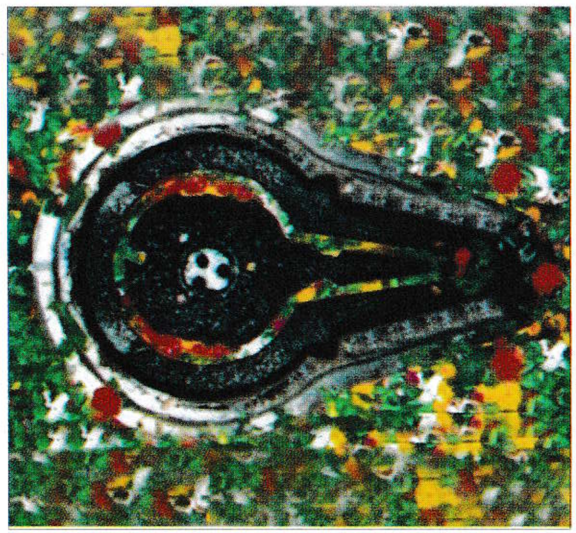
द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग—३


श्रीविश्वेश्वरका वर्तमान मन्दिर


श्रीत्र्यम्बकेश्वरका वर्तमान मन्दिर

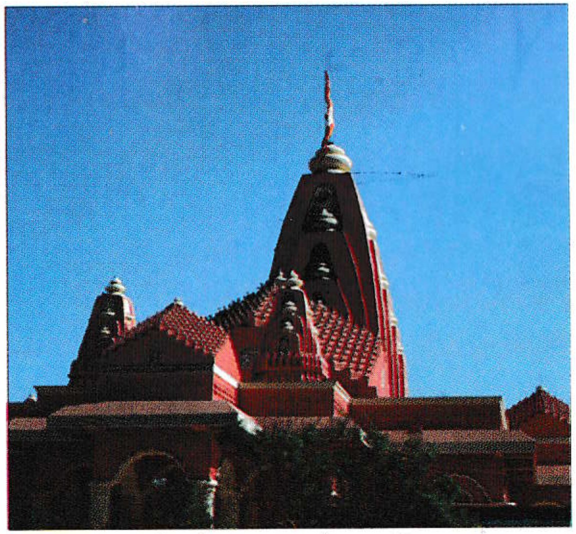

श्रीवैद्यनाथका वर्तमान मन्दिर

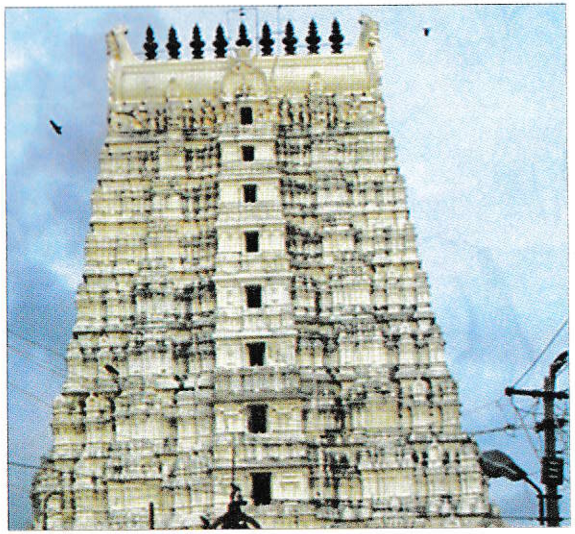

श्रीविश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (उ०प्र०)


श्रीत्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (महाराष्ट्र)


श्रीवैद्यनाथ ज्योतिर्लिङ्ग (झारखण्ड)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग—४

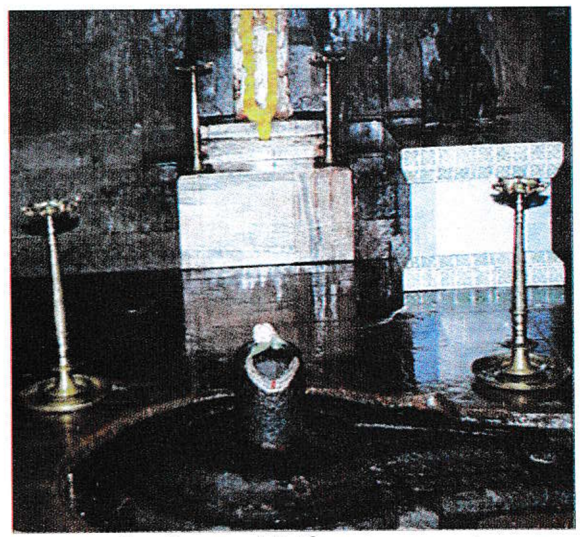

श्रीनागेश्वरका वर्तमान मन्दिर


श्रीरामेश्वरका वर्तमान मन्दिर


श्रीघुश्मेश्वरका वर्तमान मन्दिर


श्रीनागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (गुजरात)


श्रीरामेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (तमिलनाडु)


श्रीघुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (महाराष्ट्र)



देवताओंद्वारा श्रीदुर्गाजीकी स्तुति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९२ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, जनवरी २०१८ ई० | संख्या १

पूर्ण संख्या १०९४

देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी श्रीदुर्गाकी स्तुति

जय दुर्गे महेशानि जयात्मीयजनप्रिये। त्रैलोक्यत्राणकारिण्यै शिवायै ते नमो नमः॥
नमो मुक्तिप्रदायिन्यै पराम्बायै नमो नमः। नमः समस्तसंसारोत्पत्तिस्थित्यन्तकारिके॥ ×××
नमस्त्रिपुरसुन्दर्यै मातङ्ग्यै ते नमो नमः। अजितायै नमस्तुभ्यं विजयायै नमो नमः॥
जयायै मङ्गलायै ते विलासिन्यै नमो नमः। दोग्ध्रीरूपे नमस्तुभ्यं नमो घोराकृतेऽस्तु ते॥
नमोऽपराजिताकारे नित्याकारे नमो नमः। शरणागतपालिन्यै रुद्राण्यै ते नमो नमः॥
नमो वेदान्तवेद्यायै नमस्ते परमात्मने। अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकायै नमो नमः॥

देवता बोले—महेश्वरि दुर्गे! आपकी जय हो। अपने भक्तजनोंका प्रिय करनेवाली देवि! आपकी जय हो। आप तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाली शिवा हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। आप ही मोक्ष प्रदान करनेवाली परा अम्बा हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। आप समस्त संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली हैं। आपको नमस्कार है। ××× आप ही त्रिपुरसुन्दरी और मातंगी हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। अजिता, विजया, जया, मंगला और विलासिनी रूपोंमें आपको नमस्कार है। दोग्ध्री (माता अथवा कामधेनु)-रूपमें आपको नमस्कार है। घोर आकार धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। अपराजितारूपमें आपको प्रणाम है। नित्या महाविद्याके रूपमें आपको बारम्बार नमस्कार है। आप ही शरणागतोंका पालन करनेवाली रुद्राणी हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। वेदान्तके द्वारा आपके ही स्वरूपका बोध होता है। आपको नमस्कार है। आप परमात्मा हैं। आपको मेरा प्रणाम है। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संचालन करनेवाली आप जगदम्बाको बारम्बार नमस्कार है। [**श्रीशिवमहापुराण, उमासंहिता**]

श्रीहरि:

'श्रीशिवमहापुराणाङ्क' की विषय-सूची

स्तुति-प्रार्थना

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

शतरुद्रसंहिता

कोटिरुद्रसंहिता

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

उमासंहिता

कैलाससंहिता

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

वायवीयसंहिता—पूर्वखण्ड

वायवीयसंहिता—उत्तरखण्ड

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

(सादे चित्र)

स्तुति-प्रार्थना

अभिलाषाष्टक

[मुनि विश्वानरकृत सम्पूर्ण मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाली स्तुति]

[पूर्वकालकी बात है, नर्मदाके रमणीय तटपर विश्वानर नामवाले एक शाण्डिल्यगोत्रीय मुनि निवास करते थे। शुचिष्मती उनकी सद्‌गुणसम्पन्ना पतिव्रता भार्या थी। मुनिवर विश्वानर परम पावन, पुण्यात्मा, शिवभक्त, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न और जितेन्द्रिय थे, परंतु गृहस्थाश्रममें रहते हुए बहुत समय बीत जानेपर भी उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई। तब एक दिन शुचिष्मतीने पतिसे कहा—'हे प्राणनाथ! स्त्रियोंके योग्य जितने आनन्दप्रद भोग हैं, उन सबको मैंने आपकी कृपासे आपके साथ रहकर भोग लिया, परंतु नाथ! मेरे हृदयमें एक लालसा चिरकालसे वर्तमान है और वह गृहस्थोंके लिये उचित भी है, उसे आप पूर्ण करनेकी कृपा करें। स्वामिन्! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ और आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे महेश्वर-सरीखा पुत्र प्रदान कीजिये। इसके अतिरिक्त मैं दूसरा वर नहीं चाहती।'

पत्नीके इस अनुरोधपर मुनि विश्वानर काशी गये और वहाँ वीरेश्वर लिंगकी आराधना करने लगे। उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें अष्टवर्षीय विभूतिभूषित बालकके रूपमें दर्शन दिया। उस समय उनके हृदयोद्‌गारके रूपमें आठ श्लोकोंवाला यह अभिलाषाष्टक प्रस्फुटित हुआ और इससे उन्होंने उन देवाधिदेवका स्तवन किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने कहा—'हे महामते! मैं शुचिष्मतीके गर्भसे तुम्हारा पुत्र होकर प्रकट होऊँगा। जो मनुष्य एक वर्षतक मेरे सन्निकट तुम्हारे द्वारा कथित इस अभिलाषाष्टक स्तोत्रका तीनों कालोंमें पाठ करेगा, उसकी सारी अभिलाषाएँ यह अभिलाषाष्टक पूर्ण कर देगा। इस स्तोत्रका पाठ पुत्र-पौत्र और धनका प्रदाता, सर्वथा शान्तिकारक, सारी विपत्तियोंका विनाशक, स्वर्ग और मोक्षरूप सम्पत्तिका कर्ता तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। निस्सन्देह यह अकेला ही सम्पूर्ण स्तोत्रोंके तुल्य है। सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले विश्वानरकृत इस अभिलाषाष्टकको यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—सं०]

विश्वानर उवाच

एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं
सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किञ्चित्।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे
तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम्॥

विश्वानर बोले—यह सब कुछ एक अद्वितीय ब्रह्म ही है, वही सत्य है, वही सत्य है, सर्वत्र उस ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह ब्रह्म एकमात्र ही है और दूसरा कोई नहीं है, इसलिये मैं एकमात्र आप महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ।

कर्ता हर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो
नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः ।
यद्वत्प्रत्यग्धर्म एकोऽप्यनेक-
स्तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये॥

हे शम्भो! एक आप ही सबका सृजन करनेवाले तथा हरण करनेवाले हैं, आप रूपविहीन होकर भी अनेक रूपोंमें एक रूपवाले हैं, जैसे आत्मधर्म एक होता हुआ भी अनेक रूपोंवाला है, इसलिये मैं आप महेश्वरको छोड़कर किसी अन्यकी शरण नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ।

रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यं
नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ।
यद्वत्तद्वद्विष्वगेव प्रपञ्चो
यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम्॥

जिस प्रकार रस्सीमें साँप, सीपीमें चाँदी और मृगमरीचिकामें जलप्रवाह [मिथ्या] भासित होता है, उसी प्रकार [आपमें] यह सारा प्रपंच भासित हो रहा है। जिसके जान लेनेपर इस प्रपंचका मिथ्यात्व भलीभाँति ज्ञात

हो जाता है, मैं उन महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ।

तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ
तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः।
पुष्पे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पि-
र्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये॥

हे शम्भो! जिस प्रकार जलमें शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें आह्लादकत्व, पुष्पमें गन्ध एवं दुग्धमें घृत व्याप्त रहता है, उसी प्रकार सर्वत्र आप ही व्याप्त हैं, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ।

शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्र-
स्यघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात्।
व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः
कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये॥

हे प्रभो! आप कानोंके बिना सुनते हैं, नाकके बिना सूँघते हैं, बिना पैरके दूरसे आते हैं, बिना आँखके देखते हैं और बिना जिह्वाके रस ग्रहण करते हैं, अतः आपको भलीभाँति कौन जान सकता है। इस प्रकार मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ।

नो वेद त्वामीश साक्षाद्धि वेदो
नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य।
नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा
भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये॥

हे ईश! आपको न साक्षात् वेद, न विष्णु, न सर्वस्रष्टा ब्रह्मा, न योगीन्द्र और न तो इन्द्रादि देवगण भी जान सकते हैं, केवल भक्त ही आपको जान पाता है, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ।

नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या
नो वा रूपं नैव शीलं न देशः।
इत्थम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः
सर्वान्कामान्पूरयेस्त्वं भजे त्वाम्॥

हे ईश! आपका न तो गोत्र है, न जन्म है। न आपका नाम है, न आपका रूप है, न शील है एवं न देश। ऐसा होते हुए भी आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं और आप समस्त मनोरथोंको पूर्ण करते हैं, अतः मैं आपका भजन करता हूँ।

त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे
त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः।
त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बाल-
स्तत्त्वं यत्किं नान्यतस्त्वां नतोऽहम्॥

हे कामशत्रो! सब कुछ आपसे है और आप ही सब कुछ हैं, आप पार्वतीपति हैं, आप दिगम्बर एवं अत्यन्त शान्त हैं। आप वृद्ध, युवा और बालक हैं। कौन ऐसा पदार्थ है, जो आप नहीं हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ। [शतरुद्रसंहिता]

'व्रजामि शरणं शिवम्'

नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥
शक्तिरप्रतिमा यस्य ह्यैश्वर्यं चापि सर्वगम्।
स्वामित्वं च विभुत्वं च स्वभावं सम्प्रचक्षते॥
तमजं विश्वकर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम्।
महादेवं महात्मानं व्रजामि शरणं शिवम्॥

जो जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तथा प्रकृति और पुरुषके ईश्वर हैं, उन प्रमथगण, पुत्रद्वय तथा उमासहित भगवान् शिवको नमस्कार है। जिनकी शक्तिकी कहीं तुलना नहीं है, जिनका ऐश्वर्य सर्वत्र व्यापक है तथा स्वामित्व और विभुत्व जिनका स्वभाव कहा गया है, उन विश्वस्रष्टा, सनातन, अजन्मा, अविनाशी, महान् देव, मंगलमय परमात्मा शिवकी मैं शरण लेता हूँ। [वायवीयसंहिता]

श्रीशिवमहापुराणसूक्तिसुधा

उपकारो हि साधूनां सुखाय किल संमतः।
उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम्॥

सज्जन व्यक्तियोंके साथ किया गया उपकार सुखको बढ़ानेवाला होता है। किंतु वही उपकार यदि दुष्ट व्यक्तिके साथ किया जाय तो वह हानिकारक होता है।

[शतरुद्रसंहिता ११। ४५]

गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि॥

विधाताके विपरीत होनेपर गुण भी दोष हो जाता है। [शतरुद्रसंहिता १४। ४६]

महतां च स्वभावोऽयं कल्पवृक्षसमो मतः॥
तद्गुणानेव गणयन्महतो वस्तुमात्रतः।
आश्रयस्य वशादेव पुंसो वै जायते प्रभो॥
लघुत्वं च महत्त्वं च नात्र कार्या विचारणा।
उत्तमानां स्वभावोऽयं यद्दीनप्रतिपालनम्॥

बड़े लोगोंका स्वभाव कल्पवृक्षके समान माना गया है, उनके आनेपर दु:खका कारणभूत दारिद्र्य निश्चित रूपसे चला जाता है। हे प्रभो! महात्माओंके गुणोंका कथन करनेमात्रसे अथवा उनका आश्रय लेनेमात्रसे पुरुष गुणवान् हो जाता है। इसमें छोटेपन और बड़ेपनका विचार नहीं करना चाहिये, श्रेष्ठ पुरुषोंका ऐसा स्वभाव ही होता है कि वे दीनोंकी रक्षा करते हैं।

[शतरुद्रसंहिता ३७। ३०—३२]

सुजनानां स्वभावोऽयं प्राणान्तेऽपि सुशोभनः।
धर्मं त्यजन्ति नैवात्र सत्यं सफलभाजनम्॥

सत्पुरुषोंका ऐसा अत्युत्तम स्वभाव होता है कि वे मृत्युपर्यन्त मनोहर फल देनेवाले सत्य तथा धर्मका त्याग नहीं करते हैं। [शतरुद्रसंहिता ३७। ३८]

यस्मिन्दृष्टे प्रसीदेत्स्वं मनः स हितकृद् ध्रुवम्।
यस्मिन्दृष्टे तदेव स्यादाकुलं शत्रुरेव सः॥
आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्।
वचनं श्रुतमाख्याति स्नेहमाख्याति लोचनम्॥
आकारेण तथा गत्या चेष्टया भाषितैरपि।
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां ज्ञायतेऽन्तर्हितं मनः॥

जिसके देखनेसे अपना मन प्रसन्न हो, वह निश्चय ही हितैषी होता है और जिसके देखनेसे मनमें व्याकुलता उत्पन्न हो, वह अवश्य ही शत्रु होता है। सदाचारसे कुलका, शरीरसे भोजनका, वचनके द्वारा शास्त्रज्ञानका तथा नेत्रके द्वारा स्नेहका पता लग जाता है। आकार, गति, चेष्टा, सम्भाषण एवं नेत्र तथा मुखके विकारसे मनुष्यके अन्त:करणकी बात ज्ञात हो जाती है।

[शतरुद्रसंहिता ३७। १७—१९]

महतां च स्वभावो हि परेषां हितमावहेत्।
सुवर्णं चन्दनं चेक्षुरसस्तत्र निदर्शनम्॥

बड़े लोगोंका ऐसा स्वभाव है कि वे दूसरोंका हित करते हैं; इस विषयमें सुवर्ण, चन्दन तथा इक्षुरस दृष्टान्तस्वरूप हैं। [कोटिरुद्रसंहिता ४। ४९]

हसता क्रियते कर्म रुदता परिभुज्यते।
दु:खदाता न कोऽप्यस्ति सुखदाता न कश्चन॥
सुखदु:खे परो दत्त इत्येषा कुमतिर्मता।
अहं चापि करोम्यत्र मिथ्याज्ञानं तदुच्यते॥

प्राणी हँसते हुए तो कर्म करता है और रोते हुए उसका फल भोगता है। कोई किसीको न सुख देनेवाला है और न ही किसीको दु:ख देनेवाला है। कोई दूसरा सुख और दु:ख देनेवाला है—यह दुर्बुद्धि मानी गयी है। 'मैं ही करता हूँ' यह मिथ्या ज्ञान कहा जाता है।

[कोटिरुद्रसंहिता ६। १३-१४]

क्व माता क्व पिता विद्धि क्व स्वामी क्व कलत्रकम्।
न कोऽपि कस्य चास्तीह सर्वेऽपि स्वकृतंभुजः॥

कौन किसकी माता और कौन किसका पिता है? कौन किसका स्वामी और कौन किसकी स्त्री है; यहाँपर कोई भी किसीका नहीं है, सभी अपने किये हुए कर्मका फल भोगते हैं। [कोटिरुद्रसंहिता ६। २८]

यादृङ्नरं च सेवेत तादृशं फलमश्नुते।
महतः सेवयोच्चत्वं क्षुद्रस्य क्षुद्रतां तथा॥

मनुष्य जिस प्रकारके पुरुषका सेवन करता है, वह वैसा ही फल प्राप्त करता है, बड़ोंकी सेवासे बड़प्पन तथा छोटोंकी सेवासे लघुता प्राप्त होती है।

[कोटिरुद्रसंहिता २४। २२]

दयालुरमदस्पर्श उपकारी जितेन्द्रियः।
एतैश्च पुण्यस्तम्भैस्तु चतुर्भिर्धार्यते मही॥

दयालु, अभिमानरहित, उपकारी एवं जितेन्द्रिय—इन चार पुण्यस्तम्भोंने पृथ्वीको धारण किया है।

[कोटिरुद्रसंहिता २४। २६]

अपकारेषु यश्चैव ह्युपकारं करोति च।
तस्य दर्शनमात्रेण पापं दूरतरं व्रजेत्॥

जो पुरुष अपकार करनेवालोंके प्रति उपकार करता है, उसके दर्शनमात्रसे ही पाप दूर भाग जाते हैं।

[कोटिरुद्रसंहिता ३३। ३९]

उपकारकरस्यैव यत्पुण्यं जायते त्विह।
तत्पुण्यं शक्यते नैव वक्तुं वर्षशतैरपि॥

लोकमें उपकारी जीवको जो पुण्य होता है, उस पुण्यका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है। [कोटिरुद्रसंहिता ४०। २६]

शुभं लब्ध्वा न हृष्येत कुप्येल्लब्ध्वाशुभं न हि।
द्वन्द्वेषु समता यस्य ज्ञानवानुच्यते हि सः॥

शुभ वस्तुको प्राप्तकर जो हर्षित नहीं होता और अशुभको प्राप्तकर क्रोध नही करता और द्वन्द्वोंमें समान रहता है, वह ज्ञानवान् कहा जाता है।

[कोटिरुद्रसंहिता ४३। ३१]

आत्मार्थे वा परार्थे वा पुत्रार्थे वापि मानवाः।
अनृतं ये न भाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥

जो लोग स्वयंके लिये अथवा दूसरोंके लिये यहाँतक कि अपने पुत्रके लिये भी झूठ नहीं बोलते, वे स्वर्गगामी होते हैं। [उमासंहिता १२। ३५]

देवकार्यादपि मुने पितृकार्यं विशिष्यते।

देवकार्यकी अपेक्षा पितृकार्यको विशेष कहा गया है।

[उमासंहिता ४१। ७]

कर्मणा जायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते।
ज्ञानात्प्रजायते मुक्तिरिति शास्त्रेषु निश्चयः॥

कर्मसे भक्ति होती है, भक्तिसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे मुक्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंमें निर्णय किया गया है। [उमासंहिता ५१। १०]

रागादिदोषान् संत्यज्य शिवध्यानपरो भव।
सत्सम्प्रदायसंसिद्धैः सङ्गं कुरु न चेतरैः॥
अनभ्यर्च्य शिवं जातु मा भुङ्क्ष्वाप्राणसंक्षयम्।
गुरुभक्तिं समास्थाय सुखी भव सुखी भव॥

राग आदि दोषोंका त्याग करके निरन्तर शिवका चिन्तन करते रहो। श्रेष्ठ सम्प्रदायके सिद्ध पुरुषोंका संग करो, दूसरोंका नहीं। प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी शिवका पूजन किये बिना कभी भोजन न करो। गुरुभक्तिका आश्रय ले सुखी रहो, सुखी रहो।

[कैलाससंहिता १९। ५३-५४]

साक्षरा विपरीताश्च राक्षसास्त इति स्मृताः।

विपरीत आचरण करनेवाले साक्षर भी राक्षस कहे गये हैं। [कैलाससंहिता २०। ३५]

वृक्षस्य मूलसेकेन शाखाः पुष्यन्ति वै यथा।
शिवस्य पूजया तद्वत्पुष्यत्यस्य वपुर्जगत्॥
सर्वाभयप्रदानं च सर्वानुग्रहणं तथा।
सर्वोपकारकरणं शिवस्याराधनं विदुः॥
यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता।
तथा सर्वस्य संप्रीत्या प्रीतो भवति शङ्करः॥

जैसे वृक्षकी जड़को सींचनेसे शाखाएँ पुष्ट होती हैं, वैसे ही इन शिवकी पूजासे संसाररूपी शरीर पुष्ट होता है। शिवके आराधनको सभी प्रकारका अभय प्रदान करनेवाला, सब प्रकारसे अनुग्रह करनेवाला तथा सभी का उपकार करनेवाला कहा गया है। जैसे इस लोकमें पुत्र-पौत्रकी प्रसन्नतासे पिता प्रसन्न होता है, वैसे ही सभीकी प्रसन्नतासे शंकरजी प्रसन्न होते हैं।

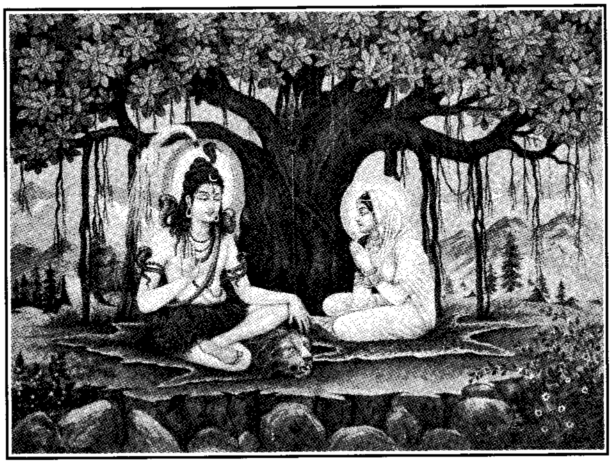
[वायवीयसंहिता, उत्तर० ३। २९—३१]

येन केनाप्युपायेन शिवे चित्तं निवेशयेत्॥
शिवे निविष्टचित्तानां प्रतिष्ठितधियां सताम्।
परत्रेह च सर्वत्र निर्वृतिः परमा भवेत्॥

जिस किसी भी उपायसे शिवमें मनको लगाना चाहिये। [भगवान्] शिवमें आसक्त मनवाले तथा प्रतिष्ठित बुद्धिवाले सज्जनोंको इस लोकमें तथा परलोकमें सर्वत्र परम शान्ति प्राप्त होती है।

[वायवीयसंहिता, उत्तर० ११। ५४-५५]

श्रीशिवमहापुराण [उत्तरार्ध]—एक सिंहावलोकन



वन्दे महानन्दमनन्तलीलं
महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराज-
समुद्भवं शङ्करमादिदेवम्॥

जो परमानन्दमय हैं, जिनकी लीलाएँ अनन्त हैं, जो ईश्वरोंके भी ईश्वर, सर्वव्यापक, महान्, गौरीके प्रियतम तथा स्वामी कार्तिक और विघ्नराज गणेशको उत्पन्न करनेवाले हैं, उन आदिदेव शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ।

पिछले वर्ष शिवमहापुराणका पूर्वार्ध विशेषांकके रूपमें प्रकाशित हुआ था, जिसके प्रारम्भमें सिंहावलोकनकी प्रस्तुति की गयी थी। इस वर्ष शिवमहापुराणका उत्तरार्ध प्रस्तुत है—

जो धर्मका महान् क्षेत्र है, जहाँ गंगा-यमुनाका संगम हुआ है, जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, उस परम पुण्यमय नैमिषारण्य तीर्थके प्रयागक्षेत्रमें महात्मा मुनियोंद्वारा एक विशाल ज्ञानयज्ञका आयोजन किया गया। उस ज्ञानयज्ञका तथा मुनियोंका दर्शन करनेके लिये व्यासशिष्य महामुनि सूतजी वहाँ पधारे। वहाँ उपस्थित महात्माओंने उनकी विधिवत् स्तुति करके विनयपूर्वक उनसे निवेदन किया—हे सूतजी! इस घोर कलियुगके आनेपर जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी और जिन्होंने अपने धर्मका त्याग कर दिया, ऐसे लोगोंको इहलोक तथा परलोकमें उत्तम गति कैसे प्राप्त होगी—इसी चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है।

सूतजी बोले—सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, जो वेदान्तका सार-सर्वस्व है तथा वक्ता और श्रोताका समस्त पापोंसे उद्धार करनेवाला है; वह परलोकमें परमार्थ वस्तुको देनेवाला है, उसमें भगवान् शिवके उत्तम यशका वर्णन है। हे ब्राह्मणो! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले उस पुराणका प्रभाव विस्तारको प्राप्त हो रहा है।

शतरुद्रसंहिता

शिवपुराणकी कथाके इस क्रममें शौनकजीने सूतजीसे कहा—हे महाभाग! आप तो व्यासजीके शिष्य तथा ज्ञान और दयाके निधि हैं, अत: अब आप शिवजीके उन अवतारोंका वर्णन कीजिये, जिनके द्वारा उन्होंने सत्पुरुषोंका कल्याण किया है।

हे मुने! पूर्वकालमें इसी बातको सनत्कुमारने शिवस्वरूप तथा सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नन्दीश्वरसे पूछा था, तब शिवजीका स्मरण करते हुए नन्दीश्वरने उनसे कहा—हे सनत्कुमार! सर्वव्यापक तथा सर्वेश्वर शंकरके विविध कल्पोंमें यद्यपि असंख्य अवतार हुए हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार यहाँपर उनमेंसे कुछका वर्णन कर रहा हूँ।

श्वेतलोहित नामक उन्नीसवें कल्पमें 'सद्योजात' अवतार हुआ। इन्हीं सद्योजात नामक परमेश्वर शिवजीने प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको ज्ञान प्रदान किया एवं सृष्टि उत्पन्न करनेका सामर्थ्य भी प्रदान किया।

इसी प्रकार बीसवें, इक्कीसवें कल्प तथा अन्य कल्पोंमें महेश्वरकी ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात नामक पाँच मूर्तियाँ ब्रह्म संज्ञासे विश्रुत हैं। इसके साथ ही बहुत सारे अवतार हुए। अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको शिवजीके इन रूपोंकी प्रयत्नपूर्वक नित्य वन्दना करनी चाहिये; क्योंकि ये रूप सभी प्रकारके कल्याणके एकमात्र कारण हैं।

शिवजीकी अष्टमूर्तियोंका वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—हे मुने! अब आप महेश्वरके समस्त प्राणियोंको सुख प्रदान करनेवाले तथा लोकके सम्पूर्ण

कार्योंको सम्पादित करनेवाले अन्य श्रेष्ठतम अवतारोंको सुनें।

यह सारा संसार शिवकी आठ मूर्तियोंका स्वरूप ही है। जैसे सूतमें मणियाँ पिरोयी रहती हैं, उसी तरह यह विश्व उन आठ मूर्तियोंमें व्याप्त होकर स्थित है। वे प्रसिद्ध आठ मूर्तियाँ ये हैं—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव। शिवजीकी इन शर्व आदि आठ मूर्तियोंद्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित हैं। शास्त्रका ऐसा निश्चय है कि कल्याणकर्ता महेश्वरका विश्वम्भरात्मक स्वरूप ही चराचर विश्वको धारण किये हुए है। जैसे इस लोकमें पुत्र-पौत्र आदिको प्रसन्न देखकर पिता हर्षित होता है, उसी तरह विश्वको भलीभाँति हर्षित देखकर शंकरको आनन्द मिलता है। इसलिये यदि कोई किसी भी देहधारीको कष्ट देता है तो निःसन्देह मानो उसने अष्टमूर्ति शिवका ही अनिष्ट किया है।

सनत्कुमारजी! इस प्रकार भगवान् शिव अपनी अष्टमूर्तियोंद्वारा समस्त विश्वको अधिष्ठित करके विराजमान हैं। अतः तुम पूर्ण भक्तिभावसे परम कारण रुद्रका भजन करो।

भगवान् शिवका अर्धनारीश्वर-अवतार

प्रिय सनत्कुमारजी! अब आप शिवजीके अनुपम अर्धनारीश्वरस्वरूपका वर्णन सुनो। सृष्टिके आदिमें जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माद्वारा रची हुई सारी प्रजाएँ विस्तारको नहीं प्राप्त हुईं, तब ब्रह्मा उस दुःखसे दुखी हो चिन्ताकुल हो गये। उसी समय यह आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मन्! अब मैथुनी सृष्टिकी रचना करो।' इस आकाशवाणीको सुनकर ब्रह्माने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न करनेमें स्वयंको समर्थ न पाकर यों विचार किया कि शम्भुकी कृपाके बिना मैथुनी प्रजा उत्पन्न नहीं हो सकती, तब वे तप करनेको उद्यत हुए। ब्रह्माके उस तीव्र तपसे थोड़े ही समयमें शिवजी प्रसन्न होकर पूर्ण सच्चिदानन्दकी कामदा मूर्तिमें प्रविष्ट होकर अर्धनारीनरके रूपमें ब्रह्माके निकट प्रकट हो गये।

ईश्वरने कहा—महाभाग वत्स! मुझे तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्णतया ज्ञात है, मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हूँ और तुम्हें तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करूँगा। यह कहकर शिवजीने अपने शरीरके अर्धभागसे शिवा देवीको पृथक् कर दिया। तब शिवसे पृथक् होकर प्रकट हुई परमा शक्तिकी ब्रह्माजी विनम्र भावसे प्रार्थना करते हुए कहने लगे—'हे शिवे! हे शिवप्रिये! हे मातः! चराचर जगत्की वृद्धिके लिये आप मुझे नारीकुलकी सृष्टि करनेके लिये शक्ति प्रदान करें; वरदेश्वरी! मैं आपसे एक और वरकी याचना करता हूँ, आप चराचर जगत्की वृद्धिके लिये अपने एक सर्वसमर्थ रूपसे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाओ।' भगवती शिवाने 'तथास्तु'—ऐसा ही होगा, कहकर वह शक्ति ब्रह्माको प्रदान कर दी।

इस प्रकार शिवा देवी ब्रह्माको अनुपम शक्ति प्रदान करके शम्भुके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं। तभी से इस लोकमें स्त्री-भागकी कल्पना हुई और मैथुनी सृष्टि चल पड़ी। इससे ब्रह्माको महान् आनन्द प्राप्त हुआ।

नन्दीश्वरावतारका वर्णन

अबतकके अध्यायोंमें शिवजीके ४२ अवतारोंका वर्णन किया गया। अब नन्दीश्वर-अवतारका वर्णन किया जाता है।

सनत्कुमारजीने पूछा—हे नन्दीश्वर! आप महादेवके अंशसे किस प्रकार उत्पन्न हुए और किस प्रकार शिवत्वको प्राप्त हुए? आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! जिस प्रकार शिवजीके अंशसे उत्पन्न होकर मैंने शिवत्वको प्राप्त किया है, उसको आप सावधानीपूर्वक सुनिये।

शिलाद नामक एक धर्मात्मा मुनि थे। पितरोंने महर्षि शिलादसे सन्तान उत्पन्न करनेका निवेदन किया, तब शिलादने उनका उद्धार करनेकी इच्छासे पुत्रोत्पत्ति करनेका विचार किया तथा इस निमित्त इन्द्रको उद्देश्य करके बहुत समयतक अति कठोर तप किया। इन्द्रके प्रसन्न होनेपर शिलादने अयोनिज, अमर तथा उत्तम व्रतवाले पुत्रकी कामना की। इन्द्रने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए देवाधिदेव महादेव रुद्रको प्रसन्न करनेकी प्रेरणा प्रदान की। तब शिलाद भगवान् महादेवको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे।

शिवके प्रसन्न होनेपर शिलादने उनसे कहा—

प्रभो! मैं आपके ही समान मृत्युहीन अयोनिज पुत्र चाहता हूँ। त्रिनेत्र भगवान् शिव प्रसन्नचित्त होकर बोले—हे विप्र! मैं नन्दी नामसे आपके अयोनिज पुत्रके रूपमें अवतरित होऊँगा और हे मुने! आप मुझ तीनों लोकोंके पिताके भी पिता बन जायँगे।

हे सनत्कुमार! कुछ समय बाद मेरे पिता शिलाद मुनि यज्ञ करनेके लिये यज्ञस्थलका कर्षण करने लगे। उसी समय यज्ञारम्भसे पूर्व ही शिवजीकी आज्ञासे प्रलयाग्निके सदृश देदीप्यमान होकर मैं उनके पुत्ररूपमें प्रकट हुआ।

उस समय वहाँपर बहुत बड़ा उत्सव हुआ। सभी देवगण हर्षित होकर मेरे तथा मुझे उत्पन्न करनेवाले शिवलिंगका पूजन करके उसकी स्तुति करने लगे।

शिलाद बोले—हे सुरेश्वर! आपने मुझे आनन्दित किया है, अतः आपका नाम नन्दी होगा और इसलिये आनन्द-स्वरूप आप प्रभु जगदीश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ।

नन्दीश्वर बोले—इतना कहकर मुझे साथ लेकर वे पर्णकुटीमें चले गये।

हे महामुने! जब मैं महर्षि शिलादकी कुटीमें गया तो मैंने अपने उस शरीरको त्यागकर मनुष्यरूप धारण कर लिया। पुत्रवत्सल शिलादने मेरा समस्त जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया। उन्होंने वेदों तथा समस्त शास्त्रोंका भी अध्ययन सम्पन्न कराया। सातवें वर्षके पूर्ण होनेपर मित्र और वरुण नामवाले दो मुनि आश्रमपर पधारे। उन्होंने कहा—हे तात! आपके पुत्र सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारंगत हैं, किंतु दुःखकी बात है कि ये अल्पायु हैं। अब इस वर्षसे अधिक इनकी आयु नहीं है। यह सुनकर शिलाद दुःखसे व्याकुल होकर अत्यधिक विलाप करने लगे।

तब मैंने कहा—हे पिताजी! देवता, दानव, यमराज, काल अथवा अन्य कोई भी प्राणी मुझे मार नहीं सकता, आप दुखी न हों। पिताके पूछनेपर नन्दीश्वर बोले—मैं न तो तपसे और न विद्यासे ही मृत्युको रोक सकूँगा, मैं तो केवल महादेवके भजनसे मृत्युको जीतूँगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

नन्दिकेश्वरका अभिषेक एवं विवाह

नन्दीश्वर कहते हैं—इसके अनन्तर मैं वनमें जाकर धीरतापूर्वक कठोर तप करते हुए रुद्रमन्त्रका जप करने लगा। मेरी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर भगवान् शंकरने मुझसे कहा—हे महाप्राज्ञ! तुमको मृत्युसे भय कहाँ? मैंने ही उन दोनों ब्राह्मणोंको भेजा था। तुम तो अपने पिता एवं सुहृज्जनोंके सहित अजर-अमर, दुःखरहित, अविनाशी, अक्षय और मेरे सदाप्रिय गणपति हो गये। इस प्रकार कहकर कृपानिधि शिवने सहस्र कमलोंकी बनी हुई अपनी शिरोमालाको उतारकर मेरे कण्ठमें पहना दिया। हे विप्र! उस पवित्र मालाके गलेमें पड़ते ही मैं तीन नेत्र एवं दस भुजाओंसे युक्त होकर दूसरे शिवके समान हो गया। इसके बाद शिवजीने पार्वतीजीसे कहा—मैं नन्दीको अभिषिक्तकर इसे गणेश्वर बनाना चाहता हूँ, इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है?

उमा बोलीं—हे परमेश्वर! आप इस नन्दीको अवश्य ही गणेश्वरपद प्रदान करें। तदनन्तर भगवान् शंकरने अपने श्रेष्ठ गणाधिपोंका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही असंख्य गणेश्वर वहाँ उपस्थित हो गये।

तब शिवजी बोले—यह नन्दीश्वर मेरा परमप्रिय पुत्र है, अतः तुम लोग इसे सभी गणोंका अग्रणी तथा सभी गणाध्यक्षोंका ईश्वर बनाओ—यह मेरी आज्ञा है। यह नन्दीश्वर आजसे तुम सभीका स्वामी होगा।

शिवजीकी आज्ञासे स्वयं ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर मेरा समस्त गणाध्यक्षोंके अधिपति पदपर अभिषेक किया। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने शिवजीकी आज्ञासे बड़े उत्सवके साथ मेरा विवाह भी सम्पन्न किया।

विवाह करके मैंने अपनी उस पत्नीके साथ शम्भु, शिवा, ब्रह्मा और श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम किया। भगवान् शिव पत्नीसहित मुझसे प्रेमपूर्वक बोले—सत्पुत्र! यह तुम्हारी प्रिया सुयशा और तुम मेरी बात सुनो। तुम मुझे परम प्रिय हो। जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ तुम्हारी स्थिति होगी और जहाँ तुम रहोगे, वहाँ मैं उपस्थित रहूँगा।

महाभागा उमा देवीने भी मुझे तथा मेरी पत्नी सुयशाको अभीष्ट वर प्रदान किया। तत्पश्चात् भगवान्

शिव मुझे अपनाकर उमासहित वृषपर आरूढ़ हो अपने निवास-स्थानपर चले गये।

भैरवावतारका वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—हे सनत्कुमार! अब आप भैरवावतारकी कथा सुनें। भैरवजी परमात्मा शंकरके पूर्णरूप हैं। शिवजीकी मायासे मोहित मूर्ख लोग उन्हें नहीं जान पाते।

एक बार समस्त देवता और ऋषिगण परमतत्त्व जाननेकी इच्छासे ब्रह्माजीके पास गये और उनसे पूछा—हे लोकनायक! अद्वितीय तथा अविनाशी तत्त्व क्या है? नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी मायासे मोहित वे ब्रह्माजी परमतत्त्वको न समझकर अहंकारयुक्त होकर बोले—मैं ही सारे जगत्का प्रवर्तक, संवर्तक और निवर्तक हूँ। हे देवताओ! मुझसे बड़ा कोई नहीं है।

उसी समय वहाँ स्थित विष्णुने उनकी बातका विरोध करते हुए स्वयंको सम्पूर्ण लोकोंका कर्ता, परमपुरुष परमात्मा बताया। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु दोनोंमें विवाद हो गया।

उस समय उन दोनोंकी इस विवादास्पद बातको सुनकर सर्वत्र व्यापक तथा निराकार प्रणवने मूर्तिमान् प्रकट होकर उनसे कहा—परमेश्वर शिव सनातन तथा स्वयं ज्योतिस्वरूप हैं और ये शिवा उनकी आह्लादिनी शक्ति हैं। ये उन्हींके समान नित्य तथा उनसे अभिन्न हैं। ओंकारके इस प्रकार कहनेपर भी उस समय शिवमायासे मोहित ब्रह्मा और विष्णुका अज्ञान जब दूर नहीं हुआ तब उसी समय अपने प्रकाशसे पृथ्वी तथा आकाशके अन्तरालको पूर्ण करती एक महान् ज्योति उन दोनोंके बीचमें प्रकट हो गयी।

उस समय परमेश्वर शिवने अपने तेजसे अत्यन्त देदीप्यमान भैरव नामक एक परमतेजस्वी पुरुषको उत्पन्न किया और बोले—हे कालभैरव! सर्वप्रथम तुम इस पद्मयोनि ब्रह्माको दण्ड दो, तुमसे काल भी डरेगा, अतः तुम कालभैरव कहे जाओगे। हे कालराज! सभी पुरियोंसे श्रेष्ठ जो मेरी मुक्तिपुरी काशी है, तुम सदा उसके अधिपति बनकर रहोगे।

नन्दीश्वर बोले—कालभैरवने इस प्रकारके वरोंको पाकर अपनी बायीं अँगुलियोंके नखोंके अग्रभागसे ब्रह्माका पाँचवाँ सिर तत्क्षण ही काट डाला। उसके बाद ब्रह्माके सिरको कटा हुआ देखकर विष्णु बहुत भयभीत हो गये और शतरुद्रिय मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे।

हे मुने! तब भयभीत हुए ब्रह्माजी भी शतरुद्रिय मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार वे दोनों ही उसी क्षण अहंकाररहित हो गये। अहंकारका त्याग करनेपर ही मनुष्य परमेश्वरको जान पाता है। इसके बाद ब्रह्मा तथा विष्णुको अहंकाररहित जानकर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और उन प्रभुने उन दोनोंको भयरहित कर दिया।

ब्रह्मदेवका सिर काटनेके कारण ब्रह्महत्या भैरवका पीछा करने लगी। भैरव घूमते-घूमते अविमुक्तनगरी वाराणसीपुरीमें जा पहुँचे। भैरवके उस क्षेत्रमें प्रवेश करनेमात्रसे ही ब्रह्महत्या उसी समय हाहाकार करके पातालमें चली गयी। उसी समय भैरवके हस्तकमलसे ब्रह्माका कपाल पृथ्वीपर गिर पड़ा। तबसे वह तीर्थ 'कपालमोचन' नामसे प्रसिद्ध हो गया। इस श्रेष्ठ तीर्थमें आकर विधिपूर्वक स्नानकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है। मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीतिथिको भैरवजीका जन्म हुआ, जो मनुष्य इस तिथिको कालभैरवकी सन्निधिमें उपवास करके जागरण करता है, वह महान् पापोंसे मुक्त हो जाता है और सद्गतिको प्राप्त होता है।

भगवान् शंकरका शरभावतार

भगवान् शंकरके भैरवावतार एवं उनकी लीलाओंका वर्णन करनेके उपरान्त नन्दीश्वरने कहा—महामुने! भगवान् शिव उत्तमोत्तम लीलाएँ रचनेवाले तथा सत्पुरुषोंके प्रेमी हैं। श्रेष्ठ भक्तोंके हितसाधक अपरिमित शिवावतार हुए हैं, उनकी संख्याकी गणना नहीं की जा सकती है।

पूर्वकालमें पृथ्वीका उद्धार करनेहेतु ब्रह्माजीद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भगवान् विष्णुने वाराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वध किया। इसके अनन्तर भगवान् विष्णुने नृसिंहका रूप धारणकर हिरण्यकशिपुका संहार किया। भगवान् शंकरने शरभावतार धारणकर उसके द्वारा नृसिंहको शान्त किया था।

भगवान् शंकरके गृहपति-अवतारकी कथा

नन्दीश्वर कहते हैं—हे ब्रह्मपुत्र! पूर्वकालकी बात है, नर्मदा के रमणीय तटपर नर्मपुर नामका एक नगर था, जिसमें विश्वानर नामके एक मुनि निवास करते थे। वे पुण्यात्मा, शिवभक्त और जितेन्द्रिय थे। शुचिष्मती नामकी एक सद्गुणवती कन्यासे उनका विवाह हुआ। एक दिन शुचिष्मतीने अपने पतिसे शिवके समान पुत्रप्राप्तिकी इच्छा व्यक्त की। इसके लिये मुनि विश्वानरने वाराणसी जाकर घोर तप किया। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर स्वयं भगवान् शंकर शुचिष्मतीके गर्भसे पुत्ररूपमें प्रकट हुए। स्वयं ब्रह्माजीने बालकका 'गृहपति' नाम रखा। उस बालककी अवस्थाका नौवाँ वर्ष आनेपर गृहपतिको देखनेके लिये वहाँ नारदजी पधारे। नारदजीने बालककी हस्तरेखा देखकर बालककी प्रशंसा की, पर साथ ही कहा कि मुझे शंका है कि इसके बारहवें वर्षमें इसपर बिजली अथवा अग्निद्वारा विघ्न आयेगा। यह कहकर नारदजी वहाँसे चले गये।

नारदकी बात सुनकर माता-पिता अत्यन्त शोकसन्तप्त होकर रुदन करने लगे। उनको रोते हुए देखकर गृहपतिने उन्हें आश्वस्त किया और कहा कि मैं मृत्युंजयकी भलीभाँति आराधना करके महाकालको भी जीत लूँगा। आपलोग पूर्ण रूपसे निश्चिन्त हो जायँ।

माता-पिताके चरणोंमें प्रणामकर गृहपति काशीपुरीमें जा पहुँचे, वहाँ पहले मणिकर्णिकामें स्नानकर भगवान् विश्वनाथका दर्शन किया। इसके अनन्तर गृहपतिने वहाँ शुभ दिनमें शिवलिंगकी स्थापना की और कठोर तप करने लगे।

कुछ समय बाद भगवान् सदाशिव वहाँ प्रकट हो गये और उन्होंने गृहपतिको वर प्रदान करते हुए कहा कि तुम अग्निका पद ग्रहण करनेवाले हो जाओ। तुम सभी देवताओंके वरदाता बनोगे। तुम समस्त प्राणियोंके अन्दर जठराग्निरूपसे विचरण करोगे। तुम्हारे द्वारा स्थापित यह शिवलिंग तुम्हारे नामपर 'अग्नीश्वर' नामसे प्रसिद्ध होगा। जो लोग इस अग्नीश्वरलिंगके भक्त होंगे, उन्हें बिजली और अग्निका भय नहीं रह जायगा। उनकी कभी अकाल मृत्यु भी नहीं होगी।

नन्दीश्वरजी कहते हैं—मुने! यों कहकर शिवजीने गृहपतिके माता-पिताके सामने उस अग्निका दिक्पति पदपर अभिषेक कर दिया और स्वयं उसी लिंगमें समा गये। हे तात! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् शंकरके गृहपति नामक अग्न्यवतारका वर्णन किया। जो ब्राह्मण अग्निहोत्रपरायण होकर पंचाग्निका सेवन करते हैं, वे अग्निके समान वर्चस्वी होकर अग्निलोकमें विचरते हैं। जो शीतकालमें शीतनिवारणके निमित्त लकड़ियाँ दान करता है तथा जो श्रद्धापूर्वक किसी अनाथका अग्नि-संस्कार करा देता है, वह अग्निलोकमें प्रशंसित होता है। द्विजातियोंके लिये यह अग्नि परम कल्याणकारक है।

भगवान् शंकरके महाकाल आदि प्रमुख दस अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब आप शंकरजीके महाकाल आदि दस अवतारोंको भक्तिपूर्वक सुनिये।

उनमें प्रथम 'महाकाल' नामक अवतार है, जो सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इस अवतारमें उनकी शक्ति महाकाली हैं, जो भक्तोंको अभीष्ट पद प्रदान करती हैं।

दूसरा अवतार 'तार' नामसे विख्यात है, जिसकी शक्ति तारा हैं।

तीसरा अवतार 'बाल भुवनेश्वर' हैं, जिनकी शक्ति बाला भुवनेश्वरी हैं।

चौथा अवतार 'षोडश श्रीविद्येश'के रूपमें हुआ है, इनकी महाशक्ति षोडशी श्रीमहाविद्या हैं।

पाँचवाँ अवतार 'भैरव' नामसे प्रसिद्ध है, उनकी महाशक्ति गिरिजा भैरवी हैं।

शिवका छठा अवतार 'छिन्नमस्तक' है, जिनकी महाशक्ति छिन्नमस्तका गिरिजा हैं।

सातवें अवतारका नाम 'धूमवान्' है, इनकी शक्ति धूमावती हैं।

आठवाँ अवतार 'बगलामुख' है, जिनकी शक्ति बगलामुखी हैं।

नौवाँ अवतार 'मातंग' नामसे विख्यात है, जिनकी शक्ति मातंगी हैं।

दसवाँ अवतार 'कमल' नामक शम्भु हैं, इनकी

शक्ति पार्वतीका नाम कमला है।

शिवजीके ये दस अवतार हैं, जो सज्जनों एवं भक्तोंको सर्वदा सुख देनेवाले तथा उन्हें भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं।

शिवजीके दुर्वासावतार तथा हनुमदवतारका वर्णन

नन्दीश्वरजी कहते हैं—महामुने! अब तुम शम्भुके एक दूसरे चरितको, जिसमें शंकरजी धर्मके लिये दुर्वासा होकर प्रकट हुए थे, प्रेमपूर्वक श्रवण करो। अनसूयाके पति ब्रह्मवेत्ता अत्रिने ब्रह्माजीके निर्देशानुसार पत्नीसहित ऋक्षकुलपर्वतपर जाकर पुत्रकी कामनासे घोर तप किया। उनके तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर—तीनों उनके आश्रमपर गये और कहा—हमारे अंशसे तुम्हारे तीन पुत्र होंगे। ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा हुए, जो देवताओंके द्वारा समुद्रमें डाले जानेपर समुद्रसे प्रकट हुए थे। विष्णुके अंशसे श्रेष्ठ संन्यासपद्धतिको प्रचलित करनेवाले 'दत्त' प्रकट हुए और रुद्रके अंशसे मुनिवर दुर्वासाने जन्म लिया।

इन दुर्वासाने महाराज अम्बरीषकी परीक्षा की, इन्होंने भगवान् रामकी परीक्षा की, इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी परीक्षा की और उनको श्रीरुक्मिणीसहित रथमें जोता। उसके बाद दुर्वासा मुनिने अनेक विचित्र चरित्र किये।

मुने! अब तुम हनुमान्‌जीका चरित्र श्रवण करो। हनुमद्रूपसे शिवजीने बड़ी उत्तम लीलाएँ कीं।

एक समयकी बात है, जब अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले भगवान् शम्भुको भगवान् विष्णुके मोहिनीरूपका दर्शन प्राप्त हुआ, तब कामदेवके बाणोंसे आहत होकर उन परमेश्वरने रामकार्यकी सिद्धिके लिये अपना वीर्यपात किया। तब सप्तर्षियोंने उस वीर्यको पत्रपुटकमें स्थापितकर रामकार्यकी सिद्धिके लिये गौतमकन्या अंजनीमें कानके रास्ते स्थापित कर दिया। समय आनेपर उस गर्भसे शम्भु महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न वानर शरीर धारण करके उत्पन्न हुए। उनका नाम हनुमान् रखा गया। महाबली हनुमान् जब शिशु ही थे, उसी समय उदय होते हुए सूर्यबिम्बको छोटा-सा फल समझकर तुरन्त ही निगल गये। बादमें उन्होंने उसे महाबली सूर्य जानकर उगल दिया। देवर्षियोंने उन्हें शिवका अवतार माना और बहुत-से वरदान दिये। फिर माताकी आज्ञासे धीर-वीर हनुमान्‌ने सूर्यके निकट जाकर उनसे अनायास ही सारी विद्याएँ सीख लीं।

तदनन्तर नन्दीश्वरने भगवान् रामका सम्पूर्ण चरित्र संक्षेपसे वर्णन करके कहा—मुने! कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌ने सब तरहसे श्रीरामका कार्य सम्पूर्ण किया, नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं।

इस प्रकार मैंने हनुमान्‌जीका श्रेष्ठ चरित्र, जो सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंका दाता है, तुमसे वर्णन कर दिया।

भगवान् शिवका पिप्पलाद-अवतार

सनत्कुमारजी! अब आप महेश्वरके 'पिप्पलाद-अवतार' का वर्णन श्रवण करें।

एक समय दैत्योंने वृत्रासुरकी सहायतासे इन्द्र आदि समस्त देवताओंको पराजित कर दिया। तब उन सभी देवताओंने तथा देवर्षियोंने ब्रह्मलोक जाकर ब्रह्माजीसे अपना दुःख कह सुनाया। ब्रह्माजीने सारा रहस्य प्रकट करते हुए कहा कि यह सब त्वष्टाकी करतूत है। त्वष्टाने ही तुमलोगोंका वध करनेके लिये तपस्याद्वारा इस महातेजस्वी वृत्रासुरको उत्पन्न किया। इसके वधका मैं एक उपाय बताता हूँ, सुनो। जो दधीचि नामक तपस्वी महामुनि हैं, उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी आराधनाकर वज्रके समाज हड्डियोंवाला होनेका वरदान पाया था। आप लोग उनके पास जाकर अस्थियोंके लिये याचना कीजिये, वे अवश्य दे देंगे। फिर उन अस्थियोंसे वज्रदण्डका निर्माण करके तुम निश्चय ही उससे वृत्रासुरको मार डालना। ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर देवगुरु बृहस्पति देवताओंको साथ लेकर दधीचि ऋषिके आश्रमपर पहुँचे और वहाँ इन्द्रने विनम्र होकर दधीचिजीको प्रणाम किया। दधीचिने देवताओंके अभिप्रायको जान अपनी पत्नी सुवर्चाको आश्रमसे अन्यत्र भेज दिया।

इन्द्रने कहा—मुने! हम सभी देवता तथा देवर्षि त्वष्टाद्वारा अपमानित होनेके कारण आपकी शरणमें आये हैं। आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान करें। आपकी अस्थियोंसे वज्रका निर्माणकर मैं उन देवद्रोहियोंका वध करूँगा।

दधीचि मुनिने अपने स्वामी भगवान् शिवका ध्यान करके अपना शरीर छोड़ दिया। तदनन्तर इन्द्रने शीघ्र ही स्वर्गसे सुरभि गौको बुलवाकर उसके द्वारा उनके शरीरको चटवाया और उनकी अस्थियोंसे अस्त्र-निर्माण करनेके निमित्त विश्वकर्माको आज्ञा दी।

विश्वकर्माने अस्थियोंसे सम्पूर्ण अस्त्रोंका निर्माण कर दिया। उसके बाद इन्द्रने शीघ्रतासे वज्रके द्वारा पर्वत-शिखरके समान वृत्रासुरका सिर काट दिया।

उधर दधीचिकी पतिव्रता पत्नी सुवर्चा पुनः घर लौटीं तो अपने पतिको वहाँ न देखकर तथा देवताओंके अत्यन्त अशोभनीय कर्मको देखकर अत्यधिक रुष्ट होकर उन्हें शाप देते हुए कहा—हे देवगणो! इन्द्रसहित सभी देवता आजसे पशु हो जायँ।

इसके बाद उस पतिव्रताने अपने पतिके लोकमें जानेकी इच्छा की और पवित्र काष्ठोंकी चिता बनायी। उसी समय आकाशवाणीने मुनिपत्नी सुवर्चासे कहा—हे प्राज्ञे! तुम्हारे उदरमें गर्भरूपसे मुनिका तेज विद्यमान है। तुम उसे प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न करो। सगर्भाको सती नहीं होना चाहिये—ऐसी वेदकी आज्ञा है।

तदनन्तर उनके उदरसे दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत परम दिव्य शरीरवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो साक्षात् रुद्रका अवतार था।

तत्पश्चात् पतिलोक जानेकी इच्छावाली सुवर्चाने अपने पुत्रसे प्रेमपूर्वक कहा—हे तात! तुम बहुत समयतक इस पीपल वृक्षके समीप रहो, अब मुझे पतिलोक जानेके लिये अति प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान करो। मैं अपने पतिके साथ तुझ रुद्रस्वरूपका ध्यान करती रहूँगी।

सुवर्चाके गर्भसे पुत्ररूपसे पृथ्वीपर शिवजीको अवतरित हुआ जानकर ब्रह्मा, विष्णु तथा देवतागण वहाँ पहुँचे और बड़ा उत्सव मनाया। ब्रह्माजीने पीपल वृक्षद्वारा संरक्षित दधीचिके उस पुत्रका विधिवत् जातक आदि संस्कार करके उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा।

इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण महोत्सव मनाकर अपने-अपने स्थानको चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल वृक्षके नीचे संसारहितकी इच्छासे बहुत कालतक तप करते रहे।

कुछ समयके बाद पिप्पलादने राजा अनरण्यकी कन्या पद्मासे विवाह कर लिया। उन मुनिके दस पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब पिताके ही समान महात्मा और अतुल तपस्वी थे।

इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार मुनिवर पिप्पलादने नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं। उन कृपालुने जगत्में शनैश्चरकी पीड़ाको, जिसका निवारण करना सबकी शक्तिके बाहर था, देखकर लोगोंको यह वरदान दिया कि जन्मसे लेकर सोलह वर्षतककी आयुवाले मनुष्योंको तथा शिवभक्तोंको शनिपीड़ा नहीं हो सकती। यदि कहीं शनि मेरे वचनोंका अनादर करके उन मनुष्योंको पीड़ा पहुँचायेगा तो वह निःसन्देह भस्म हो जायगा।

इस प्रकार लीलासे मनुष्यरूप धारण करनेवाले पिप्पलादका उत्तम चरित्र तुम्हें सुना दिया, यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

इसके अनन्तर नन्दीश्वरने विभिन्न अवतारोंका वर्णन करते हुए भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतार, यतिनाथ एवं हंस अवतार, कृष्णदर्शन नामक अवतार, अवधूतेश्वर अवतार, भिक्षुवर्यावतार आदिकी कथाओंका वर्णन विशेष रूपमें प्रस्तुत किया।

भगवान् शिवका सुरेश्वरावतार

इसके पश्चात् नन्दीश्वरजी कहते हैं—सनत्कुमारजी! अब मैं परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन करता हूँ। उपमन्यु व्याघ्रपाद मुनिके पुत्र थे। उन्होंने पूर्वजन्ममें ही सिद्धि प्राप्त कर ली थी और वर्तमान जन्ममें मुनिकुमारके रूपमें प्रकट हुए थे। वे अपनी दरिद्रताके कारण शैशवावस्थासे ही माताके साथ मामाके घरमें रहते थे। एक दिन उन्हें बहुत कम दूध पीनेको मिला। वे अपनी मातासे बार-बार दूध माँगने लगे। उनकी तपस्विनी माताने कुछ बीजोंको सिलपर पीसकर और उन्हें पानीमें घोलकर कृत्रिम दूध बेटेको पीनेको दिया। उस नकली दूधको पीकर बालक उपमन्यु बोले—'यह तो दूध नहीं है।' इतना कहकर वे फिर रोने लगे।

माताने कहा—बेटा! हम लोग वनमें निवास करते हैं, हमें यहाँ दूध कहाँसे मिल सकता है? भगवान् शिवकी कृपाके बिना किसीको दूध नहीं मिलता।

माताकी यह बात सुनकर उपमन्युने भगवान् शिवकी आराधना करनेका निश्चय किया। वे तपस्याके लिये हिमालयपर्वतपर गये। वहाँ उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाया, जिसमें मिट्टीके शिवलिंगकी स्थापना करके जंगलके पत्र-पुष्पादिसे पंचाक्षरमन्त्रके उच्चारणपूर्वक शिवकी पूजा करने लगे। माता पार्वती और शिवका ध्यान करके उनकी पूजा करनेके पश्चात् वे पंचाक्षरमन्त्रका जप किया करते थे। जप करते हुए उन्होंने घोर तपस्या सम्पन्न की। भगवान् सदाशिव कृपापूर्वक प्रकट हो गये और उपमन्युको अपना पुत्र माना। उनका मस्तक सूँघकर कहा—वत्स! मैं तुम्हारा पिता और ये पार्वती देवी तुम्हारी माता हैं। तुम्हें आजसे सनातन कुमारत्व प्राप्त होगा। मैं तुम्हारे लिये दूध, दही और मधुके सहस्त्रों समुद्र देता हूँ। मैं तुम्हें अमरत्व तथा अपने गणोंका आधिपत्य प्रदान करता हूँ।

इतना कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये। उपमन्युने वर पाकर प्रसन्नतापूर्वक घर आकर अपनी मातासे सब बातें बतायीं। माताको बड़ा हर्ष हुआ। इस प्रकार मैंने तुमसे परमेश्वर शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन किया।

भगवान् शिवका किरातावतार

नन्दीश्वरजी कहते हैं—हे सनत्कुमारजी! अब मैं आशुतोष भगवान् शिवके किरातावतारका वर्णन करता हूँ, जिसमें उन्होंने अपने भक्त नरश्रेष्ठ अर्जुनकी 'मूक' नामक दैत्यसे रक्षा की और उनसे युद्ध-लीलामें प्रसन्न होकर उन्हें अपना अमोघ पाशुपतास्त्र प्रदान किया।

भगवान् शिवके इस पावन अवतारकी कथा इस प्रकार है—

पाण्डवोंके वनवासकालकी बात है। अर्जुन श्रीकृष्णकी सम्मति और व्यासजीके आदेशसे शस्त्रास्त्रोंकी प्राप्तिके लिये इन्द्रकीलपर्वतपर तपस्या कर रहे थे। वे भगवान् शंकरके पंचाक्षरमन्त्रका जप करते हुए तपमें सन्नद्ध थे। उनकी घोर तपस्या देखकर देवताओंने भगवान् शंकरसे उन्हें वर देनेकी प्रार्थना की। उधर जब दुर्योधनको अर्जुनकी तपस्याकी बात ज्ञात हुई, तो उस दुरात्माने मूक नामक एक मायावी राक्षसको उनका वध करनेके लिये भेजा।

वह दुष्ट असुर शूकरका वेश धारणकर अर्जुनके समीप पहुँचा और वहाँके पर्वतशिखरों और वृक्षोंको ढहाने लगा। उसकी भयंकर गुर्राहटसे दसों दिशाएँ गूँज रही थीं। यह देखकर भक्तहितकारी भगवान् शंकर किरातवेश धारणकर प्रकट हुए।

शूकरको अपनी ओर आते देखकर अर्जुनने उसपर शर-संधान किया, ठीक उसी समय किरातवेशधारी भगवान् शंकरने भी अपने भक्त अर्जुनकी रक्षाहेतु उस शूकररूपधारी दानव मूकपर अपना बाण चलाया। दोनों बाण एक ही साथ उस शूकरके शरीरमें प्रविष्ट हो गये और वह वहीं गिरकर मर गया। उसे मारकर अर्जुनने अपने आराध्य भगवान् शंकरका ध्यान किया और अपने बाणको उठानेके लिये उस शूकरके पास पहुँचे। इतनेमें ही किरातवेशधारी शिवका एक गण भी वनेचरके रूपमें बाण लेनेके लिये आ पहुँचा और अर्जुनको बाण उठानेसे रोककर कहने लगा कि यह मेरे स्वामीका बाण है, जिसे उन्होंने तुम्हारी रक्षाके लिये चलाया था, परंतु तुम तो इतने कृतघ्न हो कि उपकार माननेकी बजाय उनके बाणको ही चुराये ले रहे हो। यदि तुझे बाणकी ही आवश्यकता है तो मेरे स्वामीसे माँग ले, वे ऐसे बहुत-से बाण तुझे दे सकते हैं।

अर्जुनने कहा—यह मेरा बाण है, इसपर मेरा नाम अंकित है। इस बाणको मैं तुझे ले जाने देकर अपने कुलकी कीर्तिमें दाग नहीं लगवा सकता। भगवान् शंकरकी कृपासे मैं स्वयं अपनी रक्षा करनेमें समर्थ हूँ। अगर तेरे स्वामीमें बल है तो वे आकर मुझसे युद्ध करें। दूतने अर्जुनकी कही हुई सारी बातें जाकर अपने स्वामीसे विशेष रूपसे कह दीं, जिसे सुनकर किरातवेशधारी भगवान् शिव अपने भीलरूपी गणोंकी महान् सेना लेकर अर्जुनके सम्मुख आ गये। उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने भगवान् शिवका ध्यानकर अत्यन्त भीषण संग्राम छेड़ दिया। उस घोर युद्धमें अर्जुनने शिवजीका ध्यान किया, जिससे उनका बल बढ़ गया। तदनन्तर उन्होंने किरातवेशधारी शिवके दोनों पैर पकड़कर उन्हें घुमाना शुरू कर दिया। लीलास्वरूपधारी लीलामय भगवान् शिव भक्तपराधीन होनेके कारण हँसते रहे। तत्पश्चात् उन्होंने अपना वह सौम्य एवं अद्भुत रूप प्रकट किया,

जिसका अर्जुन चिन्तन करते थे।

किरातके उस सुन्दर रूपको देखकर अर्जुनको महान् विस्मय हुआ। वे लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। उन्होंने मस्तक झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया और खिन्नमन हो अपनेको धिक्कारने लगे। उन्हें पश्चात्ताप करते देखकर भक्तवत्सल भगवान् महेश्वरका चित्त प्रसन्न हो गया। उन्होंने कहा—पार्थ! तुम तो मेरे परमभक्त हो, यह तो मैंने तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिये ऐसी लीला रची थी। उन्होंने प्रेमपूर्वक अर्जुनका आलिंगन किया और बोले—हे पाण्डवश्रेष्ठ! मैं तुमसे परम प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो।

यह सुनकर प्रसन्नमन अर्जुनने अपने आराध्य भगवान् शिवकी वेदसम्मत स्तुति की और भगवान् शिवके पुनः 'वर माँगो' कहनेपर नतमस्तक हो उन्हें प्रणाम किया और प्रेमपूर्वक गद्‌गद वाणीमें कहा—हे विभो! मेरे संकट तो आपके दर्शनसे ही दूर हो गये हैं, अब जिस प्रकार मुझे इस लोककी परासिद्धि प्राप्त हो सके, वैसी कृपा कीजिये।

पाण्डुपुत्र अर्जुनमें अपनी अनन्य भक्ति देखकर भगवान् महेश्वरने उन्हें अपना पाशुपत नामक महान् अस्त्र प्रदान किया और समस्त शत्रुओंपर विजय-लाभ पानेका आशीर्वाद दिया।

हे मुने! इस प्रकार मैंने लीलामय परम कौतुकी भगवान् शंकरके किरातावतारका वर्णन किया। जो इसे सुनता अथवा दूसरेको सुनाता है, उसकी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

कोटिरुद्रसंहिता

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंका नाम-निर्देश

ऋषि बोले—सूतजी! आपने सम्पूर्ण लोकोंके हितकी कामनासे नाना प्रकारके आख्यानोंसे युक्त जो शिवावतारका माहात्म्य बताया है, वह बहुत ही उत्तम है। तात! आप पुनः शिवके परम उत्तम माहात्म्यका तथा शिवलिङ्गकी महिमाका प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये। भूमण्डलमें अथवा अन्य स्थलोंमें भी जो-जो प्रसिद्ध शुभ शिवलिंग विराजमान हैं, भगवान् शिवके उन सभी दिव्य लिंगोंका समस्त लोकोंके हितकी इच्छासे आप वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! सम्पूर्ण तीर्थ लिंगमय हैं। सब कुछ लिंगमें ही प्रतिष्ठित है। उन शिवलिंगोंकी कोई गणना नहीं है तथापि मैं उनका किंचित् वर्णन करता हूँ।

संसारमें कोई भी वस्तु शिवके स्वरूपसे भिन्न नहीं है। मुनिश्रेष्ठ शौनक! इस भूमण्डलपर जो मुख्य-मुख्य ज्योतिर्लिंग हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ। उनका नाम सुननेमात्रसे पाप दूर हो जाते हैं—

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ओंकारतीर्थमें परमेश्वर, हिमालयके शिखरपर केदार, डाकिनीक्षेत्रमें भीमशंकर, वाराणसीमें विश्वनाथ, गोदावरीके तटपर त्र्यम्बक, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर तथा शिवालयमें घुश्मेश्वरका स्मरण करे। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसके सभी प्रकारके पाप छूट जाते हैं और उसे सम्पूर्ण सिद्धियोंका फल प्राप्त हो जाता है—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशङ्करम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं तु शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥

इन लिंगोंपर चढ़ाया गया प्रसाद सर्वदा ग्रहण करनेयोग्य होता है, उसे श्रद्धासे विशेष यत्नपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करनेवालेके समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं।

हे मुनीश्वरो! म्लेच्छ, अन्त्यज अथवा नपुंसक कोई भी हो, वह ज्योतिर्लिंगके दर्शनके प्रभावसे द्विजकुलमें जन्म लेकर मुक्त हो जाता है। इसलिये ज्योतिर्लिंगका दर्शन अवश्य करना चाहिये।

इस प्रकार संक्षेपमें इन ज्योतिर्लिंगोंके दर्शनके फलका वर्णन किया गया, अब इसके अनन्तर इनके उपलिंगोंका वर्णन भी यहाँ विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

काशी आदिके विभिन्न लिंगोंका वर्णन

सूतजी कहते हैं—गंगाके तटपर परम प्रसिद्ध काशीनगरी है, जो सबको मुक्ति प्रदान करनेवाली है। उसे लिंगमयी ही जानना चाहिये। वह सदाशिवकी निवास-स्थली मानी गयी है। इतना कहकर सूतजीने **काशीके अविमुक्त, कृत्तिवासेश्वर, तिलभाण्डेश्वर, दशाश्वमेधेश्वर इत्यादि और गंगासागर आदिके संगमेश्वर, भूतेश्वर, नारीश्वर, वटुकेश्वर, पूरेश्वर, सिद्धनाथेश्वर, दूरेश्वर, शृङ्गेश्वर, वैद्यनाथ, जप्येश्वर, गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश, कामेश, विमलेश्वर; प्रयागके ब्रह्मेश्वर, सोमेश्वर, भारद्वाजेश्वर, शूलटङ्केश्वर, माधवेश तथा अयोध्याके नागेश** आदि अनेक प्रसिद्ध शिवलिंगोंका वर्णन किया।

अत्रीश्वरका प्राकट्य एवं मन्दाकिनी गंगाका आविर्भाव

सूतजी बोले—ब्रह्मपुरीके समीप चित्रकूटपर्वतपर मत्तगजेन्द्र नामक लिंग है, उसके पूर्वमें कटीश्वर नामक लिंग है। गोदावरी नदीके पश्चिमकी ओर पशुपति नामक लिंग है। दक्षिण दिशामें एक अत्रीश्वर नामक लिंग है, जिसके रूपमें साक्षात् शिवजीने अपने अंशसे स्वयं प्रकट होकर समस्त प्राणियोंको जीवनदान दिया था।

सूतजी आगे कहते हैं—हे शिष्ट ऋषियो! चित्रकूटके समीप दक्षिण दिशामें कामद नामक एक विशाल वन है, वहाँ ब्रह्माके पुत्र महर्षि अत्रि अपनी पत्नी अनसूयाके साथ अति कठिन तप करते थे। मुनिवर अत्रि स्वयं आसनपर स्थिर हो समाधिमें लीन हो गये तथा आत्मामें स्थित निर्विकार शिवस्वरूप परमज्योतिका ध्यान करने लगे। पतिव्रता अनसूया प्रसन्नताके साथ निरन्तर उन मुनिश्रेष्ठकी सेवा करने लगीं। वे सुन्दर पार्थिव शिवलिंग बनाकर मन्त्रके द्वारा विधिवत् मानस-उपचारोंसे पूजन करती थीं और बारम्बार शंकरजीकी सेवाकर भक्तिसे उनकी स्तुति करती थीं। उन अत्रिकी तपस्या तथा अनसूयाके शिवाराधनसे प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवता, ऋषिगण तथा गंगा आदि सभी नदियाँ उन दोनोंका दर्शन करनेके लिये प्रेमपूर्वक वहाँ आये और उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हुए। वे अत्रिके शिवाराधन और अनसूयाकी पतिसेवाकी प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार उनकी प्रशंसा करके वे जैसे आये थे, वैसे ही अपने-अपने स्थानको चले गये, परंतु गंगाजी और शिवजी वहाँ स्थित रहे।

एक दिन अनसूयाजी पतिके लिये जल लाने वनकी ओर जा रही थीं, उनकी उस पतिभक्तिसे प्रसन्न होकर गंगाजी बोलीं—'हे देवि! मैं तुम्हारे धर्माचरण और शिवाराधनसे तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहती हो, उसे माँगो।' तब अनसूयाजीने कहा—यदि आप प्रसन्न हैं और मुझपर आपकी कृपा है तो हे देवि! इस तपोवनमें आप स्थिर होकर निवास करें।

गंगाजी बोलीं—हे अनसूये! यदि तुम भगवान् शंकरके अर्चन और अपने स्वामीकी वर्षभरकी सेवाका फल मुझे प्रदान करो तो मैं देवताओंके उपकारके लिये यहाँ स्थित रहूँगी। पतिव्रता स्त्रीको देखकर मेरा पाप नष्ट हो जाता है और मैं विशेषरूपसे शुद्ध हो जाती हूँ। पतिव्रता स्त्री पार्वतीके तुल्य है। यह वचन सुनकर अनसूयाने वर्षभरका सारा पुण्य गंगाको दे दिया। अनसूयाके इस महान् पातिव्रत कर्मको देखकर महादेव प्रसन्न हो गये और उसी क्षण पार्थिव लिंगसे प्रकट हो गये। वे सदाशिव **अत्रीश्वर** नामसे प्रसिद्ध हुए और गंगाजी भी अपनी मायासे वहाँ स्थित हो गयीं, जो **मन्दाकिनी** नामसे प्रसिद्ध हुईं।

नर्मदाके तटपर नन्दिकेश्वरका प्रादुर्भाव

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने अत्रीश्वरकी उत्पत्ति एवं माहात्म्य आपसे कहा, जो समस्त मनोरथोंको पूर्णकर भक्तिको बढ़ानेवाला है।

सूतजी कहते हैं—हे सुव्रतो! रेवानदीके तटपर जितने शिवलिंग हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती। रुद्रस्वरूप वह रेवा दर्शनमात्रसे पापोंका नाश करती है और उसमें जो भी पाषाण स्थित हैं, वे शिवस्वरूप हैं। भोग एवं मोक्षको देनेवाले कई प्रमुख शिवलिंग वहाँ स्थित हैं, जिनमें नन्दिकदेव सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण

करनेवाले कहे गये हैं। जो रेवा नदीके तटपर स्नान करके भगवान् नन्दिकेश्वरका पूजन करता है, उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

ऋषिगणोंके पूछनेपर सूतजीने कहा—महर्षियो! पूर्व समयमें किसी ब्राह्मणकी ऋषिका नामक एक कन्या थी। उसने अपनी उस कन्याका विवाह विधानपूर्वक किसी ब्राह्मणसे कर दिया। वह द्विजपत्नी अपने पूर्व जन्मके किसी अशुभ कर्मके प्रभावसे बाल्यावस्थामें ही विधवा हो गयी। तब वह ब्राह्मणपत्नी ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर हो पार्थिव-पूजनपूर्वक कठोर तप करने लगी। उसी समय महामायावी 'मूढ' नामक दुष्ट असुर कामबाणसे पीड़ित होकर वहाँ गया तथा तपस्या करती हुई उस सुन्दरी स्त्रीको देखकर अनेक प्रकारका प्रलोभन देकर उसके साथ सहवासकी याचना करने लगा। तपस्यामें संलग्न उस ब्राह्मणीद्वारा तिरस्कृत हुए उस दैत्यने उसपर अत्यन्त क्रोध किया, अपना विकट रूप दिखाते हुए दुर्वचन कहकर डराने लगा। तब शिव-परायणा वह द्विजपत्नी भयभीत होकर अत्यन्त व्याकुल हो 'शिव' नामका जप करती हुई अपने धर्मकी रक्षाके लिये शिवजीकी शरणमें चली गयी। तब शरणागतकी रक्षा, सदाचारकी स्थापना तथा उस ब्राह्मणीको आनन्द प्रदान करनेके लिये सदाशिव वहीं प्रकट हो गये।

भक्तवत्सल भगवान् शंकरने उस दैत्यराज मूढ़को तत्काल भस्म कर दिया और ब्राह्मणीकी ओर कृपा-दृष्टिसे देखते हुए कहा—'वर माँगो।'

ऋषिका बोली—देवदेव महादेव! आप मुझे अपने चरणोंकी परम उत्तम एवं अनन्य भक्ति प्रदान कीजिये। प्रभो! मेरी दूसरी प्रार्थना है कि आप लोककल्याणके निमित्त यहींपर निवास कीजिये। भगवान् शंकरने कहा—हे ऋषिके! तुमने जो-जो वर माँगे, उन सभीको मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ।

इस अवसरपर शिवजीको प्रकट हुआ जानकर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता वहाँ पहुँच गये और प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति की। इसी समय भगवती गंगाजीने वहाँ आकर साध्वी ऋषिकाके भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नचित्त होकर उससे कहा—हे साध्वी! तुम वैशाख महीनेमें एक दिन मेरे कल्याणके लिये अपने समीपमें रहनेका मुझे वचन दो, जिससे मैं एक दिन तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करूँ। गंगाजीका वचन सुनकर उस साध्वीने इसे स्वीकार किया। शिवजी भी उसके द्वारा निर्मित उस पार्थिव लिंगमें अपने पूर्णांशसे प्रविष्ट हो गये। उसी दिनसे नर्मदाका यह तीर्थ ऐसा उत्तम और परम पावन तीर्थ हो गया, जहाँ शिवजी नन्दिकेश नामसे प्रसिद्ध होकर स्थित हैं। गंगा भी प्रतिवर्ष वैशाखमासकी सप्तमीके दिन सबके कल्याणकी इच्छासे तथा अपने उस पापको धोनेके लिये वहाँ जाती हैं, जो मनुष्योंसे वे ग्रहण करती हैं।

पश्चिमदिशाके शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें महाबलेश्वरलिंगका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—हे ब्राह्मणो! अब पश्चिम दिशामें जो-जो लिंग भूतलपर प्रसिद्ध हैं, उन शिवलिंगोंको सद्भक्तिपूर्वक सुनिये।

कपिलानगरीमें **कालेश्वर** एवं **रामेश्वर** नामक दो महादिव्य लिंग हैं, जो दर्शनमात्रसे पापोंको नष्ट करते हैं। पश्चिम सागरके तटपर **महासिद्धेश्वर** लिंग है, जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षतक प्रदान करता है।

पश्चिम समुद्रके तटपर गोकर्ण नामक उत्तम क्षेत्र है। यह ब्रह्महत्यादि पापोंको नष्ट करनेवाला और सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। गोकर्णक्षेत्रमें करोड़ों शिवलिंग हैं और पग-पगपर असंख्य तीर्थ हैं। अधिक क्या कहें, गोकर्णक्षेत्रमें स्थित सभी लिंग शिवस्वरूप हैं और वहाँका समस्त जल तीर्थस्वरूप है।

गोकर्णक्षेत्रमें स्थित **महाबलेश्वर** शिवलिंग कृतयुगमें श्वेतवर्ण, त्रेतामें लोहितवर्ण, द्वापरमें पीतवर्ण और कलियुगमें श्यामवर्णका हो जाता है। महापाप करनेवाले लोग भी यहाँ गोकर्णक्षेत्रमें विराजमान **महाबलेश्वर** लिंगकी पूजाकर 'शिव' पदको प्राप्त हुए हैं।

उत्तरदिशामें विद्यमान शिवलिंगोंका वर्णन

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! अब मैं उत्तरदिशामें विराजमान मुख्य-मुख्य शिवलिंगोंका वर्णन कर रहा हूँ।

गोकर्ण नामक एक दूसरा भी पापनाशक क्षेत्र है, वहाँपर एक विस्तृत महावन है, जिसमें **चन्द्रभाल** नामक उत्तम शिवलिंग है, जिसे रावण सद्भक्तिपूर्वक लाया था। गोकर्णमें स्नानकर तथा चन्द्रभालका पूजनकर मनुष्य अवश्य ही शिवलोकको प्राप्त करता है।

मिश्रर्षि नामक उत्तम तीर्थमें दाधीच नामक शिवलिंग है, इसे दधीचिमुनिने स्थापित किया था। वहाँ जाकर विधिपूर्वक स्नानकर **दाधीचेश्वर**का आदरपूर्वक पूजन अवश्य करना चाहिये।

नैमिषारण्यमें सभी ऋषियोंद्वारा स्थापित **ऋषीश्वर** नामक शिवलिंग है, उसके दर्शन एवं पूजनसे पापी लोगोंको भी भोग तथा मोक्ष प्राप्त होता है। देवप्रयागतीर्थमें **ललितेश्वर** नामक शिवलिंग है, उसकी पूजा करनेसे सभी प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं।

पृथ्वीपर प्रसिद्ध नेपाल नामक पुरीमें **पशुपतीश्वर** नामक शिवलिंग है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करता है। इसके समीप **मुक्तिनाथ** नामक अत्यन्त अद्भुत शिवलिंग है, उसके दर्शन एवं अर्चनसे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होते हैं।

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंका वर्णन

आगेके अध्यायोंमें **हाटकेश्वर** लिंग एवं **अन्धकेश्वर** लिंग आदि लिंगोंकी महिमाका वर्णन करनेके उपरान्त सूतजीने द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके प्रादुर्भावकी कथा एवं उनकी महिमाका वर्णन कई अध्यायोंमें विस्तारपूर्वक किया है।

मणिकर्णिका एवं काशीका प्राकट्य

सोमनाथ, महाकाल, ओंकारेश्वर, केदारेश्वर एवं भीमशंकर इत्यादि ज्योतिर्लिंगोंकी कथाके अनन्तर विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंग वाराणसी, मणिकर्णिका एवं पंचक्रोशीकी महत्ताका प्रतिपादन करते हुए सूतजी कहते हैं—संसारमें जो भी कोई वस्तु दिखायी पड़ती है, वह सच्चिदानन्द-स्वरूप, निर्विकार एवं सनातन ब्रह्मरूप है। अपने कैवल्य (अद्वैत) भावमें ही रमनेवाले उन अद्वितीय परमात्मामें कभी एक-से दो हो जानेकी इच्छा जाग्रत् हुई। फिर वे ही परमात्मा सगुणरूपमें प्रकट होकर शिव कहलाये। वे ही स्त्री तथा पुरुषके भेदसे दो रूपोंमें हो गये। उनमें जो पुरुष था वह **'शिव'** एवं जो स्त्री थी वह **शक्ति** कही गयी। उन चिदानन्दस्वरूप शिव एवं शक्तिने स्वयं अदृष्ट रहकर स्वभावसे ही दो चेतनों (प्रकृति और पुरुष)-की सृष्टि की। जब इस प्रकृति और पुरुषने अपनी जननी एवं जनकको नहीं देखा तब वे महान् संशयमें पड़ गये। उस समय निर्गुण परमात्मासे आकाशवाणी प्रकट हुई कि तुम दोनों तप करो, उसीसे उत्तम सृष्टि होगी। तब निर्गुण शिवने अन्तरिक्षमें स्थित सभी सामग्रियोंसे युक्त पंचक्रोश परिमाणवाला एक शुभ तथा सुन्दर नगर बनाया, जो कि उनका अपना ही स्वरूप था। उस नगरको शिवजीने पुरुषरूप विष्णुके समीप भेज दिया।

विष्णुने सृष्टिकी कामनासे शिवजीका ध्यान करते हुए बहुत कालपर्यन्त तप किया। तपस्याके श्रमसे उनके शरीरसे अनेक जलधाराएँ उत्पन्न हो गयीं, जिसके कारण वहाँ कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था। तब इस आश्चर्यको देखकर विष्णुने अपना सिर हिला दिया। उसी समय विष्णुके कानसे एक मणि गिर गयी, वही मणिकर्णिका नामसे एक महान् तीर्थ हो गया। जब वह पंचक्रोशात्मक नगरी जलराशिमें डूबने लगी, तब निर्गुण शिवने उसे शीघ्र ही अपने त्रिशूलपर धारण कर लिया और विष्णुने अपनी पत्नी प्रकृतिके साथ वहीं शयन किया। तब उनके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने ब्रह्माण्डमें चौदह लोकोंका निर्माण किया। ब्रह्माण्डका विस्तार महर्षियोंने ५० करोड़ योजन बताया है। फिर भगवान् शिवने यह सोचा कि ब्रह्माण्डके भीतर अपने-अपने कर्मोंसे बँधे हुए प्राणी मुझे किस प्रकारसे प्राप्त करेंगे—ऐसा विचारकर उन्होंने पंचक्रोशीको ब्रह्माण्डसे अलग रखा। यह काशी लोकका कल्याण करनेवाली कर्म-बन्धनका विनाश करनेवाली, मोक्षतत्त्वको प्रकाशित करनेवाली तथा ज्ञान प्रदान करनेवाली मुझे अत्यन्त प्रिय है। परमात्मा शिवने अविमुक्त नामक लिंगको स्वयं वहाँ स्थापित किया और कहा—'हे मेरे अंशस्वरूप! तुम मेरे इस क्षेत्रका कभी त्याग नहीं करना।' ऐसा कहकर भगवान् सदाशिवने उस काशीपुरीको स्वयं अपने त्रिशूलसे उतारकर मर्त्यलोक संसारमें स्थापित किया। ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होनेपर जब सारे जगत्का प्रलय हो जाता है तब भी इस काशीपुरीका नाश नहीं होता। उस समय भगवान् शिव इसे त्रिशूलपर धारण कर लेते हैं और जब ब्रह्माद्वारा पुनः मेरी सृष्टि की जाती है तब उसे फिर वे इस भूतलपर स्थापित कर देते हैं। कर्मोंका कर्षण करनेसे ही इस पुरीको 'काशी' कहते हैं। काशीमें **अविमुक्तेश्वर**

लिंग सदा विराजमान रहता है। यह महापातकी पुरुषोंको भी मुक्त करनेवाला है।

हे मुनीश्वरो! अन्यत्र मोक्षप्रद क्षेत्रोंमें सारूप्य आदि मुक्ति प्राप्त होती है, किंतु यहाँ प्राणियोंको सर्वोत्तम सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है। जिनकी कहीं गति नहीं होती, उनके लिये वाराणसीपुरी ही गति है। सभी देवता यहाँ मृत्युकी इच्छा करते हैं; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या! कैलासपति जो भीतरसे सतोगुणी और बाहरसे तमोगुणी कहे गये हैं, वे रुद्रके नामसे विख्यात हैं। वे निर्गुण होते हुए सगुणरूपमें प्रकट हुए शिव हैं। उन्होंने बारम्बार प्रणाम करके निर्गुण शिवसे कहा—हे विश्वनाथ! आप यहाँ रहकर जीवोंका उद्धार करें। तदनन्तर मन तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले अविमुक्तने भी प्रार्थनापूर्वक कहा—देव! काशीपुरीको आप अपनी राजधानी स्वीकार करें। मैं अचिन्त्य सुखकी प्राप्तिके लिये यहाँ सदा आपका ध्यान लगाये स्थिर भावसे बैठा रहूँगा। आप ही मुक्ति देनेवाले तथा सम्पूर्ण कामनाओंके पूर्णकर्ता हैं, दूसरा कोई नहीं। अत: आप परोपकारके लिये उमासहित यहाँ विराजमान रहें।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! जब शंकरने भगवान् विश्वनाथसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब सर्वेश्वर शिव समस्त लोकोंका उपकार करनेके लिये वहाँ विराजमान हो गये। जिस दिनसे भगवान् शिव काशीमें आ गये, उसी दिनसे काशी सर्वश्रेष्ठ पुरी हो गयी।

वाराणसी तथा विश्वेश्वरका माहात्म्य

सूतजी बोले—एक समयकी बात है, देवी पार्वतीने संसारके हितकी कामनासे पूरी प्रसन्नताके साथ भगवान् शिवसे अविमुक्तक्षेत्र और अविमुक्त लिंगका महत्त्व पूछा।

तब परमेश्वर शिवने कहा—यह वाराणसी सदा मेरा गोपनीय क्षेत्र है तथा सब प्रकारसे सभी प्राणियोंके मोक्षका हेतु भी है। वाराणसीपुरीमें निवास करना मुझे सदा ही अच्छा लगता है। जिस कारणसे मैं सब कुछ छोड़कर काशीमें रहता हूँ, उसे बताता हूँ, सुनो। जो मेरा भक्त है और जो मेरे तत्त्वका ज्ञानी है, वे दोनों ही मुक्तिके भागी हैं, उन्हें तीर्थकी अपेक्षा नहीं है। उन दोनोंको ही जीवन्मुक्त समझना चाहिये। वे जहाँ कहीं भी मरें, उन्हें शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह मैंने निश्चित बात कही है।

हे देवि! इस सर्वश्रेष्ठ अविमुक्त नामक तीर्थमें जो विशेषता है, उसे तुम ध्यान देकर सुनो। सभी वर्ण तथा आश्रमके लोग चाहे वे बालक हों, युवा हों अथवा वृद्ध हों, इस पुरीमें मरनेपर अवश्य मुक्त हो जाते हैं। स्त्री अपवित्र हो या पवित्र, कुमारी हो या विवाहिता, विधवा, बन्ध्या, रजस्वला, प्रसूता अथवा असंस्कृता—चाहे कैसी भी स्त्री हो, यदि वह इस क्षेत्रमें मर जाय तो मुक्ति प्राप्त कर लेती है, इसमें संशय नहीं है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज अथवा जरायुज—ये सभी प्राणी यहाँ मरनेपर जैसा मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं।

हे देवि! यहाँ न ज्ञानकी अपेक्षा है, न भक्तिकी अपेक्षा है, न सत्कर्मकी अपेक्षा है और न दानकी ही अपेक्षा। यहाँ न संस्कारकी अपेक्षा और न ध्यानकी ही अपेक्षा है। यहाँ न नाम-कीर्तन अथवा पूजनकी अपेक्षा है तथा उत्तम जातिकी भी कोई अपेक्षा नहीं है, जो कोई भी मनुष्य मेरे इस मोक्षदायक क्षेत्रमें निवास करता है, वह चाहे जिस किसी प्रकारसे मरा हो, निश्चय ही मोक्षको प्राप्त कर लेता है। अपनी इच्छानुसार भोजन, शयन, क्रीड़ा आदि विविध क्रियाओंको करता हुआ भी अविमुक्तक्षेत्रमें प्राणत्याग करनेवाला प्राणी मोक्षका अधिकारी हो जाता है।

यह क्षेत्र चारों दिशाओंमें सभी ओर पाँच कोसतक फैला हुआ कहा गया है। इसमें कहीं भी मर जानेपर प्राणीको अमृतत्वकी प्राप्ति होती है।

हे पार्वती! शुभ और अशुभ कर्मका फल जीवको अवश्य भोगना पड़ता है। अशुभ कर्म निश्चय ही नरकके लिये होता है एवं शुभ कर्म स्वर्गके लिये होता है। दोनों तरहके कर्मोंसे मनुष्यलोकमें जन्म कहा गया है। शुभाशुभ कर्मोंके न्यूनाधिक से उत्तम तथा अधम शरीर प्राप्त होते हैं, किंतु जब दोनोंका क्षय हो जाता है, तब मुक्ति होती है; यह सत्य है। प्रारब्ध-कर्मका नाश केवल उसके भोगसे ही होता है, इसके अतिरिक्त कोई

उपाय नहीं है। सम्पूर्ण कर्मोंका नाश काशीपुरीके अतिरिक्त कहीं नहीं होता। सभी तीर्थ सुलभ हैं, परंतु काशीपुरी दुर्लभ है। यदि पूर्वजन्ममें आदरपूर्वक काशीका दर्शन किया गया है, तभी काशीमें आकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है।

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार काशीपुरी तथा विश्वेश्वरलिंगका अपरिमित माहात्म्य है, जो सत्पुरुषोंको भोग और मोक्ष प्रदान करता है।

इसके अनन्तर सूतजीने त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यका वर्णन करते हुए गौतम ऋषिके प्रभावका वर्णन किया तथा गौतमी-गंगाके प्रादुर्भावका आख्यान सुनाया। इसके अनन्तर सूतजीने राक्षसराज रावणद्वारा स्थापित वैद्यनाथेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यका वर्णन किया। तदनन्तर उन्होंने नागेश्वर नामक परमश्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति एवं माहात्म्यका वर्णन किया।

इसके साथ ही रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग एवं घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंगके आविर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन विस्तारसे आगे किया गया है, जो स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इस प्रकार इन बारह ज्योतिर्लिंगोंकी कथा जो सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा उसे भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होती है।

भगवान् विष्णुको सुदर्शन चक्र प्राप्त होनेकी कथा तथा शिवसहस्रनामस्तोत्रकी महिमा

ऋषियोंके यह पूछनेपर कि भगवान् विष्णुको महेश्वरसे सुदर्शन चक्रकी प्राप्ति कैसे हुई; सूतजी कहते हैं कि एक समयकी बात है, दैत्य अत्यन्त प्रबल होकर धर्मका लोप करने लगे। उनसे पीड़ित होकर देवताओंने भगवान् विष्णुसे अपना दुःख कहा। तब श्रीहरि कैलास पर्वतपर जाकर हरीश्वरलिंगकी स्थापनाकर भगवान् शिवकी उनके सहस्र नामोंसे अर्चना करने लगे। वे प्रत्येक नामपर एक कमलपुष्प चढ़ाते थे।

एक दिन भगवान् शंकरने उनके भक्तिभावकी परीक्षा लेनेके लिये उनके द्वारा लाये गये एक हजार कमलोंमेंसे एक कमल छिपा लिया। तब एक कमलके न मिलनेपर श्रीहरिने उस कमलको प्राप्त करनेके लिये सारी पृथ्वीका भ्रमण किया, परंतु उसके प्राप्त न होनेपर अपने कमल-सदृश नेत्रको ही निकालकर अर्पण कर दिया। यह देख सर्वदुःखहारी भगवान् शंकर बहुत प्रसन्न हुए और उनके सामने प्रकट हो गये और विष्णुसे वर माँगनेको कहा। विष्णुजी बोले—हे सदाशिव! दैत्योंने सारे संसारको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है। मेरा आयुध दैत्योंको मारनेमें समर्थ नहीं हो पा रहा है, अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ।

विष्णुका यह वचन सुनकर देवाधिदेव महेश्वरने उन्हें अपना महातेजस्वी सुदर्शन चक्र प्रदान किया। भगवान् विष्णुने उस चक्रसे शीघ्र ही उन महाबली राक्षसोंको विनष्ट कर दिया। इस प्रकार संसारमें शान्ति हुई। देवता तथा अन्य सभी लोग सुखी हो गये। भगवान् शिवने अपना सुदर्शन चक्र देते हुए कहा—'हरे! सब प्रकारके अनर्थोंकी शान्तिके लिये तुम्हें मेरे स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। अनेकानेक दुःखोंका नाश करनेके लिये इस सहस्रनामस्तोत्रका पाठ करते रहना चाहिये। यह उत्तम स्तोत्र रोगका नाशक, विद्या और धन देनेवाला, सम्पूर्ण अभीष्टकी प्राप्ति करानेवाला, पुण्यजनक तथा सदा ही मेरी भक्ति देनेवाला है।'

इस प्रकार कहकर सर्वदेवेश्वर भगवान् रुद्र श्रीहरिके अंगका स्पर्शकर उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये।

ऋषियोंके पूछनेपर सूतजीने शिवसहस्रनामस्तोत्रको सुनाकर उसकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा कि जो प्रातःकाल नित्य भगवान् शिवकी पूजा करनेके उपरान्त उनके सम्मुख इसका पाठ करता है, वह इस लोकमें समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त करता है और अन्तमें सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है।

महाशिवरात्रिव्रतकी विधि एवं महिमा

ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—हे व्यासशिष्य! किस व्रतसे सन्तुष्ट होकर भगवान् शिव उत्तम सुख प्रदान करते हैं? जिस व्रतके अनुष्ठानसे भक्तजनोंको भोग और मोक्षकी प्राप्ति हो सके, उसका आप विशेष रूपसे वर्णन कीजिये।

इसपर सूतजीने कहा—महर्षियो! यही प्रश्न किसी समय ब्रह्मा, विष्णु तथा पार्वतीजीने शिवजीसे पूछा था, उसके उत्तरमें शिवजीने जो कुछ कहा था, वह मैं

तुमलोगोंसे कह रहा हूँ।

भगवान् शिव बोले—वैसे तो मेरे बहुत-से व्रत हैं, जो भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। उनमें मुख्य दस व्रत हैं, जिन्हें जाबालश्रुतिके विद्वान् 'दशशैवव्रत' कहते हैं। द्विजोंको यत्नपूर्वक सदा इन व्रतोंका पालन करना चाहिये, परंतु मोक्षार्थीको मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले चार व्रतोंका नियमपूर्वक पालन करना चाहिये। ये चार व्रत हैं—१. भगवान् शिवकी पूजा, २. रुद्रमन्त्रोंका जप, ३. शिवमन्दिरमें उपवास तथा ४. काशीमें देहत्याग। ये मोक्षके चार सनातन मार्ग हैं। इन चारोंमें भी शिवरात्रिव्रतका विशेष महत्त्व है, अत: इसे अवश्य करना चाहिये। यह सभीके लिये धर्मका उत्तम साधन है। निष्काम अथवा सकाम भावसे सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, स्त्रियों, बालकों तथा देवताओं आदिके लिये यह महान् व्रत परम हितकारी माना गया है।

प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी शिवरात्रि कहलाती है, परंतु फाल्गुनमासकी शिवरात्रिकी महाशिवरात्रि संज्ञा है। जिस दिन अर्धरात्रिके समय चतुर्दशी तिथि विद्यमान हो, उसी दिन उसे व्रतके लिये ग्रहण करना चाहिये। उस दिन व्रती पुरुषको प्रात:काल उठकर स्नान-सन्ध्या आदि कर्मसे निवृत्त होकर मस्तकपर भस्मका त्रिपुण्ड्र तिलक और गलेमें रुद्राक्षमाला धारणकर शिवालयमें जाकर शिवलिंगका विधिपूर्वक पूजन एवं मुझ शिवको नमस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् श्रद्धापूर्वक व्रतका संकल्प करे और शास्त्रप्रसिद्ध किसी भी शिवलिंगके पास जाकर रात्रिके चारों प्रहरोंमें पूजा करे। यदि नर्मदेश्वर आदि शिवलिंग उपलब्ध न हों तो चार मूर्तियों (पार्थिव शिवलिंग)-का निर्माणकर उनकी चार प्रहरोंमें पूजा करनी चाहिये। रात्रिमें गीत-वाद्यादिद्वारा उत्सवपूर्वक जागरण करना चाहिये। प्रात:काल उठकर स्नान करके पुन: वहाँ पार्थिव शिवका स्थापन एवं पूजन करे। इस तरह व्रतको पूरा करके हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर बारम्बार नमस्कारपूर्वक भगवान् शम्भुसे प्रार्थना करे। इसके अनन्तर ब्राह्मणों तथा संन्यासियोंको शक्तिके अनुसार भोजन कराकर उन्हें भलीभाँति सन्तुष्टकर स्वयं भोजन करे।

शिवरात्रिव्रतकी उद्यापनविधि

शिवरात्रिके शुभ व्रतका लगातार चौदह वर्षतक पालन करना चाहिये। त्रयोदशीको एक समय भोजन करके चतुर्दशीको पूरा उपवास करना चाहिये। शिवरात्रिके दिन नित्यकर्म सम्पन्नकर शिवालयमें जाकर विधिपूर्वक शिवका पूजन करे। वहाँ सोने अथवा ताँबेका बना एक कलश स्थापित करे और उसपर पार्वतीसहित शिवकी सोनेकी बनी प्रतिमा रखे। रात्रिके प्रत्येक प्रहरमें शिवपूजन करे और भगवत्कीर्तन करते हुए रात्रि-जागरण करे। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये और यथाशक्ति दान दे। तदनन्तर भगवान् महेश्वर सदाशिवको पुष्पांजलि अर्पणकर प्रार्थना करे—

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल।
व्रतेनानेन देवेश कृपां कुरु ममोपरि॥
मया भक्त्यनुसारेण व्रतमेतत् कृतं शिव।
न्यूनं सम्पूर्णतां यातु प्रसादात्तव शंकर॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु कृपया सफलं तव शंकर॥

इस महाशिवरात्रिव्रतको 'व्रतराज' कहा जाता है। इसकी महिमा और इसके फलका वर्णन वाणीसे नहीं हो सकता।

मुक्ति और भक्तिके स्वरूपका विवेचन

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने मुक्तिकी चर्चा की। यह मुक्ति क्या है और उसकी कैसी अवस्था होती है?

सूतजी कहते हैं—सांसारिक दु:खोंका नाश करनेवाली एवं परम आनन्द देनेवाली मुक्ति चार प्रकारकी कही गयी है—सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य एवं चौथी सायुज्य। इस शिवरात्रिव्रतसे सब प्रकारकी मुक्ति सुलभ हो जाती है।

हे मुनीश्वरो! यह सारा जगत् जिससे उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा इसका पालन होता है तथा अन्ततोगत्वा वह जिसमें लीन होता है, वे ही 'शिव' हैं, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, वही शिवका रूप है। शिवतत्त्व सत्य, ज्ञान, अनन्त एवं सच्चिदानन्द नामसे प्रसिद्ध है। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है, उसी प्रकार यह

शिवतत्त्व भी सर्वव्यापी है। शिवज्ञानका उदय होनेसे निश्चय ही उसकी प्राप्ति होती है तथा शिवका भजन-ध्यान करनेसे सत्पुरुषोंको शिवपदकी प्राप्ति होती है।

संसारमें ज्ञानकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, परंतु भगवान्‌का भजन अत्यन्त सुकर माना गया है। ज्ञानस्वरूप मोक्षदाता परमात्मा शिव भजनके ही अधीन हैं। भगवान् शम्भुकी भक्ति ज्ञानकी जननी मानी गयी है।

उत्तम प्रेमका अंकुर ही उसका लक्षण है। हे द्विजो! वह भक्ति भी सगुण और निर्गुणके भेदसे दो प्रकारकी जाननी चाहिये। भगवान्‌की कृपाके बिना इन भक्तियोंका सम्पादन होना कठिन है। भक्ति और ज्ञानको शम्भुने एक-दूसरेसे भिन्न नहीं बताया। जो भक्तिका विरोधी है, उसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती। भगवान् शिवकी भक्ति प्राप्त करनेवालेको ही शीघ्रतापूर्वक ज्ञान प्राप्त होता है। अतः हे मुनीश्वरो! महेश्वरकी भक्तिका साधन करना चाहिये।

शिव, विष्णु, रुद्र और ब्रह्माके स्वरूपका विवेचन

ऋषियोंने पूछा—हे सूतजी! शिव कौन हैं, विष्णु कौन हैं, रुद्र कौन हैं तथा ब्रह्मा कौन हैं? इन सबमें निर्गुण कौन है? हमारे इस सन्देहका निवारण कीजिये।

सूतजी कहते हैं—हे महर्षियो! वेद और वेदान्तके विद्वान् ऐसा मानते हैं कि निर्गुण परमात्मासे सर्वप्रथम जो सगुणरूप प्रकट हुआ, उसीका नाम 'शिव' है। शिवसे पुरुषसहित प्रकृति उत्पन्न हुई। उन दोनोंने मूलस्थानमें स्थित जलके भीतर तप किया। वही तपस्थली पंचक्रोशी काशीके नामसे विख्यात है, यह भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह जल सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त था, जिसमें योगमायासे युक्त श्रीहरिने शयन किया। उन नारायणके नाभिकमलसे जिनकी उत्पत्ति हुई, वे ब्रह्मा कहलाते हैं। ब्रह्माने तपस्या करके जिनका साक्षात्कार किया, उन्हें 'विष्णु' कहा गया है। ब्रह्मा और विष्णुके विवादको शान्त करनेके लिये निर्गुण शिवने जो रूप प्रकट किया, उसका नाम 'महादेव' है। उन्होंने कहा 'मैं शम्भु ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट होऊँगा'—इस कथनके अनुसार जो ब्रह्माजीके ललाटसे प्रकट हुए, उनका नाम 'रुद्र' हुआ। पूर्णतः त्रिगुणरहित शिवमें एवं गुणोंके धाम रुद्रमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है, जैसे स्वर्ण और उससे बने आभूषणोंमें कोई अन्तर नहीं होता। भयानक पराक्रमवाले रुद्र सभी प्रकारसे शिवरूप ही हैं। वे भक्तोंका कार्य करनेके लिये प्रकट होते हैं और ब्रह्मा तथा विष्णुकी सहायता लेते हैं।

इस लोकमें ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ दिखायी देता है, वह सब शिव ही है। अनेकताकी कल्पना मिथ्या है। शम्भुको ही वेदोंका प्राकट्यकर्ता तथा वेदपति कहा गया है। वे ही सबपर अनुग्रह करनेवाले साक्षात् शंकर हैं। कर्ता, भर्ता, हर्ता, साक्षी तथा निर्गुण भी वे ही हैं। उन शिवका कोई उत्पादक नहीं है, उनका कोई पालक तथा संहारक भी नहीं है। वे स्वयं सबके कारण हैं। यह उत्तम शिवज्ञान यथार्थरूपसे कह दिया गया, इसे ज्ञानवान् पुरुष ही जानते हैं और कोई नहीं।

शिवसम्बन्धी तत्त्वज्ञानका वर्णन और उसकी महिमा

सूतजी कहते हैं—हे ऋषियो! मैंने शिवज्ञान जैसा सुना है, उसे बता रहा हूँ। यह अत्यन्त गुह्य और परम मोक्षस्वरूप है। सम्पूर्ण जगत् शिवमय है, जीव भगवान् शिवका ही अंश है, परंतु अविद्यासे मोहित होकर अवश हो रहा है और अपनेको शिवसे भिन्न समझता है। अविद्यासे मुक्त होनेपर वह शिव ही हो जाता है। जैसे अग्नितत्त्व प्रत्येक काष्ठमें स्थित है, परंतु जो उस काष्ठका मन्थन करता है, वही असन्दिग्ध रूपसे अग्निको प्रकट करके देख पाता है, उसी तरह जो बुद्धिमान् यहाँ भक्ति आदि साधनोंका अनुष्ठान करता है, उसे शिवका दर्शन प्राप्त होता है। सर्वत्र केवल शिव हैं, शिव हैं, शिव हैं; दूसरी कोई वस्तु नहीं। वे शिव भ्रमसे ही सदा नाना रूपोंमें भासित होते हैं। शिव तथा सम्पूर्ण जगत्‌में कोई भेद नहीं है। जैसे एक ही सूर्य नामक ज्योति जल आदि उपाधियोंमें विशेषरूपसे नाना प्रकारकी दिखायी देती है, उसी प्रकार शिव भी हैं। जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक होकर भी स्पर्श आदि बन्धनमें नहीं आता,

उसी प्रकार व्यापक शिव भी कहीं नहीं बँधते।

अहंकारसे युक्त होनेके कारण शिवका अंश जीव कहलाता है, उस अहंकारसे मुक्त होनेपर वह साक्षात् शिव ही है। जैसे एक ही सुवर्ण चाँदी आदिसे मिल जानेपर कम कीमतका हो जाता है, उसी प्रकार अहंकारयुक्त जीव अपना महत्त्व खो बैठता है। जो शुभ वस्तुको पाकर हर्षसे खिल नहीं उठता है, अशुभको पाकर क्रोध या शोक नहीं करता तथा सुख-दु:ख आदि सभी द्वन्द्वोंमें समभाव रखता है, वह ज्ञानवान् कहलाता है।

आत्मचिन्तन तथा तत्त्वोंके विवेकसे ऐसा प्रयत्न करे कि शरीरसे अपनी पृथक्ताका बोध हो जाय। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष शरीर एवं उसके अभिमानको त्यागकर अहंकारशून्य एवं मुक्त हो सदाशिवमें लीन हो जाता है। अध्यात्मचिन्तन एवं भगवान् शिवकी भक्ति—ये ज्ञानके मूल कारण हैं।

जो अनन्य भक्तिसे युक्त होकर शम्भुका भजन करता है, उसे अन्तमें अवश्य ही मोक्ष प्राप्त होता है। अत: मुक्तिकी प्राप्तिके लिये भगवान् शंकरसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। उनकी शरण लेकर जीव संसार-बन्धनसे छूट जाता है।

ब्राह्मणो! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब कुछ मैंने तुम्हें बता दिया। इसे तुम्हें प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये।

ऋषि बोले—आपने हमें शिव-तत्त्वसम्बन्धी परम उत्तम ज्ञानका श्रवण कराया है, आपकी कृपासे हमारे मनकी भ्रान्ति मिट गयी।

सूतजीने कहा—यह शिवविज्ञान भगवान् शंकरको अत्यन्त प्रिय है। यह भोग और मोक्ष देनेवाला तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है, जो कोटिरुद्रसंहिताके नामसे विख्यात है। जो पुरुष एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे इस संहिताको सुनेगा या सुनायेगा, वह समस्त भोगोंका उपभोग करके अन्तमें परमगतिको प्राप्त कर लेगा।

उमासंहिता

श्रीकृष्णकी तपस्या तथा शिव-पार्वतीसे वरदानकी प्राप्ति

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपको नमस्कार है। आपने हमें कोटिरुद्र नामक संहिता सुनायी, अब आप उमासंहितामें विद्यमान, विविध आख्यानोंसे युक्त, पार्वतीसहित परमात्मा शिवके चरित्रका वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—हे शौनक आदि महर्षियो! भगवान् शंकरका चरित्र परम दिव्य है। तुमलोग प्रेमसे इसका श्रवण करो। पूर्वकालमें मुनिवर व्यासने सनत्कुमारजीके सामने ऐसे ही पवित्र प्रश्नको उपस्थित किया था और इसके उत्तरमें उन्होंने भगवान् शिवके उत्तम चरित्रका गान किया था।

उस समय पुत्रकी प्राप्तिके निमित्त श्रीकृष्णके हिमवान् पर्वतपर जाकर महर्षि उपमन्युसे मिलनेकी कथा तथा महर्षि उपमन्युके द्वारा भगवान् शंकरकी अतुलित महिमाका वर्णन सुनकर वासुदेव बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! वे भगवान् सदाशिव मुझे भी जिस प्रकार दर्शन दें तथा मुझपर कृपा करें, आप मुझे ऐसा उपाय बतायें।

उपमन्यु बोले—हे पुरुषोत्तम! आप थोड़े ही समयमें महादेवका दर्शन उन्हींकी कृपासे प्राप्त करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है। आप सोलहवें महीनेमें पार्वतीसहित सदाशिवसे उत्तम वरदान प्राप्त करेंगे।

हे अच्युत! मैं आपको जपनीय मन्त्र बताता हूँ—'**ॐ नमः शिवाय**' इस दिव्य मन्त्रका जप सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला है।

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार महादेवसम्बन्धी कथाओंको कहते हुए उन उपमन्युके आठ दिन एक मुहूर्तके समान बीत गये। इसके अनन्तर नौवाँ दिन आनेपर मुनि उपमन्युने श्रीकृष्णको दीक्षा प्रदान की और शिव-अथर्वशीर्षका महामन्त्र उन्हें बताया। वे शीघ्र ही एकाग्रचित्त होकर ऊपर भुजा उठाये, पैरके एक अँगूठेपर खड़े होकर तप करने लगे। इसके बाद सोलहवाँ महीना आनेपर प्रसन्न होकर पार्वतीसहित परमेश्वर शम्भुने कृष्णको दर्शन दिया। श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर शंकरजीको प्रणाम करते हुए शास्त्र-विधिसे उनकी पूजा की और सिर झुकाकर अनेकविध स्तोत्रोंसे तथा सहस्रनामसे

देवेश्वरकी स्तुति की।

सनत्कुमारजी कहते हैं—श्रीकृष्णका वचन सुनकर भगवान् शिव उनसे बोले—वासुदेव! तुमने जो कुछ मनोरथ किया है, वह सब पूर्ण होगा। तुम्हें साम्ब नामसे प्रसिद्ध महान् पराक्रमी तथा बलवान् पुत्र प्राप्त होगा। एक समय मुनियोंने भयानक संवर्तक (प्रलयंकर) सूर्यको शाप दिया था—'तुम मनुष्य योनिमें उत्पन्न होओगे।' अतः वे संवर्तक सूर्य ही तुम्हारे पुत्र होंगे। इसके सिवा तुम्हें जो-जो वस्तु अभीष्ट है, वे सभी वस्तुएँ तुम प्राप्त करोगे।

तदनन्तर भक्तवत्सला गिरिराजकुमारी शिवाने प्रसन्न हो उन तपस्वी शिवभक्त महात्मा वासुदेवसे कहा—वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण! मैं तुमसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम मुझसे भी उन मनोवांछित वरोंको ग्रहण करो, जो भूतलपर दुर्लभ हैं।

श्रीकृष्णने कहा—देवि! यदि आप मुझे वर दे रही हैं तो मैं यह चाहता हूँ कि मेरे मनमें कभी किसीके प्रति द्वेष न हो। मैं सदा द्विजोंका पूजन करता रहूँ। मेरे माता-पिता सदा मुझसे सन्तुष्ट रहें। मैं जहाँ कहीं भी जाऊँ, समस्त प्राणियोंके प्रति मेरे हृदयमें अनुकूल भाव रहे। सहस्रों साधु-संन्यासियों एवं अतिथियोंको सदा श्रद्धासे अपने घरपर पवित्र भोजन कराऊँ। भाई-बन्धुओंके साथ नित्य मेरा प्रेम बना रहे तथा मैं सदा सन्तुष्ट रहूँ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर सनातनी देवी पार्वती बोलीं—'वासुदेव! ऐसा ही होगा।' इस प्रकार श्रीकृष्णपर कृपा करके पार्वतीजी-सहित परमेश्वर शिव वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर श्रीकृष्णने मुनिवर उपमन्युको प्रणाम करके उन्हें वरप्राप्तिका सारा समाचार बताया और वे मन-ही-मन शम्भुका स्मरण करते हुए द्वारकापुरीको चले गये।

नरकमें गिरानेवाले पापोंका संक्षिप्त परिचय

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! जो पापपरायण जीव महानरकके अधिकारी हैं, उनका संक्षेपमें परिचय दिया जाता है, इसे सावधान होकर सुनो। परस्त्रीको प्राप्त करनेका संकल्प, पराये धनका अपहरण करनेकी इच्छा, चित्तके द्वारा अनिष्ट चिन्तन तथा न करनेयोग्य कर्ममें प्रवृत्त होनेका दुराग्रह—ये चार प्रकारके मानसिक पापकर्म हैं।

असंगत प्रलाप (बे-सिर-पैरकी बातें), असत्य-भाषण, अप्रिय बोलना, पीठ पीछे चुगली करना—ये चार वाचिक (वाणीद्वारा होनेवाले) पापकर्म हैं।

अभक्ष्य-भक्षण (न खानेयोग्य वस्तुको खाना), प्राणियोंकी हिंसा, व्यर्थके कार्योंमें लगना, दूसरेके धनको हड़प लेना—ये चार प्रकारके शारीरिक पापकर्म हैं। इस प्रकार ये बारह कर्म बताये गये, जो मन, वाणी और शरीर—इन साधनोंसे सम्पन्न होते हैं।

जो संसार-सागरसे पार उतारनेवाले महादेवजीसे द्वेष करनेवाले हैं, जो पिता, ताऊ आदि गुरुजनोंकी निन्दा करते हैं, वे सब नरक-समुद्रमें गिरनेवाले हैं।

ब्रह्महत्यारा, मदिरा पीनेवाला, स्वर्ण चुरानेवाला, गुरुपत्नीगामी, इन चारोंसे सम्पर्क रखनेवाला पाँचवीं श्रेणीका प्राणी—ये सब-के-सब महापातकी कहे गये हैं।

जो देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओंके उपयोगके लिये दी हुई भूमिको हर लेता है तथा अन्यायसे धन कमाता है, उसे ब्रह्महत्यारेके समान ही पातकी जानना चाहिये। पिता और माताको त्याग देना, झूठी गवाही देना, दूसरोंसे झूठा वादा करना, शिवभक्तोंको मांस खिलाना तथा अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करना ब्रह्महत्याके तुल्य कहा गया है।

पैतृक सम्पत्तिके बँटवारेमें उलटफेर करना, अत्यन्त अभिमान एवं अत्यधिक क्रोध करना, पाखण्ड फैलाना, कृतघ्नता करना, विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होना, कंजूसी करना, सत्पुरुषोंसे द्वेष रखना, परस्त्री-समागम करना, असत् शास्त्रोंका अध्ययन करना, पापोंमें लगना तथा झूठ बोलना—इस तरहके पापकर्मोंमें लिप्त स्त्री-पुरुषको उपपातकी कहा गया है।

पापियों और पुण्यात्माओंकी यमलोक-यात्रा

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! चार प्रकारके पापोंके कारण विवश होकर समस्त शरीरधारी मनुष्य भयको उत्पन्न करनेवाले घोर यमलोकको जाते हैं। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो यमलोकमें न जाता हो। किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको अवश्य भोगना पड़ता है, इसका विचार करो। जीवोंमें जो शुभ कर्म करनेवाले सौम्यचित्त और दयालु हैं,

वे मनुष्य यमलोकमें सौम्यमार्ग तथा पूर्वद्वारसे जाते हैं, किंतु जो पापी पापकर्ममें निरत एवं दानसे रहित हैं, वे घोर मार्गद्वारा दक्षिणद्वारसे यमलोककी यात्रा करते हैं।

मर्त्यलोकसे छियासी हजार योजनकी दूरीपर अनेक रूपोंवाला यमलोक स्थित है। यह पुर पुण्यकर्मवाले मनुष्योंको निकटवर्ती-सा जान पड़ता है, किंतु घोरमार्गसे जाते पापियोंको बहुत दूर स्थित प्रतीत होता है। वहाँका मार्ग कहीं तो तीखे काँटोंसे युक्त है, कहीं कंकड़ोंसे व्याप्त है, कहीं छुरेकी धारके समान तीखे पत्थर उस मार्गमें जड़े हुए हैं, कहीं बड़ी भारी कीचड़ फैली हुई है। बड़े-छोटे पातकोंके अनुसार वहाँकी कठिनाइयोंमें भी भारी और हलकापन है।

तदनन्तर यमपुरीके मार्गकी भीषण यातनाओं और कष्टोंका वर्णन करके सनत्कुमारजीने कहा—व्यासजी! जिन्होंने कभी दान नहीं किया है, वे लोग भी इस प्रकार दु:ख उठाते और सुखकी याचना करते उस मार्गपर जाते हैं। जिन लोगोंने पहलेसे ही दानरूपी पाथेय (राह-खर्च) ले रखा है, वे सुखपूर्वक यमलोककी यात्रा करते हैं। इस प्रकारकी व्यवस्थासे कष्टपूर्वक जब वे यमपुरी पहुँचते हैं, तब धर्मराजकी आज्ञासे दूतोंके द्वारा वे उनके आगे ले जाये जाते हैं।

उनमें जो पुण्यात्मा होते हैं, उन्हें यमराज स्वागतपूर्वक आसन देकर पाद्य और अर्घ्यके द्वारा प्रेमपूर्वक सम्मानित करते हैं और कहते हैं कि शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले आप महात्मा लोग धन्य हैं, जोकि आप लोगोंने दिव्य सुख प्राप्त करनेके लिये पुण्य-कर्म किया है तथा आप लोग सम्पूर्ण मनोवांछित पदार्थोंसे सम्पन्न निर्मल स्वर्गलोकको जायँ। वहाँपर महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्यके क्षीण हो जानेपर जो कुछ थोड़ा-सा अशुभ शेष रह जाय, उसे फिर यहाँ आकर आप लोग भोगेंगे; किंतु जो क्रूर कर्म करनेवाले हैं, वे यमराजको भयानक रूपमें देखते हैं। उनकी दृष्टिमें यमराजका मुख दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता है। नेत्र टेढ़ी भौहोंसे युक्त प्रतीत होते हैं। वे कुपित तथा काले, कोयलेके ढेर-से दिखायी पड़ते हैं। वे सब प्रकारके दण्डका भय दिखाकर उन पापियोंको डाँटते रहते हैं। उनके नेत्र प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त दिखायी देते हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं, मानो महासागरको पी रहे हैं और मुँहसे आग उगल रहे हैं। उनके अतिरिक्त असंख्य महावीर यमदूत, जिनकी अंगकान्ति काले कोयलेके समान काली होती है, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र लिये वे बड़े भयंकर जान पड़ते हैं। पापी लोग इन परिचारकोंसे घिरे हुए उन यमराज तथा चित्रगुप्तको देखते हैं। उस समय यमराज उन पापियोंको बहुत डाँटते हैं और भगवान् चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंके द्वारा उन्हें समझाते हैं।

नरकभेदनिरूपण

चित्रगुप्तजी कहते हैं कि हे पापकर्म करनेवालो! तुमलोगोंने स्वयं जो कर्म किया है, उसे तुम्हें भोगना पड़ रहा है। अब अपने कर्मोंको भोगो, इसमें किसीका दोष नहीं है।

सनत्कुमारजी बोले—अपने कुत्सित कर्मों तथा बलपर गर्व करनेवाले राजालोग भी अपने घोर कर्मोंके करनेके कारण चित्रगुप्तके सामने उपस्थित हुए। तब धर्मके ज्ञाता चित्रगुप्तने यमराजकी आज्ञासे क्रोधयुक्त होकर उन्हें शिक्षा प्रदान करते हुए कहा—हे राजाओ! तुमलोगोंने राज्यभोगके मोहसे अन्यायपूर्वक जबरदस्ती जो प्रजाओंको दण्डित किया है, अब उसका फल भोगो।

उन राजाओंके कर्मको बतलाकर धर्मराज यमने उनके पापरूपी कीचड़की शुद्धिके लिये दूतोंसे यह कहा—हे चण्ड! महाचण्ड! इन राजाओंको बलपूर्वक पकड़कर क्रमसे नरककी अग्नियोंमें इन्हें शुद्ध करो।

इसके अनन्तर सनत्कुमारजीने नरककोटियोंके नाम बताये हैं। उनमें प्रथम रौरव नरक है, जहाँ पहुँचकर देहधारी जीव रोने लगता है। महारौरवकी पीड़ासे तो महान् पुरुष भी रो देते हैं। इसके बाद शीत और उष्ण नामक नरक हैं। इस प्रकार इन नरकोंकी संख्या अट्ठाईस है और क्रमश: उनके पाँच-पाँच नायक कहे गये हैं। महानरक-मण्डल एक सौ चालीस नरकोंका बताया गया है।

सनत्कुमारजी कहते हैं—व्यासजी! इन सब भयानक पीड़ादायक नरकोंमें पापी जीवोंको अत्यन्त भीषण नरक-यातना भोगनी पड़ती है। जो धन रहते हुए भी

तृष्णाके कारण उसका दान नहीं करते, भोजनके समयपर घर आये हुए अतिथिका अनादर करते हैं, वे पापका फल पाकर अपवित्र नरकमें गिरते हैं।

देवता, पितर, मनुष्य, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि, कीट, कुत्ते और कौवे—ये सभी गृहस्थसे अपनी जीविका चलाते हैं। अत: इनके निमित्त अन्नका कुछ भाग बलिके रूपमें प्रदान करना चाहिये।

स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार तथा हन्तकार—ये धर्ममयी धेनुके चार स्तन हैं। स्वाहाकार नामक स्तनका पान देवता करते हैं, स्वधाका पितर लोग, वषट्कारका दूसरे-दूसरे देवता और भूतेश्वर तथा हन्तकार नामक स्तनका सदा मनुष्यगण ही पान करते हैं। जो मानव श्रद्धापूर्वक इस धर्ममयी धेनुका सदा ठीक-ठीक पालन करता है, वह अग्निहोत्री हो जाता है। जो स्वस्थ रहते हुए भी उनका त्याग कर देता है, वह अन्धकारपूर्ण नरकमें डूबता है। इसलिये उन सबको बलिभाग देनेके पश्चात् द्वारपर खड़ा हो क्षणभर अतिथिकी प्रतीक्षा करे। यदि कोई भूखसे पीड़ित अतिथि मिल जाय तो उसे अपने भोजनसे पहले यथाशक्ति शुभ अन्नका भोजन कराये। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौटता है, उसे वह अपना पाप देकर बदलेमें उसका पुण्य लेकर चला जाता है।

यमलोकके मार्गमें सुविधा प्रदान करनेवाले विविध दानोंका वर्णन

व्यासजी बोले—हे प्रभो! पाप करनेवाले मनुष्य बड़े दुःखसे युक्त होकर यममार्गमें गमन करते हैं। अब आप उन धर्मोंको कहिये, जिनके द्वारा वे सुखपूर्वक यममार्गमें गमन करते हैं। सनत्कुमारजीने कहा—'मुने! अपना किया हुआ शुभाशुभ कर्म बिना विचारे विवश होकर भोगना ही पड़ता है। अब मैं उन धर्मोंका वर्णन करता हूँ, जो सुख देनेवाले हैं। इस लोकमें जो लोग शुभ कर्म करनेवाले, शान्तचित्त एवं दयालु मनुष्य हैं, वे बड़े सुखके साथ भयानक यममार्गमें जाते हैं।

जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता और खड़ाऊँका दान करते हैं, जो छाता और शिविकाका दान करते हैं, शय्या और आसनका दान करते हैं, वे यमलोकके मार्गमें विश्राम करते हुए सुखपूर्वक जाते हैं। जो उद्यान लगानेवाले, छायादार वृक्ष लगानेवाले तथा मार्गके किनारे वृक्षका आरोपण करनेवाले हैं, वे धूपमें भी बिना कष्ट उठाये यमलोकको जाते हैं। जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण और माता-पिताकी पूजा करते हैं, वे मनुष्य स्वयं भी पूजित होते हुए यथेच्छ सुखपूर्वक यमपुरीको जाते हैं। दीपदान करनेवाले मनुष्य सभी दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाते हैं। गृहदान करनेसे दाता रोग-शोकसे रहित हो सुखपूर्वक यात्रा करते हैं। स्वर्ण और रत्नका दान करनेसे मनुष्य दुर्गम संकटोंको पार करता हुआ जाता है।

सभी दानोंमें अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि वह तत्काल प्रसन्न करनेवाला, हृदयको प्रिय लगनेवाला एवं बल-बुद्धिको बढ़ानेवाला है। हे मुनिश्रेष्ठ! अन्नदानके समान कोई दूसरा दान नहीं है; क्योंकि अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और अन्नके अभावमें मर जाते हैं।

अन्नका दान करनेवाला प्राणदाता तथा प्राणदान करनेवाला सर्वस्वका दाता कहा गया है। अन्न ही साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश है; अत: अन्नदानके समान न कोई दान हुआ है और न होगा।

अन्न, पान, अश्व, गौ, वस्त्र, शय्या, छत्र एवं आसन—ये आठ प्रकारके दान यमलोकके लिये विशेषरूपसे श्रेष्ठ कहे गये हैं। इस प्रकारके श्रेष्ठ दानसे मनुष्य विमानद्वारा धर्मराजके लोकको जाता है। इसलिये इनका दान अवश्य करना चाहिये।

जलदान, सत्यभाषण और तपकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं कि हे व्यासजी! जलदान सब दानोंमें सबसे उत्तम है; क्योंकि जल सभी जीव-समुदायको तृप्त करनेवाला जीवन कहा गया है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह कुआँ, बावड़ी, तालाब एवं प्याऊ आदि बनवाये। जिसके बनवाये हुए जलाशयमें गौ, ब्राह्मण तथा साधुपुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने सारे वंशका उद्धार कर देता है।

जो वीरान एवं दुर्गम स्थानमें वृक्षोंको लगाता है, वह अपनी बीती हुई तथा आनेवाली सभी पीढ़ियोंके सभी

पितृकुलोंका उद्धार कर देता है। लगाये गये ये वृक्ष दूसरे जन्ममें उस व्यक्तिके पुत्र होते हैं। वृक्ष पुष्पोंके द्वारा देवगणोंकी, फलोंके द्वारा पितरोंकी, छायाके द्वारा सभी अतिथियोंकी पूजा करते हैं अत: वृक्षोंको अवश्य लगाना चाहिये।

सत्यवादी पुरुष स्वर्गसे कभी नीचे नहीं गिरते, सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही श्रेष्ठ यज्ञ है। सत्यसे ही पृथ्वी टिकी हुई है। सत्य को परम धर्म कहा गया है और सत्यको ही परब्रह्म परमात्मा कहते हैं। जो मनुष्य अपने लिये, दूसरेके लिये अथवा अपने पुत्रादिके लिये भी झूठ नहीं बोलते, वे ही स्वर्गगामी होते हैं। अत: सदा सत्य बोलना चाहिये।

तदनन्तर तपकी बड़ी भारी महिमा बताते हुए सनत्कुमारजीने कहा—मुने! संसारमें ऐसा कोई सुख नहीं है, जो तपस्याके बिना सुलभ होता हो। ज्ञान-विज्ञान, आरोग्य, सुन्दर रूप, सौभाग्य तथा शाश्वत सुख तपसे ही प्राप्त होते हैं। तपस्यासे ब्रह्मा बिना परिश्रमके ही सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते हैं। तपस्यासे ही विष्णु इसका पालन करते हैं। तपस्याके बलसे ही रुद्रदेव इसका संहार करते हैं तथा तपके प्रभावसे ही शेष अशेष भूमण्डलको धारण करते हैं।

वेद-पुराणोंके स्वाध्याय तथा विविध प्रकारके दानोंकी महिमा

सनत्कुमारजी कहते हैं—हे मुने! जो वनके कन्द-मूल-फल खा करके जंगलमें तपस्या करता है और जो वेदकी एक ऋचाका अध्ययन करता है, उन दोनोंका समान फल होता है। जैसे सूर्य और चन्द्रमाके बिना सम्पूर्ण संसारमें अन्धकार छा जाता है, उसी प्रकार पुराणके अध्ययनके बिना लोग ज्ञानरहित हो जाते हैं, इसलिये सदा पुराणका अध्ययन करना चाहिये।

पुराणका श्रवण करनेसे पापका नाश होता है, धर्मकी अभिवृद्धि होती है एवं व्यक्ति ज्ञानवान् होकर पुन: संसारके आवागमनके बन्धनमें नहीं पड़ता है, इसलिये धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धि तथा मोक्षमार्गकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नपूर्वक पुराणोंको सुनना चाहिये।

सनत्कुमारजी कहते हैं—हे व्यासजी! विभिन्न प्रकारके दान सदा सत्पात्रको ही देने चाहिये, वे आत्माका उद्धार करते हैं। स्वर्णदान, गोदान एवं भूमिदान—इन उत्तम दानोंको करके मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है। तुलादान, पृथ्वीदान तथा विद्यादान—ये प्रशस्त दान कहे गये हैं। गाय, छत्र, वस्त्र, जूता एवं अन्न-जल—ये वस्तुएँ याचकको देते रहना चाहिये। जो मनुष्य शुद्ध चित्तसे सुवर्णदान करते हैं, उन्हें देवतालोग सब कुछ देते हैं।

हे व्यासजी! इस लोकमें विधानके साथ गायका दान तथा तुलापुरुषका दान सभी दानोंमें सर्वश्रेष्ठ दान है। इसे करके मनुष्य वध आदिसे होनेवाले सभी पापोंसे छुटकारा पाता है।

नरकप्राप्ति करानेवाले असत्कर्मोंका वर्णन एवं शिवनाम-स्मरणकी महिमा

इसके बाद ब्रह्माण्डदानका माहात्म्य एवं ब्रह्माण्डका वर्णन करके सनत्कुमारजी बोले—हे व्यासजी! जो मनुष्य ब्राह्मण, देवता एवं गौओंके पक्षको छोड़कर अन्यत्र झूठी गवाही करता है अथवा मिथ्याभाषण करता है, वह रौरव नरकमें जाता है। भ्रूण [गर्भस्थ शिशु]-की हत्या करनेवाला, स्वर्ण चुरानेवाला, गायोंको चरनेसे रोकनेवाला, विश्वासघाती, सुरापान करनेवाला, ब्राह्मणका वध करनेवाला, दूसरोंके द्रव्यको चुरानेवाला तथा इनका साथ देनेवाला और गुरु, माता, गौ तथा कन्याका वध करनेवाला मरनेपर तप्तकुम्भ नामक नरकमें जाता है।

जो द्विज अन्त्यजसे सेवा कराता है, नीचोंसे प्रतिग्रह ग्रहण करता है, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ कराता है एवं अभक्ष्य वस्तुओंका भक्षण करता है—ये सब रुधिरौघ (पूयवह) नामक नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य मन, वचन तथा कर्मसे वर्णाश्रमधर्मके विपरीत आचरण करते हैं, वे नरकमें गिरते हैं। हे व्यासजी! स्वायम्भुव मनुने बड़े पापोंके लिये महान् प्रायश्चित्त तथा अल्प पापोंके लिये अल्प प्रायश्चित्त कहा है। जिस पुरुषके चित्तमें पापकर्म करनेके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो एकमात्र शिवजीका स्मरण ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है।

हे व्यासजी! नरक और स्वर्ग—ये पाप और पुण्यके ही दूसरे नाम हैं। इनमें एक तो दु:ख देनेवाला

है, दूसरा सुख देनेवाला है। ये सुख-दु:ख तो मनके ही विकार हैं। ज्ञान ही परब्रह्म है, ज्ञान ही तात्त्विक बोधका कारण है। यह सारा चराचर विश्व ज्ञानमय ही है। उस परम विज्ञानसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

तपस्यासे शिवलोककी प्राप्ति

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! अब आप उस शिवलोककी प्राप्तिका वर्णन करें, जहाँ जाकर शिवभक्त मनुष्य फिर नहीं लौटते हैं। सनत्कुमार कहते हैं—हे व्यासजी! शुद्ध कर्म करनेवाले एवं अत्यन्त शुद्ध तपस्यासे युक्त जो मनुष्य प्रतिदिन शिवजीकी पूजा करते हैं, वे सब प्रकारसे वन्दनीय हैं। शिवजीकी कृपाका मूल हेतु तपस्या ही है। तपके प्रभावसे ही देवता, ऋषि और मुनि लोग स्वर्गमें आनन्द प्राप्त करते हैं। जो पुरुष इस मनुष्य-जन्मको पाकर अपना परम कल्याण नहीं करता है, वह मरनेके बाद बहुत कालतक शोक करता रहता है। सभी देवताओं एवं असुरोंके लिये यह मनुष्य-जन्म अति दुर्लभ है। अत: उसे प्राप्त करके वैसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरकमें न जाना पड़े। जबतक शरीर स्वस्थ रहे, तबतक धर्माचरण करते रहना चाहिये; क्योंकि अस्वस्थ हो जानेपर मनुष्य कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं होता।

हे मुनिसत्तम! जिन्होंने 'शिव-शिव' तथा 'हर-हर'—इस नामका उच्चारण किया है, उन्हें नरक और यमराजसे भय नहीं होता है। संसाररूपी महारोगोंका नाश करनेवाला एकमात्र 'शिव' नाम ही है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं दिखायी देता है।

मूर्ख प्राणी अधर्मका आचरण करनेसे हजारों जन्मोंतक जन्म-मरणके चक्रमें घूमता रहता है और उसी अधर्मके कारण अन्धकारमें पड़ा रहता है। अत: मनुष्य किसी श्रेष्ठ स्थानको प्राप्तकर प्रमाद न करे और विपत्तियोंको सहकर भी सर्वदा अपने स्थानकी रक्षा करे।

सनत्कुमार बोले—जिस प्रकार भीतर विष्ठासे परिपूर्ण घट बाहरसे शुद्ध होता हुआ भी अपवित्र ही होता है, उसी प्रकार शुद्ध किया हुआ यह शरीर भी अपवित्र कहा गया है। दुष्टात्मा तीर्थस्नानसे अथवा तपोंसे कदापि शुद्ध नहीं होता है। भावदुष्ट मनुष्य भले ही सम्पूर्ण गंगाजलसे तथा पहाड़भर मिट्टीसे भलीभाँति जन्मभर स्नान करता रहे, फिर भी शुद्ध नहीं होता। गंगा आदि तीर्थोंमें मछलियाँ तथा देवालयोंमें पक्षी नित्य निवास करते हैं, किंतु वे भावहीन होनेके कारण फल नहीं पाते। इसी प्रकार भावदुष्टको तीर्थस्नान एवं दानसे कोई फल प्राप्त नहीं होता।

ज्ञानरूपी निर्मल जलसे और वैराग्यरूपी मृत्तिकासे मनुष्योंके अविद्यारूपी मल-मूत्रके लेपकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। बुढ़ापेसे ग्रस्त हुआ मनुष्य असमर्थ रहता है। अत: यौवनावस्थामें ही धर्माचरण कर लेना चाहिये।

जो द्विज प्रात:काल उठकर आलस्यरहित होकर एकान्तमें प्राणायाम करता है, वह जरा और मृत्युको जीतकर वायुके समान गतिशील होकर आकाशमें विचरण करता है तथा प्रशंसनीय सौख्य एवं परम सुख प्राप्त करता है।

भगवती उमाका कालिकावतार

इसके अनन्तर छायापुरुष, सर्ग, कश्यपवंश, मनुवंश, सत्यव्रतादिवंश, पितृकल्प तथा व्यासोत्पत्ति आदिका वर्णन सुननेके पश्चात् मुनियोंने सूतजीसे कहा—हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! अब हम लोग आपसे भगवती जगदम्बाके मनोहर चरित्रको सुनना चाहते हैं। परब्रह्म महेश्वरकी जो सनातनी आद्या शक्ति हैं, वे ही त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाली पराशक्ति हैं। उनके दक्षकन्या सती तथा हैमवती पार्वती ये दो अवतार हमने सुने। हे महामते! अब आप उनके अन्य अवतारोंका वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले—जो मनुष्य देवीको छोड़कर दूसरे देवताओंकी शरण लेता है, वह मानो गंगाजीको छोड़कर मरुस्थलके जलाशयके पास जाता है। जिनके स्मरणमात्रसे धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चारों पुरुषार्थोंकी अनायास प्राप्ति होती है, उन देवी उमाकी आराधना कौन श्रेष्ठ पुरुष छोड़ सकता है?

पूर्वकालमें महामना सुरथने महर्षि मेधासे यही बात पूछी थी। उस समय मेधाने जो उत्तर दिया, मैं वही बता रहा हूँ—पहले स्वारोचिष मन्वन्तरमें विरथ नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं, जिनके पुत्र सुरथ हुए, जो महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे। राजा सुरथके पृथ्वीपर

शासन करते समय नौ ऐसे राजा हुए, जिन्होंने उनके हाथसे भूमण्डलका राज्य छीन लिया। शत्रुओंने सारा राज्य अपने अधिकारमें करके सुरथको कोलापुरसे निकाल दिया। राजा सुरथ अकेले ही घोड़ेपर सवार हो नगरसे बाहर निकले और वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने एक श्रेष्ठ मुनिका आश्रम देखा, जहाँ वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गूँज रही थी तथा सभी जीव-जन्तु शान्तभावसे रहते थे। वहाँ जानेपर मुनीश्वर मेधाने मीठे वचन तथा भोजन और आसनद्वारा नरेशका आदर-सत्कार किया।

एक दिन राजा सुरथ चिन्तित होकर कुछ विचार कर रहे थे, इतनेमें वहाँ समाधि नामक एक वैश्य भी आ पहुँचा, जिसने बताया कि मेरे पुत्रों और स्त्री आदिने धनके लोभमें मुझे घरसे निकाल दिया। अत: दुखी होकर मैं वनमें चला आया हूँ। यहाँ आकर भी मुझे उनका कुशल-समाचार न मिलनेकी चिन्ता लगी हुई है।

इस प्रकार मोहसे व्याकुल हुए वैश्य और राजा दोनोंने मुनिवर मेधासे अपनी व्यथा सुनायी और कहा कि हम दोनोंका मन मोहसे व्याकुल हो गया है।

ऋषि बोले—राजन्! शक्तिस्वरूपा जगदम्बा सबके मनको खींचकर मोहमें डाल देती हैं। हे नृपश्रेष्ठ! जिसके ऊपर जगदम्बा प्रसन्न होती हैं, वही मोहके घेरेको लाँघ पाता है। राजाने पूछा—मुने! वे देवी महामाया कौन हैं? किस प्रकार उनका प्रादुर्भाव हुआ? कृपा करके मुझे बताइये।

ऋषि बोले—जलमें निमग्न योगेश्वर भगवान् केशव शेषकी शय्या बिछाकर योगनिद्रामें शयन कर रहे थे, उन्हीं दिनों भगवान् विष्णुके कानोंके मैलसे दो असुर उत्पन्न हुए, जो भूतलपर मधु और कैटभके नामसे विख्यात हैं। वे दोनों भगवान् विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न ब्रह्माको देखकर उन्हें मार डालनेको उद्यत हो गये। उस समय उन दोनों दैत्योंको देखकर तथा विष्णुको क्षीरसागरमें शयन करते हुए जानकर ब्रह्माजी परमेश्वरीकी स्तुति करने लगे—हे अम्बिके! तुम इन दोनों दुर्जय असुरोंको मोहित करो और अजन्मा भगवान् नारायणको जगा दो।

ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर जगज्जननी महाविद्या फाल्गुन शुक्ला द्वादशीको शक्तिके रूपमें प्रकट हो महाकालीके नामसे विख्यात हुईं।

इसके बाद जनार्दन हृषीकेश निद्रासे उठे और उन्होंने अपने सामने मधु-कैटभ नामक दोनों दैत्योंको देखा। उन दैत्योंके साथ विष्णुका पाँच हजार वर्षोंतक बाहुयुद्ध हुआ। तब महामायाके प्रभावसे मोहित हुए दानवोंने लक्ष्मीपतिसे कहा—तुम हमसे मनोवांछित वर ग्रहण करो। नारायण बोले—यदि तुमलोग प्रसन्न हो तो मेरे हाथसे मारे जाओ—यही मेरा वर है।

ऋषि कहते हैं—उन असुरोंने देखा कि सारी भूमि जलमें डूबी हुई है, तब वे केशवसे बोले—हम दोनोंको ऐसी जगह मारो, जहाँ जलसे भीगी हुई धरती न हो, भगवान् विष्णुने अपना परम तेजस्वी चक्र उठाकर उन दोनों दैत्योंको अपनी जंघापर रखकर उनके सिर काट दिये।

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे कालिकाकी उत्पत्ति कह दी। अब महालक्ष्मीके प्रादुर्भावकी कथा सुनिये।

महालक्ष्मीका अवतरण

देवी उमा निराकार एवं निर्विकार होकर भी देवताओंका दु:ख दूर करनेके लिये युग-युगमें साकार रूप धारण करके प्रकट होती हैं। वे लीलासे इसलिये प्रकट होती हैं कि भक्तजन उनके गुणोंका गान करते रहें। ऋषि कहते हैं—हे राजन्! पूर्व समयमें महिषासुरके अत्याचारोंसे पीड़ित ब्रह्मादि देवोंकी प्रार्थनासे प्रादुर्भूत महालक्ष्मीद्वारा महिषासुरका वध हो जानेपर इन्द्रादि सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे। गन्धर्व गीत गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। इस प्रकार देवी महालक्ष्मीके अवतरणकी कथाके उपरान्त मेधा ऋषिने महासरस्वतीके प्रादुर्भावका प्रसंग सुनाया।

महासरस्वतीका प्राकट्य तथा उनके द्वारा शुम्भ-निशुम्भ आदिका वध

ऋषि कहते हैं—हे राजन्! पूर्व समयमें शुम्भ और निशुम्भ नामक दो सहोदर, प्रतापी दैत्य हुए। उन दोनों भाइयोंने तीनों लोकोंको आक्रान्त कर रखा था। उन दोनोंसे पीड़ित देवगण हिमालयपर्वतपर जाकर देवी उमाका स्तवन करने लगे। देवताओंको स्तुति करते देखकर गौरी देवीने उनसे पूछा—'आप लोग यहाँ किसकी स्तुति कर रहे हैं?' उसी समय पार्वतीके शरीरसे एक कन्या प्रकट

हुई। उसने पार्वतीजीसे कहा—हे माता! महाबली शुम्भ-निशुम्भसे पीड़ित ये सभी देवता मेरी स्तुति कर रहे हैं। उस देवीने सभी देवताओंसे कहा—आप सब निर्भय होकर निवास कीजिये। मैं आपका कार्य सिद्ध करूँगी। ऐसा कहकर वे देवी उसी क्षण अन्तर्धान हो गयीं।

एक दिन शुम्भ-निशुम्भके चण्ड-मुण्ड नामक सेवकोंने उन देवीको देखा और उनके मनोहर रूपको देखते ही वे अत्यन्त मोहित हो गये। तदनन्तर उन्होंने जाकर अपने स्वामीसे सारा वृत्तान्त सुनाते हुए देवीकी अलौकिक सुन्दरताका वर्णन किया। चण्ड-मुण्डके द्वारा कहा गया यह वचन सुनकर उस असुरने देवीके पास अपना सुग्रीव नामक दूत भेजा और उससे कहा—'हे दूत! तुम हिमालय-पर्वतपर जाकर उस सुन्दर स्त्रीको प्रयत्नपूर्वक मेरे पास लाओ।' उसकी आज्ञा पाकर उस सुग्रीवने हिमालयपर्वतपर जाकर महेश्वरी जगदम्बाको अपने स्वामीका सन्देश सुनाया तथा उनसे शुम्भ-निशुम्भको पतिरूपमें स्वीकार करनेका आग्रह किया। देवी बोलीं—'हे दूत! जो युद्धमें मुझे जीत लेगा और मेरा अहंकार दूर करेगा, मैं उसे ही पतिरूपमें वरण करूँगी।' तब सुग्रीव नामक दूतने देवीका यह वचन वहाँ जाकर विस्तारपूर्वक अपने राजासे कह दिया। दूतकी बात सुनकर शुम्भने क्रोधित हो अपने सेनापति धूम्रलोचनको उस सुन्दरीको बलपूर्वक लानेकी आज्ञा दी। इस प्रकार शुम्भकी आज्ञा प्राप्तकर धूम्रलोचन नामक दैत्यने हिमालयपर जाकर उमाके अंशसे उत्पन्न भुवनेश्वरीसे कहा—'हे सुन्दरी! तुम मेरे स्वामीके पास चलो, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।' देवी बोलीं—'युद्धके बिना मेरा जाना असम्भव है।'

देवीद्वारा ऐसा कहे जानेपर वह दानव धूम्रलोचन उनकी ओर झपटा, किंतु महेश्वरीने 'हुं' के उच्चारणमात्रसे उसे उसी क्षण भस्म कर दिया। उसी समयसे ये देवी लोकमें धूमावती नामसे विख्यात हुईं। धूम्राक्षके मारे जानेका समाचार सुनकर शुम्भ अत्यन्त क्रोधित हुआ, तब उसने चण्ड-मुण्ड एवं रक्तबीज नामक असुरोंको भेजा। उन असुरोंसे वाद-विवाद तथा युद्ध होनेपर परमेश्वरीने लीलामात्रसे चण्ड-मुण्डसहित महान् असुर रक्तबीजको भी मार डाला।

ऋषि बोले—हे राजन्! उस महान् असुरने इन दैत्यवरोंके मारे जानेका समाचार सुनकर अपने दुर्जय गणोंको युद्धके लिये जानेकी आज्ञा दी। इसके साथ ही निशुम्भ और शुम्भ दोनों भाइयोंने रथपर आरूढ़ हो स्वयं भी युद्धके लिये प्रस्थान किया।

घोर युद्ध होने तथा राक्षसोंका महान् संहार हो जानेके पश्चात् देवी अम्बिकाने विषमें बुझे तीखे बाणोंद्वारा निशुम्भको मारकर धराशायी कर दिया। अपने असीम शक्तिशाली छोटे भाईके मारे जानेपर शुम्भ रोषसे भर गया और उसने रथपर बैठकर आठ भुजाओंसे युक्त हो महेश्वरप्रिया अम्बिकापर एक बड़ी भारी शक्ति छोड़ी, जिसकी शिखासे आगकी ज्वाला निकल रही थी, परंतु देवीने एक उल्काके द्वारा उसे मार गिराया। तत्पश्चात् चण्डिकाने त्रिशूल उठाकर उस असुरपर घातक प्रहार किया। शिवाके लोकपावन पाणिपंकजसे मृत्युको प्राप्त होकर वे दोनों असुर परमपदके भागी हुए।

उन महापराक्रमी दोनों भाइयोंके मारे जानेपर सभी दैत्य व्याकुल होकर दसों दिशाओंमें भाग गये। इन्द्रादि सभी देवता सुखी हो गये। राजन्! इस प्रकार शुम्भासुरका संहार करनेवाली देवी सरस्वतीके चरित्रका वर्णन किया गया, जो साक्षात् उमाके अंशसे उत्पन्न हुई थीं।

भगवती उमाका प्रादुर्भाव

मुनि बोले—सूतजी! अब आप भुवनेश्वरी उमाके अवतारका वर्णन करें, जो परब्रह्म मूलप्रकृति, निराकार होकर भी साकार तथा नित्यानन्दमयी सती कही जाती हैं।

सूतजी कहते हैं—एक बार देवताओं एवं दैत्योंमें परस्पर युद्ध हुआ, उसमें महामायाके प्रभावसे देवगणोंकी विजय हुई। इससे देवताओंको अहंकार हो गया और वे अपनी प्रशंसा करने लगे। उसी समय वहाँ एक पुंजीभूत तेज प्रकट हुआ, जिसे देखकर देवता आश्चर्यचकित हो उठे। उन्हें यह पता नहीं था कि यह श्यामा (भगवती उमा)-का उत्कृष्ट प्रभाव है, जो देवताओंके अभिमानको चूर्ण करनेवाला है। देवताओंके अधिपतिने देवताओंको उस तेजकी परीक्षा करनेकी आज्ञा दी। सर्वप्रथम वायुदेव उस तेज:पुंजके निकट गये। तेज:पुंजके पूछनेपर वायुदेवता अभिमानपूर्वक बोले—मैं वायु हूँ। सम्पूर्ण जगत्का प्राण

हूँ। मैं ही समस्त विश्वका संचालन करता हूँ। तब उस महातेजने कहा यदि तुम जगत्‌के संचालनमें समर्थ हो तो इस तृणको अपने इच्छानुसार चलाओ तो सही, तब वायुदेवताने सभी उपाय करके अपनी सारी शक्ति लगा दी, परंतु वह तिनका अपने स्थानसे तिलभर भी नहीं हटा। इससे वायुदेव लज्जित हो गये और इन्द्रकी सभामें लौटकर अपनी पराजयका सारा वृत्तान्त सुनाया। तब इन्द्रने बारी-बारीसे समस्त देवताओंको भेजा, पर वे उसे जाननेमें समर्थ न हो सके, तब इन्द्र स्वयं ही गये। इन्द्रको आते देख वह तेज तत्काल अदृश्य हो गया। इससे इन्द्र बड़े विस्मित हुए। तब इन्द्रने यह विचार किया कि जिसका ऐसा चरित्र है, मुझे उसीकी शरणमें जाना चाहिये।

इसी बीच अकारणकरुणामूर्ति सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती उमा उनका अभिमान दूर करनेके लिये चैत्र शुक्ल नवमीको मध्याह्नकालमें वहाँ प्रकट हुईं। तेजके मध्यमें विराजमान परमब्रह्मस्वरूपिणी महामायाने कहा—मैं निराकार होकर भी साकार हूँ। मैं ही परब्रह्म, परमज्योति, प्रणव और युगलरूपिणी हूँ। काली, लक्ष्मी और सरस्वती आदि सम्पूर्ण शक्तियाँ तथा ये सकल कलाएँ मेरे ही अंशसे प्रकट हुई हैं। मेरे ही प्रभावसे तुम लोगोंने सम्पूर्ण दैत्योंपर विजय पायी है।

सगुण एवं निर्गुण—यह मेरा दो प्रकारका रूप कहा गया है। प्रथम रूप मायामय है तथा दूसरा रूप मायारहित है। हे देवताओ! इस प्रकार मुझे जानकर और अपने गर्वका परित्याग करके भक्तिसे युक्त होकर मुझ सनातनी प्रकृतिकी आराधना करो। उसी समयसे वे देवता अभिमान छोड़कर एकाग्रचित्त हो, पूर्वकी भाँति पार्वतीकी आराधना करने लगे। इस प्रकार मैंने उमाके प्रादुर्भावका वर्णन पूर्ण किया।

देवीके द्वारा दुर्गमासुरका वध तथा उनके दशमहाविद्यासहित विभिन्न स्वरूपोंका प्राकट्य

मुनिगण बोले—महाप्राज्ञ सूतजी! हम सबलोग प्रतिदिन दुर्गाके चरित्रको निरन्तर सुनना चाहते हैं, अतः आप भगवतीकी अद्भुत लीलाका वर्णन कीजिये। सूतजी कहते हैं—मुनियो! पूर्वकालमें दुर्गम नामका एक महाबलवान् असुर था, उसने ब्रह्माजीके वरदानसे चारों वेदोंको हस्तगत कर लिया था तथा वह पृथ्वीतलपर बहुत उपद्रव करने लगा, जिससे सब लोग दुखी हो गये, उनके महान् दुःखको देखकर सब देवता महेश्वरी योगमायाकी शरणमें गये। देवगण बोले—हे महामाये! अपनी समस्त प्रजाओंकी रक्षा करें एवं अपने क्रोधको दूर करें। अन्यथा सभी लोग नष्ट हो जायँगे। तदनन्तर प्रजाओंको दुखी देखकर भगवतीके अनन्त नेत्रोंमें करुणाके आँसू छलक आये। वे व्याकुल होकर लगातार नौ दिन और नौ रात रोती रहीं, अपने नेत्रोंसे हजारों जलधाराएँ बहाने लगीं, उन धाराओंसे सभी लोग तथा समस्त औषधियाँ तृप्त हो गयीं। इस प्रकार ब्राह्मण, देवता और मनुष्योंसहित सभी सन्तुष्ट हो गये। उस समय समस्त देवता एकत्र होकर बोले—देवि! अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहृत हुए वेद लाकर हमें दीजिये, तब देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—'देवताओ! अपने घरको जाओ, मैं शीघ्र ही वेद लाकर तुम्हें अर्पित करूँगी।'

इसके अनन्तर स्वर्ग, भूलोक तथा अन्तरिक्षमें कोलाहल मच गया। उसे सुनकर उस भयानक दैत्यने चारों ओरसे देवपुरीको घेर लिया फिर तो देवी और दैत्य दोनोंमें घोर युद्ध आरम्भ हो गया। समरांगणमें दोनों ओरसे तीखे बाणोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीचमें देवीके शरीरसे सुन्दर स्वरूपवाली काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, धूम्रा, श्रीमती त्रिपुरसुन्दरी तथा मातंगी—ये मनोहर रूपवाली दस महाविद्याएँ शस्त्रयुक्त हो प्रकट हो गयीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ प्रकट हुईं। उन मातृगणोंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। इसके बाद देवीने त्रिशूलकी धारसे उस दुर्गम दैत्यको मार डाला। इस प्रकार भगवतीने उस समय दुर्गमासुर नामक दैत्यको मारकर चारों वेद वापस ले देवताओंको दे दिये।

तब देवतालोग बोले—अम्बिके! हम लोगोंके लिये आपने असंख्य नेत्रोंसे युक्त रूप धारण कर लिया था। इसलिये मुनिजन आपको 'शताक्षी' कहेंगे। अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा आपने समस्त लोकोंका भरण-

पोषण किया है। इसलिये 'शाकम्भरी' नामसे आपकी ख्याति होगी। आपने दुर्गम नामक महादैत्यका वध किया है, इसलिये लोग आप कल्याणमयी भगवतीको 'दुर्गा' कहेंगे। माता! आपतक मन, वाणी और शरीरकी पहुँच होनी कठिन है। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये तीनों आपके नेत्र हैं। हम आपके प्रभावको नहीं जानते, इसलिये आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं।

देवीने कहा—जैसे पूर्वकालमें तुम्हारी रक्षाके लिये मैंने दैत्योंको मारा है, उसी प्रकार आगे भी असुरोंका संहार करूँगी। जब मैं भ्रमरका रूप धारण करके अरुण नामक असुरका वध करूँगी, तब संसारके मनुष्य मुझे 'भ्रामरी' कहेंगे। फिर मैं भीम (भयंकर) रूप धारण करके राक्षसोंको खाने लगूँगी, उस समय मेरा 'भीमा देवी' नाम प्रसिद्ध होगा। जब-जब पृथ्वीपर असुरोंकी ओरसे बाधा उत्पन्न होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर प्रजाजनोंका कल्याण करूँगी, इसमें संशय नहीं है।

देवीके क्रियायोग एवं व्रत-उत्सव आदिका वर्णन

सूतजी कहते हैं—व्यासजीके द्वारा पार्वतीके अद्भुत क्रियायोगको सुननेकी जिज्ञासा करनेपर सनत्कुमारने कहा—हे द्वैपायन! ज्ञानयोग, क्रियायोग तथा भक्तियोग—यह श्रीमाताकी उपासनाके तीन मार्ग हैं। मुक्तिका प्रधान कारण योग है और उस योगके ध्येयका उत्तम साधन क्रियायोग है।

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्र-व्रत करना चाहिये। इसके करनेपर सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। इस नवरात्रके प्रभावका वर्णन करनेमें ब्रह्मा, महादेव तथा कार्तिकेय भी समर्थ नहीं हैं, फिर दूसरा कौन समर्थ हो सकता है?

यह उमासंहिता परम पुण्यमयी तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाली है। इसमें नाना प्रकारके उपाख्यान हैं। यह कल्याणमयी संहिता भोग तथा मोक्षको प्रदान करनेवाली है, अतः शिवाकी भक्ति चाहनेवाले पुरुषोंको सदा इस परम पुण्यमयी उमासंहिताका श्रवण एवं पाठ करना चाहिये।

कैलाससंहिता

व्यासजीसे शौनकादि ऋषियोंका संवाद

ऋषिगणोंके द्वारा शिवतत्त्वका ज्ञान बढ़ानेवाली कैलास-संहिताके वर्णनको सुननेकी इच्छा व्यक्त करनेपर व्यासजीने शिवतत्त्वसे युक्त दिव्य तथा उत्कृष्ट कैलास नामक संहिताका वर्णन करते हुए कहा—पूर्वकालमें हिमालयपर तप करनेवाले महातेजस्वी ऋषियोंने आपसमें विचारकर काशी जानेकी इच्छा की। उन्होंने काशी पहुँचकर मणिकर्णिकामें स्नानकर देवतादिका तर्पण किया। तदनन्तर देवाधिदेव विश्वेश्वरका पूजनकर शतरुद्रिय आदि मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करके अपनेको कृतार्थ समझा और कहा—'आज हमलोग शिवकृपासे पूर्ण मनोरथवाले हो गये।'

उसी समय पंचक्रोशी परिक्रमा करनेके लिये आये हुए सूतजीको देखकर उनके पास जाकर सभीने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे महाभाग सूतजी! भगवान् व्यासजीने आपको सभी पुराणोंके गुरुरूपमें अभिषिक्तकर सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है, अतः पौराणिकी विद्या आपके हृदयमें स्थित है। सभी पुराण वेदार्थका प्रतिपादन करते हैं। समस्त वेद प्रणवसे उत्पन्न हुए हैं, प्रणवका तात्पर्य स्वयं महेश्वर हैं, अतः महेश्वर आपके हृदयमें प्रतिष्ठित हैं। हे महामते! आप ही हम लोगोंके विशेष गुरु हैं, अतः आप परम कृपापूर्वक महेश्वरके श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश कीजिये।

सूतजी बोले—हे महर्षियो! पूर्व समयमें गुरुदेव व्यासजीने नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंको जो उपदेश दिया था, उसीको मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे लोगोंमें शिवभक्ति उत्पन्न हो जाती है, आपलोग सावधान होकर सुनें।

पूर्वकालमें ऋषिगण यज्ञाधिपति रुद्रको प्रसन्न करनेकी इच्छासे दीर्घसत्र करने लगे। उनकी यह भावना देखकर भगवान् वेदव्यास वहींपर प्रकट हो गये। उन्हें देखकर मुनिगणोंने सत्कारपूर्वक उन्हें उत्तम आसनपर

विराजमान कराया और कहा—हे महाभाग! प्रणवके अर्थको प्रकाशित करनेकी इच्छावाले हमलोग नैमिषारण्य नामक इस तीर्थमें महासत्र सम्पादित कर रहे हैं। अत: हे दयानिधे! आप इस अपार भ्रमसागरमें डूबते हुए हमलोगोंको शिवज्ञानरूपी नौकासे पार कर दीजिये। इस प्रकार मुनियोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर महामुनि व्यासजीने कहा—हे ब्राह्मणो! प्रणवार्थको प्रकाशित करनेवाला शिवज्ञान सर्वथा दुर्लभ है। शिवभक्तिसे रहित लोगोंको यह नहीं प्राप्त होता है। आपलोगोंने भगवान् सदाशिवकी उपासना की है। अत: मैं आपलोगोंसे उमा-महेश्वरका संवादरूप प्राचीन इतिहास कह रहा हूँ।

किसी समय हिमालयपर्वतपर पतिके निकट बैठी गौरी शिवजीसे कहने लगीं—हे देव! आपके द्वारा उपदिष्ट मन्त्र प्रणवयुक्त कहे गये हैं, अत: सबसे पहले मैं प्रणवके निश्चित अर्थको सुनना चाहती हूँ। प्रणव किस प्रकार उत्पन्न हुआ, यह वेदका आदि क्यों कहा जाता है, इसके जपकी विधि क्या है? हे महेशान! यदि आपकी मुझपर कृपा है तो यह सब मुझे विशेषरूपसे बताइये।

भगवान् शिव बोले—हे देवि! प्रणवके अर्थको जान लेना ही मेरा ज्ञान है। यह सभी विद्याओंका बीज है। यह वेदका आदि, वेदका सार और विशेषरूपसे मेरा स्वरूप है। मैं शिव इस 'ॐ' नामक एकाक्षर मन्त्रमें निवास करता हूँ। शिवको ही प्रणवस्वरूप तथा प्रणवको ही शिवस्वरूप कहा गया है। हे देवेशि! मैं काशीमें जीवोंकी मुक्तिके लिये सभी मन्त्रोंमें श्रेष्ठ इसी प्रणवका उपदेश करता हूँ।

यह प्रणव ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण ही है। अत: इसे प्रणव कहा गया है। इस प्रणवका आदि अक्षर अकार है। उसके बाद उकार, मध्यमें मकार और अन्तमें नाद है। इनके संयोगसे 'ॐ' बनता है। **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इस श्रुतिके अनुसार सारा प्रपंच ही ओंकारस्वरूप है। जिसे दृढ़ वैराग्य होता है, वही इस प्रणवका अधिकारी है।

इसके अनन्तर जीव और ब्रह्मकी एकत्व भावनासे प्रणवका वर्णन करते हुए भगवान् सदाशिव संन्यास-विधिका वर्णन करते हैं और भगवतीसे कहते हैं कि साधकको सावधानचित्त होकर 'ॐ' एकाक्षर मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस दहराकाशके मध्य तुम्हारे साथ मेरा सदा स्मरण करना चाहिये। इस प्रकारके उपासकको मेरा लोक प्राप्त होता है और वह मुझसे ज्ञान पाकर मेरे सायुज्यका फल प्राप्त कर लेता है।

शौनकादि ऋषियोंसे वार्ता करनेके उपरान्त सूतजी तीर्थयात्राके प्रसंगसे पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे। एक संवत्सर बीत जानेके बात महामुनि सूतजी पुन: काशी आये। उन्हें देखकर ऋषिगण बहुत प्रसन्न हुए।

ऋषि बोले—हे मुने! विरजा होमके समय पहले आपने जो वामदेवका मत सूचित किया था, उसे हमने विस्तारपूर्वक नहीं सुना। अब हम बड़े आदर और श्रद्धाके साथ सुनना चाहते हैं। श्रीशिवकथाकी बात सुनकर सूतजीके शरीरमें रोमांच हो आया और वे प्रसन्न होकर बोले—महाभाग महात्माओ! तुम भगवान् शिवके भक्त तथा दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले हो, यह जानकर ही मैं तुम लोगोंके समक्ष इस विषयका वर्णन करता हूँ—पूर्वकालके रथन्तर कल्पमें महामुनि वामदेव माताके गर्भसे बाहर निकलते ही शिवतत्त्वके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे। वे वेदों, आगमों, पुराणों तथा अन्य सब शास्त्रोंके भी तात्त्विक अर्थको जाननेवाले थे। उनके मनमें किसी वस्तुकी इच्छा नहीं थी तथा वे अहंकारशून्य थे। वे दिगम्बर महाज्ञानी महात्मा दूसरे महेश्वरके समान जान पड़ते थे। इस तरह घूमते हुए वामदेवजी मेरुके दक्षिण शिखर कुमारशृंगपर प्रसन्नतापूर्वक पहुँचे, जहाँ मयूरवाहन शिवकुमार सर्वदेववन्दित भगवान् स्कन्द रहते थे। उनके साथ उनकी शक्तिभूता 'गजावल्ली' भी थीं। वहीं स्कन्दस्वामीके समीप स्कन्दसर नामका एक प्रसिद्ध सरोवर था।

महामुनि वामदेवने शिष्योंके साथ उसमें स्नान करके शिखरपर बैठे हुए कुमारका दर्शन किया। वे उगते हुए सूर्यके समान तेजस्वी थे, मोर उनका वाहन था। स्कन्दका दर्शन और पूजन करके उन मुनीश्वरने बड़ी भक्तिसे उनका स्तवन किया।

वामदेवने भगवान् स्कन्दकी स्तुति करके तीन बार उनकी परिक्रमा की और बारम्बार साष्टांग प्रणाम करके विनीत भावसे उनके पास खड़े हो गये। वामदेवजीके द्वारा किये गये स्तोत्रको सुनकर भगवान् स्कन्द बड़े प्रसन्न हुए और वामदेवजीसे बोले—मुने! मैं तुम्हारी भक्तिसे तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। यदि मुझसे कुछ सुनना हो तो कहो, मैं लोकपर अनुग्रह करनेके लिये उनका वर्णन करूँगा। वामदेवजी विनयपूर्वक बोले—महाप्राज्ञ! प्रणव सबसे उत्तम मन्त्र है तथा साक्षात् परमेश्वरका वाचक है। पशुओं (जीवों)-के पाश (बन्धन)-को छुड़ानेवाले भगवान् पशुपति ही उसके वाच्यार्थ हैं। **'ओमितीदं सर्वम्'** (तै० उ० १।८।१) ओंकार ही यह प्रत्यक्ष दिखनेवाला जगत् है। यह सनातन श्रुतिका कथन है। **'ओमिति ब्रह्म'** (तै० उ० १।८।१) अर्थात् **'ॐ'** यह ब्रह्म है तथा **'सर्वं ह्येतद् ब्रह्म'** (माण्डूक्योपनिषद् २) यह सबका सब ब्रह्म ही है इत्यादि बातें भी श्रुतियोंद्वारा कही गयी हैं। तात्पर्य यह है कि समष्टि और व्यष्टि सभी पदार्थ प्रणवके अर्थ हैं। प्रणवद्वारा सबका प्रतिपादन होता है। यह बात मैंने सुन रखी है। अतः कृपा करके आप प्रणवके अर्थका प्रतिपादन कीजिये। मुनिके इस प्रकार पूछनेपर स्कन्दने भगवान् सदाशिवको प्रणाम करके उस श्रेयका वर्णन आरम्भ किया, जिसे श्रुतियोंने भी छिपा रखा है।

श्रीस्कन्दने कहा—मुनीश्वर वामदेव! इस लोकमें जितने जीव हैं, वे सब नाना प्रकारके शास्त्रोंसे मोहित हैं। परमेश्वरकी अति विचित्र मायाने उन्हें परमार्थसे वंचित कर दिया है। अतः प्रणवके वाच्यार्थभूत साक्षात् महेश्वरको वे नहीं जानते। वे महेश्वर ही सगुण-निर्गुण अर्थात् त्रिदेवोंके जनक परब्रह्म परमात्मा हैं। मैं बारम्बार इस सत्यको दोहराता हूँ कि प्रणवके अर्थ साक्षात् शिव ही हैं। श्रुति, स्मृति, शास्त्रों एवं पुराणोंमें प्रधानतया उन्हीं को प्रणवका वाच्यार्थ बताया गया है। जो परमात्मा स्वयं किसीसे और कभी उत्पन्न नहीं होता, वह परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं ही सर्वेश्वर 'शिव' नाम धारण करता है। मुमुक्षु योगियोंको नित्य उनके इस स्वरूपका ध्यान करना चाहिये।

इस मानवलोकमें चार वर्ण प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य—ये तीन वर्ण हैं, उनका वैदिक आचारसे सम्बन्ध है। शूद्रोंका वेदाध्ययनमें अधिकार न होनेके कारण त्रैवर्णिकोंकी सेवा ही उनके लिये सारभूत धर्म है। श्रुति और स्मृतिमें प्रतिपादित कर्मका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष अवश्य सिद्धिको प्राप्त होगा। वर्ण-धर्म और आश्रमधर्मके पालनजनित पुण्यसे परमेश्वरका पूजन करके बहुत-से श्रेष्ठ मुनि उनके सायुज्यको प्राप्त हो गये। ब्रह्मचर्यका पालन करनेसे ऋषियोंकी, यज्ञ-कर्मके अनुष्ठानसे देवताओंकी तथा सन्तानोत्पादनसे पितरोंकी तृप्ति होती है—ऐसा श्रुतिने कहा है। इस तरह ऋषिऋण, देवऋण तथा पितृऋण—इन तीनोंसे मुक्त हो वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट होकर मनुष्य सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको सहन करते हुए जितेन्द्रिय, तपस्वी, मिताहारी हो योगका अभ्यास करे, जिससे बुद्धि निश्चल तथा अतिदृढ़ हो जाय। इस प्रकार क्रमशः अभ्यास करके शुद्ध चित्त हुआ पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंका संन्यास कर दे। समस्त कर्मोंका संन्यास करनेके पश्चात् ज्ञानमयी पूजाके द्वारा परमेश्वरको प्रसन्न करे, यह पूजा जीवकी साक्षात् शिवके साथ एकताका बोध कराकर जीवन्मुक्तिरूप फल देनेवाली है। यतियोंके लिये इस पूजाको सर्वोत्तम तथा निर्दोष समझना चाहिये। इसके अनन्तर श्रीस्कन्दजीने ज्ञानमयी पूजाका वर्णन करते हुए संन्यास-ग्रहणकी शास्त्रीय विधि, दण्डधारण आदिका प्रकार, प्रणवके अर्थोंका विवेचन, शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, शिवसे जीव और जगत्की अभिन्नताका प्रतिपादन तथा महावाक्योंके अर्थका चिन्तन एवं उसका भावार्थ प्रस्तुत किया।

इसके बाद श्रीस्कन्दने यतियोंपर कृपा करके उनसे संन्यासियोंके क्षौर और स्नान-विधिका वर्णन किया तथा यतिके अन्त्येष्टि-कर्म, दशाह-एकादशाह कृत्य एवं द्वादशाह कृत्यका वर्णन तथा उसकी प्रक्रियाका विवेचन किया।

यह सब वर्णन करते हुए श्रीस्कन्दजी कहते हैं—मुने! मैंने जो कुछ वर्णन किया है, वह साक्षात् भगवान् शिवका कहा हुआ उत्तम रहस्य है, जो वेदान्तके सिद्धान्तके अनुरूप है। इस मार्गपर चलनेवाला यति '**शिवोऽहमस्मि**' (मैं शिव हूँ) इस आत्मस्वरूप शिवकी भावना करता हुआ शिवस्वरूप हो जाता है।

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार मुनीश्वर वामदेवको उपदेश देकर देवेश्वर कार्तिकेय कैलासशिखरपर चले गये। मुनि वामदेव भी कार्तिकेयको प्रणाम करके कैलास-शिखरपर जा पहुँचे और वहाँ उन्होंने उमासहित महेश्वरके मोक्षदायक चरणोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् उन्होंने भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंद्वारा जगदम्बा और पुत्रसहित परमेश्वर शिवका स्तवन किया। इसके बाद देवी पार्वती और महादेवजीके चरणकमलोंका आश्रय लेकर वे वहीं सुखपूर्वक रहने लगे। आप सभी ऋषि भी इसी प्रकार प्रणवके अर्थभूत महेश्वरका तथा मोक्षदायक तारकमन्त्र '**ॐ कार**' का ज्ञान प्राप्त करके यहीं सुखसे रहो तथा विश्वनाथजीके चरणोंमें सायुज्यरूपा उत्तम मुक्तिका चिन्तन करो। अब मैं भी गुरुदेवकी सेवाके निमित्त बदरिकाश्रमतीर्थको जाऊँगा।

वायवीयसंहिता [पूर्वखण्ड]

किसी समय धर्मक्षेत्र नैमिषारण्यतीर्थके प्रयागक्षेत्रमें सत्यव्रतपरायण मुनियोंने महायज्ञका आयोजन किया था। उन महर्षियोंके यज्ञका वृत्तान्त सुनकर महात्मा सूतजी वहाँ पधारे। मुनियोंने उनका यथोचित स्वागत एवं पूजन किया तथा बोले—हे महाभाग! हमलोगोंके कल्याणके लिये ज्ञानसे युक्त तथा वेदान्तके सारस्वरूप पुराणको हमें सुनाइये।

इसके अनन्तर सूतजीने शिवागमोक्त सिद्धान्तोंसे विभूषित पुराणानुक्रम एवं पुराणकी उत्पत्तिका वर्णन करते हुए चारों वेद, उनके छः अंग, मीमांसा, न्याय, पुराण एवं धर्मशास्त्र इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र—इस प्रकार अठारह विद्याओंका वर्णन किया और कहा कि इन सबके आदिकर्ता साक्षात् महेश्वर हैं।

भगवान् सदाशिवने समस्त जगत्को उत्पन्न करनेकी इच्छा करते हुए सनातन ब्रह्मदेवको साक्षात् पुत्ररूपमें उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने मध्यम पुत्र भगवान् विष्णुको जगत्के पालनके लिये रक्षाशक्ति प्रदान की।

ब्रह्माजीने प्रजासृष्टिका विस्तार करते हुए सर्वप्रथम पुराणोंका स्मरण किया। इसके पश्चात् उनके मुखसे वेद उत्पन्न हुए। उसके अनन्तर समस्त शास्त्र उत्पन्न हुए। विस्तृत विद्याओंको संक्षिप्त करनेके लिये प्रत्येक द्वापरके अन्तमें प्रभु विष्णु व्यासरूपसे इस पृथ्वीपर अवतार लेकर विचरण करते हैं।

सूतजी कहते हैं—श्वेतवाराह कल्पमें ऋषियोंमें परस्पर विवाद हुआ, यह ब्रह्म है या नहीं है—इस प्रकार परब्रह्मका निरूपण बहुत कठिन होनेके कारण वे सभी मुनिगण सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके पास पहुँचे और कहने लगे—हे भगवन्! हम लोग घोर अज्ञानान्धकारसे घिरे हुए हैं। अतः परस्पर विवाद करते हुए दुखी हैं। हमलोगोंको परमतत्त्वका ज्ञान अभीतक नहीं हो पाया है—ऐसा पूछे जानेपर ब्रह्माजीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और वे ध्यानमें मग्न होकर 'रुद्र-रुद्र' इस प्रकारका शब्द उच्चारण करते हुए बोले—'जो सम्पूर्ण जगत्के सृष्टिकर्ता हैं, जिनसे ये सभी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्रादि देवता उत्पन्न हुए, जिन्होंने सर्वप्रथम मुझे पुत्ररूपसे उत्पन्न किया, वेदोंका ज्ञान प्रदान किया; उन्हींकी कृपासे मैंने इस प्रजापति पदको प्राप्त किया, वे एकमात्र भगवान् रुद्र हैं, दूसरा कोई नहीं है।'

समस्त जीव इनके वशमें हैं। ये सबके प्रेरक हैं, ये परम भक्तिसे ही देखे जा सकते हैं, अन्य उपायोंसे नहीं। वह भक्ति शिवकी कृपासे ही प्राप्त होती है और उनकी कृपा भक्तिसे उत्पन्न होती है, जैसे अंकुरसे बीज और बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है।

ज्ञान और भक्तिके अनुरूप शिवकी कृपा प्राप्त

होनेपर मुक्ति होती है। इस समय आप लोगोंने जो दिव्य सहस्र वर्षवाला दीर्घ यज्ञानुष्ठान किया है, उस यज्ञके अन्तमें मन्त्रद्वारा आवाहन करनेपर **वायुदेव** वहाँ पधारेंगे; वे ही आप लोगोंको कल्याणका साधन एवं उपाय बतायेंगे।

नैमिषारण्यकी यज्ञभूमिमें वायुदेवका पधारना

तदनन्तर ब्रह्माजीने कहा—मैंने इस मनोमय चक्रका निर्माण किया है। मैं इस चक्रको छोड़ रहा हूँ, जहाँ इसकी नेमि गिरकर टूट जाय, वही देश तपस्याके लिये शुभ होगा। ऐसा कहकर पितामहने उस सूर्यतुल्य मनोमय चक्रकी ओर देखकर और महादेवजीको प्रणामकर उसे छोड़ दिया। फेंका गया वह कान्तिमय चक्र विमल जलसे युक्त सरोवरवाले किसी वनके एक मनोहर शिलापटपर गिर पड़ा। इसी कारणसे वह वन मुनिपूजित **नैमिषारण्य** नामसे विख्यात हुआ।

सूतजी कहते हैं—उन ऋषियोंने उस स्थानमें यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ किया। कुछ समय बीत जानेपर वह यज्ञ जब समाप्त हो गया तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे वहाँ स्वयं **वायुदेव** पधारे।

तब सभीने उठकर वायुदेवको प्रणामकर उन्हें स्वर्णमय आसन प्रदान किया, तत्पश्चात् उनकी भलीभाँति पूजा की। इसके बाद मुनियोंके द्वारा पूछे जानेपर शिवमें उनकी भक्ति बढ़ानेके लिये वायुदेवने सृष्टिकी उत्पत्ति एवं शिवका ऐश्वर्य संक्षेपमें बताया।

मुनियोंने पूछा—'आपने वह कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया है, जो परमसे भी परम, सत्य एवं शुभ है तथा जिसमें उत्तम निष्ठा रखकर पुरुष परम आनन्दको प्राप्त करता है।' वायुदेवता बोले—महर्षियो! मैंने पूर्वकालमें पशु, पाश और पशुपतिका जो ज्ञान प्राप्त किया था, सुख चाहनेवाले पुरुषको उसीमें ऊँची निष्ठा रखनी चाहिये। अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला दुःख ज्ञानसे ही दूर होता है। वस्तुके विवेकका नाम ज्ञान है। वस्तुके तीन भेद माने गये हैं—जड़ (प्रकृति), चेतन (जीव) और इन दोनोंका नियन्ता (परमेश्वर)—इन्हीं तीनोंको क्रमसे पाश, पशु तथा पशुपति कहते हैं। ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर प्राणियोंतक सभी जीव पशु कहे गये हैं। उन सभी पशुओंके लिये ही यह उत्तम दृष्टान्त कहा गया है। यह जीव पाशोंमें बँधता और सुख-दुःख भोगता है, इसलिये 'पशु' कहलाता है। यह ईश्वरकी लीलाका साधनभूत है।

महर्षियो! इस विश्वका निर्माण करनेवाला कोई पति है, वही पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाला है। अतः वही पशुपति है। पशु, पाश और पतिका जो वास्तवमें पृथक्-पृथक् स्वरूप है, उसे जानकर ही ब्रह्मवेत्ता मनुष्य योनिसे मुक्त होता है। सृष्टिके आरम्भमें एक रुद्रदेव ही विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं रहता। वे ही इस जगत्की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और सबका संहार कर डालते हैं।

इसके अनन्तर वायुदेवने विद्या-अविद्या, प्रकृति-पुरुष, आत्मतत्त्व-जीवतत्त्वका तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया है।

संक्षेपमें सिद्धान्तकी बात यह है कि भगवान् शिव प्रकृति एवं पुरुषसे परे हैं, यही सृष्टिकालमें जगत्को रचते और संहारकालमें पुनः सबको आत्मसात् कर लेते हैं।

काल-महिमाका वर्णन

ऋषियोंद्वारा जिज्ञासा करनेपर वायुदेवने कालकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा—सम्पूर्ण जगत् तो कालके वशमें है, पर काल जगत्के वशमें नहीं है। शिवजीका अप्रतिहत तेज कालमें सन्निविष्ट है, इसलिये कालकी महान् मर्यादा मिटायी नहीं जा सकती।

तदनन्तर वायुदेवने काल-महिमा, प्रलय, ब्रह्माण्डकी स्थिति, रुद्रोत्पति एवं ब्रह्माजीद्वारा सृष्टि-रचना तथा सर्ग आदिका वर्णन किया।

वायुदेवने कहा—ब्रह्माजीने पहले पाँच मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया। सनक, सनन्दन, सनातन, ऋभु और सनत्कुमार—ये सब-के-सब योगी तथा वीतराग थे। उन्होंने सृष्टि-रचनाकी इच्छा नहीं की, तब ब्रह्माजीने पुनः सृष्टि-रचनाकी इच्छासे बड़ी भारी तपस्या की, पर इससे उनका कोई काम न बना। इस कारण क्रोधित होनेपर ब्रह्माजीके दोनों नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें गिरने लगीं। इन

अश्रुबिन्दुओंसे भूत-प्रेत उत्पन्न हुए। क्रोध-मोहके कारण उन्हें मूर्च्छा आ गयी। इसी क्रममें भगवान् नीललोहित शिव ब्रह्माजीके मुखसे ग्यारह रूपोंमें प्रकट हुए। महादेवजीने उन ग्यारह स्वरूपोंसे कहा कि तुम लोग आलस्यरहित होकर प्रजा-संतानकी वृद्धिके लिये प्रयत्न करो। उनके ऐसा कहनेपर वे व्याकुल होकर रोने और दौड़ने लगे। रोनेके कारण उनका नाम 'रुद्र' हुआ। इसके अनन्तर ब्रह्माने आठ नामोंद्वारा परमेश्वर शिवका स्तवन किया। ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् रुद्रदेवकी आज्ञा प्राप्तकर ब्रह्माने अन्यान्य प्रजाओंकी सृष्टि आरम्भ की। उन्होंने अपने मनसे ही मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य आदि बारह पुत्रोंकी सृष्टि की। तत्पश्चात् समाधिद्वारा अपने चित्तको एकाग्र करके रुद्रसहित ब्रह्माजीने देवताओं, असुरों, पितरों, विद्याधरों, गन्धर्वों, गुह्यकों, मनुष्यों एवं पशु-पक्षियों, जलचरों, सर्पों, कीटों इत्यादिको अपने अंगों-उपांगोंसे उत्पन्न किया।

वायुदेवने कहा—वास्तवमें अचिन्त्यरूप महेश्वर ही सब भूतोंके निर्माता हैं। उनके मुखसे ब्राह्मण प्रकट हुए हैं, वक्षस्थलके ऊपरी भागसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, दोनों जाँघोंसे वैश्य तथा पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार उनके अंगोंसे सम्पूर्ण वर्णोंका प्रादुर्भाव हुआ है।

ब्रह्माजीद्वारा भगवान् अर्धनारीश्वरकी स्तुति

वायुदेव बोले—जब ब्रह्माजीद्वारा रची गयी प्रजाओंका पुनः विस्तार नहीं हुआ, तब ब्रह्माजीने मैथुनी सृष्टिके लिये परमेश्वरको प्रसन्न करनेकी इच्छासे कठोर तप करना प्रारम्भ किया। भगवान् सदाशिव ब्रह्माजीके तपसे सन्तुष्ट होकर अर्धनारीश्वरके रूपमें प्रकट हो गये। तब ब्रह्माजी हाथ जोड़कर दण्डवत् प्रणाम करके वेदार्थसे युक्त सूक्ष्म अर्थोंसे परिपूर्ण सूक्तोंसे भगवान् अर्धनारीश्वरकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर मधुर वचन कहते हुए महादेवने अपने शरीरके वामभागसे देवी रुद्राणीको प्रकट किया। जिन दिव्य गुणसम्पन्न देवीको ब्रह्मवेत्ता लोग परात्पर परमात्मा शिवकी पराशक्ति कहते हैं, जिनमें जन्म, मृत्यु, जरा आदि नहीं हैं, वे भवानी शिवजीके अंगसे उत्पन्न हुईं।

ब्रह्माजी बोले—हे सर्वजगन्मयी देवी! सृष्टिकी बढ़ोत्तरीके लिये मैं मैथुनी सृष्टि करना चाहता हूँ। आपसे पहले नारीकुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। सम्पूर्ण शक्तियोंका आविर्भाव आपसे ही होता है। इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये आप अपने अंशसे मेरे पुत्र दक्षकी पुत्री हो जाइये।

ब्रह्माके इस प्रकार याचना करनेपर देवी रुद्राणीने अपनी भौहोंके मध्य भागसे अपने ही समान कान्तिमती एक शक्ति प्रकट की। ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार वे देवी दक्षपुत्री हो गयीं तथा ब्रह्माजीको अनुपम शक्ति देकर वे महादेवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं और महादेवजी भी अन्तर्धान हो गये। तभीसे इस जगत्में स्त्री जातिमें भोग प्रतिष्ठित हुआ तथा मैथुनद्वारा प्रजाकी सृष्टि होने लगी। इससे ब्रह्माजीको भी संतोष और आनन्द प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् ऋषियोंकी कई शंकाओंका समाधान वायुदेवताके द्वारा किया गया तथा भगवान् शिव और भगवती पार्वतीकी लीलाओंका वर्णन भी सूतजीने किया।

वायुदेवता कहते हैं—मुनियो! परोक्ष तथा अपरोक्ष प्रकारभेदसे ज्ञान दो प्रकारका माना गया है। परोक्ष ज्ञानको अस्थिर कहा जाता है और अपरोक्ष ज्ञानको सुस्थिर। युक्तिपूर्ण उपदेशसे जो ज्ञान होता है, उसे परोक्ष कहते हैं। वही श्रेष्ठ अनुष्ठानसे अपरोक्ष हो जाता है। अपरोक्ष ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं होता। अतः तुम लोग आलस्यरहित हो श्रेष्ठ अनुष्ठानकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करो।

ऋषियोंने पूछा—वायुदेव! वह कौन-सा श्रेष्ठ अनुष्ठान है, जो मोक्षस्वरूप ज्ञानको अपरोक्ष कर देता है। वायुने कहा—भगवान् शिवका बताया हुआ जो परम धर्म है, उसीको श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है। उसके सिद्ध होनेपर स्वयं मोक्षदायक शिव अपरोक्ष हो जाते हैं।

उपमन्युपर भगवान् शंकरकी कृपा

धौम्यके बड़े भाई उपमन्युके द्वारा बाल्यावस्थामें दूधकी प्राप्तिके लिये माताकी आज्ञासे तपस्या करनेपर भगवान् शिवने किस प्रकार उपमन्युपर कृपा की और उन्हें वर प्रदान किया, इस प्रकार ऋषियोंद्वारा जिज्ञासा करनेपर वायुदेवने विस्तारपूर्वक इसका वर्णन करते हुए कहा कि भगवान् विष्णुके अनुरोध करनेपर शिवजी पहले इन्द्रका रूप धारणकर उपमन्युके पास गये, परंतु उपमन्युद्वारा इन्द्रसे कुछ प्राप्त करना स्वीकार नहीं करनेपर सदाशिव भगवान् शंकर उपमन्युपर कृपा करते हुए अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये तथा उपमन्युको अभीष्ट फल प्रदानकर महेश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये। उपमन्यु भी परमेश्वरसे उत्तम वर पाकर सुखपूर्वक अपनी जन्मदात्री माताके स्थानपर चले गये।

वायवीयसंहिता [उत्तरखण्ड]

श्रीकृष्ण और उपमन्युके मिलनका प्रसंग तथा उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपत ज्ञानका उपदेश

वायुदेवके पधारनेपर ऋषियोंने उनसे कहा—'भगवन्! भगवान् श्रीकृष्ण किसी समय धौम्यके बड़े भाई उपमन्युसे मिले थे और उनकी प्रेरणासे पाशुपत व्रतका अनुष्ठान करके उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आप यह बतायें कि भगवान् श्रीकृष्णने परम उत्तम पाशुपत ज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया?'

वायुदेवता बोले—महर्षियो! पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने महर्षि उपमन्युको प्रणाम करके उनसे इस प्रकार कहा—भगवन्! महादेवजीने देवी पार्वतीको जिस पाशुपत ज्ञान तथा अपनी जिस सम्पूर्ण विभूतिका उपदेश दिया था, मैं उसीको सुनना चाहता हूँ। महादेवजी पशुपति कैसे हुए? पशु कौन कहलाते हैं?

श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर उपमन्युने कहा—देवकीनन्दन! ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यन्त जो भी संसारके चराचर प्राणी हैं, वे सबके सब भगवान् शिवके पशु कहलाते हैं और उनके पति (स्वामी) होनेके कारण देवेश्वर शिवको पशुपति कहा गया है। वे पशुपति अपने पशुओंको माया आदि पाशोंसे बाँधते हैं और भक्तिपूर्वक उनके द्वारा आराधित होनेपर वे स्वयं ही उन्हें उन पाशोंसे मुक्त कर देते हैं। यही है पाशुपत ज्ञान।

शिव और शिवाकी विभूतियोंका वर्णन

श्रीकृष्ण कहते हैं—भगवन्! मुझे यह जाननेकी इच्छा है कि परमेश्वरी शिवा और परमेश्वर शिवका यथार्थ स्वरूप क्या है? उन दोनोंने स्त्री और पुरुषरूप इस जगत्को किस प्रकार व्याप्त कर रखा है?

उपमन्यु बोले—देवकीनन्दन! साक्षात् महादेवी पार्वती शक्ति हैं और महादेवजी शक्तिमान् हैं। यह जगत् शिव और शिवाके शासनमें है, इसलिये वे दोनों इसके ईश्वर या विश्वेश्वर कहे गये हैं। जैसे शिव हैं, वैसे ही शिवा देवी हैं तथा जैसी शिवा देवी हैं, वैसे ही शिव हैं। जिस तरह चन्द्रमा और उनकी चाँदनीमें कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार शिव और शिवामें अन्तर नहीं है। शिवके बिना शक्ति नहीं रह सकतीं और न शक्तिके बिना शिव।

परमेश्वर शिव पुरुष हैं और परमेश्वरी शिवा प्रकृति। महेश्वर शिव रुद्र हैं और उनकी वल्लभा शिवादेवी रुद्राणी। विश्वेश्वर देव विष्णु हैं और उनकी प्रिया लक्ष्मी। जब सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्मा कहलाते हैं तब उनकी प्रियाको ब्रह्माणी कहते हैं। भगवान् शंकर ही सारे संसारके पुरुष और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियोंके रूपमें व्यक्त हैं। अतः सभी स्त्री-पुरुष उन्हींकी विभूतियाँ हैं।

जैसे जलते हुए दीपककी शिखा समूचे घरको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वतीका यह तेज व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश दे रहा है। ये दोनों शिवा और शिव सर्वरूप हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं, अतः सदा ही इन दोनोंका पूजन, नमन एवं चिन्तन करना चाहिये।

श्रीकृष्ण! आज मैंने तुम्हारे समक्ष अपनी बुद्धिके

अनुसार परमेश्वर शिव और शिवाके यथार्थ स्वरूपका वर्णन किया है, परंतु यह नहीं मान लेना कि इन दोनोंके यथार्थ रूपका पूर्णत: वर्णन हो गया।

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! यह चराचर जगत् देवाधिदेव महादेवजीका ही स्वरूप है।

'प्रणव' की महिमा

शिव साक्षात् परमात्मा हैं। वे नित्य परिपूर्ण हैं। दूसरोंपर परम अनुग्रह ही उनके समस्त कर्मोंका फल है। 'प्रणव' उन परब्रह्म परमात्मा शिवका वाचक है। शिवके रुद्र आदि नामोंमें प्रणव ही सबसे उत्कृष्ट माना गया है। प्रणववाच्य शम्भुके चिन्तन और जपसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वही परा सिद्धि है। माण्डूक्योपनिषद्में प्रणवकी चार मात्राएँ बतायी गयी हैं—अकार, उकार, मकार और नाद। अकारको ऋग्वेद, उकारको यजुर्वेद, मकारको सामवेद और नादको अथर्ववेद कहा गया है। अकार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा है। उकार पालनकर्ता श्रीहरि है, मकार संहारकर्ता रुद्र है, नाद परमपुरुष परमेश्वर है, वह निर्गुण एवं निष्क्रिय शिव है। इस प्रकार प्रणव अपनी तीन मात्राओंके द्वारा ही तीन रूपोंमें इस सम्पूर्ण जगत्का प्रतिपादन करके अपनी अर्धमात्रा (नाद)-के द्वारा शिवस्वरूपका बोध कराता है। इनसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है। उन प्रणवरूप परम पुरुष परमेश्वर शिवसे ही यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है।

शिवके प्रसादसे प्राणियोंकी मुक्ति तथा पाँच प्रकारके शिवधर्मका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण! जो अपने हृदयमें शक्तिसहित भगवान् शिवका दर्शन करते हैं, उन्हींको सनातन शान्ति प्राप्त होती है। जब शिव और शक्तिकी कृपा होती है, तब मुक्ति हाथमें आ जाती है। देवता, दानव, पशु-पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े भी उनकी कृपासे मुक्त हो जाते हैं।

परमात्मा शिवने पाँच प्रकारका शिवधर्म बताया है—तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान। लिंग-पूजन आदिको कर्म कहते हैं; चान्द्रायण आदि व्रतका नाम तप है; वाचिक, उपांशु तथा मानस तीन प्रकारकी जो शिवमन्त्रकी आवृत्ति है, उसीको जप कहते हैं; शिवका चिन्तन ही ध्यान कहलाता है तथा शिवसम्बन्धी आगमोंमें जिस ज्ञानका वर्णन है, उसीको यहाँ 'ज्ञान' शब्दसे कहा गया है। अत: कल्याणकामी पुरुषको चाहिये कि वह परम कारण शिवमें भक्तिको बढ़ाये तथा विषयासक्तिका त्याग करे।

भगवान् शिवके प्रति श्रद्धाभक्तिकी आवश्यकताका प्रतिपादन

तदनन्तर श्रीकृष्णके प्रश्न करनेपर उपमन्यु बोले— श्रीकृष्ण! एक समय देवी पार्वतीने भगवान् शिवसे पूछा—महादेव! जो आत्मतत्त्व आदिके साधनमें नहीं लगे हैं तथा जिनका अन्त:करण पवित्र एवं वशीभूत नहीं है, ऐसे मन्दमति मर्त्यलोकवासी जीवात्माओंके वशमें आप किस उपायसे हो सकते हैं? महादेवजी बोले—देवी! यदि साधकके मनमें श्रद्धाभक्ति न हो तो पूजन, तपस्या, जप, आसन आदि, ज्ञान तथा अन्य साधनोंसे भी मैं उसके वशीभूत नहीं होता हूँ। यदि मनुष्योंकी मुझमें श्रद्धा हो तो जिस किसी भी हेतुसे मैं उनके वशमें हो जाता हूँ। श्रद्धा ही स्वधर्मका हेतु है और वही इस लोकमें वर्णाश्रमी पुरुषोंकी रक्षा करनेवाली है। वर्णाश्रमी पुरुषोंके सम्पूर्ण धर्म वेदोंसे सिद्ध हैं। अत: मेरे मुखसे प्रतिपादित वर्णधर्मका पालन अवश्य करना चाहिये।

सब प्राणियोंपर दया करनी चाहिये तथा अहिंसा धर्मका पालन करना चाहिये। सत्य बोलना, चोरीसे दूर रहना, ईश्वर और परलोकपर विश्वास रखना, मुझमें श्रद्धा रखना, इन्द्रियोंका संयम रखना, शास्त्रोंको पढ़ना, मेरा चिन्तन करना, ईश्वरके प्रति अनुराग रखना, सदा ज्ञानशील होना सभीके लिये नितान्त आवश्यक है। फलकी कामनासे प्रेरित होकर कर्म करनेसे ही मनुष्य बन्धनमें पड़ता है, अत: कर्मके फलकी कामनाको त्याग देना चाहिये।

वर्णधर्म, नारीधर्म आदिका वर्णन

महादेवजी कहते हैं—मैं अब वर्णधर्मका वर्णन करता हूँ। तीनों काल स्नान, विधिवत् शिवलिंग-पूजन,

दान, ईश्वर-प्रेम, सदा और सर्वत्र दया, सत्यभाषण, सन्तोष, आस्तिकता, अहिंसा, लज्जा, श्रद्धा, स्वाध्याय, योग, ब्रह्मधर्मका पालन, उपदेश-श्रवण, तपस्या, क्षमा, शौच, निषिद्ध वस्तुका सेवन न करना, भस्म धारण करना, रुद्राक्षकी माला पहनना और मद्य तथा मद्यकी गन्धतकका त्याग—ये सभी वर्णोंके सामान्य नियम हैं।

इसके बाद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके विशेष धर्मोंका वर्णन करनेके अनन्तर महादेवजी नारीधर्मका वर्णन करते हुए कहते हैं कि स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही सनातन धर्म है। यदि पतिकी आज्ञा हो तो नारी मेरा पूजन भी कर सकती है। जो स्त्री पतिकी सेवा छोड़कर व्रतमें तत्पर होती है, वह नरकमें जाती है। इसके अनन्तर भगवान् शिव विधवा स्त्रियोंके सनातन धर्मका वर्णन करते हुए कहते हैं कि व्रत, दान, तप, शौच, भूमिशयन, केवल रात्रिमें ही भोजन, सदा ब्रह्मचर्यका पालन, भस्म अथवा जलसे स्नान, शान्ति, मौन, क्षमा, विधिपूर्वक सभी जीवोंको अन्नका वितरण, एकादशी आदि पर्वोंपर विधिवत् उपवास एवं मेरा पूजन—ये विधवा स्त्रियोंके धर्म हैं।

महादेवजी आगे कहते हैं—जिनका चित्त भगवान् शिवमें लगा है और जिनकी बुद्धि सुस्थिर है, ऐसे लोगोंको इहलोकमें और परलोकमें सर्वत्र परमानन्दकी प्राप्ति होती है। '**ॐ नमः शिवाय**' इस मन्त्रसे सब सिद्धियाँ सुलभ होती हैं, अतः परावर विभूति (उत्तम-मध्यम ऐश्वर्य)-की प्राप्तिके लिये इस मन्त्रका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

पंचाक्षर मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—महर्षिप्रवर! अब मैं आपसे पंचाक्षर मन्त्रके माहात्म्यका तत्त्वतः वर्णन सुनना चाहता हूँ। उपमन्यु कहते हैं—देवकीनन्दन! यह पंचाक्षर मन्त्र वेदका सारतत्त्व है, मोक्ष देनेवाला है, शिवकी आज्ञासे सिद्ध है, सन्देहशून्य है तथा शिवस्वरूप वाक्य है। इस मन्त्रमें अक्षर तो थोड़े ही हैं, पर यह मन्त्र महान् अर्थसे सम्पन्न है। यह नाना प्रकारकी सिद्धियोंसे युक्त, दिव्य, लोगोंको निर्मल एवं प्रसन्न करनेवाला तथा परमेश्वरका गम्भीर वचन है। सर्वज्ञ शिवने सम्पूर्ण देहधारियोंके सारे मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस '**ॐ नमः शिवाय**' मन्त्रका प्रतिपादन किया है। यह आद्य षडक्षर मन्त्र सम्पूर्ण विद्याओं (मन्त्रों)-का बीज है। जैसे वटके बीजमें महान् वृक्ष छिपा हुआ है, इसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी इस मन्त्रको महान् अर्थसे परिपूर्ण समझना चाहिये। 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रमें तीनों गुणोंसे अतीत, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, द्युतिमान्, सर्वव्यापी प्रभु शिव प्रतिष्ठित हैं।

'**ॐ नमः शिवाय**'—यह जो षडक्षर शिववाक्य है, इतना ही शिवज्ञान है और इतना ही परमपद है—यह शैव विधिवाक्य है, अर्थवाद नहीं। यह उन्हीं शिवका स्वरूप है जो सर्वज्ञ, परिपूर्ण और स्वभावतः निर्मल हैं।

देवी बोलीं—यदि मनुष्य पतित होकर सर्वथा कर्म करनेके योग्य न रह जाय तो उसके द्वारा किया गया कर्म नरककी प्राप्ति करानेवाला होता है, ऐसी दशामें पतित मानव इस विद्याद्वारा कैसे मुक्त हो सकता है?

महादेवजीने कहा—यदि पतित मनुष्य मोहवश अन्य मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक मेरा पूजन करे तो वह नरकगामी हो सकता है, परंतु पंचाक्षर मन्त्रके लिये ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। जो भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्रसे एक बार मेरा पूजन कर लेता है, वह इस मन्त्रके ही प्रभावसे मेरे धाममें पहुँच जाता है।

मन्त्र-जपकी विधि—जो प्रतिदिन संयमसे रहकर केवल रातमें भोजन करता है और मन्त्रके जितने अक्षर हैं, उतने लाखका चौगुना जप आदरपूर्वक कर लेता है, वह पौरश्चरणिक कहलाता है। जो पुरश्चरण करके प्रतिदिन जप करता रहता है, उसके समान इस लोकमें दूसरा कोई नहीं है। जप तीन प्रकारसे किया जाता है, जिसमें मानस जप उत्तम है, उपांशु जप मध्यम है तथा वाचिक जप उससे निम्न कोटिका माना गया है। जप करते समय क्रोध, मद, छींकना, थूकना, जँभाई लेना तथा कुत्तों और नीच पुरुषोंकी ओर देखना वर्जित है। यदि कभी वैसा हो जाय तो आचमन करे अथवा शिव-

शिवाका स्मरण करे या प्राणायाम करे।

सदाचारी मनुष्य शुद्ध भावसे जप और ध्यान करके कल्याणका भागी होता है। आचार परम धर्म है, आचार उत्तम धन है, आचार श्रेष्ठ विद्या है और आचार ही परम गति है। आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित होता है और परलोकमें भी सुख नहीं पाता, इसलिये सबको आचारवान् होना चाहिये—

आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम्।
आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः॥

सदाशिव भगवान् शंकर भगवती पार्वतीसे कहते हैं—सदाचारसे हीन, पतित और अन्त्यजका उद्धार करनेके लिये कलियुगमें पंचाक्षर मन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। चलते-फिरते, खड़े होते तथा स्वेच्छानुसार कर्म करते हुए अपवित्र अथवा पवित्र मनुष्यद्वारा जप करनेपर भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता। किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ मनुष्य यदि मुझमें उत्तम भक्तिभाव रखता है तो उसके लिये यह मन्त्र निःसन्देह सिद्ध ही होगा। फिर भी छोटे-छोटे कुछ फलोंके लिये सहसा इस मन्त्रका विनियोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र महान् फल देनेवाला है।

इसके अनन्तर उपमन्युने साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन करते हुए कहा कि साधकको बिना भोजन किये ही एकाग्रचित्त होकर एक सहस्र मन्त्रका जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह इस लोकमें विद्या, लक्ष्मी तथा सुख पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। नित्य-नैमित्तिक कर्ममें क्रमशः जलसे, मन्त्रसे और भस्मसे भी स्नान करके पवित्र होकर शिखा बाँधकर यज्ञोपवीत धारणकर कुशकी पवित्री हाथमें ले ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाकर रुद्राक्षकी माला लिये पंचाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये।

नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका वर्णन

श्रीकृष्णके द्वारा नित्य-नैमित्तिक कर्मोंके सुननेकी इच्छा करनेपर उपमन्युजी कहते हैं—प्रातःकाल शयनसे उठकर अपने दैनन्दिन कर्मका भलीभाँति चिन्तन करके अरुणोदयकालमें शौच, दन्तधावन आदि कार्योंसे निवृत्त होकर विधिवत् किसी पवित्र नदी, सरोवर अथवा घरमें ही प्रातःकालीन स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये। यदि जलसे स्नान करनेमें व्यक्ति असमर्थ हो तो भीगे हुए शुद्ध वस्त्रसे अपने सम्पूर्ण शरीरको पोंछना चाहिये। भस्मस्नान अथवा मन्त्रस्नान शिवमन्त्रसे करना चाहिये। इसके बाद महादेवका ध्यान करके सूर्यस्वरूप शिवको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। प्रातःकालीन सन्ध्यासे निवृत्त होकर देवताओं, ऋषियों, पितरों एवं भूतोंके निमित्त तर्पण विधिपूर्वक करके अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।

इसके अनन्तर उपमन्युजीने करन्यासकी विस्तृत विधिका वर्णन करते हुए यह निर्देश किया कि ललाटपर भस्मसे स्पष्ट त्रिपुण्ड्र लगाये, इसके साथ ही दोनों भुजाओंमें, हृदयस्थलपर तिलक लगाकर सिरपर, कण्ठमें, कानमें तथा हाथमें रुद्राक्षोंको धारण करे। अपवित्र अवस्थामें रुद्राक्ष धारण नहीं करना चाहिये।

बतायी गयी रीतिसे न्यासद्वारा अपनेमें शिवतत्त्वका आधान करके तथा पशुभावनाका त्याग करके 'मैं शिव हूँ' इस प्रकार विचारकर शिवकर्म करे।

कर्मयज्ञ, तपयज्ञ, जपयज्ञ, ध्यानयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ—ये पाँच प्रकारके यज्ञ कहे गये हैं। इन पाँच यज्ञोंमें ध्यानयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञकी विशेष महिमा है। जिसने ध्यान तथा ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसने मानो भवसागर पार कर लिया। ज्ञानसे ध्यानयोग सिद्ध होता है और पुनः ध्यानसे ज्ञानोपलब्धि होती है, इन दोनोंसे मुक्ति हो जाती है।

अन्तर्याग एवं मानसिक पूजा-विधिका वर्णन

नित्य-नैमित्तिक कर्म एवं न्यासका वर्णन करनेके पश्चात् उपमन्युजीने अन्तर्याग पूजाका वर्णन किया। उपमन्युजी कहते हैं कि मनुष्य अन्तर्यागका अनुष्ठान करके पीछे बहिर्याग (बाह्य पूजन) करे। अन्तर्यागमें पहले पूजा-द्रव्योंको मनसे कल्पित और शुद्ध करके सर्वप्रथम गणेशजीका स्मरण करे, तत्पश्चात् सिंहासन, योगासन अथवा पद्मासनपर ध्यान करते हुए सर्वमनोहर साम्बशिवको विराजमान कराये। वे सदाशिव शुभ लक्षणोंसे युक्त हों, उनकी शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल

अंगकान्ति हो तथा वे प्रफुल्ल कमलके समान नेत्र, चार भुजाएँ और मनोहर चन्द्रकलाका मुकुट धारण किये हों। इस प्रकार ध्यान करके उनके वाम भागमें महेश्वरी शिवाके भी मनोहर रूपका चिन्तन करे। इस प्रकार महादेव और महादेवीका ध्यान करके श्रेष्ठ आसनपर सम्पूर्ण उपचारोंसे युक्त भावमय पुष्पोंद्वारा उनका पूजन करे।

इस तरह ध्यानमय आराधनाका सम्पूर्ण क्रम समाप्त करके महादेवजीका शिवलिंगमें, वेदीपर अथवा अग्निमें बाह्य पूजन करे।

शिवपूजनकी विधि एवं शिवभक्तिकी महिमा

उपमन्यु कहते हैं—भगवान् शिवकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे सम्पूर्ण वेदोंके सारतत्त्व हैं। भवरोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये औषधरूप हैं और सबका कल्याण करनेके लिये जगत्‌में सुस्थिर शिवलिंगके रूपमें विद्यमान हैं। शिवलिंगमें या अन्यत्र मूर्ति आदिमें अर्धनारीश्वरकी भावनासे शिव-शिवाके लिये एक साथ सभी उपचारोंसे पूजन करना चाहिये।

सर्वप्रथम आसन और ध्यानके निमित्त पुष्प समर्पण करके पाद्य, अर्घ्य, आचमन तथा शुद्ध जलसे स्नान कराये। तदनन्तर पंचगव्य, घी, दूध, दही, मधु और शर्कराके साथ फल-मूलके सार-तत्त्वसे स्नान कराकर शुद्ध जलसे भगवान्‌को नहलाये।

पवित्र सुगन्धित जलसे शिवलिंगका अभिषेक करके उसे वस्त्रसे पोंछे, फिर नूतन वस्त्र एवं यज्ञोपवीत अर्पण करे, तत्पश्चात् गन्ध, पुष्प, आभूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, पीनेयोग्य जल, मुखशुद्धि, आचमन, मुखवास तथा रत्नोंसे जटित सुन्दर मुकुट, आभूषण, नाना प्रकारकी पुष्पमालाएँ, छत्र, चँवर, व्यजन, दर्पण प्रदानकर सब मंगलमयी वाद्य-ध्वनियोंके साथ इष्टदेवका नीराजन करे (आरती उतारे)। उस समय गीत और नृत्यादिके साथ जय-जयकार भी होना चाहिये। फिर पुष्पांजलि अर्पित करके अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। तत्पश्चात् देवताका विसर्जन करके अपने हृदयमें प्रभुका चिन्तन करे।

उपमन्युजी कहते हैं—हे कृष्ण! यह परम रहस्यमय तथ्य है कि परमेश्वर शिवकी पूजामें भाव और भक्तिका ही महत्त्व है। शिवमन्त्रका जप, ध्यान, होम, यज्ञ, तप, वेदाभ्यास, दान तथा स्वाध्याय—ये सब भाव (भक्ति)-के लिये ही हैं। भावरहित मनुष्य इन सबका अनुष्ठान करके भी मुक्त नहीं होता है।

पापके महासागरको पार करनेके लिये भगवान् शिवकी भक्ति नौकाके समान है। अन्त्यज, अधम, मूर्ख अथवा पतित मनुष्य भी यदि भगवान् शिवकी शरणमें चला जाय तो वह सबके लिये आदरणीय हो जाता है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके भक्तिभावसे ही शिवकी पूजा करे; क्योंकि अभक्तोंको कहीं भी फल नहीं मिलता।

जो देवलोकमें महान् भोग और राज्य चाहते हैं, वे सदा भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हैं। सौभाग्य, कान्तिमान् रूप, बल, त्याग, दयाभाव, शूरता और विश्वमें विख्याति—ये सब बातें भगवान् शिवकी पूजा करनेवाले लोगोंको ही सुलभ होती हैं।

जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सब कुछ छोड़कर केवल भगवान् शिवमें मन लगाकर उनकी आराधना करनी चाहिये। जीवन बड़ी तेजीसे जा रहा है, जबतक वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं होता और जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हो जाती है, तबतक ही भगवान् शंकरकी आराधना कर लो। भगवान् शंकरकी आराधनाके समान दूसरा कोई धर्म तीनों लोकोंमें नहीं है। इस बातको समझकर प्रयत्नपूर्वक भगवान् सदाशिवकी अर्चना निरन्तर करनी चाहिये।

इसके अनन्तर उपमन्युजीने अग्निकार्यके लिये कुण्ड और वेदी आदिके संस्कार, शिवाग्निकी स्थापना और उसके संस्कार, होम, पूर्णाहुति, भस्मके संग्रह एवं रक्षणकी विधि तथा हवनान्तमें किये जानेवाले कृत्यका वर्णन करते हुए काम्य कर्मके प्रसंगमें शक्तिसहित पंचमुख महादेवकी पूजाके विधानका वर्णन किया तथा आवरण-पूजाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महिमाका वर्णन करते हुए शिवके पाँच आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्ट पूर्ति एवं मंगलकी कामनाका दिग्दर्शन कराया।

ऐहिक एवं पारलौकिक फल देनेवाले कर्मों और उनकी विधिका वर्णन

इसके बाद उपमन्युने ऐहिक फल देनेवाले अर्थात् यहीं फल देनेवाले कर्म तथा परलोकमें फल देनेवाले पूजन, जप, ध्यान, तप और दानमय महान् कर्मोंकी विधिका वर्णन किया।

इसके अनन्तर श्रीकृष्णके यह पूछनेपर कि महेश्वरकी पूजा लिंगमें क्यों होती है ? शिव लिंगस्वरूप कैसे हुए ? उपमन्युजीने कहा यह लिंग ही मूल प्रकृति है और यह चराचर जगत् उसीसे उत्पन्न हुआ है। शिव तथा शिवाका नित्य अधिष्ठान होनेके कारण यह लिंग उनका स्थूल विग्रह कहा जाता है। अत: उसीमें नित्य अम्बासहित शिवकी पूजा की जाती है। लिंगका आधार—वेदिका साक्षात् महादेवी पार्वती हैं और उसपर अधिष्ठित लिंग स्वयं महेश्वर हैं। उन दोनोंके पूजनसे ही शिव तथा पार्वती पूजित हो जाते हैं। वह देवी परमात्मा शिवकी परमाशक्ति है। वह शक्ति परमात्माकी आज्ञाको प्राप्त करके चराचर जगत्की सृष्टि करती है। उसकी महिमाका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है।

योग एवं उनके अंगोंका विवेचन

श्रीकृष्णके द्वारा परम दुर्लभ योगका वर्णन सुननेकी इच्छा करनेपर उपमन्युजी बोले—हे श्रीकृष्ण! जिसकी दूसरी वृत्तियोंका निरोध हो गया है, ऐसे चित्तकी भगवान् शिवमें जो निश्चला वृत्ति है, उसीको 'योग' कहा गया है। प्राय: योग आठ या छ: अंगोंसे युक्त होते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योगके आठ अंग बताये गये हैं। कहा गया है कि उत्तम योगका अभ्यास करनेवाले योगीके सारे अन्तराय शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण विघ्न भी धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं। जिसके आहार-विहार उचित एवं परिमित हों, जो कर्मोंमें यथायोग्य समुचित चेष्टा करता हो तथा जो उचित समयसे सोता और जागता हो एवं सर्वथा आलस्यरहित हो, उसीको योगाभ्यासमें तत्पर होना चाहिये तथा उसे ही सफलता प्राप्त होती है।

ध्यान और उसकी महिमा

उपमन्युजी ध्यानकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं—भगवान् शिवका चिन्तन एवं ध्यान करनेपर सब सिद्धियाँ प्रत्यक्ष और सिद्ध हो जाती हैं। जिस-जिस रूपमें मनकी स्थिरता लक्षित हो, उस-उसका बारम्बार ध्यान करना चाहिये। कुछ लोग मनकी स्थिरताके लिये स्थूल रूपका ध्यान करते हैं। स्थूल रूपके चिन्तनमें लगकर जब चित्त निश्चल हो जाता है, तब सूक्ष्म रूपमें वह स्थिर होता है। जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हैं, उन्हींकी बुद्धि ज्ञान और ध्यानमें लगती है। जिनकी बुद्धि पापसे ग्रसित है, उनके लिये ज्ञान और ध्यानकी बात भी अत्यन्त दुर्लभ है। जैसे बहुत छोटा दीपक भी महान् अन्धकारका नाश कर देता है, इसी तरह थोड़ा-सा योगाभ्यास भी महान् पापका विनाश कर डालता है। श्रद्धापूर्वक क्षणभर भी परमेश्वरका ध्यान करनेवाले पुरुषको जो महान् श्रेय प्राप्त होता है, उसका कोई अन्त नहीं है।

ध्यानके समान कोई तीर्थ नहीं है, ध्यानके समान कोई तप नहीं है, ध्यानके समान कोई यज्ञ नहीं है; इसलिये ध्यान अवश्य करे। अपने आत्मा एवं परमात्माका बोध प्राप्त करनेके कारण योगीजन आत्मतीर्थमें अवगाहन करते और आत्मदेवके ही भजनमें लगे रहते हैं। उन्हें ईश्वरके सूक्ष्म स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। भगवान् शंकरको अन्त:करणमें ध्यान लगानेवाले भक्त ही अधिक प्रिय हैं, बाह्य उपचारोंका आश्रय लेनेवाले नहीं।

वायुदेवका प्रस्थान, मुनियोंका वाराणसी जाना और आकाशस्थित ज्योतिर्मय लिंगके दर्शन करना

सूतजी कहते हैं—उपमन्युसे श्रीकृष्णने जो ज्ञान-योग प्राप्त किया था, उन मुनियोंको उसका उपदेश देकर आत्मदर्शी वायुदेव उसी समय सायंकाल आकाशमें अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर प्रात:काल नैमिषारण्यके समस्त तपस्वी मुनि सरस्वती नदीमें अवभृथ स्नानकर वाराणसीमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने आकाशमें एक दिव्य और परम अद्भुत प्रकाशमान तेज देखा। कुछ ही क्षणोंमें वह तेज अदृश्य हो गया। इस महान् आश्चर्यको देखकर

वे महर्षि 'यह क्या है'—यह जाननेकी इच्छासे ब्रह्मवनको चले गये। उनके जानेसे पहले ही वायुदेव वहाँ जा पहुँचे और ब्रह्माजीको ऋषियोंके उस दीर्घकालिक यज्ञकी सारी बातें बतायीं तथा अपने नगरको चले गये।

इसके अनन्तर वे सभी ऋषि ब्रह्माजीके पास पहुँचे और उन्होंने अपनी सारी बातें उन्हें बतायीं। आकाशमें तेज:पुंजके दिखायी देनेकी बात कही तथा कहा कि हम लोग उस तेज:पुंजको ठीक-ठीक जान न सके।

मुनियोंका यह कथन सुनकर विश्वस्रष्टा ब्रह्माने सिर हिलाकर गम्भीर वाणीमें कहा—महर्षियो! तुमने दीर्घकालिक सत्रद्वारा चिरकालतक प्रभुकी आराधना की है, इसलिये वे प्रसन्न होकर तुम लोगोंपर कृपा कर रहे हैं। तुमने वाराणसीमें आकाशमें जो दीप्तिमान् दिव्य तेज देखा था, वह साक्षात् ज्योतिर्मय लिंग ही था, उसे महेश्वरका उत्कृष्ट तेज समझो। तुम लोग मेरुपर्वतके दक्षिण शिखरपर जहाँ देवता रहते हैं, जाओ। वहीं मेरे पुत्र सनत्कुमार निवास करते हैं, वे वहाँ नन्दीके आनेकी प्रतीक्षामें हैं। ब्रह्माजीके इस प्रकार आदेश देकर भेजनेपर वे मुनि मेरुपर्वतके दक्षिणवर्ती कुमारशिखरपर गये।

मुनियोंको सनत्कुमार और नन्दीके दर्शन

सूतजी कहते हैं—वहाँ मेरुपर्वतपर सागरके समान एक विशाल सरोवर है, जिसका नाम स्कन्दसर है। उसका जल अमृतके समान स्वादिष्ट, शीतल और स्वच्छ है। वहाँ शिष्ट पुरुष जलमें स्नान करते देखे जाते हैं। सरोवरके किनारे पितृतर्पण करनेके उपरान्त छोड़े हुए तिल, अक्षत, फूल तथा कुश आदिसे युक्त वह सरोवर स्नानादि धर्मकृत्योंके सम्पादनार्थ आये हुए द्विजोंका मानो परिचय-सा देता रहता है।

इस सरोवरके उत्तर तटपर एक कल्पवृक्षके नीचे हीरेकी शिलासे बनी हुई वेदीपर कोमल मृगचर्म बिछाकर सदा बालरूपधारी सनत्कुमारजी बैठे थे। नैमिषारण्यके मुनियोंने वहाँ सनत्कुमारजीका दर्शन किया तथा सनत्कुमारजीके पूछनेपर उन ऋषियोंने अपने आगमनका कारण बताना आरम्भ किया। उसी समय सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान दृष्टिगोचर हुआ। वहाँ मृदंग, ढोल और वीणाकी ध्वनि गूँज उठी। उस विमानके मध्य भागमें दो चँवरोंके बीच चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मणिमय दण्डवाले शुभ्र छत्रके नीचे दिव्य सिंहासनपर शिलादपुत्र नन्दी देवी सुयशाके साथ बैठे थे। उन्हें देखकर ऋषियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। सनत्कुमारने देव नन्दीको साष्टांग प्रणाम करके उनकी स्तुति की और मुनियोंका परिचय देते हुए कहा—ये छः कुलोंमें उत्पन्न ऋषि हैं, जो नैमिषारण्यमें दीर्घकालसे सत्रका अनुष्ठान करते थे। ब्रह्माजीके आदेशसे आपका दर्शन करनेके लिये ये लोग पहलेसे ही यहाँ आये हुए हैं। ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका यह कथन सुनकर नन्दीने दृष्टिपातमात्रसे उन सबके पाशोंको तत्काल काट डाला और ईश्वरीय शैवधर्म एवं ज्ञानयोगका उपदेश देकर वे फिर महादेवजीके पास चले गये।

सूतजी कहते हैं—सनत्कुमारने वह समस्त ज्ञान मेरे गुरु व्यासजीको दिया। पूजनीय व्यासजीने मुझे संक्षेपसे वह सब कुछ बताया और उस ज्ञानको मैंने संक्षेपमें आप लोगोंको बताया। अब मैं सफल-मनोरथ होकर जा रहा हूँ। हम लोगोंका सदा सब प्रकारसे मंगल हो।

सूतजीके आशीर्वाद देकर चले जाने और उस महायज्ञके पूर्ण हो जानेपर वे सदाचारी मुनि काशीके निकट निवास करने लगे तथा पशु-पाशसे छूटनेकी इच्छासे उन सबने पूर्णतया पाशुपतव्रतका अनुष्ठान किया और वे महर्षि परमानन्दको प्राप्त हो गये।

शिवपुराणके पाठ एवं श्रवणकी महिमा

व्यासजी कहते हैं—इस पुराणको बड़े आदरपूर्वक पढ़ना अथवा सुनना चाहिये। श्रद्धाहीन, शठ, भक्तिसे रहित तथा धर्मध्वजी (पाखण्डी)-को इसका उपदेश नहीं देना चाहिये।

जो मनुष्य भक्तिपरायण हो इसका श्रवण करेगा, वह भी इहलोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेगा। यह श्रेष्ठ शिवपुराण भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह वेदके तुल्य माननीय, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा भक्तिभावको बढ़ानेवाला है। भगवान् शंकर इसके वक्ता और श्रोताका सदा कल्याण करें—**'शं करोतु स शङ्करः।'** **—राधेश्याम खेमका**

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

शतरुद्रसंहिता

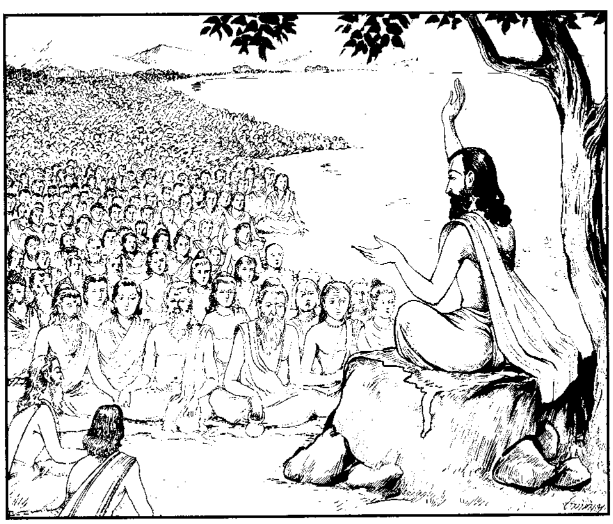
पहला अध्याय

सूतजीसे शौनकादि मुनियोंका शिवावतारविषयक प्रश्न

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं
महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराज-
समुद्भवं शङ्करमादिदेवम्॥

मैं परम आनन्दस्वरूप, अनन्त लीलाओंसे युक्त, सर्वत्र व्यापक, महान्, गौरीप्रिय, कार्तिकेय और गजाननको उत्पन्न करनेवाले आदिदेव महेश्वर शंकरको नमस्कार करता हूँ।

शौनकजी बोले—हे व्यासशिष्य! हे महाभाग! हे ज्ञान और दयाके सागर सूतजी! आप शिवजीके उन अवतारोंका वर्णन कीजिये, जिनके द्वारा [उन्होंने] सज्जन व्यक्तियोंका कल्याण किया है॥ १॥



सूतजी बोले—हे मुने! हे शौनक! मैं [शिवजीमें] मन लगाकर और इन्द्रियोंको वशमें करके भक्तिपूर्वक शिवजीके अवतारोंका वर्णन आप महर्षिसे कर रहा हूँ, आप सुनिये॥ २॥

हे मुने! पूर्वकालमें इसी बातको सनत्कुमारने शिवस्वरूप तथा सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेमें समर्थ नन्दीश्वरसे पूछा था, तब शिवजीका स्मरण करते हुए नन्दीश्वरने उनसे कहा था॥ ३॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] सर्वव्यापक तथा सर्वेश्वर शंकरके विविध कल्पोंमें यद्यपि असंख्य अवतार हुए हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार यहाँपर उनका वर्णन कर रहा हूँ॥ ४॥

उन्नीसवाँ कल्प श्वेतलोहित नामवाला जानना चाहिये, इसमें प्रथम सद्योजात अवतार कहा गया है॥ ५॥

उस कल्पमें जब ब्रह्माजी परम ब्रह्मके ध्यानमें अवस्थित थे, उसी समय उनसे शिखासे युक्त श्वेत और लोहित वर्णवाला एक कुमार उत्पन्न हुआ॥ ६॥

ब्रह्माजीने उस पुरुषको देखते ही उन्हें ब्रह्मस्वरूप ईश्वर जानकर उनका हृदयमें ध्यान करके हाथ जोड़कर प्रणाम किया॥ ७॥

उनको सद्योजात शिव समझकर वे भुवनेश्वर अत्यन्त हर्षित हुए और बार-बार सद्बुद्धिपूर्वक परमतत्त्वरूप उन पुरुषका चिन्तन करने लगे॥ ८॥

उसके बाद ब्रह्माके पुनः ध्यान करनेपर श्वेतवर्ण, यशस्वी, परम ज्ञानी एवं परब्रह्मस्वरूपवाले अनेक कुमार उत्पन्न हुए। उनके नाम सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द और उपनन्दन थे। ये सभी महात्मा उनके शिष्य हुए, उनके द्वारा यह सम्पूर्ण ब्रह्मलोक समावृत है॥ ९-१०॥

उन्हीं सद्योजात नामक परमेश्वर शिवजीने प्रसन्न

होकर प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीको ज्ञान प्रदान किया एवं सृष्टि उत्पन्न करनेका सामर्थ्य भी प्रदान किया॥ ११॥

इसके बाद बीसवाँ रक्त नामक कल्प कहा गया है, जिसमें महातेजस्वी ब्रह्माजीने रक्तवर्ण धारण किया॥ १२॥

जब पुत्रप्राप्तिकी कामनासे ब्रह्माजी ध्यानमें लीन थे, उसी समय उनसे रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्रोंको धारण किये हुए रक्तनेत्रवाला तथा रक्त आभूषणोंसे अलंकृत एक कुमार प्रादुर्भूत हुआ॥ १३॥

ध्यानमें निमग्न ब्रह्माजीने उन महात्मा कुमारको देखते ही उन्हें वामदेव शिव जानकर हाथ जोड़ करके प्रणाम किया॥ १४॥

तदुपरान्त उनसे लाल वस्त्र धारण किये हुए विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए॥ १५॥

उन्हीं वामदेव नामक शिवने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीको ज्ञान प्रदान किया और सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्ति भी प्रदान की॥ १६॥

इक्कीसवाँ कल्प पीतवासा—इस नामसे कहा गया है। इस कल्पमें महाभाग्यशाली ब्रह्मा पीतवस्त्र धारण किये हुए थे। [इस कल्पमें] जब ब्रह्माजी पुत्रकी अभिलाषासे ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनसे पीताम्बरधारी, महातेजस्वी तथा महाबाहु एक कुमार अवतरित हुआ॥ १७-१८॥

उस कुमारको देखते ही ध्यानयुक्त ब्रह्माने उन्हें तत्पुरुष शिव जानकर प्रणाम किया और शुद्धबुद्धिसे वे शिवगायत्री (**तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि**)-का जप करने लगे। सम्पूर्ण लोकोंसे नमस्कृत महादेवी गायत्रीका ध्यानमग्न मनसे जप करते हुए देखकर महादेवजी ब्रह्मापर बहुत ही प्रसन्न हुए॥ १९-२०॥

उसके बाद ब्रह्माजीके पार्श्वभागसे पीतवस्त्रधारी अनेक दिव्य कुमार उत्पन्न हुए; वे सभी कुमार योगमार्गके प्रवर्तकके रूपमें प्रसिद्ध हुए॥ २१॥

तदनन्तर ब्रह्माजीके पीतवासा नामक कल्पके व्यतीत हो जानेके पश्चात् शिव नामक एक अन्य कल्प प्रारम्भ हुआ॥ २२॥

उस कल्पके हजार दिव्य वर्ष बीतनेपर जब सारा जगत् जलमय था, उस समय ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेके विचारसे [समस्त जगत्‌को जलमय देखकर] दुखी होकर सोचने लगे॥ २३॥

उसी समय महातेजस्वी ब्रह्माने कृष्णवर्णवाले, महापराक्रमी तथा अपने तेजसे दीप्त एक कुमारको उत्पन्न हुआ देखा, जो काला वस्त्र, काली पगड़ी, काले रंगका यज्ञोपवीत, कृष्णवर्णका मुकुट तथा कृष्णवर्णके सुगन्धित चन्दनका अनुलेप धारण किये हुए था॥ २४-२५॥

ब्रह्माजीने उन महात्मा, घोर पराक्रमी, कृष्णपिंगल वर्णयुक्त, अद्भुत तथा अघोर रूपधारी देवाधिदेव शंकरको देखकर प्रणाम किया। इसके बाद ब्रह्माजी अघोरस्वरूप परब्रह्मका ध्यान करने लगे और उन भक्तवत्सल तथा अविनाशी अघोरकी प्रिय वचनोंसे स्तुति करने लगे॥ २६-२७॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीके पार्श्वभागसे कृष्ण सुगन्धानुलेपनसे लिप्त कृष्णवर्णके चार महात्मा कुमार उत्पन्न हुए। कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य, कृष्णकण्ठधृक्—इस प्रकारके अव्यक्त नामवाले वे परमतेजसे सम्पन्न तथा शिवस्वरूप थे॥ २८-२९॥

इस प्रकारके उन महात्माओंने ब्रह्माजीको सृष्टि करनेके लिये घोर [अघोर] नामक अत्यन्त अद्भुत योगमार्गका उपदेश किया॥ ३०॥

[**श्रीसूतजीने कहा—**] हे मुनीश्वरो! इसके बाद ब्रह्माजीका विश्वरूप इस नामसे प्रसिद्ध एक अत्यन्त अद्भुत कल्प प्रारम्भ हुआ॥ ३१॥

उस कल्पमें पुत्रकामनावाले ब्रह्माजीने शिवजीका मनसे ध्यान किया, तब महानादस्वरूपवाली विश्वरूपा सरस्वती उत्पन्न हुईं और उसी तरह शुद्ध स्फटिकके समान कान्तिवाले तथा सभी आभूषणोंसे अलंकृत परमेश्वर भगवान् शिव ईशानके रूपमें प्रकट हुए॥ ३२-३३॥

ब्रह्माने अजन्मा, विभु, सर्वगामी, सब कुछ देनेवाले, सर्वस्वरूप, रूपवान् एवं रूपरहित उन ईशानको देखकर प्रणाम किया॥ ३४॥

इसके बाद सर्वव्यापक उन ईशानने भी ब्रह्माको सन्मार्गका उपदेश करके अपनी शक्तिसे युक्त हो चार सुन्दर बालकोंको उत्पन्न किया॥ ३५॥

वे जटी, मुण्डी, शिखण्डी तथा अर्धमुण्ड नामवाले उत्पन्न हुए। वे योगके द्वारा उपदेश देकर सद्धर्म करके योग-गतिको प्राप्त हो गये॥ ३६॥

[नन्दीश्वर बोले—] हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! इस प्रकार मैंने लोकके कल्याणके निमित्त शिवके सद्योजात आदि अवतारोंका संक्षेपसे वर्णन किया॥ ३७॥

हे महाप्राज्ञ! तीनों लोकोंके लिये हितकर उनका सम्पूर्ण यथोचित व्यवहार इस ब्रह्माण्डमें फैला हुआ है॥ ३८॥

महेश्वरकी ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा [सद्योजात] नामक पाँच मूर्तियाँ ब्रह्म संज्ञासे [इस जगत्में] प्रख्यात हैं॥ ३९॥

उनमें ईशान प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ शिवरूप कहा गया है, जो साक्षात् प्रकृतिका भोग करनेवाले क्षेत्रज्ञको अधिकृत करके स्थित है॥ ४०॥

शिवजीका द्वितीय रूप तत्पुरुषसंज्ञक है, जो गुणोंके आश्रयवाले तथा भोगनेयोग्य सर्वज्ञपर अधिकार करके स्थित है॥ ४१॥

शिवजीका जो तीसरा अघोर नामक रूप है, वह धर्मके व्यवहारके लिये अपने अंगोंसे संयुक्त बुद्धितत्त्वका विस्तार करके अन्त:करणमें अवस्थित है॥ ४२॥

शिवजीका चौथा रूप वामदेवके नामसे विख्यात है, जो समस्त अहंकारका अधिष्ठान होकर अनेक प्रकारके कार्योंको सर्वदा सम्पादित करनेवाला है॥ ४३॥

सर्वव्यापी शिवजीका ईशान नामक रूप श्रोत्रेन्द्रिय, वागिन्द्रिय तथा आकाशका ईश्वर है॥ ४४॥

बुद्धिमान् विचारक शिवजीके तत्पुरुष नामक रूपको त्वचा, पाणि, स्पर्श और वायुका ईश्वर मानते हैं॥ ४५॥

मनीषीगण शिवजीके अघोर नामसे विख्यात रूपको शरीर, रस, रूप एवं अग्निका अधिष्ठान मानते हैं॥ ४६॥

शिवजीका वामदेव नामक रूप जिह्वा, पायु, रस तथा जलका स्वामी माना गया है। शिवजीके सद्योजात नामक रूपको नासिका, उपस्थेन्द्रिय, गन्ध एवं भूमिका अधिष्ठातृदेवता कहा गया है॥ ४७-४८॥

अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको शिवजीके इन रूपोंकी प्रयत्नपूर्वक नित्य वन्दना करनी चाहिये; क्योंकि [ये रूप] सभी प्रकारके कल्याणके एकमात्र कारण हैं॥ ४९॥

जो व्यक्ति सद्योजात आदिकी उत्पत्तिको सुनता अथवा पढ़ता है, वह सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर परमगति प्राप्त कर लेता है॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवका पंचब्रह्मावतारवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे प्रभो! हे तात! हे मुने! अब महेश्वरके समस्त प्राणियोंको सुख प्रदान करनेवाले तथा लोकके सम्पूर्ण कार्योंको सम्पादित करनेवाले अन्य श्रेष्ठतम अवतारोंको सुनें॥ १॥

यह सारा संसार परेश शिवकी उन आठ मूर्तियोंका स्वरूप ही है, उस मूर्तिसमूहमें व्याप्त होकर विश्व उसी प्रकार स्थित है, जैसे सूत्रमें [पिरोयी हुई] मणियाँ॥ २॥

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये [शंकरकी] आठ मूर्तियाँ विख्यात हैं॥ ३॥

भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य एवं चन्द्रमा—ये निश्चय ही शिवके शर्व आदि आठों रूपोंसे अधिष्ठित हैं। महेश्वर शंकरका विश्वम्भरात्मक [शर्व] रूप चराचर विश्वको धारण करता है—ऐसा ही शास्त्रका निश्चय है॥ ४-५॥

समस्त संसारको जीवन देनेवाला जल परमात्मा शिवका भव नामक रूप कहा जाता है॥ ६॥

जो प्राणियोंके भीतर तथा बाहर गतिशील रहकर विश्वका भरण-पोषण करता है और स्वयं भी स्पन्दित होता रहता है, सज्जनोंद्वारा उसे उग्रस्वरूप परमात्मा शिवका उग्र रूप कहा जाता है॥ ७॥

भीमस्वरूप शिवका सबको अवकाश देनेवाला, सर्वव्यापक तथा आकाशात्मक भीम नामक रूप कहा गया है, वह महाभूतोंका भेदन करनेवाला है॥ ८॥

जो सभी आत्माओंका अधिष्ठान, समस्त क्षेत्रोंका निवासस्थान तथा पशुपाशको काटनेवाला है, उसे पशुपतिका [पशुपति नामक] रूप जानना चाहिये॥ ९॥

सूर्यनामसे जो विख्यात होकर सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करता है और आकाशमें भ्रमण करता है, वह महेशका ईशान नामक रूप है॥ १०॥

जो अमृतके समान किरणोंसे युक्त होकर चन्द्ररूपसे सारे संसारको आप्यायित करता है, महादेव शिवजीका वह रूप महादेव नामसे विख्यात है॥ ११॥

उन परमात्मा शिवका आठवाँ रूप आत्मा है, जो अन्य सभी मूर्तियोंकी अपेक्षा सर्वव्यापक है। इसलिये यह समस्त चराचर जगत् शिवका ही स्वरूप है॥ १२॥

जिस प्रकार वृक्षकी जड़ (मूल)-को सींचनेसे उसकी शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार शिवका शरीरभूत संसार शिवार्चनसे पुष्ट होता है॥ १३॥

जिस प्रकार इस लोकमें पुत्र, पौत्रादिके प्रसन्न होनेपर पिता प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार संसारके प्रसन्न होनेसे शिवजी प्रसन्न रहते हैं॥ १४॥

यदि किसीके द्वारा जिस किसी भी शरीरधारीको कष्ट दिया जाता है, तो मानो अष्टमूर्ति शिवका ही वह अनिष्ट किया गया है, इसमें संशय नहीं है॥ १५॥

अतः अष्टमूर्तिरूपसे सारे विश्वको व्याप्त करके सर्वतोभावेन स्थित परमकारण रुद्र शिवका सर्वभावसे भजन कीजिये। [हे सनत्कुमार!] हे विधिपुत्र! इस प्रकार मैंने आपसे शिवके प्रसिद्ध आठ स्वरूपोंका वर्णन किया, अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको सभीके उपकारमें निरत इन रूपोंकी उपासना करनी चाहिये॥ १६-१७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवाष्टमूर्तिवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

भगवान् शिवका अर्धनारीश्वर-अवतार एवं सतीका प्रादुर्भाव

नन्दीश्वर बोले—हे तात! हे महाप्राज्ञ! अब मैं ब्रह्माजीकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाले शिवके उत्तम अर्धनारीश्वर नामक रूपका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनें। ब्रह्माके द्वारा विरचित समस्त प्रजाओंका जब विस्तार नहीं हुआ, तब उस दुःखसे व्याकुल हो वे चिन्तित रहने लगे॥ १-२॥

तब आकाशवाणी हुई कि आप मैथुनी सृष्टि करें। यह सुनकर ब्रह्माने मैथुनी सृष्टि करनेका निश्चय किया। उस समय शिवजीसे स्त्रियाँ उत्पन्न नहीं हुई थीं, अतः ब्रह्माजी मैथुनी सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं हो सके॥ ३-४॥

शिवके प्रभावके बिना इन प्रजाओंकी वृद्धि नहीं होगी—ऐसा विचार करते हुए ब्रह्माजी तप करनेको उद्यत हुए। पार्वतीरूप परम शक्तिसे संयुक्त परमेश्वर शिवका हृदयमें ध्यानकर वे अत्यन्त प्रीतिसे महान् तपस्या करने लगे। इस प्रकारकी उग्र तपस्यासे संयुक्त हुए उन स्वयम्भू ब्रह्मापर थोड़े समयमें शिवजी शीघ्र ही प्रसन्न हो गये॥ ५—७॥

उसके पश्चात् भगवान् हर अपनी पूर्ण चैतन्यमयी, ऐश्वर्यशालिनी तथा सर्वकामप्रदायिनी मूर्तिमें प्रविष्ट



होकर अर्धनारीनरका रूप धारणकर ब्रह्माके पास गये॥ ८॥

वे ब्रह्माजी परम शक्तिसे सम्पन्न उन परमेश्वरको देखकर दण्डवत् प्रणामकर हाथ जोड़े हुए उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद देवाधिदेव विश्वकर्ता महेश्वरने अत्यन्त प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें सृष्टिके लिये ब्रह्माजीसे कहा— ॥ ९-१० ॥

ईश्वर बोले—वत्स! हे महाभाग! हे मेरे पुत्र पितामह! मैं तुम्हारे समस्त मनोरथको यथार्थ रूपमें जान गया हूँ। प्रजाओंकी वृद्धिके लिये ही तुमने इस समय तपस्या की है। उस तपस्यासे मैं सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें इच्छित वरदान दे रहा हूँ॥ ११-१२॥

परम उदार एवं स्वभावसे मधुर यह वचन कहकर भगवान् शिवने अपने शरीरके [वाम] भागसे देवी पार्वतीको अलग किया॥ १३ ॥

शिवसे अलग हुई और पृथक् रूपमें स्थित उन परम शक्तिको देखकर विनीत भावसे प्रणाम करके ब्रह्माजी उनसे प्रार्थना करने लगे— ॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—हे शिवे! आपके पति देवाधिदेव शिवजीने सृष्टिके आदिमें मुझे उत्पन्न किया और उन्हीं परमात्मा शिवने सभी प्रजाओंको नियुक्त किया है॥ १५॥

हे शिवे! [उनकी आज्ञासे] मैंने अपने मनसे सभी देवताओं आदिकी सृष्टि की, किंतु बार-बार सृष्टि करनेपर भी प्रजाओंकी वृद्धि नहीं हो रही है। इसलिये अब मैथुनसे होनेवाली सृष्टि करके ही मैं अपनी समस्त प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ॥ १६-१७॥

आपसे पहले शिवजीके शरीरसे स्त्रियोंका अविनाशी समुदाय उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिये मैं उस नारीकुलकी सृष्टि करनेमें असमर्थ रहा। सभी शक्तियाँ आपसे ही उत्पन्न होती हैं, इसलिये मैं परम शक्तिस्वरूपा आप अखिलेश्वरीसे प्रार्थना कर रहा हूँ॥ १८-१९॥

हे शिवे! हे मातः! इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये नारीकुलकी रचनाका सामर्थ्य प्रदान कीजिये। हे शिवप्रिये! आपको नमस्कार है॥ २०॥

हे वरदेश्वरि! मैं आपसे एक अन्य वरकी प्रार्थना करता हूँ, मुझपर कृपाकर उसे प्रदान करें। हे जगन्मातः! आपको नमस्कार है॥ २१॥

हे सर्वगे! हे अम्बिके! इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये आप अपने एक सर्वसमर्थरूपसे मेरे पुत्र दक्षकी कन्याके रूपमें अवतरित हों॥ २२॥

ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार याचना करनेपर 'ऐसा ही होगा'—यह वचन कहकर देवी परमेश्वरीने ब्रह्माको वह शक्ति प्रदान की। इस प्रकार [यह स्पष्ट ही है कि] भगवान् शिवकी परमशक्ति वे शिवादेवी विश्वात्मिका (स्त्रीपुरुषात्मिका) हैं। उन्होंने अपनी भौंहोंके मध्यसे अपने ही समान कान्तिवाली एक दूसरी शक्तिका सृजन किया॥ २३-२४॥

उस शक्तिको देखकर देवताओंमें श्रेष्ठ, कृपासिन्धु, लीलाकारी महेश्वर हर हँसते हुए उन जगन्मातासे कहने लगे— ॥ २५॥

शिवजी बोले—हे देवि! परमेष्ठी ब्रह्माने तपस्याके द्वारा आपकी आराधना की है, अतः आप प्रसन्न हो जाइये और प्रेमपूर्वक उनके सारे मनोरथोंको पूर्ण कीजिये। तब उन देवीने परमेश्वर शिवजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके ब्रह्माजीके प्रार्थनानुसार दक्षपुत्री होना स्वीकार कर लिया॥ २६-२७॥

हे मुने! इस प्रकार ब्रह्माको अपार शक्ति प्रदानकर वे शिवा शिवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं और प्रभु शिव भी अन्तर्धान हो गये॥ २८॥

उसी समयसे इस लोकमें सृष्टि-कर्ममें स्त्रियोंको भाग प्राप्त हुआ। तब वे ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए और मैथुनी सृष्टि होने लगी। हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे शिवजीके अत्यन्त उत्तम तथा सज्जनोंको परम मंगल प्रदान करनेवाले इस अर्धनारी और अर्धनर रूपका वर्णन कर दिया॥ २९-३०॥

जो इस निष्पाप कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह [इस लोकमें] सभी सुखोंको भोगकर परम गति प्राप्त कर लेता है॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवके अर्धनारीश्वर-अवतारका वर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

वाराहकल्पके प्रथमसे नवम द्वापरतक हुए व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब शंकरजीके जिस सुखदायक चरित्रको हर्षित होकर रुद्रने ब्रह्माजीसे प्रेमपूर्वक कहा था, [उस चरित्रको सुनें] ॥ १ ॥

शिवजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] वाराहकल्पके सातवें मन्वन्तरमें सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान् कल्पेश्वर, जो तुम्हारे प्रपौत्र हैं, वैवस्वत मनुके पुत्र होंगे ॥ २-३ ॥

हे विधे! हे ब्रह्मन्! उस समय लोकोंके कल्याणके निमित्त तथा ब्राह्मणोंके हितके लिये मैं [प्रत्येक] द्वापर युगके अन्तमें अवतार ग्रहण करूँगा ॥ ४ ॥

इस प्रकार क्रमशः युगोंके प्रवृत्त होनेपर प्रथम युगमें (चतुर्युगीके) प्रथम द्वापरयुगमें जब स्वयंप्रभु नामक व्यास होंगे, तब मैं ब्राह्मणोंके हितके लिये उस कलिके अन्तमें पार्वतीसहित श्वेत नामक महामुनिके रूपमें अवतार लूँगा ॥ ५-६ ॥

हे विधे! उस समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ, रमणीय हिमालयके छागल नामक शिखरपर शिखासे युक्त श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित नामक मेरे चार शिष्य होंगे। वे चारों ध्यानयोगके प्रभावसे मेरे लोकको जायँगे ॥ ७-८ ॥

तब [वहाँ] मुझ अविनाशीको तत्त्वपूर्वक जानकर वे मेरे भक्त होंगे और जन्म-मृत्यु-जरासे रहित तथा परम ब्रह्ममें समाधि लगानेवाले होंगे ॥ ९ ॥

हे पितामह! हे वत्स! ध्यानके बिना मनुष्य मुझे दान-धर्मादि कर्मके हेतुभूत साधनोंसे देखनेमें असमर्थ हैं ॥ १० ॥

दूसरे द्वापरमें जब सत्य नामक प्रजापति व्यास होंगे, तब मैं कलियुगमें सुतार नामसे अवतार ग्रहण करूँगा ॥ ११ ॥

उस युगमें भी दुन्दुभि, शतरूप, हृषीक तथा केतुमान् नामक वेदज्ञ ब्राह्मण मेरे शिष्य होंगे ॥ १२ ॥

वे चारों ध्यानयोगके प्रभावसे मेरे लोकको प्राप्त करेंगे और मुझ अव्ययको यथार्थरूपसे जानकर मुक्त हो जायँगे ॥ १३ ॥

तीसरे द्वापर युगके अन्तमें जब भार्गव [नामक] व्यास होंगे, तब मैं दमन नामसे अवतार ग्रहण करूँगा ॥ १४ ॥

उस समय भी विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे ॥ १५ ॥

हे चतुरानन! उस कलियुगमें मैं अपने शिष्योंके द्वारा व्यासकी सहायता करूँगा तथा निवृत्तिमार्गको दृढ़ करूँगा ॥ १६ ॥

चौथे द्वापरमें जब अंगिरा व्यासरूपमें प्रसिद्ध होंगे, तब मैं सुहोत्र नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी महात्मा योगसाधक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे। हे ब्रह्मन्! मैं उनके नाम बता रहा हूँ। सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम। हे विधे! उस समय मैं अपने शिष्योंके द्वारा व्यासकी सहायता करूँगा ॥ १७—१९ ॥

पाँचवें द्वापरमें सविता नामक व्यास कहे गये हैं, उस समय मैं महातपस्वी कंक नामक योगीके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी मेरे चार योगसाधक तथा महात्मा पुत्र (शिष्य) होंगे, उनके नाम मुझसे सुनिये—सनक, सनातन, प्रभु सनन्दन और सर्वव्यापी निर्मल अहंकाररहित सनत्कुमार। हे ब्रह्मन्! उस समय भी कंक नामक मैं सविता व्यासकी सहायता करूँगा और निवृत्तिमार्गका संवर्धन करूँगा ॥ २०—२३ ॥

इसके बाद छठे द्वापरके आनेपर लोककी रचना करनेवाले तथा वेदोंका विभाग करनेवाले मृत्यु नामक व्यास होंगे। उस समय भी मैं लोकाक्षि नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और व्यासकी सहायताके लिये निवृत्ति-मार्गका वर्धन करूँगा। उस समय भी सुधामा, विरजा, संजय एवं विजय नामक मेरे चार दृढ़व्रती शिष्य होंगे ॥ २४—२६ ॥

हे विधे! सातवें द्वापरके आनेपर जब शतक्रतु [नामक] व्यास होंगे, उस समय भी मैं विभु जैगीषव्य

नामसे अवतरित होऊँगा और महायोगविचक्षण होकर काशीकी गुफामें दिव्य स्थानमें कुशाके आसनपर बैठकर योगमार्गको दृढ़ करूँगा तथा शतक्रतु व्यासकी सहायता करूँगा एवं हे विधे! संसारके भयसे भक्तोंका उद्धार करूँगा। उस युगमें भी सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे॥ २७—३०॥

आठवें द्वापरयुगके आनेपर वेदोंका विभाग करनेवाले मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ वेदव्यास होंगे। हे योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ! उस समय मैं दधिवाहन नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और व्यासकी सहायता करूँगा। उस समय कपिल, आसुरि, पंचशिख और शाल्वल नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे, जो मेरे ही समान योगी होंगे॥ ३१—३३॥

हे विधे! नौवें द्वापरयुगके आनेपर उसमें सारस्वत नामक मुनिश्रेष्ठ व्यास होंगे। उस समय वे व्यासजी निवृत्तिमार्गको बढ़ानेका विचार करेंगे, तब मैं ऋषभ नामसे विख्यात होकर अवतार लूँगा। उस समय पराशर, गर्ग, भार्गव एवं गिरिश नामक मेरे परम योगी शिष्य होंगे। हे प्रजापते! मैं उनके साथ योगमार्गको दृढ़ करूँगा और हे सन्मुने! मैं वेदव्यासकी सहायता करूँगा॥ ३४—३७॥

उस समय हे विधे! दयालु मैं अपने उस रूपसे बहुत-से दु:खित भक्तोंका और स्वयं आपका भी उद्धार करूँगा। हे विधे! मेरा वह ऋषभ नामक अवतार योगमार्गका प्रवर्तक, सारस्वत व्यासके मनको सन्तुष्ट करनेवाला तथा अनेक प्रकारकी लीला करनेवाला होगा॥ ३८-३९॥

मेरे उस अवतारने भद्रायु नामक राजकुमारको, जो विषके दोषसे मर गया था एवं जिसके पिताने त्याग दिया था, पुन: जीवित कर दिया था॥ ४०॥

उस राजकुमारके सोलह वर्षका होनेपर मेरे अंशसे उत्पन्न ऋषभ पुन: सहसा उसके घर गये॥ ४१॥

हे प्रजापते! उस राजकुमारने कृपानिधि तथा अति सुन्दर उन ऋषभजीका [आदरपूर्वक] पूजन किया और ऋषभजीने उसे उस समय राजयोगसे युक्त धर्मोपदेश दिया। तदनन्तर उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर दिव्य कवच, शंख तथा प्रकाशमान खड्ग प्रदान किया, जो शत्रुओंके विनाशमें समर्थ था॥ ४२-४३॥

तदनन्तर दीनवत्सल उन [महात्मा] ऋषभजीने उसके अंगोंमें भस्म लगाकर कृपापूर्वक बारह हजार हाथियोंका बल भी उसे प्रदान किया॥ ४४॥

इस प्रकार मातासहित भद्रायुको भलीभाँति आश्वस्त करके तथा उन दोनोंसे पूजित होकर स्वेच्छागामी प्रभु ऋषभ चले गये॥ ४५॥

हे विधे! राजर्षि भद्रायु भी अपने शत्रुओंको जीतकर कीर्तिमालिनीसे विवाहकर धर्मानुसार राज्य करने लगे॥ ४६॥

मैंने इस प्रकारके प्रभाववाले, सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले तथा दीन-दु:खियोंके बन्धुरूप मुझ शंकरके नौवें ऋषभ-अवतारका वर्णन आपसे किया॥ ४७॥

ऋषभका चरित्र परम पवित्र, महान्, स्वर्ग देनेवाला यश तथा कीर्ति देनेवाला और आयुको बढ़ानेवाला है, इसे यत्नपूर्वक सुनना चाहिये॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें ऋषभचरित्रवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

वाराहकल्पके दसवेंसे अट्ठाईसवें द्वापरतक होनेवाले व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन

शिवजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] दसवें द्वापरयुगमें जब त्रिधामा नामक मुनि व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालय पर्वतके मनोहर भृगुतुंग नामक ऊँचे शिखरपर अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी मेरे श्रुतिसम्मित तथा तपस्वी भृगु, बलबन्धु, नरामित्र तथा केतुशृंग नामक पुत्र होंगे॥ १-२॥

ग्यारहवें द्वापरयुगमें जब त्रिवृत नामक व्यास होंगे, उस समय मैं कलियुगमें गंगाद्वारपर तप नामसे अवतरित होऊँगा। उस समय भी लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब एवं प्रलम्बक नामक चार दृढ़व्रती मेरे शिष्य होंगे॥ ३-४॥

बारहवें द्वापरयुगके आनेपर वेदोंके विभाग करनेवाले

शततेजा नामक व्यास होंगे, तब मैं द्वापरके अन्त होनेपर कलियुगमें यहाँ पृथिवीपर अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय हेमकंचुक नामक स्थानपर आविर्भूत हुआ। मैं अत्रिके नामसे प्रसिद्ध होकर व्यासजीके सहायतार्थ निवृत्तिमार्गको दृढ़ करूँगा॥ ५-६ ॥

हे महामुने! उस समय सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य एवं शर्व नामक मेरे परम योगी चार पुत्र होंगे॥ ७॥

तेरहवें द्वापरयुगमें धर्मस्वरूप नारायण नामक व्यास होंगे, उस समय मैं वालखिल्यके आश्रममें उत्तम गन्धमादन पर्वतपर बलि नामक महामुनिके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँपर सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा नामक मेरे चार श्रेष्ठ पुत्र होंगे॥ ८-९ ॥

चौदहवें द्वापरयुगके आनेपर जब रक्ष नामक व्यास होंगे, तब मैं आंगिरस वंशमें गौतम नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी कलियुगमें अत्रि, वशद, श्रवण और श्रविष्कट नामक मेरे चार पुत्र होंगे॥ १०-११ ॥

पन्द्रहवें द्वापरयुगमें जब त्रय्यारुणि नामक व्यास होंगे, उस समय मैं वेदशिरा नामसे अवतरित होऊँगा। वेदशिरा नामक महावीर्यवान् मेरा अस्त्र होगा और सरस्वतीके उत्तर तथा हिमालयके पृष्ठभागमें मैं वेदशीर्ष पर्वतपर निवास करूँगा। उस समय भी कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्र नामक मेरे चार शक्तिशाली पुत्र होंगे॥ १२—१४॥

सोलहवें द्वापरयुगमें जब देव नामक व्यास होंगे, उस समय मैं योगमार्गका उपदेश देनेके लिये गोकर्ण नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहींपर परम पुण्यप्रद गोकर्ण नामक वन है। वहाँपर भी जलके समान निर्मल अन्त:करणवाले काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति नामक मेरे चार योगपरायण पुत्र होंगे और वे पुत्र भी योगमार्गसे शिवपदको प्राप्त करेंगे॥ १५-१६ ॥

सत्रहवें द्वापरयुगके आगमनपर देवकृतंजय नामक व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालयके उत्तम तथा ऊँचे शिखरपर, हिमसे व्याप्त जो महालय नामका शिवक्षेत्र है, वहाँ गुहावासी नामसे अवतार धारण करूँगा और वहाँ भी उतथ्य, वामदेव, महायोग एवं महाबल नामक मेरे चार पुत्र होंगे॥ १७—१९ ॥

अठारहवें द्वापरयुगके आनेपर जब ऋतंजय नामक व्यास होंगे, तब मैं उस हिमालयके मनोहर शिखरपर शिखण्डी नामसे प्रकट होऊँगा। उस महापुण्यप्रद सिद्धक्षेत्रमें शिखण्डी नामक पर्वत है और उसी नामवाला वन भी है, जहाँ सिद्ध निवास करते हैं, वहाँ भी वाच:श्रवा, रुचीक, श्यावास्य एवं यतीश्वर—ये मेरे चार महातपस्वी पुत्र होंगे॥ २०—२२॥

उन्नीसवें द्वापरयुगमें जब भरद्वाज मुनि व्यास होंगे, तब हिमालयके शिखरपर जटाएँ धारण किया हुआ मैं माली नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँ समुद्रके समान गम्भीर हिरण्यनामा, कौशल्य, लोकाक्षी तथा प्रधिमि नामक मेरे चार पुत्र होंगे॥ २३-२४॥

बीसवें द्वापरमें गौतम नामक व्यास होंगे, तब मैं हिमालयपर्वतपर अट्टहास नामसे अवतीर्ण होऊँगा। वहीं हिमालयके पृष्ठभागपर अट्टहास नामक महापर्वत है, जहाँ अट्टहासप्रिय मनुष्य निवास करते हैं और जो देव, मनुष्य, यक्षराज, सिद्ध और चारणोंसे सेवित है। वहाँ भी सुमन्तु, विद्वान् बर्बरि, कबन्ध तथा कुशिकन्धर नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे॥ २५—२७॥

इक्कीसवें द्वापरमें जब वाच:श्रवा नामक व्यास होंगे, तब मैं दारुक नामसे अवतरित होऊँगा। इसलिये उस उत्तम वनका नाम भी दारुवन होगा। वहाँपर भी प्लक्ष, दार्भायणी, केतुमान् और गौतम नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे॥ २८-२९॥

बाईसवें द्वापरयुगके आनेपर जब शुष्मायण नामक व्यास होंगे, तब मैं लांगली भीम नामक महामुनिके रूपमें वाराणसीमें अवतरित होऊँगा, जहाँ कलियुगमें इन्द्रसहित समस्त देवगण मुझ हलायुध शिवका दर्शन करेंगे। वहाँ भी भल्लवी, मधु, पिंग तथा श्वेतकेतु नामक मेरे चार परम धार्मिक पुत्र होंगे॥ ३०—३२॥

तेईसवें द्वापरयुगके आनेपर जब मुनि तृणबिन्दु

व्यास होंगे, तब मैं उत्तम कालंजरपर्वतपर श्वेत नामसे अवतार लूँगा। उस समय उशिक, बृहदश्व, देवल एवं कवि नामक मेरे चार तपस्वी पुत्र होंगे॥ ३३-३४॥

चौबीसवें द्वापरयुगके प्राप्त होनेपर जब यक्ष नामक व्यास होंगे, उस समय मैं नैमिषक्षेत्रमें शूली नामक महायोगीके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँपर भी शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व एवं शरद्वसु नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे॥ ३५-३६॥

पच्चीसवें द्वापरयुगमें जब शक्ति नामक व्यास होंगे, तब मैं दण्डधारी महायोगी मुण्डीश्वर प्रभुके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड एवं प्रवाहक नामक चार तपस्वी शिष्य होंगे॥ ३७-३८॥

छब्बीसवें द्वापरयुगमें जब पराशर नामक व्यास होंगे, उस समय मैं भद्रवटपुरमें आकर सहिष्णु नामसे अवतरित होऊँगा। वहाँपर भी उलूक, विद्युत, शम्बूक और आश्वलायन नामवाले मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे॥ ३९-४०॥

सत्ताईसवें द्वापरयुगमें जब जातूकर्ण्य व्यास होंगे, उस समय मैं प्रभासतीर्थमें आकर सोमशर्मा नामसे प्रकट होऊँगा। वहाँपर भी अक्षपाद, कुमार, उलूक एवं वत्स नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे॥ ४१-४२॥

अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें जब महाविष्णु पराशरके पुत्ररूपमें जन्म लेकर द्वैपायन नामक व्यास होंगे, तब छठे अंशसे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भी वासुदेवके नामसे प्रसिद्ध और वसुदेवके पुत्ररूपमें अवतरित होंगे। उस समय मैं भी योगमायासे संसारको विस्मित करनेके लिये योगात्मा नामक ब्रह्मचारीका रूप धारण करूँगा और शरीरको अनामय समझकर इसे मृतकी भाँति श्मशानमें छोड़कर ब्राह्मणोंके हितके लिये योगमायासे आप ब्रह्मा एवं विष्णुके साथ दिव्य तथा पवित्र मेरुगुहामें प्रवेश करूँगा। हे ब्रह्मन्! उस समय मैं लंकुली नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। मेरे उत्पन्न होनेसे यह कायावतार तीर्थ सिद्धक्षेत्रके नामसे उस समयतक विख्यात रहेगा, जबतक यह पृथ्वी रहेगी। उस समय भी कुशिक, गर्ग, मित्र एवं कौरुष्य नामक मेरे तपस्वी शिष्य होंगे। ये सभी योगी, ब्रह्मनिष्ठ, वेदके पारगामी विद्वान् तथा ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी होकर माहेश्वर योगको प्राप्तकर शिवलोकको जायँगे॥ ४३—५०॥

[सूतजी बोले—] हे उत्तम व्रतवाले मुनियो! इस प्रकार परमात्मा शिवने वैवस्वत मन्वन्तरके प्रत्येक कलियुगमें होनेवाले अपने योगावतारोंका सम्यक् वर्णन किया॥ ५१॥

हे विभो! इसी प्रकार प्रत्येक द्वापरयुगमें अट्ठाईस व्यास तथा प्रत्येक कलियुगके प्रारम्भमें योगेश्वरके अवतार होते रहते हैं॥ ५२॥

प्रत्येक महायोगेश्वरके अवतारोंमें उनके चार महाशैव शिष्य भी होते रहते हैं, जो योगमार्गकी वृद्धि करनेवाले तथा अविनाशी होते हैं॥ ५३॥

ये सभी शिष्य पाशुपतव्रतका आचरण करनेवाले, शरीरमें भस्मलेपन करनेवाले, रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले तथा त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित मस्तकवाले होते हैं। सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदांगके ज्ञाता, लिंगार्चनमें सदा तत्पर, बाहर तथा भीतरसे मुझमें भक्ति रखनेवाले योगध्यानपरायण तथा जितेन्द्रिय होते हैं। विद्वानोंद्वारा इनकी संख्या एक सौ बारह कही गयी है॥ ५४—५६॥

इस प्रकार मैंने अट्ठाईस युगोंके क्रमसे मनुसे लेकर श्रीकृष्णावतारपर्यन्त [शिवजीके] अवतारोंका लक्षण कह दिया। इस कल्पमें जब कृष्णद्वैपायन व्यास होंगे, तब श्रुतिसमूहोंका ब्रह्मलक्षणसम्पन्न विधान अर्थात् वेदान्तके रूपमें प्रयोग होगा॥ ५७-५८॥

[हे सनत्कुमार!] देवेश्वर शिव ब्रह्मासे इतना कहकर उनपर कृपा करके उनकी ओर पुनः देखकर वहींपर अन्तर्हित हो गये॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके शिवावतारोपाख्यानमें शिवके उन्नीस अवतारोंका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

नन्दीश्वरावतारवर्णन

सनत्कुमार बोले—[हे नन्दीश्वर!] आप महादेवके अंशसे किस प्रकार उत्पन्न हुए और किस प्रकार शिवत्वको प्राप्त हुए? हे प्रभो! मैं वह सब सुनना चाहता हूँ, अतः आप मुझे बतानेकी कृपा करें॥ १॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे मुने! जिस प्रकार शिवजीके अंशसे उत्पन्न होकर मैंने शिवत्वको प्राप्त किया है, उसको आप सावधानीपूर्वक सुनिये॥ २॥

किसी समय उद्धारकी अभिलाषावाले पितरोंने [महर्षि] शिलादसे आदरपूर्वक कहा कि सन्तान उत्पन्न करनेका प्रयत्न करें, तब शिलादने भक्तिपूर्वक उनका उद्धार करनेकी इच्छासे पुत्रोत्पत्ति करनेका विचार किया॥ ३॥

परम धर्मात्मा तथा तेजस्वी उन शिलादमुनिने अधोदृष्टि एवं मुनिवृत्ति धारण कर ली और वे शिवलोकको गये। उन शिलादमुनिने स्थिर मन तथा दृढ़ व्रतवाला होकर इन्द्रको उद्देश्य करके बहुत समयतक अति कठोर तप किया॥ ४-५॥

तब तपोनिरत उनके तपसे सर्वदेवप्रभु इन्द्र सन्तुष्ट हो गये और वर देनेहेतु गये तथा अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिलादसे बोले—हे अनघ! मैं आपपर प्रसन्न हूँ। अतः हे मुनिशार्दूल! आप वर माँगें॥ ६-७॥

तब शिलादमुनि देवेश इन्द्रको प्रणामकर स्तोत्रोंके द्वारा आदरपूर्वक स्तुति करके हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—॥ ८॥

शिलाद बोले—हे इन्द्र! हे सुरेशान! हे प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं आपसे अयोनिज, अमर तथा उत्तम व्रतवाले पुत्रकी कामना करता हूँ॥ ९॥

शक्र बोले—हे पुत्रार्थिन्! मैं आपको योनिसे उत्पन्न तथा मृत्युको प्राप्त होनेवाला पुत्र दे सकता हूँ, इसके विपरीत नहीं; क्योंकि मृत्युहीन तो कोई नहीं है। मैं आपको अयोनिज तथा मृत्युरहित पुत्र नहीं दे सकता, हे महामुने! [अयोनिज एवं अमर पुत्र तो] भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा कोई अन्य भी नहीं दे सकते हैं॥ १०-११॥

वे दोनों भी शिवके शरीरसे उत्पन्न होते हैं और मरते रहते हैं एवं उन दोनोंकी आयुका प्रमाण भी वेदमें अलग कहा गया है॥ १२॥

इसलिये हे विप्रवर! मृत्युहीन एवं अयोनिज पुत्रकी कामना प्रयत्नपूर्वक छोड़ें और अपने सामर्थ्यवाला पुत्र प्राप्त करें॥ १३॥

हाँ, यदि देवाधिदेव महादेव रुद्र आपपर प्रसन्न हो जायँ, तो आपको अत्यन्त दुर्लभ, मृत्युहीन और अयोनिज पुत्र प्राप्त हो सकता है॥ १४॥

हे महामुने! मैं, भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मा भी अयोनिज तथा मृत्युहीन पुत्र नहीं दे सकते। यदि इस प्रकारके पुत्रको प्राप्त करनेकी कामनासे आप महादेवकी आराधना कीजिये, तो महान् सामर्थ्यवाले वे सर्वेश्वर आपको इस प्रकारका पुत्र देंगे॥ १५-१६॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! परम दयालु इन्द्र उन विप्रेन्द्रको इस प्रकारसे कहकर तथा उनपर अनुग्रह करके देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये॥ १७॥

वरदाता इन्द्रके चले जानेपर वे शिलादमुनि महादेवकी आराधना करते हुए अपनी तपस्यासे शिवको प्रसन्न करने लगे॥ १८॥

इस प्रकार रात-दिन तत्परतापूर्वक तपस्या करते हुए उन द्विज [शिलादमुनि]-के दिव्य एक हजार वर्ष एक क्षणके समान बीत गये, यह आश्चर्यजनक था॥ १९॥

उनका समस्त शरीर वज्रसूचीके समान मुखवाले एवं अन्यान्य रुधिरपान करनेवाले लाखों कीड़ोंसे तथा वल्मीकसे ढँक गया। उनका शरीर त्वचा, रुधिर एवं मांससे रहित हो गया, बाँबीमें स्थित उन मुनिश्रेष्ठ शिलादकी हड्डियाँ ही बची रह गयी थीं॥ २०-२१॥

तब शिवजीने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य गुणोंसे युक्त अपना दिव्य शरीर दिखलाया, जिसे कुटिल बुद्धि रखनेवाले नहीं प्राप्त कर सकते हैं॥ २२॥

तब सभी देवताओंके स्वामी शूलधारी शिवने

देवताओंके एक हजार वर्षसे तप करते हुए उन शिलादमुनिसे कहा कि मैं आपको वर देनेहेतु आया हूँ॥ २३॥

महासमाधिमें लीन वे महामुनि शिलाद भक्तिके अधीन रहनेवाले शिवजीकी उस वाणीको नहीं सुन सके॥ २४॥

जब शिवजीने अपने हाथसे मुनिका स्पर्श किया, तब मुनिश्रेष्ठ शिलादने तपस्या छोड़ी॥ २५॥

हे मुने! तदनन्तर नेत्र खोलकर पार्वतीसहित शिवका दर्शन प्राप्तकर शीघ्रतासे आनन्दपूर्वक प्रणाम करके शिलादमुनि उनके चरणोंपर गिर पड़े॥ २६॥

तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त वे शिलाद कंधा झुकाकर हाथ जोड़कर हर्षके कारण गद्गद वाणीमें परमेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ २७॥

तदनन्तर प्रसन्न हुए देवाधिदेव त्रिलोचन भगवान् शिवने उन मुनिश्रेष्ठ शिलादसे [पुनः] कहा—मैं आपको वर देने आया हूँ। हे महामते! इस तपस्यासे आपको क्या करना है? मैं आपको सर्वज्ञ तथा सर्वशास्त्रार्थवेत्ता पुत्र दे रहा हूँ॥ २८-२९॥

तब यह सुनकर शिलादने शिवजीको प्रणामकर हर्षके कारण गद्गद वाणीमें उन चन्द्रशेखरसे कहा— ॥ ३०॥

शिलाद बोले—हे महेश्वर! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं, तो मैं आपके समान ही अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र चाहता हूँ॥ ३१॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] तब उनके ऐसा कहनेपर त्रिनेत्र भगवान् शिव प्रसन्नचित्त होकर मुनिश्रेष्ठ शिलादसे कहने लगे— ॥ ३२॥

शिवजी बोले—हे विप्र! हे तपोधन! पूर्वकालमें ब्रह्मा, देवताओं तथा मुनियोंने [मेरे] अवतारके लिये तपस्याके द्वारा मेरी आराधना की थी, इसलिये मैं नन्दी नामसे आपके अयोनिज पुत्रके रूपमें अवतरित होऊँगा और हे मुने! तब आप मुझ तीनों लोकोंके पिताके भी पिता बन जायँगे॥ ३३-३४॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर प्रणाम करके स्थित मुनिकी ओर देखकर उन्हें आज्ञा देकर उमासहित दयालु शिव वहीं अन्तर्हित हो गये॥ ३५॥

तब उन महादेवके अन्तर्धान हो जानेपर अपने आश्रममें आकर उन महामुनि शिलादने ऋषियोंको [वह वृत्तान्त] बताया॥ ३६॥

[हे सनत्कुमार!] कुछ समय बाद यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मेरे पिता शिलादमुनि यज्ञ करनेके लिये यज्ञस्थलका शीघ्रतासे कर्षण करने लगे॥ ३७॥

उसी समय [यज्ञारम्भसे पूर्व ही] शिवजीकी आज्ञासे प्रलयाग्निके सदृश देदीप्यमान होकर मैं उनके शरीरसे पुत्ररूपमें प्रकट हुआ॥ ३८॥

उस समय शिलादमुनिके पुत्ररूपमें मेरे अवतरित होनेपर पुष्करावर्त आदि मेघ वर्षा करने लगे; आकाशचारी किन्नर, सिद्ध और साध्यगण गान करने लगे और ऋषिगण चारों ओरसे पुष्पवृष्टि करने लगे। इसके बाद ब्रह्मा आदि देवगण, देवपत्नियाँ, विष्णु, शिव, अम्बिका—ये सब अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये॥ ३९-४०॥

उस समय वहाँपर बहुत बड़ा उत्सव हुआ। अप्सराएँ नाचने लगीं। वे सभी देवगण हर्षित होकर मेरा समादर तथा आलिंगन करके स्तुति करने लगे। वे लोग उन शिलादमुनिकी प्रशंसाकर तथा उत्तम स्तोत्रोंसे शिव एवं पार्वतीकी स्तुतिकर अपने-अपने धामोंको चले गये, अखिलेश्वर शिव-शिवा भी अपने धामको चले गये॥ ४१-४२॥

[महर्षि] शिलाद भी प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके समान कान्तिमान्, तीन नेत्रोंसे युक्त, चार भुजावाले, जटामुकुटधारी, त्रिशूल आदि शस्त्र धारण करनेवाले, देदीप्यमान रुद्रके समान रूपवाले तथा सब प्रकारसे प्रणम्य मुझ नन्दीश्वरको बालकके रूपमें देखकर परम आनन्दसे परिपूर्ण होकर प्रेमपूर्वक प्रणाम करने लगे॥ ४३-४४॥

शिलाद बोले—हे सुरेश्वर! आपने मुझे आनन्दित किया है, अतः आपका नाम नन्दी होगा और इसलिये आनन्दस्वरूप आप प्रभु जगदीश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४५॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] पिताजी उन महेश्वरको भलीभाँति प्रणाम करके मुझे साथ लेकर शीघ्रतापूर्वक पर्णकुटीमें चले गये। वे इतने प्रसन्न हुए, मानो किसी निर्धनको निधि मिल गयी हो॥ ४६॥

हे महामुने! जब मैं [महर्षि] शिलादकी कुटीमें

गया, तब मैंने उस प्रकारके रूपको त्यागकर मनुष्य-शरीर धारण कर लिया॥ ४७॥

तदनन्तर मुझे मनुष्य-शरीर धारण किया हुआ देखकर लोकपूजित मेरे पिता अपने कुटुम्बियोंसहित दुखी होकर विलाप करने लगे। शालंकायनमुनिके पुत्र पुत्रवत्सल शिलादने मेरा समस्त जातकर्मादि संस्कार सम्पादित किया॥ ४८-४९॥

पाँचवें वर्षमें मेरे पिताने मुझे सांगोपांग वेदों तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका भी अध्ययन कराया। सातवें वर्षके सम्पूर्ण होनेपर मित्र और वरुण नामवाले दो मुनि शिवजीकी आज्ञासे मुझे देखनेके लिये उनके आश्रमपर आये॥ ५०-५१॥

उन मुनि [शिलाद]-के द्वारा सत्कृत होकर सुखपूर्वक बैठे हुए दोनों महात्मा महामुनि मुझे बार-बार देखकर कहने लगे—॥ ५२॥

मित्र और वरुण बोले—हे तात! आपके पुत्र नन्दी-जैसा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारंगत मुझे अभीतक कोई दिखायी या सुनायी नहीं पड़ा, किंतु [दुःख है कि] यह अल्पायु है। अब इस वर्षसे अधिक इसकी आयु हमलोग देख नहीं पा रहे हैं॥ ५३॥

उन विप्रोंके ऐसा कहनेपर पुत्रवत्सल शिलाद उसका आलिंगनकर दुःखसे व्याकुल होकर ऊँचे स्वरमें अत्यधिक विलाप करने लगे॥ ५४॥

तदनन्तर मृतकके समान गिरे हुए पिता एवं पितामहको देखकर वह बालक शिवके चरणकमलका ध्यानकर प्रसन्नचित्त होकर कहने लगा—हे तात! आप किस दुःखसे दुखी होकर काँपते हुए रो रहे हैं, आपको यह दुःख कहाँसे उत्पन्न हुआ, मैं उसको यथार्थ रूपसे जानना चाहता हूँ॥ ५५-५६॥

पिता बोले—हे पुत्र! तुम्हारी अल्पावस्थामें मृत्युके दुःखसे मैं अत्यधिक दुखी हूँ। मेरे दुःखको कौन दूर करेगा, मैं उसकी शरणमें जाऊँ॥ ५७॥

पुत्र बोला—[हे पिताजी!] देवता, दानव, यमराज, काल अथवा अन्य कोई भी प्राणी यदि मुझे मारना चाहें, तो भी मेरी अल्पमृत्यु नहीं होगी, आप दुखी न हों। हे पिताजी! मैं आपकी सौगन्ध खाता हूँ, यह सच कह रहा हूँ॥ ५८-५९॥

पिता बोले—हे पुत्र! वह कौन-सा तप है, ज्ञान है अथवा योग है या कौन तुम्हारा प्रभु है, जिससे तुम मेरे इस दारुण दुःखको दूर करोगे?॥ ६०॥

पुत्र बोला—हे तात! मैं न तो तपसे और न विद्यासे ही मृत्युको रोक सकूँगा, मैं तो केवल महादेवके भजनसे मृत्युको जीतूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६१॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! ऐसा कहकर मैं सिर झुकाकर पिताके चरणोंमें प्रणामकर उनकी प्रदक्षिणा करके उत्तम वनकी ओर चला गया॥ ६२॥

॥ इस प्रकार शिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दिकेशावतारवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वरका गणेश्वराधिपति पदपर अभिषेक एवं विवाह

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! मैं उस वनमें जाकर निर्जन स्थलमें आसन लगाकर धीरतापूर्वक कठोर तप करने लगा, जो मुनिजनोंके लिये भी असाध्य है॥ १॥

नदीके उत्तरकी ओर पवित्र भागमें स्थित हो अपने हृदयकमलके [मध्यवर्ती] विवरमें तीन नेत्रवाले, दस भुजाओंसे युक्त, परम शान्त, पंचमुख सदाशिव त्र्यम्बकदेवका ध्यान करके परम समाधिमें लीन होकर एकाग्रचित्तसे सावधानीपूर्वक रुद्रमन्त्रका जप करने लगा। मुझको उस जपमें स्थित देखकर चन्द्रकला धारण करनेवाले पार्वतीसहित परमेश्वर महादेवने मुझपर प्रसन्न होकर कहा—॥ २—४॥

शिवजी बोले—हे शिलादपुत्र! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे सन्तुष्ट होकर वर प्रदान करने आया हूँ। हे धीमन्! तुमने अच्छी तरह तपस्या की है, तुमको जो अभीष्ट हो, उसे माँग लो॥ ५॥

शिवजीके ऐसा कहनेपर मैंने सिर झुकाकर उनके

चरणोंमें प्रणाम किया और जरा एवं शोकका विनाश करनेवाले उन परमेश्वरकी स्तुति की॥ ६॥

महाकष्टोंका नाश करनेवाले, वृषभध्वज, परमेश्वर शम्भुने परम भक्तिसे युक्त, अश्रुपूर्ण नेत्रवाले और चरणोंमें सम्यक् सिर झुकाये हुए मुझ नन्दीको उठाकर दोनों हाथोंसे पकड़कर मेरा स्पर्श किया। इसके बाद गणपतियों एवं देवी पार्वतीकी ओर देखकर दयामयी दृष्टिसे मुझे निहारते हुए जगत्पति शिवजी कहने लगे— ॥ ७—९॥

हे वत्स! हे नन्दिन्! हे महाप्राज्ञ! तुमको मृत्युसे भय कहाँ? मैंने ही उन दोनों ब्राह्मणोंको भेजा था। तुम तो मेरे ही समान हो, इसमें संशय नहीं है। तुम अपने पिता एवं सुहृज्जनोंके सहित अजर, अमर, दुःखरहित, अविनाशी, अक्षय और सदा मेरे परम प्रिय गणपति हो गये। तुममें मेरे समान ही बल होगा और मेरे प्रिय होकर तुम निरन्तर मेरे समीप निवास करोगे। मेरी कृपासे तुमको जरा, जन्म एवं मृत्यु प्राप्त नहीं होगी॥ १०—१२॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इस प्रकार कहकर कृपानिधि शिवने कमलकी बनी हुई अपनी



शिरोमालाको उतारकर मेरे कण्ठमें शीघ्रतासे पहना दिया॥ १३॥

हे विप्र! उस पवित्र मालाके गलेमें पड़ते ही मैं तीन नेत्र एवं दस भुजाओंसे युक्त होकर दूसरे शिवके समान हो गया॥ १४॥

तदनन्तर परमेश्वरने मुझे अपने हाथसे पकड़कर कहा—हे वत्स! बताओ, मैं तुमको कौन-सा श्रेष्ठ वर प्रदान करूँ?॥ १५॥

तत्पश्चात् वृषभध्वजने अपनी जटामें स्थित हारके समान निर्मल जलको लेकर 'तुम यहींपर नदी हो जाओ'—ऐसा कहा और उसे छिड़क दिया॥ १६॥

उससे स्वच्छ जलवाली, महावेगसे युक्त, दिव्यस्वरूपा सुन्दरी एवं कल्याणकारिणी पाँच नदियाँ उत्पन्न हुईं। जटोदका, त्रिस्रोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदका एवं जम्बुनदी—ये पाँच नदियाँ कही गयी हैं॥ १७-१८॥

हे मुने! यह पंचनद नामक शिवका शुभ पृष्ठदेश परम पवित्र है, जो जपेश्वरके समीप विद्यमान है। जो [व्यक्ति] पंचनदमें आकर इसमें स्नान तथा जपकर जपेश्वर शिवकी पूजा करता है, उसे शिवसायुज्यकी प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है॥ १९-२०॥

इसके बाद शिवजीने पार्वतीजीसे कहा—मैं नन्दीको अभिषिक्त करना चाहता हूँ और इसे गणेश्वर बनाना चाहता हूँ। हे अव्यये! इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है?॥ २१॥

उमा बोलीं—हे देवेश! हे परमेश्वर! आप इस नन्दीको अवश्य ही गणेश्वरपद प्रदान करें। हे नाथ! यह शिलादपुत्र [आजसे] मेरा परम प्रिय पुत्र है॥ २२॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] तदनन्तर स्वतन्त्र, सब कुछ प्रदान करनेवाले तथा भक्तवत्सल परमेश्वर शंकरने अपने श्रेष्ठ गणाधिपोंका स्मरण किया। शिवके स्मरण करते ही असंख्य गणेश्वर वहाँ उपस्थित हो गये, वे सब परम आनन्दसे परिपूर्ण तथा शंकरके स्वरूपवाले थे॥ २३-२४॥

वे महाबली गणेश्वर शिव एवं पार्वतीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर तथा विनत होकर शुभ वचन कहने लगे— ॥ २५॥

गणेश्वर बोले—हे देव! आपने किसलिये हमलोगोंका स्मरण किया है? हे महाप्रभो! हे त्रिपुरार्दन! हे कामद! यहाँ आये हुए हम सेवकोंको आज्ञा दीजिये॥ २६॥

क्या हमलोग समुद्रोंको सुखा दें अथवा सेवकोंसहित यमराजको मार डालें अथवा मृत्यु, महामृत्यु तथा बूढ़े ब्रह्माका संहार कर दें अथवा देवताओंके सहित इन्द्रको अथवा पार्षदोंसहित विष्णुको अथवा दानवोंसहित अत्यन्त क्रुद्ध दैत्योंको बाँधकर ले आयें? आज आपकी आज्ञासे हम किसे घोर दण्ड दें अथवा हे देव! सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये हम आज किसका उत्सव मनायें?॥ २७—२९॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार वीरतापूर्ण वचन कहनेवाले उन गणोंकी बात सुनकर वे परमेश्वर उन गणपतियोंकी प्रशंसा करके कहने लगे—॥ ३०॥

शिवजी बोले—यह नन्दीश्वर मेरा परम प्रिय पुत्र है, अतः तुमलोग इसे सभी गणोंका अग्रणी तथा सभी गणाध्यक्षोंका ईश्वर बनाओ, यह मेरी आज्ञा है॥ ३१॥

मेरे जितने भी गणपति हैं, उन गणपतियोंके आश्रय इस [नन्दी]-को पतिपदपर तुम सब प्रेमपूर्वक अभिषिक्त करो। यह नन्दीश्वर आजसे तुम सभीका स्वामी होगा॥ ३२॥

नन्दीश्वर बोले—तब शंकरजीके द्वारा इस प्रकार कहे गये वे सभी गणेश्वर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर [अभिषेककी] सामग्री एकत्र करने लगे॥ ३३॥

इसके बाद प्रसन्न मुखमण्डलवाले इन्द्रसहित सभी देवता, नारायण आदि मुख्य [देवगण], मुनिगण एवं अन्य सभी लोग वहाँ उपस्थित हुए॥ ३४॥

हे भगवन्! शिवजीकी आज्ञासे स्वयं ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर नन्दीश्वरका समस्त गणाध्यक्षोंके अधिपति-पदपर अभिषेक किया। तत्पश्चात् विष्णु, इन्द्र एवं [अन्य] लोकपालोंने भी उसी प्रकार अभिषेक किया, तत्पश्चात् ऋषिगण एवं पितामह आदिने उनकी स्तुति की। उन सभीके स्तुति कर लेनेके अनन्तर सम्पूर्ण जगत्के स्वामी विष्णुने सिरपर अंजलि बाँधकर एकाग्रचित्त हो उनकी स्तुति की और हाथ जोड़कर प्रणाम करके उनका जयकार किया, पुनः सभी गणाधिपों, देवताओं एवं असुरोंने जयकार किया॥ ३५—३८॥

हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्मासहित सभी देवताओंने मुझ नन्दीश्वरका अभिषेक तथा स्तवन किया॥ ३९॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने शिवजीकी आज्ञासे बड़े उत्सवके साथ प्रेमपूर्वक मेरा विवाह भी सम्पन्न किया॥ ४०॥

मन तथा नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मनोहर तथा दिव्य सुयशा नामक मरुत्कन्या मेरी पत्नी हुई॥ ४१॥

उस [सुयशा]-ने हाथके अग्रभागमें चामर धारण की हुई स्त्रियोंसे युक्त तथा चामरोंसे सुशोभित चन्द्रप्रभासदृश छत्र प्राप्त किया। मैं उसके साथ श्रेष्ठतम सिंहासनपर बैठा और स्वयं महालक्ष्मीने मुकुट आदि सुन्दर भूषणोंसे मुझे सुशोभित किया॥ ४२-४३॥

देवीने अपने कण्ठमें स्थित उत्तम हार उतारकर मुझे प्रदान किया। हे मुने! मुझे श्वेत वृषेन्द्र, हाथी, सिंह, सिंहध्वज, रथ, चन्द्रबिम्बके समान स्वच्छ सोनेका हार और अन्यान्य वस्तुएँ भी प्राप्त हुईं॥ ४४-४५॥

हे महामुने! इस प्रकार विवाह हो जानेपर मैंने उस पत्नीके साथ शिव, पार्वती, ब्रह्मा एवं विष्णुके चरणोंकी वन्दना की॥ ४६॥

उस समय उन त्रिलोकेश्वर भक्तवत्सल प्रभु सदाशिवने उस स्वरूपवाले मुझ सपत्नीक नन्दीश्वरसे अत्यन्त प्रेमके साथ कहा—॥ ४७॥

ईश्वर बोले—हे सत्पुत्र! सुनो, तुम मेरे पुत्र हो। यह सुयशा तुम्हारी पत्नी है। तुम्हारे मनमें जो भी अभिलाषा है, उसे मैं प्रेमपूर्वक तुम्हें प्रदान करूँगा॥ ४८॥

हे गणेश्वर! हे नन्दीश्वर! पार्वतीसहित मैं तुमपर सदा सन्तुष्ट हूँ। हे वत्स! तुम मेरी उत्तम बात सुनो। तुम अपने पिता एवं पितामहके साथ सदा मेरे प्रिय, विशिष्ट, परमैश्वर्यसे युक्त, महायोगी, महाधनुर्धर, अजेय, सर्वजेता, सदा पूज्य एवं महाबली होओगे। जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ तुम रहोगे और जहाँ तुम रहोगे, वहाँ मैं भी रहूँगा॥ ४९—५१॥

हे पुत्र! तुम्हारे ये पिता महान् ऐश्वर्यसे युक्त, महाबली, मेरे भक्त एवं गणोंके अध्यक्ष होंगे॥ ५२॥

हे वत्स! तुम्हारे पितामह भी उसी प्रकारके होंगे। ये सभी मेरे द्वारा वरदान प्राप्तकर मेरी समीपता प्राप्त करेंगे। तुम्हारे लिये मैंने यह वरदान दिया॥ ५३॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] तब वरदायिनी महाभागा पार्वती देवीने मुझ नन्दीश्वरसे कहा—हे पुत्र! तुम मुझसे सभी अभिलषित वर माँगो॥ ५४॥

तब पार्वती देवीके उस वचनको सुनकर नन्दीश्वरने हाथ जोड़कर कहा—हे देवि! आपके चरणोंमें सदा मेरी उत्तम भक्ति हो॥ ५५॥

मेरे वचनको सुनकर उन देवीने कहा—ऐसा ही हो, पुनः उन्होंने बड़े प्रेमसे मुझ नन्दीकी कल्याणमयी पत्नी सुयशासे कहा—॥ ५६॥

देवी बोलीं—हे वत्से! तुम यथेष्ट वर ग्रहण करो। तुम तीन नेत्रवाली एवं जन्म [-मृत्यु]-से रहित रहोगी और पुत्र-पौत्रोंके सहित तुम्हारी भक्ति मुझमें और अपने पतिमें निरन्तर बनी रहेगी॥ ५७॥

नन्दी बोले—उस समय ब्रह्मा, विष्णु तथा सभी देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक शिवकी आज्ञासे उन दोनोंको वर दिये॥ ५८॥

उसके बाद ईश शिवजी सम्बन्धियों, बन्धु-बान्धवों एवं कुटुम्बके साथ मुझे लेकर पार्वतीसहित बैलपर सवार होकर अपने धामको गये॥ ५९॥

वे विष्णु आदि सभी देवता भी मेरी प्रशंसा करते हुए तथा शिव-पार्वतीकी स्तुति करते हुए अपने-अपने धामको चले गये॥ ६०॥

हे वत्स! हे महामुने! इस प्रकार मैंने अपना अवतार आपसे कहा, जो मनुष्योंको सदा आनन्द देनेवाला एवं शिवजीमें भक्ति बढ़ानेवाला है॥ ६१॥

जो [व्यक्ति] श्रद्धा तथा भक्तिसे युक्त होकर मुझ नन्दीके इस जन्म, वरदान, अभिषेक तथा विवाहके प्रसंगको सुनता है अथवा सुनाता है अथवा भक्तिपूर्वक पढ़ता है या पढ़ाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर परलोकमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ६२-६३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दिकेश्वर-अवतार-अभिषेक एवं विवाहवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

भैरवावतारवर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब आप भैरवकी कथा सुनें, जिसके सुननेमात्रसे शिवभक्ति सुस्थिर हो जाती है॥ १॥

भैरवजी परमात्मा शंकरके पूर्णरूप हैं, शिवजीकी मायासे मोहित मूर्खलोग उन्हें नहीं जान पाते॥ २॥

हे सनत्कुमार! चतुर्भुज विष्णु तथा चतुर्मुख ब्रह्माजी भी महेश्वरकी महिमाको नहीं जान पाते हैं॥ ३॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि शिवजीकी माया दुर्ज्ञेय है। उसी मायासे मोहित होकर [ये] सभी [संसारी] लोग उन परमेश्वरकी पूजा नहीं करते हैं॥ ४॥

यदि वे परमेश्वर स्वयं ही अपना ज्ञान करा दें, तभी वे सभी लोग उन्हें जान सकते हैं, अपनी इच्छासे कोई भी उन्हें नहीं जान पाता है॥ ५॥

यद्यपि महेश्वर सर्वव्यापी हैं, किंतु मूढ़ बुद्धिवाले उन्हें देख नहीं पाते हैं। जो वाणी एवं मनसे परे हैं, उन्हें लोग मात्र देवता ही समझते हैं॥ ६॥

हे महर्षे! इस विषयमें पुराना इतिहास कह रहा हूँ। हे तात! आप उसको श्रद्धापूर्वक सुनिये। वह परमोत्तम और ज्ञानका कारण है॥ ७॥

समस्त देवता और ऋषिगण परम तत्त्व जाननेकी इच्छासे सुमेरुपर्वतके अद्भुत तथा मनोहर शिखरपर स्थित भगवान् ब्रह्माके पास गये॥ ८॥

वहाँ जाकर ब्रह्माजीको नमस्कार करके वे सब हाथ जोड़कर तथा कन्धा झुकाकर आदरपूर्वक पूछने लगे—॥ ९॥

देवता तथा ऋषि बोले—हे देवदेव! हे प्रजानाथ! हे सृष्टिकर्ता! हे लोकनायक! आप हमें ठीक-ठीक बताइये कि अद्वितीय तथा अविनाशी तत्त्व क्या है?॥ १०॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी मायासे मोहित वे ब्रह्माजी परम तत्त्वको न समझकर सामान्य बात कहने

लगे॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ तथा ऋषियो! आप सब आदरपूर्वक सद्बुद्धिसे मेरी बात सुनें। मैं यथार्थ रूपसे अव्यय परम तत्त्वको बता रहा हूँ॥ १२॥

मैं जगत्‌का मूल कारण हूँ। मैं धाता, स्वयम्भू, अज, ईश्वर, अनादिभाक्, ब्रह्म, अद्वितीय एवं निरंजन आत्मा हूँ। मैं ही सारे जगत्‌का प्रवर्तक, संवर्तक तथा निवर्तक हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओ! मुझसे बड़ा दूसरा कोई नहीं है॥ १३-१४॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! जब ब्रह्माजी इस बातको कह रहे थे, उसी समय वहाँ स्थित विष्णुने सनातनी मायासे विमोहित होकर हँसते हुए क्रुद्ध होकर यह वचन कहा—॥ १५॥

हे ब्रह्मन्! योगसे युक्त होते हुए भी आपकी यह मूर्खता उचित नहीं है। परमतत्त्वको न जानकर आप यह व्यर्थ बोल रहे हैं॥ १६॥

सम्पूर्ण लोकोंका कर्ता, परमपुरुष, परमात्मा, यज्ञस्वरूप नारायण, मायाधीश एवं परमगति प्रभु मैं ही हूँ॥ १७॥

हे ब्रह्मन्! आप मेरी आज्ञासे ही इस सृष्टिकी रचना करते हैं। मुझ ईश्वरका अनादरकर यह जगत् किसी भी प्रकार जीवित नहीं रह सकता॥ १८॥

इस प्रकार परस्पर तिरस्कृत होकर वे दोनों ही अर्थात् ब्रह्मा एवं विष्णु मोहवश एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छाकर आपसमें विवाद करते हुए अपने-अपने विषयमें वेदप्रामाण्यकी अपेक्षासे प्रमाणतत्त्वज्ञ, मूर्तिधारी चारों वेदोंके पास जाकर पूछने लगे—॥ १९-२०॥

ब्रह्मा एवं विष्णु बोले—हे वेदो! आपलोगोंका सर्वत्र प्रामाण्य है और आपलोगोंको परम प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई है, अतः विश्वासपूर्वक कहिये कि एकमात्र अविनाशी तत्त्व क्या है?॥ २१॥

नन्दीश्वर बोले—उन दोनोंका यह वचन सुनकर ऋक् आदि सभी वेद परमेश्वर शिवका स्मरण करते हुए यथार्थ बात कहने लगे॥ २२॥

हे सृष्टिस्थितिकर्ता, सर्वव्यापी देवो! यदि हम [आपलोगोंको] मान्य हैं, तो आपलोगोंके सन्देहको दूर करनेवाले प्रमाणको हमलोग कह रहे हैं॥ २३॥

नन्दीश्वर बोले—वेदोंके द्वारा कही गयी विधिको सुनकर ब्रह्मा एवं विष्णुने वेदोंसे कहा कि जो कुछ भी आपलोग कहेंगे, वही प्रमाण हमलोग मान लेंगे, अतः तत्त्व क्या है, इसे भलीभाँति कहें॥ २४॥

ऋग्वेद बोला—जिनके भीतर सम्पूर्ण भूत स्थित हैं, जिनसे सब कुछ प्रवृत्त होता है एवं जिन्हें परम तत्त्व कहते हैं, वे एकमात्र रुद्र ही हैं॥ २५॥

यजुर्वेद बोला—मनुष्य योग एवं समस्त यज्ञोंके द्वारा जिन ईश्वरकी आराधना करता है और जिनसे निश्चय ही हमलोग प्रमाणित हैं, वे एकमात्र सबके द्रष्टा शिव ही परमतत्त्व हैं॥ २६॥

सामवेद बोला—यह जगत् जिनके द्वारा भ्रमण कर रहा है, योगीजन जिनका चिन्तन करते हैं और जिनके प्रकाशसे यह संसार प्रकाशित हो रहा है, वे एकमात्र त्र्यम्बक शिव ही परमतत्त्व हैं॥ २७॥

अथर्ववेद बोला—जिनकी भक्तिका अनुग्रह प्राप्तकर भक्तजन उनका साक्षात्कार करते हैं, उन्हीं दुःखरहित एवं कैवल्यस्वरूप एकमात्र शंकरको परमतत्त्व कहा गया है॥ २८॥

नन्दीश्वर बोले—वेदोंका यह वचन सुनकर शिवजीकी मायासे अत्यन्त विमोहित ब्रह्मा एवं विष्णु अचेतसे हो गये, फिर मुसकराकर उन वेदोंसे कहने लगे—॥ २९॥

ब्रह्मा एवं विष्णु बोले—हे वेदो! आपलोग चेतनाहीन होकर यह क्या प्रलाप कर रहे हैं? आज आपलोगोंको क्या हो गया है? अवश्य ही आपलोगोंका सारा श्रेष्ठ ज्ञान नष्ट हो गया है॥ ३०॥

प्रमथनाथ, दिगम्बर, पीतवर्णवाले, धूलिधूसरित, निरन्तर पार्वतीके साथ रमण करनेवाले, अत्यन्त विकृत रूपवाले, जटाधारी, बैलपर सवारी करनेवाले तथा सर्पोंका आभूषण धारण करनेवाले वे शिव निःसंग परम ब्रह्म किस प्रकार हो सकते हैं?॥ ३१-३२॥

उस समय उन दोनोंकी इस बातको सुनकर सर्वत्र व्यापक तथा निराकार प्रणवने मूर्तिमान् प्रकट होकर उनसे कहा—॥ ३३॥

प्रणव बोला—लीलारूपधारी, हर भगवान् रुद्र

अपनी शक्तिके बिना कभी भी रमण करनेमें समर्थ नहीं होते॥ ३४॥

ये परमेश्वर शिव सनातन तथा स्वयं ज्योति:स्वरूप हैं और ये शिवा उन्हींकी आह्लादिनी शक्ति हैं, अत: आगन्तुक नहीं हैं, अपितु उन्हींके समान नित्य [तथा उनसे अभिन्न] हैं॥ ३५॥

नन्दीश्वर बोले—उस समय ॐकारके इस प्रकार कहनेपर भी शिवमायासे मोहित ब्रह्मा एवं विष्णुका अज्ञान जब दूर नहीं हुआ, तब उसी समय अपने प्रकाशसे पृथ्वी तथा आकाशके अन्तरालको पूर्ण करती हुई एक महान् ज्योति उन दोनोंके बीचमें प्रकट हो गयी॥ ३६-३७॥

हे मुने! उस ज्योतिसमूहके बीचमें स्थित एक अत्यन्त अद्भुत शरीरवाले पुरुषको ब्रह्मा एवं विष्णुने देखा॥ ३८॥

तब क्रोधके कारण ब्रह्माजीका पाँचवाँ सिर जलने लगा कि हम दोनोंके मध्य यह पुरुषशरीरको धारण किये हुए कौन है?॥ ३९॥

जबतक ब्रह्माजी यह विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें उसी क्षण वह महापुरुष त्रिलोचन, नीललोहित सदाशिवके रूपमें दिखायी पड़ा। हाथमें त्रिशूल धारण किये, मस्तकपर नेत्रवाले, सर्प एवं चन्द्रमाको भूषणके रूपमें धारण किये उन्हें देखकर मोहित हुए ब्रह्माजी हँसते हुए कहने लगे—॥ ४०-४१॥

ब्रह्माजी बोले—हे नीललोहित! हे चन्द्रशेखर! मैं तुम्हें जानता हूँ, डरो मत। तुम पूर्व समयमें मेरे ललाट-प्रदेशसे रोते हुए उत्पन्न हुए थे। पहले मैंने ही रोनेके कारण तुम्हारा नाम रुद्र रखा था। हे पुत्र! मेरी शरणमें आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा॥ ४२-४३॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उसके बाद ब्रह्माकी अहंकारयुक्त वाणी सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रोधित हुए, उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो प्रलय कर देंगे॥ ४४॥

उस समय परमेश्वर शिव अपने क्रोधके द्वारा परम तेजसे देदीप्यमान भैरव नामक एक पुरुषको उत्पन्न करके प्रेमपूर्वक [उससे कहने लगे—]॥ ४५॥

ईश्वर बोले—हे कालभैरव! सर्वप्रथम तुम इस पद्मयोनि ब्रह्माको दण्ड दो, तुम साक्षात् कालके सदृश शोभित हो रहे हो, अत: तुम कालराज [नामसे विख्यात] होओगे॥ ४६॥

तुम संसारका पालन करनेमें सर्वथा समर्थ हो, उसका भरण-पोषण करनेसे तुम भैरव कहे गये हो, तुमसे काल भी डरेगा। अत: तुम कालभैरव कहे जाओगे॥ ४७॥

तुम रुष्ट होनेपर दुष्टात्माओंका मर्दन करोगे, इसलिये सर्वत्र आमर्दक नामसे विख्यात होओगे॥ ४८॥

तुम भक्तोंके पापोंका तत्काल भक्षण करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम पापभक्षण भी होगा॥ ४९॥

हे कालराज! सभी पुरियोंसे श्रेष्ठ जो मेरी मुक्तिपुरी काशी है, तुम सदा उसके अधिपति बनकर रहोगे। वहाँ जो पापी मनुष्य होंगे, उनके शासक तुम ही रहोगे, उनके अच्छे-बुरे कर्मको चित्रगुप्त लिखेंगे॥ ५०-५१॥

नन्दीश्वर बोले—कालभैरवने इस प्रकारके वरोंको प्राप्तकर अपनी बाँयीं अँगुलियोंके नखोंके अग्रभागसे ब्रह्माका पाँचवाँ सिर तत्क्षण ही काट डाला॥ ५२॥

जो अंग अपराध करता है, उसीको दण्ड देना चाहिये, अत: जिस सिरने निन्दा की थी, उस पाँचवें सिरको उन्होंने काट दिया॥ ५३॥

उसके बाद ब्रह्माके सिरको कटा हुआ देखकर विष्णु बहुत भयभीत हो गये और शतरुद्रिय मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ ५४॥

हे मुने! तब भयभीत हुए ब्रह्माजी भी शतरुद्रिय मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार वे दोनों ही उसी क्षण अहंकाररहित हो गये॥ ५५॥

उन दोनोंको यह ज्ञान हो गया कि साक्षात् शिव ही सच्चिदानन्द लक्षणसे युक्त परमात्मा, गुणातीत तथा परब्रह्म हैं॥ ५६॥

हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! मेरा यह उत्तम शुभ वचन सुनिये, जबतक अहंकार रहता है, तबतक विशेषरूपसे ज्ञान लुप्त रहता है॥ ५७॥

अहंकारका त्याग करनेपर ही मनुष्य परमेश्वरको जान पाता है। विश्वेश्वर शिव अहंकारी [के अहंकार]-का नाश करते हैं, क्योंकि वे गर्वापहारक कहे गये हैं॥ ५८॥

इसके बाद ब्रह्मा तथा विष्णुको अहंकाररहित जानकर परमेश्वर महादेव प्रसन्न हो गये और उन प्रभुने उन दोनोंको भयरहित कर दिया॥ ५९॥

प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महादेव उन्हें आश्वस्त करके अपने दूसरे स्वरूप उन कपर्दी भैरवसे कहने लगे— ॥ ६० ॥

महादेव बोले— [हे भैरव!] ये ब्रह्मा एवं विष्णु तुम्हारे मान्य हैं। हे नीललोहित! तुम ब्रह्माके [कटे हुए] इस कपालको धारण करो और ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिये संसारके समक्ष व्रत प्रदर्शित करो, कपालव्रत धारणकर तुम निरन्तर भिक्षाचरण करो॥ ६१-६२॥

इस प्रकार [कालभैरवसे] कहकर उनके देखते ही ब्रह्महत्या नामक कन्याको उत्पन्नकर तेजोरूप शिवजीने उससे कहा— ॥ ६३ ॥

तुम उग्र रूप धारण करनेवाले इन भयंकर कालभैरवके पीछे-पीछे तबतक चलो, जबतक ये वाराणसीपुरीतक नहीं जाते। इनके वाराणसीमें जाते ही तुम मुक्त हो जाओगी। वाराणसीपुरीको छोड़कर सर्वत्र तुम्हारा प्रवेश होगा॥ ६४-६५॥

नन्दीश्वर बोले— वे परम अद्भुत प्रभु भगवान् शंकर भी उस ब्रह्महत्याको [उस यात्राके लिये] नियुक्त करके अन्तर्हित हो गये॥ ६६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भैरवावतारवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

भैरवावतारलीलावर्णन

नन्दीश्वर बोले— हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब आप महादोषोंको दूर करनेवाली और भक्तिको बढ़ानेवाली दूसरी भैरवी कथाको प्रेमपूर्वक सुनिये॥ १॥

काशीका सान्निध्य प्राप्तकर वे कालभैरव कालके भी भक्षक महाकाल हुए। देवदेवके आदेशसे कापालिक व्रत धारण किये हुए वे विश्वात्मा भैरव हाथमें [ब्रह्माका] कपाल लेकर तीनों लोकोंमें घूमने लगे, किंतु उस दारुण ब्रह्महत्याने कहीं भी उन प्रभुका पीछा करना न छोड़ा॥ २-३॥

प्रत्येक तीर्थमें घूमते हुए भी वे ब्रह्महत्यासे नहीं मुक्त हुए, इसमें भी सभीको शिवकी अद्भुत महिमा ही जाननी चाहिये॥ ४॥

एक बार प्रमथगणोंसे सेवित होते हुए भी कापालिक वेषवाले शिवजी [कालभैरव] विहार करते हुए अपनी इच्छासे विष्णुके निवासस्थानपर पहुँचे॥ ५॥

उस समय महादेवके अंशसे उत्पन्न हुए, सर्पका कुण्डल धारण किये, त्रिनेत्र, महाकाल तथा पूर्णाकार उन भैरवको आता हुआ देखकर गरुडध्वज विष्णुने तथा देवों, मुनियों एवं देवस्त्रियोंने भी दण्डवत् प्रणाम किया। इसके बाद लक्ष्मीपति विष्णुने उन्हें तत्त्वतः जानते हुए पुनः प्रणामकर सिरपर अंजलि रखकर नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की॥ ६—८॥

हे महामुने! तदनन्तर आनन्दसे पूर्ण हुए विष्णु प्रसन्नचित्त होकर क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई कमलनिवासिनी लक्ष्मीसे प्रेमपूर्वक कहने लगे— ॥ ९॥

विष्णुजी बोले— हे प्रिये! हे कमलनयने! हे सुभगे! हे अनघे! हे देवि! हे सुश्रोणि! देखो, तुम धन्य हो और मैं भी धन्य हूँ, जो कि हम दोनों जगत्पति [शिव]-का साक्षात् दर्शन कर रहे हैं॥ १०॥

ये ही धाता, विधाता तथा लोकके प्रभु, ईश्वर, अनादि, सबको शरण देनेवाले, शान्त तथा छब्बीस तत्त्वोंके रूपमें भी ये ही अभिव्यक्त हो रहे हैं॥ ११॥

ये सर्वज्ञ, सभी योगियोंके स्वामी, सभी प्राणियोंके एकमात्र नायक, सर्वभूतान्तरात्मा एवं सबको सदा सब कुछ देनेवाले हैं॥ १२॥

हे पद्मे! निद्राको त्यागकर तथा श्वासको रोककर शान्त स्वभाववाले जन जिन्हें ध्यान लगाकर बुद्धिके द्वारा हृदयमें देखते हैं, वे ये ही हैं, आप उनको देखें॥ १३॥

वेदतत्त्वज्ञ एवं स्थिर मनवाले योगीजन जिन्हें

जानते हैं, वे ही सर्वव्यापक शिव अरूप होते हुए भी स्वरूप धारणकर यहाँ आ रहे हैं॥ १४॥

अहो, इन परमेष्ठीकी चेष्टा भी अद्भुत है कि जिनके चरित्रका वर्णन करनेवाला मनुष्य शरीरधारी होकर भी विदेह हो जाता है एवं जिनका दर्शन करनेसे मनुष्योंको पुनः पृथ्वीपर जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता, वे ही त्र्यम्बक शशिभूषण भगवान् शिव आ रहे हैं॥ १५-१६॥

हे लक्ष्मि! श्वेत कमलदलके समान बड़े-बड़े ये मेरे नेत्र आज धन्य हुए, जो इनके द्वारा महेश्वर महादेवका दर्शन किया जा रहा है॥ १७॥

देवताओंके उस पदको धिक्कार है, जिन्होंने शंकरका दर्शन नहीं किया, जो समस्त दुःखोंका नाश करनेवाले तथा मोक्षदायक हैं॥ १८॥

यदि देवदेवेश शिवका दर्शनकर हम सभीने मुक्ति न प्राप्त की, तो देवलोकमें देवता होनेसे बढ़कर और कुछ भी अशुभ बात नहीं है॥ १९॥

नन्दीश्वर बोले—[लक्ष्मीसे] इस प्रकार कहकर रोमांचित शरीरवाले विष्णु वृषभध्वज महादेवको प्रणाम करके यह कहने लगे—॥ २०॥

विष्णुजी बोले—हे विभो! हे सर्वपापहर! हे अव्यय! हे सर्वज्ञ तथा संसारके धाता देवदेव! आप यह क्या कर रहे हैं?॥ २१॥

हे देवेश! हे त्रिलोचन! हे महामते! यह आपकी क्रीड़ा किसलिये हो रही है? हे विरूपाक्ष! हे स्मरार्दन! आपकी इस प्रकारकी चेष्टाका क्या कारण है?॥ २२॥

हे भगवन्! हे शम्भो! हे शक्तिपते! आप किस कारणसे भिक्षाटन कर रहे हैं? हे जगन्नाथ! हे त्रैलोक्यका राज्य देनेवाले! मुझे यह सन्देह हो रहा है॥ २३॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णु ने जब इस प्रकार शिवरूप भैरवसे कहा, तब अद्भुत लीला करनेवाले उन प्रभुने विष्णुजीसे हँसते हुए कहा—॥ २४॥

भैरव बोले—मैंने अपने अँगुलीके नखाग्रसे ब्रह्मदेवका सिर काट लिया है, उसी पापको दूर करनेके निमित्त इस शुभ व्रतका अनुष्ठान कर रहा हूँ॥ २५॥

नन्दीश्वर बोले—महेशरूप भैरवके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मीपति कुछ स्मरण करके सिर झुकाकर पुनः इस प्रकार कहने लगे—॥ २६॥

विष्णुजी बोले—सभी विघ्नोंका नाश करनेवाले हे महादेव! आपकी जैसी इच्छा हो, वैसी क्रीड़ा कीजिये, परंतु मुझे अपनी मायासे मोहित न करें॥ २७॥

हे विभो! आपकी आज्ञाशक्तिसे मेरे नाभिकमलके कोशसे कल्प-कल्पमें करोड़ों ब्रह्मा पहले उत्पन्न हो चुके हैं॥ २८॥

हे देव! आप पुण्यहीन मनुष्योंके लिये दुस्तर इस मायाका त्याग करें। हे महादेव! आपकी मायासे ब्रह्मा आदि भी मोहित हो जाते हैं॥ २९॥

सत्पुरुषोंको गति देनेवाले हे पार्वतीपते! हे शम्भो! हे सर्वेश्वर! मैं आपकी कृपासे ही आपकी समस्त चेष्टाएँ ठीक-ठीक जानता हूँ॥ ३०॥

हे हर! संहारकालके उपस्थित होनेपर जब आप समस्त देवताओं, मुनियों एवं वर्णाश्रमी जनोंको उपसंहृत करेंगे, तब भी हे महादेव! आपको ब्रह्मवध आदिका पाप नहीं लगेगा। हे शिव! आप पराधीन नहीं हैं। अतः आप स्वतन्त्र होकर क्रीड़ा करते हैं॥ ३१-३२॥

आपके कण्ठमें पूर्वमें उत्पन्न हो चुके ब्रह्माओंकी अस्थियोंकी माला भासित हो रही है, तब भी हे निष्पाप शिव! आपके पीछे ब्रह्महत्या लगी है॥ ३३॥

हे ईश! जो मनुष्य महान् पाप करके भी आप जगदाधारका स्मरण करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है॥ ३४॥

जिस प्रकार सूर्यके समीप अन्धकार टिक नहीं सकता, उसी प्रकार जो आपका भक्त है, उसका पाप विनष्ट हो जाता है॥ ३५॥

जो पुण्यात्मा आपके दोनों चरणकमलोंका स्मरण करता है, उसका ब्रह्महत्याजनित पाप भी नष्ट हो जाता है। हे जगत्पते! जिस मनुष्यकी वाणी आपके नाममें अनुरक्त है, पर्वतसमूहके समान भारी-से-भारी पाप भी उसे बाधित नहीं कर सकता है॥ ३६-३७॥

हे परमात्मन्! हे परमधाम! स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले हे ईश्वर! यह भक्तोंकी अधीनता भी आपका

कुतूहलमात्र है॥ ३८॥

हे देवेश! आज मैं धन्य हूँ; क्योंकि योगीजन भी जिन्हें नहीं देख पाते हैं, उन जगन्मूर्ति अव्यय परमेश्वरका मैं दर्शन कर रहा हूँ॥ ३९॥

आज मुझे परम लाभ मिला और मेरा परम कल्याण हो गया। उन आपके दर्शनसे मैं अमृतपानकर तृप्त हुएके समान तृप्त हो गया। मुझे स्वर्ग और मोक्ष तृणके समान ज्ञात हो रहे हैं॥ ४०॥

गोविन्द विष्णुके इस प्रकार कहनेके पश्चात् उन महालक्ष्मीने अत्यन्त निर्मल मनोरथवती नामकी भिक्षा उनके पात्रमें दे दी। तब लीलासे भैरवरूपधारी वे महादेव भी परम प्रसन्न हो भिक्षाटनके लिये अन्यत्र चलनेको उद्यत हो गये॥ ४१-४२॥

उस समय विष्णुने उनके पीछे-पीछे जानेवाली ब्रह्महत्याको बुलाकर उससे प्रार्थना की कि तुम इन त्रिशूलधारी भैरवको छोड़ दो॥ ४३॥

ब्रह्महत्या बोली—जिनका दर्शन करनेसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती, ऐसे वृषभध्वजकी सेवाकर इस बहानेसे मैं भी अपनेको पवित्र कर लूँगी॥ ४४॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णुके कहनेसे भी जब ब्रह्महत्याने भैरवका पीछा नहीं छोड़ा, तब भैरव शम्भुने मुसकराकर हरिसे यह वचन कहा—॥ ४५॥

भैरव बोले—हे बहुमानद! आपके वचनामृतका पानकर मैं तृप्त हो गया। हे लक्ष्मीके पति! सज्जनोंके स्वभावके अनुरूप ही आप वचन बोल रहे हैं॥ ४६॥

हे गोविन्द! तुम वर माँगो। हे निष्पाप! मैं तुम्हें वर देनेवाला हूँ। हे विकाररहित हरे! तुम मेरे भक्तोंमें अग्रगण्य रहोगे॥ ४७॥

भिक्षाटनरूपी ज्वरसे पीड़ित भिक्षु मानसुधाका पानकर जैसी तृप्ति प्राप्त करते हैं, वैसी तृप्ति अतिसंस्कृत भिक्षाओंसे भी नहीं प्राप्त करते हैं॥ ४८॥

नन्दीश्वर बोले—परमात्मा शम्भुके अवतार भैरवके इन वचनोंको सुनकर विष्णु परम प्रसन्न होकर महेश्वरसे बोले—॥ ४९॥

विष्णु बोले—हे देवदेव! मेरे लिये यही वह प्रशंसनीय है, जिससे कि मैं [आज] मन और वाणीसे अगोचर देवताओंके स्वामी आपका दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ॥ ५०॥

आपकी जो अमृतमयी पूर्ण दृष्टि [मुझपर] पड़ रही है, इसीसे मुझे महान् हर्ष हो रहा है। हे हर! सज्जनोंके लिये आपका दर्शन बिना यत्नके प्राप्त निधिके समान है॥ ५१॥

हे देव! आपके चरणयुगलसे मेरा वियोग न हो, हे शम्भो! यही मेरे लिये वरदान है। मैं किसी अन्य वरका वरण नहीं करता हूँ॥ ५२॥

श्रीभैरव बोले—महामते तात! जैसा आपने कहा है, वैसा ही हो। आप सभी देवताओंको वर देनेवाले होंगे॥ ५३॥

नन्दीश्वर बोले—[ब्रह्माण्डके] भुवनोंसहित केन्द्रभूत सुमेरुपर्वतपर विचरण करते हुए दैत्यशत्रु विष्णुको इस प्रकार अनुगृहीतकर भैरव विमुक्तनगरी वाराणसीपुरीमें जा पहुँचे॥ ५४॥

भयंकर आकृतिवाले भैरवके उस क्षेत्रमें प्रवेश करनेमात्रसे ही ब्रह्महत्या उसी समय हाहाकार करके पातालमें चली गयी॥ ५५॥

उसी समय भैरवके हस्तकमलसे ब्रह्माका कपाल पृथिवीपर गिर पड़ा। तबसे वह तीर्थ कपालमोचन नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ ५६॥

अपने हाथसे ब्रह्माके कपालको गिरता हुआ देखकर रुद्र सबके सामने परमानन्दसे नाचने लगे॥ ५७॥

अत्यन्त दुस्सह जो ब्रह्माजीका कपाल [अन्य क्षेत्रोंमें] भ्रमण करते हुए परमेश्वरके हाथसे कहीं नहीं छूट पाया था, वह काशीमें क्षणमात्रमें छूटकर गिर पड़ा। शूल धारण करनेवाले शिवकी जो ब्रह्महत्या कहीं भी नहीं दूर हो सकी, वह काशीमें आते ही क्षणभरमें नष्ट हो गयी, इसलिये काशीका ही सेवन करना चाहिये॥ ५८-५९॥

जो मनुष्य काशीमें [स्थित] कपालमोचन नामक उत्तम तीर्थका स्मरण करता है, उसका यहाँ अथवा अन्यत्रका किया हुआ पाप भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ ६०॥

इस श्रेष्ठ तीर्थमें आकर विधानके अनुसार स्नानकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है॥ ६१॥

कपालमोचन नामक तीर्थको समादृतकर भैरव भक्तोंके पापसमूहका भक्षण करते हुए वहींपर विराजमान हो गये॥ ६२॥

सुन्दर लीला करनेवाले, सज्जनोंके प्रिय, भैरवात्मा परमेश्वर शिव मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको आविर्भूत हुए॥ ६३॥

जो मनुष्य मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी-तिथिको कालभैरवकी सन्निधिमें उपवास करके जागरण करता है, वह महान् पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६४॥

जो मनुष्य अन्यत्र भी भक्तिपूर्वक जागरणके सहित इस व्रतको करेगा, वह महापापोंसे मुक्त होकर सद्गतिको प्राप्त कर लेगा॥ ६५॥

प्राणीके द्वारा लाखों जन्मोंमें किया गया जो पाप है, वह सभी कालभैरवके दर्शन करनेसे लुप्त हो जाता है। जो कालभैरवके भक्तोंका अपराध करता है, वह मूर्ख दु:खित होकर पुन:-पुन: दुर्गतिको प्राप्त करता रहता है॥ ६६-६७॥

जो काशीमें रहकर विश्वेश्वरमें तो भक्ति करते हैं, परंतु कालभैरवकी भक्ति नहीं करते, वे विशेषरूपसे महादु:खको प्राप्त करते हैं॥ ६८॥

जो मनुष्य वाराणसीमें रहकर [भी] कालभैरवका भजन नहीं करता है, उसके पाप शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ते हैं॥ ६९॥

जो मंगलवार, चतुर्दशी तथा अष्टमीके दिन काशीमें कालराजका भजन नहीं करता है, उसका पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रमाके समान क्षीण हो जाता है॥ ७०॥

ब्रह्महत्याको दूर करनेवाले, भैरवोत्पत्तिसंज्ञक इस पवित्र आख्यानको सुनकर प्राणी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७१॥

कारागारमें पड़ा हुआ अथवा भयंकर कष्टमें फँसा हुआ प्राणी भी भैरवकी उत्पत्ति [के आख्यान]-को सुनकर संकटसे छूट जाता है॥ ७२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भैरवावतारलीलावर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

नृसिंहचरित्रवर्णन

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] दक्ष प्रजापतिके यज्ञको विध्वंस करनेवाले वीरभद्र नामक [गणाध्यक्ष]-को परमात्मा प्रभु शिवजीका अवतार जानना चाहिये, उनका सम्पूर्ण चरित सतीके चरित्रमें कहा गया है। आपने भी उसे अनेक प्रकारसे सुन लिया है, इसीलिये यहाँ विस्तारसे नहीं कहा गया॥ १-२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसके पश्चात् आपके स्नेहवश अब प्रभु शंकरके शार्दूल नामक अवतारको कह रहा हूँ, उसको सुनिये॥ ३॥

भगवान् सदाशिवने देवताओंके कल्याणार्थ जलती हुई अग्निके समान कान्तियुक्त अत्यन्त अद्भुत शरभ रूपको धारण किया था॥ ४॥

हे मुनिसत्तमो! श्रेष्ठ भक्तोंके हितसाधक अपरिमित शिवावतार हुए हैं, उनकी संख्याकी गणना नहीं की जा सकती है॥ ५॥

आकाशके तारोंकी, पृथ्वीके धूलिकणोंकी तथा वर्षाकी बूँदोंकी गणना अनेक कल्पोंमें अनेक जन्म लेकर कोई बुद्धिमान् पुरुष भले ही कर ले, परंतु शिवजीके अवतारोंकी गणना कदापि नहीं की जा सकती है, मेरा यह कथन सत्य समझें। फिर भी जैसा मैंने सुना है, अपनी बुद्धिके अनुसार दिव्य तथा परम ऐश्वर्यसूचक उस शरभ-चरित्रको कह रहा हूँ॥ ६—८॥

हे मुने! जब आपलोगोंद्वारा जय-विजय [नामक द्वारपालों]-को शाप दिया गया, तब वे दोनों कश्यपके द्वारा दितिके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए॥ ९॥

प्रथम हिरण्यकशिपु तथा छोटा भाई महाबली हिरण्याक्ष था, वे दोनों पहले भगवान् विष्णुके देवर्षि-पार्षद थे, जो [आपलोगोंसे शापित होकर] दितिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए॥ १०॥

पूर्वकालमें पृथ्वीका उद्धार करनेहेतु ब्रह्माजीद्वारा

प्रार्थना किये जानेपर भगवान् विष्णुने वाराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वध किया॥ ११॥

हे मुने! अपने प्राणोंके समान [प्रिय] उस वीर भाईको मारा गया सुनकर हिरण्यकशिपुने विष्णुपर अत्यधिक क्रोध किया॥ १२॥

तत्पश्चात् हिरण्यकशिपुने दस हजार वर्षतक तप करके सन्तुष्ट हुए ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त किया कि आपकी सृष्टिमें कोई भी मुझे न मार सके॥ १३॥

वह हिरण्यकशिपु शोणितपुर नामक पुरमें जाकर चारों तरफसे देवताओंको बुलाकर त्रिलोकीको अपने वशमें करके निष्कण्टक राज्य करने लगा॥ १४॥

हे मुने! सभी धर्मोंको नष्ट करनेवाला तथा ब्राह्मणोंको पीड़ित करनेवाला पापी हिरण्यकशिपु देवताओं तथा ऋषियोंको सताने लगा॥ १५॥

हे मुने! तदनन्तर विष्णुवैरी दैत्यराजने अपने हरिभक्त पुत्र प्रह्लादसे भी जब विशेषरूपसे द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया, तब सभामण्डपके खम्भेसे सन्ध्याके समय अत्यन्त क्रोधित होकर भगवान् विष्णु नृसिंहशरीरसे प्रकट हुए॥ १६-१७॥

हे मुनिशार्दूल! भगवान् नृसिंहका विकराल तथा भयदायक शरीर सब प्रकारसे महादैत्योंको सन्त्रस्त करता हुआ अग्निके समान जाज्वल्यमान हो उठा॥ १८॥

नृसिंहने उसी क्षण सभी दैत्योंका संहार कर डाला और तब [दैत्योंके संहारको देखकर] हिरण्यकशिपुने उनसे अत्यन्त भयानक युद्ध किया॥ १९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मुहूर्तभरतक उन दोनोंमें विकराल, सबको भयभीत करनेवाला तथा लोमहर्षक युद्ध होता रहा॥ २०॥

सायंकाल होनेपर लक्ष्मीपति देवेश नृसिंहने आकाशमें स्थित देवताओंके देखते-देखते हिरण्यकशिपुको देहलीपर खींच लिया और अपनी गोदमें उसे लेकर नखोंसे शीघ्र ही स्वर्गनिवासियोंके समक्ष उसका उदर विदीर्णकर मार डाला॥ २१-२२॥

इस प्रकार नृसिंहरूपधारी विष्णुके द्वारा हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर जगत्‌में चारों तरफ शान्ति स्थापित हो गयी, परंतु इससे देवताओंको विशेष आनन्द प्राप्त नहीं हुआ॥ २३॥

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, प्रह्लाद आश्चर्यचकित हो गये, विष्णुके उस अद्भुत रूपको देखकर लक्ष्मीजी भी अत्यन्त विस्मित हो गयीं॥ २४॥

यद्यपि हिरण्यकशिपु मार डाला गया, किंतु भगवान् नृसिंहके क्रोधकी ज्वाला शान्त नहीं हुई, इसी कारण देवताओंको उत्तम सुख प्राप्त नहीं हो रहा था॥ २५॥

उस ज्वालासे सम्पूर्ण संसार व्याकुल हो उठा, देवता भी दुखी हुए। 'अब क्या होगा'—ऐसा कहते हुए वे भयके कारण दूर चले गये। नृसिंहके क्रोधसे उत्पन्न ज्वालासे व्याकुल हुए ब्रह्मा आदिने उस ज्वालाकी शान्तिहेतु प्रह्लादको श्रीहरिके पास भेजा। सभीने मिलकर जब प्रार्थना की, तब प्रह्लाद वहाँ गये॥ २६—२८॥

कृपानिधि नृसिंहने उन्हें [अपने] हृदयसे लगा लिया, जिससे उनका हृदय तो शीतल हो गया, परंतु क्रोधकी ज्वाला शान्त न हुई॥ २९॥

इसपर भी जब नृसिंहके क्रोधकी ज्वाला शान्त नहीं हुई, तब दुःखको प्राप्त हुए देवता [भगवान्] शंकरकी शरणमें गये॥ ३०॥

वहाँ जाकर ब्रह्मा आदि सभी देवता तथा मुनिगण संसारके सुखके लिये शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ ३१॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! शरणमें आये हुए हम सभी देवताओं तथा लोकोंकी रक्षा कीजिये॥ ३२॥

हे सदाशिव! आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है। पूर्वकालमें जब भी हमलोगोंपर दुःख पड़ा, तब आपने ही हमलोगोंकी रक्षा की है। जब समुद्रमन्थन किया गया और देवताओंके द्वारा रत्नोंको आपसमें बाँट लिया गया, हे शम्भो! तब आपने विषको ही ग्रहण कर लिया। हे नाथ! उस समय आपने हमारी रक्षा की और 'नीलकण्ठ' इस नामसे प्रसिद्ध हुए। यदि आप विषपान न करते, तो सभी लोग भस्म हो जाते॥ ३३—३५॥

हे प्रभो! यह प्रसिद्ध ही है कि जब जिस किसीको दुःख प्राप्त होता है तब आपके नाममात्रके स्मरणसे ही उसका समस्त दुःख दूर हो जाता है॥ ३६॥

हे सदाशिव! इस समय नृसिंहके क्रोधकी ज्वालासे पीड़ित हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। हे देव! आप उसे शान्त करनेमें समर्थ हैं—यह पूर्णरूपसे निश्चित है॥ ३७॥

नन्दीश्वर बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भक्तवत्सल भगवान् शिव उन्हें परम अभय प्रदान करके प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे— ॥ ३८॥

शंकर बोले—हे ब्रह्मादि देवताओ! आपलोग निडर होकर अपने-अपने स्थानपर जायँ, आपलोगोंका जो दु:ख है, उसे मैं सब प्रकारसे दूर करूँगा—यह मेरा व्रत है॥ ३९॥

जो भी मेरी शरणमें आता है, उसका दु:ख नष्ट हो जाता है; क्योंकि शरणागत मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४०॥

नन्दीश्वर बोले—तब यह सुनकर वे देवता परम आनन्दित हुए और वे जैसे आये थे, प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका स्मरण करते हुए वैसे ही चले गये॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके शार्दूल-अवतारमें नृसिंहचरितवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् नृसिंह और वीरभद्रका संवाद

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] देवताओंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब कृपानिधि परमेश्वरने नृसिंह नामक महातेजको संहृत करनेका निश्चय किया॥ १॥

इसके बाद रुद्रने महाबलवान् प्रलयकारी एवं अपने भैरवरूप वीरभद्रका स्मरण किया और उनसे कहा॥ २॥

तब तत्काल ही अट्टहास करते हुए श्रेष्ठ गणोंसे परिवेष्टित गणाग्रणी वीरभद्र वहाँ आ पहुँचे। वीरभद्रके वे गण इधर-उधर उछल रहे थे, उनमेंसे करोड़ों गण अति उग्र नृसिंहरूप धारण किये हुए थे। कुछ आनन्दित हो नाचते हुए वीरभद्रकी परिक्रमा कर रहे थे। कुछ उन्मत्त थे, और कुछ ब्रह्मादि देवताओंसे कन्दुकके समान क्रीड़ा कर रहे थे। कुछ ऐसे भी थे, जो सर्वथा अज्ञात थे। इस प्रकारके कल्पान्तकी अग्निके समान प्रज्वलित त्रिनेत्रसे युक्त, मस्तकपर जटाजूट एवं बालचन्द्रमा तथा अल्प शस्त्रोंको धारण किये हुए जाज्वल्यमान वीरभद्र अपने गणोंसे वन्दित हो रहे थे॥ ३—५॥

उनके आगेके तीक्ष्ण दन्ताग्र बालचन्द्राकार तथा दोनों भौंहें इन्द्रधनुषके खण्डके समान प्रतीत हो रही थीं। वीरभद्रके प्रचण्डतम हुंकारसे दिशाएँ बधिर हो रही थीं। उनका रूप काले बादल और काजलके समान कृष्णवर्ण और भयावह था, उनके मुखपर दाढ़ी एवं मूँछें थीं। अद्भुत स्वरूपवाले वे अपनी अखण्ड भुजाओंसे वाद्यखण्ड (वाद्यदण्ड)-की भाँति बार-बार त्रिशूल घुमा रहे थे। इस प्रकार अपनी वीरोचित शक्तिसहित भगवान् वीरभद्र शिवजीके समीप आकर स्वयं बोले—हे देव! यहाँ आपद्वारा मैं किस उद्देश्यसे स्मरण किया गया हूँ? हे जगत्के स्वामिन्! शीघ्र मेरे ऊपर प्रसन्न होकर आज्ञा प्रदान कीजिये॥ ६—१०॥

नन्दीश्वर बोले—वीरभद्रके आदरपूर्वक कहे गये इस वचनको सुनकर दुष्टोंको दण्ड देनेवाले शिवजी उनकी ओर देखकर प्रीतिपूर्वक कहने लगे— ॥ ११॥

शंकर बोले—[हे वीरभद्र!] असमयमें देवताओंको घोर भय उत्पन्न हो गया है। नृसिंहकी असह्य कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी है, तुम इस कोपाग्निको शान्त करो॥ १२॥

पहले सान्त्वना देते हुए उन्हें समझाओ कि आप क्यों नहीं शान्त होते हैं। तब भी यदि वे शान्त न हों तो तुम मेरे परम भैरवरूपको दिखाओ॥ १३॥

हे वीरभद्र! तुम सूक्ष्म तेजसे सूक्ष्मका और स्थूल तेजसे स्थूलका संहरण करके मेरी आज्ञासे अग्निको वशमें करो॥ १४॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी इस आज्ञाको स्वीकार गणाध्यक्ष वीरभद्रने परमशान्त रूप धारण कर लिया और जहाँ नृसिंह थे, वहाँ वे अतिशीघ्र जा पहुँचे॥ १५॥

तत्पश्चात् शिवरूप वीरभद्रने नृसिंहरूपी विष्णुको समझाया और उन महेश्वरने इस प्रकार वचन कहा, जैसे पिता अपने औरस पुत्रसे बात करता है॥ १६॥

वीरभद्र बोले—हे भगवन्! हे माधव! आप संसारके कल्याणके निमित्त अवतीर्ण हुए हैं। परमेष्ठीने आप परमेश्वरको पालनके लिये नियुक्त किया है॥ १७॥

पूर्व समयमें जब प्रलय हुआ था, उस समय भगवन्! आपने मत्स्यका रूप धारणकर प्राणियों [से युक्त नौका]-को अपनी पूँछमें बाँधकर [सागरमें] भ्रमण करते हुए उनकी रक्षा की थी। इसी प्रकार आपने कूर्मस्वरूपसे [मन्दराचलको] धारण किया एवं वराहावतारद्वारा पृथ्वीका उद्धार किया था और [इस समय भी आपने] इस नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुका वध किया है। इसी प्रकार आपने वामनावतार ग्रहणकर [दैत्यराज] बलिको तीन पैरमें तीनों लोकों और उसके शरीरको नापकर बाँध लिया। आप ही सभी प्राणियोंके उत्पत्तिस्थान और अविनाशी प्रभु हैं॥ १८—२०॥

जब-जब इस संसारपर कोई विपत्ति आती है, तब-तब आप अवतार ग्रहणकर उसे दुःखरहित करते हैं। हे हरे! आपसे बढ़कर अथवा आपके समान भी कोई अन्य शिवपरायण नहीं है। आपने ही वेदों तथा धर्मोंको शुभमार्गमें प्रतिष्ठित किया है॥ २१-२२॥

जिसके लिये आपका यह अवतार हुआ है, वह दानव हिरण्यकशिपु मार डाला गया और प्रह्लादकी भी रक्षा हो गयी॥ २३॥

अतः हे भगवन्! हे विश्वात्मन्! [आपका प्रयोजन सिद्ध हो चुका है,] अब आप अपने इस घोर नृसिंहरूपको मेरे समक्ष ही उपसंहृत कीजिये॥ २४॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार वीरभद्रद्वारा शान्त वाणीमें निवेदन किये जानेपर महामदसे भरे हुए उन नृसिंहने पहलेसे भी अधिक महाभयानक क्रोध किया और हे मुने! अपने दाँतोंसे भयभीत करते हुए महावीर वीरभद्रसे महाघोर एवं कठोर वचन कहा— ॥ २५-२६॥

नृसिंह बोले—[हे वीरभद्र!] तुम जहाँसे आये हो, वहीं चले जाओ और मुझसे लोकहितकी बात न कहो। मैं अभी इसी समय इस चराचर जगत्‌को विनष्ट करूँगा। स्वयं मुझ संहारकर्ताका संहार अपनेसे अथवा दूसरेसे नहीं हो सकता है। सर्वत्र मेरा ही शासन है, मेरे ऊपर शासन करनेवाला कोई भी नहीं है॥ २७-२८॥

मेरी कृपासे सारा संसार निर्भय रहता है, मैं ही सभी शक्तियोंका प्रवर्तक एवं निवर्तक हूँ॥ २९॥

हे गणाध्यक्ष! [इस जगत्‌में] जो भी विभूतिमान्, कान्तियुक्त तथा शक्तिसम्पन्न वस्तु है, उस-उसको मेरे ही तेजसे विजृम्भित जानो॥ ३०॥

समस्त देवगण मुझे ही परमार्थको जाननेवाला तथा परमब्रह्म कहते हैं और ब्रह्मा एवं इन्द्रादि समस्त देवगण मेरे ही अंश तथा [मुझसे ही] शक्तिसम्पन्न हैं॥ ३१॥

जगत्कर्ता ब्रह्मा भी पूर्व समयमें मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हुए थे। मैं ही सबसे अधिक, स्वतन्त्र, कर्ता, हर्ता तथा अखिलेश्वर हूँ॥ ३२॥

यह [नृसिंहरूपकी ज्वाला] मेरा सर्वाधिक तेज है, [मेरे विषयमें] और क्या सुनना चाहते हो? अतः मेरी शरणमें आकर निर्भय होकर तुम चले जाओ॥ ३३॥

हे गणेश्वर! दिखायी पड़नेवाले इस संसारको मेरा ही परम स्वरूप जानो। देवता, असुर एवं मनुष्योंसे युक्त यह सारा विश्व मेरा है॥ ३४॥

मैं लोकोंके विनाशका कारण कालस्वरूप हूँ, अतः मैं लोकोंका संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। हे वीरभद्र! मुझे मृत्युका भी मृत्यु समझो, ये देवगण मेरी ही कृपासे जीवन धारण करते हैं॥ ३५॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णुके अहंकारयुक्त वचनको सुनकर महापराक्रमी वीरभद्र ओठोंको फड़फड़ाते हुए अवज्ञापूर्वक हँसकर कहने लगे— ॥ ३६॥

वीरभद्र बोले—क्या आप संसारके ईश्वर तथा संहारकर्ता पिनाकधारी शिवको नहीं जानते हैं? आपमें केवल मिथ्या वाद-विवाद भरा पड़ा है, जो कि आपके विनाशका कारण है॥ ३७॥

आपके अन्यान्य कितने ही अवतार हो चुके हैं, कितने ही बाकी हैं। हे विष्णो! जिस कारणसे आपका यह अवतार हुआ है, कहीं ऐसा न हो कि उसी अवतारसे आप कथामात्र ही शेष न रह जायँ॥ ३८॥

आप उस दोषको बताइये, जिससे आप इस

दशाको प्राप्त हुए हैं। संसारके संहारमें प्रवीण होनेके कारण कहीं ऐसा न हो कि उसकी दक्षिणा आपको ही प्राप्त हो जाय॥ ३९॥

आप प्रकृति हैं तथा रुद्र पुरुष हैं, उन्होंने आपमें अपने वीर्यका आधान किया है, इसीलिये आपके नाभिकमलसे पाँच मुखवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं॥ ४०॥

उन्होंने इस त्रिलोकीकी सृष्टिके लिये अपने ललाटमें नीललोहित शिवका ध्यान किया और वे उग्र तपमें स्थित हुए। तब उन्हींके ललाटसे सृष्टिहेतु शिवजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीने उन्हें भूषणरूपमें धारण किया। मैं उन्हीं देवाधिदेव भैरवरूपधारीकी आज्ञासे यहाँ आया हूँ। हे हरे! मैं उन्हीं देवदेव सर्वेश्वर रुद्रके द्वारा विनय और बल दोनोंसे आपका नियमन करनेके लिये नियुक्त किया गया हूँ॥ ४१—४३॥

आपने तो उनकी शक्तिकी कलामात्रसे ही युक्त होकर एक राक्षसका वध किया, पर अब असावधान होकर अहंकारके प्रभावसे गर्जन कर रहे हैं। सज्जन व्यक्तियोंके साथ किया गया उपकार सुखको बढ़ानेवाला होता है। किंतु वही उपकार यदि दुष्ट व्यक्तियोंके साथ किया जाय तो वह हानिकारक होता है॥ ४४-४५॥

हे नृसिंह! यदि आप शिवजीको अजन्मा नहीं मानते हैं, तो निश्चय ही आप अज्ञानी, महागर्वी एवं दोषोंसे परिपूर्ण हैं॥ ४६॥

हे नृसिंह! आप न स्रष्टा हैं, न भर्ता हैं और न संहारकर्ता ही हैं, आप किसी भी प्रकार स्वतन्त्र नहीं हैं, आप परतन्त्र एवं विमूढ चित्तवाले हैं॥ ४७॥

हे हरे! आप महादेवकी शक्तिसे ही कुलालचक्रकी भाँति प्रेरित हैं और सदा उन्हींके अधीन रहकर अनेक अवतार धारण करते हैं॥ ४८॥

[हे हरे!] कूर्मावतारके समय [बारम्बार मन्दराचलके द्वारा घर्षित होनेसे] झुलसे हुए कपालको किसीने धारण नहीं किया। तुम्हारेद्वारा त्यागा गया वह कपाल आज भी शिवजीकी हारलता (मुण्डमाला)-में विद्यमान है॥ ४९॥

उनके अंशमात्रसे उत्पन्न हुए तारकासुरने जो आपका वैरी था, वराहावतारमें तुम्हारे दाँतोंको उखाड़कर जैसी पीड़ा पहुँचायी, पुनः जिन शिवजीकी कृपासे आपके सारे विघ्न दूर हो गये, क्या उन परमात्मा शिवजीको आप भूल गये!॥ ५०॥

विष्वक्सेनावतारमें शिवजीने अपने शूलाग्रसे आपको दग्ध कर दिया था। तेजस्वरूप मैंने दक्षके यज्ञमें आपके पुत्र ब्रह्माका पाँचवाँ सिर काट दिया था, जिसे अबतक कोई जोड़ न सका, हे हरे! क्या आप उसे भूल गये हैं?॥ ५१-५२॥

शिवभक्त दधीचिने सिर खुजलानेमात्रसे मरुद्गणोंसहित आपको संग्राममें जीत लिया था, क्या आप उसे भूल गये?। हे चक्रपाणे! आप जिस चक्रके सहारे अपना पुरुषार्थ प्रकट करते हैं, वह कहाँसे और किसके द्वारा प्राप्त हुआ है, क्या आप उसको भूल गये हैं?॥ ५३-५४॥

मैंने तो सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर रखा है और तुम क्षीरसागरमें निद्राके परवश होकर सोते रहते हो, ऐसी स्थितिमें तुम सात्त्विक कैसे हो?॥ ५५॥

आपसे लेकर स्तम्बपर्यन्त शिवजीकी शक्ति फैली हुई है, उसीसे आप सर्वथा शक्तिमान् हैं, अन्यथा आप उनके लिंगाकार तेजमात्रके प्रकट होते ही मोहित हो गये थे। उनके तेजके माहात्म्यको देखनेमें कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है। सूक्ष्म बुद्धिवाले लोग ही उन सर्वव्यापीके परम पदको देख पाते हैं॥ ५६-५७॥

आकाश, पृथ्वीका अन्तराल, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, अन्धकारको लील जानेवाले सूर्य एवं चन्द्रमाको उत्पन्नकर वही परमेश्वर उनमें प्रविष्ट हो जाते हैं॥ ५८॥

हे [नृसिंह!] आप ही काल, महाकाल, कालकाल तथा महेश्वर हैं, आप अपनी उग्रकलाके कारण मृत्युके भी मृत्यु हैं॥ ५९॥

वे [शिवजी ही] स्थिर, अक्षर, वीर, विश्वरक्षक, प्रभु, दुःखोंके नाशकर्ता, भीम, मृग, पक्षी, हिरण्मय हैं और सम्पूर्ण जगत्के शास्ता हैं; आप, ब्रह्मा तथा अन्य कोई नहीं है, केवल शम्भु ही सबके शासक हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६०-६१॥

इस प्रकार सब कुछ विचारकर आप अपनी ज्वालाको स्वयं ही शान्त करें, हे नृसिंह! हे अबुध!

आप अपनेको विनष्ट न करें, अन्यथा इसी समय जैसे सूखे वृक्षपर बिजली गिरती है, वैसे ही महाभैरवरूप उन रुद्रका क्रोध मृत्युरूप होकर तुमपर गिरेगा॥ ६२-६३॥

नन्दी बोले—इतना कहकर शिवकी क्रोधमूर्ति वे वीरभद्र निर्भय होकर नृसिंहका अभिप्राय जानकर मौन हो गये॥ ६४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शरभावतार-वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

भगवान् शिवका शरभावतार-धारण

सनत्कुमार बोले—हे नन्दीश्वर! हे महाप्राज्ञ! इसके बाद [जो वृत्तान्त आपको] ज्ञात हुआ, मेरे ऊपर कृपा करके उस वृत्तान्तको इस समय प्रीतिपूर्वक कहिये॥ १॥

नन्दीश्वर बोले—वीरभद्रके इस प्रकारके कहनेपर नृसिंह क्रोधसे व्याकुल हो गये और गर्जन करते हुए बड़े वेगसे उन्हें पकड़नेके लिये उद्यत हुए॥ २॥

इसी बीच महाघोर, प्रत्यक्ष, भयके कारण अत्यन्त प्रचण्ड, आकाशव्यापी, दुर्धर्ष, शिवतेजसे उत्पन्न तथा कभी भी न दिखायी पड़नेवाला वीरभद्रका अद्भुत रूप प्रकट हुआ, जो न तो हिरण्मय था, न सौम्य था, वह तेज न सूर्य और न तो अग्निसे उत्पन्न हुआ था, न बिजलीके समान और न चन्द्रमाके समान था, वह शिवतेज अनुपम था। उस समय सभी तेज उन शंकरके तेजमें विलीन हो गये। वह महातेज आकाशमें भी न समा सका। वह तेज प्रकट कालरूप ही था। अत्यन्त विकृताकार वह तेज रुद्रका साधारण चिह्न था॥ ३—६॥

जय-जय आदि मंगल शब्दोंके साथ उन देवताओंके देखते-देखते ही परमेश्वर स्वयं संहाररूपसे प्रकट हुए॥ ७॥

हजार भुजाओंसे समन्वित, जटाधर, ललाटपर बालचन्द्र धारण किये हुए अत्यन्त उग्र शरीरवाले वे दो पंख एवं चोंचसे युक्त पक्षीके रूपमें दिखायी पड़ रहे थे। उनके दाँत अत्यन्त विशाल तथा तीक्ष्णतम थे। वे वज्रतुल्य नखरूपी आयुधसे युक्त थे, वे नीलकण्ठ, महाबाहु और चार चरणोंसे युक्त तथा अग्निके समान तेजस्वी थे। वे युगान्तकालीन अर्थात् प्रलयकारी मेघके समान गम्भीर गर्जना कर रहे थे और महाकोपसे व्याप्त नेत्रोंद्वारा कृत्याग्निके समान जान पड़ते थे। उनके दाँत और अधरोष्ठ क्रोधके कारण फड़क रहे थे। इस प्रकारका उग्र स्वरूप धारण किये, हुंकार करते हुए विकटरूपधारी शंकर [नृसिंहजीके आगे] प्रकट हो गये॥ ८—११॥

उस रूपको देखते ही नृसिंहका समस्त बल पराक्रम उसी प्रकार लुप्त हो गया, जिस प्रकार सूर्यके तेजसे तिरस्कृत जुगनू विभ्रान्त हो जाता है॥ १२॥

इसके बाद उन्होंने अपने दोनों पक्षोंको घुमाते हुए उनसे नृसिंहके नाभि और चरणोंको विदीर्ण करते हुए अपनी पूँछसे उनके चरणोंको तथा हाथोंसे उनकी भुजाओंको बाँध लिया। इसके बाद भुजाओंसे हृदय विदीर्ण करते हुए शिवजीने नृसिंहको पकड़ लिया। उसके बाद देवताओं और महर्षियोंके साथ आकाशमें चले गये॥ १३-१४॥

जिस प्रकार गरुड निर्भयतापूर्वक साँपको कभी ऊपर कभी नीचे पटकता है, कभी उसे लेकर उड़ जाता है, उसी प्रकार उन्होंने नृसिंहको अपने पंखोंसे मार-मारकर आहत कर दिया। फिर वे अनन्त ईश्वर उन नृसिंहको लेकर वृषभपर सवार हो चल पड़े॥ १५-१६॥

तत्पश्चात् सभी ब्रह्मादि देवों तथा मुनीश्वरोंने जाते हुए शिवको आदरपूर्वक प्रणाम किया और वे लोग '**नमः**' शब्दसे उनकी स्तुति करने लगे॥ १७॥

इस प्रकार ले जाये जाते हुए पराधीन तथा दीनमुख नृसिंह हाथ जोड़कर मनोहर अक्षरों [-वाले स्तोत्रों]-से उन परमेश्वरकी स्तुति करने लगे। शिवके एक सौ आठ नामोंद्वारा इन शरभेश्वरकी स्तुतिकर नृसिंहने पुनः

उनसे प्रार्थना की—हे परमेश्वर! जब-जब मेरी यह मूढ़ बुद्धि अहंकारसे दूषित हो जाय, तब-तब आप ही उसे दूर करें॥ १८—२०॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार प्रीतिपूर्वक शिवसे प्रार्थना करते हुए नृसिंहरूपधारी विष्णु जीवनपर्यन्त पराधीनता स्वीकारकर बार-बार प्रणाम करके दीन हो गये। वीरभद्रने क्षणमात्रमें ही नृसिंहके मुखसहित समस्त शरीर एवं उनकी शक्तिको अपनेमें समाहित कर लिया॥ २१-२२॥

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर ब्रह्मादि समस्त देवता शरभरूप धारण किये हुए सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कल्याणकारी भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे॥ २३॥

देवता बोले—हे महेश्वर! ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-चन्द्रमा आदि समस्त देवता, महर्षि एवं दैत्य आदि—सबके सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं॥ २४॥

आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य आदि देवताओं एवं असुरोंका सृजन, पालन एवं संहार करते हैं, आप ही सबके स्वामी हैं॥ २५॥

आप संसारका हरण करते हैं, इसलिये विद्वान् लोग आपको 'हर' कहते हैं और आपने विष्णुका निग्रह किया है, इसलिये भी आप विद्वानोंके द्वारा हर कहे जाते हैं। हे प्रभो! आप अपने शरीरको आठ भागोंमें बाँटकर इस जगत्का संरक्षण करते हैं, अत: हे भगवन्! अभीष्ट वरोंके द्वारा हम देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ २६-२७॥

आप महापुरुष, शम्भु, सर्वेश्वर, सुरनायक, नि:स्वात्मा, निर्विकारात्मा, परब्रह्म, सत्पुरुषोंकी गति, दीनबन्धु, दयासिन्धु, अद्भुत लीला करनेवाले, परात्मदृक्, प्राज्ञ, विराट्, विभु, सत्य एवं सत्-चित्-आनन्द लक्षणसे युक्त हैं॥ २८-२९॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार देवताओंके वचनको सुनकर परमेश्वर सदाशिव उन पुरातन देवताओं एवं महर्षियोंसे कहने लगे—॥ ३०॥

[**शिवजी बोले**—] जिस प्रकार जलमें जल, दूधमें दूध और घीमें घी मिलकर समरस हो जाता है, ठीक उसी प्रकार भगवान् विष्णु भी शिवजीमें मिलकर समरस हो गये हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ३१॥

इस समय एकमात्र विष्णु ही महाबलवान् तथा अहंकारी नृसिंहका रूप धारणकर संसारके संहार करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार है। सिद्धिहेतु प्रयत्नशील मेरे भक्तोंके द्वारा वे प्रार्थनाके योग्य हैं, वे स्वयं भी मेरे भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और मेरे भक्तोंको वर देनेवाले हैं॥ ३२-३३॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर महाबली भगवान् पक्षिराज देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। गणाध्यक्ष महाबलवान् भगवान् वीरभद्र भी नृसिंहका चर्म निकाल और उसे लेकर कैलासपर्वतपर चले गये॥ ३४-३५॥

उसी समयसे शिवजी नृसिंहके चर्मको धारण करते हैं। उन्होंने नृसिंहके मुखको अपनी मुण्डमालाका सुमेरु बनाया था। तदनन्तर सभी देवता निर्भय होकर इस कथाका वर्णन करते हुए विस्मयसे प्रफुल्लितनेत्र हो जैसे आये थे, वैसे ही चले गये॥ ३६-३७॥

जो [व्यक्ति] वेदरससे परिपूर्ण इस परम पवित्र आख्यानको पढ़ता है तथा सुनता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ ३८॥

यह आख्यान धन्य, यशको प्रदान करनेवाला, आयुको बढ़ानेवाला, आरोग्य देनेवाला तथा पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, समस्त विघ्नोंको शान्त करनेवाला, सभी व्याधियोंका नाश करनेवाला, दु:खोंको दूर करनेवाला, मनोरथ सिद्ध करनेवाला, कल्याणका आश्रयस्थान, अपमृत्युका हरण करनेवाला, बुद्धिको बढ़ानेवाला तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला है॥ ३९-४०॥

यह शरभरूप पिनाकधारी शिवजीका उत्तम रूप है, इसे शिवके भक्तों तथा गणोंमें प्रकाशित करते रहना चाहिये अर्थात् साधारण जनोंके समक्ष यह प्रकाश्य नहीं है। उन्हीं शिवभक्तोंको इस आख्यानको पढ़ना एवं सुनना चाहिये। यह नौ प्रकारकी भक्ति प्रदान करनेवाला दिव्य एवं अन्त:करण तथा बुद्धिका वर्धन करनेवाला है॥ ४१-४२॥

शिवजीके सभी उत्सवोंमें, चतुर्दशी तथा अष्टमीको एवं शिवकी प्रतिष्ठाके समय इस आख्यानको पढ़नेसे शिवजीका सांनिध्य प्राप्त होता है॥ ४३॥

चोर-बाघ-मनुष्य-सिंहके भयमें, आत्मकृत अर्थात् मनमें अकारण उत्पन्न भय तथा राजभयमें, अन्य

प्रकारके उत्पात, भूकम्प, डाकू आदिसे भय उपस्थित होनेपर, धूलिवर्षाकालमें, उल्कापात, महावात, अनावृष्टि और अतिवृष्टिमें जो विद्वान् सावधान होकर इसे पढ़ता है, वह दृढ़व्रती शिवभक्त हो जाता है। जो निष्काम भावसे इस शिवचरित्रको पढ़ता या सुनता है और शिवव्रत करता है, वह रुद्रलोकको प्राप्तकर रुद्रका अनुचर हो जाता है। इस प्रकार रुद्रलोकको प्राप्तकर वह रुद्रके साथ आनन्द करता है और हे मुने! उसके बाद शिवजीकी कृपासे वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है॥ ४४—४७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शरभावतारवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

भगवान् शंकरके गृहपति-अवतारकी कथा

नन्दीश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब चन्द्रमाको सिरपर धारण करनेवाले शिवके एक अन्य चरित्रको प्रसन्नतापूर्वक सुनिये, जिस प्रकार उन्होंने प्रेमपूर्वक विश्वानरके घरमें जन्म लिया॥ १॥

हे मुने! गृहपति नामवाले वे अग्निलोकके स्वामी हुए, वे अग्निके सदृश, तेजस्वी, सर्वात्मा एवं परम प्रभु थे। पूर्वकालमें नर्मदाके तटपर नर्मपुरमें शिवजीके भक्त विश्वानर नामवाले पुण्यात्मा मुनि हुए॥ २-३॥

वे सदा ब्रह्मचर्याश्रम धर्मका पालन करते हुए नित्य-प्रति ब्रह्मयज्ञ किया करते थे। वे शाण्डिल्यगोत्री थे और बड़े पवित्र, ब्रह्मतेजस्वी तथा जितेन्द्रिय थे॥ ४॥

वे सभी शास्त्रोंके अर्थोंके ज्ञाता, सर्वदा सदाचारमें तत्पर, शैव आचारमें अति प्रवीण तथा लौकिक आचारके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे॥ ५॥

उन्होंने भार्याके उत्तम गुणोंपर विचारकर उचित समयमें विधिपूर्वक अपने योग्य कुलीन कन्यासे विवाह किया॥ ६॥

वे प्रतिदिन अग्निशुश्रूषा, पंचयज्ञ तथा षट्कर्ममें संलग्न रहते थे और देवता, पितर एवं अतिथियोंका पूजन करते थे॥ ७॥

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके उपरान्त [एक दिन] उन ब्राह्मणकी शुचिष्मती नामक पतिव्रता पत्नीने पतिसे कहा—॥ ८॥

हे नाथ! मैंने आपकी कृपासे आपके साथ उन सभी भोगोंको भोग लिया है, जो स्त्रियोंके योग्य तथा आनन्ददायक हैं॥ ९॥

हे नाथ! अब मेरी एक ही विशेष अभिलाषा है, जो मेरे हृदयमें चिरकालसे स्थित है और वह गृहस्थोंके लिये उचित भी है, उसे देनेकी कृपा करें॥ १०॥

विश्वानर बोले—हे सुश्रोणि! हे प्रियहितैषिणि! मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। हे महाभागे! तुम उसे माँगो, मैं शीघ्र ही प्रदान करूँगा। हे कल्याणि! सम्पूर्ण कल्याण करनेवाले महेश्वरकी कृपासे मुझे इस लोक एवं परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ ११-१२॥

नन्दीश्वर बोले—पतिके इस वचनको सुनकर प्रसन्न मुखवाली वह पतिव्रता स्त्री प्रसन्नतासे विनीत हो दोनों हाथ जोड़कर कहने लगी—॥ १३॥

शुचिष्मती बोली—हे नाथ! यदि मैं वरके योग्य हूँ और यदि आपको मुझे वर प्रदान करना है तो मुझे शिवके समान पुत्र दीजिये, मैं कोई अन्य वर नहीं चाहती हूँ॥ १४॥

नन्दीश्वर बोले—उसके इस वचनको सुनकर वे पवित्रात्मा ब्राह्मण क्षणभरके लिये समाधिस्थ होकर अपने हृदयमें विचार करने लगे। अहो! मेरी इस स्त्रीने अत्यन्त दुर्लभ तथा मनोरथ मार्गसे दूर कैसी वस्तु माँगी है अथवा वे शिवजी ही सब कुछ पूरा करनेवाले हैं॥ १५-१६॥

उन शम्भुने ही इसके मुखमें वाणीरूपसे स्थित होकर ऐसा कहा है। शिवजीकी यदि ऐसी इच्छा है, तो उसे अन्यथा करनेमें कौन समर्थ हो सकता है!॥ १७॥

ऐसा विचारकर उदार बुद्धिवाले तथा एकपत्नी-व्रतमें परायण रहनेवाले विश्वानर मुनिने बादमें उस पत्नीसे कहा—॥ १८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार अपनी पत्नीको [अनेक प्रकारसे] आश्वस्त करके मुनि तप करनेके लिये वहाँ चले गये, जहाँ साक्षात् काशीनाथ विश्वेश्वर स्थित हैं॥ १९॥

उन्होंने शीघ्र ही वाराणसी पहुँचकर मणिकर्णिकाका दर्शन करके अपने सैकड़ों जन्मोंके अर्जित तीनों तापोंसे मुक्ति प्राप्त कर ली॥ २०॥

उसके बाद उन्होंने विश्वेश्वर आदि सभी लिंगोंका दर्शन करके काशीस्थ सभी कुण्डों, वापियों एवं सरोवरोंमें स्नान करके, सभी विनायकोंको नमस्कार करके, शिवा गौरीको प्रणाम करके, पापोंका भक्षण करनेवाले कालराज भैरवका भी पूजन किया, फिर प्रयत्नपूर्वक दण्डपाणि विनायक आदि प्रमुख गणोंकी स्तुतिकर, आदिकेशव आदि [मुख्य द्वादश केशवों]-को प्रसन्न करके फिर लोलार्क आदि प्रमुख सूर्योंको बार-बार प्रणाम किया, पुनः सभी तीर्थोंमें समाहितचित्त होकर पिण्डदान करके हजारों प्रकारके भोजनादिसे मुनियों तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्टकर महापूजोपचारसे भक्तिपूर्वक [अनेक] लिंगोंका पूजन करके वे बार-बार विचार करने लगे कि शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करनेवाला कौन-सा लिंग है, जहाँ पुत्रकी कामनासे मेरा तप सफल होगा ॥ २१—२६॥

उन बुद्धिमान् विश्वानर मुनिने कुछ क्षण ऐसा विचार करके शीघ्र ही पुत्र देनेवाले वीरेश [नामक] लिंगकी प्रशंसा की। [उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि] यह वीरेश्वर सिद्ध लिंग है, [इसकी पूजाके प्रभावसे] असंख्य साधक सिद्धिको प्राप्त किये हैं, इसीलिये यह श्रेष्ठ लिंग सबसे अधिक प्रसिद्ध है। लोग भक्तिभावसे समन्वित होकर वर्षपर्यन्त इस वीरेश्वर महालिंगकी पूजा करके आयु तथा पुत्रादि सभी मनोरथ प्राप्त करते हैं। अतः मैं भी यहीं वीरेश लिंगकी त्रिकाल आराधनाकर शीघ्र वैसा ही पुत्र प्राप्त करूँगा, जैसे कि मेरी स्त्रीने अभिलाषा की है॥ २७—३०॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा विचारकर बुद्धिमान्, पुण्यात्मा तथा व्रती ब्राह्मण विश्वानरने चन्द्रकूपके जलमें स्नानकर नियम धारण किया॥ ३१॥

उन्होंने एक मासपर्यन्त दिनमें एकाहार, एक मासपर्यन्त रात्रिमें एकाहार, एक मासपर्यन्त अयाचित आहार पुनः एक मासतक निराहार रहकर तप किया॥ ३२॥

वे एक महीनेतक दूध पीकर, एक महीनेतक शाक-फल खाकर, एक महीनेतक मुट्ठीभर तिल खाकर और एक महीने पानी पीकर रहे॥ ३३॥

वे एक महीनेतक पंचगव्य पीकर, एक मासतक चान्द्रायणव्रतकर, एक मासतक कुशाग्रका जल पीकर पुनः एक महीने वायु भक्षणकर रहने लगे॥ ३४॥

उत्तम वीरेश्वरलिंगकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हुए इस प्रकार उन्होंने एक वर्षतक अद्भुत तप किया॥ ३५॥

उसके बाद तेरहवें महीनेमें गंगाके जलमें प्रातःकाल स्नानकर ज्यों ही वे ब्राह्मण वीरेश्वरकी ओर आये, उसी समय उन तपोधनने [वीरेश्वर] लिंगके मध्यमें विभूतिसे विभूषित, आठ वर्षकी आकृतिवाले एक बालकको देखा। उस बालककी आँखें कानोंतक फैली हुई थीं, उसके ओठ गहरे लाल थे, मस्तकपर अत्यन्त पिंगलवर्णकी जटा शोभा पा रही थी, वह नग्न तथा प्रसन्नमुख था और बालोचित वेशभूषा तथा चिताका भस्म धारण किये हुए श्रुतिके सूक्तोंका पाठ करता हुआ लीलापूर्वक हँस रहा था॥ ३६—३९॥

उसे देखकर आनन्दित होकर रोमांचयुक्त विश्वानर मुनिने बार-बार हृदयसे '**नमोऽस्तु**' कहकर प्रणाम किया। तदनन्तर विश्वानर मुनि कृतार्थ होकर अभिलाषा पूर्ण करनेवाले आठ पद्योंसे बालकरूपधारी परमानन्दस्वरूप शिवकी स्तुति करने लगे॥ ४०-४१॥

विश्वानर बोले—यह सब कुछ एक अद्वितीय ब्रह्म ही है, वही सत्य है, वही सत्य है, सर्वत्र उस ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह ब्रह्म एकमात्र ही है और दूसरा कोई नहीं है, इसलिये मैं एकमात्र आप महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४२॥

हे शम्भो! एक आप ही सबका सृजन करनेवाले तथा हरण करनेवाले हैं, आप रूपविहीन होकर भी अनेक रूपोंमें एक रूपवाले हैं, जैसे आत्मधर्म एक होता हुआ भी अनेक रूपोंवाला है, इसलिये मैं आप महेश्वरको छोड़कर किसी अन्यकी शरण नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ॥ ४३॥

जिस प्रकार रस्सीमें साँप, सीपीमें चाँदी और मृगमरीचिकामें जलप्रवाह [मिथ्या] भासित होता है, उसी प्रकार [आपमें] यह सारा प्रपंच भासित हो रहा है। जिसके जान लेनेपर इस प्रपंचका मिथ्यात्व भलीभाँति ज्ञात हो जाता है, मैं उन महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४४॥

हे शम्भो! जिस प्रकार जलमें शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें आह्लादकत्व, पुष्पमें गन्ध एवं दुग्धमें घृत व्याप्त रहता है, उसी प्रकार सर्वत्र आप ही व्याप्त हैं, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४५॥

हे प्रभो! आप कानोंके बिना सुनते हैं, नाकके बिना सूँघते हैं, बिना पैरके दूरसे आते हैं, बिना आँखके देखते हैं और बिना जिह्वाके रस ग्रहण करते हैं, अतः आपको भलीभाँति कौन जान सकता है। इस प्रकार मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४६॥

हे ईश! आपको न साक्षात् वेद, न विष्णु, न सर्वस्रष्टा ब्रह्मा, न योगीन्द्र और न तो इन्द्रादि देवगण ही जान सकते हैं, केवल भक्त ही आपको जान पाता है, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ॥ ४७॥

हे ईश! आपका न तो गोत्र है, न जन्म है, न आपका नाम है, न आपका रूप है, न शील है एवं न देश। ऐसा होते हुए भी आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं और आप समस्त मनोरथोंको पूर्ण करते हैं, अतः मैं आपका भजन करता हूँ॥ ४८॥

हे कामशत्रो! सब कुछ आपसे है और आप ही सब कुछ हैं, आप पार्वतीपति हैं, आप दिगम्बर एवं अत्यन्त शान्त हैं। आप वृद्ध, युवा और बालक हैं। कौन ऐसा पदार्थ है, जो आप नहीं हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ ४९॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार स्तुतिकर हाथ जोड़े हुए वे ब्राह्मण जबतक पृथ्वीपर गिरते, तबतक वह बालक वृद्धोंके भी वृद्ध पुरातन पुरुषके रूपमें अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मणसे कहने लगा—॥ ५०॥

बालक बोला—हे विश्वानर! हे मुनिश्रेष्ठ! हे ब्राह्मण! आपने आज मुझे अत्यन्त सन्तुष्ट कर दिया। अतः आप प्रसन्नचित्त होकर उत्तम वर माँगिये॥ ५१॥

तब मुनियोंमें श्रेष्ठ वे विश्वानर मुनि प्रसन्नचित्त हो उठकर बालकरूपी शिवजीसे कहने लगे॥ ५२॥

विश्वानर बोले—हे महेश्वर! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतः आपसे कौन ऐसी बात है, जो छिपी रह सकती है। हे प्रभो! आप सर्वान्तरात्मा, भगवान्, शर्व तथा सब कुछ प्रदान करनेवाले हैं॥ ५३॥

दीनता प्रकट करनेवाली याचनाके लिये मुझे नियुक्त करके आप मुझसे क्या कहलाना चाहते हैं, हे महेशान! ऐसा जानकर आप जैसा चाहते हैं, वैसा करें॥ ५४॥

नन्दीश्वर बोले—पवित्र व्रत करनेवाले उन विश्वानरके इस पवित्र वचनको सुनकर परम पवित्र उस बालकरूप महादेवने मन्द-मन्द मुसकराकर कहा—॥ ५५॥

हे शुचे! आपने शुचिष्मतीमें हृदयसे जो इच्छा की है, वह थोड़े ही दिनोंमें निःसन्देह पूर्ण हो जायगी॥ ५६॥

हे महामते! मैं शुचिष्मतीके गर्भसे आपके पुत्ररूपमें जन्म लूँगा और शुद्धात्मा तथा सभी देवताओंको प्रिय मैं गृहपति नामसे प्रसिद्ध होऊँगा॥ ५७॥

आपके द्वारा कहा गया यह पवित्र अभिलाषाष्टक-स्तोत्र एक वर्षपर्यन्त तीनों कालमें शिवकी सन्निधिमें पढ़ते रहनेपर [मनुष्योंको] सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला होगा॥ ५८॥

इस स्तोत्रका पाठ पुत्र-पौत्र-धन प्रदान करनेवाला, सभी प्रकारकी शान्ति करनेवाला तथा सम्पूर्ण आपत्तियोंका विनाश करनेवाला है और यह स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पत्ति देनेवाला है, इसमें संशय नहीं है। यह स्तोत्र अकेला ही सभी स्तोत्रोंके तुल्य है तथा सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला है॥ ५९-६०॥

प्रातःकाल उठकर भली-भाँति स्नान करके शिव-लिंगकी पूजाकर वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका पाठ करता हुआ पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है॥ ६१॥

इस अभिलाषाष्टकस्तोत्रको जिस किसीको नहीं बताना चाहिये और इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये,

यह महावन्ध्या स्त्रीको भी सन्तान देनेवाला है॥ ६२॥

जो स्त्री अथवा पुरुष नियमपूर्वक शिवलिंगके समीप एक वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे यह स्तोत्र पुत्र प्रदान करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६३॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले बालक-रूपधारी शिवजी अन्तर्धान हो गये और वे विश्वानर ब्राह्मण भी प्रसन्नचित्त होकर अपने घर चले गये॥ ६४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतारवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

विश्वानरके पुत्ररूपमें गृहपति नामसे शिवका प्रादुर्भाव

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! घर आकर उस ब्राह्मणने परम हर्षसे युक्त होकर अपनी स्त्रीसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥ १॥

यह सुनकर उस विप्रपत्नी शुचिष्मतीको महान् आनन्द प्राप्त हुआ और वह प्रेमयुक्त होकर अपने भाग्यकी सराहना करने लगी॥ २॥

तदनन्तर कुछ समयके बाद उस ब्राह्मणद्वारा यथाविधि गर्भाधानकर्म किये जानेपर उसकी पत्नी गर्भवती हुई॥ ३॥

तत्पश्चात् उस विद्वान् ब्राह्मणने गृह्यसूत्रमें कथित विधिके अनुसार पुंस्त्वकी वृद्धिके लिये गर्भस्पन्दनके पहले ही भलीभाँति पुंसवन संस्कार किया॥ ४॥

तत्पश्चात् आठवाँ महीना आनेपर क्रियावेत्ता उस ब्राह्मणने सुखपूर्वक प्रसवके लिये गर्भके रूपकी वृद्धि करनेवाला सीमन्त-संस्कार कराया॥ ५॥

तदुपरान्त ताराओंके अनुकूल होनेपर बृहस्पतिके केन्द्रवर्ती होनेपर और शुभ ग्रहोंका योग होनेपर शुभ लग्नमें चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला सूतिकागृहके दीपकको अपने तेजसे शान्त अर्थात् प्रभाहीन-सा करनेवाला तथा सभी अरिष्टोंका विनाश करनेवाला पुत्र उस शुचिष्मतीके गर्भसे उत्पन्न हुआ॥ ६-७॥

वह बालक शिवजी ही थे, जो भूर्भुवः स्वः—इन तीनों लोकोंको समग्र सुख देनेके लिये अवतीर्ण हुए। उस समय गन्धको समग्र वहन करनेवाले वायुके वाहन (मेघ) दिशारूपी वधुओंके मुखपर वस्त्रसे बन गये अर्थात् चारों ओर काली घटा उमड़ आयी। वे घनघोर बादल गन्धवाली पुष्पराशिकी वर्षा करने लगे। देवदुन्दुभियाँ बज उठीं और सारी दिशाएँ निर्मल हो गयीं। प्राणियोंके मनोंके साथ चारों ओर नदियाँ स्वच्छ हो गयीं, अन्धकार पूर्णरूपसे दूर हो गया, रजोगुण विरज अर्थात् विनष्ट हो गया। प्राणी सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो गये। [चारों ओरसे] अमृतकी वर्षा होने लगी। सभी प्राणियोंकी वाणी कल्याणकारी और प्रिय लगनेवाली हो गयी॥ ८—११॥

रम्भा आदि अप्सराएँ, विद्याधरियाँ, किन्नरियाँ, देवपत्नियाँ और गन्धर्व-उरग एवं यक्षोंकी पत्नियाँ हजारोंकी संख्यामें अपने-अपने हाथोंमें मंगल-द्रव्य धारण किये हुए सुन्दर स्वरोंमें मंगल गीत गाती हुई वहाँ आ गयीं॥ १२-१३॥

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, विभाण्ड, माण्डवीपुत्र लोमश, रोमचरण, भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गर्ग, जातूकर्ण्य, पराशर, आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, दक्ष, वाल्मीकि, मुद्गल, शातातप, लिखित, शिलाद, उंछवृत्तिसे जीविका चलानेवाले शंख, जमदग्नि, संवर्त, मतंग, भरत, अंशुमान्, व्यास, कात्यायन, कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुक, ऋष्यशृंग, दुर्वासा, शुचि, नारद, तुम्बुरु, उत्तंक, वामदेव, पवन, असित, देवल, सालंकायन, हारीत, विश्वामित्र, भार्गव, अपने पुत्र [मार्कण्डेय]-के साथ मृकण्ड, पर्वत, दारुक, धौम्य, उपमन्यु, वत्स आदि मुनिगण तथा मुनिकन्याएँ उस बालककी [अदृष्ट] शान्तिके लिये विश्वानरके प्रशंसनीय आश्रमपर आ गये॥ १४—२०॥

बृहस्पतिसहित ब्रह्मा तथा भगवान् विष्णु, नन्दी, भृंगी तथा पार्वतीसहित शंकर, महेन्द्र आदि देवता,

पातालवासी नागगण एवं अनेक प्रकारके रत्न लेकर नदियोंसहित समुद्र वहाँ गये और स्थावर [पर्वत आदि] हजारोंकी संख्यामें जंगमरूप धारणकर वहाँ आये। उस महोत्सवमें अचानक असमयमें चाँदनी उत्पन्न हो गयी॥ २१—२३॥

उसके बाद ब्रह्माने विनम्र होकर स्वयं उसका जातकर्म-संस्कार किया, फिर वेदविधिका विचार करके ग्यारहवें दिन उसके रूपको देखकर उसका नाम गृहपति रखा। उन्होंने नामकरणके समय श्रुतिके मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए चारों वेदोंके चार मन्त्रोंसे उसे आशीर्वाद देकर लौकिक रीतिका आश्रय लेकर [रक्षामन्त्रोंसे] उसकी बालोचित रक्षा सम्पन्न की और हंसपर सवार हो सबके पितामह वे ब्रह्माजी अपने धामको चले गये। इसी प्रकार विष्णुके साथ शंकर भी अपने वाहनपर सवार हो अपने लोकको चले गये॥ २४—२७॥

वे आपसमें विचार कर रहे थे कि अहो! कैसा इसका रूप है, इसका विलक्षण तेज कैसा है और इसके सभी अंगलक्षण कैसे हैं, देखो शुचिष्मती कैसी भाग्यवती है कि [इसके गर्भसे] साक्षात् शिवजी प्रकट हो गये अथवा शिवजीके भक्तोंमें इस प्रकारकी घटना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; जिससे उनके द्वारा अर्चित रुद्र स्वयं प्रकट हो गये॥ २८-२९॥

इस प्रकार आपसमें प्रशंसा करते हुए पुलकित रोमोंवाले सभी देवता विश्वानरसे आज्ञा ले जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार चले गये॥ ३०॥

पुत्रवान् व्यक्ति पुत्रसे लोकोंको जीतता है—यह सनातनी श्रुति है, इसीलिये समस्त गृहस्थ पुत्रकी कामना करते हैं॥ ३१॥

पुत्रहीनका घर सूना है, पुत्रहीनका धन कमाना व्यर्थ है, अपुत्रका तप खण्डित है, जिसको पुत्र नहीं है, वह कभी पवित्र नहीं होता॥ ३२॥

पुत्रसे बढ़कर कोई परम लाभ नहीं, पुत्रसे बढ़कर कोई परम सुख नहीं और इस लोक तथा परलोकमें पुत्रसे बढ़कर कोई परम मित्र नहीं है॥ ३३॥

चौथे महीनेमें गृहपतिके पिताने उसका गृहनिष्क्रमण-संस्कार किया। फिर छठे महीनेमें उसका विधिपूर्वक अन्न-प्राशन और वर्ष पूरा होनेपर चूडाकरणसंस्कार किया॥ ३४॥

इसके बाद उस कर्मवेत्ताने श्रवणनक्षत्रमें कर्णवेध करके उसके ब्रह्मतेजकी अभिवृद्धिके लिये पाँच वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत-संस्कार किया॥ ३५॥

पुनः बुद्धिमान् पिताने उपाकर्मकर उसे वेदोंका अध्ययन कराया। इस प्रकार तीन वर्षमें ही उसने विधिपूर्वक अंग, पद तथा क्रमसहित समस्त वेदोंको पढ़ लिया॥ ३६॥

प्रतिभाशाली उस बालकने गुरु पिताके मुखसे समस्त विद्याएँ अपने विनय आदि गुणोंको प्रकाशित करते हुए मात्र साक्षिभावसे ग्रहण कर लिया॥ ३७॥

तदुपरान्त नौवें वर्षमें माता-पिताकी सेवामें निरत गृहपति तथा उसके पिता विश्वानरको देखनेके लिये नारदजी [वहाँ] आये॥ ३८॥

कौतुकी देवर्षि नारदजीने विश्वानरकी पर्णशालामें प्रवेशकर अर्घ्य, आसन आदि क्रमसे ग्रहणकर उनसे कुशल-मंगल पूछा और उसके बाद शिवके चरणोंका ध्यान करके उनके सामने ही उनके समग्र भाग्य तथा पुत्रधर्मका वर्णन विश्वानरसे किया॥ ३९-४०॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार! तदुपरान्त] मुनि नारदजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह शोभासम्पन्न बालक माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर भक्तिपूर्वक उनको नम्रतासे प्रणामकर बैठ गया॥ ४१॥

नारदजी बोले—हे वैश्वानर! मैं तुम्हारे लक्षणोंकी परीक्षा करूँगा, तुम आओ, मेरी गोदमें बैठ जाओ और अपना दाहिना हाथ मुझे दिखाओ। तब विद्वान् नारदजी बालकके तालु, जिह्वा आदिको देखकर शिवजीकी प्रेरणासे विश्वानरसे कहने लगे— ॥ ४२-४३॥

नारदजी बोले—हे विश्वानर! हे मुने! मैं आपके पुत्रके सब लक्षणोंको कहता हूँ, उसे आदरपूर्वक सुनिये, आपके पुत्रके सभी अंग उत्तम लक्षणोंसे युक्त हैं, इसलिये यह अत्यन्त भाग्यशाली है। किंतु इसके सर्वगुणसम्पन्न, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे समन्वित और चन्द्रमाके समान निर्मल कलाओंसे सुशोभित होनेपर भी विधाता ही इसकी

रक्षा करें। इसलिये सब तरहके उपायोंसे इस बालककी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि विधाताके विपरीत होनेपर गुण भी दोष हो जाता है। मुझे इस बातकी शंका है कि बारहवें वर्षमें इसे बिजली अथवा अग्निसे विघ्न है। ऐसा कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे देवलोकको चले गये॥ ४४—४७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतारवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

भगवान् शिवके गृहपति नामक अग्नीश्वरलिंगका माहात्म्य

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] नारदजीकी बात सुनकर स्त्रीसहित विश्वानरने उसे अत्यन्त दारुण वज्रपातके समान समझा॥ १॥

'हाय मैं मर गया'—ऐसा कहकर वे छाती पीटने लगे और पुत्रके शोकसे सन्तप्त होकर मूर्च्छित हो गये। शुचिष्मती भी अत्यधिक दु:खित होकर ऊँचे स्वरमें हाहाकार करती हुई व्याकुल इन्द्रियोंवाली होकर रोने लगी॥ २-३॥

शुचिष्मतीके विलापको सुनकर विश्वानर भी मूर्च्छाका त्याग करके उठकर अरे! यह क्या हुआ, यह क्या हुआ, इस प्रकार ऊँचे स्वरमें रोते हुए बोले—हाय! मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंका स्वामी, मेरा बाहर विचरनेवाला प्राण तथा मेरे आत्मामें निवास करनेवाला मेरा पुत्र गृहपति कहाँ है? तब अपने माता-पिताको अत्यधिक शोकसे व्याकुल देखकर शंकरजीके अंशसे उत्पन्न वह बालक गृहपति मुसकराकर कहने लगा— ॥ ४-५॥

गृहपति बोला—हे माता! हे पिता! क्या हुआ है? जिससे कि आपलोग इतने दुखी होकर रो रहे हैं, इसका कारण मुझे बताइये। इस तरह आपलोग भयभीत क्यों हो रहे हैं?॥ ६॥

आपलोगोंकी चरणधूलिसे सुरक्षित मेरे शरीरको काल भी मारनेमें समर्थ नहीं हो सकता, फिर अत्यन्त अल्प बिजली मेरा कर ही क्या सकती है?॥ ७॥

हे माता-पिता! आपलोग मेरी प्रतिज्ञा सुनें, यदि मैं आप दोनोंका पुत्र हूँ, तो ऐसा कार्य करूँगा, जिससे मृत्यु भी सन्त्रस्त हो जायगी। हे माता-पिता! मैं सत्पुरुषोंको सब कुछ देनेवाले सर्वज्ञ मृत्युंजय भगवान्‌की भलीभाँति आराधना करके महाकालको भी जीत लूँगा, यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ८-९॥

नन्दीश्वर बोले—उसकी इस प्रकारकी बातको सुनकर मुरझाये हुए द्विजदम्पती अकालमें हुई अमृतकी सघन वृष्टिके समान दु:खरहित होकर कहने लगे॥ १०॥

द्विजदम्पती बोले—[हे पुत्र!] फिर कहो! फिर कहो! तुमने क्या कहा कि मुझे काल भी मारनेमें समर्थ नहीं है। फिर बेचारी बिजली कौन है? तुमने हमलोगोंके शोकका निवारण करनेके लिये मृत्युंजयदेवताका समाराधनरूप उपाय उचित ही कहा है॥ ११-१२॥

शिवजीका आश्रय ही सचमुच ऐसा है, उनसे बड़ा कोई नहीं है, वे सभी पापोंको दूर करनेवाले एवं मनोरथमार्गसे भी परे कामनाको पूर्ण करनेवाले हैं॥ १३॥

हे तात! क्या तुमने नहीं सुना है कि पूर्वकालमें जब श्वेतकेतु कालपाशमें बाँध लिया गया था, तब शिवजीने उसकी रक्षा की थी? शिलादपुत्र नन्दीश्वर जो केवल आठ वर्षका बालक था, शिवजीने कालपाशसे छुड़ाकर उसे अपना गण तथा विश्वका रक्षक बना दिया॥ १४-१५॥

क्षीरसागरके मन्थनसे उत्पन्न तथा प्रलयाग्निके समान महाभयानक हालाहल विषको पीकर शिवजीने ही तीनों लोकोंकी रक्षा की थी॥ १६॥

जिन्होंने त्रिलोकीकी सम्पत्तियोंका हरण करनेवाले महान् अभिमानी जलन्धर नामक दैत्यको अपने सुन्दर अँगूठेकी रेखासे उत्पन्न चक्रके द्वारा मार डाला। जिन्होंने त्रिलोककी सम्पदाको प्राप्तकर मोहित हुए त्रिपुरको एक ही बाण चलाकर उससे उत्पन्न हुई ज्वालाओंवाली अग्निसे सुखा डाला और जिन्होंने

त्रिलोकके विजयसे उन्मत्त हुए कामदेवको ब्रह्मा आदिके देखते-ही-देखते दृष्टिनिक्षेपमात्रसे अनंग बना दिया। हे पुत्र! तुम ब्रह्मा आदिके एकमात्र जन्मदाता, मेघपर सवार होनेवाले, अविनाशी तथा विश्वकी रक्षारूप मणि उन शिवजीकी शरणमें जाओ॥ १७—२०॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! माता-पिताकी आज्ञा पाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करके और उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन देकर वह वहाँसे चल दिया और उस काशीपुरीमें पहुँचा, जो ब्रह्मा, नारायण आदि देवोंके लिये दुर्लभ, महाप्रलयके सन्तापका विनाश करनेवाली, विश्वेश्वरद्वारा पालित, कण्ठ अर्थात् तटप्रदेशमें हारकी तरह पड़ी हुई गंगाजीसे सुशोभित और अद्भुत गुणोंसे सम्पन्न हरपत्नी [भगवती गिरिजा]-से शोभायमान है॥ २१—२३॥

वहाँ पहुँचकर वे विप्रवर पहले मणिकर्णिका गये। वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके प्रभु विश्वेश्वरका दर्शन करके उन बुद्धिमान्ने परम आनन्दसे युक्त होकर तीनों लोकोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले शिवजीको हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम किया। वे बार-बार उसे देखकर हर्षित हो रहे थे और मनमें विचार कर रहे थे कि सचमुच यह लिंग परम आनन्दकन्दसे परिपूर्ण है, यह स्पष्ट ही है, इसमें संशय नहीं है॥ २४—२६॥

अहो! इस चराचर त्रिलोकीमें मुझसे बढ़कर कोई धन्य नहीं है, जो कि मैंने आज ऐश्वर्यमय तथा सर्वव्यापी विश्वेश्वरका दर्शन किया॥ २७॥

मेरे भाग्योदयके लिये ही महर्षि नारदने जो मुझे आकर पहले ही बता दिया था, जिससे आज मैं [विश्वेश्वरका दर्शन प्राप्तकर] कृतकृत्य हो गया॥ २८॥

नन्दीश्वर बोले—मुने! इस प्रकार आनन्दामृतरूपी रसोंद्वारा पारण करके गृहपतिने शुभ दिनमें सर्वहितप्रद शिवलिंगकी स्थापना की॥ २९॥

तत्पश्चात् अजितेन्द्रियोंके लिये अति दुष्कर कठोर नियमोंको ग्रहणकर अनुष्ठानपरायण हुआ पवित्र चित्तवाला वह प्रतिदिन वस्त्रोंसे छाने गये गंगाजलसे पूर्ण एक सौ आठ पवित्र घड़ोंसे शिवजीको स्नान कराने लगा और एक हजार आठ नीलकमलोंसे बनी हुई माला समर्पित करने लगा॥ ३०-३१½॥

पहले वह पक्षमें [एक बार] फिर महीने-महीनेमें फल-मूल-कन्दको खाकर [छः महीनेतक] रहा। इसके बाद अत्यन्त धीर वह गृहपति पुनः छः मास सूखे पत्ते खाकर और छः महीने वायु पीकर, फिर छः महीने एक बूँद जल पीकर तपस्या करनेमें लगा रहा॥ ३२-३३॥

हे नारद! इस प्रकार एकमात्र शिवजीको मनमें धारण करके तपमें निरत उस महात्माके दो वर्ष बीत गये। हे शौनक! तब जन्मसे बारहवें वर्षमें देवर्षि नारदद्वारा कही गयी बातको मानो सत्य करनेकी इच्छासे स्वयं इन्द्रदेव उसके पास आये और बोले—हे विप्र! मैं इन्द्र इस उत्तम तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ, तुम्हारे मनमें जो अभिलषित हो, उस वरको माँगो, मैं प्रदान कर रहा हूँ॥ ३४—३६॥

नन्दीश्वर बोले—इन्द्रके इस वचनको सुनकर महाधीर मुनिकुमारने मधुर मधुराक्षरमयी वाणीमें कहा— ॥ ३७॥

गृहपति बोला—हे मघवन्! हे वृत्रशत्रो! मैं वज्र धारण करनेवाले आपको जानता हूँ। मैं आपसे वर नहीं माँगता, मुझे वर देनेवाले तो शिवजी हैं॥ ३८॥

इन्द्र बोले—हे बालक! मेरे सिवा कोई दूसरा शिव नहीं है, मैं सभी देवताओंका भी देव हूँ। अतः तुम अपना लड़कपन त्यागकर [मुझसे] वर माँगो और देर मत करो॥ ३९॥

गृहपति बोला—तुम अहल्याके शीलको नष्ट करनेवाले असाधु हो, पाक नामक असुरका वध करनेवाले पर्वतोंके शत्रु हे इन्द्र! तुम चले जाओ, यह स्पष्ट है कि मैं शिवजीके अतिरिक्त और किसी देवतासे वरकी प्रार्थना नहीं करता॥ ४०॥

नन्दीश्वर बोले—उसकी यह बात सुनते ही क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले इन्द्र अपना घोर वज्र उठाकर बालकको भयभीत करने लगे॥ ४१॥

विद्युज्ज्वालाके समान प्रज्वलित वज्रको देखकर नारदकी बातका स्मरण करता हुआ वह बालक भयसे व्याकुल होकर मूर्च्छित हो गया। उसके पश्चात् अन्धकारका नाश करनेवाले गौरीपति शिवजी प्रकट हो गये और हाथके स्पर्शसे उसे जीवित-सा करते हुए उससे बोले—

उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो॥ ४२-४३॥

तब [उस अपूर्व स्पर्शको प्राप्त करके] उसने रात्रिमें सोये हुएके समान अपने नेत्रकमलोंको खोलकर उठ करके अपने आगे सैकड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान शिवजीको देखा। उनके मस्तकमें नेत्र शोभित हो रहा था, कण्ठमें विषकी कालिमा थी, वे बैलपर सवार थे, उनके बायीं ओर भगवती पार्वती स्थित थीं, उनके मस्तकपर अर्धचन्द्र सुशोभित हो रहा था, वे जटाजूटसे युक्त थे, त्रिशूल एवं अजगव धनुष धारण किये हुए थे। उनका गौर शरीर कर्पूरके समान उज्ज्वल था और वे गजचर्म धारण किये हुए थे। तब गुरुवाक्य तथा आगमप्रमाणसे उन्हें महादेव जानकर हर्षातिरेकसे उसका कण्ठ रुँध गया और शरीर रोमांचित हो गया। उसकी स्मृति लुप्त हो गयी। फिर भी वह जैसे-तैसे क्षणभरके लिये चित्रलिखित पुतलेके समान स्तम्भित हो अवाक् खड़ा रहा॥ ४४—४८॥

जब वह न तो स्तुति, न नमस्कार और न कुछ कहनेमें ही समर्थ रहा, तब शिवजीने मुसकराकर उससे कहा— ॥ ४९॥



ईश्वर बोले—हे बालक! हे गृहपते! मैंने समझ लिया कि तुम हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रसे डर गये हो, अब डरो मत! यह तो मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली थी। मेरे भक्तको इन्द्र, वज्र अथवा काल भी नहीं डरा सकते हैं। यह तो मैंने ही इन्द्रका रूप धारणकर तुम्हें डराया था॥ ५०-५१॥

हे भद्र! अब मैं तुम्हें वर प्रदान करता हूँ कि तुम अग्निका पद ग्रहण करनेवाले हो जाओ। तुम सभी देवताओंके वरदाता बनोगे। तुम सभी प्राणियोंके अन्दर [वैश्वानर नामकी] अग्नि बनकर विचरण करो और दक्षिण एवं पूर्व दिशाके मध्यमें [आग्नेयकोणका] दिगीश्वर बनकर राज्य करो॥ ५२-५३॥

तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिंग [आजसे] तुम्हारे ही नामसे [प्रसिद्ध] होगा। यह अग्नीश्वर नामवाला होगा, जो सभी तेजोंका विशिष्ट रूपसे अभिवर्धन करेगा। अग्नीश्वरके भक्तोंको विद्युत् एवं अग्निसे भय नहीं होगा। उन्हें अग्निमान्द्यका भय नहीं होगा और अकालमरण भी कभी नहीं होगा॥ ५४-५५॥

सम्पूर्ण समृद्धियोंको देनेवाले इस अग्नीश्वर लिंगका काशीमें पूजन करके मनुष्य दैवयोगसे यदि कहीं भी मृत्युको प्राप्त होगा, तो उसे अग्निलोककी प्राप्ति हो जायगी॥ ५६॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर शिवजीने गृहपतिके [माता-पिता एवं] बन्धुओंको बुलाकर उनके माता-पिताके देखते-देखते उस बालकको अग्निकोणके दिक्पालपदपर अभिषिक्तकर स्वयं उस लिंगमें प्रवेश किया॥ ५७॥

हे तात! इस प्रकार मैंने परमात्मा शिवके गृहपति नामक अग्निके रूपमें दुर्जनोंको पीड़ा देनेवाले अवतारका वर्णन किया॥ ५८॥

चित्रहोत्र नामक सुखदायिनी, रम्य तथा प्रकाशमान पुरी है, जो लोग अग्निके भक्त हैं, वे वहाँ निवास करते हैं॥ ५९॥

जितेन्द्रिय एवं दृढ़ सत्त्व भाववाले पुरुष अथवा सत्त्वसम्पन्न स्त्रियाँ उस अग्निलोकमें प्रवेश करती हैं, वे सभी अग्निके समान तेजस्वी होते हैं॥ ६०॥

अग्निहोत्रमें तत्पर ब्राह्मण, अग्निको स्थापित करनेवाले ब्रह्मचारी तथा पंचाग्नि तापनेवाले तपस्वी लोग भी अग्निके समान तेजस्वी होकर अग्निलोकमें निवास करते हैं॥ ६१॥

जो शीतकालमें शीतको दूर करनेके लिये काष्ठ-समूहका दान करता है अथवा ईंटोंसे अग्निकुण्डका

निर्माण करता है, वह अग्निके सान्निध्यमें निवास करता है। जो श्रद्धायुक्त होकर अनाथ व्यक्तिका अग्निसंस्कार करता है अथवा स्वयं अशक्त होनेपर [इसके लिये] दूसरेको प्रेरित करता है, वह अग्निलोकमें पूजित होता है॥ ६२-६३॥

एकमात्र अग्निदेव ही द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)-का परम कल्याण करनेवाले हैं। अग्नि ही उनके गुरु, देवता, व्रत, तीर्थ एवं सब कुछ हैं—ऐसा निश्चित है॥ ६४॥

अग्निके संसर्गमात्रसे क्षणभरमें ही सभी अपवित्र वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं, इसलिये इन्हें पावक कहा गया है॥ ६५॥

ये अग्नि प्राणियोंके साक्षात् अन्तरात्मा हैं और निश्चय ही सब कुछ जला देनेवाले हैं। ये स्त्रियोंकी कुक्षिमें मांसके ग्रासोंको तो पचा देते हैं, किंतु उसीमें रहनेवाले मांसपेशी (गर्भ)-को [दयावश] नहीं पचाते॥ ६६॥

ये अग्नि साक्षात् शिवकी तेजोमयी दहनात्मिका मूर्ति हैं। यही [अग्निरूपा मूर्ति] सृष्टि करनेवाली, विनाश करनेवाली एवं पालन करनेवाली है। इनके बिना कुछ नहीं दिखायी पड़ता है॥ ६७॥

ये अग्नि शिवजीके साक्षात् नेत्र हैं। अन्धकारसे पूर्ण इस तमोमय संसारको अग्निके बिना कौन प्रकाशित कर सकता है॥ ६८॥

धूप, दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घी एवं मिष्टान्नादि पदार्थ अग्निमें हवन करनेपर स्वर्गमे निवास करनेवाले देवगण उसे प्राप्त करते हैं॥ ६९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतार-वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

यक्षेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! अब आप [भगवान्] शम्भुके यक्षेश्वरावतारको सुनिये, जो अहंकारसे युक्त जनोंके गर्वको नष्ट करनेवाला तथा सज्जनोंकी भक्तिका संवर्धन करनेवाला है॥ १॥

पूर्वकालमें महाबलवान् देवता एवं दैत्योंने अपने-अपने स्वार्थके लिये आपसमें भलीभाँति सन्धिकर अमृत प्राप्त करनेके लिये क्षीरसागरका मन्थन किया था॥ २॥

जब देवता एवं दानव अमृतके लिये क्षीरसागरका मन्थन कर रहे थे तो सर्वप्रथम [समुद्रमें विद्यमान] अग्निसे कालाग्निके समान विष निकला॥ ३॥

हे तात! उस विषको देखते ही समस्त देवता और दानव भयसे व्याकुल हो गये और वे भागकर शीघ्र ही शिवजीकी शरणमें गये॥ ४॥

विष्णुसहित सभी देवता समस्त देवताओंके शिखामणिस्वरूप उन शिवजीको देखकर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। उससे प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् सदाशिवने देवता एवं दानवोंको पीड़ित करनेवाले उस महाघोर विषका पान कर लिया॥ ५-६॥

पीये गये उस महाभयानक विषको उन्होंने अपने कण्ठमें ही धारण कर लिया, उससे वे प्रभु अत्यन्त सुशोभित हुए और नीलकण्ठ नामवाले हो गये॥ ७॥

उसके पश्चात् शिवजीके अनुग्रहसे विषके दाहसे मुक्त हुए देवताओं एवं असुरोंने पुनः समुद्रका मन्थन किया॥ ८॥

हे मुने! इसके बाद देवता तथा दानवोंके [प्रयत्नोंसे मथे गये] समुद्रसे अनेक रत्न निकले और अमृत जैसा—यह उत्तम पदार्थ भी उसीसे निकला, किंतु विष्णुकी कृपासे देवताओं तथा असुरोंमेंसे केवल देवता ही उसे पी गये, असुर नहीं। तब यह महान् रत्न उनके बीच द्वेषका कारण बन गया॥ ९-१०॥

हे मुने! देवों और दानवोंमें [भीषण] द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ, तब राहुसे पीड़ित हुए चन्द्रमा उसके भयसे सन्तप्त होकर भाग खड़े हुए और भयसे व्याकुल होकर

शिवजीकी शरणमें उनके भवन गये एवं प्रणाम करके 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—इस प्रकार कहते हुए उनकी स्तुति करने लगे॥ ११-१२॥

तब सत्पुरुषोंको अभय प्रदान करनेवाले भक्तवत्सल तथा सर्वव्यापक शिवजीने शरणमें आये हुए चन्द्रमाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया॥ १३॥

तदनन्तर [चन्द्रमाका पीछा करता हुआ] राहु भी वहाँ आया और उसने सर्वेश्वर शिवजीको भलीभाँति प्रणामकर आदरपूर्वक प्रिय वाणीमें उनकी स्तुति की॥ १४॥

शिवजीने उसका अभिप्राय जानकर पूर्वमें विष्णुके द्वारा काटे गये उसके केतुसंज्ञक सिरोंको [अपनी मुण्डमालामें पिरोकर] गलेमें धारण कर लिया॥ १५॥

इसके बाद उस युद्धमें सभी असुर देवताओंसे पराजित हो गये। अमृतका पान करके सभी महाबली देवगणोंने विजय प्राप्त की॥ १६॥

[विजय प्राप्त कर लेनेपर] शिवजीकी मायासे मोहित हुए विष्णु आदि देवताओंको अत्यन्त अहंकार हो गया और वे अपने-अपने बलोंकी प्रशंसा करने लगे॥ १७॥

हे मुने! इसके बाद गर्वको चूर करनेवाले सर्वाधीश वे भगवान् शंकर यक्षका रूप धारणकर जहाँ देवगण स्थित थे, वहाँ शीघ्र गये॥ १८॥

गर्वका नाश करनेवाले यक्षपतिरूपी महेशने विष्णु आदि देवगणोंको देखकर अत्यन्त गर्वयुक्त मनसे उनसे कहा—॥ १९॥

यक्षेश्वर बोले—हे देवताओ! आप सभी यहाँ एकत्र होकर किसलिये खड़े हैं? मैं इसका कारण पूछ रहा हूँ, आपलोग बतायें॥ २०॥

देवता बोले—हे देव! यहाँ [देव-दानवोंमें] भयंकर विकट संग्राम छिड़ा हुआ था, जिसमें समस्त असुर विनष्ट हो गये और जो बचे थे, वे भागकर चले गये॥ २१॥

हम सब बड़े पराक्रमी, दैत्योंको मारनेवाले तथा बड़े बलशाली हैं। हमारे समक्ष तुच्छ बलवाले वे क्षुद्र दैत्य भला किस प्रकार टिक सकते हैं?॥ २२॥

नन्दीश्वर बोले—देवताओंकी गर्वभरी यह बात सुनकर गर्वका नाश करनेवाले यक्षरूपी महादेवने यह वचन कहा—॥ २३॥

यक्षेश्वर बोले—हे देवगणो! आप सभी लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये, मैं [आप] सबके गर्वका नाश करनेवाला यथार्थ वचन कह रहा हूँ, असत्य नहीं। आपलोग इस प्रकारका अहंकार मत कीजिये, सबका रचयिता और संहारकर्ता स्वामी तो कोई दूसरा ही है। आपलोग उन महादेवको भूल गये और निर्बल होकर भी अपने बलका वृथा घमण्ड करते हैं॥ २४-२५॥

हे देवगण! अपने महान् बलको जानते हुए आपलोगोंको यदि घमण्ड है, तो आपलोग मेरे द्वारा रखे गये इस तिनकेको अपने उन शस्त्रोंसे काटें॥ २६॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर सत्पुरुषोंको गति देनेवाले यक्षरूपी महादेवजीने उन देवताओंके आगे एक तिनका फेंक दिया, जिसके द्वारा उन्होंने सभी देवताओंका मद दूर कर दिया॥ २७॥

[इस तिनकेको काटनेके लिये] अपनेको वीर माननेवाले विष्णु आदि सभी देवताओंने अपने पुरुषार्थका प्रयोग करके उसके ऊपर अपने-अपने अस्त्रको चलाया। किंतु मूढ़ोंके गर्वका नाश करनेवाले [भगवान्] शिवके प्रभावसे उन देवताओंके वे अस्त्र शीघ्र ही बेकार हो गये॥ २८-२९॥

तब देवताओंके आश्चर्यको दूर करनेवाली आकाश-वाणी हुई कि हे देवताओ! ये यक्ष [-रूपमें] सबके अहंकारका अपहरण करनेवाले सदाशिव ही हैं॥ ३०॥

ये परमेश्वर ही सबके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं। इन्हींके बलसे सभी जीव बलवान् हैं, अन्यथा नहीं॥ ३१॥

हे देवताओ! इनकी मायाके प्रभावसे मोहित होकर तथा अहंकारवश आपलोग अपने ज्ञानमूर्ति स्वामी भगवान् शिवको अभीतक पहचान नहीं सके!॥ ३२॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकारकी आकाशवाणीको सुनकर देवताओंका सारा गर्व दूर हो गया और वे अपने ईश्वरको पहचान गये। उन्होंने यक्षेश्वरको प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की॥ ३३॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! सबके अभिमानको दूर करनेवाले हे यक्षेश्वर! महालीला करनेवाले हे प्रभो! आपकी माया अत्यन्त अद्भुत है॥ ३४॥

हे प्रभो! यक्षरूप धारण करनेवाले आपकी मायासे मोहित हुए हमलोग इस समय अपनेको [आपसे] पृथक् समझकर आपके सामने ही गर्वपूर्वक बोल रहे हैं॥ ३५॥

हे प्रभो! हे शंकर! अब आपकी ही कृपासे हमें इस समय ज्ञान हो गया कि आप ही कर्ता, हर्ता एवं भर्ता हैं, दूसरा नहीं। आप ही सभी जीवोंकी समस्त शक्तियोंके प्रवर्तक एवं निवर्तक हैं, आप ही सर्वेश, परमात्मा, अव्यय एवं अद्वितीय हैं॥ ३६-३७॥

आपने यक्षेश्वरका रूप धारणकर जो हमलोगोंके मदको दूर कर दिया है, उसे हमलोग आप कृपालुके द्वारा किया गया परम अनुग्रह मानते हैं॥ ३८॥

उसके पश्चात् वे यक्षेश्वर सम्पूर्ण देवताओंपर कृपा करते हुए उन्हें अनेक वचनोंसे समझाकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३९॥

[हे मुनीश्वर!] इस प्रकार शिवजीके यक्षेश्वर नामक अवतारका वर्णन कर दिया गया, जो सबको आनन्द देनेवाला तथा सुख प्रदान करनेवाला है। यह यक्षरूप प्रसन्न होनेपर सज्जनोंको अभय प्रदान करनेवाला है॥ ४०॥

यह आख्यान अत्यन्त निर्मल तथा सबके अभिमानको नष्ट करनेवाला है। यह सत्पुरुषोंको सर्वदा शान्तिदायक एवं मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। जो बुद्धिमान् मनुष्य भक्तिसे युक्त हो इसको सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और इसके बाद परमगतिको प्राप्त करता है॥ ४१-४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यक्षेश्वरावतार-वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवान् शिवके महाकाल आदि प्रमुख दस अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब आप उपासनाकाण्डद्वारा सेवित महेश्वरके सर्वप्रथम होने-वाले महाकाल आदि दस प्रमुख अवतारोंको भक्तिपूर्वक सुनिये॥ १॥

उनमें प्रथम महाकाल नामक अवतार है, जो सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। [इस अवतारमें] उनकी शक्ति महाकाली हैं, जो भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करती हैं॥ २॥

दूसरा अवतार तार नामसे विख्यात है, जिनकी शक्ति तारा हैं। ये दोनों ही अपने भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाले एवं भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं॥ ३॥

तीसरा अवतार बाल भुवनेश्वरके नामसे पुकारा जाता है। उनकी शक्ति बाला भुवनेश्वरी कही जाती हैं, ये सत्पुरुषोंको सुख प्रदान करती हैं। चौथा अवतार षोडश नामक विद्येशके रूपमें हुआ है। षोडशी श्रीविद्या उनकी महाशक्ति हैं। यह अवतार भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाला तथा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है॥ ४-५॥

पाँचवाँ अवतार भैरव नामसे प्रसिद्ध है, जो भक्तोंकी कामनाओंको निरन्तर पूर्ण करनेवाला है। इनकी महाशक्ति गिरिजा भैरवी नामसे प्रसिद्ध हैं, जो सज्जनों एवं उपासकोंकी कामनाएँ पूर्ण करती हैं॥ ६॥

शिवका छठा अवतार छिन्नमस्तक नामक कहा गया है और उनकी महाशक्ति छिन्नमस्तका गिरिजा हैं, जो अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाली हैं॥ ७॥

शिवके सातवें अवतारका नाम धूमवान् है, जो सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। उनकी शक्ति धूमावती हैं, जो सज्जन उपासकोंको फल देनेवाली हैं॥ ८॥

शिवजीका आठवाँ अवतार बगलामुख है, जो सुख देनेवाला है। उनकी शक्ति बगलामुखी कही गयी हैं, जो परम आनन्दस्वरूपिणी हैं॥ ९॥

शिवजीका नौवाँ अवतार मातंग नामसे विख्यात है और उनकी शक्ति मातंगी हैं, जो [अपने भक्तोंकी] समस्त कामनाओंका फल प्रदान करती हैं॥ १०॥

शिवजीका कल्याणकारी दसवाँ अवतार कमल नामवाला है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। उनकी शक्ति पार्वतीका नाम कमला है, जो भक्तोंका पालन

करती हैं ॥ ११ ॥

शिवजीके ये दस अवतार हैं, जो सज्जनों एवं भक्तोंको सर्वदा सुख देनेवाले तथा उन्हें भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं ॥ १२ ॥

महात्मा शिवके ये दसों अवतार निर्विकार रूपसे सेवा करनेवालोंको निरन्तर सभी प्रकारके सुख देते रहते हैं। हे मुने! मैंने शंकरजीके इन दसों अवतारोंके माहात्म्यका वर्णन किया है, इस माहात्म्यको सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है तथा यह तन्त्रशास्त्रोंमें निगूढ़ है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

हे मुने! इन [अवतारोंकी] आदि शक्तियोंकी महिमा भी अद्भुत है। इसे सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाली तथा तन्त्रशास्त्र आदिमें गोपित जानना चाहिये। ये शक्तियाँ दुष्टोंको दण्ड देनेवाली तथा ब्रह्मतेजका विवर्धन करनेवाली हैं और शत्रुनिग्रह आदि कार्यके लिये सर्वश्रेष्ठ कही गयी हैं ॥ १५-१६ ॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने शक्तियोंसहित शिवजीके महाकालादि प्रमुख शुभ दस अवतारोंका वर्णन किया ॥ १७ ॥

जो भक्तिमें तत्पर होकर सभी शैव पर्वोंमें शिवके इस निर्मल इतिहासको पढ़ता है, वह शिवका अत्यन्त प्रिय हो जाता है; ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे युक्त तथा क्षत्रिय विजयी हो जाता है, वैश्य धनाधिपति हो जाता है एवं शूद्र सुख प्राप्त करता है ॥ १८-१९ ॥

अपने धर्ममें स्थित होकर इस चरित्रको सुननेवाले शिवभक्त सुखी हो जाते हैं और वे विशेषरूपसे शिवके भक्त हो जाते हैं ॥ २० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवदशावतार-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

शिवजीके एकादश रुद्रावतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब शिवजीके उत्तम ग्यारह अवतारोंको सुनिये, जिन्हें सुनकर मनुष्यको असत्य आदिसे उत्पन्न होनेवाला पाप पीड़ित नहीं करता है ॥ १ ॥

पूर्वकालकी बात है, दैत्योंसे पराजित होकर इन्द्र आदि देवता भयसे अपनी अमरावतीपुरी छोड़कर भाग गये थे। दैत्योंसे पीड़ित वे देवता कश्यपके समीप गये और अत्यन्त विनम्रताके साथ हाथ जोड़कर व्याकुलचित्त हो उन्हें प्रणाम किया ॥ २-३ ॥

भलीभाँति उनकी स्तुति करके सभी देवताओंने आदरपूर्वक प्रार्थनाकर अपने पराजयजन्य दुःखको निवेदन किया। हे तात! उसके बाद शिवमें आसक्त मनवाले उनके पिता कश्यप देवताओंका दुःख सुनकर कुछ दुखी तो हुए, पर अधिक नहीं; [क्योंकि उनकी बुद्धि शिवमें निरत थी] ॥ ४-५ ॥

हे मुने! शान्त बुद्धिवाले उन मुनिने देवताओंको आश्वस्त करके तथा धैर्य धारण करके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक विश्वेश्वरपुरी काशीकी ओर प्रस्थान किया ॥ ६ ॥

वहाँ गंगाके जलमें स्नान करके श्रद्धासे नित्यक्रियाकर उन्होंने पार्वतीसहित सर्वेश्वर प्रभु विश्वेश्वरका पूजन किया और देवगणोंके कल्याणकी कामनासे शिवकी प्रसन्नताहेतु श्रद्धायुक्त हो लिंगकी स्थापनाकर कठोर तप करने लगे ॥ ७-८ ॥

हे मुने! इस प्रकार शिवके चरणकमलोंमें आसक्त मनवाले उन धैर्यवान् महर्षिको तप करते हुए बहुत समय बीत गया ॥ ९ ॥

तब सज्जनोंके एकमात्र शरण दीनबन्धु भगवान् शिव अपने चरणकमलोंमें आसक्त मनवाले उन ऋषिको वर देनेके लिये प्रकट हुए ॥ १० ॥

भक्तवत्सल शिवजीने अति प्रसन्न होकर अपने भक्त मुनिश्रेष्ठ कश्यपसे 'वर माँगिये'—ऐसा कहा ॥ ११ ॥

उन महेश्वरको देखकर देवगणके पिता कश्यपने हर्षित हो उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति की ॥ १२ ॥

कश्यपजी बोले—हे देवदेव! हे महेशान! हे शरणागतवत्सल! आप सर्वेश्वर, परमात्मा, ध्यानगम्य, अद्वितीय तथा अविनाशी हैं॥ १३॥

हे महेश्वर! आप बलवानोंका निग्रह करनेवाले, सज्जनोंको शरण देनेवाले, दीनबन्धु, दयासागर एवं भक्तोंकी रक्षा करनेमें दक्ष बुद्धिवाले हैं॥ १४॥

ये सभी देवता आपके हैं और विशेषरूपसे आपके भक्त हैं। हे प्रभो! इस समय ये दैत्योंसे पराजित हो गये हैं, अतः आप इन दुःखियोंकी रक्षा कीजिये॥ १५॥

विष्णु भी असमर्थ हो जानेपर आपको ही बारम्बार कष्ट देते हैं। इसलिये देवता भी [मानो असहायसे होकर] अपना दुःख प्रकट करते हुए मेरी शरणमें आये हुए हैं॥ १६॥

हे देवदेवेश! हे देवगणके दुःखका निवारण करनेवाले! मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। [अतएव देवताओंके] अभीष्टको पूर्ण करनेके लिये काशीपुरीमें आकर आपके लिये तपस्या कर रहा हूँ॥ १७॥

हे महेश्वर! मैं सब प्रकारसे आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ। हे स्वामिन्! मेरी कामनाको पूर्ण कीजिये और देवताओंके दुःखको दूर कीजिये॥ १८॥

हे देवेश! मैं अपने पुत्रोंके दुःखोंसे विशेषरूपसे दुखी हूँ। हे ईश! मुझे सुखी कीजिये; आप ही देवताओंके सहायक हैं। हे नाथ! देवता तथा यक्ष महाबली दैत्योंसे पराभवको प्राप्त हुए हैं, अतः हे शम्भो! आप मेरे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होकर देवताओंको आनन्द प्रदान कीजिये॥ १९-२०॥

हे महेश्वर! हे प्रभो! जिस प्रकार इन देवताओंको दैत्योंके द्वारा की जानेवाली बाधा पीड़ित न करे, उस प्रकार आप सदा सभी देवताओंके सहायक बनें॥ २१॥

नन्दीश्वर बोले—कश्यपके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सर्वेश्वर हर भगवान् शंकरजी 'तथास्तु' कहकर उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये॥ २२॥

कश्यपजी भी अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र अपने स्थानपर चले गये और उन्होंने आदरपूर्वक देवताओंसे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया॥ २३॥

उसके बाद संहर्ता शंकरजीने अपना वचन सत्य करनेके निमित्त ग्यारह रूप धारणकर कश्यपसे उनकी सुरभि नामक पत्नीके गर्भसे अवतार ग्रहण किया॥ २४॥

उस समय महान् उत्सव हुआ और सब कुछ शिवमय हो गया। कश्यपमुनिसहित सभी देवता भी बहुत प्रसन्न हुए॥ २५॥

कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद्, अहिर्बुध्न्य, शम्भु, चण्ड तथा भव—ये ग्यारहों रुद्र सुरभिके पुत्र कहे गये हैं। ये सुखके आवासस्थान [रुद्रगण] देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये उत्पन्न हुए थे। वे कश्यपपुत्र रुद्रगण वीर तथा महान् बल एवं पराक्रमवाले थे। इन्होंने संग्राममें देवताओंके सहायक बनकर दैत्योंका संहार कर डाला॥ २६—२८॥

उन रुद्रोंकी कृपासे इन्द्र आदि सभी देवता दैत्योंको जीतकर निर्भय हो गये और स्वस्थचित्त होकर अपना-अपना राजकार्य सँभालने लगे॥ २९॥

आज भी शिवस्वरूप वे सभी महारुद्र देवताओंकी रक्षाके लिये सदा स्वर्गमें विराजमान हैं॥ ३०॥

भक्तवत्सल एवं नाना प्रकारकी लीला करनेमें निपुण वे सब ईशानपुरीमें निवास करते हैं तथा वहाँ सदा रमण करते हैं॥ ३१॥

उनके अनुचर करोड़ों रुद्र कहे गये हैं, जो तीनों लोकोंमें विभक्त होकर चारों ओर सर्वत्र स्थित हैं॥ ३२॥

हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे शंकरजीके अवतारोंका वर्णन किया; ये एकादश रुद्र सबको सुख प्रदान करनेवाले हैं॥ ३३॥

यह आख्यान निर्मल, सभी पापोंको दूर करनेवाला, धन तथा यश प्रदान करनेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है॥ ३४॥

हे तात! जो सावधान होकर इसको सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सब प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें एकादशावतार-वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

शिवजीके दुर्वासावतारकी कथा

नन्दीश्वर बोले—हे महामुने! अब आप शम्भुके एक और चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनिये, जिसमें शंकरजी धर्म [की स्थापना]-के लिये दुर्वासा होकर प्रकट हुए थे॥ १॥

ब्रह्माके परम तपस्वी एवं ब्रह्मवेत्ता अत्रि नामक पुत्र हुए; वे बड़े बुद्धिमान्, ब्रह्माजीकी आज्ञाका पालन करनेवाले एवं अनसूयाके पति थे॥ २॥

वे किसी समय ब्रह्माजीके निर्देशानुसार पुत्रकी इच्छासे पत्नीसहित तप करनेके लिये त्र्यक्षकुल नामक पर्वतपर गये॥ ३॥

उन मुनिने निर्विन्ध्या नदीके तटपर अपने प्राणोंको रोककर निर्द्वन्द्व हो सौ वर्षपर्यन्त विधिपूर्वक महाघोर तप किया॥ ४॥

उन्होंने अपने मनमें निश्चय किया कि जो एकमात्र अविकारी अनिर्वचनीय महाप्रभु ईश्वर हैं, वे मुझे श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करेंगे॥ ५॥

इस प्रकार उत्कृष्ट तपमें प्रवृत्त हुए उन महर्षिका बहुत समय व्यतीत हो गया। तब उनके शरीरसे अत्यन्त पवित्र और बहुत बड़ी अग्निज्वाला प्रकट हुई॥ ६॥

उस ज्वालासे सम्पूर्ण लोक प्राय: जलने लगा और इन्द्रादि सभी देवता, श्रेष्ठ मुनिगण तथा समस्त सुरर्षिगण भी पीड़ित हो उठे॥ ७॥

हे मुने! इसके बाद इन्द्र आदि सभी देवता एवं मुनिगण उस ज्वालासे अतीव पीड़ित होकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक गये॥ ८॥

हे तात! देवताओंने नमस्कार एवं स्तुतिकर ब्रह्मदेवके समक्ष अपना दु:ख प्रकट किया। तब ब्रह्माजी उन देवताओंको लेकर शीघ्रतासे विष्णुलोकको गये॥ ९॥

हे मुने! वहाँ देवताओंके साथ जाकर लक्ष्मीपतिको नमस्कार करके तथा उनकी स्तुतिकर अनन्त भगवान् विष्णुसे ब्रह्माजीने दु:ख निवेदन किया॥ १०॥

तदनन्तर भगवान् विष्णु भी ब्रह्मा एवं देवताओंको लेकर शीघ्र रुद्रलोक गये और वहाँ पहुँचकर परमेश्वर शिवजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति की॥ ११॥

बहुत स्तुति करनेके बाद भगवान् विष्णुने शिवजीसे अपना सारा दु:ख निवेदन किया कि अत्रिके तपसे एक ज्वाला उत्पन्न हुई है॥ १२॥

हे मुने! तदुपरान्त उस स्थानपर एकत्रित हुए ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वरने मिलकर संसारके हितसाधनके लिये आपसमें मन्त्रणा की॥ १३॥

इसके बाद ब्रह्मा आदि वरदश्रेष्ठ वे तीनों देवता उन मुनिको वर देनेके लिये शीघ्र ही उनके आश्रमपर पहुँचे॥ १४॥

अपने-अपने [हंसादि वाहनोंके] चिह्नोंसे चिह्नित उन देवगणोंको देखकर मुनिश्रेष्ठ अत्रिने उन्हें प्रणाम किया और प्रिय वाणीसे आदरपूर्वक उनकी स्तुति की॥ १५॥

तत्पश्चात् हाथ जोड़े हुए वे विनीतात्मा ब्रह्मपुत्र अत्रि उन ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवसे विस्मित होकर कहने लगे—॥ १६॥

अत्रि बोले—हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! हे शिव! आप सब तीनों लोकोंके पूज्य, प्रभु, ईश्वर और उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करनेवाले माने गये हैं॥ १७॥

मैंने तो सपत्नीक [तपोनिरत होकर] पुत्रकी कामनासे केवल एकमात्र जो इस सारे जगत्के ईश्वर हैं, उन्हींका ध्यान किया था। किंतु वरदाताओंमें श्रेष्ठ आप तीनों देवता यहाँ कैसे उपस्थित हुए हैं; मेरे इस संशयको दूरकर मुझे अभीष्ट वर दीजिये॥ १८-१९॥

उनकी यह बात सुनकर उन तीनों देवताओंने कहा—हे मुनिराज! जैसा आपने संकल्प किया था, वैसा ही हुआ है, हम ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों ही समानरूपसे इस जगत्के ईश्वर हैं, इसलिये वर देनेके लिये उपस्थित हुए हैं, अत: हमलोगोंके अंशसे आपके तीन पुत्र उत्पन्न होंगे। वे सभी जगत्में प्रसिद्ध होकर माता एवं पिताकी कीर्तिको बढ़ानेवाले होंगे। ऐसा

कहकर वे तीनों देवता प्रसन्न हो अपने-अपने धामको चले गये॥ २०—२२॥

हे मुने! ब्रह्मानन्दके प्रदाता अत्रि मुनि भी वर प्राप्तकर हर्षित हो अनसूयाके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानपर चले आये॥ २३॥

तब अनेक लीलाओंको करनेवाले वे ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव प्रसन्न हो पुत्ररूपसे अनसूयाके गर्भसे उत्पन्न हुए। समय पूर्ण होनेपर मुनीश्वरके द्वारा अनसूयासे ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, किंतु देवताओंके द्वारा समुद्रमें डाल देनेके कारण वे पुनः समुद्रसे उत्पन्न हुए॥ २४-२५॥

हे मुने! विष्णुके अंशसे अत्रिके द्वारा उन अनसूयासे दत्तात्रेय उत्पन्न हुए, जिन्होंने सर्वोत्तम संन्यासपद्धतिका संवर्धन किया॥ २६॥

हे मुनिसत्तम! अत्रिके द्वारा उन अनसूयासे शिवके अंशसे श्रेष्ठ धर्मका प्रचार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उत्पन्न हुए। रुद्रने दुर्वासाके रूपमें प्रकट होकर ब्रह्मतेजको बढ़ाया और दयापूर्वक बहुतोंके धर्मकी परीक्षा भी ली॥ २७-२८॥

हे मुनीश्वर! सूर्यवंशमें उत्पन्न जो अम्बरीष नामक राजा थे, उनकी परीक्षा दुर्वासाने ली थी; उस आख्यानको आप सुनिये॥ २९॥

वे नृपश्रेष्ठ अम्बरीष सात द्वीपोंवाली पृथ्वीके स्वामी थे। एकादशीके व्रतमें स्थित होकर वे दृढ़ नियमका पालन करते थे। उन राजाका यह दृढ़ संकल्प था कि मैं एकादशीव्रतकर द्वादशीको पारण करूँगा॥ ३०-३१॥

शंकरजीके अंशसे उत्पन्न हुए मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उनके उस नियमको जानकर अपने अनेक शिष्योंको साथ ले उनके समीप गये॥ ३२॥

उस दिन स्वल्प द्वादशी जानकर राजाने [पारण करनेके लिये] ज्यों ही भोजन करनेका विचार किया, उसी समय शिष्योंसहित दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे, तब राजाने उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया॥ ३३॥

इसके बाद मुनि दुर्वासा शिष्योंके साथ स्नान करनेके लिये चले गये और राजाकी परीक्षा लेनेके लिये उन्होंने वहाँ बहुत विलम्ब कर दिया॥ ३४॥

तब धर्ममें विघ्न जानकर राजा शास्त्रकी आज्ञासे जलका प्राशन करके दुर्वासाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ३५॥

इसी बीच महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे और राजाको जलप्राशन किया जानकर उनकी परीक्षा लेनेके लिये [महर्षिने भयानक] आकृति धारण कर ली और अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। शिवके अंशसे उत्पन्न हुए वे दुर्वासा धर्मकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे राजासे कठोर वचन कहने लगे॥ ३६-३७॥

दुर्वासा बोले—हे अधम नृप! तुमने मुझे निमन्त्रण देकर बिना भोजन कराये ही जल पी लिया। मैं तुम्हें उसका फल दिखाता हूँ; क्योंकि मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ॥ ३८॥

इतना कहकर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले वे ज्यों ही राजाको भस्म करनेके लिये उद्यत हुए, इतनेमें ही राजाके भीतर रहनेवाला ईश्वरका चक्र उनकी रक्षाके लिये शीघ्रतासे प्रकट हो गया॥ ३९॥

वह सुदर्शन चक्र शिवमायासे विमोहित शिवस्वरूप मुनि दुर्वासाको न जानकर उन्हें जलानेके लिये भयंकर रूपमें जल उठा। इसी समय अशरीरी आकाशवाणीने विष्णुप्रिय ब्राह्मणभक्त महात्मा अम्बरीषसे कहा—॥ ४०-४१॥

आकाशवाणी बोली—हे राजन्! शिवजीने ही यह सुदर्शन चक्र विष्णुको प्रदान किया है; दुर्वासाको जलानेके लिये प्रज्वलित चक्रको इस समय शीघ्र शान्त कीजिये॥ ४२॥

ये दुर्वासा साक्षात् शिव हैं; इन्होंने ही विष्णुको यह चक्र प्रदान किया है। हे नृपश्रेष्ठ! इन्हें सामान्य मुनि मत समझिये। ये मुनीश्वर आपके धर्मकी परीक्षाके लिये आये हैं, अतः शीघ्र ही इनकी शरणमें जाइये, नहीं तो प्रलय हो जायगा॥ ४३-४४॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी, तब वे अम्बरीष भी शिवके अंशस्वरूप उन मुनिकी स्तुति आदरसे करने लगे॥ ४५॥

अम्बरीषजी बोले—यदि मैंने दान किया है, इष्टापूर्त किया है, अपने धर्मका भलीभाँति अनुष्ठान किया है और हमारा कुल ब्रह्मण्य है, तो विष्णुका यह अस्त्र शान्त हो जाय॥ ४६॥

यदि मेरे द्वारा सेवित भक्तवत्सल भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं तो यह सुदर्शनचक्र विशेष रूपसे शान्त हो जाय॥ ४७॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार रुद्रांशभूत दुर्वासाके आगे अम्बरीषके स्तुति करनेपर [आकाशवाणीसे] प्रेरित बुद्धिवाला वह शैव सुदर्शन चक्र उन्हें शिवांश जानकर पूर्ण रूपसे शान्त हो गया॥ ४८॥

इसके बाद उन राजा अम्बरीषने अपनी परीक्षाके निमित्त आये हुए उन मुनिको शिवावतार जानकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४९॥

तदनन्तर शिवजीके अंशसे उत्पन्न वे मुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और भोजन करके अभीष्ट वर प्रदानकर अपने स्थानको चले गये। हे मुने! मैंने अम्बरीषकी परीक्षामें दुर्वासाका चरित्र कह दिया। हे मुनीश्वर! अब आप उनका दूसरा चरित्र सुनिये॥ ५०-५१॥

तत्पश्चात् उन्होंने दशरथपुत्र रामकी नियमसे परीक्षा ली। काल जब मुनिका रूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट करनेके लिये पहुँचा, तब उसने रामसे एक अनुबन्ध किया [और कहा—मैं आपसे कुछ बात करूँगा। किंतु यदि उस समय कोई तीसरा पहुँचा तो वह आपका वध्य होगा। रामचन्द्रजीने तथास्तु कहकर लक्ष्मणको पहरेपर नियुक्त कर दिया और कालसे एकान्तमें बातचीत करने लगे। इसी बीच वहाँ दुर्वासा पहुँचे।] उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—मैं आवश्यक कार्यसे रामचन्द्रसे मिलना चाहता हूँ। लक्ष्मणजीने इधर रामकी प्रतिज्ञा, उधर दुर्वासाका शाप—इस प्रकार दोनों ओरसे असमंजसमें पड़कर विचार किया कि ब्रह्मशापसे दग्ध होना अच्छा नहीं, अतः उन्होंने दुर्वासाके आनेका समाचार श्रीरामको दे दिया। हे मुने! इस प्रकार दुर्वासाके द्वारा हठपूर्वक भेजे जानेपर श्रीरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तत्क्षण लक्ष्मणको त्याग दिया॥ ५२-५३॥

महर्षियोंने यह कथा बहुधा कही है, जिसके कारण यह लोकमें प्रसिद्ध है। अतः इसे विस्तारसे नहीं कहा; क्योंकि बुद्धिमान् लोग तो इस कथाको जानते ही हैं॥ ५४॥

महर्षि दुर्वासा उनके इस अत्यन्त दृढ़ नियमको देखकर सन्तुष्ट हुए और प्रसन्नचित्त हो उन्हें वर प्रदान किया॥ ५५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने श्रीकृष्णके नियमकी भी परीक्षा ली थी; मैं उस कथाको कह रहा हूँ, आप उसे सुनिये। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये एवं साधुओंकी रक्षा करनेके लिये भगवान् विष्णु वसुदेवके पुत्ररूपमें अवतरित हुए॥ ५६-५७॥

श्रीकृष्ण नामवाले विष्णुने ब्रह्मद्रोही खलों, दुष्टों एवं महापापियोंका संहार करके समस्त साधुओं एवं ब्राह्मणोंकी रक्षा की॥ ५८॥

वे वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके प्रति अत्यधिक भक्ति रखते थे और प्रतिदिन बहुत-से ब्राह्मणोंको सरस भोजन कराते थे॥ ५९॥

'श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके विशेषरूपसे भक्त हैं' जब वे इस प्रसिद्धिको प्राप्त हुए, तब हे मुने! उन्हें देखनेकी इच्छासे वे (दुर्वासा) मुनि कृष्णके पास पहुँचे॥ ६०॥

उन्होंने श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणीको रथमें जोत दिया और उस रथपर स्वयं सवार होकर [उन्हें] हाँकने लगे। श्रीकृष्ण [एवं रुक्मिणी]-ने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस रथका वहन किया॥ ६१॥

[ब्राह्मणके विषयमें] उन दोनोंकी इतनी बड़ी दृढ़ता देखकर रथसे उतरकर मुनिने प्रसन्न हो उन्हें वज्रके समान अंगवाला होनेका वर दिया॥ ६२॥

हे मुने! एक समय गंगाजीमें स्नान करते हुए मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा नग्न हो गये थे; उस समय वे कौतुकी मुनि लज्जाका अनुभव करने लगे॥ ६३॥

उस समय वहाँ स्नान कर रही द्रौपदीने यह जानकर अपना आँचल फाड़कर तथा उसे आदरपूर्वक प्रदान करके उनकी लज्जाको ढँक दिया था॥ ६४॥

इस प्रकार प्रवाहके द्वारा अपने समीप आये उस वस्त्रको लेकर वे मुनि अपने गुह्य अंगको उससे ढँककर उस [द्रौपदी]-पर प्रसन्न हुए और उन्होंने द्रौपदीको उसके आँचलके बढ़नेका वर दिया। समय आनेपर उसी वरदानके प्रभावसे द्रौपदीने पाण्डवोंको सुखी बनाया॥ ६५-६६॥

हंस एवं डिम्भ नामक महाखल कोई दो राजा थे। उन्होंने दुर्वासाका अनादर किया। तब इन्हीं दुर्वासाने श्रीकृष्णको सन्देश देकर उनका नाश करवाया॥ ६७॥

उन्होंने पृथ्वीपर विशेषरूपसे ब्रह्मतेज और शास्त्रकी रीतिके अनुसार संन्यासपद्धतिकी स्थापना की॥ ६८॥

उन्होंने अत्यन्त सुन्दर उपदेश देकर बहुतोंका उद्धार किया और विशेष रूपसे ज्ञान देकर बहुतोंको मुक्त भी कर दिया॥ ६९॥

इस प्रकार उन दुर्वासाने अनेक विचित्र चरित्र किये। [दुर्वासाका] यह चरित्र श्रवण करनेवालेको धन, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है॥ ७०॥

जो दुर्वासाके इस चरित्रको प्रीतिपूर्वक सुनता है अथवा जो प्रसन्नतापूर्वक दूसरोंको सुनाता है, वह इस लोकमें एवं परलोकमें सुखी रहता है॥ ७१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें दुर्वासाचरित-वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

शिवजीका हनुमान्‌के रूपमें अवतार तथा उनके चरितका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! अब इसके पश्चात् शिवजीने जिस प्रकार हनुमान्‌जीके रूपमें अवतार लेकर मनोहर लीलाएँ कीं, उस हनुमच्चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनिये॥ १॥

उन परमेश्वरने प्रेमपूर्वक [हनुमद्रूपसे] श्रीरामका परम हित किया, हे विप्र! सर्वसुखकारी उस सम्पूर्ण चरित्रका श्रवण कीजिये॥ २॥

एक बार अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले तथा सर्वगुणसम्पन्न उन भगवान् शिवने विष्णुके मोहिनी रूपको देखा॥ ३॥

[उस मोहिनी रूपको देखते ही] कामबाणसे आहतकी भाँति शम्भुने अपनेको विक्षुब्ध कर दिया और उन ईश्वरने श्रीरामके कार्यके लिये अपने तेजका उत्सर्ग कर दिया॥ ४॥

शिवजीके मनकी प्रेरणासे प्रेरित हुए सप्तर्षियोंने उनके तेजको रामकार्यके लिये आदरपूर्वक पत्तेपर स्थापित कर दिया॥ ५॥

तत्पश्चात् उन महर्षियोंने शम्भुके उस तेजको श्रीरामके कार्यके लिये गौतमकी कन्या अंजनीमें कानके माध्यमसे स्थापित कर दिया॥ ६॥

समय आनेपर वह शम्भुतेज महान् बल तथा पराक्रमवाला और वानर शरीरवाला होकर हनुमान्‌के नामसे प्रकट हुआ॥ ७॥

वे महाबलवान् कपीश्वर हनुमान् जब शिशु ही थे, उसी समय प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्यबिम्बको छोटा फल जानकर निगल गये थे॥ ८॥

तब देवताओंकी प्रार्थनासे उन्होंने सूर्यको उगल दिया। उन्हें महाबली शिवावतार जानकर देवताओं तथा ऋषियोंके द्वारा प्रदत्त वरोंको उन्होंने प्राप्त किया॥ ९॥

तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न हनुमान्‌जी अपनी माताके निकट गये और आदरपूर्वक उनसे वह वृत्तान्त कह सुनाया॥ १०॥

इसके बाद माताकी आज्ञासे नित्यप्रति सूर्यके पास



जाकर धैर्यशाली हनुमान्‌जीने बिना यत्नके ही उनसे सारी विद्याएँ पढ़ लीं॥ ११॥

उसके बाद माताकी आज्ञा प्राप्तकर रुद्रके अंशभूत कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जी सूर्यकी आज्ञासे [प्रेरित हो] सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुए सुग्रीवके पास गये। वे सुग्रीव अपने ज्येष्ठ भ्राता वालि, जिसने उनकी स्त्रीका बलात् हरण कर लिया था, तिरस्कृत हो ऋष्यमूक पर्वतपर हनुमान्‌जीके साथ निवास करने लगे॥ १२-१३॥

तब वे सुग्रीवके मन्त्री हो गये। शिवजीके अंशसे उत्पन्न परम बुद्धिमान् कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने सब प्रकारसे सुग्रीवका हित किया। उन्होंने भाई [लक्ष्मण]-के साथ वहाँ आये हुए अपहृत पत्नीवाले दुखी रामके साथ उनकी सुखदायी मित्रता करवायी॥ १४-१५॥

रामचन्द्रजीने भाईकी स्त्रीके साथ रमण करनेवाले, महापापी एवं अपनेको वीर माननेवाले कपिराज वालिका वध कर दिया॥ १६॥

हे तात! तदनन्तर वे महाबुद्धिमान् वानरेश्वर हनुमान् रामचन्द्रजीकी आज्ञासे बहुतसे वानरोंके साथ सीताकी खोजमें लग गये॥ १७॥

सीताको लंकामें विद्यमान जानकर वे कपीश्वर दूसरोंके द्वारा न लाँघे जा सकनेवाले उस समुद्रको बड़ी शीघ्रतासे लाँघकर वहाँ गये॥ १८॥

वहाँ उन्होंने पराक्रमयुक्त अद्भुत कार्य किया और जानकीको प्रीतिपूर्वक अपने प्रभुका उत्तम [मुद्रिकारूप] चिह्न प्रदान किया। जानकीके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला रामवृत्त सुनाकर उन वीर वानरनायकने शीघ्र ही उनके शोकको दूर कर दिया॥ १९-२०॥

उन्होंने रावणकी अशोकवाटिका उजाड़कर बहुत-से राक्षसोंका वध कर दिया; फिर सीतासे स्मरणचिह्न लेकर रामचन्द्रके पास लौटने लगे॥ २१॥

उस समय महालीला करनेवाले उन्होंने अत्यन्त निर्भय होकर रावणके पुत्र तथा अनेक राक्षसोंको मारकर वहाँ लंकामें महान् उपद्रव किया॥ २२॥

हे मुने! जब महाबलशाली रावणने तैलसे सने हुए वस्त्रोंको उनकी पूँछमें दृढ़तापूर्वक लपेटकर उसमें आग लगा दी, तब महादेवके अंशसे उत्पन्न हनुमान्‌जीने इसी बहानेसे कूद-कूदकर समस्त लंकाको जला दिया॥ २३-२४॥

तदनन्तर वे कपिश्रेष्ठ वीर हनुमान् [केवल] विभीषणके घरको छोड़कर सारी लंकाको जला करके समुद्रमें कूद पड़े॥ २५॥

वहाँ अपनी पूँछ बुझाकर शिवके अंशसे उत्पन्न वे समुद्रके दूसरे किनारेपर आये और प्रसन्न होकर श्रीरामजीके पास गये॥ २६॥

सुन्दर वेगवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने शीघ्रतापूर्वक श्रीरामके निकट जाकर उन्हें सीताजीकी चूड़ामणि प्रदान की॥ २७॥

तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे वानरोंके साथ उन बलवान् तथा वीर हनुमान्‌जीने अनेक विशाल पर्वतोंको लाकर समुद्रपर पुल बाँधा॥ २८॥

तब पार जानेकी कामनावाले श्रीरामचन्द्रजीने विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे शिवलिंगको यथाविधि प्रतिष्ठितकर तदुपरान्त उसका पूजन किया॥ २९॥

तत्पश्चात् उन्होंने पूज्यतम शिवजीसे विजयका वरदान प्राप्त करके समुद्र पारकर वानरोंके साथ लंकाको घेरकर राक्षसोंसे युद्ध किया॥ ३०॥

उन वीर हनुमान्‌ने राक्षसोंका वध किया, श्रीरामचन्द्रजीकी सेनाकी रक्षा की तथा शक्तिसे घायल लक्ष्मणको संजीवनी बूटीके द्वारा पुनः जीवित कर दिया॥ ३१॥

इस प्रकार महादेवके पुत्र प्रभु उन हनुमान्‌जीने लक्ष्मणसहित श्रीरामजीको सब प्रकारसे सुखी बनाया और सम्पूर्ण सेनाकी रक्षा की॥ ३२॥

महान् बल धारण करनेवाले उन कपिने बिना श्रमके परिवारसहित रावणका विनाश किया और देवताओंको सुखी बनाया॥ ३३॥

उन्होंने महिरावण नामक राक्षसको मारकर लक्ष्मणसहित रामकी रक्षा करके उसके स्थानसे उन्हें अपने स्थानपर ला दिया॥ ३४॥

इस प्रकार उन कपिपुंगवने सब प्रकारसे श्रीरामका कार्य शीघ्र ही सम्पन्न किया, असुरोंका वध किया एवं नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं॥ ३५॥

सीतारामको सुख देनेवाले वानरराजने स्वयं श्रेष्ठ भक्त होकर भूलोकमें रामभक्तिकी स्थापना की॥ ३६॥

वे लक्ष्मणके प्राणोंके रक्षक, सभी देवताओंका गर्व चूर करनेवाले, रुद्रके अवतार, भगवत्स्वरूप और भक्तोंका उद्धार करनेवाले थे॥ ३७॥

वे हनुमान्‌जी महावीर, सदा रामका कार्य सिद्ध करनेवाले, लोकमें रामदूतके रूपमें विख्यात, दैत्योंका संहार करनेवाले तथा भक्तवत्सल थे॥ ३८॥

हे तात! इस प्रकार मैंने हनुमान्‌जीका श्रेष्ठ चरित्र कहा, जो धन, यश, आयु तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाला है॥ ३९॥

जो सावधान होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें परम मोक्षको प्राप्त करता है॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें हनुमदवतारचरित्र-वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

शिवजीके महेशावतार-वर्णनक्रममें अम्बिकाके शापसे भैरवका वेतालरूपमें पृथ्वीपर अवतरित होना

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! हे ब्रह्मपुत्र! अब शिवजीके एक और श्रेष्ठ अवतारको प्रीतिपूर्वक सुनिये, जो सुननेवालोंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ १॥

हे मुनिशार्दूल! एक बार परमेश्वर शिव एवं गिरिजा अपनी इच्छासे विहार करनेके लिये तत्पर हुए। भैरवको द्वारपालके रूपमें स्थापितकर वे भीतर आ गये और अनेक सखियोंसे प्रेमपूर्वक सेवित हो मनुष्यके समान लीला करने लगे॥ २-३॥

हे मुने! इस प्रकार वहाँ बहुत कालतक विहारकर अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले तथा स्वतन्त्र वे दोनों ही परमेश्वर परम प्रसन्न हुए॥ ४॥

तदनन्तर परम स्वतन्त्र वे शिवा लीलावशात् उन्मत्त वेषमें शिवजीकी आज्ञासे द्वारपर आयीं॥ ५॥

तब उन देवीको [साधारण] नारीकी दृष्टिसे देखकर उनके [उस उन्मत्त] रूपसे भ्रमित हुए भैरवने उन्हें बाहर जानेसे रोका॥ ६॥

हे मुने! जब भैरवने [देवीको एक सामान्य] नारीकी दृष्टिसे देखा, तब वे देवी शिवा क्रोधित हो गयीं और उन अम्बिकाने उन्हें शाप दे दिया॥ ७॥

शिवा बोलीं—हे पुरुषाधम! हे भैरव! तुम मुझे [सामान्य] स्त्रीकी दृष्टिसे देख रहे हो, इसलिये तुम पृथ्वीपर मनुष्यरूप धारण करो॥ ८॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! इस प्रकार जब पार्वतीने भैरवको शाप दे दिया, तब महान् हाहाकार मच गया। [पार्वतीकी इस] लीलासे भैरव अत्यन्त दुखी हुए॥ ९॥

हे मुनीश्वर! इसके बाद अनेकविध अनुनय-विनयमें प्रवीण श्रीशिवजीने शीघ्रतासे वहाँ आकर भैरवको आश्वस्त किया। हे मुने! तब उस शापसे एवं शिवजीकी इच्छासे वे भैरव पृथ्वीपर मनुष्ययोनिमें वेताल नामसे उत्पन्न हुए॥ १०-११॥

उनके स्नेहसे लौकिक गतिका आश्रय ग्रहणकर उत्तम लीलाओंवाले वे प्रभु शिवजी भी पार्वतीके साथ पृथ्वीपर अवतरित हुए॥ १२॥

हे मुने! शिवजी महेश नामसे तथा पार्वतीजी शारदा नामसे प्रसिद्ध हुईं और नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेमें प्रवीण वे दोनों प्रेमपूर्वक उत्तम लीला करते रहे॥ १३॥

हे तात! इस प्रकार मैंने शिवजीके उत्तम चरित्रका वर्णन आपसे किया, जो धन, यश, आयु तथा सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य सावधानचित्त होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ १४-१५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें महेशावतारवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

शिवके वृषेश्वरावतार-वर्णनके प्रसंगमें समुद्रमन्थनकी कथा

नन्दीश्वर बोले—हे ब्रह्मसुत! हे प्राज्ञ! हे मुनीश्वर! अब आप भगवान् विष्णुके अहंकारको नष्ट करनेवाले तथा श्रेष्ठ लीलासे परिपूर्ण शिवजीके वृषेश्वर नामक उत्तम अवतारको सुनें॥ १॥

पूर्व समयमें जरा एवं मृत्युसे भयभीत हुए देवताओं एवं असुरोंने आपसमें सन्धिकर समुद्रसे रत्न ग्रहण करनेका विचार किया॥ २॥

हे मुनिनन्दन! तदनन्तर सभी देवता और असुर समुद्रोंमें श्रेष्ठ क्षीरसागरको मथनेके लिये उद्यत हुए॥ ३॥

हे ब्रह्मन्! मधुर मुसकानवाले सभी देवता तथा असुर अपनी कार्यसिद्धिके लिये विचार करने लगे कि किस उपायसे उस क्षीरसागरका मन्थन किया जाय॥ ४॥

तब मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त आकाशवाणी शिवजीकी आज्ञासे देवताओं तथा असुरोंको आश्वस्त करती हुई कहने लगी—॥ ५॥

आकाशवाणी बोली—हे देवगणो! हे असुरो! आपलोग क्षीरसागरका मन्थन कीजिये, [इस कार्यके लिये] आपलोगोंको बल और बुद्धिकी प्राप्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६॥

आपलोग मन्दराचलपर्वतको मथानी एवं वासुकि नागको रस्सी बनाइये और सभी लोग आपसमें मिलकर आदरपूर्वक मन्थन कीजिये॥ ७॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनिसत्तम! तब [इस प्रकारकी] आकाशवाणी सुनकर सभी देवता तथा असुर ऐसा करनेके लिये प्रयत्न करने लगे॥ ८॥

वे सब आपसमें मिलकर सोनेके समान कान्तिवाले, ऋजुकाय तथा नाना प्रकारकी शोभासे सम्पन्न पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचलके समीप गये॥ ९॥

उस गिरीश्वरको प्रसन्न करके तथा उसकी आज्ञा प्राप्तकर उसे क्षीरसागरमें ले जानेकी इच्छावाले देवताओं तथा असुरोंने बलपूर्वक उसे उखाड़ लिया॥ १०॥

हे मुने! अपनी भुजाओंसे [मन्दराचलको] उखाड़कर वे सब क्षीरसागरके पास जाने लगे, किंतु क्षीण बलवाले वे उसे ले जानेमें असमर्थ हो गये॥ ११॥

अत्यन्त भारी वह मन्दराचल अकस्मात् उनकी भुजाओंसे छूटकर शीघ्र ही देवताओं और दैत्योंके ऊपर गिर पड़ा॥ १२॥

तब भग्न उद्यमवाले देवता तथा असुर आहत हो गये, फिर [कुछ समय बाद] चेतना प्राप्तकर जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे॥ १३॥

इसके बाद जगदीश्वरकी इच्छासे उद्यत हुए उन सबने उस पर्वतको पुनः उठाकर क्षीरसागरके उत्तरी तटपर ले जाकर जलमें डाल दिया॥ १४॥

तदनन्तर रत्न प्राप्त करनेकी इच्छावाले देवता तथा असुर वासुकि नागकी रस्सी बनाकर क्षीरसागरका मन्थन करने लगे॥ १५॥

क्षीरसागरका मन्थन किये जानेपर स्वर्गलोककी महेश्वरी भृगुपुत्री हरिप्रिया महालक्ष्मी समुद्रसे प्रकट हुईं। उसके बाद धन्वन्तरि, चन्द्रमा, पारिजात कल्पवृक्ष, उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी, सुरा, विष्णुका शार्ङ्गधनुष, शंख, कामधेनु, गोवृन्द, कौस्तुभमणि तथा अमृत उत्पन्न हुए। पुनः मथे जानेपर प्रलयकालीन अग्निके समान कान्तिवाला और देवताओं तथा असुरोंको भय उत्पन्न करनेवाला कालकूट नामक महाविष उत्पन्न हुआ॥ १६—१९॥

अमृत उत्पन्न होनेके समय उसकी जो बूँदें बाहर छलक पड़ीं, उनसे अद्भुत दर्शनवाली बहुत-सी स्त्रियाँ प्रकट हुईं। वे शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, बिजली, सूर्य तथा अग्निके समान प्रभावाली और हार, बाजूबन्द, कटक तथा दिव्य रत्नोंसे अलंकृत थीं। वे अपने सौन्दर्यरूपी अमृतजलसे दसों दिशाओंको सींच रही थीं और अपने भ्रूविलासके कारण विस्तीर्ण नेत्रोंवाली वे संसारको उन्मत्त कर रही थीं। इस प्रकार उन अमृतकी बूँदोंसे स्वेच्छया करोड़ों स्त्रियाँ निकलीं। तदनन्तर जरा और मृत्युको दूर करनेवाला अमृत उत्पन्न हुआ॥ २०—२३॥

लक्ष्मी, शंख, कौस्तुभमणि एवं खड्गको श्रीविष्णुने ग्रहण किया। सूर्यने बड़े आदरके साथ दिव्य उच्चैःश्रवा नामका घोड़ा ले लिया। देवताओंके स्वामी शचीपति इन्द्रने अत्यन्त आदरपूर्वक वृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजात एवं हाथियोंके राजा ऐरावतको ग्रहण किया॥ २४-२५॥

भक्तवत्सल तथा कल्याणकारी शिवजीने देवताओंकी रक्षाके लिये कण्ठमें [महाभयंकर] कालकूट विषको तथा चन्द्रमाको [मस्तकपर] स्वेच्छासे धारण किया॥ २६॥

ईश्वरकी मायासे मोहित हुए दैत्योंने आनन्द प्रदान करनेवाली मदिरा ग्रहण की। फिर हे व्यास! सभी मनुष्योंने धन्वन्तरि वैद्यको ग्रहण किया॥ २७॥

सभी मुनिगणोंने कामधेनुको ग्रहण किया और मोहित करनेवाली वे स्त्रियाँ सामान्य रूपसे स्थित रहीं॥ २८॥

विजयकी अभिलाषावाले तथा व्याकुल चित्तवाले देवताओं एवं राक्षसोंमें अमृतके लिये परस्पर महान् युद्ध हुआ॥ २९॥

हे व्यास! प्रलयकालीन अग्नि तथा सूर्यके समान महान् तेजस्वी बलि आदि दैत्योंने बलपूर्वक देवगणोंको जीतकर उनसे अमृत छीन लिया॥ ३०॥

हे तात! तदनन्तर शिवकी मायासे दैत्योंके द्वारा बलपूर्वक पीड़ित किये गये इन्द्रादि सभी देवता व्याकुल होकर शिवजीकी शरणमें आये। हे मुने! तब शिवजीकी आज्ञासे विष्णुने मायासे स्त्रीरूप धारणकर बड़े यत्नसे दैत्योंसे उस अमृतको छीन लिया॥ ३१-३२॥

तत्पश्चात् मायावियोंमें श्रेष्ठ मोहिनी स्त्रीरूपधारी विष्णुने समस्त दैत्योंको मोहितकर वह अमृत देवगणोंको पिला दिया॥ ३३॥

तब उस [मोहिनी रूपवाली] स्त्रीके पास जाकर उन श्रेष्ठ दैत्योंने कहा—इस सुधाको हम सभी दैत्योंको भी पिलाओ, जिससे किसी प्रकारका पंक्तिभेद न हो॥ ३४॥

ऐसा कहकर शिवमायासे मोहित हुए उन सभी दैत्यों एवं दानवोंने कपटरूपधारी उन विष्णुको वह अमृत दे दिया॥ ३५॥

इसी बीच वे वरिष्ठ दैत्य अमृतसे उत्पन्न स्त्रियोंको देखकर उन्हें सुखपूर्वक यथास्थान ले गये॥ ३६॥

उन स्त्रियोंके नगर स्वर्गसे भी सौ गुने मनोहर, मयदानवकी मायासे विनिर्मित तथा सुदृढ़ यन्त्रोंसे सुरक्षित थे। उन सभीको सुरक्षित करके उनका आलिंगन किये बिना ही वे दैत्य प्रतिज्ञा करके युद्धहेतु निकल पड़े। यदि देवगण हमें जीत लेंगे तो हम इन स्त्रियोंका स्पर्श भी नहीं करेंगे—ऐसा कहकर युद्धकी इच्छावाले वे समस्त महावीर दैत्य आकाशको पूरित-सा करते हुए तथा मेघोंको तृप्त [-सा] करते हुए पृथक्-पृथक् सिंहनाद करने लगे और शंख बजाने लगे॥ ३७—४०॥

देवगणोंका असुरोंके साथ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध देवासुर नामक भयानक संग्राम हुआ॥ ४१॥

[उस संग्राममें] विष्णुके द्वारा सब प्रकारसे रक्षित सभी देवताओंकी विजय हुई। बहुत-से दैत्य देवताओं और विष्णुके द्वारा मार डाले गये और शेष दैत्य भाग गये। कुछ दैत्योंको देवताओं तथा महात्मा विष्णुने मोहित कर दिया। जो मरनेसे बचे, वे पाताल एवं [पृथ्वीके] विवरोंमें प्रवेश कर गये॥ ४२-४३॥

महाबली विष्णुने हाथमें चक्र लेकर अत्युत्तम पातालमें जाकर भयभीत होकर स्थित हुए उन दैत्योंका पीछा किया॥ ४४॥

इसी बीच विष्णुने वहाँपर अमृतसे उत्पन्न हुई, पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली तथा दिव्य सौन्दर्यसे गर्वित स्त्रियोंको देखा और वे मोहित होकर वहींपर उन श्रेष्ठ स्त्रियोंके साथ विहार करने लगे तथा उन्होंने वहाँ शान्ति प्राप्त की॥ ४५-४६॥

विष्णुने उन स्त्रियोंसे श्रेष्ठ पराक्रमवाले तथा युद्ध करनेमें निपुण अनेक पुत्र उत्पन्न किये, जिनके बलसे सारी पृथ्वी काँप उठती थी। तत्पश्चात् महाबलवान् एवं पराक्रमी वे विष्णुपुत्र सम्पूर्ण पृथ्वीको कम्पित करते हुए स्वर्गलोक तथा भूलोकमें दुःखद महान् उपद्रव करने लगे॥ ४७-४८॥

सारे संसारमें उनका [इस प्रकारका] उपद्रव देखकर मुनियों एवं देवताओंने ब्रह्माको प्रणामकर उनसे निवेदन किया॥ ४९॥

यह सुनकर ब्रह्माजी उन्हें साथ लेकर कैलास पर्वतपर गये। वहाँ प्रभु शिवजीको देखकर विनम्र भावसे

अंजलि बाँधे हुए उन्होंने बारंबार प्रणाम किया तथा हे देव! हे महादेव! हे सर्वस्वामिन्! आपकी जय हो— ऐसा कहते हुए अनेक स्तुतियोंके द्वारा उनकी स्तुति की॥ ५०-५१॥

ब्रह्मा बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे प्रभो! पातालमें स्थित, विकारयुक्त तथा उपद्रवी विष्णुपुत्रोंसे [सन्त्रस्त] सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा कीजिये॥ ५२॥

हे विभो! विकारसे ग्रस्त होकर विष्णुजी अमृतसे उत्पन्न स्त्रियोंमें आसक्तचित्त होकर इस समय पातालमें स्थित हैं और उनके साथ स्थित हैं॥ ५३॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार लोकसंरक्षणके लिये तथा पातालसे विष्णुको लानेके निमित्त ऋषियोंसहित देवताओं तथा ब्रह्माने शिवजीकी बहुत स्तुति की॥ ५४॥

तदनन्तर कृपासिन्धु भगवान् महेश्वर शिवने उस उपद्रवका वृत्तान्त जानकर वृषभका रूप धारण कर लिया॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें विष्णूपद्रववृषावतारवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा भगवान् शिवके वृषभेश्वरावतारका स्तवन

नन्दीश्वर बोले—तब वृषभका रूप धारणकर गर्जन तथा भीषण ध्वनि करते हुए पिनाकधारी शिवजीने उस [पातालके] विवरमें प्रवेश किया॥ १॥

उनके निनादसे पुर और नगर सभी गिरने लगे एवं सभी नगरवासियोंको कँपकँपी होने लगी॥ २॥

उसके बाद वृषभरूप धारण करनेवाले शिवजी महेश्वरकी मायासे मोहित महान् बल तथा पराक्रमवाले और संग्रामके लिये धनुष उठाये हुए विष्णुपुत्रोंके सम्मुख पहुँचे॥ ३॥

हे मुनिसत्तम! तब वे वीर विष्णुपुत्र कुपित हो उठे और जोर-जोरसे गर्जन करके शिवजीके सामने दौड़े॥ ४॥

वृषरूपधारी महादेव भी [अपने सामने] आये हुए विष्णुपुत्रोंपर कुपित हो उठे और खुरों तथा शृंगोंसे उन्हें विदीर्ण करने लगे॥ ५॥

शिवजीके द्वारा क्षत-विक्षत किये गये शरीरवाले वे सभी मूढ़ विष्णुपुत्र शीघ्र ही प्राणरहित हो विनष्ट हो गये॥ ६॥

उन पुत्रोंके मारे जानेपर बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णु [पाताल-विवरसे] शीघ्र बाहर निकलकर जोरसे गर्जना करके शिवजीके निकट जा पहुँचे॥ ७॥

पुत्रोंको मारकर जाते हुए वृषभरूपधारी शिवजीको देखकर विष्णुने बाणों तथा दिव्यास्त्रोंसे उनपर प्रहार किया॥ ८॥

तब महाबलवान् कैलासनिवासी वृषभरूपधारी शिवने क्रुद्ध होकर विष्णुके उन अस्त्रोंको निगल लिया॥ ९॥

हे मुने! इसके बाद वृषभरूपधारी उन महेश्वरने अत्यन्त क्रोधकर तीनों लोकोंको कँपाते हुए महाघोर गर्जना की॥ १०॥

क्रोधमें उन्मत्त हुए और अज्ञानवश [शिवजीको] अपना ईश्वर न माननेवाले विष्णुको बड़े वेगसे कूद-कूदकर अपने सींगों तथा खुरोंसे उन्होंने विदीर्ण कर दिया॥ ११॥

तब मायासे विमोहित हुए विष्णु शिवजीके प्रहारको सहनेमें असमर्थ होकर शीघ्र ही शिथिल मनवाले तथा व्यथित शरीरवाले हो गये॥ १२॥

विष्णुका सारा गर्व चूर हो गया, वे चेतनाशून्य होकर मूर्च्छित हो गये, तब उन्होंने वृषभरूपधारी शिवजीको जाना॥ १३॥

इसके बाद वृषभरूपसे आये हुए शिवजीको पहचानकर विष्णुजी हाथ जोड़कर सिर झुकाकर गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ १४॥

विष्णुजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे महेशान! आपकी मायासे

मोहित होनेके कारण मेरी बुद्धि विकृत हो गयी थी। हे प्रभो! हे स्वामिन्! मैंने अपने स्वामी आप शिवसे जो युद्ध किया, आप मुझपर कृपा करके उस अपराधको क्षमा कीजिये॥ १५-१६॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उन विष्णुकी दीनतापूर्ण यह बात सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने विष्णुसे कहा—॥ १७॥

हे विष्णो! हे महाबुद्धे! आपने मुझे क्यों नहीं पहचाना? आपका सारा ज्ञान किस प्रकार विस्मृत हो गया, जिसके कारण आज आपने मेरे साथ युद्ध किया?॥ १८॥

आपने अपनेको मेरे अधीन पराक्रमवाला क्यों नहीं समझा? अब आप पुनः ऐसा न कीजिये और इस कृत्यसे विरत हो जाइये॥ १९॥

आप इन स्त्रियोंमें आसक्त होकर विहार कर रहे हैं; भला कामी पुरुषको ज्ञान किस प्रकार रह सकता है? हे देवेश! यह आपके लिये उचित नहीं है, क्योंकि आपका स्मरण तो विश्वका तारण करनेवाला है॥ २०॥

शिवजीके इस विज्ञानप्रद वचनको सुनकर मन-ही-मन लज्जित होते हुए विष्णु आदरपूर्वक शिवजीसे यह वचन कहने लगे—॥ २१॥

विष्णुजी बोले—हे प्रभो! यहाँ मेरा सुदर्शन चक्र है, इसे लेकर आपकी आज्ञाका आदरपूर्वक पालन करनेवाला मैं [अब] अपने लोकको जाऊँगा॥ २२॥

नन्दीश्वर बोले—तब वृषभरूपधारी धर्मरक्षक महेश्वर शिवने उस वचनको सुनकर विष्णुसे पुनः कहा—॥ २३॥

हे हरे! इस समय आप देर न कीजिये और मेरी आज्ञासे शीघ्र ही यहाँसे अपने लोक चले जाइये; चक्रको यहीं रहने दीजिये॥ २४॥

हे विष्णो! मैं आपके कल्याणकारी वचनोंसे प्रसन्न होकर ज्योतिर्मय सान्तानिक लोकमें स्थित, इससे भिन्न एक दूसरा चक्र प्रदान करता हूँ, जो अत्यन्त भयंकर है॥ २५॥

[नन्दीश्वर बोले—] ऐसा कहकर शिवजीने दिव्य कालाग्निके समान देदीप्यमान, अत्यन्त प्रज्वलित एवं दुष्टोंका नाश करनेवाला चक्र प्रकट किया और दस हजार सूर्योंकी-सी कान्तिवाले उस महाभयानक चक्रको सभी देवताओं एवं मुनियोंके रक्षक महात्मा विष्णुको प्रदान किया॥ २६-२७॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विष्णुने अत्यन्त दीप्तिमान् उस दूसरे सुदर्शनचक्रको प्राप्तकर वहाँ [स्थित] देवगणोंसे कहा—आप सभी श्रेष्ठ देवतागण आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये और वैसा ही शीघ्र कीजिये; उसीसे आपलोगोंका कल्याण होगा॥ २८-२९॥

पाताललोकमें स्थित उन दिव्य स्त्रियोंका वरण स्वेच्छासे आप लोग करें॥ ३०॥

विष्णुके उस वचनको सुनकर सभी शूर देवता उन विष्णुके साथ पातालमें प्रविष्ट होनेकी इच्छा करने लगे॥ ३१॥

तब भगवान् शिवने देवताओंके इस विचारको जानकर क्रोधपूर्वक अष्टविध देवयोनियोंको घोर शाप दे दिया॥ ३२॥

हर बोले—मेरे अंशसे उत्पन्न हुए शान्त मुनि [कपिलजी] एवं दानवोंको छोड़कर जो इस स्थानमें प्रवेश करेगा, उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी॥ ३३॥

मनुष्योंके हितको बढ़ानेवाले शिवजीके इस घोर वाक्यको सुनकर तथा उनके द्वारा निषेध करनेपर देवतागण अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ३४॥

हे व्यास! इस प्रकार भगवान् शिवने अपनी मायाके प्रभावसे उनमें आसक्त हुए भगवान् विष्णुको अनुशासित किया और तब विष्णु देवलोकको चले गये तथा संसार सुखी हो गया॥ ३५॥

इस प्रकार देवताओंका कार्य करके वृषभरूपधारी भक्तवत्सल भगवान् शिव अपने स्थान कैलासपर्वतपर चले गये॥ ३६॥

[हे सनत्कुमार!] मैंने शिवजीके वृषेश्वरावतारका वर्णन कर दिया, जो विष्णुके अज्ञानका हरण करनेवाला, कल्याणकारक तथा तीनों लोकोंको सुख प्रदान करनेवाला है। यह आख्यान परम पवित्र, श्रेष्ठ, शत्रुबाधाको दूर

करनेवाला और सज्जनोंको स्वर्ग, यश, आयु, भोग तथा मोक्ष देनेवाला है। जो भक्तिके साथ सावधान होकर इसे सुनता है अथवा सुनाता है और जो इसे पढ़ता है तथा बुद्धिमान् मनुष्योंको पढ़ाता है, वह [इस लोकमें] समस्त सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ३७—३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें वृषेश्वरसंज्ञक शिवावतारवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके पिप्पलादावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! अब आप महेश्वरके पिप्पलाद नामक भक्तिवर्धक अन्य अवतारको अत्यन्त प्रसन्नतासे सुनिये॥ १॥

महाप्रतापी, भृगुवंशमें उत्पन्न, महान् शिवभक्त तथा मुनिश्रेष्ठ जिन च्यवनपुत्र विप्र दधीचिके विषयमें मैं पहले कह चुका हूँ और जिन्होंने क्षुवके साथ युद्धमें विष्णुको पराजित किया तथा महेश्वरकी कृपा प्राप्तकर देवताओंसहित विष्णुको शाप दिया था; उनकी सुवर्चा नामक महाभाग्यवती, महापतिव्रता एवं साध्वी पत्नी थीं, जिन्होंने देवताओंको शाप दिया था। उन मुनिसे उन्हीं सुवर्चाके गर्भसे अनेक लीलाएँ करनेमें प्रवीण तेजस्वी महादेव पिप्पलाद—इस नामसे उत्पन्न हुए॥ २—५॥

सूतजी बोले—नन्दीश्वरके इस अद्भुत वचनको सुनकर हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमार कहने लगे—॥ ६॥

सनत्कुमार बोले—हे महाप्राज्ञ! हे नन्दीश्वर! हे तात! आप साक्षात् शिवस्वरूप हैं, आप धन्य हैं तथा आप ही सद्गुरु हैं, जो कि आपने यह अद्भुत कथा सुनायी है॥ ७॥

हे शिलादपुत्र! हे तात! क्षुवके साथ संग्राममें विष्णुको जिस प्रकार शिवभक्त दधीचिने पराजित किया था तथा उन्हें शाप दिया था, उस कथाको मैंने पहले ब्रह्माजीसे सुना था॥ ८॥

अब मैं [पहले] सुवर्चाके द्वारा देवताओंको दिये गये शाप [के वृत्तान्तको] तथा बादमें कल्याणके निवासभूत पिप्पलादचरित्रको सुनना चाहता हूँ॥ ९॥

सूतजी बोले—तत्पश्चात् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका यह शुभ वचन सुनकर शिवजीके चरणकमलका ध्यानकर शिलादपुत्र प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—॥ १०॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! किसी समय इन्द्रादि सभी देवताओंको वृत्रासुरकी सहायतासे दैत्योंने पराजित कर दिया॥ ११॥

तब उन सभी देवताओंने सहसा दधीचि मुनिके आश्रममें अपने श्रेष्ठ अस्त्रोंको फेंक दिया और तत्काल पराजय स्वीकार कर ली। इसके बाद शीघ्र ही इन्द्र आदि सभी पीड़ित देवता एवं ऋषिगण ब्रह्मलोक गये तथा अपना वह दु:ख निवेदित किया॥ १२-१३॥

देवताओंके वचनको सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने उनसे त्वष्टाका सारा मन्तव्य यथार्थ रूपसे कह दिया॥ १४॥

[ब्रह्माजी बोले—] हे देवताओ! त्वष्टाने अपनी तपस्याके प्रभावसे आपलोगोंका वध करनेके लिये इसे उत्पन्न किया है; सम्पूर्ण दैत्योंका स्वामी यह वृत्र महान् तेजस्वी है॥ १५॥

अत: आप लोग वैसा प्रयत्न कीजिये, जिस प्रकार इसका वध हो सके। हे प्राज्ञ! मैं धर्मकी रक्षाके लिये वह उपाय आपको बता रहा हूँ; आप उसे सुनें॥ १६॥

जो जितेन्द्रिय तथा तपस्वी दधीचि नामक महामुनि हैं, उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी आराधनाकर वज्रके समान हड्डियोंवाला होनेका वरदान पाया था॥ १७॥

आपलोग [उनके पास जाकर] अस्थियोंके लिये याचना कीजिये, वे अवश्य दे देंगे; इसमें संशय नहीं है। इसके बाद उन अस्थियोंसे दण्डवज्रका निर्माणकर नि:सन्देह वृत्रासुरका वध कीजिये॥ १८॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] ब्रह्माका यह वचन

सुनकर देवगुरु बृहस्पति तथा देवताओंको साथ लेकर इन्द्र शीघ्र ही दधीचि ऋषिके उत्तम आश्रमपर आये॥ १९॥

वहाँ सुवर्चासहित मुनिको बैठे देखकर गुरु एवं देवताओंसहित इन्द्रने हाथ जोड़कर विनम्र हो आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया॥ २०॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उन मुनिने उनका अभिप्राय जानकर पत्नी सुवर्चाको आश्रमके भीतर भेज दिया॥ २१॥

तत्पश्चात् देवताओंसहित देवराज इन्द्रने, जो स्वार्थसाधनमें बड़े दक्ष थे, अपने प्रयोजनमें तत्पर हो करके मुनीश्वरसे यह वाक्य कहा—॥ २२॥

शक्र बोले—[हे मुने!] हम देवताओं तथा ऋषियोंको यह त्वष्टा बड़ा दुःख दे रहा है। इसलिये हमलोग महाशिवभक्त, शरणागतवत्सल तथा महादानी आपकी शरणमें आये हुए हैं॥ २३॥

विप्र! आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान कीजिये; क्योंकि हमलोग आपकी हड्डियोंसे वज्रका निर्माणकर देवद्रोही वृत्रासुरका वध करना चाहते हैं॥ २४॥

इन्द्रके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परोपकारपरायण उन मुनिने अपने स्वामी शिवका ध्यान करके [अपना] शरीर छोड़ दिया॥ २५॥

वे मुनि कर्मबन्धनसे छुटकारा पाकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक चले गये। उस समय वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी और सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये॥ २६॥

तदनन्तर इन्द्रने शीघ्र ही सुरभि गौको बुलाकर उसके द्वारा उन्हें चटवाया और उनकी अस्थियोंसे अस्त्र-निर्माण करनेके निमित्त विश्वकर्माको आज्ञा प्रदान की॥ २७॥

उनकी आज्ञा प्राप्त करके विश्वकर्माने शिवजीके तेजसे अत्यन्त दृढ़ वज्रमयी उन अस्थियोंसे सम्पूर्ण अस्त्रोंका निर्माण कर दिया॥ २८॥

उन्होंने उनकी रीढ़की हड्डियोंसे वज्र तथा ब्रह्म-शिर नामक बाणका निर्माण किया और अन्य अस्थियोंसे अपने तथा दूसरोंके लिये अनेक अस्त्रोंका निर्माण किया॥ २९॥

हे मुने! तदनन्तर शिवजीके तेजसे वृद्धिको प्राप्त इन्द्र उस वज्रको उठाकर बड़े वेगसे वृत्रासुरपर क्रोध करके इस प्रकार दौड़े, मानो रुद्र यमकी ओर दौड़ रहे हों॥ ३०॥

इसके बाद उन इन्द्रने भलीभाँति सन्नद्ध होकर शीघ्रतासे उस वज्रके द्वारा उत्साहपूर्वक पर्वतशिखरके समान वृत्रासुरका सिर काट दिया॥ ३१॥

हे तात! उस समय देवताओंको महान् प्रसन्नता हुई। देवता लोग इन्द्रकी स्तुति करने लगे और उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ ३२॥

हे तात! मैंने प्रसंगवश आपसे इस चरित्रका वर्णन किया। अब आप मुझसे शिवजीके पिप्पलाद-अवतारको आदरपूर्वक सुनिये॥ ३३॥

महात्मा मुनि दधीचिकी पतिव्रता पत्नी सुवर्चा पतिकी आज्ञासे अपने आश्रमके भीतर चली गयी थीं। हे मुनिश्रेष्ठ! पतिकी आज्ञासे [घरमें] जाकर सम्पूर्ण गृहकार्य करके जब वे तपस्विनी पुनः लौटीं, तो अपने पतिको वहाँ न देखकर और उन देवताओंको तथा उनके अत्यन्त अशोभनीय कर्मको देखती हुई वे सुवर्चा विस्मित हो गयीं॥ ३४—३६॥

देवताओंके उस सम्पूर्ण कृत्यको जानकर उस साध्वीने उस समय महान् कोप किया। इसके बाद ऋषिवरकी पत्नी सुवर्चाने अत्यधिक रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया॥ ३७॥

सुवर्चा बोलीं—हे देवगणो! तुमलोग अत्यन्त दुष्ट, अपना कार्य साधनेमें दक्ष, अज्ञानी और लोभी हो, इसलिये इन्द्रसहित सभी देवता आजसे पशु हो जायँ—ऐसा उन्होंने कहा॥ ३८॥

इस प्रकार उन तपस्विनी मुनिपत्नी सुवर्चाने इन्द्रसहित उन सभी देवताओंको शाप दे दिया॥ ३९॥

उसके बाद उन मनस्विनी पतिव्रताने अपने पतिके लोकमें जानेकी इच्छा की और अत्यन्त पवित्र काष्ठोंकी चिता बनायी॥ ४०॥

उसी समय उन्हें आश्वस्त करती हुई शिवप्रेरित तथा सुखदायिनी आकाशवाणीने मुनिपत्नी उन सुवर्चासे कहा—॥ ४१॥

आकाशवाणी बोली—हे प्राज्ञे! तुम दु:साहस मत करो, मेरे उत्तम वचनको सुनो। तुम्हारे उदरमें [गर्भरूपसे] मुनिका तेज विद्यमान है; तुम उसे प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न करो। हे देवि! उसके बाद तुम अपना अभीष्ट कार्य कर सकती हो; क्योंकि सगर्भाको सती नहीं होना चाहिये—ऐसी वेदकी आज्ञा है॥ ४२-४३॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी। तब उसे सुनकर वे मुनिकी पत्नी क्षणभरके लिये विस्मित हो गयीं॥ ४४॥

तदनन्तर पतिलोक जानेकी इच्छा करती हुई महासाध्वी सुवर्चाने बैठकर पत्थरसे अपने पेटको फाड़ दिया॥ ४५॥

उनके उदरसे परम दिव्य शरीरवाला तथा कान्तिमान् वह मुनिपुत्र दशों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ निकला। हे तात! दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत हुआ वह पुत्र अपनी लीला करनेमें समर्थ साक्षात् रुद्रका अवतार था॥ ४६-४७॥

मुनिपत्नी सुवर्चा अपने उस दिव्य रूपवान् पुत्रको देखकर और मनमें उसे साक्षात् रुद्रका अवतार समझकर बहुत प्रसन्न हुईं। हे मुनीश्वर! उन महासाध्वीने शीघ्र ही प्रणामकर उसकी स्तुति की और उसके स्वरूपको अपने हृदयमें स्थापित कर लिया॥ ४८-४९॥

तत्पश्चात् पतिलोक जानेकी इच्छावाली विमलेक्षणा माता सुवर्चा हँसकर अपने उस पुत्रसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहने लगी—॥ ५०॥

सुवर्चा बोली—हे तात! हे परमेशान! हे महाभाग! तुम बहुत समयतक इस पीपलवृक्षके समीप रहो और सबको सुखी बनाओ; अब मुझे पतिलोक जानेके लिये अति प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान करो, वहाँ रहती हुई मैं [अपने] पतिके साथ तुझ रुद्रस्वरूपका ध्यान करती रहूँगी॥ ५१-५२॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार साध्वी सुवर्चाने अपने पुत्रसे ऐसा कहकर परम समाधिद्वारा पतिका ही अनुगमन किया॥ ५३॥

हे मुने! इस प्रकार वे दधीचिपत्नी [सुवर्चा] शिवलोकमें जाकर अपने पतिके साथ निवास करने लगीं और आनन्दपूर्वक शिवजीकी सेवा करने लगीं॥ ५४॥

इसी अवसरपर इन्द्रसहित देवगण मुनियोंके साथ आमन्त्रित हुएके समान प्रसन्न होकर बड़ी शीघ्रतासे वहाँ आये॥ ५५॥

दधीचिके द्वारा सुवर्चाके गर्भसे [पुत्ररूपमें] पृथ्वीपर शिवजीको अवतरित हुआ जानकर हर्षित हो ब्रह्मा तथा विष्णु भी अपने गणोंके साथ अति प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पहुँचे और मुनिपुत्ररूपमें अवतरित हुए उन शिवजीको देखकर सबने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की॥ ५६-५७॥

हे मुनिसत्तम! उस समय देवताओंने बड़ा उत्सव किया, आकाशमें भेरियाँ बजने लगीं, नर्तकियाँ प्रसन्नतासे नृत्य करने लगीं, गन्धर्वपुत्र गान करने लगे, किन्नर बाजा बजाने लगे और देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ५८-५९॥

विष्णु आदि सभी देवताओंने पीपलवृक्षके द्वारा संरक्षित दधीचिके उस शोभासम्पन्न पुत्रका विधिवत् [जातकर्मादि] संस्कार करके पुनः उसकी स्तुति की॥ ६०॥

ब्रह्मदेवने प्रसन्नचित्त होकर उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा और देवताओंके साथ विष्णुने 'हे देवेश! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहा॥ ६१॥

इस प्रकार कहकर तथा उनसे आज्ञा लेकर ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण महोत्सव मनाकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ६२॥

उसके बाद रुद्रावतार महाप्रभु पिप्पलाद पीपल वृक्षके नीचे संसारहितकी इच्छासे बहुत कालतक तप करते रहे॥ ६३॥

इस प्रकार लोकचर्याका अनुसरण करनेवाले उन पिप्पलादका भलीभाँति तपस्या करते हुए बहुत-सा समय व्यतीत हो गया॥ ६४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीया शतरुद्रसंहितामें पिप्पलादावतारवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

राजा अनरण्यकी पुत्री पद्माके साथ पिप्पलादका विवाह एवं उनके वैवाहिक जीवनका वर्णन

नन्दीश्वरजी बोले—इसके बाद धर्मकी स्थापनाकी इच्छासे लोकमें रहकर उन महेश्वरने महान् लीला की; हे सन्मुने! उसे आप सुनें॥ १॥

एक बार पुष्पभद्रा नदीमें स्नान करनेके लिये जाते हुए उन मुनीश्वर [पिप्पलाद]-ने शिवाके अंशसे उत्पन्न हुई पद्मा नामक अति मनोहर युवतीको देखा॥ २॥

लोकतत्त्वमें प्रवीण एवं समस्त भुवनोंमें संचरण करनेवाले वे उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे उसके पिता राजा अनरण्यके पास गये॥ ३॥

उन्हें देखकर भयभीत हुए राजाने प्रणाम करके मधुपर्क आदि प्रदानकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की॥ ४॥

उन मुनिने स्नेहपूर्वक [मधुपर्क आदि] सबकुछ ग्रहण करके उस कन्याकी याचना की। [यह सुनकर] राजा मौन हो गये और कुछ बोल न सके॥ ५॥

मुनिने राजासे कहा कि मुझे भक्तिपूर्वक अपनी कन्या प्रदान कीजिये, अन्यथा आपसहित सब कुछ भस्म कर दूँगा॥ ६॥

हे महामुने! उस समय समस्त राजपुरुष दधीचिपुत्र पिप्पलादके तेजसे आच्छन्न हो गये॥ ७॥

तब अत्यन्त डरे हुए राजाने बारंबार विलाप करके कन्या पद्माको अलंकृतकर वृद्ध मुनिको समर्पित कर दिया॥ ८॥

पार्वतीके अंशसे समुद्भूत उस राजपुत्री पद्माके साथ विवाहकर वे मुनि पिप्पलाद उसे लेकर प्रसन्न होकर अपने आश्रममें चले गये॥ ९॥

वहाँ जाकर वृद्धावस्थाके कारण अत्यधिक जर्जर हुए तथा लम्पट स्वभाव न रखनेवाले वे तपस्वी मुनिवर उस नारीके साथ निवास करने लगे॥ १०॥

जिस प्रकार लक्ष्मीजी नारायणकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार अनरण्यकी वह कन्या मन, वचन तथा कर्मसे भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी॥ ११॥

तब शिवके अंशरूप मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद अपनी लीलासे युवा होकर उस युवतीके साथ रमण करने लगे॥ १२॥

उन मुनिके परम तपस्वी दस महात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। वे सब अपने पिताके समान [महातेजस्वी] तथा पद्माके सुखको बढ़ानेवाले थे॥ १३॥

इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार मुनिवर पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं॥ १४॥

लोकमें सभीके द्वारा अनिवारणीय शनि-पीड़ाको देखकर उन दयालु पिप्पलादने प्राणियोंको प्रीतिपूर्वक वर प्रदान किया था कि जन्मसे लेकर सोलह वर्षतककी आयुवाले मनुष्यों तथा शिवभक्तोंको शनिकी पीड़ा नहीं होगी; यह मेरा वचन सत्य होगा। मेरे इस वचनका निरादरकर यदि शनिने उन मनुष्योंको पीड़ा पहुँचायी तो वह उसी समय भस्म हो जायगा; इसमें सन्देह नहीं॥ १५—१७॥

हे तात! इसीलिये ग्रहोंमें श्रेष्ठ शनैश्चर विकारयुक्त होनेपर भी उनके भयसे उन [वैसे मनुष्यों]-को कभी पीड़ित नहीं करता॥ १८॥

हे सन्मुने! इस प्रकार लीलापूर्वक मनुष्यरूप धारण करनेवाले पिप्पलादका उत्तम चरित मैंने आपसे कहा, जो सभी प्रकारकी कामनाओंको प्रदान करनेवाला है। गाधि, कौशिक एवं महामुनि पिप्पलाद—ये तीनों [महानुभाव] स्मरण किये जानेपर शनैश्चरजनित पीड़ाको नष्ट करते हैं॥ १९-२०॥

भूलोकमें जो मनुष्य पद्माके चरित्रसे युक्त पिप्पलादके चरित्रको भक्तिपूर्वक पढ़ता या सुनता है और जो शनिकी पीड़ाके नाशके लिये इस उत्तम चरितको पढ़ता या सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ २१-२२॥

महाज्ञानी, महाशिवभक्त एवं सज्जनोंके लिये प्रिय वे मुनिवर दधीचि धन्य हैं, जिनके पुत्र आत्मवेत्ता पिप्पलादके रूपमें साक्षात् शिवजी अवतरित हुए॥ २३॥

हे तात! यह आख्यान निष्पाप, स्वर्गको देनेवाला, क्रूर ग्रहोंके दोषको नष्ट करनेवाला, सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें पिप्पलादावतारचरितवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

शिवके वैश्यनाथ नामक अवतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे तात! हे मुने! अब मैं परमात्मा शिवजीके परम आनन्ददायक वैश्यनाथ नामक अवतारका वर्णन कर रहा हूँ; आप सुनिये॥ १॥

पूर्व समयमें नन्दिग्राममें कोई महानन्दा नामसे प्रसिद्ध शिवभक्ता महासुन्दरी वेश्या रहती थी॥ २॥

वह ऐश्वर्यसम्पन्न, धनाढ्य, परम कान्तियुक्त, अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त, शृंगाररससे परिपूर्ण, सब प्रकारकी संगीत विद्याओंमें कुशल तथा मनको अत्यन्त मोहित करनेवाली थी। उसके गानसे रानियाँ तथा राजा हर्षित हो जाते थे॥ ३-४॥

वह वेश्या प्रसन्नतापूर्वक पार्वतीसहित शंकरकी सदा पूजा करती थी और शिवनामका जप करती थी तथा भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करती थी॥ ५॥

शिवजीका प्रतिदिन पूजनकर वह बड़ी भक्तिके साथ जगदीश्वरकी सेवा करती तथा शिवके उत्तम यशका गान करती हुई नृत्य करती थी॥ ६॥

वह एक बन्दर तथा मुर्गेको रुद्राक्षोंसे विभूषित करके ताली बजा-बजाकर गायन करती हुई उन्हें नचाती थी॥ ७॥

उन दोनोंको नाचते हुए देखकर शिवजीकी भक्तिमें तत्पर वह वेश्या अपनी सखियोंके सहित प्रेमपूर्वक उच्च स्वरमें हँसती थी॥ ८॥

रुद्राक्षका बाजूबन्द एवं कर्णाभूषण पहनी हुई उस महानन्दाके सामने उसके सिखानेसे वानर बालककी तरह नाचता था॥ ९॥

शिखामें रुद्राक्ष धारण किया हुआ नृत्यकलामें विशारद वह मुर्गा देखनेवालोंको आनन्दित करता हुआ, उस वानरके साथ सदा नृत्य किया करता था॥ १०॥

इस प्रकार शिवभक्तिपरायणा वह वेश्या अत्यन्त आदरपूर्वक कौतुक करती हुई सदा आनन्दसे रहती थी॥ ११॥

हे मुनिसत्तम! इस प्रकार शिवभक्ति करती हुई उस वेश्याका सुखपूर्वक बहुत समय व्यतीत हो गया॥ १२॥

एक बार स्वयं ही शुभस्वरूप शिवजी व्रत धारण किये हुए वैश्य बनकर उसके भावकी परीक्षा करनेके लिये उसके घर आये॥ १३॥

वे कृती (वैश्यरूप शिव) त्रिपुण्ड्रसे शोभायमान मस्तकवाले, रुद्राक्षके आभरणवाले, शिवनाम जपनेमें आसक्त, जटायुक्त तथा शैव वेश धारण किये हुए थे॥ १४॥

शरीरमें भस्म लगाये तथा हाथमें उत्तम रत्नोंसे युक्त श्रेष्ठ कंकण पहने वे परम कौतुकीकी तरह शोभित हो रहे थे॥ १५॥

उन आये हुए वैश्यकी भलीभाँति पूजा करके उस सुन्दरी वेश्याने बड़े आनन्दके साथ उनको आदरसहित अपने स्थानमें बैठाया॥ १६॥

उनकी कलाईमें अति मनोहर सुन्दर कंकणको देखकर उसमें उसकी लालसा उत्पन्न हो गयी और वह वेश्या चकित होकर उनसे कहने लगी॥ १७॥

महानन्दा बोली—आपके हाथमें स्थित यह महारत्नजटित कंकण शीघ्र ही मेरे मनको आकर्षित कर रहा है; यह तो दिव्य स्त्रियोंके योग्य आभूषण है॥ १८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार नवीन रत्नोंसे युक्त हाथके भूषणके प्रति उसे लालसायुक्त देखकर उदार बुद्धिवाले वैश्यने मुसकराकर कहा— ॥ १९ ॥

वैश्यनाथ बोले—यदि इस रत्नोपम दिव्य कंकणमें तुम्हारा मन लुभा गया है, तो तुम ही प्रीतिसे इसको धारण करो; किंतु इसका क्या मूल्य दोगी ?॥ २० ॥

वेश्या बोली—हम व्यभिचारी वेश्याएँ हैं, पतिव्रताएँ नहीं हैं। व्यभिचार ही हमारे कुलका धर्म है; इसमें संशय नहीं॥ २१ ॥

निश्चय ही इस हस्ताभूषणने मेरे चित्तको आकृष्ट कर लिया है, इसलिये मैं तीन दिनोंतक दिन-रात आपकी पत्नी बनकर रहूँगी॥ २२ ॥

वैश्य बोले—हे वीरवल्लभे! 'बहुत अच्छा'; यदि तुम्हारा वचन सत्य है, तो मैं [यह] रत्नकंकण देता हूँ और तुम तीन राततकके लिये मेरी पत्नी बन जाओ॥ २३ ॥

हे प्रिये! इस व्यवहारमें सूर्य तथा चन्द्रमा साक्षी हैं; यह सत्य है—ऐसा तीन बार कहकर तुम मेरे हृदयका स्पर्श करो॥ २४ ॥

वेश्या बोली—हे प्रभो! तीन दिनतक दिन-रात आपकी पत्नी होकर मैं सहधर्मका पालन करूँगी, यह सत्य है—सत्य है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २५ ॥

नन्दीश्वर बोले—उस महानन्दाने तीन बार ऐसा कहकर सूर्य और चन्द्रमाको साक्षी मानकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उनके हृदयका स्पर्श किया। तब वे वैश्य उसे रत्नजटित कंकण देकर [पुनः] उसके हाथमें रत्नमय शिवलिंग देकर यह कहने लगे— ॥ २६-२७ ॥

वैश्यनाथ बोले—हे कान्ते! यह रत्नजटित शिवलिंग मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है; तुम इसकी रक्षा करना और यत्नपूर्वक इसे छिपाकर रखना॥ २८ ॥

नन्दीश्वर बोले—उस वेश्याने 'ऐसा ही होगा'— इस प्रकार कहकर रत्नजटित लिंग लेकर और उसे नाट्यशालाके मध्यमें रखकर घरमें प्रवेश किया॥ २९ ॥

तब वह वेश्या उन विटधर्मी (विलासी) वैश्यके साथ रात्रिमें कोमल गद्दोंसे शोभायमान पलंगपर सुखपूर्वक सो गयी॥ ३० ॥

हे मुने! तब मध्य रात्रिके समय उन वैश्यपतिकी इच्छासे नृत्यमण्डपके मध्य अकस्मात् एक ध्वनि होने लगी। हे तात! उसी समय तेज पवनकी सहायतासे अग्निने अत्यन्त प्रज्वलित होकर उस नाट्यशालाको चारों ओरसे आवृत कर लिया॥ ३१-३२ ॥

मण्डपके प्रज्वलित होनेपर उस वेश्याने सहसा व्याकुलतासे उठकर बन्दरको बन्धनमुक्त कर दिया॥ ३३ ॥

बन्धनसे मुक्त हुआ वह बन्दर उस मुर्गेके साथ बहुत-से अग्निकणोंको हटा करके भयसे दूर भाग गया। खम्भेके साथ जलकर खण्ड-खण्ड हो गये उस लिंगको देखकर वह वैश्य तथा वेश्या दोनों महादुखी हो गये॥ ३४-३५ ॥

उस समय वैश्यपतिने प्राणोंके समान शिवलिंगको जला हुआ देखकर उस वेश्याके चित्तमें स्थित भावको जाननेके लिये मरनेका विचार किया॥ ३६ ॥

अनेक लीलाएँ करनेवाले तथा कौतुकवश मनुष्य शरीर धारण किये हुए महेश्वररूप वैश्यपतिने महादुखी होकर उस दुःखित वेश्यासे कहा कि अब मैं अग्निमें प्रविष्ट हो जाऊँगा॥ ३७ ॥

वैश्यपति बोले—मेरे प्राणोंसे भी प्रिय शिवलिंगके जलकर खण्डित हो जानेपर मैं जीनेकी इच्छा नहीं करता—यह सत्य-सत्य कहता हूँ; इसमें संशय नहीं है। हे भद्रे! तुम अपने श्रेष्ठ सेवकोंसे बहुत शीघ्र चिता बनवाओ; मैं शिवमें मन लगाकर अग्निमें प्रवेश करूँगा॥ ३८-३९ ॥

हे भद्रे! यदि ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु आदि भी आकर मुझे रोकेंगे, तो भी इस समय मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा और प्राणोंको त्याग दूँगा॥ ४० ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] उनका ऐसा दृढ़ संकल्प जानकर वह अत्यन्त दुःखित हुई और उसने अपने सेवकोंसे अपने भवनके बाहर चिता बनवायी॥ ४१ ॥

तब सुन्दर कौतुक करनेवाले तथा वेश्याके संगतिभावकी परीक्षा करनेवाले वे वैश्यरूपधारी धीर शिव जलती हुई अग्निकी परिक्रमा करके मनुष्योंके देखते-देखते अग्निमें प्रवेश कर गये॥ ४२ ॥

हे मुनिसत्तम! वह युवती वेश्या महानन्दा उस गतिको देखकर अत्यन्त विस्मित हो उठी और खिन्न हो

गयी। इसके बाद वह दुखी वेश्या निर्मल धर्मका स्मरण करके सभी बन्धुजनोंको देखकर करुणासे युक्त वचन कहने लगी— ॥ ४३-४४ ॥

महानन्दा बोली—मैंने इस वैश्यसे रत्नकंकण लेकर सत्य वचन कहा था कि मैं तीन दिनतक इस वैश्यकी धर्मसम्मत पत्नी रहूँगी ॥ ४५ ॥

मेरे द्वारा किये गये कर्मसे यह शिवव्रतधारी वैश्य मृत्युको प्राप्त हुआ है, अतः मैं भी इसके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगी ॥ ४६ ॥

सत्य बोलनेवाले आचार्योंने '[नारी] स्वधर्मका आचरण करनेवाली हो'—ऐसा कहा है, अतः प्रसन्न होकर मेरे द्वारा ऐसा किये जानेपर मुझमें स्थित सत्य नष्ट नहीं होगा। सत्यका आश्रय ही परम धर्म है, सत्यसे परम गति होती है, सत्यसे ही स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं, अतः सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है ॥ ४७-४८ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार दृढ़ संकल्पवाली उस नारीने अपने बन्धुओंद्वारा रोके जानेपर भी सत्यके लोपके भयसे प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय किया और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको अपनी सम्पत्ति देकर सदाशिवका ध्यानकर उस अग्निकी तीन बार परिक्रमा करके वह उसमें प्रवेश करनेको उद्यत हुई ॥ ४९-५० ॥

अपने चरणोंमें समर्पित मनवाली उस वेश्याको जलती अग्निमें गिरती देखकर प्रकट हुए उन विश्वात्मा शिवजीने रोक दिया ॥ ५१ ॥

सब देवताओंके भी देव, तीन नेत्रोंवाले, चन्द्रमाकी कलासे शोभित, करोड़ों चन्द्रमा-सूर्य-अग्निके समान प्रकाशवाले उन शिवको देखकर वह स्तब्ध तथा डरी हुईके समान उसी प्रकार खड़ी रह गयी ॥ ५२ ॥

तब व्याकुल, संत्रस्त, काँपती हुई, जड़ीभूत तथा आँसू गिराती हुई उस वेश्याको आश्वस्त करके उसके हाथोंको पकड़कर शिवजी यह वचन कहने लगे— ॥ ५३ ॥

शिवजी बोले—तुम्हारे सत्य, धर्म, धैर्य तथा मुझमें तुम्हारी निश्चल भक्तिकी परीक्षा करनेके निमित्त मैं वैश्य बनकर तुम्हारे पास आया था ॥ ५४ ॥

मैंने अपनी मायासे अग्निको प्रदीप्तकर तुम्हारे नाट्यमण्डपको जलाया है और रत्नलिंगको दग्ध करके मैं अग्निमें प्रविष्ट हुआ हूँ ॥ ५५ ॥

तुम सत्यका अनुस्मरण करके मेरे साथ अग्निमें प्रविष्ट होने लगी, अतः मैं तुम्हें देवताओंके लिये भी दुर्लभ भोगोंको प्रदान करूँगा। हे सुश्रोणि! तुम जो-जो चाहती हो, उसे मैं तुम्हें देता हूँ; मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारे लिये [मुझे] कुछ भी अदेय नहीं है ॥ ५६-५७ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] इस प्रकार भक्तवत्सल गौरीपति शिवजीके कहनेपर वह महानन्दा वेश्या शंकरजीसे कहने लगी— ॥ ५८ ॥

वेश्या बोली—भूमि, स्वर्ग तथा पातालके भोगोंमें मेरी इच्छा नहीं है; मैं आपके चरणकमलोंके स्पर्शके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं चाहती हूँ ॥ ५९ ॥

जो मेरे भृत्य तथा दासियाँ हैं और जो अन्य बान्धव हैं, वे सब आपके दर्शनके लिये लालायित हैं और आपमें ही चित्तकी वृत्तियाँ लगाये हुए हैं। मेरे सहित इन सभीको अपने परम पदकी प्राप्ति कराके पुनर्जन्मके घोर भयसे छुड़ाइये, आपको नमस्कार है ॥ ६०-६१ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] इसके उपरान्त शिवजीने उसके वचनका आदरकर उसके सहित उन सबको अपने परम पदकी प्राप्ति करायी ॥ ६२ ॥

मैंने वैश्यनाथके परम अवतारका वर्णन आपसे कर दिया, जो महानन्दाको सुख देनेवाला तथा भक्तोंको सदा आनन्द देनेवाला है ॥ ६३ ॥

शिवके अवताररूप वैश्यनाथका यह दिव्य चरित्र परम पवित्र, सत्पुरुषोंको शीघ्र सब कुछ देनेवाला, महानन्दाको परम सुख देनेवाला तथा अद्भुत है ॥ ६४ ॥

जो भक्तिसहित सावधान होकर इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह अपने धर्मसे पतित नहीं होता, और परलोकमें [उत्तम] गति प्राप्त करता है ॥ ६५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें वैश्यनाथ नामवाले शिवावतारका वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे तात! अब मैं सज्जनोंके लिये कल्याणकारी तथा उन्हें सुख देनेवाले परमात्मा शिवके द्विजेश्वरावतारका वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये॥ १॥

हे तात! मैंने पहले जिन नृपश्रेष्ठ भद्रायुका वर्णन किया था और जिनपर शिवजीने ऋषभरूप धारणकर अनुग्रह किया था, उन्हींके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये वे पुनः द्विजेश्वरस्वरूपसे प्रकट हुए थे, उसी वृत्तान्तको मैं कह रहा हूँ॥ २-३॥

हे तात! उन प्रभविष्णु राजा भद्रायुने ऋषभके प्रभावसे संग्राममें समस्त शत्रुओंको जीतकर राज्यसिंहासन प्राप्त किया। हे ब्रह्मन्! राजा चन्द्रांगदकी सीमन्तिनी नामक पत्नीसे उत्पन्न सुन्दरी पुत्री तथा परम साध्वी कीर्तिमालिनी उनकी पत्नी हुई॥ ४-५॥

हे मुने! किसी समय उन भद्रायुने वसन्तकालमें अपनी पत्नीके साथ वनविहार करनेके लिये घने वनमें प्रवेश किया। इसके बाद वे राजा उस सुरम्य वनमें शरणागतोंका पालन करनेवाली अपनी प्रियाके साथ विहार करने लगे॥ ६-७॥

तब उनके धर्मकी दृढ़ताकी परीक्षाके लिये पार्वतीसहित भगवान् शिवने वहींपर एक लीला की॥ ८॥

शिवजी और पार्वतीजी द्विजदम्पती बनकर तथा अपनी लीलासे एक मायामय व्याघ्रको बनाकर उस वनमें प्रकट हुए॥ ९॥

वे दोनों द्विजदम्पती जहाँ राजा विहार कर रहे थे, वहींसे थोड़ी दूरपर व्याघ्रद्वारा पीछा किये जानेपर भयसे व्याकुल होकर दौड़ते, रोते-चिल्लाते हुए राजाके समीप पहुँचे। शरणागतवत्सल एवं क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ उन राजा भद्रायुने व्याघ्रसे आक्रान्त होकर 'हे तात!' चिल्लाते हुए उन दोनोंको देखा॥ १०-११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अपनी मायासे द्विजदम्पती बने हुए उन दोनोंने भयसे व्याकुल होकर महाराज भद्रायुसे इस प्रकार कहा—॥ १२॥

द्विजदम्पती बोले—हे महाराज! हे धर्मवित्तम! हम दोनोंकी रक्षा कीजिये। हे महाप्रभो! हम दोनोंको खानेके लिये यह व्याघ्र आ रहा है। हे धर्मज्ञ! यह हिंसक, कालसदृश तथा सभी प्राणियोंके लिये भयंकर व्याघ्र आकर जबतक हम दोनोंको खा न ले, उसके पहले ही आप इस व्याघ्रसे हमलोगोंको बचा लीजिये॥ १३-१४॥

नन्दीश्वर बोले—उन महावीर राजाने उन दोनोंका करुण क्रन्दन सुनकर ज्यों ही अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक धनुष धारण किया, इतनेमें अति मायावी उस व्याघ्रने बड़ी शीघ्रताके साथ पहुँचकर उस द्विजश्रेष्ठकी स्त्रीको पकड़ लिया, और 'हे नाथ! हा कान्त! हा शम्भो! हे जगद्गुरो!'—इस प्रकार कहकर रोती हुई उस स्त्रीको भयंकर व्याघ्रने ग्रास बना लिया॥ १५—१७॥

तबतक राजाने अपने तीक्ष्ण भालोंसे व्याघ्रपर प्रहार किया, किंतु उसे उन भालोंसे किसी प्रकारकी व्यथा नहीं हुई, जैसे वृष्टिधाराओंसे पर्वतराजपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है॥ १८॥

राजाके द्वारा यथेच्छ आघात किये जानेपर भी व्यथारहित वह महाबलवान् व्याघ्र बलपूर्वक उस स्त्रीको लेकर बड़ी शीघ्रताके साथ वहाँसे भाग गया॥ १९॥

इस प्रकार बाघके द्वारा अपहृत अपनी स्त्रीको देखकर ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित हो गया और लौकिकी गतिका आश्रय लेकर बारंबार रोने लगा॥ २०॥

फिर देरतक रोनेके बाद अभिमान नष्ट करनेवाले तथा मायासे विप्ररूप धारण करनेवाले उन परमेश्वरने राजा भद्रायुसे कहा—॥ २१॥

द्विजेश्वर बोले—हे राजन्! [इस समय] तुम्हारे महान् अस्त्र कहाँ हैं, रक्षा करनेवाला तुम्हारा महाधनुष कहाँ है और बारह हजार हाथियोंका तुम्हारा बल कहाँ है?॥ २२॥

तुम्हारे शंख तथा खड्गसे क्या लाभ? तुम्हारी समन्त्रक अस्त्रविद्यासे क्या लाभ? तुम्हारे सत्त्वसे क्या लाभ और तुम्हारे महान् अस्त्रोंके उत्कृष्ट और अतिशय

प्रभावसे क्या लाभ? अन्य जो कुछ भी तुममें है, वह सब निष्फल हो गया; क्योंकि तुम वनमें रहनेवाले जन्तुओंके आक्रमणको भी रोकनेमें सक्षम न हो सके॥ २३-२४॥

[प्रजाजनोंको] क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। उस कुलधर्मके नष्ट हो जानेपर तुम्हारे जीवित रहनेसे क्या लाभ है?॥ २५॥

धर्मज्ञ राजा अपने प्राणों तथा धनसे अपने शरणमें आये हुए दीन-दु:खियोंकी रक्षा करते हैं, यदि वे ऐसा नहीं करते तो मृतकके समान हैं॥ २६॥

पीड़ितोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ राजाओंके लिये जीवित रहनेकी अपेक्षा मर जाना ही श्रेयस्कर है, दानसे हीन धनी लोगोंके लिये गृहस्थ होनेकी अपेक्षा भिखारी होना कहीं अधिक श्रेष्ठ है॥ २७॥

अनाथ, दीन एवं आर्तजनोंकी रक्षा करनेमें जो अक्षम हैं, उनके लिये विष खाना या अग्निमें प्रवेश कर जाना कहीं अच्छा है—ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं॥ २८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उस ब्राह्मणका विलाप तथा उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजा भद्रायु शोकसन्तप्त हो अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगे॥ २९॥

अहो! आज भाग्यके उलट-फेरसे मेरा पराक्रम नष्ट हो गया, आज मेरी कीर्ति नष्ट हो गयी और मुझे भयंकर पापका भागी होना पड़ा॥ ३०॥

मुझ अभागे तथा दुर्बुद्धिका कुलोचित धर्म नष्ट हो गया। निश्चय ही [इस प्रकारके पापके कारण] मेरी सम्पत्तियों, राज्य और आयुका भी नाश हो जायगा॥ ३१॥

अपनी पत्नीके मर जानेसे शोकसन्तप्त इस ब्राह्मणको मैं आज अतिप्रिय प्राणोंको देकर शोकरहित करूँगा॥ ३२॥

इस प्रकार नृपश्रेष्ठ भद्रायुने अपने मनमें निश्चयकर उस ब्राह्मणके चरणोंमें गिरकर उसे सान्त्वना देते हुए कहा—॥ ३३॥

भद्रायु बोले—हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! मुझ नष्ट तेजवाले क्षत्रियाधमपर कृपा करके अपने शोकका त्याग कीजिये, मैं आज आपका अभीष्ट पूरा करूँगा। यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर सब कुछ आपके अधीन है, इसके अतिरिक्त आप और क्या चाहते हैं?॥ ३४-३५॥

ब्राह्मण बोले—[हे राजन्!] अन्धेको दर्पणसे क्या लाभ, भिक्षासे जीवन-निर्वाह करनेवालेको घरकी क्या आवश्यकता, मूर्खको पुस्तकसे क्या लाभ और स्त्रीविहीन पुरुषको धनसे क्या प्रयोजन! इस समय मेरी स्त्री मर चुकी है और मैंने कभी कामसुखका उपभोग नहीं किया, अत: मैं आपकी इस पटरानीको चाहता हूँ, इसे मुझे दे दीजिये॥ ३६-३७॥

भद्रायु बोले—[हे ब्राह्मण!] पूरी पृथ्वीके धनका और राज्य, हाथी, घोड़े तथा अपने शरीरका भी दाता तो हुआ जा सकता है, किंतु अपनी स्त्रीका दान करनेवाला तो कहीं नहीं होता॥ ३८॥

दूसरेकी स्त्रीके साथ समागम करनेसे जो पाप अर्जित किया जाता है, उसे सैकड़ों प्रायश्चित्तोंसे भी दूर नहीं किया जा सकता है॥ ३९॥

ब्राह्मण बोले—मुझे घोर ब्रह्महत्या तथा मद्य पीनेका महापाप ही क्यों न लगे, मैं उसे तपस्यासे नष्ट कर दूँगा, फिर परस्त्रीगमन कितना बड़ा पाप है॥ ४०॥

अत: आप मुझे अपनी यह स्त्री प्रदान कीजिये, मैं दूसरा कुछ नहीं चाहता, अन्यथा भयभीतोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ होनेके कारण आपको निश्चित रूपसे नरककी प्राप्ति होगी॥ ४१॥

नन्दीश्वर बोले—ब्राह्मणकी इस बातसे भयभीत राजा विचार करने लगे कि भयभीतकी रक्षा न कर सकना महान् पाप है, उसकी अपेक्षा स्त्री दे देना ही श्रेयस्कर है॥ ४२॥

अत: श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी स्त्री प्रदानकर पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा, ऐसा करनेसे मेरी कीर्ति भी बढ़ेगी॥ ४३॥

मनमें ऐसा विचारकर राजाने अग्नि प्रज्वलित करके उस ब्राह्मणको बुलाकर जल लेकर [संकल्पके साथ] अपनी पत्नीका दान कर दिया॥ ४४॥

इसके बाद स्वयं स्नान करके पवित्र हो देवेश्वरोंको प्रणामकर उस अग्निकी तीन बार प्रदक्षिणा करके

समाहितचित्त हो, उन्होंने शिवजीका ध्यान किया॥ ४५॥

तदनन्तर द्विजेश्वरने साक्षात् शिवरूपमें प्रकट होकर अपने चरणोंमें मन लगाकर [प्रज्वलित] अग्निमें गिरनेको उद्यत हुए उन राजाको रोक दिया॥ ४६॥

पाँच मुखोंवाले, तीन नेत्रोंवाले, पिनाकी, मस्तकपर चन्द्रकला धारण करनेवाले, लम्बी एवं पीली-पीली जटाओंसे युक्त, मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्योंकी भाँति तेजवाले, मृणालके समान शुभ्र वर्णवाले, गजचर्म धारण किये हुए, गंगाकी तरंगोंसे सिंचित शिर:प्रदेशवाले, कण्ठमें नागेन्द्रहाररूप आभूषण धारण करनेवाले, मुकुट-करधनी-बाजूबन्द तथा कंकण धारण करनेसे उज्ज्वल प्रतीत होनेवाले, त्रिशूल-खड्ग-खट्वांग-कुठार-चर्म-मृग-अभय मुद्रा तथा पिनाक नामक धनुषसे युक्त आठ हाथोंवाले, बैलपर बैठे हुए और कण्ठमें विषकी कालिमासे सुशोभित उन शिवजीको राजाने अपने सामने प्रकट हुआ देखा॥ ४७—४९॥

तब आकाशमण्डलसे शीघ्र ही दिव्य पुष्पवृष्टि होने लगी, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और अप्सराएँ नाचने तथा गाने लगीं॥ ५०॥

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवता, नारदादि महर्षि तथा अन्य मुनिगण भी स्तुति करते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ ५१॥

उस समय भक्तिसे विनम्र हो हाथ जोड़े हुए राजाके देखते-देखते ही भक्तिको बढ़ानेवाला महान् उत्सव होने लगा॥ ५२॥

भगवान् सदाशिवके दर्शनमात्रसे राजाका अन्त:करण प्रसन्नतासे खिल उठा, अश्रुपातसे सारा शरीर आर्द्र हो गया, शरीर रोमांचित हो गया। तब वे हाथ जोड़े गद्गद वाणीसे शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ ५३॥

इसके बाद राजाके द्वारा स्तुति किये जानेपर पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए दयानिधि भगवान् महेश्वरने उनसे कहा—हे राजन्! मैं आपकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ और आपके धर्मपालनसे तो और भी प्रसन्न हुआ हूँ। अब आप अपनी पत्नीसहित वर माँगिये, मैं उसे दूँगा, इसमें संशय नहीं है। मैं आपके भक्तिभावकी परीक्षाके लिये ही ब्राह्मणवेष धारण करके आया था और व्याघ्रने जिसे पकड़ लिया था, वे साक्षात् देवी पार्वती थीं। तुम्हारे बाणोंसे आहत न होनेवाला जो व्याघ्र था, वह मायासे बनाया गया था और मैंने आपके धैर्यकी परीक्षाके लिये ही आपकी स्त्रीको माँगा था॥ ५४—५७॥

नन्दीश्वर बोले—प्रभुका यह वचन सुनकर उन्हें पुन: प्रणामकर तथा उनकी स्तुति करके विनम्र होकर वे राजा भद्रायु स्वामी [शिव]-से कहने लगे—॥ ५८॥

भद्रायु बोले—हे नाथ! मेरा एक ही वर है जो कि आप परमेश्वरने सांसारिक तापसे सन्तप्त मुझको प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। हे नाथ! हे प्रभो! फिर भी यदि आप अपनी कृपासे वर देना ही चाहते हैं, तो मैं वरदाताओंमें श्रेष्ठ आपसे यही परम वर माँगता हूँ कि हे महेश्वर! हे नाथ! माताके साथ मेरे पिता वज्रबाहु तथा स्त्रीके सहित मैं आपके चरणोंका सदा सेवक बना रहूँ और हे महेशान! जो पद्माकर नामक यह वैश्य है तथा सनय नामक उसका पुत्र है—इन सबको सदा अपना पार्श्ववर्ती बनायें॥ ५९—६२॥

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर उस राजाकी कीर्तिमालिनी नामक पत्नी भी आनन्दित होकर अपनी भक्तिसे शिवजीको प्रसन्नकर उत्तम वरदान माँगने लगी॥ ६३॥

रानी बोली—हे महादेव! मेरे पिता चन्द्रांगद और मेरी माता सीमन्तिनी—इन दोनोंके लिये प्रसन्नतापूर्वक आपके समीप निवासकी याचना करती हूँ॥ ६४॥

नन्दीश्वर बोले—भक्तवत्सल पार्वतीपति प्रसन्न होकर उन दोनोंसे 'ऐसा ही हो'—इस प्रकार कहकर उन्हें इच्छित वर देकर क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये॥ ६५॥

भद्रायुने भी प्रीतिपूर्वक शिवजीकी कृपा प्राप्तकर [अपनी पत्नी] कीर्तिमालिनीके साथ अनेक विषयोंका भोग किया॥ ६६॥

इस प्रकार अव्याहत पराक्रमवाले राजा दस हजार वर्षपर्यन्त राज्य करके पुत्रको राज्यका भार देकर शिवजीकी सन्निधिमें चले गये और राजर्षि चन्द्रांगद तथा उनकी रानी सीमन्तिनी भक्तिसे शिवजीका पूजनकर शिवपदको प्राप्त हुए॥ ६७-६८॥

हे प्रभो [सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने आपसे

शिवजीके श्रेष्ठ द्विजेश्वरावतारका वर्णन किया, जिससे राजा भद्रायुको परम सुख प्राप्त हुआ॥ ६९॥

पवित्र कीर्तिवाले द्विजेशसंज्ञक शिवावतारके इस परम पवित्र तथा अत्यन्त अद्भुत चरित्रको पढ़ने तथा सुननेवाला शिवपदको प्राप्त होता है॥ ७०॥

जो एकाग्रचित्त होकर इसे प्रतिदिन सुनता अथवा सुनाता है, वह अपने धर्मसे विचलित नहीं होता है और परलोकमें उत्तम गति प्राप्त करता है॥ ७१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें द्विजेशाख्यशिवावतारवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

नल एवं दमयन्तीके पूर्वजन्मकी कथा तथा शिवावतार यतीश्वरका हंसरूप धारण करना

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! हे मुने! अब मैं परमात्मा शिवके परम आनन्दप्रद यतिनाथ नामक अवतारका वर्णन करूँगा, आप सुनें॥ १॥

हे मुनीश्वर! [पूर्वकालमें] अर्बुदाचल नामक पर्वतके समीप भिल्लवंशमें उत्पन्न आहुक नामक एक भील रहता था॥ २॥

उसकी पत्नीका नाम आहुका था, जो अत्यन्त पतिव्रता थी। वे दोनों प्रतिदिन भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा करते थे। वे दोनों महाशिवभक्त थे॥ ३॥

हे मुने! किसी समय सदा शिवभक्तिमें तत्पर रहनेवाला वह भील अपने तथा स्त्रीके लिये आहारकी व्यवस्थाहेतु बहुत दूर चला गया॥ ४॥

इसी बीच शिवजी संन्यासीका रूप धारणकर उसकी परीक्षा लेनेके लिये सायंकाल उस भीलके घर आये॥ ५॥

उसी समय वह गृहपति [आहुक] भी वहाँ आ गया और उस महाबुद्धिमान् भीलने प्रेमपूर्वक उन यतीश्वरकी पूजा की॥ ६॥

उसके भावकी परीक्षा करनेके लिये महालीला करनेवाले संन्यासीरूपधारी उन शिवजीने डरते हुए प्रेमपूर्वक दीनवचन कहा—॥ ७॥

यतिनाथ बोले—हे भिल्ल! तुम मुझे आज रहनेके लिये स्थान दो और प्रात:काल होते ही मैं सर्वथा चला जाऊँगा, तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो॥ ८॥

भिल्ल बोला—हे स्वामिन्! आपने सत्य कहा, किंतु मेरी बात सुनिये, मेरा स्थान तो बहुत थोड़ा है, फिर यहाँ आपका निवास किस प्रकार सम्भव है?॥ ९॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! उसके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह संन्यासी जानेका विचार करने लगा, तबतक भीलनीने विचारकर अपने स्वामीसे कहा—॥ १०॥

भीलनी बोली—हे स्वामिन्! गृहस्थधर्मका विचार करके आप संन्यासीको स्थान दे दीजिये, अतिथिको निराश मत कीजिये। अन्यथा आपके धर्मका क्षय होगा॥ ११॥

आप घरके भीतर संन्यासीके साथ निवास करें और मैं सभी बड़े अस्त्र-शस्त्रोंको बाहर रखकर वहीं रहूँगी॥ १२॥

नन्दीश्वर बोले—अपनी पत्नी उस भीलनीके धर्मयुक्त कल्याणकारी वचनको सुनकर वह भील अपने मनमें विचार करने लगा॥ १३॥

स्त्रीको घरके बाहर रखकर मेरा घरमें निवास करना उचित प्रतीत नहीं होता है, फिर इस यतिका दूसरी जगह गमन भी अपने अधर्मका कारण होगा॥ १४॥

गृहस्थधर्मका आचरण करनेवालोंके लिये ये दोनों बातें सर्वथा उचित नहीं हैं। अत: जो होनहार है, वह हो, मैं घरके बाहर ही रहूँगा॥ १५॥

इस प्रकार आग्रहकर उन दोनोंको घरके भीतर रखकर अपने अस्त्रोंको लेकर वह भील प्रसन्नतासे घरसे बाहर स्थित हो गया॥ १६॥

रात्रिमें उस भीलको क्रूर एवं हिंसक पशु सताने लगे, उसने भी अपनी रक्षाके लिये उस समय यथाशक्ति

महान् प्रयत्न किया॥ १७॥

इस प्रकार [अपनी शक्तिके अनुसार] यत्न करते रहनेपर भी प्रारब्धप्रेरित हिंसक पशुओंने बलपूर्वक उस बलवान् भीलको खा लिया॥ १८॥

प्रात:काल उठकर संन्यासी हिंस्र जन्तुओंसे भक्षित उस वनेचर भीलको देखकर बड़ा दुखी हुआ॥ १९॥

संन्यासीको दुखी देखकर वह भीलनी भी बहुत दु:खित हुई, किंतु धैर्यसे अपने दु:खको दबाकर यह वचन कहने लगी— ॥ २०॥

भीलनी बोली—हे यते! आप शोक क्यों कर रहे हैं? इनका कल्याण हो गया, ये धन्य हो गये, कृतकृत्य हो गये। जो इस प्रकार इनकी मृत्यु हुई॥ २१॥

हे यते! अब मैं भी इन्हींके साथ अग्निमें भस्म होकर सती हो जाऊँगी, आप प्रेमपूर्वक चिता तैयार कराइये; क्योंकि यही स्त्रियोंका सनातनधर्म है॥ २२॥

उसकी यह बात सुनकर और इसीमें उसका कल्याण समझकर उस संन्यासीने तत्क्षण ही चिता तैयार कर दी और वह अपने धर्मके अनुसार उसीमें प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुई॥ २३॥



इसी अवसरपर साक्षात् शिवजी सामने प्रकट हो गये। धन्य हो, धन्य हो—इस प्रकारसे प्रेमपूर्वक प्रशंसा करते हुए शिवजी उस भीलनी से कहने लगे— ॥ २४॥

हर बोले—हे अनघे! मैं तुम्हारे आचरणसे प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो, मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। मैं इस समय विशेष रूपसे तुम्हारे वशमें हूँ॥ २५॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीके उस परमानन्ददायक वचनको सुनकर वह विशेष रूपसे सुखी हुई और उसको कुछ भी स्मरण नहीं रहा॥ २६॥

उसकी इस अवस्थाको देखकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए। प्रभु शिवने उससे पुन: कहा कि वर माँगो॥ २७॥

शिवजी बोले—यह मेरे रूपवाला यति अगले जन्ममें हंस होगा और तुम दोनोंका पुन: संयोग करायेगा॥ २८॥

यह भील निषधनगरके राजा वीरसेनका नल नामक महाप्रतापी पुत्र होगा, इसमें संशय नहीं है और हे अनघे! तुम विदर्भनगरमें भीमराजकी कन्या होकर परम गुणवती दमयन्ती नामसे विख्यात होओगी॥ २९-३०॥

तुम दोनों ही बहुत कालपर्यन्त यथेष्ट राज्यसुखका भोग करके योगीश्वरोंके लिये दुर्लभ मुक्तिको निश्चित रूपसे प्राप्त करोगे॥ ३१॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर शिवजी उसी समय लिंगरूपमें प्रकट हो गये। [उनके द्वारा परीक्षा करनेपर] भील धर्मसे विचलित नहीं हुआ, इसलिये वह लिंग अचलेश—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३२॥

हे तात! वह आहुक भील निषधनगरमें वीरसेनका पुत्र नल नामवाला महान् राजा हुआ। उसकी पत्नी आहुका भीलनी विदर्भनगरके राजा भीमसेनकी पुत्री दमयन्ती नामसे प्रसिद्ध हुई। वे शिवावतार यतीश्वर भी हंसरूपमें अवतरित हुए, जिन्होंने दमयन्तीका विवाह नलके साथ करवाया॥ ३३—३५॥

पूर्व समयमें उनके द्वारा किये गये [अतिथिके] सत्काररूप महापुण्यके कारण प्रभु शिवजीने हंसरूप धारणकर [इस जीवनमें] दोनोंको महान् सुख प्रदान किया॥ ३६॥

अनेक प्रकारका वार्तालाप करनेमें निपुण हंसावतार शिवजीने दमयन्ती तथा नलको महान् सुख प्रदान किया॥ ३७॥

पवित्र कीर्तिवाले यतीश्वर नामक तथा हंस नामक शिवावतारका यह चरित्र अत्यन्त पवित्र, परम अद्भुत तथा निश्चय ही मुक्तिदायक है॥ ३८॥

जो यतीश तथा ब्रह्महंस नामक अवतारके शुभ चरित्रको सुनता है अथवा सुनाता है, वह परम गति प्राप्त करता है। यह आख्यान निष्पाप, सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला, भक्तिको बढ़ानेवाला एवं उत्तम है॥ ३९-४०॥

यतीश्वर तथा हंसरूप शिवका यह चरित्र सुनकर मनुष्य इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यतिनाथब्रह्महंसाह्वयशिवावतारचरितवर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारकी कथा

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब आप नभगको ज्ञान प्रदान करनेवाले कृष्णदर्शन नामक उत्तम शिवावतारका श्रवण कीजिये॥ १॥

श्राद्धदेवके इक्ष्वाकु आदि जो प्रमुख पुत्र हुए, उनमें नभग नौवें पुत्र थे, उन्हींके पुत्र नाभाग कहे गये हैं॥ २॥

उनके पुत्र अम्बरीष थे। वे विष्णुजीके भक्त हुए, जिनकी ब्राह्मणभक्तिसे दुर्वासाजी उनपर प्रसन्न हुए थे॥ ३॥

हे मुने! अम्बरीषके पितामह जो नभग कहे गये हैं, आप उनका चरित्र सुनिये। जिनको सदाशिवजीने ज्ञान दिया था॥ ४॥

मनुके अति बुद्धिमान् तथा जितेन्द्रिय पुत्र नभग जब पढ़नेके लिये गुरुकुलमें निवास करने लगे, उसी समय मनुके इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंने उनको भाग दिये बिना ही अपने-अपने भागोंको क्रमसे विभाजित कर लिया॥ ५-६॥

वे महाबुद्धिमान् और भाग्यवान् पुत्र अपने पिताकी आज्ञासे अपने-अपने भागको लेकर सुखपूर्वक उत्तम राज्यका भोग करने लगे॥ ७॥

उसके बाद ब्रह्मचारी नभग क्रमसे सांगोपांग सभी वेदोंका अध्ययन करके गुरुकुलसे वहाँ लौटे। तब हे मुने! इक्ष्वाकु आदि अपने सभी भाइयोंको राज्य विभक्त किये हुए देखकर अपना भाग प्राप्त करनेकी इच्छासे नभगने उनसे स्नेहपूर्वक कहा—॥ ८-९॥

नभग बोले—हे भाइयो! आपलोगोंने मेरा हिस्सा बिना दिये ही पिताकी सम्पत्ति जैसे-तैसे आपसमें बाँट ली, अब मैं अपने दायभागके लिये आपलोगोंके पास आया हूँ॥ १०॥

[उनके भाइयोंने कहा—] दायका विभाग करते समय हमलोग तुम्हें भूल गये, अब हमलोगोंने तुम्हारे हिस्सेमें पिताजीको नियत किया है, अतः तुम उन्हींको ग्रहण करो, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११॥

भाइयोंकी वह बात सुनकर नभग अत्यन्त विस्मित हो गये और अपने पिताके पास आकर कहने लगे॥ १२॥

नभग बोले—हे तात! जब मैं ब्रह्मचारी होकर गुरुकुलमें पढ़नेके लिये चला गया था, तभी उन सभी भाइयोंने मुझे छोड़कर सारा राज्य बाँट लिया॥ १३॥

वहाँसे लौटकर जब मैं अपने हिस्सेके लिये उनसे आदरपूर्वक पूछने लगा। तो उन्होंने आपको ही मेरे भागके रूपमें दिया, इसलिये मैं [आपके पास] आया हूँ॥ १४॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उनका वचन सुनकर विस्मित हुए पिता श्राद्धदेवने सत्यधर्ममें निरत अपने पुत्रको धीरज बँधाते हुए कहा—॥ १५॥

मनु बोले—हे तात! तुम भाइयोंकी बातमें विश्वास मत करो। उनका यह वचन तुम्हें धोखा देनेके लिये है। मैं तुम्हारे भोगका साधनभूत परम दाय नहीं हूँ॥ १६॥

किंतु उन धोखेबाजोंने तुम्हारे लिये मुझे दायभागके रूपमें दिया है, अतः मैं तुम्हारे जीवन-निर्वाहका ठीक-ठीक उपाय बताता हूँ, तुम श्रवण करो॥ १७॥

इस समय आंगिरसगोत्रीय विद्वान् ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, उस यज्ञमें वे अपने छठे दिनके कर्ममें भूल कर जाते हैं॥ १८॥

अतः हे नभग! हे महाकवे! तुम वहाँ जाओ और

जाकर विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्तोंको उन्हें बतलाओ, जिससे वह यज्ञ शुद्ध हो सके॥ १९॥

उस यज्ञकर्मके समाप्त हो जानेपर जब वे ब्राह्मण स्वर्ग जाने लगेंगे तो वे प्रसन्न होकर यज्ञसे बचा हुआ धन तुम्हें दे देंगे॥ २०॥

नन्दीश्वर बोले—पिताकी यह बात सुनकर सत्य बोलनेवाले नभग बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ गये, जहाँ वह उत्तम यज्ञ हो रहा था और हे मुने! उस दिनके यज्ञकर्ममें उन परम बुद्धिमान् नभगने विश्वेदेवके दोनों सूक्तोंको स्पष्ट रूपसे कहा॥ २१-२२॥

यज्ञकर्मके समाप्त हो जानेपर वे आंगिरस विप्र यज्ञसे बचा हुआ सारा धन उन्हें देकर स्वर्ग चले गये॥ २३॥

उस श्रेष्ठ यज्ञके शेष धनको ज्यों ही नभगने लेना चाहा, उसी समय यह जानकर उत्तम लीला करनेवाले शिवजी शीघ्र ही प्रकट हो गये। वे कृष्णदर्शन शिवजी सर्वांगसुन्दर तथा श्रीमान् थे। यज्ञशेष धन किसका भाग होता है—इस बातकी परीक्षा करनेके लिये तथा नभगको भाग और उत्तम ज्ञान देनेके लिये वे प्रकट हुए थे॥ २४-२५॥

इसके बाद परीक्षा करनेवाले ऐश्वर्यशाली उन कल्याणकारी शंकरने उन मनुपुत्र नभगके पास उत्तरकी ओरसे जाकर [उनका अभिप्राय जाननेके लिये] उनसे कहा— ॥ २६॥

ईश्वर बोले—हे पुरुष! तुम कौन हो? तुम्हें यहाँ किसने भेजा है? यह यज्ञमण्डपसम्बन्धी धन तो मेरा है, तुम इसे क्यों ग्रहण करते हो, मेरे सामने सत्य-सत्य बताओ॥ २७॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात! मनुपुत्र कवि नभगने उनका वचन सुनकर अत्यन्त विनम्र होकर उन कृष्णदर्शन पुरुषसे कहा— ॥ २८॥

नभग बोले—यज्ञसे (अवशिष्ट) प्राप्त हुए इस धनको ऋषियोंने मुझे दिया है। हे कृष्णदर्शन! तब आप इसे लेनेसे मुझे क्यों मना करते हैं?॥ २९॥

नन्दीश्वर बोले—नभगद्वारा कहे गये सत्य वचनको सुनकर प्रसन्नचित्त कृष्णदर्शन पुरुषने कहा— ॥ ३०॥

कृष्णदर्शन बोला—हे तात! हम दोनोंके इस विवादमें तुम्हारे पिता प्रमाण हैं, जाओ और उनसे पूछो, वे जो कुछ भी कहेंगे, वही सत्यरूपमें प्रमाण होगा॥ ३१॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उनका यह वचन सुनकर मनुपुत्र कवि नभग अपने पिताके पास आये और प्रसन्नतासे उनके द्वारा कही गयी बातके विषयमें पूछने लगे॥ ३२॥

तब उन श्राद्धदेव मनुने पुत्रकी बात सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण किया और वस्तु-स्थितिको समझकर उससे कहा— ॥ ३३॥

मनु बोले—हे तात! मेरी बात सुनो, वे कृष्णदर्शन पुरुष साक्षात् शिव हैं। सब वस्तु उन्हींकी है और विशेषकर यज्ञसे प्राप्त वस्तु उन्हींकी है। यज्ञसे बचा हुआ भाग रुद्रभाग कहा गया है। उनकी प्रेरणासे कहीं-कहीं बुद्धिमान् लोग ऐसा कहा करते हैं॥ ३४-३५॥

वे देव ईश्वर ही यज्ञसे बची हुई सारी वस्तुके अधिकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। उन विभुकी इच्छाके परे है ही क्या!॥ ३६॥

हे नभग! तुम्हारे ऊपर कृपा करनेके लिये ही वे प्रभु उस रूपमें आये हुए हैं, तुम वहाँ जाओ और अपने सत्यसे उन्हें प्रसन्न करो, अपने अपराधके लिये क्षमा माँगो और भलीभाँति प्रणाम करके उनकी स्तुति करो। वे शिव ही सर्वप्रभु, यज्ञके स्वामी एवं अखिलेश्वर हैं। हे तात! ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता, सिद्धगण एवं सभी ऋषि भी उनके अनुग्रहसे सभी कर्मोंको करनेमें समर्थ होते हैं। हे पुत्रश्रेष्ठ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम वहाँ शीघ्र जाओ, विलम्ब मत करो और सर्वेश्वर महादेवको सब प्रकारसे प्रसन्न करो॥ ३७—४०॥

नन्दीश्वर बोले—इतना कहकर श्राद्धदेव मनुने पुत्रको शीघ्र ही शिवजीके समीप भेजा। वे महाबुद्धिमान् नभग भी शिवजीके पास शीघ्र जाकर हाथ जोड़कर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके अति प्रसन्नचित्त होकर विनयपूर्वक कहने लगे— ॥ ४१-४२॥

नभग बोले—हे ईश! इन तीनों लोकोंमें जो भी वस्तु है, सब आपकी ही वस्तु है, फिर यज्ञशेष वस्तुके विषयमें कहना ही क्या—ऐसा मेरे पिताने कहा है॥ ४३॥

हे नाथ! मैंने अज्ञानवश भ्रमसे जो वचन कहा है, मेरे उस अपराधको आप क्षमा करें, मैं सिर झुकाकर

आपको प्रसन्न करता हूँ॥ ४४॥

ऐसा कहकर वे नभग अत्यन्त दीनबुद्धि होकर हाथ जोड़कर विनम्र हो उन कृष्णदर्शन महेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ ४५॥

शुद्धात्मा महाबुद्धिमान् श्राद्धदेव भी अपने अपराधके लिये क्षमायाचना करते हुए विनम्र हो हाथ जोड़कर उन शिवजीको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे॥ ४६॥

[हे मुने!] इसी बीच ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता, सिद्ध एवं मुनिगण भी वहाँ आ गये और महोत्सव करते हुए वे सब भक्तिसे हाथ जोड़कर पृथक्-पृथक् भलीभाँति प्रणामकर विनम्र हो उनकी स्तुति करने लगे॥ ४७-४८॥

इसके बाद कृष्णदर्शनरूपधारी सदाशिवने उन [देवताओं तथा मुनियों]-को कृपादृष्टिसे देखकर प्रेमपूर्वक हँसते हुए नभगसे कहा— ॥ ४९॥

कृष्णदर्शन बोले—तुम्हारे पिताने जो धर्मयुक्त वचन कहा है, बात भी वैसी ही है और तुमने भी सारी बात सत्य-सत्य कही, इसलिये तुम साधु हो, इसमें संशय नहीं है। अत: मैं तुम्हारे इस सत्य आचरणसे सर्वथा प्रसन्न हूँ और कृपापूर्वक तुम्हें सनातन ब्रह्मका उपदेश करता हूँ॥ ५०-५१॥

हे नभग! तुम [यज्ञकर्ता] ब्राह्मणोंसहित शीघ्र ही महाज्ञानी हो जाओ, अब मेरे द्वारा प्रदत्त इस समस्त [यज्ञशेष] सामग्रीको तुम मेरी कृपासे ग्रहण करो॥ ५२॥

हे महामते! तुम निर्विकार होकर इस संसारमें सभी प्रकारका सुख भोगो, मेरी कृपासे तुम [यज्ञकर्ता] ब्राह्मणोंके सहित सद्गति प्राप्त करोगे॥ ५३॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात! सत्यसे प्रेम करनेवाले वे भगवान् रुद्र ऐसा कहकर उन सबके देखते-देखते वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ ५४॥

हे मुनिसत्तम! ब्रह्मा, विष्णु आदि वे समस्त देवगण आनन्दसे उस दिशाको नमस्कारकर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये॥ ५५॥

अपने पुत्र नभगको साथ लेकर श्राद्धदेव भी प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये और वहाँ अनेक सुखोंको भोगकर अन्तमें वे शिवलोकको चले गये॥ ५६॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने नभगको आनन्द देनेवाले कृष्णदर्शन नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया॥ ५७॥

यह पवित्र आख्यान सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है, पढ़ने और सुननेवालोंको भी यह समस्त कामनाओंका फल प्रदान करता है॥ ५८॥

जो बुद्धिमान् प्रात:काल तथा सायंकाल इस चरित्रका स्मरण करता है, वह कवि तथा मन्त्रवेत्ता हो जाता है और अन्तमें परमगति प्राप्त करता है॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दीश्वर-सनत्कुमार-संवादमें कृष्णदर्शन शिवावतारवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वरजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब आप शिवजीके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन सुनिये, जो इन्द्रके घमण्डको नष्ट करनेवाला है॥ १॥

हे मुने! पूर्व समयमें बृहस्पति एवं देवताओंके सहित इन्द्र शिवजीका दर्शन करनेके लिये कैलास पर्वतपर जा रहे थे॥ २॥

अपने दर्शनके लिये निरत चित्तवाले बृहस्पति तथा इन्द्रको आते जानकर उनके भावकी परीक्षा करनेके लिये नाना प्रकारकी लीला करनेवाले प्रभु शिवजी दिगम्बर, महाभीमरूप तथा जलती हुई अग्निके समान प्रभावाले अवधूतके रूपमें स्थित हो गये। सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले तथा सुन्दर आकृतिवाले वे अवधूतस्वरूप शिवजी लटकते हुए वस्त्र धारण किये उनका मार्ग रोककर खड़े हो गये॥ ३—५॥

उसके बाद शिवजीके समीप जाते हुए उन बृहस्पति तथा इन्द्रने [अपने] मार्गके मध्यमें अद्भुत

आकारवाले एक भयंकर पुरुषको देखा॥ ६॥

हे मुने! यह देखकर अधिकारमदमें चूर हुए इन्द्रने अपने मार्गके बीचमें खड़े पुरुषको उसे शंकर न जानकर उससे पूछा॥ ७॥

शक्र बोले—दिगम्बर अवधूत वेष धारण किये हुए तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और तुम्हारा क्या नाम है? तुम मुझे ठीक-ठीक शीघ्र बताओ॥ ८॥

इस समय शिवजी अपने स्थानपर हैं अथवा कहीं गये हुए हैं? मैं देवताओं और गुरु बृहस्पतिको साथ लेकर उनके दर्शनहेतु जा रहा हूँ॥ ९॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इन्द्रके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर लीलासे [अवधूत] देहधारी तथा अहंकारको चूर्ण करनेवाले उन पुरुषरूप प्रभु शिवने कुछ भी उत्तर नहीं दिया॥ १०॥

इन्द्रने उनसे पुनः पूछा, किंतु अलक्षित गतिवाले महाकौतुकी वे दिगम्बर शिव फिर भी कुछ नहीं बोले॥ ११॥

जब त्रैलोक्याधिपति स्वराट् इन्द्रने पुनः पूछा, तो भी महान् लीला करनेवाले वे महायोगी मौन ही रहे। इस प्रकार बारंबार इन्द्रके द्वारा पूछे जानेपर भी दिगम्बर भगवान् शिवजी इन्द्रका गर्व नष्ट करनेकी इच्छासे कुछ नहीं बोले॥ १२-१३॥

तब तीनों लोकोंके ऐश्वर्यसे गर्वित इन्द्रको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने क्रोधसे उन जटाधारीको धमकाते हुए कहा—॥ १४॥

इन्द्र बोले—रे मूढ! रे दुर्मते! तुमने मेरे पूछनेपर भी कुछ भी उत्तर नहीं दिया, इसलिये मैं इस वज्रसे तुम्हारा वध करता हूँ, देखें, कौन तुम्हारी रक्षा करता है। ऐसा कहकर इन्द्रने क्रोधपूर्वक उनकी ओर देखकर उन दिगम्बरको मारनेके लिये वज्र उठाया॥ १५-१६॥

सदाशिव शंकरने हाथमें वज्र उठाये हुए इन्द्रको देखकर शीघ्र ही उनका स्तम्भन कर दिया॥ १७॥

तदनन्तर भयंकर तथा विकराल नेत्रोंवाले वे पुरुष कुपित होकर अपने तेजसे [मानो इन्द्रको] जलाते हुए शीघ्र ही प्रज्वलित हो उठे॥ १८॥

उस समय अपनी बाहुके स्तम्भित हो जानेके कारण उत्पन्न हुए क्रोधसे इन्द्र भीतर-ही-भीतर इस तरह जल रहे थे, जिस प्रकार मन्त्रके द्वारा अपने पराक्रमके रुक जानेसे सर्प मन-ही-मन जलता है॥ १९॥

बृहस्पतिने तेजसे प्रज्वलित होते हुए उन पुरुषको देखकर अपनी बुद्धिसे उन्हें शिव जान लिया और शीघ्रतासे उन्हें प्रणाम किया॥ २०॥

इसके बाद उदार बुद्धिवाले वे गुरु बृहस्पति हाथ जोड़कर पुनः पृथ्वीमें [लेटकर] दण्डवत् प्रणाम करके भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ २१॥

गुरु बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागत-वत्सल! प्रसन्न होइये। हे गौरीश! हे सर्वेश्वर! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता भी आपकी मायासे मोहित होकर आपको यथार्थ रूपमें नहीं जान पाते हैं, केवल आपकी कृपासे ही जान सकते हैं॥ २२-२३॥

नन्दीश्वर बोले—बृहस्पतिने इस प्रकार प्रभु शिवजीकी स्तुति करके इन्द्रको उन ईश्वरके चरणोंमें गिरा दिया। तदनन्तर हे तात! उदार बुद्धिवाले विद्वान् देवगुरु बृहस्पतिने हाथ जोड़कर विनम्रतासे कहा—॥ २४-२५॥

बृहस्पति बोले—हे दीननाथ! हे महादेव! मैं आपके चरणोंमें पड़ा हूँ, आप मेरा और इनका उद्धार कीजिये; क्रोध नहीं, बल्कि प्रेम कीजिये॥ २६॥

हे महादेव! आप प्रसन्न होइये और अपने शरणमें आये हुए इन्द्रकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आपके भालस्थ नेत्रसे उत्पन्न हुई यह अग्नि [इन्द्रको जलानेके लिये] आ रही है॥ २७॥

नन्दीश्वर बोले—देवगुरुका यह वचन सुनकर अवधूत आकृतिवाले, करुणासिन्धु, उत्तम लीला करनेवाले उन प्रभुने हँसते हुए कहा—॥ २८॥

अवधूत बोले—मैं क्रोधके कारण अपने नेत्रसे निकले हुए तेजको किस प्रकार धारण करूँ? क्या सर्प कंचुकीका त्याग करनेके उपरान्त पुनः उसे धारण कर सकता है॥ २९॥

नन्दीश्वर बोले—उन शंकरके इस वचनको सुनकर भयसे व्याकुल मनवाले बृहस्पतिने हाथ जोड़कर पुनः कहा—॥ ३०॥

बृहस्पति बोले—हे देव! हे भगवन्! भक्त सर्वदा अनुकम्पाके योग्य होते हैं। हे शंकर! अपने भक्तवत्सल

नामको सार्थक कीजिये॥ ३१॥

हे देवेश! आप अपने इस अत्यन्त उग्र तेजको किसी अन्य स्थानपर रख सकते हैं; आप सभी भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं, अतः इन्द्रका उद्धार कीजिये॥ ३२॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार बृहस्पतिके कहनेपर भक्तवत्सल नामसे पुकारे जानेवाले तथा भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले भगवान् रुद्रने प्रसन्नचित्त होकर देवगुरुसे कहा—॥ ३३॥

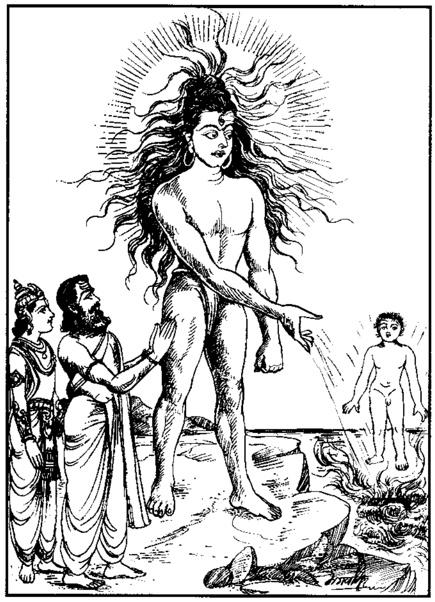
रुद्र बोले—हे सुराचार्य! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, इसलिये आपको उत्तम वर देता हूँ कि इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण आप लोकमें जीव नामसे विख्यात होंगे। मेरे भालस्थ नेत्रसे जो देवताओंके लिये असह्य अग्नि उत्पन्न हुई है, उसे मैं दूर फेंक देता हूँ, जिससे कि यह इन्द्रको पीड़ित न कर सके॥ ३४-३५॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर शिवजीने अपने भालस्थ नेत्रसे उत्पन्न हुई उस अद्भुत अग्निको हाथमें लेकर लवणसमुद्रमें फेंक दिया॥ ३६॥

तत्पश्चात् शिवके भालनेत्रसे उत्पन्न वह तेज, जो लवणसमुद्रमें फेंका गया था, शीघ्र ही बालकरूपमें परिणत हो गया॥ ३७॥

वही बालक समुद्रका पुत्र तथा समस्त असुरोंका अधिपति होकर जलन्धर नामसे विख्यात हुआ, फिर देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभु शिवजीने ही उसका वध किया॥ ३८॥

लोककल्याणकारी शिवजी अवधूतरूपसे इस प्रकारका सुन्दर चरित्रकर पुनः अन्तर्धान हो गये और सभी देवता सुखी तथा निर्भय हो गये। बृहस्पति और इन्द्र भी



भयमुक्त होकर अत्यन्त सुखी हो गये॥ ३९-४०॥

जिनका दर्शन करनेहेतु इन्द्र और बृहस्पति जा रहे थे, उनका दर्शन प्राप्तकर वे कृतार्थ हो गये और प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये॥ ४१॥

[हे सनत्कुमार!] मैंने दुष्टोंको दण्ड देनेवाले तथा परमानन्ददायक परमेश्वर शिवजीके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन आपसे कर दिया॥ ४२॥

यह आख्यान पवित्र, दिव्य, यशको बढ़ानेवाला, स्वर्ग, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। जो स्थिरचित्त हो प्रतिदिन इसे सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें शिवकी गतिको प्राप्त कर लेता है॥ ४३-४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके नन्दीश्वर-सनत्कुमार-संवादमें अवधूतेश्वरशिवावतारचरित्रवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

शिवजीके भिक्षुवर्यावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे विप्र! अब मैं शिवजीके उस अवतारका वर्णन करूँगा, जिसे [किसी] नारीके सन्देहका निवारण करनेके लिये उन्होंने अपने भक्तपर दया करके ग्रहण किया था, उसे आप सुनिये॥ १॥

विदर्भनगरमें धर्मात्मा, सत्यशील तथा शिवभक्तोंसे प्रेम करनेवाला सत्यरथ नामक एक राजा था॥ २॥

हे मुने! धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते एवं शिवधर्मसे सुखपूर्वक निवास करते हुए उस राजाका बहुत समय बीत गया॥ ३॥

किसी समय उसके नगरको अवरुद्ध करनेवाले,

बहुत-सी सेनासे युक्त तथा बलसे उन्मत्त शाल्वसंज्ञक क्षत्रिय वीरोंके साथ उस राजाका घोर युद्ध हुआ॥ ४॥

उन शाल्ववीरोंके साथ भयानक युद्ध करके नष्ट हुए पराक्रमवाला वह विदर्भराज दैवयोगसे उनके द्वारा मार दिया गया। शाल्वोंके द्वारा रणभूमिमें उस राजाके मारे जानेपर उसके बचे हुए सैनिक भयसे व्याकुल होकर मन्त्रियोंके साथ भाग गये॥ ५-६॥

हे मुने! उसके बाद उस राजाकी गर्भवती रानी शत्रुओंके द्वारा घिरी होनेपर भी रात्रिके समय बड़े यत्नसे नगरसे बाहर चली गयी। शोकसे सन्तप्त वह रानी [राजधानीसे] निकलकर शिवके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई पूर्व दिशाकी ओर बहुत दूर चली गयी॥ ७-८॥

इस प्रकार शिवजीकी दयासे [सुरक्षित हुई] वह रानी नगरसे बहुत दूर जा पहुँची और उसने प्रात:कालके समय [वहाँपर] एक स्वच्छ सरोवरको देखा॥ ९॥

वहाँ आकर राजाकी उस सुकुमार पत्नीने शोकसे व्याकुल हो विश्रामके लिये उस सरोवरके तटपर एक छायादार वृक्षका आश्रय लिया। वहाँपर रानीने दैववश शुभ ग्रहोंसे युक्त मुहूर्तमें सर्वलक्षणसम्पन्न दिव्य पुत्रको जन्म दिया॥ १०-११॥

उसी समय भाग्यवश प्याससे व्याकुल हुई उस सद्योजात शिशुकी माता वह रानी ज्यों ही जल लेनेके लिये सरोवरमें उतरी कि जलमें स्थित ग्राहने उसे पकड़ लिया। भूख एवं प्याससे अत्यधिक व्याकुल तथा पिता एवं मातासे रहित वह नवजात बालक सरोवरके किनारे रोने लगा॥ १२-१३॥

हे मुने! [उत्पन्न होते ही भूख-प्याससे व्याकुल हो] रोते हुए उस नवजात शिशुपर सर्वान्तर्यामी तथा सर्वरक्षक वे महेश्वर दयार्द्र हो उठे॥ १४॥

उसी समय कष्ट दूर करनेवाले भगवान्‌के द्वारा मनसे प्रेरित की गयी एक भिखारिन वहाँ अकस्मात् आ पहुँची। अपने एक वर्षके पुत्रको लिये हुए उस विधवाने उस रोते हुए अनाथ बच्चेको वहाँ देखा॥ १५-१६॥

हे मुने! उस बालकको निर्जन वनमें देखकर वह ब्राह्मणी अत्यन्त आश्चर्यचकित हो अपने हृदयमें बहुत विचार करने लगी॥ १७॥

अहो! मैंने इस समय बहुत बड़ा आश्चर्य देखा, जो असम्भव एवं मन तथा वाणीसे सर्वथा अकथनीय है। तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ इस बालकका अभीतक नालच्छेदन नहीं हुआ है और यह मातृविहीन हो रोता हुआ अकेला ही पृथिवीपर लेटा हुआ है॥ १८-१९॥

यहाँ तो इसकी सहायता करनेवाले इसके माता-पिता आदि कोई नहीं हैं, इसमें क्या कारण हो सकता है, अहो, दैवबल बड़ा प्रबल है!॥ २०॥

यह न जाने किसका पुत्र है, इसे जाननेवाला भी यहाँ कोई नहीं है, जिससे इसके जन्मके विषयमें मैं पूछूँ। मुझे तो इसपर बहुत ही दया आ रही है॥ २१॥

मैं अब इस बालकका अपने औरसपुत्रकी भाँति पालन करना चाहती हूँ, परंतु इसके कुल और जन्म आदिका ज्ञान न होनेसे इसे छूनेका साहस नहीं होता॥ २२॥

नन्दीश्वर बोले—जब वह श्रेष्ठ ब्राह्मणी अपने मनमें इस प्रकारका विचार कर रही थी, उसी समय भक्तवत्सल शिवजीने बड़ी दया की॥ २३॥

सदैव महान् लीलाएँ करनेवाले, स्वयं उपाधिरहित तथा भक्तोंको हर प्रकारका सुख देनेवाले उन महेश्वरने [उस समय] भिक्षुकका रूप धारण कर लिया॥ २४॥

भिक्षुकरूपधारी वे परमेश्वर वहाँ सहसा आये, जहाँ उस बालकके विषयमें जाननेकी इच्छावाली सन्देहग्रस्त ब्राह्मणी विद्यमान थी॥ २५॥

तब अविज्ञातगति तथा दयासागर उन भिक्षुक-रूपधारी भगवान् शंकरने हँसकर उस ब्राह्मणपत्नीसे कहा—॥ २६॥

भिक्षुश्रेष्ठ बोले—हे ब्राह्मणी! तुम अपने मनमें शंका मत करो और दुखी मत होओ, तुम अपने पुत्रतुल्य इस पवित्र बालककी प्रसन्नतापूर्वक रक्षा करो थोड़े ही समयके उपरान्त इस बालकसे तुम्हारा परम कल्याण होनेवाला है, अत: सब प्रकारसे इस महातेजस्वी शिशुका पालन-पोषण करो॥ २७-२८॥

नन्दीश्वर बोले—भिक्षुरूप धारण करनेवाले करुणासागर शिवजीने जब इस प्रकार कहा, तब ब्राह्मणीने प्रेमके साथ आदरपूर्वक उनसे पूछा—॥ २९॥

ब्राह्मणी बोली—मैं आपकी आज्ञासे अपने पुत्रके समान इस बालककी रक्षा करूँगी तथा भरण-पोषण करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है, आप मेरे भाग्यसे ही यहाँ पधारे हैं। फिर भी मैं आपसे सत्य-सत्य विशेष रूपसे जानना चाहती हूँ कि यह कौन है, यह किसका पुत्र है और यहाँ आये हुए आप कौन हैं?॥ ३०-३१ ॥

हे भिक्षुवर! हे प्रभो! मुझे बारंबार ऐसा ज्ञात हो रहा है कि आप दयासागर भगवान् शिव हैं और यह शिशु पूर्वजन्ममें आपका भक्त था॥ ३२॥

किसी कर्मके दोषसे यह इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, उसे भोगकर आपकी कृपासे यह पुनः परम कल्याणको प्राप्त करेगा॥ ३३॥

आपकी मायासे मोहित हुई मैं अपना मार्ग भूलकर इधर आ गयी, [जिससे ज्ञात होता है कि] इसके पालन करनेके लिये आपने ही मुझे यहाँ भेजा है॥ ३४॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीके दर्शनसे ज्ञानको प्राप्त हुई तथा विशेषरूपसे जाननेकी इच्छावाली उस ब्राह्मणीसे भिक्षुरूपधारी शिवने कहा— ॥ ३५॥

भिक्षुवर बोले—हे विप्रपत्नि! इस सर्वमान्य बालकका पूर्वकालीन इतिहास तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कह रहा हूँ। हे अनघे! तुम प्रेमपूर्वक इसे सुनो॥ ३६॥

यह [बालक] शिवभक्त, बुद्धिमान् तथा अपने धर्ममें निरत रहनेवाले विदर्भराज सत्यरथका पुत्र है॥ ३७॥

[हे ब्राह्मणी!] सुनो, राजा सत्यरथ शत्रु शाल्वोंद्वारा युद्धमें मार डाले गये, जिससे अत्यन्त भयभीत हुई उनकी पत्नी रात्रिमें शीघ्रतासे अपने घरसे निकल गयीं॥ ३८॥

उन्होंने इस वनमें आकर प्रातःकाल होते-होते इस पुत्रको जन्म दिया, किंतु प्यास लगनेसे वह सरोवरमें उतरीं, तब दुर्भाग्यसे ग्राहने उन्हें अपना ग्रास बना लिया॥ ३९॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उन्होंने बालककी उत्पत्ति, उसके पिताका संग्राममें मरण एवं ग्राहद्वारा उसकी माताकी मृत्युके विषयमें उससे कहा॥ ४०॥

हे मुनीश्वर! तब वह ब्राह्मणी अत्यन्त विस्मित हुई और उसने ज्ञानी तथा सिद्धस्वरूप उन भिक्षुकसे पुनः पूछा— ॥ ४१॥

ब्राह्मणी बोली—हे भिक्षो! इस राजपुत्रका श्रेष्ठ पिता उत्तमोत्तम भोग करते हुए भी इन क्षुद्र शाल्वोंके द्वारा किस प्रकार मारा गया और ग्राहने इस शिशुकी माताको शीघ्र क्यों ग्रास बना लिया, जिसके कारण यह जन्मसे अनाथ एवं बन्धुरहित हो गया है?॥ ४२-४३॥

हे भिक्षो! मेरा यह पुत्र भी परम दरिद्र तथा भिक्षुक क्यों हुआ? किस उपायसे मेरे ये दोनों पुत्र सुखी होंगे, यह बताइये॥ ४४॥

नन्दीश्वर बोले—उस ब्राह्मणीका यह वचन सुनकर भिक्षुरूपधारी उन परमेश्वरने प्रसन्नचित्त होकर हँसते हुए उससे कहा— ॥ ४५॥

भिक्षुवर्य बोले—हे विप्रपत्नि! मैं तुम्हारे सभी प्रश्नोंका उत्तर विशेषरूपसे दे रहा हूँ, तुम सावधान होकर इस उत्तम चरित्रका श्रवण करो॥ ४६॥

विदर्भ देशका राजा, जो इस बालकका पिता था, वह पूर्वजन्ममें पाण्ड्य देशका श्रेष्ठ राजा था॥ ४७॥

सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश करनेवाला वह शिवभक्त राजा सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करता हुआ अपनी प्रजाको प्रसन्न रखता था॥ ४८॥

किसी समय उसने दिनमें निराहार रहकर नक्तव्रत करते हुए त्रयोदशीके प्रदोषकालमें शिवकी पूजा की। जब वह प्रदोषकालमें शिवजीका पूजन कर रहा था, तभी नगरमें बड़ा भयानक शब्द हुआ॥ ४९-५०॥

उस [भयावह] ध्वनिको सुनकर वह राजा शत्रुके आक्रमणकी आशंकासे शिवार्चनका परित्यागकर घरसे बाहर निकल पड़ा॥ ५१॥

इसी समय उसका महाबली मन्त्री भी शत्रुता करनेवाले सामन्तको साथ लेकर राजाके निकट आ गया॥ ५२॥

अत्यधिक क्रोधसे व्याकुल राजाने उस शत्रु सामन्तको देखकर बिना धर्माधर्मका विचार किये निर्दयताके साथ उसका सिर कटवा दिया॥ ५३॥

उस शिवपूजाको समाप्त किये बिना ही अपवित्र तथा नष्ट बुद्धिवाले राजाने रातमें प्रेमपूर्वक भोजन किया, जिससे वह मंगलहीन हो गया॥ ५४॥

उसके पश्चात् इस जन्ममें वह विदर्भ देशका

शिवभक्त राजा हुआ, किंतु [पूर्वजन्ममें] शिवार्चनमें होनेवाले पापके कारण शत्रुओंने राज्यसुखभोगके समय ही उसका वध कर दिया॥ ५५॥

पूर्वजन्ममें जो उसका पुत्र था, वह ही इस जन्ममें भी हुआ है, किंतु शिवपूजाके व्यतिक्रमसे यह सारे ऐश्वर्यसे रहित है॥ ५६॥

इसकी माताने पूर्वजन्ममें अपनी सौतको छलसे मरवा दिया था, उस पापसे इस जन्ममें उसे ग्राहने निगल लिया॥ ५७॥

[हे ब्राह्मणी!] मैंने इन सबका सारा वृत्तान्त तुमसे कह दिया, भक्तिपूर्वक शिवकी अर्चना न करनेवाले मनुष्य दरिद्र हो जाते हैं॥ ५८॥

तुम्हारा यह पुत्र पूर्वजन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण था, इसने यज्ञादि सुकर्म किये नहीं; केवल प्रतिग्रहोंको लेनेमें ही अपना जीवन बिता दिया। हे ब्राह्मणी! इसीलिये तुम्हारा पुत्र दरिद्र हुआ है, उन दोषोंको दूर करनेके लिये तुम शंकरकी शरणमें जाओ और इन दोनों बालकोंको लेकर शिवजीकी पूजा करो। इन दोनोंका यज्ञोपवीत हो जानेके पश्चात् शिवजी कल्याण करेंगे॥ ५९—६१॥

नन्दीश्वर बोले—उसे ऐसा उपदेश देकर भिक्षुरूपधारी भक्तवत्सल भगवान् शिवने उसे अपना



उत्कृष्ट स्वरूप दिखाया॥ ६२॥

इसके बाद वह ब्राह्मणी उन भिक्षुश्रेष्ठको शिव जानकर उन्हें भलीभाँति प्रणाम करके प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें उन प्रभुकी स्तुति करने लगी॥ ६३॥

उसके बाद विप्रपत्नीके देखते-देखते भिक्षुरूपधारी वे भगवान् शिव शीघ्र ही वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ६४॥

भिक्षुकके चले जानेपर ब्राह्मणीको विश्वास हो गया और उस लड़केको लेकर वह अपने पुत्रसहित घर चली गयी॥ ६५॥

एकचक्रा नामक रमणीय ग्राममें निवास करती हुई वह ब्राह्मणी उत्तम अन्नोंसे अपने पुत्र तथा राजपुत्रका पालन करने लगी॥ ६६॥

पुनः ब्राह्मणोंने उन दोनोंका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न किया, वे दोनों शिवपूजामें तत्पर हो अपने घरमें बढ़ने लगे॥ ६७॥

हे तात! वे दोनों ही शाण्डिल्य मुनिकी आज्ञासे नियममें तत्पर होकर शुभ व्रत करके प्रदोषकालमें शिवजीका पूजन करने लगे॥ ६८॥

किसी समय ब्राह्मणपुत्रके बिना ही नदीमें स्नान करनेके लिये गये हुए राजपुत्रने धनसे परिपूर्ण एक सुन्दर कलश पाया॥ ६९॥

इस प्रकार शिवजीकी पूजा करते हुए उन राजकुमार और ब्राह्मणकुमारके सुखपूर्वक चार महीने बीत गये॥ ७०॥

इसी रीतिसे अत्यन्त प्रसन्नतासे पुनः शिवजीका पूजन करते हुए उन दोनोंका उस घरमें एक वर्ष व्यतीत हुआ॥ ७१॥

हे मुने! एक वर्ष बीत जानेपर वह राजपुत्र एक दिन उस ब्राह्मणपुत्रके साथ सर्वव्यापक शिवकी कृपासे वनप्रान्तमें जा पहुँचा और अकस्मात् वहाँपर आयी हुई तथा उसके पिताद्वारा प्रदत्त गन्धर्वकन्यासे विवाह करके अकण्टक राज्य करने लगा॥ ७२-७३॥

जिस ब्राह्मणीने अपने पुत्रके समान उसका पालन-पोषण किया था, वही उसकी माता हुई तथा वह ब्राह्मणपुत्र उसका भाई हुआ॥ ७४॥

इस प्रकार शिवजीकी आराधना करके धर्मगुप्त नामक वह राजपुत्र विदर्भनगरमें उस रानीके साथ सुखोपभोग करने लगा॥ ७५॥

[हे मुने!]इस समय मैंने शिवजीके भिक्षुवर्यावतारका

वर्णन आपसे कर दिया, जो धर्मगुप्त नामक राजपुत्रको सुख देनेवाला था॥ ७६॥

यह आख्यान निष्पाप, पवित्र, पवित्र करनेवाला, महान् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षका साधन एवं सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है॥ ७७॥

जो सावधान होकर इसे नित्य सुनता अथवा सुनाता है, वह समस्त इच्छित भोगोंको भोगकर अन्तमें शिवपुरको जाता है॥ ७८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भिक्षुवर्याह्वशिवावतारचरित्रवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

उपमन्युपर अनुग्रह करनेके लिये शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे तात! परमेश्वर शिवका जो सुरेश्वरावतार हुआ, जिसने धौम्यके ज्येष्ठ भ्राता [उपमन्यु]-का हितसाधन किया था, मैं उसका वर्णन करूँगा, आप श्रवण कीजिये॥ १॥

व्याघ्रपादका उपमन्यु नामवाला एक पुत्र था, जो परम बुद्धिमान् एवं सज्जनोंका प्रिय था, वह जन्मान्तरीय [तपस्यासे] सिद्ध था और मुनिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ था॥ २॥

वह व्याघ्रपादपुत्र उपमन्यु जब बालक था, तभीसे अपनी माताके साथ मामाके घर निवास करने लगा, दैवयोगसे वह दरिद्र था॥ ३॥

उसने कभी अपने मामाके घरमें थोड़ा-सा दूध पी लिया था, फिर दूधके प्रति उसकी लालसा बढ़ गयी और मातासे बारंबार दूध माँगने लगा॥ ४॥

तब पुत्रका यह वचन सुनकर उस तपस्विनी माताने घरके भीतर प्रवेश करके एक उत्तम उपाय किया॥ ५॥

उसने उञ्छवृत्तिसे एकत्रित बीजोंको पीसकर उस [आटे]-को पानीमें घोलकर पुत्रको बहला-फुसलाकर वह कृत्रिम दूध उसे दे दिया॥ ६॥

माताके द्वारा दिये गये कृत्रिम दूधको पीकर वह बालक 'यह दूध नहीं है', इस प्रकार मातासे बोला और पुनः रोने लगा॥ ७॥

पुत्रका रुदन सुनकर कमलाके समान कोमलांगी माताने हाथोंसे पुत्रके नेत्रोंको पोछकर दुखी होकर उससे कहा—॥ ८॥

माता बोली—हे पुत्र! हम तो सदैव वनमें निवास करते हैं, अतः यहाँ दूधकी प्राप्ति कैसे सम्भव है? शिवजीको प्रसन्न किये बिना तुम्हें दूधकी प्राप्ति नहीं हो सकती॥ ९॥

हे पुत्र! पूर्वजन्ममें शिवजीको उद्देश्य करके जो कर्म किया जाता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १०॥

माताके इस प्रकारके वचनको सुनकर मातृवत्सल वह व्याघ्रपादपुत्र शोकरहित होकर अपनी मातासे बोला—॥ ११॥

हे मातः! यदि शिवजी कल्याण करनेवाले हैं, तो शोक करना व्यर्थ है, हे महाभागे! शोकका त्याग करो, सब भला ही होगा॥ १२॥

हे मातः! अब मेरी बात सुनो, यदि कहीं भी वे महादेवजी होंगे, तो मैं थोड़े अथवा अधिक कालमें उनसे क्षीरका समुद्र प्राप्त कर लूँगा॥ १३॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार [अपना निश्चय] बताकर तथा 'मेरा कल्याण हो' ऐसा प्रेमपूर्वक कहकर वह बालक माताको भलीभाँति प्रणामकर उससे विदा ले तप करनेके लिये चल पड़ा॥ १४॥

वह बालक हिमालयपर्वतपर जाकर वायुका पान करते हुए सावधान मनसे आठ ईंटोंसे एक मन्दिर बनाकर उसमें मिट्टीका शिवलिंग स्थापित करके उस लिंगमें भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्रके द्वारा पार्वतीसहित शिवका आवाहनकर वनमें उत्पन्न पत्र, पुष्प आदिसे उनका पूजन करने लगा॥ १५-१६॥

इस प्रकार पार्वतीसहित उन शिवजीका ध्यान

करके पंचाक्षर मन्त्रका जप तथा उनकी अर्चना करते हुए उसने बहुत कालपर्यन्त घोर तप किया॥ १७॥

हे मुने! उस महात्मा बालक उपमन्युकी तपस्यासे सारा चराचर लोक प्रज्वलित हो उठा॥ १८॥

इसी समय विष्णु आदि देवताओंके द्वारा प्रार्थित भगवान् शिवने उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये इन्द्रका रूप धारण किया। पार्वती इन्द्राणीके रूपवाली हो गयीं, सभी गण देवता हो गये और नन्दीने ऐरावत गजका रूप धारण किया। इस प्रकार जब इन्द्ररूपकी सारी सामग्री उपस्थित हो गयी, तब गणों एवं पार्वतीसहित इन्द्ररूप शिवजी उपमन्युके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये शीघ्र ही उसके आश्रमपर गये॥ १९—२१॥

हे मुनीश्वर! इन्द्ररूपधारी शिवजीने उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये गम्भीर वाणीमें उस बालकसे कहा— ॥ २२॥

सुरेश्वर बोले—हे सुव्रत! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। मैं तुम्हारा सारा अभीष्ट प्रदान करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

इन्द्ररूपधारी उन शिवजीके इस प्रकार कहनेपर उसने हाथ जोड़कर कहा—मैं शिवमें भक्ति होनेका वरदान चाहता हूँ॥ २४॥

यह सुनकर इन्द्र बोले—क्या तुम त्रिलोकीके स्वामी, देवगणोंके रक्षक और सभी देवगणोंसे नमस्कृत मुझ इन्द्रको नहीं पहचानते हो॥ २५॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम मेरे भक्त हो जाओ और निरन्तर मेरी ही पूजा करो, मैं तुम्हारा सब प्रकारका कल्याण करूँगा। तुम गुणरहित शिवको छोड़ो॥ २६॥

उन निर्गुण रुद्रसे तुम्हारा क्या कार्य हो सकता है, जो देवजातिसे बाहर होकर पिशाचत्वको प्राप्त हो गये हैं?॥ २७॥

नन्दीश्वर बोले—यह सुनकर पंचाक्षर मन्त्रका जप करता हुआ वह बालक अपने धर्ममें विघ्न उत्पन्न करनेके लिये उनको आया हुआ जानकर बोला— ॥ २८॥

उपमन्यु बोले—शिवनिन्दामें रत तुमने इस प्रकार प्रसंगवश उन देवाधिदेवको निर्गुण एवं पिशाच कहा है। तुम अवश्य ही प्रकृतिसे परे, ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वरको उत्पन्न करनेवाले और सभी देवेश्वरोंके भी ईश्वर उन रुद्रको नहीं जानते॥ २९-३०॥

ब्रह्मवादी लोग जिन्हें सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त, नित्य, एक तथा अनेक बताते हैं, मैं उन्हींसे वर माँगूँगा॥ ३१॥

तत्त्वज्ञ लोग जिन्हें तर्कसे परे तथा सांख्ययोगके तात्पर्यार्थको देनेवाला मानते हैं, मैं उन्हींसे वर माँगूँगा॥ ३२॥

विभु शम्भुसे परे कोई तत्त्व नहीं है। वे सभी कारणोंके कारण और गुणोंसे सर्वथा परे हैं, अतः ब्रह्मा-विष्णु आदि देवोंसे श्रेष्ठ हैं॥ ३३॥

मैं न तो आपसे, न विष्णुजीसे, न ब्रह्माजीसे और न अन्य किसी देवतासे वर माँगता हूँ, शंकरजी ही मुझे वर प्रदान करेंगे॥ ३४॥

बहुत कहनेसे क्या लाभ? मैं अपना निश्चय बता रहा हूँ कि मैं पशुपति शिवजीको छोड़कर किसी अन्य देवतासे वरदान नहीं माँगूँगा॥ ३५॥

हे इन्द्र! आप मेरा अभिप्राय सुनें। मैंने आज यह अनुमान कर लिया है कि मैंने जन्मान्तरमें अवश्य कोई पाप किया है, जिससे मुझे शिवजीकी निन्दा सुननी पड़ी॥ ३६॥

शिवकी निन्दाका श्रवण करते ही जो शीघ्र उस निन्दा करनेवालेका प्रतिकारकर उसी समय अपना शरीर छोड़ देता है, वह शिवलोकको जाता है॥ ३७॥

हे सुराधम! अब दूधके विषयमें मेरी यह इच्छा नहीं रही, [अब तो मैं] शिवास्त्रसे तुम्हारा वधकर अपना यह शरीर त्याग दूँगा॥ ३८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर उपमन्यु मरनेके लिये तैयार हो गये और दूधके प्रति भी इच्छाका त्यागकर इन्द्रको मारनेके लिये उद्यत हो गये॥ ३९॥

तब अग्निहोत्रसे भस्म लेकर उसे अघोरास्त्रसे अभिमन्त्रित करके इन्द्रके ऊपर उस भस्मको छोड़कर उन मुनिने घोर शब्द किया॥ ४०॥

उसके बाद अपने इष्टदेवके चरणयुगलका स्मरणकर अपने शरीरको जलानेहेतु अग्निकी धारणा करते हुए उपमन्यु स्थित हो गये॥ ४१॥

ब्राह्मण उपमन्युके इतना कर लेनेपर शक्ररूपधारी शिवजीने सौम्य [तेज]-के द्वारा उस महायोगीकी आग्नेयी धारणाको रोक दिया॥ ४२॥

उनके द्वारा फेंके गये उस शंकरप्रिय अघोरास्त्रको शिवजीके आदेशसे नन्दीने बीचमें ही पकड़ लिया॥ ४३॥

तदनन्तर भगवान् परमेश्वरने उन ब्राह्मणके समक्ष मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्र धारण किया हुआ अपना स्वरूप प्रकट किया॥ ४४॥

सर्वसमर्थ उन प्रभुने हजारों दूधके, हजारों दही आदिके तथा हजारों अन्य भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके समुद्र उन्हें दिखाये। इसी प्रकार उन शम्भुने देवी पार्वतीके साथ बैलपर सवार हो त्रिशूल आदि आयुधोंको हाथमें धारण किये हुए गणोंके सहित अपना रूप भी उनके समक्ष प्रकट किया॥ ४५-४६॥

उस समय स्वर्गलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगणों [की उपस्थिति]-से दसों दिशाएँ ढँक गयीं। इसके बाद उपमन्यु आनन्दसागरसे उठी हुई लहरोंसे मानो घिर-से गये और भक्तिसे विनम्रचित्त हो शिवजीको दण्डवत् प्रणाम करने लगे॥ ४७-४८॥

इसी समय भगवान् शिवजीने मुसकराकर उपमन्युको 'आओ आओ' इस प्रकार बुलाकर उनका मस्तक सूँघकर उन्हें वर प्रदान किये॥ ४९॥

शिवजी बोले—हे वत्स! हे उपमन्यो! मैं तुम्हारे इस श्रेष्ठ आचरणसे प्रसन्न हूँ। विप्रर्षे! अब मैंने परीक्षा कर ली कि तुम हमारे दृढ़ भक्त हो॥ ५०॥

तुम्हारी मुझमें इसी प्रकारकी भक्ति बनी रहेगी। तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायँगे और तुम सदा सुखी रहोगे। अब तुम सर्वदा अपने भाई-बन्धुओंसहित स्वेच्छापूर्वक भक्ष्यादि भोगोंका भोग करो॥ ५१॥

हे महाभाग्यवान् उपमन्यो! ये पार्वती तुम्हारी माता हैं, मैंने आजसे तुम्हें अपना पुत्र मान लिया। तुम सर्वदा कुमार बने रहोगे॥ ५२॥

हे महामुने! मैंने प्रसन्न होकर दूध, दही, घी एवं मधुके हजारों समुद्र तथा भोज्य-भक्ष्यादि पदार्थोंसे पूर्ण हजारों समुद्र तुमको प्रदान किये, तुम उन्हें प्रेमपूर्वक ग्रहण करो। मैं तुम्हें अमरत्व तथा शाश्वत गाणपत्य भी प्रदान करता हूँ॥ ५३-५४॥

मैं महादेव तुम्हारा पिता हूँ तथा ये जगदम्बा तुम्हारी माता हैं। अब तुम अन्य मनोवांछित वरोंको भी प्रेमपूर्वक माँगो॥ ५५॥

तुम अजर, अमर, दुःखसे रहित, यशस्वी, परम तेजस्वी, दिव्यज्ञानी तथा महाप्रभु हो जाओ॥ ५६॥

इसके बाद प्रसन्नचित्त शिवजीने उनके घोर तपका स्मरणकर पुनः मुनि उपमन्युको दस दिव्य वरदान, पाशुपतव्रत, पाशुपत ज्ञान, व्रतयोग, भाषण-अभिक्षमता, दक्षता तथा अपना पद भी प्रदान किया॥ ५७-५८॥

इस प्रकार वरदान देकर उन्हें अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर उनका मस्तक सूँघकर 'यह तुम्हारा पुत्र है'—ऐसा कहकर महादेवजीने उन्हें पार्वतीको समर्पित कर दिया। देवीने यह सुनकर उनके सिरपर प्रेमपूर्वक अपना करकमल रखकर उन्हें अक्षय कुमारपद प्रदान किया॥ ५९-६०॥

दूधका स्वाद उत्पन्न करनेवाले समुद्रने स्वयं उठकर एकत्र पिण्डीभूत और अनश्वर क्षीरसमुद्र उसे प्रदान किया॥ ६१॥

सन्तुष्टचित्त महेश्वरने योगैश्वर्य, सदा सन्तुष्टता, अनश्वर ब्रह्मविद्या तथा परम समृद्धि उन्हें प्रदान की॥ ६२॥

इस प्रकार वे उपमन्यु शिव और पार्वतीसे दिव्य वर और नित्यकुमारत्व प्राप्तकर परम प्रसन्न हुए। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके उन्होंने देवाधिदेव महेश्वरसे प्रीतिपूर्वक वर माँगा॥ ६३-६४॥

उपमन्यु बोले—हे देवदेवेश! प्रसन्न हों, हे परमेश्वर! प्रसन्न हों और अपनी दिव्य परम तथा चिरस्थायिनी भक्ति प्रदान कीजिये। हे महादेव! अपने सम्बन्धियोंके प्रति श्रद्धाभाव अपना दास्य, परम स्नेह तथा अपना नित्य सान्निध्य मुझे प्रदान कीजिये॥ ६५-६६॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन द्विजोत्तम उपमन्युने प्रसन्नचित्त होकर हर्षसे गद्‌गद वाणीसे महादेवकी स्तुति की॥ ६७॥

इस प्रकार उनके द्वारा स्तुति किये जानेपर सकलेश्वर प्रभु शिवने प्रसन्नचित्त होकर सबके सुनते-सुनते ही उपमन्युसे कहा—॥ ६८॥

शिवजी बोले—हे वत्स! हे उपमन्यो! तुम धन्य हो और विशेषरूपसे मेरे भक्त हो। हे अनघ! तुमने मुझसे जो कुछ माँगा, वह सब मैंने तुम्हें प्रदान किया॥ ६९॥

तुम सर्वदा अजर, अमर, दु:खरहित, सर्वपूज्य, निर्विकार एवं भक्तोंमें श्रेष्ठ हो जाओ। हे द्विजोत्तम! तुम्हारे बान्धव, तुम्हारा गोत्र एवं कुल अक्षय बना रहेगा और मुझमें तुम्हारी शाश्वत भक्ति बनी रहेगी। हे मुने! मैं तुम्हारे आश्रममें नित्य निवास करूँगा। हे वत्स! तुम इच्छानुसार जबतक चाहो, तबतक इस लोकमें निवास करो, [किसी भी वस्तुके लिये] तुम्हें उत्कण्ठा नहीं रहेगी, अर्थात् तुम सर्वदा पूर्णकाम रहोगे॥ ७०—७२॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन्हें श्रेष्ठ वरदान देकर पार्वती एवं गणोंके सहित वे भगवान् शिव वहींपर अन्तर्हित हो गये॥ ७३॥

इसके बाद प्रसन्नचित्त उपमन्यु शिवजीसे श्रेष्ठ वर प्राप्तकर अपनी माताके समीप गये और उन्होंने मातासे सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ ७४॥

उसे सुनकर उनकी माता परम हर्षित हुईं। वे उपमन्यु भी सभीके पूज्य हुए और सदा अधिकाधिक सुख प्राप्त करने लगे॥ ७५॥

हे तात! इस प्रकार मैंने परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन कर दिया, जो सज्जनोंको सदा सुख प्रदान करनेवाला है॥ ७६॥

यह आख्यान [सर्वथा] निष्पाप, सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, स्वर्ग देनेवाला, यश बढ़ानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा सज्जनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ ७७॥

जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सब प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ७८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें सुरेश्वराख्य शिवावतारचरितवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

पार्वतीके मनोभावकी परीक्षा लेनेवाले ब्रह्मचारीस्वरूप शिवावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब विभु परमात्मा शिवजीके परमपवित्र जटिल नामक अवतारको अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुनिये॥ १॥

पूर्व समयमें दक्षकी कन्या सती अपने पितासे अनादर प्राप्तकर उनके यज्ञमें अपना शरीर त्यागकर हिमालयद्वारा मेनाके गर्भसे पार्वती नामसे उत्पन्न हुईं॥ २॥

वे पार्वती अपनी सखियोंसमेत घोर वनमें जाकर शिवको अपना पति बनानेकी इच्छा करती हुई अत्यन्त निर्दोष तप करने लगीं॥ ३॥

तब नाना प्रकारकी लीलामें प्रवीण शिवजीने उनके तपकी भलीभाँति परीक्षाके लिये पार्वतीके तप:स्थानपर सप्तर्षियोंको भेजा॥ ४॥

उन मुनियोंने वहाँ जाकर यत्नपूर्वक आदरके साथ उनके तपकी परीक्षा की, किंतु वे सफल नहीं हुए॥ ५॥

तब वे पुनः लौटकर शिवजीके पास आये और उनको प्रणामकर आदरपूर्वक सारा वृत्तान्त निवेदन किया तथा उनकी आज्ञा लेकर स्वर्गलोक चले गये॥ ६॥

उन मुनियोंके अपने-अपने स्थानको चले जानेपर सुन्दर लीला करनेवाले भगवान् शंकरने पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेका विचार किया॥ ७॥

उस समय शिवजीने अपनी इच्छाओंका दमन करनेके कारण साक्षात् ईश्वर ही प्रतीत होनेवाले, तपोनिष्ठ तथा आश्चर्यसम्पन्न, प्रसन्नतासे परिपूर्ण ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किया॥ ८॥

वे भक्तवत्सल सदाशिव शम्भु छत्र-दण्डसे युक्त तथा जटाधारी, वृद्ध ब्राह्मणके जैसा उज्ज्वल वेष धारण किये हुए, मनसे हृष्ट तथा अपने तेजसे दीप्त होते हुए अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर गिरिजाके वनमें गये॥ ९-१०॥

वहाँ उन्होंने सखियोंसे घिरी हुई तथा वेदीके ऊपर विराजमान, चन्द्रकलाके समान शोभित होती हुई और

विशुद्ध स्वरूपवाली उन पार्वतीको देखा॥ ११॥

तब ब्रह्मचारीवेषधारी भक्तवत्सल शिवजी उन देवीको देखकर प्रीतिपूर्वक बड़ी उत्सुकतासे उनके समीप पहुँचे॥ १२॥

तब पार्वतीने भी अद्भुत तेजस्वी, रोमबहुल अंगोंवाले, शान्ति प्रकट करते हुए, दण्ड तथा [मृग]-चर्मसे युक्त, कमण्डलु धारण किये हुए उन जटाधारी बूढ़े ब्राह्मणको आया देखकर पूजोपचार सामग्रीसे परम प्रेमपूर्वक उनका पूजन किया और पूजन करनेके पश्चात् आनन्दपूर्वक सादर उन ब्रह्मचारीसे कुशलक्षेम पूछा कि आप ब्रह्मचारीका रूप धारण किये हुए कौन हैं, कहाँसे आये हैं, जो अपने तेजसे इस वनप्रदेशको प्रकाशित कर रहे हैं, हे वेदविदोंमें श्रेष्ठ! बताइये?॥ १३—१६॥

नन्दीश्वर बोले—पार्वतीके इस प्रकार पूछनेपर उन ब्रह्मचारी द्विजने पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेकी दृष्टिसे प्रसन्न हो शीघ्रतासे कहा—॥ १७॥

ब्रह्मचारी बोले—मैं अपने इच्छानुसार इधर-उधर भ्रमण करनेवाला ब्रह्मचारी, द्विज तपस्वी तथा सबको सुख पहुँचानेवाला और दूसरोंका उपकार करनेवाला हूँ, इसमें संशय नहीं॥ १८॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर वे भक्तवत्सल ब्रह्मचारीरूप शंकर अपना स्वरूप छिपाते हुए पार्वतीके सन्निकट स्थित हो गये॥ १९॥

ब्रह्मचारी बोले—हे महादेवि! मैं तुमसे क्या बताऊँ, कुछ कहनेयोग्य नहीं है, मुझे जो कि अनर्थकारी और अत्यन्त अशोभनीय कार्य दिखायी पड़ रहा है॥ २०॥

तुम्हें समस्त सुखोंकी साधनभूत भोगसामग्री प्राप्त है, किंतु इन सभी प्रकारके भोगोंके रहते हुए भी तुम इस नवीन युवावस्थामें व्यर्थ कष्ट सहती हुई तप कर रही हो॥ २१॥

तुम कौन हो, किसकी कन्या हो और इस निर्जन वनमें प्रयतात्मा मुनियोंके लिये भी कठिन यह तप क्यों कर रही हो?॥ २२॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकारकी उनकी बात सुनकर परमेश्वरी पार्वती हँसकर प्रेमपूर्वक उन श्रेष्ठ ब्रह्मचारीसे कहने लगीं—॥ २३॥

पार्वतीजी बोलीं—हे ब्रह्मचारिन्! हे विप्र! हे मुने! आप मेरा सारा वृत्तान्त सुनिये। इस समय मेरा जन्म भारतवर्षमें हिमालयके घरमें हुआ है॥ २४॥

मैं इसके पूर्व प्रजापति दक्षके घरमें जन्म लेकर सती नामसे शंकरजीकी पत्नी थी। पतिकी निन्दा करनेवाले पिता दक्षके द्वारा किये गये अपमानके कारण मैंने योगके द्वारा अपना शरीर त्याग दिया था॥ २५॥

हे द्विज! इस जन्ममें मैंने अपने पुण्यसे शिवजीको प्राप्त किया था, किंतु वे कामदेवको भस्मकर मुझे त्याग करके चले गये हैं॥ २६॥

शिवजीके चले जानेपर दु:खान्वित तथा लज्जित होकर मैं पिताके घरसे निकलकर गुरुके वचनानुसार संयत होकर तप करनेके लिये यहाँ आयी हूँ॥ २७॥

हे ब्रह्मचारिन्! मैंने मन-वाणी तथा कर्मसे साक्षात् शिवको पतिरूपमें भलीभाँति वरण किया है। मैं सत्य कहती हूँ, इसमें किंचिन्मात्र भी असत्य नहीं है॥ २८॥

मैं जानती हूँ कि यह मेरे लिये दुर्लभ है और दुर्लभ वस्तुकी प्राप्ति किस प्रकार होगी? फिर भी मैं अपने मनकी उत्सुकतासे इस समय तपमें प्रवृत्त हूँ॥ २९॥

मैं इन्द्रादि प्रमुख देवताओं, विष्णु तथा ब्रह्माको भी छोड़कर केवल पिनाकपाणि भगवान् शिवको वस्तुत: पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ॥ ३०॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! पार्वतीके इस निश्चय-युक्त वचनको सुनकर उन जटाधारी रुद्रने हँसते हुए यह वचन कहा—॥ ३१॥

जटिल बोले—हे हिमाचलपुत्रि! हे देवि! तुमने इस प्रकारका विचार क्यों किया है, जो कि अन्य देवोंको छोड़कर शिवके निमित्त अत्यधिक कठोर तप कर रही हो?॥ ३२॥

मैं उन रुद्रको जानता हूँ, सुनो, मैं तुमको बता रहा हूँ। वे रुद्र बैलपर सवारी करनेवाले, विकृत मनवाले तथा जटाजूट धारण करनेवाले, सदा अकेले रहनेवाले और विशेषरूपसे विरागी हैं, इसलिये उन रुद्रमें मन लगाना तुम्हारे लिये उचित नहीं है॥ ३३-३४॥

हे देवि! तुम्हारा और शिवका रूप आदि परस्पर एक-दूसरेके विरुद्ध है, मुझे तो यह अच्छा नहीं लग रहा

है, अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो॥ ३५॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर ब्रह्मचारीस्वरूपधारी शिवने उनकी परीक्षा करनेके लिये उनके आगे पुनः अनेक प्रकारसे अपनी निन्दा की॥ ३६॥

विप्रके उस असह्य वचनको सुनकर देवी पार्वतीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया और उन्होंने शिवनिन्दापरायण ब्रह्मचारीसे कहा—अभीतक तो मैंने यही समझा था कि आप कोई महात्मा होंगे, किंतु मैंने इस समय आपको जान लिया, फिर भी अवध्य होनेके कारण आपका वध नहीं कर रही हूँ॥ ३७-३८॥

हे मूढ़! तुम ब्रह्मचारीके स्वरूपमें आये हुए कोई धूर्त हो, तुमने शिवकी निन्दा की है, उससे मुझे महान् क्रोध उत्पन्न हुआ है॥ ३९॥

तुम शिवसे बहिर्मुख हो, इसलिये शिवको नहीं जानते। मैंने तुम्हारी जो पूजा की, उसके कारण मुझे परिताप हो रहा है॥ ४०॥

जो मनुष्य तत्त्वको बिना जाने ही शिवकी निन्दा करता है, उसका जन्मभरका संचित पुण्य नष्ट हो जाता है। शिवद्रोहीका स्पर्शकर मनुष्यको प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ४१-४२॥

रे दुष्ट! तुमने कहा कि मैं शंकरको जानता हूँ, किंतु निश्चितरूपसे तुम शिवको नहीं जानते। वास्तवमें वे परमात्मा हैं। रुद्र जैसे-तैसे सब कुछ हो सकते हैं; क्योंकि वे मायासे बहुत रूप धारण करनेमें समर्थ हैं। सज्जनोंके प्रिय वे सर्वथा निर्विकार होनेपर भी मेरे मनोरथको पूर्ण करेंगे॥ ४३-४४॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन देवी पार्वतीने उन ब्रह्मचारीसे [उस] शिवतत्त्वका वर्णन किया, जिसमें शिव ब्रह्मके रूपमें निर्गुण एवं अव्यय कहे जाते हैं॥ ४५॥

देवीके वचनको सुनकर वे ब्राह्मण ब्रह्मचारी ज्यों ही पुनः कुछ कहनेको उद्यत हुए, उसी समय शिवमें संसक्त चित्तवाली तथा शिवनिन्दासे विमुख पार्वतीने अपनी सखी विजयासे शीघ्रतासे कहा—॥ ४६-४७॥

गिरिजा बोलीं—हे सखि! बोलनेकी इच्छावाला यह नीच ब्राह्मण अभी भी पुनः शिवकी निन्दा करेगा, अतः प्रयत्नपूर्वक इसे रोको, क्योंकि केवल शिवजीकी निन्दा करनेवालेको ही पाप नहीं लगता, वरन् जो उस निन्दाको सुनता है, इस संसारमें वह भी पापका भागी होता है॥ ४८-४९॥

शिवभक्तोंको चाहिये कि शिवनिन्दकका सर्वथा प्रतिकार कर दे, किंतु यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे त्याग देना चाहिये और उस स्थानसे शीघ्र चले जाना चाहिये॥ ५०॥

निश्चय ही यह दुष्ट पुनः शिवकी निन्दा करेगा, किंतु ब्राह्मण होनेके कारण यह अवध्य है, अतः इसे छोड़ देना चाहिये और फिर इसे कभी नहीं देखना चाहिये। अब देर मत करो, शीघ्रतासे इस स्थानको त्यागकर हम अन्यत्र चलेंगे, जिससे इस मूर्ख ब्राह्मणके साथ पुनः सम्भाषण न हो सके॥ ५१-५२॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर ज्यों ही पार्वतीने जानेहेतु पैर उठाया, त्यों ही साक्षात् शिवजीने स्वयं उनका वस्त्र पकड़ लिया। पार्वती शिवजीके जिस स्वरूपका ध्यान करती थीं, शिवजीने वैसा ही दिव्य स्वरूप धारणकर शिवाको दिखाया और नीचेकी ओर मुख की हुई उनसे कहा—॥ ५३-५४॥

शिवजी बोले—हे शिवे! तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो, मैं किसी प्रकार तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। हे अनघे! मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है, तुम मेरी दृढ़ भक्त हो। हे देवि! मैंने तुम्हारे भावको जाननेकी इच्छासे ब्रह्मचारीके स्वरूपमें तुम्हारे पास आकर अनेक प्रकारके वचन कहे—॥ ५५-५६॥

हे शिवे! मैं तुम्हारी इस दृढ़ भक्तिसे विशेष प्रसन्न हूँ, अब तुम अपना मनोवांछित वर माँगो, तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु [मुझे] अदेय नहीं है॥ ५७॥

हे प्रेमनिर्भरे! तुमने अपनी इस तपस्यासे आजसे मुझे अपना दास बना लिया है। तुम्हारे सौन्दर्यको बिना देखे मेरा एक-एक क्षण युगके समान बीत रहा है॥ ५८॥

अब तुम लज्जाको त्यागो; क्योंकि तुम मेरी सनातन पत्नी हो। हे प्रिये! आओ, मैं तुम्हारे साथ शीघ्र ही कैलासपर्वतपर चलता हूँ॥ ५९॥

देवेशके इस प्रकार कहनेपर वे पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हो उठीं और उनके तप करनेका जो क्लेश था,

वह सब दूर हो गया॥ ६०॥

उसके बाद शिवके उस दिव्य रूपको देखकर प्रसन्न हुई पार्वतीने लज्जासे नीचेकी ओर मुख कर लिया और वे प्रीतिपूर्वक कहने लगीं— ॥ ६१॥

शिवा बोलीं—हे देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरे ऊपर कृपा करना चाहते हैं तो हे देवेश! आप मेरे पति हों—ऐसा पार्वतीने शिवसे कहा॥ ६२॥

नन्दीश्वर बोले—उसके बाद वे शिवजी विधि-विधानसे पाणिग्रहणकर उनके साथ कैलासपर चले गये और उन पार्वतीने उन्हें पतिरूपमें प्राप्तकर देवताओंका कार्य सम्पन्न किया॥ ६३॥

हे तात! इस प्रकार मैंने पार्वतीके भावकी परीक्षा लेनेवाले ब्रह्मचारीस्वरूप शिवावतारका वर्णन आपसे किया। मेरे द्वारा कहा गया यह आख्यान पवित्र तथा उत्तम है। जो इसे प्रेमपूर्वक सुनेगा, वह सुखी होकर सद्‌गति प्राप्त करेगा॥ ६४-६५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें ब्रह्मचारीशिवावतारवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके सुनर्तक नटावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ! सनत्कुमार! अब सर्वव्यापी परमात्मा शिवजीके नर्तकनट नामक अवतारका श्रवण कीजिये॥ १॥

जब हिमालयसुता कालिका पार्वती शिवको प्राप्त करनेके लिये वनमें जाकर अत्यन्त निर्मल तप करने लगीं, तब हे मुने! उनके कठिन तपसे शिवजी प्रसन्न हो गये और उनके भावकी परीक्षाके लिये तथा उन्हें वर देनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये॥ २-३॥

हे मुने! अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले शिवने उन्हें अपना रूप दिखाया और उन शिवासे 'वर माँगो'—इस प्रकार कहा॥ ४॥

शिवजीके उस वचनको सुनकर तथा उनके उत्तम रूपको देखकर पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं और उन्हें भलीभाँति प्रणामकर वे कहने लगीं— ॥ ५॥

पार्वती बोलीं—हे देवेश! हे ईशान! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं, तो मेरे पति बनें और मेरे ऊपर कृपा करें॥ ६॥

हे नाथ! मैं आपकी समुचित आज्ञासे पिताके घर जा रही हूँ। हे प्रभो! आपको भी मेरे पिताके पास जाना चाहिये, आप भिक्षुक बनकर अपना उत्तम यश प्रकट करते हुए मुझे माँगें और प्रेमपूर्वक मेरे पिताका गृहस्थाश्रम पूरी तरहसे सफल करें॥ ७-८॥

उसके अनन्तर हे प्रभो! हे महेशान! आप शास्त्रोक्त विधिसे देवगणोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरा पाणिग्रहण करें॥ ९॥

हे विभो! आप मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये। आप सर्वथा निर्विकार हैं तथा भक्तवत्सल नामवाले हैं और मैं सर्वदा आपकी भक्त हूँ॥ १०॥

नन्दीश्वर बोले—पार्वतीके इस प्रकार कहनेपर भक्तवत्सल भगवान् शिव 'ऐसा ही हो'—यह वचन कहकर अन्तर्धान होकर अपने स्थान कैलासको चले गये॥ ११॥

इसके बाद पार्वती भी प्रसन्न होकर अपनी दोनों सखियोंके साथ अपने रूपको सार्थक करके पिताके घर चली गयीं॥ १२॥

पार्वतीके आगमनका समाचार सुनकर हिमालय भी मेना तथा परिवारको साथ लेकर अपनी पुत्रीको देखनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक गये॥ १३॥

परम आनन्दित वे दोनों पार्वतीको प्रसन्नमुख देखकर उन्हें घर लिवा लाये और प्रीतिके साथ महोत्सव मनाया॥ १४॥

मेना तथा हिमालयने ब्राह्मणादिकोंको [बहुत-सा] धन दिया और आदरके साथ वेदध्वनिपूर्वक मंगलाचार कराया॥ १५॥

उसके बाद मेना अपनी कन्याके साथ आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं और वे हिमालय गंगास्नान करने चले गये॥ १६॥

इसी बीच सुन्दर लीलाओंवाले भक्तवत्सल शिव नाचनेवाले नटका रूप धारणकर मेनाके पास पहुँचे॥ १७॥

रक्तवस्त्रधारी तथा नृत्य-गान-विशारद नटरूपधारी वे शिव अपने बायें हाथमें शृंग, दाहिने हाथमें डमरू और पीठपर कन्था धारण करके मेनाके आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकारके नृत्य तथा अत्यन्त मनोहर गान करने लगे॥ १८-१९॥

उन्होंने बड़ी मनोहर ध्वनि करके डमरू तथा शृंग बजाया और प्रीतिपूर्वक विविध प्रकारकी मनोहर लीला प्रारम्भ की। उन्हें देखनेके लिये वहाँ नगरके सभी बालक, वृद्ध, पुरुष एवं स्त्रियाँ सहसा आ पहुँचे॥ २०-२१॥

हे मुने! उत्तम गीतको सुनकर तथा उस मनोहर नृत्यको देखकर सभी लोग उस समय सहसा मोहित हो गये और मेना भी मोहित हो उठीं॥ २२॥

इसके बाद उनकी लीलासे प्रसन्न मनवाली मेना शीघ्र ही स्वर्णपात्रमें रखे हुए रत्नोंको उन्हें प्रीतिपूर्वक देनेके लिये गयीं॥ २३॥

उन्होंने उन रत्नोंको ग्रहण नहीं किया और उन पार्वतीको ही भिक्षाके रूपमें माँगा। वे पुनः कौतुकसे उत्तम नृत्य तथा गान करने लगे॥ २४॥

उनका वचन सुनकर विस्मित हुई मेना बहुत क्रुद्ध हो गयीं। उन्होंने भिक्षुककी भर्त्सना की और उसे बाहर निकालनेकी इच्छा की॥ २५॥

इसी समय पर्वतराज हिमालय गंगा-स्नानकर वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मनुष्यरूप धारण किये हुए उस भिक्षुकको सामने आँगनमें स्थित देखा॥ २६॥

तब मेनाके मुखसे वह सारा वृत्तान्त सुनकर उन्होंने भी बड़ा क्रोध किया और उस भिक्षुकको बाहर निकालनेके लिये अपने सेवकोंको आज्ञा दी॥ २७॥

मुनिसत्तम! प्रलयाग्निके समान जलते हुए तेजसे अत्यन्त दुस्सह उस भिक्षुकको बाहर निकालनेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ। उसके बाद हे तात! अनेक प्रकारकी लीला करनेमें निष्णात उस भिक्षुकने शैलराजको अपना अनन्त प्रभाव दिखलाया॥ २८-२९॥

हिमालयने शीघ्रतासे उसे विष्णुरूपधारी, फिर ब्रह्मारूप और थोड़ी देरमें सूर्यरूप धारण किये हुए देखा। हे तात! इसके थोड़ी ही देर बाद उसको अत्यन्त अद्भुत एवं परम तेजस्वी रुद्ररूप धारणकर पार्वतीके साथ मनोहर हास करते हुए देखा॥ ३०-३१॥

इस प्रकार उन्होंने वहाँ उसके अनेक सुन्दर रूपोंको देखा और वे आनन्दसे विभोर हो विस्मित हो उठे॥ ३२॥

इसके बाद सुन्दर लीला करनेवाले उस भिक्षुने शैल एवं मेनासे केवल पार्वतीको ही भिक्षारूपमें माँगा और अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं किया॥ ३३॥

पार्वतीके वाक्योंसे प्रेरित होकर भिक्षुरूप धारण करनेवाले परमेश्वर इसके बाद अन्तर्धान हो गये और शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये॥ ३४॥

तब मेना एवं हिमालयको उत्तम ज्ञान हुआ कि सर्वव्यापी शिव हम दोनोंको ठगकर अपने स्थानको चले गये॥ ३५॥

हमें अपनी इस तपस्विनी कन्या पार्वतीको उन्हें प्रदान कर देना चाहिये था—ऐसा विचार करके शिवजीमें उन दोनोंकी उत्कट भक्ति हो गयी॥ ३६॥

इस प्रकारकी महालीलाएँ करके शिवजीने पार्वतीसे भक्तोंको आनन्द देनेवाला विवाह प्रेमपूर्वक विधि-विधानके साथ किया॥ ३७॥

हे तात! इस प्रकार मैंने पार्वतीके अनुरोधको पूर्ण करनेवाला शिवका सुनर्तक नट नामक अवतार आपसे कहा— ॥ ३८॥

[हे सनत्कुमार!] मेरे द्वारा कहा गया यह आख्यान अत्यन्त श्रेष्ठ तथा पवित्र है, जो भी इसे प्रेमपूर्वक सुनता है, वह सुखी होकर सद्गति प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें सुनर्तकनटाह्वशिवावतारवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

परमात्मा शिवके द्विजावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ! सनत्कुमार! अब साधुवेष धारण करनेवाले ब्राह्मणके रूपमें परमात्मा शिवका जिस प्रकार अवतार हुआ, उसे आप सुनें॥ १॥

मेना और हिमालयकी शिवमें उत्कट भक्ति देख देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई और उन लोगोंने आदरपूर्वक परस्पर मन्त्रणा की॥ २॥

यदि शिवमें अनन्य भक्ति रखकर हिमालय उन्हें कन्या देंगे, तो निश्चित रूपसे ये शिवका निर्वाणपद प्राप्त कर लेंगे। अनन्त रत्नोंके आधारभूत ये हिमालय यदि मुक्त हो जायँगे तो निश्चय ही पृथ्वीका रत्नगर्भा—यह नाम व्यर्थ हो जायगा॥ ३-४॥

शिवजीको अपनी कन्याके दानके पुण्यसे वे अपने स्थावररूपको त्यागकर दिव्य शरीर धारण करके शिवलोकको प्राप्त करेंगे, फिर शिवजीके अनुग्रहसे शिवसारूप्य प्राप्त करके वहाँ सभी प्रकारके भोगोंको भोगकर बादमें मोक्ष प्राप्त कर लेंगे॥ ५-६॥

हे मुने! इस प्रकार विचारकर अपने स्वार्थसाधनमें कुशल उन सभी देवताओंने गुरु बृहस्पतिके घरके लिये प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उन लोगोंने गुरुसे निवेदन किया॥ ७॥

देवता बोले—हे गुरो! आप हमलोगोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हिमालयके घर जाइये और शिवजीकी निन्दाकर हिमालयके चित्तसे शिवके प्रति आस्था दूर कीजिये। हे गुरो! वे हिमालय श्रद्धासे अपनी कन्या शिवको देकर मुक्ति प्राप्त कर लेंगे [किंतु हमलोग ऐसा नहीं चाहते, हमारी इच्छा है कि] वे यहीं पृथ्वीपर रहें॥ ८-९॥

देवताओंका यह वचन सुनकर बृहस्पतिने विचार करके उनसे कहा—॥ १०॥

बृहस्पतिजी बोले—हे देवताओ! आपलोगोंके मध्यसे ही कोई एक पर्वतराजके पास जाय और अपना अभीष्ट सिद्ध करे, मैं इसे करनेमें [सर्वथा] असमर्थ हूँ अथवा हे देवताओ! आपलोग इन्द्रको साथ लेकर ब्रह्मलोकको जाइये और उन ब्रह्मासे अपना सारा वृत्तान्त कहिये, वे आपलोगोंका कार्य करेंगे॥ ११-१२॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] यह सुनकर विचार करके वे देवता ब्रह्माकी सभामें गये और उन लोगोंने ब्रह्माके आगे सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ १३॥

उनका वचन सुनकर ब्रह्मदेवने भलीभाँति विचारकर उनसे कहा—मैं तो दुःख देनेवाली तथा सर्वदा सुखापहारिणी शिवनिन्दा नहीं कर सकता। अतः हे देवताओ! आपलोग कैलासको जाइये, शिवको सन्तुष्ट कीजिये और उन्हीं प्रभुको हिमालयके घर भेजिये। वे [शिव] ही पर्वतराज हिमालयके पास जायँ और अपनी निन्दा करें; क्योंकि दूसरेकी निन्दा विनाशके लिये और अपनी निन्दा यशके लिये मानी गयी है॥ १४—१६॥

नन्दीश्वर बोले—उसके बाद वे सभी देवगण कैलासपर्वतपर गये और शिवजीको भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन लोगोंने सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ १७॥

देवताओंका वचन सुनकर शिवजीने हँसकर उसे स्वीकार कर लिया तथा उन देवताओंको आश्वस्तकर विदा किया॥ १८॥

उसके बाद भक्तवत्सल मायापति तथा अविकारी महेश्वर भगवान् शम्भुने हिमालयके समीप जानेका विचार किया॥ १९॥

दण्ड, छत्र, दिव्य वस्त्र तथा उज्ज्वल तिलकसे विभूषित हो, कण्ठमें शालग्रामशिला तथा हाथमें स्फटिकमाला धारणकर साधुवेषधारी ब्राह्मणके वेषमें भक्तिभावसे वे श्रीविष्णुके नामका जप करते हुए बन्धु-बान्धवोंसे युक्त हिमालयके यहाँ शीघ्र गये॥ २०-२१॥

उन्हें देखते ही हिमालय सपरिवार उठ खड़े हुए। उन्होंने विधिपूर्वक भूमिमें साष्टांग दण्डवत्‌कर उन्हें प्रणाम किया॥ २२॥

उसके अनन्तर शैलराजने उन ब्राह्मणसे पूछा कि आप कौन हैं? तब उन योगी विप्रेन्द्रने बड़े आदरके साथ शीघ्र हिमालयसे कहा—॥ २३॥

साधुद्विज बोले—हे शैलराज! मेरा नाम साधु द्विज है। मैं मोक्षकी कामनासे युक्त परोपकारी वैष्णव हूँ और अपने गुरुके प्रसादसे सर्वज्ञ तथा सर्वत्र गमन करनेवाला हूँ॥ २४॥

हे शैलसत्तम! मैंने विज्ञानके बलसे अपने स्थानपर ही जो ज्ञात किया है, उसे प्रीतिपूर्वक आपसे कह रहा हूँ, आप पाखण्ड त्यागकर उसे सुनें॥ २५॥

आप इस लक्ष्मीके समान परम सुन्दरी अपनी कन्याको अज्ञात कुल तथा शीलवाले शंकरको प्रदान करना चाहते हैं॥ २६॥

हे शैलेन्द्र! आपकी यह बुद्धि कल्याणकारिणी नहीं है। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! हे नारायणकुलोद्भव! इसपर विचार कीजिये॥ २७॥

हे शैलराज! आप ही विचार कीजिये, उनका कोई एक भी बन्धु-बान्धव नहीं है, आप इस विषयमें अपने बान्धवों तथा अपनी पत्नी मेनासे पूछिये। आप पार्वतीको छोड़कर यत्नपूर्वक मेना आदि सबसे पूछिये; क्योंकि हे शैल! रोगीको औषधि अच्छी नहीं लगती, उसे तो सदैव कुपथ्य ही अच्छा लगता है॥ २८-२९॥

मेरे विचारसे पार्वतीको देनेके लिये शंकर योग्य पात्र नहीं है। इसे सुननेमात्रसे बड़े लोग आपका उपहास ही करेंगे॥ ३०॥

वे शिव तो निराश्रय, संगरहित, कुरूप, गुणरहित, अव्यय, श्मशानवासी, भयंकर आकारवाले, साँपोंको धारण करनेवाले, दिगम्बर, भस्म धारण करनेवाले, मस्तकपर सर्पमाला लपेटे हुए, सभी आश्रमोंसे परिभ्रष्ट तथा सदा अज्ञात गतिवाले हैं॥ ३१-३२॥

ब्रह्माजी बोले—अनेक लीलाएँ करनेमें कुशल शिवजी इस प्रकार शिवनिन्दायुक्त सत्य-सत्य वचन कहकर शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये॥ ३३॥

ब्राह्मणके कहे गये अप्रिय वचनको सुनकर दोनोंका स्वरूप विरुद्ध भावोंवाला एवं अनर्थसे परिपूर्ण हो गया और वे विचार करने लगे कि अब हमें क्या करना चाहिये॥ ३४॥

इस प्रकार उन रुद्रने भक्तोंको प्रसन्न करनेवाली महान् लीलाएँ कीं और पार्वतीके साथ विवाहकर देवकार्य सम्पन्न किया॥ ३५॥

हे तात! हे प्रभो! इस प्रकार मैंने देवगणोंका हित करनेवाले साधुवेषधारी द्विज नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया॥ ३६॥

यह आख्यान पवित्र, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा उत्कृष्ट है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह सुखी रहकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें साधुद्विजशिवावतारवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

अश्वत्थामाके रूपमें शिवके अवतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब आप सर्वव्यापी परमात्मा शिवके अश्वत्थामा नामक श्रेष्ठ अवतारको सुनें॥ १॥

हे मुने! महाबुद्धिमान् देवर्षि बृहस्पतिके अंशसे महर्षि भरद्वाजसे अयोनिज पुत्रके रूपमें आत्मवेत्ता द्रोण उत्पन्न हुए, जो धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, पराक्रमी, विप्रोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके जाननेवाले, विशाल कीर्तिवाले, महातेजस्वी एवं सभी अस्त्रोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे, जिन द्रोणको विद्वान् लोग धनुर्विद्यामें तथा वेदमें पारंगत, वरिष्ठ, आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला और अपने कुलको बढ़ानेवाला कहते हैं॥ २—४॥

हे द्विज! वे अपने पराक्रमके प्रभावसे कौरवोंके आचार्य थे एवं उन कौरवोंके छः महारथियोंमें प्रसिद्ध थे॥ ५॥

उन द्विजोत्तम द्रोणाचार्यने कौरवोंकी सहायताके लिये पुत्रकी इच्छासे शिवजीको लक्ष्य करके बहुत बड़ा

तप किया। उसके बाद हे मुनिसत्तम! [उनके तपसे] प्रसन्न होकर भक्तवत्सल शिवजी द्रोणाचार्यके समक्ष प्रकट हुए॥ ६-७॥

उन्हें देखकर उन ब्राह्मण द्रोणने उन्हें शीघ्रतासे प्रणाम करके हाथ जोड़कर विनम्र हो अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति की॥ ८॥

उनकी स्तुति तथा तपस्यासे सन्तुष्ट हुए भक्तवत्सल प्रभु शंकरने द्रोणाचार्यसे 'वर माँगो'—ऐसा कहा॥ ९॥

शिवजीके इस वचनको सुनकर अति विनम्र द्रोणाचार्यने कहा कि मुझे महाबली, सबसे अजेय तथा अपने अंशसे उत्पन्न एक पुत्र दीजिये॥ १०॥

हे तात! हे मुने! द्रोणाचार्यका वचन सुनकर कौतुक करनेवाले परम सुखकारी शिवजीने 'ऐसा ही होगा'—यह कहा और वे अन्तर्धान हो गये॥ ११॥

द्रोणाचार्य भी नि:शंक हो प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गये और उन्होंने वह सारा वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे प्रेमपूर्वक कहा। इसके बाद अवसर पाकर वे सर्वान्तक प्रभु रुद्र अपने अंशसे द्रोणके महाबलवान् पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ १२-१३॥

हे मुने! वे पृथ्वीपर अश्वत्थामा नामसे विख्यात हुए, वे महान् वीर थे, उनकी आँखें कमलपत्रके समान थीं और वे शत्रुपक्षका विनाश करनेवाले थे॥ १४॥

ये महाबली अश्वत्थामा महाभारतके संग्राममें पिताकी आज्ञासे कौरवोंके सहायकके रूपमें प्रसिद्ध हुए। उन महाबली अश्वत्थामाका आश्रय लेनेके कारण ही महाबलवान् भीष्म आदि कौरवगण देवताओंके लिये भी अजेय हो गये॥ १५-१६॥

उन्हींसे भयभीत होनेके कारण पाण्डवलोग कौरवोंको जीतनेमें अपनेको असमर्थ पा रहे थे और परम बुद्धिमान् तथा महान् वीर होकर भी अश्वत्थामाके भयसे असमर्थ हो गये। तब श्रीकृष्णके उपदेशसे महाबली अर्जुनने शिवकी कठोर तपस्याकर उनसे अस्त्र प्राप्त करके उन कौरवोंपर विजय प्राप्त की॥ १७-१८॥

हे मुने! उस समय महादेवके अंशसे उत्पन्न हुए उन अश्वत्थामाने कौरवोंकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उनके वशीभूत होकर युद्धमें यत्नपूर्वक शिक्षित पाण्डवपुत्रोंका विनाश करके अपना प्रताप दिखाया, श्रीकृष्ण आदि महावीर बलवान् शत्रु भी उनके बलको रोक नहीं सके॥ १९-२०॥

पुत्रके शोकसे सन्तप्त अर्जुनको श्रीकृष्णके साथ रथसे अपनी ओर आता हुआ देखकर वे भाग खड़े हुए॥ २१॥

अश्वत्थामाने अर्जुनपर ब्रह्मशिर नामक अस्त्रका प्रहार किया, उससे सभी दिशाओंमें प्रचण्ड तेज उत्पन्न हो गया। अपने प्राणोंपर आयी हुई आपत्तिको देखकर अर्जुन दुखी हुए और उनका तेज नष्ट हो गया, तब उन्होंने क्लेशक्रान्त तथा भयभीत होकर श्रीकृष्णसे कहा—॥ २२-२३॥

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! हे कृष्ण! यह क्या है, यह दु:सह तेज चारों ओरसे घेरे हुए कहाँसे आ रहा है, मैं इसे नहीं जान पा रहा हूँ॥ २४॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनका यह वचन सुनकर महाशैव उन श्रीकृष्णने पार्वतीसहित शिवका ध्यान करते हुए आदरपूर्वक अर्जुनसे कहा—॥ २५॥

श्रीकृष्ण बोले—यह द्रोणाचार्यके पुत्रका महातेजस्वी ब्रह्मास्त्र है, इसके समान शत्रुओंका घातक कोई दूसरा अस्त्र नहीं है, ऐसा जानना चाहिये। आप शीघ्र ही भक्तोंकी रक्षा करनेवाले अपने प्रभु शंकरका ध्यान कीजिये, जिन्होंने आपका सारा कार्य सम्पादन करनेवाला अपना सर्वोत्कृष्ट अस्त्र आपको प्रदान किया है। आप इस अस्त्रके परमतेजको अपने शैवास्त्रके तेजसे नष्ट कीजिये, इतना कहकर स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षाके लिये शिवका ध्यान करने लगे॥ २६—२८॥

हे मुने! श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने अपने मनमें शिवजीका ध्यान किया और इसके बाद जलसे आचमनकर शिवको प्रणाम करके उस अस्त्रको शीघ्र ही [अश्वत्थामापर] छोड़ा॥ २९॥

हे महामुने! यद्यपि वह ब्रह्मशिर नामक अस्त्र अमोघ है तथा इसकी प्रतिक्रिया करनेवाला कोई अन्य अस्त्र नहीं है, फिर भी वह शिवजीके अस्त्रके तेजसे उसी क्षण शान्त हो गया॥ ३०॥

अद्भुत चरित्रवाले उन शिवके सम्बन्धमें इसे

आश्चर्य मत समझिये, जो अजन्मा शिव अपनी शक्तिसे सारे संसारको उत्पन्न करते हैं, उसका पालन करते हैं तथा संहार करते हैं॥ ३१॥

हे मुने! इसके बाद शिवके अंशसे उत्पन्न हुए तथा शिवजीकी इच्छासे तुष्ट बुद्धिवाले अश्वत्थामा इस शैववृत्तान्तको जानकर कुछ भी व्यथित नहीं हुए॥ ३२॥

इसके बाद अश्वत्थामाने इस सम्पूर्ण संसारको पाण्डवोंसे रहित करनेके लिये उत्तराके गर्भमें स्थित बालकको विनष्ट करनेका निश्चय किया॥ ३३॥

तब उस महाप्रभावशालीने महातेजस्वी तथा अन्य अस्त्रोंद्वारा रोके न जा सकनेवाले ब्रह्मास्त्रको उत्तराके गर्भपर चलाया। तब उस अस्त्रसे जलती हुई अर्जुनकी पुत्रवधू उत्तरा व्याकुलचित्त होकर लक्ष्मीपति श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगी॥ ३४-३५॥

इसके बाद श्रीकृष्णने हृदयसे सदाशिवका ध्यानकर उनकी स्तुति की तथा उन्हें प्रणामकर जान लिया कि पाण्डवोंके विनाशके लिये यह अश्वत्थामाका अस्त्र है। उन्होंने शिवजीकी आज्ञासे अपनी रक्षाके लिये इन्द्रद्वारा प्रदत्त अपने महातेजस्वी सुदर्शन चक्रसे उसकी रक्षा की॥ ३६-३७॥

शंकरकी आज्ञासे उन महाशैव श्रीकृष्णने गर्भमें अपना स्वरूप भी धारण किया, यह चरित्र जानकर अश्वत्थामा उदास हो गये॥ ३८॥

उसके बाद प्रसन्नचित्त महाशैव श्रीकृष्णने अश्वत्थामाको प्रसन्न करनेके लिये सभी पाण्डवोंको उनके चरणोंमें गिराया॥ ३९॥

तदनन्तर प्रसन्नचित्त द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने श्रीकृष्ण एवं समस्त पाण्डवोंपर अनुग्रह करके प्रेमपूर्वक उन्हें अनेक प्रकारके वर दिये॥ ४०॥

हे तात! हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अश्वत्थामाके रूपमें पृथ्वीपर अवतार लेकर प्रभु शिवजीने अत्यन्त उत्तम लीला की॥ ४१॥

त्रैलोक्यको सुख देनेवाले महापराक्रमशाली, शिवावतार अश्वत्थामा आज भी गंगातटपर विद्यमान हैं॥ ४२॥

हे मुने! इस प्रकार मैंने आपसे अश्वत्थामाके रूपमें प्रभु शिवजीके अवतारका वर्णन किया, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला तथा भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है॥ ४३॥

जो [मनुष्य] भक्तिपूर्वक इस चरित्रको सुनता है अथवा सावधान होकर इसका कीर्तन करता है, वह अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है और अन्तमें शिवलोकको जाता है॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें अश्वत्थामाशिवावतारवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

व्यासजीका पाण्डवोंको सान्त्वना देकर अर्जुनको इन्द्रकील पर्वतपर तपस्या करने भेजना

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! अब आप शिवजीका किरातावतार सुनिये, [जिसमें] उन्होंने प्रसन्न होकर मूक दानवका वध किया एवं अर्जुनको वर प्रदान किया॥ १॥

[द्यूतक्रीड़ामें] जब श्रेष्ठ पाण्डवोंको दुर्योधनने जीत लिया, तब वे परम पतिव्रता द्रौपदीको अपने साथ लेकर द्वैतवन चले गये। उस समय वे पाण्डव वहाँपर सूर्यके द्वारा दी गयी स्थाली (बटलोई)-का आश्रय लेकर सुखपूर्वक अपना समय बिताने लगे॥ २-३॥

हे विप्रेन्द्र! तब दुर्योधनने महामुनि दुर्वासाको छल करनेके लिये आदरपूर्वक प्रेरित किया, तदनन्तर महामुनि दुर्वासा पाण्डवोंके निकट गये॥ ४॥

वहाँ जाकर अपने दस हजार शिष्योंके साथ दुर्वासाने मनोनुकूल भोजन उन पाण्डवोंसे प्रेमपूर्वक माँगा॥ ५॥

पाण्डवोंने उनकी बात स्वीकार कर ली और उस समय दुर्वासा आदि प्रमुख तपस्वी मुनियोंको स्नान

करनेहेतु भेज दिया॥ ६॥

हे मुनीश्वर! उस समय अन्नके अभावसे दुखी होकर उन सभी पाण्डवोंने प्राण त्यागनेका मनमें निश्चय किया। तब द्रौपदीने शीघ्र ही श्रीकृष्णका स्मरण किया, वे उसी समय पधारे और शाकका भोग लगाकर उन सभीको तृप्त किया॥ ७-८॥

तब शिष्योंको तृप्त जानकर दुर्वासा वहाँसे चले गये। इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी कृपासे पाण्डव उस समय दु:खसे निवृत्त हो गये॥ ९॥

इसके बाद उन पाण्डवोंने श्रीकृष्णसे पूछा—हे प्रभो! [आगे] क्या होगा? यह [दुर्योधन] महान् वैरी उत्पन्न हुआ है, अब आप बताइये कि क्या करना चाहिये?॥ १०॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उन पाण्डवोंके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर श्रीकृष्णजीने शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके पाण्डवोंसे यह कहा—॥ ११॥

श्रीकृष्णजी बोले—हे श्रेष्ठ पाण्डवो! शिवोपासनासे युक्त मेरे वृत्तान्तको सुनिये और सुनकर विशेषरूपसे [शिवोपासनारूप] कर्तव्यका अनुपालन कीजिये॥ १२॥

पूर्वमें मैंने अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे द्वारकामें जाकर महात्मा उपमन्युके उपदेशोंका विचार करके बटुक नामक श्रेष्ठ पर्वतपर सात मासपर्यन्त शिवजीकी आराधना की, तब भलीभाँति सेवाके किये जानेसे परमेश्वर शिवजी मुझपर प्रसन्न हो गये॥ १३-१४॥

विश्वेश्वरने साक्षात् प्रकट होकर मुझे अभीष्ट वरदान दिया। उन्हींकी कृपासे मैंने सभी प्रकारका उत्तम सामर्थ्य प्राप्त कर लिया॥ १५॥

[हे पाण्डवो!] मैं इस समय भी भोग एवं मोक्ष देनेवाले शिवजीकी सेवा करता हूँ, इसलिये आपलोग भी सब प्रकारका सुख देनेवाले उन शिवजीकी सेवा कीजिये॥ १६॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर पाण्डवोंको आश्वासन देकर श्रीकृष्णजी अन्तर्धान हो गये और शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए शीघ्र ही द्वारका चले गये॥ १७॥

इधर, उत्साहयुक्त पाण्डवोंने उस दुर्योधनके गुणोंकी परीक्षाके लिये एक भीलको भेजा। वह भी दुर्योधनके सभी गुणों और पराक्रमका भलीभाँति पता लगाकर अपने प्रभु पाण्डवोंके समीप लौट आया॥ १८-१९॥

हे मुनीश्वर! उसकी बात सुनकर पाण्डव अत्यन्त दुखी हुए और अतीव दु:खित उन पाण्डवोंने आपसमें कहा—अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये? यद्यपि हमलोग इस समय युद्ध करनेमें समर्थ हैं, किंतु सत्यपाशसे बँधे हुए हैं॥ २०-२१॥

नन्दीश्वर बोले—इसी समय मस्तकमें भस्म लगाये, रुद्राक्षकी माला धारण किये, सिरपर जटाजूटसे सुशोभित तथा शिवप्रेममें निमग्न, तेजोराशि, साक्षात् दूसरे धर्मके समान श्रीव्यासजी पंचाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वहाँ आये॥ २२-२३॥

तब उन्हें देखकर वे पाण्डव प्रसन्न हो उठकर उनके आगे खड़े हो गये और कुशासे युक्त मृगचर्मका आसन उन्हें देकर उसपर बैठे हुए व्यासजीका हर्षित होकर पूजन किया, अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की और कहा कि हम धन्य हो गये॥ २४-२५॥

हमने जो कठिन तप किया, अनेक प्रकारके दान दिये, वह सब सफल हो गया। हे प्रभो! हम सब आपके दर्शनसे तृप्त हो गये॥ २६॥

हे पितामह! आपके दर्शनसे दु:ख दूर हो गया, क्रूर कर्मवाले इन दुष्टोंने हमलोगोंको बड़ा दु:ख दिया है॥ २७॥

आप-जैसे श्रीमानोंका दर्शन हो जानेपर जो दु:ख कभी न गया, वह अब चला ही जायगा—ऐसा हमलोगोंका विचारपूर्ण निश्चय है। सब कुछ करनेमें समर्थ आप-जैसे महात्माओंके आश्रममें पधारनेपर भी यदि दु:ख दूर न हुआ तो इसमें दैव ही कारण है॥ २८-२९॥

बड़े लोगोंका स्वभाव कल्पवृक्षके समान माना गया है, उनके आनेपर दु:खका कारणभूत दारिद्र्य निश्चित रूपसे चला जाता है॥ ३०॥

हे प्रभो! महापुरुषोंके गुणोंका कथन करनेसे, उनका नामसंकीर्तनमात्र करनेसे अथवा उनका आश्रय लेनेसे व्यक्ति महत्ता या [उपेक्षा करनेसे] लघुताको प्राप्त करता है—इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ ३१$^{1}/_{2}$॥

उत्तम पुरुषोंमें स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दीनजनोंका परिपालन करते हैं॥ ३२॥

निर्धनताको लोकमें परम कल्याणकारी माना गया है, क्योंकि इसके सामने अर्थात् लक्ष्यके रूपमें दूसरेका उपकार और सज्जनोंकी सेवा—ये ही रहते हैं॥ ३३॥

उसके बाद जो भाग्य है, उसमें किसीको दोष नहीं देना चाहिये। इसलिये हे स्वामिन्! आपके दर्शनसे हमलोग अपना मंगल ही मानते हैं। आपके आगमन-मात्रसे हमारा मन हर्षित हो उठा है। अब आप हमलोगोंको शीघ्र ही ऐसा उपदेश दें, जिससे हमारा दुःख दूर हो॥ ३४-३५॥

नन्दीश्वर बोले—पाण्डवोंका यह वचन सुनकर प्रसन्नचित्त हुए महामुनि व्यासजीने यह कहा—॥ ३६॥

हे पाण्डवो! आपलोग दुःख मत कीजिये, आपलोग धन्य हैं और कृतकृत्य हैं, जो कि आपलोगोंने सत्यका लोप नहीं होने दिया॥ ३७॥

सत्पुरुषोंका ऐसा अत्युत्तम स्वभाव होता है कि वे मृत्युपर्यन्त मनोहर फल देनेवाले सत्य तथा धर्मका त्याग नहीं करते हैं॥ ३८॥

यद्यपि हमारे लिये आपलोग तथा वे [कौरव] दोनों ही बराबर हैं, फिर भी विद्वानोंके द्वारा धर्मात्माओंके प्रति पक्षपात उचित कहा गया है॥ ३९॥

अन्धे तथा दुष्ट धृतराष्ट्रने पहले ही धर्मका त्याग किया और लोभसे स्वयं आपलोगोंका राज्य हड़प लिया। आपलोग तथा वे [कौरव] दोनों ही उनके पुत्र हैं, इसमें सन्देह नहीं है। पिता (पाण्डु)-के मर जानेपर उन महात्माके बालकोंके ऊपर उन्हें कृपा करनी चाहिये॥ ४०-४१॥

उन्होंने कभी भी अपने पुत्र [दुर्योधन]-को मना नहीं किया, यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो यह अनर्थ न होता। जो होना था, वह हो चुका; होनहार कभी मिथ्या नहीं होता। यह [दुर्योधन] दुष्ट है, आपलोग धर्मात्मा एवं सत्यवादी हैं॥ ४२-४३॥

इसलिये अन्तमें निश्चित रूपसे उसका ही अशुभ होगा, जो बीज यहाँ उसने बोया है, वह अवश्य उत्पन्न होगा॥ ४४॥

इसलिये निश्चय ही आपलोगोंको दुखी नहीं होना चाहिये। हर प्रकारसे आपलोगोंका अवश्य ही शुभ होगा, इसमें सन्देहकी आवश्यकता नहीं है॥ ४५॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर महात्मा व्यासजीने उन पाण्डवोंको प्रसन्न कर लिया, तब युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंने पुनः उनसे यह वचन कहा—॥ ४६॥

पाण्डव बोले—हे नाथ! आपने सत्य कहा, किंतु मलिन चित्तवाले ये दुष्ट हमें इस वनमें भी बार-बार निरन्तर दुःख ही दे रहे हैं॥ ४७॥

इसलिये हे विभो! हमारे अशुभका नाश कीजिये और हमें मंगल प्रदान कीजिये। इसके पूर्व श्रीकृष्णने [हमलोगोंसे] कहा था कि तुमलोगोंको सर्वदा शिवजीकी आराधना करनी चाहिये, किंतु हमलोगोंने प्रमाद किया और उनकी आज्ञाके पालनमें शिथिलता की। अब आप पुनः उस देवमार्गका उपदेश कीजिये॥ ४८-४९॥

नन्दीश्वर बोले—यह वचन सुनकर व्यासजी बहुत ही प्रसन्न हुए और शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके पाण्डवोंसे प्रेमपूर्वक कहने लगे—॥ ५०॥

व्यासजी बोले—हे धर्मबुद्धिवाले पाण्डवो! मेरी बात सुनो। श्रीकृष्णने सत्य ही कहा था, क्योंकि मैं भी सदाशिवकी उपासना करता हूँ॥ ५१॥

आपलोग भी प्रेमपूर्वक उनका सेवन कीजिये, जिससे सदा अपार सुखकी प्राप्ति होती रहे। शिवकी सेवा न करनेके कारण ही सारा दुःख होता है॥ ५२॥

नन्दीश्वर बोले—उसके अनन्तर विचार करके मुनिवर व्यासजीने पाँचों पाण्डवोंमें अर्जुनको शिवपूजाके योग्य समझा और इसके बाद उन मुनिश्रेष्ठने [उनके लिये] तपस्याका स्थान निश्चितकर धर्मनिष्ठ पाण्डवोंसे पुनः यह कहा—॥ ५३-५४॥

व्यासजी बोले—हे पाण्डवो! मैं तुमलोगोंके हितकी जो बात कह रहा हूँ, उसे सुनो। तुमलोग सज्जनोंके रक्षक सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म शिवका दर्शन प्राप्त करो॥ ५५॥

ब्रह्मासे लेकर त्रिपरार्धपर्यन्त जो भी जगत् दिखायी पड़ता है, वह सब शिवस्वरूप है, इसलिये वह पूजा तथा ध्यान करनेयोग्य है॥ ५६॥

शंकरजी सभी प्रकारके दुःखोंको विनष्ट करनेवाले

हैं। अत: सभी लोगोंको उनकी सेवा करनी चाहिये। थोड़े समयमें ही भक्तिसे शिव प्रसन्न हो जाते हैं, अति प्रसन्न होनेपर महेश्वर भक्तोंको सब कुछ दे देते हैं। वे इस लोकमें भोग तथा परलोकमें मुक्ति प्रदान करते हैं—यह बात सुनिश्चित है॥ ५७-५८॥

अत: भोग एवं मोक्षका फल चाहनेवाले पुरुषोंको सर्वदा शिवजीकी सेवा करनी चाहिये। शंकरजी साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, दुष्टोंके विनाशक और सज्जनोंके रक्षक हैं। परंतु सबसे पहले स्वस्थ मनसे शक्रविद्याका जप करना चाहिये, श्रेष्ठ कहलानेवाले क्षत्रियके लिये यही विधि है॥ ५९-६०॥

अत: दृढ़चित्त होकर अर्जुनको सर्वप्रथम शक्रविद्याका जप करना चाहिये। इन्द्र पहले परीक्षा करेंगे, उसके बाद सन्तुष्ट होंगे। सन्तुष्ट हो जानेपर इन्द्र सर्वदा विघ्नोंका विनाश करेंगे और शिवजीका उत्तम मन्त्र प्रदान करेंगे॥ ६१-६२॥

नन्दीश्वर बोले—व्यासजीने इस प्रकार कहकर अर्जुनको अपने पास बुलाकर उन्हें इन्द्रविद्याका उपदेश किया और तीक्ष्ण बुद्धिवाले अर्जुनने भी स्नानकर पूर्वाभिमुख हो उसे ग्रहण कर लिया॥ ६३॥

उस समय उदार बुद्धिवाले मुनिवर व्यासजीने अर्जुनको पार्थिव-पूजनके विधानका भी उपदेश किया और उनसे कहा— ॥ ६४॥



व्यासजी बोले—हे पार्थ! आप इसी समय शीघ्र ही यहाँसे अत्यन्त शोभासम्पन्न इन्द्रकील पर्वतपर जाइये और वहाँ गंगाके तटपर स्थित होकर भलीभाँति तपस्या कीजिये। यह अदृश्य विद्या सर्वदा आपका हित करती रहेगी—मुनिने उन्हें यह आशीर्वाद दिया। उसके बाद पाण्डवोंसे कहा—हे श्रेष्ठ राजाओ! आपलोग धर्मका आश्रय लेकर यहाँ निवास करें, आपलोगोंको श्रेष्ठ सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ६५—६७॥

नन्दीश्वर बोले—उन पाण्डवोंको यह आशीर्वाद देकर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके मुनीश्वर व्यास क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये॥ ६८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातावतारवर्णनप्रसंगमें अर्जुनको व्यासका उपदेशवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

इन्द्रका अर्जुनको वरदान देकर शिवपूजनका उपदेश देना

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] उस समय शिवस्वरूप मन्त्रके कारण अतुल तेज धारण किये हुए अर्जुन भी अत्यन्त दीप्तिमान् दिखायी पड़ने लगे॥ १॥

उस समय उन सभी पाण्डवोंने अर्जुनको देखकर यह निश्चय कर लिया कि हमलोग अवश्य विजयी होंगे; क्योंकि अर्जुनका तेज बढ़ा हुआ है॥ २॥

[उन लोगोंने अर्जुनसे कहा—हे अर्जुन!] व्यासजीके कथनसे प्रतीत होता है कि इस कार्यको तुम्हीं सिद्ध कर सकते हो, कोई दूसरा कभी नहीं; अत: जीवनको सफल करो॥ ३॥

अर्जुनसे इस प्रकार कहकर उनके विरहसे व्याकुल हुए समस्त पाण्डवोंने न चाहते हुए भी उन्हें आदरपूर्वक वहाँ भेज दिया॥ ४॥

अर्जुनको भेजते समय दु:खसे भरी हुई पतिव्रता

द्रौपदीने नेत्रोंके आँसुओंको रोककर यह शुभ वचन कहा— ॥ ५ ॥

द्रौपदी बोली—हे राजन्! व्यासजीने आपको जैसा उपदेश किया है, वैसा आपको प्रयत्नपूर्वक [कार्य] करना चाहिये। आपका मार्ग मंगलप्रद हो और भगवान् शंकरजी आपका कल्याण करें॥ ६ ॥

उसके अनन्तर पाँचों (द्रौपदीसहित) पाण्डव अर्जुनको आदरपूर्वक विदा करके अत्यन्त दुखी होते हुए परस्पर मिलकर वहाँ निवास करने लगे॥ ७ ॥

हे ऋषिसत्तम सनत्कुमार! सुनिये, पाण्डवोंने वहाँ रहते हुए आपसमें कहा कि दुःख उपस्थित होनेपर भी प्रियजनका संयोग बना रहे तो दुःख नहीं जान पड़ता है। किंतु प्रियजनके वियोग रहनेपर दुःख आ पड़े तो वह निरन्तर द्विगुणित होता जाता है, उस समय धैर्यवान्को भी धीरज कैसे रह सकता है॥ ८-९ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार पाण्डवोंके दुःख प्रकट करनेपर करुणासागर ऋषिवर्य व्यासजी वहाँ आये। तब दुःखसे व्याकुल हुए वे पाण्डव व्यासजीको नमस्कार करके आसन देकर आदरपूर्वक उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर यह वचन कहने लगे— ॥ १०-११ ॥

पाण्डव बोले—हे श्रेष्ठोत्तम! हे प्रभो! सुनिये, हम दुःखसे जल रहे थे, किंतु हे मुने! आज आपका दर्शन प्राप्तकर हमलोग आनन्दित रहे हैं॥ १२ ॥

हे प्रभो! आप हमलोगोंका दुःख दूर करनेके लिये कुछ कालपर्यन्त यहीं निवास कीजिये; क्योंकि हे विप्रर्षे! आपके दर्शनमात्रसे सारा दुःख नष्ट हो जाता है॥ १३ ॥

नन्दीश्वर बोले—उन लोगोंके इस प्रकार कहनेपर उन ऋषिवरने उनके सुखके लिये वहाँ निवास किया और वे अनेक प्रकारकी कथाओंसे उस समय उनका कष्ट दूर करने लगे। हे सन्मुने! व्यासजीके द्वारा की जाती हुई वार्ताके समय उन्हें प्रणाम करके विनीतात्मा धर्मराजने उनसे यह पूछा— ॥ १४-१५ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! हे महाप्राज्ञ! [आपके वचनोंसे] मेरे दुःखकी शान्ति हो गयी, किंतु हे प्रभो! मैं आपसे जो पूछता हूँ, उसे बताइये॥ १६ ॥

क्या इस प्रकारका दुःख पहले और किसीको प्राप्त हुआ है अथवा यह महान् दुःख हमें ही मिला है, अन्य किसीको नहीं?॥ १७ ॥

व्यासजी बोले—[हे युधिष्ठिर!] पूर्व समयमें निषधदेशके अधिपति महात्मा नलको आपसे भी अधिक दुःख प्राप्त हुआ था॥ १८ ॥

राजा हरिश्चन्द्रको भी अत्यधिक दुःख प्राप्त हुआ था, जो अनिर्वचनीय और सुननेमात्रसे दूसरोंको भी दुखित करनेवाला है॥ १९ ॥

हे पाण्डव! वैसा ही दुःख श्रीरामचन्द्रका भी जानना चाहिये, जिसे सुनकर स्त्री-पुरुषोंको अत्यधिक कष्ट होता है। मैं पुनः इसका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ, अतः शरीरको दुःखोंका समूह समझकर इस समय तुम्हें शोकका त्याग करना चाहिये॥ २०-२१ ॥

जिस किसीने यह शरीर धारण किया है, वह दुःखोंसे व्याप्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। सर्वप्रथम माताके गर्भसे जन्म लेना ही दुःखका कारण होता है। फिर कुमारावस्थामें भी बालकोंकी लीलाके अनुसार महान् दुःख होता है। इसके अनन्तर मनुष्य युवावस्थामें दुःखरूपी कामनाओंका भोग करता है॥ २२-२३ ॥

[हे युधिष्ठिर!] अनेक प्रकारके कार्यभारोंसे तथा दिनोंके गमनागमनसे पुरुषकी सारी आयु इसी प्रकार नष्ट हो जाती है और मनुष्यको उसका ज्ञान नहीं रहता॥ २४॥

अन्त समयमें जब पुरुषकी मृत्यु होती है, उस समय उसे इससे भी अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। इसके बाद भी अज्ञानी मनुष्य अनेक प्रकारके नरकोंकी पीड़ा प्राप्त करते हैं॥ २५ ॥

इसलिये यह सब असत्य है, आप सत्यका आचरण कीजिये। जिस प्रकार भी शिवजी सन्तुष्ट हों, उसी प्रकारका कार्य मनुष्यको करना चाहिये॥ २६ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उन सभी भाइयोंने अनेक प्रकारकी वार्ताओं तथा मनोरथोंसे समय बिताना प्रारम्भ किया॥ २७ ॥

कठिन पहाड़ी मार्गोंसे जाते हुए दृढ़ व्रतवाले अर्जुन भी एक यक्षको प्राप्तकर उसीके साथ अनेक डाकुओंका संहार करते हुए मनमें हर्षित हो उत्तम [इन्द्रकील] पर्वतपर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने गंगाके समीप

एक सुन्दर स्थानको प्राप्त किया, जो स्वर्गसे भी उत्तम तथा अशोकवनसे युक्त था, वहींपर वे बैठ गये। इसके बाद स्वयं स्नान करके श्रेष्ठ गुरुको नमस्कारकर उन्होंने यथोपदिष्ट वेश धारण किया और इन्द्रियोंको वशमें करके एकाग्रचित्त हो [तपस्याके लिये] स्थित हो गये। उस समय वे अत्यन्त सुन्दर समसूत्रयुक्त पार्थिव शिवलिंगका निर्माण करके उसके आगे [आसनस्थ होकर] उत्तम तेजोराशि [शिवजीका] ध्यान करने लगे॥ २८—३२॥

इस प्रकार अर्जुन तीनों समय स्नान करके बारंबार अनेक प्रकारसे शिवजीकी पूजा करते हुए उपासनामें तत्पर हो गये॥ ३३॥

इसके बाद उस समय उनके शिरोभागसे निकले हुए तेजको देखकर इन्द्रके अनुचर भयभीत हो गये और सोचने लगे कि यह इस स्थानपर कब आ गया?॥ ३४॥

उन्होंने पुनः अपने मनमें विचार किया कि यह समाचार इन्द्रसे निवेदन करना चाहिये। परस्पर ऐसा कहकर वे शीघ्र ही इन्द्रके समीप गये॥ ३५॥

चर बोले—हे देवेश! कोई देवता, ऋषि, सूर्य अथवा अग्निदेव इस वनमें घोर तप कर रहे हैं, हमलोग उन्हें नहीं जानते। उनके तेजसे सन्तप्त होकर हमलोग आपके पास आये हैं। हमने उस चरित्रको आपसे कह दिया, अब जैसा उचित हो, आप वैसा कीजिये॥ ३६-३७॥

नन्दीश्वर बोले—दूतोंके ऐसा कहनेपर इन्द्रने अपने पुत्र [अर्जुन]-का अभिप्राय जानकर पर्वतरक्षकोंको विदाकर स्वयं वहाँ जानेका विचार किया॥ ३८॥

हे विप्रेन्द्र! वे शचीपति इन्द्र ब्रह्मचारी वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर उनकी परीक्षाके लिये वहाँ पहुँचे। तब उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने उनकी पूजा की और आगे खड़े होकर स्तुति करके उनसे पूछा कि इस समय आप कहाँसे आये हैं, [कृपया] यह बताइये? तब उनके द्वारा प्रीतिपूर्वक इस प्रकार कहे जानेपर अर्जुनके धैर्यके परीक्षणार्थ देवराज इन्द्र प्रतिप्रश्न करने लगे॥ ३९—४१॥

ब्राह्मण बोले—हे तात! तुम इस समय युवावस्थामें तप क्यों कर रहे हो? क्या तुम्हारी यह तपस्या सर्वथा मुक्तिके लिये है अथवा विजयके लिये है?॥ ४२॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार पूछे जानेपर अर्जुनने अपना सारा समाचार कह सुनाया। तब उन ब्राह्मणने पुनः यह वचन कहा—॥ ४३॥

ब्राह्मण बोले—हे वीर! तुम क्षात्रधर्ममें स्थित होकर सुख पानेकी इच्छासे जो तप कर रहे हो, वह उचित नहीं है। हे कुरुश्रेष्ठ! क्षत्रिय तो मुक्तिहेतु तप करता है। हे श्रेष्ठ! इन्द्र सुख देनेवाले [देवता] हैं, वे मुक्ति नहीं दे सकते; इसलिये तुम्हें [इस सकाम तपको छोड़कर] सर्वथा श्रेष्ठ तप करना चाहिये॥ ४४-४५॥

नन्दीश्वर बोले—उनके इस वचनको सुनकर दृढ़व्रत एवं विनयी अर्जुनने क्रोध किया और उनका निरादर करते हुए कहा—॥ ४६॥

अर्जुन बोले—मैं न तो राज्यके लिये और न तो मुक्तिके लिये तप कर रहा हूँ। तुम ऐसा क्यों बोल रहे हो? मैं व्यासजीकी आज्ञासे इस प्रकारका तप कर रहा हूँ। हे ब्रह्मचारिन्! अब यहाँसे [शीघ्र] चले जाओ, मुझे अपने संकल्पसे मत गिराओ। तुझ ब्रह्मचारीका यहाँ क्या प्रयोजन है?॥ ४७-४८॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहे जानेपर वे [इन्द्रदेव] प्रसन्न हो उठे और [वज्र आदि] अपने उपस्करणोंसे युक्त अद्भुत तथा मनोहर अपना रूप उन्होंने दिखाया॥ ४९॥



तब इन्द्रके रूपको देखकर अर्जुन लज्जित हो उठे।

इसके बाद उन्हें आश्वस्त करके इन्द्रने पुनः यह वचन कहा— ॥ ५० ॥

इन्द्र बोले—हे तात! हे धनंजय! हे महामते! तुम्हारा जो भी अभिलषित हो, वह वर मुझसे माँगो। तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। तब इन्द्रके उस वचनको सुनकर अर्जुन बोले—हे तात! हर प्रकारसे शत्रुओंसे पीड़ित मुझे विजय प्रदान करें॥ ५१-५२ ॥

शक्र बोले—[हे तात!] दुर्योधन आदि तुम्हारे शत्रु बड़े बलवान् हैं और द्रोण, भीष्म एवं कर्ण—ये सब निश्चय ही [युद्धमें] दुर्जय हैं॥ ५३ ॥

साक्षात् रुद्रका अंश द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तो अत्यन्त दुर्जय है। वे सभी (भीष्म, द्रोण आदि) मुझसे भी असाध्य हैं; तो भी अपने हितकी बात सुनो॥ ५४ ॥

हे वीर! इस (अश्वत्थामा)-पर विजय प्राप्त करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है; केवल शिव ही समर्थ हैं, इसलिये अब तुम शिव-मन्त्रका जप करो॥ ५५ ॥

सभी लोकोंके स्वामी, चराचरपति, स्वराट् और भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले शंकर सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। ब्रह्मा आदि [देवश्रेष्ठ], सबको वर देनेवाले विष्णु, मैं [स्वयं इन्द्र], अन्य [देवगण] तथा विजयकी अभिलाषावाले दूसरे लोग—ये सभी भगवान् शिवकी उपासना करते हैं॥ ५६-५७ ॥

हे भारत! आजसे इस मन्त्रका जप छोड़कर पार्थिव-विधानसे नानाविध उपचारोंके द्वारा तन्मय होकर भक्तिभावसे शिवजीकी आराधना करो। इस प्रकार [पार्थिवार्चन तथा] ध्यानके द्वारा तुमको अचल सिद्धि इसी समय प्राप्त होगी, इसमें सन्देह न करो॥ ५८-५९ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर इन्द्रने अपने सभी सेवकोंको बुलाकर कहा कि तुमलोग सावधान होकर इनकी रक्षा करनेके लिये सदा यहाँ रहो। इसके बाद इन्द्रने अपने अनुचरोंको अर्जुनकी रक्षा आदिका आदेश देकर वात्सल्यपूर्वक अर्जुनसे पुनः कहा— ॥ ६०-६१ ॥

इन्द्र बोले—हे परन्तप! हे भद्र! तुम कभी भी प्रमादपूर्वक राज्य मत करना; यह विद्या तुम्हारे कल्याणके लिये होगी। साधकको सदा धैर्य धारण करना चाहिये। रक्षक तो शिवजी हैं ही। वे तुमको सम्पत्तियोंके साथ फल (मोक्ष) भी प्रदान करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६२-६३ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार अर्जुनको वरदान देकर इन्द्र शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए अपने भवनको चले गये॥ ६४ ॥

पराक्रमी अर्जुन भी सुरेश्वरको प्रणामकर संयतचित्त होकर शिवजीको उद्देश्य करके उसी प्रकारका तप करने लगे॥ ६५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातावतारवर्णन-प्रसंगमें अर्जुनका तपवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८ ॥

उनतालीसवाँ अध्याय

मूक नामक दैत्यके वधका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार व्यासजीने जैसा कहा था, उसी प्रकार अर्जुन विधिवत् स्नान, न्यासादि करके उत्तम भक्तिसे शिवका ध्यान करने लगे॥ १ ॥

वे एक श्रेष्ठ मुनिके समान एक पैरके तलवेपर स्थित होकर अपनी एकाग्र दृष्टि सूर्यमें लगाकर विधिपूर्वक शिवके मन्त्रका जप खड़े-खड़े करने लगे॥ २ ॥

वे मनसे शिवका स्मरण करते हुए तथा शिवजीके सर्वोत्तम पंचाक्षरमन्त्रका जप करते हुए प्रीतिपूर्वक तप करने लगे॥ ३ ॥

उनके तपका तेज ऐसा था कि देवता भी आश्चर्यचकित हो गये, फिर वे शिवजीके समीप गये और सावधान होकर कहने लगे— ॥ ४ ॥

देवता बोले—हे सर्वेश! एक मनुष्य आपको प्रसन्न करनेके लिये तप कर रहा है। अतः हे प्रभो! यह मनुष्य जो कुछ चाहता है, उसे आप क्यों नहीं दे देते हैं?॥ ५ ॥

नन्दीश्वर बोले—तब ऐसा कहकर चिन्ताग्रस्त वे देवगण शिवजीकी अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे। वे उनके चरणोंपर दृष्टि लगाकर वहीं स्थित हो गये॥ ६॥

तब उदारबुद्धिवाले महाप्रभु शिव उनका वचन सुनकर हँस करके प्रसन्नचित्त होकर देवताओंसे यह वचन कहने लगे—॥ ७॥

शिवजी बोले—हे देवताओ! आप लोगोंकी बात निःसन्देह सत्य है। अब आपलोग अपने-अपने स्थानको जाइये; मैं आपलोगोंका कार्य सर्वथा करूँगा; इसमें संशय नहीं है॥ ८॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर देवताओंको पूर्ण विश्वास हो गया और वहाँसे लौटकर वे अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ९॥

हे विप्रेन्द्र! इसी बीच दुरात्मा तथा मायावी दुर्योधनके द्वारा अर्जुनके प्रति भेजा गया मूक नामक दैत्य शूकरका रूप धारणकर वहाँ आया, जहाँ अर्जुन स्थित थे। वह पर्वतोंके शिखरोंको तोड़ता हुआ, अनेक वृक्षोंको उखाड़ता हुआ तथा विविध प्रकारके शब्द करता हुआ बड़े वेगसे उसी मार्गसे जा रहा था॥ १०—१२॥

उस समय अर्जुन भी मूक नामक दैत्यको देखकर शिवके चरणकमलोंका स्मरणकर [अपने मनमें] विचार करने लगे॥ १३॥

अर्जुन बोले—यह कौन है? कहाँसे आ रहा है? यह तो बड़ा क्रूर कर्म करनेवाला दिखायी दे रहा है! निश्चय ही यह मेरा अनिष्ट करनेके लिये मेरी ओर आ रहा है॥ १४॥

मेरे मनमें तो यह आ रहा है कि यह शत्रु ही है; इसमें सन्देह नहीं है। मैंने इससे पूर्व अनेक दैत्य-दानवोंका संहार किया है। उन्हींका कोई सम्बन्धी अपना वैर साधनेके लिये [मेरी ओर] आ रहा है अथवा यह दुर्योधनका कोई हितकारी मित्र है॥ १५-१६॥

जिसके देखनेसे अपना मन प्रसन्न हो, वह निश्चय ही हितैषी होता है और जिसके देखनेसे मनमें व्याकुलता उत्पन्न हो, वह अवश्य ही शत्रु होता है। सदाचारसे कुलका, शरीरसे भोजनका, वचनके द्वारा शास्त्रज्ञानका तथा नेत्रके द्वारा स्नेहका पता लग जाता है॥ १७-१८॥

आकार, गति, चेष्टा, सम्भाषण एवं नेत्र तथा मुखके विकारसे मनुष्यके अन्तःकरणकी बात ज्ञात हो जाती है। उज्ज्वल, सरस, टेढ़ा और लाल—ये चार प्रकारके नेत्र कहे गये हैं; विद्वानोंने उनका पृथक्-पृथक् भाव बताया है॥ १९-२०॥

मित्रके मिलनेपर उज्ज्वल, पुत्रको देखनेपर सरस, स्त्रीके मिलनेपर वक्र तथा शत्रुके देखनेपर नेत्र लाल हो जाते हैं। किंतु इसे देखनेपर तो मेरी सारी इन्द्रियाँ कलुषित हो गयी हैं। अतः यह अवश्य ही मेरा शत्रु है, इसका वध कर देना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है॥ २१-२२॥

मेरे गुरुका यह कथन भी है—हे राजन्! तुम दुःख देनेवालेका सर्वथा वध कर देना, इसमें विचार नहीं करना चाहिये। निस्सन्देह इसीलिये तो ये आयुध भी हैं। इस प्रकार विचारकर अर्जुन [धनुषपर] बाण चढ़ाकर खड़े हो गये॥ २३-२४॥

इसी बीच अर्जुनकी रक्षाके लिये एवं उनकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये भक्तवत्सल भगवान् शंकर अपने गणोंके सहित अत्यन्त अद्भुत सुशिक्षित भीलका रूप धारणकर उस दैत्यका विनाश करनेके लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। कच्छ (लाँग-काछ) लगाये हुए, लताओंसे अपने केशोंको बाँधे हुए, शरीरपर श्वेत वर्णकी रेखा अंकित किये हुए, धनुष-बाण धारण किये हुए तथा पीठपर बाणोंका तरकस धारण किये हुए वे गणोंसहित वहाँ गये। वे शिवजी भीलराज बने हुए थे॥ २५—२८॥

वे शिवजी भील सेनाके अधिपति होकर कोलाहल करते हुए निकले, उसी समय शूकरके गरजनेकी ध्वनि दसों दिशाओंमें सुनायी पड़ी॥ २९॥

तब उस वनचारी शूकरके [घोर घर्घर] शब्दसे अर्जुन व्याकुल हो गये, साथ ही जो पर्वत आदि थे, वे सभी उन शब्दोंसे व्याकुल हो उठे॥ ३०॥

अहो! यह क्या है? कहीं ये कल्याणकारी शिवजी ही तो नहीं हैं, जो यहाँ पधारे हैं; क्योंकि मैंने ऐसा पूर्वमें सुना था, श्रीकृष्णने भी मुझसे कहा था, व्यासजीने भी ऐसा ही कहा था और देवगणोंने भी स्मरणकर यही बात कही थी कि शिवजी ही सभी प्रकारका मंगल करनेवाले

तथा सुख देनेवाले कहे गये हैं॥ ३१-३२॥

वे मुक्ति देनेके कारण मुक्तिदाता कहे गये हैं; इसमें सन्देह नहीं है। उनके नामस्मरणमात्रसे निश्चितरूपसे मनुष्योंका कल्याण होता है। सब प्रकारसे इनका भजन करनेवालोंको स्वप्नमें भी दु:ख नहीं होता है। यदि कभी होता है, तो उसे कर्मजन्य समझना चाहिये॥ ३३-३४॥

[शिवजीके अनुग्रहसे तो] प्रबल होनहार भी अवश्य कम हो जाता है—ऐसा जानना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है अथवा विशेषरूपसे प्रारब्धका दोष समझना चाहिये और शिवजी स्वयं अपनी इच्छासे कभी बहुत अथवा कम उस भोगको भुगताकर उस दुर्भोग्यका निवारण करते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ३५-३६॥

वे विषको अमृत एवं अमृतको विष बना देते हैं। वे समर्थ हैं, जैसा चाहते हैं, वैसा करते हैं, भला! उन सर्वसमर्थको कौन मना कर सकता है? अन्य पुरातन भक्तोंके द्वारा इस प्रकार विचार किये जानेके कारण भावी भक्तोंको भी सदा शिवजीमें अपना मन स्थिर रखना चाहिये॥ ३७-३८॥

लक्ष्मी रहे या चली जाय, मृत्यु भले ही सन्निकट और समक्ष खड़ी हो, लोग निन्दा करें अथवा स्तुति करें, [दु:ख बना रहे या] दु:खनाश हो जाय [यह इष्ट-अनिष्टात्मक द्वन्द्व तो] पुण्य तथा पापके कारण उत्पन्न होता है, [इसमें शिव निमित्त नहीं हैं] वे तो सर्वदा अपने भक्तोंको सुख ही देते हैं। कभी-कभी वे अपने भक्तोंकी परीक्षा करनेके लिये उनको दु:ख भी देते हैं; किंतु दयालु होनेके कारण वे अन्तमें सुख देनेवाले ही होते हैं। जैसे सुवर्ण अग्निमें तपानेपर शुद्ध होता है, उसी प्रकार भक्त भी तपानेसे निखरते हैं॥ ३९—४१॥

पूर्वकालमें मैंने मुनियोंके मुखसे ऐसा ही सुना है, इसलिये मैं उनके भजनसे ही उत्तम सुख प्राप्त करूँगा, जबतक अर्जुन इस प्रकारका विचार कर ही रहे थे, तबतक शरसन्धानका लक्ष्य वह शूकर वहाँ आ पहुँचा। उधर, [भीलवेषधारी] शिवजी भी शूकरका पीछा करते हुए आ पहुँचे। उस समय उन दोनोंके बीचमें वह शूकर अद्भुत शिखरके समान दिखायी पड़ रहा था॥ ४२—४४॥

अर्जुनने शिवका माहात्म्य कहा था, इसलिये भक्तवत्सल शिव उनकी रक्षा करनेके लिये वहाँ पहुँच गये॥ ४५॥

इसी समय उन दोनोंने बाण चलाया; शिवजीका बाण शूकरकी पूँछमें तथा अर्जुनका बाण मुखमें लगा। शिवजीका बाण पूँछमें घुसकर मुखसे निकलकर शीघ्र ही पृथ्वीमें विलीन गया और अर्जुनका बाण [मुखमें प्रविष्ट होकर] पूँछसे निकलकर पार्श्वभागमें गिर पड़ा। वह शूकररूप दैत्य उसी क्षण मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४६—४८॥



देवता परम हर्षित हो गये और पुष्पवृष्टि करने लगे। उन्होंने बार-बार प्रणामकर जय-जयकार करते हुए शिवजीकी स्तुति की॥ ४९॥

उस दैत्यके क्रूर रूपको देखकर शिवजी प्रसन्नचित्त हो गये और अर्जुनको भी सुख प्राप्त हुआ। तब अर्जुनने विशेषरूपसे प्रसन्न मनसे कहा—अरे, यह महादैत्य अत्यन्त अद्भुत रूप धारणकर मेरे वधके लिये आया था, किंतु शिवजीने मेरी रक्षा की। शिवजीने ही आज मुझे बुद्धि प्रदान की; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०—५२॥

ऐसा विचारकर अर्जुनने 'शिव-शिव' कहकर उनका यशोगान किया और उन्हें प्रणाम किया तथा बार-बार उनकी स्तुति की॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके किरातावतारवर्णनमें मूकदैत्यवध नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

भीलस्वरूप गणेश्वर एवं तपस्वी अर्जुनका संवाद

नन्दिकेश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब परमात्मा शिवकी भक्तवत्सलतासे युक्त तथा उनकी दृढ़ भक्तिसे भरी हुई लीला सुनिये॥ १॥

उसके बाद उन शिवजीने अपना बाण लानेके लिये शीघ्र ही अपने सेवकको वहाँ भेजा और उसी समय अर्जुन भी अपना बाण लेनेके लिये वहाँ पहुँचे। एक ही समय शिवका गण तथा अर्जुन बाण लेने हेतु वहाँ उपस्थित हुए, तब अर्जुनने उसे धमकाकर अपना बाण ले लिया॥ २-३॥

तब शिवजीका गण उनसे कहने लगा—हे मुनिसत्तम! यह बाण मेरा है, आप इसे क्यों ले रहे हैं, आप इसे छोड़ दीजिये। हे मुनिश्रेष्ठ! भीलराजके उस गणद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन अर्जुनने शिवजीका स्मरण करके उससे कहा—॥ ४-५॥

अर्जुन बोले—हे वनेचर! बिना जाने तुम ऐसा क्यों बोल रहे हो? तुम मूर्ख हो; यह बाण अभी मैंने चलाया था, फिर यह तुम्हारा किस प्रकार हो सकता है? इस बाणके पिच्छ रेखाओंसे चित्रित हैं तथा इसमें मेरा नाम अंकित है। यह तुम्हारा कैसे हो गया? निश्चय ही तुम्हारा [यह हठी] स्वभाव कठिनाईसे छूटनेवाला है॥ ६-७॥

नन्दीश्वर बोले—उनकी यह बात सुनकर गणेश्वर उस भीलने महर्षिरूपधारी उन अर्जुनसे यह वचन कहा—अरे तपस्वी! सुनो, तुम तप नहीं कर रहे हो, तुम केवल वेषसे तपस्वी हो, यथार्थरूपमें [तपोनिरत व्यक्ति] छल नहीं करते॥ ८-९॥

तपस्वी व्यक्ति असत्य भाषण कैसे कर सकता है? तुम मुझ सेनापतिको यहाँ अकेला मत समझो॥ १०॥

मेरे स्वामी भी वनके बहुत-से भीलोंके साथ यहाँ विद्यमान हैं। वे विग्रह तथा अनुग्रह करनेमें सब प्रकारसे समर्थ भी हैं। इस समय जिस बाणको तुमने लिया है, वह उनका ही है, तुम इस बातको अच्छी तरह जान लो कि यह बाण तुम्हारे पास कभी नहीं रहेगा॥ ११-१२॥

हे तापस! [तुम असत्य बोलकर] अपनी तपस्याका फल क्यों नष्ट कर रहे हो, क्योंकि चोरीसे, छलसे, किसीको व्यथित करनेसे, अहंकारसे तथा सत्यको छोड़नेसे व्यक्ति अपनी तपस्यासे रहित हो जाता है। यह बात मैंने यथार्थ रूपसे सुनी है; तब तुम्हें इस तपस्याका फल कैसे मिलेगा?॥ १३-१४॥

इसलिये यदि तुम बाणका त्याग नहीं करोगे, तो कृतघ्न कहे जाओगे; क्योंकि मेरे स्वामीने निश्चितरूपसे तुम्हारी ही रक्षाके लिये यह बाण [शूकरपर] चलाया था। उन्होंने तुम्हारे ही शत्रुको मारा है और तुमने उनके बाणको रख लिया; अतः तुम अति कृतघ्न हो, तुम्हारी यह तपस्या अशुभ करनेवाली है॥ १५-१६॥

जब तुम [तपस्यामें निरत हो] सत्यभाषण नहीं कर रहे हो, तब तुम इस तपसे सिद्धिकी अपेक्षा कैसे रखते हो? यदि तुम्हें बाणकी आवश्यकता हो, तो मेरे स्वामीसे माँग लो॥ १७॥

वे ऐसे बहुत-से बाण देनेमें समर्थ हैं। वे हमारे राजा हैं, फिर तुम उनसे क्यों नहीं माँग लेते हो? तुम्हें तो उनका उपकार मानना चाहिये, उलटे अपकार कर रहे हो, इस समय तुम्हारा ऐसा व्यवहार उचित प्रतीत नहीं होता, तुम इस चपलताका त्याग करो॥ १८-१९॥

नन्दीश्वर बोले—तब उसकी यह बात सुनकर पृथापुत्र अर्जुन क्रोध करके पुनः शिवजीका स्मरण करते हुए मर्यादित वाक्य कहने लगे—॥ २०॥

अर्जुन बोले—हे भील! मैं जो कहता हूँ, तुम उसे सुनो। हे वनेचर! जैसी तुम्हारी जाति है और जैसे तुम हो, मैं उसे [अच्छी तरह] जानता हूँ॥ २१॥

मैं राजा हूँ और तुम चोर हो। दोनोंका युद्ध किस प्रकार उचित होगा? मैं बलवानोंसे युद्ध करता हूँ, अधमोंसे कभी नहीं। इसलिये तुम्हारा स्वामी भी तुम्हारे समान ही होगा। देनेवाले तो हम कहे गये हैं, तुम वनेचर तो चोर हो। मैं भीलराजसे किस प्रकार अयुक्त याचना कर सकता हूँ; हे वनेचर! तुम्हीं मुझसे बाण क्यों नहीं माँग लेते हो?॥ २२—२४॥

मैं वैसे बहुत-से बाण तुम्हें दे सकता हूँ, मेरे पास बहुत-से बाण हैं। राजा होकर किससे याचना करे अथवा माँगनेपर न दे, तो कैसा राजा?॥ २५॥

हे वनेचर! मैं क्या कहूँ? मैं बहुत-से ऐसे बाण दे सकता हूँ; यदि तुम्हारे स्वामीको मेरे बाणोंकी अपेक्षा है तो वह आकर मुझसे क्यों नहीं माँगता?॥ २६॥

तुम्हारा स्वामी यहाँ आये, वहाँसे क्यों बकवास कर रहा है? यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करे और मुझे युद्धमें पराजित करके तुम्हारा सेनापति भीलराज इस बाणको लेकर सुखसे अपने घर चला जाय, वह देर क्यों कर रहा है?॥ २७-२८॥

नन्दीश्वर बोले—महेश्वरकी कृपासे उत्तम बल प्राप्त किये हुए अर्जुनकी इस प्रकारकी बात सुनकर उस भीलने कहा—॥ २९॥

भील बोला—तुम ऋषि नहीं हो, मूर्ख हो, तुम अपनी मृत्यु क्यों चाह रहे हो, बाणको दे दो और सुखपूर्वक रहो, अन्यथा कष्ट प्राप्त करोगे॥ ३०॥

नन्दीश्वर बोले—शिवकी श्रेष्ठ शक्तिसे शोभित होनेवाले भीलकी बात सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने शिवजीका स्मरण करते हुए उस भीलसे कहा—॥ ३१॥

अर्जुन बोले—हे वनेचर! हे भील! मेरी बातको भलीभाँति सुनो; जब तुम्हारा स्वामी यहाँ आयेगा, तब मैं उसको इसका फल दिखाऊँगा॥ ३२॥

तुम्हारे साथ युद्ध करना मुझे शोभा नहीं देता, अतः तुम्हारे स्वामीके साथ युद्ध करूँगा; क्योंकि सिंह और गीदड़का युद्ध उपहासास्पद होता है॥ ३३॥

हे भील! तुमने मेरी बात सुन ली, अब [आगे] मेरा महाबल भी देखोगे। अब तुम अपने स्वामीके पास जाओ और जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो॥ ३४॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह भील वहाँ गया, जहाँ शिवावतार भीलराज स्थित थे। तदुपरान्त उसने अर्जुनका सारा वचन भीलस्वरूपी परमात्मासे विस्तारपूर्वक निवेदन किया॥ ३५-३६॥

किरातेश्वर शिव उसका वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए, फिर भीलरूपधारी सदाशिव अपनी सेनाके साथ [जहाँ अर्जुन थे,] वहाँ आये॥ ३७॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुन भी किरात सेनाको देखकर धनुष-बाण लेकर सामने आ गये॥ ३८॥

इसके बाद किरातेश्वरने पुनः भरतवंशीय महात्मा अर्जुनके पास दूत भेजा और उसके मुखसे अपना सन्देश उन्हें कहलवाया॥ ३९॥

किरात बोला—हे दूत! तुम जाकर अर्जुनसे कहो, हे तपस्विन्! तुम मेरी इस विशाल सेनाको देखो, मेरा बाण मुझे लौटा दो और अब चले जाओ। स्वल्प कार्यके लिये इस समय क्यों मरना चाहते हो?॥ ४०॥

तुम्हारे भाई दुखी होंगे, इससे भी अधिक तुम्हारी स्त्री दुखी होगी। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे हाथसे आज पृथ्वी भी चली जायगी॥ ४१॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनकी रक्षाके लिये और उनकी दृढ़ताकी परीक्षाके लिये किरातरूपधारी परमेश्वर शिवने इस प्रकार कहा। उसके ऐसा कहनेपर शंकरके उस दूतने अर्जुनके पास जाकर सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक निवेदन किया॥ ४२-४३॥

उसकी बात सुनकर अर्जुनने पुनः आये हुए उस दूतसे कहा—हे दूत! तुम अपने स्वामीसे जाकर कहो कि इसका परिणाम विपरीत होगा। यदि मैं तुम्हें अपना बाण दे दूँगा, तो मैं कुलकलंकी हो जाऊँगा; इसमें सन्देह नहीं है। भले ही हमारे भाई दुखी हों, भले ही हमारी विद्या नष्ट हो जाय, किंतु भीलराज मुझसे युद्ध करनेके लिये अवश्य यहाँ आयें। सिंह गीदड़से डर जाय, यह बात मैंने कभी नहीं सुनी, इसी प्रकार किसी वनेचरसे राजा डरे, ऐसा नहीं हो सकता॥ ४४—४७॥

नन्दीश्वर बोले—पाण्डुपुत्र अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर भीलने अपने स्वामीके पास जाकर अर्जुनद्वारा कहे गये सारे वृत्तान्तको विशेष रूपसे वर्णित किया। तब इस वृत्तान्तको सुनकर किरातवेषधारी महादेव सेनासहित अर्जुनके पास आये॥ ४८-४९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके किरातावतारवर्णनमें भील-अर्जुन-संवाद नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके किरातेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर बोले—सेनाके साथ किरातेश्वरको युद्धके लिये आया देखकर शिवजीका ध्यान करते हुए अर्जुनने वहाँ जाकर उसके साथ भयंकर युद्ध किया॥ १॥

उस भीलराजने अपने अनेक गणों तथा तीक्ष्ण शस्त्रोंके द्वारा अर्जुनको अत्यधिक पीड़ित किया। तब उनसे पीड़ित हुए अर्जुन अपने इष्टदेव शिवका स्मरण करने लगे। अर्जुनने शत्रुओंके सारे बाण काट डाले। जब गणोंने युद्ध करना छोड़ दिया, तो अर्जुनने [किरातवेषधारी] शिवजीको ललकारा॥ २-३॥

अर्जुनसे पीड़ित गण दसों दिशाओंमें भागने लगे। यद्यपि किरातपतिने उन गणस्वामियोंको ऐसा करनेसे रोका, किंतु वे अपने स्वामीके बुलानेपर भी नहीं लौटे। तब महाबली एवं पराक्रमी अर्जुन और शिवजीने नाना



प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे परस्पर युद्ध किया॥ ४-५॥

यद्यपि शिवजी दया करते हुए अर्जुनके पास गये, किंतु अर्जुनने निर्दयतापूर्वक शिवपर प्रहार किया॥ ६॥

तदनन्तर शिवजीने अर्जुनके समस्त शस्त्र-अस्त्रोंको काट डाला और कवचोंको भी छिन्न-भिन्न कर दिया; केवल उनका शरीर शेष रह गया॥ ७॥

तब धैर्यशाली उन अर्जुनने भयसे व्यथित होते हुए भी शिवजीका स्मरणकर वाहिनीपतिके साथ मल्लयुद्ध करना प्रारम्भ किया। उन दोनोंके संग्रामको देखकर सागरसहित पृथ्वी काँप रही थी और देवता दुखी हो रहे थे कि अब और क्या होनेवाला है?॥ ८-९॥

इसी बीचमें शिवजी ऊपर जाकर आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे और अर्जुन भी उसी प्रकार आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे। इस प्रकार शिव एवं अर्जुन दोनों ही उड़-उड़कर आकाशमें जब युद्ध कर रहे थे, तब उस अद्भुत युद्धको देखकर देवगण विस्मित हो रहे थे॥ १०-११॥

उसके पश्चात् अर्जुनने उन्हें अपनेसे अधिक बलवान् जानकर शिवजीके चरणोंका स्मरणकर तथा उनके ध्यानसे विशेष बल प्राप्तकर भीलके दोनों चरणोंको पकड़ लिया। ज्यों ही चरण पकड़कर अर्जुन उन्हें आकाशमें घुमाने लगे, तभी लीला करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् शिव हँस पड़े॥ १२-१३॥

हे मुने! भक्तके अधीन रहनेवाले शिवजीने अर्जुनको अपना दास्य प्रदान करनेके लिये जो यह चरित्र किया, वह अन्यथा कैसे हो सकता है। इसके बाद भक्तवश्यताके कारण शिवजीने हँसकर अपना अद्भुत सुन्दर रूप अर्जुनके सामने प्रकट किया॥ १४-१५॥

हे पुरुषोत्तम! वेद-शास्त्रोंमें तथा पुराणोंमें उनके जिस रूपका वर्णन है और व्यासजीने अर्जुनको ध्यानके लिये जिस रूपका उपदेश दिया था, जिसके दर्शनमात्रसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। [उसी प्रकारका रूप धारणकर शिवजी प्रकट हुए] अर्जुन जिस रूपका ध्यान करते थे, उसी सुन्दर रूपको अपने सामने प्रत्यक्ष प्रकट देखकर वे अत्यन्त विस्मित तथा लज्जित हो उठे और मनमें कहने लगे—अहो! यह तो परम कल्याणकारी वे शिवजी ही हैं, जिन्हें मैंने अपना स्वामी स्वीकार किया है। ये तो स्वयं त्रिलोकीके साक्षात् ईश्वर हैं; यह मैंने आज क्या कर डाला!॥ १६—१८॥

निश्चय ही भगवान् शिवकी माया बड़ी बलवती है, जो बड़े-बड़े मायाविदोंको मोह लेती है। इन्होंने

अपना रूप छिपाकर मेरे साथ इस प्रकारका छल क्यों किया; निश्चय ही मैं इनके द्वारा छला गया हूँ॥ १९॥

इस प्रकार अपने मनमें विचारकर अर्जुनने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर और खिन्न मनसे भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा—॥ २०॥

अर्जुन बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे सर्वेश! मैं आपका अपराधी हूँ, मुझे क्षमा कीजिये। हे प्रभो! इस समय आपने यह क्या किया, जो अपना रूप छिपाकर मुझसे छल किया। हे प्रभो! आप-जैसे स्वामीसे युद्ध करते हुए मुझे लज्जा नहीं आयी; मुझको धिक्कार है!॥ २१-२२॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुन पश्चात्ताप करने लगे और तत्काल महाप्रभु शिवजीके चरणोंमें शीघ्र गिर पड़े। तदनन्तर भक्तवत्सल महेश्वरने प्रसन्न होकर अर्जुनको अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया और उनसे कहा—॥ २३-२४॥

शिवजी बोले—हे पार्थ! तुम खेद मत करो, तुम मेरे प्रिय भक्त हो; मैंने यह सारी लीला तुम्हारी परीक्षाके लिये की थी, तुम शोकका परित्याग कर दो॥ २५॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर प्रभु सदाशिवने स्वयं अपने हाथोंसे अर्जुनको उठाया और स्वामी [शिवजी]-के जैसे गुणोंवाले गणोंद्वारा उन [अर्जुन]-की लज्जा दूर करायी। उसके अनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शिव वीरोंमें माननीय पाण्डुपुत्र अर्जुनको प्रीतिसे पूर्णतः हर्षित करते हुए कहने लगे—॥ २६-२७॥

शिवजी बोले—हे पाण्डवश्रेष्ठ! हे पृथापुत्र अर्जुन! मैं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। मैंने तुम्हारे द्वारा आज किये गये प्रहारों एवं सन्ताड़नोंको अपनी पूजा मान ली है। आज यह सब मैंने अपनी इच्छासे किया है, इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, मुझे तुम्हारे लिये इस समय कुछ भी अदेय नहीं है, तुम जो चाहते हो, उसे माँग लो। मैंने शत्रुओंमें तुम्हारा यश तथा राज्य प्रतिष्ठित करनेके लिये [ही यह] कल्याणकर [कृत्य] किया है। तुम इस घटनाके लिये दुःख न मानो और अपनी सारी विकलताका त्याग करो॥ २८—३०॥

नन्दीश्वर बोले—प्रभु शंकरजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर अर्जुन सावधान होकर भक्तिपूर्वक शिवजीसे कहने लगे—॥ ३१॥

अर्जुन बोले—हे प्रभो! आप भक्तप्रिय हैं, आपकी इच्छाका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ। हे सदाशिव! आप कृपालु हैं [हर प्रकारसे भक्तोंपर दया करते हैं]॥ ३२॥

[नन्दीश्वर बोले—] इस प्रकार कहकर वे पाण्डुपुत्र अर्जुन महाप्रभु सदाशिवकी वेदसम्मत तथा सद्भक्तियुक्त स्तुति करने लगे॥ ३३॥

अर्जुन बोले—हे देवाधिदेव! आपको नमस्कार है। कैलासवासी आपको नमस्कार है, सदाशिव! आपको नमस्कार है, पाँच मुखवाले आपको नमस्कार है॥ ३४॥

जटा-जूटधारी आपको नमस्कार है, त्रिनेत्र आपको नमस्कार है, प्रसन्न स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। सहस्रमुख आपको नमस्कार है॥ ३५॥

हे नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। सद्योजातरूप आपके लिये नमस्कार है। हे वृषभध्वज! आपको नमस्कार है, वामभागमें पार्वतीको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। दस भुजावाले आपको नमस्कार है, परमात्मन्! आपको नमस्कार है, हाथमें डमरू तथा कपाल लेनेवाले आपको नमस्कार है, मुण्डमालाधारी आपको नमस्कार है॥ ३६-३७॥

शुद्ध स्फटिक तथा शुद्ध कर्पूरके समान उज्ज्वल गौर-वर्णवाले आपको नमस्कार है। पिनाक नामक धनुष एवं श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। व्याघ्र-चर्मका उत्तरीय तथा गजचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सर्पसे आवेष्टित अंगोंवाले तथा सिरपर गंगाको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३८-३९॥

सुन्दर पैरवाले आपको नमस्कार है। अरुणाभ चरणोंवाले आपको नमस्कार है। नन्दी आदि प्रमुख गणोंसे सेवित आपको नमस्कार है। गणेशरूप आपको नमस्कार है। कार्तिकेयके अनुगामी आपको नमस्कार है, भक्तोंको भक्ति देनेवाले तथा [मुमुक्षुओंको] मुक्ति देनेवाले आपको नमस्कार है॥ ४०-४१॥

गुणरहित आपको नमस्कार है, सगुणरूपधारी आपको नमस्कार है। अरूप, सरूप, सकल एवं अकल

आपको नमस्कार है। किरातरूप धारणकर मुझपर अनुग्रह करनेवाले, वीरोंसे प्रीतिपूर्वक युद्ध करनेवाले एवं [नटकी भाँति] अनेक प्रकारकी लीला दिखानेवाले आपको नमस्कार है॥ ४२-४३॥

इस त्रिलोकीमें जो भी रूप दिखायी देता है, वह आपका ही तेज कहा गया है। आप ज्ञानस्वरूप हैं और शरीरभेदसे रमण करते हैं। हे प्रभो! जिस प्रकार संसारमें पृथ्वीके रजकण, आकाशके तारे तथा वृष्टिकी बूँदें असंख्य हैं, उसी प्रकार आपके गुण भी असंख्य हैं॥ ४४-४५॥

हे नाथ! आपके गुणोंकी गणना करनेमें तो वेद भी असमर्थ हैं, मैं तो मन्दबुद्धि ही हूँ। आपके गुणोंका वर्णन कैसे करूँ? हे महेश्वर! आप जो हैं, सो हैं, आपको नमस्कार है। हे महेशान! मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हैं, अतः मुझपर कृपा कीजिये॥ ४६-४७॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर परम प्रसन्न हुए भगवान् सदाशिवने हँसकर अर्जुनसे फिर कहा—॥ ४८॥

शिवजी बोले—हे पुत्र! बारंबार कहनेसे क्या प्रयोजन, मेरी बात सुनो। तुम शीघ्र ही मुझसे वर माँगो, मैं तुम्हें वह सब कुछ दूँगा॥ ४९॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर अर्जुनने सदाशिवको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सिर झुका करके प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीसे कहा—॥ ५०॥

अर्जुन बोले—हे प्रभो! आप तो सबके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं, अतः आपसे क्या कहूँ। आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी मैं आपसे जो प्रार्थना करता हूँ, उसे सुनिये। आपके दर्शनसे शत्रुओंसे उत्पन्न होनेवाला जो मेरा संकट था, वह दूर हो गया। अब मैं जिस प्रकार इस लोकमें सर्वश्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करूँ, वैसा उपाय कीजिये॥ ५१-५२॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर विनम्र हो हाथ जोड़कर अर्जुन नमस्कार करके भक्तवत्सल भगवान् शिवके सन्निकट स्थित हो गये॥ ५३॥

स्वामी शिवजी भी पाण्डुपुत्र अर्जुनको इस प्रकार अपना परमभक्त जानकर बहुत सन्तुष्ट हो गये॥ ५४॥

उन्होंने प्रसन्न होकर सभीके लिये सर्वदा दुर्जेय अपना पाशुपत अस्त्र अर्जुनको प्रदान किया और यह वचन कहा—॥ ५५॥



शिवजी बोले—मैंने अपना यह महान् पाशुपत-अस्त्र तुम्हें प्रदान किया। [हे अर्जुन!] तुम इससे दुर्जेय हो जाओगे, तुम इस अस्त्रकी सहायतासे शत्रुओंपर विजय प्राप्त करो। मैं स्वयं श्रीकृष्णसे कहूँगा कि वे तुम्हारी सहायता करें। वे मेरे भक्त तथा मेरी आत्मा हैं और कार्य करनेमें सर्वथा समर्थ हैं॥ ५६-५७॥

हे भारत! अब तुम मेरे प्रभावसे निष्कण्टक राज्य करो और अपने भ्राता [युधिष्ठिर]-से सर्वदा नाना प्रकारका धर्माचरण कराते रहो॥ ५८॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन शिवने अर्जुनके सिरपर अपना हाथ रखा और उनसे पूजित होकर वे तत्काल अन्तर्धान हो गये और प्रसन्न मनवाले अर्जुन भी प्रभुसे श्रेष्ठ पाशुपतास्त्र प्राप्तकर भक्तिपूर्वक गुरुवर शिवजीका स्मरण करते हुए अपने आश्रमको चले गये॥ ५९-६०॥

जिस प्रकार शरीरमें पुनः प्राण आ जाता है, उसी प्रकार अर्जुनको आया देख [युधिष्ठिर आदि] सभी भाई प्रसन्न हो गये और पतिव्रता द्रौपदीको भी अर्जुनके दर्शनसे सुखकी प्राप्ति हुई॥ ६१॥

सभी पाण्डव परमात्मा शिवजीको प्रसन्न जानकर आनन्दित हो गये तथा अर्जुनसे सारा समाचार सुनकर

[भी उस वृत्तान्त-श्रवणसे] तृप्त नहीं हुए॥ ६२॥

उस समय उन महात्मा पाण्डवोंके आश्रममें उनका मंगल प्रदर्शित करनेके लिये चन्दनयुक्त फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ ६३॥

उन लोगोंने भगवान् शंकरको धन्य-धन्य कहते हुए आनन्दके साथ नमस्कार किया और अपने वनवासकी अवधिको समाप्त जानकर यह समझ लिया कि अब अवश्य ही हमलोगोंकी विजय होगी॥ ६४॥

इसी समय अर्जुनको आश्रमपर आया हुआ जानकर श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये आये और सारा वृत्तान्त जानकर हर्षित हुए [और कहने लगे—]॥ ६५॥

इसीलिये तो मैंने कहा था कि शंकर सभी दुःखोंको नष्ट करनेवाले हैं। मैं उनकी सेवा नित्य करता हूँ, आपलोग भी नित्य उनकी सेवा करें। [हे सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने किरातेश्वर नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया, उसको सुनकर अथवा सुनाकर भी मनुष्य अपने समस्त मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ ६६-६७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातेश्वरावतारवर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके द्वादश ज्योतिर्लिंगरूप अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वरजी बोले—[हे सनत्कुमार!] हे मुने! अब अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले परमात्मा शिवजीके ज्योतिर्लिंगरूप द्वादशसंख्यक अवतारोंको सुनिये॥ १॥

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ॐकारमें अमरेश्वर, हिमालयपर केदारेश्वर, डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वनाथ, गौतमीतटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुका-वनमें नागेश्वर, सेतुबन्धमें रामेश्वर एवं शिवालयमें घुश्मेश्वर*—[ये बारह शिवजीके ज्योतिर्लिंगस्वरूप अवतार हैं]॥ २—४॥

हे मुने! ये परमात्मा शिवके बारह ज्योतिर्लिंगावतार दर्शन तथा स्पर्शसे पुरुषोंका कल्याण करनेवाले हैं॥ ५॥

इन द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें प्रथम सोमनाथ नामक ज्योतिर्लिंग चन्द्रमाके दुःखका नाश करनेवाला है, उसके पूजनसे क्षय और कुष्ठ आदि रोगोंका विनाश होता है। यह सोमेश नामक शिवावतार सुन्दर सौराष्ट्रदेशमें लिंगरूपसे स्थित है, पूर्वकालमें चन्द्रमाने इसकी पूजा की थी॥ ६-७॥

वहींपर चन्द्रकुण्ड है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। बुद्धिमान् पुरुष वहाँ स्नान करनेमात्रसे सभी प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पा जाता है॥ ८॥

शिवजीके परमात्मस्वरूप महालिंग सोमेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त करता है॥ ९॥

हे तात! शिवका मल्लिकार्जुन नामक दूसरा अवतार श्रीशैलपर हुआ था, जो भक्तोंको मनोवांछित फल प्रदान करता है। हे मुने! वे भगवान् शिव कैलासपर्वतसे पुत्र [कार्तिकेय]-को देखनेके लिये अत्यन्त प्रीतिपूर्वक श्रीशैलपर गये और वहाँ लिंगरूपसे [भक्तोंके द्वारा] संस्तुत हुए॥ १०-११॥

हे मुने! उस द्वितीय ज्योतिर्लिंगकी पूजा करनेसे महान् सुखकी प्राप्ति होती है और अन्त समयमें वह निःसन्देह मुक्ति प्रदान करता है॥ १२॥

हे तात! शिवजीका तीसरा महाकाल नामक अवतार उज्जयिनीमें अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये हुआ था। पूर्वकालमें रत्नमाला [नामक स्थान]-पर निवास

---

* सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनः। उज्जयिन्यां महाकाल ओङ्कारे चामरेश्वरः॥
केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्याम्भीमशङ्करः। वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे॥
वैद्यनाथश्चिताभूमौ नागेशो दारुकावने। सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये॥ (श्रीशिवमहापुराण, शतरुद्रसंहिता ४२।२—४)

करनेवाला, वेदोक्त धर्मका विध्वंसक, सर्वनाशक, ब्राह्मण-द्वेषी दूषण नामक असुर उज्जयिनी गया। तब वेद नामक ब्राह्मणके पुत्रने शिवजीका ध्यान किया। तब [प्रकट हुए] उन शिवजीने उस असुरको हुंकारमात्रसे उसी समय भस्म कर दिया था॥ १३—१५॥

इस प्रकार उस दैत्यको मारकर देवगणोंसे प्रार्थित होकर अपने भक्तजनोंकी रक्षाके लिये वे महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे वहीं उज्जयिनीमें प्रतिष्ठित हुए। इस महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगके दर्शन तथा यत्नपूर्वक पूजनसे सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और अन्तमें उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है॥ १६-१७॥

परमात्मा शिवजीके द्वारा धारण किया गया परमैश्वर्यसम्पन्न चौथा अवतार ॐकारेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, जो भक्तोंको इच्छित फल देनेवाला है॥ १८॥

विन्ध्यके द्वारा भक्तिभावसे विधिपूर्वक पार्थिव लिंग स्थापित किया गया, जिससे विन्ध्यकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वे महादेव आविर्भूत हुए॥ १९॥

देवगणोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर शिवजी वहाँ दो रूपोंमें स्थित हो गये। [हे मुनीश्वर!] लिंगरूपसे स्थित हुए वे भक्तोंपर कृपा करनेवाले और भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं॥ २०॥

हे मुनीश्वर! प्रणवमें ओंकार नामसे स्थित शिव ओंकारेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं और पार्थिव लिंग परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, हे महामुने! इनके दर्शन तथा पूजन करनेसे भक्तोंको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार मैंने आपसे चतुर्थ स्थानीय ॐकारेश्वर तथा परमेश्वर ज्योतिर्लिंगोंका वर्णन किया॥ २१-२२॥

परमशिवका पाँचवाँ अवतार केदारेश नामवाला है, यह ज्योतिर्लिंगरूपसे केदारक्षेत्रमें स्थित है। हे मुने! विष्णुके जो नर-नारायण नामक अवतार हैं, उनके द्वारा तथा वहाँके निवासियोंद्वारा प्रार्थना किये जानेपर वे शिव हिमालयके केदार नामक स्थानपर स्थित हुए॥ २३-२४॥

उन दोनोंने ही इन केदारेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगकी पूजा की थी। ये केदारेश्वर नामक शिव दर्शन तथा अर्चनसे भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं॥ २५॥

हे तात! शिवजीका यह केदारसंज्ञक अवतार सर्वेश्वर होनेपर भी इस केदारखण्डका विशेषरूपसे स्वामी है, जो भक्तोंकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करनेवाला है। शिवजीका छठा ज्योतिर्लिंगावतार भीमशंकर नामसे प्रसिद्ध है। यह अवतार महान् लीला करनेवाला है और भीम नामक असुरका विनाशक है॥ २६-२७॥

इन्हीं भीमशंकरने भक्तोंको दु:ख देनेवाले [भीम नामक] अद्भुत दैत्यको मारकर कामरूप देशके सुदक्षिण नामक भक्त राजाकी रक्षा की थी॥ २८॥

इसलिये वे राजाद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिंगके रूपसे उस डाकिनी नामक स्थानमें स्वयं प्रतिष्ठित हुए॥ २९॥

हे मुने! शिवजीका सातवाँ विश्वेश्वर नामक अवतार काशीमें हुआ। जो समस्त ब्रह्माण्डका स्वरूप है एवं भोग तथा मोक्षको देनेवाला है॥ ३०॥

विष्णु आदि समस्त देवोंने इस विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगका पूजन किया और कैलासपति भैरव तो इनकी नित्य ही पूजा करते हैं॥ ३१॥

स्वयं सिद्धस्वरूप ये प्रभु अपनी [काशी] पुरीमें ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे विराजमान हैं तथा [मुमुक्षुओंको] वहाँपर मुक्ति प्रदान कर रहे हैं॥ ३२॥

जो लोग भक्तिपूर्वक काशी तथा विश्वेश्वरके नामका निरन्तर जप करते हैं, वे कर्मोंसे सर्वदा निर्लिप्त रहकर कैवल्यपदके भागी होते हैं॥ ३३॥

शिवजीका त्र्यम्बक नामक आठवाँ अवतार महर्षि गौतमके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर गौतमीके तटपर हुआ और महर्षि गौतमद्वारा प्रार्थना किये जानेपर वहींपर उनकी प्रसन्नताके लिये शिवजी ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे अचल होकर प्रेमपूर्वक प्रतिष्ठित हो गये॥ ३४-३५॥

उन महेश्वरके दर्शन, स्पर्श एवं अर्चनसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और अन्तमें मुक्ति हो जाती है, यह आश्चर्यकारी है॥ ३६॥

शिवके अनुग्रहसे वहाँपर गौतमके प्रीतिवश पवित्र करनेवाली शिवप्रिया गंगा गौतमी नामसे स्थित हैं॥ ३७॥

शिवजीका नौवाँ ज्योतिर्लिंगावतार वैद्यनाथेश्वर

नामसे प्रसिद्ध है। नानाविध लीलाएँ करनेवाले वे प्रभु रावणके निमित्त प्रकट हुए थे। भगवान् महेश्वर रावणके द्वारा लाये जानेके बहाने चिताभूमिमें ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे प्रतिष्ठित हो गये॥ ३८-३९॥

यह ज्योतिर्लिंग वैद्यनाथेश्वर नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ। भक्तिपूर्वक दर्शन और पूजन करनेसे निश्चय ही यह भोग तथा मोक्ष देनेवाला है॥ ४०॥

हे मुने! वैद्यनाथेश्वर शिवके माहात्म्यरूप शास्त्रको पढ़ने तथा सुननेवालोंको भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त होता है। शिवजीका दसवाँ अवतार नागेश्वर नामवाला कहा गया है, जो भक्तोंकी रक्षाके लिये आविर्भूत हुआ और सर्वदा दुष्टोंका दमन करता रहता है॥ ४१-४२॥

धर्मनाशक दारुक नामक राक्षसको मारकर शिवजीने वैश्योंके स्वामी सुप्रिय नामक अपने भक्तकी रक्षा की थी। नाना प्रकारकी लीला करनेवाले वे परमात्मा साम्बसदाशिव लोकोंका कल्याण करनेके लिये ज्योतिर्लिंगस्वरूप धारणकर नागेश्वर नामसे वहींपर स्थित हो गये॥ ४३-४४॥

हे मुने! उस नागेश्वर नामक शिवलिंगका दर्शन-पूजन करनेसे महापातकोंके समूह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। हे मुने! शिवजीका ग्यारहवाँ अवतार रामेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, जो रामचन्द्रका प्रिय करनेवाला है, यह रामचन्द्रके द्वारा स्थापित किया गया है॥ ४५-४६॥

ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे आविर्भूत हुए उन भक्तवत्सल भगवान् रामेश्वरने ही रामचन्द्रके द्वारा सन्तुष्ट किये जानेपर उनको विजयका वरदान दिया था॥ ४७॥

हे मुने! रामचन्द्रजीद्वारा बहुत प्रार्थना करनेपर उनके द्वारा सेवित हुए शिवजी ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे सेतुबन्धमें स्थित हो गये॥ ४८॥

रामेश्वरकी महिमा इस पृथ्वीतलमें अद्भुत तथा अतुलनीय हुई, ये भोग तथा मोक्षको देनेवाले तथा भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाले हैं॥ ४९॥

जो मनुष्य रामेश्वरको उत्तम भक्तिपूर्वक गंगाजलसे स्नान कराता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है॥ ५०॥

वह इस लोकमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ सभी प्रकारके सुखोंका उपभोगकर अन्तमें उत्तम ज्ञान प्राप्तकर कैवल्यमोक्ष प्राप्त करता है॥ ५१॥

शिवजीका बारहवाँ अवतार घुश्मेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, जो भक्तोंपर कृपा करनेवाला, अनेकविध लीला करनेवाला तथा घुश्माको आनन्द देनेवाला है॥ ५२॥

हे मुने! दक्षिण दिशामें देवशैलके समीप स्थित सरोवरमें घुश्माका कल्याण करनेवाले प्रभु शिव प्रकट हुए थे॥ ५३॥

हे मुने! इन्हीं भक्तवत्सल शिवजीने सुदेहाद्वारा मारे गये घुश्माके पुत्रकी उसकी भक्तिसे प्रसन्न हो रक्षा की थी और घुश्माके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाले ये प्रभु घुश्मेश्वर नामसे उस सरोवरमें ज्योतिर्लिंग-स्वरूपसे स्थित हो गये॥ ५४-५५॥

उस शिवलिंगका दर्शन एवं भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे मनुष्य इस लोकमें सभी प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ५६॥

[हे सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने भोग तथा मोक्ष देनेवाले इन दिव्य द्वादश ज्योतिर्लिंगोंका वर्णन आपसे कर दिया॥ ५७॥

जो मनुष्य ज्योतिर्लिंगोंकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह समस्त पापोंसे छूट जाता है और भोग तथा मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥ ५८॥

मैंने शिवजीके सौ अवतारोंकी उत्तम कीर्तिसे पूर्ण तथा सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली इस शतरुद्र नामक संहिताका वर्णन कर दिया॥ ५९॥

जो एकाग्रचित्त होकर इसे नित्य पढ़ता अथवा सुनता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसके बाद वह मुक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ ६०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके सनत्कुमार-नन्दीश्वर-संवादमें द्वादशज्योतिर्लिंगावतारवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

॥ तृतीय शतरुद्रसंहिता पूर्ण हुई॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

कोटिरुद्रसंहिता

पहला अध्याय

द्वादश ज्योतिर्लिंगों एवं उनके उपलिंगोंके माहात्म्यका वर्णन

यो धत्ते निजमाययैव भुवनाकारं विकारोज्झितो
यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ।
प्रत्यग्बोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिन-
स्तस्मै शैलसुताञ्चितार्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे॥

जो निर्विकार होते हुए भी अपनी मायासे विराट् विश्वका आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग तथा अपवर्ग जिनके कृपाकटाक्षके वैभव बताये जाते हैं तथा योगीजन जिन्हें सदा अपने हृदयके भीतर आत्मज्ञानानन्दस्वरूपमें देखते हैं, उन तेजोमय भगवान् शंकरको, जिनका आधा शरीर शैलराजकुमारी पार्वतीसे सुशोभित है, निरन्तर मेरा नमस्कार है॥ १॥

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं
शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपु-
र्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम्॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुसकानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है, जो तीनों भीषण तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह [शिव नामक] कोई [अनिर्वचनीय] तेज:पुंज सबका मंगल करे॥ २॥

ऋषिगण बोले—हे सूत! आपने लोकका कल्याण करनेके निमित्त अनेक प्रकारके आख्यानोंसे युक्त शिवजीके अवतारोंका माहात्म्य भलीभाँति कहा। अब हे तात! आप शिवजीके लिंगसम्बन्धी माहात्म्यका प्रेमपूर्वक वर्णन कीजिये। हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! आप धन्य हैं॥ ३-४॥

हे प्रभो! आपके मुखकमलसे शिवके अमृतरूप मनोहर यशको सुनते हुए हम लोग तृप्त नहीं हुए, अत: उसीको फिरसे कहिये॥ ५॥

इस पृथ्वीके सभी तीर्थोंमें जितने शुभ लिंग हैं, अथवा इस भूतलपर अन्यत्र भी जो प्रसिद्ध लिंग स्थित हैं, हे व्यासशिष्य! लोकहितकी कामनासे परमेश्वर शिवके उन सभी दिव्य लिंगोंका वर्णन कीजिये॥ ६-७॥

सूतजी बोले—हे ऋषिवरो! आपलोगोंने लोकहितकी कामनासे अच्छी बात पूछी है, अत: हे द्विजो! आपलोगोंके स्नेहसे मैं उन लिंगोंका वर्णन करता हूँ॥ ८॥

हे मुने! शिवजीके सम्पूर्ण लिंगोंकी [कोई निश्चित] संख्या नहीं है; क्योंकि यह समस्त पृथ्वी लिंगमय है और सारा जगत् लिंगमय है। सभी तीर्थ लिंगमय हैं; सारा प्रपंच लिंगमें ही प्रतिष्ठित है। यद्यपि उनकी कोई संख्या नहीं है, फिर [भी] मैं कुछ लिंगोंका वर्णन कर रहा हूँ॥ ९-१०॥

इस जगत्में जो कुछ भी दृश्य देखा जाता है, कहा जाता है और [मनसे] स्मरण किया जाता है, वह सब शिवस्वरूप ही है। शिवके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। फिर भी हे श्रेष्ठ ऋषिगण! इस पृथ्वीपर जितने भी दिव्य लिंग हैं, जैसा कि मुझे ज्ञात है। उनको मैं बता रहा हूँ, आपलोग प्रेमपूर्वक सुनिये॥ ११-१२॥

पातालमें, स्वर्गमें एवं पृथ्वीपर सभी जगह शिवलिंग हैं; क्योंकि देवता, असुर एवं मनुष्य—ये सभी शिवजीका पूजन करते हैं॥ १३॥

हे महर्षियो! शिवजीने लोकोंके कल्याणार्थ ही लिंगरूपसे देव, मनुष्य तथा दैत्योंके सहित इस समस्त त्रिलोकीको व्याप्त कर रखा है। वे महेश्वर लोकोंके हितके लिये तीर्थ-तीर्थमें तथा अन्य स्थलोंमें भी विविध लिंगोंको धारण करते हैं॥ १४-१५॥

जिस-जिस स्थानमें जब-जब शिवजीके भक्तोंने भक्तिपूर्वक उनका स्मरण किया है, उस समय उन-उन स्थानोंमें प्रकट होकर [भक्तजनोंका] कार्य करके वे वहाँ स्थित हो गये। उन्होंने लोकोपकारार्थ अपने लिंगको प्रकट किया, उस लिंगका पूजन करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है॥ १६-१७॥

हे द्विजो! पृथिवीपर जितने लिंग हैं, उनकी कोई गणना नहीं है, फिर भी मैं प्रधान लिंगोंको कहता हूँ। प्रधान लिंगोंमें जो [विशेषरूपसे] मुख्य लिंग हैं, उनको मैं कहता हूँ, जिनके सुननेसे मनुष्य उसी समय पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १८-१९॥

हे मुनिसत्तम! इस लोकमें मुख्योंमें भी मुख्य जितने ज्योतिर्लिंग हैं, उन्हें मैं इस समय कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्राणी पापोंसे छूट जाता है॥ २०॥

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ॐकार क्षेत्रमें परमेश्वर, हिमालयपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, वाराणसीमें विश्वेश्वर, गौतमी नदीके तटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकवनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर तथा शिवालयमें घुश्मेश्वर [नामक ज्योतिर्लिंग] हैं। जो [प्रतिदिन] प्रात:काल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसके सभी प्रकारके पाप छूट जाते हैं और उसको सम्पूर्ण सिद्धियोंका फल प्राप्त हो जाता है॥ २१—२४॥

हे मुनीश्वरो! उत्तम पुरुष जिस-जिस मनोरथकी अपेक्षा करके इनका पाठ करेंगे, वे उस-उस मनोकामनाको इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त करेंगे और जो शुद्ध अन्त:करणवाले पुरुष निष्कामभावसे इनका पाठ करेंगे, वे [पुन:] माताके गर्भमें निवास नहीं करेंगे॥ २५-२६॥

इस लोकमें इन लिंगोंका पूजन करनेसे [ब्राह्मण आदि] सभी वर्णोंका दु:ख नष्ट हो जाता है और परलोकमें निश्चित रूपसे उनकी मुक्ति भी हो जाती है। इन लिंगोंपर चढ़ाया गया प्रसाद सर्वथा ग्रहण करनेयोग्य होता है; उसे [श्रद्धासे] विशेष यत्नसे ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करनेवालेके समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं॥ २७-२८॥

हे द्विजो! इन ज्योतिर्लिंगोंका विशेष फल कहनेमें ब्रह्मा आदि भी समर्थ नहीं हैं, फिर दूसरोंकी बात ही क्या? जिसने किसी एक लिंगका भी छ: मासतक यदि निरन्तर पूजन कर लिया, उसे पुनर्जन्मका दु:ख नहीं उठाना पड़ता है॥ २९-३०॥

नीच कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष भी यदि किसी ज्योतिर्लिंगका दर्शन करता है, तो उसका जन्म पुन: निर्मल एवं उत्तम कुलमें होता है। वह उत्तम कुलमें जन्म प्राप्तकर धनसे सम्पन्न एवं वेदका पारगामी विद्वान् होता है। उसके बाद [वेदोचित] शुभ कर्म करके वह स्थिर रहनेवाली मुक्ति प्राप्त करता है॥ ३१-३२॥

हे मुनीश्वरो! म्लेच्छ, अन्त्यज अथवा नपुंसक कोई भी हो—वह [ज्योतिर्लिंगके दर्शनके प्रभावसे] द्विजकुलमें जन्म लेकर मुक्त हो जाता है, इसलिये ज्योतिर्लिंगका दर्शन [अवश्य] करना चाहिये॥ ३३॥

हे मुनिसत्तमो! मैंने संक्षेपमें इन ज्योतिर्लिंगोंके फलका वर्णन किया; अब इनके उपलिंगोंको सुनिये॥ ३४॥

महीनदी तथा सागरके संगमपर जो अन्तकेश नामक लिंग स्थित है, वह सोमेश्वरका उपलिंग कहा जाता है। भृगुकच्छमें स्थित परम सुखदायक रुद्रेश्वर नामक लिंग ही मल्लिकार्जुनसे प्रकट हुआ उपलिंग कहा गया है॥ ३५-३६॥

नर्मदाके तटपर महाकालसे प्रकट हुआ दुग्धेश्वर नामसे प्रसिद्ध उपलिंग है; जो सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला है। ओंकारेश्वरसम्बन्धी उपलिंग कर्दमेश्वर नामसे प्रसिद्ध तथा बिन्दुसरोवरके तटपर स्थित है और यह सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाला है॥ ३७-३८॥

यमुनाके तटपर केदारेश्वरसे उत्पन्न भूतेश्वर नामक उपलिंग स्थित है, जो दर्शन एवं पूजन करनेवालोंके लिये

महापापनाशक कहा गया है। सह्यपर्वतपर स्थित भीमेश्वर नामक लिंग भीमशंकरका उपलिंग कहा गया है; वह प्रसिद्ध लिंग महान् बलको बढ़ानेवाला है। विश्वेश्वरसे उत्पन्न लिंग शरण्येश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ, त्र्यम्बकेश्वरसे सिद्धेश्वर लिंग प्रकट हुआ तथा वैद्यनाथसे वैजनाथ नामक लिंगका प्राकट्य हुआ॥ ३९—४१॥

मल्लिका-सरस्वतीके तटपर स्थित एक अन्य भूतेश्वर नामका ही शिवलिंग नागेश्वरसे उत्पन्न उपलिंग कहा गया है, जो दर्शनमात्रसे पापहारी है। रामेश्वरसे जो प्रकट हुआ, वह गुप्तेश्वर और घुश्मेश्वरसे जो प्रकट हुआ, वह व्याघ्रेश्वर कहा गया है॥ ४२-४३॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने ज्योतिर्लिंगों तथा उनके उपलिंगोंका वर्णन किया; ये दर्शनमात्रसे पापोंको दूर करनेवाले तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले हैं। हे ऋषिश्रेष्ठो! ये प्रधान लिंग तथा उनके उपलिंग मुख्य रूपसे प्रसिद्ध हैं; अब अन्य प्रसिद्ध लिंगोंको भी सुनिये॥ ४४-४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें ज्योतिर्लिंग और उनके उपलिंगोंका माहात्म्यवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

काशीस्थित तथा पूर्व दिशामें प्रकटित विशेष एवं सामान्य लिंगोंका वर्णन

सूतजी बोले—गंगाके तटपर परम प्रसिद्ध काशी नगरी है, जो सबको मुक्ति प्रदान करनेवाली है। उसे लिंगमयी ही जानना चाहिये, वह सदाशिवकी निवास-स्थली मानी गयी है॥ १॥

वहींपर अविमुक्त नामका मुख्य लिंग कहा गया है। उसीके समान कृत्तिवासेश्वरलिंग एवं वृद्धकाल लिंग काशीमें है। काशीमें तिलभाण्डेश्वर तथा दशाश्वमेध लिंग है। गंगासागरके संगमपर संगमेश्वर नामक लिंग कहा गया है॥ २-३॥

जिन्हें भूतेश्वर कहा गया है और जो नारीश्वर नामसे विख्यात हैं—ये कौशिकी नदीके तटपर विराजमान हैं और भक्तोंको सभी फल प्रदान करनेवाले हैं॥ ४॥

गण्डकी नदीके तटपर बटुकेश्वर नामक लिंग है। फल्गु नदीके तटपर सुखदायी पूरेश्वर नामक लिंग है। उत्तर नामक नगरमें सिद्धनाथेश्वर तथा दूरेश्वर नामक लिंग हैं, जो दर्शनमात्रसे मनुष्योंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं॥ ५-६॥

शृंगेश्वर तथा वैद्यनाथेश्वर नामक लिंग भी वैसे ही हैं। दधीचिकी संग्रामभूमिमें जप्येश्वर नामक प्रसिद्ध लिंग है। इसी प्रकार गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश्वर, कामेश्वर तथा विमलेश्वर नामक लिंग कहे गये हैं॥ ७-८॥

व्यासेश्वर, शुकेश्वर, भाण्डेश्वर, हुंकारेश्वर, सुरोचनेश्वर, भूतेश्वर, संगमेश्वर नामक लिंग कहे गये हैं, जो महापातकका नाश करनेवाले हैं॥ ९-१०॥

तप्तका नदीके तटपर कुमारेश्वर, सिद्धेश्वर तथा सेनेश्वर नामक प्रसिद्ध लिंग कहे गये हैं॥ ११॥

पूर्णा नदीके तटपर रामेश्वर, कुम्भेश्वर, नन्दीश्वर, पुंजेश्वर तथा पूर्णकेश्वर लिंग कहे गये हैं॥ १२॥

पूर्व समयमें ब्रह्माके द्वारा प्रयागके दशाश्वमेध तीर्थमें स्थापित किया गया ब्रह्मेश्वर नामक लिंग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको देनेवाला है॥ १३॥

वहींपर सभी विपत्तियोंको दूर करनेवाला सोमेश्वर नामक लिंग तथा ब्रह्मतेजकी वृद्धि करनेवाला भारद्वाजेश्वर नामक लिंग है। वहींपर कामनाओंको देनेवाला साक्षात् शूलटंकेश्वर लिंग तथा भक्तोंकी रक्षा करनेवाला माधवेश्वर लिंग बताया गया है॥ १४-१५॥

हे द्विजो! साकेत (अयोध्यापुरी)-में नागेश नामका प्रसिद्ध लिंग है, जो विशेष रूपसे सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए लोगोंको सुख देनेवाला है॥ १६॥

पुरुषोत्तम (जगन्नाथ)-पुरीमें उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला भुवनेश्वर लिंग है। लोकेश्वर नामक महालिंग सभी प्रकारके आनन्दको देनेवाला है॥ १७॥

कामेश्वर तथा गंगेश शिवलिंग परम शुद्धि प्रदान करनेवाले हैं। इसी प्रकार लोकहित करनेवाला तथा

शुक्रको सिद्धि प्रदान करनेवाला शुक्रेश्वर लिंग है। वटेश्वर नामक लिंग सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला कहा गया है। सिन्धुतटपर स्थित कपालेश्वर एवं वक्त्रेश्वर सभी पापोंको दूर करनेवाले हैं॥ १८-१९॥

धौतपापेश्वर, भीमेश्वर तथा सूर्येश्वर नामक लिंग साक्षात् शिवके अंश कहे गये हैं। लोकपूजित नन्दीश्वर लिंगको ज्ञानप्रद जानना चाहिये। नाकेश्वर तथा रामेश्वर महापुण्यके प्रदाता कहे गये हैं॥ २०-२१॥

विमलेश्वर, कण्टकेश्वर तथा धर्तुकेश नामक लिंग पूर्व सागरके संगमपर स्थित हैं। चन्द्रेश्वरको चन्द्रमाके समान कान्तिरूप फलको देनेवाला जानना चाहिये। सिद्धेश्वर नामक लिंग सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाला कहा गया है॥ २२-२३॥

जहाँपर शिवजीने पूर्वकालमें अन्धक दैत्यका वध किया था, वहींपर बिल्वेश्वर तथा अन्धकेश्वर लिंग भी प्रसिद्ध हैं। [अन्धकका वध करनेके उपरान्त] ये शिवजी अपने अंशसे स्वरूप धारणकर पुनः वहीं स्थित हो गये। सर्वदा लोकको सुख देनेवाला शरणेश्वर लिंग तो प्रसिद्ध ही है॥ २४-२५॥

कर्दमेश्वरको श्रेष्ठ लिंग कहा गया है। कोटीश अर्बुदाचलपर स्थित हैं। प्रसिद्ध अचलेश नामक लिंग लोगोंको सदा सुख देनेवाला है। कौशिकी नदीके तटपर नागेश्वर लिंग नित्य विराजमान है। अनन्तेश्वर नामक लिंग कल्याण तथा मंगल करनेवाला है॥ २६-२७॥

योगेश्वर, वैद्यनाथेश्वर, कोटीश्वर तथा सप्तेश्वर लिंग विख्यात कहे गये हैं। भद्र नामक शिव भद्रेश्वर लिंगके रूपमें विख्यात हैं। इसी प्रकार चण्डीश्वर तथा संगमेश्वर भी कहे जाते हैं॥ २८-२९॥

पूर्व दिशामें जितने विशेष एवं सामान्य लिंग प्रकट हुए हैं, इस प्रसंगमें उन सभीका वर्णन मैंने आपसे किया। हे मुनिश्रेष्ठ! अब दक्षिण दिशामें जो शिवलिंग प्रकट हुए हैं, उनका वर्णन मैं आपसे करता हूँ॥ ३०-३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवलिंगमाहात्म्यवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

अत्रीश्वरलिंगके प्राकट्यके प्रसंगमें अनसूया तथा अत्रिकी तपस्याका वर्णन

सूतजी बोले— ब्रह्मपुरीके समीपमें चित्रकूटपर्वतपर मत्तगजेन्द्र नामक लिंग है, जिसे ब्रह्माजीने पूर्वकालमें स्थापित किया था; वह सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। उसके पूर्वमें सभी प्रकारके वरोंको देनेवाला कोटीश्वर नामक लिंग है। गोदावरी नदीके पश्चिमकी ओर पशुपति नामक लिंग है॥ १-२॥

दक्षिण दिशामें कोई अत्रीश्वर नामक लिंग है, जिसके रूपमें लोककल्याणके लिये एवं अनसूयाको सुख देनेहेतु साक्षात् शिवजीने अपने अंशसे स्वयं प्रकट होकर अनावृष्टि होनेपर [मरणासन्न] समस्त प्राणियोंको जीवनदान दिया था॥ ३-४॥

ऋषिगण बोले— हे महाभाग्यवान् सूत! हे सुव्रत! वहाँपर परम दिव्य अत्रीश्वर नामक लिंगका प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ है, उसे आप [यथार्थ रूपसे] बताइये?॥ ५॥

सूतजी बोले— हे श्रेष्ठ ऋषियो! आपलोगोंने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है; अब मैं उस शुभ कथाको कहता हूँ, जिसे निरन्तर सुनकर मनुष्य निश्चितरूपसे सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६॥

चित्रकूटके समीप दक्षिण दिशामें कामद नामक एक विशाल वन है, जो सज्जनों एवं तपस्वियोंका कल्याण करनेवाला है। वहाँ ब्रह्माके पुत्र महर्षि अत्रि [अपनी पत्नी] अनसूयाके साथ अति कठिन तप करते थे॥ ७-८॥

हे मुने! पहले किसी समय दुर्भाग्यसे जीवोंको दुःख देनेवाली सौ वर्षकी भयानक अनावृष्टि हुई॥ ९॥

हे मुनीश्वरो! उस समय सभी वृक्ष, पत्ते तथा फल

सूख गये। नित्यकर्मके लिये भी कहीं [नाममात्रका] जल नहीं दिखायी पड़ता था॥ १०॥

आर्द्रता कहीं भी नहीं थी और दसों दिशाओंमें शुष्क पवन बहने लगा, जिससे पृथ्वीपर चारों ओर अतिशय दुःखदायक महान् हाहाकार मच गया। तब अत्रिकी पतिव्रता पत्नीने प्राणियोंका विनाश देखकर अत्रिसे कहा कि यह दुःख मुझसे सहन नहीं हो रहा है॥ ११-१२॥

तब वे मुनिवर [अत्रि] स्वयं आसनपर स्थित हो तीन बार प्राणायामकर समाधिमें लीन हो गये। इस प्रकार वे ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ अत्रि आत्मामें स्थित निर्विकार शिवस्वरूप परमज्योतिका ध्यान करने लगे॥ १३-१४॥

तब गुरुके समाधिमें लीन हो जानेपर उनके शिष्य अन्नके अभावमें अपने गुरुको छोड़कर दूर चले गये। तब वे पतिव्रता अनसूया अकेली हो गयीं और वे प्रसन्नताके साथ निरन्तर उन मुनिश्रेष्ठकी सेवा करने लगीं। वे सुन्दर पार्थिव शिवलिंग बनाकर मन्त्रके द्वारा विधिवत् मानस उपचारोंसे पूजन करती थीं और बारंबार शंकरजीकी सेवाकर भक्तिसे उनकी स्तुति करती थीं। हाथ जोड़कर स्वामी सदाशिवकी प्रदक्षिणाकर सुन्दर चरित्रवाली वे मुनिपत्नी अनसूया प्रत्येक परिक्रमामें दण्डवत् प्रणाम करती थीं॥ १५—१९॥

उस समय उन शोभाशालिनी [अनसूया]-को देखकर सम्पूर्ण दैत्य एवं दानव वहाँ घबड़ा गये और उनके तेजके कारण दूर खड़े हो गये। जिस प्रकार अग्निको देखकर लोग दूर रहते हैं, उसी प्रकार उनको देखकर लोग समीपमें नहीं आते थे॥ २०-२१॥

हे विप्रेन्द्रो! अत्रिकी तपस्याकी अपेक्षा अनसूयाद्वारा मन, वाणी एवं कर्मसे किया गया शिवसेवन विशिष्ट था। इस प्रकार जबतक मुनिवर अत्रि प्राणायामपरायण होकर समाधिमें लीन रहे, तबतक वे देवी उनकी सेवा करती रहीं। हे मुनिवर! इस प्रकार वे दोनों पति-पत्नी अपने-अपने कार्यमें परायण होकर स्थित रहे, वहाँ कोई अन्य स्थित न रहा, चिरकाल व्यतीत हो जानेपर भी इस प्रकार ध्यानमें मग्न ऋषिश्रेष्ठ अत्रिको किसी वस्तुका भान न रहा॥ २२—२५॥

पतिव्रता अनसूया भी अपने पति अत्रि तथा अपने इष्टदेव सदाशिवकी सेवा करने लगीं और उन सतीको भी किसी अन्य वस्तुका ज्ञान न रहा। तब उन अत्रिकी तपस्या तथा अनसूयाके शिवाराधनसे प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवता, ऋषिगण तथा गंगा आदि सभी नदियाँ—ये सभी उन दोनोंका दर्शन करनेके लिये प्रेमपूर्वक वहाँ आये। अत्रिकी तपश्चर्या एवं अनसूयाकी सेवा देखकर वे बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ २६—२८॥

उन दोनोंके अद्भुत तप तथा उत्तम सेवाभावको देखकर वे कहने लगे कि अत्रिका तप तथा अनसूयाकी आराधना—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है? इसके बाद उन दोनोंको देखकर उन्होंने कहा कि भजन श्रेष्ठ है। पूर्वकालीन ऋषियोंने भी दुष्कर तप किया था, किंतु ऐसा कठिन तप किसीने कभी भी नहीं किया—ऐसा उन्होंने कहा। ये अत्रि धन्य हैं एवं ये अनसूया भी धन्य हैं, जो कि ये दोनों प्रेमपूर्वक घोर तपस्या कर रहे हैं। त्रिलोकीमें इस प्रकारका शुभ, उत्तम तथा कठिन तप किसीने किया हो, यह बात इस समयतक जानी नहीं जा सकी है॥ २९—३३॥

इस प्रकार उनकी प्रशंसाकर वे जैसे आये थे, वैसे ही [अपने-अपने स्थानको] चले गये। परंतु गंगाजी और शिवजी वहीं स्थित रहे। गंगा तो साध्वी अनसूयाके पातिव्रत्य धर्म तथा उनकी सेवासे मुग्ध होकर वहीं रह गयीं। गंगाने कहा कि मैं इन अनसूयाका उपकार करके ही जाऊँगी॥ ३४-३५॥

हे मुनीश्वरो! शिवजी भी महर्षि अत्रिके ध्यानसे बँधे रहनेके कारण पूर्णांशसे वहीं स्थित हो गये और कैलास नहीं गये। हे ऋषिश्रेष्ठो! चौवन वर्ष बीत गये, किंतु वर्षा नहीं हुई। इधर, अनसूयाने यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि जबतक महर्षि समाधिमें लीन रहेंगे, तबतक मैं कुछ भी ग्रहण नहीं करूँगी। इस प्रकार [हे महर्षियो!] मुनिके द्वारा की जाती हुई तपस्यामें स्थित रहने और अनसूयाके शिवभजनमें तत्पर रहनेके कारण जो कुछ हुआ, उसे आप लोग सुनें॥ ३६—३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें अनसूयात्रितपोवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

अनसूयाके पातिव्रतके प्रभावसे गंगाका प्राकट्य तथा अत्रीश्वरमाहात्म्यका वर्णन

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] किसी समय जब ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ऋषिवर अत्रि समाधिसे जगे, तब उन्होंने अपनी प्रिया पत्नीसे कहा—'जल दो'॥ १॥

वे साध्वी भी 'मैं जल अवश्य ही लाऊँगी' ऐसा निश्चयकर कमण्डलु लेकर वनकी ओर चल पड़ीं और विचार करने लगीं कि 'मैं जल कहाँसे लाऊँ, मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कहाँसे जल लाऊँ'—इस विस्मयमें पड़ी हुई उन्होंने उन गंगाजीको मार्गमें देखा। गंगाजीके पीछे-पीछे अनसूया भी चलने लगीं। तब नदियोंमें श्रेष्ठ तथा सुन्दर शरीर धारण करनेवाली गंगा देवीने उनसे कहा—॥ २—४॥

गंगाजी बोलीं—हे देवि! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम यह बताओ कि इस समय कहाँ जा रही हो? हे सुभगे! सचमुच तुम धन्य हो, मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी॥ ५॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! तब उनकी बात सुनकर तपस्विनी ऋषिपत्नी स्वयं आश्चर्यमें पड़ गयीं और प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगीं—॥ ६॥

अनसूया बोलीं—हे कमलनयने! तुम कौन हो और कहाँसे आयी हो? कृपा करके बताओ; तुम मनोहर बोलनेवाली साध्वी सती-जैसी मालूम पड़ रही हो॥ ७॥

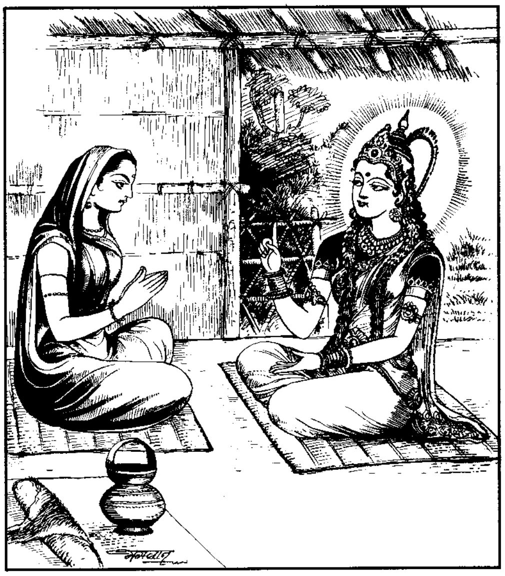
सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! ऋषिपत्नीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर नदियोंमें श्रेष्ठ दिव्यरूपधारिणी गंगाजीने यह वचन कहा—॥ ८॥

गंगाजी बोलीं—हे साध्वि! अपने पति तथा परमेश्वर सदाशिवके प्रति तुम्हारी सेवाको देखकर एवं तुम्हारा धर्माचरण देखकर मैं तुम्हारे समीप ही स्थित हो गयी हूँ॥ ९॥

हे शुचिस्मिते! मैं गंगा हूँ और तुम्हारे शिवाराधनसे प्रसन्न होकर यहाँ आयी हूँ तथा तुम्हारी वशवर्तिनी हो गयी हूँ, अतः तुम जो चाहती हो, उसे माँगो॥ १०॥

सूतजी बोले—गंगाके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे साध्वी अनसूया उन्हें नमस्कारकर आगे खड़ी हो गयीं और बोलीं कि यदि आप इस समय मुझपर प्रसन्न हैं, तो जल दीजिये॥ ११॥

यह वचन सुनकर गंगाजी बोलीं—गड्ढा तैयार करो। तब क्षणमात्रमें वैसा करके वे अनसूया आकर वहाँ खड़ी हो गयीं। इसके बाद वे गंगा उस (गर्त)-में प्रविष्ट हो गयीं और जलरूपमें परिणत हो गयीं। तब उन्होंने आश्चर्यचकित हो जलको ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् मुनिपत्नी अनसूयाने लोकोंके सुखके लिये नदियोंमें श्रेष्ठ तथा दिव्य रूपवाली गंगाजीसे यह वचन कहा—॥ १२—१४॥



अनसूया बोलीं—[हे कृपामयि!] यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो आप तबतक यहीं स्थित रहें, जबतक मेरे स्वामी यहाँ न आ जायँ॥ १५॥

सूतजी बोले—सज्जनोंको सुख देनेवाले अनसूयाके इस वचनको सुनकर गंगाने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—हे अनघे! तुम मेरे इस जलको अत्रिको दे देना। उनके इस प्रकार कहनेपर अनसूयाने भी वैसा ही किया। वे कभी नष्ट न होनेवाले उस दिव्य जलको अपने स्वामीको देकर उनके आगे खड़ी हो गयीं॥ १६-१७॥

तब उन ऋषिने भी अत्यन्त प्रेमसे विधिपूर्वक आचमनकर उस दिव्य जलका पान किया और उसे पीकर सुखका अनुभव किया॥ १८॥

'अहो, आश्चर्य है, मैं जो जल प्रतिदिन पीता था, यह जल वैसा नहीं है'—ऐसा विचारकर उन्होंने वनमें चारों ओर अपनी दृष्टि दौड़ायी। तब सूखे वृक्षों तथा उससे भी अधिक सूखी हुईं दिशाओंको देखकर ऋषिश्रेष्ठने उनसे कहा कि क्या फिर वर्षा नहीं हुई?॥ १९-२०॥

उनकी बात सुनकर अनसूयाने कहा—नहीं, वर्षा नहीं हुई। तब ऋषिने पुनः अनसूयासे कहा कि फिर तुमने यह जल कहाँसे प्राप्त किया?॥ २१॥

हे मुनीश्वरो! ऋषिके ऐसा कहनेपर अनसूया असमंजसमें पड़ गयी और मनमें विचार करने लगी कि यदि मैं बता देती हूँ, तो इससे मेरी उत्कृष्टता सिद्ध होगी और यदि नहीं बताती, तो मेरा पातिव्रत्य भंग हो जायगा। अब मैं कौन-सा उपाय करूँ कि ये दोनों बातें न हों और मैं सच-सच बात कह भी दूँ। अभी वह इस प्रकार विचार कर ही रही थी कि महर्षिने बारंबार पूछा॥ २२—२४॥

तब शिवजीके अनुग्रहसे बुद्धि प्राप्तकर उन पतिव्रताने कहा—हे स्वामिन्! इस विषयमें जो हुआ, उसे मैं कहती हूँ, आप सुनिये॥ २५॥

अनसूया बोली—महादेवके प्रतापसे तथा आपके पुण्योंसे गंगा यहींपर आयी हुई हैं; यह उन्हींका जल है॥ २६॥

सूतजी बोले—तब इस वचनको सुनकर महर्षिको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने मनसे शंकरजीका स्मरण करते हुए प्रेमपूर्वक अपनी पत्नीसे कहा—॥ २७॥

अत्रि बोले—हे प्रिये! हे सुन्दरि! यह तुम सत्य वचन कह रही हो अथवा झूठ? तुम सच कहती हो या मिथ्या, मैं निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ; क्योंकि यह अत्यन्त दुर्लभ है। हे शुभे! जो सदा योगियों तथा देवताओंके लिये भी असाध्य है, वह आज किस प्रकार हो गया; मुझे तो महान् विस्मय हो रहा है। यदि ऐसा है, तो मैं देखना चाहता हूँ; तभी विश्वास करूँगा, अन्यथा नहीं। तब उनका वचन सुनकर उनकी पत्नी अनसूयाने पतिसे कहा—॥ २८—३०॥

अनसूया बोलीं—हे नाथ! हे महामुने! यदि आपकी इच्छा नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाके दर्शनकी हो, तो आप मेरे साथ चलिये॥ ३१॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे पतिव्रता अपने पतिको साथ लेकर शिवजीका स्मरण करके शीघ्र ही वहाँ पहुँचीं, जहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ गंगा विद्यमान थीं॥ ३२॥

उसके बाद उन पतिव्रताने अपने पतिको उस गड्ढेमें स्थित दिव्यस्वरूपवाली गंगाका दर्शन कराया॥ ३३॥

मुनिश्रेष्ठने वहाँ जाकर ऊपरतक जलसे परिपूर्ण सुन्दर गड्ढेको देखकर कहा—ये धन्य हैं॥ ३४॥

क्या यह साक्षात् मेरा तप है अथवा अन्य किसीका—इस प्रकार कहकर मुनिश्रेष्ठने भक्तिपूर्वक उन गंगाकी स्तुति की। इसके बाद उन मुनिने निर्मल जलमें भलीभाँति स्नान किया और आचमनकर बार-बार उनकी स्तुति की। अनसूयाने भी उस निर्मल जलमें स्नान किया। इसके बाद उस पतिव्रता अनसूया तथा मुनिने वहाँ नित्यकर्म सम्पन्न किया॥ ३५—३७॥

उसके बाद गंगाने अनसूयासे कहा कि अब मैं अपने स्थानको जा रही हूँ। गंगाके ऐसा कहनेपर उस साध्वीने पुनः उन श्रेष्ठ नदी गंगासे कहा—॥ ३८॥

अनसूया बोलीं—हे देवेशि! यदि आप प्रसन्न हैं और मुझपर आपकी कृपा है, तो हे देवि! इस तपोवनमें आप स्थिर होकर निवास करें; क्योंकि बड़े लोगोंका ऐसा स्वभाव होता है कि वे एक बार किसीको स्वीकार करके उसे कभी छोड़ते नहीं—इतना कहकर दोनों हाथ जोड़कर वे पुनः उनकी स्तुति करने लगीं॥ ३९-४०॥

तदनन्तर ऋषिने भी इसी प्रकार प्रार्थना की कि हे सरिद्वरे! हे देवि! आप यहीं निवास करें, आप हमारे अनुकूल रहें और हम लोगोंको सनाथ करें॥ ४१॥

तब उनके इस मनोहर वचनको सुनकर नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाका मन प्रसन्न हो गया; इसके बाद गंगाने अनसूयासे यह वचन कहा—॥ ४२॥

गंगाजी बोलीं—हे अनसूये! यदि तुम भगवान् शंकरके अर्चन एवं अपने स्वामीकी सेवाका वर्षभरका फल मुझे प्रदान करो, तो मैं देवताओंके उपकारके लिये यहाँ स्थित रहूँगी॥ ४३॥

हे देवि! दान, तीर्थ-स्नान, यज्ञ तथा योगसे मेरी उतनी सन्तुष्टि नहीं होती, जितनी [पतिव्रताओंके]

पातिव्रत्यसे होती है॥ ४४॥

पतिव्रताको देखकर मेरे मनको जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी प्रसन्नता अन्य उपायोंसे नहीं होती। हे सती अनसूये! मैं सत्य कहती हूँ। पतिव्रता स्त्रीको देखकर मेरा पाप नष्ट हो जाता है और मैं विशेषरूपसे शुद्ध हो जाती हूँ, पतिव्रता [स्त्री] पार्वतीके तुल्य है॥ ४५-४६॥

इसलिये यदि तुम लोकहितके लिये वह पुण्य मुझे देती हो और कल्याणकी इच्छा करती हो, तो मैं यहाँ स्थिर हो जाऊँगी॥ ४७॥

सूतजी बोले—यह वचन सुनकर पतिव्रता अनसूयाने वर्षभरका वह सारा पुण्य गंगाको दे दिया॥ ४८॥

बड़े लोगोंका ऐसा स्वभाव है कि वे दूसरोंका हित करते हैं; इस विषयमें सुवर्ण, चन्दन तथा इक्षुरस दृष्टान्तस्वरूप हैं। अनसूयाके उस महान् पातिव्रत्य कर्मको देखकर महादेव प्रसन्न हो गये और उसी क्षण पार्थिव लिंगसे प्रकट हो गये॥ ४९-५०॥

शंभु बोले—हे साध्वि! हे पतिव्रते! तुम्हारे इस कर्मको देखकर मैं प्रसन्न हूँ। हे प्रिये! तुम मुझसे वर माँगो, क्योंकि तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो॥ ५१॥

इसके बाद वे दोनों पति-पत्नी पाँच मुखोंसे युक्त तथा मनोरम आकृतिवाले शिवको देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर महाभक्तिसे युक्त हो नमस्कार करके स्तवन किया, फिर लोकका कल्याण करनेवाले उन शंकरकी भलीभाँति अर्चना करके उनसे कहने लगे—॥ ५२-५३॥

पति-पत्नी बोले—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और ये जगदम्बा भी प्रसन्न हैं, तो आप इस तपोवनमें निवास करें और लोकोंके लिये सुखदायक हों॥ ५४॥

इस प्रकार प्रसन्न हुई गंगा तथा प्रसन्न हुए सदाशिव—वे दोनों वहाँ स्थित हो गये, जहाँ ऋषिश्रेष्ठ अत्रि रहते थे॥ ५५॥

दूसरोंका दुःख दूर करनेवाले सदाशिव अत्रीश्वर नामसे वहाँपर प्रसिद्ध हो गये और गंगाजी भी अपनी शक्तिसे उसी गड्ढेमें स्थित हो गयीं॥ ५६॥

उसी दिनसे वहाँपर जल सर्वदा अक्षय प्रवाहित होने लगा और हाथभरके उस गड्ढेमें [प्रविष्ट हुई] गंगा मन्दाकिनी नामसे प्रसिद्ध हुईं॥ ५७॥

हे द्विजो! प्रत्येक तीर्थसे उस स्थानपर वे समस्त दिव्य ऋषि अपनी पत्नियोंके साथ आ गये, जो वहाँसे पहले दूसरी जगह चले गये थे॥ ५८॥

वहाँका सारा प्रदेश यव और व्रीहिसे परिपूर्ण हो गया, जिनसे उन श्रेष्ठ ऋषियोंके साथ यज्ञ-यागादि करनेवाले वहाँके लोग होम करने लगे॥ ५९॥

हे मुनीश्वरो! उस समय उन कर्मोंसे सन्तुष्ट होकर मेघोंने बहुत वर्षा की, जिससे संसारमें परम आनन्द छा गया॥ ६०॥

[हे मुनीश्वरो!] इस प्रकार मैंने अत्रीश्वरका माहात्म्य आपलोगोंसे कहा, जो सुखप्रद, भोग-मोक्ष देनेवाला, समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला एवं भक्तिको बढ़ानेवाला है॥ ६१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें अत्रीश्वरमाहात्म्यवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

रेवानदीके तटपर स्थित विविध शिवलिंग-माहात्म्य-वर्णनके क्रममें द्विजदम्पतीका वृत्तान्त

सूतजी बोले—दिव्य कालंजर पर्वतपर नीलकण्ठ नामक महादेव लिंगरूपसे सदा निवास करते हैं, जो भक्तजनोंको सर्वदा आनन्द प्रदान करनेवाले हैं॥ १॥

उनकी महिमा परम दिव्य है, जिसका वर्णन वेद तथा स्मृतियोंमें किया गया है। वहाँपर नीलकण्ठ नामक तीर्थ है, जो स्नान करनेसे [मनुष्योंके] पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ २॥

हे सुव्रतो! रेवा नदीके तटपर जितने शिवलिंग हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती; वे सभी सब प्रकारके सुखोंको देनेवाले हैं॥ ३॥

[साक्षात्] रुद्रस्वरूप वह रेवा दर्शनमात्रसे पापोंका नाश कर देनेवाली है और उसमें जो भी पाषाण स्थित हैं, वे शिवस्वरूप हैं। फिर भी हे मुनि! भोग एवं मोक्षको देनेवाले प्रधान शिवलिंगोंका वर्णन यथोचितरूपसे कर रहा हूँ॥ ४-५॥

वहाँ आर्तेश्वर नामक लिंग है, जो सभी पापोंको दूर करनेवाला है। इसी प्रकार परमेश्वर एवं सिंहेश्वर नामक लिंग भी कहे गये हैं॥ ६॥

इसी प्रकार वहाँपर शर्मेश्वर, कुमारेश्वर, पुण्डरीकेश्वर एवं मण्डपेश्वर नामक लिंग भी हैं॥ ७॥

वहाँ नर्मदा नदीके किनारे दर्शनमात्रसे पापको नष्ट करनेवाला तीक्ष्णेश्वर नामक लिंग है तथा पापको दूर करनेवाला धुन्धुरेश्वर नामक लिंग भी है॥ ८॥

शूलेश्वर, कुम्भेश्वर, कुबेरेश्वर तथा सोमेश्वर नामक लिंग भी प्रसिद्ध हैं। नीलकण्ठ तथा मंगलेश तो महामंगलके स्थान ही हैं। महाकपीश्वर महादेवकी स्थापना स्वयं हनुमान्‌जीने की थी॥ ९-१०॥

इसी क्रममें करोड़ों हत्याओंके पापको नष्ट करनेवाले, सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले और मोक्षदायक नन्दिकदेव भी कहे गये हैं। जो अति प्रसन्नतापूर्वक नन्दिकेश्वरका पूजन करता है, उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ नित्य प्राप्त होती हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ११-१२॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! वहाँ रेवा नदीके तटपर जो स्नान करता है, उसकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १३॥

ऋषिगण बोले—उस नन्दिकेश्वर लिंगका ऐसा माहात्म्य क्यों है; आप इस समय कृपा करके उसे बतायें?॥ १४॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] आपलोगोंने बड़ा उत्तम प्रश्न किया; इस विषयमें मैंने जैसा सुना है, वैसा कह रहा हूँ। शौनक आदि आप सभी मुनिलोग आदरपूर्वक सुनिये। पूर्व समयमें युधिष्ठिरके प्रश्न करनेपर ऋषिवर व्यासजीने जैसा कहा था, वही बात मैं आपलोगोंके स्नेहके कारण कह रहा हूँ॥ १५-१६॥

रेवा (नर्मदा) नदीके पश्चिमी तटपर कर्णिकी नामक एक नगरी विराजमान है, जो सम्पूर्ण शोभासे युक्त है और चारों वर्णोंसे भरी पड़ी है॥ १७॥

वहीं उतथ्यके कुलमें उत्पन्न कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण [रहता था, वह] अपनी पत्नीको अपने दो पुत्रोंको सौंपकर काशी चला गया। वह विप्र वहींपर मर गया। जब उसके पुत्रोंने यह समाचार सुना, तो दोनों पुत्रोंने उसका [श्राद्ध आदि] कृत्य कर दिया॥ १८-१९॥

पुत्रोंका हित चाहनेवाली उसकी पत्नीने अपने बालकोंका लालन-पालन किया। [पुत्रोंके बड़े हो जानेपर] उसने कुछ धन बचाकर शेष धनका बँटवारा कर दिया। उसने कुछ धन अपने मरण-कृत्यके लिये सुरक्षितकर अपने पास रख लिया। कुछ समय बीतनेपर मरणासन्न होनेपर उस ब्राह्मणीने अनेक प्रकारके पुण्य कार्य किये, किंतु हे द्विजो! दैवयोगसे वह ब्राह्मणी मरी नहीं॥ २०—२२॥

जब दैववश उन दोनोंकी माताके प्राण नहीं निकले, तब माताके उस कष्टको देखकर उसके दोनों पुत्रोंने कहा—॥ २३॥

पुत्र बोले—हे माता! अब किस बातकी कमी रह गयी है, जिससे आपको यह महान् कष्ट मिल रहा है? आप शीघ्रतासे हमें बतायें, हमलोग प्रेमपूर्वक उसे करेंगे॥ २४॥

सूतजी बोले—यह सुनकर माताने कहा कि कमी तो बहुत रह गयी है, किंतु यदि तुमलोग उसे पूरा करो, तो सुखपूर्वक मेरी मृत्यु हो सकती है। तब उसका जो ज्येष्ठ पुत्र था, उसने कहा कि आप बताइये; मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा। तब उसने कहा—॥ २५-२६॥

द्विजपत्नी बोली—हे पुत्र! मेरी बात प्रेमसे सुनो; पहले मेरी इच्छा काशी जानेकी थी, किंतु वैसा नहीं हो सका और अब मैं मर रही हूँ। हे पुत्र! तुम आलस्यका त्यागकर मेरी अस्थियोंको [काशीमें] गंगाजलमें फेंक देना; तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २७-२८॥

सूतजी बोले—माताके इस प्रकार कहनेपर मातामें भक्ति रखनेवाले उस ज्येष्ठ पुत्रने सुव्रता, मरणासन्न मातासे कहा—॥ २९॥

पुत्र बोला—हे मातः! आप सुखपूर्वक अपने

प्राणोंका त्याग कीजिये; मैं सर्वप्रथम आपका कार्य करनेके बाद ही अपना काम करूँगा; इसमें संशय नहीं है। इसके बाद [अपनी माताके] हाथमें जल देकर ज्यों ही पुत्र घर गया, तभी वह शिवजीका ध्यान करती हुई वहाँ मर गयी॥ ३०-३१॥

तब उसका जो भी कृत्य था, वह सब भलीभाँति करके पुनः सारा मासिक [पिण्डदानादि] कार्य करके वह काशी जानेको तैयार हो गया। दोनोंमें ज्येष्ठ पुत्र जो सुवाद नामसे प्रसिद्ध था, वह उसकी अस्थियोंको लेकर तीर्थकी कामनासे निकल पड़ा॥ ३२-३३॥

श्राद्धदान तथा ब्राह्मणभोजन आदि उत्तम विधि सम्पन्नकर अपनी भार्या और पुत्रोंको आश्वासन देकर माताका हित करनेकी इच्छासे किसी सेवकको बुलाकर उसीके साथ मंगलस्मरण करके वह द्विज घरसे चल दिया॥ ३४-३५॥

उस दिन उसने एक योजन चलकर सूर्यास्त होनेपर किसी विंशति नामक शुभ ग्राममें किसी ब्राह्मणके घरमें निवास किया॥ ३६॥

उसके बाद उस द्विजने विधिपूर्वक सन्ध्यादि सत्कर्म किया और अद्भुत क्रिया-कलापवाले शंकरकी स्तुति आदि की॥ ३७॥

इस प्रकार सेवकके सहित वह ब्राह्मण वहाँ रुका रहा और दो मुहूर्तभर रात बीत गयी॥ ३८॥

हे मुनियो! इसी बीच वहाँ जो आश्चर्यमयी घटना घटी, उसे आपलोग आदरपूर्वक सुनिये; मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें नन्दिकेश्वरमाहात्म्यमें ब्राह्मणीमरणवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

नर्मदा एवं नन्दिकेश्वरके माहात्म्य-कथनके प्रसंगमें ब्राह्मणीकी स्वर्गप्राप्तिका वर्णन

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] वहाँपर आँगनमें एक उत्तम गाय बँधी थी। रातको जब बाहर गया हुआ [गृहपति] ब्राह्मण आया, तब हे मुनीश्वरो! गायको बिना दुही हुई आँगनमें स्थित देख करके खिन्न हो उसे दुहनेकी इच्छासे उसने अपनी पत्नीसे कहा—हे प्रिये! तुमने अभीतक गाय नहीं दुही? पत्नीसे ऐसा कहकर वह बछड़ेको ले आया। इसके बाद हे मुनियो! दुहनेके उद्देश्यसे शीघ्र ही स्त्रीको बुलाकर दूधकी इच्छावाला वह गृहपति ब्राह्मण स्वयं बछड़ेको खूँटेमें बाँधनेका प्रयत्न करने लगा॥ १—४॥

हे सुव्रतो! ब्राह्मणद्वारा खींचे जानेपर बछड़ेने उसके पैरमें लात मार दी, जिससे ब्राह्मणको कष्ट हुआ॥ ५॥

उस पादप्रहारके कारण क्रोधसे तमतमाये हुए उस ब्राह्मणने कुहनीसे उस बछड़ेको जोरसे मारा॥ ६॥

इस प्रकार उसके द्वारा मारे जानेपर बछड़ा भी शान्त हो गया। उसके बाद उस ब्राह्मणने गायको दुह लिया, किंतु क्रोधके कारण बछड़ेको मुक्त नहीं किया॥ ७॥

वह गाय अपने बछड़ेको प्रीतिपूर्वक दूध पिलानेके लिये महान् रुदन करने लगी; तब उसका रुदन देखकर बछड़ेने यह वाक्य कहा—॥ ८॥

बछड़ा बोला—हे माता! तुम क्यों रो रही हो, तुम्हें कौन-सा दुःख आ पहुँचा; उसे प्रेमपूर्वक मुझे बताओ। यह सुनकर गाय बोली—हे पुत्र! मेरा दुःख सुनो; मैं उसे कह नहीं सकती हूँ। इस दुष्टने तुमको मारा है, इससे मुझे भी [बहुत] दुःख हुआ है॥ ९-१०॥

सूतजी बोले—अपनी माताकी बात सुनकर प्रारब्धसे सन्तुष्ट उस बछड़ेने अपनी माताको समझाते हुए कहा—॥ ११॥

हे मातः! क्या किया जाय और कहाँ जाया जाय; क्योंकि हम सभी कर्मके बन्धनमें बँधे हुए हैं, इसलिये पूर्वमें जैसा कर्म किया गया है, वही इस समय भोगना पड़ रहा है॥ १२॥

प्राणी हँसते हुए तो कर्म करता है और रोते हुए उसका फल भोगता है। कोई किसीको न सुख देनेवाला

है और न ही किसीको दुःख देनेवाला है॥ १३॥

'कोई दूसरा सुख और दुःख देनेवाला है'—यह दुर्बुद्धि मानी गयी है। 'मैं ही करता हूँ' यह मिथ्या ज्ञान कहा जाता है। [प्राणीको] अपने कर्मोंसे दुःख होता है और उसी कर्मसे सुख भी होता है, इसलिये कर्मकी पूजा होती है; सब कुछ कर्ममें ही स्थित है॥ १४-१५॥

हे माता! तुम, मैं और ये जीव आदि जो भी हैं—वे सब कर्मसे बँधे हुए हैं, इसलिये तुम किसी प्रकारका सोच मत करो॥ १६॥

सूतजी बोले—इस प्रकार अपने पुत्रके ज्ञानपूर्ण वचनको सुनकर पुत्रशोकसे युक्त एवं दुःखित उस गायने यह कहा—॥ १७॥

गाय बोली—हे वत्स! मैं सब जानती हूँ कि सभी प्राणी कर्मके अधीन हैं, किंतु मोहसे ग्रस्त होनेके कारण मैं बारंबार दुःख प्राप्त कर रही हूँ। मैंने [तुम्हारी ममतावश] बहुत रुदन भी किया, किंतु तब भी दुःख शान्त नहीं हो रहा है। तब यह बात सुनकर बछड़ेने मातासे यह कहा—॥ १८-१९॥

बछड़ा बोला—यदि तुम ऐसा जानती हो, तो फिर रोना कैसा! कुछ भी करके उसका भोग करना ही पड़ता है, अतः अब दुःख छोड़ो॥ २०॥

सूतजी बोले—पुत्रकी यह बात सुनकर उसकी माता बहुत दुःखित हुई। इसके बाद लम्बी साँस लेकर गायने बछड़ेसे यह वचन कहा—॥ २१॥

गाय बोली—हे पुत्र! मेरा दुःख तो तभी दूर होगा, जब वैसा ही दुःख इस ब्राह्मणको भी होगा; यह मैं सत्य कह रही हूँ॥ २२॥

हे पुत्र! मैं प्रातःकाल उसे अवश्य ही दोनों सींगोंसे मारूँगी और तब घायल होनेपर इसके प्राण अवश्य छूट जायँगे; इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

बछड़ा बोला—हे मातः! तुमने पूर्वजन्ममें जो कर्म किया है, उसका फल इस समय भोग रही हो और अब इस ब्रह्महत्याका फल किस प्रकार भोगोगी?॥ २४॥

हे माता! पुण्य और पापके समान होनेपर भारतमें जन्म प्राप्त होता है और भोगके द्वारा उन दोनोंके नष्ट होनेपर मुक्ति प्राप्त होती है॥ २५॥

कभी-कभी कर्मके द्वारा कर्मका नाश हो जाता है तो कभी वह कर्म भोगका भी कारण बनता है। इसलिये तुम पुनः इस प्रकारका कर्म करनेके लिये तत्पर मत होओ। मैं कहाँसे आज तुम्हारा पुत्र हूँ और कहाँसे तुम मेरी माता हो; अतः पुत्रत्व और मातृत्वका अभिमान व्यर्थ है—तुम इसपर विचार करो॥ २६-२७॥

तुम विचार करो कि कौन किसकी माता और कौन किसका पिता है? कौन किसका स्वामी और कौन किसकी स्त्री है; यहाँपर कोई भी किसीका नहीं है, सभी अपने किये हुए कर्मका फल भोगते हैं॥ २८॥

हे मातः! ऐसा विचारकर आपको धैर्यसे दुःखका त्याग करना चाहिये और परलोकमें सुखकी इच्छासे सद्धर्मका आचरण करना चाहिये॥ २९॥

गाय बोली—हे पुत्र! [यद्यपि] मैं यह जानती हूँ, किंतु यह मोह मुझे नहीं छोड़ता। उसने तुम्हें जिस प्रकारका दुःख दिया है, मैं वैसा ही दुःख उसे भी दूँगी। उसके बाद मैं वहाँ जाऊँगी, जहाँ ब्रह्महत्याका नाश होता है, वह स्थान मैंने देखा है, जिससे मेरी हत्या दूर हो जायगी॥ ३०-३१॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! अपनी माता उस गायकी बात सुनकर बछड़ा चुप हो गया और [इसके आगे] कुछ भी नहीं कह सका॥ ३२॥

हे मुनीश्वरो! तब उन दोनोंकी यह अद्भुत बात सुनकर वह तीर्थयात्री ब्राह्मण विस्मित होकर मनमें विचार करने लगा कि प्रातःकाल इस अद्भुत घटनाको देखकर ही मुझे जाना चाहिये; फिर मुझे उस [ब्रह्महत्याविनाशक] स्थानपर अवश्य चलना चाहिये॥ ३३-३४॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! वह मातृभक्त ब्राह्मण मनमें ऐसा निश्चयकर सेवकसहित अति विस्मित हो रात्रिमें सो गया॥ ३५॥

इसके बाद प्रातःकाल होनेपर गृहपति ब्राह्मण उठा और उस पथिकको जगाने लगा तथा उससे यह वचन कहने लगा—॥ ३६॥

ब्राह्मण बोला—[हे पथिक!] तुम अभीतक क्यों सो रहे हो? प्रातःकाल हो गया है, अतः जहाँ जानेकी इच्छा हो, उस स्थानके लिये अपनी यात्रा

आरम्भ करो। तब उसने कहा—हे ब्रह्मन्! सुनिये, मेरे सेवकके शरीरमें वेदना है, अतः मुहूर्तभर रुककर हम चले जायँगे॥ ३७-३८॥

सूतजी बोले—इस प्रकार बहाना बनाकर उस अद्भुत तथा आश्चर्यजनक सम्पूर्ण घटनाके विषयमें जाननेके लिये वह व्यक्ति पुनः सो गया। तदनन्तर गाय दुहनेके समय कार्यवश कहीं जानेकी इच्छावाले उस [गृहपति] ब्राह्मणने अपने पुत्रसे कहा—॥ ३९-४०॥

पिता बोला—हे पुत्र! मैं कार्यवश फिर कहीं अन्यत्र जा रहा हूँ; तुम सावधानीपूर्वक अपनी इस गायको दुह लेना॥ ४१॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] ऐसा कहकर वह ब्राह्मणश्रेष्ठ कहीं चला गया। फिर पुत्र उठा और उसने बछड़ेको खोला॥ ४२॥

उसी समय उसकी माता गाय दुहनेके लिये स्वयं आयी। तब ब्राह्मणपुत्र कोहनीसे मारे जानेके कारण दुखी बछड़ेको दूधकी इच्छासे बाँधनेके लिये जब गायके पास ले गया, तब गाय क्रोधमें भरकर उसे सींगसे मारने लगी॥ ४३-४४॥

तब मर्मस्थानमें चोट खाया हुआ वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसी समय सब लोग एकत्रित हो गये। 'गायने बालकको मार डाला, जल लाओ, जल लाओ' इस प्रकार कहते हुए वे जहाँ उसके पिता आदि थे, वहाँ पहुँचे। जबतक उसे बचानेका प्रयत्न किया गया, इतनेमें वह बालक मर गया॥ ४५-४६॥

बालकके मर जानेपर वहाँ हाहाकार मच गया; उसकी माता दुखी हो उठी और बारंबार रोने लगी॥ ४७॥

'अब मैं क्या करूँ! कहाँ जाऊँ! कौन मेरे दुःखको दूर करेगा'—इस प्रकार विलाप करके उसने गायको मारकर उसका बन्धन खोल दिया॥ ४८॥

श्वेतवर्णकी वह गाय [ब्रह्महत्याके पापसे] श्यामवर्ण हो गयी। सभी लोग आपसमें जोर-जोरसे कहने लगे—देखिये, यह कैसा आश्चर्य है!॥ ४९॥

तब यात्री ब्राह्मण यह आश्चर्य देखकर चल दिया और वह गाय जहाँ गयी, वहाँ उसीके पीछे-पीछे वह ब्राह्मण भी गया॥ ५०॥

वह गाय अपनी पूँछ ऊपर उठाये शीघ्र ही नर्मदा नदीकी ओर आकर इन नन्दिकेश्वरके निकट नर्मदा नदीके जलमें तीन बार अवगाहन करके पुनः श्वेतवर्ण हो गयी। फिर वह जैसे आयी थी, वैसे चली गयी; इससे ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो गया। वह बोला—अहो! ब्रह्महत्याका नाश करनेवाला यह तीर्थ परम धन्य है। तब स्वयं उस ब्राह्मणने सेवकके साथ वहीं स्नान किया। स्नान करके उस नदीकी प्रशंसा करते हुए वे दोनों चल दिये; इसके बाद मार्गमें आभूषणसे भूषित कोई सुन्दरी स्त्री उन्हें मिली॥ ५१—५४॥

उसने पूछा—हे पथिक! आप चकित होकर कहाँ जा रहे हैं? हे विप्रवर! छल त्यागकर आप मेरे सामने सत्य-सत्य कहिये॥ ५५॥

सूतजी बोले—उस स्त्रीकी बात सुनकर ब्राह्मणने सारी घटना यथार्थ रूपमें बता दी; फिर स्त्रीने उस ब्राह्मणसे कहा—तुम यहाँ रुको। तब उसकी बात सुनकर वह ब्राह्मण रुक गया और विनम्र होकर बोला—तुम क्या कहती हो? मुझे यह बताओ॥ ५६-५७॥

तब वह पुनः बोली—'तुमने जिस स्थलको अभी देखा है, वहीं अपनी माताकी अस्थियोंको विसर्जित कर दो। अन्यत्र क्यों जाते हो? हे पथिकश्रेष्ठ! [ऐसा करनेसे] तुम्हारी माता साक्षात् दिव्य तथा उत्तम शरीर धारणकर शीघ्र ही शिवकी [कृपासे] सद्गतिको प्राप्त कर लेंगी। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीके शुभ अवसरमें यहाँ सर्वदा गंगाजी आती हैं। आज ही वह सप्तमी तिथि है और वह गंगा मैं ही हूँ तथा वहीं जा भी रही हूँ' हे मुनीश्वरो! यह कहकर [स्त्रीरूपधारी] वे गंगाजी अन्तर्धान हो गयीं॥ ५८—६१॥

इसके बाद उस ब्राह्मणने भी लौटकर माताकी आधी ही अस्थियोंको अपने वस्त्रसे ज्यों ही उस तीर्थमें विसर्जित किया, तभी एक विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया॥ ६२॥

उसने दिव्य शरीर धारण की हुई अपनी माताको देखा; माताने उससे कहा—[हे पुत्र!] तुम धन्य हो, कृतकृत्य हो; तुमने अपने कुलको पवित्र कर दिया, तुम्हारे धन, धान्य, आयु एवं वंशकी वृद्धि हो—बार-बार अपने पुत्रको इस प्रकारका आशीर्वाद देकर वे स्वर्ग

चली गयीं॥ ६३-६४॥

वहाँपर बहुत समयतक अत्युत्तम परम सुख भोगकर शिवकृपासे उन्होंने श्रेष्ठ गति प्राप्त की॥ ६५॥

इसके बाद उसका पुत्र वह ब्राह्मण भी अस्थियाँ विसर्जितकर प्रसन्न मनवाला हो गया एवं शुद्धचित्त हो अपने घर चला गया॥ ६६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके नन्दिकेश्वरलिंगमाहात्म्यवर्णनमें ब्राह्मणीस्वर्गतिवर्णन नामक छठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

नन्दिकेश्वरलिंगका माहात्म्य-वर्णन

ऋषिगण बोले—हे सूत! हे प्रभो! वैशाखमासके शुक्लपक्षकी सप्तमीके दिन नर्मदानदीमें गंगाजी कैसे आयी थीं; इसे विशेषरूपसे बताइये। हे महामते! उस स्थानपर शिवजी नन्दिकेश नामसे कैसे प्रसिद्ध हुए; आप इस वृत्तान्तको भी अत्यन्त प्रीतिपूर्वक कहिये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठो! आपलोगोंने नन्दिकेशसे सम्बन्धित यह बहुत ही उत्तम बात पूछी है; अब मैं उसका वर्णन करता हूँ, इसके सुननेमात्रसे पुण्यकी वृद्धि होती है। [पूर्व समयमें] किसी ब्राह्मणकी ऋषिका नामक एक कन्या थी; उसने अपनी उस कन्याका विवाह विधानपूर्वक किसी ब्राह्मणसे कर दिया॥ ३-४॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! पूर्वजन्मके कर्मके प्रभावसे वह ब्राह्मणपत्नी पातिव्रत्यधर्ममें परायण होनेपर भी बाल्यावस्थामें ही विधवा हो गयी॥ ५॥

तब वह ब्राह्मणपत्नी ब्रह्मचर्यव्रतके पालनमें तत्पर हो, पार्थिवपूजनपूर्वक कठोर तप करने लगी॥ ६॥

उसी समय महामायावी 'मूढ' नामक बलवान् दुष्ट असुर कामबाणसे पीड़ित होकर उस स्थानपर गया और तपस्या करती हुई उस परम सुन्दरी स्त्रीको देखकर वह अनेक प्रकारका प्रलोभन देते हुए उसके साथ सहवासकी याचना करने लगा॥ ७-८॥

हे मुनीश्वरो! उस समय शिवध्यानमें परायण उस सुव्रता स्त्रीने कामभावनासे उसकी ओर देखातक नहीं। वह अत्यन्त तपोनिष्ठ तथा शिवध्यानमें मग्न थी। अत: तपस्यामें संलग्न उस ब्राह्मणीने उसका सम्मान भी नहीं किया॥ ९-१०॥

तब उस स्त्रीके द्वारा तिरस्कृत हुए उस मूर्ख दैत्यने उसपर अत्यन्त क्रोध किया और उसे अपना विकट रूप दिखाया॥ ११॥

इसके बाद वह दुष्टात्मा [राक्षस] उस ब्राह्मणीको भयकारक दुर्वचन कहने लगा तथा उसे अनेक प्रकारसे डराने लगा। तब शिवपरायणा वह कृशांगी द्विजपत्नी भयभीत होकर प्रेमपूर्वक बारंबार 'शिव-शिव'—ऐसा उच्चारण करने लगी॥ १२-१३॥

अत्यन्त व्याकुल एवं शिवनामका जप करती हुई वह स्त्री अपने धर्मकी रक्षाके लिये जब शिवजीकी शरणमें चली गयी, तब शरणागतकी रक्षा, सदाचारकी स्थापना तथा उस ब्राह्मणीके आनन्दके लिये सदाशिव वहीं प्रकट हो गये॥ १४-१५॥



तत्पश्चात् भक्तवत्सल शिवजीने कामपीड़ित उस मूढ नामक दैत्यको उसी समय भस्म कर दिया॥ १६॥

इसके बाद भक्तोंकी रक्षा करनेमें दक्ष बुद्धिवाले

शिवजीने दयादृष्टिसे उसकी ओर देखकर 'वर माँगो'—इस प्रकार कहा॥ १७॥

वह पतिव्रता ब्राह्मणी शिवजीके इस वचनको सुनकर उनके मनोहर तथा आनन्दप्रद रूपकी ओर देखने लगी। तदनन्तर उत्तम विचारोंवाली वह पतिव्रता [ब्राह्मणी] सुख देनेवाले महेश्वर शिवको प्रणाम करके सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगी॥ १८-१९॥

ऋषिका बोली—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप दीनोंके बन्धु, सबके ईश्वर तथा सर्वदा भक्तोंकी रक्षा करनेवाले हैं॥ २०॥

[हे प्रभो!] आपने इस मूढ नामक दैत्यसे मेरे धर्मकी रक्षा की और आपने जो इसका वध किया है, उससे आपने [सम्पूर्ण] जगत्‌की भी रक्षा की है॥ २१॥

अब आप मुझे अपने चरणोंमें सदा स्थिर रहनेवाली श्रेष्ठ भक्ति प्रदान कीजिये। हे नाथ! यही मेरा वर है; इससे अधिक दूसरा वर क्या हो सकता है! हे विभो! हे महेश्वर! मेरी एक और प्रार्थना आप सुनें—आप लोककल्याणके निमित्त यहीं पर निवास कीजिये॥ २२-२३॥

सूतजी बोले—इस प्रकार महादेवकी स्तुतिकर उत्तम व्रतवाली वह ऋषिका चुप हो गयी; तब दयालु शिवजी कहने लगे—॥ २४॥

गिरिश बोले—हे ऋषिके! तुम उत्तम चरित्रवाली हो और तुम मुझमें विशेष रूपसे भक्ति रखती हो, इसलिये तुमने जो-जो वर माँगा, उन सभी वरोंको मैंने तुम्हें प्रदान किया॥ २५॥

इसी अवसरपर शिवजीको प्रकट हुआ जानकर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता हर्षयुक्त होकर वहाँ पहुँच गये। हे विप्रो! उन सभीने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक शिवजीको प्रणामकर उनका पूजन किया और सिर झुकाकर हाथ जोड़कर प्रसन्न चित्तसे उनकी स्तुति की॥ २६-२७॥

इसी समय स्वर्नदी गंगाजीने [वहाँ आकर] साध्वी ऋषिकाके भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नचित्त होकर उससे कहा—॥ २८॥

गंगाजी बोलीं—[हे साध्वि!] तुम वैशाख महीनेमें एक दिन मेरे कल्याणके लिये अपने समीपमें मुझे रहनेका वचन दो, जिससे मैं एक दिन तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करूँ॥ २९॥

सूतजी बोले—गंगाजीका वचन सुनकर श्रेष्ठ व्रतवाली उस साध्वीने लोकहितके लिये प्रेमपूर्वक यह वचन कहा—'ऐसा ही हो'॥ ३०॥

शिवजी भी उसके आनन्दके लिये उसके द्वारा निर्मित उस पार्थिव लिंगमें प्रसन्न होकर अपने पूर्णांशसे प्रविष्ट हो गये॥ ३१॥

इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता तथा गंगाजी प्रसन्न हो शिवजीकी तथा उस [ब्राह्मणी]-की प्रशंसा करने लगे और अपने-अपने स्थानको चले गये। उसी दिनसे इस प्रकारका यह परम पावन तीर्थ हो गया और शिवजी भी वहाँ सभी पापोंका विनाश करनेवाले नन्दिकेश नामसे प्रसिद्ध हो गये॥ ३२-३३॥

हे द्विजो! तभीसे गंगाजी भी सबके कल्याणकी इच्छासे तथा मनुष्योंसे ग्रहण किया हुआ अपना पाप धोनेके लिये प्रत्येक वर्ष इस दिन यहाँ आती हैं॥ ३४॥

मनुष्य वहाँ स्नानकर और भलीभाँति नन्दिकेश्वरकी पूजाकर ब्रह्महत्या आदि सभी पापोंसे छूट जाता है॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें नन्दिकेश्वरशिवलिंगमाहात्म्यवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

पश्चिम दिशाके शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें महाबलेश्वरलिंगका माहात्म्य-कथन

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! अब पश्चिम दिशामें जो-जो लिंग भूतलपर प्रसिद्ध हैं, उन शिवलिंगोंको सद्भक्तिपूर्वक सुनिये॥ १॥

कपिला नगरीमें कालेश्वर एवं रामेश्वर नामक दो महादिव्य लिंग हैं, जो दर्शनमात्रसे पापोंको नष्ट करनेवाले हैं। पश्चिम सागरके तटपर महासिद्धेश्वर लिंग बताया गया है, जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षतक प्रदान करनेवाला है॥ २-३॥

पश्चिम समुद्रके तटपर गोकर्ण नामक उत्तम क्षेत्र है, जो ब्रह्महत्या आदि पापोंको नष्ट करनेवाला और सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। गोकर्ण क्षेत्रमें करोड़ों शिवलिंग हैं और पद-पदपर असंख्य तीर्थ हैं। इस विषयमें अधिक क्या कहें, गोकर्णक्षेत्रमें स्थित सभी लिंग शिवस्वरूप हैं एवं वहाँका समस्त जल तीर्थस्वरूप है॥ ४—६॥

हे तात! महर्षियोंके द्वारा गोकर्णमें स्थित सभी लिंगों एवं तीर्थोंकी महिमाका वर्णन पुराणोंमें किया गया है। [गोकर्णक्षेत्रमें स्थित] महाबलेश्वर शिवलिंग कृतयुगमें श्वेतवर्ण, त्रेतामें अतीव लोहितवर्ण, द्वापरमें पीतवर्ण तथा कलियुगमें श्यामवर्णका हो जाता है॥ ७-८॥

सातों पातालोंको आक्रान्त करनेवाला वह महाबलेश्वरलिंग घोर कलियुग प्राप्त होनेपर कोमल हो जायगा। महापाप करनेवाले लोग भी यहाँ गोकर्णक्षेत्रमें [विराजमान] महाबलेश्वर लिंगकी पूजाकर शिवपदको प्राप्त हुए हैं॥ ९-१०॥

हे मुनिगण! जो लोग गोकर्णक्षेत्रमें जाकर उत्तम नक्षत्रयुक्त दिनमें भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करते हैं, वे [साक्षात्] शिवस्वरूप ही हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ११॥

जिस किसी भी समयमें जो कोई भी मनुष्य गोकर्णक्षेत्रमें स्थित उस शिवलिंगका पूजन करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। वहाँपर शिवजी ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंका हित करनेकी इच्छासे महाबल नामसे सदा निवास करते हैं॥ १२-१३॥

रावण नामक राक्षसने कठोर तपके द्वारा उस लिंगको प्राप्तकर गोकर्णमें स्थापित किया था। गोकर्णमें गणेश, विष्णु, ब्रह्मा, महेन्द्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, सभी आदित्य, सभी वसु, दोनों अश्विनीकुमार, नक्षत्रोंके सहित चन्द्रमा—विमानसे चलनेवाले ये सभी देवता अपने-अपने पार्षदोंके साथ उन [महाबलेश्वर शिव]-को प्रसन्न करनेके लिये पूर्वद्वारपर विराजमान रहते हैं॥ १४—१६॥

यम, स्वयं मृत्यु, साक्षात् चित्रगुप्त तथा अग्निदेव, सभी पितरों एवं रुद्रोंके साथ दक्षिण द्वारपर स्थित रहते हैं। नदियोंके स्वामी वरुण गंगा आदि नदियोंके साथ पश्चिम द्वारपर स्थित होकर महाबलकी सेवा करते हैं॥ १७-१८॥

वायु, कुबेर, देवेश्वरी भद्रकाली, चण्डिका आदि देवता तथा देवियाँ मातृकाओंके साथ उत्तर द्वारपर स्थित रहती हैं॥ १९॥

सभी देवता, गन्धर्व, पितर, सिद्ध, चारण, विद्याधर, किंपुरुष, किन्नर, गुह्यक, खग, नानाविध पिशाच, वेताल, महाबली दैत्य, शेष आदि नाग, सभी सिद्ध एवं मुनिगण उन महाबलेश्वर देवका स्तवन करते हैं और उनसे इच्छित मनोरथोंको प्राप्तकर सुखपूर्वक रमण करते हैं॥ २०—२२॥

वहाँ बहुतसे लोगोंने घोर तप किया और उन प्रभुकी पूजाकर इस लोक तथा परलोकमें भी सुख देनेवाली सिद्धि प्राप्त की है। हे द्विजो! गोकर्णक्षेत्रमें स्थित यह महाबलेश्वर नामक शिवलिंग भलीभाँति पूजा तथा स्तवन किये जानेपर [साक्षात्] मोक्षद्वार ही है—ऐसा कहा गया है॥ २३-२४॥

माघमासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन महाबलेश्वरका पूजन विशेषरूपसे मुक्ति प्रदान करता है, इस दिन तो पूजा करनेपर पापियोंका भी समुद्धार हो जाता है॥ २५॥

इस शिवचतुर्दशीमें महोत्सवको देखनेकी इच्छावाले चारों वर्णोंके मनुष्य सभी देशोंसे यहाँ आते हैं। [ब्रह्मचारी आदि] चारों आश्रमोंके लोग, स्त्री, वृद्ध तथा बालक वहाँ आकर देवेश्वरका दर्शनकर महाबलेश्वरके प्रभावसे कृतकृत्य हो जाते हैं। भगवान् शिवके उस महाबलेश्वर नामक लिंगका पूजन करके एक चाण्डाली भी तत्क्षण शिवलोकको प्राप्त हो गयी थी॥ २६—२८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें महाबलमाहात्म्यवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

संयोगवश हुए शिवपूजनसे चाण्डालीकी सद्गतिका वर्णन

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महाभाग! आप परम शैव हैं, अतः आप धन्य हैं, हे विभो! वह चाण्डाली कौन थी, उसकी कथा कहिये॥ १॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! सुननेवालोंकी भक्तिको बढ़ानेवाली तथा शिवके प्रभावसे मिश्रित उस अत्यन्त अद्भुत कथाको आपलोग भक्तिपूर्वक सुनिये॥ २॥

वह चाण्डाली पूर्वजन्ममें सभी लक्षणोंसे समन्वित तथा चन्द्रमाके समान मुखवाली सौमिनी नामक ब्राह्मणकन्या थी। हे द्विजो! सौमिनीके युवती हो जानेपर उसके पिताने किसी ब्राह्मणपुत्रसे विधिपूर्वक उसका विवाह सम्पन्न कर दिया॥ ३-४॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! तदनन्तर नवीन यौवनशालिनी वह उत्तम व्रतवाली सौमिनी पतिको प्राप्त करके उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगी॥ ५॥

हे द्विजो! [कुछ काल बीतनेके पश्चात्] उस सौमिनीका नवयुवक ब्राह्मण पति रोगग्रस्त हो गया और कालयोगसे मृत्युको प्राप्त हो गया॥ ६॥

पतिके मर जानेपर सुशील तथा उत्तम आचारवाली उस स्त्रीने दुःखित तथा व्यथितचित्त होकर कुछ काल अपने घरमें निवास किया। उसके अनन्तर विधवा होते हुए भी युवती होनेके कारण कामसे आविष्ट मनवाली वह व्यभिचारिणी हो गयी॥ ७-८॥

तब कुलको कलंकित करनेवाले उसके इस कुकर्मको जानकर उसके कुटुम्बियोंने परस्पर मिलकर उसके बालोंको खींचते हुए उसे दूर ले जाकर छोड़ दिया॥ ९॥

कोई शूद्र उसे वनमें स्वच्छन्द विचरण करती हुई देख अपने घर ले आया और उसने उसे अपनी पत्नी बना लिया॥ १०॥

अब वह प्रतिदिन मांसका भोजन करती, मदिरा पीती और व्यभिचारनिरत रहती थी। इस प्रकार उस शूद्रके सम्बन्धसे उसने एक कन्याको जन्म दिया॥ ११॥

किसी समय पतिके कहीं चले जानेपर उस व्यभिचारिणी सौमिनीने मद्यपान किया और वह मांसके आहारकी इच्छा करने लगी॥ १२॥

इसके बाद रात्रिके समय घोर अन्धकारमें तलवार लेकर वह घरके बाहर गोष्ठमें गायोंके साथ बँधे हुए मेषोंके बीच गयी। उस समय मांससे प्रेम रखनेवाली उस दुर्भगाने मद्यके नशेके कारण बिना विचार किये चिल्लाते हुए एक बछड़ेको मेष समझकर मार डाला॥ १३-१४॥

मरे हुए उस पशुको घर लाकर बादमें उसे बछड़ा जानकर वह स्त्री भयभीत हो गयी और किसी पुण्य कर्मसे [पश्चात्तापपूर्वक] 'शिव-शिव'—ऐसा उच्चारण करने लगी। क्षणभर शिवजीका ध्यान करके मांसके आहारकी इच्छावाली उसने उस बछड़ेको ही काटकर अभिलषित भोजन कर लिया॥ १५-१६॥

हे द्विजो! इस प्रकार बहुत-सा समय बीतनेके पश्चात् वह सौमिनी कालके वशीभूत हो गयी और यमलोक चली गयी। यमराजने भी उसके पूर्वजन्मके कर्म तथा धर्मका निरीक्षणकर उसे नरकसे निकालकर चाण्डाल जातिवाली बना दिया॥ १७-१८॥

यमराजपुरीसे लौटकर वह [सौमिनी] चाण्डालीके गर्भसे उत्पन्न हुई। वह जन्मसे अन्धी एवं कोयलेके समान काली थी। जन्मसे अन्धी, बाल्यावस्थामें ही माता-पितासे रहित और महाकुष्ठ रोगसे ग्रस्त उस दुष्टासे किसीने विवाह भी नहीं किया॥ १९-२०॥

उसके बाद वह अन्धी चाण्डाली भूखसे पीड़ित एवं दीन हो लाठी हाथमें लेकर जहाँ-तहाँ डोलती और चाण्डालोंके जूठे अन्नसे अपने पेटकी ज्वाला शान्त करती थी। इस प्रकार महान् कष्टसे अपनी अवस्थाका बहुत भाग बिता लेनेके पश्चात् वृद्धावस्थासे ग्रस्त शरीरवाली वह घोर दुःख पाने लगी॥ २१-२२॥

किसी समय उस चाण्डालीको ज्ञात हुआ कि आगे आनेवाली शिवतिथिमें बड़े-बड़े लोग उस गोकर्णक्षेत्रकी ओर जा रहे हैं॥ २३॥

वह चाण्डाली भी वस्त्र एवं भोजनके लोभसे महाजनोंसे माँगनेके लिये धीरे-धीरे [गोकर्णकी ओर]

चल पड़ी। वहाँ जाकर वह हाथ फैलाकर दीनवचन बोलती हुई और महाजनोंसे प्रार्थना करती हुई इधर-उधर घूमने लगी॥ २४-२५॥

इस प्रकार याचना करती हुई उस चाण्डालीकी फैली हुई अंजलिमें एक पुण्यात्मा यात्रीने बेलकी मंजरी डाल दी। बार-बार विचार करके 'यह खानेयोग्य नहीं है'—ऐसा समझकर भूखसे व्याकुल उसने अंजलिमें पड़ी हुई उस मंजरीको दूर फेंक दिया॥ २६-२७॥

उसके हाथसे छूटी हुई वह बिल्वमंजरी शिवरात्रिमें भाग्यवश किसी शिवलिंगके मस्तकपर जा गिरी॥ २८॥

इस प्रकार चतुर्दशीके दिन यात्रियोंसे बार-बार याचना करनेपर भी दैवयोगसे उसे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। तब इस तरहसे अनजानेमें उसका शिवचतुर्दशीका उत्तम व्रत और अत्यन्त आनन्ददायक जागरण भी हो गया। उसके पश्चात् प्रभात होनेपर वह स्त्री महान् शोकसे युक्त होकर धीरे-धीरे अपने घरके लिये चल पड़ी॥ २९—३१॥

बहुत समयके उपवाससे थक चुकी वह पग-पगपर गिरती हुई उसी (गोकर्णक्षेत्रकी) भूमिपर चलते-चलते प्राणहीन होकर गिर पड़ी। उसने शिवजीकी कृपासे परम पद प्राप्त किया; शिव-गण उसे विमानपर बैठाकर शीघ्र ही ले गये॥ ३२-३३॥

हे ब्राह्मणो! पूर्वजन्ममें इस व्यभिचारिणी स्त्रीने जो अज्ञानमें शिवजीके नामका उच्चारण किया था, उसी पुण्यसे उसने दूसरे जन्ममें महाबलेश्वरके दिव्य स्थानको प्राप्त किया॥ ३४॥

उसने गोकर्णमें शिवतिथिको उपवास करके शिवके मस्तकपर बिल्वपत्र अर्पितकर पूजन किया तथा रात्रिमें जागरण किया। निष्कामभावसे किये गये इस पुण्यका ही फल है कि वह आज भी महाबलेश्वरकी कृपासे सुख भोग रही है॥ ३५-३६॥

[हे ब्राह्मणो!] शिवजीका इस प्रकारका महाबलेश्वर नामक महालिंग शीघ्र ही सभी पापोंको नष्ट करनेवाला तथा परमानन्द प्रदान करनेवाला है॥ ३७॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने महाबलेश्वर नामक उत्तम शिवलिंगके परम माहात्म्यका वर्णन आपलोगोंसे किया। अब मैं उसके अन्य अद्भुत माहात्म्यको भी कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे शीघ्र ही शिवजीके प्रति भक्ति उत्पन्न होती है॥ ३८-३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें चाण्डालीसद्गतिवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

महाबलेश्वर शिवलिंगके माहात्म्य-वर्णन-प्रसंगमें राजा मित्रसहकी कथा

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] समृद्धिसम्पन्न इक्ष्वाकुवंशमें परम धार्मिक तथा सभी धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ मित्रसह नामक राजा था॥ १॥

उस राजाकी मदयन्ती नामक धर्मनिष्ठ तथा कल्याणमयी पत्नी थी, जो कि राजा नलकी प्रसिद्ध गुणोंवाली साध्वी दमयन्तीके समान सतीत्वसम्पन्न थी॥ २॥

आखेटमें रुचि रखनेवाला वह राजा मित्रसह एक बार विशाल सेनाको साथ लेकर घने वनमें गया॥ ३॥

वहाँ घूमते हुए उस राजाने साधुओंको दुःख देनेवाले महादुष्ट तथा नीच कमठ नामक राक्षसको मार डाला। तब उस निशाचरका पापी छोटा भाई 'मैं इस राजाको छलसे जीत लूँगा'—ऐसा निश्चय करके कपटरूप धारणकर राजाके पास गया॥ ४-५॥

उसे विनम्र आकृतिवाला तथा सेवा करनेके लिये आया हुआ देखकर उस राजाने बिना सोचे-समझे ही उसे रसोईका अध्यक्ष बना दिया॥ ६॥

उसके अनन्तर कुछ समयतक उस वनमें विहार करके वह राजा शिकारसे निवृत्त हो उस वनको छोड़कर आनन्दपूर्वक अपने नगरको लौट आया॥ ७॥

उसके बाद राजाने पिताका श्राद्धदिन आनेपर अपने गुरु वसिष्ठजीको आमन्त्रितकर उन्हें घर बुलाया और भक्तिपूर्वक भोजन कराया॥ ८॥

रसोइयेका रूप धारण करनेवाले उस राक्षसने वसिष्ठजीके सामने मनुष्यके मांससे मिश्रित शाकामिष परोसा; तब गुरु इसे देखकर कहने लगे— ॥ ९ ॥

गुरुजी बोले—हे राजन्! तुम्हें धिक्कार है, जो कि कपटी तथा दुष्ट तुमने मुझे मनुष्यका मांस परोस दिया; अतः तुम राक्षस हो जाओगे। पुनः इसे उस राक्षसका कृत्य जानकर उन गुरुने विचार करके उस शापकी अवधि बारह वर्षपर्यन्त कर दी ॥ १०-११ ॥

तब वह राजा [गुरुके द्वारा बिना सोचे-समझे दिये गये] इस शापको अनुचित जानकर क्रोधसे व्याकुल हो गया और अंजलिमें जल लेकर गुरुको शाप देनेको उद्यत हुआ। तब उसकी धर्मशीला पतिव्रता स्त्री मदयन्तीने उसके चरणोंमें गिरकर उसे गुरुको शाप देनेसे मना किया ॥ १२-१३ ॥

तब राजा अपनी पत्नीकी बातका आदर करके शाप देनेसे रुक गया और उसने जलको अपने चरणोंपर गिरा दिया, जिससे उसके चरण काले पड़ गये ॥ १४ ॥

हे मुनीश्वरो! उसी समयसे वह राजा उस जलके प्रभावसे इस लोकमें कल्माषपाद नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १५ ॥

तदनन्तर ऋषिश्रेष्ठ गुरुके शापसे वह राजा मित्रसह वनमें विचरण करनेवाला भयानक हिंसक राक्षस हो गया। कालान्तक यमके समान राक्षसरूप धारणकर वह राजा वनमें घूमता हुआ अनेक प्रकारके जन्तुओं एवं मनुष्योंका भक्षण करने लगा ॥ १६-१७ ॥

यमराजके समान रूपवाले उस राक्षसने किसी समय वनमें विहार करते हुए किन्हीं नवविवाहित किशोर मुनिदम्पतीको देखा। तब मनुष्यका आहार करनेवाले उस शापग्रस्त राक्षसने किशोर मुनिपुत्रको खानेके लिये इस प्रकार पकड़ लिया, जिस प्रकार व्याघ्र मृगशावकको पकड़ लेता है ॥ १८-१९ ॥

इसके बाद राक्षसद्वारा काँखमें दबाये गये अपने पतिको देखकर उसकी पत्नी भयभीत होकर करुण वचन बोलती हुई उससे प्रार्थना करने लगी ॥ २० ॥

किंतु उसके अनेक बार प्रार्थना करनेपर भी नरभक्षी, निर्दयी तथा दूषित अन्तःकरणवाला वह [राक्षस] ब्राह्मणपुत्रका सिर नोचकर खा गया ॥ २१ ॥

तब अत्यन्त दुःखित उस दीन साध्वी स्त्रीने विलापकर पतिकी अस्थियाँ एकत्रितकर विशाल चिताका निर्माण किया ॥ २२ ॥

उसके बाद पतिका अनुगमन करनेवाली उस ब्राह्मण-पत्नीने अग्निमें प्रवेश करते समय राक्षसरूपधारी राजाको शाप दिया कि 'आजसे यदि तुम किसी स्त्रीसे संगम करोगे, तो उसी क्षण तुम्हारी मृत्यु हो जायगी'—ऐसा कहकर वह पतिव्रता अग्निमें प्रविष्ट हो गयी ॥ २३-२४ ॥

वह राजा भी निर्धारित अवधितक गुरुके शापका अनुभव करके पुनः अपना [वास्तविक] रूप धारणकर प्रसन्न होकर अपने घर चला गया ॥ २५ ॥

ब्राह्मणीके शापको जानकर वैधव्यसे अत्यन्त डरती हुई मदयन्तीने रतिके लिये उत्सुक अपने पतिको रोका ॥ २६ ॥

तब सन्तानविहीन वह राजा राज्यभोगोंसे उदासीन होकर सम्पूर्ण राज्यको छोड़कर वनमें ही चला गया ॥ २७ ॥

उसने अपने पीछे-पीछे आती हुई तथा बार-बार धमकाती हुई विकट आकारवाली दुःखदायिनी ब्रह्महत्याको देखा। उससे पीछा छुड़ानेकी इच्छावाले दुःखितचित्त उस राजाने जप, व्रत, यज्ञ आदि अनेक उपाय किये ॥ २८-२९ ॥

हे ब्राह्मणो! जब तीर्थ-स्नान आदि अनेक उपायोंसे भी उस राजाकी ब्रह्महत्या दूर नहीं हुई, तब वह राजा मिथिलापुरी चला गया। उस ब्रह्महत्याकी चिन्तासे अत्यन्त दुःखित राजा मिथिलापुरीके बाहर उद्यानमें पहुँचा; वहाँ उसने मुनि गौतमको आते हुए देखा ॥ ३०-३१ ॥

राजाने विशुद्ध अन्तःकरणवाले उन महर्षिके पास जाकर उनके दर्शनसे कुछ शान्ति प्राप्त करके बार-बार उन्हें प्रणाम किया ॥ ३२ ॥

उसके अनन्तर ऋषिने उसका कुशल-मंगल पूछा। तब उनकी कृपादृष्टिसे कुछ सुखका अनुभव करके दीर्घ तथा गर्म श्वास लेकर राजाने उनसे कहा— ॥ ३३ ॥

राजा बोले—हे मुने! हे तात! दूसरोंके द्वारा न देखी जा सकनेवाली यह दुस्तर ब्रह्महत्या पग-पगपर धमकी देती हुई मुझे बहुत दुःख दे रही है ॥ ३४ ॥

शापग्रस्त होनेके कारण जो मैंने ब्राह्मणपुत्रका भक्षण किया था, उस पापकी शान्ति हजारों प्रायश्चित्त

करनेपर भी नहीं हो पा रही है॥ ३५॥

हे मुने! [इधर-उधर] घूमते हुए उसकी शान्तिके लिये मेरे द्वारा अनेक उपाय किये गये, फिर भी मुझ पापीकी ब्रह्महत्या निवृत्त नहीं हुई॥ ३६॥

आज मुझे मालूम पड़ता है कि मेरा जन्म सफल हो गया; क्योंकि आपके दर्शनमात्रसे मुझे विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है॥ ३७॥

अत: हे महाभाग! आपके चरणकमलकी शरणमें आये हुए मुझ पापकर्माको शान्ति प्रदान कीजिये, जिससे मैं सुख प्राप्त कर सकूँ॥ ३८॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर करुणासे आर्द्र चित्तवाले गौतमजीने घोर पापोंसे छुटकारा पानेके लिये [राजाको] श्रेष्ठ उपाय बताया॥ ३९॥

गौतमजी बोले—हे राजेन्द्र! तुम धन्य हो, अब तुम महापापोंके भयका त्याग करो; सबपर शासन करनेवाले शिवके रहनेपर उनके शरणागतोंको भय कहाँ?॥ ४०॥

हे राजन्! हे महाभाग! सुनो; महापातकोंको दूर करनेवाला गोकर्ण नामक एक अन्य प्रसिद्ध शिवक्षेत्र है, वहाँपर शिवजी महाबल नामसे स्वयं विराजमान रहते हैं—वहाँ बड़े-से-बड़े पाप भी टिक नहीं सकते॥ ४१-४२॥

महाबलेश्वर लिंग सभी लिंगोंका सार्वभौम सम्राट् है, जो चार युगोंमें चार प्रकारके वर्ण धारण करता है और सभी प्रकारके पापोंको विनष्ट करनेवाला है॥ ४३॥

पश्चिमी समुद्रके तटपर उत्तम गोकर्णतीर्थ स्थित है; वहाँपर जो शिवलिंग है, वह महापातकोंका नाश करनेवाला है। महापापी भी वहाँ जाकर सभी तीर्थोंमें बारंबार स्नानकर महाबलेश्वरकी पूजाकर शैव पदको प्राप्त हुए हैं॥ ४४-४५॥

हे राजेन्द्र! उसी प्रकार तुम भी उस गोकर्ण नामक शिवस्थानमें जाकर उस लिंगका पूजनकर अपने मनोरथको प्राप्त करो। तुम वहाँ सभी तीर्थोंमें स्नानकर महाबलेश्वरका भलीभाँति पूजन करके सभी पापोंसे छुटकारा पाकर शिवलोकको प्राप्त करो॥ ४६-४७॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] इस प्रकार महान् आत्मावाले महर्षि गौतम मुनिसे आज्ञा प्राप्तकर वह राजा अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर गोकर्णतीर्थमें गया और वहाँ सभी तीर्थोंमें स्नानकर महाबलेश्वरकी पूजा करके अपने सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर उसने शिवके परम पदको प्राप्त किया॥ ४८-४९॥

जो [मनुष्य] महाबलेश्वरकी इस प्रिय कथाको नित्य सुनता है, वह इक्कीस पीढ़ीके वंशजोंसहित शिवलोकको जाता है। [हे महर्षियो!] इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे महाबलेश्वर नामक शिवलिंगके सर्वपापनाशक परम अद्भुत माहात्म्यका वर्णन किया॥ ५०-५१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें महाबल नामक शिवलिंगका माहात्म्यवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

उत्तरदिशामें विद्यमान शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें चन्द्रभाल एवं पशुपतिनाथलिंगका माहात्म्य-वर्णन

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! हे सूतजी! शिवजीमें आसक्त चित्तवाले आप धन्य हैं, जो कि आपने महाबलेश्वर लिंगकी यह अद्भुत कथा हमें सुनायी। अब उत्तर दिशामें स्थित जो शिवलिंग हैं, उनका पापनाशक निर्मल माहात्म्य आप सुनायें॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! मैं उत्तर दिशामें विराजमान मुख्य-मुख्य शिवलिंगोंके माहात्म्यका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ; आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ ३॥

गोकर्ण नामक एक दूसरा भी पापनाशक क्षेत्र है; वहाँपर एक पवित्र तथा अति विस्तृत महावन है॥ ४॥

वहाँपर चन्द्रभाल नामक उत्तम तथा सर्वसिद्धि-दायक शिवलिंग है, जिसे रावण सद्भक्तिपूर्वक लाया था।

हे मुनीश्वरो! वहाँपर उस करुणासागर शिवलिंगकी स्थिति सारे संसारके हितके लिये वैद्यनाथ नामक ज्योतिर्लिंगके तुल्य है॥ ५-६ ॥

गोकर्णमें स्नानकर तथा चन्द्रभालका पूजनकर मनुष्य अवश्य ही शिवलोकको प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ ७॥

भक्तोंके ऊपर स्नेह करनेवाले उन चन्द्रभाल नामक शिवकी महिमा बड़ी अद्भुत है; विस्तारसे उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। चन्द्रभाल नामक महादेवके लिंगकी महती महिमाका वर्णन मैंने जिस-किसी प्रकार कर दिया; अब दूसरे लिंगका माहात्म्य सुनिये॥ ८-९ ॥

मिश्रर्षि (मिसरिख) नामक उत्तम तीर्थमें दाधीच नामक शिव-लिंग है, जिसे दधीचिमुनिने परम प्रीतिपूर्वक स्थापित किया था। वहाँ जाकर उस तीर्थमें विधिपूर्वक स्नानकर दाधीचेश्वर शिवलिंगका आदरपूर्वक पूजन अवश्य ही करना चाहिये॥ १०-११ ॥

तीर्थयात्राका फल शीघ्र प्राप्त करनेकी इच्छावालोंको शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये वहाँपर विधिपूर्वक दधीचिकी मूर्तिका पूजन करना चाहिये॥ १२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठो! ऐसा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और इस लोकमें सभी सुख भोगकर परलोकमें सद्गति प्राप्त करता है॥ १३ ॥

नैमिषारण्यमें सभी ऋषियोंद्वारा स्थापित ऋषीश्वर नामक सुखदायक शिवलिंग है। हे मुनीश्वरो! उसके दर्शन एवं पूजनसे पापी लोगोंको भी इस लोकमें भोग तथा परलोकमें मोक्ष प्राप्त होता है॥ १४-१५ ॥

हत्याहरण तीर्थमें पापोंको दूर करनेवाला तथा करोड़ों हत्याओंका नाश करनेवाला शिवलिंग है, उसकी विशेष रूपसे पूजा करनी चाहिये॥ १६ ॥

देवप्रयागतीर्थमें ललितेश्वर नामक शिवलिंग है, उस लिंगकी हमेशा पूजा करनी चाहिये, जिससे सभी प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं॥ १७ ॥

पृथिवीपर प्रसिद्ध नेपाल नामक पुरीमें पशुपतीश्वर नामक शिवलिंग है, जो सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करता है। वह शिवलिंग शिरोभागमात्रसे वहाँ स्थित है, उसकी कथा केदारेश्वरवर्णनके प्रसंगमें कहूँगा॥ १८-१९ ॥

उसके समीप मुक्तिनाथ नामक अत्यन्त अद्भुत शिवलिंग है, उसके दर्शन एवं अर्चनसे भोग तथा मोक्ष प्राप्त होते हैं॥ २० ॥

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे चारों दिशाओंमें स्थित शिवलिंगोंका उत्तम वर्णन किया; अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ २१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें चन्द्रभालपशुपतिनाथलिंगमाहात्म्य-वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

हाटकेश्वरलिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन

ऋषि बोले— हे सूतजी! आप व्यासजीकी कृपासे सब कुछ जानते हैं, कोई भी बात आपसे अज्ञात नहीं है, इसीलिये हमलोग आपसे पूछते हैं॥ १ ॥

आपने पूर्वमें कहा था कि लोकमें सभी जगह शिवलिंगकी पूजा होती है। क्या वह लिंग होनेके कारण ही पूजित है अथवा अन्य कोई कारण है?॥ २ ॥

शिववल्लभा पार्वती लोकमें बाणलिंगरूपा कही जाती हैं। हे सूतजी! इसका क्या कारण है, इस विषयमें आपने जैसा सुना है, वैसा कहिये॥ ३ ॥

सूतजी बोले— हे ब्राह्मणो! हे ऋषिसत्तमो! मैंने व्यासजीसे जो कल्पभेदकी कथा सुनी है, उसीका आज वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग सुनें॥ ४ ॥

पूर्वकालमें दारुवनमें ब्राह्मणोंके साथ जो घटना घटी, उसीको आप लोग सुनें। जैसा मैंने सुना है, वैसा ही कहता हूँ। हे ऋषिसत्तमो! जो दारु नामक श्रेष्ठ वन है, वहाँ नित्य शिवजीके ध्यानमें तत्पर शिवभक्त [ब्राह्मण]

रहा करते थे॥ ५-६॥

हे मुनीश्वरो! वे तीनों कालोंमें सदा शिवजीकी पूजा करते थे और नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति किया करते थे। शिवध्यानमें मग्न रहनेवाले वे शिवभक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण किसी समय समिधा लेनेके लिये वनमें गये हुए थे॥ ७-८॥

इसी बीच उन लोगोंकी परीक्षा लेनेहेतु साक्षात् नीललोहित [भगवान्] शंकर विकट रूप धारणकर वहाँ आये। वे दिगम्बर, भस्मरूप भूषणसे विभूषित तथा महातेजस्वी भगवान् शंकर हाथमें [तेजोमय] लिंगको धारणकर विचित्र लीला करने लगे॥ ९-१०॥

मनसे उन वनवासियोंका कल्याण करनेके लिये भक्तोंसे प्रेम करनेवाले वे शिव स्वयं प्रेमपूर्वक उस वनमें गये। उन्हें देखकर ऋषिपत्नियाँ अत्यन्त भयभीत हो गयीं और अन्य स्त्रियाँ विह्वल तथा आश्चर्यचकित होकर वहीं चली आयीं। कुछ स्त्रियोंने परस्पर हाथ पकड़कर आलिंगन किया, कुछ स्त्रियाँ आपसमें आलिंगन करनेके कारण अत्यन्त मोहविह्वल हो गयीं॥ ११—१३॥

इसी समय सभी ऋषिवर [वनसे समिधा लेकर] आ गये और वे इस आचरणको देखकर [उसे समझ नहीं सके और] दु:खित तथा क्रोधसे व्याकुल हो गये। तब शिवकी मायासे मोहित हुए समस्त ऋषिगण दु:खित हो आपसमें कहने लगे—'यह कौन है, यह कौन है?'॥ १४-१५॥

जब उन दिगम्बर अवधूतने कुछ भी नहीं कहा, तब उन महर्षियोंने भयंकर पुरुषका रूप धारण किये हुए उन शिवजीसे कहा—हे अवधूत! तुम वेदमार्गका लोप करनेवाला यह विरुद्ध आचरण कर रहे हो, अत: तुम्हारा यह विग्रहरूप लिंग [शीघ्र ही] पृथ्वीपर गिर जाय॥ १६-१७॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] उनके ऐसा कहनेपर अद्भुत रूपवाले उन अवधूतवेषधारी शिवका [वह चिन्मय] लिंग शीघ्र ही पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ १८॥

अग्नितुल्य उस माहेश्वरलिंगने सामने स्थित सभी वस्तुओंको जला डाला और इतना ही नहीं, वह फैलकर जहाँ-जहाँ जाता, सब कुछ भस्म कर देता। वह पातालमें तथा स्वर्गमें भी वैसे ही गया; वह पृथ्वीपर सर्वत्र गया और कहीं भी स्थिर न रहा॥ १९-२०॥

सारे लोक व्याकुल हो उठे और वे ऋषिगण अत्यन्त दु:खित हो गये। देवता और ऋषियोंमें किसीको भी अपना कल्याण दिखायी न पड़ा॥ २१॥

जिन देवता और ऋषियोंने शिवजीको नहीं पहचाना, वे सब दु:खित हो आपसमें मिलकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये। हे ब्राह्मणो! वहाँ जाकर उन सभीने ब्रह्माको प्रणाम तथा स्तुतिकर सृष्टिकर्ता ब्रह्मासे सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ २२-२३॥

तब ब्रह्माजी उनका वचन सुनकर उन श्रेष्ठ ऋषियोंको शिवकी मायासे मोहित जानकर सदाशिवको नमस्कारकर कहने लगे—॥ २४॥

ब्रह्माजी बोले—हे ब्राह्मणो! आपलोग ज्ञानी होकर भी निन्दित कर्म कर रहे हैं, तो यदि अज्ञानी लोग ऐसा करें, तो फिर क्या कहा जाय!॥ २५॥

इस प्रकार सदाशिवसे विरोध करके भला कौन कल्याणकी कामना कर सकता है! यदि कोई मध्याह्नकालमें आये हुए अतिथिका सत्कार नहीं करता, तो वह अतिथि उसका सारा पुण्य लेकर और अपना सारा पाप उसको देकर चला जाता है; फिर शिवजीके विषयमें तो कहना ही क्या!॥ २६-२७॥

अत: जबतक यह [शैव] लिंग स्थिर नहीं होता, तबतक तीनों लोकोंमें कहीं भी लोगोंका कल्याण नहीं हो सकता है; मैं यह सत्य कहता हूँ। हे ऋषियो! अब आपलोग मनसे विचार करें और ऐसा उपाय करें, जिससे शिवलिंगकी स्थिरता हो जाय॥ २८-२९॥

सूतजी बोले—ब्रह्माके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ऋषियोंने उन्हें प्रणामकर कहा—हे ब्रह्मन्! अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये? आप उस कार्यके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये। तब उन मुनीश्वरोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सर्वलोकपितामह ब्रह्माजीने उन मुनीश्वरोंसे स्वयं कहा—॥ ३०-३१॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! आपलोग देवी पार्वतीकी आराधना करके उन शिवासे प्रार्थना कीजिये;

यदि वे योनिपीठात्मकरूप धारण कर लें, तो वह शिवलिंग स्थिर हो जायगा॥ ३२॥

हे ऋषिसत्तमो! अब मैं उस उपायको आपलोगोंसे बताता हूँ, आप लोग सुनिये और प्रेमपूर्वक उस विधिका सम्पादन कीजिये; वे [अवश्य] प्रसन्न होंगी॥ ३३॥

अष्टदलवाला कमल बना करके उसपर एक कलश स्थापितकर उसमें दूर्वा तथा यवांकुरोंसे युक्त तीर्थका जल भर देना चाहिये। फिर वेदमन्त्रोंके द्वारा उस कुम्भको अभिमन्त्रित करना चाहिये। इसके बाद [हे महर्षियो!] वेदोक्त रीतिसे उसका पूजन करके शिवका स्मरण करते हुए शतरुद्रिय मन्त्रोंसे कलशके जलसे उस शिवलिंगका अभिषेक करना चाहिये, फिर उन्हीं मन्त्रोंसे लिंगका प्रोक्षण करना चाहिये; तब शिवलिंग प्रशान्त हो जायगा॥ ३४—३६॥

इसके बाद योनिरूपा गिरिजा तथा उत्तम बाणलिंगको स्थापितकर उस प्रतिष्ठित शिवलिंगको पुनः अभिमन्त्रित करना चाहिये। उसके अनन्तर सुगन्ध द्रव्य, चन्दन, पुष्प, धूप एवं नैवेद्य आदिसे पूजाकर प्रणाम, स्तुति तथा मंगलकारी गीत-वाद्यके द्वारा परमेश्वरको प्रसन्न करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वस्तिवाचन करके 'जय' शब्दका उच्चारण करना चाहिये और प्रार्थना करना चाहिये कि हे देवेश! हे संसारको प्रसन्न करनेवाले! आप [हमपर] प्रसन्न होइये; आप ही [संसारके] कर्ता, पालन करनेवाले एवं संहार करनेवाले तथा पूर्णतः विनाशरहित हैं। आप इस जगत्‌के आदि, जगत्‌के कारण एवं जगत्‌के आत्मस्वरूप भी हैं। हे महेश्वर! आप शान्त हो जायँ और सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करें॥ ३७—४१॥

हे ऋषियो! इस प्रकारका अनुष्ठान करनेपर शिवलिंग अवश्य स्थिर हो जायगा। फिर इस त्रैलोक्यमें किसी भी प्रकारका उपद्रव नहीं होगा और सदा सुख रहेगा॥ ४२॥

सूतजी बोले—ब्रह्माके यह कहनेपर वे ब्राह्मण तथा देवता पितामह ब्रह्माजीको प्रणामकर सभी लोकोंको सुखी बनानेकी इच्छासे उन शिवजीकी शरणमें गये॥ ४३॥

उन लोगोंने परम भक्तिसे सदाशिवकी पूजा एवं प्रार्थना की, तब प्रसन्न होकर महेश्वरने उनसे कहा— ॥ ४४॥

महेश्वर बोले—हे देवताओ! हे ऋषियो! आपलोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये। यदि यह शिवलिंग योनिपीठात्मिका (समस्त ब्रह्माण्डका प्रसव करनेवाली) भगवती महाशक्तिके द्वारा धारण किया जाय, तभी आपलोगोंको सुख प्राप्त होगा। पार्वतीके अतिरिक्त अन्य कोई भी मेरे इस स्वरूपको धारण करनेमें समर्थ नहीं है; उन महाशक्तिके द्वारा धारण किये जानेपर शीघ्र ही यह मेरा निष्कल स्वरूप प्रशान्त हो जायगा॥ ४५-४६॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! तब यह सुनकर प्रसन्न हुए देवताओं एवं ऋषियोंने ब्रह्माको साथ लेकर पार्वतीकी प्रार्थना की और पार्वती तथा शिवको प्रसन्न करके पूर्वोक्त विधि सम्पादितकर उत्तम लिंग स्थापित किया॥ ४७-४८॥

इस प्रकार मन्त्रोक्त विधानके अनुसार उन देवताओं एवं ऋषियोंने धर्मकी रक्षाके लिये शिव तथा पार्वतीको प्रसन्न किया॥ ४९॥

तत्पश्चात् सभी देवता, ऋषिगण, ब्रह्मा, विष्णु तथा चराचर त्रिलोकीने शिवजीकी विशेष रूपसे पूजा की॥ ५०॥

तब शिवजी प्रसन्न हो गये और जगदम्बा पार्वती भी प्रसन्न हो गयीं; इसके बाद उन पार्वतीने उस शिवलिंगको पीठरूपसे धारण कर लिया। हे द्विजो! तब शिवलिंगके स्थापित हो जानेपर लोकोंका कल्याण हुआ और वह शिवलिंग तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गया॥ ५१-५२॥

पार्वतीजी तथा शिवका वह विग्रह हाटकेश्वर—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ, उसके पूजनसे सभी लोगोंको सब प्रकारका सुख प्राप्त होता है, इस लोकमें अनेक प्रकारका सुख देनेवाली सम्पूर्ण समृद्धि अधिकाधिक प्राप्त होती है और परलोकमें उत्तम मुक्ति प्राप्त होती है; इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ ५३-५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें लिंगस्वरूपकारणवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

अन्धकेश्वरलिंगकी महिमा एवं बटुककी उत्पत्तिका वर्णन

सूतजी बोले—हे द्विजो! जिस प्रकार शिवजी तीनों लोकोंमें लिंगस्वरूपसे पूजनीय हुए, उस वृत्तान्तको मैंने प्रीतिपूर्वक बता दिया; अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १ ॥

ऋषिगण बोले—हे प्रभो! आप अन्धकेश्वर लिंगकी महिमाका वर्णन कीजिये तथा इसी प्रसंगमें अन्य शिवलिंगोंकी महिमा भी प्रीतिपूर्वक कहिये॥ २ ॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! पूर्व समयमें समुद्रके गर्तका आश्रय लेकर निवास करते हुए देवशत्रु अन्धक नामक दैत्यने त्रैलोक्यको अपने वशमें कर लिया था॥ ३ ॥

वह अत्यन्त पराक्रमशाली दैत्य उस गर्तसे निकलकर प्रजाओंको पीड़ित करनेके पश्चात् पुनः उसी गड्ढेमें प्रवेश कर जाता था। हे मुनीश्वरो! तब दुखी होकर समस्त देवताओंने बारंबार शिवकी प्रार्थना करते हुए उनसे अपना सारा दुःख निवेदन किया॥ ४-५ ॥

सूतजी बोले—तब उन देवगणोंका वचन सुनकर दुष्टोंका संहार करनेवाले एवं सज्जनोंके शरणदाता परमेश्वर प्रसन्न होकर कहने लगे— ॥ ६ ॥

शिवजी बोले—हे देवगण! मैं देवताओंको दुःख देनेवाले उस अन्धक दैत्यका वध करूँगा; आपलोग अपनी सेना लेकर चलिये, मैं भी गणोंके साथ आ रहा हूँ। तब उस गर्तसे देवताओं और ऋषियोंसे द्वेष करनेवाले उस भयंकर अन्धकके निकल जानेपर देवता लोग उस गर्तमें प्रवेश कर गये॥ ७-८ ॥

तब देवताओं एवं दैत्योंने [परस्पर] अत्यन्त भयानक युद्ध किया; शिवजीकी कृपासे देवता उस [युद्ध]-में प्रबल हो गये। देवताओंसे पीड़ित होकर वह ज्यों ही उस गड्ढेमें प्रवेश करने लगा, उसी समय परमात्मा शिवने उसे त्रिशूलमें पिरो लिया॥ ९-१० ॥

तब त्रिशूलमें स्थित हुआ वह शिवजीका ध्यान करके प्रार्थना करने लगा कि [हे शिवजी!] अन्त समयमें आपका दर्शन करके प्राणी आपके ही सदृश हो जाता है॥ ११ ॥

इस प्रकार स्तुत हुए उन शंकरने भी प्रसन्न होकर यह वचन कहा—तुम वर माँगो, मैं तुम्हें दूँगा॥ १२ ॥

यह वचन सुनकर सात्त्विक भावको प्राप्त हुए उस दैत्यने शिवजीको भलीभाँति प्रणाम करके तथा उनकी स्तुतिकर [पुनः] कहा— ॥ १३ ॥

अन्धक बोला—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे अपनी शुभ भक्ति प्रदान कीजिये और विशेष कृपा करके यहींपर निवास कीजिये॥ १४ ॥

सूतजी बोले—उसके इस प्रकार कहनेपर [भगवान्] शंकरने उस दैत्यको उसी गड्ढेमें फेंक दिया और लोकहितकी कामनासे वे वहीं लिंगरूप धारणकर स्थित हो गये॥ १५ ॥

जो मनुष्य नित्य उस अन्धकेश्वर लिंगकी पूजा करता है, उसकी छः मासके भीतर ही समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६ ॥

[परंतु] जो ब्राह्मण आजीविकाके लिये छः मासतक संसारका हित करनेवाले इस लिंगकी [द्रव्य लेकर] पूजा करता है, वह तो देवलक कहा गया है॥ १७ ॥

जिस प्रकार देवलक होता है, उसी प्रकार वह ब्राह्मण भी हो जाता है, [जो छः महीनेतक वृत्त्यर्थ शिवपूजन करता है], जो देवलक कहा गया है, वह द्विजत्वके अधिकारसे वंचित हो जाता है॥ १८ ॥

ऋषिगण बोले—देवलक कौन कहा गया है और उसका क्या कार्य है? हे महाप्राज्ञ! लोकहितके लिये आप इसे बताइये॥ १९ ॥

सूतजी बोले—ऋषियो! जो दधीचि नामक धर्मिष्ठ, वेदमें पारंगत, शिवभक्तिमें संलग्न तथा शिवशास्त्रपरायण विप्र थे, उनका पुत्र भी वैसा ही था; वह सुदर्शन नामसे प्रसिद्ध था। उसकी दुकूला नामक पत्नी थी, जो दुष्टकुलमें उत्पन्न हुई थी॥ २०-२१ ॥

उसका वह पति [सुदर्शन] उसके वशमें रहता था। उसके चार पुत्र हुए। वह [सुदर्शन] भी नित्य शिवकी पूजा किया करता था॥ २२ ॥

किसी समय दधीचिको दूसरे गाँवमें जाना पड़ा, वहाँ बान्धवोंके सम्मेलनके कारण बन्धु-बान्धवोंने उन्हें लौटने नहीं दिया॥ २३॥

शैवोंमें श्रेष्ठ वे दधीचि अपने पुत्रसे 'तुम शिवजीकी सेवा करते रहना' यह कहकर [पूजन आदि दायित्वोंसे] मुक्त होकर चले गये। उनका पुत्र सुदर्शन भी शिवजीका पूजन करता रहा। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार बहुत समय बीत गया॥ २४-२५॥

इसी बीच शिवरात्रि आ गयी और उसमें सभी लोगोंने उपवास किया और सुदर्शनने स्वयं भी संयोगवश उपवास किया॥ २६॥

वह सुदर्शन भी पूजा करके चला गया और शिवरात्रिमें स्त्रीसंग करके पुनः वहाँ आ गया॥ २७॥

उसने उस रात्रिमें स्नान नहीं किया, किंतु शिवपूजन किया; तब उसके इस कुकर्मसे क्रोधित हुए [भगवान्] शंकरने कहा— ॥ २८॥

महेश्वर बोले—रे दुष्ट! तुझ अविवेकीने शिवरात्रिके दिन स्त्रीका सेवन किया और बिना स्नान किये ही मेरा पूजन भी किया। चूँकि तुमने जान-बूझकर ऐसा किया है, इसलिये जड़ हो जाओ। अब तुम मुझे स्पर्श करनेयोग्य नहीं हो, अतः दूरसे ही दर्शन करो॥ २९-३०॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] शिवजीके द्वारा इस प्रकार शापित वह दधीचिपुत्र सुदर्शन शिवमायासे विमोहित होकर उसी क्षण जड़ हो गया॥ ३१॥

हे ब्राह्मणो! इसी समय शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ दधीचि दूसरे गाँवसे आ गये और उन्होंने यह समाचार सुना॥ ३२॥

शिवजीने उन्हें भी धिक्कारा, तब वे अत्यन्त दुखी हुए और यह कहकर रोने लगे—हाय! पुत्रके दुःखित करनेवाले कुकर्मसे मैं मारा गया। सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ दधीचिने बारंबार यह कहा कि इस कुपुत्रके कारण मेरा यह उत्तम कुल नष्ट हो गया॥ ३३-३४॥

अपने पिताके द्वारा तिरस्कृत उस अभागे पुत्र सुदर्शनने भी पश्चात्ताप करके अपनी भार्याके लिये कहा कि यह पुंश्चली है। तदुपरान्त उसके पिताने वहाँ पुत्रके कल्याणके लिये प्रयत्नपूर्वक श्रेष्ठ विधियोंसे परमभक्ति भावसे पार्वतीका पूजन किया॥ ३५-३६॥

स्वयं सुदर्शनने भी महाभक्तिपूर्वक चण्डीपूजन-विधानसे पार्वतीका पूजन किया और उत्तम स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति भी की॥ ३७॥

इस प्रकार उन दोनों पिता-पुत्रोंने भक्तिपूर्वक अनेक उपायोंसे भक्तवत्सला देवी गिरिजाको प्रसन्न कर लिया॥ ३८॥

हे मुने! तब उन दोनोंके उत्कृष्ट सेवाभावसे प्रसन्न हुई चण्डिकाने सुदर्शनको अपना पुत्र मान लिया॥ ३९॥

चण्डिकाने स्वयं भी उस [सुदर्शन नामक] पुत्रके लिये शिवजीको प्रसन्न किया। इसके बाद पूर्वमें सुदर्शनसे क्रोधित किंतु अब उस पुत्रपर क्रोधरहित चण्डिकाने प्रसन्नचित्त होकर उन वृषभध्वज महेश्वरको [भलीभाँति] प्रसन्न जानकर उन्हें नमस्कारकर स्वयं ही उस सुदर्शनको उनकी गोदमें बैठा दिया॥ ४०-४१॥

इसके बाद गिरिजाने स्वयं ही सुदर्शनको घृतसे स्नान कराकर एक ग्रन्थिसे युक्त त्रिरावृत यज्ञोपवीत प्रसन्नतापूर्वक पहनाया। तत्पश्चात् अम्बिकाने पुत्र सुदर्शनको सोलह अक्षरसे युक्त शिवगायत्रीका उपदेश दिया और यह भी कहा कि यह वटु श्रीशब्दपूर्वक **'ॐ नमः शिवाय'**—इस मन्त्रका सोलह बार उच्चारणकर संकल्प-पूजा किया करे॥ ४२—४४॥

पुनः उन्होंने स्नानसे लेकर प्रणामपर्यन्त विविध उपचारोंसे ऋषियोंके सान्निध्यमें मन्त्र एवं वाद्यके साथ उस बालकसे शिवपूजन करवाया और उससे शिवजीके अनेक नामों तथा मन्त्रोंका पाठ कराया। तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर चण्डिका एवं शिवजीने उससे कहा— ॥ ४५-४६॥

[हे पुत्र!] मेरे लिये जो कुछ भी धन-धान्य आदि अर्पित किया गया हो, वह सब तुम्हें ग्रहण करना चाहिये; इसे ग्रहण करनेमें तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा। मेरे [समस्त] कार्यमें और विशेषकर देवीके कार्यमें तुम मुख्य रहोगे। मेरे लिये चढ़ाया गया घृत, तैल आदि सब कुछ तुम्हें ग्रहण करना चाहिये। जब प्राजापत्य होने

लगेगा, तब उसमें तुम अकेले ही मुख्य होगे; और तभी पूजा पूर्ण होगी, अन्यथा सब पूजा निष्फल हो जायगी। तुम सर्वदा वर्तुलाकार तिलक लगाना, स्नान करना, शिवसन्ध्या करना और शिवगायत्रीका जप करना। सबसे पहले मेरी सेवा करके तुम कुलोचित अन्य कार्य करना; यह सब किये जानेपर तुम्हारा कल्याण होगा। मैंने तुम्हारे समस्त दोष क्षमा कर दिये॥ ४७—५१॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर परमात्मा शिवजीने उसके चारों बटुक पुत्रोंको चारों दिशाओंमें अभिषिक्त कर दिया। तब भगवती चण्डी पुत्र सुदर्शनको अपने निकट बैठाकर उसके पुत्रोंको अनेक प्रकारके वर देकर शिक्षा देने लगीं॥ ५२-५३॥

देवी बोलीं—दो व्यूहोंके [युद्धमें] जिस ओर मेरा बटुक होगा, उसकी सदा विजय होगी; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए। हे पुत्र! जिसने तुम्हारी पूजा की, उसने मानो मेरी पूजा कर ली; तुम सभीको अपना कर्म सदा करते रहना चाहिये॥ ५४-५५॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! इस प्रकार शिव एवं शिवाने कृपापूर्वक संसारके कल्याणके लिये पुत्रोंसहित उस महात्मा सुदर्शनको अनेक वर प्रदान किये। चूँकि शिव एवं पार्वतीने उन्हें [अपने पुत्रके रूपमें] प्रतिष्ठित किया, इसलिये वे बटुक कहे गये हैं और अपनी तपस्यासे भ्रष्ट हुए, इसलिये वे तपोऽधम कहे गये हैं॥ ५६-५७॥

शिव-शिवाकी कृपासे वे [आगे चलकर] बहुत विस्तृत हो गये। इन बटुकोंकी प्रथम पूजा साक्षात् महात्मा शंकरकी ही महापूजा है॥ ५८॥

इसलिये जबतक बटुकोंकी पूजा न कर ली जाय, तबतक शिवजीकी पूजा नहीं करनी चाहिये। यदि पूर्वमें शिवजीकी पूजा की जाय, तो वह शुभदायी नहीं होती। शुभ कार्य हो अथवा अशुभ कार्य हो, बटुकका कभी भी त्याग न करे। प्राजापत्य भोजमें एक बटुकका पूजन भी विशिष्ट कहा गया है॥ ५९-६०॥

शिव एवं पार्वतीके कार्यमें बटुककी ही विशेषता देखी जाती है; हे बुद्धिमान् एवं निष्पाप शौनकजी! मैं जैसा कहता हूँ, उसे आप सुनें॥ ६१॥

अन्धकेश्वरके समीप भद्र नामक राजाके नगरमें प्राजापत्य [नामक यज्ञानुष्ठान, जिसमें नित्यप्रति ब्राह्मणभोजनका सम्पादन होता था]-के नित्य भोजनवाले नियममें शिवके अनुग्रहसे जो अद्भुत घटना घटी, उसे प्रीतिपूर्वक सुनिये; जैसा मैंने सुना है, वैसा कह रहा हूँ॥ ६२-६३॥

[भगवान्] सदाशिवने प्रसन्न होकर उस भद्र नामक राजाको एक ध्वज प्रदान किया। उसके अनन्तर देवाधिदेव सदाशिवने कृपापूर्वक उस राजासे कहा—हे राजन्! जिस दिन तुम्हारा प्राजापत्य [यज्ञ] पूर्ण होगा, उस दिन प्रात:काल यह बँधी हुई ध्वजा बढ़ेगी और रात्रिमें गिर जायगी। यदि तुम्हारी पूजामें कोई त्रुटि होगी, तो यह ध्वजा रात्रिकालमें भी स्थिर रहेगी। इतना कहकर राजासे सन्तुष्ट हुए कृपानिधि शंकर अन्तर्धान हो गये॥ ६४—६६॥

हे महामुने! उस राजाका वैसा ही नियम चलता रहा, वह शिव-पूजाके विधानके अनुसार नित्यप्रति प्राजापत्यका अनुष्ठान करने लगा। जब कार्य पूर्ण हो जाता, तो प्रात:काल ध्वजा स्वयं बढ़ जाती एवं सायंकाल गिर जाती॥ ६७-६८॥

किसी समय ब्राह्मणभोजनके बिना ही बटुकोंकी पूजा पहले हो गयी और वह ध्वजा गिर पड़ी॥ ६९॥

यह देखकर राजाने पण्डितोंसे पूछा—ब्राह्मणलोग यहाँ भोजन कर रहे हैं, किंतु यह ध्वज नहीं उठा। हे ब्राह्मणो! वह ध्वज क्यों गिर पड़ा, आपलोग सत्य-सत्य कहिये? तब इस प्रकार पूछे जानेपर पण्डितप्रवर ब्राह्मणोंने कहा—हे महाराज! ब्रह्मभोजमें चण्डीपुत्र बटुकको पहले ही भोजन करा दिया गया; इससे शिवजी सन्तुष्ट हो गये, इसीलिये ध्वजा गिर गयी॥ ७०—७२॥

तब यह सुनकर वह राजा तथा अन्य लोग भी चकित हो उठे और प्रशंसा करने लगे॥ ७३॥

इस प्रकार शिवजीने स्वयं ही उन (बटुकों)-की महिमा बढ़ायी, इसलिये प्राचीन विद्वानोंने बटुकोंको श्रेष्ठ कहा है॥ ७४॥

अत: बटुकोंके द्वारा ही शिवजीकी उत्तारणा

करवानी चाहिये, अन्यथा पूजा सफल नहीं होती। शिवजीके वचनानुसार इसमें दूसरोंका अधिकार नहीं है, उन्हें ही उत्तारणा करनी चाहिये, तभी पूजा पूर्ण होती है। केवल इतना ही उनका कार्य है, कोई दूसरा [कार्य] नहीं है॥ ७५-७६॥

हे मुनीश्वरो! आपलोगोंने जो पूछा था, वह सब मैंने कह दिया; इसे सुनकर मनुष्य शिवपूजाका फल प्राप्त करता है॥ ७७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें बटुकोत्पत्तिवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

सोमनाथ ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्तिका वृत्तान्त

ऋषि बोले—[हे सूतजी!] अब आप ज्योतिर्लिंगोंके माहात्म्य तथा उनकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये; जैसा आपने सुना है, वह सब बताइये॥ १॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! मैं उनके माहात्म्य एवं उनकी उत्पत्तिके विषयमें, जैसा कि मैंने अपने सद्गुरुसे सुना है, संक्षेपमें अपनी बुद्धिके अनुसार कहता हूँ; आपलोग श्रवण करें॥ २॥

हे मुनिश्रेष्ठो! सैकड़ों वर्षोंमें भी इनके माहात्म्यका वर्णन नहीं किया सकता है, फिर भी मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ॥ ३॥

उनमें सोमनाथ प्रथम कहे गये हैं। हे मुने! सबसे पहले उन्हींका माहात्म्य सावधानीसे सुनिये॥ ४॥

हे मुनीश्वरो! महात्मा दक्षने अपनी अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याओंका विवाह चन्द्रमासे कर दिया॥ ५॥

वे चन्द्रमाको [अपने पतिके रूपमें] प्राप्तकर अत्यधिक शोभित हुईं और चन्द्रमा भी उन्हें प्राप्तकर निरन्तर शोभित होते थे, जैसा कि सुवर्णसे मणि सुशोभित होती है और मणिसे सुवर्ण सुशोभित होता है॥ ६॥

उसके अनन्तर कालक्रममें उनके साथ जो हुआ, उसको सुनिये। [चन्द्रमाकी] सभी पत्नियोंमें जो रोहिणी नामवाली कही गयी है, वह उन्हें जितना अधिक प्रिय थी, उतना अन्य कोई भी नहीं थी॥ ७-८॥

तब अन्य कन्याएँ दुखी होकर अपने पिताकी शरणमें गयीं। वहाँ जाकर उन सबने जो दुःख था, उसे निवेदन किया। हे ब्राह्मणो! यह सुनकर वे दक्ष बहुत दुखी हुए; उसके बाद चन्द्रमाके पास आकर उन्होंने शान्तिपूर्वक यह वचन कहा—॥ ९-१०॥

दक्ष बोले—हे चन्द्रमा! आप उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं; सभी आश्रितोंके प्रति [तो समान व्यवहार करना उचित है, पर] आपका विषम व्यवहार क्यों है? अबतक आपने जो कुछ भी किया, सो किया, किंतु पुनः ऐसा व्यवहार न करें; विषम व्यवहार नरक देनेवाला कहा गया है॥ ११-१२॥

सूतजी बोले—दक्ष अपने दामाद चन्द्रमासे इस प्रकार प्रार्थनाकर निश्चिन्त हो अपने घर चले गये। चन्द्रमाने दक्षकी बात नहीं मानी, क्योंकि वे शिवमायाके प्रभावसे विमोहित थे, जिससे यह जगत् मोहित हो रहा है॥ १३-१४॥

जब जिसका शुभ होना है, तब उसका शुभ अवश्य होता है और जब अशुभ होना है, तब उसका शुभ किस प्रकार हो सकता है!॥ १५॥

चन्द्रमाने भी बलवान् होनहारके कारण उनकी बात नहीं मानी। वे रोहिणीमें आसक्त रहते थे तथा अन्य किसी [पत्नी]-का मान नहीं करते थे। तब दक्ष बहुत दुखी हुए और सुनीतिमें निपुण वे पुनः स्वयं आकर चन्द्रमासे नीतिपूर्वक कहने लगे—॥ १६-१७॥

दक्ष बोले—हे चन्द्र! आप सुनें, मैंने आपसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना की, किंतु आपने नहीं माना, अतः आप क्षयरोगसे ग्रस्त हो जायँ॥ १८॥

सूतजी बोले—उनके इस प्रकार कहनेपर चन्द्रमा उसी क्षण क्षयरोगी हो गये। तब उनके क्षीण होते ही महान् हाहाकार मच गया। हे मुने! उस समय सब देवता

एवं ऋषि 'हाय! अब क्या करना चाहिये, [चन्द्रमाका कल्याण] किस प्रकार होगा'—ऐसा कहते हुए दु:खित तथा व्याकुल हो गये॥ १९-२०॥

चन्द्रमाने इन्द्र आदि सभी देवताओं तथा वसिष्ठ आदि ऋषियोंसे यह सब बताया; तब सभी लोग ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥ २१॥

मुने! उस समय वहाँ जाकर अति व्याकुल हुए देवगण एवं ऋषियोंने ब्रह्मदेवको प्रणाम करके उनकी स्तुतिकर वह सारा समाचार निवेदन किया। ब्रह्मा भी उनकी बात सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो शिवमायाकी प्रशंसाकर उन्हें सुनाते हुए कहने लगे— ॥ २२-२३॥

ब्रह्माजी बोले—अहो! सारे संसारको दु:ख देनेवाला यह महान् कष्ट उपस्थित हुआ है। चन्द्रमा तो सदासे ही दुष्ट है और दक्षने भी इसे शाप दे दिया॥ २४॥

दुष्ट चन्द्रमाने और भी अनेक दुष्कर्म किये हैं। हे देवताओ तथा ऋषियो! आप लोग चन्द्रमाका पुरातन कृत्य सुनिये॥ २५॥

इस दुष्टने बृहस्पतिके घर जाकर उनकी पत्नी ताराका अपहरण किया था। उसके बाद वह दैत्योंसे जाकर मिल गया और उनके पक्षमें होकर देवताओंसे युद्ध भी किया। जब मैंने और अत्रिने चन्द्रमाको मना किया, तब उसने ताराको उन्हें लौटा दिया॥ २६-२७॥

उसे गर्भवती देखकर बृहस्पतिने कहा—मैं इसे ग्रहण नहीं करूँगा, इसके बाद हमलोगोंने बृहस्पतिको ऐसा करनेसे रोका, तब बड़ी कठिनाईसे उन्होंने ताराको स्वीकार किया॥ २८॥

बृहस्पतिने पुन: कहा कि मैं इसे तभी ग्रहण करूँगा, जब यह गर्भका परित्याग करेगी। हे महर्षियो! तब मैंने ताराका गर्भत्याग कराया। मैंने उससे पुन: पूछा कि यह किसका गर्भ है? तब उसने कहा कि यह गर्भ चन्द्रमाका है। इसके बाद बृहस्पतिने मेरे कहनेसे उस ताराको ग्रहण किया॥ २९-३०॥

इस प्रकारके अनेक दुष्ट कर्म चन्द्रमाके हैं; उनका वर्णन मैं पुन: किस प्रकार करूँ? वह आज भी वैसा ही क्यों कर रहा है? अब जो होनहार था, वह तो भलीभाँति हो गया, वह तो कभी अन्यथा होनेवाला नहीं है। अब मैं आपलोगोंको उत्तम उपाय बताता हूँ, आदरपूर्वक सुनिये॥ ३१-३२॥

चन्द्रमा कल्याणकारी प्रभासक्षेत्रमें देवताओंके साथ जाय और वहाँ मृत्युंजय-विधानसे शिवाराधन करे। शिवलिंगको सामने स्थापितकर चन्द्रमा प्रतिदिन तपस्या करे; तब प्रसन्न हुए शिव उसे क्षयरोगसे रहित कर देंगे॥ ३३-३४॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] उन ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर वे देवता तथा ऋषि लौटकर वहाँ आये, जहाँ दक्ष तथा चन्द्रमा स्थित थे॥ ३५॥

इसके बाद उन सभी देवताओं तथा ऋषियोंने दक्षको आश्वासन देकर तथा चन्द्रमाको अपने साथ ले करके प्रभासतीर्थमें जाकर सरस्वती आदि श्रेष्ठ तीर्थोंका आवाहन करके, मृत्युंजयमन्त्रद्वारा पार्थिवार्चनविधिसे शिवजीकी आराधना की॥ ३६-३७॥

उसके बाद विशुद्ध अन्त:करणवाले वे सभी देवता तथा ऋषि चन्द्रमाको प्रभासक्षेत्रमें छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये॥ ३८॥

चन्द्रमाने निरन्तर छ: मासतक तप किया और मृत्युंजयमन्त्रसे वृषभध्वजका पूजन किया॥ ३९॥

स्थिरचित्त होकर चन्द्रमा दस करोड़की संख्यामें उस मृत्युंजयमन्त्रका जप करके तथा मन्त्रस्वरूप भगवान् मृत्युंजयका ध्यान करते हुए वहाँ स्थित रहे॥ ४०॥

तब उन्हें देखकर भक्तवत्सल भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और प्रकट होकर अपने भक्त चन्द्रमासे कहने लगे— ॥ ४१॥

शंकर बोले—हे चन्द्र! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मनमें जो अभिलषित हो, वह वर माँगो, मैं [तुमपर] प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें सम्पूर्ण उत्तम वर प्रदान करूँगा॥ ४२॥

चन्द्र बोले—हे देवेश! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं, तो मेरा कौन-सा कार्य असाध्य रह सकता है; फिर भी हे शंकर! मेरे शरीरके क्षयरोगको दूर कीजिये। आप मेरा अपराध क्षमा करें और निरन्तर कल्याण करें। उनके ऐसा कहनेपर शिवजीने यह वचन कहा— ॥ ४३-४४॥

शिवजी बोले—हे चन्द्र! एक पक्षमें तुम्हारी [एक-एक] कला प्रतिदिन क्षीण होगी और पुनः दूसरे पक्षमें क्रमशः वह कला निरन्तर बढ़ेगी॥ ४५॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! चन्द्रमाके ऐसा वरदान प्राप्त कर लेनेपर हर्षसे परिपूर्ण चित्तवाले सभी देवता और ऋषि वहाँ शीघ्र ही आये॥ ४६॥

वहाँ आकर उन सभीने चन्द्रमाको आशीर्वाद दिया और शिवजीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर आदरपूर्वक उनसे प्रार्थना की—॥ ४७॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे परमेश! आपको नमस्कार है। हे शम्भो! हे स्वामिन्! पार्वतीसहित आप यहाँ स्थिर हो जाइये॥ ४८॥

सूतजी बोले—तब पूर्वमें निराकार भगवान् शिव चन्द्रमाके द्वारा उत्तम भक्तिसे स्तुति किये जानेपर पुनः साकार हो गये॥ ४९॥

देवताओंपर प्रसन्न होकर वे शंकर उस क्षेत्रके माहात्म्य [वर्धन]-के लिये तथा चन्द्रमाके यशके [विस्तारके] लिये वहाँ उन्हींके नामपर तीनों लोकोंमें सोमेश्वर नामसे विख्यात हुए। हे द्विजो! वे पूजन करनेसे क्षय, कुष्ठ आदि रोगोंका विनाश करते हैं॥ ५०-५१॥

ये चन्द्रमा धन्य हैं, ये कृतकृत्य हैं, जिनके नामसे स्वयं जगन्नाथ शंकरजी धरातलको पवित्र करते हुए यहाँ स्थित हुए। वहींपर देवताओंने चन्द्रमाके नामसे चन्द्रकुण्डकी स्थापना की, जहाँ शिव तथा ब्रह्माका सम्मिश्रित निवास माना जाता है॥ ५२-५३॥

पृथ्वीपर प्रसिद्ध वह चन्द्रकुण्ड समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। उस कुण्डमें छः मासतक निरन्तर स्नान करनेसे क्षय आदि जो भी असाध्य रोग हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं॥ ५४-५५॥

प्रभासतीर्थकी परिक्रमा करके शुद्धात्मा मनुष्य पृथ्वीकी परिक्रमा करनेसे होनेवाला फल प्राप्त करता है और मरनेपर स्वर्गमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ५६॥

सोमेश्वर लिंगका दर्शनकर मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है और [इस लोकमें] मनोवांछित अभीष्ट फल प्राप्तकर मरनेके पश्चात् स्वर्गको जाता है॥ ५७॥

मनुष्य जिस-जिस फलको उद्देश्य करके इस उत्तम तीर्थका सेवन करता है, वह उस-उस फलको अवश्य प्राप्त करता है; इसमें संशय नहीं है॥ ५८॥

सोमेश्वरके उस प्रकारके फलको देखकर वे देवता एवं ऋषिगण प्रीतिपूर्वक शिवजीको नमस्कारकर क्षयरोग-रहित चन्द्रमाको लेकर उस तीर्थकी परिक्रमा करके उसकी प्रशंसा करते हुए [अपने-अपने धामको] चले गये और चन्द्रमा भी अपना पुरातन कार्य करने लगे॥ ५९-६०॥

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने सोमेश्वरकी उत्पत्तिका वर्णन कर दिया। सोमेश्वर लिंग इसी प्रकार प्रकट हुआ था। जो मनुष्य सोमेश्वर लिंगकी उत्पत्तिको सुनता है अथवा दूसरोंको सुनाता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६१-६२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें सोमनाथज्योतिर्लिंगोत्पत्तिवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति-कथा

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] इसके बाद मैं मल्लिकार्जुनकी उत्पत्तिका वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर बुद्धिमान् भक्त सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १॥

पहले मैंने कार्तिकेयके जिस चरित्रका वर्णन किया था, पापोंका नाश करनेवाले उस दिव्य चरित्रका पुनः वर्णन करता हूँ॥ २॥

जब तारकका वध करनेवाले महाबलवान् पार्वतीपुत्र कार्तिकेय पृथ्वीकी परिक्रमाकर कैलासपर पुनः आये, उस समय देवर्षि नारदने वहाँ आकर अपनी बुद्धिसे उन्हें भ्रमित करते हुए गणेशके विवाह आदिका सारा

वृत्तान्त कहा॥ ३-४॥

इसे सुनकर अपने माता-पिताके मना करनेपर भी वे कुमार उनको प्रणामकर क्रौंचपर्वतपर चले गये॥ ५॥

जब माता पार्वती कार्तिकेयके वियोगसे बहुत दुखी हुईं, तब शिवजीने उन्हें समझाते हुए कहा—हे प्रिये! तुम दुखी क्यों हो रही हो, हे पार्वति! हे सुभ्रू! दुःख मत करो, तुम्हारा पुत्र [अवश्य] लौट आयेगा; तुम इस महान् दुःखका त्याग करो॥ ६-७॥

शंकरजीके बारंबार कहनेके बाद भी जब पार्वतीको सन्तोष नहीं हुआ, तो उन्होंने देवताओं तथा ऋषियोंको कुमारके पास भेजा। उसके बाद गणोंको साथ लेकर सभी बुद्धिमान् देवता एवं महर्षि प्रसन्न होकर कुमारको लानेके लिये वहाँ गये॥ ८-९॥

वहाँ जाकर कुमारको भलीभाँति प्रणाम करके उन्हें अनेक प्रकारसे समझाकर उन सभीने आदरपूर्वक प्रार्थना की। तब स्वाभिमानसे उद्दीप्त उन कार्तिकेयने शिवजीकी आज्ञासे युक्त उन देवगणोंकी प्रार्थनाको स्वीकार नहीं किया॥ १०-११॥

तत्पश्चात् वे सभी लोग पुनः शिवजीके समीप लौट आये और उन्हें प्रणामकर शिवजीसे आज्ञा ले अपने-अपने धामको चले गये। तब उनके न लौटनेपर शिवजी एवं पार्वतीको पुत्रवियोगजन्य महान् दुःख प्राप्त हुआ॥ १२-१३॥

इसके बाद वे दोनों लौकिकाचार प्रदर्शित करते हुए अत्यन्त दीन एवं दुखी हो परम स्नेहवश वहाँ गये, जहाँ उनके पुत्र कार्तिकेय रहते थे॥ १४॥

तब वे पुत्र कार्तिकेय माता-पिताका आगमन जान स्नेहरहित हो उस पर्वतसे तीन योजन दूर चले गये॥ १५॥

अपने पुत्रके दूर चले जानेपर वे दोनों ज्योतिरूप धारणकर वहीं क्रौंचपर्वतपर विराजमान हो गये॥ १६॥

पुत्रस्नेहसे व्याकुल हुए वे शिव तथा पार्वती अपने पुत्र कार्तिकेयको देखनेके लिये प्रत्येक पर्वपर वहाँ जाते हैं। अमावास्याके दिन साक्षात् शिव वहाँ जाते हैं तथा पूर्णमासीके दिन पार्वती वहाँ निश्चित रूपसे जाती हैं॥ १७-१८॥

उसी दिनसे लेकर मल्लिका (पार्वती) तथा अर्जुन (शिवजी)-का मिलित रूप वह अद्वितीय शिवलिंग तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ॥ १९॥

जो [मनुष्य] उस लिंगका दर्शन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है। उसका दुःख सर्वथा दूर हो जाता है, वह परम सुख प्राप्त करता है, उसे माताके गर्भमें पुनः कष्ट नहीं भोगना पड़ता है, उसे धन-धान्यकी समृद्धि, प्रतिष्ठा, आरोग्य तथा अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है; इसमें संशय नहीं॥ २०—२२॥

यह मल्लिकार्जुन नामवाला दूसरा ज्योतिर्लिंग कहा गया है, जो दर्शनमात्रसे सभी सुख प्रदान करता है; मैंने लोककल्याणके लिये इसका वर्णन किया॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें मल्लिकार्जुन नामवाले द्वितीय ज्योतिर्लिंगका वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्राकट्यका वर्णन

ऋषि बोले—हे सूतजी! आप व्यासजीकी कृपासे सब कुछ जानते हैं; इन ज्योतिर्लिंगोंकी कथा सुनकर हमें तृप्ति नहीं हो रही है। अतः हे प्रभो! हमलोगोंपर विशेषरूपसे अतुलनीय कृपा करके अब आप तीसरे ज्योतिर्लिंगका वर्णन कीजिये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! आप श्रीमानोंकी संगति प्राप्तकर मैं धन्य एवं कृतकृत्य हो गया; क्योंकि सज्जनोंकी संगति धन्य होती है। अतः मैं इसे अपना सौभाग्य मानकर पवित्र, पापका नाश करनेवाली तथा दिव्य कथाको कहूँगा; आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ ३-४॥

शिवजीको प्रिय, परमपुण्यमयी, संसारको पवित्र करनेवाली तथा समस्त प्राणियोंको मुक्ति देनेवाली मनोहर

अवन्ती नामक [एक प्रसिद्ध] नगरी है॥ ५॥

वहाँपर शुभ आचरणमें तत्पर, वेदाध्ययन करनेवाले तथा नित्य वैदिक अनुष्ठानमें निरत एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहते थे। वे ब्राह्मण नित्य अग्निहोत्र करते और शिवपूजामें संलग्न रहते थे; वे प्रतिदिन पार्थिव लिंगका पूजन करते थे॥ ६-७॥

उन वेदप्रिय ब्राह्मणने सारे कर्मोंका फल प्राप्तकर भलीभाँति ज्ञानपरायण होकर अन्तमें सज्जनोंकी गति प्राप्त की। हे मुनीश्वरो! उनके चारों पुत्र भी उसी प्रकार शिवपूजामें तत्पर तथा सदा माता-पिताकी आज्ञा माननेवाले थे। उनमें सबसे बड़ा देवप्रिय, उसके बाद प्रियमेधा, तीसरा सुकृत नामवाला और चौथा धर्मनिष्ठ सुव्रत था॥ ८—१०॥

उनके पुण्यप्रतापसे पृथ्वीपर सुख बढ़ रहा था। जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ता है, उसी प्रकार उनके सुखदायक गुण भी वहाँ निरन्तर बढ़ रहे थे। उस समय वह नगरी ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हो गयी॥ ११-१२॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! इसी बीच वहाँ जो उत्तम घटना घटी, उसे सुनिये; जैसा कि मैंने सुना है, वैसा कह रहा हूँ॥ १३॥

रत्नमालपर्वतपर दूषण नामक एक महान् असुर रहता था। धर्मसे द्वेष करनेवाला वह महाबलवान् दैत्यराज ब्रह्माजीके वरदानसे जगत्को तुच्छ समझता था। उसने देवगणोंको पराजितकर उन्हें उनके स्थानसे निकाल दिया॥ १४-१५॥

उस दुष्टने पृथ्वीपर सभी प्रकारके वेदधर्मों तथा स्मृतिधर्मोंको उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे सिंह खरगोशोंको नष्ट कर देता है। जितने भी वेदधर्म थे, उन सबको उसने नष्ट कर दिया और प्रत्येक तीर्थ तथा क्षेत्रसे धर्मको दूर हटा दिया॥ १६-१७॥

'एकमात्र रम्य अवन्ती नगरी ही दिखायी दे रही है', [जहाँ वैदिक धर्म अभी प्रतिष्ठित है]—ऐसा विचारकर उसने जो किया, उसे आप लोग सुनें॥ १८॥

उस महान् असुर दूषणने बहुत बड़ी सेना लेकर वहाँ रहनेवाले सभी ब्राह्मणोंको उद्देश्य करके चढ़ाई कर दी। वहाँ आकर विप्रद्रोही एवं महाखल उस दैत्येन्द्रने अपने चार दैत्यश्रेष्ठ सेनापतियोंको बुलाकर यह वचन कहा— ॥ १९-२०॥

दैत्य बोला—ये दुष्ट ब्राह्मण मेरी आज्ञाका पालन क्यों नहीं करते हैं? अतः मेरे विचारसे वेदधर्ममें तत्पर ये सब दण्डके योग्य हैं॥ २१॥

हे दैत्यसत्तमो! मैंने संसारमें सभी देवताओं तथा राजाओंको पराजित कर दिया है; क्या इन ब्राह्मणोंको वशमें नहीं किया जा सकता है?॥ २२॥

यदि ये लोग जीना चाहते हैं, तो शिवधर्म तथा वेदोंके परम धर्मका त्यागकर सुख प्राप्त करें; अन्यथा इनके जीवित रहनेमें संशय हो जायगा, मैं यह सत्य कहता हूँ, तुमलोग निःशंक होकर इस कार्यको करो॥ २३-२४॥

सूतजी बोले—इस प्रकार विचारकर वे चारों दैत्य चारों दिशाओंमें प्रलयकालीन अग्निके समान प्रज्वलित हो उठे। तब दैत्योंके इस प्रयासको सुनकर भी उस समय शिवध्यानपरायण उन ब्राह्मणोंको कुछ भी दुःख नहीं हुआ॥ २५-२६॥

उस समय वे ब्राह्मण शिवध्यानसे रेखामात्र भी विचलित नहीं हुए और धैर्य धारण किये रहे; शिवजीके आगे वे बेचारे दैत्य क्या हैं! इसी बीच वह उत्तम नगरी दैत्योंसे व्याप्त हो गयी। तब उन दैत्योंसे पीड़ित सभी लोग ब्राह्मणोंके पास आये॥ २७-२८॥

लोग बोले—हे स्वामियो! अब क्या करना चाहिये; वे दुष्ट आ गये हैं, उन्होंने बहुतसे लोगोंको मार डाला, इसलिये हमलोग आपके पास आये हैं॥ २९॥

सूतजी बोले—उन लोगोंकी यह बात सुनकर शिवमें सदा विश्वास करनेवाले वे ब्राह्मण वेदप्रियके पुत्र उन लोगोंसे कहने लगे— ॥ ३०॥

ब्राह्मण बोले—आपलोग सुनिये, हमारे पास दुष्टोंको भय देनेवाला सैन्यबल नहीं है और न शस्त्र ही हैं, जिससे हम उन्हें पराजित कर सकें॥ ३१॥

सामान्य व्यक्तिका आश्रय लेनेपर भी मनुष्यका अपमान नहीं होता; फिर हमलोग तो सर्वसमर्थ शिवजीके आश्रित हैं, हमारा अपमान ये असुर किस प्रकार कर सकते हैं!॥ ३२॥

अत: भगवान् शिव ही असुरोंके भयसे हमारी रक्षा करेंगे। भक्तवत्सल सदाशिवको छोड़कर संसारमें अब हमें कोई शरण देनेवाला नहीं है॥ ३३॥

सूतजी बोले—इस प्रकार वे ब्राह्मण धैर्य धारणकर भलीभाँति पार्थिव-पूजनकर शिवजीके ध्यानमें तत्पर रहे। उसी समय उस बलवान् दूषण दैत्यने उन ब्राह्मणोंको देखा और यह वचन कहा—इनको मारो, इनका वध कर दो। किंतु शिवके ध्यानमें परायण उन वेदप्रियके पुत्रोंने उस दैत्यके द्वारा कहा गया वचन नहीं सुना॥ ३४-३५॥

उसके बाद ज्यों ही उस दुष्टात्माने उन ब्राह्मणोंको मारना चाहा, तभी उस पार्थिवके स्थानपर शब्द करता हुआ एक गड्ढा हो गया॥ ३६॥

उस गड्ढेसे विकटरूपधारी, महाकाल नामसे विख्यात, दुष्टोंका संहार करनेवाले एवं सज्जनोंको गति देनेवाले शिवजी प्रकट हो गये॥ ३७॥

'अरे दुष्ट! [मैं महाकाल हूँ और] तुम्हारे जैसे दुष्टोंके लिये महाकालरूपमें प्रकट हुआ हूँ; तुम इन ब्राह्मणोंके समीपसे दूर भाग जाओ'—ऐसा कहकर महाकाल शंकरने हुंकारमात्रसे ही सैन्यसहित उस दूषणको शीघ्र भस्म कर दिया॥ ३८-३९॥

उन्होंने कुछ सैनिकोंको मार डाला और कुछ सेना भाग गयी। उन परमात्मा शिवने वहींपर दूषणका वध कर दिया। जिस प्रकार सूर्यको देखकर अन्धकार पूर्ण रूपसे नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार शिवको देखकर उसकी सेना विनष्ट हो गयी॥ ४०-४१॥

उस समय देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और फूलोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता वहाँपर उपस्थित हो गये। ब्राह्मणोंने हाथ जोड़कर लोककल्याण करनेवाले उन भगवान् शंकरको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की॥ ४२-४३॥

तब महाकालरूपधारी स्वयं महेश्वरने प्रसन्न होकर उन ब्राह्मणोंको आश्वस्त करके उनसे कहा—'वर माँगिये'। तब यह सुनकर वे सभी ब्राह्मण हाथ जोड़कर



तथा सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक शिवजीको प्रणाम करके कहने लगे॥ ४४-४५॥

द्विज बोले—हे महाकाल! हे महादेव! दुष्टोंको दण्ड देनेवाले हे प्रभो! हे शम्भो! हे शिव! आप हमें संसारसागरसे मुक्ति दीजिये। हे शिव! हे शम्भो! हे प्रभो! आप संसारकी रक्षाके लिये यहींपर निवास करें और अपने दर्शन करनेवाले मनुष्योंका आप सदा उद्धार कीजिये॥ ४६-४७॥

सूतजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर शिवजी उन्हें सद्गति प्रदानकर भक्तोंके रक्षार्थ उस परम सुन्दर गर्तमें स्थित हो गये॥ ४८॥

इस प्रकार वे ब्राह्मण मुक्त हो गये और वहाँ चारों दिशाओंमें एक कोस परिमाणवाला स्थान लिंगरूपी शिवजीका कल्याणमय क्षेत्र हो गया॥ ४९॥

तभीसे महाकालेश्वर नामक शिव पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए। हे द्विजो! उनका दर्शन करनेसे स्वप्नमें भी कोई दु:ख नहीं होता है। जो मनुष्य जिस-जिस कामनाकी अपेक्षा करके उस लिंगकी उपासना करता है, वह उस मनोरथको प्राप्त कर लेता है और परलोकमें मोक्ष भी प्राप्त करता है। हे सुव्रतो! महाकालकी उत्पत्ति तथा उनका माहात्म्य—मैंने कह दिया; अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५०—५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें महाकाल-ज्योतिर्लिंग-माहात्म्यवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

महाकाल ज्योतिर्लिंगके माहात्म्य-वर्णनके क्रममें राजा चन्द्रसेन तथा श्रीकर गोपका वृत्तान्त

ऋषि बोले—हे महामते! भक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामसे विराजमान ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यका पुनः वर्णन कीजिये॥ १॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! भक्तोंकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगका भक्तिवर्धक माहात्म्य आदरपूर्वक सुनिये। उज्जयिनी नगरीमें चन्द्रसेन नामक एक महान् राजा था, जो सभी शास्त्रोंके तात्पर्यको तत्त्वतः जाननेवाला, शिवभक्त तथा जितेन्द्रिय था॥ २-३॥

उस राजाका मित्र महादेवके गणोंमें प्रमुख मणिभद्र नामक गण था; वह समस्त लोगोंद्वारा नमस्कृत था॥ ४॥

किसी समय उदारबुद्धिवाले उस गणाध्यक्ष मणिभद्रने प्रसन्न होकर उसे चिन्तामणि नामक उत्तम मणि प्रदान की। सूर्यसदृश प्रकाश करनेवाली वह मणि कौस्तुभमणिके समान ध्यान करने, दर्शन करने तथा सुननेमात्रसे निश्चय ही कल्याण प्रदान करती थी॥ ५-६॥

उसके प्रकाशतलका स्पर्श पाते ही काँसा, ताँबा, लौह, शीशा, पाषाण तथा अन्य [धातु-खनिज आदि] भी शीघ्र ही सुवर्ण हो जाते थे। उस चिन्तामणिको गलेमें धारण करके वह परम शिवभक्त राजा चन्द्रसेन इस प्रकार शोभित होता था, जैसे देवगणोंके बीच सूर्य शोभित होते हैं॥ ७-८॥

चिन्तामणिसे युक्त ग्रीवावाले नृपश्रेष्ठ चन्द्रसेनके विषयमें सुनकर पृथ्वीके समस्त राजा उस मणिको लेनेके लिये आतुर मनवाले हो गये॥ ९॥

उन मूर्ख एवं मत्सरग्रस्त राजाओंने देवलब्ध उस मणिको अनेक उपायोंके द्वारा चन्द्रसेनसे माँगा॥ १०॥

किंतु हे ब्राह्मणो! महाकालमें दृढ़ भक्ति रखनेवाले उस चन्द्रसेनने सभी राजाओंकी याचना निष्फल कर दी। तब राजा चन्द्रसेनसे इस प्रकार तिरस्कृत हुए सभी देशोंके समस्त राजाओंने खलबली मचा दी। इसके बाद वे सभी राजा चतुरंगिणी सेनासे युक्त होकर उस चन्द्रसेनको युद्धमें जीतनेके लिये भलीभाँति उद्यत हो गये॥ ११—१३॥

आपसमें मिले हुए उन सभी राजाओंने एक-दूसरेको संकेतसे अपना मनोभाव समझाकर बहुत सारे सैनिकोंके साथ मिलकर उज्जयिनीके चारों द्वारोंको घेर लिया॥ १४॥

तब अपनी नगरीको समस्त राजाओंके द्वारा घिरी देखकर वह राजा उन्हीं महाकालेश्वरकी शरणमें गया। वह राजा निर्विकल्प होकर तथा निराहार रहकर दृढ़ निश्चयपूर्वक एकाग्रचित्त हो दिन-रात महाकालका अर्चन करने लगा॥ १५-१६॥

इसके बाद महाकाल भगवान् शिवजीने प्रसन्नचित्त होकर उस राजाकी रक्षा करनेके लिये जो उपाय किया, उसे आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ १७॥

हे विप्रो! उसी समय कोई ग्वालिन बालकसहित उस उत्तम नगरमें घूमती हुई महाकालके निकट पहुँची॥ १८॥

पाँच वर्षकी अवस्थावाले बालकको लिये हुए वह विधवा ग्वालिन राजाके द्वारा की जाती हुई महाकालकी पूजाको आदरपूर्वक देखने लगी। राजाके द्वारा की गयी उस आश्चर्यजनक शिवपूजाको देख करके शिवजीको प्रणामकर वह पुनः अपने शिविरमें लौट गयी॥ १९-२०॥

यह सब अच्छी तरह देखकर उस गोपीपुत्रने कौतूहल-वश उस शिवपूजनको करनेका विचार किया॥ २१॥

उसने अपने शिविरके सन्निकट किसी दूसरे सूने शिविरमें अत्यन्त मनोहर पाषाण लाकर भक्तिपूर्वक उसे स्थापित किया और गन्ध, आभूषण, वस्त्र, धूप, दीप, अक्षत आदि कृत्रिम द्रव्योंसे शिवजीका पूजनकर नैवेद्य भी चढ़ाया। पुनः मनोहर बिल्वपत्रों एवं पुष्पोंसे बार-बार शिवपूजनकर अनेक प्रकारका नृत्य करके शिवको बार-बार प्रणाम किया॥ २२—२४॥

उसी समय उस ग्वालिनने शिवमें आसक्त हुए श्रेष्ठ मनवाले अपने पुत्रको स्नेहसे भोजनके लिये बुलाया॥ २५॥

जब शिवभक्तिमें सने हुए चित्तवाले उस बालकने

बार-बार बुलाये जानेपर भी भोजनकी इच्छा नहीं की, तब उसकी माता [स्वयं] वहाँ गयी॥ २६॥

आँखें बन्द किये हुए उसे शिवजीके आगे बैठा हुआ देखकर उसका हाथ पकड़कर खींचा और क्रोधपूर्वक मारा। किंतु खींचने और मारनेपर भी जब उसका पुत्र नहीं आया, तब उसने शिवलिंगको दूर फेंककर उसकी पूजाको नष्ट कर दिया॥ २७-२८॥

इसके बाद 'हाय! हाय!' कहकर दुखी होते हुए अपने पुत्रको झिड़ककर क्रोधयुक्त वह ग्वालिन पुन: अपने घरमें प्रविष्ट हो गयी। तब वह बालक [अपनी] माताके द्वारा भगवान् शिवके पूजनको नष्ट किया गया देखकर देव! देव! इस प्रकार कहकर चीखने लगा और [पृथ्वीपर] गिर पड़ा॥ २९-३०॥

इसके बाद शोकाकुल होनेके कारण वह सहसा मूर्च्छित हो गया; फिर दो घड़ी बाद चेतनामें आनेपर उसने अपने दोनों नेत्र खोले। शिवजीकी कृपासे उसी क्षण वहाँपर महाकालका सुन्दर शिविर (देवालय) बन गया, जिसे उस बालकने देखा॥ ३१-३२॥

उस शिवालयके स्वर्णमय बड़े-बड़े दरवाजे थे, उसमें सुन्दर किवाड़ तथा वन्दनवार लगे हुए थे और वह बहुमूल्य इन्द्रनील मणि तथा उज्ज्वल हीरेकी वेदीसे सुशोभित हो रहा था। वह विचित्रतायुक्त बहुत-से तप्त-सुवर्णनिर्मित कलशोंसे युक्त था और मणिके खम्भोंसे जगमगाते हुए तथा स्फटिक मणिके बने हुए भूतल (फर्श)-से शोभायमान हो रहा था॥ ३३-३४॥

उस गोपीपुत्रने उस (देवालय)-के बीचमें कृपानिधि शिवजीका रत्नमय ज्योतिर्लिंग देखा, जो उसकी पूजन-सामग्रीसे सर्वथा अलंकृत था॥ ३५॥

यह सब देख वह बालक सहसा उठकर खड़ा हो गया। उसे मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उठकर आनन्दसागरमें मानो निमग्न हो गया॥ ३६॥

तदनन्तर बारंबार शिवकी स्तुति तथा प्रणाम करके सूर्यास्त होनेपर वह बालक शिवालयसे [अपने शिविरमें] चला गया। [वहाँ जाकर] उसने शीघ्र ही इन्द्रनगरके समान सुवर्णसे बने हुए, विचित्रतासे युक्त तथा अत्यन्त उज्ज्वल अपने शिविरको देखा॥ ३७-३८॥

उसने सायंकालके समय प्रसन्न हो मणियों एवं सुवर्णसे रचित सर्वशोभासम्पन्न अपने भवनमें प्रवेश किया। वहाँ उसने दिव्य लक्षणोंवाली, रत्नालंकारोंसे जगमगाते हुए अंगोंवाली तथा साक्षात् सुरांगनाके समान [प्रतीत होती हुई] अपनी माताको सोते हुए देखा॥ ३९-४०॥

हे विप्रो! इसके बाद आनन्दसे परिपूर्ण हो शिवके कृपापात्र उस बालकने वेगपूर्वक अपनी माताको उठाया। जब वह उठी, तो सब अपूर्व अद्भुत दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो आनन्दमें निमग्न हो गयी और उसने अपने पुत्रका आलिंगन किया॥ ४१-४२॥

तब अपने पुत्रके मुखसे गिरिजापतिकी सम्पूर्ण कृपाको सुनकर उस ग्वालिनने उस राजाको, जो निरन्तर भगवान् शिवका पूजन कर रहा था, [सारा वृत्तान्त] बताया। नियम समाप्त होनेके बाद राजाने रात्रिमें वहाँ सहसा आकर शिवको प्रसन्न करनेवाले गोपिका-पुत्रके उत्तम [भक्ति] प्रभावको देखा॥ ४३-४४॥

अमात्य एवं पुरोहितसहित वह धैर्यशाली राजा यह सब देखकर परमानन्दसागरमें डूब गया॥ ४५॥

वह राजा चन्द्रसेन प्रेमसे आँसू बहाता हुआ और 'शिव' नामका उच्चारण करता हुआ प्रेमपूर्वक उस बालकका आलिंगन करने लगा। हे ब्राह्मणो! उस समय वहाँ बहुत बड़ा उत्सव हुआ। सभी लोग आनन्दसे विभोर हो शिवजीका कीर्तन करने लगे॥ ४६-४७॥

इस प्रकार अतीव अद्भुत लीलाओंवाले शिवजीके माहात्म्यको देखनेसे आनन्दमग्न पुरवासियोंकी वह रात्रि क्षणमात्रकी भाँति बीत गयी॥ ४८॥

इसके बाद युद्धके लिये नगरको घेरकर स्थित हुए राजाओंने प्रात:काल होते ही अपने गुप्तचरोंसे यह समाचार सुना। तब जो-जो राजा वहाँ आये हुए थे, वे सब यह सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और एकत्रित हो आपसमें कहने लगे॥ ४९-५०॥

राजागण बोले—यह महाकालपुरी उज्जयिनीका अधीश्वर राजा चन्द्रसेन शिवभक्त होनेसे निश्चिन्त तथा दुर्जेय है। जिसकी पुरीमें शिशु भी इस प्रकारके शिवभक्त हैं, वह

राजा चन्द्रसेन तो महान् शिवभक्त होगा। निश्चय ही इसके साथ विरोध करनेसे तो शिवजी क्रुद्ध हो जायँगे और उनके क्रोधसे हम सब लोग विनष्ट हो जायँगे। इसलिये हमें इस राजासे मेल कर लेना चाहिये; ऐसा करनेपर शिवजी [हमलोगोंपर] महती कृपा करेंगे॥ ५१—५४॥

सूतजी बोले—इस प्रकार निश्चयकर उन राजाओंने वैरभावको त्याग दिया, उनका अन्तःकरण पवित्र हो गया और उन लोगोंने परम प्रसन्न होकर अपने-अपने हाथोंसे अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग कर दिया॥ ५५॥

उन राजाओंने महाकालकी रम्य पुरीमें प्रवेश किया और चन्द्रसेनकी आज्ञा लेकर महाकालका भलीभाँति पूजन किया। इसके बाद वे सभी राजा ग्वालिनके घर गये और दिव्य तथा महान् समृद्धिवाले उसके भाग्यकी प्रशंसा करने लगे॥ ५६-५७॥

चन्द्रसेनके द्वारा उन राजाओंकी अगवानी तथा भलीभाँति पूजा किये जानेके उपरान्त [उसके द्वारा प्रदत्त] बहुमूल्य आसनोंमें बैठे हुए वे राजागण [शिवजीकी महिमाको देखकर] अत्यन्त विस्मित तथा प्रसन्न हो गये। गोपपुत्रपर हुई कृपासे उत्पन्न हुए शिवालय तथा [उसमें प्रतिष्ठित] शिवलिंगको देखकर शिवजीके प्रति उनकी अगाध श्रद्धा हो गयी॥ ५८-५९॥

तब शिवकी कृपा प्राप्त करनेकी अभिलाषावाले उन सभी राजाओंने प्रसन्न होकर उस गोपकुमारको बहुत-सी वस्तुएँ दीं। उन राजाओंने समस्त देशोंमें जो-जो बहुत-से गोप रहते थे, उन सबका उसे राजा बना दिया॥ ६०-६१॥

इसी बीच सभी देवगणोंसे पूजित वानराधिपति तेजस्वी हनुमान्‌जी वहाँ प्रकट हुए॥ ६२॥

हनुमान्‌जीके प्रकट हो जानेसे सभी राजा आश्चर्यचकित हो गये और वे उठकर भक्तिभावसे समन्वित हो उन्हें प्रणाम करने लगे॥ ६३॥

उन सभीके बीचमें विराजमान हनुमान्‌जी उनसे पूजित हो उस गोपपुत्रका आलिंगनकर राजाओंकी ओर देख करके यह कहने लगे—॥ ६४॥

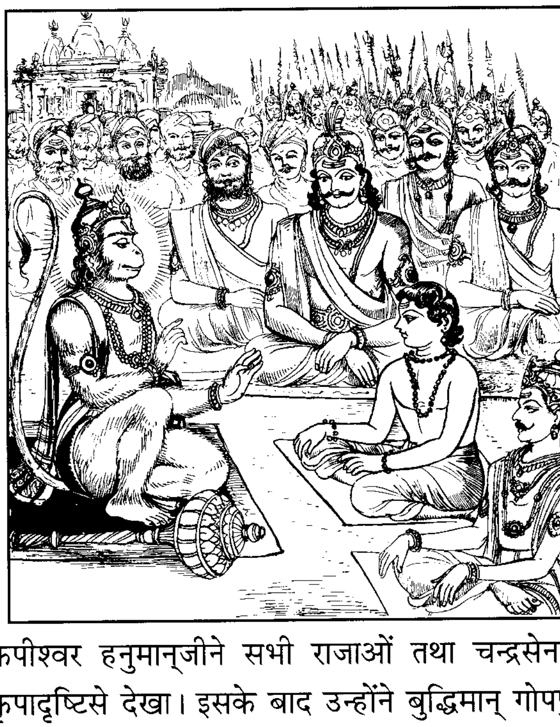
हनुमान्‌जी बोले—हे राजाओ! आप सभी लोग तथा दूसरे देहधारी भी सुनें; जो भी शरीरधारी प्राणी हैं, उनका शरणदाता शिवके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। इसी प्रकार इस गोपपुत्रने भाग्यसे शिवपूजाको देखकर बिना मन्त्रके ही कल्याणकारी शिवका पूजनकर उन्हें प्राप्त कर लिया॥ ६५-६६॥

शिवजीका यह श्रेष्ठ भक्त गोपोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाला होगा और इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करेगा॥ ६७॥

इसके वंशकी आठवीं पीढ़ीमें महायशस्वी नन्द नामक गोप उत्पन्न होंगे; जिनके पुत्ररूपमें श्रीकृष्ण नामसे साक्षात् नारायण ही अवतीर्ण होंगे॥ ६८॥

आजसे लेकर यह गोपकुमार इस लोकमें 'श्रीकर' नामसे महती लोकप्रसिद्धि प्राप्त करेगा॥ ६९॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर अंजनीपुत्र शिवावतार



कपीश्वर हनुमान्‌जीने सभी राजाओं तथा चन्द्रसेनको कृपादृष्टिसे देखा। इसके बाद उन्होंने बुद्धिमान् गोपपुत्र श्रीकरको प्रेमपूर्वक शिवजीको प्रिय लगनेवाले शिवाचारका उपदेश दिया॥ ७०-७१॥

हे द्विजो! उसके अनन्तर अति हर्षित हुए हनुमान्‌जी सभी राजाओं, चन्द्रसेन तथा श्रीकर आदिके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। इसके बाद चन्द्रसेनके द्वारा सत्कृत हो प्रसन्न हुए सभी राजा उनसे आज्ञा लेकर

अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ७२-७३॥

परम तेजस्वी श्रीकर भी हनुमान्‌जीसे उपदेश पाकर धर्मज्ञ ब्राह्मणोंके साथ शिवपूजन करने लगा। [इस प्रकार] महाराज चन्द्रसेन तथा गोपपुत्र श्रीकर दोनों ही बड़ी प्रीतिसे महाकालकी उपासना करने लगे॥ ७४-७५॥

कुछ समयके बाद वह श्रीकर तथा राजा चन्द्रसेन भी महाकालकी आराधनाकर परम पदको प्राप्त हुए॥ ७६॥

इस प्रकार महाकाल नामक ज्योतिर्लिंग सज्जनोंको शुभ गति देनेवाला, सभी दुष्टोंका वध करनेवाला, कल्याणकारी तथा भक्तोंके ऊपर दया करनेवाला है॥ ७७॥

[हे द्विजो!] मैंने अत्यन्त पवित्र, गोपनीय, सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाले, स्वर्गको प्रदान करनेवाले तथा शिवमें भक्तिको बढ़ानेवाले इस आख्यानका वर्णन किया॥ ७८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें महाकाल ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन

ऋषि बोले—हे महाभाग सूतजी! आपने अपने भक्तजनोंकी रक्षा करनेवाले महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगकी अद्भुत कथा सुनायी॥ १॥

हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! अब कृपा करके ओंकारमें विद्यमान, समस्त पापोंको दूर करनेवाले परमेश नामक चतुर्थ ज्योतिर्लिंगका वर्णन कीजिये॥ २॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! हे महर्षियो! ॐकारमें जिस तरहसे परमेश (अमरेश्वर) नामक ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति हुई, उसे मैं प्रसन्नतापूर्वक आप लोगोंसे कह रहा हूँ, आपलोग सुनिये॥ ३॥

किसी समय महाभक्तिसम्पन्न भगवान् नारदमुनिने गोकर्णेश्वर नामक शिवके समीप जाकर बड़े भक्तिभावसे उनकी सेवा की। इसके बाद वे मुनिश्रेष्ठ वहाँसे विन्ध्यपर्वतपर आये। वहाँ उस श्रेष्ठ पर्वतने बड़े आदरके साथ उनकी पूजा की॥ ४-५॥

'मैं सब प्रकारसे पूर्ण हूँ और मुझमें किंचिन्मात्र भी न्यूनता नहीं है' इस अहंभावसे ग्रस्त होकर वह नारदजीके समक्ष खड़ा हो गया॥ ६॥

उसके इस प्रकारके अभिमानको देखकर अभिमानको चूर्ण करनेवाले नारदजी नि:श्वास लेकर स्थिर रहे; तब विन्ध्यने यह कहा—॥ ७॥

विन्ध्य बोला—हे देवर्षे! आपको मुझमें कौन-सी कमी दिखायी दी, जिससे आप नि:श्वास लेकर दुखी हो रहे हैं। यह सुनकर उन महामुनि नारदने यह वचन कहा—॥ ८॥

नारदजी बोले—[हे विन्ध्य!] यद्यपि तुममें सभी प्रकारके गुण हैं, किंतु सुमेरु तुमसे भी ऊँचा है। वहाँ देवगणोंका निवास है, किंतु तुमपर देवगण निवास नहीं करते॥ ९॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे ही वहाँसे चले गये। तब विन्ध्याचल दुखी हो विचार करने लगा—ओह! मेरे जीवन आदिको धिक्कार है। अब मैं विश्वेश्वर शिवकी आराधना करते हुए तप करूँगा—इस प्रकार अपने मनमें सोचकर वह शिवजीकी शरणमें गया॥ १०-११॥

वह प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पहुँचा, जहाँ ॐकारेश्वर शिव स्थित थे। उसने वहाँपर शिवकी एक पार्थिव मूर्ति बनायी। छ: महीनेतक लगातार शिवाराधन करते हुए वह शिवध्यानमें लीन रहा और तप:स्थानसे [किंचिन्मात्र] विचलित नहीं हुआ॥ १२-१३॥

विन्ध्यके इस तपको देखकर शिवजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने योगियोंके लिये भी दुर्लभ अपने स्वरूपका उसे दर्शन कराया। उसके अनन्तर प्रसन्न हुए शिवजीने कहा—मनोभिलषित वर माँगो, मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हूँ; मैं भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला हूँ॥ १४-१५॥

विन्ध्य बोला—हे देवेश! हे शम्भो! यदि आप

[मुझपर] प्रसन्न हैं, तो मेरा कार्य सिद्ध करनेवाली अभिलषित बुद्धि प्रदान कीजिये; आप सदैव भक्तवत्सल हैं॥ १६॥

सूतजी बोले—यह सुनकर भगवान् शिवजी



देरतक अपने मनमें विचार करते रहे कि मूर्ख बुद्धिवाला यह विन्ध्य दूसरोंको दुःख देनेवाला वर चाहता है। अब मैं क्या करूँ, जिससे मेरे वरदानसे इसका कल्याण हो और मेरे द्वारा दिये गये वरसे दूसरोंको पीड़ा न पहुँचे॥ १७-१८॥

सूतजी बोले—तथापि शिवने उसे यह उत्तम वरदान दिया, 'हे पर्वतराज विन्ध्य! तुम जैसा चाहते हो, वैसा करो'। इसी समय देवताओं और विशुद्ध अन्तःकरणवाले ऋषियोंने शिवजीकी पूजाकर कहा—[हे प्रभो!] आप यहीं स्थित रहें॥ १९-२०॥

देवगणोंका वह वचन सुनकर हर्षित हुए परमेश्वरने लोककल्याणके लिये प्रेमपूर्वक वैसा ही किया॥ २१॥

ओंकार नामक जो एक लिंग था, वह दो रूपोंमें विभक्त हो गया। प्रणवमें स्थित सदाशिव ॐकारेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए और जो पार्थिवमें प्रकट हुए, वे परमेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुए। हे द्विजो! वे दोनों ही [लिंग] भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाले तथा भुक्ति और मुक्ति देनेवाले हैं॥ २२-२३॥

तब देवताओं एवं ऋषियोंने उनकी पूजा की तथा उन वृषभध्वजको प्रसन्न करके अनेक वरदान प्राप्त किये। इसके बाद देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। हे द्विजो! विन्ध्य भी बहुत प्रसन्न हुआ; उसने अपना कार्य सिद्ध किया और दुःखका परित्याग कर दिया॥ २४-२५॥

हे द्विजो! जो इस प्रकार शिवकी पूजा करता है, वह माताके गर्भमें पुनः निवास नहीं करता और उसका जो भी अभीष्ट फल है, उसे प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है॥ २६॥

सूतजी बोले—इस प्रकार मैंने ॐकारेश्वरका सम्पूर्ण माहात्म्य आपलोगोंसे कहा; अब इसके अनन्तर केदारेश्वर नामक श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगका वर्णन करूँगा॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

केदारेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्राकट्य एवं माहात्म्यका वर्णन

सूतजी बोले—हे द्विजो! विष्णुके नर-नारायण नामक जिन दो अवतारोंने भारत [वर्षके अन्तर्गत भरत] खण्डमें स्थित बदरिकाश्रममें तप किया था, उनके द्वारा पूजनहेतु प्रार्थना किये जानेपर भक्तके वशीभूत होनेके कारण सदाशिव नित्य इनके पार्थिव लिंगमें विराजमान हो जाते हैं॥ १-२॥

इस प्रकार शिवकी पूजा करते हुए उन परम शिव-भक्त विष्णुके अवतारभूत धर्मपुत्र नर-नारायणका बहुत समय बीत गया। किसी समय प्रसन्न हुए परमेश्वरने कहा—मैं [आप दोनोंपर] प्रसन्न हूँ; वर माँगिये॥ ३-४॥

तब उनके इस प्रकार कहनेपर स्वयं नर-नारायणने लोककल्याणकी कामनासे यह वचन कहा— ॥ ५॥

नर-नारायण बोले—हे देवेश! हे शंकर! यदि



आप प्रसन्न हैं और यदि वर देना चाहते हैं, तो अपने स्वरूपसे पूजाके निमित्त स्वयं यहींपर निवास करें॥ ६॥

सूतजी बोले—तब उन दोनोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर हिमाच्छादित उस केदारक्षेत्रमें स्वयं महेश्वर सदाशिव ज्योतिरूपसे विराजमान हो गये॥ ७॥

इस प्रकार उनसे पूजित होकर सम्पूर्ण संकट तथा भयको दूर करनेवाले शिवजी लोकका कल्याण करनेके लिये एवं भक्तोंको दर्शन देनेके लिये वहाँ केदारेश्वर नामसे स्वयं स्थित हो गये। वे दर्शन तथा पूजन करनेसे अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करते हैं॥ ८-९॥

इनका पूजन सभी देवता तथा पुरातन ऋषि भी करते हैं और वे भलीभाँति प्रसन्न हुए महेश्वरसे मनोभिलषित वर प्राप्त करते हैं। बदरिकाश्रमके निवासी भी सदाशिवकी नित्य पूजा करनेका वांछित फल प्राप्त करते हैं, क्योंकि वे [सदाशिव] सदैव अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं॥ १०-११॥

उस दिनसे लेकर जिसने भी भक्तिसे केदारेश्वरकी पूजा की, उसे स्वप्नमें भी [किसी प्रकारका] कष्ट नहीं हुआ॥ १२॥

पाण्डवोंको देखकर जिन्होंने मायासे महिषका रूप धारणकर पलायन किया था और जब उन पाण्डवोंने महिषरूपधारी उन शिवको तथा उनकी पूँछ भी पकड़ ली, तब वे उन [पाण्डवों]-के प्रार्थना करनेपर नीचेकी ओर मुखकर वहाँ स्थित हो गये। भक्तवत्सल नामवाले सदाशिव उसी रूपमें वहाँ विराजमान हुए। उस रूपका शिरोभाग नयपाल (नेपाल)-में प्रकट हुआ। उसके बाद शिवजीने उन्हें (पाण्डवोंको) पूजन करनेकी आज्ञा प्रदान की। तब उनके द्वारा पूजित होकर शिवजीने उन्हें अनेक वरदान दिये और स्वयं वहीं स्थित हो गये। पाण्डव भी उनकी पूजाकर प्रसन्न होकर सभी मनोवांछित फल प्राप्त करके समस्त दुःखोंसे मुक्त होकर वहाँसे चले गये॥ १३—१७॥

भारतवासी लोगोंद्वारा उस केदारेश्वर क्षेत्रमें साक्षात् [भगवान्] शंकरकी नित्य पूजा की जाती है॥ १८॥

जो शिवप्रेमी वहाँका शिवरूपयुक्त कंकण उन्हें प्रदान करता है, वह शिवजीके समीप जाकर उनके उस रूपको देखकर सभी पापोंसे छूट जाता है। जो बदरीवनकी यात्रा करता है, वह भी जीवन्मुक्त हो जाता है। वहाँ नर-नारायण तथा केदारेश्वर शिवका दर्शन करके मनुष्य मुक्तिका अधिकारी हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १९—२१॥

केदारेश्वरके जो भक्त उनकी यात्रा करते हुए मार्गमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे भी मुक्त हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं करना चाहिये। वहाँ जाकर प्रसन्नतासे युक्त होकर केदारेश्वरका पूजनकर तथा वहाँका जल पीकर मनुष्य पुनर्जन्म नहीं पाता है॥ २२-२३॥

हे ब्राह्मणो! इस भरतखण्डमें सभी प्राणियोंको नर-नारायण तथा केदारेश्वरकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। वे इस भूखण्डके स्वामी हैं और विशेष करके सबके स्वामी हैं, केदार नामक शम्भु सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ २४-२५॥

हे महर्षियो! आपलोगोंने जो बात पूछी थी, वह सब मैंने कह दिया, इसे सुननेसे सारे पाप दूर हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं है॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें केदारेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

भीमशंकर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्य-वर्णन-प्रसंगमें भीमासुरके उपद्रवका वर्णन

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] अब मैं भीमशंकरके माहात्म्यको कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य सभी प्रकारके अभीष्टको प्राप्त कर लेता है॥ १॥

कामरूप नामक देशमें लोकहितकी कामनासे साक्षात् कल्याण एवं सुखके भाजन शिवजी स्वयं प्रकट हुए थे।* हे मुनीश्वरो! लोककल्याण करनेवाले शंकरजीने [यहाँ] जिस लिये अवतार लिया, उसे आपलोग आदरपूर्वक सुनिये; मैं कह रहा हूँ॥ २-३॥

हे ब्राह्मणो! पूर्व समयमें सभी प्राणियोंको सदा दुःख देनेवाला एवं धर्मको नष्ट करनेवाला भीम नामका एक बड़ा बलवान् राक्षस हुआ था॥ ४॥

महाबलवान् वह कुम्भकर्णके द्वारा कर्कटी नामक राक्षसीसे उत्पन्न हुआ था और अपनी माताके साथ सह्य पर्वतपर निवास करता था॥ ५॥

संसारको भयभीत करनेवाले कुम्भकर्णका रामके द्वारा वध कर दिये जानेपर वह राक्षसी स्वयं सह्य पर्वतपर अपने पुत्रके साथ निवास करने लगी॥ ६॥

हे द्विजो! सारे प्राणियोंको दुःख देनेवाले प्रचण्ड पराक्रमी उस भीमने बाल्यावस्थामें किसी समय [अपनी] माता कर्कटीसे पूछा— ॥ ७॥

भीम बोला—हे मातः! मेरे पिता कौन हैं, वे कहाँ रहते हैं और तुम अकेली ही यहाँ क्यों रहती हो? मैं वह सब जानना चाहता हूँ, तुम इस समय ठीक-ठीक बताओ॥ ८॥

सूतजी बोले—इस प्रकार अपने पुत्रके पूछनेपर उस दुष्टा राक्षसीने अपने पुत्रसे कहा—तुम सुनो, मैं सब कुछ कहती हूँ॥ ९॥

कर्कटी बोली—तुम्हारे पिता रावणके छोटे भाई महाबली कुम्भकर्ण थे, जिन्हें रामने उनके भाई रावणसहित मार डाला। हे तात! पूर्वकालमें किसी समय वह बलवान् राक्षस कुम्भकर्ण यहाँ आया और उसने मेरे साथ बलपूर्वक सहवास किया। इसके बाद वह महाबली [कुम्भकर्ण] मुझे यहींपर छोड़कर लंकापुरी चला गया। मैंने वह लंका नहीं देखी है, अतः मैं यहीं निवास करती हूँ। मेरे पिताका नाम कर्कट है तथा मेरी माता पुष्कसी कही गयी है। मेरा पति विराध था, जिसे रामने पहले ही मार दिया था॥ १०—१३॥

अपने प्रिय पतिके मारे जानेपर मैं अपने माता-पिताके साथ यहाँ निवास करने लगी। मेरे माता-पिताको (सुतीक्ष्ण) ऋषिने भस्म कर दिया और वे मर गये। [इसका कारण यह था कि] वे दोनों उनको खानेके लिये गये हुए थे, तब परम तपस्वी महात्मा अगस्त्यशिष्य सुतीक्ष्णने क्रोधित हो उन्हें भस्म कर दिया॥ १४-१५॥

इस प्रकार मैं दुखी होकर बिना किसी सहायक एवं आश्रयके पहलेसे अकेली ही इस पर्वतपर निवास करने लगी। इस अवसरपर रावणके छोटे भाई राक्षस कुम्भकर्णने यहाँ आकर मेरे साथ सहवास किया और वह मुझे छोड़कर चला गया। [हे पुत्र!] उसके बाद महाबली एवं पराक्रमी तुम उत्पन्न हुए और अब मैं तुम्हारा सहारा लेकर समय बिता रही हूँ॥ १६—१८॥

सूतजी बोले—माताके इस वचनको सुनकर प्रबलपराक्रमी भीम कुपित हो उठा और विचार करने लगा कि अब मैं हरिके प्रति क्या करूँ? इस रामचन्द्रने मेरे पिता तथा नानाका वध किया और इसने विराधका भी वध किया; इस प्रकार इसने बहुत अधिक दुःख दिया है। अतः यदि मैं कुम्भकर्णका पुत्र हूँ, तो हरिको अवश्य

* मतान्तरसे भीमशंकर ज्योतिर्लिंग बम्बईसे पूर्व एवं पूनासे उत्तर भीमा नदीके तटपर सह्याद्रिपर स्थित है। यहींसे भीमा नदी निकलती है। ऐसी जनश्रुति है कि भगवान् शंकरने जब त्रिपुरासुरका वध किया था तो उन्होंने यहीं विश्राम किया था। उस समय 'भीमक' नामक एक सूर्यवंशीय राजा यहाँ तपस्या करता था। राजाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उसे दर्शन दिया और उसकी प्रार्थनापर वे यहाँ दिव्य ज्योतिर्लिंगके रूपमें स्थित होकर भीमशंकरके नामसे प्रसिद्ध हो गये। मराठी शिवलीलामृत, गुरुचरित्र, स्तोत्ररत्नाकर आदि ग्रन्थोंमें इस ज्योतिर्लिंगकी महिमाका गान किया गया है। गंगाधर, रामदास, श्रीधरस्वामी, ज्ञानेश्वर आदि संत-महात्माओंने इसी ज्योतिर्लिंगकी महिमाका वर्णन किया है। वर्तमानमें इसी ज्योतिर्लिंगकी अधिक प्रसिद्धि है। कुछ लोग उत्तराखण्डके नैनीताल जिलेमें उज्जनक नामक स्थानपर स्थित भगवान् शिवके विशाल मन्दिरको श्रीभीमशंकर ज्योतिर्लिंग कहते हैं, किंतु शिवपुराणके अनुसार श्रीभीमशंकर ज्योतिर्लिंग असम प्रान्तके कामरूप जिलेमें ब्रह्मपुर पहाड़ीपर गोहाटीके पास अवस्थित है।

पीड़ा पहुँचाऊँगा—ऐसा विचार करके भीम महान् तप करनेके लिये चल पड़ा॥ १९—२१॥

उसने ब्रह्माको उद्देश्य करके मनसे उनका ध्यान करते हुए एक हजार वर्षतक महान् तप किया। वह राक्षसपुत्र भीम सूर्यकी ओर दृष्टि लगाये हुए दोनों हाथ ऊपर उठाकर एक पैरपर स्थित रहा॥ २२-२३॥

[इस प्रकार तपमें निरत उस राक्षसके] सिरसे अत्यन्त भयानक तेज उत्पन्न हुआ; तब उस तेजसे जलते हुए देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥ २४॥

इन्द्रसहित उन देवताओंने ब्रह्माजीको प्रणाम करके अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। उसके अनन्तर वे ब्रह्माजीसे अपना दुःख कहने लगे॥ २५॥

देवता बोले—हे ब्रह्मन्! उस राक्षसका तेज सभी लोकोंको पीड़ित करनेके लिये उद्यत है, अतः हे विधे! वह दुष्ट जो माँगता है, उसे वह वर दीजिये; नहीं तो आज हम सब उसके प्रचण्ड तेजसे दग्ध होकर नष्ट हो जायँगे, इसलिये उसकी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कीजिये॥ २६-२७॥

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी उसको वर देनेके लिये गये और उन्होंने यह वचन कहा—॥ २८॥

ब्रह्माजी बोले—[हे राक्षस!] मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारे मनमें जो भी हो, वह वर माँगो। ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर उस राक्षसने कहा—॥ २९॥

भीम बोला—हे देवताओंके स्वामी कमलासन ब्रह्माजी! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं तथा मुझे वर देना चाहते हैं, तो आज मुझे अप्रतिम बल दीजिये॥ ३०॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर उस राक्षसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और ब्रह्माजी भी उसे वर देकर अपने धामको चले गये। तब ब्रह्मदेवसे अतुल बलका वरदान प्राप्तकर उस गर्वयुक्त राक्षस भीमने शीघ्र ही घर आकर माताको प्रणामकर कहा—॥ ३१-३२॥

भीम बोला—हे माता! अब मेरे बलको देखना; मैं इन्द्र आदि सभी देवताओं, विष्णु तथा उनके सहायकोंका घोर विनाश करूँगा॥ ३३॥

सूतजी बोले—इस प्रकार कहकर प्रचण्ड पराक्रमवाले उस भीमने सर्वप्रथम इन्द्रादि देवताओंको जीता और उन्हें अपने-अपने स्थानसे हटाकर बाहर निकाल दिया॥ ३४॥

इसके बाद [सहायताहेतु] देवताओंके द्वारा प्रार्थित विष्णुको भी उस दैत्यने जीत लिया। तदनन्तर उसने प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीको जीतनेका उपक्रम किया॥ ३५॥

वह पहले कामरूपके स्वामी सुदक्षिणको जीतने गया, वहाँ राजाके साथ उसका भयंकर युद्ध हुआ॥ ३६॥

असुर भीमने ब्रह्माके वरदानके प्रभावसे उस महावीर तथा शिवभक्त महाराजाको [युद्धमें] जीत लिया॥ ३७॥

तब उस महाभयंकर पराक्रमवाले भीमने प्रभावशाली कामरूपेश्वरको जीतकर बाँध लिया और क्लेश देने लगा। हे द्विजो! उस दुष्ट भीमने उस शिवभक्त राजाका सामग्रीसहित राज्य तथा सर्वस्व छीन लिया। उसने उस धर्मात्मा, शिवभक्त तथा धर्मप्रिय राजाको बेड़ियोंसे बाँध दिया और एकान्तमें बन्द कर दिया॥ ३८—४०॥

तब वहाँ उसने अपने कल्याणकी इच्छासे उत्तम पार्थिव लिंग बनाकर शिवजीका भजन करना प्रारम्भ किया। उसने अनेक प्रकारसे गंगाजीकी उस समय स्तुति की। मानसिक स्नान आदि कर्म करके उस नृपश्रेष्ठने पार्थिव-विधानसे शिवका पूजन किया। जिस प्रकारका ध्यान विहित है, वैसा ही ध्यान विधिपूर्वक करके प्रणाम, स्तोत्रपाठ, मुद्रा, आसन आदिके साथ सब कुछ करते हुए उसने प्रसन्नतापूर्वक शिवजीकी उपासना की॥ ४१—४४॥

वह प्रणवके सहित पंचाक्षरी विद्याका जप करता था। उस समय उसे अन्य कार्य करनेके लिये कोई अवकाश न रहा। राजाको [अत्यन्त] प्रिय उसकी पतिव्रता पत्नी, जिसका नाम दक्षिणा था, प्रेमपूर्वक सविधि पार्थिव-पूजन किया करती थी॥ ४५-४६॥

इस प्रकार उन दोनों पति-पत्नीने शिवाराधनमें तत्पर हो भक्तोंका कल्याण करनेवाले शंकरकी तन्मयतासे सेवा की। वरदानके अभिमानसे मोहित हुए उस राक्षसने सम्पूर्ण यज्ञकर्मादि धर्मोंका लोप कर दिया और 'सब कुछ मुझे ही समर्पण करो'—वह इस प्रकारका प्रचार करने लगा॥ ४७-४८॥

हे महर्षियो! उसने दुष्ट राक्षसोंकी बहुत बड़ी अपनी सेना लेकर सारी पृथ्वी अपने वशमें कर ली और शक्तिसम्पन्न होकर वेदधर्म, शास्त्रधर्म, स्मृति-धर्म एवं

पुराणधर्मका लोपकर स्वयं वह सबका भोग करने लगा। हे द्विजो! उसने इन्द्रसहित समस्त देवताओं तथा ऋषियोंको पीड़ा पहुँचायी और उन्हें अत्यन्त दुःखित करके उनके स्थानोंसे निकाल दिया॥ ४९—५१॥

तब व्याकुल हुए इन्द्रसहित देवता तथा ऋषि ब्रह्मा और विष्णुको आगेकर शंकरकी शरणमें गये॥ ५२॥

उन लोगोंने महाकोशी नदीके उत्तम तटपर लोकका कल्याण करनेवाले शंकरकी अनेक स्तोत्रोंसे स्तुतिकर उन्हें प्रसन्न किया और पार्थिव मूर्ति बनाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा करके क्रमसे अनेक प्रकारके स्तोत्रों तथा नमस्कारादिसे उन्हें प्रसन्न किया। इस प्रकार देवगणोंकी स्तुति आदिसे स्तुत हुए शिवजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन देवताओंसे यह कहा— ॥ ५३—५५॥

शिवजी बोले—हे विष्णो! हे ब्रह्मन्! हे समस्त देवताओ एवं ऋषियो! मैं प्रसन्न हूँ, आपलोग वर माँगिये; मैं आपलोगोंका कौन-सा कार्य करूँ?॥ ५६॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! तब उन शिवजीके द्वारा यह वचन कहे जानेपर देवता लोग हाथ जोड़कर भलीभाँति प्रणाम करके शिवजीसे कहने लगे— ॥ ५७॥

देवता बोले—हे देवेश! आप सबके मनमें स्थित सारी बातें जानते हैं; आप अन्तर्यामी हैं, अतः कोई भी बात आपसे छिपी नहीं है। हे नाथ! फिर भी सुनिये; हमलोग आपकी आज्ञासे अपना दुःख निवेदन करते हैं। हे महादेव! आप [अपनी] कृपादृष्टिसे हमें देखिये॥ ५८-५९॥

कुम्भकर्णसे उत्पन्न कर्कटीका बलवान् पुत्र राक्षस भीम ब्रह्माके द्वारा दिये गये वरदानसे उन्मत्त होकर देवताओंको निरन्तर पीड़ा पहुँचा रहा है॥ ६०॥

हे महेश्वर! आप दुःख देनेवाले उस भीम नामक राक्षसका वध कीजिये। कृपा कीजिये। हे प्रभो! इसमें विलम्ब न कीजिये॥ ६१॥

सूतजी बोले—इस प्रकार सभी देवताओंद्वारा कहे जानेपर भक्तवत्सल शिवजी—'मैं उसका वध करूँगा'—ऐसा कहकर पुनः देवताओंसे कहने लगे॥ ६२॥

शम्भु बोले—हे देवताओ! राजा कामरूपेश्वर मेरा उत्तम भक्त है, आपलोग उससे यह कहिये, तब कार्य शीघ्र पूरा होगा। [शंकरजीने तुमसे कहा है कि] हे सुदक्षिण! हे महाराज! हे कामरूपेश्वर! हे प्रभो! तुम मेरे विशेष रूपसे भक्त हो, प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते रहो। मैं ब्रह्मासे प्राप्त वरसे शक्तिमान् तथा तुम्हारा तिरस्कार करनेवाले भीम नामक दुष्ट राक्षसका वध करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ ६३—६५॥

सूतजी बोले—इसके बाद उन सभी देवताओंने हर्षित हो वहाँ जाकर शिवजीने जो कहा था, वह सब उस महाराजासे कह दिया। उससे यह कहकर वे सभी देवता तथा महर्षि परम आनन्दित हुए और शीघ्र ही अपने-अपने आश्रमोंको चले गये॥ ६६-६७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके भीमेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यमें भीमासुरकृतोपद्रववर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

भीमशंकर ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति तथा उसके माहात्म्यका वर्णन

सूतजी बोले—[उसके बाद] शिवजी भी अपने गणोंको साथ लेकर राजाके कल्याणकी कामनासे आदरपूर्वक वहाँ गये और उसकी रक्षाके लिये गुप्तरूपसे स्थित हो गये॥ १॥

इसी अवसरपर कामरूपेश्वरने वहाँ पार्थिव लिंगके आगे गहन ध्यान करना प्रारम्भ किया॥ २॥

तभी किसीने जाकर राक्षससे कह दिया कि वह राजा आपके निमित्त कुछ अभिचारकर्म कर रहा है॥ ३॥

सूतजी बोले—यह सुनकर राक्षस कुपित हो उठा और उसे मारनेकी इच्छासे हाथमें तलवार लेकर राजाके समीप गया॥ ४॥

वहाँ जो पार्थिव शिवलिंग आदि रखा हुआ था, उसे देखकर और उसके स्वरूपको देखकर उसने निश्चय कर लिया कि यह मेरे लिये कुछ कर रहा है। अतः मैं आज सभी सामग्रीसहित इसे बलपूर्वक मार

डालूँगा। इस प्रकार विचार करके अत्यन्त क्रुद्ध हो राक्षसने राजासे कहा— ॥ ५-६ ॥

भीम बोला—हे दुष्टात्मा राजा! तुम इस समय क्या कर रहे हो? यह सच-सच बता दो, तो तुम्हें नहीं मारूँगा, अन्यथा निश्चय ही तुम्हारा वध कर दूँगा॥ ७॥

सूतजी बोले—उसका यह वचन सुनकर शिवमें विश्वासपरायण वह कामरूपेश्वर शीघ्र ही अपने मनमें यह विचार करने लगा—जो होनहार है, वह होकर रहेगा, उसको टालनेवाला कोई नहीं है, यहाँ तो सब कुछ प्रारब्धके अधीन है और शिवको ही प्रारब्ध कहा गया है। वे दयालु शिवजी निश्चितरूपसे इस पार्थिव लिंगमें भी उपस्थित हैं। क्या वे मेरे लिये कुछ नहीं करेंगे? यह राक्षस [उनके सामने] क्या है? वे अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे; क्योंकि भगवान् शिव वेदमें सत्यप्रतिज्ञ कहे गये हैं। [वे स्वयं कहते हैं] जब कोई अत्यन्त निर्दयी व्यक्ति मेरे भक्तको पीड़ित करता है, तो मैं उसकी रक्षाके लिये उस दुष्टका वध कर देता हूँ, इसमें संशय नहीं है॥ ८—१२॥

इस प्रकार धैर्य धारणकर भगवान् शिवका ध्यान करते हुए वह राजा अपने मनमें उत्तम भक्तिपूर्वक प्रार्थना करने लगा। हे महाराज! मैं आपका हूँ, जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये। मैं यह सत्य कहता हूँ कि आप मेरा कल्याण कीजिये॥ १३-१४॥

इस प्रकार मनमें ध्यान करके सत्यपाशमें बँधे हुए उस राजाने राक्षसका तिरस्कार करते हुए सत्य वचन कहा— ॥ १५ ॥

राजा बोला—[हे राक्षस!] मैं अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, समस्त चराचरके स्वामी तथा निर्विकार भगवान् शिवका भजन कर रहा हूँ॥ १६॥

सूतजी बोले—उस कामरूपेश्वरका यह वचन सुनकर क्रोधसे काँपते हुए शरीरवाले उस भीमने यह वचन कहा— ॥ १७॥

भीम बोला—मैं तुम्हारे शंकरको जानता हूँ, वह मेरा क्या कर लेगा, जिसे मेरे पिताके भाई [रावण]-ने दासकी भाँति स्थापित किया था॥ १८॥

तुम उसीके बलका सहारा लेकर मुझे जीतना चाहते हो, तो अब तुम सब कुछ जीत चुके! इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। जबतक तुम्हारा पालन करनेवाला वह शिव मेरे सामने आकर दिखायी नहीं पड़ता, तबतक तुम उसे स्वामी मानकर उसकी सेवा करते रहो, अन्यथा कभी नहीं कर सकोगे॥ १९-२०॥

हे राजन्! उसे मेरे द्वारा देख लेनेसे सब कुछ भलीभाँति स्पष्ट हो जायगा, अतः तुम शिवजीके इस रूपको दूर कर दो। अन्यथा तुम्हें आज अवश्य ही भय होगा, इसमें संशय नहीं है, भयंकर पराक्रमवाला मैं तुम्हारे स्वामीको तीक्ष्ण चपेटा मारूँगा॥ २१-२२॥

सूतजी बोले—उसका यह वचन सुनकर शिवके प्रति आस्थावाले राजा कामरूपेश्वरने भीमसे शीघ्र ही यह दृढ़ वचन कहा— ॥ २३॥

राजा बोला—हे राक्षस! मैं नीच एवं दुष्ट जो भी हूँ, किंतु शिवजीका त्याग कभी नहीं करूँगा और मेरे स्वामी भी सर्वश्रेष्ठ हैं, वे मेरा त्याग कभी नहीं करेंगे॥ २४॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उस शिवभक्त राजाकी बात सुनकर उस भीम राक्षसने हँसकर शीघ्र ही उस राजासे कहा— ॥ २५॥

भीम बोला—मत्त होकर वह नित्य भीख माँगता रहता है, उसे तो अपने स्वरूपका भी ज्ञान नहीं है। भक्तोंकी रक्षा करनेमें योगियोंकी क्या निष्ठा होगी?॥ २६॥

ऐसा विचारकर तुम सब प्रकारसे उससे दूर रहो, मैं और तुम्हारा वह स्वामी [परस्पर] युद्ध करेंगे॥ २७॥

सूतजी बोले—उसके बाद इस प्रकार कहे जानेपर शिवभक्त तथा दृढ़ व्रतवाले उस श्रेष्ठ राजाने निडर होकर सदा जगत्‌को दुःख देनेवाले भीमसे कहा— ॥ २८॥

राजा बोला—हे दुष्टात्मा राक्षस! सुनो, मैं ऐसा कभी नहीं कर सकता। तुम जो यह विकर्म करते हो, उसमें तुम समर्थ कहाँसे हुए हो?॥ २९॥

सूतजी बोले—उसके इस प्रकार कहनेपर सेना लेकर [आये हुए] भीमने उस राजाको धमका करके अपने भयंकर कृपाणसे पार्थिव लिंगपर प्रहार किया और राक्षसोंके साथ उस महाबली भीमने हँसकर कहा—अब तुम भक्तोंको सुख देनेवाला अपने स्वामीका बल देखो॥ ३०-३१॥

हे द्विजो! जबतक कि उस तलवारने पार्थिवका स्पर्श भी नहीं किया, तबतक उस पार्थिव लिंगसे शिवजी



स्वयं प्रकट हो गये॥ ३२॥

[शिवजी बोले—] 'हे भीम! देखो, मैं ईश्वर हूँ, मैं [राजाकी] रक्षाके लिये प्रकट हुआ हूँ। मेरा पहलेसे ही यह व्रत है कि मैं सदा भक्तोंकी रक्षा करता हूँ। अतः अब तुम भक्तोंको सुख देनेवाले मेरे बलको शीघ्र देखो'—ऐसा कहकर शिवजीने अपने पिनाक धनुषसे उसकी तलवारके दो टुकड़े कर दिये॥ ३३-३४॥

तब उस राक्षसने पुनः अपना त्रिशूल फेंका। शिवजीने उस दुष्टके उस त्रिशूलके भी सैकड़ों टुकड़े कर दिये॥ ३५॥

हे द्विजो! तब उस दुष्टने शिवजीके ऊपर अपनी शक्तिसे प्रहार किया। शिवजीने शीघ्रतासे अपने बाणोंसे उसके भी लाखों टुकड़े कर दिये॥ ३६॥

तत्पश्चात् उसने शिवजीके ऊपर पट्टिशसे प्रहार किया, तब शिवजीने त्रिशूलसे पट्टिशको तिलके समान खण्ड-खण्ड कर दिया॥ ३७॥

उसके बाद शिवके गणों तथा राक्षसोंके बीच घोर युद्ध होने लगा, जो देखनेवालोंको भय उत्पन्न करनेवाला था॥ ३८॥

इसके बाद तो उससे सारी पृथ्वी क्षणभरमें व्याकुल हो उठी और पर्वतोंसहित सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। सभी देवता तथा ऋषि अत्यन्त व्याकुल हो गये और आपसमें कहने लगे कि हमलोगोंने व्यर्थ ही शिवसे प्रार्थना की॥ ३९-४०॥

इसी बीच नारदजी आकरके दुःखको नष्ट करनेवाले शिवजीसे हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर प्रार्थना करने लगे॥ ४१॥

नारदजी बोले—हे नाथ! हे विभ्रमकारक! आप क्षमा करें। क्या तृणपर कुठारका प्रयोग करना उचित है? अतः आप शीघ्र ही इसका वध कीजिये॥ ४२॥

तब [नारदके द्वारा] इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर प्रभु शिवने अपने हुंकाररूपी अस्त्रसे समस्त राक्षसोंको भस्म कर दिया॥ ४३॥

हे मुने! इस प्रकार शिवजीके द्वारा वे सभी राक्षस क्षणमात्रमें सभी देवताओंके देखते-देखते दग्ध कर दिये गये। जिस प्रकार दावानलसे उत्पन्न अग्नि वनको जला डालती है, वैसे ही कुपित शिवजीने राक्षसोंकी सेनाको क्षणभरमें जला डाला॥ ४४-४५॥

उस समय किसीको ज्ञात न हुआ कि भीमकी भस्म कौन-सी है! वह परिवारसहित भस्म हो गया, उसका नाम भी कहीं सुनायी नहीं पड़ता था॥ ४६॥

इसके बाद शिवजीकी कृपासे सभी मुनीश्वरों तथा इन्द्र आदि सभी देवताओंको शान्ति प्राप्त हुई और सारा जगत् स्वस्थ हो गया॥ ४७॥

उस समय महेश्वरके क्रोधकी ज्वाला एक वनसे दूसरे वनतक फैलने लगी। इससे राक्षसोंकी वह सम्पूर्ण भस्म वनमें सभी जगह व्याप्त हो गयी॥ ४८॥

उससे अनेक कार्य सम्पन्न करनेवाली ऐसी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके प्रभावसे मनुष्योंके रूप तथा वेष भिन्न-भिन्न रूपमें बदल जाते हैं॥ ४९॥

हे द्विजो! उन औषधियोंसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि दूर भाग जाते हैं, जगत्‌का ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो उन औषधियोंसे न होता हो॥ ५०॥

उसके बाद उन देवताओं एवं ऋषियोंने शिवजीसे विशेषरूपसे प्रार्थना की—संसारको सुख देनेके लिये आप स्वामीको अब यहीं निवास करना चाहिये। निर्बल

तथा पराक्रमहीन लोगोंको दु:ख देनेवाला यह बड़ा कुत्सित देश है, आपके दर्शनसे उन लोगोंका कल्याण होगा। आप भीमशंकर नामसे प्रसिद्ध होंगे और सब कुछ सिद्ध करेंगे। सभी आपत्तियोंको दूर करनेवाला यह लिंग सदा पूज्य होगा॥ ५१—५३॥

सूतजी बोले—इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर लोकका हित करनेवाले, स्वतन्त्र तथा भक्तवत्सल शिवजी प्रेमपूर्वक वहींपर स्थित हो गये॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें भीमेश्वरज्योतिर्लिंगोत्पत्ति तथा उसके माहात्म्यका वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

परब्रह्म परमात्माका शिव-शक्तिरूपमें प्राकट्य, पंचक्रोशात्मिका काशीका अवतरण, शिवद्वारा अविमुक्त लिंगकी स्थापना, काशीकी महिमा तथा काशीमें रुद्रके आगमनका वर्णन

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषिगण! अब विश्वेश्वरके महापापनाशक माहात्म्यका वर्णन करूँगा, आपलोग सुनें। संसारमें यह जो कुछ भी वस्तुमात्र दिखायी देता है, वह चिदानन्दस्वरूप, निर्विकार एवं सनातन है॥ १-२॥

अपने कैवल्य (अद्वैत)-भावमें ही रमनेवाले उस अद्वितीय परमेश्वरको दूसरा रूपवाला होनेकी इच्छा हुई, वही सगुण हो गया, जो शिवनामसे कहा जाता है॥ ३॥

वे ही स्त्री तथा पुरुषके भेदसे दो रूपोंमें हो गये। उनमें जो पुरुष था, वह शिव कहा गया एवं जो स्त्री थी, वह शक्ति कही गयी। हे मुनिसत्तमो! उन दोनों अदृष्ट चित् तथा आनन्दस्वरूप (शिव-शक्ति)-द्वारा स्वभावसे प्रकृति तथा पुरुष भी निर्मित किये गये। हे द्विजो! जब इस प्रकृति एवं पुरुषने अपने जननी एवं जनकको नहीं देखा, तब वे महान् संशयमें पड़ गये। उस समय निर्गुण परमात्मासे आकाशवाणी उत्पन्न हुई कि तुम दोनों तप करो, उसीसे उत्तम सृष्टि होगी॥ ४—७॥

प्रकृति-पुरुष बोले—हे प्रभो! हे शिव! तपका कोई स्थान नहीं है, फिर हम दोनों आपकी आज्ञासे कहाँ स्थित होकर तप करें?॥ ८॥

तब निर्गुण शिवने अन्तरिक्षमें स्थित, सभी सामग्रियोंसे समन्वित, सम्पूर्ण तेजोंका सारभूत, पंचक्रोश (पाँच कोस) परिमाणवाला एक शुभ तथा सुन्दर नगर बनाया, जो कि उनका अपना ही स्वरूप था, [उस नगरको शिवजीने] पुरुषके समीप भेज दिया॥ ९-१०॥

तब वहाँ स्थित होकर [पुरुषरूप] विष्णुने सृष्टिकी कामनासे उन शिवजीका ध्यान करते हुए बहुत कालपर्यन्त तप किया॥ ११॥

तपस्याके श्रमसे उनके शरीरसे अनेक जलधाराएँ उत्पन्न हो गयीं और उनसे सारा शून्य भर गया। उस समय कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता था॥ १२॥

इसके बाद विष्णुने देखा कि यह क्या आश्चर्य दिखायी दे रहा है! तब इस आश्चर्यको देखकर विष्णुने अपना सिर हिला दिया॥ १३॥

तब विष्णुके कानसे उनके सामने एक मणि गिर पड़ी। वही मणिकर्णिका नामसे एक महान् तीर्थ हो गया॥ १४॥

जब वह पंचक्रोशात्मिका नगरी उस जलराशिमें डूबने लगी, तब निर्गुण शिवने उसे शीघ्र ही अपने त्रिशूलपर धारण कर लिया॥ १५॥

इसके बाद विष्णुने प्रकृति नामक अपनी स्त्रीके साथ वहीं शयन किया, तब शंकरकी आज्ञासे उनके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए॥ १६॥

तब उन्होंने शिवकी आज्ञा पाकर अद्भुत सृष्टिकी रचना की। उन्होंने ब्रह्माण्डमें चौदह लोकोंका निर्माण किया। मुनियोंने इस ब्रह्माण्डका विस्तार पचास करोड़ योजन बताया है॥ १७-१८॥

ब्रह्माण्डमें [अपने-अपने] कर्मोंसे बँधे हुए प्राणी मुझे किस प्रकारसे प्राप्त करेंगे—ऐसा विचारकर उन्होंने (शिवजीने) पंचकोशीको [ब्रह्माण्डसे] अलग रखा॥ १९॥

यह काशी लोकमें कल्याण करनेवाली, कर्मबन्धनका

विनाश करनेवाली, मोक्षतत्त्वको प्रकाशित करनेवाली, ज्ञान प्रदान करनेवाली तथा मुझे अत्यन्त प्रिय कही गयी है। परमात्मा शिवने अविमुक्त नामक लिंगको स्वयं स्थापित किया और उससे कहा—हे मेरे अंश-स्वरूप! तुम्हें मेरे इस क्षेत्रका कभी त्याग नहीं करना चाहिये॥ २०-२१॥

ऐसा कहकर स्वयं सदाशिवने उस काशीको अपने त्रिशूलसे उतारकर मर्त्यलोक संसारमें स्थापित किया॥ २२॥

ब्रह्माका एक दिन पूरा होनेपर भी उस काशीका नाश निश्चत ही नहीं होता। हे मुनियो! उस समय शिवजी उसे अपने त्रिशूलपर धारण करते हैं॥ २३॥

हे द्विजो! ब्रह्माद्वारा पुनः सृष्टि किये जानेपर वे काशीको स्थापित करते हैं। [सभी प्रकारके] कर्मबन्धनोंको नष्ट करनेके कारण इसे काशी कहते हैं॥ २४॥

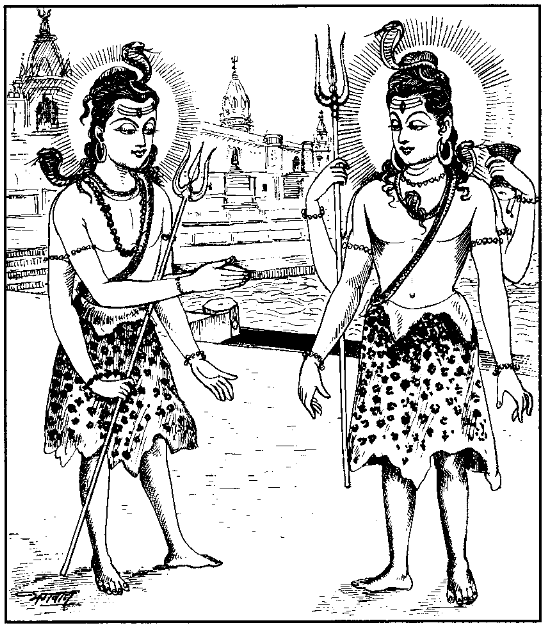
अविमुक्तेश्वर नामक लिंग काशीमें सर्वदा स्थित रहता है, यह महापातकियोंको भी मुक्त करनेवाला है। हे मुनीश्वरो! अन्यत्र (मोक्षप्रद क्षेत्रोंमें) सारूप्य आदि मुक्ति प्राप्त होती है, किंतु यहाँ प्राणियोंको सर्वोत्तम सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है॥ २५-२६॥

जिनकी कहीं गति नहीं होती, उनके लिये वाराणसीपुरी है; महापुण्यदायिनी पंचकोशी करोड़ों हत्याओंको विनष्ट करनेवाली है॥ २७॥

सभी देवतालोग भी यहाँ मृत्युकी इच्छा करते हैं, फिर दूसरोंकी बात ही क्या है? शंकरको प्रिय यह नगरी सर्वदा भोग एवं मोक्षको देनेवाली है॥ २८॥

ब्रह्मा, विष्णु, सिद्ध, योगी, मुनि तथा त्रिलोकमें रहनेवाले अन्य लोग भी सदा काशीकी प्रशंसा करते हैं। [हे महर्षियो!] मैं काशीकी सम्पूर्ण महिमाको सौ वर्षोंमें भी नहीं कह सकता। फिर भी यथाशक्ति वर्णन करता हूँ॥ २९-३०॥

जो कैलासपति भीतरसे सत्त्वगुणी, बाहरसे तमोगुणी कहे गये हैं तथा कालाग्निरुद्रके नामसे प्रसिद्ध हैं, वे निर्गुण होते हुए भी सगुणरूपमें प्रकट हुए शिव हैं। उन्होंने अनेक बार प्रणाम करते हुए शंकरसे यह वचन कहा था—॥ ३१॥



रुद्र बोले—हे विश्वेश्वर! हे महेश्वर! मैं आपका हूँ, इसमें सन्देह नहीं। हे महादेव! मुझ पुत्रपर अम्बासहित आप कृपा कीजिये। हे जगन्नाथ! हे जगत्पते! लोककल्याणकी कामनासे आप यहींपर सदा निवास कीजिये और सबका उद्धार कीजिये; मैं यही प्रार्थना करता हूँ॥ ३२-३३॥

सूतजी बोले—[तदनन्तर] मन तथा इन्द्रियोंको संयत करनेवाले अविमुक्तने भी बारंबार शिवकी प्रार्थना करके अपने नेत्रोंसे आँसुओंको गिराते हुए प्रसन्नतापूर्वक शिवजीसे कहा—॥ ३४॥

अविमुक्त बोले—हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे कालरूपी रोगकी उत्तम औषधि! सचमुच आप त्रिलोकपति हैं और ब्रह्मा तथा विष्णु आदिके द्वारा सेवनीय हैं॥ ३५॥

हे देव! आप काशीपुरीमें अपनी राजधानी स्वीकार कीजिये और मैं अचिन्त्य सुखके लिये आपका ध्यान करता हुआ यहीं निवास करूँगा॥ ३६॥

आप ही मुक्तिदाता एवं कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, दूसरा कोई नहीं; इसलिये आप लोकोपकारके लिये पार्वतीसहित सदा यहीं निवास करें। हे सदाशिव! आप [यहाँ निवास करते हुए] संसारसागरसे सभी जीवोंका उद्धार कीजिये और भक्तोंका कार्य पूर्ण कीजिये, मैं आपसे बारंबार प्रार्थना करता

हूँ ॥ ३७-३८ ॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उन विश्वनाथके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सबके स्वामी शंकरजी लोकोपकारार्थ वहाँ भी निवास करने लगे ॥ ३९ ॥

जिस दिनसे वे हर काशीमें आये, तभीसे वह काशी सर्वश्रेष्ठ हो गयी ॥ ४० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें विश्वेश्वरमाहात्म्यमें काशीमें रुद्रका आगमनवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

काशीविश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यके प्रसंगमें काशीमें मुक्तिक्रमका वर्णन

ऋषि बोले—हे प्रभो! हे सूतजी! यदि वाराणसी महापुरी इतनी पवित्र है, तो आप उसका एवं अविमुक्त [ज्योतिर्लिंग]-का प्रभाव हमलोगोंसे कहिये ॥ १ ॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! मैं संक्षेपमें सम्यक् रीतिसे वाराणसी तथा विश्वेश्वरके अतिसुन्दर माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, आपलोग सुनें ॥ २ ॥

किसी समय पार्वतीने बड़ी प्रसन्नतासे संसारके हितकी कामनासे काशी तथा अविमुक्तका माहात्म्य शिवजीसे पूछा ॥ ३ ॥

पार्वती बोलीं—[हे शिवजी!] आप लोकहितकी कामनासे मेरे ऊपर कृपा करके इस क्षेत्रका माहात्म्य पूर्णरूपसे कहनेकी कृपा करें ॥ ४ ॥

सूतजी बोले—देवीका यह वचन सुनकर देवाधिदेव जगत्प्रभुने जीवोंके कल्याणके लिये उन भवानीसे कहा— ॥ ५ ॥

परमेश्वर बोले—हे भद्रे! तुमने लोकका कल्याण करनेवाला तथा सुखदायक शुभ प्रश्न किया है, अब मैं अविमुक्त तथा काशीके यथार्थ माहात्म्यका वर्णन करता हूँ। यह वाराणसी सदा मेरा गोपनीय क्षेत्र है और सब प्रकारसे सभी प्राणियोंके मोक्षका हेतु भी है ॥ ६-७ ॥

इस क्षेत्रमें सिद्धगण अनेक प्रकारका चिह्न धारणकर मेरे लोककी प्राप्ति करनेकी इच्छासे मेरा व्रत धारणकर सर्वदा यहाँ निवास करते हैं ॥ ८ ॥

यहाँपर वे सिद्धगण अपने मन तथा इन्द्रियोंको वशमें करके महायोगका अभ्यास करते हैं एवं भोग तथा मोक्ष देनेवाले श्रेष्ठ पाशुपतव्रतका आचरण करते हैं ॥ ९ ॥

हे महेश्वरि! जिस कारणसे सब कुछ छोड़कर वाराणसीमें निवास करना मुझे निश्चय ही अच्छा लगता है, उसे तुम सुनो ॥ १० ॥

जो मेरा भक्त है एवं जो ज्ञानी है—वे दोनों ही मुक्तिके भागी हैं, उन्हें किसी अन्य तीर्थकी अपेक्षा नहीं रहती। उनके लिये विहित एवं अविहित दोनों ही (प्रकारके कर्म) समान हैं ॥ ११ ॥

उन दोनोंको जीवन्मुक्त समझना चाहिये। वे जहाँ कहीं भी मरें, उन्हें शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है, मैंने यह सत्य वचन कहा है। हे देवि! हे परम शक्तिस्वरूपिणि! इस सर्वश्रेष्ठ अविमुक्त नामक तीर्थमें जो विशेषता है, उसे तुम ध्यानसे सुनो ॥ १२-१३ ॥

सभी वर्ण तथा आश्रमके लोग; चाहे वे बालक हों, युवा हों अथवा वृद्ध हों, इस पुरीमें मरनेपर अवश्य मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १४ ॥

हे द्विजो! पवित्र हो, अपवित्र हो, कन्या हो या विवाहिता, विधवा, वन्ध्या, रजस्वला, प्रसूता अथवा असंस्कृता, चाहे-जैसी कैसी भी स्त्री हो, यदि वह इस क्षेत्रमें मर जाय, तो मुक्ति प्राप्त कर लेती है, इसमें संशय नहीं है। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज अथवा जरायुज प्राणी [—ये सभी] यहाँ मरनेपर जैसा मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं ॥ १५—१७ ॥

हे देवि! यहाँ न ज्ञानकी अपेक्षा है, न भक्तिकी अपेक्षा है, न सत्कर्मकी अपेक्षा और न दानकी ही अपेक्षा है। यहाँ न संस्कारकी अपेक्षा है और न ध्यानकी ही अपेक्षा कभी है। यहाँ न नामकी अपेक्षा है। पूजा तथा उत्तम जातिकी भी कोई अपेक्षा नहीं है ॥ १८-१९ ॥

जो कोई भी मनुष्य मेरे इस मोक्षदायक क्षेत्रमें

निवास करता है, वह चाहे जिस किसी प्रकारसे मरा हो, निश्चय ही मोक्षको प्राप्त कर लेता है॥ २०॥

हे प्रिये! यह मेरा दिव्य पुर गुह्यसे भी गुह्यतर है। हे पार्वति! ब्रह्मा आदि भी इसका माहात्म्य नहीं जानते हैं। अतः (सभी स्थितियोंमें मोक्ष प्रदान करनेके कारण)यह महान् क्षेत्र अविमुक्त कहा गया है। मरनेके बाद यह नैमिषारण्य आदि क्षेत्रोंसे भी अधिक मोक्षप्रद है॥ २१-२२॥

विद्वान् पुरुष धर्मका उपनिषद् सत्य, मोक्षका सारतत्त्व समत्वभाव, क्षेत्र और तीर्थका उपनिषद् अविमुक्त-क्षेत्रको कहते हैं। अपनी इच्छानुसार भोजन, शयन, क्रीड़ा आदि विविध क्रियाओंको करता हुआ भी अविमुक्तमें प्राण-त्याग करनेवाला प्राणी मोक्षका अधिकारी हो जाता है॥ २३-२४॥

हजारों पाप करके पिशाच हो जाना भी अच्छा है, किंतु काशीको छोड़कर स्वर्गमें हजार इन्द्रपद श्रेष्ठ नहीं हैं। इसलिये मुनिजन पूर्ण प्रयत्नके साथ काशीपुरीका सेवन करते हैं और अव्यक्त स्वरूपवाले सदाशिवका ध्यान करते हैं॥ २५-२६॥

हे प्रिये! मनुष्य जिस-जिस फलको उद्देश्य करके यहाँ तप करते हैं, उन्हें मैं निश्चय ही वे-वे मनोवांछित फल प्रदान करता हूँ, उसके बाद उन्हें अपनी सायुज्यमुक्ति तथा अभिलषित स्थान देता हूँ। यहाँ शरीरका त्याग करनेवालोंको कहीं भी कर्मका बन्धन नहीं होता है॥ २७-२८॥

देवताओं तथा ऋषियोंके सहित ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और अन्य सभी महात्मा तथा दूसरे लोग भी यहाँ मेरी उपासना करते हैं॥ २९॥

विषयासक्त चित्तवाला तथा धर्मरुचिसे रहित मनुष्य भी यदि इस क्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त करता है, तो वह पुनः इस संसारमें नहीं आता है, फिर ममतासे रहित, धैर्यवान्, सत्त्वगुणमें स्थित, अहंकाररहित, पुण्यात्मा तथा सर्वारम्भपरित्यागी [निष्काम कर्म करनेवाले] पुरुषोंका कहना ही क्या है, वे सभी तो मुझमें ही लीन रहते हैं॥ ३०-३१॥

हजारों जन्म लेनेके पश्चात् योगी पुरुष यहाँ जन्म प्राप्त करता है, वह यहाँ मरनेपर परम मोक्ष प्राप्त करता है। हे पार्वति! यहाँपर मेरे भक्तोंने अनेक लिंग स्थापित किये हैं, जो कामनाओंको पूर्ण करनेवाले एवं मोक्ष देनेवाले हैं॥ ३२-३३॥

यह क्षेत्र चारों दिशाओंमें सभी ओर पाँच कोसतक फैला हुआ कहा गया है, इसमें कहीं भी मर जानेपर प्राणीको अमृतत्वकी प्राप्ति होती है॥ ३४॥

जो पापरहित (पुण्यात्मा) मनुष्य यहाँ मरता है, वह शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर लेता है और जो पापी मरता है, वह [पहले] कायव्यूहोंको प्राप्त करता है, फिर वह यातनाको भोगकर बादमें मोक्ष प्राप्त करता है। हे सुन्दरि! जो इस अविमुक्तक्षेत्रमें पाप करता है, वह निश्चित ही दस हजार वर्षपर्यन्त भैरवी यातना प्राप्त करके पापका फल भोगनेके अनन्तर मुक्त हो जाता है॥ ३५—३७॥

इस प्रकार यहाँ पाप करनेवालोंकी जो गति होती है, उस सबको मैंने तुमसे कह दिया। इसे जानकर मनुष्यको अविमुक्तक्षेत्रका विधिवत् सेवन करना चाहिये। सौ करोड़ कल्पोंमें भी [अपने द्वारा] किये गये कर्मका नाश नहीं होता है, किये गये शुभ और अशुभ कर्मका फल [जीवको] अवश्य भोगना पड़ता है॥ ३८-३९॥

अशुभ कर्म निश्चय ही नरकके लिये होता है एवं शुभ कर्म स्वर्गके लिये होता है। [शुभ-अशुभ] दोनों कर्मोंसे मनुष्यलोकमें जन्म कहा गया है॥ ४०॥

हे पार्वति! शुभाशुभ कर्मके न्यूनाधिक्यसे उत्तम तथा अधम शरीर प्राप्त होते हैं, किंतु जब दोनोंका क्षय हो जाता है, तब मुक्ति होती है, यह सत्य है॥ ४१॥

हे महेश्वरि! कर्मकाण्डमें संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण—तीन प्रकारके कर्म बताये गये हैं, जो बन्धनमें डालनेवाले हैं॥ ४२॥

पूर्वजन्ममें किये गये कर्मको संचित कहा गया है और जिसका इस शरीरसे भोग किया जा रहा है, वह प्रारब्ध कहा गया है। हे देवेशि! जो इस जन्ममें शुभाशुभ कर्म इस समय किया जा रहा है, उसे विद्वज्जन क्रियमाण कहते हैं॥ ४३-४४॥

प्रारब्ध कर्मका नाश [केवल] उसके भोगसे ही होता है, इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। संचित और क्रियमाण—इन दोनों कर्मोंका नाश पूजनादि उपायसे होता है। सम्पूर्ण कर्मोंका नाश काशीपुरीके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं होता है। सभी तीर्थ सुलभ हैं, किंतु काशीपुरी दुर्लभ है॥ ४५-४६ ॥

यदि पूर्वजन्ममें आदरपूर्वक काशीका दर्शन किया गया है, तभी काशीमें आकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं। काशीमें आकर जो मनुष्य गंगास्नान करता है, उसके संचित तथा क्रियमाण कर्मका नाश हो जाता है॥ ४७-४८ ॥

यह निश्चित है कि बिना भोग किये प्रारब्धकर्मका नाश नहीं होता, जब मनुष्यकी [शास्त्रानुमोदित रीतिसे] मृत्यु होती है, तब प्रारब्धकर्मका भी क्षय हो जाता है। यदि किसीने पूर्वमें काशीसेवन किया है और उसके बाद पाप किया है, तो भी काशीसेवनरूप बलवान् बीजसे उसे काशी पुनः प्राप्त हो जाती है और तब सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं, इसलिये कर्मका निर्मूलन करनेवाली काशीका सेवन निश्चित रूपसे करना चाहिये। हे प्रिये! जिसने एक भी ब्राह्मणको काशीवास कराया, वह स्वयं भी काशीवास पाकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ४९—५२ ॥

जो काशीमें मरता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता, किंतु प्रयागमें फलके उद्देश्यसे मरनेपर कामनानुरूप फल प्राप्त होता है। यदि [मोक्षदायिनी] काशी तथा [वांछितप्रद] प्रयाग—दोनोंका मरणफल एक ही हो तो काशीमरणका अपूर्व फल मोक्ष व्यर्थ हो जायगा और प्रयागमें यदि मरणसे कामनासिद्धि न हुई तो उसका अपूर्व फल भी सिद्ध न हो सकेगा। अतः मेरी आज्ञासे साक्षात् विष्णु भगवान् नयी सृष्टि रचकर [प्रयागमें मनुष्योंको] मनोवांछित सिद्धि प्रदान करते हैं॥ ५३—५५ ॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार काशीपुरीका तथा विश्वेश्वरका भी बहुत माहात्म्य है, जो सज्जनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। इसके बाद मैं त्र्यम्बकेश्वरके माहात्म्यका वर्णन करूँगा, जिसे सुनकर मनुष्य क्षणमात्रमें सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है॥ ५६-५७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें काशीविश्वेश्वरज्योतिर्लिंग-माहात्म्यवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्य-प्रसंगमें गौतमऋषिकी परोपकारी प्रवृत्तिका वर्णन

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! मैं पापोंका नाश करनेवाली कथा कहता हूँ, जैसा कि मैंने [अपने] श्रेष्ठ गुरु व्यासजीसे सुना है, आपलोग सुनिये॥ १ ॥

पूर्वकालमें प्रसिद्ध गौतम नामक श्रेष्ठ ऋषि थे, उनकी परम धार्मिक अहल्या नामकी पत्नी थी॥ २ ॥

दक्षिण दिशामें जो ब्रह्मगिरि नामक पर्वत है, वहाँ उन्होंने दस हजार वर्षतक तप किया॥ ३ ॥

हे सुव्रतो! किसी समय वहाँपर सौ वर्षतक भयानक अनावृष्टि हुई, जिससे सभी लोग संकटमें पड़ गये। पृथ्वीतलपर [एक भी] हरा पत्ता नहीं दिखायी पड़ता था, तब फिर प्राणियोंको जिलानेवाला पानी कहाँसे दिखायी दे सकता था!॥ ४-५ ॥

उस समय वे मुनिगण, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग [उस स्थानको छोड़कर] दसों दिशाओंमें चले गये॥ ६ ॥

हे विप्रो! तब उस [अनावृष्टि]-को देखकर कुछ ऋषि प्राणायाममें तत्पर होकर ध्यानपूर्वक उस भयंकर कालको बिताने लगे॥ ७ ॥

महर्षि गौतमने स्वयं भी वरुणदेवताको प्रसन्न करनेके लिये प्राणायामपरायण होकर छः महीनेतक उस स्थानपर उत्तम तप किया॥ ८ ॥

[उनकी तपस्यासे प्रसन्न हुए] वरुणदेव उन्हें वर देनेके लिये आये और यह वचन बोले—मैं प्रसन्न हूँ,

वर माँगो, मैं तुम्हें [वर] दूँगा॥ ९॥

तब गौतम ऋषिने उनसे वर्षाके लिये प्रार्थना की। हे द्विजो! इसपर उन वरुणने मुनिसे कहा—॥ १०॥

वरुण बोले—[हे महर्षे!] मैं दैवकी आज्ञाका उल्लंघनकर किस प्रकार वृष्टि करूँ? आप तो बुद्धिमान् हैं, अतः कोई अन्य प्रार्थना कीजिये, जिसे मैं आपके लिये [प्रदान] कर सकूँ॥ ११॥

सूतजी बोले—उन महात्मा वरुणका यह वचन सुनकर परोपकार करनेवाले महर्षि गौतमने यह वाक्य कहा—॥ १२॥

गौतम बोले—हे देवेश! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और मुझे वर देना ही चाहते हैं, तो मैं आज जो प्रार्थना करता हूँ, उसे पूर्ण कीजिये। चूँकि आप जलराशिके स्वामी हैं, इसलिये हे सर्वदेवेश! मुझे अक्षय, दिव्य तथा नित्य फल प्रदान करनेवाला जल दीजिये॥ १३-१४॥

सूतजी बोले—उन गौतमके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर वरुणने उनसे कहा—आप एक गड्ढा खोदिये॥ १५॥

उनके ऐसा कहनेपर गौतमने एक हाथका गड्ढा खोदा, तब वरुणने उस गड्ढेको दिव्य जलसे भर दिया। इसके बाद जलके स्वामी वरुणदेवने परोपकारी तथा मुनियोंमें श्रेष्ठ गौतम ऋषिसे कहा—॥ १६-१७॥

वरुण बोले—हे महामुने! यह जल आपके लिये अक्षय एवं तीर्थस्वरूप होगा और पृथ्वीपर आपके नामसे प्रसिद्ध होगा। इस स्थानपर दान, होम, तप, देवताओंके लिये किया गया यज्ञ-पूजन तथा पितरोंके लिये किया गया श्राद्ध—यह सब अक्षय होगा॥ १८-१९॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर उन महर्षिसे स्तुत होकर वरुणदेव अन्तर्धान हो गये और महर्षि गौतमने भी दूसरोंका उपकारकर सुख प्राप्त किया॥ २०॥

बड़े लोगोंका आश्रय मनुष्योंके गौरवका हेतु होता है, इसलिये महापुरुष ही उनके स्वरूपको देख पाते हैं, नीच लोग नहीं॥ २१॥

मनुष्य जिस प्रकारके पुरुषका सेवन करता है, वह वैसा ही फल प्राप्त करता है, बड़ोंकी सेवासे बड़प्पन तथा छोटोंकी सेवासे लघुता प्राप्त होती है॥ २२॥

सिंहकी गुफाके पास रहना गजमुक्ताकी प्राप्ति करानेवाला कहा गया है और सियारकी माँदके पास रहना अस्थिलाभ करानेवाला कहा गया है॥ २३॥

सज्जन पुरुषोंका ऐसा स्वभाव होता है कि वे दूसरोंका दुःख सह नहीं सकते। वे स्वयं अपने दुःख सह लेते हैं, किंतु दूसरोंके दुःखको दूर करते हैं॥ २४॥

वृक्ष, सोना, चन्दन और ईख—ये पृथ्वीपर दूसरोंके उपकारमें कुशल होते हैं, ऐसे अन्य कोई नहीं हैं॥ २५॥

दयालु, अभिमानरहित, उपकारी एवं जितेन्द्रिय—इन चार पुण्यस्तम्भोंने पृथ्वीको धारण किया है॥ २६॥

[हे महर्षियो!] तदनन्तर गौतमने अत्यन्त दुर्लभ जल प्राप्तकर विधिपूर्वक नित्य-नैमित्तिक कर्म सम्पन्न किये॥ २७॥

तत्पश्चात् मुनीश्वरने वहाँपर हवनके लिये व्रीहि, यव, नीवार आदि अनेक प्रकारके धान्योंको बोवाया। इस प्रकार विविध धान्य, अनेक प्रकारके वृक्ष, भिन्न-भिन्न प्रकारके पुष्प एवं फल आदि भी वहाँ उत्पन्न हो गये॥ २८-२९॥

यह सुनकर वहाँ अन्य हजारों ऋषि भी आ गये। अनेक पशु-पक्षी एवं बहुत-से जीव भी पहुँच गये॥ ३०॥

इस प्रकार पृथ्वीमण्डलपर वह वन अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होने लगा, जलके अक्षय होनेके कारण वहाँ दुःख देनेवाली अनावृष्टि नहीं रह गयी॥ ३१॥

उस वनमें अनेक ऋषिलोग भी उत्तम कर्मोंमें तत्पर होकर शिष्य, भार्या तथा पुत्रादिके साथ वहाँ निवास करने लगे॥ ३२॥

उन्होंने अपना जीवन बितानेके लिये धान्योंका वपन किया। इस प्रकार [महर्षि] गौतमके प्रभावसे उस वनमें पूर्ण आनन्द व्याप्त हो गया॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्यमें गौतमप्रभाववर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

मुनियोंका महर्षि गौतमके प्रति कपटपूर्ण व्यवहार

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! किसी समय गौतम ऋषिने अपने शिष्योंको जल लानेहेतु भेजा और वे हाथमें कमण्डलु लेकर भक्तिपूर्वक वहाँ पहुँचे॥ १॥

उस समय जल लेनेके लिये आयी हुईं ऋषिपत्नियोंने जलके समीपमें गये उन गौतमशिष्योंको देखकर उन्हें जल लेनेसे रोका॥ २॥

पहले हम ऋषिपत्नियाँ जल ग्रहण करेंगी, इसके बाद तुमलोग दूर रहकर जल ग्रहण करना—ऐसा कहकर उन्होंने धमकाया॥ ३॥

तब वहाँसे लौटकर उन शिष्योंने यह बात ऋषिपत्नीसे कही। इसके बाद तपस्विनी गौतमपत्नी उनको धीरज देकर उन शिष्योंको साथ लेकर स्वयं वहाँ गयीं और जल लाकर उन गौतमको दिया। तब उन ऋषिवरने उस जलसे अपना नित्यकर्म सम्पन्न किया॥ ४-५॥

इधर, कुटिल विचारवाली उन सभी ऋषिपत्नियोंने कुपित होकर महर्षिपत्नीको फटकारा और वहाँसे लौटकर अपनी-अपनी पर्णशालाओंमें गयीं। इसके बाद दुष्ट स्वभाववाली उन स्त्रियोंने अपने-अपने पतियोंसे उलटे-सीधे वह सारा समाचार निवेदन किया॥ ६-७॥

तब उनकी बात सुनकर भवितव्यतावश वे महर्षिगण गौतमके ऊपर क्रुद्ध हो गये॥ ८॥

इसके बाद क्रोधित हुए उन दुर्बुद्धि ऋषियोंने गौतमके तपमें विघ्न करनेके लिये अनेक प्रकारके पूजन एवं उपहारोंद्वारा गणेशजीकी आराधना की॥ ९॥

तदनन्तर भक्तके अधीन रहनेवाले तथा अभीष्ट फल देनेवाले गणेशजी प्रसन्न होकर वहाँ प्रकट हो गये और यह वचन कहने लगे—॥ १०॥

गणेशजी बोले—[हे महर्षियो!] मैं प्रसन्न हूँ, आपलोग वर माँगिये, मैं आपलोगोंका कौन-सा कार्य सम्पन्न करूँ? तब उनकी बात सुनकर उन महर्षियोंने कहा—॥ ११॥

ऋषिगण बोले—यदि आप वर देना चाहते हैं, तो हम ऋषियोंसे धिक्कार दिलाकर गौतमको इनके आश्रमसे बाहर निकलवा दें, [इस प्रकार] हमलोगोंका यह कार्य पूरा कर दें॥ १२॥

सूतजी बोले—ऋषियोंद्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले गजाननने प्रेमपूर्वक उन्हें समझाते हुए हँसकर पुनः यह वचन कहा—॥ १३॥

गणेशजी बोले—हे समस्त ऋषियो! सुनिये, आपलोग इस समय उचित नहीं कर रहे हैं, बिना अपराधके उनपर क्रोध करनेवाले आपलोगोंकी हानि ही होगी। जिन्होंने पूर्वमें आपलोगोंका उपकार किया है, उन्हें दुःख देना हितकारी नहीं है और यदि उनको दुःख दिया जायगा, तो इससे आपलोगोंका यहीं विनाश होगा॥ १४-१५॥

इस प्रकारका तपकर उत्तम फलका साधन करना चाहिये, स्वयं ही शुभफलका परित्याग करके अहितकारक फलको नहीं ग्रहण किया जाता॥ १६॥

सूतजी बोले—तब उनकी यह बात सुनकर बुद्धिमोहको प्राप्त हुए, उन ऋषिवरोंने यह वचन कहा—॥ १७॥

ऋषि बोले—हे स्वामिन्! आपको तो यही करना है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। तब उनके ऐसा कहनेपर प्रभु गणेशजीने यह वचन कहा—॥ १८॥

गणेशजी बोले—ब्रह्मदेवने ऐसा कहा है कि नीच पुरुष कभी भी सज्जन नहीं हो सकता तथा वैसे ही सज्जन पुरुष कभी नीच नहीं हो सकता—यह निश्चित है॥ १९॥

पहले जब भोजनके बिना आपलोगोंको दुःख प्राप्त हुआ, तब महर्षि गौतमने आपलोगोंको सुख प्रदान किया था। किंतु इस समय आपलोग उन्हें दुःख दे रहे हैं। यह तो लोकमें किसी प्रकार भी उचित नहीं है, आपलोग भलीभाँति विचार करें॥ २०-२१॥

यदि आपलोग [अपनी-अपनी] स्त्रीके वशीभूत होकर मेरी बात नहीं मानेंगे, तो यह भी उनके लिये परम

हितकर ही होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २२॥

अभी भी ये ऋषिवर आपलोगोंको निश्चित रूपसे सुख देंगे, अत: उनके साथ छल करना उचित नहीं है, आप लोग दूसरा वरदान माँगिये॥ २३॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] यद्यपि महात्मा गणेशने उन ऋषियोंको इस प्रकारसे बहुत समझाया, किंतु ऋषियोंने उनकी बात नहीं मानी। इसके बाद भक्तोंके अधीन रहनेके कारण उन शिवपुत्रने उन दुष्टबुद्धि ऋषियोंसे उदासीन मनसे कहा—॥ २४-२५॥

गणेशजी बोले—आपलोग जो प्रार्थना कर रहे हैं, वैसा ही करूँगा, अब जो होनहार है, वह तो होकर ही रहेगा—ऐसा कहकर वे अन्तर्धान हो गये॥ २६॥

उन गौतमजीको दुष्ट ऋषियोंके अभिप्रायका ज्ञान नहीं हुआ और वे प्रसन्न मनसे [निरन्तर] अपनी स्त्रीके साथ नित्यकर्म करते रहे। हे मुनीश्वरो! इसके पश्चात् उस वरदानके कारण उन दुष्ट ऋषियोंके प्रभावसे जो घटना घटी, उसे सुनिये॥ २७-२८॥

महर्षि गौतमकी क्यारीमें धान्य एवं यव बोया गया था, गणेशजी अत्यन्त दुर्बल गौका रूप धारणकर वहाँ चले गये। हे मुनिसत्तमो! उस वरके कारण काँपती हुई वह गाय यव तथा धान चरने लगी॥ २९-३०॥

इसी बीच दैवयोगसे [महर्षि] गौतम भी वहीं पहुँच गये और वे दयालु उस गायको तिनकोंसे हटाने लगे। तब उन तिनकोंके स्पर्शमात्रसे गाय पृथ्वीपर गिरी और उसी क्षण उन ऋषिके देखते-देखते मर गयी॥ ३१-३२॥

तब कपटसे गुप्तरूप धारण करनेवाले ऋषि एवं दुष्ट ऋषिपत्नियाँ सभी कहने लगे कि गौतमने क्या कर डाला। हे विप्रो! आश्चर्यमें पड़े हुए गौतमने भी अहल्याको बुलाकर व्यथित मनसे दुःखपूर्वक कहा—॥ ३३-३४॥

गौतम बोले—हे देवि! यह क्या हो गया? कैसे हुआ, क्या परमेश्वर कुपित हो गये? अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मुझे गोवधका पाप लग गया॥ ३५॥

सूतजी बोले—इसी बीच वहाँके ब्राह्मण गौतमको तथा ब्राह्मणियाँ अहल्याको धिक्कारने लगीं और कटु वचनोंसे उन्हें कष्ट देने लगीं॥ ३६॥

दुष्ट बुद्धिवाले उनके शिष्य तथा पुत्र भी गौतमकी निन्दा करके बार-बार उन्हें धिक्कारने लगे॥ ३७॥

ऋषि बोले—हे [गौतम!] तुम्हारा मुँह देखनेयोग्य नहीं है, चले जाओ, चले जाओ; गोहत्यारेका मुख देखकर सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये॥ ३८॥

जबतक तुम इस आश्रममें रहोगे, तबतक देवता तथा पितर हमलोगोंके द्वारा दिया गया कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिये हे गोघातक! हे पापकारक! तुम परिवारसहित अन्यत्र चले जाओ, तुम विलम्ब मत करो॥ ३९-४०॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे सभी गौतमको पत्थरोंसे मारने लगे और गौतमपत्नीको भी दुर्वचनोंसे बहुत अधिक दुःख देने लगे॥ ४१॥

उन दुष्टोंके द्वारा पीटे तथा अपमानित किये गये [महर्षि] गौतमने यह वचन कहा—हे मुनियो! मैं यहाँसे चला जाता हूँ और दूसरी जगह निवास करूँगा॥ ४२॥

तब ऐसा कहकर गौतम उस स्थानसे चले गये और एक कोसकी दूरीपर जाकर उनकी अनुमतिसे आश्रम बना लिया। [वहाँ भी जाकर उन ब्राह्मणोंने कहा—] जबतक गोहत्याका पाप है, तबतक तुम्हें कुछ नहीं करना चाहिये, वेदानुमोदित देव अथवा पितृकार्यमें तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है॥ ४३-४४॥

इस प्रकार आधे महीनेका समय व्यतीत करके उस दुःखसे व्याकुल हुए महर्षि गौतम ऋषियोंसे प्रार्थना करने लगे॥ ४५॥

गौतमजी बोले—आपलोग कृपा कीजिये और बताइये कि मैं क्या करूँ? जिस तरह मेरा पाप दूर हो सके, वह उपाय आपलोग बतायें॥ ४६॥

सूतजी बोले—उनके इस प्रकार पूछनेपर भी वे ऋषिगण कुछ न बोले। तब वे सब जहाँ स्थित थे, वहाँ जाकर गौतम अत्यन्त विनयपूर्वक सेवाभावसे पूछने लगे। गौतमने दूर रहकर उन श्रेष्ठ ऋषियोंको प्रणाम करके विनययुक्त होकर पूछा कि अब मुझे क्या करना चाहिये?॥ ४७-४८॥

उन महात्मा गौतमके इस प्रकार पूछनेपर उन सभी मुनियोंने परस्पर मिलकर यह वचन कहा—॥ ४९॥

ऋषि बोले—बिना प्रायश्चित्त किये कभी भी शुद्धि नहीं होती है, इसलिये तुम शरीरशुद्धिके निमित्त प्रायश्चित्त करो॥ ५०॥

तुम अपने पापको प्रकाशित करते हुए तीन बार पृथ्वीकी परिक्रमा करो, फिर यहीं आकर मासव्रतका अनुष्ठान करो। इसके बाद एक सौ एक बार इस ब्रह्मगिरिकी परिक्रमा करनेसे तुम्हारी शुद्धि होगी॥ ५१-५२॥

अथवा तुम यहीं गंगाको लाकर स्नान करो और एक करोड़ पार्थिव लिंग बनाकर भगवान् शिवका पूजन करो। उसके बाद गंगामें स्नान करके तुम पवित्र हो जाओगे। सर्वप्रथम ग्यारह बार इस पर्वतकी परिक्रमा करो, तत्पश्चात् सौ घड़े गंगाजलसे स्नानकर पार्थिवपूजन करो, तब तुम्हारा प्रायश्चित्त (पूर्ण) होगा। इस प्रकार उन ऋषियोंके कहनेपर उन्होंने 'हाँ ठीक है'—ऐसा कहकर उनकी बात स्वीकार कर ली॥ ५३—५५॥

[गौतम बोले—] हे मुनिश्रेष्ठो! मैं आप श्रीमान् लोगोंकी आज्ञासे पार्थिव-पूजन तथा पर्वतकी परिक्रमा करूँगा—ऐसा कहकर उन मुनिश्रेष्ठ महर्षिने पर्वतकी परिक्रमा करके पार्थिव लिंगोंको बनाकर उनका पूजन किया। उन साध्वी अहल्याने भी वही सब किया। उस समय उनके शिष्यों तथा प्रशिष्योंने भी उन दोनोंकी सेवाका कार्य सम्पादित किया॥ ५६—५८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें गौतमव्यवस्थावर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग तथा गौतमी गंगाके प्रादुर्भावका आख्यान

सूतजी बोले—हे द्विजो! उस समय स्त्रीसहित गौतमके द्वारा इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेपर शिवजी प्रसन्न होकर पार्वतीजी तथा अपने गणोंके साथ प्रकट हो गये। इसके बाद प्रसन्न हुए कृपानिधि शिवजीने कहा—हे महामुने! मैं आपकी उत्तम भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, आप वर माँगिये॥ १-२॥

तब महात्मा शिवके उस सुन्दर रूपको देखकर शंकरजीको प्रणामकर प्रसन्न हो गौतम ऋषि उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे॥ ३॥

बहुत प्रकारसे स्तुति करके एवं शिवको प्रणामकर हाथ जोड़कर महर्षि गौतम स्थित हो गये और कहने लगे—हे देव! आप मुझे पापरहित करें॥ ४॥

सूतजी बोले—उन महात्मा गौतमका यह वचन सुनकर शिवजीने अत्यन्त प्रसन्न हो यह वचन कहा— ॥ ५॥

शिवजी बोले—हे मुने! आप सदा धन्य हैं, कृतकृत्य हैं तथा निष्पाप हैं, इन दुष्टात्मा पापी ऋषियोंने निश्चय ही आपके साथ छल किया है॥ ६॥

जब आपके दर्शनमात्रसे लोग निष्पाप हो जाते हैं, तब मेरी भक्तिमें निरत रहनेवाले आप किस प्रकार पापी हो सकते हैं?॥ ७॥



हे मुने! जिन दुष्टोंने आपके प्रति उपद्रव किया है, वे ही पापी, दुराचारी और हत्यारे हैं। इनके दर्शनसे दूसरे लोग पापी हो जायँगे, ये लोग कृतघ्न हैं, इनका कोई प्रायश्चित्त नहीं है॥ ८-९॥

सूतजी बोले—हे विप्रो! ऐसा कहकर सज्जनोंको

सुख देनेवाले तथा असज्जनोंको दण्ड देनेवाले शिवजीने उनसे ऋषियोंके बहुतसे दुश्चरित्रोंका वर्णन किया॥ १०॥

शिवजीकी बात सुनकर महर्षि गौतम अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने हाथ जोड़कर शिवजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके पुनः कहा— ॥ ११॥

गौतम बोले—हे महेश्वर! उन ऋषियोंने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है, यदि वे ऐसा न करते, तो आपका दर्शन कैसे होता? वे ऋषि धन्य हैं, जिन्होंने मेरा अत्यन्त कल्याण किया, उनके दुराचारके कारण ही मेरा बहुत बड़ा स्वार्थ सिद्ध हुआ है॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—उनकी यह बात सुनकर अति प्रसन्न हुए शिवजीने कृपादृष्टिसे गौतमकी ओर देखकर शीघ्र ही उनसे कहा— ॥ १४॥

शिवजी बोले—हे विप्रेन्द्र! आप धन्य हैं। आप सर्वश्रेष्ठ ऋषि हैं। मुझे परम प्रसन्न जानकर आप उत्तम वरदान माँगिये॥ १५॥

सूतजी बोले—[हे द्विजो!] उसके बाद गौतमने भी [अपने मनमें] विचार किया कि [अब मेरे पापकी] प्रसिद्धि लोकमें हो चुकी है, इसलिये वह जिस प्रकार झूठ न हो, उन ऋषियोंकी कही बात सत्य करनी चाहिये। ऐसा निश्चय करके शिवभक्त मुनिश्रेष्ठ गौतमने हाथ जोड़कर सिर झुका करके शिवजीसे यह वचन कहा— ॥ १६-१७॥

गौतम बोले—हे नाथ! आप सत्य कहते हैं, किंतु जैसा पंचोंने निर्णय दिया है, वह अन्यथा न हो। जैसा उन लोगोंने निर्णय दिया है, वही होने दीजिये॥ १८॥

हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे गंगा प्रदान कीजिये और इस प्रकार लोकका उपकार कीजिये, आपको नमस्कार है, आपको बारंबार नमस्कार है॥ १९॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर लोककल्याणकी इच्छासे गौतमने उनके चरणकमल पकड़कर देवेशको [पुनः] प्रणाम किया॥ २०॥

उसके बाद पृथ्वी तथा स्वर्गके सारभूत जिस जलको निकालकर पूर्वमें रख लिया था और विवाहकालमें ब्रह्माजीके द्वारा दिया गया जो कुछ शेष जल बचा था, उसे भक्तवत्सल भगवान् शिवने उन मुनिको प्रदान किया। उस समय वह गंगाजल परम सुन्दरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया। तत्पश्चात् ऋषिवरने उस [स्त्रीरूप जल]-की स्तुतिकर उसे प्रणाम किया॥ २१—२३॥

गौतम बोले—हे गंगे! आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, आपने जगत्‌को पवित्र कर दिया है, अतएव निश्चय ही नरकमें गिरते हुए मुझे भी आप पवित्र कीजिये॥ २४॥

सूतजी बोले—तब सबका हित करनेवाले शिवजीने भी कहा—हे गंगे! सुनो, तुम मेरी आज्ञासे इन गौतम मुनिको पवित्र करो। तब उन शिव तथा गौतमके वचनको सुनकर भगवान् शिवकी शक्ति परमपावनी गंगाजीने शिवजीसे कहा— ॥ २५-२६॥

गंगाजी बोलीं—हे प्रभो! मैं मुनिको परिवारसहित पवित्रकर अपने स्थानको जाऊँगी, मैं सत्य वचन कहती हूँ॥ २७॥

सूतजी बोले—जब गंगाजीने ऐसा कहा, तब भक्तवत्सल शिवजीने लोकोपकारके निमित्त गंगाजीसे पुनः यह वचन कहा— ॥ २८॥

शिवजी बोले—हे देवि! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें कलियुगतक तुम यहीं निवास करो॥ २९॥

सूतजी बोले—उन स्वामी शिवका यह वचन सुनकर नदियोंमें श्रेष्ठ उन पावनी गंगाने पुनः कहा— ॥ ३०॥

गंगाजी बोलीं—हे स्वामिन्! हे महेश्वर! हे त्रिपुरान्तक! यदि सबकी अपेक्षा मेरा माहात्म्य अधिक रहेगा, तभी मैं पृथ्वीपर निवास करूँगी॥ ३१॥

हे स्वामिन्! हे प्रभो! एक और बात सुनिये, आप अपने गणों एवं पार्वतीसहित अपने सुन्दर स्वरूपसे मेरे समीप निवास कीजिये ॥ ३२॥

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर भक्तवत्सल शंकरने लोकोपकारके लिये गंगाजीसे पुनः यह वचन कहा— ॥ ३३॥

शिवजी बोले—हे गंगे! तुम धन्य हो, सुनो! मैं तुमसे पृथक् नहीं हूँ, फिर भी मैं यहाँ निवास करता हूँ और तुम भी निवास करो॥ ३४॥

सूतजी बोले—इस प्रकार स्वामी सदाशिवकी

बात सुनकर गंगाने प्रसन्नचित्त होकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली॥ ३५॥

इसी बीच देवता, प्राचीन ऋषि, पितर, अनेक सुन्दर तीर्थ एवं विविध क्षेत्र—सभीने वहाँ आकर गौतम, गंगा तथा गिरीशकी जय-जयकार करते हुए आदरपूर्वक उनका पूजन किया॥ ३६-३७॥

इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु आदि उन सभी देवताओंने हाथ जोड़कर सिर झुका करके प्रसन्नतापूर्वक उनकी स्तुति की। उस समय उन देवताओंपर प्रसन्न हुईं गंगाजी तथा शिवजीने कहा—हे सुरश्रेष्ठो! आपलोग वर माँगिये। आपलोगोंका हित करनेकी इच्छासे हम दोनों उसे प्रदान करेंगे॥ ३८-३९॥

देवता बोले—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और हे गंगे! यदि आप भी प्रसन्न हैं, तो हमलोगोंके तथा मनुष्योंके हितके लिये कृपापूर्वक यहीं निवास करें॥ ४०॥

गंगाजी बोलीं—हे देवताओ! तुमलोग स्वयं ही लोकोपकारके निमित्त यहाँ निवास क्यों नहीं करते, मैं तो गौतमको पवित्रकर जहाँसे आयी हूँ, वहीं चली जाऊँगी। आप लोगोंमें मेरा वैशिष्ट्य किस प्रकार जाना जा सके यदि उसे प्रमाणित करो, तब मैं निश्चय ही यहाँ निवास कर सकती हूँ॥ ४१-४२॥

सभी [देवगण] बोले—जब सबके परम सुहृद् बृहस्पति सिंहराशिपर स्थित रहेंगे, तब हम सभी लोग आपके समीप आयेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ४३॥

हे सरिद्वरे! इस लोकमें ग्यारह वर्षपर्यन्त लोगोंका जो पाप प्रक्षालित होगा, उससे जब हमलोग मलिन हो जायँगे, तब हे प्रिये! उस पापको धोनेके लिये हमलोग निश्चित रूपसे आपके पास आयेंगे, हे महादेवि! हमलोग आदरपूर्वक सत्य कह रहे हैं॥ ४४-४५॥

हे सरिद्वरे! लोकोंपर अनुग्रह करने तथा हमलोगोंका हित करनेके लिये आपको एवं शंकरजीको भी यहीं रहना चाहिये॥ ४६॥

जबतक बृहस्पति सिंहराशिपर रहेंगे, तबतक हमलोग भी यहीं निवास करेंगे और तीनों समय आप [के जल]-में स्नान करके तथा शिवजीका दर्शन करके अपने सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होंगे और पुन: आपकी आज्ञासे अपने-अपने स्थानको चले जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४७-४८॥

सूतजी बोले—इस प्रकार महर्षि गौतम तथा उन देवताओंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर वे शंकरजी प्रेमपूर्वक वहीं स्थित हो गये और वे गंगाजी भी स्थित हो गयीं। वहाँपर वे गंगाजी गौतमी नामसे प्रसिद्ध हुईं तथा वह शिवलिंग त्र्यम्बक नामसे विश्वमें विख्यात हुआ, जो महापातकका भी नाश करनेवाला है॥ ४९-५०॥

उस दिनसे लेकर जब-जब बृहस्पति सिंहराशिपर आते हैं, तब सभी देवता, तीर्थ तथा क्षेत्र यहाँ आते हैं। पुष्कर आदि समस्त सरोवर, गंगा आदि सभी नदियाँ एवं विष्णु आदि देवगण गौतमीतटपर निवास करते हैं॥ ५१-५२॥

ये जबतक वहाँ रहते हैं, तबतक [अपने स्थानपर उनके सेवनका] फल प्राप्त नहीं होता और जब वे अपने-अपने निवासपर चले जाते हैं, तभी [उनकी उपासनाका] फल प्राप्त होता है॥ ५३॥

यह त्र्यम्बक नामसे प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग गौतमीके तटपर स्थित है और महान् पापोंका नाश करनेवाला है। जो इस त्र्यम्बकेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगका भक्तिपूर्वक दर्शन, पूजन, प्रणाम एवं स्तवन करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ५४-५५॥

गौतमके द्वारा पूजित यह त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिंग इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला तथा परलोकमें उत्तम मुक्ति प्रदान करनेवाला है॥ ५६॥

हे मुनीश्वरो! जो आपलोगोंने मुझसे पूछा था, उसे मैंने कह दिया, अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं? उसे मैं कहूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें त्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्यवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

गौतमी गंगा एवं त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगका माहात्म्यवर्णन

ऋषिगण बोले—हे प्रभो! गंगा किस स्थानसे जलरूपमें प्रवाहित होकर प्रकट हुईं? हे प्रभो! उनका माहात्म्य सबकी अपेक्षा अधिक क्यों हुआ? इसे बताइये। हे व्यासशिष्य! जिन दुष्ट ब्राह्मणोंने महर्षि गौतमको दुःख दिया, बादमें उन्हें क्या फल मिला, उसे कहिये?॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! उस समय गौतमके द्वारा प्रार्थना करनेपर स्वयं गंगाजी शीघ्र ही उस ब्रह्मगिरिसे प्रकट हुईं॥ ३॥

गूलर वृक्षकी शाखासे उनकी धारा निकली, तब सुप्रसिद्ध मुनि गौतमने आनन्दसे उसमें स्नान किया॥ ४॥

गौतमके जो शिष्य थे तथा अन्य आये हुए जो महर्षिगण थे, उन सभीने वहाँपर प्रसन्नतापूर्वक स्नान किया। तभीसे उस स्थानका नाम गंगाद्वार प्रसिद्ध हो गया। हे मुनियो! इस रमणीय क्षेत्रका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण पापोंका अपहरण हो जाता है॥ ५-६॥

उसके बाद [महर्षि] गौतमसे द्वेष करनेवाले वे सभी ऋषि भी स्नान करनेके लिये वहाँ आ गये, तब उन्हें देखकर वे गंगाजी शीघ्रतासे अन्तर्धान हो गयीं॥ ७॥

महर्षि गौतमने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर गंगाकी बारंबार स्तुति करते हुए शीघ्रतासे कहा—ऐसा मत कीजिये, ऐसा मत कीजिये॥ ८॥

गौतम बोले—[हे माता!] ये सभी महर्षि श्रीमदमें अन्धे हों, सज्जन हों अथवा असज्जन हों, [परंतु मेरे] इस पुण्यके प्रभावसे आप इन्हें दर्शन दीजिये॥ ९॥

सूतजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठो! उसके बाद आकाश-मण्डलसे गंगाजीकी वाणी प्रतिध्वनित हुई, आपलोग गंगाजीके उस उत्तम कथनको सुनिये—॥ १०॥

गंगाजी बोलीं—ये अत्यन्त दुष्ट, कृतघ्न, स्वामीसे द्रोह करनेवाले, धूर्त और पाखण्डी हैं, इन्हें देखनातक नहीं चाहिये॥ ११॥

गौतम बोले—हे मातः! महापुरुषोंके इस कथनको आप सुनिये और भगवान् शंकरके वचनको सत्य कीजिये। 'इस पृथ्वीपर जो मनुष्य अपकार करनेवालोंका भी उपकार ही करता है, मैं उससे पवित्र होता हूँ'—यह भगवान्‌का वचन है॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—महात्मा गौतममुनिका यह वचन सुनकर आकाशमण्डलसे पुनः गंगाजीका कथन ध्वनित हुआ—हे गौतम महर्षे! आप सत्य और कल्याणकारी वचन कह रहे हैं, फिर भी ये संसारको शिक्षा देनेके लिये प्रायश्चित्त करें। विशेषरूपसे आपके अधीन हुए इन लोगोंको आपकी आज्ञासे एक सौ एक बार इस पर्वतकी परिक्रमा करनी चाहिये। हे मुने! तभी इन दुराचारियोंको मेरे दर्शनका विशेष अधिकार प्राप्त होगा, यह मैंने सत्य कहा है॥ १४—१७॥

[**पुनः सूतजी बोले**—] गंगाजीकी यह बात सुनकर उन सभी दीन ऋषियोंने 'हमारे अपराधको क्षमा करें' गौतमसे इस प्रकार प्रार्थनाकर पर्वतकी परिक्रमा की। उन ऋषियोंके द्वारा ऐसा कर लेनेपर उन गौतमने गंगाजीकी आज्ञासे गंगाद्वारके नीचेवाले स्थानका नाम कुशावर्त रखा॥ १८-१९॥

उसके बाद वे गंगाजी गौतमको प्रसन्न करनेके लिये वहाँ पुनः प्रकट हुईं, तबसे वह श्रेष्ठ तीर्थ कुशावर्त नामसे प्रसिद्ध हुआ। वहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य अपने सभी पापोंका त्याग करके दुर्लभ विज्ञान प्राप्तकर शीघ्र ही मोक्षका अधिकारी हो जाता है॥ २०-२१॥

इसके बाद जब गौतम एवं अन्य ऋषिगण परस्पर मिले, उस समय जिन्होंने पहले कृतघ्नता की थी, वे लोग लज्जित हो गये॥ २२॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हमलोगोंने तो इसे दूसरी तरहसे सुना है, हम उसका वर्णन करते हैं। गौतमने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया था—आप ऐसा जानिये॥ २३॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! कल्पभेदके कारण वह भी सत्य है, हे सुव्रतो! मैं उस कथाका भी विशेष रूपसे वर्णन करता हूँ॥ २४॥

गौतमने उन ऋषियोंको दुर्भिक्षसे पीड़ित देखकर महात्मा वरुणको उद्देश्यकर बहुत बड़ा तप किया। उसके अनन्तर वरुणकी कृपासे उन्होंने अक्षय जल प्राप्त किया और तत्पश्चात् बहुत-से धान तथा जौ बोवाये। [हे ऋषिश्रेष्ठो!] इस प्रकार उन परोपकारी महर्षि गौतमने अपने तपोबलसे उनके भोजनका प्रबन्ध किया॥ २५—२७॥

किसी समय उनकी दुष्ट स्त्रियाँ जब जल लेनेके प्रसंगमें [अपने ही व्यवहारके कारण] अपमानित हो गयीं। तब वे क्रुद्ध होकर अपने पतियोंसे गौतमके प्रति ईर्ष्यायुक्त वचन बोलीं। तब दुष्टबुद्धिवाले तथा कुटिल अन्त:करणवाले उन ब्राह्मणोंने एक कृत्रिम गाय बनाकर उनकी फसलको चरनेके लिये छोड़ दिया॥ २८-२९॥

तब गौतमने अपनी फसलको खानेमें आसक्त उस गायको देखकर उसे धीरेसे हटाते हुए एक तिनकेसे मारा। हे विप्रो! वह गाय तिनकेके स्पर्शमात्रसे भूमिपर गिर पड़ी और होनहारवश क्षणभरमें मर गयी॥ ३०-३१॥

तब वहाँके कुत्सित विचारवाले सभी ऋषिगण एकत्र होकर कहने लगे कि गौतमने गाय मार डाली॥ ३२॥

इसके बाद शिवभक्त गौतम 'गाय मर गयी'—ऐसा सोचकर भयभीत हो गये और अपनी पत्नी अहल्या तथा शिष्योंसहित आश्चर्यमें पड़ गये। उसके पश्चात् उस कृत्रिम गायके विषयमें जानकर वे गौतम कुपित हो उठे और तब मुनिश्रेष्ठ गौतमने उन सभी ऋषियोंको शाप दे दिया॥ ३३-३४॥

गौतम बोले—तुम सभी दुरात्मा हो, मुझ शिवभक्तको इस प्रकार विशेष दु:ख देनेके कारण वेदसे विमुख हो जाओ। आजसे वेदोक्त सत्कर्ममें और विशेषकर मुक्ति प्रदान करनेवाले शैवमार्गमें तुमलोगोंकी श्रद्धा नहीं रहेगी॥ ३५-३६॥

आजसे वेदबहिष्कृत एवं मोक्षमार्गसे रहित बुरे मार्गमें तुमलोगोंकी प्रवृत्ति रहेगी। आजसे तुमलोगोंके मस्तकमें मृत्तिकाका तिलक होगा और हे ब्राह्मणो! माथेपर मृत्तिकाका लेप करनेवाले तुमलोग नरकगामी होओगे॥ ३७-३८॥

तुमलोग शिवको परदेवता नहीं मानोगे और उन अद्वैत सदाशिवको अन्य देवताओंके समान समझोगे॥ ३९॥

शिवपूजा आदि कर्ममें, शिवनिष्ठ भक्तोंमें एवं शिवपर्वोंमें तुमलोगोंकी प्रीति कभी भी नहीं होगी॥ ४०॥

आज मैंने जितने दु:खदायी शाप तुमलोगोंको दिये है, वे सब सर्वदा तुमलोगोंकी सन्तानोंको भी प्राप्त होंगे॥ ४१॥

हे द्विजो! तुमलोगोंके पुत्र-पौत्र आदि शिवभक्तिसे विमुख रहेंगे और तुमलोग अपने पुत्रोंके साथ निश्चित रूपसे नरकमें निवास करोगे। उसके बाद चाण्डालयोनिमें जन्म लेकर दु:ख-दारिद्र्यसे पीड़ित रहोगे और धूर्त एवं निन्दा करनेवाले होओगे तथा सर्वदा तप्त मुद्रासे चिह्नित रहोगे॥ ४२-४३॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] इस प्रकार उन सभी मुनियोंको शाप देकर महर्षि गौतम अपने आश्रमपर चले गये। उन्होंने अत्यधिक शिवभक्ति की तथा वे परम पवित्र हो गये। उसके बाद उन शापोंके कारण खिन्न हृदयवाले वे सभी ब्राह्मण शिवधर्मसे बहिष्कृत होकर कांचीपुरीमें निवास करने लगे॥ ४४-४५॥

उनके सभी पुत्र भी शिवधर्मसे बहिष्कृत हो गये। आगे चलकर कलियुगमें बहुत-से लोग उन्हींके समान दुष्ट होंगे। हे मुनिसत्तमो! इस प्रकार मैंने उनका समग्र वृत्तान्त आपलोगोंसे कहा। हे प्राज्ञो! इसके पहलेका वृत्तान्त भी आपलोग आदरपूर्वक सुन चुके हैं॥ ४६-४७॥

इस प्रकार मैंने गौतमी गंगाकी उत्पत्ति तथा पापहारी उत्तम माहात्म्य आपलोगोंसे कह दिया और त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिंगका माहात्म्य भी मैंने कहा, जिसे सुनकर मनुष्य सारे पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४८-४९॥

अब इसके आगे मैं वैद्यनाथेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगके पापनाशक माहात्म्यका वर्णन करूँगा, आप लोग उसे सुनिये॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें त्र्यम्बकेश्वरज्योतिर्लिंगमाहात्म्यवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन

सूतजी बोले—किसी समय अभिमानी तथा मानपरायण राक्षसश्रेष्ठ रावण पर्वतोंमें उत्तम कैलासपर भक्तिपूर्वक शिवजीकी आराधना करने लगा॥ १॥

जब कुछ समयतक आराधना किये जानेपर भी शिवजी प्रसन्न न हुए, तब शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये उसने दूसरे प्रकारका तप करना प्रारम्भ किया॥ २॥

हे द्विजो! पुलस्त्यकुलमें जन्म ग्रहण करनेवाला ऐश्वर्यसम्पन्न वह रावण सिद्धिके स्थानभूत हिमालय पर्वतके दक्षिणमें वृक्षोंसे भरी हुई भूमिमें एक उत्तम गर्त बनाकर उसमें अग्नि स्थापित करके उसके समीपमें शिवजीकी स्थापनाकर हवन करने लगा॥ ३-४॥

वह ग्रीष्मकालमें पंचाग्निके मध्यमें बैठकर, वर्षाकालमें [खुले] चबूतरेपर बैठकर और शीतकालमें जलके भीतर रहकर—इस तरह तीन प्रकारसे तप करने लगा॥ ५॥

इस प्रकार उसने घोर तप किया, तब भी दुष्टात्माओंके लिये दुराराध्य परमात्मा सदाशिव प्रसन्न नहीं हुए॥ ६॥

उसके बाद दैत्यपति महात्मा रावणने अपने सिर काटकर शिवका पूजन प्रारम्भ किया॥ ७॥

उसने शिवपूजनमें विधिपूर्वक एक-एक सिर काट डाला, इस प्रकार जब उसने क्रमशः अपने नौ सिर काट डाले, तब एक सिरके शेष रहनेपर शंकरजी प्रसन्न हो गये और वे भक्तवत्सल सदाशिव सन्तुष्ट होकर वहीं प्रकट हो गये॥ ८-९॥

प्रभु सदाशिवने उसके सिरोंको पूर्ववत् स्वस्थ करके उसको मनोवांछित फल तथा अतुल बल प्रदान किया॥ १०॥

तब उनकी प्रसन्नता प्राप्तकर उस राक्षस रावणने हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर कल्याणकारी शिवजीसे कहा— ॥ ११॥

रावण बोला—हे देवेश! आप मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपको लंकापुरी ले चलता हूँ, मेरी इस इच्छाको पूर्ण कीजिये, मैं आपकी शरणमें हूँ॥ १२॥

सूतजी बोले—तब उस रावणके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे शिवजी परम संकटमें पड़ गये और खिन्नमनस्क होकर उन्होंने कहा— ॥ १३॥

शिवजी बोले—हे राक्षसश्रेष्ठ! तुम मेरी महत्त्वपूर्ण बात सुनो, तुम उत्तम भक्तिसे युक्त होकर मेरे इस श्रेष्ठ शिवलिंगको अपने घर ले जाओ। किंतु तुम इस लिंगको भूमिपर जहाँ भी रख दोगे, यह वहींपर स्थित हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं। अब जैसा चाहो, वैसा करो॥ १४-१५॥

सूतजी बोले—उन शिवजीके इस प्रकार कहनेपर राक्षसेश्वर रावण 'ठीक है'—ऐसा कहकर उसे लेकर अपने घर चला॥ १६॥

इसके बाद शिवकी मायासे मार्गमें ही उसे लघुशंकाकी इच्छा हुई। जब पुलस्त्यका पौत्र वह सामर्थ्यशाली रावण मूत्रके वेगको रोकनेमें समर्थ नहीं हुआ, तब उसने वहाँ एक गोपको देखकर उससे प्रार्थनाकर उस शिवलिंगको उसीको दे दिया। एक मुहूर्त बीतनेपर वह गोप शिवलिंगके भारसे पीड़ित होकर व्याकुल हो उठा और उसे पृथ्वीपर रख दिया। इस प्रकार वज्रसारसे उत्पन्न हुआ वह लिंग वहींपर स्थित हो गया, जो दर्शनमात्रसे पापोंको दूर करनेवाला तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ १७—१९॥

हे मुने! वह लिंग तीनों लोकोंमें वैद्यनाथेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह सत्पुरुषोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ २०॥

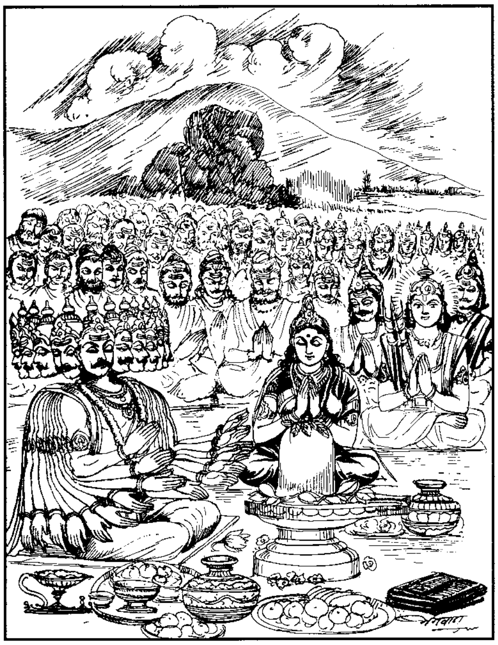
यह दिव्य, उत्तम एवं श्रेष्ठ ज्योतिर्लिंग दर्शन एवं पूजनसे सारे पापोंको दूर करनेवाला है और मुक्ति प्रदान करनेवाला है॥ २१॥

सारे लोकोंका कल्याण करनेके लिये उस लिंगके वहाँ स्थित हो जानेपर रावण श्रेष्ठ वर प्राप्तकर अपने घर चला गया और उस महान् असुरने अपनी पत्नीसे अत्यन्त हर्षपूर्वक सारा वृत्तान्त बताया॥ २२॥

इस [वृत्तान्त]-को सुनकर इन्द्र आदि सभी देवता तथा निष्पाप मुनिगण आपसमें विचारकर वैद्यनाथेश्वरमें

आसक्त बुद्धिवाले हो गये॥ २३॥

हे मुने! उस समय ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवगण वहाँ आये और उन्होंने विशेष विधिसे अतिशय प्रीतिपूर्वक शिवजीका पूजन किया॥ २४॥



वहाँ भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन करके देवताओंने उस (वज्रसारमय) शिवलिंगकी विधिवत् स्थापना की और उसका वैद्यनाथ नाम रखकर उसकी वन्दना और स्तवन करके वे स्वर्गलोकको चले गये॥ २५॥

ऋषि बोले—हे तात! उस लिंगके वहाँ स्थित हो जानेपर तथा रावणके घर चले जानेपर क्या घटना हुई, उसे विस्तारसे कहिये॥ २६॥

सूतजी बोले—अति उत्तम वर प्राप्तकर घर जा करके महान् असुर रावणने सारा वृत्तान्त अपनी पत्नीसे कहा और वह बहुत आनन्दित हुआ॥ २७॥

हे मुनीश्वरो! वह सारा वृत्तान्त सुनकर वे इन्द्र आदि देवता तथा मुनिगण अत्यन्त व्याकुल होकर आपसमें कहने लगे—॥ २८॥

देवता बोले—यह दुरात्मा रावण देवद्रोही, खल तथा दुर्बुद्धि है, शिवजीसे वरदान पाकर यह हमलोगोंको बहुत अधिक दु:खित करेगा॥ २९॥

हमलोग क्या करें? कहाँ जायँ? अब फिर क्या होगा? एक तो वह स्वयं दुष्ट है, दूसरे अब वरदान प्राप्तकर और भी उद्धत हो गया है, अत: हमलोगोंका कौन-सा अपकार नहीं करेगा॥ ३०॥

तब इस प्रकार दुखी हो इन्द्रादि देवता एवं मुनिगण नारदजीको बुलाकर व्याकुल हो करके पूछने लगे॥ ३१॥

देवगण बोले—हे मुनिसत्तम! आप सभी कार्य करनेमें समर्थ हैं, अत: हे देवर्षे! देवगणोंके दु:खनाशका कोई उपाय कीजिये॥ ३२॥

यह महाखल रावण क्या-क्या नहीं कर डालेगा! हमलोग इस दुष्टसे सर्वथा पीड़ित हैं, अत: अब हमलोग कहाँ जायँ?॥ ३३॥

नारदजी बोले—हे देवताओ! आपलोग दुखी मत होइये, मैं जा रहा हूँ और कोई उपाय करके शंकरकी कृपासे देवताओंका कार्य अवश्य करूँगा॥ ३४॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे देवर्षि [नारद] रावणके घर गये और उससे सत्कृत होकर प्रीतिसे उन्होंने वह सब कहा—॥ ३५॥

नारदजी बोले—हे राक्षसोत्तम! तुम धन्य हो और श्रेष्ठ शिवभक्त हो। हे तपोधन! हे रावण! तुम्हें देखकर मेरा मन आज बहुत अधिक प्रसन्न हुआ। अब तुम शिवाराधन-सम्बन्धी अपने सम्पूर्ण वृत्तान्तको कहो। तब उनके इस प्रकार पूछनेपर रावणने यह वचन कहा—॥ ३६-३७॥

रावण बोला—हे महामुने! तप करनेके लिये कैलासपर्वतपर जाकर मैंने वहाँ बहुत समयतक अत्यन्त कठोर तप किया॥ ३८॥

हे मुने! जब शिवजी प्रसन्न नहीं हुए, तब वहाँसे आकर मैं पुन: वृक्षसमूहके समीप दूसरे प्रकारसे तपस्या करने लगा। ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्निके मध्य रहकर, वर्षामें स्थण्डिलशायी होकर और शीतकालमें जलके मध्यमें रहकर तीन प्रकारसे मैंने तप किया॥ ३९-४०॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने वहाँ अति कठोर तप किया, फिर भी जब मेरे ऊपर थोड़ा भी शिवजी प्रसन्न न हुए, तब मुझे बड़ा क्रोध हुआ और मैंने भूमिमें गड्ढा खोदकर उसमें अग्नि स्थापित करके तथा पार्थिव शिवलिंग बनाकर गन्ध, चन्दन, धूप, विविध नैवेद्य तथा आरती आदिसे विधिपूर्वक शिवजीका पूजन किया। प्रणिपात, पुण्यप्रद स्तुति, गीत, नृत्य, वाद्य तथा मुखांगुलि-

समर्पणके द्वारा मैंने शंकरजीको सन्तुष्ट किया। हे मुने! इन उपायों तथा अन्य बहुत-से उपायोंके द्वारा शास्त्रोक्त विधिसे मैंने भगवान् शिवका पूजन किया॥ ४१—४५॥

जब भगवान् शिव सन्तुष्ट होकर प्रकट नहीं हुए, तब मैं अपने तपका उत्तम फल न प्राप्तकर दुखी हुआ। मेरे शरीर तथा बलको धिक्कार है। मेरे तपको भी धिक्कार है, ऐसा कहकर मैंने वहाँ स्थापित अग्निमें बहुत हवन किया॥ ४६-४७॥

इसके बाद यह विचार करके कि अब मैं इस अग्निमें अपने शरीरकी ही आहुति दूँगा, मैं उस प्रज्वलित अग्निकी सन्निधिमें अपने सिरोंको काटने लगा॥ ४८॥

मैंने एक-एक करके नौ सिर भलीभाँति काटकर उन्हें पूर्णत: शुद्ध करके शिवजीको समर्पित कर दिये। हे ऋषिश्रेष्ठ! जब मैंने दसवाँ सिर काटना प्रारम्भ किया, उसी समय ज्योति:स्वरूप शिवजी स्वयं प्रकट हो गये॥ ४९-५०॥

उन भक्तवत्सलने शीघ्र ही प्रेमपूर्वक कहा—ऐसा मत करो, ऐसा मत करो। मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो, मैं तुम्हें मनोवांछित वर दूँगा। तब उनके ऐसा कहनेपर मैंने महेश्वरका दर्शन किया और हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की॥ ५१-५२॥

तदनन्तर मैंने उनसे यह वर माँगा—मुझे अतुल बल दीजिये। हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मेरे लिये क्या दुर्लभ हो सकता है!॥ ५३॥

सन्तुष्ट हुए कृपालु शिवने 'तथास्तु' यह वचन कहकर मेरा सारा मनोवांछित पूर्ण कर दिया॥ ५४॥

उन परमात्मा शिवने अपनी अमोघ दृष्टिसे देखकर वैद्यके समान मेरे सिरोंको पुन: यथास्थान जोड़ दिया॥ ५५॥

उनके ऐसा करनेपर मेरा शरीर पहलेके समान हो गया और उनकी कृपासे मुझे सारा फल प्राप्त हो गया। इसके बाद मेरे द्वारा प्रार्थना किये जानेपर वे वृषभध्वज वहींपर स्थित हो गये और वैद्यनाथेश्वर नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हो गये॥ ५६-५७॥

दर्शन एवं पूजन करनेसे ज्योतिर्लिंगस्वरूप महेश्वर भुक्ति-मुक्ति देनेवाले तथा लोकमें सबका हित करनेवाले हैं॥ ५८॥

[हे देवर्षे!] मैं उस ज्योतिर्लिंगका विशेषरूपसे पूजन करके और उसे प्रणामकर तीनों लोकोंको जीतनेके लिये यहाँ आया हूँ॥ ५९॥

सूतजी बोले—उसका वह वचन सुनकर आश्चर्यचकित हुए देवर्षि नारदजी मन-ही-मन हँस करके रावणसे कहने लगे—॥ ६०॥

नारदजी बोले—हे राक्षसश्रेष्ठ! सुनो, अब मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ; जैसा मैं कहता हूँ, वैसा ही तुम करो, मेरा कथन कभी भी असत्य नहीं होता। तुमने जो कहा कि शिवजीने इस समय मेरा सारा हित कर दिया है, उसे तुम कदापि सत्य मत मानना॥ ६१-६२॥

ये शिव तो विकारग्रस्त हैं, वे क्या नहीं कह देते हैं, जबतक उनकी बात सत्य नहीं होती, तबतक कैसे मान लिया जाय; तुम मेरे प्रिय हो, [अत: तुम्हें मैं उपाय बताता हूँ।]॥ ६३॥

अब तुम पुन: जाकर उनके अहितके लिये कार्य करो। तुम कैलासको उखाड़नेका प्रयत्न करो॥ ६४॥

यदि तुम इस कैलासको उखाड़ दोगे, तब सब कुछ सफल हो जायगा, इसमें कुछ संशय नहीं है॥ ६५॥

इसके बाद उसे पूर्वकी भाँति स्थापितकर पुन: सुखपूर्वक लौट आना, अब निश्चयपूर्वक समझ-बूझकर तुम जैसा चाहो, वैसा करो॥ ६६॥

सूतजी बोले—उनके इस प्रकार कहनेपर प्रारब्धवश मोहित उस रावणने इसमें अपना हित समझा और मुनिकी बातको सत्य मानकर कैलासकी ओर चल पड़ा। उसने वहाँ जाकर कैलासपर्वतको उखाड़ना प्रारम्भ किया, जिससे उसपर स्थित सब कुछ [सभी प्राणि-पदार्थ] परस्पर टकराकर गिरने लगे॥ ६७-६८॥

तब शिवजी भी यह देखकर कहने लगे—यह क्या हुआ? तब पार्वतीने हँसकर उन शंकरसे कहा—॥ ६९॥

पार्वती बोलीं—आपने शान्तात्मा महावीरको जो अतुल बल दिया था, उसे उत्तम शिष्य बनानेका यह फल प्राप्त हो गया, यह सब उसी शिष्यसे हुआ है॥ ७०॥

सूतजी बोले—पार्वतीके इस व्यंग्य वचनको सुनकर महेश्वरने रावणको कृतघ्न तथा बलसे गर्वित समझकर उसे शाप दे दिया॥ ७१॥

महादेवजी बोले—हे दुर्भक्त रावण! हे दुर्मते! तुम घमण्ड मत करो, अब शीघ्र ही तुम्हारे हाथोंके घमण्डको दूर करनेवाला यहाँ कोई उत्पन्न होगा॥ ७२॥

सूतजी बोले—इस प्रकार वहाँ जो घटना घटी, उसे नारदजीने भी सुन लिया और रावण भी प्रसन्नचित्त होकर जैसे आया था, वैसे ही वहाँसे अपने स्थानको चला गया॥ ७३॥

उसके बाद बली तथा शत्रुओंके अभिमानको चूर करनेवाले रावणने शिवजीके वरदानको सत्य मानकर अपने बलसे विमोहित हो सारे जगत्को अपने वशमें कर लिया। शिवजीकी आज्ञासे प्राप्त महातेजस्वी दिव्यास्त्रसे युक्त उस रावणकी बराबरी करनेवाला कोई भी शत्रु उस समय नहीं रहा॥ ७४-७५॥

[हे ऋषिगणो!] इस प्रकार मैंने वैद्यनाथेश्वरके माहात्म्यका वर्णन किया, जिसे सुननेवाले मनुष्योंका पाप विनष्ट हो जाता है॥ ७६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें वैद्यनाथेश्वरज्योतिर्लिंग-माहात्म्यवर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

दारुकावनमें राक्षसोंके उपद्रव एवं सुप्रिय वैश्यकी शिवभक्तिका वर्णन

सूतजी बोले—इसके उपरान्त मैं परमात्मा शिवके नागेश नामक परमश्रेष्ठ ज्योतिर्लिंगकी जिस प्रकार उत्पत्ति हुई, उसे कह रहा हूँ॥ १॥

पार्वतीके वरदानसे अहंकारमें डूबी हुई दारुका नामक एक राक्षसी थी, उसका पति दारुक भी महाबलवान् था। वह अनेक राक्षसोंको साथ लेकर सत्पुरुषोंको दु:ख दिया करता था और यज्ञका ध्वंस तथा लोगोंके धर्मका ध्वंस किया करता था॥ २-३॥

पश्चिम सागरके तटपर उसका एक वन था, जो चारों ओर सोलह योजन विस्तृत तथा सर्वसमृद्धिपूर्ण था। दारुका राक्षसी अपने क्रीडाविलासके निमित्त वहाँ नित्य विचरण करती थी। वह वन सुन्दर भूमि, नाना प्रकारके वृक्ष तथा अन्य सभी उपकरणोंसे युक्त था। देवीने उस वनकी देख-रेखका भार दारुकाको दिया था, जिसके लिये वह अपने पतिके साथ अपनी इच्छानुसार जाया करती थी॥ ४—६॥

वह दारुक राक्षस भी अपनी पत्नी दारुकाके साथ वहाँ निवासकर सभीको भय देने लगा॥ ७॥

उससे पीड़ित हुए वहाँके निवासी महर्षि और्वकी शरणमें गये और सिर झुकाकर उन्हें प्रेमपूर्वक नमस्कारकर कहने लगे—॥ ८॥

लोग बोले—हे महर्षे! हमको शरण दीजिये, अन्यथा दुष्ट हमलोगोंको मार डालेंगे, आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं; आप तेजसे प्रकाशवान् हैं॥ ९॥

पृथ्वीपर आपके सिवा कोई भी हमलोगोंका शरणदाता ऐसा नहीं है, जिसके पास हमलोग जायँ और वहाँ रहकर सुख प्राप्त करें॥ १०॥

[हे महर्षे!] आपको देखते ही सभी राक्षस दूर भाग जाते हैं; क्योंकि आपमें अग्निके समान शिवका तेज प्रज्वलित होता रहता है॥ ११॥

सूतजी बोले—लोगोंके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर शरण देनेवाले मुनिश्रेष्ठ और्वने व्यथित होकर उनकी रक्षाके लिये यह वचन कहा—॥ १२॥

और्व बोले—यदि अत्यन्त बलशाली ये राक्षस पृथ्वीपर प्राणियोंका वध करते रहेंगे, तो वे स्वयं मर जायँगे। यदि वे इसी प्रकार यज्ञ-विध्वंस करते रहेंगे, तो सभी राक्षस स्वयं अपने प्राणोंसे हाथ धो लेंगे, यह मैं सत्य कहता हूँ॥ १३-१४॥

सूतजी बोले—लोगोंको सुख देनेवाले महर्षि और्व उन लोगोंसे इस प्रकार कहकर तथा प्रजाओंको धीरज देकर विविध प्रकारसे तप करने लगे॥ १५॥

इसके बाद वे देवगण शापका कारण जानकर देवशत्रु राक्षसोंके साथ युद्ध करनेका सभी प्रकारसे प्रयत्न करने लगे। उस समय इन्द्रादि समस्त देवगण अनेकविध

अस्त्र-शस्त्रोंको धारणकर सभी उपकरणोंके साथ युद्धके लिये वहाँ उपस्थित हुए॥ १६-१७॥

उन्हें देखकर उस वनमें जहाँ जो भी राक्षस निवास कर रहे थे, वे सभी आपसमें मिलकर विचार करने लगे॥ १८॥

राक्षस बोले—अब हमलोग क्या करें, कहाँ जायँ? [बहुत बड़ा] संकट उपस्थित हो गया। यदि हमलोग युद्ध करें, तो भी मारे जायँगे और यदि युद्ध न करें, तो भी मारे जायँगे, यदि ऐसे ही पड़े रहे, तो हमलोग क्या भोजन करेंगे? यह तो बड़ा दुःखका अवसर उपस्थित हुआ, कौन इस दुःखको दूर करेगा?॥ १९-२०॥

सूतजी बोले—वहाँपर इस प्रकार ऐसा विचार करके भी उन दारुक आदि राक्षसोंको जब कोई उपाय नहीं सूझा, तब वे बहुत दुखी हुए। तब दारुका राक्षसी इस प्रकारका संकट उपस्थित हुआ जानकर पार्वतीजीके उस वरदानके विषयमें कहने लगी॥ २१-२२॥

दारुका बोली—मैंने पूर्वकालमें भवानीकी आराधना की थी, तब उन्होंने वरदान दिया था कि तुम जहाँ जाना चाहो, वहाँ अपने स्वजनोंको लेकर वनसहित जा सकती हो। जब मैंने वैसा वरदान प्राप्त किया है, तब तुमलोग दुःख क्यों सह रहे हो? वनको जलके भीतर ले जाकर वहींपर सभी राक्षस सुखपूर्वक रह सकते हैं॥ २३-२४॥

सूतजी बोले—तब उस राक्षसीका यह वचन सुनकर सभी राक्षस हर्षित हो उठे और निडर हो आपसमें कहने लगे—॥ २५॥

यह धन्य है। कृतकृत्य है, इस राज्ञीने हमलोगोंको जीवनदान दिया है। तदुपरान्त वे उस राक्षसीको प्रणामकर आदरपूर्वक कहने लगे—हे देवि! यदि तुममें इस प्रकार जानेकी शक्ति है, तो यहाँसे शीघ्र चलो, अब क्या विचार करती हो? हमलोग जलमें जाकर सुखपूर्वक निवास करेंगे॥ २६-२७॥

इसी बीच सभी लोग देवताओंको साथ लेकर उन राक्षसोंसे युद्ध करनेके लिये आये, जिन्होंने उन्हें पहले बहुत दुःख दिया था॥ २८॥

देवगणोंसे पीड़ित उन राक्षसोंके साथ पार्वतीके बलका आश्रय लेकर 'तुम्हारी जय हो, तुम्हारी जय हो' इस प्रकार देवीकी स्तुतिकर जलस्थलसे युक्त अपना सारा नगर उठाकर पंखयुक्त हिमालयपर्वतके समान उड़ती हुई वह शिवभक्त राक्षसी समुद्रके मध्यमें चली गयी और अपने सम्पूर्ण परिवारोंके साथ निर्भय हो प्रसन्नताके साथ वहाँ रहने लगी॥ २९—३१॥

इस प्रकार वे विलासी राक्षस समुद्रके मध्यमें स्थित होकर सुखी हो गये और निर्भय होकर नगरमें विहार करने लगे। और्व मुनिके शापके भयसे वे कभी पृथ्वीपर नहीं आते थे, अपितु जलमें ही भ्रमण करते रहे॥ ३२-३३॥

वे नावोंपर बैठे मनुष्योंको नगरमें लाकर उन्हें वहाँ कारागारमें डाल देते थे और किसी-किसीको मार भी डालते थे। वहाँ स्थित होकर भी वे राक्षस भवानीके वरदानसे निर्भय होकर जैसे-तैसे लोगोंको पीड़ा देते ही रहते थे॥ ३४-३५॥

हे मुनीश्वरो! जिस प्रकार उन राक्षसोंका भय पूर्वमें पृथ्वीलोकमें स्थलपर नित्यप्रति बना रहता था। उसी प्रकार उनके जलमें रहनेपर भी निरन्तर भय बना रहने लगा। किसी समय वह राक्षसी जलमें स्थित अपने नगरसे निकलकर लोगोंको पीड़ा देनेके लिये पृथ्वीपर जानेका मार्ग रोककर स्थित हो गयी॥ ३६-३७॥

इसी समय वहाँ चारों ओरसे मनुष्योंसे भरी हुई बहुत-सी सुन्दर नावें आयीं॥ ३८॥

मनुष्योंसे भरी उन नावोंको देखकर हर्षसे भरे हुए उन दुष्ट राक्षसोंने शीघ्रतासे जाकर नावपर स्थित लोगोंको वेगपूर्वक पकड़ लिया॥ ३९॥

उन महाबली राक्षसोंने उन्हें अपने नगरमें लाकर दृढ़ बेड़ियोंसे बाँधकर कारागारमें डाल दिया॥ ४०॥

शृंखलाओंसे बँधे हुए तथा कारागारमें पड़े हुए उन लोगोंपर राक्षसोंकी बारंबार फटकार भी पड़ती थी, जिसके कारण वे अत्यधिक दुःख पा रहे थे॥ ४१॥

उन सभीमें उनका स्वामी जो सुप्रिय नामका वैश्य था, वह शिवजीका श्रेष्ठ भक्त, उत्तम आचरणवाला तथा शाश्वत शिवपरायण था॥ ४२॥

वह बिना शिवपूजन किये कभी नहीं रहता था। वह सर्वथा शिवधर्मका पालन करनेवाला और भस्म,

रुद्राक्ष धारण करनेवाला था॥ ४३॥

यदि वह कभी पूजन नहीं कर पाता, तो उस दिन भोजन भी नहीं करता था। अत: वहाँ भी वह वैश्य शिवपूजन किया करता था॥ ४४॥

हे श्रेष्ठ ऋषियो! उसने कारागारमें रहते हुए भी बहुत-से लोगोंको शिवमन्त्र और पार्थिवपूजनकी विधि सिखा दी॥ ४५॥

तब कारागारमें रहनेवाले अन्य लोग भी अपनी कामनाको पूर्ण करनेवाली शिवकी पूजा विधिपूर्वक करने लगे, जैसा कि उन लोगोंने देखा और सुना था॥ ४६॥

कुछ लोग उत्तम आसन लगाकर शिवजीका ध्यान करने लगे और कुछ लोग प्रसन्नतासे शिवकी मानसी पूजामें निरत हो गये॥ ४७॥

हे मुनीश्वरो! उस समय उनका स्वामी प्रत्यक्ष ही पार्थिव विधिसे नित्य शिवपूजन किया करता था॥ ४८॥

जो अन्य लोग शिवपूजनका विधान तथा श्रेष्ठ स्मरण (शास्त्रोक्त ध्यान) नहीं जानते थे, वे '**नमः शिवाय**'—इस मन्त्रसे शिवका ध्यान करते हुए रहने लगे। सुप्रिय नामक जो शिवभक्त श्रेष्ठ वैश्य था, वह मनमें [शिवजीका] ध्यान करता हुआ वहाँ शिवपूजा किया करता था॥ ४९-५०॥

भगवान् शिवजी भी शास्त्रवर्णित रूप धारणकर सभी सामग्री प्रत्यक्ष ग्रहण करते थे। वह वैश्य स्वयं भी इस बातको नहीं जानता था कि शिवजी उसे ग्रहण कर लेते हैं। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार वैश्यको शिवपूजन करते हुए वहाँ निर्विघ्न रूपसे छ: महीने बीत गये॥ ५१-५२॥

हे मुनीश्वरो! इसके बाद शिवजीका जैसा चरित्र हुआ, उसे आपलोग सावधान मनसे सुनिये॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके नागेश्वर ज्योतिर्लिंगमाहात्म्यमें दारुकावनमें राक्षसोपद्रववर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

नागेश्वर ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति एवं उसके माहात्म्यका वर्णन

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] किसी समय उस दुष्टात्मा राक्षस दारुकके एक सेवकने वैश्यके समक्ष [स्थित हुए] शिवजीका सुन्दर रूप देखा॥ १॥

उसने जाकर राक्षसराजके सामने कौतुकसमन्वित उस अद्भुत चरित्रको यथार्थ रूपसे निवेदन किया। तब उस बलवान् राक्षसराज दारुकने भी विह्वल हो शीघ्र ही वहाँ आकर शिवके विषयमें उससे पूछा—॥ २-३॥

दारुक बोला—हे वैश्य! तुम किसका ध्यान कर रहे हो, मेरे सामने सत्य-सत्य बताओ, ऐसा करनेपर तुम्हें मृत्युदण्ड नहीं प्राप्त होगा, अन्यथा तुम मारे जाओगे, मेरी बात कभी झूठी नहीं होती॥ ४॥

सूतजी बोले—तब उसने कहा—मैं कुछ नहीं जानता। यह सुनकर उसने कुपित होकर राक्षसोंसे कहा—हे राक्षसो! इसे मार डालो॥ ५॥

उसके ऐसा कहनेपर तत्काल ही वे राक्षस शिवमें तत्पर चित्तवाले उस श्रेष्ठ वैश्यको मारनेके लिये अनेकविध शस्त्र धारणकर वेगसे दौड़े॥ ६॥

तब उन राक्षसोंको आया हुआ देखकर वह वैश्य भयसे अपने नेत्रोंको बन्दकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवका स्मरण और बार-बार उनके नामका संकीर्तन करने लगा॥ ७॥

वैश्यपति बोला—हे शंकर! हे देवेश! हे शम्भो! हे शिव! हे त्रिलोकेश! हे दुष्टनाशक! हे भक्तवत्सल! इस दुष्टसे रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ८॥

हे देव! आप ही मेरे सर्वस्व हैं, हे प्रभो! इस समय मैं आपके अधीन हूँ, आपका ही हूँ और आप ही मेरे सर्वदा प्राण हैं॥ ९॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर चारों ओर दरवाजेवाले उत्तम मन्दिरके सहित शिवजी उस विवरसे प्रकट हुए॥ १०॥

उस (भवन)-के बीचमें ज्योति:स्वरूप परिवारसहित अद्भुत शिवका रूप देखकर उसने पूजन किया॥ ११॥

तब उससे पूजित हुए शिवजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने [सुप्रिय वैश्यको] पाशुपत नामक अस्त्र दे करके सभी उपकरणों तथा गणोंसहित उन समस्त राक्षसगणोंका स्वयं शीघ्रतासे संहार कर दिया। इस प्रकार दुष्टोंका वध करनेवाले उन शिवने अपने भक्तकी रक्षा की॥ १२-१३॥

उस समय अपनी लीलासे सुन्दर शरीर धारण करनेवाले तथा अत्यद्भुत चरित्र करनेवाले शिवजीने उन सबको मारकर उस वनको वरदान दिया कि इस वनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र—इन चारों वर्णोंके धर्म नित्य स्थिर रहेंगे॥ १४-१५॥

यहाँ शिवधर्मप्रवर्तक तथा शिवधर्मवक्ता श्रेष्ठ मुनि ही होंगे, तमोगुणी लोग कभी नहीं होंगे॥ १६॥

सूतजी बोले—इसी समय दुःखित मनवाली उस दारुका नामक राक्षसीने भगवती पार्वतीकी स्तुति की॥ १७॥

तब पार्वतीजीने प्रसन्न होकर उससे कहा—मैं क्या करूँ, तब उसने पुनः कहा—[हे देवि!] आप मेरे वंशकी रक्षा करें। मैं तुम्हारे वंशकी रक्षा अवश्य करूँगी, यह मैं सत्य कह रही हूँ—ऐसा कहकर उन्होंने शिवके साथ (लीलापूर्वक) कलह किया॥ १८-१९॥

उसके बाद वरदानके वशीभूत हुए शिवजीने क्रुद्ध हुई पार्वतीजीको देखकर प्रेमपूर्वक कहा—तुम जैसा चाहो, वैसा करो॥ २०॥

सूतजी बोले—अपने पति शिवजीका यह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई पार्वतीजीने हँस करके शीघ्रतासे यह वचन कहा—॥ २१॥

पार्वतीजी बोलीं—आपका वचन युगके अन्तमें सत्य होगा, तबतक तामसी सृष्टि ही बनी रहे—ऐसा मेरा विचार है, अन्यथा प्रलय हो जायगा। हे शिवजी! यह मैं सत्य कहती हूँ। हे नाथ! मैं आपकी [वल्लभा] हूँ और आपकी आश्रिता हूँ। अतः मेरा वचन प्रमाणित कीजिये। यह राक्षसी देवी दारुका मेरी शक्ति है, सभी राक्षसियोंमें बलिष्ठ है, यह राक्षसोंपर राज्य करे। ये राक्षसोंकी पत्नियाँ यहाँपर अपने पुत्रोंको उत्पन्न करेंगी। वे सब मिलकर इस वनमें मेरी आज्ञासे निवास करेंगी॥ २२—२५॥

सूतजी बोले—अपनी पत्नी पार्वतीजीका यह वचन सुनकर भगवान् शिव प्रसन्नमन होकर यह वाक्य कहने लगे—॥ २६॥



शंकर बोले—हे प्रिये! यदि तुम ऐसा कहती हो, तो मेरी बात सुनो। मैं अपने भक्तोंका पालन करनेके लिये इस वनमें प्रीतिपूर्वक निवास करूँगा॥ २७॥

यहाँपर जो अपने वर्णोचित धर्ममें स्थित होकर प्रेमपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा॥ २८॥

इसके बाद कलियुगके बीत जानेपर तथा सत्ययुगके प्रारम्भ होनेपर अपनी बहुत बड़ी सेनासे युक्त जो वीरसेन नामक प्रसिद्ध श्रेष्ठ राजा होगा, वह मेरी भक्तिके प्रभावसे अतीव पराक्रमी होगा, वह यहाँ आकर मेरा दर्शन करेगा और मेरे दर्शनके फलस्वरूप वह चक्रवर्ती राजा बनेगा॥ २९-३०॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! इस प्रकार साक्षात् महालीला करनेवाले वे शिव और पार्वती परस्पर हास-विलास करके स्वयं वहीं स्थित हो गये॥ ३१॥

वहाँ ज्योतिर्लिंगरूप शिवजी नागेश्वर नामसे तथा देवी पार्वती नागेश्वरी नामसे प्रसिद्ध हुईं, वे दोनों सज्जनोंको अत्यन्त प्रिय हैं॥ ३२॥

ऋषिगण बोले—हे महामते! वीरसेन उस दारुका

वनमें किस प्रकार जायँगे और किस प्रकार शिवजीकी पूजा करेंगे, आप इसका वर्णन कीजिये?॥ ३३॥

सूतजी बोले—निषध नामक सुन्दर देशमें क्षत्रियोंके कुलमें महासेनके वीरसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो शिवका [अत्यन्त] प्रिय था॥ ३४॥

वीरसेनने पार्थिवेश शिवका अर्चन करते हुए बारह वर्षपर्यन्त अत्यन्त कठिन तप किया॥ ३५॥

तब प्रसन्न हुए देवाधिदेव शंकरने प्रकट होकर [राजासे] कहा—हे वीरसेन! काठकी मछली बनाकर उसपर राँगेका लेपकर [और उसे] योगमाया [से सम्पन्न] बनाकर तुम्हें दे रहा हूँ, उसे लेकर तुम इस समय नौकासे इस विवरमें प्रवेश करके चले जाओ, तदनन्तर वहाँ जाकर मेरे द्वारा किये गये उस विवरमें प्रविष्ट होकर नागेश्वरका पूजन करके उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्तकर इन [दारुका आदि] प्रमुख राक्षसियोंका विनाश करना। मेरे दर्शनके प्रभावसे तुम्हें किसी प्रकारकी कमी न होगी। उस समयतक पार्वतीका वरदान भी पूर्ण हो जायगा, जिससे वहाँ जो अन्य म्लेच्छरूपवाले होंगे, वे भी सदाचारी हो जायँगे॥ ३६—४०॥

दु:खको दूर करनेवाले प्रभु सदाशिव वीरसेनसे इतना कहकर उनपर महती कृपा प्रकट करके वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ४१॥

तब परमात्मा शिवसे वर प्राप्त किये हुए वे वीरसेन भी बिना संशयके सब कुछ करनेमें समर्थ हो गये॥ ४२॥

इस प्रकार ज्योतियोंके पति लिंगरूप प्रभु नागेश्वरदेवकी उत्पत्ति हुई, वे तीनों लोकोंकी सम्पूर्ण कामनाको सदा पूर्ण करनेवाले हैं॥ ४३॥

जो प्रतिदिन नागेश्वरकी इस उत्पत्तिका वृत्तान्त श्रद्धापूर्वक सुनता है, वह बुद्धिमान् महापातकोंका नाश करनेवाले सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त कर लेता है॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें नागेश्वर-ज्योतिर्लिंगोद्भवमाहात्म्यवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन

सूतजी बोले—हे ऋषियो! इसके बाद मैं रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग पूर्व समयमें जिस प्रकार उत्पन्न हुआ, उसका वर्णन करता हूँ, आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ १॥

हे ब्राह्मणो! पूर्व समयमें सज्जनोंके प्रिय भगवान् विष्णु पृथ्वीपर [रामके रूपमें] अवतरित हुए। उस समय महामायावी रावणने उनकी पत्नी सीताका हरण कर लिया और उन जनकपुत्रीको अपने घर लंकापुरीमें पहुँचा दिया॥ २-३॥

सीताको खोजते हुए राम किष्किन्धा नामक नगरीमें गये और उन्होंने सुग्रीवसे मित्रताकर बालीका वध किया॥ ४॥

कुछ समयतक वहाँ रहकर सीताको खोजनेमें तत्पर वे लक्ष्मण, सुग्रीव आदिके साथ विचार-विमर्श करते रहे। इसके बाद राजकुमार रामने उन्हें खोजनेके लिये हनुमान् आदि प्रमुख वानरोंको चारों दिशाओंमें भेजा॥ ५-६॥

उसके बाद वानरश्रेष्ठ हनुमान्‌जीके मुखसे सीताको लंकामें स्थित जानकर तथा उनकी चूडामणि प्राप्तकर वे रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए॥ ७॥

हे द्विजो! इसके अनन्तर वे श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्, लक्ष्मण तथा सुग्रीव आदि पुण्यवान् तथा अति बलवान् अठारह पद्म वानरोंके साथ समुद्रके तटपर पहुँचे। दक्षिण सागरमें जो लवणसमुद्र दिखायी देता है, वहाँ आकर वे शिवप्रिय राम लक्ष्मण तथा वानरोंसे सेवित होते हुए उसके तटपर स्थित हुए॥ ८—१०॥

हाय, जानकी कहाँ चली गयी, वह कब मिलेगी? यह समुद्र अगाध है और वानरीसेना इसे पार करनेमें सर्वथा असमर्थ है। कैलासको भी उठानेवाला राक्षस रावण महाबली है, लंका भी अगम्य दुर्ग है, उसका पुत्र मेघनाद तो इन्द्रको भी जीतनेवाला है—इस प्रकार

लक्ष्मणसहित श्रीराम जब विचार कर रहे थे, तब अंगदादि वानर अनुचरोंने उन्हें समझाते हुए धीरज बँधाया॥ ११—१३॥

इसी अवसरपर महाशिवभक्त श्रीरामचन्द्रजीको प्यास लगी और उन्होंने अपने भाई लक्ष्मणसे प्रीतिपूर्वक कहा— ॥ १४॥

श्रीरामजी बोले—हे वीरेश्वर भाई लक्ष्मण! मैं प्यासा हूँ, मुझे जलकी आवश्यकता है। अतः तुम कुछ वानरोंको भेजकर शीघ्र जल मँगाओ॥ १५॥

सूतजी बोले—यह सुनकर वानरगण [जल लेनेके लिये] दसों दिशाओंमें गये और जल लाकर आगे खड़े हो प्रणामकर उन सबने कहा— ॥ १६॥

वानर बोले—हे स्वामिन्! हमलोग आपकी आज्ञासे शीतल, स्वादिष्ट, प्राणोंको तृप्त करनेवाला तथा अत्यन्त उत्तम जल लाये हैं, इसे आप ग्रहण कीजिये॥ १७॥

सूतजी बोले—वानरोंकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी ओर कृपादृष्टिसे देखकर स्वयं वह जल ग्रहण किया॥ १८॥

उन शिवभक्त [राम]-ने ज्यों ही जल लेकर पीना प्रारम्भ किया, उसी समय शिवकी इच्छासे उन्हें यह स्मरण हुआ कि मैंने सम्पूर्ण आनन्द देनेवाले अपने स्वामी परमेश्वर सदाशिवका दर्शन नहीं किया है, फिर इस जलको किस प्रकार ग्रहण करूँ?॥ १९-२०॥

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने पार्थिवपूजा सम्पन्न की और तदुपरान्त उन रघुनन्दनने जलका पान किया। उन्होंने आवाहन आदि सोलह उपचारोंको समर्पित करके विधिपूर्वक प्रेमसे शिवजीका पूजन किया। इसके बाद प्रणाम तथा दिव्य स्तोत्रोंसे यत्नपूर्वक शिवको सन्तुष्टकर वे श्रीराम उत्तम भक्तिसे प्रसन्नतापूर्वक शंकरजीसे प्रार्थना करने लगे— ॥ २१—२३॥

श्रीराम बोले—हे स्वामिन्! हे शम्भो! हे महादेव! हे भक्तवत्सल! शरणमें आये हुए तथा दुखी चित्तवाले मुझ अपने भक्तकी रक्षा कीजिये॥ २४॥

हे संसाररूपी समुद्रसे पार उतारनेवाले! इस समुद्रका यह जल अगाध है और रावण नामक राक्षस महापराक्रमी तथा अति बलवान् है॥ २५॥

मेरे पास युद्धका साधन केवल वानरोंकी चंचल सेना है, अतः अपनी प्रियाकी प्राप्तिहेतु मेरा यह कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा?॥ २६॥

हे देव! हे सुव्रत! इस कार्यमें आप मेरी सहायता करें। हे नाथ! आपकी सहायताके बिना मेरा कार्य पूर्ण होना दुर्लभ है। यह रावण भी आपका परम भक्त है और यह सभी लोगोंसे सर्वथा अजेय है, आपके द्वारा प्रदत्त वरसे गर्वित होकर यह महान् वीर तथा तीनों लोकोंका विजेता हो गया है। हे सदाशिव! मैं भी आपका दास हूँ और सर्वथा आपके अधीन हूँ—ऐसा विचारकर आपको मेरा पक्षपात करना चाहिये॥ २७—२९॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उन्होंने शिवकी प्रार्थना करके और बारंबार उन्हें नमस्कारकर—हे शंकर! आपकी जय हो, आपकी जय हो—इस प्रकार ऊँचे स्वरमें इन उद्घोषोंसे जयकार की। इस प्रकार स्तुतिकर मन्त्रार्थकी भावना करते हुए उन्होंने शिवजीकी पुनः पूजा करके उन स्वामीके आगे नृत्य किया॥ ३०-३१॥

जब वे प्रेमार्द्रहृदय होकर गाल बजाने लगे, तब भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हो उठे॥ ३२॥

वे ज्योतिर्मय महेश्वर वामांगभूता पार्वतीजी तथा पार्षदगणोंके साथ शास्त्रोक्त निर्मल रूप धारणकर तत्काल वहाँ प्रकट हो गये। इसके बाद रामकी भक्तिसे प्रसन्नचित्त होकर उन महेश्वरने कहा—हे राम! तुम्हारा कल्याण हो, वर माँगो॥ ३३-३४॥

उस समय उनके रूपको देखकर सभी लोग पवित्र हो गये और स्वयं शिवधर्मपरायण श्रीरामने शिवकी पूजा की। उन्होंने अनेक प्रकारकी स्तुतिकर प्रसन्नतापूर्वक शिवको प्रणाम करके रावणके साथ युद्धमें अपनी विजयके लिये प्रार्थना की॥ ३५-३६॥

इसके बाद श्रीरामकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर उन महेश्वरने पुनः कहा—हे महाराज! आपकी विजय हो। तब शिवजीके द्वारा विजयका वरदान पाकर और उनकी आज्ञा प्राप्तकर वे मस्तक झुकाकर तथा हाथ जोड़कर पुनः प्रार्थना करने लगे— ॥ ३७-३८॥

श्रीराम बोले—हे स्वामिन्! हे शंकर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो संसारको पवित्र करनेके लिये तथा दूसरोंका

उपकार करनेके लिये आप यहीं निवास करें॥ ३९॥



सूतजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर शिवजी वहींपर लिंगरूपमें स्थित हो गये और रामेश्वर नामसे पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए॥ ४०॥

उसके बाद उन्हींके प्रभावसे श्रीरामने शीघ्र ही समुद्रको अनायास पारकर रावण आदि राक्षसोंको मारकर अपनी उन प्रिया सीताको प्राप्त किया॥ ४१॥

पृथ्वीतलपर रामेश्वरकी महिमा अद्भुत एवं असीम है। यह लिंग भोग-मोक्ष देनेवाला तथा सदा भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाला है॥ ४२॥

जो दिव्य गंगाजलके द्वारा उत्तम भक्तिभावसे श्रीरामेश्वर नामक शिवलिंगको स्नान करायेगा, वह जीवन्मुक्त हो जायगा और इस लोकमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके निश्चित रूपसे कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त कर लेगा॥ ४३-४४॥

[हे ऋषियो!] इस प्रकार मैंने शिवजीके रामेश्वर नामक दिव्य ज्योतिर्लिंगका वर्णन आपलोगोंसे कर दिया, यह माहात्म्य सुननेवालोंके पापको नष्ट कर देनेवाला है॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें रामेश्वरमाहात्म्यवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यमें सुदेहा ब्राह्मणी एवं सुधर्मा ब्राह्मणका चरित-वर्णन

सूतजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठो! इसके बाद घुश्मेश नामक ज्योतिर्लिंग कहा गया है। उसका उत्तम माहात्म्य सुनिये॥ १॥

दक्षिण दिशामें श्रेष्ठ देवगिरि नामक एक महान् शोभासे युक्त पर्वत विराजमान है, जो देखनेमें विचित्र मालूम पड़ता है॥ २॥

उसीके समीप भारद्वाजके कुलमें उत्पन्न महान् वेदवेत्ता सुधर्मा नामका कोई ब्राह्मण रहता था॥ ३॥

उसकी शिवधर्मपरायण, पतिसेवामें सदा तत्पर रहनेवाली तथा गृहकार्योंमें दक्ष सुदेहा नामक भार्या थी॥ ४॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण सुधर्मा भी देवता एवं अतिथिका पूजन करनेवाला, वेदमार्गके अनुसार आचरण करनेवाला तथा अग्निहोत्रमें नित्य तत्पर रहनेवाला था॥ ५॥

वह तीनों समयमें सन्ध्योपासन करनेवाला, सूर्यके समान तेजस्वी, शिष्योंको अध्यापन करनेवाला, वेद-शास्त्रका विद्वान्, धनवान्, श्रेष्ठ, दानी, सौजन्यगुणसे युक्त, नित्य शिवकर्म करनेवाला, शिवभक्त तथा शिवभक्तोंका प्रिय था॥ ६-७॥

इस प्रकार धर्माचरण करते हुए उस ब्राह्मणकी बहुत-सी आयु बीत गयी, किंतु पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ और उसकी स्त्रीका ऋतुकाल भी निष्फल होता गया॥ ८॥

तब भी तत्त्वके ज्ञाता उस ब्राह्मणको थोड़ा-सा भी दु:ख नहीं हुआ। आत्मा ही अपना उद्धार करनेवाला है और वही अपनेको पवित्र करनेवाला भी है—ऐसा मनमें विचारकर वह ब्राह्मण दुखित नहीं हुआ, किंतु सुदेहाको पुत्र उत्पन्न न होनेका बहुत बड़ा दु:ख रहता था। वह सर्वविद्याविशारद अपने पतिसे पुत्र उत्पन्न करनेके लिये

प्रयत्न करनेकी नित्य प्रार्थना किया करती थी॥ ९—११॥

वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीको डाँटकर कहता था कि पुत्र क्या करेगा? कौन किसकी माता तथा कौन किसका पिता है, कौन पुत्र है, कौन भाई है एवं कौन मित्र है?॥ १२॥

हे देवि! तीनों लोकोंमें सभी निःसन्देह स्वार्थका ही साधन करनेवाले हैं—ऐसा तुम बुद्धिसे विशेषरूपसे समझो और चिन्ता मत करो। अतः हे देवि! तुम निश्चित रूपसे दुःखका त्याग करो और हे शुभव्रते! तुम मुझसे नित्य इसके लिये मत कहा करो॥ १३-१४॥

इस प्रकार उसे मना करके शिवधर्ममें निरत वह ब्राह्मण परम सन्तुष्ट हो गया और द्वन्द्वदुःखका त्याग कर दिया। किसी समय सुदेहा सखियोंकी गोष्ठीमें सम्मिलित होनेके लिये अपने पड़ोसीके घर गयी, वहींपर परस्पर विवाद होने लगा॥ १५-१६॥

उस पड़ोसीकी स्त्रीने नारीस्वभावके कारण उस ब्राह्मण-पत्नी सुदेहाको धिक्कारते हुए बहुत कटु वचन कह दिये॥ १७॥

[पड़ोसीकी] पत्नी बोली—हे अपुत्रिणि! तुम किस बातका गर्व कर रही हो? मैं पुत्रवती हूँ, मेरा धन तो मेरा पुत्र भोगेगा, किंतु तुम्हारे धनका भोग कौन करेगा? निश्चय ही तुम्हारा धन राजा ले लेगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे वन्ध्या! तुम्हें धिक्कार है, तुम्हारे धनको धिक्कार है और तुम्हारे अहंकारको धिक्कार है!॥ १८-१९॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उन स्त्रियोंके द्वारा अपमानित होकर दुःखित सुदेहाने घर आकर अपने पतिसे आदरपूर्वक उनकी सारी बात कही॥ २०॥

तब भी उस बुद्धिमान्‌को कुछ दुःख नहीं हुआ। उसने कहा—हे प्रिये! जो उन्होंने कहा—कहने दो, जो होनहार है, वही होता है॥ २१॥

इस प्रकार उसने बारंबार सुदेहाको समझाया, किंतु तब भी उसका दुःख दूर न हुआ, वह पुनः [पुत्रके लिये] आग्रह करने लगी॥ २२॥

सुदेहा बोली—हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ! आप मेरे प्रिय हैं, चाहे जिस किसी भी उपायसे आप पुत्र उत्पन्न करें, अन्यथा मैं अपना शरीर त्याग दूँगी॥ २३॥

सूतजी बोले—उसके द्वारा कहे गये इस वचनको सुनकर उसके आग्रहसे विवश हुए ब्राह्मणश्रेष्ठ सुधर्माने चित्तमें भगवान् शिवका स्मरण किया॥ २४॥

इसके बाद उस विप्रने सावधानीपूर्वक दो फूल लेकर अग्निके सामने रख दिये, उसने दाहिनेवाले पुष्पको मनमें पुत्रदायक समझा॥ २५॥

इस प्रकारका संकल्प करके उस ब्राह्मणने अपनी पत्नीसे कहा—पुत्रफलकी प्राप्तिहेतु इन दोनोंमेंसे कोई एक फूल उठाओ। उसने अपने मनमें यह सोचा कि मुझे पुत्र हो और मेरे स्वामीने पुत्रके लिये जिस पुष्पको सोचा है, वही मेरे हाथमें आये॥ २६-२७॥

ऐसा कहकर उसने शिव तथा अग्निको प्रणाम करके तथा उनकी प्रार्थनाकर एक पुष्प उठा लिया॥ २८॥

शिवेच्छावश मोहसे ग्रस्त होनेके कारण सुदेहाने उस पुष्पको नहीं उठाया, जिसे उसके पतिने सोचा था॥ २९॥

यह देखकर ब्राह्मणने लम्बी साँस ली और शिवजीके चरण-कमलका स्मरण करके अपनी स्त्रीसे कहा—॥ ३०॥

सुधर्मा बोला—हे प्रिये! ईश्वरने जो रच दिया, है, वह अन्यथा कैसे हो सकता है, अब तुम पुत्रकी आशा छोड़ो और शिवकी परिचर्या करो॥ ३१॥

ऐसा कहकर उस ब्राह्मणने स्वयं भी पुत्रकी आशा त्याग दी और शिवध्यानपरायण होकर धर्मकार्यमें प्रवृत्त हो गया, परंतु उस सुदेहाने आग्रह नहीं छोड़ा और पुत्रकामनासे उसने सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक पतिसे [फिर] कहा—॥ ३२-३३॥

सुदेहा बोली—हे स्वामिन्! मुझसे पुत्र उत्पन्न नहीं होगा, तो आप मेरे आग्रहसे दूसरा विवाह कर लीजिये, उस स्त्रीसे आपको निश्चय ही पुत्र होगा, इसमें संशय नहीं है॥ ३४॥

सूतजी बोले—उसके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ तथा धर्मपरायण उस ब्राह्मणने अपनी पत्नी उस सुदेहासे कहा—॥ ३५॥

सुधर्मा बोला—हे प्रिये! तुम्हारा तथा मेरा समस्त दुःख निश्चित रूपसे दूर हो गया है, इसलिये तुम अब

मेरे धर्ममें विघ्न मत करो॥ ३६॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] तब इस प्रकार ब्राह्मणके द्वारा मना किये जानेपर भी सुदेहाने अपनी माताकी पुत्री अर्थात् अपनी बहनको घर लाकर पतिसे कहा—आप इससे विवाह कर लें॥ ३७॥

सुधर्मा बोला—इस समय तो तुम कह रही हो कि यह मेरी पत्नी है, किंतु जब यह पुत्र उत्पन्न कर लेगी, तब तुम इससे ईर्ष्या करने लगोगी॥ ३८॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! अपने पतिद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उसकी पत्नी सुदेहाने हाथ जोड़कर पुनः अपने पति सुधर्मासे कहा— ॥ ३९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! मैं अपनी बहनसे कभी ईर्ष्या नहीं करूँगी, आप पुत्रोत्पत्तिके निमित्त इसके साथ विवाह कीजिये, मैं अनुमति देती हूँ॥ ४०॥

इस प्रकार अपनी प्रिया सुदेहाके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर उस ब्राह्मण सुधर्माने भी विवाहविधिके अनुसार घुश्माका पाणिग्रहण कर लिया॥ ४१॥

इसके बाद उसके साथ विवाह करके उस ब्राह्मणने अपनी पहली पत्नीसे कहा—हे प्रिये! हे अनघे! यह तुम्हारी छोटी बहन है, अतः तुम्हें इसका सदा भरण-पोषण करना चाहिये॥ ४२॥

इस प्रकार कहकर वह शिवभक्त धर्मात्मा सुधर्मा यथायोग्य अपने धर्मका पालन करने लगा॥ ४३॥

वह भी अपनी बहनके साथ सखीकी भाँति व्यवहार करने लगी और विरोधभावका त्याग करके और रात-दिन उसका पालन-पोषण करने लगी॥ ४४॥

उसकी जो छोटी पत्नी थी, वह अपनी बहनकी आज्ञा प्राप्तकर नित्य एक सौ एक पार्थिव शिवलिंगोंका निर्माण करती थी, फिर वह घुश्मा विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजनकर पासमें स्थित तालाबमें उन्हें विसर्जित कर देती थी॥ ४५-४६॥

इस प्रकार वह नित्य शिवलिंगका विसर्जनकर पुनः दूसरे दिन पार्थिव शिवलिंगका निर्माणकर आवाहनसे लेकर विसर्जनतक कामना पूर्ण करनेवाली शिवपूजा विधिपूर्वक करती थी॥ ४७॥

इस प्रकार नित्य शिवपूजन करते हुए उसकी सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाली एक लाख पार्थिव-संख्या पूरी हुई॥ ४८॥

उसके अनन्तर शिवजीकी कृपासे उसे सुन्दर, भाग्यवान् और सभी कल्याणकारी गुणोंका पात्र पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ४९॥

धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ वह विप्र सुधर्मा उस पुत्रको देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और ज्ञानधर्मपरायण तथा आसक्तिरहित होकर सुखका उपभोग करने लगा॥ ५०॥

उसके बादसे वह सुदेहा उससे अत्यधिक ईर्ष्या करने लगी, पहले उसका जो हृदय शीतल था, वही अब तलवारके समान हो गया॥ ५१॥

हे मुनीश्वरो! उसके बाद जो दुःखदायी एवं निन्दित कर्म हुआ, उसे आपलोग सावधान मनसे सुनिये॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिताके घुश्मेश्वरमाहात्म्यमें सुदेहासुधर्माचरितवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग एवं शिवालयके नामकरणका आख्यान

सूतजी बोले—अपनी छोटी बहनके पुत्रको देखकर बड़ी बहन दुखी हुई और वह उसके पुत्रसुखको सहन न करती हुई उससे विरोध करने लगी॥ १॥

सब लोग उस पुत्रवतीकी निरन्तर प्रशंसा करते थे, किंतु सुदेहाको यह सब तथा शिशुका रूप आदि सहन नहीं होता था॥ २॥

माता-पिताके अत्यन्त प्रिय तथा सद्गुणोंके पात्र उस पुत्रको देखकर उसका हृदय अग्निके समान तप्त हो जाता था॥ ३॥

इसी बीच कुछ विप्र कन्या देनेके लिये आये और

सुधर्माने विधिपूर्वक उस [अपने पुत्र]-का विवाह वहीं सम्पन्न कर दिया॥ ४॥

सुधर्मा [अपनी छोटी स्त्री] घुश्माके साथ परम आनन्दको प्राप्त हुआ और सभी सम्बन्धी उस घुश्माका सम्मान करने लगे। उसे देखकर सुदेहा मन-ही-मन जलने लगी और 'हाय मैं मारी गयी'—ऐसा कहती हुई बहुत दुखी हुई॥ ५-६॥

सुधर्मा अपने विवाहित पुत्र तथा पुत्रवधूको लेकर घर आकर अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ हर्षित होते हुए उत्साह प्रदर्शित करने लगा॥ ७॥

इससे घुश्मा तो आनन्दित हुई, पर सुदेहा दु:खित हो गयी। वह उस सुखको सहन न करती हुई दुखी हो पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ ८॥

तब घुश्माने कहा—ये पुत्र तथा पुत्रवधू तुम्हारे ही हैं, मेरे नहीं। पुत्र तथा बहू—ये दोनों भी उसे अपनी माता तथा सास ही मानते थे॥ ९॥

पति [सुधर्मा] भी अपनी ज्येष्ठ स्त्रीका जैसा आदर करता था, वैसा कनिष्ठाका नहीं। फिर भी वह ज्येष्ठ पत्नी अपने मनमें कपट रखती थी॥ १०॥

एक दिन ज्येष्ठा सुदेहाने दुखी होकर अपने मनमें विचार किया कि मेरे इस दु:खकी शान्ति कैसे हो?॥ ११॥

सुदेहा [मन-ही-मन] बोली—मेरे हृदयकी अग्नि घुश्माके दु:खजनित आँसुओंसे ही शान्त होगी, अन्य किसी प्रकार नहीं, यह निश्चित है॥ १२॥

इसलिये मैं आज ही मधुर भाषण करनेवाले उसके पुत्रको मार डालूँगी, यह मेरा दृढ़ निश्चय है, आगे जो होनहार होगा, वह तो होकर ही रहेगा॥ १३॥

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! कपटी मनुष्यको कर्तव्य-अकर्तव्यका विचार नहीं रहता, कठोर सौतियाडाहका भाव प्राय: अपना ही विनाश कर देता है॥ १४॥

एक दिन सुधर्माकी ज्येष्ठ पत्नीने छुरी लेकर रातमें वधूके साथ सोये हुए पुत्रके अंगोंको खण्ड-खण्ड काट डाला। इस प्रकार उस घमण्डी तथा महाबलाने घुश्माके पुत्रके सभी अंगोंको खण्ड-खण्ड कर दिया और रात्रिमें ही ले जाकर तालाबमें उसी स्थानपर फेंक दिया, जहाँ घुश्मा नित्य पार्थिव शिवलिंगोंको विसर्जित किया करती थी। इस प्रकार वहाँपर फेंककर लौट आयी और सुखपूर्वक सो गयी॥ १५—१७॥

प्रात:काल होनेपर घुश्मा नित्यकर्म करने लगी तथा श्रेष्ठ सुधर्मा भी स्वयं नित्यकर्म सम्पादन करने लगा॥ १८॥

इसी बीच ज्येष्ठा सुदेहा, जिसके हृदयकी अग्नि शान्त हो चुकी थी, अत्यन्त आनन्दयुक्त होकर गृहकार्य करने लगी॥ १९॥

प्रात:काल होनेपर उठ करके वह वधू खूनसे लथपथ तथा पतिके शरीरके टुकड़ोंसे युक्त शय्याको देखकर बहुत दुखी हुई और उसने अपनी साससे कहा—आपके पुत्र कहाँ गये? शय्या रुधिरसे लथपथ है तथा वहाँ शरीरके टुकड़े-टुकड़े दिखायी पड़ रहे हैं॥ २०-२१॥

हे शुचिव्रते! मैं तो मारी गयी, किसने यह दुष्टकर्म किया है—ऐसा कहकर उसकी पत्नी अत्यधिक विलाप करने लगी। तब ज्येष्ठा सुदेहा भी बाहरसे दु:ख प्रकट करने लगी और भीतरसे प्रसन्न हुई। वह दु:खित होकर बोली—हाय! मैं तो निश्चय ही मर गयी॥ २२-२३॥

वह घुश्मा अपनी पुत्रवधूके दु:खको सुनकर भी नित्य पार्थिवपूजनरूप व्रतसे विचलित नहीं हुई॥ २४॥

उसका मन [पुत्रशोकसे] थोड़ा भी उत्कण्ठित नहीं हुआ और उसका पति भी जबतक व्रतविधि समाप्त नहीं हुई, तबतक वैसा ही रहा॥ २५॥

पूजनके बाद मध्याह्नकालमें उस भयानक शय्याको देखकर भी उस घुश्माने कुछ भी दु:ख नहीं किया॥ २६॥

जिन्होंने यह पुत्र दिया है, वे ही रक्षा भी करेंगे; वे भक्तवत्सल, कालके भी काल और सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले कहे गये हैं॥ २७॥

यदि हमारी रक्षा करनेवाले एकमात्र प्रभु ईश्वर सदाशिव हैं, तो चिन्ताकी बात ही क्या है? वे ही मालीके समान उन प्राणियोंका संयोग कराते हैं और पुन: उन्हें अलग भी कर देते हैं॥ २८॥

इस समय मेरे चिन्ता करनेसे भी क्या होनेवाला है, इस तत्त्वका विचारकर वह दुखी नहीं हुई और शिवजीका ध्यानकर धैर्य धारण किये रही॥ २९॥

स्थिरचित्त होकर पूर्वकी भाँति पार्थिव शिवलिंगोंको

लेकर शिवके नामोंका उच्चारण करती हुई वह सरोवरके तटपर गयी। जब वहाँ पार्थिव लिंगोंको डालकर वह लौटने लगी, तब उसने सरोवरके तटपर खड़े अपने पुत्रको देखा॥ ३०-३१ ॥

पुत्र बोला—हे माता! आओ, मैं तुमसे मिलूँगा, मैं तो मर गया था, किंतु तुम्हारे पुण्यके प्रभावसे और शंकरजीकी कृपासे अब जीवित हो गया हूँ॥ ३२ ॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! वह घुश्मा अपने उस पुत्रको जीवित देखकर भी वैसे ही अधिक प्रसन्न न हुई, जैसा कि उसके मरनेपर दुखी न थी, किंतु यथावत् शिवजीके ध्यानमें तत्पर रही॥ ३३ ॥

इसी समय वहाँ सन्तुष्ट हुए ज्योतिःस्वरूप सदाशिव शीघ्र प्रकट हो गये और उससे कहने लगे—॥ ३४ ॥

शिवजी बोले—हे वरानने! मैं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो, उस दुष्टाने इसे मारा था, अब मैं अपने त्रिशूलसे उसे मारूँगा॥ ३५ ॥

सूतजी बोले—तब विनत हुई घुश्माने शिवजीको प्रणामकर यह वर माँगा—हे नाथ! आप मेरी इस बहन सुदेहाकी रक्षा कीजिये॥ ३६ ॥

शिवजी बोले—उसने तो अपकार किया है, फिर भी तुम उसका उपकार क्यों कर रही हो? दुष्टकर्म करनेवाली सुदेहा तो वधके योग्य है॥ ३७ ॥

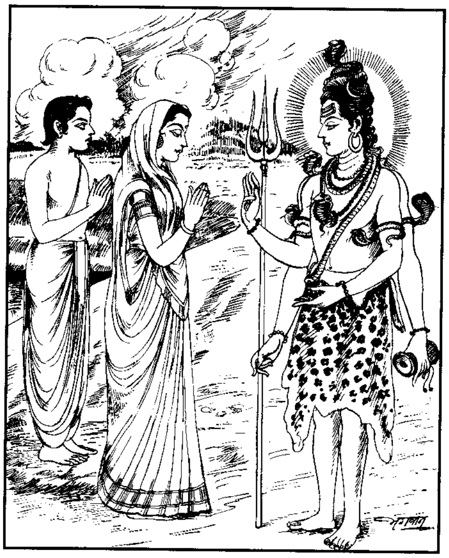
घुश्मा बोली—[हे प्रभो!] आपके दर्शनमात्रसे पाप नहीं रह जाता है, इसलिये आपका दर्शन करते ही उसके सभी पाप दूर हो गये॥ ३८ ॥

जो पुरुष अपकार करनेवालोंके प्रति उपकार करता है, उसके दर्शनमात्रसे ही पाप दूर भाग जाते हैं। हे देव! मैंने भगवान्‌का ऐसा अद्भुत वाक्य सुना है, इसलिये हे सदाशिव! जिसने जैसा किया है, वह वैसा करे॥ ३९-४० ॥

सूतजी बोले—उसके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भक्तवत्सल कृपासिन्धु महेश्वर अतीव प्रसन्न हो गये और उन्होंने पुनः कहा—॥ ४१ ॥

शिवजी बोले—हे घुश्मे! अब तुम कोई अन्य वर माँगो, मैं दूँगा। मैं तुम्हारी भक्तिसे तथा निर्विकार स्वभावसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसलिये तुम्हारा हित करना चाहता हूँ॥ ४२ ॥

सूतजी बोले—उनका वचन सुनकर उसने कहा—यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं, तो आप संसारकी रक्षाके निमित्त मेरे नामसे यहींपर स्थित हो जाइये॥ ४३ ॥



तब अत्यन्त प्रसन्न हुए महेश्वर शिवजी बोले—हे घुश्मे! मैं तुम्हारे नामसे घुश्मेश्वरके रूपमें प्रसिद्ध होकर यहाँ निवास करूँगा और सबको सुख प्रदान करूँगा॥ ४४ ॥

यहाँपर मेरा घुश्मेश्वर नामक शुभ ज्योतिर्लिंग प्रसिद्ध होगा और यह सरोवर सदा सभी लिंगोंका निवासस्थान होगा। इसलिये यह शिवालय नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगा। यह सरोवर दर्शनमात्रसे सदा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होगा॥ ४५-४६ ॥

हे सुव्रते! तुम्हारे वंशमें एक सौ एक पीढ़ीपर्यन्त इसी प्रकारके श्रेष्ठ पुत्र होते रहेंगे, इसमें सन्देह नहीं है, वे सुन्दर स्त्रीवाले, महाधनी, दीर्घजीवी, मेधावी, विद्वान्, उदार तथा भोग-मोक्षके फलको प्राप्त करनेवाले होंगे। इन सबको एक सौ एक पुत्र होंगे, जो गुणोंमें परस्पर एक-से-एक अधिक होंगे। इस प्रकार तुम्हारे वंशका अति सुन्दर विस्तार होगा॥ ४७—४९ ॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर शिवजी वहाँ ज्योतिर्लिंगरूपसे स्थित हो गये। वे घुश्मेश्वर नामसे विख्यात हुए और वह सरोवर शिवालय नामसे विख्यात हुआ॥ ५० ॥

उस समय वहाँपर आये हुए सुधर्मा, सुदेहा और घुश्माने बड़ी शीघ्रतासे शिवजीकी एक सौ एक बार परिक्रमा की। शिवजीकी पूजा करके परस्पर मिलकर तथा अपने अन्त:करणका पाप दूरकर उन्होंने परम सुख प्राप्त किया॥ ५१-५२॥

हे विप्रो! पुत्रको जीवित देखकर वह सुदेहा लज्जित हो गयी और उसने उन दोनोंसे क्षमा माँगकर अपने पापोंको दूर करनेवाले व्रतका आचरण किया॥ ५३॥

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार घुश्मेश्वर नामक यह लिंग उत्पन्न हुआ, उसका पूजन तथा दर्शन करनेसे सुखकी सदा वृद्धि होती है। इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे बारह ज्योतिर्लिंगोंका वर्णन किया, जो सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले और भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं॥ ५४-५५॥

जो इन ज्योतिर्लिंगोंकी कथाओंको पढ़ता और सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त करता है॥ ५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें घुश्मेशज्योतिर्लिंगोत्पत्ति-माहात्म्यवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

हरीश्वरलिंगका माहात्म्य और भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्र प्राप्त करनेकी कथा

व्यासजी बोले—उन सूतजीका यह वचन सुनकर सभी मुनीश्वरोंने उनकी प्रशंसा करके लोकहितकी कामनासे कहा—॥ १॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आप सब कुछ जानते हैं, इसीलिये हमलोग पूछ रहे हैं। हे प्रभो! अब आप हरीश्वर लिंगका माहात्म्य कहिये। हमने सुना है कि पूर्वकालमें विष्णुने उनकी आराधनासे सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था, इसलिये आप विशेष रूपसे उस कथाको कहिये॥ २-३॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! अब आपलोग हरीश्वरकी शुभ कथा सुनिये, विष्णुने पूर्वकालमें शंकरजीसे सुदर्शनचक्र प्राप्त किया था। किसी समय दैत्य महाबलवान् हो गये। वे लोकोंको पीड़ित करने और धर्मका लोप करने लगे। उसके अनन्तर महान् बल तथा पराक्रमवाले दैत्योंसे पीड़ित हुए उन देवताओंने देवरक्षक विष्णुसे अपना दु:ख निवेदन किया॥ ४—६॥

देवगण बोले—हे प्रभो! आप कृपा कीजिये, हमलोगोंको दैत्य अत्यन्त पीड़ा दे रहे हैं, हमलोग कहाँ जायँ, क्या करें, हमलोग आप शरणदाताके आश्रित हैं॥ ७॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] दुखी मनवाले देवताओंका वचन सुनकर विष्णुने शिवके चरणकमलोंका ध्यान करके यह वचन कहा—॥ ८॥

विष्णुजी बोले—हे देवताओ! मैं भगवान् शिवकी आराधनाकर आपलोगोंका कार्य करूँगा; क्योंकि ये शत्रु बड़े बलवान् हैं, इन्हें प्रयत्नपूर्वक जीतना चाहिये॥ ९॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] सर्वसामर्थ्यशाली विष्णुके इस प्रकार कहनेपर वे सभी देवता उन दुष्ट दैत्योंको हत मानकर अपने-अपने स्थानको चले गये। विष्णु भी देवताओंकी विजयके लिये सभी देवताओंके स्वामी, सर्वसाक्षी एवं अव्यय शिवकी आराधना करने लगे॥ १०-११॥

वे कैलासपर्वतके समीप जाकर स्वयं कुण्डका निर्माणकर उसमें अग्निस्थापनकर उसीके समक्ष तप करने लगे। हे मुनीश्वरो! वे पार्थिव-विधिके अनुसार अनेक प्रकारके मन्त्रों एवं अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा मानसरोवरमें उत्पन्न हुए कमलोंसे प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका पूजन करते रहे। वे हरि स्वयं आसन लगाकर स्थित रहे और विचलित नहीं हुए॥ १२—१४॥

जबतक शिवजी प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक मैं इसी प्रकारसे स्थिर रहूँगा—ऐसा निश्चयकर विष्णुने शिवका अर्चन किया॥ १५॥

हे ब्राह्मणो! जब सदाशिव विष्णुपर प्रसन्न नहीं हुए, तब वे विष्णु विचार करने लगे। इस प्रकार अपने मनमें विचारकर वे नाना प्रकारसे भगवान् शिवकी सेवा

करने लगे, फिर भी लीलाविशारद प्रभु सदाशिव प्रसन्न नहीं हुए॥ १६-१७॥

इसके बाद विष्णु आश्चर्यचकित हो अत्यन्त उत्तम भक्तिसे युक्त होकर शिवके सहस्र नामोंसे प्रेमपूर्वक परमेश्वरकी स्तुति करने लगे। वे एक-एक नाममन्त्रका उच्चारणकर उन्हें एक-एक कमल अर्पित करते हुए शरणागतवत्सल शम्भुकी पूजा करने लगे॥ १८-१९॥

उस समय शिवने विष्णुकी भक्तिकी परीक्षाके लिये उन सहस्रकमलोंमेंसे एक कमलका अपहरण कर लिया। उस समय विष्णुको शिवकी मायासे हुए इस अद्भुत चरित्रका पता न चला। वे एक कमलको कम जानकर उसे ढूँढ़नेमें तत्पर हो गये॥ २०-२१॥

अविचल व्रतधारी विष्णुने उस कमलको प्राप्त करनेके लिये सारी पृथ्वीका भ्रमण किया। परंतु उसके प्राप्त न होनेपर विशुद्ध आत्मावाले उन्होंने अपना एक नेत्र ही अर्पण कर दिया। तब यह देखकर सभी प्रकारके दुःखोंको दूर करनेवाले वे शंकर उनपर प्रसन्न हो गये, वे वहींपर प्रकट हो गये और विष्णुसे यह वचन कहने लगे— ॥ २२-२३॥

शिवजी बोले—हे विष्णो! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, आप मनोवांछित वर माँगिये। मैं आपको मनोभिलषित वर दूँगा, आपके लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है॥ २४॥

सूतजी बोले—शिवजीकी यह बात सुनकर प्रसन्नचित्त भगवान् विष्णु परम हर्षसे युक्त होकर हाथ जोड़कर शिवजीसे कहने लगे— ॥ २५॥

विष्णुजी बोले—हे नाथ! आप तो सर्वान्तर्यामी हैं, अतः मैं आपके सामने अपना मनोरथ क्या कहूँ, फिर भी आपकी आज्ञासे कह रहा हूँ। हे सदाशिव! दैत्योंने सारे संसारको अत्यन्त पीड़ित कर दिया है, इसलिये हम देवताओंको सुख प्राप्त नहीं हो रहा है। हे स्वामिन्! मेरा आयुध दैत्योंको मारनेमें समर्थ नहीं हो पा रहा है। अब मैं क्या करता, कहाँ जाता? आपके अतिरिक्त कोई दूसरा मेरा रक्षक नहीं है, इसलिये हे महेश्वर! मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ २६—२८॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर परमात्मा शिवको नमस्कारकर दैत्योंसे अत्यन्त पीड़ित हुए स्वयं विष्णुजी शिवजीके आगे खड़े हो गये॥ २९॥

विष्णुका यह वचन सुनकर देवाधिदेव महेश्वरने उन्हें अपना महातेजस्वी सुदर्शनचक्र प्रदान किया॥ ३०॥

तब उसे प्राप्तकर भगवान् विष्णुने उस चक्रसे बिना परिश्रमके शीघ्र ही उन महाबली राक्षसोंको विनष्ट कर दिया। इस प्रकार संसारमें शान्ति हुई। देवता सुखी हुए और सुन्दर सुदर्शनचक्र प्राप्तकर अतिप्रसन्न विष्णु भी परम सुखी हो गये॥ ३१-३२॥

ऋषिगण बोले—शंकरजीका वह सहस्रनाम कौन-सा है, जिससे सन्तुष्ट हो शिवजीने विष्णुको सुदर्शनचक्र प्रदान किया, उसे आप कहिये। शिवकी चर्चासे पूर्ण उसके माहात्म्यको आप मुझसे यथार्थरूपसे कहिये, जिसके कारण विष्णुके ऊपर शिवजी कृपालु हुए॥ ३३-३४॥

व्यासजी बोले—उदार चित्तवाले उन मुनियोंके इस वचनको सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके सूतजी यह वचन कहने लगे— ॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें विष्णुसुदर्शनचक्रलाभवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

विष्णुप्रोक्त शिवसहस्रनामस्तोत्र*

सूतजी बोले—हे मुनिवरो! आपलोग सुनें, जिससे महेश्वर सन्तुष्ट हुए थे, उस शिवसहस्रनामस्तोत्रको मैं कह रहा हूँ॥ १॥

भगवान् विष्णुने कहा—१. शिवः—कल्याण-स्वरूप, **२. हरः**—भक्तोंके पाप-ताप हर लेनेवाले, **३. मृडः**—सुखदाता, **४. रुद्रः**—दुःख दूर करनेवाले, **५. पुष्करः**—आकाशस्वरूप, **६. पुष्पलोचनः**—पुष्पके समान खिले हुए नेत्रवाले, **७. अर्थिगम्यः**—प्रार्थियोंको

* शिवसहस्रनामके श्लोक गीताप्रेससे प्रकाशित श्रीशिवमहापुराण (मूल) तथा संक्षिप्त शिवमहापुराण (भाषा)-में उपलब्ध हैं।

प्राप्त होनेवाले, **८. सदाचारः**—श्रेष्ठ आचरणवाले, **९. शर्वः**—संहारकारी, **१०. शम्भुः**—कल्याणनिकेतन, **११. महेश्वरः**—महान् ईश्वर ॥ २॥

१२. चन्द्रापीडः—चन्द्रमाको शिरोभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, **१३. चन्द्रमौलिः**—सिरपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले, **१४. विश्वम्**—सर्वस्वरूप, **१५. विश्वम्भरेश्वरः**—विश्वका भरण-पोषण करनेवाले श्रीविष्णुके भी ईश्वर, **१६. वेदान्तसारसंदोहः**—वेदान्तके सारतत्त्व सच्चिदानन्दमय ब्रह्मकी साकार मूर्ति, **१७. कपाली**—हाथमें कपाल धारण करनेवाले, **१८. नीललोहितः**—(गलेमें) नील और (शेष अंगोंमें) लोहित वर्णवाले ॥ ३ ॥

१९. ध्यानाधारः—ध्यानके आधार, **२०. अपरिच्छेद्यः**—देश, काल और वस्तुकी सीमासे अविभाज्य, **२१. गौरीभर्ता**—गौरी अर्थात् पार्वतीजीके पति, **२२. गणेश्वरः**— प्रमथगणोंके स्वामी, **२३. अष्टमूर्तिः**—जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और यजमान—इन आठ रूपोंवाले, **२४. विश्वमूर्तिः**—अखिल ब्रह्माण्डमय विराट् पुरुष, **२५. त्रिवर्गस्वर्गसाधनः**—धर्म, अर्थ, काम तथा स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले ॥ ४॥

२६. ज्ञानगम्यः—ज्ञानसे ही अनुभवमें आनेके योग्य, **२७. दृढप्रज्ञः**—सुस्थिर बुद्धिवाले, **२८. देवदेवः**—देवताओंके भी आराध्य, **२९. त्रिलोचनः**—सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप तीन नेत्रोंवाले, **३०. वामदेवः**—लोकके विपरीत स्वभाववाले देवता, **३१. महादेवः**—महान् देवता ब्रह्मादिकोंके भी पूजनीय, **३२. पटुः**—सब कुछ करनेमें समर्थ एवं कुशल, **३३. परिवृढः**—स्वामी, **३४. दृढः**—कभी विचलित न होनेवाले ॥ ५ ॥

३५. विश्वरूपः—जगत्स्वरूप, **३६. विरूपाक्षः**—विकट नेत्रवाले, **३७. वागीशः**—वाणीके अधिपति, **३८. शुचिसत्तमः**—पवित्र पुरुषोंमें भी सबसे श्रेष्ठ, **३९. सर्वप्रमाणसंवादी**—सम्पूर्ण प्रमाणोंमें सामंजस्य स्थापित करनेवाले, **४०. वृषाङ्कः**—अपनी ध्वजामें वृषभका चिह्न धारण करनेवाले, **४१. वृषवाहनः**—वृषभ या धर्मको वाहन बनानेवाले ॥ ६ ॥

४२. ईशः—स्वामी या शासक, **४३. पिनाकी**—पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, **४४. खट्वाङ्गी**—खाटके पायेकी आकृतिका एक आयुध धारण करनेवाले, **४५. चित्रवेषः**—विचित्र वेषधारी, **४६. चिरंतनः**—पुराण (अनादि) पुरुषोत्तम, **४७. तमोहरः**—अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाले, **४८. महायोगी**—महान् योगसे सम्पन्न, **४९. गोप्ता**—रक्षक, **५०. ब्रह्मा**—सृष्टिकर्ता, **५१. धूर्जटिः**—जटाके भारसे युक्त ॥ ७ ॥

५२. कालकालः—कालके भी काल, **५३. कृत्तिवासाः**—[गजासुरके] चर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाले, **५४. सुभगः**—सौभाग्यशाली, **५५. प्रणवात्मकः**—ओंकारस्वरूप अथवा प्रणवके वाच्यार्थ, **५६. उन्नधः**—बन्धनरहित, **५७. पुरुषः**—अन्तर्यामी आत्मा, **५८. जुष्यः**—सेवन करनेयोग्य, **५९. दुर्वासाः**—'दुर्वासा' नामक मुनिके रूपमें अवतीर्ण, **६०. पुरशासनः**—तीन मायामय असुरपुरोंका दमन करनेवाले ॥ ८ ॥

६१. दिव्यायुधः—'पाशुपत' आदि दिव्य अस्त्र धारण करनेवाले, **६२. स्कन्दगुरुः**—कार्तिकेयजीके पिता, **६३. परमेष्ठी**—अपनी प्रकृष्ट महिमामें स्थित रहनेवाले, **६४. परात्परः**—कारणके भी कारण, **६५. अनादिमध्यनिधनः**—आदि, मध्य और अन्तसे रहित, **६६. गिरीशः**—कैलासके अधिपति, **६७. गिरिजाधवः**—पार्वतीके पति ॥ ९ ॥

६८. कुबेरबन्धुः—कुबेरको अपना बन्धु (मित्र) माननेवाले, **६९. श्रीकण्ठः**—श्यामसुषमासे सुशोभित कण्ठवाले, **७०. लोकवर्णोत्तमः**—समस्त लोकों और वर्णोंसे श्रेष्ठ, **७१. मृदुः**—कोमल स्वभाववाले, **७२. समाधिवेद्यः**—समाधि अथवा चित्तवृत्तियोंके निरोधसे अनुभवमें आनेयोग्य, **७३. कोदण्डी**—धनुर्धर, **७४. नीलकण्ठः**—कण्ठमें हालाहल विषका नील चिह्न धारण करनेवाले, **७५. परश्वधी**—परशुधारी ॥ १० ॥

७६. विशालाक्षः—बड़े-बड़े नेत्रोंवाले, **७७. मृगव्याधः**—वनमें व्याध या किरातके रूपमें प्रकट हो शूकरके ऊपर बाण चलानेवाले, **७८. सुरेशः**—देवताओंके स्वामी, **७९. सूर्यतापनः**— सूर्यको भी दण्ड देनेवाले, **८०. धर्मधाम**—धर्मके आश्रय, **८१. क्षमाक्षेत्रम्**—क्षमाके उत्पत्ति-स्थान, **८२. भगवान्**—सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान तथा वैराग्यके आश्रय, **८३. भगनेत्रभित्**—भगदेवताके नेत्रका भेदन करनेवाले ॥ ११ ॥

८४. **उग्रः**—संहारकालमें भयंकर रूप धारण करनेवाले, ८५. **पशुपतिः**—मायारूपमें बँधे हुए पाशबद्ध पशुओं (जीवों)-को तत्त्वज्ञानके द्वारा मुक्त करके यथार्थरूपसे उनका पालन करनेवाले, ८६. **तार्क्ष्यः**—गरुड़रूप, ८७. **प्रियभक्तः**—भक्तोंसे प्रेम करनेवाले, ८८. **परंतपः**—शत्रुता रखनेवालोंको संताप देनेवाले, ८९. **दाता**—दानी, ९०. **दयाकरः**—दयानिधान अथवा कृपा करनेवाले, ९१. **दक्षः**—कुशल, ९२. **कपर्दी**—जटाजूटधारी, ९३. **कामशासनः**—कामदेवका दमन करनेवाले ॥ १२ ॥

९४. **श्मशाननिलयः**—श्मशानवासी, ९५. **सूक्ष्मः**—इन्द्रियातीत एवं सर्वव्यापी, ९६. **श्मशानस्थः**—श्मशानभूमिमें विश्राम करनेवाले, ९७. **महेश्वरः**—महान् ईश्वर या परमेश्वर, ९८. **लोककर्ता**—जगत्‌की सृष्टि करनेवाले, ९९. **मृगपतिः**—मृगके पालक या पशुपति, १००. **महाकर्ता**—विराट् ब्रह्माण्डकी सृष्टि करनेके समय महान् कर्तृत्वसे सम्पन्न, १०१. **महौषधिः**—भवरोगका निवारण करनेके लिये महान् ओषधिरूप ॥ १३ ॥

१०२. **उत्तरः**—संसार-सागरसे पार उतारनेवाले, १०३. **गोपतिः**—स्वर्ग, पृथ्वी, पशु, वाणी, किरण, इन्द्रिय और जलके स्वामी, १०४. **गोप्ता**—रक्षक, १०५. **ज्ञानगम्यः**—तत्त्वज्ञानके द्वारा ज्ञानस्वरूपसे ही जाननेयोग्य, १०६. **पुरातनः**—सबसे पुराने, १०७. **नीतिः**—न्यायस्वरूप, १०८. **सुनीतिः**—उत्तम नीतिवाले, १०९. **शुद्धात्मा**—विशुद्ध आत्मस्वरूप, ११०. **सोमः**—उमासहित, १११. **सोमरतः**—चन्द्रमापर प्रेम रखनेवाले, ११२. **सुखी**—आत्मानन्दसे परिपूर्ण ॥ १४ ॥

११३. **सोमपः**—सोमपान करनेवाले अथवा सोमनाथरूपसे चन्द्रमाके पालक, ११४. **अमृतपः**—समाधिके द्वारा स्वरूपभूत अमृतका आस्वादन करनेवाले, ११५. **सौम्यः**—भक्तोंके लिये सौम्यरूपधारी, ११६. **महातेजाः**— महान् तेजसे सम्पन्न, ११७. **महाद्युतिः**—परमकान्तिमान्, ११८. **तेजोमयः**—प्रकाशस्वरूप, ११९. **अमृतमयः**—अमृतरूप, १२०. **अन्नमयः**—अन्नरूप, १२१. **सुधापतिः**—अमृतके पालक ॥ १५ ॥

१२२. **अजातशत्रुः**—जिनके मनमें कभी किसीके प्रति शत्रुभाव नहीं पैदा हुआ, ऐसे समदर्शी, १२३. **आलोकः**—प्रकाशस्वरूप, १२४. **सम्भाव्यः**—सम्माननीय, १२५. **हव्यवाहनः**—अग्निस्वरूप, १२६. **लोककरः**—जगत्‌के स्रष्टा, १२७. **वेदकरः**—वेदोंको प्रकट करनेवाले, १२८. **सूत्रकारः**—ढक्कानादके रूपमें चतुर्दश माहेश्वर सूत्रोंके प्रणेता, १२९. **सनातनः**—नित्यस्वरूप ॥ १६ ॥

१३०. **महर्षिकपिलाचार्यः**—सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवान् कपिलाचार्य, १३१. **विश्वदीप्तिः**—अपनी प्रभासे सबको प्रकाशित करनेवाले, १३२. **त्रिलोचनः**—तीनों लोकोंके द्रष्टा, १३३. **पिनाकपाणिः**—हाथमें पिनाक नामक धनुष धारण करनेवाले, १३४. **भूदेवः**—पृथ्वीके देवता—ब्राह्मण अथवा पार्थिवलिंगरूप, १३५. **स्वस्तिदः**—कल्याणदाता, १३६. **स्वस्तिकृत्**—कल्याणकारी, १३७. **सुधीः**—विशुद्ध बुद्धिवाले ॥ १७ ॥

१३८. **धातृधामा**—विश्वका धारण-पोषण करनेमें समर्थ तेजवाले, १३९. **धामकरः**—तेजकी सृष्टि करनेवाले, १४०. **सर्वगः**—सर्वव्यापी, १४१. **सर्वगोचरः**—सबमें व्याप्त, १४२. **ब्रह्मसृक्**—ब्रह्माजीके उत्पादक, १४३. **विश्वसृक्**—जगत्‌के स्रष्टा, १४४. **सर्गः**—सृष्टिस्वरूप, १४५. **कर्णिकारप्रियः**—कर्णिकारके फूलको पसन्द करनेवाले, १४६. **कविः**—त्रिकालदर्शी ॥ १८ ॥

१४७. **शाखः**—कार्तिकेयके छोटे भाई शाखस्वरूप, १४८. **विशाखः**—स्कन्दके छोटे भाई विशाखस्वरूप अथवा विशाख नामक ऋषि, १४९. **गोशाखः**—वेदवाणीकी शाखाओंका विस्तार करनेवाले, १५०. **शिवः**—मंगलमय, १५१. **भिषगनुत्तमः**—भवरोगका निवारण करनेवाले वैद्यों (ज्ञानियों)-में सर्वश्रेष्ठ, १५२. **गङ्गाप्लवोदकः**—गंगाके प्रवाहरूप जलको सिरपर धारण करनेवाले, १५३. **भव्यः**—कल्याणस्वरूप, १५४. **पुष्कलः**—पूर्णतम अथवा व्यापक, १५५. **स्थपतिः**—ब्रह्माण्डरूपी भवनके निर्माता (थवई), १५६. **स्थिरः**—अचंचल अथवा स्थाणुरूप ॥ १९ ॥

१५७. **विजितात्मा**—मनको वशमें रखनेवाले, १५८. **विधेयात्मा**—शरीर, मन और इन्द्रियोंसे अपनी इच्छाके अनुसार काम लेनेवाले,१५९. **भूतवाहनसारथिः**—पांचभौतिक रथ (शरीर)-का संचालन करनेवाले बुद्धिरूप सारथि, १६०. **सगणः**—प्रमथगणोंके

साथ रहनेवाले, १६१. **गणकायः**—गणस्वरूप, १६२. **सुकीर्तिः**—उत्तम कीर्तिवाले, १६३. **छिन्नसंशयः**—संशयोंको काट देनेवाले॥ २०॥

१६४. **कामदेवः**—मनुष्योंद्वारा अभिलषित समस्त कामनाओंके अधिष्ठाता परमदेव, १६५. **कामपालः**—सकाम भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, १६६. **भस्मोद्धूलितविग्रहः**—अपने श्रीअंगोंमें भस्म रमानेवाले, १६७. **भस्मप्रियः**—भस्मके प्रेमी, १६८. **भस्मशायी**—भस्मपर शयन करनेवाले, १६९. **कामी**—अपने प्रिय भक्तोंको चाहनेवाले, १७०. **कान्तः**—परम कमनीय प्राणवल्लभरूप, १७१. **कृतागमः**—समस्त तन्त्रशास्त्रोंके रचयिता॥ २१॥

१७२. **समावर्तः**—संसारचक्रको भलीभाँति घुमानेवाले, १७३. **अनिवृत्तात्मा**—सर्वत्र विद्यमान होनेके कारण जिनका आत्मा कहींसे भी हटा नहीं है, ऐसे, १७४. **धर्मपुञ्जः**—धर्म या पुण्यकी राशि, १७५. **सदाशिवः**—निरन्तर कल्याणकारी, १७६. **अकल्मषः**—पापरहित, १७७. **चतुर्बाहुः**—चार भुजाधारी, १७८. **दुरावासः**—जिन्हें योगीजन भी बड़ी कठिनाईसे अपने हृदयमन्दिरमें बसा पाते हैं, ऐसे, १७९. **दुरासदः**—परम दुर्जय॥ २२॥

१८०. **दुर्लभः**—भक्तिहीन पुरुषोंको कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, १८१. **दुर्गमः**—जिनके निकट पहुँचना किसीके लिये भी कठिन है, ऐसे, १८२. **दुर्गः**—पाप-तापसे रक्षा करनेके लिये दुर्गरूप अथवा दुर्ज्ञेय, १८३. **सर्वायुधविशारदः**—सम्पूर्ण अस्त्रोंके प्रयोगकी कलामें कुशल, १८४. **अध्यात्मयोगनिलयः**—अध्यात्मयोगमें स्थित, १८५. **सुतन्तुः**—सुन्दर विस्तृत जगत्-रूप तन्तुवाले, १८६. **तन्तुवर्धनः**—जगत्-रूप तन्तुको बढ़ानेवाले॥ २३॥

१८७. **शुभाङ्गः**—सुन्दर अंगोंवाले, १८८. **लोकसारङ्गः**—लोकसारग्राही, १८९. **जगदीशः**—जगत्के स्वामी, १९०. **जनार्दनः**—भक्तजनोंकी याचनाके आलम्बन, १९१. **भस्मशुद्धिकरः**—भस्मसे शुद्धिका सम्पादन करनेवाले, १९२. **मेरुः**—सुमेरुपर्वतके समान केन्द्ररूप, १९३. **ओजस्वी**—तेज और बलसे सम्पन्न, १९४. **शुद्धविग्रहः**—निर्मल शरीरवाले॥ २४॥

१९५. **असाध्यः**—साधन-भजनसे दूर रहनेवाले लोगोंके लिये अलभ्य, १९६. **साधुसाध्यः**—साधन-भजनपरायण सत्पुरुषोंके लिये सुलभ, १९७. **भृत्यमर्कटरूपधृक्**—श्रीरामके सेवक वानर हनुमान्का रूप धारण करनेवाले, १९८. **हिरण्यरेताः**—अग्निस्वरूप अथवा सुवर्णमय वीर्यवाले, १९९. **पौराणः**—पुराणोंद्वारा प्रतिपादित, २००. **रिपुजीवहरः**—शत्रुओंके प्राण हर लेनेवाले, २०१. **बली**—बलशाली॥ २५॥

२०२. **महाह्रदः**—परमानन्दके महान् सरोवर, २०३. **महागर्तः**—महान् आकाशरूप, २०४. **सिद्धवृन्दारवन्दितः**—सिद्धों और देवताओंद्वारा वन्दित, २०५. **व्याघ्रचर्माम्बरः**—व्याघ्रचर्मको वस्त्रके समान धारण करनेवाले, २०६. **व्याली**—सर्पोंको आभूषणकी भाँति धारण करनेवाले, २०७. **महाभूतः**—त्रिकालमें भी कभी नष्ट न होनेवाले महाभूतस्वरूप, २०८. **महानिधिः**—सबके महान् निवासस्थान॥ २६॥

२०९. **अमृताशः**—जिनकी आशा कभी विफल न हो, ऐसे अमोघसंकल्प, २१०. **अमृतवपुः**—जिनका कलेवर कभी नष्ट न हो, ऐसे—नित्यविग्रह, २११. **पाञ्चजन्यः**—पांचजन्य नामक शंखस्वरूप, २१२. **प्रभञ्जनः**—वायुस्वरूप अथवा संहारकारी, २१३. **पञ्चविंशतितत्त्वस्थः**—प्रकृति, महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, त्वक्, वाक्, पाणि, पायु, पाद, उपस्थ, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन चौबीस जड तत्त्वोंसहित पचीसवें चेतनतत्त्व पुरुषमें व्याप्त, २१४. **पारिजातः**—याचकोंकी इच्छा पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षरूप, २१५. **परावरः**—कारण-कार्यरूप॥ २७॥

२१६. **सुलभः**—नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेवाले एकनिष्ठ श्रद्धालु भक्तको सुगमतासे प्राप्त होनेवाले, २१७. **सुव्रतः**—उत्तम व्रतधारी, २१८. **शूरः**—शौर्य-सम्पन्न, २१९. **ब्रह्मवेदनिधिः**—ब्रह्मा और वेदके प्रादुर्भावके स्थान, २२०. **निधिः**—जगत्-रूपी रत्नके उत्पत्तिस्थान, २२१ **वर्णाश्रमगुरुः**—वर्णों और आश्रमोंके गुरु (उपदेष्टा), २२२. **वर्णी**—ब्रह्मचारी, २२३. **शत्रुजित्**—अन्धकासुर आदि शत्रुओंको जीतनेवाले, २२४. **शत्रुतापनः**—शत्रुओंको संताप देनेवाले॥ २८॥

२२५. **आश्रमः**—सबके विश्रामस्थान, २२६. **क्षपणः**—जन्म-मरणके कष्टका मूलोच्छेद करनेवाले, २२७. **क्षामः**—प्रलयकालमें प्रजाको क्षीण करनेवाले, २२८. **ज्ञानवान्**—ज्ञानी, २२९. **अचलेश्वरः**—पर्वतों अथवा स्थावर पदार्थोंके स्वामी, २३०. **प्रमाणभूतः**—नित्यसिद्ध प्रमाणरूप, २३१. **दुर्ज्ञेयः**—कठिनतासे जाननेयोग्य, २३२. **सुपर्णः**—वेदमय सुन्दर पंखवाले, गरुड़रूप, २३३. **वायुवाहनः**—अपने भयसे वायुको प्रवाहित करनेवाले॥ २९॥

२३४. **धनुर्धरः**—पिनाकधारी, २३५. **धनुर्वेदः**—धनुर्वेदके ज्ञाता, २३६. **गुणराशिः**—अनन्त कल्याणमय गुणोंकी राशि, २३७. **गुणाकरः**—सद्‌गुणोंकी खान, २३८. **सत्यः**—सत्यस्वरूप, २३९. **सत्यपरः**—सत्य-परायण, २४०. **अदीनः**—दीनतासे रहित—उदार, २४१. **धर्माङ्गः**—धर्ममय विग्रहवाले, २४२. **धर्मसाधनः**—धर्मका अनुष्ठान करनेवाले॥ ३०॥

२४३. **अनन्तदृष्टिः**—असीमित दृष्टिवाले, २४४. **आनन्दः**—परमानन्दमय, २४५. **दण्डः**—दुष्टोंको दण्ड देनेवाले अथवा दण्डस्वरूप, २४६. **दमयिता**—दुर्दान्त दानवोंका दमन करनेवाले, २४७. **दमः**—दमनस्वरूप, २४८. **अभिवाद्यः**—प्रणाम करनेयोग्य, २४९. **महा-मायः**—मायावियोंको भी मोहनेवाले महामायावी, २५०. **विश्वकर्मविशारदः**—संसारकी सृष्टि करनेमें कुशल॥ ३१॥

२५१. **वीतरागः**—पूर्णतया विरक्त, २५२. **विनीता-त्मा**—मनसे विनयशील अथवा मनको वशमें रखनेवाले, २५३. **तपस्वी**—तपस्यापरायण, २५४. **भूतभावनः**—सम्पूर्ण भूतोंके उत्पादक एवं रक्षक, २५५. **उन्मत्तवेषः**—पागलोंके समान वेष धारण करनेवाले, २५६. **प्रच्छन्नः**—मायाके पर्देमें छिपे हुए, २५७. **जितकामः**—कामविजयी, २५८. **अजितप्रियः**—भगवान् विष्णुके प्रेमी॥ ३२॥

२५९. **कल्याणप्रकृतिः**—कल्याणकारी स्वभाव-वाले, २६०. **कल्पः**—समर्थ, २६१. **सर्वलोकप्रजा-पतिः**—सम्पूर्ण लोकोंकी प्रजाके पालक, २६२. **तरस्वी**—वेगशाली, २६३. **तारकः**—उद्धारक, २६४. **धीमान्**—विशुद्ध बुद्धिसे युक्त, २६५. **प्रधानः**—सबसे श्रेष्ठ, २६६. **प्रभुः**—सर्वसमर्थ, २६७. **अव्ययः**—अविनाशी॥ ३३॥

२६८. **लोकपालः**—समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले, २६९. **अन्तर्हितात्मा**—अन्तर्यामी आत्मा अथवा अदृश्य स्वरूपवाले, २७०. **कल्पादिः**—कल्पके आदि-कारण, २७१. **कमलेक्षणः**—कमलके समान नेत्रवाले, २७२. **वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः**—वेदों और शास्त्रोंके अर्थ एवं तत्त्वको जाननेवाले, २७३. **अनियमः**—नियन्त्रणरहित, २७४. **नियताश्रयः**—सबके सुनिश्चित आश्रयस्थान॥ ३४॥

२७५. **चन्द्रः**—चन्द्रमारूपसे आह्लादकारी, २७६. **सूर्यः**—सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत सूर्य, २७७. **शनिः**—शनैश्चररूप, २७८. **केतुः**— केतु नामक ग्रहस्वरूप, २७९. **वराङ्गः**—सुन्दर शरीरवाले, २८०. **विद्रुमच्छविः**—मूँगेकी-सी लाल कान्तिवाले, २८१. **भक्तिवश्यः**—भक्तिके द्वारा भक्तके वशमें होनेवाले, २८२. **परब्रह्म**—परमात्मा, २८३. **मृगबाणार्पणः**—मृगरूपधारी यज्ञपर बाण चलानेवाले, २८४. **अनघः**—पापरहित॥ ३५॥

२८५. **अद्रिः**—कैलास आदि पर्वतस्वरूप, २८६. **अद्र्यालयः**—कैलास और मन्दर आदि पर्वतोंपर निवास करनेवाले, २८७. **कान्तः**—सबके प्रियतम, २८८. **परमात्मा**—परब्रह्म परमेश्वर, २८९. **जगद्‌गुरुः**—समस्त संसारके गुरु, २९०. **सर्वकर्मालयः**—सम्पूर्ण कर्मोंके आश्रयस्थान, २९१. **तुष्टः**—सदा प्रसन्न, २९२. **मङ्गल्यः**—मंगलकारी, २९३. **मङ्गलावृतः**—मंगल-कारिणी शक्तिसे संयुक्त॥ ३६॥

२९४. **महातपाः**—महान् तपस्वी, २९५. **दीर्घ-तपाः**—दीर्घकालतक तप करनेवाले, २९६. **स्थविष्ठः**—अत्यन्त स्थूल, २९७. **स्थविरो ध्रुवः**—अति प्राचीन एवं अत्यन्त स्थिर, २९८. **अहःसंवत्सरः**—दिन एवं संवत्सर आदि कालरूपसे स्थित, अंश-कालस्वरूप, २९९. **व्याप्तिः**—व्यापकतास्वरूप, ३००. **प्रमाणम्**—प्रत्यक्षादि प्रमाणस्वरूप, ३०१ **परमं तपः**—उत्कृष्ट तपस्यास्वरूप॥ ३७॥

३०२. **संवत्सरकरः**—संवत्सर आदि कालविभागके उत्पादक, ३०३. **मन्त्रप्रत्ययः**—वेद आदि मन्त्रोंसे प्रतीत (प्रत्यक्ष) होनेयोग्य, ३०४. **सर्वदर्शनः**—सबके साक्षी, ३०५. **अजः**—अजन्मा, ३०६. **सर्वेश्वरः**—सबके

शासक, ३०७. **सिद्धः**—सिद्धियोंके आश्रय, ३०८. **महारेताः**—श्रेष्ठ वीर्यवाले, ३०९. **महाबलः**—प्रमथगणोंकी महती सेनासे सम्पन्न॥ ३८॥

३१०. **योगी योग्यः**—सुयोग्य योगी, ३११. **महातेजाः**—महान् तेजसे सम्पन्न, ३१२. **सिद्धिः**—समस्त साधनोंके फल, ३१३. **सर्वादिः**—सब भूतोंके आदिकारण, ३१४. **अग्रहः**—इन्द्रियोंकी ग्रहणशक्तिके अविषय, ३१५. **वसुः**—सब भूतोंके वासस्थान, ३१६. **वसुमनाः**—उदार मनवाले, ३१७. **सत्यः**—सत्यस्वरूप, ३१८. **सर्वपापहरो हरः**—समस्त पापोंका अपहरण करनेके कारण हर नामसे प्रसिद्ध ॥ ३९ ॥

३१९. **सुकीर्तिशोभनः**—उत्तम कीर्तिसे सुशोभित होनेवाले, ३२०. **श्रीमान्**—विभूतिस्वरूपा उमासे सम्पन्न, ३२१. **वेदाङ्गः**—वेदरूप अंगोंवाले, ३२२. **वेदविन्मुनिः**—वेदोंका विचार करनेवाले मननशील मुनि, ३२३. **भ्राजिष्णुः**—एकरस प्रकाशस्वरूप, ३२४. **भोजनम्**—ज्ञानियोंद्वारा भोगनेयोग्य अमृतस्वरूप, ३२५. **भोक्ता**—पुरुषरूपसे उपभोग करनेवाले, ३२६. **लोकनाथः**—भगवान् विश्वनाथ, ३२७. **दुराधरः**—अजितेन्द्रिय पुरुषोंद्वारा जिनकी आराधना अत्यन्त कठिन है, ऐसे॥ ४०॥

३२८. **अमृतः शाश्वतः**—सनातन अमृतस्वरूप, ३२९. **शान्तः**—शान्तिमय, ३३०. **बाणहस्तः प्रतापवान्**—हाथमें बाण धारण करनेवाले प्रतापी वीर, ३३१. **कमण्डलुधरः**—कमण्डलु धारण करनेवाले, ३३२. **धन्वी**—पिनाकधारी, ३३३. **अवाङ्मनसगोचरः**—मन और वाणीके अविषय॥ ४१॥

३३४. **अतीन्द्रियो महामायः**—इन्द्रियातीत एवं महामायावी, ३३५. **सर्वावासः**—सबके वासस्थान, ३३६. **चतुष्पथः**—चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिके एकमात्र मार्ग, ३३७. **कालयोगी**—प्रलयके समय सबको कालसे संयुक्त करनेवाले, ३३८. **महानादः**—गम्भीर शब्द करनेवाले अथवा अनाहत नादरूप, ३३९. **महोत्साहो महाबलः**—महान् उत्साह और बलसे सम्पन्न॥ ४२॥

३४०. **महाबुद्धिः**—श्रेष्ठ बुद्धिवाले, ३४१. **महावीर्यः**—अनन्त पराक्रमी, ३४२. **भूतचारी**—भूतगणोंके साथ विचरनेवाले, ३४३. **पुरंदरः**—त्रिपुरसंहारक, ३४४. **निशाचरः**—रात्रिमें विचरण करनेवाले, ३४५. **प्रेतचारी**—प्रेतोंके साथ भ्रमण करनेवाले, ३४६. **महाशक्तिर्महाद्युतिः**—अनन्तशक्ति एवं श्रेष्ठ कान्तिसे सम्पन्न॥ ४३॥

३४७. **अनिर्देश्यवपुः**—अनिर्वचनीय स्वरूपवाले, ३४८. **श्रीमान्**—ऐश्वर्यवान्, ३४९. **सर्वाचार्यमनोगतिः**—सबके लिये अविचार्य मनोगतिवाले, ३५०. **बहुश्रुतः**—बहुज्ञ अथवा सर्वज्ञ, ३५१. **अमहामायः**—बड़ी-से-बड़ी माया भी जिनपर प्रभाव नहीं डाल सकती ऐसे, ३५२. **नियतात्मा**—मनको वशमें रखनेवाले, ३५३. **ध्रुवोऽध्रुवः**—ध्रुव (नित्य कारण) और अध्रुव (अनित्य-कार्य)-रूप ॥ ४४॥

३५४. **ओजस्तेजोद्युतिधरः**—ओज (प्राण और बल), तेज (शौर्य आदि गुण) तथा ज्ञानकी दीप्तिको धारण करनेवाले, ३५५. **जनकः**—सबके उत्पादक, ३५६. **सर्वशासनः**—सबके शासक, ३५७. **नृत्यप्रियः**—नृत्यके प्रेमी, ३५८. **नित्यनृत्यः**—प्रतिदिन ताण्डव नृत्य करनेवाले, ३५९. **प्रकाशात्मा**—प्रकाशस्वरूप, ३६०. **प्रकाशकः**—सूर्य आदिको भी प्रकाश देनेवाले ॥ ४५॥

३६१. **स्पष्टाक्षरः**—ओंकाररूप स्पष्ट अक्षरवाले, ३६२. **बुधः**—ज्ञानवान्, ३६३. **मन्त्रः**—ऋक्, साम और यजुर्वेदके मन्त्रस्वरूप, ३६४. **समानः**—सबके प्रति समान भाव रखनेवाले, ३६५. **सारसम्प्लवः**—संसारसागरसे पार होनेके लिये नौकारूप, ३६६. **युगादिकृद्युगावर्तः**—युगादिका आरम्भ करनेवाले तथा चारों युगोंको चक्रकी तरह घुमानेवाले, ३६७. **गम्भीरः**—गाम्भीर्यसे युक्त, ३६८. **वृषवाहनः**—नन्दी नामक वृषभपर सवार होनेवाले ॥ ४६॥

३६९. **इष्टः**—परमानन्दस्वरूप होनेसे सर्वप्रिय, ३७०. **अविशिष्टः**—सम्पूर्ण विशेषणोंसे रहित, ३७१. **शिष्टेष्टः**—शिष्ट पुरुषोंके इष्टदेव, ३७२. **सुलभः**—अनन्यचित्तसे निरन्तर स्मरण करनेवाले भक्तोंके लिये सुगमतासे प्राप्त होनेयोग्य, ३७३. **सारशोधनः**—सार-तत्त्वकी खोज करनेवाले, ३७४. **तीर्थरूपः**—तीर्थस्वरूप, ३७५. **तीर्थनामा**—तीर्थनामधारी अथवा जिनका नाम भवसागरसे पार लगानेवाला है, ऐसे, ३७६. **तीर्थदृश्यः**—तीर्थसेवनसे अपने स्वरूपका दर्शन करानेवाले अथवा

गुरु-कृपासे प्रत्यक्ष होनेवाले, **३७७. तीर्थदः**—चरणोदक स्वरूप तीर्थको देनेवाले॥ ४७॥

३७८. अपांनिधिः—जलके निधान समुद्ररूप, **३७९. अधिष्ठानम्**—उपादान-कारणरूपसे सब भूतोंके आश्रय अथवा जगत्-रूप प्रपंचके अधिष्ठान, **३८०. दुर्जयः**—जिनको जीतना कठिन है, ऐसे, **३८१. जयकालवित्**—विजयके अवसरको समझनेवाले, **३८२. प्रतिष्ठितः**—अपनी महिमामें स्थित, **३८३. प्रमाणज्ञः**—प्रमाणोंके ज्ञाता, **३८४. हिरण्यकवचः**—सुवर्णमय कवच धारण करनेवाले, **३८५. हरिः**—श्रीहरिस्वरूप॥ ४८॥

३८६. विमोचनः—संसारबन्धनसे सदाके लिये छुड़ा देनेवाले, **३८७. सुरगणः**—देवसमुदायरूप, **३८८. विद्येशः**—सम्पूर्ण विद्याओंके स्वामी, **३८९. विन्दुसंश्रयः**—बिन्दुरूप प्रणवके आश्रय, **३९०. बालरूपः**—बालकका रूप धारण करनेवाले, **३९१. अबलोन्मत्तः**—बलसे उन्मत्त न होनेवाले, **३९२. अविकर्ता**—विकाररहित, **३९३. गहनः**—दुर्बोधस्वरूप या अगम्य, **३९४. गुहः**—मायासे अपने यथार्थ स्वरूपको छिपाये रखनेवाले॥ ४९॥

३९५. करणम्—संसारकी उत्पत्तिके सबसे बड़े साधन, **३९६. कारणम्**—जगत्के उपादान और निमित्त कारण, **३९७. कर्ता**—सबके रचयिता, **३९८. सर्वबन्धविमोचनः**—सम्पूर्ण बन्धनोंसे छुड़ानेवाले, **३९९. व्यवसायः**—निश्चयात्मक ज्ञानस्वरूप, **४००. व्यवस्थानः**—सम्पूर्ण जगत्की व्यवस्था करनेवाले, **४०१. स्थानदः**—ध्रुव आदि भक्तोंको अविचल स्थिति प्रदान कर देनेवाले, **४०२. जगदादिजः**—हिरण्यगर्भरूपसे जगत्के आदिमें प्रकट होनेवाले॥ ५०॥

४०३. गुरुदः—श्रेष्ठ वस्तु प्रदान करनेवाले अथवा जिज्ञासुओंको गुरुकी प्राप्ति करानेवाले, **४०४. ललितः**—सुन्दर स्वरूपवाले, **४०५. अभेदः**—भेदरहित, **४०६. भावात्मात्मनि संस्थितः**—सत्स्वरूप, आत्मामें प्रतिष्ठित, **४०७. वीरेश्वरः**—वीरशिरोमणि, **४०८. वीरभद्रः**—वीरभद्र नामक गणाध्यक्ष, **४०९. वीरासनविधिः**—वीरासनसे बैठनेवाले, **४१०. विराट्**—अखिलब्रह्माण्डस्वरूप॥ ५१॥

४११ वीरचूडामणिः—वीरोंमें श्रेष्ठ, **४१२. वेत्ता**—विद्वान्, **४१३. चिदानन्दः**—विज्ञानानन्दस्वरूप, **४१४. नदीधरः**—मस्तकपर गंगाजीको धारण करनेवाले, **४१५. आज्ञाधारः**—आज्ञाका पालन करनेवाले, **४१६. त्रिशूली**—त्रिशूलधारी, **४१७. शिपिविष्टः**—तेजोमयी किरणोंसे व्याप्त, **४१८. शिवालयः**—भगवती शिवाके आश्रय॥ ५२॥

४१९. वालखिल्यः—वालखिल्य ऋषिरूप, **४२०. महाचापः**—महान् धनुर्धर, **४२१. तिग्मांशुः**—सूर्यरूप, **४२२. बधिरः**—लौकिक विषयोंकी चर्चा न सुननेवाले, **४२३. खगः**—आकाशचारी, **४२४. अभिरामः**—परम सुन्दर, **४२५. सुशरणः**—सबके लिये सुन्दर आश्रयरूप, **४२६. सुब्रह्मण्यः**—ब्राह्मणोंके परम हितैषी, **४२७. सुधापतिः**—अमृतकलशके रक्षक॥ ५३॥

४२८. मघवान् कौशिकः—कुशिकवंशीय इन्द्रस्वरूप, **४२९. गोमान्**—प्रकाशकिरणोंसे युक्त, **४३०. विरामः**—समस्त प्राणियोंके लयके स्थान, **४३१ सर्वसाधनः**—समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाले, **४३२. ललाटाक्षः**—ललाटमें तीसरा नेत्र धारण करनेवाले, **४३३. विश्वदेहः**—जगत्स्वरूप, **४३४. सारः**—सारतत्त्वरूप, **४३५. संसारचक्रभृत्**—संसारचक्रको धारण करनेवाले॥ ५४॥

४३६. अमोघदण्डः—जिनका दण्ड कभी व्यर्थ नहीं जाता है, ऐसे, **४३७. मध्यस्थः**—उदासीन, **४३८. हिरण्यः**—सुवर्ण अथवा तेजःस्वरूप, **४३९. ब्रह्मवर्चसी**—ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, **४४०. परमार्थः**—मोक्षरूप उत्कृष्ट अर्थकी प्राप्ति करानेवाले, **४४१ परो मायी**—महामायावी, **४४२. शम्बरः**—कल्याणप्रद, **४४३. व्याघ्रलोचनः**—व्याघ्रके समान भयानक नेत्रोंवाले॥ ५५॥

४४४. रुचिः—दीप्तिरूप, **४४५. विरञ्चिः**—ब्रह्मस्वरूप, **४४६. स्वर्बन्धुः**—स्वर्लोकमें बन्धुके समान सुखद, **४४७. वाचस्पतिः**—वाणीके अधिपति, **४४८. अहर्पतिः**—दिनके स्वामी सूर्यरूप, **४४९. रविः**—समस्त रसोंका शोषण करनेवाले, **४५०. विरोचनः**—विविध प्रकारसे प्रकाश फैलानेवाले, **४५१. स्कन्दः**—स्वामी कार्तिकेयरूप, **४५२. शास्ता वैवस्वतो यमः**—सबपर शासन करनेवाले सूर्यकुमार यम॥ ५६॥

४५३. **युक्तिरुन्नतकीर्तिः**—अष्टांगयोगस्वरूप तथा ऊर्ध्वलोकमें फैली हुई कीर्तिसे युक्त, ४५४. **सानुरागः**—भक्तजनोंपर प्रेम रखनेवाले, ४५५. **परञ्जयः**—दूसरोंपर विजय पानेवाले, ४५६. **कैलासाधिपतिः**—कैलासके स्वामी, ४५७. **कान्तः**—कमनीय अथवा कान्तिमान् , ४५८. **सविता**—समस्त जगत्को उत्पन्न करनेवाले, ४५९. **रविलोचनः**—सूर्यरूप नेत्रवाले ॥ ५७ ॥

४६०. **विद्वत्तमः**—विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ, परम विद्वान्, ४६१. **वीतभयः**—सब प्रकारके भयसे रहित, ४६२. **विश्वभर्ता**—जगत्का भरण-पोषण करनेवाले, ४६३. **अनिवारितः**—जिन्हें कोई रोक नहीं सकता, ऐसे, ४६४. **नित्यः**—सत्यस्वरूप, ४६५. **नियतकल्याणः**—सुनिश्चितरूपसे कल्याणकारी, ४६६. **पुण्यश्रवणकीर्तनः**—जिनके नाम, गुण, महिमा और स्वरूपके श्रवण तथा कीर्तन परम पावन हैं, ऐसे ॥ ५८ ॥

४६७. **दूरश्रवाः**—सर्वव्यापी होनेके कारण दूरकी बात भी सुन लेनेवाले, ४६८. **विश्वसहः**—भक्तजनोंके सब अपराधोंको कृपापूर्वक सह लेनेवाले, ४६९. **ध्येयः**—ध्यान करनेयोग्य, ४७०. **दुःस्वप्ननाशनः**—चिन्तन करनेमात्रसे बुरे स्वप्नोंका नाश करनेवाले, ४७१. **उत्तारणः**—संसारसागरसे पार उतारनेवाले, ४७२. **दुष्कृतिहा**—पापोंका नाश करनेवाले, ४७३. **विज्ञेयः**—जाननेके योग्य, ४७४. **दुस्सहः**—जिनके वेगको सहन करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है, ऐसे, ४७५. **अभवः**—संसारबन्धनसे रहित अथवा अजन्मा ॥ ५९ ॥

४७६. **अनादिः**—जिनका कोई आदि नहीं है, ऐसे सबके कारणस्वरूप, ४७७. **भूर्भुवो लक्ष्मीः**—भूर्लोक और भुवर्लोककी शोभा, ४७८. **किरीटी**—मुकुटधारी, ४७९. **त्रिदशाधिपः**—देवताओंके स्वामी, ४८०. **विश्वगोप्ता**—जगत्के रक्षक, ४८१. **विश्वकर्ता**—संसारकी सृष्टि करनेवाले, ४८२. **सुवीरः**—श्रेष्ठ वीर, ४८३. **रुचिराङ्गदः**—सुन्दर बाजूबन्द धारण करनेवाले ॥ ६० ॥

४८४. **जननः**—प्राणिमात्रको जन्म देनेवाले, ४८५. **जनजन्मादिः**—जन्म लेनेवालोंके जन्मके मूल कारण, ४८६. **प्रीतिमान्**—प्रसन्न, ४८७. **नीतिमान्**—सदा नीतिपरायण, ४८८. **धवः**—सबके स्वामी, ४८९. **वसिष्ठः**—मन और इन्द्रियोंको अत्यन्त वशमें रखनेवाले अथवा वसिष्ठ ऋषिरूप, ४९०. **कश्यपः**—द्रष्टा अथवा कश्यप मुनिरूप, ४९१. **भानुः**—प्रकाशमान अथवा सूर्यरूप, ४९२. **भीमः**—दुष्टोंको भय देनेवाले, ४९३. **भीमपराक्रमः**—अतिशय भयदायक पराक्रमसे युक्त ॥ ६१ ॥

४९४. **प्रणवः**—ओंकारस्वरूप, ४९५. **सत्पथाचारः**—सत्पुरुषोंके मार्गपर चलनेवाले, ४९६. **महाकोशः**—अन्नमयादि पाँचों कोशोंको अपने भीतर धारण करनेके कारण महाकोशरूप, ४९७. **महाधनः**—अपरिमित ऐश्वर्यवाले अथवा कुबेरको भी धन देनेके कारण महाधनवान्, ४९८. **जन्माधिपः**—जन्म (उत्पादन)-रूपी कार्यके अध्यक्ष ब्रह्मा, ४९९. **महादेवः**—सर्वोत्कृष्ट देवता, ५००. **सकलागमपारगः**—समस्त शास्त्रोंके पारंगत विद्वान् ॥ ६२ ॥

५०१ **तत्त्वम्**—यथार्थ तत्त्वरूप, ५०२. **तत्त्ववित्**—यथार्थ तत्त्वको पूर्णतया जाननेवाले, ५०३. **एकात्मा**—अद्वितीय आत्मरूप, ५०४. **विभुः**—सर्वत्र व्यापक, ५०५. **विश्वभूषणः**—सम्पूर्ण जगत्को उत्तम गुणोंसे विभूषित करनेवाले, ५०६. **ऋषिः**—मन्त्रद्रष्टा, ५०७. **ब्राह्मणः**—ब्रह्मवेत्ता, ५०८. **ऐश्वर्यजन्ममृत्युजरातिगः**—ऐश्वर्य, जन्म, मृत्यु और जरासे अतीत ॥ ६३ ॥

५०९. **पञ्चयज्ञसमुत्पत्तिः**—पंच महायज्ञोंकी उत्पत्तिके हेतु, ५१०. **विश्वेशः**—विश्वनाथ, ५११. **विमलोदयः**—निर्मल अभ्युदयकी प्राप्ति करानेवाले धर्मरूप, ५१२. **आत्मयोनिः**—स्वयम्भू, ५१३. **अनाद्यन्तः**—आदि-अन्तसे रहित, ५१४. **वत्सलः**—भक्तोंके प्रति वात्सल्य-स्नेहसे युक्त, ५१५. **भक्तलोकधृक्**—भक्तजनोंके आश्रय ॥ ६४ ॥

५१६. **गायत्रीवल्लभः**—गायत्रीमन्त्रके प्रेमी, ५१७. **प्रांशुः**—ऊँचे शरीरवाले, ५१८. **विश्वावासः**—सम्पूर्ण जगत्के आवासस्थान, ५१९. **प्रभाकरः**—सूर्यरूप, ५२०. **शिशुः**—बालकरूप, ५२१. **गिरिरतः**—कैलासपर्वतपर रमण करनेवाले, ५२२. **सम्राट्**—देवेश्वरोंके भी ईश्वर, ५२३. **सुषेणः सुरशत्रुहा**—प्रमथगणोंकी सुन्दर सेनासे युक्त तथा देवशत्रुओंका संहार करनेवाले ॥ ६५ ॥

५२४. अमोघोऽरिष्टनेमिः—अमोघ संकल्पवाले महर्षि कश्यपरूप, **५२५. कुमुदः**—भूतलको आह्लाद प्रदान करनेवाले चन्द्रमारूप, **५२६. विगतज्वरः**—चिन्तारहित, **५२७. स्वयंज्योतिस्तनुज्योतिः**—अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले सूक्ष्मज्योतिःस्वरूप, **५२८. आत्मज्योतिः**—अपने स्वरूपभूत ज्ञानकी प्रभासे प्रकाशित, **५२९. अचञ्चलः**—चंचलतासे रहित॥ ६६॥

५३०. पिङ्गलः—पिंगलवर्णवाले, **५३१. कपिलश्मश्रुः**—कपिल वर्णकी दाढ़ी-मूँछ रखनेवाले दुर्वासा मुनिके रूपमें अवतीर्ण, **५३२. भालनेत्रः**—ललाटमें तृतीय नेत्र धारण करनेवाले, **५३३. त्रयीतनुः**—तीनों लोक या तीनों वेद जिनके स्वरूप हैं, ऐसे, **५३४. ज्ञानस्कन्दो महानीतिः**—ज्ञानप्रद और श्रेष्ठ नीतिवाले, **५३५. विश्वोत्पत्तिः**—जगत्‌के उत्पादक, **५३६. उपप्लवः**—संहारकारी॥ ६७॥

५३७. भगो विवस्वानादित्यः—अदितिनन्दन भग एवं विवस्वान्, **५३८. योगपारः**—योगविद्यामें पारंगत, **५३९. दिवस्पतिः**—स्वर्गलोकके स्वामी, **५४०. कल्याणगुणनामा**—कल्याणकारी गुण और नामवाले, **५४१. पापहा**—पापनाशक, **५४२. पुण्यदर्शनः**—पुण्यजनक दर्शनवाले अथवा पुण्यसे ही जिनका दर्शन होता है, ऐसे॥ ६८॥

५४३. उदारकीर्तिः—उत्तम कीर्तिवाले, **५४४. उद्योगी**—उद्योगशील, **५४५. सद्योगी**—श्रेष्ठ योगी, **५४६. सदसन्मयः**—सदसत्स्वरूप, **५४७. नक्षत्रमाली**—नक्षत्रोंकी मालासे अलंकृत आकाशरूप, **५४८. नाकेशः**—स्वर्गके स्वामी, **५४९. स्वाधिष्ठानपदाश्रयः**—स्वाधिष्ठान चक्रके आश्रय॥ ६९॥

५५०. पवित्रः पापहारी—नित्य शुद्ध एवं पापनाशक, **५५१. मणिपूरः**—मणिपूर नामक चक्रस्वरूप, **५५२. नभोगतिः**—आकाशचारी, **५५३. हृत्पुण्डरीकमासीनः**—हृदयकमलमें स्थित, **५५४. शक्रः**—इन्द्ररूप, **५५५. शान्तः**—शान्तस्वरूप, **५५६. वृषाकपिः**—हरिहर॥ ७०॥

५५७. उष्णः—हालाहल विषकी गर्मीसे उष्णतायुक्त, **५५८. गृहपतिः**—समस्त ब्रह्माण्डरूपी गृहके स्वामी, **५५९. कृष्णः**—सच्चिदानन्दस्वरूप, **५६०. समर्थः**—सामर्थ्यशाली, **५६१. अनर्थनाशनः**—अनर्थका नाश करनेवाले, **५६२. अधर्मशत्रुः**—अधर्मनाशक, **५६३. अज्ञेयः**—बुद्धिकी पहुँचसे परे अथवा जाननेमें न आनेवाले,**५६४. पुरुहूतः पुरुश्रुतः**—बहुत-से नामोंद्वारा पुकारे और सुने जानेवाले॥ ७१॥

५६५. ब्रह्मगर्भः—ब्रह्मा जिनके गर्भस्थ शिशुके समान हैं, ऐसे, **५६६. बृहद्गर्भः**—विश्वब्रह्माण्ड प्रलयकालमें जिनके गर्भमें रहता है, ऐसे, **५६७. धर्मधेनुः**—धर्मरूपी वृषभको उत्पन्न करनेके लिये धेनुस्वरूप, **५६८. धनागमः**—धनकी प्राप्ति करानेवाले, **५६९. जगद्धितैषी**—समस्त संसारका हित चाहनेवाले, **५७०. सुगतः**—उत्तम ज्ञानसे सम्पन्न अथवा बुद्धस्वरूप, **५७१. कुमारः**—कार्तिकेयरूप, **५७२. कुशलागमः**—कल्याणदाता॥ ७२॥

५७३. हिरण्यवर्णो ज्योतिष्मान्—सुवर्णके समान गौरवर्णवाले तथा तेजस्वी, **५७४. नानाभूतरतः**—नाना प्रकारके भूतोंके साथ क्रीडा करनेवाले, **५७५. ध्वनिः**—नादस्वरूप, **५७६. अरागः**—आसक्तिशून्य, **५७७. नयनाध्यक्षः**—नेत्रोंमें द्रष्टारूपसे विद्यमान, **५७८. विश्वामित्रः**—सम्पूर्ण जगत्‌के प्रति मैत्री-भावना रखनेवाले मुनिस्वरूप, **५७९. धनेश्वरः**—धनके स्वामी कुबेर॥ ७३॥

५८०. ब्रह्मज्योतिः—ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म, **५८१. वसुधामा**—सुवर्ण और रत्नोंके तेजसे प्रकाशित अथवा वसुधास्वरूप, **५८२. महाज्योतिरनुत्तमः**—सूर्य आदि ज्योतियोंके प्रकाशक सर्वोत्तम महाज्योतिःस्वरूप, **५८३. मातामहः**—मातृकाओंके जन्मदाता होनेके कारण मातामह, **५८४. मातरिश्वा नभस्वान्**—आकाशमें विचरनेवाले वायुदेव, **५८५. नागहारधृक्**—सर्पमय हार धारण करनेवाले॥ ७४॥

५८६. पुलस्त्यः—पुलस्त्य नामक मुनि, **५८७. पुलहः**—पुलह नामक ऋषि, **५८८. अगस्त्यः**—कुम्भजन्मा अगस्त्य ऋषि, **५८९. जातूकर्ण्यः**—इसी नामसे प्रसिद्ध मुनि, **५९०. पराशरः**—शक्तिके पुत्र तथा व्यासजीके पिता मुनिवर पराशर, **५९१. निरावरणनिर्वारः**—आवरणशून्य तथा अवरोधरहित, **५९२.**

वैरञ्च्यः—ब्रह्माजीके पुत्र नीललोहित रुद्र, ५९३. **विष्टर-श्रवाः**—विस्तृत यशवाले विष्णुस्वरूप, ५९४. **आत्मभूः**—स्वयम्भू ब्रह्मा, ५९५. **अनिरुद्धः**—अकुण्ठित गतिवाले, ५९६. **अत्रिः**—अत्रि नामक ऋषि अथवा त्रिगुणातीत, ५९७. **ज्ञानमूर्तिः**—ज्ञानस्वरूप, ५९८. **महायशाः**—महायशस्वी, ५९९. **लोकवीराग्रणीः**—विश्वविख्यात वीरोंमें अग्रगण्य, ६००. **वीरः**—शूरवीर, ६०१. **चण्डः**—प्रलयके समय अत्यन्त क्रोध करनेवाले, ६०२. **सत्यपराक्रमः**—सच्चे पराक्रमी॥ ७५-७६॥

६०३. **व्यालाकल्पः**—सर्पोंके आभूषणसे शृङ्गार करनेवाले, ६०४. **महाकल्पः**—महाकल्पसंज्ञक काल-स्वरूपवाले, ६०५. **कल्पवृक्षः**—शरणागतोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षके समान उदार, ६०६. **कलाधरः**—चन्द्रकलाधारी, ६०७. **अलंकरिष्णुः**—अलंकार धारण करने या करानेवाले, ६०८. **अचलः**—विचलित न होनेवाले, ६०९. **रोचिष्णुः**—प्रकाशमान, ६१०. **विक्रमोन्नतः**—पराक्रममें बढ़े-चढ़े॥ ७७॥

६११. **आयुः शब्दपतिः**—आयु तथा वाणीके स्वामी, ६१२. **वेगी प्लवनः**—वेगशाली तथा कूदने या तैरनेवाले, ६१३. **शिखिसारथिः**—अग्निरूप सहायकवाले, ६१४. **असंसृष्टः**—निर्लेप, ६१५. **अतिथिः**—प्रेमी भक्तोंके घरपर अतिथिकी भाँति उपस्थित हो उनका सत्कार ग्रहण करनेवाले, ६१६. **शक्रप्रमाथी**—इन्द्रका मान-मर्दन करनेवाले, ६१७. **पादपासनः**—वृक्षोंपर या वृक्षोंके नीचे आसन लगानेवाले॥ ७८॥

६१८. **वसुश्रवाः**—यशरूपी धनसे सम्पन्न, ६१९. **हव्यवाहः**—अग्निस्वरूप, ६२०. **प्रतप्तः**—सूर्यरूपसे प्रचण्ड ताप देनेवाले, ६२१. **विश्वभोजनः**—प्रलयकालमें विश्व-ब्रह्माण्डको अपना ग्रास बना लेनेवाले, ६२२. **जप्यः**—जपनेयोग्य नामवाले, ६२३. **जरादिशमनः**—बुढ़ापा आदि दोषोंका निवारण करनेवाले, ६२४. **लोहितात्मा तनूनपात्**—लोहितवर्णवाले अग्निरूप॥ ७९॥

६२५. **बृहदश्वः**—विशाल अश्ववाले, ६२६. **नभोयोनिः**—आकाशकी उत्पत्तिके स्थान, ६२७. **सुप्रतीकः**—सुन्दर शरीरवाले, ६२८. **तमिस्त्रहा**—अज्ञानान्धकारनाशक, ६२९. **निदाघस्तपनः**—तपनेवाले ग्रीष्मरूप, ६३०. **मेघः**—बादलोंसे उपलक्षित वर्षारूप, ६३१. **स्वक्षः**—सुन्दर नेत्रोंवाले, ६३२. **परपुरञ्जयः**—त्रिपुररूप शत्रुनगरीपर विजय पानेवाले॥ ८०॥

६३३. **सुखानिलः**—सुखदायक वायुको प्रकट करनेवाले शरत्कालरूप, ६३४. **सुनिष्पन्नः**—जिसमें अन्नका सुन्दररूपसे परिपाक होता है, वह हेमन्तकालरूप, ६३५. **सुरभिः शिशिरात्मकः**—सुगन्धित मलयानिलसे युक्त शिशिर-ऋतुरूप, ६३६. **वसन्तो माधवः**— चैत्र-वैशाख—इन दो मासोंसे युक्त वसन्तरूप, ६३७. **ग्रीष्मः**—ग्रीष्म-ऋतुरूप, ६३८. **नभस्यः**—भाद्रपदमासरूप, ६३९. **बीज-वाहनः**—धान आदिके बीजोंकी प्राप्ति करानेवाला शरत्काल॥ ८१॥

६४०. **अङ्गिरा गुरुः**—अंगिरा नामक ऋषि तथा उनके पुत्र देवगुरु बृहस्पति, ६४१. **आत्रेयः**—अत्रिकुमार दुर्वासा, ६४२. **विमलः**—निर्मल, ६४३. **विश्ववाहनः**—सम्पूर्ण जगत्का निर्वाह करानेवाले, ६४४. **पावनः**—पवित्र करनेवाले, ६४५. **सुमतिर्विद्वान्**—उत्तम बुद्धिवाले विद्वान्, ६४६. **त्रैविद्यः**—तीनों वेदोंके विद्वान् अथवा तीनों वेदोंके द्वारा प्रतिपादित, ६४७. **वरवाहनः**—वृषभरूप श्रेष्ठ वाहनवाले॥ ८२॥

६४८. **मनोबुद्धिरहंकारः**—मन, बुद्धि और अहंकारस्वरूप, ६४९. **क्षेत्रज्ञः**—आत्मा, ६५०. **क्षेत्र-पालकः**—शरीररूपी क्षेत्रका पालन करनेवाले परमात्मा, ६५१. **जमदग्निः**—जमदग्नि नामक ऋषिरूप, ६५२. **बलनिधिः**—अनन्त बलके सागर, ६५३. **विगालः**—अपनी जटासे गंगाजीके जलको टपकानेवाले, ६५४. **विश्वगालवः**—विश्वविख्यात गालव मुनि अथवा प्रलय-कालमें कालाग्निस्वरूपसे जगत्को निगल जानेवाले॥ ८३॥

६५५. **अघोरः**—सौम्यरूपवाले, ६५६. **अनुत्तरः**—सर्वश्रेष्ठ, ६५७. **यज्ञः श्रेष्ठः**—श्रेष्ठ यज्ञरूप, ६५८. **निःश्रेयसप्रदः**—कल्याणदाता, ६५९. **शैलः**—शिलामय लिंगरूप, ६६०. **गगनकुन्दाभः**—आकाशकुन्द—चन्द्रमाके समान गौर कान्तिवाले, ६६१. **दानवारिः**— दानव-शत्रु, ६६२. **अरिंदमः**—शत्रुओंका दमन करनेवाले॥ ८४॥

६६३. **रजनीजनकश्चारुः**—सुन्दर निशाकर-रूप, ६६४. **निःशल्यः**—निष्कण्टक, ६६५. **लोक**-

शल्यधृक्—शरणागतजनोंके शोक-शल्यको निकालकर स्वयं धारण करनेवाले, ६६६. **चतुर्वेदः**—चारों वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य, ६६७. **चतुर्भावः**—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाले, ६६८. **चतुरश्चतुरप्रियः**—चतुर एवं चतुर पुरुषोंके प्रिय॥ ८५॥

६६९. **आम्नायः**—वेदस्वरूप, ६७०. **समाम्नायः**—अक्षरसमाम्नाय—शिवसूत्ररूप, ६७१. **तीर्थदेवशिवालयः**—तीर्थोंके देवता और शिवालयरूप, ६७२. **बहुरूपः**—अनेक रूपवाले, ६७३. **महारूपः**—विराट्‌रूपधारी, ६७४. **सर्वरूपश्चराचरः**—चर और अचर सम्पूर्ण रूपवाले॥ ८६॥

६७५. **न्यायनिर्मायको न्यायी**—न्यायकर्ता तथा न्यायशील, ६७६. **न्यायगम्यः**—न्याययुक्त आचरणसे प्राप्त होनेयोग्य, ६७७. **निरञ्जनः**—निर्मल, ६७८. **सहस्रमूर्द्धा**—सहस्रों सिरवाले, ६७९. **देवेन्द्रः**—देवताओंके स्वामी, ६८०. **सर्वशस्त्रप्रभञ्जनः**—विपक्षी योद्धाओंके सम्पूर्ण शस्त्रोंको नष्ट कर देनेवाले॥ ८७॥

६८१. **मुण्डः**—मुँड़े हुए सिरवाले संन्यासी, ६८२. **विरूपः**—विविध रूपवाले, ६८३. **विक्रान्तः**—विक्रमशील, ६८४. **दण्डी**—दण्डधारी, ६८५. **दान्तः**—मन और इन्द्रियोंका दमन करनेवाले, ६८६. **गुणोत्तमः**—गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ, ६८७. **पिङ्गलाक्षः**—पिंगल नेत्रवाले, ६८८. **जनाध्यक्षः**—जीवमात्रके साक्षी, ६८९. **नीलग्रीवः**—नीलकण्ठ, ६९०. **निरामयः**—नीरोग॥ ८८॥

६९१. **सहस्रबाहुः**—सहस्रों भुजाओंसे युक्त, ६९२. **सर्वेशः**—सबके स्वामी, ६९३. **शरण्यः**—शरणागतहितैषी, ६९४. **सर्वलोकधृक्**—सम्पूर्ण लोकोंको धारण करनेवाले, ६९५. **पद्मासनः**—कमलके आसनपर विराजमान, ६९६. **परं ज्योतिः**—परम प्रकाशस्वरूप, ६९७. **पारम्पर्यफलप्रदः**—परम्परागत फलकी प्राप्ति करानेवाले॥ ८९॥

६९८. **पद्मगर्भः**—अपनी नाभिसे कमलको प्रकट करनेवाले विष्णुरूप, ६९९. **महागर्भः**—विराट् ब्रह्माण्डको गर्भमें धारण करनेके कारण महान् गर्भवाले, ७००. **विश्वगर्भः**—सम्पूर्ण जगत्‌को अपने उदरमें धारण करनेवाले, ७०१. **विचक्षणः**—चतुर, ७०२. **परावरज्ञः**—कारण और कार्यके ज्ञाता, ७०३. **वरदः**—अभीष्ट वर देनेवाले, ७०४. **वरेण्यः**—वरणीय अथवा श्रेष्ठ, ७०५. **महास्वनः**—डमरूका गम्भीर नाद करनेवाले॥ ९०॥

७०६. **देवासुरगुरुर्देवः**—देवताओं तथा असुरोंके गुरुदेव एवं आराध्य, ७०७. **देवासुरनमस्कृतः**—देवताओं तथा असुरोंसे वन्दित, ७०८. **देवासुरमहामित्रः**—देवता तथा असुर दोनोंके बड़े मित्र, ७०९. **देवासुर-महेश्वरः**—देवताओं और असुरोंके महान् ईश्वर॥ ९१॥

७१०. **देवासुरेश्वरः**—देवताओं और असुरोंके शासक, ७११. **दिव्यः**—अलौकिक स्वरूपवाले, ७१२. **देवासुरमहाश्रयः**—देवताओं और असुरोंके महान् आश्रय, ७१३. **देवदेवमयः**—देवताओंके लिये भी देवतारूप, ७१४. **अचिन्त्यः**—चित्तकी सीमासे परे विद्यमान, ७१५. **देवदेवात्मसम्भवः**—देवाधिदेव ब्रह्माजीसे रुद्ररूपमें उत्पन्न॥ ९२॥

७१६. **सद्योनिः**—सत्पदार्थोंकी उत्पत्तिके हेतु, ७१७. **असुरव्याघ्रः**—असुरोंका विनाश करनेके लिये व्याघ्ररूप, ७१८. **देवसिंहः**—देवताओंमें श्रेष्ठ, ७१९. **दिवाकरः**—सूर्यरूप, ७२०. **विबुधाग्रचरश्रेष्ठः**—देवताओंके नायकोंमें सर्वश्रेष्ठ, ७२१. **सर्वदेवोत्तमोत्तमः**—सम्पूर्ण श्रेष्ठ देवताओंके भी शिरोमणि॥ ९३॥

७२२. **शिवज्ञानरतः**—कल्याणमय शिवतत्त्वके विचारमें तत्पर, ७२३. **श्रीमान्**—अणिमा आदि विभूतियोंसे सम्पन्न, ७२४. **शिखिश्रीपर्वतप्रियः**—कुमार कार्तिकेयके निवासभूत श्रीशैल नामक पर्वतसे प्रेम करनेवाले, ७२५. **वज्रहस्तः**—वज्रधारी इन्द्ररूप, ७२६. **सिद्धखड्गः**—शत्रुओंको मार गिरानेमें जिनकी तलवार कभी असफल नहीं होती, ऐसे, ७२७. **नरसिंहनिपातनः**—शरभरूपसे नृसिंहको धराशायी करनेवाले॥ ९४॥

७२८. **ब्रह्मचारी**—भगवती उमाके प्रेमकी परीक्षा लेनेके लिये ब्रह्मचारीरूपसे प्रकट, ७२९. **लोकचारी**—समस्त लोकोंमें विचरनेवाले, ७३०. **धर्मचारी**—धर्मका आचरण करनेवाले, ७३१. **धनाधिपः**—धनके अधिपति कुबेर, ७३२. **नन्दी**—नन्दी नामक गण, ७३३. **नन्दीश्वरः**—इसी नामसे प्रसिद्ध वृषभ, ७३४. **अनन्तः**—अन्तरहित, ७३५. **नग्नव्रतधरः**—दिगम्बर रहनेका व्रत

धारण करनेवाले, ७३६. **शुचिः**—नित्यशुद्ध॥ ९५॥

७३७. **लिङ्गाध्यक्षः**—लिंगदेहके द्रष्टा, ७३८. **सुराध्यक्षः**—देवताओंके अधिपति, ७३९. **योगाध्यक्षः**—योगेश्वर, ७४०. **युगावहः**—युगके निर्वाहक, ७४१. **स्वधर्मा**—आत्मविचाररूप धर्ममें स्थित अथवा स्वधर्म-परायण, ७४२. **स्वर्गतः**—स्वर्गलोकमें स्थित, ७४३. **स्वर्गस्वरः**—स्वर्गलोकमें जिनके यशका गान किया जाता है, ऐसे, ७४४. **स्वरमयस्वनः**—सात प्रकारके स्वरोंसे युक्त ध्वनिवाले॥ ९६॥

७४५. **बाणाध्यक्षः**—बाणासुरके स्वामी अथवा बाणलिंग नर्मदेश्वरमें अधिदेवतारूपसे स्थित, ७४६. **बीजकर्ता**—बीजके उत्पादक, ७४७. **धर्मकृद्धर्म-सम्भवः**—धर्मके पालक और उत्पादक, ७४८. **दम्भः**—मायामयरूपधारी, ७४९. **अलोभः**—लोभरहित, ७५०. **अर्थविच्छम्भुः**—सबके प्रयोजनको जाननेवाले कल्याण-निकेतन शिव, ७५१. **सर्वभूतमहेश्वरः**—सम्पूर्ण प्राणियोंके परमेश्वर॥ ९७॥

७५२. **श्मशाननिलयः**—श्मशानवासी, ७५३. **त्र्यक्षः**—त्रिनेत्रधारी, ७५४. **सेतुः**—धर्ममर्यादाके पालक, ७५५. **अप्रतिमाकृतिः**—अनुपम रूपवाले, ७५६. **लोकोत्तरस्फुटालोकः**—अलौकिक एवं सुस्पष्ट प्रकाशसे युक्त, ७५७. **त्र्यम्बकः**—त्रिनेत्रधारी अथवा त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिंग, ७५८. **नागभूषणः**—नागहारसे विभूषित॥ ९८॥

७५९. **अन्धकारिः**—अन्धकासुरका वध करनेवाले, ७६०. **मखद्वेषी**—दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले, ७६१. **विष्णुकन्धरपातनः**—यज्ञमय विष्णुका गला काटनेवाले, ७६२. **हीनदोषः**—दोषरहित, ७६३. **अक्षयगुणः**— अविनाशी गुणोंसे सम्पन्न, ७६४. **दक्षारिः**—दक्षद्रोही, ७६५. **पूषदन्तभित्**—पूषा देवताके दाँत तोड़नेवाले॥ ९९॥

७६६. **धूर्जटिः**—जटाके भारसे विभूषित, ७६७. **खण्डपरशुः**—खण्डित परशुवाले, ७६८. **सकलो निष्कलः**—साकार एवं निराकार परमात्मा, ७६९. **अनघः**—पापके स्पर्शसे शून्य, ७७०. **अकालः**—कालके प्रभावसे रहित, ७७१. **सकलाधारः**—सबके आधार, ७७२. **पाण्डुराभः**—श्वेत कान्तिवाले, ७७३. **मृडो नटः**—सुखदायक एवं ताण्डवनृत्यकारी॥ १००॥

७७४. **पूर्णः**—सर्वव्यापी परब्रह्म परमात्मा, ७७५. **पूरयिता**—भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले, ७७६. **पुण्यः**—परम पवित्र, ७७७. **सुकुमारः**—सुन्दर कुमार हैं जिनके, ऐसे अथवा मृदुतासे युक्त, ७७८. **सुलोचनः**—सुन्दर नेत्रवाले, ७७९. **सामगेयप्रियः**—सामगानके प्रेमी, ७८०. **अक्रूरः**—क्रूरतारहित, ७८१. **पुण्यकीर्तिः**—पवित्र कीर्तिवाले, ७८२. **अनामयः**—रोग-शोकसे रहित॥ १०१॥

७८३. **मनोजवः**—मनके समान वेगशाली, ७८४. **तीर्थकरः**—तीर्थोंके निर्माता, ७८५. **जटिलः**—जटाधारी, ७८६. **जीवितेश्वरः**—सबके प्राणेश्वर, ७८७. **जीवितान्तकरः**—प्रलयकालमें सबके जीवनका अन्त करनेवाले, ७८८. **नित्यः**—सनातन, ७८९. **वसुरेताः**—सुवर्णमय वीर्यवाले, ७९०. **वसुप्रदः**—धनदाता॥ १०२॥

७९१. **सद्गतिः**—सत्पुरुषोंके आश्रय, ७९२. **सत्कृतिः**—शुभ कर्म करनेवाले, ७९३. **सिद्धिः**—सिद्धिस्वरूप, ७९४. **सज्जातिः**— सत्पुरुषोंके जन्मदाता, ७९५. **खलकण्टकः**—दुष्टोंके लिये कण्टकरूप, ७९६. **कलाधरः**—कलाधारी, ७९७. **महाकालभूतः**—महाकाल नामक ज्योतिर्लिंगस्वरूप अथवा कालके भी काल होनेसे महाकाल, ७९८. **सत्यपरायणः**—सत्यनिष्ठ॥ १०३॥

७९९. **लोकलावण्यकर्ता**—सब लोगोंको सौन्दर्य प्रदान करनेवाले, ८००. **लोकोत्तरसुखालयः**—लोकोत्तर सुखके आश्रय, ८०१ **चन्द्रसंजीवनः शास्ता**—सोमनाथरूपसे चन्द्रमाको जीवन प्रदान करनेवाले सर्वशासक शिव, ८०२. **लोकगूढः**—समस्त संसारमें अव्यक्तरूपसे व्यापक, ८०३. **महाधिपः**—महेश्वर॥ १०४॥

८०४. **लोकबन्धुर्लोकनाथः**—सम्पूर्ण लोकोंके बन्धु एवं रक्षक, ८०५. **कृतज्ञः**—उपकारको माननेवाले, ८०६. **कीर्तिभूषणः**—उत्तम यशसे विभूषित, ८०७. **अनपायोऽक्षरः**—विनाशरहित—अविनाशी, ८०८. **कान्तः**—प्रजापति दक्षका अन्त करनेवाले अथवा कान्तिमय, ८०९. **सर्वशस्त्रभृतां वरः**—सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ॥ १०५॥

८१०. **तेजोमयो द्युतिधरः**—तेजस्वी और कान्तिमान्, ८११. **लोकानामग्रणीः**—सम्पूर्ण जगत्के लिये

अग्रगण्य देवता अथवा जगत्‌को आगे बढ़ानेवाले, **८१२. अणुः**—अत्यन्त सूक्ष्म, **८१३. शुचिस्मितः**—पवित्र मुसकानवाले, **८१४. प्रसन्नात्मा**—हर्षभरे हृदयवाले, **८१५. दुर्जेयः**—जिनपर विजय पाना अत्यन्त कठिन है, ऐसे, **८१६. दुरतिक्रमः**—दुर्लंघ्य॥ १०६॥

८१७. ज्योतिर्मयः—तेजोमय, **८१८. जगन्नाथः**—विश्वनाथ, **८१९. निराकारः**—आकाररहित परमात्मा, **८२०. जलेश्वरः**—जलके स्वामी, **८२१. तुम्बवीणः**—तूँबीकी वीणा बजानेवाले, **८२२. महाकोपः**—संहारके समय महान् क्रोध करनेवाले, **८२३. विशोकः**—शोकरहित, **८२४. शोकनाशनः**—शोकका नाश करनेवाले॥ १०७॥

८२५. त्रिलोकपः—तीनों लोकोंका पालन करनेवाले, **८२६. त्रिलोकेशः**—त्रिभुवनके स्वामी, **८२७. सर्वशुद्धिः**—सबकी शुद्धि करनेवाले, **८२८. अधोक्षजः**—इन्द्रियों और उनके विषयोंसे अतीत, **८२९. अव्यक्तलक्षणो देवः**—अव्यक्त लक्षणवाले देवता, **८३०. व्यक्ताव्यक्तः**—स्थूलसूक्ष्मरूप, **८३१ विशाम्पतिः**— प्रजाओंके पालक॥ १०८॥

८३२. वरशीलः—श्रेष्ठ स्वभाववाले, **८३३. वरगुणः**—उत्तम गुणोंवाले, **८३४. सारः**—सारतत्त्व, **८३५. मानधनः**—स्वाभिमानके धनी, **८३६. मयः**—सुखस्वरूप, **८३७. ब्रह्मा**— सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, **८३८. विष्णुः प्रजापालः**— प्रजापालक विष्णु, **८३९. हंसः**—सूर्यस्वरूप, **८४०. हंसगतिः**—हंसके समान चालवाले, **८४१. वयः**—गरुड़ पक्षी॥ १०९॥

८४२. वेधा विधाता धाता—ब्रह्मा, धाता और विधाता नामक देवतास्वरूप, **८४३. स्त्रष्टा**— सृष्टिकर्ता, **८४४. हर्ता**—संहारकारी, **८४५. चतुर्मुखः**—चार मुखवाले ब्रह्मा, **८४६. कैलासशिखरावासी**— कैलासके शिखरपर निवास करनेवाले, **८४७. सर्वावासी**—सर्वव्यापी, **८४८. सदागतिः**—निरन्तर गतिशील वायुदेवता॥ ११०॥

८४९. हिरण्यगर्भः—ब्रह्मा, **८५०. द्रुहिणः**—ब्रह्मा, **८५१. भूतपालः**—प्राणियोंका पालन करनेवाले, **८५२. भूपतिः**—पृथ्वीके स्वामी, **८५३. सद्योगी**—श्रेष्ठ योगी, **८५४. योगविद्योगी**—योगविद्याके ज्ञाता योगी, **८५५. वरदः**—वर देनेवाले, **८५६. ब्राह्मणप्रियः**—ब्राह्मणोंके प्रेमी॥ १११॥

८५७. देवप्रियो देवनाथः—देवताओंके प्रिय तथा रक्षक, **८५८. देवज्ञः**—देवतत्त्वके ज्ञाता, **८५९. देवचिन्तकः**—देवताओंका विचार करनेवाले, **८६०. विषमाक्षः**—विषम नेत्रवाले, **८६१. विशालाक्षः**—बड़े-बड़े नेत्रवाले, **८६२. वृषदो वृषवर्धनः**—धर्मका दान और वृद्धि करनेवाले॥ ११२॥

८६३. निर्ममः—ममतारहित, **८६४. निरहङ्कारः**—अहंकारशून्य, **८६५. निर्मोहः**—मोहशून्य, **८६६. निरुपद्रवः**—उपद्रव या उत्पातसे दूर, **८६७. दर्पहा दर्पदः**—दर्पका हनन और खण्डन करनेवाले, **८६८. दृप्तः**—स्वाभिमानी, **८६९. सर्वर्तुपरिवर्तकः**—समस्त ऋतुओंको बदलते रहनेवाले॥ ११३॥

८७०. सहस्त्रजित्—सहस्त्रोंपर विजय पानेवाले, **८७१. सहस्त्रार्चिः**—सहस्त्रों किरणोंसे प्रकाशमान सूर्यरूप, **८७२. स्निग्धप्रकृतिदक्षिणः**—स्नेहयुक्त स्वभाववाले तथा उदार, **८७३. भूतभव्यभवन्नाथः**—भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी, **८७४. प्रभवः**—सबकी उत्पत्तिके कारण, **८७५. भूतिनाशनः**—दुष्टोंके ऐश्वर्यका नाश करनेवाले॥ ११४॥

८७६. अर्थः—परमपुरुषार्थरूप, **८७७. अनर्थः**—प्रयोजनरहित, **८७८. महाकोशः**—अनन्त धनराशिके स्वामी, **८७९. परकार्यैकपण्डितः**—पराये कार्यको सिद्ध करनेकी कलाके एकमात्र विद्वान्, **८८०. निष्कण्टकः**—कण्टकरहित, **८८१. कृतानन्दः**—नित्यसिद्ध आनन्दस्वरूप, **८८२. निर्व्याजो व्याजमर्दनः**—स्वयं कपटरहित होकर दूसरेके कपटको नष्ट करनेवाले॥ ११५॥

८८३. सत्त्ववान्—सत्त्वगुणसे युक्त, **८८४. सात्त्विकः**—सत्त्वनिष्ठ, **८८५. सत्यकीर्तिः**—सत्यकीर्तिवाले, **८८६. स्नेहकृतागमः**—जीवोंके प्रति स्नेहके कारण विभिन्न आगमोंको प्रकाशमें लानेवाले, **८८७. अकम्पितः**—सुस्थिर, **८८८. गुणग्राही**—गुणोंका आदर करनेवाले, **८८९. नैकात्मा नैककर्मकृत्**—अनेकरूप होकर अनेक प्रकारके कर्म करनेवाले॥ ११६॥

८९०. सुप्रीतः—अत्यन्त प्रसन्न, **८९१. सुमुखः**—

सुन्दर मुखवाले, ८९२. **सूक्ष्मः**— स्थूलभावसे रहित, ८९३. **सुकरः**—सुन्दर हाथवाले, ८९४. **दक्षिणानिलः**—मलयानिलके समान सुखद, ८९५. **नन्दिस्कन्धधरः**—नन्दीकी पीठपर सवार होनेवाले, ८९६. **धुर्यः**—उत्तरदायित्वका भार वहन करनेमें समर्थ, ८९७. **प्रकटः**—भक्तोंके सामने प्रकट होनेवाले अथवा ज्ञानियोंके सामने नित्य प्रकट, ८९८. **प्रीतिवर्धनः**—प्रेम बढ़ानेवाले॥ ११७॥

८९९. **अपराजितः**—किसीसे परास्त न होनेवाले, ९००. **सर्वसत्त्वः**—सम्पूर्ण सत्त्वगुणके आश्रय अथवा समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिके हेतु, ९०१. **गोविन्दः**—गोलोकको प्राप्ति करानेवाले, ९०२. **सत्त्ववाहनः**—सत्त्वस्वरूप धर्ममय वृषभसे वाहनका काम लेनेवाले, ९०३. **अधृतः**—आधाररहित, ९०४. **स्वधृतः**—अपने-आपमें ही स्थित, ९०५. **सिद्धः**—नित्यसिद्ध, ९०६. **पूतमूर्तिः**—पवित्र शरीरवाले, ९०७. **यशोधनः**—सुयशके धनी॥ ११८॥

९०८. **वाराहशृङ्गधृक्छृङ्गी**—वाराहको मारकर उसके दाढ़रूपी शृंगोंको धारण करनेके कारण शृंगी नामसे प्रसिद्ध, ९०९. **बलवान्**—शक्तिशाली, ९१०. **एकनायकः**—अद्वितीय नेता, ९११ **श्रुतिप्रकाशः**—वेदोंको प्रकाशित करनेवाले, ९१२. **श्रुतिमान्**—वेदज्ञानसे सम्पन्न, ९१३. **एकबन्धुः**—सबके एकमात्र सहायक, ९१४. **अनेककृत्**—अनेक प्रकारके पदार्थोंकी सृष्टि करनेवाले॥ ११९॥

९१५. **श्रीवत्सलशिवारम्भः**—श्रीवत्सधारी विष्णुके लिये मंगलकारी, ९१६. **शान्तभद्रः**—शान्त एवं मंगलरूप, ९१७. **समः**—सर्वत्र समभाव रखनेवाले, ९१८. **यशः**—यशस्वरूप, ९१९. **भूशयः**—पृथ्वीपर शयन करनेवाले, ९२०. **भूषणः**—सबको विभूषित करनेवाले, ९२१. **भूतिः**—कल्याणस्वरूप, ९२२. **भूतकृत्**—प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले, ९२३. **भूतभावनः**—भूतोंके उत्पादक॥ १२०॥

९२४. **अकम्पः**—कम्पित न होनेवाले, ९२५. **भक्तिकायः**—भक्तिस्वरूप, ९२६. **कालहा**—कालनाशक, ९२७. **नीललोहितः**—नील और लोहितवर्णवाले, ९२८. **सत्यव्रतमहात्यागी**—सत्यव्रतधारी एवं महान् त्यागी, ९२९. **नित्यशान्तिपरायणः**—निरन्तर शान्त॥ १२१॥

९३०. **परार्थवृत्तिर्वरदः**—परोपकारव्रती एवं अभीष्ट वरदाता, ९३१. **विरक्तः**—वैराग्यवान्, ९३२. **विशारदः**—विज्ञानवान्, ९३३. **शुभदः शुभकर्ता**—शुभ देने और करनेवाले, ९३४. **शुभनामा शुभः स्वयम्**—स्वयं शुभस्वरूप होनेके कारण शुभ नामधारी॥ १२२॥

९३५. **अनर्थितः**—याचनारहित, ९३६. **अगुणः**—निर्गुण, ९३७. **साक्षी अकर्ता**—द्रष्टा एवं कर्तृत्वरहित, ९३८. **कनकप्रभः**—सुवर्णके समान कान्तिमान्, ९३९. **स्वभावभद्रः**—स्वभावतः कल्याणकारी, ९४०. **मध्य-स्थः**—उदासीन, ९४१. **शत्रुघ्नः**—शत्रुनाशक, ९४२. **विघ्ननाशनः**—विघ्नोंका निवारण करनेवाले॥ १२३॥

९४३. **शिखण्डी कवची शूली**—मोरपंख, कवच और त्रिशूल धारण करनेवाले, ९४४. **जटी मुण्डी च कुण्डली**—जटा, मुण्डमाला और कवच धारण करनेवाले, ९४५. **अमृत्युः**—मृत्युरहित, ९४६. **सर्वदृक्सिंहः**—सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ, ९४७. **तेजोराशिर्महामणिः**—तेजःपुंज महामणि कौस्तुभादिरूप॥ १२४॥

९४८. **असंख्येयोऽप्रमेयात्मा**—असंख्य नाम, रूप और गुणोंसे युक्त होनेके कारण किसीके द्वारा मापे न जा सकनेवाले, ९४९. **वीर्यवान् वीर्यकोविदः**—पराक्रमी एवं पराक्रमके ज्ञाता, ९५०. **वेद्यः**—जाननेयोग्य, ९५१. **वियोगात्मा**—दीर्घकालतक सतीके वियोगमें अथवा विशिष्ट योगकी साधनामें संलग्न हुए मनवाले, ९५२. **परावरमुनीश्वरः**—भूत और भविष्यके ज्ञाता मुनीश्वररूप॥ १२५॥

९५३. **अनुत्तमो दुराधर्षः**—सर्वोत्तम एवं दुर्जय, ९५४. **मधुरप्रियदर्शनः**—जिनका दर्शन मनोहर एवं प्रिय लगता है, ऐसे, ९५५. **सुरेशः**—देवताओंके ईश्वर, ९५६. **शरणम्**—आश्रयदाता, ९५७. **सर्वः**—सर्वस्वरूप, ९५८. **शब्दब्रह्म सतां गतिः**—प्रणवरूप तथा सत्पुरुषोंके आश्रय॥ १२६॥

९५९. **कालपक्षः**—काल जिनका सहायक है, ऐसे, ९६०. **कालकालः**—कालके भी काल, ९६१. **कङ्कणीकृतवासुकिः**—वासुकि नागको अपने हाथमें कंगनके समान धारण करनेवाले, ९६२. **महेष्वासः**—

महाधनुर्धर, **९६३. महीभर्ता**—पृथ्वीपालक, **९६४. निष्कलङ्कः**—कलंकशून्य, **९६५. विशृङ्खलः**—बन्धन-रहित॥ १२७॥

९६६. द्युमणिस्तरणिः—आकाशमें मणिके समान प्रकाशमान तथा भक्तोंको भवसागरसे तारनेके लिये नौकारूप सूर्य, **९६७. धन्यः**— कृतकृत्य, **९६८. सिद्धिदः सिद्धिसाधनः**—सिद्धिदाता और सिद्धिके साधक, **९६९. विश्वतः संवृतः**—सब ओरसे मायाद्वारा आवृत, **९७०. स्तुत्यः**—स्तुतिके योग्य, **९७१. व्यूढोरस्कः**—चौड़ी छातीवाले, **९७२. महाभुजः**—बड़ी बाँहवाले॥ १२८॥

९७३. सर्वयोनिः—सबकी उत्पत्तिके स्थान, **९७४. निरातङ्कः**—निर्भय, **९७५. नरनारायणप्रियः**—नर-नारायणके प्रेमी अथवा प्रियतम, **९७६. निर्लेपो निष्प्रपञ्चात्मा**— दोषसम्पर्कसे रहित तथा जगत्प्रपंचसे अतीत स्वरूपवाले, **९७७. निर्व्यङ्गः**—विशिष्ट अंगवाले प्राणियोंके प्राकट्यमें हेतु, **९७८. व्यङ्गनाशनः**—यज्ञादि कर्मोंमें होनेवाले अंग-वैगुण्यका नाश करनेवाले॥ १२९॥

९७९. स्तव्यः—स्तुतिके योग्य, **९८०. स्तव-प्रियः**—स्तुतिके प्रेमी, **९८१. स्तोता**—स्तुति करनेवाले, **९८२. व्यासमूर्तिः**—व्यासस्वरूप, **९८३. निरङ्कुशः**—अंकुशरहित स्वतन्त्र, **९८४. निरवद्यमयोपायः**—मोक्ष-प्राप्तिके निर्दोष उपायरूप, **९८५. विद्याराशिः**—विद्याओंके सागर, **९८६. रसप्रियः**—ब्रह्मानन्दरसके प्रेमी॥ १३०॥

९८७. प्रशान्तबुद्धिः—शान्त बुद्धिवाले, **९८८. अक्षुण्णः**—क्षोभ या नाशसे रहित, **९८९. संग्रही**—भक्तोंका संग्रह करनेवाले, **९९०. नित्यसुन्दरः**—सतत मनोहर, **९९१. वैयाघ्रधुर्यः**—व्याघ्रचर्मधारी, **९९२. धात्रीशः**—ब्रह्माजीके स्वामी, **९९३. शाकल्यः**—शाकल्य ऋषिरूप, **९९४. शर्वरीपतिः**— रात्रिके स्वामी चन्द्रमारूप॥ १३१॥

९५५. परमार्थगुरुर्दत्तः सूरिः—परमार्थ- तत्त्वका उपदेश देनेवाले ज्ञानी गुरु दत्तात्रेयरूप, **९९६. आश्रित-वत्सलः**—शरणागतोंपर दया करनेवाले, **९९७. सोमः**—उमासहित, **९९८. रसज्ञः**—भक्तिरसके ज्ञाता, **९९९. रसदः**—प्रेमरस प्रदान करनेवाले, **१०००. सर्वसत्त्वाव-लम्बनः**—समस्त प्राणियोंको सहारा देनेवाले॥ १३२॥

इस प्रकार विष्णुजीने सहस्र नामोंसे शिवजीकी स्तुति और प्रार्थना की तथा हजार कमलोंसे उनकी पूजा की॥ १३३॥

हे द्विजो! उसके बाद लीला करनेवाले उन शिवजीने जो अत्यन्त अद्भुत तथा सुखदायक चरित्र किया, उसे आदरसे सुनिये॥ १३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवसहस्रनामवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

शिवसहस्रनामस्तोत्रकी फल-श्रुति

सूतजी बोले—विष्णुजीके द्वारा किये गये अपने उत्कृष्ट सहस्रनामस्तवनको सुनकर शिवजी प्रसन्न हो गये। उस समय जगत्‌के स्वामी महेश्वरने विष्णुकी परीक्षाके लिये उन कमलोंमेंसे एक कमलको छिपा लिया॥ १-२॥

तब शिवपूजनमें उन सहस्रकमलोंमेंसे एक कमलके कम हो जानेपर भगवान् विष्णु व्याकुल हो उठे और वे अपने मनमें विचार करने लगे कि एक कमल कहाँ चला गया! यदि वह चला गया तो जाने दो, क्या मेरा नेत्र कमलके समान नहीं है?॥ ३-४॥

इस प्रकार विचारकर सत्त्वगुणका सहारा लेकर [पूर्ण धैर्यके साथ] उन्होंने अपना एक नेत्र निकालकर भक्तिपूर्वक शिवजीका पूजन किया तथा उसी स्तोत्रसे उनकी स्तुति की॥ ५॥

उसके बाद स्तुति करते हुए विष्णुको अपना नेत्रकमल निकालते देखकर जगद्गुरु महादेव 'ऐसा मत करो-मत करो'—इस प्रकार कहते हुए स्वयं प्रकट हो गये। इस प्रकार वे महेश्वर विष्णुके द्वारा प्रतिष्ठित किये

गये अपने पार्थिव लिंगके मण्डलसे शीघ्र ही अवतरित हो गये॥ ६-७॥

शास्त्रवर्णित रूप धारण किये तेजोराशिसे युक्त साक्षात् प्रकट हुए शिवको प्रणाम करके उनके सामने स्थित होकर वे विष्णु विशेषरूपसे स्तुति करने लगे। तब प्रसन्न हुए महादेवने अपने आगे हाथ जोड़कर खड़े विष्णुकी ओर कृपापूर्वक देखकर हँसते हुए कहा— ॥ ८-९॥

शंकर बोले—हे हरे! देवकार्यमें तत्पर मनवाले आपके मनोभिलषित इस सम्पूर्ण देवकार्यको मैंने भलीभाँति जान लिया॥ १०॥

अतः मैं देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये तथा बिना परिश्रम दैत्योंके विनाशके लिये आपको यह सुदर्शन नामक उत्तम चक्र देता हूँ॥ ११॥

हे देवेश! आपने सम्पूर्ण लोकोंको सुख देनेवाले मेरे जिस रूपको देखा है, उसे मैंने आपके हितके लिये धारण किया है, ऐसा आप निश्चित रूपसे जानिये। युद्धस्थलमें मेरे इस चक्रका, मेरे इस रूपका तथा सहस्रनामका स्मरण करनेपर देवताओंके दुःखका विनाश होगा; हे सुव्रत! जो लोग मेरे इस सहस्रनामस्तोत्रको सदा भक्तिपूर्वक सुनते हैं, उन्हें मेरी कृपासे सम्पूर्ण कामनाओंकी अविनाशिनी सिद्धि प्राप्त होती है॥ १२—१४॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर शिवजीने करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाला, अपने चरणोंसे उत्पन्न तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला वह सुदर्शनचक्र विष्णुको दे दिया। उस समय विष्णुने भी उत्तराभिमुख होकर अपनेको भलीभाँति संस्कार सम्पन्न करके उस चक्रको ग्रहण किया और पुनः महादेवको नमस्कारकर विष्णुने यह वचन कहा— ॥ १५-१६॥

विष्णुजी बोले—हे देव! हे प्रभो! हे लोकोंका कल्याण करनेवाले! आप सुनें, मुझे दुःखोंके नाशके लिये किसका ध्यान और किसका पाठ करना चाहिये, मुझे यह बताइये?॥ १७॥

सूतजी बोले—उनके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर सन्तुष्ट हुए वे शिवजी प्रसन्नचित्त होकर देवताओंके सहायक विष्णुसे कहने लगे— ॥ १८॥

शिवजी बोले—हे हरे! सम्पूर्ण उपद्रवोंकी शान्तिके लिये आपको मेरे इस रूपका ध्यान करना चाहिये और अनेक दुःखोंके नाशके लिये इस सहस्रनामका पाठ करना चाहिये॥ १९॥

हे विष्णो! आप समस्त अभीष्टोंकी सिद्धिके लिये सभी चक्रोंमें श्रेष्ठ मेरे इस चक्र सुदर्शनको प्रयत्नपूर्वक सर्वदा धारण कीजिये॥ २०॥

अन्य जो लोग नित्य इस शिवसहस्रनामस्तोत्रका पाठ करेंगे अथवा इसका पाठ करायेंगे, उन्हें स्वप्नमें भी दुःख नहीं होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २१॥

राजाओंके द्वारा संकट प्राप्त होनेपर यदि मनुष्य सांगोपांग विधिपूर्वक इस सहस्रनामकी सौ आवृत्ति करे, तो वह कल्याणको प्राप्त करता है॥ २२॥

यह उत्तम सहस्रनामस्तोत्र रोगोंका नाश करनेवाला, विद्या तथा वित्त प्रदान करनेवाला, सम्पूर्ण अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला, सदा शिवभक्ति देनेवाला तथा पुण्यप्रद है। जो मनुष्य जिस श्रेष्ठ फलको उद्देश्य करके इसका पाठ करेंगे, वे उस फलको प्राप्त करेंगे, यह ध्रुव सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २३-२४॥

जो प्रातःकाल उठकर नित्य मेरी पूजा करनेके उपरान्त मेरे सम्मुख इसका पाठ करता है, सिद्धि उससे दूर नहीं रहती। वह इस लोकमें समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त करता है और अन्तमें सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ २५-२६॥

सूतजी बोले—इतना कहकर प्रसन्न चित्तवाले कल्याणकारी शिवजीने अपने दोनों हाथोंसे विष्णुका स्पर्श करके पुनः उनसे कहा— ॥ २७॥

शिवजी बोले—हे सुरश्रेष्ठ! मैं वर देना चाहता हूँ। अतः आप यथेष्ट वरोंको माँगिये। हे सुव्रत! आपने अपनी भक्तिसे तथा इस स्तोत्रसे मुझे निश्चित रूपसे वशमें कर लिया है॥ २८॥

सूतजी बोले—देवाधिदेवके इस प्रकार कहनेपर विष्णुने उनको नमस्कार करके अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़कर यह वचन कहा— ॥ २९॥

विष्णुजी बोले—हे नाथ! हे प्रभो! जिस प्रकार

आपने मेरे ऊपर इस समय महती कृपा की है, कृपालु होनेके कारण इसी प्रकारकी कृपा विशेषरूपसे आगे भी करते रहें॥ ३०॥

हे महादेव! आपमें सदा मेरी भक्ति बनी रहे, मैं यही उत्तम वरदान चाहता हूँ। हे प्रभो! आप मुझपर प्रसन्न रहें और कभी भी आपके भक्तोंको कोई दुःख न हो, मैं अन्य और कुछ नहीं चाहता हूँ॥ ३१॥

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर अत्यन्त दयालु चन्द्रशेखर शिवजीने उन विष्णुके शरीरका स्पर्श किया और कहा—॥ ३२॥

शिवजी बोले—हे विष्णो! आपकी अविनाशिनी भक्ति मुझमें सदा रहेगी और आप लोकमें देवताओंसे भी वन्दनीय एवं पूज्य रहेंगे। हे देवश्रेष्ठ! मेरी कृपासे तुम्हारा नाम विश्वम्भर होगा, जो सभी पापोंको दूर करनेवाला होगा, इसमें संशय नहीं है॥ ३३-३४॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! ऐसा कहकर सभी देवताओंके स्वामी प्रभु रुद्र उन विष्णुके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये॥ ३५॥

भगवान् विष्णु भी शंकरके कथनानुसार उस उत्तम चक्रको प्राप्तकर अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुए। वे शिवका ध्यान करके निरन्तर इस स्तोत्रका पाठ करते रहे तथा भक्तोंको पढ़ाते रहे और उसीका उपदेश भी करते रहे॥ ३६-३७॥

हे मुनिश्रेष्ठो! आपलोगोंने जो पूछा था, उसे मैंने कह दिया, यह सुननेवालोंका पाप नष्ट करनेवाला है, इसके बाद आपलोग और क्या पूछना चाहते हैं?॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवसहस्रनामस्तोत्रफलवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

शिवकी पूजा करनेवाले विविध देवताओं, ऋषियों एवं राजाओंका वर्णन

ऋषिगण बोले—हे महाभाग सूत! हे सुव्रत! आप ज्ञानी हैं, आप शिवजीके चरित्रका ही विस्तारपूर्वक पुनः वर्णन करें। पुरातन ऋषियों, देवताओं एवं राजाओंने उन देवाधिदेव शिवकी ही आराधना की है॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! आपलोगोंने उत्तम बात पूछी है, आपलोग सुनें। अब मैं शंकरके मनोहर चरित्रका वर्णन आपलोगोंसे करता हूँ, जो सुननेवालोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करता है॥ ३॥

पूर्वकालमें नारदने यही बात ब्रह्माजीसे पूछी थी, तब उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर मुनिश्रेष्ठ नारदसे कहा था—॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! आप प्रेमसे सुनिये, मैं आपके स्नेहके कारण महापापोंका नाश करनेवाले शिवके श्रेष्ठ चरित्रका वर्णन करूँगा। लक्ष्मीसहित विष्णुने शिवजीकी पूजा की और परमेश्वरकी कृपासे उन्होंने समस्त मनोरथोंको प्राप्त किया॥ ५-६॥

हे तात! मैं ब्रह्मा भी शिवकी पूजा करता हूँ और उन्हींकी कृपासे सदा विश्वकी सृष्टि करता हूँ॥ ७॥

मेरे पुत्र परमर्षिगण भी नित्य शिवपूजन करते हैं एवं अन्य जो ऋषि हैं, वे भी शिवजीकी पूजा करते हैं। हे नारद! आप तो विशेष रूपसे शिवकी पूजा करते हैं, वसिष्ठादि सातों ऋषि भी शिवकी पूजा करते हैं॥ ८-९॥

महापतिव्रता अरुन्धती, लोपामुद्रा तथा गौतमस्त्री अहल्या भी शिवकी पूजा करनेवाली हैं॥ १०॥

दुर्वासा, कौशिक, शक्ति, दधीच, गौतम, कणाद, भार्गव, बृहस्पति, वैशम्पायन—ये सभी मुनि शिवजीकी पूजा करनेवाले कहे गये हैं। पराशर तथा व्यास भी सर्वदा शिवकी ही पूजामें लगे रहते हैं॥ ११-१२॥

उपमन्यु तो परमात्मा शिवके महाभक्त हैं। याज्ञवल्क्य, जैमिनि एवं गर्ग भी महाशैव हैं॥ १३॥

शुक, शौनक आदि ऋषि शिवकी भलीभाँति पूजा करनेवाले हैं। इसी प्रकार अन्य भी बहुत-से मुनि तथा

मुनिश्रेष्ठ हैं॥ १४॥

देवमाता अदिति अपनी पुत्रवधुओंके साथ प्रेमसे तत्पर हो प्रीतिपूर्वक नित्य पार्थिव शिवपूजन करती रहती हैं॥ १५॥

इन्द्र आदि लोकपाल, अष्टवसुगण, देवता, महाराजिक देवता तथा साध्यगण भी शिवका पूजन करते रहते हैं। गन्धर्व, किन्नर आदि उपदेवता शिवपूजक हैं एवं महात्मा असुरगण भी शिवके उपासक माने गये हैं॥ १६-१७॥

हे मुने! अपने छोटे भाई एवं पुत्रसहित हिरण्यकशिपु तथा विरोचन एवं बलि भी नित्य शिवपूजन करते थे। हे तात! बलिपुत्र बाण महाशैव कहा ही गया है तथा हिरण्याक्षपुत्र [अन्धक], दनुपुत्र वृषपर्वा आदि दानव भी शिवपूजक थे॥ १८-१९॥

शेष, वासुकि, तक्षक एवं अन्य महानाग तथा गरुड़ आदि पक्षी भी शिवभक्त हुए हैं॥ २०॥

हे मुनीश्वर! इस पृथ्वीपर वंशको चलानेवाले सूर्य एवं चन्द्र—वे दोनों भी अपने-अपने वंशजोंके सहित नित्य शिवपूजामें निरत रहते हैं॥ २१॥

हे मुने! स्वायम्भुव आदि मनु भी शैव वेष धारणकर विशेष रूपसे शिवपूजन करते थे॥ २२॥

प्रियव्रत, उनके पुत्र, उत्तानपादके पुत्र एवं उनके वंशमें उत्पन्न हुए सभी राजा शिवपूजन करनेवाले थे। ध्रुव, ऋषभ, भरत, नवयोगीश्वर एवं उनके अन्य भाई भी शिवपूजन करनेवाले थे॥ २३-२४॥

वैवस्वत मनु, उनके पुत्र इक्ष्वाकु आदि राजागण तथा तार्क्ष्य शिवपूजामें अपने चित्तको समर्पितकर निरन्तर सुखका भोग करनेवाले हुए हैं॥ २५॥

ककुत्स्थ, मान्धाता, शैवश्रेष्ठ सगर, मुचुकुन्द, हरिश्चन्द्र, कल्माषपाद, भगीरथ आदि राजाओं तथा बहुत-से अन्य श्रेष्ठ राजाओंको शैववेष धारण करनेवाला तथा शिवजीका पूजन करनेवाला जानना चाहिये॥ २६-२७॥

देवताओंकी सहायता करनेवाले महाराज खट्वांग विधानपूर्वक पार्थिव शिवमूर्तिका सदा पूजन किया करते थे। उनके पुत्र महाराज दिलीप भी सदा शिवपूजन करते थे तथा उनके पुत्र शिवभक्त रघु थे, जो प्रीतिसे शिवका पूजन करते थे॥ २८-२९॥

धर्मयुद्ध करनेवाले उनके पुत्र अज शिवकी पूजा करनेवाले थे और अजपुत्र महाराज दशरथ तो विशेष रूपसे शिवजीके पूजक थे॥ ३०॥

वे महाराज दशरथ पुत्रप्राप्तिके लिये वसिष्ठ मुनिकी आज्ञासे विशेषरूपसे पार्थिव शिवलिंगका पूजन करते थे। उन शिवभक्त नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथने श्रृंगी ऋषिकी आज्ञा प्राप्तकर पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान किया था॥ ३१-३२॥

उनकी पत्नी कौसल्या पुत्रप्राप्तिहेतु श्रृंगीऋषिकी आज्ञासे आनन्दपूर्वक शिवकी पार्थिवमूर्तिका अर्चन करती थीं। हे मुनिश्रेष्ठ! इसी प्रकार उन राजाकी प्रिय पत्नी सुमित्रा तथा कैकेयी भी श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिहेतु प्रेमपूर्वक शिवकी पूजा करती थीं॥ ३३-३४॥

हे मुने! उन सभी रानियोंने शिवजीकी कृपासे कल्याणकारी, महाप्रतापी, वीर तथा सन्मार्गपर चलनेवाले पुत्रोंको प्राप्त किया॥ ३५॥

उसके बाद शिवजीकी आज्ञासे स्वयं भगवान् विष्णु उन राजासे उन रानियोंके गर्भसे राजाके पुत्र होकर चार रूपोंसे प्रकट हुए। कौसल्यासे रामचन्द्र, सुमित्रासे लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न तथा कैकेयीसे भरत—ये उत्तम व्रतवाले पुत्र उत्पन्न हुए॥ ३६-३७॥

वे रामचन्द्र शैवागमके अनुसार विरजादीक्षामें दीक्षित हो गये और वे भस्म तथा रुद्राक्ष धारणकर भाइयोंसहित नित्य पार्थिवपूजन किया करते थे॥ ३८॥

हे मुने! उस वंशमें जितने भी राजा उत्पन्न हुए थे, वे सभी अपने अनुगामियोंके साथ पार्थिव शिवलिंगका पूजन किया करते थे॥ ३९॥

हे मुने! मनुपुत्र शिवभक्त महाराज सुद्युम्न शिवके शापसे* अपने सेवकोंसहित स्त्री हो गये थे॥ ४०॥

पुनः वे शिवकी पार्थिव मूर्तिका पूजन करनेसे उत्तम

* देवी पार्वतीकी इच्छापूर्तिहेतु भगवान् शंकरने अम्बिकावनको शापित कर दिया था कि जो भी पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा, वह स्त्रीरूप हो जायगा। (श्रीमद्भा० ९।१।३२)

पुरुष बन गये। वे एक मासतक स्त्री तथा एक मासतक पुरुष हो जाते थे, इस प्रकार वे स्त्रीत्वसे निवृत्त हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने राज्य त्यागकर शैव वेष धारणकर भक्तिपूर्वक शिवधर्ममें परायण हो दुर्लभ मोक्षको प्राप्त किया॥ ४१-४२॥

उनके पुत्र महाराज पुरूरवा भी शिवोपासक थे तथा उनके पुत्र भी देवाधिदेव शिवके पूजक हुए थे। महाराज भरत नित्य ही शिवकी महापूजा किया करते थे। इसी प्रकार महाशैव नहुष भी [निरन्तर] शिवकी पूजामें तत्पर रहते थे॥ ४३-४४॥

ययातिने भी शिवपूजाके प्रभावसे अपने सभी मनोरथ प्राप्त किये और [शिवकी कृपासे] शिवधर्मपरायण पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया। उन ययातिके यदु आदि पाँचों पुत्र शिवाराधक हुए और शिवकी पूजाके प्रभावसे उन सभीने अपनी समस्त कामनाएँ पूर्ण कीं॥ ४५-४६॥

हे मुने! इसी प्रकार उनके वंशवाले तथा अन्य वंशवाले जो अन्य महाभाग्यवान् राजागण थे, उन्होंने भी भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले शिवकी पूजा की थी॥ ४७॥

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने पर्वतश्रेष्ठ हिमालयके बदरिकाश्रममें स्थित होकर सात मासपर्यन्त नित्य शिवका ही पूजन किया और प्रसन्न हुए भगवान् शंकरसे अनेक दिव्य वरदान प्राप्तकर सम्पूर्ण जगत्‌को अपने वशमें कर लिया॥ ४८-४९॥

हे तात! उनके पुत्र प्रद्युम्न सदा शिवकी पूजा करते थे तथा कृष्णके साम्ब आदि अन्य प्रमुख पुत्र भी शिवपूजक थे। जरासन्ध तो महाशैव था ही, उसके वंशवाले राजा भी शिवपूजक थे। महाशैव निमि, जनक तथा उनके पुत्र भी शिवपूजक थे॥ ५०-५१॥

वीरसेनके पुत्र राजा नलने भी शिवकी पूजा की थी, जो पूर्वजन्ममें वनके भील होकर पथिकोंकी रक्षा किया करते थे। पूर्वकालमें उस भीलने शिवलिंगके पास किसी संन्यासीकी रक्षा की थी और वह स्वयं [अतिथि-रक्षारूप] धर्मपालनके प्रसंगमें रात्रिमें बाघ आदिके द्वारा भक्षण कर लेनेसे मर गया। उसी पुण्यप्रभावके वह भील [दूसरे जन्ममें] चक्रवर्ती महाराज नल हुआ, जो दमयन्तीका प्रिय पति था॥ ५२—५४॥

हे तात! हे अनघ! आपने शिवजीका जो दिव्य चरित्र पूछा था, वह सब मैं निवेदन किया, अब और क्या पूछना चाहते हैं?॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें देवर्षिनृपशैवत्ववर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके विविध व्रतोंमें शिवरात्रिव्रतका वैशिष्ट्य

ऋषि बोले—हे तात! आप धन्य हैं। कृतकृत्य हैं और आपका जीवन सफल है जो आप हमलोगोंको महेश्वरकी कल्याणकारी कथा सुना रहे हैं॥ १॥

हे सूतजी! यद्यपि हमलोगोंने बहुत-से ऋषियोंसे परमार्थतत्त्वका श्रवण किया है, किंतु हमारा संशय अभीतक नहीं गया, इसीलिये आपसे पूछ रहे हैं। किस व्रतसे सन्तुष्ट होकर शिवजी उत्तम सुख प्रदान करते हैं? आप शिवकृत्यमें कुशल हैं, इसलिये हमलोग आपसे पूछ रहे हैं। हे व्यासशिष्य! जिस व्रतके करनेसे शिवभक्तोंको भोग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है, उसे आप विस्तारसे कहिये, आपको नमस्कार है॥ २—४॥

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! दयायुक्त चित्त-वाले आपलोगोंने अच्छा प्रश्न किया है, मैंने जैसा सुना है, वैसा ही शिवके चरणकमलका ध्यानकर कहता हूँ॥ ५॥

जिस प्रकार आपलोगोंने मुझसे पूछा है, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा पार्वतीने शिवजीसे पूछा था॥ ६॥

किसी समय उन लोगोंने परमात्मा शिवजीसे पूछा था कि आप किस व्रतसे सन्तुष्ट होकर भोग तथा मोक्ष

प्रदान करते हैं ? ॥ ७ ॥

उस समय विष्णु आदि उन सभीके ऐसा पूछनेपर शिवजीने जैसा कहा था, मैं भी उसीका वर्णन कर रहा हूँ, जो सुननेवालोंके पापको दूर करनेवाला है ॥ ८ ॥

शिवजी बोले—भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले मेरे अनेक व्रत हैं, उनमें दस व्रतोंको मुख्य जानना चाहिये। वेदज्ञाता जाबाल आदि महर्षियोंने शिवके दस व्रतोंको बताया है। द्विजातियोंको सदा उन्हीं व्रतोंको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये ॥ ९-१० ॥

हे विष्णो! प्रत्येक अष्टमीके [दिनमें उपवासकर] रात्रिकालमें भोजन करना चाहिये, किंतु कालाष्टमीमें विशेषरूपसे [रात्रिमें भी] भोजनका त्याग करना चाहिये ॥ ११ ॥

हे विष्णो! शुक्लपक्षकी एकादशीके अवसरपर दिनमें भोजनका त्याग करना चाहिये, किंतु हे हरे! कृष्णपक्षकी एकादशीमें मेरा पूजनकर रात्रिमें भोजन कर लेना चाहिये। शुक्लपक्षकी त्रयोदशीको रात्रिमें भोजन करे, किंतु कृष्णपक्षकी त्रयोदशी प्राप्त होनेपर शिवव्रतधारियोंको भोजन नहीं करना चाहिये ॥ १२-१३ ॥

हे विष्णो! दोनों पक्षोंमें सोमवारके दिन यत्नपूर्वक शिवव्रत करनेवालोंको रात्रिमें भोजन करना चाहिये ॥ १४ ॥

हे द्विजश्रेष्ठो! इन सभी व्रतोंके समाप्त होनेपर व्रतकी सम्पूर्णताके लिये यथाशक्ति शैवोंको भोजन कराना चाहिये। द्विजातियोंको इन व्रतोंका अनुष्ठान नियमपूर्वक करना चाहिये, इन व्रतोंका त्याग करनेपर द्विज [दूसरे जन्ममें] तस्कर [चोर] होते हैं ॥ १५-१६ ॥

मुक्तिमार्गमें प्रवीण लोगोंको ये व्रत नियमपूर्वक करने चाहिये। ये चारों मुक्ति देनेवाले कहे गये हैं। शिवजीका पूजन, रुद्रमन्त्रका जप, शिवालयमें उपवास और काशीमें मरण—ये सनातनी मुक्तिके उपाय हैं ॥ १७-१८ ॥

सोमवारसे युक्त अष्टमी तथा कृष्णपक्षकी चतुर्दशी—इन दो तिथियोंमें व्रत करनेसे शिवजी सन्तुष्ट होते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ १९ ॥

हे हरे! [पूर्वोक्त] चारों व्रतोंसे शिवरात्रिव्रत विशेष बलवान् होता है, अतः भोग एवं मोक्षकी इच्छावालोंको वही व्रत करना चाहिये। इस व्रतके अलावा मनुष्योंका हितकारक कोई दूसरा व्रत नहीं है। यह व्रत सभीके लिये उत्तम धर्मसाधन है ॥ २०-२१ ॥

हे हरे! सकाम अथवा निष्काम भाव रखनेवाले सभी मनुष्यों, वर्णों, आश्रमों, स्त्रियों, बालकों, दास-दासियों, देवगणों तथा समस्त प्राणियोंके लिये यह श्रेष्ठ व्रत हितकारक है ॥ २२-२३ ॥

माघमासके कृष्णपक्षमें शिवचतुर्दशी अत्यन्त विशिष्ट कही गयी है। अर्धरात्रिकालकी चतुर्दशीको ही ग्रहण करना चाहिये; यह करोड़ों हत्याओंका विनाश करनेवाली है। हे केशव! उस दिन प्रातःकालसे आरम्भकर जो करना चाहिये, उसे मन लगाकर प्रीतिपूर्वक सुनिये, उसे मैं आपसे कहता हूँ ॥ २४-२५ ॥

विद्वान्‌को चाहिये कि प्रातःकाल उठकर आलस्यरहित हो परम आनन्दसे युक्त होकर स्नान आदि नित्यकर्म करे। इसके बाद शिवालयमें जाकर यथाविधि शिवजीका पूजनकर उन्हें नमस्कार करके बादमें इस प्रकार संकल्प करना चाहिये ॥ २६-२७ ॥

हे देवदेव! हे महादेव! हे नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है। हे देव! मैं आपका शिवरात्रिव्रत करना चाहता हूँ। हे देवेश! आपके प्रभावसे यह व्रत विघ्नोंसे रहित हो और कामादि शत्रु मुझे [किसी प्रकारकी] पीड़ा न पहुँचायें ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार संकल्पकर पूजासामग्री एकत्रित करे। सुन्दर स्थलपर जो शास्त्रप्रसिद्ध शिवलिंग हो, वहाँ स्वयं रात्रिमें जाकर उत्तम विधि सम्पादित करके शिवके दाहिने अथवा पश्चिम भागमें शुभ स्थानमें पूजाहेतु उस सामग्रीको शिवके समीप रखकर पुनः व्रती पुरुष वहाँ विधिपूर्वक स्नान करे ॥ ३०—३२ ॥

तत्पश्चात् पवित्र वस्त्र तथा उपवस्त्र धारण करनेके उपरान्त तीन बार आचमन करके पूजाका आरम्भ करना चाहिये। जिस मन्त्रका जो द्रव्य (नियत) हो, उस मन्त्रको पढ़कर उसी द्रव्यके द्वारा पूजन करना चाहिये। बिना मन्त्रके शिवका पूजन नहीं करना चाहिये ॥ ३३-३४ ॥

भक्तिभावसे युक्त गीत, वाद्य तथा नृत्यके साथ प्रथम प्रहरमें पूजन करके बुद्धिमान्‌को मन्त्रका जप करना चाहिये। यदि मन्त्रज्ञ पुरुषने उस समय पार्थिव लिंगका निर्माण किया हो तो नित्यक्रिया करनेके अनन्तर पार्थिवपूजन ही करे॥ ३५-३६॥

सर्वप्रथम पार्थिव लिंगका निर्माणकर बादमें उसकी स्थापना करे और नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे प्रभु वृषभध्वजको सन्तुष्ट करे। उसके बाद बुद्धिमान् श्रेष्ठ भक्त शिवरात्रिव्रतकी समाप्तिका फल प्राप्त करनेके लिये व्रतसम्बन्धी माहात्म्य पढ़े अथवा सुने॥ ३७-३८॥

रात्रिके चारों प्रहरोंमें शिवकी चार मूर्तियों (पार्थिव लिंगों)-का निर्माण करके क्रमशः आवाहनसे लेकर विसर्जनपर्यन्त पूजन करे और रात्रिमें प्रेमसे महोत्सवपूर्वक जागरण करे। पुनः प्रातःकाल उठकर स्नान करनेके बाद शिवकी स्थापना तथा पूजा करनी चाहिये॥ ३९-४०॥

इस प्रकार व्रत समाप्त करके सिर झुकाकर हाथ जोड़कर शिवको बारंबार नमस्कारकर यह प्रार्थना करे—हे महादेव! हे स्वामिन्! आपकी आज्ञासे मैंने जो व्रत ग्रहण किया था, वह उत्तम व्रत सम्पूर्ण हो गया, अब मैं व्रतका विसर्जन करता हूँ। हे देवेश! हे शर्व! [मेरे द्वारा] यथाशक्ति किये गये व्रतसे आप आज सन्तुष्ट हों और मेरे ऊपर दया करें॥ ४१—४३॥

इसके बाद शिवजीको पुष्पांजलि समर्पितकर यथाविधि दान दे और शिवको नमस्कारकर उस नियमकी समाप्ति करे। शैव ब्राह्मणोंको तथा विशेषकर संन्यासियोंको शक्तिके अनुसार भोजन करा करके उन्हें भलीभाँति सन्तुष्टकर स्वयं भोजन करे॥ ४४-४५॥

हे हरे! शिवरात्रिमें श्रेष्ठ भक्तोंको जिस प्रकार प्रत्येक प्रहरमें शिवजीकी विशेष पूजा करनी चाहिये, उसे मैं आपसे कहता हूँ। हे हरे! प्रथम प्रहरमें अनेक उत्तम उपचारोंसे परम भक्तिपूर्वक स्थापित पार्थिव लिंगका पूजन करना चाहिये॥ ४६-४७॥

सर्वप्रथम [गन्ध-पुष्पादि] पाँच द्रव्योंसे सदाशिवका पूजन करे और उस-उस वस्तुसे सम्बन्धित मन्त्रसे पृथक्-पृथक् द्रव्योंको समर्पित करे। उन द्रव्योंको समर्पित करनेके पश्चात् जलधारा अवश्य प्रदान करे। बादमें बुद्धिमान् पुरुष जलधारासे ही [समर्पित] द्रव्योंको उतारे॥ ४८-४९॥

एक सौ आठ बार शिवमन्त्र [**'ॐ नमः शिवाय'**] पढ़कर जलधारासे निर्गुण होते हुए भी सगुण हुए शिवकी पूजा करे। गुरुके द्वारा दिये गये मन्त्रसे शिवकी पूजा करनी चाहिये अथवा नाममन्त्रसे ही सदाशिवका पूजन करे। सुगन्धित चन्दन, अखण्डित अक्षत तथा काले तिलोंसे परात्मा शम्भुकी पूजा करनी चाहिये॥ ५०—५२॥

सौ पंखुड़ियोंवाले कमलपुष्पों तथा कनेरके पुष्पोंसे शिवका पूजन करना चाहिये। शिवके आठों नाममन्त्रोंसे शिवजीको पुष्प अर्पित करने चाहिये। भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम एवं ईशान—ये [आठ] नाम हैं। इन नामोंको श्रीसे युक्त, चतुर्थ्यन्त [नाममन्त्र] बनाकर इनसे शिवकी पूजा करे और बादमें धूप, दीप तथा नैवेद्य समर्पित करे। विद्वान्‌को चाहिये कि प्रथम प्रहरमें पक्वान्नका नैवेद्य समर्पण करे तथा श्रीफलसे युक्त अर्घ्य देकर ताम्बूल समर्पित करे॥ ५३—५६॥

उसके अनन्तर नमस्कार तथा ध्यान करके गुरुसे प्राप्त मन्त्रका जप करे अथवा उसी पंचाक्षरमन्त्रसे शिवको सन्तुष्ट करे॥ ५७॥

उसके बाद धेनुमुद्रा दिखाकर निर्मल जलसे शिवका तर्पण करे और अपने सामर्थ्यके अनुसार पाँच ब्राह्मणोंको भोजन कराये। जबतक प्रहर न बीते, तबतक महोत्सव करे। इसके बाद शिवको पूजाका फल समर्पितकर विसर्जन करे॥ ५८-५९॥

तदनन्तर द्वितीय प्रहर प्राप्त होनेपर अच्छी प्रकारसे संकल्प करे अथवा सभी प्रहरोंका एक साथ संकल्प करके उसी प्रकारकी पूजा करे। पूर्ववत् पाँच द्रव्योंसे पूजा करके धारा समर्पित करे। मन्त्र पढ़कर पहलेकी अपेक्षा दो गुना शिवार्चन करना चाहिये॥ ६०-६१॥

पहलेके रखे गये तिल, यव एवं कमलपुष्पोंसे शिवकी पूजा करे, विशेषकर बिल्वपत्रोंसे परमेश्वरका पूजन करना चाहिये। बीजपूर (बिजौरा)-के साथ अर्घ्य देकर खीरका नैवेद्य समर्पित करे। हे जनार्दन! मन्त्रकी

आवृत्ति पहलेसे भी दुगुनी होनी चाहिये। उसके बाद ब्राह्मणभोजनका संकल्प करे। दूसरे प्रहरकी समाप्तितक अन्य सब कुछ पहले प्रहरकी भाँति करे॥ ६२—६४॥

तीसरा प्रहर प्राप्त होनेपर पूर्वकी भाँति ही पूजन करे। यवके स्थानपर गोधूम चढ़ाये तथा [विशेष रूपसे] आकके पुष्प अर्पित करे। हे विष्णो! अनेक प्रकारके धूपों, नानाविध दीपों, नैवेद्यके रूपमें मालपुओं एवं अनेक प्रकारके शाकोंसे पूजनकर कर्पूरसे आरती करे। अनारके साथ अर्घ्य प्रदान करे तथा पूर्वकी अपेक्षा दूना जप करे। इसके बाद दक्षिणासहित ब्राह्मणभोजनका संकल्प करे। इस प्रकार तृतीय प्रहरकी समाप्तिपर्यन्त पूर्ववत् उत्सव करे॥ ६५—६८॥

चौथे प्रहरके आनेपर उनका विसर्जन करे। इसके बाद पुनः पूर्ववत् समस्त प्रयोगकर विधिवत् पूजन करे। उड़द, कंगुनी, मूँग, सप्तधान्य, शंखपुष्पी और बिल्वपत्रोंसे परमेश्वरका पूजन करे॥ ६९-७०॥

अनेक प्रकारके मधुर पदार्थोंसे बना हुआ नैवेद्य अर्पित करे। अथवा उड़दके पक्वान्नसे सदाशिवको सन्तुष्ट करे। हे हरे! केलेके फलोंसे युक्त शिवजीको अर्घ्य प्रदान करे अथवा अन्य विविध प्रकारके फलोंसे अर्घ्य प्रदान करे॥ ७१-७२॥

सज्जन पुरुष पहलेसे दूना मन्त्रजप करे, उसके बाद विद्वान्‌को चाहिये कि यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनका संकल्प करे। भक्तिपूर्वक भक्तजनोंके साथ गीतों, वाद्यों, नृत्यों तथा महोत्सवोंके द्वारा अरुणोदयपर्यन्त कालयापन करना चाहिये॥ ७३-७४॥

सूर्यके उदित होनेपर पुनः स्नानकर अनेक पूजनोपचारों तथा उपहारोंसे शिवार्चन करे। उस समय [ब्राह्मणोंके द्वारा] अपना अभिषेक करवाये। पुनः अनेक प्रकारके दान देकर प्रहरोंमें संकल्पित ब्राह्मणों एवं संन्यासियोंको विविध प्रकारका भोजन कराये॥ ७५-७६॥

तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष शिवजीको नमस्कारकर पुष्पांजलि अर्पित करे और उत्तम स्तुति करके निम्नांकित मन्त्रोंसे प्रार्थना करे—हे मृड! हे कृपानिधे! मैं आपका हूँ, मेरे प्राण एवं चित्त सदा आपके आश्रित हैं—ऐसा जानकर जो उचित हो, वैसा आप करें॥ ७७-७८॥

हे भूतनाथ! मैंने ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे जो भी जप, पूजन आदि किया है, कृपानिधि होनेसे उसे जान करके आप प्रसन्न हों॥ ७९॥

हे प्रभो! इस उपवासके द्वारा जो फल प्राप्त हुआ है, उससे सुखदायक आप शंकरदेव प्रसन्न हों। हे महादेव! मेरे कुलमें सर्वदा आपका भजन होता रहे, मेरा जन्म उस कुलमें न हो, जिसमें आप कुलदेवता न हों॥ ८०-८१॥

इस प्रकार पुष्पांजलि समर्पित करके ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद एवं तिलक ग्रहण करे, इसके बाद शिवका विसर्जन करे। [हे विष्णो!] जिसने इस प्रकार मेरा व्रत किया, मैं उससे दूर नहीं रहता, उसके फलका वर्णन नहीं किया जा सकता और उस भक्तके लिये मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं है॥ ८२-८३॥

जिसने अनायास भी इस उत्तम व्रतको किया, उसमें मानो मुक्तिका बीज ही अंकुरित हो गया हो, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। मनुष्योंको प्रत्येक महीनेमें भक्तिपूर्वक यह व्रत करना चाहिये। तत्पश्चात् इसका उद्यापन करके मनुष्य सांगोपांग फल प्राप्त कर लेता है॥ ८४-८५॥

[हे विष्णो!] इस व्रतको करनेपर मैं शिव निश्चित रूपसे सारे दुःखोंको दूर करता हूँ और भोग, मोक्ष तथा सम्पूर्ण वांछित फल प्रदान करता हूँ॥ ८६॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] शिवजीके इस कल्याणकारी एवं अद्भुत [फल देनेवाले] व्रतको सुनकर विष्णुजी अपने धामको लौट आये और तत्पश्चात् अपना सर्वविध कल्याण चाहनेवाले [श्रद्धालु] मनुष्योंमें इस व्रतका प्रचार हुआ॥ ८७॥

किसी समय विष्णुजीने भोग तथा मोक्ष देनेवाले इस दिव्य शिवरात्रिव्रतका वर्णन नारदजीसे किया था॥ ८८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें व्याधेश्वरमाहात्म्यमें शिवरात्रिव्रत-महिमानिरूपणवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

शिवरात्रिव्रतकी उद्यापन-विधिका वर्णन

ऋषिगण बोले—[हे सूत!] अब आप शिवरात्रिव्रतके उद्यापनका विधान कहिये, जिसके करनेसे साक्षात् शंकरजी निश्चित रूपसे प्रसन्न होते हैं॥ १॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! आपलोग उसके उद्यापनको भक्तिपूर्वक सुनें, जिसके करनेसे निश्चित रूपसे शिवरात्रिव्रत पूर्ण हो जाता है॥ २॥

इस शुभ शिवरात्रिव्रतका अनुष्ठान चौदह वर्षोंतक करना चाहिये। त्रयोदशीको एक बार भोजनकर चतुर्दशीको उपवास करना चाहिये॥ ३॥

शिवरात्रिका दिन आनेपर नित्यक्रियाकर शिवालयमें जाकर विधिपूर्वक पूजन करनेके अनन्तर वहाँ प्रयत्नपूर्वक दिव्य मण्डलका निर्माण कराना चाहिये, जो लोकमें गौरीतिलकके नामसे प्रसिद्ध है॥ ४-५॥

उसके बीचमें लिंगतोभद्रमण्डल बनाना चाहिये अथवा मण्डपके अन्दर सर्वतोभद्रमण्डलका निर्माण करना चाहिये। वहाँपर वस्त्र, फल एवं दक्षिणा-सहित प्राजापत्यसंज्ञक शुभ कलशोंको स्थापित करे और उन्हें मण्डलके पासमें प्रयत्नपूर्वक स्थापित करके उसके मध्यमें सुवर्णका एक अन्य घट भी स्थापित करे॥ ६—८॥

उसपर एक पल या आधे पलकी अथवा अपने सामर्थ्यके अनुसार पार्वतीसहित शिवकी सुवर्णमय मूर्ति बनाकर बड़ी सावधानीके साथ बायीं ओर पार्वतीकी प्रतिमा रखकर एवं दाहिनी ओर शिवकी प्रतिमा रखकर व्रती रात्रिमें पूजन करे॥ ९-१०॥

पवित्र आचरण करनेवाले ऋत्विजोंसहित आचार्यका वरण करे और उनकी आज्ञा लेकर भक्तिपूर्वक शिवार्चन प्रारम्भ करे। व्रतीको चाहिये कि रात्रिमें जागरण करे और प्रत्येक प्रहरकी पूजा करते हुए गीत, नृत्य आदिके साथ सारी रात व्यतीत करे॥ ११-१२॥

इस प्रकार विधिवत् पूजनकर शिवको सन्तुष्ट करके पुनः प्रातःकाल होनेपर पूजनकर यथाविधि हवन करे। यथाशक्ति प्राजापत्यव्रतका विधान करे, प्रेमपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये और भक्तिपूर्वक दान दे॥ १३-१४॥

उसके बाद सपत्नीक ऋत्विजोंको वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणोंसे विधानपूर्वक अलंकृतकर अलग-अलग दान देना चाहिये। शिवजी मुझपर प्रसन्न हों—ऐसा कहकर आचार्यको विधानके अनुसार बछड़ेसहित सभी सामग्रियोंसे संयुक्त धेनु प्रदान करे॥ १५-१६॥

उसके अनन्तर कलश, वस्त्र तथा सभी आभूषणों-सहित वृषभपर स्थित उस मूर्तिको आचार्यको प्रदान करे॥ १७॥

उसके बाद हाथ जोड़कर सिर झुकाकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीसे महाप्रभु महेश्वरसे प्रार्थना करे। हे देव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे देवेश! इस व्रतसे [सन्तुष्ट हो] आप मेरे ऊपर कृपा करें। हे शिव! मैंने भक्तिके अनुसार यह व्रत किया है। हे शंकर! इसमें जो न्यूनता रह गयी हो, वह आपकी कृपासे सम्पूर्णताको प्राप्त हो। हे शंकर! मैंने ज्ञान अथवा अज्ञानसे जो कुछ जप-पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो॥ १८—२१॥

इस प्रकार परमात्मा शिवको पुष्पांजलि समर्पितकर नमस्कार करे एवं पुनः प्रार्थना करे॥ २२॥

[हे ऋषियो!] इस प्रकार जिसने इस व्रतको किया है, उसे कोई कमी नहीं रहती है और वह मनोभिलषित सिद्धि प्राप्त करता है। इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवरात्रिव्रतोद्यापन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यके प्रसंगमें व्याध एवं मृगपरिवारकी कथा तथा व्याधेश्वरलिंगका माहात्म्य

ऋषिगण बोले—हे सूत! आपकी वाणीको सुनकर हमलोग अत्यन्त आनन्दित हुए। आप उसी उत्तम व्रतको प्रीतिसे विस्तारपूर्वक कहिये॥ १॥

हे सूत! यहाँपर इस उत्तम व्रतको पहले किसने किया तथा अज्ञानतापूर्वक भी इस व्रतको करनेसे [उसको] कौन-सा उत्तम फल प्राप्त हुआ?॥ २॥

सूतजी बोले—हे ऋषिगणो! मैं [इस विषयमें] एक निषादका सर्वपापनाशक पुराना इतिहास कहता हूँ, आप सभी लोग सुनिये॥ ३॥

पूर्व समयमें किसी वनमें गुरुद्रुह नामक कोई बलवान्, निर्दयी तथा क्रूरकर्ममें तत्पर भील कुटुम्बके साथ रहता था। वह सदैव वनमें जाकर प्रतिदिन पशुओंका वध करता था और वहीं वनमें निवास करते हुए अनेक प्रकारकी चोरी किया करता था॥ ४-५॥

उसने बाल्यावस्थासे लेकर कभी कोई शुभ कर्म नहीं किया। इस प्रकार वनमें उस दुष्टात्माका बहुत समय बीत गया। किसी समय शिवरात्रिका उत्तम दिन आया, परंतु विशाल वनमें निवास करनेवाले उस दुष्टात्माको इसका कुछ भी ज्ञान न था॥ ६-७॥

इसी समय भूखसे पीड़ित उसके माता-पिता तथा स्त्रीने उससे कहा—हे वनेचर! हमें भोजन दो॥ ८॥

उनके ऐसा कहनेपर वह भील भी धनुष लेकर शीघ्र ही मृगोंको मारनेके लिये सारे वनमें घूमने लगा॥ ९॥

दैवयोगसे उस समय उसे कुछ भी न मिला, तबतक सूर्यास्त हो गया, इससे वह बहुत दुखी हुआ॥ १०॥

अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? आज मुझे कुछ भी नहीं मिला। घरमें जो बालक हैं, उनकी तथा माता-पिताकी क्या दशा होगी और जो मेरी स्त्री है, उसका क्या हाल होगा, अतः मुझे कुछ लेकर ही जाना चाहिये, बिना भोजन लिये घर जाना व्यर्थ होगा। ऐसा विचारकर वह व्याध किसी जलाशयके समीप गया और जहाँ जलमें उतरनेके लिये घाट था, वहाँ जाकर बैठ गया॥ ११—१३॥

इस स्थानपर जल पीनेके लिये कोई जन्तु अवश्य ही आयेगा, तब उसे मारकर मैं अपना कार्य सिद्ध करके आनन्दपूर्वक अपने घर चला जाऊँगा॥ १४॥

इस प्रकारका विचारकर वह भील जल लेकर पास ही स्थित किसी बिल्ववृक्षपर चढ़कर बैठ गया॥ १५॥

कब कोई जीव आये और कब मैं उसे मारूँ—ऐसा मनमें विचार करता हुआ वह भूखा-प्यासा व्याध वहाँ बैठा रहा॥ १६॥

उस रातके प्रथम प्रहरमें प्याससे व्याकुल एक हरिनी चकित हो कूदती-फाँदती वहाँ आयी॥ १७॥



तब उसे देखकर उसने प्रसन्न हो उसे मारनेके लिये शीघ्र ही अपने धनुषपर बाण चढ़ाया॥ १८॥

उसके ऐसा करते ही जल तथा कुछ बिल्वपत्र नीचे गिर पड़े, जहाँपर एक शिवलिंग था। इस प्रकार प्रथम प्रहरकी शिव-पूजा व्याधके द्वारा सम्पन्न हो गयी, जिसकी महिमासे उसके पाप नष्ट हो गये॥ १९-२०॥

वहाँके उस शब्दको सुनकर भयसे व्याकुल हरिणी व्याधको देखकर यह वचन कहने लगी— ॥ २१ ॥

मृगी बोली—हे व्याध! तुम क्या करना चाहते हो, मेरे सामने सच-सच बताओ? तब हरिणीकी वह बात सुनकर व्याधने यह वचन कहा— ॥ २२ ॥

व्याध बोला—आज मेरा सारा परिवार भूखा है, मैं तुम्हें मारकर उन्हें तृप्त करूँगा। तब उसके इस दारुण वचनको सुनकर एवं उस महादुष्टको देखकर 'मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ, अच्छा! कोई उपाय करती हूँ' —ऐसा विचारकर वहाँपर उसने यह वचन कहा— ॥ २३-२४ ॥

मृगी बोली—[हे व्याध!] यदि मेरे अनर्थकारी देहके मांससे तुम्हें सुख प्राप्त हो जाय, तो इससे अधिक पुण्य और क्या हो सकता है, मैं निःसन्देह धन्य हो जाऊँगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥

लोकमें उपकारी जीवको जो पुण्य होता है, उस पुण्यका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है। किंतु [तुमसे एक विनती करती हूँ कि] मेरे सभी बच्चे इस समय मेरे आश्रममें हैं, उन्हें अपनी बहन अथवा स्वामीको सौंपकर मैं पुनः आ जाऊँगी ॥ २६-२७ ॥

हे वनेचर! तुम मेरी बातको झूठ मत जानो, मैं अवश्य यहाँ तुम्हारे पास पुनः आ जाऊँगी, इसमें सन्देह नहीं। सत्यसे ही यह पृथ्वी टिकी हुई है, सत्यसे ही समुद्र तथा सत्यसे जलकी धारा बहती है, सब कुछ सत्यमें ही प्रतिष्ठित है ॥ २८-२९ ॥

सूतजी बोले—उसके इस प्रकार कहनेपर भी जब उस व्याधने उसकी बात नहीं मानी, उसका कहना नहीं माना तब विस्मित एवं भयभीत उस हरिणीने पुनः यह वचन कहा— ॥ ३० ॥

मृगी बोली—हे व्याध! मैं जो कहती हूँ, उसे सुनो, मैं शपथ लेकर कहती हूँ कि यदि मैं जा करके अपने घरसे तुम्हारे पास न लौटूँ, तो वेदविक्रयी एवं त्रिकाल सन्ध्योपासनहीन ब्राह्मणको तथा अपने स्वामीकी आज्ञाका उल्लंघन करके कर्ममें तत्पर रहनेवाली स्त्रियोंको जो पाप लगता है, कृतघ्नको जो पाप लगता है, शिवविमुखको जो पाप लगता है, परद्रोहीको जो पाप लगता है, धर्मका उल्लंघन करनेवालेको जो पाप लगता है। विश्वासघाती एवं छल करनेवालेको जो पाप लगता है, वह सब पाप मुझे लगे, यदि मैं तुम्हारे पास पुनः न लौटूँ ॥ ३१—३४ ॥

इस प्रकार अनेक शपथ करके जब वह हरिणी वहीं खड़ी रही, तब उस भीलने विश्वास करके 'घर जाओ'—ऐसा कह दिया। तब हरिणी प्रसन्न होकर जल पी करके अपने स्थानको चली गयी। तबतक उसका प्रथम प्रहर बिना निद्राके बीत गया ॥ ३५-३६ ॥

[इसी बीच] उसकी बहन जो दूसरी हरिणी थी, वह उत्कण्ठापूर्वक उसे खोजती हुई जल पीनेके लिये वहाँ आ गयी ॥ ३७ ॥

उसे देखकर भीलने बाणको [पुनः] खींचा, जिससे पहलेके समान ही जल तथा बिल्वपत्र शिवजीके ऊपर गिर पड़े। उसके कारण संयोगवश महात्मा सदाशिवकी दूसरे प्रहरकी भी पूजा हो गयी। जो व्याधके लिये सुखप्रद थी ॥ ३८-३९ ॥

उस हरिणीने उसकी ओर देखकर कहा—'हे वनेचर! यह क्या कर रहे हो?' उसने पहलेकी भाँति [अपना प्रयोजन] कहा। यह सुनकर उस मृगीने पुनः कहा— ॥ ४० ॥

मृगी बोली—हे व्याध! सुनो, मैं धन्य हूँ। आज मेरा देह धारण करना सफल हुआ; क्योंकि इस अनित्य शरीरसे उपकार होगा, परंतु मेरे बच्चे घरपर हैं, उन्हें मैं अपने स्वामीको सौंपकर पुनः यहाँ आ जाऊँगी ॥ ४१-४२ ॥

व्याध बोला—मैं तुम्हारी बात नहीं मानता, तुम्हें अवश्य मारूँगा, इसमें संशय नहीं है। यह सुनकर हरिणी विष्णुकी शपथ करती हुई कहने लगी ॥ ४३ ॥

मृगी बोली—हे व्याध! मैं जो कहती हूँ, उसे सुनो, यदि मैं पुनः न आऊँ तो अपनी बातसे विचलित होनेवालेका जिस प्रकार सुकृत नष्ट हो जाता है अथवा जो मनुष्य अपनी विवाहिता स्त्रीको छोड़कर दूसरी स्त्रीसे समागम करता है, जो वेदधर्मका उल्लंघनकर मनमाने मार्गसे चलता है, विष्णुभक्त होकर जो शिवकी निन्दा करता है, माता-पिताके क्षयाहके आनेपर जो [बिना श्राद्धादि किये] उसे सूना ही बिता देता है, अपने दिये

हुए वचनको जो सन्तापका अनुभव करते हुए पूरा करता है—इन्हें जो पाप लगता है, वह पाप मुझे लगे, यदि मैं न आऊँ॥ ४४—४७॥

सूतजी बोले—उसके ऐसा कहनेपर व्याधने मृगीसे कहा—जाओ। तब वह मृगी भी प्रसन्न हो जल पीकर अपने स्थानपर चली गयी॥ ४८॥

तबतक उस व्याधका दूसरा प्रहर भी बिना निद्राके बीत गया। इसी समय तीसरा प्रहर आनेपर मृगीके आनेमें विलम्ब जानकर वह चकित हो उसे ढूँढ़ने लगा। तब उस प्रहरमें उसे एक मृग जलमार्गकी ओर आता हुआ दिखायी पड़ा॥ ४९-५०॥

उस पुष्ट मृगको देखकर वह व्याध बहुत ही प्रसन्न हुआ और धनुषपर बाण चढ़ाकर उसे मारनेके लिये उद्यत हो गया। हे द्विजो! उस समय भी उस व्याधके ऐसा करते ही उसके प्रारब्धवश कुछ बिल्वपत्र शिवजीके ऊपर गिर पड़े॥ ५१-५२॥

इस प्रकार उस रात्रिमें उस भीलके भाग्यसे तीसरे प्रहरकी भी शिवपूजा हो गयी, इस तरहसे शिवजीने उसके ऊपर अपनी कृपालुता प्रकट की॥ ५३॥

वहाँ उस शब्दको सुनकर उस मृगने कहा—[हे वनेचर!] यह क्या कर रहे हो? तब वह व्याध बोला कि मैं अपने कुटुम्बके लिये तुम्हारा वध करूँगा॥ ५४॥

व्याधका यह वचन सुनकर मृग प्रसन्नचित्त हो गया और बड़ी शीघ्रतासे उस व्याधसे यह वचन कहने लगा— ॥ ५५॥

हरिण बोला—मैं धन्य हूँ, जो इतना पुष्ट हूँ, जिससे तुम्हारी तृप्ति हो जायगी, जिसका शरीर उपकारके लिये प्रयुक्त न हो, उसका सब कुछ निष्फल हो जाता है। जो सामर्थ्ययुक्त रहता हुआ भी, उपकार नहीं करता, उसका सामर्थ्य निष्फल ही है और वह परलोकमें जानेपर नरक प्राप्त करता है, किंतु मैं अपने बच्चोंको उनकी माताको सौंपकर और उन सभीको धैर्य देकर पुनः आ जाऊँगा॥ ५६—५८॥

उसके ऐसा कहनेपर वह व्याध अपने मनमें बहुत ही विस्मित हुआ, थोड़ा शुद्ध मनवाले तथा नष्ट हुए पापसमूहवाले उस व्याधने यह वचन कहा— ॥ ५९॥

व्याध बोला—जो-जो यहाँ आये, वे सभी तुम्हारे ही जैसा कहकर चले गये, किंतु वे वंचक अभीतक नहीं लौटे। हे मृग! तुम भी संकटमें प्राप्त होकर उसी प्रकार झूठ बोलकर चले जाओगे, आज इस प्रकार में जीवन-निर्वाह कैसे होगा?॥ ६०-६१॥

मृग बोला—हे व्याध! मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो, मैं झूठ नहीं बोलता, यह सारा चराचर ब्रह्माण्ड सत्यसे ही प्रतिष्ठित है। जिसकी वाणी मिथ्या होती है, उसका पुण्य क्षणभरमें नष्ट हो जाता है। तथापि हे भील! तुम मेरी सत्य प्रतिज्ञाको सुनो। सन्ध्याकालमें मैथुन करनेसे, शिवरात्रिको भोजन करनेसे, झूठी गवाही देनेसे, धरोहरका हरण करनेसे, सन्ध्यारहित ब्राह्मणको, जिसके मुखसे 'शिव' नामका उच्चारण नहीं होता, समर्थ होते हुए भी जो उपकार नहीं करता, शिवपर्वके दिन बेलके तोड़नेसे, अभक्ष्य-भक्षणसे और बिना शिवपूजन किये एवं शरीरमें बिना भस्मका लेप किये, जो भोजन करता है—इन सभीको जो पाप लगता है, वह पाप मुझे लगे। यदि मैं पुनः लौटकर न आऊँ॥ ६२—६६॥

सूतजी बोले—उसका यह वचन सुनकर व्याधने उससे कहा—जाओ, शीघ्र लौटकर आना। तब वह हरिण जल पीकर चला गया॥ ६७॥

इसके बाद भलीभाँति प्रतिज्ञा किये हुए वे सभी [मृग और मृगी] अपने आश्रममें जाकर परस्पर मिले और एक-दूसरेको सारा समाचार परस्पर निवेदन किया। इस प्रकार सारा वृत्तान्त सुनकर सभीने सत्यपाशमें नियन्त्रित होनेके कारण विचार किया कि हमें वहाँ निश्चितरूपसे जाना चाहिये और तब अपने बालकोंको धीरज देकर वे जानेको तैयार हो गये॥ ६८-६९॥

उनमेंसे जो हरिणी सबसे बड़ी थी, उसने अपने स्वामीसे कहा—हे मृग! तुम्हारे बिना ये बालक किस प्रकार यहाँ निवास करेंगे? हे प्रभो! मैं [व्याधके पास जानेके लिये] पहले प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ। अतः पहले वहाँ मुझे जाना चाहिये। आप दोनों यहीं रहें॥ ७०-७१॥

उसकी यह बात सुनकर छोटी हरिणीने यह वचन कहा—मैं तुम्हारी सेविका हूँ, आज मैं जाती हूँ और तुम यहींपर रहो। यह सुनकर मृगने कहा—मैं ही वहाँ जा रहा हूँ, तुम दोनों यहीं रहो; क्योंकि माताके द्वारा ही बालकोंकी रक्षा होती है॥ ७२-७३॥

तब स्वामीकी बात सुनकर उन्होंने उसे धर्मके अनुकूल नहीं समझा। वे बड़े प्रेमसे अपने पतिसे कहने लगीं कि विधवा बनकर जीना धिक्कार है॥ ७४॥

इसके बाद उन बालकोंको धैर्य देकर तथा उन्हें पड़ोसियोंको सौंपकर वे सभी शीघ्र वहाँ गये, जहाँ व्याधश्रेष्ठ स्थित था। तब वे सभी बच्चे भी यह सोचकर उनके पीछे-पीछे चल पड़े कि इनकी जो गति होगी, वही गति हमारी भी हो॥ ७५-७६॥

उन्हें देखकर व्याध अत्यन्त हर्षित हो उठा और धनुषपर बाण चढ़ाने लगा। इतनेमें शिवजीके ऊपर पुन: जल और बिल्वपत्र गिर पड़े। उससे चतुर्थ प्रहरकी भी उत्तम पूजा सम्पन्न हो गयी, फिर तो क्षणभरमें ही उसका सारा पाप नष्ट हो गया। उस समय दोनों मृगियों एवं मृगने शीघ्रतापूर्वक कहा—हे व्याधश्रेष्ठ! अब तुम [हमलोगोंपर] कृपा करो और हमारे शरीरको सार्थक करो॥ ७७—७९॥



उनकी यह बात सुनकर भील आश्चर्यचकित हुआ। शिवजीकी पूजाके प्रभावसे उसे दुर्लभ ज्ञान प्राप्त हो गया॥ ८०॥

ज्ञानरहित ये मृग धन्य हैं, ये परम सम्माननीय हैं, जो अपने शरीरसे परोपकार करनेमें तत्पर हैं। मैंने इस समय मनुष्यजन्म पाकर भी क्या फल प्राप्त किया, मैंने दूसरोंके शरीरको पीड़ित करके अपने शरीरका पालन किया। हाय! मैंने नित्य अनेक पाप करके अपने कुटुम्बका पालन-पोषण किया। इस प्रकारके पाप करनेके कारण [अब आगे] मेरी क्या गति होगी, मैं किस गतिको प्राप्त होऊँगा? हाय! मैंने तो जन्मसे ही पाप किया है, मैं इस समय ऐसा सोच रहा हूँ, मेरे जीवनको धिक्कार है! धिक्कार है!!—इस प्रकारसे ज्ञानको प्राप्त हुआ वह व्याध अपने बाणको उतारते हुए कहने लगा कि हे श्रेष्ठ मृगो! तुमलोग धन्य हो, अब जाओ॥ ८१—८५॥

तब उसके इस प्रकार कहनेपर शंकरजीने प्रसन्न होकर अपने लोकपूजित उत्तम स्वरूपको उसे दिखाया॥ ८६॥

इसके बाद कृपापूर्वक उस व्याधको स्पर्शकर शिवजीने प्रसन्नतापूर्वक कहा—हे भील! मैं [तुम्हारे] इस व्रतसे प्रसन्न हूँ, वर माँगो॥ ८७॥

व्याध भी शिवजीके स्वरूपको देखकर क्षण-मात्रमें मुक्त हो गया और मैंने आज सब कुछ पा लिया—ऐसा कहता हुआ शिवके चरणोंके आगे गिर पड़ा॥ ८८॥

शिवजीने भी प्रसन्नचित्त होकर उसे 'गुह'—ऐसा नाम देकर उसकी ओर कृपादृष्टिसे देखकर उसे दिव्य वर दिये॥ ८९॥

शिवजी बोले—हे व्याध! सुनो, इस समय तुम शृंगवेरपुरमें [अपनी] श्रेष्ठ राजधानी बनाकर यथेष्ट दिव्य सुखोंका उपभोग करो॥ ९०॥

वहाँ अक्षयरूपसे तुम्हारे वंशकी वृद्धि होगी, हे व्याध! तुम देवताओंके लिये भी प्रशंसनीय रहोगे, तुम्हारे घर [साक्षात्] श्रीरामचन्द्रजी निश्चित रूपसे पधारेंगे। मेरे भक्तोंसे प्रेम करनेवाले वे तुमसे मित्रता करेंगे और

मेरी सेवामें आसक्त चित्तवाले तुम दुर्लभ मोक्षको प्राप्त कर लोगे॥ ९१-९२॥

सूतजी बोले—इसी बीच वे सभी मृग भी शिवजीका दर्शनकर उन्हें प्रणाम करके मृगयोनिसे मुक्त हो गये। वे शिवके दर्शनमात्रसे शापमुक्त हो गये और दिव्य देह धारण करके विमानपर आरूढ़ होकर स्वर्गलोक चले गये॥ ९३-९४॥

तभीसे शिवजी अर्बुदाचल पर्वतपर व्याधेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए, जो दर्शन तथा पूजनसे शीघ्र भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं॥ ९५॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! उस भीलने भी उस दिनसे सुखोंका उपभोग करनेके उपरान्त श्रीरामकी कृपा प्राप्तकर शिवसायुज्य प्राप्त कर लिया॥ ९६॥

अज्ञानवश इस व्रतको करके उसने सायुज्य मुक्तिको प्राप्त किया, तो फिर यदि भक्तिभावसे युक्त मनुष्य शुभ सायुज्य मुक्तिको प्राप्त करते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?॥ ९७॥

मैंने समस्त शास्त्रों तथा अनेक धर्मोंका चिन्तन करके इस शिवरात्रिव्रतको सर्वोत्कृष्ट कहा है। अनेक प्रकारके व्रत, अनेक प्रकारके तीर्थ, अद्भुत दान, विविध यज्ञ, नाना प्रकारके तप एवं अनेक प्रकारके जप भी इस शिवरात्रिकी तुलना नहीं कर सकते। इसलिये अपना हित चाहनेवालोंको अत्यन्त शुभ, दिव्य भोग एवं मोक्ष देनेवाले इस शिवरात्रिव्रतको सदा करना चाहिये॥ ९८—१०१॥

इस प्रकार मैंने व्रतराज—इस नामसे विख्यात इस शुभ शिवरात्रिव्रतका सम्पूर्ण रूपसे वर्णन किया। अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १०२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें व्याधेश्वरमाहात्म्यमें शिवरात्रिव्रत-माहात्म्यवर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्म एवं मोक्षका निरूपण

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] आपने मुक्तिकी चर्चा की, उस मुक्तिमें क्या होता है और उसकी कैसी अवस्था होती है? हमलोगोंको यह बताइये॥ १॥

सूतजी बोले—सुनिये, मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ। सांसारिक दुःखोंका नाश करनेवाली एवं परम आनन्द देनेवाली मुक्ति चार प्रकारकी कही गयी है। सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य एवं सायुज्य। इनमें जो चौथी सायुज्य मुक्ति होती है, वह इस [शिवरात्रि-] व्रतके करनेसे प्राप्त होती है॥ २-३॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! मुक्ति प्रदान करनेवाले केवल शिवजी ही कहे जाते हैं। ब्रह्मा आदिको मुक्ति देनेवाला नहीं जानना चाहिये, वे केवल [धर्म, अर्थ और कामरूप] त्रिवर्गको देनेवाले हैं॥ ४॥

ब्रह्मा आदि त्रिगुणके अधीश्वर हैं और शिवजी त्रिगुणसे परे हैं। वे निर्विकार, परब्रह्म, तुरीय और प्रकृतिसे परे हैं॥ ५॥

वे ज्ञानरूप, अव्यय, साक्षी, ज्ञानगम्य, स्वयं अद्वय, कैवल्य मुक्तिके दाता एवं त्रिवर्गको भी देनेवाले हैं॥ ६॥

कैवल्य नामक पाँचवी मुक्ति मनुष्योंको सर्वथा दुर्लभ है। हे ऋषिगणो! मैं उसका लक्षण बताऊँगा, आपलोग सुनिये॥ ७॥

हे मुनीश्वरो! यह सारा जगत् जिससे उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा पालित होता है और निश्चय ही वह जिसमें लीन होता है तथा जिससे यह सब कुछ व्याप्त है, वही शिवका स्वरूप कहा जाता है। [वही] सकल एवं निष्कल—दो रूपोंमें वेदोंमें वर्णित है॥ ८-९॥

विष्णु उस रूपको न जान सके, ब्रह्माजी भी उसे न जान सके, सनत्कुमार आदि न जान सके और नारद भी नहीं जान सके। व्यासपुत्र शुकदेव, व्यासजी, उनसे पहलेके सभी मुनीश्वर, सभी देवता, वेद तथा शास्त्र भी

उसे नहीं जान पाये॥ १०-११॥

वह सत्य, ज्ञानरूप, अनन्त, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप, निर्गुण, उपाधिरहित, अव्यय, शुद्ध एवं निरंजन है॥ १२॥

वह न रक्त है, न पीत, न श्वेत, न नील है, न ह्रस्व, न दीर्घ, न स्थूल एवं न तो सूक्ष्म ही है॥ १३॥

मनसहित वाणी आदि इन्द्रियाँ जिसे बिना प्राप्त किये ही लौट आती हैं, वही परब्रह्म 'शिव' नामसे कहा गया है॥ १४॥

जिस प्रकार आकाश व्यापक है, उसी प्रकार यह [शिवतत्त्व] भी व्यापक है, यह मायासे परे, परात्मा, द्वन्द्वरहित तथा मत्सरशून्य है॥ १५॥

हे द्विजो! उसकी प्राप्ति शिवविषयक ज्ञानके उदयसे, शिवके भजनसे अथवा सज्जनोंके सूक्ष्म विचारसे होती है*॥ १६॥

इस लोकमें ज्ञानका उदय तो अत्यन्त दुष्कर है, किंतु भजन सरल कहा गया है। अत: हे द्विजो! मुक्तिके लिये शिवका भजन कीजिये। शिवजी भजनके अधीन हैं। वे ज्ञानात्मा हैं तथा मोक्ष देनेवाले हैं। बहुत-से सिद्धोंने भक्तिके द्वारा ही आनन्दपूर्वक परम मुक्ति प्राप्त की है॥ १७-१८॥

शिवकी भक्ति ज्ञानकी माता और भोग एवं मोक्षको देनेवाली है। प्रेमकी उत्पत्तिके लक्षणवाली वह भक्ति शिवके प्रसादसे ही सुलभ होती है॥ १९॥

हे द्विजो! वह भक्ति सगुण एवं निर्गुणके भेदसे अनेक प्रकारकी कही गयी है। जैसे-जैसे वैधी और स्वाभाविकी भक्ति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे श्रेष्ठ होती जाती है॥ २०॥

वह नैष्ठिकी तथा अनैष्ठिकीके भेदसे दो प्रकारकी कही गयी है। नैष्ठिकी भक्तिको छ: प्रकारकी जानना चाहिये। दूसरी अनैष्ठिकी भक्ति एक प्रकारकी कही गयी है॥ २१॥

इसी प्रकार पण्डितलोग उसे विहिता तथा अविहिताके भेदसे अनेक प्रकारवाली कहते हैं, उन दोनोंके अनेक प्रकार होनेके कारण यहाँ उसके विस्तारका वर्णन नहीं किया जा रहा है॥ २२॥

उन दोनोंको श्रवणादि भेदसे नौ-नौ प्रकारकी जानना चाहिये। वे शिवकी कृपाके बिना अत्यन्त कठिन हैं, किंतु शिवकी प्रसन्नतासे अत्यन्त सरल हैं॥ २३॥

हे द्विजो! भक्ति एवं ज्ञान परस्पर भिन्न नहीं हैं, शिवजीने उनका वर्णन कर दिया है। इसलिये ज्ञानी और भक्तमें भेद नहीं समझना चाहिये, ज्ञान हो या भक्ति इनका पालन करनेवालेको सर्वदा सुखकी प्राप्ति होती है॥ २४॥

हे द्विजो! भक्तिका विरोध करनेवालेको विज्ञान प्राप्त नहीं होता है, शिवकी भक्ति करनेवालेमें शीघ्र ही ज्ञानका उदय होता है॥ २५॥

इसलिये हे मुनीश्वरो! शिवकी भक्ति [अवश्य] करनी चाहिये; उसीसे सब कुछ सिद्ध होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २६॥

आपलोगोंने मुझसे जो पूछा था, उसे मैंने कह दिया, जिसको सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें मुक्तिनिरूपण नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

---

* सत्यं ज्ञानमनन्तं च सच्चिदानन्दसंज्ञितम्। निर्गुणो निरुपाधिश्चाव्यय: शुद्धो निरञ्जन:॥
न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च। न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूल: सूक्ष्म एव च॥
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। तदेव परमं प्रोक्तं ब्रह्मैव शिवसंज्ञकम्॥
आकाशं व्यापकं यद्वत्तथैव व्यापकं त्विदम्। मायातीतं परात्मानं द्वन्द्वातीतं विमत्सरम्॥
तत्प्राप्तिश्च भवेदत्र शिवज्ञानोदयाद् ध्रुवम्। भजनाद्वा शिवस्यैव सूक्ष्ममत्या सतां द्विजा:॥
(शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहिता ४१। १२—१६)

बयालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके सगुण और निर्गुण स्वरूपका वर्णन

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] शिवजी कौन हैं, विष्णु कौन हैं, रुद्र कौन हैं तथा ब्रह्मा कौन हैं और इनमें निर्गुण कौन है? हमलोगोंके इस संशयको दूर कीजिये॥ १॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! [सृष्टिके] आदिमें निर्गुण परमात्मासे जो उत्पन्न हुआ, उसी [सगुणरूप]-को शिव कहा गया है—ऐसा वेद और वेदान्तके वेत्ता लोग कहते हैं॥ २॥

उसीसे पुरुषसहित प्रकृति उत्पन्न हुई। उन दोनोंने मूल स्थानमें स्थित जलमें तप किया। वही [तपःस्थली]-पंचक्रोशी काशी कही गयी है, वह शिवजीको अत्यन्त प्रिय है। उसीका जल फैलकर सारे संसारमें व्याप्त हो गया॥ ३-४॥

[उसी जलका] आश्रय लेकर श्रीहरि [योग] मायाके साथ वहाँ सो गये। तब वे [नार अर्थात् जलको अयन (निवासस्थान) बनानेके कारण] 'नारायण' नामसे विख्यात हुए तथा माया नारायणी नामसे विख्यात हुई॥ ५॥

उनके नाभिकमलसे जो उत्पन्न हुए, वे पितामह [ब्रह्मा कहलाये] थे। उन्होंने तपस्यासे जिन्हें देखा, वे विष्णु कहे गये॥ ६॥

हे विद्वानो! [किसी समय] उन दोनोंके विवादको शान्त करनेके लिये निर्गुण शिवने जिस रूपका साक्षात्कार कराया, वह महादेव नामसे प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने कहा कि मैं ब्रह्माके मस्तकसे शम्भुरूपमें प्रकट होऊँगा, लोकपर अनुग्रह करनेवाले वे ही रुद्र नामसे विख्यात हुए॥ ७-८॥

इस प्रकार भक्तोंके ऊपर वात्सल्यभाव प्रकट करनेवाले वे शिवजी ही सबके चिन्तनका विषय बननेके लिये रूपरहित होते हुए भी रूपवान् होकर साकार रुद्ररूपसे प्रकट हुए॥ ९॥

पूर्णतः त्रिगुणरहित शिवमें एवं गुणोंके धाम रुद्रमें वस्तुतः कोई भेद नहीं है, जैसे सुवर्ण एवं उससे बने आभूषणमें कोई अन्तर नहीं होता है॥ १०॥

ये दोनों ही समान रूप तथा कर्मवाले, समान रूपसे भक्तोंको गति देनेवाले हैं, समान रूपसे सबके द्वारा सेवनीय और अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले हैं॥ ११॥

भयानक पराक्रमवाले रुद्र सभी प्रकारसे शिवरूप ही हैं। वे भक्तोंका कार्य करनेके लिये प्रकट होते हैं और ब्रह्मा तथा विष्णुकी सहायता करते हैं॥ १२॥

अन्य जो लोग उत्पन्न हुए हैं, वे क्रमानुसार लयको प्राप्त होते हैं, किंतु रुद्र ऐसे नहीं हैं, रुद्र शिवमें ही विलीन होते हैं॥ १३॥

सभी प्राकृत [देवता] क्रमशः मिलकर विलीन हो जाते हैं, किंतु रुद्र उन विष्णु आदिमें मिलकर विलीन नहीं होते—ऐसी वेदोंकी आज्ञा है॥ १४॥

सभी रुद्रका भजन करते हैं, किंतु रुद्र किसीका भजन नहीं करते, कभी-कभी भक्तवत्सलतावश वे अपने-आप अपने भक्तोंका भजन करते हैं॥ १५॥

हे विद्वानो! जो लोग नित्य अन्य देवताका भजन करते हैं, वे उसीमें लीन होकर बहुत समयके बाद उसीसे रुद्रको प्राप्त होते हैं। जो कोई भी रुद्रभक्त हैं, वे उसी क्षण शिवत्वको प्राप्त हो जाते हैं; क्योंकि उन्हें अन्य देवताकी अपेक्षा नहीं होती—यह सनातनी श्रुति है॥ १६-१७॥

हे द्विजो! अज्ञान तो अनेक प्रकारका होता है, किंतु यह विज्ञान अनेक प्रकारका नहीं होता, मैं उस [विज्ञान]-को समझनेकी रीति कहता हूँ, आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ १८॥

इस लोकमें ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ दिखायी देता है, वह सब शिव ही है, अनेकताकी कल्पना मिथ्या है॥ १९॥

सृष्टिके आदिमें शिव कहे गये हैं, सृष्टिके मध्यमें शिव कहे गये हैं, सृष्टिके अन्तमें शिव कहे गये हैं और

सर्वशून्य होनेपर भी सदाशिव विद्यमान रहते हैं। इसलिये हे मुनीश्वरो! शिव चार गुणोंवाले कहे गये हैं। उन्हीं सगुण शिवको शक्तिसे युक्त होनेके कारण दो प्रकारका भी समझना चाहिये॥ २०-२१॥

जिसने विष्णुको सनातन वेदोंका उपदेश किया, अनेक वर्ण, अनेक मात्रा, ध्यान तथा अपनी पूजाका रहस्य बताया, वे शिव सम्पूर्ण विद्याओंके अधिपति हैं—यह सनातनी श्रुति है, इसीलिये उन शिवको वेदोंको प्रकट करनेवाला तथा वेदपति कहा गया है॥ २२-२३॥

वही शिव सबपर साक्षात् अनुग्रह करनेवाले हैं। वे ही कर्ता, भर्ता, हर्ता, साक्षी तथा निर्गुण हैं॥ २४॥

सभीके जीवनके कालका प्रमाण है, किंतु उन काल [-रूप शिव]-का प्रमाण नहीं है। वे स्वयं महाकाल हैं और महाकालीके भी आश्रय हैं॥ २५॥

ब्राह्मणलोग रुद्र तथा कालीको सबका कारण बताते हैं। उन दोनोंके द्वारा सत्यलीलायुक्त इच्छासे सब कुछ व्याप्त हुआ है॥ २६॥

उन [शिव]-को उत्पन्न करनेवाला कोई नहीं है और उनका पालन करनेवाला तथा विनाश करनेवाला भी कोई नहीं है, स्वयं वे सबके कारण हैं, वे विष्णु आदि सभी देवता उनके कार्यरूप हैं॥ २७॥

वे शिवजी स्वयं ही कारण और कार्यरूप हैं, किंतु उनका कारण कोई नहीं है। वे एक होकर भी अनेक हैं और अनेक होकर भी एकताको प्राप्त होते हैं॥ २८॥

जिस प्रकार एक ही बीज बाहर अंकुरित होकर बहुत बीजोंके रूपमें प्रकट होता है, उसी प्रकार बहुत होनेपर भी वस्तुरूपसे स्वयं शिवरूपी महेश्वर एक ही हैं॥ २९॥

हे मुनीश्वरो! यह उत्तम शिवविषयक ज्ञान यथार्थ रूपसे [मेरे द्वारा] कह दिया गया, इसे ज्ञानवान् पुरुष ही जानता है और कोई नहीं॥ ३०॥

मुनिगण बोले—[हे सूतजी!] आप लक्षणसहित ज्ञानका वर्णन कीजिये, जिसे जानकर मनुष्य शिवत्वको प्राप्त होते हैं। वे शिव सर्वमय कैसे हैं और सब कुछ शिवमय कैसे है?॥ ३१॥

व्यासजी बोले—यह वचन सुनकर पौराणिकोत्तम सूतजीने शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके उन मुनियोंसे यह वचन कहा—॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें सगुणनिर्गुणभेदवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

ज्ञानका निरूपण तथा शिवपुराणकी कोटिरुद्रसंहिताके श्रवणादिका माहात्म्य

सूतजी बोले—हे ऋषियो! अत्यन्त गोपनीय तथा परममुक्तिस्वरूप शिवज्ञानको जैसा मैंने सुना है, वैसा ही कहता हूँ, आप सभी लोग सुनिये॥ १॥

ब्रह्मा, नारद, सनत्कुमार, व्यास एवं कपिल—सभीके समाजमें इन्हीं [महर्षियोंने शिवज्ञानका स्वरूप] निश्चय करके कहा है॥ २॥

यह सारा जगत् शिवमय है, ऐसा ज्ञान निरन्तर अनुशीलन करनेयोग्य है। इस प्रकार सर्वज्ञ विद्वान्‌को [निश्चितरूपसे] शिवको सर्वमय जानना चाहिये॥ ३॥

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ संसार दीख रहा है, वह सब शिव ही है, वे देव शिव [सर्वमय] कहे जाते हैं॥ ४॥

जिस समय उनकी इच्छा होती है, तभी वे इस संसारकी सृष्टि करते हैं। वे सबको जानते हैं, किंतु उन्हें कोई नहीं जानता॥ ५॥

वे इस जगत्‌का निर्माणकर उसमें प्रविष्ट होकर भी [जगत्‌से] दूर ही रहते हैं। वे न तो वहाँ हैं और न उसमें प्रविष्ट हैं, [क्योंकि] वे निर्लिप्त तथा चित्स्वरूपवाले हैं॥ ६॥

जिस प्रकार जल आदिमें प्रकाशका प्रतिबिम्ब

दिखायी देता है, किंतु यथार्थ रूपसे उसका प्रवेश नहीं होता है, उसी प्रकार स्वयं शिव भी [जगत्‌में भासमान होते हुए भी स्वस्वरूपमें स्थित रहते] हैं। वस्तुरूपसे स्वयं वे ही सर्वमय हैं और सर्वत्र उन्हींका शुभ क्रम अर्थात् अनुप्रवेश भासित होता है। बुद्धिका भेद भ्रम ही अज्ञान है, शिवके अतिरिक्त और कोई द्वितीय वस्तु नहीं है। सम्पूर्ण दर्शनोंमें बुद्धिका भेद ही दिखायी पड़ता है, किंतु वेदान्ती लोग नित्य अद्वैततत्त्वका ही प्रतिपादन करते हैं॥ ७—९ ॥

स्वयं आत्मरूप शिवका अंशभूत यह जीवात्मा अविद्यासे मोहित होकर परतन्त्र-सा हो गया है और मैं दूसरा हूँ—ऐसा समझता है, किंतु उस अविद्यासे मुक्त हो जानेपर वह [साक्षात्] शिव हो जाता है॥ १०॥

सभीको व्याप्त करके वे शिवजी सभी जन्तुओंमें व्यापक रूपसे स्थित हैं, जड़-चेतनके ईश्वर वे शिव स्वयं सर्वत्र विद्यमान हैं॥ ११ ॥

जो विद्वान् वेदान्तमार्गका आश्रय लेकर इनके दर्शनके लिये उपाय करता है, वह [अवश्य ही] उनका दर्शनरूप फल प्राप्त करता है॥ १२॥

जिस प्रकार अग्नि व्यापक होकर प्रत्येक काष्ठमें [अलक्षितरूपसे] स्थित है, किंतु जो उस काष्ठका मन्थन करता है, उसे ही निःसन्देह अग्निका दर्शन प्राप्त होता है॥ १३ ॥

जो विद्वान् भक्ति आदि साधनोंका अनुष्ठान इस लोकमें करता है, वह अवश्य ही उन शिवका दर्शन प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ १४॥

सर्वत्र शिव ही हैं, शिव ही हैं, शिव ही हैं, अन्य कुछ भी नहीं है, भ्रमके कारण ही वे शंकर [अज्ञानी जीवोंको] अनेक स्वरूपोंमें निरन्तर भासते रहते हैं॥ १५॥

जिस प्रकार समुद्र, मिट्टी एवं सुवर्ण उपाधिभेदसे [एक होकर भी] अनेकत्वको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार शिव भी उपाधियोंके भेदसे अनेक रूपोंमें भासते हैं॥ १६॥

वास्तवमें कार्य-कारणमें [कुछ भी] भेद नहीं है, केवल बुद्धिकी भ्रान्तिसे अन्तर दिखायी पड़ता है और उसके न रहनेपर वह भेद दूर हो जाता है॥ १७॥

बीजसे प्ररोह अनेक प्रकारका दिखायी देता है, किंतु अन्तमें बीज ही शेष रहता है और प्ररोह नष्ट हो जाता है॥ १८॥

ज्ञानी बीजस्वरूप है और प्ररोह (अंकुर)-को विकार माना गया है। उस विकाररूपी अंकुरके नष्ट हो जानेपर ज्ञानीरूपी बीज शेष रहता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १९॥

सब कुछ शिव है तथा शिव ही सब कुछ हैं। इन दोनोंमें कुछ भी भेद नहीं है, फिर क्यों अनेकता देखी जाय या एकता देखी जाय? जिस प्रकार लोग एक ही सूर्य नामक ज्योतिको जल आदिमें अनेक रूपमें देखते हैं, उसी प्रकार एक ही शिव अनेक रूपमें भासते हैं॥ २०-२१॥

जिस प्रकार आकाश सर्वत्र व्यापक होकर भी स्पर्शसे बद्ध नहीं होता, उसी प्रकार सर्वव्यापक वह परमात्मा कहीं भी बद्ध नहीं होता है॥ २२॥

[आत्मतत्त्व] जबतक अहंकारसे युक्त है, तबतक ही वह जीव है और उससे मुक्त हो जानेपर वह स्वयं शिव है। जीव कर्मभोगी होनेके कारण तुच्छ है और उससे निर्लिप्त होनेसे शिव महान् हैं॥ २३॥

जैसे चाँदी आदिसे मिश्रित होनेपर सुवर्ण अल्प मूल्यवाला हो जाता है, वैसे ही जीव अहंकारयुक्त होनेपर महत्त्वहीन हो जाता है॥ २४॥

जैसे सुवर्ण आदि क्षार आदिसे शोधित होकर शुद्ध हो जानेपर पहलेके समान मूल्य प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार जीव भी संस्कारसे शुद्ध हो [साक्षात् शिव ही] हो जाता है। पहले श्रेष्ठ गुरुको प्राप्तकर भक्तिभावसे युक्त होकर शिवबुद्धिसे उनका भलीभाँति पूजन-स्मरण आदि करे॥ २५-२६॥

उनमें इस प्रकारकी बुद्धि (शिवबुद्धि) रखनेसे देहसे सम्पूर्ण पाप आदि दोष दूर हो जाते हैं, इस प्रकार जब वह ज्ञानवान् हो जाता है, तब उस जीवका [द्वैतभावरूप] अज्ञान विनष्ट हो जाता है। वह अहंकारमुक्त

होकर निर्मल बुद्धिसे युक्त हो जाता है एवं शिवजीकी कृपासे शिवत्व प्राप्त कर लेता है॥ २७-२८॥

जिस प्रकार शुद्ध दर्पणमें अपना रूप दिखायी देता है, उसी प्रकार जीवको भी सभी जगह शिवका साक्षात्कार होने लगता है—यह निश्चित है॥ २९॥

वह जीव शिवसाक्षात्कार होनेपर जीवन्मुक्त हो जाता है। शरीरके शीर्ण हो जानेपर वह शिवमें मिल जाता है। शरीर प्रारब्धके अधीन है, जो देहाभिमानशून्य है, वही ज्ञानी कहा गया है॥ ३०॥

शुभ वस्तुको प्राप्तकर जो हर्षित नहीं होता और अशुभको प्राप्तकर क्रोध नही करता और द्वन्द्वोंमें समान रहता है, वह ज्ञानवान् कहा जाता है॥ ३१॥

आत्मचिन्तनसे तथा तत्त्वोंके विवेकसे ऐसा प्रयत्न करे कि शरीरसे अपनी पृथक्ताका बोध हो जाय। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष शरीर एवं उसके अभिमानको त्यागकर अहंकारशून्य एवं मुक्त हो सदाशिवमें विलीन हो जाता है। अध्यात्मचिन्तन एवं उन शिवजीकी भक्ति—ये ज्ञानके मूल कारण हैं॥ ३२-३३॥

भक्तिसे प्रेम, प्रेमसे श्रवण, श्रवणसे सत्संग और सत्संगसे विद्वान् गुरुकी प्राप्ति कही गयी है। ज्ञान हो जानेपर मनुष्य निश्चितरूपसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार जो ज्ञानवान् है, वह सदा शिवजीका भजन करता है। जो अनन्य भक्तिसे युक्त होकर शिवका भजन करता है, वह अन्तमें मुक्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये॥ ३४—३६॥

मुक्ति प्राप्त करनेके लिये शिवसे बढ़कर अन्य कोई देवता नहीं है, जिनकी शरण प्राप्तकर मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है॥ ३७॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने ऋषियोंके समागमसे निश्चय किये गये अनेक वचन कहे, आपलोगोंको उन्हें यत्नपूर्वक बुद्धिसे धारण करना चाहिये॥ ३८॥

सर्वप्रथम शिवने ज्योतिर्लिंगके सामने विष्णुको वह ज्ञान दिया था। विष्णुने ब्रह्माको तथा ब्रह्माने सनक आदि ऋषियोंको दिया। उसके बाद सनक आदिने वह ज्ञान नारदसे कहा, नारदने व्यासजीसे कहा, उन कृपालु व्यासजीने मुझसे कहा और मैंने आपलोगोंसे कहा। अब आपलोगोंको लोककल्याणके लिये उसे प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये; क्योंकि वह शिवकी प्राप्ति करानेवाला है॥ ३९—४१॥

हे मुनीश्वरो! आपलोगोंने मुझसे जो पूछा था, वह मैंने आपलोगोंसे कह दिया, इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये, अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२॥

व्यासजी बोले—यह सुनकर वे ऋषि परम हर्षको प्राप्त हुए और सूतजीको नमस्कारकर हर्षके कारण गद्‌गद वाणीमें बारंबार उनकी स्तुति करने लगे॥ ४३॥

ऋषिगण बोले—हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है। हे शैवसत्तम! आप धन्य हैं, जो कि आपने हमलोगोंको परम तत्त्वरूपी उत्तम शिवज्ञान सुनाया। आपकी कृपासे हमलोगोंके चित्तकी भ्रान्ति दूर हो गयी। हमलोग आपसे मुक्तिदायक शिवविषयक उत्तम ज्ञान प्राप्तकर सन्तुष्ट हो गये॥ ४४-४५॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! नास्तिक, श्रद्धारहित, शठ, शिवमें भक्ति न रखनेवाले तथा सुननेकी इच्छा न रखनेवालेको इसे नहीं बताना चाहिये। व्यासजीने इतिहास, पुराण और वेद-शास्त्रोंको बारंबार विचारकर तथा उनका तत्त्व निकालकर मुझसे कहा है॥ ४६-४७॥

इसे एक बार सुननेसे पाप नष्ट हो जाता है। अभक्तको भक्ति प्राप्त होती है एवं भक्तकी भक्तिमें वृद्धि होती है। पुनः सुननेसे श्रेष्ठ भक्ति मिलती है और पुनः सुननेसे मुक्ति प्राप्त होती है। अतः भोग तथा मोक्षरूप फल चाहनेवालोंको इसे बार-बार सुनना चाहिये॥ ४८-४९॥

उत्तम फलको लक्ष्य करके इसकी पाँच आवृत्ति करनी चाहिये, ऐसा करनेसे मनुष्य उसे प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है; यह व्यासजीका वचन है॥ ५०॥

जिसने इस उत्तम इतिहासको सुना, उसे कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इसकी पाँच आवृत्ति करनेसे शिवजीका दर्शन प्राप्त होता है। हे श्रेष्ठ ऋषियो! प्राचीनकालके राजा, ब्राह्मण एवं वैश्य बुद्धिपूर्वक इसे पाँच बार सुनकर

उत्कृष्ट सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। आज भी जो मनुष्य भक्तिमें तत्पर होकर इस शिवसंज्ञक विज्ञानका श्रवण करेगा, वह भोग तथा मोक्ष प्राप्त करेगा॥ ५१—५३॥

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर वे ऋषि परम आनन्दित हुए और आदरके साथ अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे सूतजीकी पूजा करने लगे। वे सन्देहरहित तथा प्रसन्न होकर स्वस्तिवाचनपूर्वक नमस्कार करके अनेक स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करते हुए शुभकामनाओंसे उनका अभिनन्दन करने लगे॥ ५४-५५॥

इसके बाद परम बुद्धिमान् वे ऋषिगण एवं सूतजी परस्पर सन्तुष्ट होकर शिवको परम देवता मानकर नमस्कार तथा भजन करने लगे॥ ५६॥

शिवसम्बन्धी यह विशिष्ट ज्ञान शिवको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाला, भोग-मोक्ष देनेवाला तथा दिव्य शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है। इस प्रकार मैंने शिवपुराणकी आनन्द प्रदान करनेवाली तथा उत्कृष्ट कोटिरुद्र नामक चौथी संहिताका वर्णन कर दिया॥ ५७-५८॥

जो मनुष्य सावधानचित्त होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें परम गति प्राप्त करता है॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें ज्ञान-निरूपण नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

॥ चतुर्थ कोटिरुद्रसंहिता पूर्ण हुई॥

महादेव-महिमा

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः। यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते॥
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च। ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते॥
प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः।
चिन्त्यते यो योगविद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। अक्षरं परमं ब्रह्म असच्च सदसच्च यः॥
प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षोभयित्वा स्वतेजसा। ब्रह्माणमसृजत् तस्माद् देवदेवः प्रजापतिः॥
को हि शक्तो गुणान् वक्तुं देवदेवस्य धीमतः। गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः॥
को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम्। ऋते नारायणात्पुत्र शङ्खचक्रगदाधरात्॥×××
रुद्रभक्त्या तु कृष्णेन जगद्व्याप्तं महात्मना। तं प्रसाद्य महादेवं बदर्यां किल भारत॥
अर्थात् प्रियतरत्वं च सर्वलोकेषु वै तदा। प्राप्तवानेव राजेन्द्र सुवर्णाक्षान्महेश्वरात्॥

[**भीष्मपितामह युधिष्ठिरसे कहते हैं**—] राजन्! मैं परम बुद्धिमान् महादेवजीके गुणोंका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ। जो भगवान् सर्वत्र व्यापक हैं, किंतु (सबके आत्मा होनेके कारण) सर्वत्र देखनेमें नहीं आते हैं, ब्रह्मा, विष्णु और देवराज इन्द्रके भी स्रष्टा तथा प्रभु हैं, ब्रह्मा आदि देवताओंसे लेकर पिशाचतक जिनकी उपासना करते हैं, जो प्रकृतिसे भी परे और पुरुषसे भी विलक्षण हैं, योगवेत्ता तत्त्वदर्शी ऋषि जिनका चिन्तन करते हैं, जो अविनाशी परमब्रह्म एवं सद्-सत्स्वरूप हैं, जिन देवाधिदेव प्रजापति शिवने अपने तेजसे प्रकृति और पुरुषको क्षुब्ध करके ब्रह्माजीकी सृष्टि की, उन्हीं देवदेव बुद्धिमान् महादेवजीके गुणोंका वर्णन करनेमें गर्भ, जन्म, जरा और मृत्युसे युक्त कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है। बेटा! शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायणको छोड़कर मेरे-जैसा कौन पुरुष परमेश्वर शिवके तत्त्वको जान सकता है?' ××× भरतनन्दन! रुद्रभक्तिके प्रभावसे ही महात्मा श्रीकृष्णने सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है। राजन्! कहते हैं कि पूर्वकालमें महादेवजीको बदरिकाश्रममें प्रसन्न करके उन दिव्यदृष्टि महेश्वरसे श्रीकृष्णने सब पदार्थोंकी अपेक्षा प्रियतर-भावको प्राप्त कर लिया अर्थात् वे सम्पूर्ण लोकोंके प्रियतम बन गये। [महाभारत, अनुशासनपर्व]

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

उमासंहिता

पहला अध्याय

पुत्रप्राप्तिके लिये कैलासपर गये हुए श्रीकृष्णका उपमन्युसे संवाद

यो धत्ते भुवनानि सत्त्वगुणवान्स्रष्टा रजःसंश्रयः
संहर्त्ता तमसान्वितो गुणवतीं मायामतीत्य स्थितः।
सत्यानन्दमनन्तबोधममलं ब्रह्मादिसंज्ञास्पदं
नित्यं सत्त्वसमन्वयादधिगतं पूर्णं शिवं धीमहि॥

जो परमात्मा सत्त्वगुणसे युक्त होकर अर्थात् सत्त्वगुणका आश्रय लेकर [चौदहों] भुवनोंको धारण करते हैं, रजोगुणका आश्रय लेकर सृष्टि करते हैं, तमोगुणसे समन्वित होकर संहार करते हैं एवं त्रिगुणमयी मायासे परे होकर स्थित हैं, उन सत्य-आनन्दस्वरूप, अनन्तज्ञानसम्पन्न, निर्मल, ब्रह्मा आदि नामोंसे पुकारे जानेवाले, नित्य, सत्त्वगुणके आश्रयसे प्राप्त होनेवाले तथा अखण्ड शिवका हम ध्यान करते हैं॥ १॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महाप्राज्ञ! हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है, आपने हमें कोटिरुद्र नामक चतुर्थ संहिता सुनायी॥ २॥

अब आप उमासंहितामें विद्यमान विविध आख्यानोंसे युक्त पार्वतीसहित परमात्मा शिवके चरित्रका वर्णन कीजिये॥ ३॥

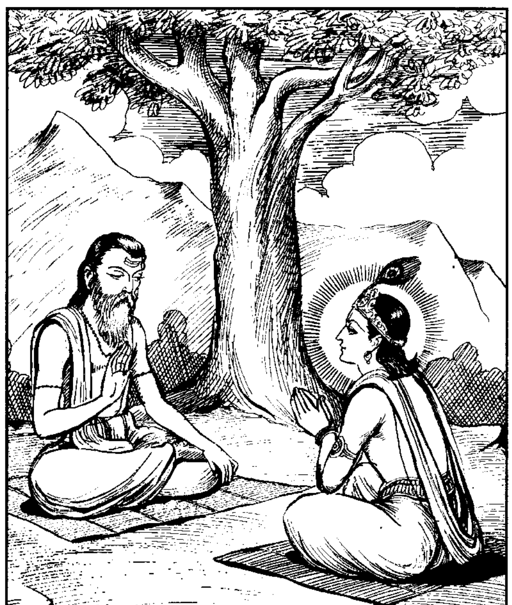
सूतजी बोले—हे शौनकादि महर्षियो! अब आपलोग मंगलमय, भोग तथा मोक्षको देनेवाले, दिव्य एवं उत्तम शिवके चरित्रको प्रेमपूर्वक सुनिये॥ ४॥

[किसी समय] मुनियोंमें श्रेष्ठ व्यासजीने ऐसा ही पवित्र प्रश्न सनत्कुमारसे पूछा था, तब उन्होंने शिवजीके सुन्दर चरित्रका वर्णन किया था॥ ५॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! महर्षि उपमन्युने श्रीकृष्णसे जिस शिवचरित्रका वर्णन किया था, उसीको मैं कहता हूँ॥ ६॥

पूर्वकालमें वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण पुत्रकी कामनासे शिवजीकी तपस्या करनेके लिये शंकरालय कैलासपर गये॥ ७॥

वहाँ पर्वतके उत्तम शिखरपर मुनि उपमन्युको तप



करते देखकर भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़ उनसे वे पूछने लगे॥ ८॥

श्रीकृष्ण बोले—हे महाप्राज्ञ! हे शैवप्रवर! हे सन्मते! हे उपमन्युजी! मैं पुत्रप्राप्तिके लिये शंकरजीकी तपस्या करनेके लिये यहाँ आया हूँ। हे मुने! निरन्तर आनन्द प्रदान करनेवाले शिवमाहात्म्यको कहिये, जिसे सुनकर मैं

भक्तिपूर्वक महेश्वरका उत्तम तप करूँ॥ ९-१०॥

सनत्कुमार बोले—उन बुद्धिमान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर [महर्षि] उपमन्यु प्रसन्नचित्त होकर शिवजीका स्मरण करते हुए कहने लगे—॥ ११॥

उपमन्यु बोले—हे महाशैव श्रीकृष्ण! महेश्वर शिवजीकी भक्तिको बढ़ानेवाली जिस उत्तम महिमाको मैंने [स्वयं] देखा है, उसे आप सुनिये। तपमें स्थित मैंने शंकर, उनके आयुधों, उनके समस्त परिवार एवं विष्णु आदि देवगणोंका प्रत्यक्ष दर्शन किया॥ १२-१३॥

मैंने देखा कि वह [पाशुपत] तीन फलकोंसे शोभित, शाश्वत सौख्यका हेतु, अविनश्वर, एकपादात्मक, विशाल दाढ़ोंसे युक्त, मुखोंसे मानों आग उगलता हुआ, सहस्रों [सूर्योंकी] किरणोंके प्रकाशसे देदीप्यमान, सहस्रचरणान्वित, अनेक नेत्रोंसे युक्त तथा सभी प्रमुख आयुधोंको अभिभूत करता हुआ [भगवान् शंकरके समीपमें स्थित] है॥ १४-१५॥

जो कल्पके अन्तमें विश्वका संहार कर देता है, जिसके लिये इस चराचर त्रैलोक्यमें कोई भी अवध्य नहीं है, भगवान् महेश्वरकी भुजाओंसे छूटा हुआ वह [पाशुपत] चराचरसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको शीघ्र ही—आधे पलमें दग्ध कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १६-१७॥

तपमें स्थित मैंने रुद्रके समीपमें विद्यमान अविनाशी [उस] गुह्य अस्त्रको देखा, जिसके समान तथा बढ़कर कोई भी अस्त्र नहीं है, उन शिवजीका सभी लोकोंमें शूल नामसे प्रसिद्ध जो विजयास्त्र है, वह अत्यन्त उग्र है, समस्त शस्त्रास्त्रोंका विनाशक है और जो सम्पूर्ण पृथ्वीको विदीर्ण कर देता है, जो समुद्रको सुखा डालता है और जो सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डलको गिरा देता है, इसमें संशय नहीं है॥ १८—२०॥

जिसने पूर्वकालमें महाबली, चक्रवर्ती, त्रैलोक्यविजयी एवं महातेजसे सम्पन्न युवनाश्वपुत्र मान्धाताको विनष्ट कर दिया, जिसने [परशुरामजीके माध्यमसे] महाभिमानी हैहय (कार्तवीर्यार्जुन)-का संहार करवाया, जिसने युद्धके लिये स्वयं शत्रुघ्नको आमन्त्रितकर [अधर्मनिरत] लवणासुरका विनाश करवाया और उस दैत्य [लवणासुर]-का वध हो जानेपर जो पुनः शिवजीके हाथोंमें पहुँच गया, वह शूल तीक्ष्ण अग्रभागवाला तथा घोर भय उत्पन्न करनेवाला है॥ २१—२३॥

[हे श्रीकृष्ण!] तीन फलकोंवाला होनेसे मानो भौंहोंको तीन जगहसे टेढ़ीकर विरोधियोंको डाँटता हुआ-सा, धूमरहित अग्निके समान, उदयकालीन सूर्यके समान कान्तिमय, सर्पसे युक्त होनेके कारण पाशधारी यमराजके समान तथा अवर्णनीय वह त्रिशूल [भगवान् शंकरके समीप] स्थित था। [इसी प्रकार] सर्प आदिसे विभूषित, तीक्ष्ण धारवाला तथा प्रलयकालीन अग्निके समान स्वरूपवान् वह परशु भी साक्षात् पुरुष देह धारणकर [शिवजीके निकट] उपस्थित था, जिसने भृगुवंशी परशुरामके क्षत्रिय शत्रुओंका युद्धमें संहार किया था। शिवजीके द्वारा प्रदत्त उसी परशुके सामर्थ्यका आश्रय लेकर प्राचीनकालमें परशुरामजी उत्साहपूर्वक इक्कीस बार क्षत्रियसमूहको भस्म कर सके थे॥ २४—२७॥

[इसी प्रकार] व्यापक स्वरूपवाले हजार मुखोंसे युक्त, हजार-हजार भुजाओं, नेत्रों तथा चरणोंवाले, करोड़ों सूर्योंके सदृश कान्तिमय, त्रिलोकीको भस्म कर देनेमें समर्थ तथा पुरुष शरीर धारणकर वहाँ उपस्थित देवस्वरूप सुदर्शनचक्रको भी मैंने देखा॥ २८-२९॥

पुनः मैंने अति उज्ज्वल, सौ पर्ववाले, तीक्ष्ण तथा उत्तम वज्रको, प्रदीप्त कान्तिवाले तथा तरकससहित पिनाक नामक धनुषको और शक्ति, खड्ग, पाश, महाकान्तिमान् अंकुश, महान् दिव्य गदा तथा अन्य अस्त्रोंको भी वहाँ स्थित देखा॥ ३०-३१॥

मैंने लोकपालोंके इन अस्त्रोंको तथा अन्य भी जितने अस्त्र हैं, उन सभीको भगवान् रुद्रके पासमें स्थित देखा॥ ३२॥

लोकपितामह ब्रह्मा हंससे युक्त तथा इच्छानुसार चलनेवाले दिव्य विमानपर आरूढ़ होकर उन प्रभुके दाहिनी ओर विराजमान थे और शंख, चक्र तथा गदा धारण किये भगवान् नारायण गरुड़पर विराजमान होकर उनके वामभागमें स्थित थे॥ ३३-३४॥

स्वायम्भुव आदि मनु, भृगु आदि ऋषि एवं इन्द्र आदि समस्त देवता भी उनके साथ आये थे॥ ३५॥

मोरपर सवार कार्तिकेय, शक्ति तथा घण्टा धारण करके देवी पार्वतीके समीप दूसरी अग्निके समान स्थित थे। नन्दी त्रिशूल धारण करके सदाशिवके आगे स्थित थे। समस्त भूतगण तथा विविध मातृकाएँ भी विराजमान थीं॥ ३६-३७॥

उस समय वे सभी देवता महेश्वर महादेवको चारों ओरसे घेरकर उन्हें नमस्कारकर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति कर रहे थे॥ ३८॥

इस प्रकार जगत्‌में जो कुछ भी दिखायी देता है अथवा सुना जाता है, वह सब भगवान्‌के पास देखकर मैं अत्यधिक आश्चर्यचकित हो गया॥ ३९॥

हे श्रीकृष्ण! मैं इस [शिवाराधन] यज्ञमें अत्यधिक धैर्य धारणकर हाथ जोड़ करके नानाविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुतिकर परम आनन्दमें निमग्न हो गया और शिवजीको सम्मुख देखकर श्रद्धासे युक्त हो आँसुओंके कारण गद्‌गद वाणीसे मैंने विधिवत् उनका पूजन किया॥ ४०-४१॥

तब अत्यन्त प्रसन्न हुए परमेश्वर सदाशिवने हँसते हुए प्रेमपूर्वक मधुर वाणीमें मुझसे कहा—॥ ४२॥

हे विप्र! मैंने बारंबार आपकी परीक्षा ली, आप भक्तिसे युक्त तथा दृढ़ हैं। मैं आपको अपनी भक्तिसे विचलित नहीं कर सका, आपका कल्याण हो॥ ४३॥

अत: हे सुव्रत! मैं बहुत प्रसन्न हूँ, आप सम्पूर्ण देवगणोंके लिये भी दुर्लभ वर माँगिये, आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। तब शिवजीके उस प्रेमयुक्त वचनको सुनकर हाथ जोड़कर वह [मैं] भक्तोंपर कृपा करनेवाले उन प्रभुसे कहने लगा—॥ ४४-४५॥

उपमन्यु बोले—हे भगवन्! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं और यदि आपमें मेरी दृढ़ भक्ति है, तो उस सत्यसे मुझे त्रिकालज्ञता प्राप्त हो जाय॥ ४६॥

आप मुझको अपने प्रति दृढ़ अनन्यभक्ति प्रदान करें, मुझे तथा मेरे वंशजोंको पर्याप्त दूध-भात नित्य प्राप्त होता रहे॥ ४७॥

हे विभो! मुझे इस आश्रममें आपका नित्य सान्निध्य प्राप्त हो और आपके भक्तोंमें मेरी परस्पर मित्रता सदा बनी रहे तथा अन्य लोगोंके प्रति उदासीनता रहे॥ ४८॥

हे यदुश्रेष्ठ! मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन परमेश्वर सदाशिवने हँसकर कृपादृष्टिसे मेरी ओर देखकर शीघ्र ही कहा—॥ ४९॥

श्रीशिवजी बोले—हे उपमन्यो! हे मुने! हे तात! आप जरा-मरणजन्य दोषोंसे मुक्त रहेंगे और आपकी सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी॥ ५०॥

आप सम्पूर्ण मुनियोंके पूजनीय, यश तथा धनसे परिपूर्ण होंगे और मेरी प्रसन्नतासे पद-पदपर आपको शील, रूप, गुण तथा ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती रहेगी॥ ५१॥

हे मुने! तुम जहाँ-जहाँ चाहोगे, वहाँ पयोराशिभूत क्षीरसागरका सान्निध्य आपको सदा प्राप्त होता रहेगा॥ ५२॥

जबतक वैवस्वत मनुका यह कल्प समाप्त नहीं होगा, तबतक आप अपने बन्धुओंके साथ इस अमृतात्मक क्षीरसागरका दर्शन प्राप्त करते रहेंगे। हे महामुने! मेरी कृपासे आपका वंश सदा अक्षय रहेगा और मैं आपके इस आश्रममें सदैव निवास करूँगा॥ ५३-५४॥

हे वत्स! मेरी भक्ति आपमें सदा स्थिर रहेगी और आपके द्वारा स्मरण किये जानेपर मैं निरन्तर दर्शन देता रहूँगा, हे वत्स! आप सब प्रकारसे मेरे प्रिय हैं॥ ५५॥

आप इच्छानुसार सुखपूर्वक रहें। किसी प्रकारकी उत्कण्ठा मत कीजिये, आपके सारे चिन्तित मनोरथ पूर्ण हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है॥ ५६॥

उपमन्यु बोले—ऐसा कहकर करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान वे भगवान् महेश्वर वर प्रदानकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ५७॥

हे श्रीकृष्ण! इस प्रकार मैंने भोग एवं मोक्ष देनेवाले भगवान् सदाशिवको सपरिवार देखा। हे देवदेव! उन महाबुद्धिमान् परमेश्वर सदाशिवने मुझसे जो कहा था, वह सब उनके ध्यानके द्वारा मैंने प्राप्त किया॥ ५८-५९॥

आप अपने समक्ष उपस्थित हुए गन्धर्वों, अप्सराओं, ऋषियों, विद्याधरों एवं सिद्धोंको देखिये॥ ६०॥

आप चिकने पत्तोंवाले, सुगन्धित, सभी ऋतुओंमें फूलनेवाले तथा सर्वदा पुष्प-फलसे युक्त इन मनोरम वृक्षोंको देखिये। हे महाबाहो! अनेक पदार्थोंसे संयुक्त यह समस्त विश्व ही देवदेव महात्मा शंकरकी कृपासे उत्पन्न हुआ है॥ ६१-६२॥

मुझे तो सदाशिवकी कृपासे सम्पूर्ण ज्ञान है, मैं भूत, भविष्य एवं वर्तमान सभीको यथार्थरूपमें जानता हूँ॥ ६३ ॥

इन्द्र आदि देवगण भी जिन्हें बिना आराधनाके नहीं देख सकते, उन महेश्वर देवका मैंने दर्शन कर लिया, अतः मुझसे अधिक धन्य कौन हो सकता है ?॥ ६४ ॥

छब्बीसवें तत्त्वके रूपमें प्रसिद्ध जो सनातन परमतत्त्व है, विद्वान् लोग उसी महान् परम अक्षर [ब्रह्म]-का ध्यान करते हैं। वे भगवान् सदाशिव ही सभी तत्त्वोंके विधानको जाननेवाले एवं सभी तत्त्वोंके अर्थोंके द्रष्टा और प्रधान पुरुषेश्वर हैं॥ ६५-६६ ॥

उन परमेश्वरने संसाररचनाके कारणभूत ब्रह्माको अपने दक्षिण पार्श्वसे तथा लोककी रक्षाके लिये विष्णुको अपने बायें भागसे उत्पन्न किया है। प्रभु सदाशिवने ही कल्पान्तके प्राप्त होनेपर [सृष्टिके विनाशके लिये] अपने हृदयसे रुद्रकी रचना की और उनको माध्यम बनाकर उन्होंने सम्पूर्ण चराचर संसारका संहार किया॥ ६७-६८ ॥

वे ही महादेव युगके अन्तमें संवर्तक अग्निके समान काल बनकर सभी प्राणियोंका भक्षण करते हुए स्थित रहते हैं॥ ६९ ॥

वे प्रभु सर्वज्ञ, सर्वभूतात्मा, सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक एवं सभी देवगणोंके दर्शनीय हैं॥ ७० ॥

इसलिये [हे श्रीकृष्ण!] आप पुत्रप्राप्तिके लिये शिवकी आराधना करें, वे भक्तवत्सल शिव आपपर शीघ्र ही प्रसन्न होंगे॥ ७१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कृष्णोपमन्युसंवादमें स्वगतिवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

श्रीकृष्णके प्रति उपमन्युका शिवभक्तिका उपदेश

सनत्कुमार बोले—महात्मा उपमन्युका यह वचन सुनकर महादेवके प्रति उत्पन्न हुई भक्तिवाले कृष्णने उन मुनिसे कहा—॥ १ ॥

श्रीकृष्ण बोले—हे उपमन्यो! हे मुने! हे तात! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये, जिन-जिन लोगोंने शिवकी आराधनाकर अपनी कामनाएँ प्राप्त कीं, उन्हें आप बताइये॥ २ ॥

सनत्कुमार बोले—श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर शैवोंमें श्रेष्ठ कृपानिधि महात्मा उपमन्यु मुनिने उनकी प्रशंसा करके कहा—॥ ३ ॥

उपमन्यु बोले—हे यदुश्रेष्ठ! जिन-जिन लोगोंने सदाशिवकी आराधनासे अपने-अपने हृदयकी कामना पूर्ण की, उन-उन भक्तोंका वर्णन करूँगा, आप सुनें॥ ४ ॥

पूर्व समयमें हिरण्यकशिपुने दस लाख वर्षतक शिवाराधनकर चन्द्रशेखर सदाशिवसे सभी देवगणोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया॥ ५ ॥

उसीका पुत्रप्रवर नन्दन नामसे प्रसिद्ध हुआ, उसने शिवजीसे वर प्राप्तकर दस हजार वर्षतक इन्द्रके साथ युद्ध किया था। हे श्रीकृष्ण! पूर्वकालमें उस महायुद्धमें विष्णुका भयानक [सुदर्शन] चक्र तथा इन्द्रका वज्र उसके अंगोंमें लगकर चूर-चूर हो गये थे॥ ६-७ ॥

युद्धमें उस अत्यन्त बलशाली एवं बुद्धिमान् ग्रह [राहु]-के अंगमें [प्रहार किये गये] सुदर्शनचक्र एवं इन्द्रके वज्र आदि मुख्य अस्त्र भी शिवजीकी तपस्याके प्रभावसे उसे पीड़ित नहीं करते थे। उस अत्यन्त बलवान् ग्रहके द्वारा पीड़ित हुए देवताओंने भी शिवसे ही वर प्राप्तकर दैत्योंको बहुत प्रताड़ित किया॥ ८-९ ॥

सर्वलोकाधिपति सदाशिवने विद्युत्प्रभ नामक राक्षसपर भी प्रसन्न होकर एक लाख वर्षपर्यन्त उसे त्रैलोक्यका स्वामित्व प्रदान किया, शिवजीने उसे सहस्र अयुत (एक करोड़) पुत्र भी दिये और उससे कहा कि तुम मेरे नित्य अनुचर रहोगे। हे वासुदेव! भगवान् शिवने प्रसन्नचित्त होकर उसे प्रेमपूर्वक कुशद्वीपमें उत्तम राज्य भी प्रदान किया॥ १०—१२ ॥

पूर्वकालमें ब्रह्माजीद्वारा उत्पन्न शतमुख नामक दैत्यने सौ वर्षपर्यन्त तपस्या करके उनके वरसे एक हजार पुत्र प्राप्त किये॥ १३॥

वेद जिनकी महिमाका गान करते हैं, उन महादेवकी आराधनाकर महर्षि याज्ञवल्क्यने उत्तम ज्ञान प्राप्त किया। जो [मुनिवर] वेदव्यास नामसे प्रसिद्ध हैं, उन्होंने भी शंकरकी आराधना करके अतुलनीय यश प्राप्त किया और वे त्रिकालज्ञ हुए॥ १४-१५॥

इन्द्रद्वारा अपमानित उन बालखिल्य महर्षियोंने सदाशिवसे सोमहर्ता तथा सभीसे दुर्जय गरुड़को प्राप्त किया। पूर्वकालमें शिवजीके क्रोधित हो जानेसे [घोर अनावृष्टिके कारण] सम्पूर्ण जल समाप्त हो गया, तब देवगणोंने सप्तकपाल यागके द्वारा शिवजीका यजनकर जलको पुनः प्रकट किया॥ १६-१७॥

[महर्षि] अत्रिकी भार्या अनसूयाने तीन सौ वर्ष-पर्यन्त निराहार रहकर मुसलोंपर शयन करके शिवजीसे दत्तात्रेय, चन्द्रमा एवं दुर्वासा-जैसे पुत्र प्राप्त किये और उन पतिव्रताने चित्रकूटमें गंगाको प्रकट किया॥ १८-१९॥

हे मधुसूदन! विकर्णने भक्तोंको सुख देनेवाले महादेवको प्रसन्न करके बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त की॥ २०॥

[शिवमें] दृढ़ भक्तिसे युक्त राजा चित्रसेन (चन्द्रसेन)-ने शिवजीको प्रसन्न करके सम्पूर्ण राजाओंके भयसे मुक्त हो निर्भयता और अतुल सम्पत्ति प्राप्त की। राजाके द्वारा की जाती हुई पूजाको देखनेसे महादेवके प्रति उत्पन्न भक्तिवाले गोपिकापुत्र श्रीकरने परम सिद्धिको प्राप्त किया॥ २१-२२॥

हे हरे! शिवके अनुग्रहसे सीमन्तिनीका पति चित्रांगद नामक राजपुत्र यमुनामें डूबनेपर भी नहीं मरा॥ २३॥

तक्षकके घर जाकर उससे मित्रता स्थापितकर उत्तम व्रतवाला वह अनेक धन-सम्पत्तिसे परिपूर्ण हो प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट आया॥ २४॥

हे कृष्ण! उसकी भार्या सीमन्तिनीने सोमवारका व्रतकर शिवके अनुग्रहसे उत्तम सौभाग्य प्राप्त किया॥ २५॥

पूर्वकालमें उस व्रतमें निरत किसी ब्राह्मणपुत्रने लोभके वशीभूत हो छलसे स्त्रीका रूप धारण करनेके कारण उसके प्रभावसे स्त्रीत्वको प्राप्त कर लिया॥ २६॥

पूर्वकालमें गोकर्णक्षेत्रमें किसी दुष्टा चंचुका (चंचुला) नामक व्यभिचारिणी स्त्रीने किसी द्विजसे शिवजीकी धार्मिक कथाको भक्तिपूर्वक सुनकर परम गति प्राप्त की। चंचुकाके पापी पति बिन्दुगने भी अपनी पत्नीकी कृपासे शिवपुराण सुनकर उत्तम शिवलोकको प्राप्त किया॥ २७-२८॥

पिंगला नामक वेश्या और मदर नामक अधम ब्राह्मण—उन दोनोंने महादेव शिवजीकी आराधना करके उत्तम गति प्राप्त की॥ २९॥

महानन्दा नामक किसी वेश्याने शिवचरणोंमें तल्लीन होकर अपनी दृढ़ प्रतिज्ञासे शिवजीको भलीभाँति प्रसन्नकर सद्गति प्राप्त की। केकयदेशकी रहनेवाली शिवव्रता सादरा नामक विप्रकन्याने भगवान् शिवका व्रत धारण करनेसे परम सुख प्राप्त किया॥ ३०-३१॥

हे कृष्ण! पूर्वकालमें राजा विमर्षणने शिवभक्तिकर शिवके अनुग्रहसे श्रेष्ठ गति प्राप्त की॥ ३२॥

अनेक स्त्रियोंमें आसक्त, पापी तथा दुष्ट, दुर्जन नामक राजाने शिवभक्तिके द्वारा सम्पूर्ण कर्मोंमें निर्लिप्त रहकर शिवको प्राप्त किया॥ ३३॥

शिवव्रतपरायण शंबर नामक शैव भीलने अपनी स्त्रीसहित भक्तिभावसे चिताकी विभूतिका लेपकर उत्तम गतिको प्राप्त किया। हे कृष्ण! सौमिनी नामक चाण्डालीने अज्ञानसे पूजा करके महादेवकी परम कृपासे शिवगति प्राप्त की॥ ३४-३५॥

दूसरोंकी हिंसा करनेवाले महाकाल नामक किरात-जातीय व्याधने भक्तिसे शिवपूजनकर उत्तम सद्गति प्राप्त की। पूर्वकालमें मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने शिवके अनुग्रहसे मुक्ति देनेवाली शिवभक्ति एवं अपने मतका लोकमें प्रचार किया॥ ३६-३७॥

लोककल्याणकारी भगवान् सदाशिवकी आराधनाकर विश्वामित्रने क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया तथा दूसरे ब्रह्माके समान हो गये॥ ३८॥

हे कृष्ण! शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ सर्वलोकपितामह ब्रह्माजी उत्तम भक्तिसे शिवकी पूजाकर सृष्टिकर्ता बन गये॥ ३९॥

हे हरे! शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ श्रीमान् मुनिवर मार्कण्डेय शिवजीकी कृपासे महाप्रभुतासम्पन्न एवं चिरंजीवी हुए।

हे कृष्ण! सभी देवताओंके स्वामी महान् शिवभक्त और प्रभुतासम्पन्न देवेन्द्रने पूर्व समयमें शिवके अनुग्रहसे त्रैलोक्यका उपभोग किया॥ ४०-४१॥

महाशैव तथा जितेन्द्रिय बलिपुत्र बाणासुर शिवजीकी कृपासे सबका स्वामी एवं ब्रह्माण्डका नायक हुआ॥ ४२॥

विष्णु, [महर्षि] शक्ति, महान् सामर्थ्यवाले दधीचि एवं श्रीराम भी शिवके अनुग्रहसे महाशैव हुए॥ ४३॥

कणाद, भार्गव, गुरु बृहस्पति, गौतम—ये सभी शिवकी भक्तिसे महाप्रभुतासम्पन्न और ऐश्वर्यशाली हुए॥ ४४॥

हे माधव! प्रशंसनीय आत्मावाले शाकल्य ऋषिने नौ सौ वर्षपर्यन्त मानसयज्ञसे शिवकी आराधना की। तब भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और बोले—हे वत्स! तुम ग्रन्थकार होओगे, तीनों लोकोंमें तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी और तुम्हारा वंश अक्षय तथा महर्षियोंसे अलंकृत होगा। हे ऋषिश्रेष्ठ! तुम्हारा पुत्र सूत्रकार बनेगा॥ ४५—४७॥

हे यदुनन्दन! इस प्रकार उन मुनिश्रेष्ठने शिवसे वरदान प्राप्त किया और वे त्रैलोक्यमें प्रख्यात तथा पूजनीय हुए॥ ४८॥

सत्ययुगमें सावर्णि इस नामसे प्रसिद्ध एक ऋषि हुए, जिन्होंने इसी स्थानपर छः हजार वर्षपर्यन्त तप किया। तब साक्षात् भगवान् रुद्रने उनसे कहा—हे अनघ! मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ, तुम लोकविख्यात ग्रन्थकर्ता और अजर-अमर होओगे॥ ४९-५०॥

इस प्रकार पूर्वजन्मके पुण्योंसे समर्चित हुए महादेव यथेच्छ शुभ कामनाओंको प्रदान करते हैं। [हे कृष्ण!] भगवान् शिवके जो गुण हैं, उनका वर्णन मैं एक मुखसे तो सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकता हूँ॥ ५१-५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें उपमन्यूपदेश नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

श्रीकृष्णकी तपस्या तथा शिव-पार्वतीसे वरदानकी प्राप्ति, अन्य शिवभक्तोंका वर्णन

सनत्कुमार बोले—उनकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णने अति विस्मित होकर शान्तचित्त उन महामुनिसे कहा—॥ १॥

वासुदेव बोले—हे विप्रेन्द्र! आप धन्य हैं, आप [विशुद्धात्मा]-की स्तुति करनेमें कौन समर्थ हो सकता है, जिन आपके आश्रममें देवताओंके आदिदेव निवास करते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! वे भगवान् सदाशिव मुझे भी जिस प्रकार दर्शन दें तथा मुझपर कृपा करें, आप ऐसा उपाय बतायें॥ २-३॥

उपमन्यु बोले—हे पुरुषोत्तम! आप थोड़े ही समयमें महादेवका दर्शन उन्हींकी कृपासे प्राप्त करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४॥

आप सोलहवें महीनेमें पार्वतीसहित सदाशिवसे उत्तम वरदान प्राप्त करेंगे। हे हरे! वे प्रभु शिव आपको वरदान क्यों नहीं देंगे, आप सभी देवगणोंसे पूजायोग्य एवं सर्वदा गुणोंके कारण प्रशंसनीय हैं, हे अच्युत! मैं आप श्रद्धालुको जपनीय मन्त्र बताऊँगा॥ ५-६॥

उस जपके प्रभावसे आप निश्चय ही शिवका दर्शन प्राप्त कर लेंगे और महेश्वरसे अपने समान ही बलवाला पुत्र प्राप्त करेंगे॥ ७॥

हे हरे! '**ॐ नमः शिवाय**' इस दिव्य मन्त्रराजका जप सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला एवं भोग और मोक्षको प्रदान करनेवाला है॥ ८॥

सनत्कुमार बोले—हे तापस! इस प्रकार महादेवसम्बन्धी कथाओंको कहते हुए उन [उपमन्यु]-के आठ दिन एक मुहूर्तके समान बीत गये॥ ९॥

[उसके अनन्तर] नौवाँ दिन आनेपर मुनि उपमन्युने उन श्रीकृष्णको दीक्षा प्रदान की और शिव-अथर्वशीर्षका महामन्त्र उन्हें बताया॥ १०॥

वे शीघ्र ही सिर मुड़ाकर दण्डधारी हो गये और एकाग्रचित्त होकर ऊपर भुजा उठाये पैरके एक अँगूठेपर खड़े होकर तप करने लगे॥ ११॥

इसके बाद सोलहवाँ महीना आनेपर प्रसन्न होकर पार्वतीसहित परमेश्वर शम्भुने कृष्णको दर्शन दिया॥ १२॥

तीन नेत्रवाले, चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये, ब्रह्मा आदिसे स्तुति किये जाते हुए, करोड़ों सिद्धजनोंसे पूजित, दिव्य माला तथा वस्त्र धारण किये हुए, भक्तिसे विनम्र देवताओं एवं असुरोंसे नमस्कृत, अनेक आभूषणोंसे विभूषित, सम्पूर्ण आश्चर्यसे परिपूर्ण, कान्तिमान्, अनेक गणों तथा दोनों पुत्रोंसे युक्त एवं अति प्रसन्न पार्वतीसहित ऐसे अजन्मा-अविनाशी-प्रभु भगवान् महेश्वरको देखकर विस्मयसे प्रफुल्लित नेत्रोंवाले तथा परम उत्साहसे युक्त श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर प्रसन्न होकर शंकरजीको प्रणाम किया। उन्होंने शास्त्रविधिसे उनकी पूजा की और सिर झुकाकर अनेकविध स्तोत्ररूप वाचिक उपचारसे तथा सहस्रनामसे देवेश्वरकी स्तुति की॥ १३—१७॥

उसके अनन्तर गन्धर्वोंके सहित देवताओं, विद्याधरों एवं महानागोंने श्रीकृष्णपर पुष्पवृष्टिकर उन्हें मनोनुकूल साधुवाद प्रदान किया। उसके बाद भक्तवत्सल भगवान् महेश्वर रुद्रने पार्वतीके मुखकी ओर देखकर प्रसन्न होकर कृष्णसे कहा— ॥ १८-१९॥

श्रीमहादेव बोले—हे कृष्ण! मेरे प्रति दृढ़व्रतवाले आप भक्तको मैं जानता हूँ, अतः आप तीनों लोकोंमें दुर्लभ एवं पवित्र वरोंको मुझसे माँग लीजिये॥ २०॥

सनत्कुमार बोले—उनके उस वचनको सुनकर श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर आदरसहित सर्वेश्वर शिवको बार-बार प्रणाम करके उनसे कहा— ॥ २१॥

श्रीकृष्ण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे नाथ! हे महेश्वर! मैं आपके द्वारा कहे गये अत्युत्तम आठ वरोंको आपसे माँगता हूँ। मेरी बुद्धि सदा शिवधर्ममें लगी रहे, मेरा यश सदा अधिक तथा अविचल रहे, मुझे आपका सामीप्य सदा प्राप्त हो और निरन्तर आपमें मेरी भक्ति बनी रहे। हे शम्भो! मेरी प्रमुख पत्नियोंके दस-दस पुत्र उत्पन्न हों और संग्राममें मैं समस्त बलाभिमानी शत्रुओंका वध करनेमें समर्थ होऊँ। हे प्रभो! शत्रुओंसे कभी मेरा अपमान न हो और मैं सभी योगियोंका भी अत्यन्त प्रिय होऊँ, हे देवाधिदेव! मुझे ये आठ उत्तम वर प्रदान कीजिये, आपको नमस्कार है। आप सर्वेश्वर हैं और विशेष रूपसे मेरे प्रभु हैं॥ २२—२६॥

सनत्कुमार बोले—उनका यह वचन सुनकर भगवान् शिवने उनसे कहा—यह सब [पूर्ण] होगा। शिवजीने उनसे पुनः कहा॥ २७॥

आपका साम्ब नामक एक महाबलवान् पुत्र होगा। पूर्व समयमें मुनिलोगोंने घोर संवर्तकादित्यको शाप दिया था कि तुम मनुष्यरूप धारण करोगे, इस प्रकार वे ही संवर्तकादित्य आपके पुत्र होंगे। आपने जो कुछ भी माँगा है,वह सब आपको प्राप्त हो॥ २८-२९॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार परमेश्वरसे समस्त वर प्राप्तकर श्रीकृष्णने अनेक प्रकारकी बहुत-सी स्तुतियोंसे उन्हें प्रसन्न किया। उसके बाद सन्तुष्ट हुई भक्तवत्सला शिवा पार्वतीने उन महात्मा शिवभक्त महातपस्वी वासुदेवसे कहा— ॥ ३०-३१॥

पार्वती बोलीं—हे वासुदेव! हे महाबुद्धे! हे कृष्ण! हे अनघ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ, अब आप पृथ्वीपर सर्वथा दुर्लभ तथा सुन्दर वरोंको मुझसे प्राप्त करें॥ ३२॥

सनत्कुमार बोले—उन पार्वतीका यह वचन सुनकर उन श्रीकृष्णने अतिप्रसन्नचित्त होकर भक्तियुक्त मनसे उनसे कहा— ॥ ३३॥



श्रीकृष्ण बोले—हे देवि! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और मेरे इस सत्यतपसे वरदान देना चाहती हैं

तो [मुझे यही वरदान दीजिये कि] मुझे ब्राह्मणोंसे कभी द्वेष न हो, मेरा कल्याण हो और मैं सदा ब्राह्मणोंकी पूजा करता रहूँ, मेरे माता-पिता सदा मुझपर प्रसन्न रहें, मैं जहाँ कहीं भी जाऊँ, वहाँ मैं सभी प्राणियोंके प्रति अनुकूलता रखूँ। आपके दर्शनके कारण अच्छे कुलमें मेरा जन्म हो, इन्द्र आदि देवगणोंको सैकड़ों यज्ञोंके द्वारा तृप्त करता रहूँ, हजारों यतियों तथा अतिथियोंको सदा अपने घरपर श्रद्धासे पवित्र भोजन कराता रहूँ, अपने बान्धवजनोंके साथ मेरी प्रीति रहे तथा मैं सदा सुखी रहूँ। हे देवि! मैं अपनी हजारों स्त्रियोंका प्राणप्रिय बना रहूँ और हे शांकरि! आपकी कृपासे उनमें मेरी अक्षीण प्रीति रहे। उनके माता-पिता लोकमें सत्यवादी रहें। हे पार्वति! ये सुन्दर वर आपकी कृपासे मुझे प्राप्त हों॥ ३४—४०॥

सनत्कुमार बोले—उनके इस वचनको सुनकर सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सनातनी देवीने विस्मित होकर कहा—ऐसा ही हो॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीकृष्णपर सत्कृपा करके उन्हें उन वरोंको देकर शिव-पार्वती वहीं अन्तर्हित हो गये॥ ४२॥

हे मुनीश्वर! श्रीकृष्ण अपनेको कृतार्थ समझने लगे, तदनन्तर वे शीघ्रताके साथ महर्षि उपमन्युके श्रेष्ठ आश्रममें गये। वहाँपर उन मुनिको नतमस्तक हो प्रणामकर केशिहा (केशी दैत्यका वध करनेवाले) कृष्णने उन उपमन्युसे उस वृत्तान्तको बताया— ॥ ४३-४४॥

तब उन्होंने उनसे कहा—हे जनार्दन! लोकमें उन प्रभु सदाशिवसे बढ़कर महादानपति तथा क्रोधके करनेमें अतिशय दुःसह कौन हो सकता है?॥ ४५॥

ज्ञान, तपस्या, शूरता, स्थिरता तथा पदमें भी उनसे अधिक कौन हो सकता है? हे गोविन्द! हे महायशस्वी! अब आप शिवजीके ऐश्वर्यको सुनें। यह सुनकर वे श्रद्धासम्पन्न एवं शिवभक्तिपरायण हो शिवके माहात्म्यको पूछने लगे। तब मुनीश्वरने उनसे कहा— ॥ ४६-४७॥

उपमन्यु बोले—पूर्व समयमें ब्रह्मलोकमें ब्रह्मयोगी महात्मा तण्डीने शिवसहस्रनामसे भगवान् शिवकी स्तुति की थी॥ ४८॥

निघण्टुके समान विस्तृत [अभिप्रायवाले तथा महात्मा तण्डिके द्वारा] गाये गये उस स्तोत्रका सांख्यवेत्ता पारायण करते हैं, मनुष्योंके लिये दुर्ज्ञेय वह स्तोत्र सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। हे कृष्ण! आप शिवका स्मरण करते हुए सुखपूर्वक घर जाइये। हे तात! आप शिवके भक्तोंमें सदा अग्रणी रहेंगे॥ ४९-५०॥

उनके ऐसा कहनेपर वासुदेव श्रीकृष्ण उन मुनीश्वर महर्षिको नमस्कार करके मनसे शिवका स्मरण करते हुए द्वारका चले गये॥ ५१॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार संसारका कल्याण करनेवाले शिवजीकी आराधनाकर श्रीकृष्ण कृतार्थ हुए और सभीसे अजेय हो गये॥ ५२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसी तरह दशरथपुत्र श्रीराम भी भक्तिके साथ शिवकी आराधना करके कृतकृत्य हुए और सभीसे अजेय हो गये॥ ५३॥

हे मुने! पहले श्रीरामने पर्वतपर अतिशय तप करके शिवजीसे अत्युत्तम ज्ञान और धनुष-बाण प्राप्त किया था। तत्पश्चात् वे समुद्रपर पुल बाँधकर सपरिवार रावणका वधकर जानकीको साथ लेकर घर लौटे और सम्पूर्ण पृथ्वीका शासन करने लगे॥ ५४-५५॥

इसी प्रकार क्षत्रियोंके द्वारा मारे गये अपने पिताको देखकर दुखी होकर भृगुपुत्र परशुरामने तपस्याके द्वारा शिवकी आराधना करके प्रसन्न हुए परमेश्वर शिवसे तीक्ष्ण परशुको प्राप्त किया और उससे इक्कीस बार उन क्षत्रियोंका संहार किया॥ ५६-५७॥

वे महातपस्वी [परशुराम] अजेय और अमर हैं। वे आज भी सिद्ध और चारणोंके साथ शिवलिंगका पूजन करते हुए देखे जाते हैं॥ ५८॥

वे परशुराम [इस समय भी] महेन्द्रपर्वतपर स्थित रहकर तपस्यामें रत हैं। कल्पका अन्त होनेपर वे पुनः ऋषिस्थान प्राप्त करेंगे। महर्षि असितके अनुज देवल नामक तपस्वीने अपने भाईके द्वारा सर्वस्व अपहरणके बाद दुखी होकर शिवकी आराधना की थी॥ ५९-६०॥

अधर्मयुक्त कार्य करनेपर इन्द्रके द्वारा शापित किसी तपस्वीने कामनाकी पूर्ति करनेवाले शिवलिंगकी आराधना करके सुस्थिर धर्मकी प्राप्ति की थी॥ ६१॥

चाक्षुष मनुका पुत्र गृत्समद वसिष्ठके शापसे दण्डकारण्यके मरुस्थलमें [क्रूर] पशु हुआ और अपने

मनमें प्रणवयुक्त शिवमन्त्रका भक्तिपूर्वक स्मरण करता हुआ अकेले घूमा करता था, [वह भगवान् शिवकी कृपासे] मृत्युके समान मुखाकृतिवाला मृगमुख नामक शिवका गण हुआ॥ ६२-६३ ॥

इस प्रकार शिवने प्रेमपूर्वक उसके शापको दूरकर उसे अजर-अमर कर दिया और गणेशजीका अनुगामी बना दिया॥ ६४॥

स्वेच्छासे विचरण करनेवाले सदाशिवने गार्ग्यको भूलोकमें दुर्लभ मोक्ष, महासमृद्धिसम्पन्न महाक्षेत्र, कालज्ञान, धर्मादि चारों पदार्थ प्रदान किये तथा सदाके लिये भगवती भारतीका पारंगत विद्वान् बनाया। शिवजीने उन्हें अतुलनीय हजार पुत्रोंकी प्राप्तिका वरदान भी दिया॥ ६५-६६ ॥

सन्तुष्ट हुए पिनाकधारी शिवने पराशरको जरा-मरणरहित वेदव्यास नामक योगीश्वर पुत्र प्रदान किया। शिवजीने शूलके अग्रभागपर दस लाख वर्षोंसे चढ़े हुए माण्डव्य ऋषिको जीवनदान देकर मुक्त किया॥ ६७-६८ ॥

पूर्व समयमें कोई निर्धन गृहस्थ ब्राह्मण अपने पुत्र गालवको गुरुके घरमें रखकर मुनियोंके आश्रममें छिप गया। उसके घरपर भिक्षुक आते-जाते रहते थे। धनहीन होनेके कारण उस ब्राह्मणने अपनी स्त्रीसे कह दिया था कि जो कोई भिक्षुक आये, उससे तुम कह दिया करो कि मेरे पति घरपर दिखायी नहीं देते हैं; क्योंकि आये हुए अतिथिको मैं गृहस्थ होते हुए भी क्या प्रदान करूँ ?॥ ६९—७१ ॥

इसके बाद किसी समय भूख और प्याससे दुर्बल और अतिशय व्याकुल कोई अतिथि पहुँचा, उसने उस ब्राह्मणीसे पूछा कि तुम्हारा पति कहाँ गया है ? तब उस ब्राह्मणीने उससे कहा कि मेरे पति तो इस समय दिखायी ही नहीं दे रहे हैं। इसके बाद दिव्य दृष्टिसे उसको देखकर भिक्षुकरूप महर्षिने उससे यह कहा—तुम्हारा पति घरमें कहीं छिपकर बैठा हुआ है और [उसके ऐसा कहते ही] वह ब्राह्मण वहींपर मर गया॥ ७२-७३ ॥

तत्पश्चात् विश्वामित्रसे सभी वृत्तान्त जानकर उसका पुत्र गालव अपने घर आया और मातासे दारुण शापकी बात जानकर उसने शैव विधानके अनुसार पूजा करते हुए शिवजीकी आराधना की। [तब शिवजीकी कृपासे जीवित हुआ उसका पिता] मनमें शंकरजीका स्मरण करता हुआ घरसे निकला। इसके बाद उस पुत्रको देखकर उसके पिताने हाथ जोड़कर कहा—मैं महादेवजीकी कृपासे कृतकृत्य हो गया हूँ। मैं धनवान् तथा पुत्रवान् हो गया हूँ और मरकर पुनः जीवित हो गया हूँ॥ ७४—७७ ॥

[हे मुनिगण!] इस प्रकार मैंने संक्षेपमें वर्णन कर दिया, मैं पूर्णरूपसे वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। शेष-नागके [हजार] मुख भी विस्तारपूर्वक सदाशिवके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कृष्णादिशिवभक्तोद्धारण-शिवमाहात्म्यवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

शिवकी मायाका प्रभाव

मुनिगण बोले—हे तात! हे तात! हे महाभाग! हे महामते! आप धन्य हैं; क्योंकि आपने परम भक्ति प्रदान करनेवाली यह अद्भुत शिवकथा सुनायी है॥ १॥

[हे सूतजी!] व्यासदेवके प्रश्नके अनुसार पुनः शिवकी कथा कहिये। आप सर्वज्ञ, व्यासजीके शिष्य और शिवतत्त्वके ज्ञाता हैं॥ २॥

सूतजी बोले—इसी प्रकार मेरे गुरु व्यासजीने सब कुछ जाननेवाले शिवभक्त मुनीश्वर ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारजीसे पूछा था॥ ३॥

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! आपने अनेक प्रकारसे लीलाविहार करनेवाले महेश्वर शंकरकी यह शुभ कथा सुनायी। आप पुनः महादेव शिवकी महिमाका विशेषरूपसे वर्णन करें। हे तात! मेरी बहुत अधिक श्रद्धा उसे सुननेके लिये बढ़ रही है॥ ४-५॥

विविध प्रकारसे लीलाविहार करनेवाले सदाशिवकी जिस महिमा तथा मायाके प्रभावसे ज्ञानरहित होकर लोकमें

जो-जो लोग विमोहित हुए, उनकी कथा सुनाइये ॥ ६ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! हे महामते! शंकरकी सुखदायिनी कथाको सुनिये, जिसके सुननेमात्रसे शिवजीके प्रति भक्ति उत्पन्न हो जाती है ॥ ७ ॥

शिवजी ही सर्वेश्वर देवता, सर्वात्मा एवं सभीके द्रष्टा हैं, उनकी महिमासे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ॥ ८ ॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रके रूपमें भगवान् शिवकी ही त्रिलिंगात्मिका परामूर्ति अभिव्यक्त हो रही है और समस्त प्राणियोंकी आत्माके रूपमें उन्हींकी निष्कल मूर्ति स्थित है ॥ ९ ॥

आठ प्रकारकी देवयोनियाँ, नौवीं मनुष्ययोनि एवं पाँच प्रकारकी तिर्यग् योनियाँ—इन सबको मिलाकर चौदह योनियाँ होती हैं। जो हो चुके हैं, विद्यमान हैं तथा आगे होनेवाले हैं—ये सभी [प्राणि-पदार्थ] शिवसे ही उत्पन्न होते हैं, वृद्धिको प्राप्त होते हैं और अन्तमें शिवमें ही विलीन हो जाते हैं ॥ १०-११ ॥

ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, चन्द्र, देवता, दानव, नाग, गन्धर्व, मनुष्य तथा अन्य सभी प्राणियोंके बन्धु, मित्र, आचार्य, रक्षक, नेता, धनदाता, गुरु, भाई, पिता, माता एवं [वांछित फलोंको देनेवाले] कल्पवृक्षस्वरूप शिवजी ही माने गये हैं ॥ १२-१३ ॥

शिव सर्वमय हैं, वे ही मनुष्योंके लिये जाननेयोग्य हैं तथा परसे भी परे हैं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता और जो पर तथा अनुपर हैं, उनकी माया परम दिव्य तथा सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली है और हे मुने! देवता, असुर एवं मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् उसीके अधीन है ॥ १४-१५ ॥

शिवजीकी मायाने मनसे उत्पन्न होनेवाले, अपने प्रबल सहयोगी कामके द्वारा विष्णु आदि सभी प्रबल वीर देवताओंको भी अपने अधीन कर लिया है ॥ १६ ॥

हे मुनीश्वर! शिवकी मायाके प्रभावसे विष्णु भी कामसे मोहित हो गये। देवताओंके स्वामी दुष्टात्मा इन्द्र भी गौतमकी पत्नीपर मोहित होकर पापकर्ममें प्रवृत्त हुए, तब उनको मुनिने शाप दे दिया ॥ १७-१८ ॥

जगत्‌में श्रेष्ठ अग्निदेव भी अहंकारके कारण शिवकी मायासे मोहित हो कामके अधीन हो गये, बादमें उन [शिवजी]-ने ही उनका उद्धार किया ॥ १९ ॥

हे व्यास! जगत्‌के प्राणस्वरूप वायु भी शिवकी मायासे मोहित होकर कामके वशीभूत होकर प्रेममें आसक्त हो गये ॥ २० ॥

शिवकी मायासे मोहित हुए प्रचण्ड किरणोंवाले सूर्यदेवने भी घोड़ी [के रूपमें स्थित अपनी पत्नी संज्ञा]-को देखकर कामसे व्याकुल होकर घोड़ेका स्वरूप धारण किया ॥ २१ ॥

शिवमायासे विमोहित होकर कामसे व्याकुल चन्द्रमाने भी आसक्त होकर गुरुपत्नीका अपहरण किया, बादमें उन शिवने ही उनका उद्धार किया ॥ २२ ॥

पूर्व समयमें मित्र एवं वरुण—दोनों मुनि तपस्यामें स्थित थे, तब शिवकी मायासे मोहित हुए वे दोनों उर्वशी [अप्सरा]-को देखकर मुग्धचित्त तथा कामनायुक्त हो गये। तब मित्रने अपना तेज घड़ेमें और वरुणने जलमें छोड़ दिया। तत्पश्चात् उस कुम्भसे वडवाग्निके समान कान्तिवाले अगस्त्य उत्पन्न हुए और वरुणके तेजसे जलसे वसिष्ठका जन्म हुआ ॥ २३—२५ ॥

पूर्वकालमें ब्रह्माके पुत्र दक्ष भी शिवमायासे मोहित हो गये और भाइयोंके साथ वे अपनी भगिनीसे सम्पर्ककी कामनावाले हो गये ॥ २६ ॥

शिवमायासे मोहित होकर ब्रह्मा भी अनेक बार स्त्री-संगकी कामनावाले हो गये ॥ २७ ॥

महायोगी च्यवन भी शिवकी मायासे मोहित हो गये और उन्होंने कामासक्त हो [अपनी पत्नी] सुकन्याके साथ विहार किया ॥ २८ ॥

पूर्वकालमें [महर्षि] कश्यपने शिवमायासे मोहित होकर कामके अधीन हो मोहपूर्वक राजा धन्वासे उनकी कन्याकी याचना की। शिवकी मायासे मोहित हुए गरुड़ने भी शांडिली नामक कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छा की, तब उनके अभिप्रायको जान लेनेके बाद उसने उनके पंखोंको भस्म कर दिया ॥ २९-३० ॥

मुनि विभांडक स्त्रीको देखकर कामके अधीन हो गये और शिवकी प्रेरणासे हरिणीसे ऋष्यशृंग नामक पुत्र

उन्हें उत्पन्न हुआ॥ ३१॥

शिवमायासे मोहित चित्तवाले महर्षि गौतम शारद्वतीको वस्त्रहीन देखकर क्षुब्ध हो गये और उन्होंने उसके साथ रमण किया॥ ३२॥

तपस्वी [भारद्वाज]-ने [घृताची अप्सराको देखकर] अपने स्खलित वीर्यको द्रोणीमें रख दिया, तब उस कलशसे शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य उत्पन्न हुए॥ ३३॥

शिवकी मायासे मोहित होकर महायोगी पराशरने भी निषादराजकी कुमारी कन्या मत्स्योदरीके साथ विहार किया॥ ३४॥

हे व्यास! विश्वामित्र भी शिवमायासे मोहित हो गये और उन्होंने कामके वशीभूत हो वनमें मेनकाके साथ रमण किया। नष्ट बुद्धिवाले उन्होंने वसिष्ठके साथ विरोध किया और शिवकी कृपासे ही पुनः वे [क्षत्रियसे] ब्राह्मण हो गये॥ ३५-३६॥

विश्रवाके पुत्र कामासक्त दुर्बुद्धि रावणने शिवकी मायासे विमोहित होकर सीताका अपहरण किया और अन्तमें उसकी मृत्यु हुई॥ ३७॥

शिवकी मायासे विमोहित हुए जितेन्द्रिय मुनिवर बृहस्पतिने अपने भाईकी पत्नीके साथ रमण किया, उसके फलस्वरूप महर्षि भरद्वाज उत्पन्न हुए॥ ३८॥

हे व्यास! इस प्रकार मैंने महात्मा शिवकी मायाके प्रभावका आपसे वर्णन कर दिया, अब आप आगे और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें शिवमाया-प्रभाववर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

महापातकोंका वर्णन

व्यासजी बोले—हे भगवन्! हे ब्रह्मपुत्र! महानरकमें जानेवाले जो पापपरायण जीव हैं, उनका वर्णन कीजिये, आपको नमस्कार है॥ १॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! पापोंमें संलग्न जो महानरकगामी जीव हैं, मैं उनका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ, आप सावधानीपूर्वक सुनें। दूसरोंकी स्त्री तथा पराये धनकी इच्छा, मनसे दूसरोंका अनिष्टचिन्तन तथा बुरे कामोंमें प्रवृत्ति—ये चार प्रकारके मानस पापकर्म हैं॥ २-३॥

असम्बद्ध प्रलाप, असत्य, अप्रिय भाषण तथा पीठपीछे चुगलखोरी—ये चार प्रकारके वाचिक पापकर्म हैं। अभक्ष्यभक्षण, हिंसा, अनुचित कर्मके प्रति आग्रह एवं परधनका अपहरण—ये चार प्रकारके कायिक पापकर्म हैं॥ ४-५॥

इस प्रकार ये मन,वाणी तथा शरीररूप साधनोंसे होनेवाले बारह प्रकारके पापकर्म कहे गये हैं, अब मैं इनके भेदोंका वर्णन करता हूँ, जिनके [अनिष्ट] परिणामोंका कोई अन्त नहीं है॥ ६॥

जो संसारसमुद्रसे पार करनेवाले महादेवकी निन्दा करते हैं, नरकसमुद्रमें पड़नेवाले उन लोगोंको महापाप लगता है। जो उन्मत्त होकर शिवज्ञानके उपदेशक, तपस्वी, गुरुओं एवं पितृजनोंकी निन्दा करते हैं, वे नरकसमुद्रमें जाते हैं॥ ७-८॥

शिवनिन्दा करना, गुरुनिन्दा करना, शैवसिद्धान्तका खण्डन करना, देवद्रव्यका अपहरण करना, द्विजद्रव्यका नाश करना और मूर्खतावश शिवज्ञानविषयक पुस्तकका अपहरण करना—ये छः अनन्त फल देनेवाले महापातक कहे गये हैं॥ ९-१०॥

जो लोग दूसरोंके द्वारा किये गये शिवपूजनको देखकर प्रसन्न नहीं होते, अर्चित शिवलिंगको देखकर नमस्कार नहीं करते और न उसकी स्तुति करते हैं, सदाशिवके आगे तथा गुरुके पास निःशंक होकर मनमानी चेष्टाएँ करते हुए बैठते हैं—क्रीडा-विनोद करते हैं और शिष्टाचारका अनुपालन नहीं करते हैं, जो लोग कर्मयोगमें स्थित रहते हुए अर्थात् उपासनापद्धतिके अनुरूप पर्वके दिनोंमें शिवजीके मन्दिरकी साफ-सफाई, पूजा आदि तथा गुरुओंकी विधिवत् पूजा नहीं करते, जो शिवाचारका त्याग करते हैं एवं शिवजीके

भक्तोंसे द्वेष करते हैं, जो [परम्पराके अनुसार इष्ट, गुरु आदिका] बिना पूजन किये शिवज्ञानका अध्ययन तथा बेचनेके लिये शिव-ज्ञानसम्बन्धी ग्रन्थका लेखन करते हैं, जो अन्यायसे दान करते हैं, अन्यायसे कथा सुनते एवं सुनाते हैं, लोभवश तथा अज्ञानतावश शिवज्ञानका उपहास करते हैं, संस्कारविहीन स्थानोंमें इच्छानुसार शिवकी स्थापना करते हैं, जो शिवज्ञानकथामें आक्षेप करके दूसरी बात करता है, जो सत्यभाषण नहीं करता है और दान नहीं देता है, जो अपवित्र रहकर या अपवित्र स्थानमें शिवकथाका वाचन अथवा श्रवण करता है, जो गुरुकी पूजा किये बिना ही शास्त्रका अध्ययन करना चाहता है, भक्तिभावसे उनकी सेवा तथा आज्ञापालन नहीं करता है, उनकी आज्ञाका आदर नहीं करता है तथा उत्तर देता है, गुरुकार्यको असाध्य कहकर उसकी उपेक्षा करता है, जो पापपरायण व्यक्ति रोगी, अशक्त, परदेश गये हुए अथवा शत्रुओंसे प्रताड़ित गुरुको छोड़ देता है, जो उनकी भार्या, पुत्र तथा मित्रकी अवज्ञा करता है और इसी प्रकार श्रेष्ठ कथावाचक तथा धर्मोपदेशक गुरुकी भी आज्ञा नहीं मानता है—हे मुनिश्रेष्ठ! ये समस्त कार्य शिवनिन्दाके समान महापातक कहे गये हैं॥ ११—२२॥

ब्रह्महत्यारा, सुरापान करनेवाला, चोर, गुरुपत्नीगामी एवं इनके साथ सम्पर्क रखनेवाला—ये महापापी होते हैं। क्रोध, लोभ, भय अथवा द्वेषवश ब्राह्मण-वधविषयक मर्मान्तक कथनके अपराधसे भी मनुष्य ब्रह्मघाती होता है॥ २३-२४॥

ब्राह्मणको बुलाकर उसे दान देकर जो पुनः उसे वापस ले लेता है और जो निर्दोष ब्राह्मणको दोष लगाता है, वह मनुष्य ब्रह्महत्यारा होता है॥ २५॥

जो अपनी विद्याके अभिमानवश उदासीन हुए अर्थात् तटस्थ भावसे व्यवहार करनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणको सभामें हतप्रभ करता है, वह ब्रह्महत्यारा कहा गया है॥ २६॥

जो दूसरेके गुणोंपर आक्षेप करके हठपूर्वक अपने मिथ्या गुणोंके द्वारा अपनेको उत्कृष्ट प्रदर्शित करता है, वह भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है॥ २७॥

वृषभोंके द्वारा बाही जाती हुई गायों और गुरुसे उपदेश ग्रहण करते हुए द्विजोंके कार्यमें जो विघ्न उपस्थित करता है, उसे भी ब्रह्महत्यारा कहा गया है। जो देवता, ब्राह्मण एवं गायोंके निमित्त दानमें दी गयी भूमिके उपेक्षित रहनेपर भी कुछ समय बाद उसका हरण करता है, उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है॥ २८-२९॥

देवता एवं ब्राह्मणके धनका अपहरण एवं अन्यायद्वारा किया गया धनोपार्जन है, उसे ब्रह्महत्याके समान पाप समझना चाहिये, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३०॥

यदि कोई ब्राह्मण वेदका अध्ययनकर मोहवश शिवात्मक ब्रह्मज्ञानका त्याग करता है, तो यह सुरापानके समान [पाप] है॥ ३१॥

जिस किसी भी व्रत, नियम तथा यज्ञके करनेका संकल्पकर उसका त्याग करना तथा पंच [महा] यज्ञोंका त्याग करना सुरापानके समान [पाप] है॥ ३२॥

माता-पिताका त्याग करना, झूठी गवाही देना, ब्राह्मणसे मिथ्या भाषण करना, शिवभक्तोंको मांस खिलाना एवं अभक्ष्यका भक्षण करना तथा वनमें निरपराध प्राणियोंका वध करना—[ये सभी पाप ब्रह्महत्याके ही तुल्य हैं।] साधुपुरुषको चाहिये कि वह ब्राह्मणके धनको त्याग दे तथा उसे धर्मके कार्यमें भी न लगाये [अन्यथा उसे ब्रह्महत्याका दोष लगता है]॥ ३३—३५॥

दीनोंके धनका हरण, स्त्री, पुरुष, हाथी, घोड़ा, गाय, भूमि, चाँदी, वस्त्र, औषधि, रस, चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी एवं रेशमी वस्त्र आदि वस्तुओंका ब्राह्मणके द्वारा बिना आपत्तिके जान-बूझकर किया गया विक्रय, अपने पासमें रखी गयी धरोहरका अपहरण करना—यह सब सुवर्णकी चोरीके समान माना गया है। विवाहके योग्य कन्याओंको योग्य वरको न प्रदान करना, पुत्र तथा मित्रकी स्त्रियोंसे, बहनसे तथा कुमारीके साथ गमन करना, मद्य पीनेवाली स्त्रीसे संसर्ग करना और समान गोत्रवाली स्त्रीसे संसर्ग करना—गुरुकी भार्याके साथ गमन करनेके समान कहा गया है। [हे व्यास!] मैंने महापातकोंको कह दिया, अब उपपातकोंका श्रवण कीजिये॥ ३६—४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें महापातकवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

पापभेदनिरूपण

सनत्कुमार बोले—ब्राह्मणके धनका अपहरण, पैतृक सम्पत्तिके बँटवारेमें उलट-फेर करना, अत्यन्त अहंकार, अत्यन्त क्रोध, पाखण्ड, कृतघ्नता, विषयोंमें अत्यधिक आसक्ति, कृपणता, सज्जनोंसे द्वेष, परस्त्रीगमन, कुलीन सच्चरित्र कन्याओंको दूषित करना, परिवित्ति, परिवेत्ता* एवं जिस कन्यासे ये दोनों दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हींको कन्यादान करना एवं उन्हींका यज्ञ कराना, शिवजीके लिये बनाये गये आश्रममें स्थित वृक्षों, पुष्पों एवं बगीचोंको नष्ट करना, आश्रममें रहनेवालोंको थोड़ी भी पीड़ा पहुँचाना, भृत्य-सहित परिवार, पशु, धान्य, धन, ताँबा आदि धातुओं और पशुओंकी चोरी करना, जलको अपवित्र करना, यज्ञ, वाटिका, तडाग, स्त्री, पुत्रका सौदा करना, तीर्थयात्रा, उपवास, व्रत, उपनयन आदि करके उसका विक्रय करना, जो स्त्रियोंके धनसे आजीविका चलाते हैं, जो स्त्रियोंके वशीभूत हैं (ऐसा होना), स्त्रियोंकी रक्षा न करना, छलपूर्वक स्त्रीका सेवन करना, धन लेकर समयसे ऋण न चुकाना, धान्यको वृद्धिपर देकर उससे निर्वाह करना, निन्दितसे धन ग्रहण करना, व्यापारमें कपटपूर्ण व्यवहार करना, विष देना तथा मारण मन्त्रोंका प्रयोग करना, बैलकी सवारी करना, उच्चाटन आदि अभिचार कर्म करना, धान्योंका हरण करना, वैद्यवृत्तिसे निर्वाह करना, जिह्वा एवं कामोपभोगके लिये सत्कर्मोंमें जिसकी प्रवृत्ति हो (ऐसा होना), वेदज्ञानको पढ़ाकर उसके मूल्यसे आजीविका चलाना, ब्राह्मणोचित आचारका त्याग करना, दूसरोंके आचारका सेवन करना, असत् शास्त्रोंका अध्ययन करना, व्यर्थ तर्कका आश्रय लेना, देवता, अग्नि, गुरु, साधु, ब्राह्मण तथा चक्रवर्ती राजाओंकी प्रत्यक्ष या परोक्षमें निन्दा करना, जो पितृयज्ञ, देवयज्ञ तथा अपने कर्मका त्याग करनेवाले हैं, जो दु:शील, नास्तिक, पापी तथा सदा असत्य भाषण करनेवाले हैं, जो पर्व समयमें, दिनमें, जलमें, विकृत योनिमें, पशुयोनियोंमें तथा रजस्वला स्त्रीसे संसर्ग करता है, जो स्त्री, पुत्र, मित्रकी प्राप्तिविषयक आशाको नष्ट करते हैं, लोगोंसे कटु वचन बोलते हैं, क्रूर हैं, प्रतिज्ञाको भंग करते हैं, तालाब तथा कूप आदिको विनष्ट करते हैं एवं रसोंको बेचते हैं, इसी प्रकार जो पंक्तिमें बैठे हुए लोगोंमें भोजनका भेद करते हैं, इन पापोंसे युक्त स्त्री एवं पुरुष उपपातकी कहे गये हैं। अन्य उपपातकी भी हैं। [हे व्यासजी!] मैं उन्हें आपको बता रहा हूँ, आप सुनें॥ १—१७॥

जो लोग गौ, ब्राह्मण, कन्या, स्वामी, मित्र एवं तपस्वियोंके कार्योंको बिगाड़ते हैं, वे नारकी मनुष्य कहे गये हैं॥ १८॥

जो परस्त्री [की अभिलाषा]-से दुखी रहते हैं, जो दूसरेके द्रव्यपर दृष्टि रखते हैं, दूसरेके द्रव्यका हरण करते हैं, मिथ्या तौल करते हैं, जो ब्राह्मणोंको पीड़ा देते हैं, जो उन्हें मारनेके लिये शस्त्र उठाये रहते हैं, जो द्विज होकर शूद्र-स्त्रीका सेवन करते हैं, स्वेच्छासे जो सुराका सेवन करते हैं, जो मनुष्य क्रूर एवं पापपरायण हैं, जो हिंसाप्रिय हैं, जो अपनी आजीविकाके लिये दान, यज्ञ आदि क्रियाएँ करते हैं, जो गोशाला, अग्नि, जल, मार्ग, वृक्षकी छाया, पर्वत, वाटिका एवं देवमन्दिरोंमें मल-मूत्रादिका त्याग करते हैं, जो लज्जाके स्थान, आश्रम एवं मन्दिरोंमें मद्यपान करते हैं, चोरीसे दूसरोंकी स्त्रीसे रमण करते हैं, दूसरोंका छिद्रान्वेषण करते हैं, जो बाँस, ईंट, पत्थर, काष्ठ, सींग एवं काँटों [अथवा कीलों]-से मार्गमें अवरोध उत्पन्न करते हैं, जो दूसरोंकी सीमा (मेड़) नष्ट करते हैं, जो फूट डालकर शासन करते हैं, मिथ्या छलप्रपंचमें संलग्न रहते हैं और कपट करके लाये हुए पाक, अन्न तथा वस्त्रोंका छलपूर्वक व्यवहार करते हैं, जो धनुष, शस्त्र तथा बाणका निर्माण करते हैं एवं उनका क्रय-विक्रय करते हैं, जो अपने नौकरोंके प्रति दयाहीन हैं, पशुओंका दमन करते हैं, जो झूठ बोलनेवालोंकी

* बड़े भाईके अविवाहित रहते जो छोटा भाई अपना विवाह कर लेता है तथा अग्निहोत्र ग्रहण करता है, वह छोटा भाई 'परिवेत्ता' तथा बड़ा भाई 'परिवित्ति' कहलाता है—दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते। परिवेत्ता स विज्ञेय: परिवित्तिस्तु पूर्वज:॥ (मनु० ३। १७१)

बात धीरे-धीरे सुनता है, स्वामी, मित्र, गुरुसे द्रोह करता है, मायावी है, धूर्त है, जो अपनी स्त्री, पुत्र, मित्र, बालक, वृद्ध, कमजोर, रोगी, भृत्य, अतिथि एवं बान्धवोंको भूखा छोड़कर [स्वयं] भोजन करते हैं, जो स्वयं मिष्टान्नका भोजन करते हैं, किंतु ब्राह्मणोंको नहीं देते हैं, उसका वह भोजन निरर्थक जानना चाहिये, वह ब्रह्मवादियोंमें निन्दित है, जो अजितेन्द्रिय स्वयं नियमोंको ग्रहण करनेके बाद उनका त्याग कर देते हैं, जो संन्यास ले करके भी घरमें निवास करते हैं, शिवमूर्तियोंको तोड़ते हैं, जो लोग क्रूर होकर गायोंको मारते हैं एवं बार-बार उनका दमन करते हैं, जो दुर्बलोंका पोषण नहीं करते तथा सदा त्याग करते हैं, जो अत्यधिक भारसे [भारवाहक] पशुओंको पीड़ित करते हैं, भार सहन न कर पानेवाले पशुको जोतते हैं, बिना उनको खिलाये कार्यमें जोत देते हैं, जुते हुएको चरनेके लिये नहीं छोड़ते, जो भारसे आहत, रोगी, क्षुधापीड़ित, गाय-बैलोंका भलीभाँति पालन नहीं करते, वे गोहत्यारे तथा नरक जानेके योग्य कहे गये हैं॥ १९—३३॥

जो पापी बैलोंके अण्डकोष कुटवा देते हैं और वन्ध्या गायको जोतते हैं, वे महानारकी मनुष्य कहे गये हैं॥ ३४॥

भूख-प्यास-श्रमसे पीड़ित तथा [भोजनकी] आशासे घरपर आये हुए अतिथियों, अनाथों, स्वेच्छासे विचरण करनेवालों, अन्नके इच्छुकों, दीनों, बालकों, वृद्धों, दुर्बलों तथा रोगियोंपर जो लोग दया नहीं करते, वे मूढ़ नरकसमुद्रमें जाते हैं॥ ३५-३६॥

[मनुष्यके मरनेपर] धन घरमें ही पड़ा रह जाता है, भाई एवं बन्धु श्मशानसे [पुनः घर] लौट आते हैं, किंतु पुण्य एवं पाप अन्तमें जाते हुए जीवके पीछे-पीछे जाता है॥ ३७॥

बकरी-भेड़ तथा भैंसके क्रय-विक्रयसे अपनी जीविका चलानेवाला, नमक बेचनेवाला, शूद्राका पति, शूद्रके समान आचरण करनेवाला तथा क्षत्रियवृत्तिसे जीवन-यापन करनेवाला अधम द्विज नरक जानेयोग्य होता है॥ ३८॥

शिल्पी, बढ़ई, वैद्य, स्वर्णकार, अपनेको राजाके रूपमें प्रदर्शित करनेवाले, कपटसे युक्त होकर नौकरी करनेवाले—वे सभी नारकी कहे गये हैं॥ ३९॥

जो [शासक] औचित्यका अतिक्रमण करके मनमानी रीतिसे कर ग्रहण करता है और जो दण्ड देनेमें रुचि रखता है, वह [राजा] भी नरकोंमें दुःख भोगता है। जिस राजाके राज्यमें प्रजा घूस लेनेवालों, इच्छानुसार [वस्तुका] क्रय करनेवालों तथा चोरोंसे पीड़ित की जाती है, वह राजा भी नरकोंमें दुःख भोगता है॥ ४०-४१॥

जो ब्राह्मण अन्यायपरायण राजासे दान ग्रहण करते हैं, वे घोर नरकोंमें जाते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४२॥

जो राजा प्रजाओंसे अन्यायपूर्वक धन ग्रहणकर ब्राह्मणोंको दान देता है, वह राजा भी नरकोंमें यातना प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३॥

परदारगमन करनेवाले, चोर तथा क्रूर पुरुषोंको जो पाप लगता है, परायी स्त्रीमें निरत रहनेवाले राजाको भी वही पाप लगता है॥ ४४॥

जो राजा बिना विचार किये ही चोरीसे रहित पुरुषको चोरके समान और चोरको चोरीसे रहित समझे, इस प्रकार [निरपराध व्यक्तिको] दण्ड देनेवाला वह राजा नरकगामी होता है॥ ४५॥

जो लोग लोभपूर्वक घी, तेल, अन्न, पीनेकी वस्तु, मधु, मांस, सुरा, आसव, गुड़, ईख, शाक, दूध, दही, मूल, फल, तृण, काष्ठ, पत्र, पुष्प, ओषधि, अपना भोजन, जूता, छाता, गाड़ी, आसन, कमण्डलु, ताँबा, सीसा, राँगा, शस्त्र, जलसे उत्पन्न शंख आदि वस्तुएँ, बाँसके बने हुए वाद्य, ऊनी-सूती-रेशमी-पट्टसूत्रसे बने हुए स्थूल तथा सूक्ष्म वस्त्रोंका हरण करते हैं और इसी प्रकार अन्य विविध वस्तुओंका थोड़ा भी हरण करते हैं, वे निश्चित रूपसे नरकोंमें जाते हैं। इतना ही नहीं, सरसोंके बराबर भी दूसरेकी वस्तुका अपहरण करके मनुष्य नरकमें पड़ते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४६—५१॥

इस प्रकारके पापोंके द्वारा मनुष्य प्राणोत्क्रमणके बाद शारीरिक यातना प्राप्त करनेके लिये सभी अवयवोंसे युक्त नूतन शरीर प्राप्त करता है॥ ५२॥

यमराजकी आज्ञासे महाभयानक यमदूतोंद्वारा ले जाये जाते हुए ये पापी अत्यन्त दुःखित होकर यातना-

शरीरके साथ यमलोकको जाते हैं॥ ५३॥

यमराज अनेक प्रकारके भयानक दण्डोंके द्वारा अधर्मपरायण मनवाले देवता, तिर्यग् योनियों एवं मनुष्योंके शास्ता कहे गये हैं। नियम तथा सदाचारमें तत्पर होनेपर भी प्रमादवश विचलित चित्तवाले लोगोंके लिये प्रायश्चित्तोंके द्वारा गुरु ही शास्ता हैं, यमराज नहीं; ऐसा विद्वानोंका अभिमत है॥ ५४-५५॥

परस्त्रीगामियों, चोरों तथा अन्यायसे व्यवहार करनेवालोंका शास्ता राजा कहा गया है, किंतु प्रच्छन्न पाप करनेवालोंके शासक धर्मराज ही हैं। इसलिये [अपने द्वारा] किये गये पापका प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये; अन्यथा बिना भोगे हुए पापका नाश करोड़ों कल्पोंमें भी नहीं होता है॥ ५६-५७॥

जो अपने शरीर, वाणी तथा मनसे पापोंको स्वयं करता है, कराता है अथवा उसका अनुमोदन करता है, उसका फल पापगति ही है॥ ५८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें पापभेदवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

यमलोकका मार्ग एवं यमदूतोंके स्वरूपका वर्णन

सनत्कुमार बोले—चार प्रकारके पापोंके कारण विवश होकर समस्त शरीरधारी मनुष्य भयको उत्पन्न करनेवाले घोर यमलोकको जाते हैं॥ १॥

यह बात गर्भस्थ, उत्पन्न बालक, युवा, मध्यम, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नपुंसक आदि समस्त जीवोंके विषयमें जाननी चाहिये। यहाँपर चित्रगुप्तादि सभी [यमपरिचर] एवं वसिष्ठादि प्रमुख महर्षिगण जीवोंके शुभ-अशुभ फलपर विचार करते हैं॥ २-३॥

ऐसे कोई भी प्राणी नहीं हैं, जो यमलोक नहीं जाते, इसे अच्छी तरह विचार कर लीजिये कि अपने किये कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है॥ ४॥

उनमें जो शुभ कर्म करनेवाले, सौम्यचित्त एवं दयालु होते हैं, वे मनुष्य यमलोकमें सौम्यमार्ग तथा पूर्वद्वारसे जाते हैं, किंतु जो पापी पापकर्ममें निरत एवं दानसे रहित हैं, वे घोर मार्गद्वारा दक्षिणद्वारसे यमलोकमें जाते हैं॥ ५-६॥

[मर्त्यलोकसे] छियासी हजार योजनकी दूरी पार करके अनेक रूपोंमें स्थित सूर्यपुत्र यमके पुरको जानना चाहिये। यह पुर पुण्य कर्मवाले मनुष्योंको समीपमें स्थित-सा जान पड़ता है, किंतु घोरमार्गसे जाते हुए पापियोंको बहुत दूर स्थित प्रतीत होता है॥ ७-८॥

तीक्ष्ण काँटोंसे युक्त, कंकड़ोंसे युक्त, छुरीकी धारके समान तीखे पाषाणोंसे बने हुए, कहीं जोंकोंसे भरे हुए तथा बहुत कीचड़से युक्त, कहीं लोहेकी सूईके समान नुकीले कुशोंसे युक्त, कहीं नदीतट-जैसे दुर्गम स्थानोंसे अति विषम तथा वृक्षोंसे परिपूर्ण, पर्वतोंसे युक्त और प्रतप्त अंगारोंसे युक्त मार्गसे दु:खित होकर [पापीलोग] जाते हैं॥ ९—११॥

वह मार्ग कहीं भयानक गड्ढोंसे, कहीं अत्यन्त दुष्कर ढेलोंसे, कहीं अत्यन्त जलती हुई रेतोंसे, कहीं तीक्ष्ण काँटोंसे, कहीं अनेक शाखाओंवाले फैले हुए बाँसके वनोंसे व्याप्त है। मार्गमें कहीं भयानक अन्धकार है और कहीं पकड़नेके लिये कोई आधार नहीं है, वह मार्ग कहीं लोहेके तीखे शृंगाटकोंसे, कहीं दावानलसे, कहीं प्रतप्त शिलाओंसे तथा कहीं बर्फसे व्याप्त है। वह मार्ग कहीं कण्ठतक शरीरको डुबो देनेवाली रेतसे, कहीं दुर्गन्धयुक्त जलसे तथा कहीं कण्डोंकी अग्निसे व्याप्त है॥ १२—१५॥

[वे नारकीय जीव] कहीं अति भयानक सिंहों, भेड़ियों, बाघों तथा मच्छरोंसे, कहीं बड़ी-बड़ी जोंकोंसे, कहीं अजगरोंसे, कहीं भयंकर मक्खियोंसे, कहीं विषधर सर्पोंसे, कहीं बलसे उन्मत्त होकर रौंद डालनेवाले मतवाले हाथियोंसे, [अपने] नुकीले दाँतोंसे मार्गको खोदते हुए सूकरोंसे, तीक्ष्ण सींगवाले भैंसोंसे, सम्पूर्ण हिंसक जन्तुओंसे, भयानक डाकिनियोंसे, विकराल राक्षसोंसे और घोर व्याधियोंसे पीड़ित होते हुए [यमलोक] जाते हैं॥ १६—१९॥

[वे पापीजन] कहीं अत्यधिक धूलसे भरी प्रचण्ड आँधी और बड़े-बड़े पाषाणोंकी वृष्टिसे आहत किये जाते हुए, कहीं दारुण विद्युत्-पातसे जलाये जाते हुए और कहीं चारों ओरसे महती बाणवृष्टिसे बींधे जाते हुए आश्रयहीन होकर [यमलोक] जाते हैं॥ २०-२१॥

वे गिरते हुए वज्रपातोंसे, दारुण उल्कापातों एवं धधकते हुए अंगारोंकी वर्षासे जलाये जाते हैं॥ २२॥

वे प्रचुर धूलिवर्षासे आच्छादित होकर रोते हैं और महामेघोंकी घोर ध्वनिसे बारम्बार भयभीत होते हैं॥ २३॥

वे चारों ओरसे बरसते हुए तीखे शस्त्रोंसे आहत किये जाते हुए तथा अत्यन्त क्षारीय जलधाराओंसे सिंचित किये जाते हुए [यमलोक] गमन करते हैं॥ २४॥

रूखी तथा कठोर स्पर्शवाली अत्यन्त शीतल वायुके द्वारा पीड़ित होकर [पापी] लोग सिकुड़ जाते हैं तथा सूख जाते हैं॥ २५॥

इस प्रकारके भयंकर, पाथेयरहित, निरालम्ब, कठिन, चारों ओर सर्वथा जलहीन, अत्यन्त विषम, निर्जन, आश्रयहीन घोर अन्धकारसे परिव्याप्त, कष्टकारक तथा सम्पूर्ण दुष्ट आश्रयोंसे युक्त मार्गसे जो मूढ़ तथा पापकर्मवाले जीव हैं, वे सब यमराजके आज्ञाकारी महाघोर दूतोंद्वारा बलपूर्वक [यमलोक] ले जाये जाते हैं॥ २६—२८॥

वे अकेले, पराधीन, मित्रों और बन्धुओंसे रहित होकर अपने कर्मोंको सोचते हुए बार-बार रोते हैं। वे प्रेत बनकर वस्त्रहीन, शुष्क कण्ठ, ओष्ठ एवं तालुवाले, अशान्त, भयभीत, जलते हुए एवं क्षुधासे व्याकुल [होकर चलते] रहते हैं॥ २९-३०॥

कोई मनुष्य जंजीरसे बाँधकर ऊपरकी ओर पैर करके बलवान् यमदूतोंद्वारा खींचे जाते हुए ले जाये जाते हैं। कोई छातीके बल नीचेकी ओर मुख किये हुए घसीटे जाते हैं और अति दुःखित होते हैं। कोई केशपाशमें रस्सीसे बाँधकर घसीटे जाते हैं॥ ३१-३२॥

अन्य प्राणी ललाटको अंकुशसे विदीर्ण किये जानेके कारण अत्यन्त दुःखित होते हैं। उत्तान किये हुए कुछ लोग काँटोंके मार्गसे तथा अंगारोंके मार्गसे ले जाये जाते हैं॥ ३३॥

किसीके दोनों हाथ पीछेकी ओर बाँधकर, किसीके पेटको [रस्सी आदिसे] जकड़कर, किसीको जंजीरोंमें कसकर, किसीके दोनों हाथोंमें कील ठोंककर और किसीके गलेमें रस्सी लगाकर खींचते हुए दुःख देकर ले जाया जाता है। कुछ लोग जीभमें अंकुश चुभाकर रस्सीसे खींचे जाते हैं॥ ३४-३५॥

कुछ लोग नाक छेदकर [नथुनोंमें] रस्सी [डालकर] उससे खींचे जाते हैं और गालों तथा ओठोंको छेदकर उनमें रस्सी डालकर खींचे जाते हैं॥ ३६॥

किसीका हाथ, किसीका पैर, किसीका कान, किसीका ओठ, किसीकी नाक, किसीका लिंग, किसीका अण्डकोश, किसीके शरीरके जोड़को काट दिया जाता है, कुछ लोग भालों तथा बाणोंसे बींधे जाते हैं और वे आश्रयरहित होकर इधर-उधर भागते तथा क्रन्दन करते हैं॥ ३७-३८॥

वे मुद्गरोंसे तथा लौहदण्डोंसे बार-बार पीटे जाते हैं, और अग्नि तथा सूर्यके समान तेजवाले विविध भयंकर काँटोंसे तथा भिन्दिपालोंसे बेधे जाते हैं, इस प्रकार रक्त एवं मवादका स्राव करते हुए तथा विष्ठा और कृमिसे भरे हुए [मार्गसे] मनुष्य विवश होकर [यमपुरीमें] ले जाये जाते हैं॥ ३९-४०॥

वे भूखसे व्याकुल होकर अन्न-पानी माँगते हैं, [धूपसे सन्तप्त हो] छायाकी याचना करते हैं और शीतसे दुखी हो अग्निके लिये प्रार्थना करते हैं॥ ४१॥

जिन लोगोंने दान नहीं दिया है, वे इसी प्रकार सुखकी याचना करते हुए यमालय जाते हैं, परंतु जिन लोगोंने पहलेसे ही दानरूपी पाथेय ले रखा है, वे सुखपूर्वक यमालयको जाते हैं॥ ४२॥

इस प्रकारकी व्यवस्थासे कष्टपूर्वक वे जब यमपुरी पहुँचते हैं, तब धर्मराजकी आज्ञासे दूतोंके द्वारा वे उनके आगे ले जाये जाते हैं॥ ४३॥

उनमें जो पुण्यात्मा होते हैं, उन्हें यमराज स्वागत, आसन-दान, पाद्य तथा अर्घ्यके द्वारा प्रेमपूर्वक सम्मानित करते हैं और कहते हैं कि शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले आप महात्मा लोग धन्य हैं, जो कि आपलोगोंने दिव्य सुख प्राप्त करनेके लिये पुण्यकर्म किया। अब आपलोग इस

दिव्य विमानपर चढ़कर दिव्य स्त्रियोंके भोगसे भूषित तथा सम्पूर्ण वांछितोंसे युक्त निर्मल स्वर्गको जायँ। वहाँपर महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें पुण्यका क्षय हो जानेपर जो कुछ अल्प अशुभ शेष रहेगा, उसे आपलोग पुन: यहाँपर भोगेंगे॥ ४४—४७॥



जो धर्मात्मा पुरुष हैं, वे धर्मराजको अपने मित्रके समान समझते हैं और उन्हें सौम्य मुखवाला देखते हैं॥ ४८॥

जो क्रूर कर्म करनेवाले हैं, वे यमराजको भयानक, दाढ़युक्त विकराल मुखवाला, कुटिल भौंहयुक्त नेत्रवाला, ऊपर उठे हुए केशोंवाला, बड़ी-बड़ी मूँछ एवं दाढ़ीवाला, [क्रोधके कारण] फड़कते ओठोंवाला, अठारह भुजाओंवाला, कुपित, काले अंजनके पहाड़के समान, सम्पूर्ण आयुधोंको धारण किये हुए हाथोंवाला, अपने दण्डसे सबको डाँटते हुए, बहुत बड़े भैंसेपर आरूढ़ एवं जलती हुई अग्निके समान नेत्रवाला समझते हैं। [वे पापीजन यमराजको] रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्र धारण किये हुए, सुमेरुपर्वतके समान ऊँचे, प्रलयकालीन महामेघके समान गर्जना करते हुए, समुद्रको पीते हुए, पर्वतराजको निगलते हुए और अग्निको उगलते हुए [मानो] देखते हैं॥ ४९—५२½॥

कालाग्निके समान प्रभावाली मृत्यु उनके समीप स्थित है और [वहीं] काजलके समान प्रतीत होनेवाले कालदेवता तथा भयानक कृतान्त देवता भी स्थित हैं। मारी, उग्रमहामारी, भयंकर कालरात्रि, कुष्ठादि नाना प्रकारकी भयानक व्याधियाँ [भी वहाँ मूर्तिमान् होकर] तथा शक्ति, शूल, अंकुश, पाश, चक्र, खड्ग आदि शस्त्रोंको हाथोंमें लिये हुए और क्षुर, तरकस, धनुष आदि धारण किये हुए वज्रतुल्य तुण्डवाले रुद्रगण भी वहाँ विद्यमान हैं। नाना प्रकारके शस्त्रोंको धारण किये हुए भयंकर महावीर वहाँ स्थित हैं और कालांजनके समान कान्तिवाले तथा समस्त शस्त्रोंको हाथोंमें लिये हुए असंख्य भयानक तथा महावीर यमदूत वहाँ विद्यमान हैं, पापीलोग इन परिचारकोंसे



घिरे हुए घोर दर्शनवाले उन यमराजको तथा भयंकर चित्रगुप्तको देखते हैं॥ ५३—५८॥

[उस समय] यमराज उन पापियोंको अत्यधिक धमकाते हैं और भगवान् चित्रगुप्त धर्मयुक्त वचनोंसे उन्हें समझाते हैं॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें नरकलोकमार्ग तथा यमदूतस्वरूपवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

नरक-भेद-निरूपण

चित्रगुप्त बोले—हे पापकर्मवालो! हे दूसरोंके द्रव्यका अपहरण करनेवालो! हे रूप एवं पराक्रमपर घमण्ड करनेवालो! हे परनारीप्रसंग करनेवालो! तुमलोगोंने स्वयं जो कर्म किया है, उसे तुम्हें भोगना पड़ रहा है। तुमलोगोंने आत्मविनाशके लिये कुत्सित आचरण क्यों किया? इस समय तुमलोग अपने कर्मोंके कारण पीड़ित किये जाते हुए [इस प्रकार] प्रलाप क्यों कर रहे हो? अब अपने कर्मोंको भोगो, इसमें किसीका दोष नहीं है॥ १—३॥

सनत्कुमार बोले—इसी प्रकार अपने कुत्सित कर्मों तथा बलपर गर्व करनेवाले राजालोग भी अपने घोर कर्मोंके कारण चित्रगुप्तके पास उपस्थित हुए। तब धर्मके ज्ञाता महाप्रभु चित्रगुप्तने यमराजकी आज्ञासे क्रोधयुक्त होकर उन्हें शिक्षा प्रदान की॥ ४-५॥

चित्रगुप्त बोले—प्रजाओंका विध्वंस करनेवाले हे दुराचारी राजाओ! तुमलोगोंने अल्पकालवाले राज्यके लिये पापकर्म क्यों किया?॥ ६॥

हे राजाओ! तुमलोगोंने राज्यभोगके मोहसे अन्यायपूर्वक जबरदस्ती प्रजाओंको जो दण्डित किया, अब उसका फल भोगो॥ ७॥

अब वह राज्य कहाँ है, वह स्त्री कहाँ है, जिनके लिये तुमलोगोंने [इतना बड़ा] दुष्कर्म किया? उन सभीको छोड़कर तुमलोग अकेले ही यहाँ स्थित हो॥ ८॥

मैं तुमलोगोंका वह बल नष्ट हुआ देख रहा हूँ, जिसके द्वारा तुमलोगोंने प्रजाओंका नाश किया है। तुमलोग तो यमदूतोंसे बँधे हुए हो, अब क्या हो सकेगा?॥ ९॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार यमके द्वारा अनेकविध वचनोंसे उपालम्भ प्राप्त किये हुए वे राजालोग चुप हो गये और अपने कर्मोंपर पश्चात्ताप करने लगे॥ १०॥

इस प्रकार उन राजाओंके कर्मको बतलाकर धर्मराज यमने उनके पापरूपी कीचड़की शुद्धिके लिये दूतोंसे यह कहा—॥ ११॥

यमराज बोले—हे चण्ड! हे महाचण्ड! इन राजाओंको बलपूर्वक पकड़कर नियमपूर्वक क्रमसे नरककी अग्नियोंमें इन्हें शुद्ध करो॥ १२॥

सनत्कुमार बोले—तब वे दूत शीघ्र ही उन राजाओंको दबोचकर उनके दोनों पैर पकड़कर वेगसे घुमाकर ऊपरकी ओर फेंककर और पुनः पकड़कर सर्वप्रथम तपे हुए शिलातलपर बड़े वेगसे पटकते हैं, मानो वज्रके द्वारा आहत होकर महावृक्ष गिर रहे हों॥ १३-१४॥

उस समय अत्यधिक जर्जर हो जानेपर उस जीवके कानोंसे रक्त बहने लगता है और वह संज्ञाशून्य तथा मूर्च्छित हो जाता है। तब वायुका स्पर्श कराकर यमदूत उसे पुनः उज्जीवित कर देते हैं और पापकी शुद्धिके लिये यमदूत उसे नरकसमुद्रमें फेंक देते हैं॥ १५-१६॥

उनमें पहली कोटि घोरा है और [दूसरी] सुघोरा उसके नीचे स्थित है। वहाँ पृथ्वीसे नीचे घोर अन्धकारमय सातवें पातालतलके अन्तमें सात [प्रधान] नरककोटियाँ हैं, जो अट्ठाइस नरककोटियोंके रूपमें दृष्टिगोचर होती हैं, जिनमें नारकीय प्राणी स्थित रहता है॥ १७॥

इसी प्रकार अतिघोरा, महाघोरा, पाँचवीं घोररूपा, छठी तलातला, सातवीं भयानका, आठवीं कालरात्रि, नौवीं भयोत्कटा, उसके नीचे दसवीं चण्डा, उसके भी नीचे महाचण्डा, चण्डकोलाहला, चण्डोंकी नायिका प्रचण्डा, पद्मा, पद्मावती, भीता, भीषण नरकोंकी नायिका भीमा, कराला, विकराला और बीसवीं वज्रा कही गयी है। त्रिकोणा, पंचकोणा, सुदीर्घा, अखिलार्तिदा, समा, भीमबलाभा, उग्रा एवं अन्तिम दीप्तप्राया है। इस प्रकार नामके अनुसार अट्ठाईस घोर नरककोटियोंको आपसे कह दिया, ये पापियोंको यातना देनेवाली हैं॥ १८—२३॥

उन नरककोटियोंमें प्रत्येकमें पाँच-पाँच प्रधान नरक जानने चाहिये। नामके अनुसार उन्हें सुनिये। उनमें प्रथम रौरव है, जहाँ प्राणी रोते रहते हैं, महारौरवकी यातनाओंसे महान्‌से महान् प्राणी भी रोने लगते हैं। तीसरा शीत, चौथा

उष्ण और पाँचवाँ सुघोर—ये पाँच प्रधान नरक कहे गये हैं। इसी प्रकार सुमहातीक्ष्ण, संजीवन, महातम, विलोम, विलोप, कण्टक, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकम्पन, महावक्र, काल, कालसूत्र, प्रगर्जन, सूचीमुख, सुनेति, खादक, सुप्रपीडन, कुम्भीपाक, सुपाक, क्रकच, अतिदारुण, अंगारराशिभवन, मेदोऽसृक्प्रहित, तीक्ष्णतुण्ड, शकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजन्तु, पंकलेप, प्रतिमांस, त्रपूद्भव, उच्छ्वास, सुनिरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहावाद, प्रवाह, सुप्रतापन, मेष, वृष, शाल्म, सिंहमुख, व्याघ्रमुख, गजमुख, श्वमुख, सूकरमुख, अजमुख, महिषमुख, घूकमुख, कोकमुख, वृकमुख, ग्राह, कुम्भीनस, नक्र, सर्प, कूर्म, काक, गृध्र, उलूक, हलौक, शार्दूल, ऊँट, कर्कट, मण्डूक, पूतिवक्त्र, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिक, कणधूम्र, अग्नि, कृमि, गन्धिवपु, अग्नीध्र, अप्रतिष्ठ, रुधिराभ, श्वभोजन, लालाभक्ष, आन्त्रभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण, कण्टक, सुविशाल, विकट, कटपूतन, अम्बरीष, कटाह, कष्टदायक वैतरणी नदी, सुतप्तलोहशयन, एकपाद, प्रपूरण, घोर असितालवन, अस्थिभंग, सुपूरण, विलातस, असुयन्त्र, कूटपाश, प्रमर्दन, महाचूर्ण, असुचूर्ण, तप्तलोहमय, पर्वत, क्षुरधारा, यमलपर्वत, मूत्रकूप, विष्ठाकूप, अश्रुकूप, क्षारकूप, शीतल, मुसल-उलूखलयन्त्र, शिलाशकटलांगल, तालपत्र, असिगहन, महाशकटमण्डप, सम्मोह, अस्थिभंग, तप्त, चल, अयोगुड, बहुदु:ख, महाक्लेश, कश्मल, समल, मल, हालाहल, विरूप, स्वरूप, यमानुग, एकपाद, त्रिपाद, तीव्र, आचीवर, तम—ये पाँच-पाँचके क्रममें अट्ठाईस नरक हैं, उनमें क्रमसे नरककोटियोंके पाँच-पाँच नायक हैं॥ २४—४३॥

प्राणियोंको दु:ख देनेके लिये एक सौ चालीस नरक बताये गये हैं, उसे नरकमण्डल कहा गया है। हे व्यास! इस प्रकार मैंने आपसे संख्याके अनुसार नरककी स्थितिका वर्णन किया, अब आप वैराग्य तथा उस पापगतिका श्रवण कीजिये॥ ४४-४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें नरकलोकवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

नरककी यातनाओंका वर्णन

सनत्कुमार बोले— [हे व्यास!] इन नरकाग्नियोंमें पापीजन अनेक प्रकारकी विचित्र यातनाओंके द्वारा कर्मोंके विनष्ट होनेतक सताये तथा सुखाये जाते हैं॥ १॥

जिस प्रकार मल दूर होनेतक धातुएँ अग्निमें तपायी जाती हैं, उसी प्रकार पापके क्षयपर्यन्त पापी मनुष्य भी अपने कर्मोंके अनुरूप सन्तप्त किये जाते हैं॥ २॥

यमराजके दूत लोहेकी जंजीरमें [पापी] मनुष्योंके दोनों हाथ दृढ़तापूर्वक बाँधकर महावृक्षकी शाखाओंमें लटका देते हैं॥ ३॥

उसके बाद यत्नपूर्वक यमकिंकरोंद्वारा फेंके गये मनुष्य बड़े वेगसे काँपते हुए मूर्च्छित होकर योजनों दूरीतक [उनके द्वारा] ले जाये जाते हैं॥ ४॥

इसके बाद महाबलवान् यमराजके दूत आकाशमें स्थित उन मनुष्योंके पैरोंमें सौ भारका लोहा बाँध देते हैं। उस महान् भारसे अत्यधिक पीड़ित मनुष्य अपने कर्मोंका स्मरण करते हैं और चेष्टाविहीन होकर चुपचाप खड़े रहते हैं॥ ५-६॥

तदनन्तर अतिभयंकर यमदूत उन पापियोंको चारों ओरसे भयानक अंकुशों एवं अग्निके समान वर्णवाले लोहदण्डोंसे मारते हैं। उसके पश्चात् अग्निसे भी तेज खारे नमकसे चारों ओरसे उनके ऊपर बार-बार लेप करते हैं॥ ७-८॥

उस लेपसे शीघ्र उनका शरीर जर्जर होकर छिन्न-भिन्न हो जाता है, पुन: सिरसे लेकर क्रमश: सारे अंग काट-काटकर अत्यन्त प्रतप्त लोहेके कड़ाहोंमें बैगनके समान पकाये जाते हैं। इसके बाद विष्ठासे पूरित कूपमें, कीड़ोंके ढेरमें तथा पुन: चर्बी, रक्त तथा मवादसे भरी हुई बावलीमें [पापियोंके शरीरावयव] फेंक दिये जाते हैं। वहाँपर कीड़े तथा लौहके समान तीक्ष्ण चोंचोंवाले

कौए, कुत्ते, मच्छर, भेड़िये एवं भयानक तथा विकृत मुखवाले व्याघ्र उनका भक्षण करते हैं और वे जलते अंगारोंकी राशिमें मछलीके समान भूँजे जाते हैं॥ ९—१२॥

वे मनुष्य अपने पापकर्मके फलस्वरूप अत्यन्त तीक्ष्ण भालोंसे वेधे जाते हैं। मनुष्योंके [वे] यातना-शरीर अपने घोर कर्मोंके कारण तेलयन्त्रोंमें डालकर तिलोंके समान पीसे जाते हैं। पुनः [अत्यन्त तीक्ष्ण] धूपमें तथा तपे हुए लोहेके पात्रोंमें अनेक प्रकारसे भूँजे जाते हैं। इसके बाद तेलसे पूर्ण अत्यन्त तप्त कड़ाहोंमें हृदय तथा पैरोंको दबाकर उनकी जीभको पकाया जाता है॥ १३—१५॥

इस प्रकार शरीरसे नाना प्रकारकी भयंकर यातना प्राप्त करते हुए [पापी] मनुष्य क्रमशः सभी नरकोंमें घूमते रहते हैं। हे व्यासजी! यमदूत सभी नरकोंमें [पापियोंके] सभी अंगोंमें विचित्र एवं अत्यन्त पीड़ादायिनी यातनाएँ देते हैं॥ १६-१७॥

जलता हुआ अंगार लेकर उनके मुखमें भरकर उन्हें पीटा जाता है, इसके बाद क्षारद्रव्यसे तथा तप्त [पिघले हुए] ताम्रसे उन्हें बार-बार पीड़ित किया जाता है। तत्पश्चात् अत्यधिक तपे हुए घी तथा तेलको उनके मुखमें भरकर इधर-उधर पीड़ा देकर बहुत मारा जाता है॥ १८-१९॥

[यमदूत] कभी-कभी उनके मुखमें कीड़े तथा विष्ठा भरकर अति भयानक तथा प्रदीप्त लोहशलाकासे उन्हें दागते हैं॥ २०॥

वे पीठपर जलते हुए विशाल घनोंसे मारे जाते हैं और अपने घोर पापकर्मोंके कारण दाँतोंवाले, वेदनाप्रद तथा सुदृढ़ आरेसे सिरतक चीरे जाते हैं। वे अपना ही मांस खाते हैं तथा अपना ही रक्त पीते हैं॥ २१-२२॥

सर्वदा अपने ही पोषणमें तत्पर रहनेवाले जिन्होंने अन्न अथवा पेय वस्तुका दान नहीं किया है, वे मुद्‌गरोंद्वारा जर्जर बनाकर ईखके समान पेरे जाते हैं॥ २३॥

उसके अनन्तर वे घोर असितालवनमें खण्ड-खण्ड करके छिन्न-भिन्न किये जाते हैं और उनके सारे अंगोंमें सुइयाँ चुभोयी जाती हैं एवं वे तप्त शूलीके अग्रभागपर लटकाये जाते हैं। उसपर हिला-डुलाकर वे बहुत पीड़ित किये जाते हैं, किंतु मरते नहीं, इस प्रकार उनके वे [यातना] शरीर सुख-दुःखको सहन करते हैं॥ २४-२५॥

महाबलशाली तथा बड़े-बड़े दाँतोंवाले भयंकर यमदूत उनके शरीरसे मांस निकालकर उन्हें मुद्‌गरोंसे पीटते हैं। उन मनुष्योंको निरुच्छ्‌वास नामक नरकमें बहुत समयतक बिना श्वासके रहना पड़ता है और उच्छ्‌वास नामक नरकमें बालूके घरमें उन्हें अत्यधिक पीटा जाता है॥ २६-२७॥

रौरव नरकमें रोते हुए जीव अनेक आघातोंसे पीड़ित किये जाते हैं और महारौरव नरकको यातनाओंसे बड़े-बड़े [धैर्यवान्] भी रोने लगते हैं॥ २८॥

चरण, मुख, गुदा, सिर, नेत्रों और मस्तकपर वे तीक्ष्ण घनोंसे तथा अत्यधिक तपी हुई लोहेकी छड़ोंसे मारे जाते हैं। वे अत्यन्त तपती हुई रेतोंमें बार-बार गिराये जाते हैं और अत्यन्त तपे हुए जन्तुपंकमें फेंके जानेपर वे विकृत स्वरमें क्रन्दन करने लगते हैं॥ २९-३०॥

हे मुने! क्रूर कर्म करनेवाले पापी कुम्भीपाक नरकोंमें असह्य तप्त तेलोंमें पूर्णरूपसे पकाये जाते हैं। उन पापियोंको दुःखदायक लालाभक्ष नामक नरकोंमें गिराया जाता है। इसी प्रकार वे अनेक प्रकारके नरकोंमें बार-बार गिराये जाते हैं॥ ३१-३२॥

यमदूतोंद्वारा पुण्यहीन पापी मनुष्य अत्यन्त कष्टदायक सूचीमुख नरकमें गिराया जाता है तथा मारा जाता है। अपने पापोंके कारण लोहकुम्भ नरकमें डाले गये मनुष्य धीरे-धीरे श्वास लेते हुए महान् अग्निसे पकाये जाते हैं॥ ३३-३४॥

रस्सी आदिसे दृढ़तापूर्वक बाँधकर उन्हें पत्थरोंपर पटका जाता है, अन्धकूप नरकोंमें फेंका जाता है, जहाँ भौंरे उन्हें बहुत डँसते हैं॥ ३५॥

कीड़ोंके द्वारा काटे गये सभी अंगोंवाले तथा पूर्णरूपसे जर्जर कर दिये गये वे बादमें अत्यन्त तीक्ष्ण क्षारकूपोंमें फेंक दिये जाते हैं॥ ३६॥

पापीलोग महाज्वाल नामक इस नरकमें दुखी होकर क्रन्दन करते रहते हैं और उसकी ज्वालासे दग्ध होते हुए इधर-उधर भागते हैं॥ ३७॥

तुण्डोंके द्वारा पीठपर लाकर कन्धोंका सहारा

लेकर बाहु तथा पीठके बीचसे दृढ़तापूर्वक खींचकर पाश तथा रस्सियोंसे अति कठोरतापूर्वक बाँधे गये सभी पापी महाज्वाल नामक नरकमें एक-दूसरेकी यातना देखते रहते हैं॥ ३८-३९॥

रस्सियोंसे बँधे हुए तथा कीचड़से लिपटे हुए वे कण्डा तथा भूसीकी आगमें पकाये जाते हैं, किंतु मरते नहीं। अति दुश्चरित्र पापियोंको कठोर शिलाओंपर बड़े जोरसे पटककर तृणके समान सैकड़ों खण्डोंमें फाड़ दिया जाता है॥ ४०-४१॥

शरीरके भीतर प्रविष्ट हुए तीखे मुखवाले बहुत-से कीड़ोंके द्वारा वे मनुष्य यातना-शरीरके नाशपर्यन्त निरन्तर भक्षण किये जाते हैं॥ ४२॥

कीड़ोंके समूहमें और पीब, मांस एवं हड्डियोंके समूहमें फेंके गये वे पापी दो पत्थरोंके बीचमें दबे हुए व्यथितचित्त होकर वहाँ पड़े रहते हैं॥ ४३॥

उनका शरीर कभी तपे हुए वज्रलेपसे लिप्त होता है और वे कभी नीचेकी ओर मुख तथा ऊपरको पैर करके अग्निसे तपाये जाते हैं॥ ४४॥

वे मुखके भीतर डाली हुई अतिशय तप्त लोहेकी गदाको विवश होकर निगलते रहते हैं और यमदूत उन्हें मुद्गरोंसे पीटते रहते हैं॥ ४५॥

हे व्यासजी! इस प्रकार पापकर्म करनेवाले लोग नरकोंमें दुःख भोगते हैं, अब मैं आपके जाननेके लिये उन पापियोंके विकृतस्वरूपका वर्णन करता हूँ॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सामान्य नरकगतिवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

नरकविशेषमें दुःखवर्णन

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! मिथ्या शास्त्रमें प्रवृत्त व्यक्ति द्विजिह्व नामक नरकमें जाता है, जहाँ जिह्वाके समान पतले, आधे कोशके विस्तारवाले तथा तीखे फालोंवाले हलोंसे उसे विशेष पीड़ा पहुँचायी जाती है। जो क्रूर मनुष्य माता-पिता एवं गुरुको झिड़कता है, उसके मुखको कीड़ोंसे युक्त विष्ठासे भरकर उसे पीटा जाता है॥ १-२॥

जो मनुष्य शिवमन्दिर, बगीचा, बावली, कूप, तड़ाग तथा ब्राह्मणोंके स्थानको नष्ट करते हैं और वहाँ विहार करते हैं, जो लोग कामके निमित्त मदोन्मत्त होकर वहाँ तेल-मालिश, उबटन, स्नान, [मद्यादिका] पान, जल (अविधिपूर्वक जलका पान), भोजन, क्रीड़ा, मैथुन तथा द्यूतका सेवन करते हैं, वे अनेक प्रकारके घोर इक्षुयन्त्र (कोल्हू) आदिसे पीड़ितकर दुखी किये जाते हैं और प्रलयकालपर्यन्त नरककी अग्नियोंमें पकते रहते हैं॥ ३—५॥

परस्त्रीगमन करनेवाले उसी रूपसे पीड़ित किये जाते हैं। वे पुरुष अतितप्त लोहनिर्मित नारीका पूर्ववत् आकार धारणकर दृढ़तापूर्वक आलिंगन करके सभी ओरसे जलते हैं। इस प्रकार वे व्यभिचारिणी स्त्रीका दृढ़तापूर्वक आलिंगन करते हैं और [जोर-जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर] रोते हैं॥ ६-७॥

जो लोग सज्जनोंकी निन्दा सुनते रहते हैं, उनके कानोंमें अग्निके समान वर्णवाली लोहेकी कीलें तथा ताम्र आदिसे निर्मित तप्त कीलें ठोंक दी जाती हैं और फिर पिघले हुए राँगा, सीसा एवं पीतलसे तथा तप्त दूध, तप्त तीक्ष्ण तेल अथवा वज्रलेपसे क्रमशः उनके कानोंको भरकर नरकोंमें क्रमानुसार चारों ओरसे उन्हें यातनाएँ दी जाती हैं॥ ८—१०॥

इसी प्रकार प्रत्येक शरीरसे किये गये पापके कारण क्रमसे सभी इन्द्रियोंकी भी घोर यातनाएँ होती हैं। जो मूढ़ दूसरेकी स्त्रीका [सकाम भावसे] स्पर्श करते हैं, उस स्पर्शदोषके कारण उनके हाथ अग्निके समान दहकती हुई बालुओंसे भर दिये जाते हैं। उनके शरीरपर सभी क्षारपदार्थोंका लेप कर दिया जाता है और सभी नरकोंमें महान् कष्ट देनेवाली यातनाएँ दी जाती हैं॥ ११—१३॥

जो मनुष्य अपने माता-पिताको टेढ़ी भृकुटीसे देखते हैं, उनकी ओर हाथ उठाते हैं, उन्हें आँख दिखाते हैं, उनके मुख लोहेके शंकुओंसे दृढ़तापूर्वक अन्ततक (चिरकालपर्यन्त) छेदे जाते हैं। जो मनुष्य जिन इन्द्रियोंसे परायी स्त्रीको दूषित करते हैं, उनकी उन इन्द्रियोंको वैसे ही विकृत कर दिया जाता है॥ १४-१५॥

जो लुब्ध होकर अपलक दृष्टिसे दूसरेकी स्त्रियोंको देखते हैं, उनके नेत्रोंको अग्निके जैसी सूइयोंसे तथा क्षार आदि पदार्थोंसे भर दिया जाता है। हे मुनिशार्दूल! क्रमसे यहाँ ये यमयातनाएँ दी जाती हैं। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं॥ १६-१७॥

जो देवता, अग्नि, गुरु एवं ब्राह्मणोंको बिना दिये ही खा लेता है, उसकी जीभ तथा मुख लौहनिर्मित तथा तपी हुई सैकड़ों कीलोंसे भर दिये जाते हैं॥ १८॥

जो मनुष्य देवताके लिये लगाये गये उद्यानके फूलोंको लोभवश हाथसे तोड़कर सूँघते हैं और पुनः सिरपर धारण करते हैं, उनके सिरपर लोहेकी तपी हुई कीलें ठोंक दी जाती हैं और उनकी नाक अत्यधिक क्षार आदि पदार्थोंसे पूर्णतः भर दी जाती है॥ १९-२०॥

जो लोग महात्मा, कथावाचक, धर्मोपदेशक, देवता, अग्नि, गुरु, भक्त तथा सनातन धर्मशास्त्रकी निन्दा करते हैं, उनके हृदय, कण्ठ, जिह्वा, दाँत, मसूढ़ों, तालु, ओठ, नासिका, मस्तक तथा समस्त अंगोंके सन्धिस्थलोंपर तीन फालवाले अग्निके समान लाल, तप्त लोहशंकु मुद्गरोंसे ठोंके जाते हैं। उसके बाद सभी जगह दीप्त क्षारसे लेप किया जाता है, इस प्रकार हर तरहसे शरीरकी महती यातनाएँ पाते हुए वे क्रमशः सम्पूर्ण नरकोंमें घूमते रहते हैं॥ २१—२४१/२॥

जो लोग दूसरेका द्रव्य लेते हैं, पैरोंसे ब्राह्मणोंको छूते हैं और शिवकी पूजा-सम्बन्धी वस्तु, गाय तथा ज्ञानमय शास्त्रोंको [अपवित्र] हाथों तथा [अवज्ञापूर्वक] पैर आदिसे छूते हैं, उनके हाथ एवं पैरोंमें लोहेकी कीलें ठोंकी जाती हैं। इसी प्रकार सभी नरकोंमें हाथों एवं पैरोंसे सम्बन्धित विचित्र तथा कष्टकारक बहुत-सी यातनाएँ प्राप्त होती हैं॥ २५—२७॥

जो पापी शिवमन्दिरकी सीमामें तथा देवताओंके लिये लगाये गये उद्यानोंमें मल-मूत्रका त्याग करते हैं, उनके वृषण तथा मूत्रेन्द्रियको लोहेके मुद्गरोंसे चूर-चूर कर दिया जाता है और पुनः अग्निके सदृश तप्त सुइयोंको उसमें भर दिया जाता है, उसके अनन्तर शीघ्र ही उस जीवकी गुदा एवं शिश्नमें अत्यन्त तीक्ष्ण क्षार पदार्थ अच्छी तरहसे बार-बार भरा जाता है, जिससे मन एवं सभी इन्द्रियोंमें [बड़ी तीव्र] वेदना होती है॥ २८—३०॥

जो [मनुष्य] धन होनेपर भी लोभवश दान नहीं करते हैं और भोजनकालमें घरपर आये हुए अतिथिका अपमान करते हैं, इस कारणसे वे पापके भागी होकर अपवित्र नरकमें जाते हैं॥ ३१-३२॥

जो लोग कौवों तथा कुत्तोंको अन्न न देकर [स्वयं] भोजन करते हैं, उनके मुँहमें दो कीलें ठोंककर उसे खुला रखा जाता है। वे कीड़े, हिंसक जन्तु एवं लोहेके समान चोंचवाले कौवे अनेक प्रकारके घोर उपद्रवोंसे उनके चित्तमें पीड़ा पहुँचाते हैं॥ ३३-३४॥

यममार्गका अनुगमन करनेवाले श्याम और शबल नामक जो दो कुत्ते हैं, उन दोनोंको मैं बलि देता हूँ; वे दोनों इस बलिको ग्रहण करें। पश्चिम, वायव्य, याम्य तथा नैर्ऋत्य दिशाके जो कौवे हैं, वे पुण्यकर्मवाले कौवे मेरी बलिको ग्रहण करें—इस प्रकार जो यत्नपूर्वक शिवमन्त्रोंसे शिवका पूजन करके विधिपूर्वक अग्निमें होमकर शिवमन्त्रोंसे बलि देते हैं अर्थात् बलिवैश्वदेव करते हैं, वे यमराजको नहीं देखते हैं और स्वर्गको जाते हैं। अतः प्रतिदिन चौकोर मण्डल बनाकर उसे गन्ध आदिसे सुगन्धितकर ईशानकोणमें धन्वन्तरिके लिये तथा पूर्व दिशामें इन्द्रके लिये बलि प्रदान करना चाहिये। पुनः दक्षिणमें यमके लिये, पश्चिममें सुदक्षोमके लिये, दक्षिणमें पितरोंके लिये और पुनः पूर्वमें अर्यमाको बलि प्रदान करके द्वारदेशपर धाता एवं विधाताको बलि देनी चाहिये। कुत्ते, कुत्तेके स्वामियों तथा पक्षियोंके लिये भूमिपर बलि देनी चाहिये। देवता, पितर, मनुष्य, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि एवं कीटोंसे गृहस्थ उपजीवित होता है अर्थात् ये सभी गृहस्थके आश्रयसे निर्वाह करते हैं। स्वाहाकार, स्वधाकार, तीसरा वषट्कार तथा हन्तकार—ये [धर्ममयी] धेनुके चार स्तन हैं।

देवता स्वाहाकार स्तनका, पितर स्वधाकार स्तनका, अन्य देवता तथा भूतेश्वर वषट्कारका और मनुष्य हन्तकार स्तनका निरन्तर पान करते हैं। जो मनुष्य श्रद्धासे इस धर्ममयी धेनुके लिये बतायी गयी विधिका निरन्तर अनुपालन करता है, वह अग्निके समान तेजस्वी एवं पवित्र हो जाता है और जो उसका त्याग करता है, वह अशान्त होकर तामिस्र नरकमें डूबता रहता है। इसलिये उन सबको बलि प्रदान करके क्षणमात्र द्वारपर रुककर अतिथिकी प्रतीक्षा करे और यथाशक्ति अपने भोजनसे भूखे अभ्यागत अथवा अपने ही गाँवके रहनेवाले किसी व्यक्ति विधिपूर्वक उत्तम अन्नका भोजन कराये॥ ३५—४७॥

जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह उस व्यक्तिको अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर चला जाता है। उसके बाद मधुर अन्नको खानेवाला मनुष्य शृंखलाओंसे आबद्ध होकर जिह्वाके वेगसे बिंधा हुआ चिरकालतक नरकमें निवास करता है। तिल-तिलभर उसका मांस काटकर और रुधिरको निकालकर उन्हें खानेके लिये दिया जाता है। इसके बाद कोड़ोंसे मारकर उसे बहुत कष्ट दिया जाता है। अत्यधिक भूख और प्यासमे व्याकुल होकर वह बहुत कष्ट पाता है॥ ४८—५१॥

इस प्रकारकी अनेक यातनाएँ पाप करनेवालोंको दी जाती हैं, इसके अनन्तर अन्तमें जो भी वह प्राप्त करता है, उसे संक्षेपसे सुनिये॥ ५२॥

जो प्राणी महापाप करता है और थोड़ा धर्म भी करता है अथवा धर्माचरण अधिक करता है, उन दोनोंकी स्थितियोंको सुनिये॥ ५३॥

अधिक पापके प्रभावके कारण पुण्यका फल नहीं बताया गया; अनेक भोगोंसे युक्त होनेपर भी वह उनसे सुखी नहीं हो पाता और व्याकुल तथा अति सन्तप्त हुआ वह भोजनयोग्य पदार्थोंसे सुखका अनुभव नहीं करता है। वह अभावके कारण दूसरेके आगे प्रतिदिन दुखी रहता है॥ ५४-५५॥

जिस मनुष्यने अधिक धर्म किया है, वह धनसम्पन्न उपवासी गृहस्थके समान नियममें स्थित रहनेपर भी पीड़ाका अनुभव नहीं करता है॥ ५६॥

इस प्रकारके अनेक घोर पाप हैं, जिनके द्वारा भूलोकमें मनुष्य वज्रसे आहत हुए पर्वतकी भाँति सौ टुकड़ोंमें छिन्न-भिन्न हो जाता है॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें नरकगतिभोगवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

दानके प्रभावसे यमपुरके दुःखका अभाव तथा अन्नदानका विशेष माहात्म्यवर्णन

व्यासजी बोले—हे प्रभो! पाप करनेवाले मनुष्य बड़े दुःखसे युक्त होकर यममार्गमें गमन करते हैं, अब आप उन धर्मोंको कहिये, जिनके द्वारा वे सुखपूर्वक यममार्गमें गमन करते हैं॥ १॥

सनत्कुमार बोले—निश्चय ही अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मका फल बिना विचारे विवश होकर भोगना पड़ता है, अब मैं सुख प्रदान करनेवाले धर्मोंका वर्णन करूँगा। इस लोकमें जो लोग शुभ कर्म करनेवाले, शान्तचित्त एवं दयालु मनुष्य हैं, वे बड़े सुखके साथ भयानक यममार्गमें जाते हैं॥ २-३॥

जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता एवं खड़ाऊँका दान करते हैं, वे उत्तम घोड़ेपर बैठकर सुख-पूर्वक यमपुरीको जाते हैं। छाताका दान करनेसे मनुष्य यहाँकी भाँति छाता लगाकर [यमलोक] जाते हैं। शिविका प्रदान करनेसे प्राणी सुखपूर्वक रथसे गमन करता है॥ ४-५॥

शय्या, आसन प्रदान करनेसे प्राणी विश्राम करता हुआ सुखपूर्वक जाता है। जो लोग उद्यान लगानेवाले, छाया करनेवाले तथा मार्गमें वृक्षका आरोपण करनेवाले हैं, वे धूपमें भी कष्टरहित होकर यमपुरीको जाते हैं॥ ६॥

फूलोंके बगीचे लगानेवाले मनुष्य पुष्पक विमानसे जाते हैं और देवमन्दिरका निर्माण करानेवाले [उस मार्गपर] [उत्तम] भवनोंके भीतर क्रीड़ा करते हैं। जो लोग संन्यासियोंके लिये आश्रम तथा अनाथोंके लिये अनाथालय बनवाते हैं, वे भी [उत्तमोत्तम] भवनोंमें क्रीड़ा करते हैं॥ ७-८॥

देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण एवं माता-पिताकी पूजा करनेवाले मनुष्य पूजित होते हुए यथेच्छ सुखपूर्वक [यमपुरीको] जाते हैं॥ ९॥

दीपदान करनेवाले सभी दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जाते हैं एवं आश्रयस्थान (गृह आदि) प्रदान करनेवाले नीरोग होकर सुखपूर्वक जाते हैं॥ १०॥

गुरुकी सेवा करनेवाले मनुष्य विश्राम करते हुए जाते हैं और वाद्य-यन्त्रोंका दान देनेवाले अपने घरके समान सुखपूर्वक [यमलोक] जाते हैं॥ ११॥

गौ प्रदान करनेवाले सभी कामनाओंसे सम्पन्न होकर जाते हैं। मनुष्य इस लोकमें जो भी अन्न, पान आदि दिये रहता है, वही [परलोकके] मार्गमें वह प्राप्त करता है॥ १२॥

पैर धोनेके लिये जल प्रदान करनेसे प्राणी जलवाले मार्गसे जाता है। पैरोंमें लगानेके लिये उबटनका दान करनेवाले घोड़ोंकी पीठपर चढ़कर जाते हैं॥ १३॥

हे व्यासजी! जो पैर धोनेके लिये जल, उबटन [तेल आदि], दीपक, अन्न एवं प्रतिश्रय (गृह आदि) प्रदान करता है, उसके पास यमराज नहीं जाते हैं॥ १४॥

सोना एवं रत्नका दान करनेसे मनुष्य घोर कष्टोंको पार करता हुआ तथा चाँदी, बैल आदिका दान करनेसे वह सुखसे यमलोकको जाता है और इन सभी दानोंके कारण मनुष्य सुखपूर्वक यमलोक जाते हैं और स्वर्गमें सदा अनेक प्रकारके भोग प्राप्त करते हैं॥ १५-१६॥

सभी दानोंमें अन्नदान श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि यह तत्काल प्रसन्न करनेवाला, हृदयको प्रिय लगनेवाला एवं बल तथा बुद्धिको बढ़ानेवाला है॥ १७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अन्नदानके समान कोई दूसरा दान नहीं है; क्योंकि अन्नसे ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और उसके अभावमें मर जाते हैं॥ १८॥

रक्त, मांस, चर्बी एवं शुक्र—[ये] क्रमशः अन्नसे ही बढ़ते हैं। शुक्रसे प्राणी उत्पन्न होते हैं, इसलिये जगत् अन्नमय है अर्थात् अन्नका ही परिणाम है॥ १९॥

भूखे लोग सुवर्ण, रत्न, घोड़ा, हाथी, स्त्री, माला, चन्दन आदि समस्त भोगोंके प्राप्त होनेपर भी आनन्दित नहीं होते हैं। गर्भस्थ, उत्पन्न हुए शिशु, बालक, युवा, वृद्ध, देवता, दानव तथा राक्षस—ये सब आहारकी ही विशेष आकांक्षा रखते हैं॥ २०-२१॥

इस जगत्‌में भूखको सभी रोगोंमें सबसे बड़ा रोग कहा गया है, वह [रोग] अन्नरूपी औषधिके लेपसे नष्ट होता है, इसमें संशय नहीं है॥ २२॥

क्षुधाके समान कोई दुःख नहीं है, क्षुधाके समान कोई व्याधि नहीं है, आरोग्यलाभके समान कोई सुख नहीं है एवं क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है। अतः अन्नदान करनेमें महापुण्य कहा गया है; क्योंकि क्षुधारूपी अग्निसे तप्त हुए सभी प्राणी मर जाते हैं॥ २३-२४॥

अन्नका दान करनेवाला, प्राणदाता और प्राणदान करनेवाला सर्वस्वका दान करनेवाला कहा गया है, अतः मनुष्य अन्नदानसे सभी प्रकारके दानका फल प्राप्त करता है। जिसके अन्नसे पालित पुरुष पुष्ट होकर पुण्य संचय करता है, उसका आधा पुण्य अन्नदाताको और आधा पुण्य [स्वयं उस] कर्ताको प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है॥ २५-२६॥

तीनों लोकोंमें जो भी रत्न, भोग, स्त्री, वाहन आदि हैं, उन सबको अन्नदान करनेवाला इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त करता है। यह शरीर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षका परम साधन है। अतः अन्न एवं पानसे अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये॥ २७-२८॥

सभी लोग अन्नकी प्रशंसा करते हैं; क्योंकि सब कुछ अन्नमें प्रतिष्ठित है। अन्नदानके समान न कोई दान हुआ है और न होगा॥ २९॥

हे मुने! अन्नके द्वारा ही यह सम्पूर्ण विश्व धारण किया जाता है, अन्न ही लोकमें ऊर्जा प्रदान करनेवाला है और अन्नमें ही प्राण भी प्रतिष्ठित हैं॥ ३०॥

ऐश्वर्यकी कामना करनेवालेको चाहिये कि वह अपने कुटुम्बको [यत्किंचित्] दुःख देकर भी भिक्षुक तथा महात्मा ब्राह्मणको अन्नका दान करे॥ ३१॥

जो व्यक्ति याचक तथा दुखी ब्राह्मणको अन्नका दान करता है, वह अपनी पारलौकिक श्रेष्ठ निधिको संचित कर लेता है॥ ३२॥

ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले गृहस्थ व्यक्तिको चाहिये कि आजीविकाहेतु यथासमय उपस्थित हुए तथा रास्तेमें थककर घर आये हुए ब्राह्मणका सत्कार करे। हे व्यासजी! जो शीलसम्पन्न तथा ईर्ष्याशून्य होकर भोजन देनेवाला पुरुष उत्पन्न हुए क्रोधका त्यागकर [अभ्यागतकी] पूजा करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें बहुत सुख प्राप्त करता है॥ ३३-३४॥

कभी भी प्राप्त हुए अन्नकी निन्दा न करे और न उसे किसी तरह फेंके ही; क्योंकि चाण्डाल तथा कुत्तेके लिये भी दिया गया अन्नदान निष्फल नहीं होता है॥ ३५॥

थके हुए तथा अपरिचित पथिकको जो प्रसन्नतापूर्वक अन्न प्रदान करता है, वह ऐश्वर्य प्राप्त करता है॥ ३६॥

हे महामुने! जो मनुष्य पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों एवं अतिथियोंको अन्नोंके द्वारा सन्तुष्ट करता है, उस व्यक्तिको बहुत पुण्य मिलता है॥ ३७॥

अन्न तथा जलका दान तो ब्राह्मणके लिये ही नहीं बल्कि शूद्रके लिये भी विशेष महत्त्व रखता है, [अतएव अन्नके इच्छुकसे] गोत्र, शाखा, स्वाध्याय तथा देश नहीं पूछना चाहिये॥ ३८॥

इस लोकमें ब्राह्मणके द्वारा याचना किये जानेपर जो व्यक्ति अन्नदान करता है, वह प्रलयकालतक उत्तमस्थान स्वर्गमें निवास करता है। हे विप्रो! जिस प्रकार कल्पवृक्ष आदि वृक्ष सभी कामनाओंको देनेमें समर्थ होते हैं, उसी प्रकार अन्नदान अन्नदाताको सभी कामनाओंका फल प्रदान करता है और अन्न देनेवाले लोग आनन्दपूर्वक स्वर्गमें निवास करते हैं॥ ३९-४०॥

हे महामुने! अन्न प्रदान करनेवाले व्यक्तिके लिये अन्नदानके कारण स्वर्गमें जो अतिशय दिव्य लोक बनाये गये हैं, उन्हें सुनिये। उन महात्माओंके लिये अनेक सुखोपभोगोंसे परिपूर्ण तथा स्थापत्यकलाके विविध चमत्कारोंवाले शोभायुक्त भवन स्वर्गमें प्रकाशित होते हैं॥ ४१-४२॥

उनके भवनोंमें उनकी कामनाके अनुरूप फल प्रदान करनेवाले वृक्ष, सोनेकी बावली, सुन्दर कूप तथा सरोवर विद्यमान रहते हैं। वहाँ हजारों शोभामय जलप्रपात कलकल ध्वनि करते रहते हैं। खानेयोग्य भोज्य वस्तुओंके पर्वत, वस्त्र, आभूषण, दुग्ध प्रवाहित करती हुई नदियाँ, घीके पहाड़, श्वेत-पीत कान्तिवाले महल तथा सोनेके समान देदीप्यमान शय्याएँ—ये सब विद्यमान रहते हैं। अन्न प्रदान करनेवाले उन लोकोंमें जाते हैं। इसलिये यदि मनुष्य इस लोक तथा परलोकमें ऐश्वर्यकी इच्छा करता हो, तो उसे अन्नका दान [अवश्य] करना चाहिये। अन्न प्रदान करनेवाले पुण्यात्माओंको ये परम कान्तिमय लोक प्राप्त होते हैं, इसलिये अवश्य ही मनुष्योंको विशेष रूपसे अन्नका दान करना चाहिये॥ ४३—४७॥

अन्न ही साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश है, इसलिये अन्नदानके समान न कोई दान हुआ है और न होगा। बहुत बड़ा पाप करके भी जो बादमें अन्नका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकको जाता है॥ ४८-४९॥

अन्न, पान, अश्व, गौ, वस्त्र, शय्या, छत्र एवं आसन—ये आठ प्रकारके दान यमलोकके लिये विशेषरूपसे श्रेष्ठ कहे गये हैं॥ ५०॥

चूँकि इस प्रकारके विशेष दान से मनुष्य विमानद्वारा धर्मराजके लोकको जाता है, इसलिये [अन्नादिका] दान करना चाहिये॥ ५१॥

अन्नदानके प्रभाव वर्णनसे युक्त यह आख्यान [सर्वथा] पापरहित है। जो इसे पढ़ता है या दूसरोंको पढ़ाता है, वह समृद्धिशाली हो जाता है॥ ५२॥

हे महामुने! जो श्राद्धकालमें इस प्रसंगको सुनता है अथवा ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसके पितरोंको अक्षय अन्नदान [-का फल] प्राप्त होता है॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें अन्नदानमाहात्म्यवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

जलदान, सत्यभाषण और तपकी महिमा

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] जलका दान सभी दानोंमें सदा अति श्रेष्ठ है; क्योंकि वह सभी जीव-समुदायको तृप्त करनेवाला जीवन कहा गया है॥ १॥

अत: बिना किसी रुकावटके प्रेमपूर्वक पौसरा चलाना चाहिये। जलाशयका निर्माण इस लोकमें तथा परलोकमें भी परम आनन्द प्रदान करनेवाला है। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है। इसलिये मनुष्यको बावली, तालाब तथा कूपोंका निर्माण कराना चाहिये॥ २-३॥

जल निकलते ही कूप पापपरायण दुष्कर्मशील पुरुषके आधे पापका हरण कर लेता है तथा सत्कर्मनिरत व्यक्तिके पापोंका [तो वह] निरन्तर हरण करता ही रहता है। जिसके द्वारा खुदवाये जलाशयमें गाय, ब्राह्मण, साधु तथा अन्य मनुष्य सदा जल पीते हैं, वह [अपने] सम्पूर्ण कुलको तार देता है॥ ४-५॥

जिसके जलाशयमें गर्मीके समयमें भी पर्याप्त जल रहता है, वह विषम तथा अति भयंकर दु:ख कभी नहीं प्राप्त करता है॥ ६॥

[हे व्यास!] निर्मित कराये गये सरोवरोंके जो गुण कहे गये हैं, उन्हें मैं बताऊँगा। जो तालाबका निर्माण कराता है, वह तीनों लोकोंमें सर्वत्र पूजित होता है अथवा सूर्यलोकमें पूजित होता है। तालाबोंका निर्माण सूर्यके तापको दूर करनेवाला, मैत्रीकारक तथा कीर्तिका उत्तम हेतु होता है॥ ७-८॥

विद्वान् लोग धर्म, अर्थ तथा कामके [तो परिमित] फलका वर्णन करते हैं, परंतु जिसने सरोवरका निर्माण कराया, उसका पुण्य अनन्त होता है॥ ९॥

स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज तथा जरायुज—इन चारों प्रकारके प्राणियोंको तालाब महान् शरण [कहा गया] है। सभी प्रकारके तालाब [कूप, वापी, प्रपा] आदि [निर्माणकर्ताको] उत्तम लक्ष्मी प्रदान करते हैं॥ १०॥

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस और स्थावर प्राणी जलाशयका आश्रय ग्रहण करते हैं॥ ११॥

वर्षाकालमें जिसके सरोवरमें जल रहता है, उसे अग्निहोत्रका फल मिलता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। शरत्कालमें जिसके सरोवरमें जल रहता है, उसे हजार गोदानका फल मिलता है, इसमें संशय नहीं है॥ १२-१३॥

हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें जिसके सरोवरमें जल रहता है, वह बहुत-सी सुवर्णदक्षिणावाले यज्ञका फल प्राप्त करता है। वसन्त और ग्रीष्मकालमें जिसके सरोवरमें जल रहता है, उसे अतिरात्र एवं अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है—ऐसा विद्वानोंने कहा है॥ १४-१५॥

हे व्यास मुने! जीवोंको सन्तुष्ट करनेवाले जलाशयके फलका वर्णन मैंने कर दिया, अब वृक्षोंके लगानेके महत्त्वका श्रवण कीजिये॥ १६॥

जो वनमें वृक्षोंको लगाता है, वह बीती हुई पीढ़ियों और आनेवाली पीढ़ियोंके सभी पितृकुलोंका उद्धार कर देता है, इसलिये वृक्षोंको अवश्य लगाना चाहिये। लगाये गये ये वृक्ष दूसरे जन्ममें उस व्यक्तिके पुत्र होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। वह वृक्षारोपण करनेवाला अन्तमें परलोक जानेपर अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है॥ १७-१८॥

वृक्ष पुष्पोंके द्वारा देवगणोंकी, फलोंके द्वारा पितरोंकी और छायाके द्वारा सभी अतिथियोंकी पूजा करते हैं॥ १९॥

किन्नर, सर्प, राक्षस, देवता, गन्धर्व, मनुष्य तथा ऋषि वृक्षोंका आश्रय लेते हैं। फूले-फले वृक्ष इस लोकमें मनुष्योंको तृप्त करते हैं, वे इस लोक एवं परलोकमें धर्मसम्बन्धसे साक्षात् पुत्र ही कहे गये हैं॥ २०-२१॥

जो द्विज सरोवरका निर्माण करनेवाला, वृक्षोंको लगानेवाला, इष्ट तथा पूर्तकर्म करनेवाला है और भी जो दूसरे सत्य बोलनेवाले लोग हैं—ये स्वर्गसे च्युत नहीं होते हैं॥ २२॥

सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही परम तप है, सत्य ही परम यज्ञ है और सत्य ही परम शास्त्र है॥ २३॥

सभीके सो जानेपर एक सत्य ही जागता रहता है। सत्य ही परम पद है, सत्यके द्वारा ही पृथ्वी टिकी हुई है, अतः सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है॥ २४॥

तप, यज्ञ, देव, ऋषि, पितृपूजनका पुण्य, जल एवं विद्या—ये सभी तथा सब कुछ सत्यमें ही प्रतिष्ठित हैं। सत्य ही यज्ञ, तप, दान, सभी मन्त्र तथा देवी सरस्वतीरूप है। सत्य ही ब्रह्मचर्य है, सत्य ही ओंकार है॥ २५-२६॥

सत्यसे ही वायु बहता है, सत्यसे ही सूर्य तपता है, सत्यसे ही अग्नि जलाती है और सत्यसे ही स्वर्ग स्थित है। सभी वेदोंका पालन तथा सभी तीर्थोंका स्नान सत्यसे ही होता है, सत्यसे ही प्राणी निःसन्देह सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ २७-२८॥

हजारों अश्वमेधयज्ञ तथा लाखों अन्य यज्ञ तराजूके एक पलड़ेपर तथा सत्यको दूसरे पलड़ेमें रखनेपर सत्य भारी पड़ता है। सत्यसे देवता, पितर, मानव, सर्प तथा राक्षस प्रसन्न रहते हैं, सत्यसे ही चर-अचरसहित सम्पूर्ण लोक प्रसन्न रहते हैं॥ २९-३०॥

सत्यको परम धर्म कहा गया है, सत्यको परम पद कहा गया है और सत्यको परम ब्रह्म कहा गया है, इसलिये सदा सत्य बोलना चाहिये॥ ३१॥

सत्यपरायण मुनिगण तथा सत्यधर्ममें प्रवृत्त हुए सिद्धगण अत्यन्त कठिन तप करके अप्सराओंसे परिपूर्ण विस्तृत विमानोंके द्वारा स्वर्गको प्राप्त हुए हैं। [इसलिये सभी लोगोंको] सत्य बोलना चाहिये; क्योंकि सत्यसे बढ़कर कुछ भी नहीं है॥ ३२-३३॥

अगाध, विपुल, सिद्ध तथा पवित्रतापूर्ण सत्यरूपी ह्रदमें मनोयोगसे स्नान करना चाहिये; क्योंकि वह परम पवित्र तीर्थ कहा गया है॥ ३४॥

जो लोग स्वयंके लिये अथवा दूसरोंके लिये यहाँतक कि अपने पुत्रके लिये भी झूठ नहीं बोलते, वे स्वर्गगामी होते हैं॥ ३५॥

ब्राह्मणोंमें वेदों, यज्ञों तथा मन्त्रोंके विद्यमान रहनेपर भी उनके असत्ययुक्त होनेपर वे सुशोभित नहीं होते, इसलिये भली प्रकारसे सत्यभाषण करना चाहिये॥ ३६॥

व्यासजी बोले—हे तपोधन! सभी वर्णों एवं विशेष रूपसे ब्राह्मणोंकी तपस्याका फल पुनः मुझसे कहिये॥ ३७॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! मैं द्विजातियोंके लिये सभी प्रकारकी कामनाओं एवं अर्थोंको सिद्ध करनेवाले अत्यन्त कठिन तपोऽध्यायका वर्णन करूँगा, उसे कहते हुए मुझसे आप सुनें। तप सर्वश्रेष्ठ कहा गया है, सभी प्रकारके फल तपस्यासे ही प्राप्त होते हैं। जो निरन्तर तपका सेवन करते हैं, वे देवगणोंके साथ आनन्द प्राप्त करते हैं॥ ३८-३९॥

तपसे स्वर्ग मिलता है, तपसे यश मिलता है, तपस्यासे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और तप सभी प्रकारके अर्थोंका साधन है॥ ४०॥

तपसे मोक्ष प्राप्त होता है, तपस्यासे परमात्मा प्राप्त होते हैं, तपस्यासे ज्ञान, विज्ञान, सम्पत्ति, सौभाग्य एवं रूप प्राप्त होता है॥ ४१॥

मनुष्य तपस्यासे नाना प्रकारकी वस्तुएँ प्राप्त करता है, वह मनसे जिस-जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, वह सब कुछ तपस्यासे प्राप्त कर लेता है॥ ४२॥

तप न करनेवाले कभी भी ब्रह्मलोक नहीं जा सकते हैं और तप न करनेवालोंके लिये कभी परमेश्वर शिवजी प्राप्त नहीं हो सकते हैं॥ ४३॥

पुरुष जिस कार्यको उद्देश्य करके तप करता है, वह उसे इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त कर लेता है। मदिरा पीनेवाला, परस्त्रीगमन करनेवाला, ब्रह्महत्यारा एवं गुरुपत्नीगामी भी तपस्याके प्रभावसे अपने सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और तर जाता है॥ ४४-४५॥

सर्वेश्वर शिव, सनातन विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र तथा अन्य लोग भी तपस्यापरायण रहते हैं॥ ४६॥

ऊर्ध्वरेता अट्ठासी हजार [बालखिल्य आदि] महर्षि भी तपके प्रभावसे ही देवगणोंके साथ स्वर्गमें आनन्द प्राप्त करते हैं॥ ४७॥

तपस्यासे राज्य प्राप्त होता है, तपस्यासे ही वृत्रासुरका नाशकर इन्द्र देवताओंके स्वामी बने हुए हैं और प्रतिदिन सबका पालन करते हैं। तपस्याके प्रभावसे ही सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण करनेमें लगे हुए सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र एवं ग्रह प्रकाशित होते हैं॥ ४८-४९॥

जगत्‌में ऐसा कोई सुख नहीं है, जो तपके बिना

प्राप्त होता हो, तपसे ही सारा सुख प्राप्त होता है—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है॥ ५०॥

ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, सौभाग्य तथा सुख सर्वदा तपस्यासे ही प्राप्त होते हैं॥ ५१॥

तपस्याके द्वारा ही ब्रह्माजी बिना श्रमके सम्पूर्ण संसारकी रचना करते हैं, विष्णु रक्षा करते हैं, शिवजी संहार करते हैं और शेषनाग सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करते हैं॥ ५२॥

हे महामुने! गाधिपुत्र [महर्षि] विश्वामित्र तपस्याके प्रभावसे ही क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये थे; यह बात त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध है॥ ५३॥

हे महाप्राज्ञ! इस प्रकार मैंने तपका श्रेष्ठ माहात्म्य आपसे कहा, अब तपसे भी श्रेष्ठ [वेदोंके] अध्ययनकी महिमाको सुनिये॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें तपस्याका माहात्म्यवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

पुराणमाहात्म्यनिरूपण

सनत्कुमार बोले—हे मुने! जो वनके कन्द-मूल एवं फल खाकर अरण्यमें तपस्या करता है और जो वेदकी एक ऋचामात्रका अध्ययन करता है, उन दोनोंका समान फल होता है॥ १॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण वेदके अध्ययनसे जो पुण्य प्राप्त करता है, उसके अध्यापनसे उसका दूना फल प्राप्त होता है। हे मुने! जैसे सूर्य और चन्द्रमाके बिना सम्पूर्ण संसार प्रकाशरहित हो जाता है, वैसे ही पुराणके अध्ययनके बिना लोग ज्ञानरहित हो जाते हैं, इसलिये सदा पुराणका अध्ययन करना चाहिये॥ २-३॥

पुराण जाननेवाला ही शास्त्रका उपदेश देकर अज्ञानके कारण नरकमें दुःख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको भलीभाँति बोध कराता है, इसलिये पुराणका वक्ता [सर्वदा] पूजनीय होता है। सत्पात्रोंमें पुराण जाननेवाला ही सर्वश्रेष्ठ है; वह पतनसे रक्षा करता है, इसलिये उसे पात्र कहा गया है॥ ४-५॥

पुराणवेत्ताको कभी भी मनुष्यके रूपमें नहीं समझना चाहिये। पुराणका ज्ञाता सर्वज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, शिव एवं गुरु है। इस लोक एवं परलोकमें [अपने] कल्याणके लिये पुराण-वेत्ताको धन-धान्य, सुवर्ण एवं विविध वस्त्र देना चाहिये। जो सज्जन पुराण जाननेवालेको प्रेमपूर्वक शुभ वस्तुएँ प्रदान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है॥ ६—८॥

जो सत्पात्रको पृथ्वी, गौ, रथ, हाथी और श्रेष्ठ घोड़ा देता है, उसके पुण्यके फलका श्रवण करो। वह मनुष्य इस जन्ममें तथा परलोकमें सभी अक्षय कामनाओंको तथा अश्वमेधयज्ञके फलको प्राप्त करता है॥ ९-१०॥

जो पुराणवेत्ताको हलसे जोती गयी फसलयुक्त भूमि प्रदान करता है, वह अपनेसे पूर्वकी दस पीढ़ी तथा आगे आनेवाली दस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है॥ ११॥

वह व्यक्ति इस लोकमें सभी सुखोंका भोग करके दिव्य शरीरसे युक्त होकर दिव्य विमानसे शिवलोक जाता है। देवतालोग यज्ञ, प्रोक्षण, बलि, पुष्पार्पण तथा पूजासे उतने प्रसन्न नहीं होते, जितना पुराण-ग्रन्थके वाचनसे होते हैं॥ १२-१३॥

जो शिवालय, विष्णुमन्दिर, सूर्यमन्दिर अथवा किसी भी देवमन्दिरमें धर्मशास्त्रका वाचन कराता है, उसके फलका श्रवण कीजिये। वह मनुष्य राजसूय तथा अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है और सूर्यलोकका भेदनकर ब्रह्मलोकको जाता है॥ १४-१५॥

वहाँ सैकड़ों कल्पतक निवास करके वह यहाँ पृथ्वीपर राजा होता है और निष्कण्टक सभी सुखोंका भोग करता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १६॥

जो किसी देवताके सान्निध्यमें जप करता है, वह हजार अश्वमेधका जो फल कहा गया है, उस फलको प्राप्त करता है। शिवमन्दिरमें एवं अन्य देवमन्दिरोंमें इतिहास-पुराणोंके वाचनके बिना शिवजीको प्रसन्न

करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है। इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नसे देवमन्दिरोंमें धर्मपुस्तकोंका वाचन तथा श्रवण प्रेमपूर्वक करना चाहिये, वह सभी प्रकारकी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है॥ १७—१९॥

शिवपुराणके सुननेसे पुरुष पापहीन हो जाता है और सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर [अन्तमें] शिवलोकको प्राप्त करता है॥ २०॥

सैकड़ों राजसूय एवं अग्निष्टोमयज्ञ करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उस पुण्यकी प्राप्ति शिवजीकी कथा सुनानेमात्रसे हो जाती है। हे मुने! सभी तीर्थोंमें स्नान करनेसे तथा करोड़ों गौओंका दान करनेसे जो फल मिलता है, उस फलको मनुष्य शिवकी कथा सुननेमात्रसे ही प्राप्त करता है॥ २१-२२॥

जो मनुष्य तीनों भुवनोंको पवित्र करनेवाली शिवकथाको सुनते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं समझना चाहिये, वे साक्षात् रुद्र ही हैं, इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

मुनियोंने शिवजीके उत्तम यशका श्रवण करनेवाले तथा उसका कीर्तन करनेवाले सत्पुरुषोंके चरणकमलकी धूलिको ही तीर्थ कहा है। जो प्राणी मोक्षकी स्थिति प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सदा भक्तिपूर्वक शिवपुराणकी कथा सुननी चाहिये॥ २४-२५॥

यदि मनुष्य पुराणकी कथाको सदा सुननेमें असमर्थ हो तो संयतचित्त होकर प्रतिदिन केवल एक मुहूर्त ही कथाका श्रवण करे। हे मुने! यदि मनुष्य प्रतिदिन कथा सुननेमें असमर्थ हो तो पवित्र महीनोंमें ही शिवकी कथाका श्रवण करे॥ २६-२७॥

हे मुनीश्वर! शिवकी कथाका श्रवण करता हुआ वह पुरुष कर्मरूपी महारण्यको भस्म करके संसारसे पार हो जाता है। जो मनुष्य मुहूर्तमात्र अथवा उसका आधा या क्षणमात्र भी शिवकी कथाको भक्तिपूर्वक सुनते हैं, उनकी दुर्गति नहीं होती है॥ २८-२९॥

हे मुने! सभी दानों अथवा सभी यज्ञोंसे जो पुण्य मिलता है, वह शिवपुराणके श्रवणसे अचल हो जाता है॥ ३०॥

हे व्यासजी! विशेष रूपसे कलियुगमें मनुष्योंके लिये पुराणके श्रवणसे अतिरिक्त और कोई भी श्रेष्ठ धर्म नहीं है, वही उनके लिये मोक्ष एवं ध्यानरूपी फल देनेवाला बताया गया है। शिवपुराणका श्रवण एवं शिवनामका कीर्तन मनुष्योंके लिये कल्पवृक्षका मनोरम फल है, इसमें संशय नहीं है॥ ३१-३२॥

कलियुगमें धर्माचरणसे रहित चित्तवाले दुर्बुद्धि मनुष्योंके हितके लिये शिवजीने शिवपुराण नामक अमृतरसका निर्माण किया है। अमृतका पान करनेवाला मात्र एक ही व्यक्ति अजर-अमर होता है, किंतु शिवकथारूपी सुधाके पानसे सम्पूर्ण कुल ही अजर-अमर हो जाता है॥ ३३-३४॥

हे तात! जो गति पुण्यात्माओं, यज्ञ करनेवालों एवं तपस्वियोंकी होती है, वह गति केवल पुराणके श्रवणमात्रसे ही हो जाती है। यदि ज्ञानकी प्राप्ति न हो सके, तो यत्नपूर्वक योगशास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिये और पुराण-शास्त्रका श्रवण करना चाहिये॥ ३५-३६॥

पुराणका श्रवण करनेसे पापका नाश होता है और धर्मकी अभिवृद्धि होती है एवं व्यक्ति ज्ञानवान् होकर पुनः संसारके आवागमनके बन्धनमें नहीं पड़ता है। इसलिये धर्म, अर्थ, कामकी सिद्धि तथा मोक्ष-मार्गकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नपूर्वक पुराणोंको सुनना चाहिये॥ ३७-३८॥

यज्ञ, दान, तप एवं तीर्थसेवनसे जो फल मिलता है, उस फलको मनुष्य केवल पुराणश्रवणसे प्राप्त कर लेता है। यदि धर्ममार्गका प्रदर्शन करनेवाले पुराण न होते तो लोक तथा परलोककी कथाको सुनानेवाला कौन व्रती रहता?॥ ३९-४०॥

छब्बीस पुराणोंमें एक भी पुराणको जो भक्तियुक्त होकर सुनता है या पढ़ता है, वह मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४१॥

अन्य कोई भी सुखप्रद मार्ग नहीं है, पुराणमार्ग ही सर्वदा श्रेष्ठ मार्ग है। [पुराणरूप इस अनुशासक] शास्त्रके बिना यह संसार आलोकित नहीं होता है, जैसे सूर्यके बिना जीवलोक आलोकयुक्त नहीं होता॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें पुराणमाहात्म्यवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

दानमाहात्म्य तथा दानके भेदका वर्णन

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! जो घोरदान तथा महादान कहे गये हैं, उन्हें सदा सत्पात्रको ही देना चाहिये, ये आत्माका उद्धार करते हैं॥ १॥

हे द्विजोत्तम! सुवर्णदान, गोदान, भूमिदान—इनको ग्रहण करनेवाला पवित्र रहता है तथा ये दान लेनेवाले और दान देनेवाले दोनोंका उद्धार करनेवाले हैं॥ २॥

सुवर्णदान, गोदान एवं भूमिदान—इन उत्तम दानोंको करके मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३॥

तुलादान, गोदान, पृथ्वीदान तथा विद्यादान—ये प्रशस्त दान कहे गये हैं। इनमें दो दान तो समान हैं, किंतु सरस्वतीदान सबसे बढ़कर है॥ ४॥

नित्य दुही जानेवाली गौएँ, छत्र, वस्त्र, जूता एवं अन्न-पान—ये वस्तुएँ याचकोंको देते रहना चाहिये॥ ५॥

संकल्प किया गया जो द्रव्य ब्राह्मणों तथा अपीड़ित याचकों को दिया जाता है, उससे दान करनेवाला मनस्वी होता है। सुवर्ण, तिल, हाथी, कन्या, दासी, गृह, रथ, मणि तथा कपिला गाय—ये दस महादान हैं॥ ६-७॥

ज्ञानी ब्राह्मण इन महादानोंको ग्रहणकर शीघ्र ही दान करनेवालोंको तथा स्वयं अपनेको तार देता है, इसमें संशय नहीं। जो मनुष्य शुद्धचित्तसे सुवर्ण दान करते हैं, उन्हें देवतालोग चारों ओरसे सब कुछ देते हैं—ऐसा मैंने सुना है॥ ८-९॥

अग्नि सर्वदेवमय हैं और सुवर्ण अग्निस्वरूप है, अतः सुवर्णका दान करनेसे मानो सभी देवताओंको दान दे दिया गया। पृथ्वीदान अत्यन्त श्रेष्ठ तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है, उसमें भी सुवर्णमयी भूमिका दान विशेष उत्तम है, जिसे पूर्वकालमें राजा पृथुने किया था॥ १०-११॥

जो लोग सुवर्णसे युक्त पृथ्वीका दान होते हुए अपनी आँखोंसे देखते हैं, वे सभी पापोंसे सर्वथा मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त करते हैं॥ १२॥

हे मुने! अब मैं सर्वश्रेष्ठ दानका वर्णन करता हूँ, जिससे प्राणी यमराजके अति दुःखदायी असिपत्रवनको नहीं देखते हैं॥ १३॥

न्यायपूर्वक अर्जित किये गये धनसे खरीदे गये वनका विधिपूर्वक शुद्धचित्त होकर तथा धनकी कृपणतासे रहित होकर दान करना चाहिये॥ १४॥

प्रस्थ परिमाणमात्र तिलके द्वारा सभी गुणोंसे सम्पन्न गाय तथा सभी लक्षणोंसे युक्त दिव्य सोनेका बछड़ा बनाये और कुंकुम-मिश्रित शुभ अक्षतोंसे अष्टदल कमल बनाकर उसमें भक्तिपूर्वक रुद्र आदि सभी देवताओंकी पूजा करे। इस प्रकार पूजा सम्पन्नकर अपने सामर्थ्यके अनुसार रत्न, सुवर्ण एवं सभी आभूषणोंसे अलंकृत उस धेनुको ब्राह्मणको दान दे। उसके बाद रातमें भोजन करे और विस्तारपूर्वक दीपोंका दान करे। कार्तिकीपूर्णिमाको प्रयत्नपूर्वक इसे करना चाहिये॥ १५—१८॥

इस प्रकार जो मनुष्य अपनी शक्तिभर शास्त्रोक्त विधि-विधानसे भलीभाँति यह दान करता है, वह यममार्गकी भयावहतासे त्रस्त नहीं होता और भीषण नरकोंको नहीं देखता॥ १९॥

हे व्यासजी! वह सभी तरहके पापोंको करके भी इस परम दानके प्रभावसे अपने बन्धु-बान्धव एवं मित्रोंके साथ चौदह इन्द्रोंके कालतक स्वर्गमें आनन्द करता है॥ २०॥

हे व्यासजी! इस लोकमें विधानके साथ गौका दान सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है। अन्य कोई भी दान उसके समान नहीं बताया गया है॥ २१॥

हे व्यासजी! जो बछड़ेसहित सोनेकी सींगवाली, चाँदीके खुरवाली तथा काँसेकी दोहनीयुक्त सभी लक्षणोंसे सम्पन्न कपिला गौका दान करता है, वह गाय उन-उन गुणोंसे युक्त होकर इस लोकमें और परलोकमें कामधेनु बनकर उस दाताके पास उपस्थित होती है॥ २२-२३॥

जो मनुष्य अक्षय फलको प्राप्त करना चाहता है, वह इस लोकमें जो जो अत्यन्त अभीष्ट पदार्थ है तथा वह यदि घरमें हो तो उसे गुणवान् ब्राह्मणको प्रदान करे॥ २४॥

तुलापुरुषका दान सभी दानोंमें श्रेष्ठ दान है। यदि मनुष्य अपने कल्याणकी कामना करता हो तो तुलादान [अवश्य] करे। इसे करके मनुष्य वध-बन्धनके कारण उत्पन्न होनेवाले पापोंसे छुटकारा पाता है। तुलादान अतिशय पुण्यकारक और सभी तरहके पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ २५-२६॥

सभी तरहके पापोंको करनेके बाद भी जो तुलादान करता है, वह सभी पापोंसे छुटकारा पाकर निस्सन्देह स्वर्गको जाता है॥ २७॥

जो पाप दिनमें, रातमें, दोनों सन्ध्याओंमें, दोपहरमें, रात्रिके अन्तिम भागमें, तीनों कालों, शरीर, मन एवं वाणीसे किया गया रहता है, उसे तुलापुरुष नष्ट कर देता है॥ २८॥

मैंने बाल्यावस्थामें, युवावस्थामें, वृद्धावस्थामें ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक जो भी पाप किया है, मेरे द्वारा किये गये उन समस्त पापोंको तुलापुरुष महादेवजी शीघ्र नष्ट करें॥ २९॥

अपने परिमाणके तुल्य जो भी द्रव्य तुलामें रखकर मैंने सत्पात्रको समर्पण किया है, उसीके साथ मेरे द्वारा किया गया तथा न किया गया सम्पूर्ण पाप पुण्यरूप हो जाय॥ ३०॥

सनत्कुमार बोले—अपने हितकी कामना करनेवाला मनुष्य इस प्रकारसे उच्चारणकर उस धनको ब्राह्मणोंको प्रदान करे। यह धन किसी एक व्यक्तिको प्रदान न करे, ऐसा करनेसे उद्धार नहीं होता॥ ३१॥

हे व्यासजी! जो मनुष्य इस प्रकार उत्तम तुलापुरुष दान करता है, वह सभी पापोंको नष्टकर चौदह इन्द्रोंके कालतक स्वर्गलोकमें वास करता है॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सामान्यदानवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माण्डदानकी महिमाके प्रसंगमें पाताललोकका निरूपण

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमारजी! जिस एक ही दानके करनेसे सभी दानोंका फल मिल जाता है, मनुष्योंके हितके लिये उस दानको आप मुझसे कहें॥ १॥

सनत्कुमार बोले—समयपर जिस एक ही दानके करनेसे मनुष्य सभी दानोंका फल प्राप्त कर लेता है, उसे मैं आपसे कहता हूँ, आप सुनिये॥ २॥

सभी दानोंमें ब्रह्माण्डका दान निश्चय ही श्रेष्ठ है, मुक्तिकी कामना करनेवाले मनुष्योंको संसारसे पार होनेके लिये यह दान अवश्य करना चाहिये॥ ३॥

मनुष्य सभी दानोंको करनेसे जिस फलको प्राप्त करता है, उतना ही फल ब्रह्माण्डके दानसे प्राप्त करता है और वह सातों लोकोंका स्वामी भी हो जाता है। जबतक आकाशमें चन्द्रमा एवं सूर्य हैं और जबतक पृथ्वी स्थिर है, तबतक ब्रह्माण्डका दान करनेवाला वह मनुष्य अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्तकर देवताओंके घर स्वर्गमें आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करता है और बादमें देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ विष्णुपदको प्राप्त करता है॥ ४-५॥

व्यासजी बोले—हे भगवन्! इस ब्रह्माण्डका प्रमाण, इसका स्वरूप, इसका आधार और यह जिस रूपमें उत्पन्न हुआ है—यह सब मुझे बताइये, जिससे मुझे विश्वास हो जाय॥ ६॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! सुनिये, मैं संक्षेपमें इस ब्रह्माण्डकी ऊँचाई तथा विस्तारको कहता हूँ। इसे सुनकर व्यक्ति पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७॥

इसके कारणभूत, अव्यक्त, व्यक्त तथा निर्विकार जो शिव हैं, दो भागोंमें (प्रकृति तथा पुरुषके रूपमें) विभक्त हुए उन्हीं कालस्वरूपसे ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं। तब ब्रह्माजी चौदह भुवनवाले ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं। हे तात! मैं क्रमसे संक्षेपमें उसे कहता हूँ, आप सावधान होकर सुनिये॥ ८-९॥

जलके मध्यमें स्थित ब्रह्माण्डके नीचे सात पाताल

हैं और ऊपर (स्वर्गादि) सात भुवन हैं। उनकी ऊँचाई क्रमशः एककी अपेक्षा दुगुनी है॥ १०॥

सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके आधार शेषनाग हैं, उन्हींको विष्णु कहा गया है। ब्रह्माकी आज्ञाके अनुसार वे इस सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करते हैं॥ ११॥

शेषनागके इन गुणोंका वर्णन करनेमें देवता तथा दानव भी समर्थ नहीं हैं, उन्हें अनन्त भी कहा जाता है। सिद्ध, देवता तथा ऋषिगण उनकी पूजा करते हैं॥ १२॥

हजार फणोंसे युक्त वे शेषनाग अपने हजार फणोंकी मणियोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते रहते हैं, वे फणोंपर निर्मल स्वस्तिकका आभूषण धारण करते हैं। वे मदसे घूमते हुए नेत्रोंवाले तथा अग्निसे युक्त श्वेतपर्वतके समान हैं। वे माला, मुकुट तथा सर्वदा ही एक कुण्डलको धारणकर शोभायमान हैं॥ १३-१४॥

वे आकाशगंगाके प्रवाहसे युक्त श्वेतवर्णके पहाड़के समान सुशोभित होते हैं। मदसे परिव्याप्त वे नील वस्त्रको धारणकर दूसरे कैलासपर्वतकी भाँति शोभित होते हैं। वे अपने आयुध हलमें हाथका अग्रभाग लगाये रहते हैं तथा उत्तम मूसल धारण किये रहते हैं। स्वर्णके समान वर्णवाली नागकन्याएँ आदरपूर्वक उनकी पूजा करती हैं॥ १५-१६॥

वे संकर्षण नामके रुद्र विषाग्निकी ज्वालाओंसे अत्यन्त देदीप्यमान हैं। कल्पके अन्तमें उनके मुखोंसे अग्निकी लपटें बार-बार निकलती हैं, जो तीनों लोकोंको भस्म करके ही शान्त होती हैं—ऐसा हमने सुना है। सभी गुणोंसे अलंकृत तथा सभी प्राणियोंके स्वामी वे शेष अपनी पीठपर क्षितिमण्डलको धारण करते हुए पातालके मूल स्थानमें स्थित हैं॥ १७-१८॥

देवगण इच्छा करते हुए भी उनके पराक्रमके प्रभावका वर्णन करनेमें तथा उनके स्वरूपको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। जिनके फणोंमें स्थित मणियोंकी अरुणकान्तिसे रंजित यह सम्पूर्ण पृथ्वी [उनके शिरःपृष्ठमें] पुष्पोंकी मालाके समान विराजमान है, उनके पराक्रमका वर्णन कौन करेगा!॥ १९-२०॥

जब मदसे घूर्णित नेत्रवाले शेषनागजी जम्भाई लेते हैं, तब पर्वत, समुद्र तथा वनोंसहित यह पृथ्वी डगमगा जाती है॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! प्रत्येक पाताल दस हजार योजन विस्तार-वाला है। अतल, वितल, सुतल, रसातल, तल, तलातल एवं सातवाँ पाताल माना गया है, विद्वानोंको पृथ्वीके नीचे स्थित इन सात लोकोंको जानना चाहिये॥ २२-२३॥

इनकी ऊँचाई एक-दूसरेसे दूनी है। इन सातों लोकोंकी भूमियाँ स्वर्णमय हैं तथा भवन रत्नमय हैं और आँगन भी स्वर्णमय हैं। उनमें दानव, दैत्य, नागोंकी जातियाँ, महानाग, राक्षस तथा दैत्योंसे उत्पन्न अन्य उपजातियाँ निवास करती हैं॥ २४-२५॥

उन पातालादि लोकोंसे लौटकर स्वर्ग आये हुए नारदजीने स्वर्गकी सभामें ऐसा कहा था कि ये पाताल स्वर्गसे भी अधिक रमणीय हैं॥ २६॥

जहाँ विविध प्रकारके आभूषणोंमें विभूषित करनेवाली स्वच्छ एवं कान्तिमय मणियाँ लगी हैं, उस पातालके समान कौन लोक है!॥ २७॥

दैत्यकन्याएँ एवं दानवकन्याएँ जिस पाताललोकमें इधर-उधर शोभायमान हो रही हैं, उस लोकमें [निवासके लिये] किस मुक्तपुरुषकी अभिरुचि नहीं होगी?॥ २८॥

यहाँ दिनमें सूर्यकी तथा रातमें चन्द्रमाकी किरणें नहीं होती हैं और यहाँ शीत तथा आतप भी नहीं रहता है, यहाँ केवल मणियोंके तेज विद्यमान हैं॥ २९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यहाँ आनन्दमग्न लोग भक्ष्य-भोज्य, अन्नपान आदि ग्रहण करते हैं। यहाँ बीते हुए समयका ज्ञान भी नहीं रहता है॥ ३०॥

हे द्विज! यहाँ नरकोकिलोंका शब्द सुनायी देता है। कमल तथा कमलोंकी खान नदियाँ, रमणीक सरोवर, मनोहर वस्त्र, अतिशय मनोरम अलंकार तथा अनुलेपन, वीणा-वेणु-मृदंगोंकी ध्वनियाँ, गीत तथा नानाविध सुख हैं, जिनका भोग दैत्य, दानव, सिद्ध, मानव एवं नागगण करते हैं, उस पातालका आनन्द [बहुत बड़ी] तपस्यासे प्राप्त किया जाता है॥ ३१—३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें ब्रह्माण्डकथनमें पाताललोकवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

विभिन्न पापकर्मोंसे प्राप्त होनेवाले नरकोंका वर्णन और शिव-नाम-स्मरणकी महिमा

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उन लोकोंके ऊपर स्थित नरकोंको मुझसे सुनिये, जहाँपर पापीजन दु:ख भोगते हैं॥ १॥

रौरव, शूकर, रोध, ताल, विवसन या विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित, पूयवहा वैतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, घोर असिपत्रवन, दारुण लालाभक्ष, पूयवह, वह्निज्वाल, अध:शिरा, संदंश, कालसूत्र, तम, अवीचिरोधन, श्वभोजन, रुष्ट, महारौरव, शाल्मली इत्यादि बहुतसे पीड़ादायक नरक हैं॥ २—५॥

हे व्यासजी! पापकर्ममें निरत जो पुरुष उनमें दु:ख भोगते हैं, मैं उनका वर्णन क्रमश: कर रहा हूँ, आप सावधान होकर सुनिये॥ ६॥

जो मनुष्य ब्राह्मण, देवता एवं गौओंके पक्षको छोड़कर अन्यत्र झूठी गवाही करता है और सदा मिथ्याभाषण करता है, वह रौरव नरकमें जाता है॥ ७॥

हे व्यासजी! भ्रूणहत्या करनेवाला, स्वर्ण चुरानेवाला, गायोंको रोकनेवाला, विश्वासघाती, सुरापान करनेवाला, ब्राह्मणका वध करनेवाला, दूसरोंके द्रव्यको चुरानेवाला तथा इनका साथ देनेवाला और गुरु, माता, गौ तथा कन्याका वध करनेवाला मरनेपर तप्तकुम्भ नामक नरकमें जाता है॥ ८-९॥

साध्वी स्त्रीको बेचनेवाला, [अधिक] ब्याज लेनेवाला, व्यभिचारी अथवा केशका विक्रय करनेवाला और जो अपने भक्तका त्याग कर देता है—ये सब तप्तलोह नामक नरकमें दु:ख भोगते हैं॥ १०॥

हे द्विज! जो अधम मनुष्य गुरुओंका अपमान करनेवाला, दुर्वचन कहनेवाला, वेदनिन्दक, वेदोंको बेचनेवाला तथा अगम्या स्त्रीके साथ संसर्ग करनेवाला है, वह अन्तमें सप्तबल नामक नरकमें जाता है॥ ११¹/२॥

जो चोर, गोहत्यारा, पतित, मर्यादाको तोड़नेवाला, देवता-ब्राह्मण-पितरोंसे द्वेष करनेवाला, रत्नोंको दूषित करनेवाला, दूषित यज्ञ करनेवाला है, वह पापी कृमिभक्ष नरकमें जाता है और वहाँ कीड़ोंका भोजन करता है॥ १२-१३॥

जो नराधम पितरों एवं देवताओंको अर्पण किये बिना खाता है एवं जो शास्त्रोंमें कुतर्क करता है, वह मूर्ख लालाभक्ष नामक नरकमें जाता है॥ १४॥

जो द्विज अन्त्यजसे सेवा कराता है, नीचोंसे प्रतिग्रह ग्रहण करता है, यज्ञके अनधिकारियोंसे यज्ञ कराता है एवं अभक्ष्य वस्तुओंका भक्षण करता है और जो सोमका विक्रय करता है—ये सब रुधिरौघ नामक नरकमें जाते हैं। मधुका हरण करनेवाला तथा ग्रामका ध्वंस करनेवाला घोर वैतरणी नदीमें जाता है॥ १५-१६॥

जो नव यौवनसे मदमत्त होकर मर्यादाका उल्लंघन करते हैं, अपवित्र रहते हैं और कुलटा स्त्रियोंसे जीविका चलाते हैं, वे कृमि नामक नरकमें जाते हैं॥ १७॥

जो व्यर्थमें वृक्षोंको काटता है, वह असिपत्रवनको जाता है। चाकूसे काटकर जीविका-यापन करनेवाले अर्थात् मांसविक्रयी तथा मृगोंका वध करनेवाले वह्निज्वाल नामक नरकमें जाते हैं॥ १८॥

हे द्विज! भ्रष्टाचार करनेवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य उसी वह्निज्वाल नरकमें जाते हैं और आग लगानेवाला श्वपाक नामक नरकमें जाता है॥ १९॥

जो व्रतका लोप करनेवाले हैं और जो अपने आश्रमसे च्युत हो गये हैं, वे अत्यन्त भयानक संदंश नामक नरकमें जाते हैं॥ २०॥

जो ब्रह्मचारी मनुष्य स्वप्नमें वीर्य स्खलित करते हैं तथा जो गृहस्थ अपने पुत्रोंको नहीं पढ़ाते हैं, वे श्वभोजन नरकमें गिरते हैं। ये सब तथा अन्य भी सैकड़ों, हजारों नरक हैं, जिनमें पाप करनेवाले यातना भोगते हुए पड़े रहते हैं॥ २१-२२॥

इसी प्रकार ये सभी तथा अन्य भी हजारों पाप हैं, जिन्हें नरकोंमें पड़े हुए मनुष्य भोगते रहते हैं॥ २३॥

जो मनुष्य मन, वचन तथा कर्मसे वर्णाश्रमधर्मके विपरीत आचरण करते हैं, वे नरकमें गिरते हैं॥ २४॥

देवगण उन नारकी प्राणियोंको नीचेकी ओर शिर

किये हुए देखते हैं और वे भी सभी देवताओंको नीचेकी ओर मुख किये हुए देखते रहते हैं॥ २५॥

[पापकर्मा मनुष्य] क्रमशः उन्नति करते हुए स्थावर, कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मनुष्य, धर्मात्मा, देवता तथा मुमुक्षु होते हैं और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जितने प्राणी स्वर्गमें हैं, उतने ही नरकमें भी स्थित हैं। प्रायश्चित्तसे विमुख पापी नरकको जाता है॥ २६-२७॥

हे व्यास! स्वायम्भुव मनुने बड़े पापोंके लिये महान् प्रायश्चित्त तथा अल्प पापोंके लिये अल्प प्रायश्चित्त कहे हैं। उन सभी पापोंके जो प्रायश्चित्त कर्म कहे गये हैं, उनमें विशेष रूपसे शिवजीका नामस्मरणरूप प्रायश्चित्त सबसे श्रेष्ठ है॥ २८-२९॥

जिस पुरुषके चित्तमें पापकर्म करनेके अनन्तर पश्चात्ताप होता है, उसके लिये तो एकमात्र शिवजीका स्मरण ही सर्वोत्तम प्रायश्चित्त है॥ ३०॥

प्रातः, रात्रि, सन्ध्या तथा मध्याह्नमें शिवका स्मरण करनेवाला मनुष्य पापरहित हो जाता है और शिवलोकको प्राप्त करता है। उन उमापति शम्भु शिवके स्मरणमात्रसे ही वह सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो जाता है और स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त करता है॥ ३१-३२॥

हे मुनिसत्तम! [भगवान् शंकरके स्मरणके प्रभावसे] इस त्रिलोकीमें कहीं भी जप, होम, अर्चन आदि सत्कर्मोंमें विघ्न नहीं होता तथा [स्मरणकर्ताके चित्तमें] पाप [-का संक्रमण भी] नहीं होता॥ ३३॥

हे विप्रेन्द्र! जिसकी बुद्धि महादेवमें लगी हो, उसे जप, होम एवं पूजा आदि करनेसे जो पुण्य मिलता है, वह पुण्य प्राप्त हो जाता है एवं देवेन्द्रत्व आदिका फल प्राप्त हो जाता है। हे मुने! जो पुरुष दिन-रात भक्तिपूर्वक शिवका स्मरण करता है, वह समस्त पापोंसे रहित हो जाता है और इसीलिये नरकमें नहीं पड़ता है॥ ३४-३५॥

हे द्विजश्रेष्ठ! नरक एवं स्वर्ग नामका तात्पर्य पाप और पुण्य है, जिनमें नरक दुःखके लिये और स्वर्ग सुख तथा समृद्धिके लिये होता है॥ ३६॥

वही एक वस्तु प्रसन्नताके लिये होकर बादमें दुःखका कारण बन जाती है। इसलिये कोई भी वस्तु न दुःख देनेवाली है और न सुख देनेवाली॥ ३७॥

सुख-दुःखका उपलक्षणरूप यह तो केवल मनका परिणाममात्र है। ज्ञान ही परब्रह्म है, वह ज्ञान ही तत्त्वका बोध कराता है॥ ३८॥

हे मुने! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् ज्ञानस्वरूप है, वस्तुतः परतत्त्वके विज्ञानसे बढ़कर कुछ भी श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है॥ ३९॥

इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण नरकोंका वर्णन कर दिया है, अब इसके बाद मैं भूमण्डलका वर्णन करूँगा॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें ब्रह्माण्डवर्णनमें नरकोद्धारवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माण्डके वर्णन-प्रसंगमें जम्बूद्वीपका निरूपण

सनत्कुमार बोले— हे पराशरपुत्र [व्यासजी!] आप सातों द्वीपोंसे समन्वित भूमण्डलका संक्षेपमें वर्णन करते हुए मुझसे भलीभाँति सुनिये॥ १॥

भूमण्डलमें जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और सातवाँ पुष्करद्वीप है—ये सभी द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं॥ २॥

लवण, इक्षुरस, घी, दही, दूध और जलके जो समुद्र हैं, इन सभीके मध्यमें जम्बूद्वीप स्थित है॥ ३॥

हे व्यासजी! उसके भी मध्यमें कनकमय सुमेरु पर्वत वर्तमान है, जो पृथ्वीके नीचे सोलह हजार योजन धँसा हुआ है और चौरासी हजार योजन ऊँचा है। उसका शिखर बत्तीस हजार योजन विस्तृत है। पृथ्वीतलपर स्थित इस पर्वतका मूलभाग सोलह हजार योजन विस्तृत है, यह [मेरुपर्वत पृथ्वीरूपी कमलकी] कर्णिकाके आकारमें स्थित है। इसके दक्षिणमें हिमवान्, हेमकूट और निषधपर्वत और उत्तर भागमें नील, श्वेत और शृंगी

पर्वत हैं। इन पर्वतोंकी लम्बाई दस हजार योजन है। ये रत्नोंसे युक्त और अरुण कान्तिवाले हैं। ये हजार योजन ऊँचे हैं और उतने ही विस्तारवाले हैं॥ ४—७॥

हे मुने! मेरुके दक्षिणमें प्रथम भारतवर्ष और इसके बाद किम्पुरुष और हरिवर्ष है। इसके उत्तर भागमें रम्यक और उसीके पास हिरण्मयवर्ष है। उत्तरमें कुरुदेश है। हे मुनिश्रेष्ठ! भारतवर्षकी भाँति इन सभीका विस्तार नौ-नौ हजार योजन है॥ ८—१०॥

उनके मध्यमें इलावृतवर्ष है, जिसके मध्यमें उन्नत सुमेरुपर्वत है। इस सुमेरुके चारों ओर नौ हजार योजन विस्तृत इलावृतवर्ष है। हे ऋषिश्रेष्ठ! वहाँ चार पर्वत सुमेरुपर्वतके शिखरके रूपमें अवस्थित हैं। ये ऊँचाईमें सुमेरुपर्वतसे मिले हुए हैं॥ ११-१२॥

पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और उत्तरमें सुपार्श्व नामक पर्वत स्थित हैं॥ १३॥

कदम्ब, जामुन, पीपल तथा वटके वृक्ष इन पर्वतोंकी ध्वजाके रूपमें ग्यारह सौ योजन विस्तारमें फैले हुए हैं॥ १४॥

हे महामुने! जम्बूद्वीपका नाम पड़नेका कारण आप सुनें। यहाँपर [जामुन, कदम्ब, पीपल तथा वटके] बड़े-बड़े वृक्ष हैं, मैं उनका स्वभाव आपको बताता हूँ॥ १५॥

उस जामुनके बड़े-बड़े हाथीके परिमाणवाले फल पर्वतके ऊपर गिरकर फूट जाते हैं और चारों ओर फैल जाते हैं॥ १६॥

उनके रससे जम्बू नामक विख्यात नदी चारों ओर बहती है, जिसके रसको वहाँके निवासी पीते हैं॥ १७॥

उसके तटपर रहनेवाले लोगोंको पसीना, दुर्गन्ध, बुढ़ापा एवं किसी प्रकारकी इन्द्रियपीड़ा आदि नहीं होते हैं। सुखद वायुसे सुखायी गयी उसके तटकी मिट्टीसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण बन जाता है, जो सिद्धोंके द्वारा भूषणके रूपमें धारण किया जाता है॥ १८-१९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सुमेरुपर्वतके पूर्वमें भद्राश्व तथा पश्चिममें केतुमाल नामक दो अन्य वर्ष हैं, उनके मध्यमें इलावृतवर्ष है। उसके पूर्वमें चैत्ररथ, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विभ्राज और उसके उत्तरमें नन्दनवन बताया गया है॥ २०-२१॥

अरुणोद, महाभद्र, शीतोद तथा मानस नामक ये चार सरोवर कहे गये हैं, जो सब प्रकारसे देवताओंके भोगनेयोग्य हैं। शीतांजन, कुरंग, कुरर एवं माल्यवान्—ये प्रत्येक प्रमुख पर्वत मेरुके पूर्वमें कर्णिकाके केसरके समान स्थित हैं॥ २२-२३॥

त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, कपिल आदि पर्वत दक्षिणमें केसराचलके रूपमें स्थित हैं॥ २४॥

सिनीवास, कुसुम्भ, कपिल, नारद, नाग आदि पर्वत पश्चिम भागमें केसराचलके रूपमें स्थित हैं॥ २५॥

शंखचूड़, ऋषभ, हंस, कालंजर आदि पर्वत उत्तरमें केसराचलके रूपमें स्थित हैं॥ २६॥

सुमेरुके ऊपर मध्य भागमें ब्रह्माका सुवर्णमय नगर है, जो चौदह हजार योजन विस्तृत है। उसके चारों ओर क्रमसे आठों लोकपालोंके आठ पुर उनकी दिशाओंके अनुसार तथा उनके अनुरूप निर्मित किये गये हैं॥ २७-२८॥

भगवान् विष्णुके चरणोंसे निकली वे गंगाजी चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती हुई ब्रह्माजीकी उस पुरीमें [चारों ओर] गिरती हैं। वे वहाँ गिरकर क्रमशः सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामक चार धाराओंके रूपमें चारों दिशाओंमें प्रवाहित होती हैं॥ २९-३०॥

सुमेरुपर्वतके पूर्वमें सीता, दक्षिणमें अलकनन्दा, पश्चिममें चक्षु और उत्तरमें भद्रा नदी बहती है॥ ३१॥

वे त्रिपथगामिनी गंगा सम्पूर्ण पर्वतोंको लाँघकर [अपने चारों धारारूपोंसे] चारों दिशाओंके महासमुद्रमें जाकर मिल जाती हैं। जो सुनील तथा निषध नामक दो पर्वत हैं और जो माल्यवान् एवं गन्धमादन नामक दो पर्वत हैं, उनके मध्यमें स्थित सुमेरुपर्वत कर्णिकाके आकारमें विराजमान है॥ ३२-३३॥

भारत, केतुमाल, भद्राश्व एवं कुरुवर्ष—ये लोकरूपी पद्मके पत्र हैं। इस लोकपद्मके ये मर्यादापर्वत—जठर तथा देवकूट दक्षिणसे उत्तरकी ओर फैले हैं, गन्धमादन तथा कैलास पूर्व-पश्चिममें फैले हैं। मेरुके पूर्व तथा पश्चिमकी ओर निषध तथा नीलपर्वत दक्षिणसे उत्तरकी ओर फैले हुए हैं और वे कर्णिकाके मध्य भागमें स्थित हैं॥ ३४—३६॥

मेरुपर्वतके चारों ओर ये जठर, कैलास आदि मनोहर केसर पर्वत भलीभाँति अवस्थित हैं॥ ३७॥

उन पर्वतोंके मध्यमें सिद्ध तथा चारणोंसे सेवित अनेक द्रोणियाँ हैं और उनमें देवताओं, गन्धर्वों एवं राक्षसोंके मनोहर नगर तथा वन विद्यमान हैं। देवता तथा दैत्य इन पर्वतनगरोंमें रात-दिन क्रीड़ा करते हैं॥ ३८-३९॥

[हे मुने!] ये धर्मात्माओंके निवासस्थान हैं और पृथ्वीके स्वर्ग कहे गये हैं। उनमें पापीजन नहीं जा सकते और न तो कहीं कुछ देख ही सकते हैं॥ ४०॥

हे महामुने! जो किम्पुरुष आदि आठ वर्ष हैं, उनमें न शोक, न विपत्ति, न उद्वेग, न भूख तथा न भय आदि ही रहता है। यहाँकी प्रजाएँ स्वस्थ, निर्द्वन्द्व, सभी दुःखोंसे रहित तथा दस-बारह हजार वर्षोंकी स्थिर आयुवाली होती हैं॥ ४१-४२॥

वहाँ कृतयुग एवं त्रेतायुग ही होते हैं, वहाँ सर्वत्र पृथ्वीका ही जल है और उनमें मेघ वर्षा नहीं करते हैं। इन सातों द्वीपोंमें निर्मल जल तथा सुवर्णमय वालुकावाली सैकड़ों क्षुद्र नदियाँ भी बहती हैं; उनमें उत्तम लोग विहार करते हैं॥ ४३-४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें ब्रह्माण्डकथनमें जम्बूद्वीपवर्षवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

भारतवर्ष तथा प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन

सनत्कुमार बोले— [हे व्यास!] अब मैं हिमालयके दक्षिण तथा समुद्रके उत्तर भागमें स्थित भारतवर्षका वर्णन करूँगा, जहाँ भारती सृष्टि है॥ १॥

हे महामुने! इसका विस्तार नौ हजार योजन है, विद्वानोंने इसे स्वर्ग और मोक्षकी कर्मभूमि कहा है। मनुष्य यहींसे स्वर्ग तथा नरक प्राप्त करते हैं। मैं भारतवर्षके भी नौ भेदोंको आपसे कहता हूँ॥ २-३॥

इन्द्रद्युम्न, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व तथा वारुण—[ये आठ द्वीप हैं।] उनमें सागरसे घिरा हुआ यह [भारत] नौवाँ द्वीप है। यह द्वीप हजार योजन परिमाणमें दक्षिणसे उत्तरपर्यन्त फैला हुआ है, जिसके पूर्वमें किरात तथा दक्षिण और पश्चिममें यवन स्थित हैं। इसके उत्तरमें तपस्वियोंको स्थित जानना चाहिये। इसके मध्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र क्रमशः यज्ञ, युद्ध, व्यापार तथा सेवावृत्ति करते हुए स्थित हैं॥ ४—७॥

इसमें महेन्द्र, मलय, सह्य, सुदामा, ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं॥ ८॥

हे मुने! वेद, स्मृति, पुराण आदि पारियात्रमें ही आविर्भूत हुए हैं, दर्शन तथा स्पर्शसे इन्हें सभी पापोंका नाश करनेवाला जानना चाहिये॥ ९॥

नर्मदा, सुरसा आदि सात और इनके अतिरिक्त हजारों शुभ महानदियाँ विन्ध्यपर्वतसे उत्पन्न हुई हैं, जो सम्पूर्ण पापोंका हरण करती हैं॥ १०॥

गोदावरी, भीमरथी एवं तापी आदि प्रमुख नदियाँ ऋक्षपर्वतसे निकली हैं, जो शीघ्र ही पाप तथा भयका हरण करती हैं॥ ११॥

इसी प्रकार कृष्णा, वेणी आदि नदियाँ सह्यपर्वतके चरणोंसे निकली हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी आदि [नदियाँ] मलयाचलसे निकली हैं॥ १२॥

त्रियामा, ऋषिकुल्या आदि नदियाँ महेन्द्रपर्वतसे निकली हुई कही गयी हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं॥ १३॥

उन मण्डलोंमें अनेक जनपद निवास करते हैं, वे इन नदियों तथा अन्य सरोवरोंका जल पीते हैं॥ १४॥

हे महामुने! इस भारतवर्षमें ही सत्ययुग आदि चारों युग होते हैं, अन्य द्वीपोंमें ये नहीं होते॥ १५॥

यहींपर यज्ञ करनेवाले पुण्यात्मा लोग श्रद्धापूर्वक दान करते हैं और यहींपर परलोककी प्राप्तिके लिये यतिलोग तपस्या करते हैं॥ १६॥

हे महामुने! जम्बूद्वीपमें यह भूमि ही कर्मभूमि है, और उसमें भी यह भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है, इसके अतिरिक्त अन्य सभी भोगभूमियाँ हैं॥ १७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यहाँपर जीव हजारों जन्मोंका पुण्यसंचय होनेपर कभी-कभी मनुष्यका जन्म प्राप्त करता है॥ १८॥

स्वर्ग एवं मोक्षके साधनभूत इस भारतवर्षका गुणगान देवतालोग भी करते हैं। अहा! यह भारतभूमि धन्य है, जहाँ देवतालोग भी पुरुष बनकर जन्म ग्रहण करते हैं। हम देवतालोग कब इस भारतभूमिमें मनुष्य-जन्म पाकर परमात्मस्वरूप शिवमें अपने सारे कर्मोंका फल समर्पितकर शिवस्वरूप हो जायँगे॥ १९-२०॥

सुखोंसे युक्त तथा कर्ममें निरत वे मनुष्य निश्चय ही धन्य हैं, जिनका जन्म भारतवर्षमें होता है; क्योंकि वे स्वर्ग तथा मोक्ष दोनोंका लाभ प्राप्त करते हैं॥ २१॥

एक लाख योजन विस्तारवाले, सभी मण्डलोंसे युक्त तथा क्षारसमुद्रसे घिरे हुए इस जम्बूद्वीपका वर्णन मैंने किया॥ २२॥

हे ब्रह्मन्! क्षारसमुद्रसे घिरा हुआ एक लाख योजन विस्तारवाला, जो जम्बूद्वीप है, उससे दुगुने परिमाणका प्लक्षद्वीप कहा गया है। यहाँपर गोमन्त, चन्द्र, नारद, दर्दुर, सोमक, सुमना तथा वैभ्राज नामके उत्तम पर्वत हैं॥ २३-२४॥

इन मनोरम वर्षाचलोंमें प्रजाएँ, देवता एवं गन्धर्व सुखपूर्वक नित्य-निरन्तर निवास करते हैं॥ २५॥

यहाँपर लोगोंको आधि-व्याधि कभी नहीं होती है और यहाँके मनुष्य दस हजार वर्ष जीते हैं॥ २६॥

यहाँपर अनुतप्ता, शिखी, पापघ्नी, त्रिदिवा, कृपा, अमृता, सुकृता—ये सात नदियाँ हैं। छोटी नदियाँ तथा पहाड़ तो हजारोंकी संख्यामें हैं, यहाँके निवासी अत्यन्त प्रसन्न होकर इन नदियोंका जल पीते हैं॥ २७-२८॥

हे महामुने! इन सातों स्थानोंमें चारों युगोंकी स्थिति नहीं होती, वहाँ सदा त्रेतायुगके समान काल-व्यवस्था है। हे मुनिसत्तम! वहाँपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र निवास करते हैं। उसके मध्यमें कल्पवृक्षके समान एक बहुत बड़ा वृक्ष है। हे द्विजश्रेष्ठ! उसका नाम प्लक्ष है, इसी वृक्षके कारण इसका नाम प्लक्षद्वीप है। लोकका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकर, भगवान् विष्णु तथा ब्रह्माकी पूजा यहाँपर वैदिक मन्त्रों तथा यन्त्रोंके द्वारा की जाती है। अब आप संक्षेपमें शाल्मलीद्वीपका वर्णन सुनिये॥ २९—३२॥

वहाँपर भी सात वर्ष हैं, उनके नाम मुझसे सुनिये। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैकल, मानस और सातवाँ सुप्रभ। हे मुने! शाल्मली वृक्षके कारण इस द्वीपका नाम शाल्मलीद्वीप है॥ ३३-३४॥

यह भी परिमाणमें दुगुने समुद्रसे निरन्तर घिरा हुआ स्थित है। वर्षोंको सूचित करनेवाली नदियाँ भी वहाँ विद्यमान हैं, उनके नाम मुझसे सुनिये। शुक्ला, रक्ता, हिरण्या, चन्द्रा, शुभ्रा, विमोचना और सातवीं निवृत्ति। वे सब पवित्र तथा शीतल जलवाली हैं॥ ३५-३६॥

वे सातों वर्ष चारों वर्णोंसे युक्त हैं, वे लोग विविध यज्ञोंसे सदा भगवान् शिवका यजन करते हैं॥ ३७॥

उस अत्यन्त मनोरम द्वीपमें देवताओंका सर्वदा सान्निध्य रहता है। यह द्वीप सुरोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है॥ ३८॥

इसके बाहर चारों ओर उसके दुगुने परिमाणका कुशद्वीप स्थित है। वहाँपर मनुष्योंके साथ दैत्य, दानव, देवता, गन्धर्व, यक्ष, किम्पुरुष आदि निवास करते हैं। वहाँपर चारों वर्णवाले मनुष्य अपने-अपने कर्मानुष्ठानमें निरत रहते हैं॥ ३९-४०॥

वहाँ कुशद्वीपमें लोग सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरका यजन करते हैं॥ ४१॥

वहाँ कुशेशय, हरि, द्युतिमान्, पुष्पवान्, मणिद्रुम, हेमशैल एवं सातवाँ मन्दराचल नामक पर्वत है। वहाँ सात नदियाँ भी हैं, उनके नामोंको यथार्थरूपमें सुनिये—धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मिति, विद्या, दम्भा तथा मही—ये सम्पूर्ण पापोंको हरनेवाली हैं। इनके अतिरिक्त निर्मल जलवाली तथा सुवर्णबालुकापूर्ण अन्य हजारों नदियाँ भी हैं। कुशद्वीपमें घृतके समुद्रसे घिरा हुआ कुशोंका स्तम्ब है। हे महाभाग! अब दूसरे विशाल क्रौंचद्वीपका वर्णन सुनिये॥ ४२—४५॥

यह दुगुने विस्तारवाले दधिमण्ड नामक समुद्रसे घिरा हुआ है। हे महाबुद्धे! उसमें जो वर्षपर्वत हैं, उनके नाम मुझसे सुनिये। क्रौंच, वामन, तीसरा अन्धकारक, दिवावृति, मन, पुण्डरीक एवं दुन्दुभि। चारों ओर सुवर्णके समान सुरम्य उन वर्षपर्वतोंमें मित्रों और देवगणोंके साथ प्रजाएँ निर्भय होकर निवास करती हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र यहाँ निवास करते हैं। यहाँपर सात महानदियाँ हैं, इनके अतिरिक्त अन्य भी हजारों नदियाँ हैं। गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, शान्ति तथा पुण्डरीका नामवाली जो [सात] नदियाँ हैं, उनका विमल जल लोग पीते हैं॥ ४६—५०॥

वहाँपर योगरुद्रस्वरूपवाले भगवान् शिवकी पूजा की जाती है। उसके बाद दधिमण्डोदक समुद्र द्विगुणित शाकद्वीपसे घिरा है। यहाँ सात पर्वत हैं, उनके नाम मुझसे सुनिये। इसके पूर्वमें उदयगिरि और पश्चिममें जलधार पर्वत है। पृष्ठभागमें अस्तगिरि, अविकेश तथा केसरी पर्वत हैं। यहाँ शाक नामक महान् वृक्ष है, जो सिद्धों तथा गन्धर्वोंसे सेवित है॥ ५१—५३॥

वहाँपर चारों वर्णोंके लोगोंसे युक्त पवित्र जनपद हैं, वहाँ परम पवित्र तथा सभी पापोंको दूर करनेवाली सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, वेणुका, इक्षु, रेणुका तथा गभस्ति नामक सात नदियाँ हैं। हे महामुने! इसके अतिरिक्त वहाँ हजारों अन्य छोटी नदियाँ हैं तथा सैकड़ों-हजारों पर्वत भी हैं॥ ५४—५६॥

उन वर्षोंमें धर्मकी हानि नहीं होती है। स्वर्गसे आकर उन वर्षोंमें पृथ्वीपर मनुष्य परस्पर विहार करते हैं॥ ५७॥

शाकद्वीपमें वहाँके संयमशील निवासी शास्त्रोक्त कर्मोंके द्वारा प्रेमपूर्वक सर्वदा सूर्यभगवान्‌का सम्यक् यजन करते हैं॥ ५८॥

वह शाकद्वीप चारों ओरसे दुगुने विस्तारवाले क्षीरसागरसे घिरा हुआ है। हे व्यास! क्षीरसागर दुगुने विस्तारवाले पुष्कर नामक द्वीपसे घिरा हुआ है। वहाँ मानस (मानसोत्तर) नामक विशाल वर्षपर्वत प्रसिद्ध है। यह पचास हजार योजन ऊँचा है और लाख योजन वलयके आकारमें विस्तृत है। वलयाकृति पुष्करद्वीपको यह पर्वत मध्यमें दो भागोंमें विभक्त करके स्थित है। इसीसे इस द्वीपके दोनों भागोंकी आकृति कंकणके समान है॥ ५९—६१॥

यहाँके मनुष्य दस हजार वर्षपर्यन्त जीवित रहते हैं और रोग, शोक, राग तथा द्वेषसे रहित होते हैं। हे मुने! इन लोगोंमें अधर्म, वध-बन्धन आदि कुछ नहीं बताया गया है। इनमें असत्य नहीं होता। केवल सत्यका ही वास होता है। सभी मनुष्योंका वेष एक समान होता है और वे सुवर्णके समान एकमात्र गौर वर्णवाले होते हैं॥ ६२—६४॥

हे व्यासजी! भौम पृथिवीमें अवस्थित यह वर्ष तो स्वर्गतुल्य है। यहाँका काल सबको सुख देनेवाला तथा जरा-रोगसे रहित है॥ ६५॥

पुष्करद्वीपमें महावीत एवं धातकी नामक दो खण्ड हैं। यहाँ पुष्करद्वीपमें एक न्यग्रोधका वृक्ष है, जो ब्रह्माजीका उत्तम स्थान है। ब्रह्माजी देवताओं एवं असुरोंसे पूजित होते हुए उसमें निवास करते हैं। यह पुष्करद्वीप चारों ओरसे स्वादूदक नामक समुद्रसे घिरा हुआ है॥ ६६-६७॥

इस प्रकार ये सातों द्वीप सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। द्वीप एवं समुद्र संख्यामें समान हैं, किंतु क्रमशः एक-दूसरेसे द्विगुण विस्तारवाले हैं॥ ६८॥

इस प्रकार मैंने उनकी अतिरिक्तताको कह दिया। समुद्रोंमें जल सर्वदा समान रहता है, उनका जल कभी घटता नहीं है॥ ६९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जिस प्रकार अग्निके संयोगसे स्थालीमें रहनेवाला पदार्थ ऊपरकी ओर उबलकर आता है, उसी प्रकार चन्द्रमाकी वृद्धि होनेपर समुद्रका जल भी ऊपरको उठता है॥ ७०॥

चन्द्रमाके उदय तथा अस्तकालमें समुद्रोंका जल भी क्रमशः बढ़ता है और घटता है। इसलिये कृष्ण तथा शुक्लपक्षमें न्यूनाधिक्य होता रहता है॥ ७१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार समस्त समुद्रोंके जलके एक सौ दस उदय तथा क्षय देखे गये हैं, यह मैंने आपसे कह दिया॥ ७२॥

हे विप्र! सभी प्रजाएँ पुष्करद्वीपमें सर्वदा अपने-आप उपस्थित खाँड़ आदि [मिष्टान्नोंका] भोजन करती हैं॥ ७३॥

स्वादूदक समुद्रके आगे कोई भी लोक नहीं है। यहाँकी भूमि सुवर्णमयी तथा पुष्करद्वीपसे दुगुनी है, यह सभी प्रकारके प्राणियोंसे रहित है॥ ७४॥

उससे आगे लोकालोक पर्वत है। वह पर्वत ऊँचाईमें एक हजार योजन है और उसका विस्तार दस हजार योजन है॥ ७५॥

हे महामुने! तमोमय ब्रह्माण्डरूप कटाहसे आवृत यह पृथ्वी द्वीपों तथा पर्वतोंसहित पचास करोड़ योजन विस्तारवाली है। हे व्यासजी! सबकी आधारभूता यह पृथ्वी गुणमें सभी महाभूतोंकी अपेक्षा अधिक है और यह सभी लोकोंकी धात्री है॥ ७६-७७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें ब्रह्माण्डकथनमें सप्तद्वीपवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

सूर्यादि ग्रहोंकी स्थितिका निरूपण करके जन आदि लोकोंका वर्णन

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] जहाँतक सूर्य एवं चन्द्रमाकी किरणें प्रकाश करती हैं, वहाँतक पृथ्वी है, उसीको भूलोक कहा जाता है॥ १॥

पृथ्वीसे एक लाख योजनकी दूरीपर सर्वदा एक हजार योजनके घेरेमें सूर्यमण्डल स्थित है। अब संसारमें चन्द्रमाके प्रमाणकी स्थिति कही जा रही है। सूर्यमण्डलसे एक लाख योजनकी दूरीपर चन्द्रमा स्थित है॥ २-३॥

चन्द्रमाके ऊपर दस हजार योजनकी दूरीपर चारों ओर नक्षत्रोंके सहित ग्रहमण्डल स्थित है। उसके आगे बुध, उसके आगे शुक्र और उसके ऊपर भौममण्डल है। फिर उसके ऊपर बृहस्पति और उसके ऊपर शनैश्चर स्थित है। उसके एक लाख योजन दूरीपर सप्तर्षिमण्डल है और सप्तर्षियोंसे सौ हजार योजन ऊपर ध्रुव स्थित है॥ ४—६॥

यह ध्रुव [समस्त] ज्योतिश्चक्रका मेढीभूत अर्थात् केन्द्र होकर स्थित है। पृथ्वीके ऊपर तथा ध्रुवके नीचे भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्लोक स्थित हैं, ऐसा जानना चाहिये॥ ७॥

ध्रुवके ऊपर एक करोड़ योजनपर महर्लोक है, जहाँ ब्रह्माजीके कल्पान्तवासी सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु एवं पंचशिख—ये सात पुत्र निवास करते हैं॥ ८-९॥

उसके ऊपर दो लाख योजनपर शुक्र स्थित है, शुक्रसे दो लाख योजन नीचे चन्द्रमापुत्र बुध बताया गया है। हे मुने! उससे दो लाख योजन ऊपर मंगल स्थित है और उससे दो लाख योजन ऊपर गुरु बृहस्पति स्थित हैं। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर स्थित है, ये सातों ग्रह अपनी-अपनी राशियोंपर स्थित रहते हैं॥ १०—१२॥

उनसे ग्यारह लाख योजन ऊपर सप्तर्षि स्थित हैं और उनसे दस लाख योजनपर ध्रुवकी स्थिति बतायी गयी है। जनलोकसे आगे साढ़े चार गुनी दूरीपर तपलोक कहा गया है, जहाँपर वैराज देवता तापरहित होकर रहते हैं॥ १३-१४॥

तपलोकसे छः गुनी दूरीपर सत्यलोक स्थित है, उसे ब्रह्मलोक जानना चाहिये। यहाँपर निर्मल आत्मावाले लोग रहते हैं और भूलोकसे ब्रह्मलोक जानेवाले, सत्यधर्ममें तत्पर, ज्ञानी तथा ब्रह्मचारी मनुष्य निवास करते हैं॥ १५-१६॥

भुवर्लोकमें सिद्ध तथा देवस्वरूप मुनि रहते हैं। स्वर्गलोकमें देवता, आदित्य, मरुद्गण, वसुगण, दोनों अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, रुद्र, साध्य, नाग, नक्षत्र आदि, नवग्रह तथा निष्पाप ऋषिगण निवास करते हैं॥ १७-१८॥

हे व्यासजी! मैंने इन सातों महालोकोंका, सातों पातालोंका तथा ब्रह्माण्डके विस्तारका वर्णन आपसे

किया। जिस प्रकार कैथका फल ऊपर-नीचे चारों ओरसे आवृत रहता है, उसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड भी अण्डकटाहसे सभी ओरसे घिरा हुआ है। यह दस गुने जलसे, तेजसे, वायुसे, आकाशसे एवं अन्धकारसे चारों ओरसे व्याप्त है। ये महाभूत आदिके सहित महत्तत्त्वसे भी दस गुना घिरा हुआ है और इस प्रधान महत्तत्त्वको घेरकर पुरुष स्थित है॥ १९—२२॥

उन अनन्त परमात्माकी कोई संख्या नहीं है और उनका परिमाण भी नहीं है, अत: वे अनन्त कहे गये हैं॥ २३॥

वे सबके कारण हैं और परा उनकी प्रकृति है। इस प्रकारके हजारों-लाखों ब्रह्माण्डसमुदाय उन अव्यक्त परमात्मासे उत्पन्न हुए हैं। जिस प्रकार काष्ठमें आग, तिलमें तेल तथा दूधमें घी व्याप्त रहता है, उसी प्रकार वे आत्मवेत्ता परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें व्याप्त होकर स्थित हैं। सृष्टि आदि-बीजसे होती है, उसके बाद उनसे अण्डज होते हैं। फिर उनसे पुत्रादि होते हैं, पुन: उनसे अन्य उत्पन्न होते हैं। इसके बाद उनसे महत्‌से लेकर विशेषपर्यन्त तत्त्व उत्पन्न होते हैं, उसके बाद देवता आदिकी उत्पत्ति होती है॥ २४—२७॥

जिस प्रकार बीजसे वृक्ष तथा वृक्षसे बीज होता है और इससे वृक्षकी हानि नहीं होती है, जैसे सूर्यके सन्नियोगसे सूर्यकान्तमणिद्वारा अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार [परमात्माके संयोगसे] सृष्टि होती है, उसमें शिवकी कोई कामना नहीं है। शिव तथा शक्तिका समायोग होनेपर देवता आदि उत्पन्न होते हैं। वे अपने एकमात्र कर्मसे ही उत्पन्न होते हैं, वे शिव ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्ररूपमें कहे जाते हैं। उन्हींसे सारा जगत् उत्पन्न होता है और उन्हींमें लयको भी प्राप्त होता है। वे शिव ही सभी क्रियाओंके कर्ता कहे जाते हैं॥ २८—३१॥

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! सनत्कुमार! मेरे इस महान् संशयको दूर कीजिये। हे मुने! ब्रह्माण्डके ऊपर अन्य कोई लोक हैं अथवा नहीं॥ ३२॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर! ब्रह्माण्डके ऊपर भी लोक हैं, उन्हें विस्तारपूर्वक आप सुनिये, यहाँ आया हुआ मैं आपसे उनका वर्णन कर रहा हूँ॥ ३३॥

ब्रह्मलोकसे ऊपर श्रेष्ठ वैकुण्ठ नामक परम दीप्तियुक्त लोक विराजमान है, जहाँ विष्णु निवास करते हैं। उसके ऊपर अत्यन्त अद्भुत कौमारलोक है, जहाँ महातेजस्वी शम्भुपुत्र कार्तिकेय निवास करते हैं। उसके ऊपर परम दिव्य उमालोक विराजमान है, जहाँ तीनों देवताओंकी जननी एकमात्र महाशक्ति शिवा विराजती हैं। वे देवी [शिवा] स्वयं परात्पर प्रकृति, सत्त्व, रज, तमोमयी, निर्गुण, निर्विकार एवं शिवात्मिका हैं॥ ३४—३७॥

उसके ऊपर सनातन, अविनाशी, परम दिव्य तथा सर्वदा महान् शोभासे युक्त शिवलोकको जानना चाहिये, जहाँ तीनों देवताओंको उत्पन्न करनेवाले, सबके स्वामी तथा त्रिगुणातीत परब्रह्म महेश्वर निवास करते हैं॥ ३८-३९॥

उसके ऊपर कोई भी लोक नहीं है। उसके समीपमें गोलोक है, जहाँपर सुशीला नामवाली शिवप्रिया गोमाताएँ निवास करती हैं॥ ४०॥

उन गौओंका पालन करनेवाले श्रीकृष्ण शिवजीकी आज्ञासे वहाँ निवास करते हैं। परम स्वतन्त्र शिवजीने ही अपनी शक्तिसे वहाँ उन्हें प्रतिष्ठित किया है॥ ४१॥

हे व्यासजी! वह शिवलोक अद्भुत, निराधार, मनोहर, अनिर्वचनीय तथा अनेक वस्तुओंसे सुशोभित है। सभी देवताओंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मा-विष्णु-हरसे सेवित, परमात्मा तथा निर्विकार शिवजी उस लोकके अधिष्ठाता हैं। हे तात! इस प्रकार मैंने सारे ब्रह्माण्डकी स्थिति तथा उसके ऊपर स्थित लोकोंका वर्णन क्रमसे कर दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२—४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें लोकवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

तपस्यासे शिवलोककी प्राप्ति, सात्त्विक आदि तपस्याके भेद, मानवजन्मकी प्रशस्तिका कथन

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! सनत्कुमार! हे सत्तम! अब आप उस [शिवलोक]-की प्राप्तिका वर्णन करें, जहाँ जाकर शिवभक्त मनुष्य फिर नहीं लौटते हैं॥ १॥

सनत्कुमार बोले—हे पराशरपुत्र व्यास! अब आप शुद्ध शिवभक्तजनों तथा तपस्वियोंकी शुभ गति तथा पवित्र व्रतको प्रीतिपूर्वक सुनिये॥ २॥

शुद्ध कर्म करनेवाले एवं अत्यन्त शुद्ध तपस्यासे युक्त जो मनुष्य प्रतिदिन शिवजीकी पूजा करते हैं, वे सब प्रकारसे सर्वदा वन्दनीय हैं॥ ३॥

हे महामुने! तपस्या नहीं करनेवाले उस निर्विकार शिवलोकमें नहीं जा सकते हैं, शिवजीकी कृपाका मूल हेतु तपस्या ही है। यह प्रत्यक्ष है कि तपके प्रभावसे ही देवता, ऋषि और मुनिलोग स्वर्गमें आनन्द प्राप्त करते हैं, मेरे इस वचनको सत्य जानिये॥ ४-५॥

जो अत्यन्त कठिन, दुराराध्य, अत्यन्त दूर एवं पार न पानेयोग्य है, वह सब तपस्यासे सिद्ध हो जाता है, निश्चय ही तपस्याका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता। ब्रह्मा, विष्णु तथा हर नित्य तपमें स्थित रहते हैं। सम्पूर्ण देवताओं तथा देवियोंने भी तपस्यासे ही दुर्लभ फल प्राप्त किया है॥ ६-७॥

जिस-जिस भावमें स्थित होकर लोग जो तपस्या करते हैं, वे उस तपसे उसी प्रकारका फल इस लोकमें प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे व्यासजी! सात्त्विक, राजस तथा तामस—यह तीन प्रकारका तप कहा गया है, तपको सम्पूर्ण साधनोंका साधन जानना चाहिये॥ ८-९॥

देवताओं, संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंका तप सात्त्विक होता है। दैत्यों एवं मनुष्योंका तप राजस होता है तथा राक्षसों एवं क्रूर कर्म करनेवाले मनुष्योंका तप तामस होता है॥ १०॥

तत्त्वदर्शी महर्षियोंने उनका फल भी तीन प्रकारका बताया है। भक्तिपूर्वक देवगणोंका जप, ध्यान एवं अर्चन शुभ होता है। वह सात्त्विक कहा गया है, जो सभी फलोंको प्रदान करता है। यह तप इस लोकमें और परलोकमें भी मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है॥ ११-१२॥

किसी प्रकारकी कामनाकी सिद्धिको उद्देश्य करके जो तप किया जाता है, वह राजस तप कहा जाता है। देहको सुखानेवाले और दुस्सह तपोंसे शरीरको पीड़ितकर जो तप किया जाता है, वह तामस तप कहा जाता है, वह भी मनोरथ सिद्ध करनेवाला है॥ १३-१४॥

सात्त्विक तपको सर्वोत्तम जानना चाहिये। निश्चल धर्मबुद्धि, स्नान, पूजा, जप, होम, शुद्धता, शौच, अहिंसा, व्रत-उपवास, मौन, इन्द्रियनिग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अक्रोध, दान, क्षमा, दम, दया, बावली-कूप-सरोवर एवं प्रासादका निर्माण, कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत, यज्ञ, श्रेष्ठ तीर्थ और आश्रमका निवास—ये सभी धर्मके स्थान हैं और बुद्धिमानोंको सुख देनेवाले हैं। हे व्यास! इस प्रकार विषुव संक्रान्ति (मेष-तुला संक्रान्ति)-में सम्पन्न ये सद्धर्म शिवभक्तिके परम कारण हैं। किसी शब्दरहित स्थानमें उन्मनी भावसे ज्योतिका तीनों कालोंमें ध्यान करना ही धारणा है। रेचक, पूरक और कुम्भक—यह तीन प्रकारका प्राणायाम कहा गया है। प्रत्याहारद्वारा इन्द्रियोंका निरोध एवं नाड़ीसंचारका ज्ञान होता है॥ १५—२०॥

यह तुरीयावस्था होती है। अणिमादि अष्टसिद्धियोंको प्राप्त करना अधोबुद्धि है। इसमें पूर्व-पूर्व उत्तम भेद कहे गये हैं, जो ज्ञानविशेषके साधन हैं। काष्ठावस्था, मृतावस्था और हरितावस्था—ये तीन अवस्थाएँ कही गयी हैं। ये अवस्थाएँ अनेक उपलब्धियोंवाली तथा सभी पापोंको विनष्ट करनेवाली हैं॥ २१-२२॥

नारी, शय्या, पान, वस्त्र, धूप, सुगन्धित चन्दन आदिका लेप, ताम्बूलभक्षण, पाँच राजैश्वर्य विभूतियाँ, सुवर्णकी अधिकता, ताँबा, घर, रत्न, धेनु, वेद-शास्त्रोंका पाण्डित्य, गीत, नृत्य, आभूषण, शंख, वीणा, मृदंग, गजेन्द्र,

छत्र एवं चामर—ये सभी भोगस्वरूप हैं। इनमें [विषयोंमें] आसक्त प्राणी ही अनुरक्त होता है॥ २३—२५॥

हे मुने! ये सभी पदार्थ दर्पणमें पड़े प्रतिबिम्बके समान अवास्तविक तथा आभासमात्र हैं तथापि इनमें यथार्थबुद्धि करके संसारीपुरुष तेलके लिये तिलके समान बारंबार इस संसारचक्रमें पेरा जाता है और माया उसे अज्ञानसे मोहित कर लेती है॥ २६॥

वह सब कुछ जानते हुए भी घड़ीके यन्त्रके समान स्थावर, जंगम आदि सभी योनियोंमें दुखी होकर घूमता रहता है। इस प्रकार समस्त योनियोंमें भ्रमणकर बहुत समयके बाद अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म प्राप्त करता है और कभी-कभी पुण्यकी महिमासे बीचमें ही मानवशरीर प्राप्त कर लेता है; क्योंकि कर्मोंके गौरव तथा लाघवके कारण उनकी गतियाँ बड़ी विचित्र कही गयी हैं॥ २७—२९॥

जो पुरुष स्वर्ग एवं मोक्षके साधनभूत इस मनुष्यजन्मको पाकर अपना परम कल्याण नहीं करता है, वह मरनेके बाद बहुत कालतक शोक करता रहता है। सभी देवताओं एवं असुरोंके लिये भी यह मनुष्यजन्म अति दुर्लभ है। अतः उसे प्राप्त करके वैसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरकमें न जाना पड़े॥ ३०-३१॥

दुर्लभ मनुष्ययोनि प्राप्त करके यदि स्वर्ग तथा मोक्षके लिये प्रयत्न नहीं किया जाता है तो उस जन्मको व्यर्थ कहा गया है॥ ३२॥

हे व्यासजी! धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका मूल मनुष्यजन्म कहा गया है, अतः मनुष्यजन्मको प्राप्तकर धर्मानुसार उसका यत्नपूर्वक पालन करते रहना चाहिये। धर्मके आधार तथा समस्त अर्थोंके साधनभूत इस मनुष्यजन्मको प्राप्त करके यदि [परमार्थ-] लाभके लिये यत्न होता है तभी उससे मूल अर्थात् मनुष्य जीवन सुरक्षित समझना चाहिये॥ ३३-३४॥

मनुष्यजन्ममें भी अति दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर जो अपना पारलौकिक कल्याण नहीं करता है, उससे अधिक जड़ और कौन है?। सभी द्वीपोंमें यह [भारतभूमि ही] कर्मभूमि कही जाती है, यहींपर कर्म करके स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किया जाता है॥ ३५-३६॥

इस भारतवर्षमें अस्थिर मनुष्यजन्मको प्राप्तकर जिसने अपना कल्याण नहीं किया, उसने मानो अपनी ही आत्माको ठगा है॥ ३७॥

हे विप्र! यही कर्मभूमि और यही फलभूमि भी कही गयी है। यहाँ जो कर्म किया जाता है, उसीका फलभोग स्वर्गमें किया जाता है। जबतक शरीर स्वस्थ रहे, तबतक धर्माचरण करते रहना चाहिये; क्योंकि अस्वस्थ हो जानेपर दूसरोंके द्वारा प्रेरित किये जानेपर भी मनुष्य कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं होता है॥ ३८-३९॥

अस्थिर शरीरसे जो स्थिर [मोक्ष]-को सिद्ध नहीं करता, उसका स्थिर [मोक्ष] भी नष्ट हो जाता है और यह अध्रुव शरीर तो नष्ट होनेवाला ही है॥ ४०॥

[मनुष्यकी] आयुके एक-एक क्षण रात-दिनके रूपमें उसके आगे ही नष्ट होते जाते हैं, फिर भी उसे बोध क्यों नहीं होता है? जब यह ज्ञात नहीं है कि किसकी मृत्यु कब होगी, तब सहसा मृत्यु होनेपर कौन धैर्य धारण कर सकता है?॥ ४१-४२॥

जब यह निश्चित है कि सब कुछ छोड़कर अकेले ही जाना है, तब मनुष्य जानेके समय मार्गके खर्चके लिये इस धनका दान क्यों नहीं करता?॥ ४३॥

जिसने दानफलरूप पाथेयको प्राप्त कर लिया है, वह सुखपूर्वक यमलोकको जाता है, यदि ऐसा न हुआ तो प्राणी पाथेयरहित मार्गमें दुःख प्राप्त करता है। हे व्यास! सभी प्रकारसे जिनके पुण्य परिपूर्ण हैं, उनको स्वर्गमार्गमें जाते समय पग-पगपर लाभ होता है॥ ४४-४५॥

ऐसा जानकर मनुष्यको पुण्य करते रहना चाहिये और पापको सर्वथा छोड़ देना चाहिये। पुण्यसे वह देवत्व प्राप्त करता है और पुण्यरहित होनेपर नरकको जाता है॥ ४६॥

जो लोग थोड़ा भी देवेश शिवकी शरणमें चले जाते हैं, वे घोर यमको और नरकको नहीं देखते हैं, किंतु महान् व्यामोह उत्पन्न करनेवाले पापोंके कारण शिवजीकी आज्ञासे मनुष्य कुछ दिनके लिये वहाँ निवास करते हैं और उसके बाद शिवलोकमें चले जाते हैं। जो लोग सर्वभावसे महेश्वर शिवके शरणागत हैं, वे जलसे

कमलपत्रकी भाँति पापसे लिप्त नहीं होते हैं॥ ४७—४९॥

हे मुनिसत्तम! जिन्होंने 'शिव-शिव' तथा 'हर-हर' इस नामका उच्चारण किया है, उन्हें नरक और यमराजसे भय नहीं होता है॥ ५०॥

शिव—ये दो अक्षर परलोकके लिये पाथेय, अनामय, मोक्ष-साधन एवं पुण्यसमूहका एकमात्र स्थान हैं॥ ५१॥

संसाररूपी महारोगोंका नाश करनेवाला [एकमात्र] शिव नाम ही है। मुझे संसाररूपी रोगका नाश करनेवाला अन्य कोई उपाय नहीं दिखायी देता है॥ ५२॥

प्राचीनकालमें पुल्कस हजारों ब्रह्महत्याएँ करके भी विमल शिवनामको सुनकर मुक्त हो गया। इसलिये बुद्धिमान्‌को चाहिये कि सदा ईश्वरके प्रति [अपनी] भक्ति बढ़ाये। हे महाप्राज्ञ! शिवभक्तिसे प्राणी भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ५३-५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें मनुविशेषकथन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कर्मानुसार जन्मका वर्णनकर क्षत्रियके लिये संग्रामके फलका निरूपण

व्यासजी बोले— स्वभावतः ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति बहुत कठिन है। ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय और जंघासे वैश्य उत्पन्न हुए हैं, उनके चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुआ है—ऐसी बात उनके मुखसे सुनी गयी है। किंतु ऊपरसे नीचे मनुष्य क्यों जाते हैं, यह मुझे बतायें॥ १-२॥

सनत्कुमार बोले— हे व्यास! मानव बुरा आचरण करनेसे भ्रष्ट हो जाते हैं, अतः विद्वान्‌को चाहिये कि श्रेष्ठ स्थान प्राप्तकर उसकी रक्षा करे। जो विप्रत्वका परित्यागकर क्षत्रियामें पुत्रोत्पत्ति करता है, वह ब्राह्मणत्वसे भ्रष्ट होकर क्षत्रियत्वका सेवन करता है॥ ३-४॥

मूर्ख प्राणी अधर्मका आचरण करनेसे हजारों जन्मोंतक जन्म-मरणके चक्रमें घूमता रहता है और उसी अधर्मके कारण अन्धकारमें पड़ा रहता है, अतः मनुष्य श्रेष्ठ स्थानको प्राप्तकर प्रमाद न करे और उसे विनष्ट न करे, विपत्तियोंको सहकर भी सर्वदा अपने स्थानकी रक्षा करे॥ ५-६॥

जो मनुष्य श्रेष्ठ ब्राह्मणका जन्म प्राप्त करके भी ब्राह्मणत्वका तिरस्कार करता है एवं भक्ष्य-अभक्ष्य (गम्यागम्य, कार्याकार्यादि)-का विचार नहीं करता है, वह पुनः क्षत्रिय हो जाता है॥ ७॥

बुद्धिसम्पन्न शूद्र जिस कर्मसे वैश्य हो जाता है और जिस कर्मसे वह क्रमशः उत्तम वर्णमें जन्म प्राप्त करता है, मैं वह सब आपसे कहता हूँ॥ ८॥

शूद्रकुलमें जन्म ग्रहणकर शास्त्रमें जैसा उसका कर्म बताया गया है, उसे करना चाहिये। जो [वर्णाभ्युदयकी] इच्छा रखता हुआ तीनों वर्णोंकी सेवारूप अपने कर्मका नित्य आचरण करता है, वह शूद्र भी वैश्यकुलमें जन्म प्राप्त कर लेता है। वैश्यकुलमें उत्पन्न जो व्यक्ति अपने धनोंसे विधिपूर्वक हवन करता और अग्निहोत्र सम्पन्नकर उससे बचे हुए अन्नका भोजन करता है, वह क्षत्रियकुलमें जन्म प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ९—११॥

जो क्षत्रिय विपुल दक्षिणावाले संस्कारयुक्त यज्ञोंके द्वारा यजन करता है, स्वर्गकी कामना करता हुआ स्वाध्याय तथा [गार्हपत्यादि] तीनों अग्नियोंकी शुश्रूषा करता है, हाथ-पैर धोकर शुद्ध हो [भोजनादि क्रिया सम्पादित करता है तथा] धर्मपूर्वक नित्य पृथ्वीका पालन करता है, धर्मपरायण होकर ऋतुकालमें ही अपनी भार्याके साथ समागम करता है, [धर्मादि] तीनों वर्गोंका सेवन तथा अभ्यागतमात्रका आतिथ्य-सत्कार करता है, पंचभूत बलि प्रदान करता है और गौ, ब्राह्मण तथा अपने [राष्ट्रके] हितके लिये संग्राममें प्राणोंका त्याग कर देता है, उस कर्मके द्वारा अग्नि एवं मन्त्रसे पवित्र वह क्षत्रिय ब्राह्मणकुलमें जन्म ग्रहण करता है, इस प्रकार विधानपूर्वक ब्राह्मण होकर वह याजक हो जाता है। सदा अपने कर्मोंमें संलग्न, सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय वह ब्राह्मण देवताओंके लिये भी प्रिय होकर स्वर्गको प्राप्त कर लेता है॥ १२—१६॥

हे मुनीश्वर! ब्राह्मणत्व अतिशय दुर्लभ है; मनुष्योंके

द्वारा यह बहुत कष्टसे प्राप्त किया जाता है। ब्राह्मणत्वसे सब कुछ प्राप्त होता है, यहाँतक कि मनुष्य मोक्षतक प्राप्त कर लेता है। इसलिये ब्राह्मणको धर्मपरायण होकर पूर्ण प्रयत्नके साथ सभी पुरुषार्थोंके साधनस्वरूप उत्तम ब्राह्मणत्वकी रक्षा करनी चाहिये॥ १७-१८॥

व्यासजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आपने [इस लोकमें क्षत्रियके लिये] युद्धका बहुत माहात्म्य कहा है, मैं इसे [विस्तारसे] सुनना चाहता हूँ। हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आप उसका वर्णन कीजिये॥ १९॥

सनत्कुमार बोले—क्षत्रिय बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी उस फलको प्राप्त नहीं करता है, जो उसे युद्धमें मिलता है। यज्ञकर्मको जाननेवाले तत्त्वज्ञानियोंने ऐसा कहा है। अतः शस्त्रजीवियोंको जो फल प्राप्त होता है, उसका वर्णन मैं आपसे करता हूँ॥ २०-२१॥

जो शूरवीर क्षत्रिय शत्रुकी सेनाको मसल डालता हुआ [निरन्तर धर्मपूर्वक] युद्धकी कामना करता है, उसे धर्म, अर्थ और कीर्तिकी प्राप्ति होती है। जो अपने शत्रुके सम्मुख उपस्थित होकर संग्राम करता है और उसकी गतिका अतिक्रमण करता है, उसे धर्म, अर्थ, काम और दक्षिणासहित किये गये यज्ञका फल प्राप्त होता है॥ २२-२३॥

जो क्षत्रिय युद्धमें अपराजित होता है, वह विष्णुलोकको जाता है। यदि वह संग्राममें मृत्युको प्राप्त नहीं हुआ, तो चार अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। जो शस्त्र धारण करके रणभूमिमें और सेनाके अभिमुख हो युद्ध करते हुए प्राणत्याग कर देता है, वह वीर स्वर्गसे नहीं लौटता है॥ २४-२५॥

राजा, राजपुत्र अथवा सेनापति जो भी शूर क्षत्रिय-धर्मसे प्राणत्याग कर देता है, उसे अक्षय लोककी प्राप्ति होती है। महासंग्राममें अस्त्रोंसे उसके जितने रोमोंका भेदन होता है, वह सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले उतने ही अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है। हे व्यास! वीरासन, वीरशय्या और वीरस्थानकी स्थिति उसके लिये इस लोकमें और परलोकमें सर्वथा स्थिर रहती है॥ २६—२८॥

गौ, ब्राह्मण, राष्ट्र एवं स्वामीके लिये जो प्राणोंका त्याग करते हैं, वे पुण्यात्माओंकी भाँति [परलोक जाकर] सुख प्राप्त करते हैं। जो अपने राजाके लिये युद्धमें [धर्मपूर्वक लड़ता हुआ] ब्राह्मणको भी मारकर बादमें स्वयं प्राणत्याग करता है, वह स्वर्गसे नहीं लौटता है॥ २९-३०॥

संग्राममें मांसका भक्षण करनेवाले जन्तुओं एवं हाथियोंके द्वारा मारे गये व्यक्तिकी भी उत्तम गति होती है और ब्राह्मण, गौ तथा अपने स्वामीके लिये प्राणका परित्याग करनेवालेको विपुल पुण्यदायिनी अक्षय गतिकी प्राप्ति होती है। व्यक्ति सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेमें समर्थ हो सकता है, किंतु युद्धमें अपने शरीरका परित्याग करना बहुत ही कठिन है॥ ३१-३२॥

संग्राम सभी वर्णोंके लिये, विशेषकर क्षत्रियके लिये सब प्रकारसे पुण्यप्रद, स्वर्गप्रद तथा स्वरूप प्रदान करनेवाला है। अब मैं सनातन युद्धधर्मको विस्तारके साथ कहता हूँ। जिस तरहके व्यक्तिपर प्रहार करना चाहिये और जिसे छोड़ देना चाहिये॥ ३३-३४॥

मारनेके लिये आते हुए वेदान्तपारंगत आततायी ब्राह्मणको भी मार देना चाहिये, इससे व्यक्ति ब्रह्महत्यारा नहीं होता है॥ ३५॥

हे व्यास! मारनेके योग्य मनुष्य भी यदि [प्याससे पीड़ित होकर] जल माँगे, तो उसका वध नहीं करना चाहिये; संग्राममें रोगियों (जलादिकी कामनासे व्याकुल)-को मारनेसे वह मनुष्य ब्रह्मघाती हो जाता है॥ ३६॥

रोगग्रस्त, दुर्बल, बालक, स्त्री, अनाथ, कृपण, टूटे हुए धनुषवाले, टूटी हुई धनुषकी डोरीवाले व्यक्तिको [युद्धमें] मारनेसे निश्चितरूपसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ३७॥

इस प्रकार विचार करके जो बुद्धिमान् व्यक्ति उत्साहसे युद्ध करता है, वह [इस] जन्मका फल प्राप्त करके इस लोक तथा परलोकमें आनन्दित होता है॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें रणफलवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

देहकी उत्पत्तिका वर्णन

व्यासजी बोले—हे मुनीश्वर! हे तात! रागनिवृत्तिके लिये इस समय विधिपूर्वक जीवके जन्म तथा गर्भमें उसकी स्थितिका वर्णन कीजिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! अब मैं संक्षेपमें सम्पूर्ण शास्त्रोंके साररूप उत्तम वैराग्यका वर्णन करूँगा, जो मुमुक्षुजनके संसाररूप बन्धनको काटनेवाला है॥ २॥

पाकपात्रके मध्य स्थित अन्न और जल अलग-अलग रहते हैं। अग्निके ऊपर जल रहता है तथा जलके ऊपर अन्न रखा जाता है। जलके नीचे स्थित अग्निको वायु धीरे-धीरे प्रज्वलित करता है, वायुसे प्रेरित हुई अग्नि जलको उष्ण करती है॥ ३-४॥

गर्म हुए जलसे उस अन्नका भलीभाँति परिपाक होता है। पका हुआ अन्न खा लेनेपर दो भागोंमें विभक्त हो जाता है, किट्ट अलग और रस अलग हो जाता है। वह किट्ट बारह मलोंके रूपमें बँटकर शरीरसे बाहर निकलता है। रस देहमें फैलता है, वह देह उससे पुष्ट होता है। कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, दाँत, लिंग, गुदा, नख—ये मलाश्रय हैं तथा कफ, पसीना, विष्ठा और मूत्र—ये मल हैं, सभी मिलाकर बारह कहे गये हैं॥ ५—७॥

हृदयकमलमें चारों ओरसे समस्त नाड़ियाँ बँधी हुई हैं, उन्हें रसवाहिनियाँ जानना चाहिये। हे मुने! मैं उनकी [संचरण] विधि कहता हूँ। प्राणवायु उन नाड़ियोंके मुखोंमें उस सूक्ष्म रसको स्थापित करता है, इसके बाद प्राण रससे उन नाड़ियोंको सन्तृप्त करता है॥ ८-९॥

प्राणवायुसे समन्वित हो सभी नाड़ियाँ उस रसको सारे शरीरमें फैला देती हैं। इस प्रकार नाड़ियोंके बीचमें प्रवाहित हुआ वह रस अपने शरीरद्वारा पकाया जाता है, इसके पाक हो जानेपर पुनः वह दो भागोंमें बँट जाता है। सबसे पहले उससे त्वचा बनती है, जो शरीरको वेष्टित करती है, बादमें रक्त बनता है। रक्तसे लोम और मांस बनते हैं, मांससे केश और स्नायु बनते हैं, स्नायुसे अस्थियाँ और अस्थियोंसे नख एवं मज्जा बनते हैं। मज्जासे प्रसवका कारणस्वरूप शुक्र बनता है, अन्नका यह बारह प्रकारका परिणाम कहा गया है॥ १०—१३॥

अन्नसे शुक्र बनता है और शुक्रसे दिव्य देहकी उत्पत्ति होती है। जब ऋतुकालमें निर्दोष शुक्र योनिमें स्थित होता है, तब वायुके द्वारा वह स्त्रीके रक्तमें मिलकर एक हो जाता है। जब शुक्र शरीरसे स्खलित होकर स्त्रीकी योनिमें प्रविष्ट होता है, तब उसी समय कारणदेहसे संयुक्त होकर जीव अपने कर्मवश निगूढरूपसे स्त्रीयोनिमें प्रविष्ट हो जाता है। वह शुक्र और रक्त मिलकर एक दिनमें कलल बनता है। वह कलल पाँच रातमें बुद्बुदके आकारका हो जाता है और बुद्बुद सात रातमें मांसपेशी बन जाता है॥ १४—१७॥

इसके बाद ग्रीवा, सिर, दोनों कन्धे, पीठ (तथा मेरुदण्ड), पेट, हाथ, पैर, दोनों पार्श्व, कमर और गात्र क्रमशः दो महीनेके भीतर बन जाते हैं। तीन महीनेमें सभी अंकुरसन्धियाँ [जोड़] बन जाती हैं॥ १८-१९॥

चार महीनेमें क्रमानुसार अँगुलियाँ बन जाती हैं। पाँच महीनेमें मुख, नासिका तथा कान उत्पन्न हो जाते हैं, तत्पश्चात् दाँतोंकी पंक्ति, गुह्यभाग और नख प्रकट हो जाते हैं। छः महीनेके भीतर कानोंका छिद्र प्रकट हो जाता है॥ २०-२१॥

सात महीनेमें गुदा, मेह-उपस्थेन्द्रिय, नाभि और अंगोंमें जो सन्धियाँ हैं—ये सब उत्पन्न हो जाते हैं॥ २२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अंग-प्रत्यंगसे पूर्ण वह जीव परिपक्व होकर जरायुसे लिपटा हुआ माताके उदरमें स्थित रहता है॥ २३॥

नाभिनालमें बँधा हुआ वह [जीव] माताके आहारसे प्राप्त छः प्रकारके रसोंसे प्रतिदिन बढ़ता रहता है॥ २४॥

तत्पश्चात् शरीरके पूर्ण हो जानेपर उस जीवको स्मृति प्राप्त होती है। वह अपने पूर्वजन्मके किये गये कर्मों, सुख, दुःख, निद्रा एवं स्वप्नको जानने लगता है॥ २५॥

मैं मरकर पुनः पैदा हुआ और पैदा होकर पुनः मरा, इस प्रकारसे जन्म लेते हुए मैंने हजारों योनियाँ

देखीं। अब मैं उत्पन्न होते ही संस्कारयुक्त होकर इस शरीरसे उत्तम कर्म करूँगा, जिससे पुनः गर्भमें न आना पड़े। गर्भमें स्थित वह जीव यही सोचता रहता है कि मैं गर्भसे निकलते ही संसारसे मुक्ति प्रदान करनेवाले शिवज्ञानका अन्वेषण करूँगा॥ २६—२८॥

इस प्रकार कर्मवश महान् गर्भक्लेशसे सन्तप्त हुआ वह जीव मोक्षका उपाय सोचता हुआ वहाँ रहता है। जिस प्रकार बहुत बड़े पहाड़से दबा हुआ कोई मनुष्य बड़े कष्टसे स्थित रहता है, उसी प्रकार जरायुसे लिपटा हुआ जीव भी बड़े दुःखसे स्थित रहता है॥ २९-३०॥

जैसे सागरमें गिरा हुआ मनुष्य व्याकुल होता है, उसी प्रकार गर्भजलसे सिक्त अंगोंवाला जीव भी सर्वदा व्याकुल रहता है॥ ३१॥

जिस प्रकार लोहेकी बटलोयीमें रखा गया कोई पदार्थ अग्निसे पकाया जाता है, उसी प्रकार गर्भकुम्भमें स्थित जीव भी जठराग्निसे पकाया जाता है॥ ३२॥

आगमें लाल की गयी सुइयोंसे निरन्तर बिंधे हुए प्राणीको जो कष्ट होता है, उससे भी अधिक कष्ट वहाँपर [गर्भाशयमें] स्थित उस जीवको सदा प्राप्त होता रहता है। शरीरधारियोंके लिये गर्भवाससे बड़ा उद्विग्न करनेवाला कष्ट अन्यत्र कहीं नहीं होता है, यह दुःख महाघोर तथा बहुत संकट देनेवाला होता है॥ ३३-३४॥

मैंने यहाँ केवल पापियोंके अत्यधिक दुःखका वर्णन किया, धर्मात्माओंका जन्म तो सात ही मासमें हो जाता है॥ ३५॥

हे व्यास! गर्भसे निकलते समय योनियन्त्रसे निपीडनके कारण महान् दुःख केवल पापियोंको होता है, धर्मात्माओंको नहीं होता है। जिस प्रकार ईखको कोल्हूमें डालकर उसे चारों ओरसे पेरा जानेपर उसका निपीडन होता है, उसी प्रकार पापरूपी मुद्गरसे सिरपर प्रहार होनेसे उन पापियोंको दुःख होता है॥ ३६-३७॥

जिस प्रकार कोल्हूमें पेरे जानेपर तिल क्षणभरमें निःसार हो जाते हैं, उसी प्रकार [जन्मकालमें] योनियन्त्रसे निपीडित होनेके कारण शरीर भी अशक्त हो जाता है॥ ३८॥

इसमें इस शरीर [रूपी भवन]-को स्नायुबन्धनसे यन्त्रित अस्थिपाद-रूप तुलास्तम्भके समान रक्तमांसरूपी मिट्टीसे लिप्त विष्ठा-मूत्ररूपी द्रव्यका पात्र, केश-रोम-नखोंसे ढका हुआ, रोगोंका घर, आतुरस्वरूप, मुखरूपी महाद्वारवाला, आठ छिद्ररूपी गवाक्षोंसे सुशोभित, दो ओठरूपी कपाटवाला, जीभरूपी अर्गलासे युक्त, भोग-तृष्णासे आतुर, अज्ञानमय राग-द्वेषके वशीभूत रहनेवाला, अंग-प्रत्यंगोंसे करवट लेता हुआ, जरायुसे परिवेष्टित, बड़े संकीर्ण योनिमार्गसे निर्गत, विष्ठा-मूत्र-रक्तसे सिक्त अंगोंवाला, विकोशिकासे उत्पन्न और अस्थि-पंजरसे युक्त जानना चाहिये॥ ३९—४३॥

इसमें तीन सौ पैंसठ पेशियाँ हैं और यह सभी ओरसे साढ़े तीन करोड़ रोमोंसे ढँका हुआ है। यह शरीर इतने ही करोड़ सूक्ष्म तथा स्थूल नाड़ियोंसे चारों ओरसे व्याप्त है, वे नाड़ियाँ दृश्य तथा अदृश्य कही गयी हैं। यह शरीर स्वेद एवं मधुविहीन नाड़ियोंसे रहित होकर भी [स्वेदादिके रूपमें] बाहर स्रवित होता रहता है। इस शरीरमें बत्तीस दाँत बताये गये हैं और बीस नख कहे गये हैं॥ ४४—४६॥

इसमें पित्तका भाग एक कुडव (पावभर) जानना चाहिये, कफका भाग एक आढ़क (चार सेर) कहा गया है। चरबीका भाग बीस पल और कपिलका भाग उसका आधा है। साढ़े पाँच पल तुला और मेदाका भाग दस पल जानना चाहिये। [इस शरीरमें] तीन पल महारक्त होता है और मज्जा इसकी चौगुनी होती है। इसमें आधा कुडव वीर्य समझना चाहिये, वही शरीरधारियोंका उत्पत्ति-बीज तथा बल है। मांसका परिमाण हजार पल कहा जाता है। हे मुनिश्रेष्ठ! रक्तको सौ पल परिमाणका जानना चाहिये और चार-चार अंजलि विष्ठा तथा मूत्रका परिमाण होता है॥ ४७—५०॥

इस प्रकार विशुद्ध नित्य आत्माका यह अनित्य एवं अपवित्र शरीररूपी घर कर्मबन्धनसे विनिर्मित है॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें देहोत्पत्तिवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

शरीरकी अपवित्रता तथा उसके बालादि अवस्थाओंमें प्राप्त होनेवाले दुःखोंका वर्णन

सनत्कुमार बोले—हे मुने! हे महाबुद्धे! हे व्यासजी! सुनिये, अब मैं शरीरकी अपवित्रता तथा उसके आत्मभावके महत्त्वका संक्षिप्त रूपसे वर्णन कर रहा हूँ। चूँकि देह शुक्र और शोणितके मेलसे बनता है और यह विष्ठा तथा मूत्रसे सदा भरा रहता है, इसलिये इसे अपवित्र कहा गया है॥ १-२॥

जिस प्रकार भीतर विष्ठासे परिपूर्ण घट बाहरसे शुद्ध होता हुआ भी अपवित्र ही होता है, उसी प्रकार शुद्ध किया हुआ यह शरीर भी अपवित्र कहा गया है। अत्यन्त पवित्र पंचगव्य एवं हव्य आदि भी जिस शरीरमें जानेपर क्षणभरमें अपवित्र हो जाते हैं, उस शरीरसे अधिक अपवित्र और क्या हो सकता है?॥ ३-४॥

अत्यन्त सुगन्धित एवं मनोहर अन्नपान भी जिसे प्राप्तकर शीघ्र ही अपवित्र हो जाते हैं, उससे अपवित्र और क्या हो सकता है? हे मनुष्यो! क्या तुमलोग नहीं देखते हो कि इस शरीरसे प्रतिदिन दुर्गन्धित मल-मूत्र बाहर निकलता है, फिर उसका आधार [यह देह] किस प्रकार शुद्ध हो सकता है?॥ ५-६॥

पंचगव्य एवं कुशोदकसे भलीभाँति शुद्ध किया जाता हुआ देह भी माँजे जाते हुए कोयलेके समान निर्मल नहीं हो सकता है। पर्वतसे निकले हुए झरनेके समान जिससे कफ, मूत्र, विष्ठा आदि निरन्तर निकलते रहते हैं, वह शरीर भला शुद्ध किस प्रकार हो सकता है?॥ ७-८॥

विष्ठा-मूत्रकी थैलीकी भाँति सब प्रकारकी अपवित्रताके निधानरूप इस शरीरका कोई एक भी स्थान पवित्र नहीं है। अपने देहके स्रोतोंसे मल निकालकर जल और मिट्टीके द्वारा हाथ शुद्ध किया जाता है, किंतु सर्वथा अशुद्धिपूर्ण इस शरीररूपी पात्रका अवयव होनेसे हाथ किस प्रकार पवित्र रह सकता है?॥ ९-१०॥

यत्नपूर्वक उत्तम गन्ध, धूप आदिसे भलीभाँति सुसंस्कृत भी यह शरीर कुत्तेकी पूँछकी तरह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है। जिस प्रकार स्वभावसे काली वस्तु अनेक उपाय करनेपर भी उज्ज्वल नहीं हो सकती, उसी प्रकार यह काया भी भलीभाँति शुद्ध करनेपर भी निर्मल नहीं हो सकती है॥ ११-१२॥

अपनी दुर्गन्धिको सूँघता हुआ, अपने मलको देखता हुआ तथा अपनी नाकको दबाता हुआ भी यह संसार इससे विरक्त नहीं होता है॥ १३॥

अहो, महामोहकी महिमा है, जिसने इस संसारको आच्छादित कर रखा है। शरीरके अपने दोषको देखते हुए भी मनुष्य शीघ्र विरक्त नहीं होता है। जो मनुष्य अपने शरीरकी दुर्गन्धिसे विरक्त नहीं होता, उसे वैराग्यका कौन-सा कारण बताया जा सकता है?॥ १४-१५॥

इस जगत्‌में सभीका शरीर अपवित्र है; क्योंकि उसके मलिन अवयवोंके स्पर्शसे पवित्र वस्तु भी अपवित्र हो जाती है। केवल इसके गन्धके लेपको दूर करनेके लिये देहशुद्धिकी विधि कही गयी है। गन्ध तथा लेपके दूर हो जानेसे शुद्धि हो जाती है, इसीलिये शुद्ध पदार्थके स्पर्श होनेसे शरीर शुद्ध होता है॥ १६-१७॥

गंगाके सम्पूर्ण जलसे एवं पर्वतके समान मिट्टीके ढेरसे भले ही कोई मरणपर्यन्त शुद्धि करता रहे, किंतु भावदुष्ट होनेपर वह शुद्ध नहीं होता है॥ १८॥

दुष्टात्मा तीर्थस्नानोंसे अथवा तपोंसे कदापि शुद्ध नहीं होता है। क्या तीर्थमें धोयी गयी कुत्तेकी खाल कभी शुद्ध हो सकती है?॥ १९॥

दूषित मनोभाववाला [शुद्ध होनेके लिये] भले ही अग्निमें प्रवेश करे तो उसका शरीर भस्म अवश्य हो जाता है, किंतु उसे स्वर्ग या अपवर्ग कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। भावदुष्ट मनुष्य भले ही सम्पूर्ण गंगाजलसे तथा पर्वतके बराबर मिट्टीसे भलीभाँति जन्मभर स्नान करता रहे, फिर भी शुद्ध नहीं होता—ऐसा हमलोग कहते हैं॥ २०-२१॥

स्वभावदुष्ट व्यक्ति घी अथवा तेलसे विधिपूर्वक

प्रज्वलित की गयी, दक्षिणावर्त ज्वालाओंवाली प्रशस्त अग्निमें प्रविष्ट होकर भले ही भस्म हो जाय, किंतु उसे धर्म अथवा किसी अन्य फलकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। गंगा आदि तीर्थोंमें मछलियाँ तथा देवालयोंमें पक्षी नित्य निवास करते हैं, किंतु वे भावहीन होनेके कारण फल नहीं पाते, उसी प्रकार भावदुष्टको तीर्थस्नान एवं दानसे कोई फल प्राप्त नहीं होता है॥ २२-२३॥

सभी प्रकारके कर्मोंमें, भावशुद्धिको महान् शौच कहा गया है; क्योंकि कान्ताका आलिंगन अन्य भावसे किया जाता है और पुत्रीका आलिंगन अन्य भावसे किया जाता है। अभिन्न अर्थात् समान रूपवाली वस्तुओंमें भी मनके भेदके कारण भावभेद हो जाता है। स्त्री [अपने] पतिमें अन्य भाव रखती है और पुत्रके प्रति अन्य भाव रखती है॥ २४-२५॥

इस भावकी अपार महिमाको पूर्णरूपसे देखिये, स्त्रीसे आलिंगित होनेपर भी भावहीन स्त्रीके प्रति उसकी कामना नहीं होती। यदि चित्तमें काम, क्रोध एवं लोभ— इन तीनोंकी चिन्ता विद्यमान रहे, तो अनेक प्रकारके अन्नादि तथा स्वादिष्ट भोज्य पदार्थोंको मनुष्य [रुचिपूर्वक] नहीं खा सकता है॥ २६-२७॥

भावना करनेसे ही मनुष्य बन्धनमें पड़ता है और उसमें भाव न रहनेसे उससे छुटकारा भी प्राप्त हो जाता है। भावसे शुद्ध आत्मावाला ही स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करता है। एकमात्र भावसे शुद्ध आत्मावाला जलता हुआ, होम करता हुआ तथा स्तुति करता हुआ यदि मर भी जाय तो उसे शीघ्रतासे ज्ञानप्राप्तिके पश्चात् याज्ञिकोंको मिलनेवाले लोक प्राप्त होते हैं॥ २८-२९॥

ज्ञानरूपी निर्मल जलसे और वैराग्यरूपी मृत्तिकासे मनुष्योंकी अविद्या रागरूपी मल-मूत्रके लेपकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। यह शरीर तो स्वभावसे ही अपवित्र कहा गया है। जिसमें केवल त्वचा ही सार होती है, ऐसे केलेके वृक्षकी भाँति यह निःसार है॥ ३०-३१॥

जो बुद्धिमान् पुरुष देहको इस प्रकारका दोषयुक्त जानकर विरक्त हो जाता है, वह शरीरके भोगोंसे उत्पन्न होनेवाले भावसे उपराम हुए चित्तवाला एवं निर्मल बुद्धिसे युक्त हो जाता है॥ ३२॥

वह संसारसे पार हो जाता है और जीवन्मुक्त हो जाता है, किंतु जिसे संसारकी असारताका ज्ञान नहीं होता, वह केलेके खम्भेके समान [भंगुर संसारको नित्य मानकर] इसे दृढ़तासे पकड़े रहता है॥ ३३॥

[हे व्यास!] इस प्रकार मनुष्योंके अज्ञानदोष तथा नाना प्रकारके कर्मोंके कारण होनेवाले उनके इस महाकष्टदायक जन्म-दुःखका वर्णन मैंने कर दिया॥ ३४॥

जो करोड़ों ग्रन्थोंमें कहा गया है, उसे मैं आधे श्लोकमें कहता हूँ। 'यह मेरा है' यह परम दुःख है और 'यह मेरा नहीं है'—यह परम सुख है। ममतासे रहित बहुत-से राजा यहाँसे परलोक चले गये, किंतु ममतावश लाखों लोग इसमें बँधे रह गये॥ ३५-३६॥

गर्भमें स्थित जीवकी जो स्मृति थी, वह [जन्म लेते समय] योनियन्त्रके निपीडनके कारण मूर्च्छित कर देनेवाले दुःखसे नष्ट हो जाती है॥ ३७॥

बाहरी वायुके स्पर्शसे अथवा चित्तके विकल होनेसे उसे घोर ज्वर हो जाता है। उस महाज्वरसे उसे सम्मोह उत्पन्न होता है और पुनः शीघ्र ही उस सम्मूढ़की स्मृतिका नाश हो जाता है। इसके बाद स्मृतिके नष्ट होते ही उसे अपने पूर्व कर्मोंका स्मरण नहीं रह जाता है और उस जीवको शीघ्र ही इसी जन्मसे अनुराग हो जाता है॥ ३८—४०॥

अनुरागयुक्त वह मूढ़ जीव शुभ कार्यमें प्रवृत्त नहीं होता है, तब वह अपनेको, परायेको तथा परमेश्वरको भी जान नहीं पाता है। हे मुनिश्रेष्ठ! कानके होनेपर भी वह परम कल्याणकी बात नहीं सुनता और आँखोंमें देखनेकी शक्ति होनेपर भी अपना परम कल्याण नहीं देखता है॥ ४१-४२॥

वह समतल मार्गमें शनैः-शनैः चलता हुआ भी पद-पदपर फिसलता रहता है और विद्वानोंके द्वारा समझाया जानेपर तथा बुद्धिके रहनेपर भी समझ नहीं पाता है। गर्भवासके समय स्मरण किये गये पापोंसे बुद्धिको हटाकर अर्थात् जन्म-मरणादिके कारणभूत असत्कर्मोंको भूलकर [सांसारिक सुखोंके] लोभवश विषयोंमें आबद्ध हुआ मनुष्य संसारमें आकर पुनः

गर्भक्लेश प्राप्त करता है॥ ४३-४४॥

इस प्रकार शिवजीने तपस्याका निरूपण करनेके लिये स्वर्ग एवं मोक्षके साधनभूत इस महान् तथा परम दिव्य शास्त्रको कहा है॥ ४५॥

ये [संसारी] लोग सभी प्रकारके मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले इस शिवज्ञानके रहते हुए भी अपना कल्याण नहीं कर पाते, यह तो महान् आश्चर्य है!॥ ४६॥

बाल्यावस्थामें इन्द्रियोंकी शक्ति प्रकट न होनेसे बहुत कष्ट उठाना पड़ता है, क्योंकि चाहते हुए भी वह कुछ कहनेमें तथा प्रतिक्रिया करनेमें समर्थ नहीं होता है। उस समय दाँतोंके निकलते समय उसे बहुत कष्ट होता है और थोड़ी-बहुत व्याधिसे अनेक प्रकारके बालरोगोंसे तथा बालग्रहोंसे भी पीड़ा होती है॥ ४७-४८॥

बालक कभी भूख-प्याससे व्याकुल रहता है, कभी रोता रहता है और अज्ञानवश मल-मूत्र आदिका भक्षण भी करता रहता है॥ ४९॥

कुमारावस्थामें कानोंकी पीड़ा एवं माता-पिताद्वारा अक्षराभ्यास-अध्ययनादि साधनोंमें लगाये जानेके कारण उसे अनेक प्रकारका कष्ट होता है। बाल्यकालके दु:खको जानकर एवं उसे देखकर भी वह मूढ़बुद्धि अपना कल्याण नहीं करता, यह तो महान् आश्चर्य है!॥ ५०-५१॥

यौवनावस्थामें इन्द्रियोंके सुखोंको भोगनेकी इच्छाके कारण तथा कामरोगसे पीड़ित होनेके कारण और बादमें उसके निरन्तर प्राप्त न होनेपर सुख कहाँ?॥ ५२॥

ईर्ष्या, मोह आदि दोषोंसे रँगे हुए चित्तको तो क्लेश होता ही है, पर इन दोषोंका शमन भी बिना कष्टके नहीं हो सकता। जिस प्रकार [नेत्रव्याधिके कारण] लाल हुए नेत्रकी उपेक्षा तो यावज्जीवन कष्ट देती ही है, पर उपचार भी बिना कष्ट सहे हो नहीं सकता (अत: उचित तो यही है कि इन मनोविकारोंको मनमें आने ही न दिया जाय)॥ ५३॥

कामाग्निसे सन्तप्त रहनेके कारण उस कामी पुरुषको रातमें निद्रा नहीं आती और दिनमें अर्थोपार्जनकी चिन्ताके कारण उसे सुख कहाँ? स्त्रीमें आसक्त चित्तवाले पुरुषके जो वीर्यबिन्दु हैं, वे सुखके हेतु नहीं माने जा सकते, वे तो पसीनेकी बूँदोंके समान हैं॥ ५४-५५॥

कीड़ोंसे काटे जाते हुए कुष्ठी वानरको खुजलीके सन्ताप (जलन)-से जो सुख होता है, वही स्त्रियोंमें व्यक्तिको भी होता है, ऐसा विद्वज्जन कहते हैं॥ ५६॥

पके हुए फोड़ेसे मवादके निकल जानेपर जैसा सुख माना जाता है, उसी प्रकारका सुख विषयोपभोगमें मानना चाहिये, उनमें उससे अधिक सुख नहीं है॥ ५७॥

विष्ठा और मूत्रके त्यागसे जैसा सुख होता है, वैसा ही सुख स्त्रीप्रसंगमें जानना चाहिये, किंतु मूर्खोंने उसकी दूसरी ही कल्पना की है। अवस्तुस्वरूप तथा समस्त दोषोंकी आश्रयभूता उन नारियोंमें अणुमात्र भी सुख नहीं है—ऐसा पंचचूडाने कहा था॥ ५८-५९॥

सम्मान, तिरस्कार, वियोग, अपने प्रियके संयोग तथा बुढ़ापेसे यौवन ग्रस्त है, अत: बाधारहित सुख कहाँ? झुर्रियों, श्वेत केशों तथा गंजापनसे युक्त, शिथिल और बुढ़ापेसे शरीर जर्जर हो जानेपर सभी कार्योंमें अक्षम हो जाता है॥ ६०-६१॥

स्त्री-पुरुषका मनोहर यौवन जो पहले एक-दूसरेको प्रिय था, वही बुढ़ापेसे ग्रस्त होनेपर इन दोनोंको आपसमें भी प्रिय नहीं रह जाता है॥ ६२॥

बुढ़ापेके कारण परिवर्तित अपने शरीरको देखता हुआ भी [जो] नूतनके समान उससे अनुराग रखता है, उससे अधिक अज्ञानी और कौन होगा? बुढ़ापेसे ग्रस्त हुआ मनुष्य असमर्थताके कारण पुत्री, पुत्र, भाई-बन्धु तथा कठोर स्वभाववाले भृत्योंसे तिरस्कृत किया जाता है॥ ६३-६४॥

बुढ़ापेसे ग्रस्त हुआ मनुष्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको सिद्ध करनेमें असमर्थ रहता है, अत: यौवनावस्थामें ही धर्माचरण कर लेना चाहिये॥ ६५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें संसारचिकित्सामें देहाशुचित्वबाल्याद्यवस्थादु:खवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

नारदके प्रति पंचचूडा अप्सराके द्वारा स्त्रीके स्वभाव*का वर्णन

व्यासजी बोले—हे मुने! यदि आप मुझसे सन्तुष्ट हैं तो स्त्रियोंकी जिस दुष्प्रवृत्तिको पंचचूडाने कहा है, उसे संक्षेपमें मुझसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—हे विप्र! सुनिये, मैं स्त्रियोंके स्वभावका यथार्थरूपमें वर्णन कर रहा हूँ, जिसके सुनने-मात्रसे उत्तम वैराग्य हो जाता है॥ २॥

हे मुने! क्षुद्रचित्तवाली स्त्रियाँ सदा दोषोंकी जड़ होती हैं। इसलिये सावधान मुमुक्षुओंको उनमें आसक्ति नहीं करनी चाहिये॥ ३॥

इस विषयमें व्यभिचारिणी पंचचूडाके साथ नारदजीके संवादरूप इस प्राचीन इतिहासको लोग उदाहृत करते हैं। पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंमें विचरण करते हुए बुद्धिमान् देवर्षि नारदने सुन्दरी बाला पंचचूडा नामक अप्सराको देखा॥ ४-५॥

मुनिश्रेष्ठ नारदने सुन्दर भौंहोंवाली उस अप्सरासे पूछा—हे सुमध्यमे! मेरे मनमें कुछ सन्देह है, तुम उसे बताओ। इस प्रकार पूछे जानेपर उस श्रेष्ठ अप्सराने विप्र नारदजीसे कहा—यदि आप मुझे उसके योग्य समझते हों और मैं कहनेमें समर्थ हुई तो आपके प्रश्नोंका उत्तर दूँगी॥ ६-७॥

नारदजी बोले—हे भद्रे! मैं तुम्हें किसी ऐसे कार्यमें प्रवृत्त नहीं करूँगा, जो तुम्हारी जानकारीसे बाहर हो। हे सुमध्यमे! मैं तुमसे स्त्रियोंके स्वभावको सुनना चाहता हूँ॥ ८॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! देवर्षिका यह वचन सुनकर श्रेष्ठ अप्सरा मुनीश्वर देवर्षिसे कहने लगी— ॥ ९॥

पंचचूडा बोली—हे मुने! कोई स्त्री सती नारीकी निन्दा नहीं कर सकती है, जो स्त्रियाँ स्वभावसे जिस प्रकारकी होती हैं, उनके विषयमें आप जानते ही हैं॥ १०॥

अतः हे मुने! मुझे इस प्रकारके प्रश्नके समाधानमें नियुक्त मत कीजिये। ऐसा कहकर वह श्रेष्ठ अप्सरा पंचचूडा मौन हो गयी। तब उसका उत्तम वचन सुनकर देवर्षियोंमें श्रेष्ठ नारदजी लोगोंके हितकी कामनासे उससे पुनः कहने लगे— ॥ ११-१२॥

नारदजी बोले—झूठ बोलनेमें दोष होता है, सत्य बोलनेमें दोष नहीं है—ऐसा तुम सत्य जानो, अतः हे सुमध्यमे! तुम उसे बताओ॥ १३॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार बतानेके लिये बलात् प्रेरित किये जानेपर मनोहर हास्यवाली वह निश्चयपूर्वक स्त्रियोंके स्वाभाविक तथा सत्य दोषोंको कहने लगी॥ १४॥

पंचचूडा बोली—हे नारद! कुलीन, पतिमती एवं सुन्दर रूपवाली स्त्रियाँ [भी कभी-कभी] मर्यादामें नहीं रहती हैं, यही दोष स्त्रियोंमें है। इस प्रकारकी स्त्रियाँ अपने पतिके परोक्षमें बिना जाने हुए भी धनवान्, रूपवान् एवं अपनेको चाहनेवाले पुरुषोंकी कामना करती हैं और किसीकी प्रतीक्षा नहीं करतीं॥ १५—१७॥

हे प्रभो! हम-जैसी स्त्रियोंका यह एक बड़ा बुरा धर्म है, जो कि हम लज्जा छोड़कर अन्य पुरुषोंका भी सेवन करती हैं। जो मनुष्य स्त्रीको चाहता है, उसके समीप जाता है एवं थोड़ा भी उसकी सेवा करता है, उसे स्त्रियाँ चाहने लगती हैं॥ १८-१९॥

बिना मर्यादावाली स्त्रियाँ मनुष्योंके कामलोलुप न रहनेसे एवं पति आदिके भयसे ही अपने पतियोंकी मर्यादामें रहती हैं॥ २०॥

इनके लिये अमान्य कोई नहीं है और न तो इनके लिये अवस्थाका ही कोई निश्चय है, ये सुरूप अथवा कुरूप किसी भी प्रकारके पुरुषका सेवन कर लेती हैं। ऐसी स्त्रियाँ न भयसे, न आक्रोशसे, न

* पंचचूडाके द्वारा किया गया यह स्वभाववर्णन चंचल प्रवृत्तिवाली स्त्रियोंमें ही घटित होता है। साध्वी स्त्रियोंकी तो पुराणोंमें बड़ी महिमा बतायी गयी है।

धनके निमित्त और न जातिकुलके सम्बन्धसे ही पतियोंके वशमें रहती हैं॥ २१-२२॥

ऐसी स्त्रियाँ युवावस्थामें इच्छानुसार वस्त्र-आभूषण प्राप्त करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्रियोंके साथकी अभिलाषा करती हैं॥ २३॥

जो प्रिय स्त्रियाँ सर्वदा बहुत सम्मानित होकर रखी जाती हैं, वे भी कुबड़े, अन्धे, मूर्ख, बौने तथा लँगड़े मनुष्योंपर आसक्त हो जाती हैं। हे देवर्षे! हे महामुने! संसारमें अन्य भी जो निन्दित पुरुष हैं, उनमें कोई भी ऐसी स्त्रियोंके लिये अगम्य नहीं है॥ २४-२५॥

हे ब्रह्मन्! स्त्रियाँ यदि किसी प्रकार पुरुषोंको प्राप्त नहीं कर पातीं तो वे आपसमें भी आसक्त हो जाती हैं, परंतु अपने पतियोंके वशमें नहीं रहतीं॥ २६॥

पुरुषोंके प्राप्त न होनेसे, परिजनोंके भयसे और वध तथा बन्धनके भयसे ही वे स्त्रियाँ कामनारहित हुआ करती हैं। चंचल स्वभाववाली तथा बुरी चेष्टाओंवाली स्त्रियाँ भावुक होनेके कारण बुद्धिमान् पुरुषके द्वारा भी दुर्ग्राह्य ही होती हैं, वे तो केवल संयोगसे ही अनुकूल हो सकती हैं॥ २७-२८॥

हे मुने! जिस प्रकार आग काष्ठोंसे तृप्त नहीं होती, समुद्र नदियोंसे तृप्त नहीं होता तथा काल सभी जीवोंसे भी तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार असती स्त्रियाँ भी पुरुषोंसे तृप्त नहीं होतीं। हे देवर्षे! यह एक विशेष बात है कि पुरुषोंका अवलोकन करनेपर असती स्त्रियोंके अवयव विह्वल हो जाते हैं॥ २९-३०॥

सुगन्धका लेप किये हुए एवं अच्छी तरह स्नान किये हुए निर्मल पुरुषको देखकर पानीसे भरी मशकके समान स्त्रियोंमें आंगिक विकार परिलक्षित होने लगते हैं। दुष्ट स्त्रियाँ तो इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले, मान देनेवाले, सान्त्वना प्रदान करनेवाले तथा रक्षा करनेवाले प्रिय स्वामीके भी वशमें नहीं रहती हैं॥ ३१-३२॥

वे न सम्पूर्ण कामोंके भोगसे और न तो अलंकार तथा धनके संचयसे वैसा सुख मानती हैं, जैसा शृंगारिकताके परिग्रहसे मानती हैं। काल, कष्ट देनेवाला मृत्यु, पाताल, बड़वानल, छूरेकी धार, विष, सर्प एवं अग्नि—ये सभी एक ओर तथा स्त्रियाँ एक ओर हैं, अर्थात् इन काल आदिका सामर्थ्य सम्मिलित रूपसे ही स्त्रीसामर्थ्यके तुल्य हो सकता है॥ ३३-३४॥

हे नारद! ब्रह्माने जहाँसे पंच महाभूतों तथा जहाँसे लोकका निर्माण किया एवं जहाँसे स्त्री-पुरुषोंका निर्माण किया, वहींसे स्त्रियोंमें सर्वदा दोषका विधान किया है अर्थात् स्त्रियोंके ये दोष स्वाभाविक हैं॥ ३५॥

सनत्कुमार बोले—उसका वचन सुनकर नारदजी प्रसन्नचित्त हो गये और उसकी बात सत्य मानकर स्त्रियोंसे विरक्त हो गये। हे व्यास! इस प्रकार मैंने पंचचूडाद्वारा कहे गये स्त्रियोंके स्वभावको आदरपूर्वक आपसे कह दिया, जो वैराग्यका कारण है, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३६-३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें स्त्रीस्वभाववर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

मृत्युकाल निकट आनेके लक्षण

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे मुने! मैंने आपसे स्त्रियोंके स्वभावका वर्णन सुना, अब आप प्रेमपूर्वक मुझसे काल-ज्ञानका वर्णन कीजिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! पूर्वकालमें अनेक प्रकारकी दिव्य कथाका श्रवण करके प्रसन्न हुई पार्वतीने भी शंकरको प्रणामकर उनसे यही पूछा था॥ २॥

पार्वती बोलीं—हे भगवन्! हे देव! विधि-विधानसे जिन मन्त्रोंके द्वारा आपकी पूजा होती है, वह सब आपकी कृपासे मैंने जान लिया, किंतु हे प्रभो! मुझे कालज्ञानके प्रति आज भी एक संशय बना हुआ है, हे देव! मृत्युका चिह्न तथा आयुका प्रमाण क्या है? हे नाथ! यदि मैं आपकी प्रिया हूँ

तो यह सब मुझसे कहिये। तब उन देवीके ऐसा पूछनेपर महेश्वर कहने लगे॥ ३—५॥



ईश्वर बोले—हे प्रिये! हे देवेशि! मैं सर्वश्रेष्ठ शास्त्रको तुमसे सत्य-सत्य कहूँगा, जिस शास्त्रके द्वारा मनुष्योंको कालका ज्ञान हो जाता है। हे उमे! भीतरी एवं बाहरी, स्थूल एवं सूक्ष्म चिह्नोंद्वारा जिस प्रकार उसकी शेष आयुके दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन एवं वर्षका ज्ञान हो जाता है; वह सब मैं लोककल्याण एवं वैराग्यके लिये तुमसे तत्त्वपूर्वक कहूँगा। हे सुन्दरि! अब तुम श्रवण करो॥ ६—८॥

हे प्रिये! यदि मनुष्यका शरीर सभी ओरसे अचानक पीला पड़ जाय और ऊपरसे लाल दिखायी पड़ने लगे तो छः मासके भीतर मृत्युको जानना चाहिये॥ ९॥

हे प्रिये! जब मुख, कान, आँख एवं जिह्वाका [अचानक] स्तम्भन हो जाय तो भी छः मासके भीतर मृत्युको जान लेना चाहिये॥ १०॥

हे भद्रे! यदि पीछेसे आती हुई भयावह ध्वनि शीघ्र न सुनायी पड़े, तो भी कालवेत्ताओंको छः मासके भीतर मृत्यु जान लेना चाहिये॥ ११॥

सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्निके रहनेपर भी यदि प्रकाश न दिखायी पड़े और सब कुछ काला दिखायी पड़े तो उसका जीवन छः मासतक ही रहता है॥ १२॥

हे देवि! हे प्रिये! जब बायाँ हाथ एक सप्ताहतक फड़कता रहे, तब उसका जीवन केवल एक महीनेभर रहता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १३॥

जब देहमें टूटन हो एवं तालु सूख जाय, तब उसका जीवन एक मासतक रहता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १४॥

त्रिदोष हो जानेपर जिसकी नासिका बहती रहे, उसका जीवन एक पक्षभर रहता है और जिसका कण्ठ एवं मुख सूखने लगे, वह छः मासमें मृत्युको प्राप्त हो जाता है॥ १५॥

हे भामिनि! जिसकी जीभ मोटी हो जाय और दाँतोंसे लार बहने लगे तो उन चिह्नोंसे जान लेना चाहिये कि छः मासमें उसकी मृत्यु हो जायगी॥ १६॥

हे वरवर्णिनि! जब मनुष्य जल, तेल, घी तथा दर्पणमें अपनी छाया न देख सके अथवा विकृत छाया दिखायी पड़े तो कालचक्रके जाननेवालोंको उसे छः मासपर्यन्त आयुवाला जानना चाहिये। हे देवेशि! अब अन्य चिह्नोंको सुनिये, जिससे मृत्युका ज्ञान हो जाता है। जब मनुष्य अपनी छायाको सिरविहीन देखे अथवा [अपनेको] छायासे रहित देखे, तब वह एक मास भी जीवित नहीं रहता है॥ १७—१९॥

हे पार्वति! हे भद्रे! मैंने इन अंगसम्बन्धी मृत्युचिह्नोंका वर्णन किया। हे भद्रे! अब मैं बाहरी चिह्नोंको कह रहा हूँ, तुम सुनो॥ २०॥

हे देवि! जब सूर्यमण्डल अथवा चन्द्रमण्डल किरणोंसे रहित प्रतीत हो अथवा लाल वर्णवाला दिखायी पड़े, तब वह [व्यक्ति] आधे महीनेमें मर जाता है॥ २१॥

जो [प्राणी] अरुन्धती तारा, महायान तथा चन्द्रमाको लक्षणोंसे हीन देखे या कि इनको देख न सके और तारोंको भी न देख सके तो वह एक मासपर्यन्त जीवित रहता है॥ २२॥

ग्रहोंके दिखायी पड़नेपर भी यदि दिशाभ्रम हो जाय अथवा उतथ्य [नामक तारा], ध्रुव एवं सूर्यमण्डलको न

देख सके तो उसकी मृत्यु छः महीनेके भीतर हो जाती है। यदि [व्यक्ति] रात्रिमें इन्द्रधनुष एवं मध्याह्नमें उल्कापात देखे अथवा उसे काक और गीध घेरने लगें, तो छः महीनेके भीतर मर जायगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २३-२४॥

यदि [व्यक्तिको] आकाशमण्डलमें स्वर्गमार्ग [छायापथ] और सप्तर्षिगण न दिखायी पड़ें, तो कालवेत्ता पुरुष उसे छः मासकी आयुवाला समझें॥ २५॥

यदि वह अचानक सूर्य अथवा चन्द्रमाको राहुके द्वारा ग्रस्त अथवा दिशाओंको घूमता हुआ देखे तो वह अवश्य ही छः मासके भीतर मर जाता है॥ २६॥

यदि मनुष्यको अचानक नीले रंगकी मक्खियाँ घेर लें तो उसकी आयु निश्चितरूपसे एक मास जाननी चाहिये। यदि गीध, कौआ अथवा कबूतर सिरपर आकर बैठ जाय तो वह प्राणी शीघ्र ही एक मासके भीतर मर जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७-२८॥

इस प्रकार मनुष्योंके हितके लिये बाहरी अरिष्ट-लक्षणोंको कह दिया, अब अन्य लक्षण भी संक्षेपमें कहता हूँ। हे सुन्दरि! जिस प्रकार मनुष्यको अपने बायें एवं दाहिने हाथमें प्रत्यक्ष आता हुआ काल दिखायी पड़ सके, वे सब लक्षण कहे जा रहे हैं॥ २९-३०॥

हे सुरसुन्दरि! इस प्रकार वे दोनों पक्ष स्थित हैं, ऐसा संक्षेपमें जानना चाहिये। उस समय पवित्र होकर शिवनामस्मरण करते हुए जितेन्द्रिय व्यक्ति भलीभाँति स्नान करके दोनों हाथोंको दूधसे धोकर आलतासे रगड़े, पुनः हाथोंमें गन्ध एवं पुष्प लेकर शुभाशुभका विचार करे॥ ३१-३२॥

हे प्रिये! कनिष्ठिकासे लेकर अंगुष्ठपर्यन्त दोनों हाथोंके तीन पोरोंपर क्रमसे प्रतिपदा आदिका न्यास करके प्रतिपदा आदि तिथियोंसे दोनों हाथोंको सम्पुटितकर पूर्वाभिमुख हो एक सौ आठ बार नवाक्षर मन्त्रका जप करे। इसके बाद यत्नपूर्वक दोनों हाथोंके प्रत्येक पर्वको देखे। हे प्रिये! जिस पर्वपर भौंरेके समान काली रेखा दिखायी पड़े, कृष्णपक्ष अथवा शुक्लपक्षमें उसी तिथिको मृत्यु जानना चाहिये॥ ३३—३६॥

हे प्रिये! अब मैं नादसे प्रकट होनेवाले काल-लक्षणको संक्षेपमें कहूँगा, उसका श्रवण करो, इसमें श्वासके गमन-आगमनको जानकर कर्म करना चाहिये॥ ३७॥

हे सुश्रोणि! उस नादके दैनन्दिन संचारको जानकर यत्नसे अपना भी ज्ञान कर लेना चाहिये। क्षण, त्रुटि, लव, निमेष, काष्ठा, मुहूर्त, दिन-रात, पक्ष, मास, ऋतु, वत्सर, अब्द, युग, कल्प एवं महाकल्प—यही काल कहा जाता है, कालस्वरूप सदाशिव इसी परिपाटीसे संहरण करते हैं। वाम, दक्षिण एवं मध्य—ये संचारके तीन मार्ग कहे गये हैं॥ ३८—४०॥

पाँच दिनसे लेकर पच्चीस दिनपर्यन्त वामाचार गतिमें नाद होता है। यह नादप्रमाण मैंने आपसे कह दिया। हे वरवर्णिनि! कालवेत्ताओंको भूत, रन्ध्र, दिशा, ध्वजारूप नादप्रमाण वामाचार गतिमें जानना चाहिये॥ ४१-४२॥

हे भामिनि! यदि उसमें ऋतुके विकारभूत गुण प्रतीत हों, तो उसे दक्षिण प्रमाणवाला नाद कहा गया है—ऐसा प्राणवेत्ताओंको जानना चाहिये और जब भूतसंख्यक इडादि नाड़ियाँ प्राणोंका वहन करती हैं, तो वर्षके भीतर मृत्यु हो जाती है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३-४४॥

नाड़ियोंके दस दिनपर्यन्त चलनेसे वह वर्षभर जीता है और पन्द्रह दिनोंतक चलनेसे वह एक वर्षके भीतर ही मर जाता है। बीस दिनतक प्रवाहित होते रहनेसे छः महीनेतक जीवित समझना चाहिये। यदि बायीं नाड़ी पन्द्रह दिनोंतक चलती रहे तो उस मरणोन्मुख व्यक्तिका जीवन तीन महीनेतक शेष रहता है। छब्बीस दिनतक प्रवाहित रहनेसे उसकी आयु दो मास कही गयी है। यदि नाड़ी सत्ताईस दिनतक बायीं ओर अविश्रान्त चलती रहे तो उसका जीवन एक मास शेष कहा गया है॥ ४५—४८॥

इस प्रकार वाम वायुके प्रमाणसे नादका प्रमाण जानना चाहिये। दाहिनी ओर लगातार चलते रहनेसे चार

दिनतक जीवन शेष रहता है। हे देवि! नाड़ियाँ चार स्थानोंमें स्थित रहती हैं, सब मिलाकर ये सोलह नाड़ियाँ कही गयी हैं। अब मैं उनका ठीक-ठीक प्रमाण कहूँगा॥ ४९-५०॥

छः दिनोंसे लेकर संख्याकी समाप्तितक अर्थात् नौ दिनतक वाम नासारन्ध्रमें प्राणवायुकी स्थितिका शास्त्रविधिसे विचार किया जाता है॥ ५१॥

यदि छः दिनतक नाद प्राणवायुपर चढ़ा रहे तो वह मनुष्य दो वर्ष आठ महीने आठ दिन जीता है—ऐसा जानना चाहिये। यदि सत्रह दिनतक प्राण आरूढ़ रहे तो वह एक वर्ष सात महीने छः दिनतक जीता है, इसमें संशय नहीं है। आठ दिनतक निरन्तर प्राणवायुके चलनेसे वह दो वर्ष चार महीने चौबीस दिनतक जीता है—ऐसा जानना चाहिये॥ ५२—५४॥

जब नौ दिन प्राणवायु चले तो सात महीने बारह दिनतक आयु कही गयी है। जो प्राण पहलेके समान कहे गये हैं, उनके अन्तर्गत उतने महीने और उतने दिनोंकी संख्या भी जान लेनी चाहिये॥ ५५-५६॥

ग्यारह दिन लगातार प्राणवायु चलते रहनेपर वह एक वर्ष नौ महीने आठ दिनतक जीवित रहता है। बारह दिनतक प्रवाहित रहनेसे वह एक वर्ष सात महीने छः दिनतक जीता है—ऐसा जानना चाहिये॥ ५७-५८॥

यदि तेरह दिनतक नाड़ी चले तो [व्यक्तिकी आयु] एक वर्ष चार महीने चौबीस दिन [शेष] जानना चाहिये, इसमें संशय नहीं है। यदि प्राणवाही नाड़ियाँ चौदह दिन लगातार बायीं ओरसे चलें तो उसका जीवन एक वर्ष छः मास चौबीस दिनपर्यन्त शेष जानना चाहिये, इसमें संशय नहीं है॥ ५९—६१॥

पन्द्रह दिनतक प्रवाहित रहनेसे वह नौ महीने चौबीस दिनतक जीवित रहता है—ऐसा कालवेत्ताओंने कहा है। सोलह दिनतक नाड़ीप्रवाहसे वह दस महीने चौबीस दिन जीवित रहता है—ऐसा कालविदोंने कहा है॥ ६२-६३॥

हे साधकेश्वरि! सत्रह दिनतक प्रवाहसे नौ महीने अठारह दिनतक जीवन शेष कहा गया है॥ ६४॥

हे देवि! जब प्राणवायु बायीं ओर अठारह दिनोंतक चलता रहे तो आठ महीने बारह दिन अथवा चौबीस दिनतक जीवन शेष कहा गया है—ऐसा निश्चय समझिये॥ ६५१/२॥

हे देवि! जब तेईस दिनतक प्राण प्रवाहित रहे तो चार महीने, छः दिनतक जीवन शेष कहा गया है। चौबीस दिनके प्रवाहसे वह तीन माह अठारह दिनतक जीवित रहता है। इस प्रकार मैंने प्राणवायुके संचारसे अवान्तर दिनके जीवनकालकी संख्या तुमसे कही॥ ६६—६८॥

इस प्रकार मैंने वामसंचार कह दिया, अब दक्षिण प्राणसंचारका श्रवण करो। अट्ठाईस दिनके प्रवाहसे वह पन्द्रह दिनोंतक जीता है। दस दिनके प्रवाहसे वह उतने ही [दस] दिनोंमें मर जाता है और तीस दिनके प्रवाहसे पाँच दिनोंमें मर जाता है। हे देवि! जब इकतीस दिन लगातार प्राणवायु प्रवाहित होता रहे, तब उस व्यक्तिका जीवन तीन दिन रहता है, इसमें सन्देह नहीं है। जब सूर्य बत्तीस प्राणसंख्याका वहन करता है, तब उसका जीवन दो दिनतक रहता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६९—७२॥

मैंने दक्षिण प्राणवायुका वर्णन किया, अब तुमसे मध्यस्थ प्राणका वर्णन करता हूँ। जब वायुका प्रवाह मुखमण्डलमें एक ओर हो, तब उस दौड़ते हुए प्रवाहसे वह एक दिन जीवित रहता है। इस प्रकार प्राचीन विद्वानोंने मरणोन्मुख व्यक्तिके कालचक्रका वर्णन किया है॥ ७३-७४॥

हे देवि! मैंने लोकहितके निमित्त तुमसे समाप्त आयुवाले व्यक्तिके कालचक्रका वर्णन कर दिया। अब और क्या सुनना चाहती हो?॥ ७५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कालज्ञानवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

योगियोंद्वारा कालकी गतिको टालनेका वर्णन

देवी बोलीं—हे देव! आपने यथार्थरूपसे कालज्ञानका वर्णन किया, योगिजन जिस प्रकार कालका वंचन करते हैं, आप उसे विधिपूर्वक कहिये। काल सभी प्राणियोंके सन्निकट घूमता है, किंतु योगी आये हुए कालको भी वंचित कर देता है, जिससे उसकी मृत्यु नहीं होती है। हे देव! मेरे ऊपर कृपा करके आप इसका वर्णन करें। हे सर्वसुखद! योगियोंके हितके लिये इसका वर्णन करें॥ १—३॥

शिवजी बोले—हे देवि! हे शिवे! तुमने मुझसे जो पूछा है, उसे मैं सभी मनुष्योंके हितार्थ संक्षेपमें कहूँगा, तुम सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इनका समायोग ही पांचभौतिक शरीर है॥ ४-५॥

आकाशतत्त्व सर्वव्यापी है तथा सभीमें सर्वत्र स्थित है। आकाशमें ही सभी लय हो जाते हैं एवं पुनः उसीसे प्रकट भी हो जाते हैं। हे सुन्दरि! आकाशसे वियुक्त हो जानेपर पंचभूत अपने-अपने स्थानमें मिल जाते हैं, उस सन्निपातकी स्थिरता नहीं है॥ ६-७॥

सभी ज्ञानी लोग तपस्या एवं मन्त्रके बलसे यह सब भलीभाँति जान लेते हैं। इसमें संशय नहीं है॥ ८॥

देवी बोलीं—आकाशतत्त्व उस घोररूप कालके द्वारा नष्ट हो जाता है; क्योंकि काल कराल एवं त्रिलोकीका स्वामी है। आपने उस कालको भी जला दिया था, किंतु स्तोत्रोंद्वारा स्तुति किये जानेपर आप उसपर सन्तुष्ट हो गये और उसने पुनः अपना स्वरूप प्राप्त कर लिया॥ ९॥

आपने वार्तालापके माध्यमसे उससे कहा कि तुम लोगोंसे अदृश्य रहकर विचरण करोगे। उस समय आपने उसे महान् प्रभाववाला देखा और आप प्रभुके वरके प्रभावसे वह पुनः उठ खड़ा हुआ॥ १०॥

हे महेश! क्या इस जगत्‌में कोई साधन है, जिससे काल मारा जा सके, उसे मुझको बताइये; आप योगियोंमें श्रेष्ठ, प्रभावशाली तथा स्वतन्त्र हैं और परोपकारके लिये शरीर धारण किये हुए हैं॥ ११॥

शंकरजी बोले—हे देवि! बड़े-बड़े देवताओं, दैत्यों, यक्षों, राक्षसों, सर्पों एवं मनुष्योंसे भी काल नहीं मारा जा सकता है, किंतु जो ध्यानपरायण देहधारी योगी होते हैं, वे सरलतापूर्वक कालको मार डालते हैं॥ १२॥

सनत्कुमार बोले—तीनों लोकोंके गुरु शिवकी बात सुनकर पार्वतीने हँसकर कहा—आप मुझे सच-सच बताइये कि योगी किस प्रकार इस कालको अपने वशमें कर लेते हैं? तब शिवजीने उनसे कहा—हे चन्द्रमुखी! निष्पाप तथा एकाग्रचित्त जो योगीजन हैं, वे जिस प्रकार [निमेषादि] कलाओंवाले कालरूपी सर्पको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं, उसे तुम सुनो॥ १३॥

शंकरजी बोले—हे वरारोहे! यह पंचभूतात्मक शरीर सदा उनके रूप-रसादि गुणोंसे युक्त होकर उत्पन्न होता है और पुनः यह पार्थिव शरीर उन्हींमें विलीन भी हो जाता है॥ १४॥

आकाशसे वायु उत्पन्न होता है, वायुसे तेज उत्पन्न होता है, तेजसे जल उत्पन्न होता है और जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है। ये क्रमशः पृथ्वी आदि पंचभूत एक-दूसरेमें पूर्व-पूर्वके क्रमसे विलीन होते हैं। पृथ्वी पाँच गुणोंवाली कही गयी है। जल चार गुणोंवाला, तेज तीन गुणोंवाला तथा वायु दो गुणोंवाला है। इन पृथिवी आदिमें आकाशतत्त्व एकमात्र शब्द गुणवाला कहा गया है॥ १५—१७॥

जब पंचमहाभूत शब्द, स्पर्श, रूप, रस और पाँचवाँ गन्ध—अपने-अपने इन गुणोंको त्याग देते हैं तो प्राणीकी मृत्यु हो जाती है और जब अपने-अपने गुणोंको ग्रहण करते हैं, तब उसीको जीवका प्रकट होना कहा जाता है। हे देवेशि! इस प्रकार पाँचों भूतोंको ठीक-ठीक जानो॥ १८-१९॥

अतः हे देवेशि! कालको जीतनेकी इच्छावाले योगीको यत्नपूर्वक अपने-अपने कालमें उसके अंशभूत हुए गुणोंपर विचार करना चाहिये॥ २०॥

पार्वतीजी बोलीं—हे योगवेत्ता प्रभो! योगी लोग ध्यानसे अथवा मन्त्रसे किस प्रकार कालको जीतते हैं, वह सब मुझसे कहिये?॥ २१॥

शंकरजी बोले—हे देवि! सुनो, मैं योगियोंके हितके लिये इसे कहूँगा, जिस किसीको इस उत्कृष्ट ज्ञानका उपदेश प्रदान नहीं करना चाहिये। हे भामिनि! इसका उपदेश श्रद्धालु, भक्त, बुद्धिमान्, आस्तिक, पवित्र तथा धर्मपरायण व्यक्तिको ही करना चाहिये॥ २२-२३॥

योगीको चाहिये कि उत्तम आसनपर विराजमान हो प्राणायामके द्वारा योगका अभ्यास करे, विशेषकर सब लोगोंके सो जानेपर बिना दीपके अन्धकारमें ही योगाभ्यास करना चाहिये॥ २४॥

एक मुहूर्ततक तर्जनी अँगुलीसे दोनों कान दबाकर बन्द रखे, ऐसा करनेसे [कुछ देर बाद] अग्निप्रेरित शब्द सुनायी पड़ने लगता है॥ २५॥

इससे सन्ध्याके बाद खाया हुआ अन्न क्षणभरमें पच जाता है और वह ज्वर आदि समस्त रोग-उपद्रवोंको शीघ्र नष्ट कर देता है॥ २६॥

जो योगी नित्य दो घड़ीपर्यन्त इस तरहके आकारका ध्यान करता है, वह काम तथा मृत्युको जीतकर अपनी इच्छासे इस लोकमें विचरण करता है और सर्वज्ञ तथा सर्वदर्शी होकर सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। वर्षाकालमें जिस प्रकार मेघ आकाशमें शब्द करते हैं, उसी प्रकारका यह शब्द है। उसे सुनकर योगी शीघ्र ही संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। इसके बाद वह योगियोंद्वारा प्रतिदिन [चिन्तन किया जाता हुआ शब्द] सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म होता जाता है॥ २७—२९॥

हे देवि! इस प्रकार मैंने शब्दब्रह्मके ध्यानकी यह विधि तुमसे कह दी। जिस प्रकार धानको चाहनेवाला पुआलका त्याग कर देता है, वैसे योगीको सांसारिक बन्धनका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये। इस शब्दब्रह्मको प्राप्तकर जो कोई भी लोग अन्य पदार्थोंकी इच्छा रखते हैं, वे मानो अपनी मुट्ठीसे आकाशका भेदन करना चाहते हैं और [इस अमृतोपम योगको पा करके भी] भूख-प्यासकी अपेक्षा रखते हैं॥ ३०-३१॥

[शब्दब्रह्म नामसे कहे गये] परम सुख देनेवाले, मुक्तिके कारणस्वरूप, अन्तःकरणमें स्थित, अविनाशी तथा सभी उपाधियोंसे रहित इस परब्रह्मको जानकर मनुष्य मुक्त हो जाते हैं। जो इस शब्दब्रह्मको नहीं जानते, वे कालके पाशसे मोहित होकर मृत्युके वशमें होते हैं एवं वे पापी तथा कुबुद्धि हैं। वे संसारचक्रमें तभीतक भटकते रहते हैं, जबतक उन्हें धाम (सबका आश्रय) प्राप्त नहीं हो जाता। परमतत्त्वके ज्ञात हो जानेपर मनुष्य जन्म-मृत्युरूपी बन्धनसे छूट जाते हैं॥ ३२—३४॥

योगीको चाहिये कि वह निद्रा-आलस्यरूपी महाविघ्नकारी शत्रुको यत्नपूर्वक जीतकर सुखद आसनपर बैठ करके नित्यप्रति शब्दब्रह्मका अभ्यास करे। सौ वर्षकी आयुवाला वृद्ध मनुष्य इसे प्राप्त करके जीवनपर्यन्त इसका अभ्यास करे तो उसे आरोग्यलाभ होता है। उसकी वीर्यवृद्धि होती है और वह मृत्युको जीतकर अपने शरीरको स्थिर रखता है॥ ३५-३६॥

इस प्रकारका विश्वास जब वृद्धमें देखा जाता है, तब युवकजनमें इसकी बात ही क्या? यह शब्दब्रह्म न ॐकार है, न मन्त्र है, न बीज तथा न अक्षर ही है। हे देवि! यह शब्दब्रह्म अनाहत तथा उच्चारणसे रहित होता है और यह परम कल्याणकारी है, हे प्रिये! उत्तम बुद्धिवाले यत्नपूर्वक निरन्तर इसका ध्यान करते हैं॥ ३७-३८॥

उसी अनाहत नादसे [प्रकट होनेवाले] नौ प्रकारके शब्द कहे गये हैं, जिन्हें प्राणवेत्ताओंने परिलक्षित किया है। हे देवि! उन्हें तथा नादसिद्धिको यत्नपूर्वक कहता हूँ—घोष, कांस्य, शृंग, घण्टा, वीणा, बाँसुरी, दुन्दुभि, शंखशब्द और नौवाँ मेघगर्जन—[ये अनाहतसे प्रकट होनेवाले शब्द हैं। योगी] इन नौ शब्दोंका त्यागकर तुंकारशब्दका अभ्यास करे। इस प्रकार ध्यान करनेवाला योगी पुण्यों एवं पापोंसे लिप्त नहीं होता है॥ ३९—४१॥

हे देवि! जब योगाभ्याससे युक्त योगी सुननेका यत्न करते हुए भी नहीं सुन पाये तो भी मृत्युके समीप आनेपर भी योगी रात-दिन इसी प्रकारका अभ्यास करता रहे, तब उससे सात दिनोंमें मृत्युको जीतनेवाला शब्द उत्पन्न होता है। हे देवि! वह नौ प्रकारका होता है। मैं यथार्थरूपसे उसका वर्णन करता हूँ॥ ४२-४३॥

पहला घोषात्मक नाद होता है, वह आत्माको शुद्ध करनेवाला, श्रेष्ठ, सभी प्रकारकी व्याधियोंको दूर करनेवाला, मनको वशीभूतकर अपने प्रति आकृष्ट करनेवाला तथा उत्तम होता है॥ ४४॥

द्वितीय कांस्यका शब्द होता है, जो जीवोंकी गतिको रोकता है और विष तथा सभी भूतग्रहोंको दूर करता है, इसमें सन्देह नहीं है। तीसरा शृंगनाद है, उसका आभिचारिक कर्ममें प्रयोग करना चाहिये, शत्रुके उच्चाटन तथा मारणमें वह प्रयोग करनेयोग्य है॥ ४५-४६॥

चौथा घण्टानाद होता है, जिसका साक्षात् परमेश्वर उच्चारण करते हैं। वह सभी देवगणोंको भी आकर्षित करनेवाला है, फिर भूलोकके मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? यक्षों तथा गन्धर्वोंकी कन्याएँ उस नादसे आकृष्ट होकर उस योगीको यथेच्छ महासिद्धि प्रदान करती हैं॥ ४७-४८॥

पाँचवाँ नाद वीणा है, जिसे योगीलोग निरन्तर सुनते रहते हैं। हे देवि! उससे दूर-दर्शनकी शक्ति प्राप्त होती है॥ ४९॥

वंशीनादका ध्यान करनेवाले योगीको सभी तत्त्व प्राप्त हो जाते हैं। दुन्दुभिनादका ध्यान करनेवाला जरा एवं मृत्युसे रहित हो जाता है॥ ५०॥

हे देवेशि! शंखनादका अनुसन्धान करनेसे इच्छानुसार रूपधारणका सामर्थ्य प्राप्त होता है और मेघके नादका ध्यान करनेसे योगीको कोई विपत्ति नहीं होती है॥ ५१॥

हे वरानने! जो एकाग्र मनसे नित्यप्रति ब्रह्मरूपी तुंकारका ध्यान करता है, उसे इच्छानुसार सब वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं होता है। वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा कामरूपी होकर [सर्वत्र] भ्रमण करता है और विकारोंसे युक्त नहीं होता है, वह [साक्षात्] शिव ही है, इसमें सन्देह नहीं॥ ५२-५३॥

हे परमेश्वरि! मैंने यह नौ प्रकारका शब्दब्रह्मस्वरूप तुमसे कहा, अब और क्या सुनना चाहती हो?॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कालवंचनवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

अमरत्व प्राप्त करनेकी चार यौगिक साधनाएँ

देवी बोलीं—योगी योगाकाशसे उत्पन्न वायुपद कैसे प्राप्त करता है, हे प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो यह सब मुझे बताइये॥ १॥

शंकर बोले—[हे देवि!] योगियोंके हितकी कामनासे मैंने पहले सभी बातोंको कह दिया है, अब जिस प्रकार योगी कालको अच्छी तरह जीतकर वायुस्वरूप हो जाता है, उसको सुनो॥ २॥

हे सुन्दरि! उस [योगसामर्थ्य]-से [मृत्युके] दिनको जानकर प्राणायाममें तत्पर योगी आधे महीनेमें ही आये हुए कालको जीत लेता है॥ ३॥

हृदयमें स्थित रहनेवाला वायु सदा अग्निको प्रदीप्त करता है। अग्निके पीछे चलनेवाला वह महान् तथा सर्वगामी वायु भीतर और बाहर सभी जगह व्याप्त है। ज्ञान, विज्ञान एवं उत्साह—इन सबकी प्रवृत्ति वायुसे होती है, जिसने इस लोकमें वायुको जीत लिया, उसने इस सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया॥ ४-५॥

योगपरायण योगी सम्यक् धारणा-ध्यानमें तत्पर रहे, उसे जरा-मृत्युके विनाशकी इच्छासे सदा धारणामें निष्ठा करनी चाहिये॥ ६॥

हे मुने! जिस प्रकार लोहार मुखसे वायुके द्वारा धौंकनीको फुलाकर कार्य सिद्ध करता है, उसी प्रकार योगीको भी अभ्यास करना चाहिये॥ ७॥

[प्राणायामके समय जिनका ध्यान किया जाता है] वे [आराध्य] देव [परमेश्वर] सहस्रों मस्तक, नेत्र, पैर और हाथोंसे युक्त हैं तथा समस्त ग्रन्थियोंको आवृतकर उनसे भी दस अंगुल आगे स्थित हैं। प्राणवायुको नियन्त्रितकर व्याहृतिपूर्वक तीन बार गायत्रीका शिरोमन्त्र-सहित जप करे, उसे प्राणायाम कहा जाता है॥ ८-९॥

चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह आते-जाते रहते हैं, किंतु प्राणायामपूर्वक ध्यानमें तत्पर योगी आजतक कभी नहीं लौटे अर्थात् कैवल्यको प्राप्त हो गये॥ १०॥

हे देवि! सौ वर्षतक तप करके ब्राह्मण कुशाके

अग्रभागके बराबर (बिन्दुमात्र) जलको पीकर जो फल प्राप्त करता है, उसे वह (योगी) एक प्राणायामके द्वारा ही प्राप्त कर लेता है। जो द्विज प्रात:काल उठकर एक प्राणायाम करता है, वह अपने सभी पापोंको नष्टकर शीघ्र ही ब्रह्मलोकको जाता है॥ ११-१२॥

जो सदा आलस्यरहित होकर एकान्तमें प्राणायाम करता है, वह जरा तथा मृत्युको जीतकर वायुके समान गतिशील होकर आकाशमें विचरण करता है। वह सिद्ध पुरुषका रूप; कान्ति, मेधा, पराक्रम तथा शौर्य प्राप्त कर लेता है और गतिमें वायुके समान होकर प्रशंसनीय सौख्य तथा परम सुख प्राप्त करता है॥ १३-१४॥

हे देवेशि! जिस प्रकार योगी वायुसे सिद्धि प्राप्त करता है, वह सब मैंने तुमसे कह दिया, अब जिस प्रकार उन्हें तेजसे सिद्धिकी प्राप्ति होती है, उसे मैं तुमसे कहूँगा॥ १५॥

जहाँ दूसरोंकी बातचीतका कोलाहल न हो, ऐसे शान्त एकान्त स्थानमें सुखासनपर बैठकर चन्द्रमा और सूर्य (वाम और दक्षिण नेत्र)-की कान्तिसे प्रकाशित मध्यवर्ती देश अर्थात् भ्रूमध्यभागमें जो अग्निका तेज अव्यक्तरूपसे प्रकाशित होता है, उसे आलस्यरहित योगी प्रकाशरहित अन्धकारपूर्ण स्थानमें चिन्तन करनेपर निश्चय ही देख सकता है॥ १६-१७॥

योगी यत्नपूर्वक नेत्रोंको हाथकी अँगुलियोंसे कुछ दबाकर उनके तारोंको देखते हुए एकाग्रचित्तसे आधे मुहूर्ततक उनका ध्यान करे॥ १८॥

उसके बाद ध्यान करता हुआ वह अन्धकारमें श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण तथा इन्द्रधनुषके समान कान्तिवाले ईश्वरीय तेजको देखता है॥ १९॥

दोनों भौंहोंके मध्यमें ललाटस्थित बालसूर्यके समान उस तेजको जानकर वह इच्छानुसार कामरूपधारी होकर मनोवांछित शरीरसे क्रीडा करता है॥ २०॥

निरन्तर अभ्यासके योगसे उसमें कारणको शान्त करना, आवेश, परकायाप्रवेश, अणिमादि सिद्धियोंकी प्राप्ति, मनसे सारी वस्तुओंका अवलोकन, दूरसे सुननेकी शक्ति, स्वयं अदृश्य हो जाना, अनेक रूप धारण करना एवं आकाशमें विचरणकी शक्ति—यह सब (सामर्थ्य) उत्पन्न हो जाता है॥ २१-२२॥

वेदाध्ययनसे सम्पन्न तथा अनेक शास्त्रोंमें प्रवीण ज्ञानीलोग भी अपने पूर्व कर्मोंके वशीभूत होकर मोहित हो जाते हैं। पापसे मोहित हुए मूढ़ मनुष्य लोकमें देखते हुए भी अन्धेके समान नहीं देखते और सुनते हुए भी बहरेके समान नहीं सुनते हैं॥ २३-२४॥

सूर्यके समान वर्णवाले तथा अन्धकारसे परे उस परम पुरुषको मैं जानता हूँ, इस प्रकार जानकर योगी मृत्युका अतिक्रमण कर लेता है, मुक्त होनेके लिये इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है॥ २५॥

[हे देवि!] मैंने तेजस्तत्त्वके चिन्तनकी यह उत्तम विधि तुमसे कह दी, जिसके द्वारा कालको जीतकर योगी अमरत्वको प्राप्त हो जाता है। हे देवि! अब मैं इससे भी उत्कृष्ट बात कहूँगा, जिससे मृत्यु नहीं होती, तुम सावधानीपूर्वक एकाग्र मनसे सुनो॥ २६-२७॥

हे देवि! प्राणियोंकी तथा ध्यान करनेवाले योगियोंकी तुरीयावस्था होती है। स्थिर चित्तवाले योगीको सुखद आसनपर यथास्थान स्थित हो शरीरको ऊँचा उठाकर दोनों हाथ सम्पुटितकर चोंचके आकारवाले मुखसे धीरे-धीरे वायुका पान करना चाहिये। थोड़ी ही देरमें तालुमें स्थित जीवनदायी जो जलबिन्दु टपकने लगते हैं, उन अमृतके समान शीतल जलबिन्दुओंको वायुसे ग्रहण करके सूँघे। इस प्रकार प्रतिदिन उसे पीनेवाला योगी मृत्युके वशीभूत नहीं होता है और वह दिव्य शरीरवाला, महातेजस्वी और भूख-प्याससे रहित हो जाता है॥ २८—३१॥

वह मनुष्य बलमें हाथीके समान, वेगमें घोड़ेके समान, दृष्टिमें गरुड़के समान, दूरसे सुननेकी शक्तिवाला, कुण्डलके समान घुँघराले काले केशवाला और गन्धर्वों एवं विद्याधरोंके समान स्वरूपवाला होता है और बुद्धिमें बृहस्पतिके समान होकर देवताओंके सौ वर्षतक जीवित रहता है। ऐसा करता हुआ वह सुखपूर्वक स्वेच्छाचारी रहकर आकाशमें भ्रमण करता है॥ ३२-३३॥

हे वरानने! अब मैं दूसरी विधिका वर्णन करता हूँ,

जिसे देवगण भी नहीं जानते, तुम प्रयत्नपूर्वक उसका श्रवण करो॥ ३४॥

योगी अपनी जीभको सिकोड़कर तालुमें लगानेका अभ्यास करे तो कुछ समयके बाद वह लम्बिकाको प्राप्त कर लेती है। तब तालुसे स्पृष्ट हुई वह जिह्वा शीतल अमृतका स्राव करने लगती है, उसको निरन्तर पीता हुआ वह योगी अमरत्व प्राप्त कर लेता है॥ ३५-३६॥

जैसे हाथसे निचोड़नेसे गीली वस्तुसे रस टपकता है, उसी प्रकार रेफाग्र तथा लम्बिकाग्रसे निर्मल कमल-बिन्दुसे प्राप्त वह देवताओंको आनन्द देनेवाला अमृत परपदमें गिरता है। संसारको तारनेवाले, पापनाशक, कालसे बचानेवाले अमृतसारसे जिसने अपने शरीरको आप्लावित कर लिया, वह भूख-प्याससे रहित होकर अमर हो जाता है॥ ३७॥

हे पार्वति! यह सारा संसार जिस सुखके लिये सदा लालायित रहता है, उसे ये चार प्रकारके योगीजन सदा धैर्य धारण करते हुए अपने अन्तःकरणमें धारण करते हैं। प्राणी स्वप्नमें भी स्वर्गमें अथवा भूमिपर जिसे सुख मानता है, वास्तवमें वह दुःख ही है, इस प्रकारका सुख तो इन चारों योगियोंके लिये किंचिन्मात्र भी सुखकर नहीं है॥ ३८॥

अतः मन्त्र, तप, व्रत, नियम, नीतिविनयसे युक्त धर्मवेत्ता मनुष्योंसे और औषधियों तथा योगसे युक्त यह रागमयी पृथ्वी उत्तम फल देती है। भूतोंके आदि-देव शिवजी इन चार प्रकारके योगोंसे युक्त होकर विचलित नहीं होते। अतः अब मैं विधिसहित शिव नामक छायापुरुषका वर्णन करता हूँ, जो साक्षात् शिवस्वरूप हैं॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कालवंचनशिवप्राप्तिवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

छायापुरुषके दर्शनका वर्णन

देवी बोलीं—हे देवदेव! हे महादेव! आपने कालकी वंचना करनेवाले शब्दब्रह्मस्वरूप उत्तम योगके लक्षणका वर्णन संक्षेपसे किया। अब योगियोंके हितकी इच्छासे छायापुरुष-सम्बन्धी उस उत्तम ज्ञानको विस्तारपूर्वक कहिये॥ १-२॥

शंकर बोले—हे देवि! सुनो, मैं छायापुरुषका लक्षण कह रहा हूँ, जिसे भलीभाँति जानकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३॥

हे वरवर्णिनि! श्वेत वस्त्र पहनकर माला धारणकर एवं उत्तम गन्ध-धूपादिसे सुगन्धित होकर चन्द्रमा अथवा सूर्यको पीछेकर सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाले मेरे पिण्डभूत नवाक्षर महामन्त्र [‘**ॐ नमो भगवते रुद्राय**’]-का स्मरण करे और अपनी छायाको देखे। पुनः उस श्वेत वर्णकी छायाको आकाशमें देखकर वह एकचित्त हो परम कारणभूत शिवजीको देखे। ऐसा करनेसे उसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है और वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे छूट जाता है—ऐसा कालवेत्ताओंने कहा है। इसमें संशय नहीं है॥ ४—७॥

यदि उस छायामें अपना शिर दिखायी न पड़े तो छः महीनेमें मृत्यु जाननी चाहिये, ऐसे योगीके मुखसे जिस प्रकारका वाक्य निकलता है, उसके अनुरूप ही फल होता है॥ ८॥

शुक्लवर्णकी छाया होनेपर धर्मकी वृद्धि और कृष्णवर्णकी होनेपर पापकी वृद्धि जाननी चाहिये। रक्तवर्णकी होनेपर बन्धन जानना चाहिये तथा पीतवर्णकी होनेपर शत्रुबाधा समझनी चाहिये॥ ९॥

[छायाके] नासिकारहित होनेपर बन्धुनाश और मुखरहित होनेपर भूखका भय रहता है। कटिरहित होनेपर स्त्रीका नाश और जंघारहित होनेपर धनका नाश होता है एवं पादरहित होनेपर विदेशगमन होता है। यह

छायापुरुषका फल मैंने कहा। हे महेश्वरि! पुरुषको प्रयत्नपूर्वक इसका विचार करना चाहिये॥ १०-११॥

हे महेश्वरि! उस छायापुरुषको भलीभाँति देखकर उसे अपने मनमें पूर्णतः सन्निविष्ट करके मनमें मेरे नवात्मक (नवाक्षर) मन्त्रका जप करना चाहिये, जो कि साक्षात् मेरा हृदय ही है॥ १२॥

एक वर्ष बीत जानेपर वह मन्त्रजापक ऐसा कुछ नहीं है, जिसे सिद्ध न कर सके, वह अणिमा आदि आठों सिद्धियोंको तथा आकाशमें विचरणकी शक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ १३॥

अब इससे भी अधिक दुष्प्राप्य शक्तिको प्राप्त करनेवाले ज्ञानका वर्णन करता हूँ, जिससे ज्ञानियोंके समक्ष संसारमें सब कुछ सामने रखी हुई वस्तुकी भाँति प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने लगता है॥ १४॥

सर्पाकार कुण्डली, जो लोकमें अज्ञेय कही जाती है, उसका वर्णन करता हूँ, वह मार्गमें स्थित हुई मात्रा केवल दिखती है, किंतु पढ़ी नहीं जाती॥ १५॥

जो ब्रह्माण्डके शिरोभागपर स्थित है, वेदोंके द्वारा निरन्तर स्तुत है, सम्पूर्ण विद्याओंकी जननी है, गुप्त विद्याके नामसे कही जाती है, वह जीवोंके भीतर स्थित होकर हृदयाकाशमें विचरण करनेवाली कही गयी है। वह दृश्य, अदृश्य, अचल, नित्य, व्यक्त, अव्यक्त और सनातनी है। वह अवर्ण, वर्णसंयुक्त तथा बिन्दुमालिनी कही जाती है। उसका सर्वदा दर्शन करनेवाला योगी कृतकृत्य हो जाता है॥ १६—१८॥

सभी तीर्थोंमें स्नान करनेके बाद दानका जो फल होता है एवं सम्पूर्ण यज्ञोंसे जो फल प्राप्त होता है, वह बिन्दुमालिनीके दर्शनसे मिलता है, इसमें सन्देह नहीं है, यह मैं सत्य कह रहा हूँ। हे देवि! सभी तीर्थोंमें स्नान करनेसे तथा सभी प्रकारके दान करनेसे जो फल मिलता है, एवं सम्पूर्ण यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, वह फल मनुष्य [इसके दर्शनसे] प्राप्त कर लेता है। हे महेशानि! अधिक कहनेसे क्या लाभ, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं॥ १९—२१॥

अतः बुद्धिमान् पुरुषको योग-ज्ञानका नित्य अभ्यास करना चाहिये, अभ्याससे सिद्धि उत्पन्न होती है, अभ्याससे योग बढ़ता है। अभ्याससे ज्ञान प्राप्त होता है और अभ्याससे मुक्ति मिलती है, अतः बुद्धिमान्‌को मोक्षके कारणभूत योगका निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये॥ २२-२३॥

हे देवि! इस प्रकार मैंने भोग एवं मोक्ष देनेवाला योगाभ्यास तुमसे कहा, अब तुम्हें और क्या पूछना है, उसे तुम बताओ, मैं तुम्हें सत्य-सत्य बताऊँगा॥ २४॥

सूतजी बोले— हे मुनीश्वरो! सनत्कुमारके परमार्थप्रद वचनको सुनकर पराशरपुत्र व्यासजी प्रसन्न हो गये॥ २५॥

उसके अनन्तर व्यासजीने अत्यन्त सन्तुष्ट हो सर्वज्ञ तथा कृपालु ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारको बारम्बार प्रणाम किया॥ २६॥

तत्पश्चात् हे मुनियो! कालीपुत्र मुनीश्वर व्यासने स्वरविज्ञानसागर सनत्कुमारकी स्तुति की॥ २७॥

व्यासजी बोले— हे मुनिश्रेष्ठ! मैं कृतार्थ हुआ, आपने मुझे ब्रह्मतत्त्वकी प्राप्ति करायी, आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा धन्य हैं, आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है॥ २८॥

सूतजी बोले— इस प्रकार वे व्यासजी महामुनि ब्रह्मपुत्रकी स्तुतिकर अत्यन्त प्रसन्न तथा परमानन्दमें मग्न होकर मौन हो गये॥ २९॥

हे शौनक! उसके बाद उनके द्वारा पूजित हुए सनत्कुमारजी उनसे आज्ञा लेकर अपने स्थानको चले गये और इधर व्यासजी भी प्रसन्नचित्त होकर अपने स्थानको चले गये॥ ३०॥

हे ब्राह्मणो! मैंने इस प्रकार सनत्कुमार एवं व्यासजीका यह सुख प्रदान करनेवाला, परमार्थयुक्त तथा ज्ञानवर्धक संवाद आपलोगोंसे कहा॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें छायापुरुषवर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

ब्रह्माकी आदिसृष्टिका वर्णन

शौनक बोले—आपने परमार्थ प्रदान करनेवाला सनत्कुमार एवं व्यासजीका संवादरूप जो महान् आख्यान कहा, उसे मैंने सुन लिया। अब जिस प्रकार ब्रह्माकी सृष्टि उत्पन्न हुई, उसे मैं सुनना चाहता हूँ, जैसा आपने व्यासजीसे सुना है, उसे मुझसे कहिये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे मुने! मेरे द्वारा कही जाती हुई श्रुतियोंमें विस्तारसे वर्णित, अनेक अर्थोंवाली, सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाली, दिव्य तथा अद्भुत कथाको आप सुनिये॥ ३॥

जो [मनुष्य] इसे पढ़ाता है अथवा बार-बार सुनता है, वह अपनी वंशपरम्पराको स्थिर रखते हुए स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो [परमात्मा] प्रधान तथा पुरुषस्वरूप हैं, जो नित्य और सदसदात्मक हैं, उन्हीं पुरुषरूप लोकस्रष्टाके द्वारा प्रधान अर्थात् प्रकृतिके माध्यमसे सृष्टि की गयी है॥ ४-५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! नारायणपरायण तथा अमित तेजस्वी उन ब्रह्माको सभी प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाला जानिये। हे मुनिश्रेष्ठ! जिनसे सभी पवित्र कल्पों (पदार्थों)-की सृष्टि हुई तथा जिनसे सब कुछ पवित्र होता है, उन स्वयम्भूको नमस्कार है। उन हिरण्यगर्भ पुरुष परमेश्वरको नमस्कार करके मैं इस सर्वश्रेष्ठ सृष्टिका वर्णन कर रहा हूँ॥ ६—८॥

समय-समयपर ब्रह्मा इस सृष्टिके सृजनकर्ता, विष्णु पालनकर्ता एवं शिवजी संहर्ता रहे हैं, इनके अतिरिक्त स्रष्टा अथवा लय करनेवाला अन्य कोई नहीं है॥ ९॥

नाना प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टिकी इच्छासे भगवान् स्वयम्भूने सर्वप्रथम जलको उत्पन्न किया, और उसमें ओजका आधान किया॥ १०॥

जलको नार कहा जाता है; क्योंकि वह नरसे उत्पन्न हुआ है, वह जल पूर्व समयमें भगवान्‌का आश्रय हुआ था, अत: वे नारायण कहे गये हैं॥ ११॥

भगवान्‌के द्वारा जलमें आधान किये गये ओजसे एक सुवर्णमय अण्ड प्रकट हुआ, उससे स्वयं ब्रह्मा उत्पन्न हुए, अत: वे स्वयम्भू कहे गये हैं॥ १२॥

भगवान् हिरण्यगर्भने एक वर्षतक वहाँ निवासकर उस अण्डेको दो भागोंमें विभक्त किया और उनसे स्वर्ग तथा भूलोकका निर्माण किया। उन्होंने उसमें नीचे और ऊपर कुल चौदह भुवनोंकी रचना की। प्रभुने दोनों खण्डोंके बीचमें आकाशका सृजन किया। उन्होंने जलमें तैरती हुई पृथ्वी तथा दस दिशाओंकी रचना की और वहीं काल, मन, वाणी, काम, क्रोध एवं रतिको बनाया॥ १३—१५॥

तत्पश्चात् उन महातेजस्वीने मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु एवं वसिष्ठ—इन सात मानस ऋषियोंको उत्पन्न किया। पुराणमें ये ही सात ऋषि ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हैं, उसके बाद पुन: ब्रह्माजीने क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले रुद्रोंकी एवं सबके पूर्वज ऋषि सनत्कुमारकी रचना की। इस प्रकार ये सप्तर्षि पहले एवं रुद्र उनके बाद उत्पन्न होते हैं। सनत्कुमार तो अपने तेजका संवरणकर स्थित रहते हैं, किंतु उन सप्तर्षियोंके सात महावंश उत्पन्न होते हैं, जो दिव्य देवर्षियोंसे पूजित, क्रियाशील तथा महर्षियोंसे अलंकृत हैं॥ १६—१९॥

उसके बाद उन्होंने विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित, इन्द्र-धनुष, जल एवं पर्जन्यको उत्पन्न किया। तदनन्तर उन्होंने यज्ञसम्पादनके लिये ऋक्, यजु: तथा सामवेदकी रचना की। उन वेदोंके द्वारा ही पूज्य देवगणोंका यजन किया गया—ऐसा हम सुनते हैं। उन्होंने अपने मुखसे देवताओंको, वक्ष:स्थलसे पितरोंको, उपस्थेन्द्रियसे मनुष्योंको और जघनसे दैत्योंको उत्पन्न किया। इस प्रकार प्रजाकी सृष्टि करते हुए उन आपव (अर्थात् जलमें प्रकट हुए) प्रजापति ब्रह्माजीके अंगोंमेंसे उच्च तथा साधारण श्रेणीके बहुत-से प्राणी प्रकट हुए॥ २०—२२॥

ब्रह्माजीके द्वारा सृजन की जाती हुई सृष्टि जब नहीं बढ़ी, तब वे अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्तकर एक भागसे पुरुष और दूसरे भागसे नारी हो गये॥ २३-२४॥

इसके अनन्तर अपनी महिमासे सारे संसारमें व्याप्त

होकर उन्होंने सम्पूर्ण प्रजाको उत्पन्न किया। भगवान् विष्णुने विराट् (आपव, ब्रह्माजी)-को उत्पन्न किया। उन विराट्ने पुरुषको उत्पन्न किया। उस पुरुषको ही द्वितीय [सृष्टिकर्ता] मनु समझिये तथा यहींसे मन्वन्तरका आरम्भ भी मानना चाहिये। उन्हीं प्रभावशाली वैराज पुरुष मनुने समस्त प्रजाओंकी सृष्टि की थी॥ २५-२६॥

भगवान् नारायणका [आपव प्रजापति ब्रह्माजीके रूपमें हुआ] प्रजासर्ग अयोनिज था। वह सर्ग आयुष्मान्, कीर्तिमान्, धन्य तथा प्रजावान् हुआ॥ २७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे आदिसर्गका वर्णन कर दिया। मनुष्य इस आदिसर्गको जानकर यथेष्ट गतिको प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें आदिसर्गवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

ब्रह्माद्वारा स्वायम्भुव मनु आदिकी सृष्टिका वर्णन

सूतजी बोले—इस प्रकार [अयोनिज मानस] प्रजाओंकी रचना हो जानेके पश्चात् आपव प्रजापति पुरुष अर्थात् मनुने अयोनिजा शतरूपा नामक पत्नी प्राप्त की। अपनी महिमासे द्युलोकको व्याप्त करके स्थित हुए मनुके धर्मसे ही उनकी पत्नी शतरूपाकी उत्पत्ति हुई॥ १-२॥

सौ वर्षतक अत्यन्त कठिन तप करके शतरूपाने तपस्तेजसे सम्पन्न पुरुषको पतिरूपमें प्राप्त किया था। प्रादुर्भूत हुए वे पुरुष ही स्वायम्भुव मनु कहे जाते हैं, उन [के अधिकार]-का इकहत्तर चतुर्युगोंका समय इस संसारमें एक मन्वन्तर कहा जाता है॥ ३-४॥

उन वैराज पुरुषके [अपने ही अंशके] द्वारा वीरा शतरूपा उत्पन्न हुई और उस वीरका (वीरा) शतरूपासे स्वायम्भुव मनुने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। उनकी एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम काम्या था। वह महाभागा काम्या कर्दम प्रजापतिकी भार्या हुई। काम्याके सम्राट्, साक्षी और अविट्प्रभु नामक तीन पुत्र हुए॥ ५-६॥

प्रभु उत्तानपादने इन्द्रके समान अनेक पुत्रोंको उत्पन्न किया और आत्माराम परम तेजस्वी ध्रुव नामक एक अन्य पुत्रको भी उत्पन्न किया॥ ७॥

सुन्दर कटिवाली धर्मकन्या सुनीति नामसे प्रसिद्ध थी, यही धर्मकन्या [सुनीति] ध्रुवकी माता थी॥ ८॥

उस बालक ध्रुवने अविनाशी स्थान प्राप्त करनेकी इच्छासे दिव्य तीन हजार वर्षपर्यन्त वनमें [कठोर] तप किया। प्रजापति प्रभु ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर सप्तर्षियोंके सम्मुख उसे अपने ही समान अचल स्थान दिया॥ ९-१०॥

उस ध्रुवसे पुष्टि तथा धान्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। पुष्टिने समुत्थासे रिपु, रिपुंजय, विप्र, वृकल और वृषतेजा नामवाले पापरहित पाँच पुत्रोंको उत्पन्न किया। रिपुकी पत्नीने सभी दिशाओंमें विख्यात चाक्षुष नामक पुत्रको जन्म दिया। चाक्षुष मनुने पुष्करिणीसे वरुण नामक पुत्र उत्पन्न किया। हे मुनिश्रेष्ठ! मनुसे प्रजापति वैराजकी कन्या नड्वलाके गर्भसे दस तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। उन पुत्रोंके नाम पुरु, मास, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवित्, कवि, अग्निष्टोम, अतिकाल, अतिमन्यु एवं सुयश हैं। अग्निकी पुत्रीने पुरुसे परम तेजस्वी अंग, सुमना, ख्याति, सृति, अंगिरा और गय नामवाले छः पुत्रोंको उत्पन्न किया। अंगसे उनकी भार्या सुनीथाने वेन नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥ ११—१६॥

वेनके अपचारसे मुनियोंको महान् क्रोध हुआ और उन धर्मपरायण मुनियोंने अपने हुंकारसे उसे मार दिया॥ १७॥

तदनन्तर सुनीथाने सन्तानके लिये ऋषियोंसे प्रार्थना की, तब उन महाज्ञानी ऋषियोंने वेनके दाहिने हाथका मन्थन किया॥ १८॥

वेनके हाथका मन्थन किये जानेपर उससे पृथु उत्पन्न हुए। वे धनुष एवं कवच धारण किये हुए उत्पन्न

हुए थे तथा सूर्यके समान तेजस्वी थे॥ १९॥

प्रजापालन, धर्मसंरक्षण तथा दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये विष्णुका वह अवतार हुआ। उस समय सभी क्षत्रियोंके पूर्वज वेनपुत्र पृथुने पृथ्वीकी रक्षा की, वे राजसूयाभिषिक्त राजाओंमें प्रथम सम्राट् हुए॥ २०-२१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! बुद्धिमान् सूत और मागध उन्हींसे उत्पन्न हुए। उन्होंने सबके कल्याणके लिये इस पृथ्वीका दोहन किया। सौ यज्ञ करनेवाले उन राजाने देवता, ऋषि, राक्षस तथा विशेषकर मनुष्योंको आजीविका प्रदान की॥ २२-२३॥

पृथुके विजिताश्व और हर्यक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो भूलोकमें धर्मज्ञ, महावीर तथा अतिप्रसिद्ध राजा हुए॥ २४॥

शिखण्डिनीने प्राचीनबर्हि नामक पुत्र उत्पन्न किया। पृथ्वीतलपर विचरण करनेवाले उन प्राचीनबर्हिके द्वारा [पृथ्वीपर यज्ञ किये जानेके कारण] कुशाओंका अग्रभाग सदा पूर्वकी ओर रहा करता था। उन्होंने समुद्रकी पुत्रीके साथ धर्मपूर्वक विवाह किया, विवाह करके वे महाप्रभु राजा अत्यन्त सुशोभित हुए॥ २५-२६॥

समुद्रकन्याके गर्भसे अनेक यज्ञोंके कर्ता उन प्राचीनबर्हिने दिव्य दस पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ २७॥

प्राचेतस नामसे प्रसिद्ध वे सब धनुर्वेदके पारंगत थे। अनुकूल धर्मका आचरण करनेवाले उन सभीने शिवके ध्यानमें संलग्न होकर समुद्रके जलमें शयन करते हुए और रुद्रगीतका जप करते हुए दस हजार वर्षपर्यन्त कठोर तपस्या की॥ २८-२९॥

जिस समय वे तप कर रहे थे उस समय रक्षा न की जाती हुई पृथ्वीपर प्रजाओंका क्षय होने लगा और सारी पृथ्वीपर पेड़-ही-पेड़ हो गये॥ ३०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तपस्यासे वर प्राप्तकर जब वे लौटे तो उन वृक्षोंको देखकर उन्हें बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन समर्थ तपस्वियोंने उन्हें जला देनेका विचार किया। उन प्राचेतसोंने अपने मुखोंसे अग्नि तथा वायुको उत्पन्न किया। वायुने उन वृक्षोंको उखाड़ डाला और अग्निने भस्म कर दिया॥ ३१-३२॥

तब वृक्षोंका क्षय देखकर और कुछ ही वृक्षोंके शेष रह जानेपर प्रतापी राजा चन्द्रमा उनके समीप जाकर कहने लगे—॥ ३३॥

सोम बोले—हे प्राचीनबर्हिके पुत्र राजाओ! आपलोग अपने क्रोधको शान्त कीजिये और वृक्षोंकी इस सुन्दर कन्याको स्वीकार कीजिये। भविष्यको जाननेवाले मैंने गर्भमें इसका पोषण किया है। अत: हे महाभागो! सोमवंशको बढ़ानेवाली इस कन्याको आपलोग भार्यारूपसे स्वीकार कीजिये। विद्वान्, सृष्टिकर्ता, महातेजस्वी, पुरातन, ब्रह्मपुत्र दक्ष नामक प्रजापति इसके गर्भसे उत्पन्न होंगे। ब्रह्मतेजसे सम्पन्न ये राजा (प्रजापति दक्ष) आपलोगोंके आधे तेजसे एवं मेरे तेजसे प्रजाओंकी वृद्धि करेंगे॥ ३४—३७॥

तब सोमके वचनसे प्रचेताओंने वृक्षोंसे उत्पन्न उस मनोहर कन्याको प्रेमके साथ धर्मपूर्वक भार्यारूपमें ग्रहण किया। हे मुने! उन प्रचेताओंसे उसके गर्भसे दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न हुए, परम तेजवाले वे सोमके भी अंशसे उत्पन्न हुए थे॥ ३८-३९॥

तब दक्षने मनसे अचर, चर, दो पैरवाले एवं चार पैरवाले जीवोंका सृजन करके मैथुनी सृष्टि प्रारम्भ की॥ ४०॥

उन्होंने वीरण नामक प्रजापतिकी वीरणी नामक पतिव्रता कन्यासे उत्तम विधानके साथ धर्मपूर्वक विवाह किया और उस कन्यासे हर्यश्व नामक दस हजार पुण्यात्मा पुत्रोंको उत्पन्न किया, वे सब नारदजीके उपदेशसे विरक्त हो गये॥ ४१-४२॥

यह सुनकर दक्षने पुन: उसी स्त्रीसे सुबलाश्व नामक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया। वे भी उन मुनिके उपदेशसे अपने भाइयोंके मार्गपर चले गये, वे विरक्त तथा भिक्षुमार्गी हो गये और पिताके पास नहीं गये॥ ४३-४४॥

यह सुनकर अत्यधिक कुपित होकर उन दक्षने मुनिको दु:सह शाप दे दिया—हे कलहप्रिय! तुम कहीं भी स्थिरता प्राप्त नहीं करोगे॥ ४५॥

हे मुनीश्वर! इसके बाद ब्रह्माजीके द्वारा सान्त्वना दिये जानेपर उन्होंने महाज्वालास्वरूप तथा सभी गुणोंसे

युक्त स्त्रियोंको उत्पन्न किया॥ ४६॥

उन्होंने दस कन्याएँ धर्मराजको, तेरह कश्यपको, दो ब्रह्मपुत्रको और दो अंगिराको दीं, हे मुनिश्रेष्ठ! उन प्रभु दक्षने दो कन्याएँ विद्वान् मुनि कृशाश्वको और नक्षत्र नामवाली [सत्ताईस] कन्याएँ चन्द्रमाको प्रदान कीं। दक्षकी उन्हीं कन्याओंसे देवता, असुर आदि उत्पन्न हुए, उनके बहुत-से पुत्र कहे गये हैं, उन सभीके द्वारा जगत् परिपूर्ण हो गया॥ ४७—४९॥

हे विप्रेन्द्र! तभीसे मैथुनी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ। इसके पूर्व संकल्प, दर्शन एवं स्पर्शसे सृष्टि कही गयी है॥ ५०॥

शौनक बोले—आपने पहले कहा था कि ब्रह्माके अँगूठेसे दक्ष उत्पन्न हुए, तब महान् तपवाले वे प्रचेताओंके पुत्र किस प्रकार हुए? हे सूतजी! मेरे इस सन्देहको दूर करनेमें आप समर्थ हैं और यह आश्चर्य है कि वे चन्द्रमाके श्वशुर किस प्रकार हुए?॥ ५१-५२॥

सूतजी बोले—हे मुने! प्राणियोंकी उत्पत्ति एवं उनका निरोध नित्य होता रहता है। प्रत्येक कल्पमें ये दक्ष आदि उत्पन्न होते रहते हैं॥ ५३॥

जो [मनुष्य] दक्षकी इस चराचरयुक्त सृष्टिको जान लेता है। वह सन्तानयुक्त एवं आयुसे पूर्ण होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सर्गवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

दैत्य, गन्धर्व, सर्प एवं राक्षसोंकी सृष्टिका वर्णन तथा दक्षद्वारा नारदके शाप-वृत्तान्तका कथन

शौनकजी बोले—हे सूतपुत्र! आप देवगणों, दैत्यों, गन्धर्वों, सर्पों एवं राक्षसोंकी इस सृष्टिका वर्णन विस्तारपूर्वक करें॥ १॥

सूतजी बोले—जब प्रजापति दक्षकी [मानसी] प्रजाकी वृद्धि नहीं हुई, तब वे तपस्यामें निरत रहनेवाली प्रजापति वीरणकी पुत्री [असिक्नी]-को विवाहकर ले आये॥ २॥

हे महाप्राज्ञ! उन्होंने मैथुनके द्वारा धर्मपूर्वक विविध प्रजाओंका सृजन किया, मैं संक्षेपमें उन्हें बता रहा हूँ, आप सुनिये। उस वीरिणीका आश्रय लेकर दक्ष प्रजापतिने पाँच हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ३-४॥

परमेष्ठी ब्रह्माजीके सृष्टिसत्रमें उत्पन्न हुए नारद मुनिने कश्यपजीसे यह जानकर कि दक्षकी पुत्रियोंसे ही सृष्टिका विस्तार होगा, उत्पन्न हुए उन दक्ष-पुत्रोंको देखकर उनसे कहा—हे अबोध बालको! तुमलोग पृथ्वीका विस्तार बिना जाने भला किस प्रकार सृष्टि करोगे? दिशाको जाने बिना कोई अपने लक्ष्यको कैसे प्राप्त करेगा, इसलिये तुमलोग पृथ्वीकी दिशाओंका पता लगाओ॥ ५—७॥

उनके द्वारा ऐसा कहे जानेपर वे सभी अपनी शक्तिसे दिशाका ज्ञान करनेके लिये चल दिये। उसका अन्त न पाकर वे पुनः अपने पिताके घर नहीं लौटे। यह जानकर दक्षने पुनः पाँच सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया। इसके बाद सर्वदर्शी उन नारदने उनसे भी कहा—॥ ८-९॥

नारदजी बोले—तुमलोग पृथ्वीका प्रमाण जाने बिना किस प्रकार सृष्टि करोगे? हे मूर्खो! तुम सब सृष्टि करनेके लिये भला कैसे उद्यत हो गये हो?॥ १०॥

सूतजी बोले—वह वचन सुनकर वे सभी दिशाओंमें चले गये, जैसे पहले वे दक्षपुत्र सुबलाश्व तथा हर्यश्व चले गये थे॥ ११॥

दिशाओंको बिना अन्तवाला पाकर वे पराभवको प्राप्त हुए और आजतक नहीं लौटे, जिस प्रकार समुद्रको प्राप्तकर नदियाँ पुनः नहीं लौटती हैं॥ १२॥

हे मुने! उसी समयसे कोई भी भाई अपने भाईकी खोजमें नहीं जाता, यदि चला भी जाय तो नष्ट हो जाता

है—ऐसा सोचकर बुद्धिमानोंको भाईकी खोजमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये॥ १३॥

उसके अनन्तर उन पुत्रोंको नष्ट हुआ जानकर उन दक्ष प्रजापतिने क्रोधपूर्वक महात्मा नारदजीको यह शाप दे दिया। हे कलहप्रिय! आप कहीं भी स्थिति प्राप्त नहीं करेंगे, आपके सान्निध्यसे लोकमें सदा कलह होगा॥ १४-१५॥

तब ब्रह्माजीने दक्ष प्रजापतिको शान्त किया, उसके बाद उन्होंने वीरिणीसे साठ कन्याओंको उत्पन्न किया—ऐसा हमने सुना है॥ १६॥

उन्होंने दस कन्याएँ धर्मराजको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस सोमको, चार कन्याएँ अरिष्टनेमिको, दो कन्याएँ ब्रह्मपुत्रको, दो अंगिराको तथा दो कन्याएँ विद्वान् कृशाश्वको दीं। उन सभीके नाम मुझसे सुनिये॥ १७-१८॥

हे मुने! अरुन्धती, वसु, यामि, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, सन्ध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ हैं। हे मुने! अब उनसे उत्पन्न सन्तानोंके नाम मुझसे सुनिये। विश्वासे विश्वेदेव उत्पन्न हुए। साध्याने साध्योंको उत्पन्न किया। मरुत्वतीसे मरुत्वान्, वसुसे [अष्ट] वसु, भानुसे [द्वादश] भानु, मुहूर्तासे सभी मुहूर्तज, लम्बासे घोष, यामिसे नागवीथी एवं उस अरुन्धतीसे पृथिवीविषम उत्पन्न हुए। संकल्पासे सत्यवादी संकल्प नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हे शौनक! वसुके अय आदि आठ पुत्र हैं, उनके नाम सुनिये। अय, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास नामवाले आठ वसुपुत्र हैं॥ १९—२४॥

अयके पुत्र वैतण्ड, श्रम, शान्त एवं मुनि हुए। समस्त लोकोंको प्रभावित करनेवाले भगवान् काल ध्रुवके पुत्र थे॥ २५॥

सोमके पुत्र भगवान् वर्चा हुए, जिनसे मनुष्य वर्चस्वी होता है। धरके पुत्र द्रविण, हुत एवं हव्यवह हुए। मनोहरासे शिशिर, प्राण एवं रमण उत्पन्न हुए। अनिलकी शिवा नामक भार्या थी, जिसके अनिलसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—पुरोजव एवं अविज्ञातगति। अग्निके पुत्र कुमार हुए, जिनकी उत्पत्ति श्रीयुक्त सरकण्डोंके वनमें हुई। उन कुमारके पृष्ठदेशसे भी पुत्र शाख, विशाख एवं नैगमेय हुए। वे कार्तिकेय कृत्तिकाओंके पुत्र भी कहे गये हैं॥ २६—२९॥

प्रत्यूषके पुत्र देवल नामक ऋषि हुए, उन देवलके भी महाबुद्धिमान् तथा सन्तानशील दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ ३०॥

बृहस्पतिकी बहन ब्रह्मचारिणी थी, जो स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थी, वह योगमें सिद्ध होकर समस्त संसारमें भ्रमण करनेवाली थी। वह आठवें वसु प्रभासकी पत्नी हुई। हे महाभाग! उस प्रभासके प्रजापति विश्वकर्मा [नामक पुत्र] उत्पन्न हुए, जो हजारों शिल्पोंके कर्ता, देवताओंके कारीगर, सभी प्रकारके आभूषणोंके निर्माता एवं शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ हुए, जिन्होंने सभी देवताओंके विमानोंका निर्माण किया और जिन महात्माके शिल्पद्वारा [आज भी] मनुष्य आजीविका प्राप्त करते हैं॥ ३१—३४॥

रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप, महान् एवं अन्य करोड़ों रुद्र प्रसूतकी स्त्री सरूपामें उत्पन्न हुए, जिनमें ग्यारह रुद्र प्रमुख हैं। हे मुने! मुझसे उनके नामोंका श्रवण कीजिये॥ ३५-३६॥

अजैकपाद्, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, वीर्यवान् रुद्र, हर, बहुरूप, अपराजित, त्र्यम्बक, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी एवं रैवत—ये तीनों लोकोंके स्वामी ग्यारह रुद्र कहे गये हैं॥ ३७-३८॥

इसी प्रकार अमित तेजवाले सौ रुद्र कहे गये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! अब कश्यपकी पत्नियोंके नामका श्रवण कीजिये॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सर्गवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

कश्यपकी पत्नियोंकी सन्तानोंके नामका वर्णन

सूतजी बोले—अदिति, दिति, सुरसा, अरिष्टा, इला, दनु, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, खशा, कद्रू एवं मुनि—[ये कश्यपकी पत्नियोंके नाम हैं] अब उनकी सन्तानोंके विषयमें मुझसे सुनिये। पूर्वके मन्वन्तरमें तुषित नामक जो बारह उत्तम देवता थे, वे सुकीर्तिसम्पन्न चाक्षुष मन्वन्तरके समापन तथा वैवस्वत मन्वन्तरके आगमनके अवसरपर सभी लोकोंके हितके लिये परस्पर एकत्रित होकर कहने लगे कि हमलोग इस वैवस्वत मन्वन्तरमें अदितिके गर्भमें प्रविष्ट होकर जन्म लें, ऐसा करनेसे सज्जन लोगोंका कल्याण होगा। ऐसा कहे जानेपर चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें वे तुषित देवगण मरीचिके पुत्र कश्यपके द्वारा दक्षपुत्री अदितिके गर्भसे उत्पन्न हुए॥ १—५$^{1}/_{2}$ ॥

उनमें विष्णु तथा शक्रने पहले जन्म लिया, अदितिमें जन्म लेनेवाले अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश तथा भग—ये अतितेजस्वी द्वादश आदित्यके नामसे विख्यात हुए। जो चाक्षुष मन्वन्तरमें तुषित नामके देवता थे, वे ही अगले (वैवस्वत) मन्वन्तरमें द्वादश आदित्य कहे गये। हे शौनक! इस प्रकार मैंने अदितिके द्वादश अपत्योंका वर्णन आपसे किया॥ ६—९ ॥

दक्षकी सत्ताईस कन्याएँ जो उत्तम व्रतवाली सोमकी स्त्रियाँ थीं, उनसे अत्यन्त तेजस्वी सन्तानें हुईं॥ १० ॥

दक्षकी विद्युत् नामवाली चार कन्याएँ जो अनेक पुत्रोंवाले विद्वान् अरिष्टनेमिकी पत्नियाँ थीं, उनमें सोलह पुत्र उत्पन्न हुए, देवर्षि कृशाश्वके पुत्र देवप्रहरण (देवताओंके अस्त्र-शस्त्र) नामसे अभिहित हुए। हे मुने! उनकी अर्चि नामक पत्नीसे धूम्रकेश उत्पन्न हुए॥ ११-१२ ॥

उनकी स्वधा और सती नामक दो पत्नियाँ थीं, उनमें बड़ीका नाम स्वधा था तथा कनिष्ठा सती थी। स्वधाने पितरोंको और सतीने वेद और अथर्वांगिराको उत्पन्न किया॥ १३ ॥

ये सभी तैंतीस देवता कामज कहे गये हैं और सहस्रयुगोंके अन्तमें पुनः-पुनः नित्य उत्पन्न होते रहते हैं। जिस प्रकार जगत्में सूर्यका उदय और अस्त होता है, उसी प्रकार ये देवनिकाय भी युग-युगमें उत्पन्न होते रहते हैं॥ १४-१५ ॥

कश्यपसे दितिके गर्भसे हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु नामक महाबलवान् दो पुत्र उत्पन्न हुए—ऐसा हमने सुना है। सिंहिका नामकी एक कन्या भी हुई, जो विप्रचित्तिकी पत्नी बनी। हिरण्यकशिपुके महातेजस्वी चार पुत्र हुए। उनके नाम अनुह्लाद, ह्लाद, संह्लाद तथा प्रह्लाद थे। सबसे छोटा प्रह्लाद विष्णुका अत्यन्त भक्त था॥ १६—१८ ॥

अनुह्लादकी स्त्री सूर्याके गर्भसे प्रलोमा एवं महिष हुए। ह्लादकी धमनि नामक पत्नीने वातापी एवं इल्वलको जन्म दिया। संह्लादकी कृति नामक भार्याने पंचजनको उत्पन्न किया। प्रह्लादकी देवी नामक भार्यासे पुत्र विरोचन और विरोचनका पुत्र बलि हुआ॥ १९-२० ॥

हे मुनीश्वर! बलिके अशना नामक पत्नीके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। बलि शिवभक्तिपरायण महाशैव था। वह दानशील, उदार, पुण्यकीर्ति एवं तपस्वी कहा गया है। उसके पुत्रका नाम बाण था, वह भी शिवभक्त और महाबुद्धिमान् था, जिसने शिवजीको भलीभाँति सन्तुष्टकर गाणपत्यपद प्राप्त किया था। महात्मा बाणकी उस कथाको तो आप पहले ही सुन चुके हैं, जिसमें उस वीरने संग्राममें श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रसन्न किया था॥ २१—२३ ॥

हिरण्याक्षके पाँच पुत्र हुए, जो विद्वान् एवं महाबलवान् थे, वे कुकुर, शकुनि, भूतसन्तापन, पराक्रमी महानाद एवं कालनाभ थे। हे मुने! इस प्रकार मैंने दितिके पुत्रोंको बताया, अब दनुपुत्रोंके नामका श्रवण कीजिये॥ २४-२५ ॥

दनुके महापराक्रमशाली सौ पुत्र हुए, जिनमें अयोमुख, शम्बर, कपोल, वामन, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिर, स्वर्भानु, वृषपर्वा एवं महाबलवान् विप्रचित्ति मुख्य थे। दनुके ये सभी पुत्र कश्यपसे उत्पन्न हुए थे। हे अनघ! अब मैं आपसे प्रसंगतः इनकी पुत्रियोंका वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये॥ २६—२८ ॥

स्वर्भानुकी प्रभा, पुलोमाकी शची, हयशिराकी उपदानवी तथा वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा नामक कन्या थी। वैश्वानरकी पुलोमिका तथा पुलोमा नामक दो कन्याएँ थीं, मारीचि (कश्यप)-की ये दो पत्नियाँ बहुत सन्तानवाली तथा महाशक्तिशालिनी थीं। कश्यपने उन दोनोंसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न किये, जो दानवकुलको आनन्द देनेवाले तथा परम तपस्यासे युक्त थे॥ २९—३१॥

दानवोंमें महाबली पौलोम एवं कालखंज पितामहका वरदान प्राप्तकर देवगणोंसे सर्वथा अवध्य तथा हिरण्यपुरवासी थे, जिनका वध अर्जुनने किया था। विप्रचित्तिसे सिंहिकामें जो पुत्र उत्पन्न हुए, वे सभी दैत्य-दानवोंके संयोगसे महापराक्रमी थे। उन सिंहिकाके पुत्रोंमें तेरह महाबली थे। वे राहु, शल्य, सुबलि, बल, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, स्वसृप, अजिक, नरक, कालनाभ, शरमाण, शर तथा कल्प नामवाले थे, जो दनुके वंशका विस्तार करनेवाले हुए। दनुवंशको बढ़ानेवाले बहुत-से इनके पुत्र और पौत्र उत्पन्न हुए, उनका वर्णन यहाँ विस्तारके कारणसे नहीं किया जा रहा है॥ ३२—३७॥

संह्लादके वंशमें निवातकवच नामक दैत्य हुए। इसी कुलमें तपस्यासे आत्मज्ञान प्राप्त करनेवाले मरुत् भी हुए थे॥ ३८॥

ताम्राके महाशक्तिशाली षण्मुख आदि पुत्र उत्पन्न हुए। काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुकी, गृध्रिका, अश्वी, उलूकी—ये ताम्राकी कन्याएँ कही गयी हैं। उनमें काकीने काकोंको, उलूकीने कौओंके शत्रु उलूकोंको पैदा किया। श्येनीने श्येनोंको, भासीने भासोंको, गृध्रीने गृध्रोंको, शुकीने शुकोंको और सुग्रीवीने शुभ पक्षियोंको उत्पन्न किया। इसी प्रकार कश्यपपत्नी ताम्राने घोड़ों, ऊँटों एवं गधोंको भी उत्पन्न किया। इस प्रकार ताम्राके वंशका कथन किया गया॥ ३९—४२॥

विनताके अरुण तथा गरुड़—ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें गरुड़ पक्षियोंमें श्रेष्ठ हो गये, वे अपने कर्मसे अत्यन्त दारुण थे। सुरसाके महातेजस्वी अनेक शिरवाले, आकाशचारी हजारों महात्मा सर्प उत्पन्न हुए, जिनमें शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल तथा अश्वतर सर्पोंमें प्रधान राजा हुए॥ ४३—४५॥

एलापत्र, पद्म, कर्कोटक, धनंजय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदन्त, दुर्मुख, सुमुख, बहुश, खररोमा और पाणि आदि सर्पोंमें प्रधान राजा हुए। क्रोधवशाके सभी पुत्र दंष्ट्रावाले अण्डज, पक्षी और जल-जन्तु हैं। वाराहीके पशु कहे गये हैं॥ ४६—४८॥

अनायुषाके महाबलवान् पचास पुत्र हुए, जिनमें बल, वृक्ष, विक्षर और बृहत् प्रधान थे। सुरभिने खरगोशों तथा महिषोंको जन्म दिया। इलाने वृक्ष, लताओं तथा समस्त तृण जातियोंको उत्पन्न किया। खशाने यक्षों एवं राक्षसोंको, मुनिने अप्सराओंको, अरिष्टाने सर्पोंको और प्रभाने उत्तम मानवोंको जन्म दिया॥ ४९—५१॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने आपसे कश्यपके दायादोंका वर्णन किया, जिनके सैकड़ों-हजारों पुत्र और पौत्र हुए॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कश्यपवंशवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

मरुतोंकी उत्पत्ति, भूतसर्गका कथन तथा उनके राजाओंका निर्धारण

सूतजी बोले—हे तात! यह सर्ग स्वारोचिष मन्वन्तरमें कहा गया है, वैवस्वत मन्वन्तरमें जब महान् वारुण यज्ञका विस्तार हुआ, उस समय ब्रह्मदेवद्वारा हवन करते समय जो सृष्टि हुई, उसका वर्णन करता हूँ। हे महर्षे! पूर्व समयमें स्वयं ब्रह्माने जिन सात ब्रह्मर्षियोंको मानस पुत्रके रूपमें उत्पन्न किया था, उन्हींके वंशमें उत्पन्न होनेवाले देवगणों तथा दानवोंमें विरोध हो जानेसे भयंकर संग्राम हुआ। जिसमें अपने पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर दिति कश्यपके पास गयी। उसके द्वारा सम्यक् आराधित हुए उन कश्यपने प्रसन्नचित्त होकर उसे वर माँगनेको

कहा। तब उसने इन्द्रका वध करनेके लिये सामर्थ्ययुक्त तथा महातेजस्वी पुत्रका वरदान माँगा॥ १—५॥

तदनन्तर उन महातपस्वीने उसे वांछित वरदान दिया और सौ वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य आदि नियमके पालन करनेका उपदेश दिया॥ ६॥

उसके अनन्तर परम सुन्दरी तथा पवित्र आचरणवाली दितिने गर्भ धारण किया और वह उपदेशानुसार ब्रह्मचर्यादि व्रतनियमोंका पालन करने लगी। उसके बाद प्रशंसनीय व्रतवाले कश्यप भी दितिमें गर्भाधान करके प्रसन्नचित्त होकर तप करनेके लिये चले गये॥ ७-८॥

इधर इन्द्र दितिके व्रतनियममें छिद्रान्वेषणका अवसर खोजने लगे। जब सौ वर्षमें एक वर्ष कम रहा, उसी समय इन्द्रको छिद्रावकाश दिखायी पड़ा। होनहारकी प्रबलतावश दिति अपना पैर बिना धोये ही पलंगपर पैर रखनेवाले निचले भागमें उलटे सिर करके सो गयी। इसी बीच हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रने दितिके गर्भमें प्रविष्ट होकर उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये॥ ९—११॥

इस प्रकार वज्रसे टुकड़े-टुकड़े कर दिये जानेपर जब गर्भ रोने लगा, तब पुनः रोते हुए उस गर्भके एक-एक टुकड़ेको वज्रधारी इन्द्रने सात भागोंमें काट डाला और उन [प्राणवान् गर्भखण्डों]-से कहा—मत रोओ, मत रोओ, उनचास टुकड़े करनेपर भी वे नहीं मरे। हे मुने! इस तरह इन्द्रद्वारा काटे जानेपर उन उनचास टुकड़ोंने हाथ जोड़कर उनसे कहा—हे इन्द्र! आप हमारा वध क्यों करते हैं, हम आपके भाई मरुत हैं॥ १२-१३॥

उसी समय इन्द्रने उन सभीको अपना भाई मान लिया। हे विप्रर्षे! इसके बाद उन मरुतोंने शिवजीकी इच्छासे अपने दैत्यभावका परित्याग कर दिया। तभीसे वे महाबली उनचास मरुत नामवाले दितिपुत्र देवता हो गये और इन्द्रकी सहायतामें संलग्न हो आकाश (अथवा स्वर्ग)-में विचरण करने लगे॥ १४-१५॥

वे ही प्राणी जब अत्यन्त प्रवृद्ध हो गये, तब प्रजापति हरिने पृथुसे पूर्व उन्हें राज्य दिया। उन हरिके नामोंका श्रवण कीजिये। अरिष्ट, पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति, पर्जन्य और धनाध्यक्ष। उन्हींका यह समस्त संसार है॥ १६-१७॥

हे महामुने! इस प्रकार मैंने समस्त भूतसर्गकी उत्पत्तिका ठीक-ठीक वर्णन किया, अब क्रमसे राज्योंके विभागका वर्णन सुनिये। पितामहने वेनपुत्र पृथुको [परमशासकके रूपमें] राज्यपर अभिषिक्तकर क्रमशः राज्योंका इस प्रकार नियोजन किया॥ १८-१९॥

उन्होंने ब्राह्मण, वृक्ष, नक्षत्र, ग्रह, यज्ञ तथा तपस्वियोंका राजा चन्द्रमाको बनाया। वरुणको जलका आधिपत्य, विश्रवापुत्र कुबेरको राजाओंका आधिपत्य, विष्णुको आदित्योंका आधिपत्य तथा पावकको वसुओंका आधिपत्य, दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुतोंका, महातेजस्वी प्रह्लादको दैत्य एवं दानवोंका और विवस्वान्पुत्र यमको पितरोंका आधिपत्य प्रदान किया। उन्होंने मातृगणों, व्रतों, मन्त्रों, गौओं, यक्षों, राक्षसों, राजाओं एवं सभी भूत-पिशाचोंका राजा शूलपाणि भगवान् शिवको नियुक्त किया। उन्होंने शैलोंका राजा हिमालयको, नदियोंका राजा समुद्रको, मृगों (पशुओं)-का राजा सिंहको तथा गाय एवं बैलोंका राजा गोवृषको और वनस्पतियों तथा वृक्षोंका राजा वटवृक्षको नियुक्त किया। इस प्रकार प्रजापतिने सर्वत्र क्रमशः राज्यका प्रविभाग कर दिया॥ २०—२६॥

सर्वात्मा विश्वपति प्रभु ब्रह्मदेवने पूर्व दिशामें वैराज प्रजापतिके पुत्रको स्थापित किया। इसी प्रकार हे मुनिश्रेष्ठ! उन्होंने दक्षिण दिशामें कर्दम प्रजापतिके पुत्र सुधन्वाको राज्यपदपर नियुक्त किया। उन प्रभुने पश्चिम दिशामें रजसके पुत्र अच्युत महात्मा केतुमान्को नियुक्त किया। उन्होंने उत्तर दिशामें पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र दुर्धर्ष राजा हिरण्यरोमाको अभिषिक्त किया॥ २७—३०॥

हे शौनक! इस प्रकार मैंने उन वेनपुत्र पृथुका विस्तृत वृत्तान्त बताया। यह प्राचीन वृत्तान्त महान् समृद्धिका साक्षात् अधिष्ठान कहा गया है॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें कश्यपवंशवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

चतुर्दश मन्वन्तरोंका वर्णन

शौनक बोले—हे सूत! आप सभी मन्वन्तरोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, अबतक जितने भी मनु हुए हैं, उनका वर्णन मैं सुनना चाहता हूँ॥ १॥

सूतजी बोले—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष—इन छ: मनुओंको मैंने आपसे कह दिया है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब वैवस्वत मनुका वर्णन कर रहा हूँ॥ २-३॥

उसके बाद क्रमश: सावर्णि, रौच्य, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि—ये मनु होनेवाले हैं॥ ४-५॥

इस प्रकार मैंने बीते हुए छ: मनुओं, वर्तमान सातवें वैवस्वत मनु तथा आगे आनेवाले सात मनुओं—कुल चौदह मनुओंको कहा, जैसा कि मैंने सुना है॥ ६॥

हे मुने! तीनों कालोंमें होनेवाले इन चौदह मन्वन्तरों तथा सहस्रयुगात्मक कल्पका वर्णन किया गया, अब उनके ऋषियों, मनुपुत्रों एवं देवताओंको कह रहा हूँ। हे शौनक! प्रेमपूर्वक आप उन यशस्वियोंका श्रवण कीजिये॥ ७-८॥

स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मरीचि, अत्रि, भगवान् अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, वसिष्ठ—ये सात ब्रह्मपुत्र कहे गये हैं। हे मुने! उत्तर दिशामें स्थित [महर्षिगण उस समयके] सप्तर्षि और उस मन्वन्तरमें याम नामक देवता हुए॥ ९-१०॥

आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, धृतिमान्, हव्य, सवन और शुभ्र—ये दस महात्मा स्वायम्भुव मनुके पुत्र कहे गये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय यज्ञ नामक इन्द्र कहे गये॥ ११-१२॥

हे तात! इस प्रकार मैंने पहला स्वायम्भुव मन्वन्तर कहा, अब मैं दूसरा मन्वन्तर कह रहा हूँ, उसे भलीभाँति सुनिये॥ १३॥

(दूसरे मन्वन्तरमें) ऊर्जस्तम्भ, परस्तम्भ, ऋषभ, वसुमान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान् तथा सातवें रोचिष्मान्—इन्हें महर्षि [सप्तर्षि] समझना चाहिये, उस कालमें रोचन नामक इन्द्र हुए। स्वारोचिष मन्वन्तरमें 'तुषित' नामवाले देवता कहे गये हैं॥ १४-१५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! हरिघ्न, सुकृति, ज्योति, अयोमूर्ति, अयस्मय, प्रथित, मनस्यु, नभ और सूर्य—ये महात्मा स्वारोचिष मनुके महान् बल तथा पराक्रमवाले दस पुत्र कहे गये हैं। हे मुने! मैंने दूसरा मन्वन्तर कहा—अब मैं तृतीय मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, उसे अच्छी तरह सुनें॥ १६—१८॥

जो कभी महान् ओजस्वी हिरण्यगर्भके ऊर्जा नामसे प्रसिद्ध पुत्र थे, वे ही वसिष्ठके सात पुत्र हुए, जो वासिष्ठ नामसे प्रसिद्ध हैं। हे ऋषिश्रेष्ठ! वे इस तृतीय मन्वन्तरके ऋषि कहे गये हैं, उत्तम नामक तीसरे मनुके भी दस पुत्र हुए, उनका कथन कर रहा हूँ, उसे समझो॥ १९-२०॥

इष, ऊर्जित, ऊर्ज, मधु, माधव, शुचि, शुक्रवह, नभस, नभ और ऋषभ—ये नाम हैं। उस समय सत्यवेद, श्रुत आदि देवता हुए। हे मुने! उस कालमें सत्यजित् नामक इन्द्र हुए थे, जो तीनों लोकोंके अधिपति थे। हे मुने! इस श्रेष्ठ तृतीय मन्वन्तरका वर्णन किया। अब चतुर्थ मन्वन्तरको कह रहा हूँ, आप उसे सुनें॥ २१—२३॥

गार्ग्य, पृथु, वाग्मी, जय, धाता, कपीनक, कपीवान्—ये सप्तर्षि हुए। उस समय सत्य नामके देवता हुए और त्रिशिख नामक इन्द्र हुए, ऐसा जानना चाहिये। हे मुने! अब मनुके पुत्रोंको सुनिये—द्युतिपोत, सौतपस्य, तप, शूल, तापन, तपोरति, अकल्माष, धन्वी, खड्गी और महानृषि—ये तामस मनुके महाव्रती दस पुत्र कहे गये हैं॥ २४—२६॥

इस प्रकार मैंने चौथे तामस मन्वन्तरका वर्णन आपसे कर दिया। हे तात! अब पंचम मन्वन्तरका श्रवण कीजिये॥ २७॥

देवबाहु, जय, वेदशिरा मुनि हिरण्यरोमा पर्जन्य, सोमपायी ऊर्ध्वबाहु तथा सत्यनेत्ररत—ये सप्तर्षि हुए। उस समय तपस्वी स्वभाववाले भूतरज नामक देवता हुए और विभु नामक त्रिलोकाधिपति इन्द्र हुए, उस समय

तामसके सहोदर भाई रैवत नामक [पंचम] मनुको जानना चाहिये॥ २८—३०॥

हे मुने! अर्जुन अथवा पंक्तिविन्ध्य (दक्षकन्या प्रिया) दया आदिके पुत्र हुए, जो महान् तपस्यासे युक्त होकर मेरुपृष्ठपर अब भी निवास करते हैं॥ ३१॥

रुचिके पुत्र प्रजापति रौच्य भी मनु कहे गये हैं, जिन्होंने भूति नामक स्त्रीसे भौत्य नामक पुत्र उत्पन्न किया। इस कल्पमें ये सात अनागत मनु कहे गये हैं और सात अनागत महर्षि कहे गये हैं, जो स्वर्गलोकमें निवास करते हैं॥ ३२-३३॥

कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सात ऋषि कहे गये हैं। [परशु] राम, व्यास, अत्रिगोत्रीय बहुश्रुत दीप्तिमान्, भरद्वाजगोत्रीय महातेजस्वी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, गौतमपुत्र शरद्वान् [के पुत्र] कृपाचार्य, कुशिकवंशी गालव तथा कश्यपवंशी रुरु—ये सात महात्मा आगे सप्तर्षि होनेवाले हैं। उसमें स्वयम्भू [ब्रह्मा]-ने तीनको ही अनागत देवता कहा है। [उस समय] वे देवता मरीचिपुत्र महात्मा कश्यपके पुत्र होंगे और उस समय विरोचनके पुत्र बलि इन्द्र होंगे॥ ३४—३८॥

हे शौनक! विषांग, अवनीवान्, सुमन्त, धृतिमान्, वसु, सूरि, सुरा, विष्णु, राजा, सुमति—ये दस सावर्णि मनुके पुत्र होंगे। इस प्रकार आठवाँ मन्वन्तर कहा गया, अब नौवें मन्वन्तरका श्रवण कीजिये॥ ३९-४०॥

मैं पहले दक्षसावर्णि मनुको कह रहा हूँ, उसे आप सुनिये। पुलस्त्यवंशी मेधातिथि, कश्यपवंशी वसु, भृगुवंशी ज्योतिष्मान्, धैर्यवान् अंगिरा, वसिष्ठवंशी सवन, अत्रिवंशी हव्य और पुलह—ये सात ऋषि रोहित मन्वन्तरमें होंगे। हे महामुने! इस मन्वन्तरमें देवताओंके ये तीन गण होंगे। वे दक्षपुत्र प्रजापति रोहितके पुत्र होंगे। धृष्टकेतु, दीप्तकेतु, पंचहस्त, निराकृति, पृथुश्रवा, भूरिद्युम्न, ऋचीक, बृहत, गय—ये प्रथम दक्षसावर्णिके नौ महातेजस्वी पुत्र होंगे॥ ४१—४५॥

दसवें और दूसरे [सावर्णि] मनुका जब मन्वन्तर होगा, तब पुलहवंशी हविष्मान्, भृगुवंशी प्रकृति, अत्रिवंशी आपोमुक्ति, वसिष्ठवंशी अव्यय, पुलस्त्यवंशी प्रयति, कश्यपवंशी भामार, अंगिरावंशी अनेनाके पुत्र सत्य—ये सात परमर्षि होंगे। इस मन्वन्तरमें जो द्विषिमन्त नामवाले कहे गये हैं, वे देवता होंगे। उनमें ये महेश्वर शम्भु ही इन्द्र कहे गये हैं। अक्षत्वान्, उत्तमौजा, पराक्रमी भूरिषेण, शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न, सुवर्चा और अर्चि—ये मनुके दस पुत्र होंगे॥ ४६—५०॥

जब तीसरे [सावर्णि] मन्वन्तरमें ग्यारहवें मनु होंगे, उस समय जो सात ऋषि होंगे, उन्हें मैं कह रहा हूँ, आप सुनें। कश्यपवंशी हविष्मान्, वरुणवंशी वपुष्मान्, अत्रिवंशी वसिष्ठ, अंगिरावंशी अनय, पुलस्त्यवंशी चारुधृष्य, निस्वर और तैजस अग्नि (अग्नितेजा)—ये सात ऋषि कहे गये हैं और तीन देवगण कहे गये हैं। वे ब्रह्माजीके पुत्र वैधृत नामवाले कहे गये हैं। सर्वग, सुशर्मा, देवानीक, क्षेमक, दृढेषु, खण्डक, दर्श, कुहु, बाहु—ये मनुके पुत्र कहे गये हैं। ये तीसरे सावर्णि मनुके नौ पुत्र कहे गये हैं॥ ५१—५५॥

अब चतुर्थ सावर्णिके सप्तर्षियोंको मुझसे सुनें। उनमें वसिष्ठपुत्र द्युति, अत्रिगोत्री सुतपा, तपोमूर्ति अंगिरा, तपस्वी कश्यप, तपोधन पौलस्त्य, तपोरति पुलह और सातवें तपोनिधि भार्गव कहे गये हैं। [इस मन्वन्तरमें] ब्रह्माके पाँच मानसपुत्र देवगण कहे गये हैं। उस समय प्रजाओंको सुख देनेवाले तथा त्रिलोकीके अधिपति ऋतधामा इन्द्र होंगे॥ ५६—५८१/२॥

हे मुने! आगे आनेवाले बारहवें रौच्य नामक मन्वन्तरमें धृतिमान् अंगिरा, पुलस्त्यवंशी हव्यवान्, पुलहवंशी तत्त्वदर्शी, निरुत्सव भार्गव, प्रपंचरहित आत्रेय, निर्देह कश्यप और वसिष्ठवंशी सुतपा—ये सप्तर्षि होंगे। इसमें स्वयम्भू (ब्रह्माजी)-ने देवताओंके तीन गण कहे हैं। दिवस्पति उस मन्वन्तरमें इन्द्र होंगे। विचित्र, चित्र, नय, धर्म, धृतोन्ध्र, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धक, निर्भय, सुतपा और द्रोण—ये रौच्य मनुके [दस] पुत्र होंगे॥ ५९—६३॥

आत्मज्ञानी देवसावर्णि नामक तेरहवें मनु होंगे। चित्रसेन, विचित्र आदि उन देवसावर्णिके पुत्र होंगे। उस समय सुकर्म तथा सुत्राम नामवाले देवता होंगे, दिवस्पति नामक इन्द्र होंगे और निर्मोक, तत्त्वदर्शी आदि ऋषि होंगे॥ ६४-६५॥

चौदहवें भौत्य नामक मनुके कालमें कश्यपवंशी आग्नीध्र, पुलस्त्यवंशी मागध और भृगुवंशी अतिबाह्य, अंगिरागोत्रीय शुचि, अत्रिगोत्रीय युक्त, वसिष्ठगोत्रीय शुक तथा पुलहगोत्रीय अजित—ये अन्तिम मनुके सप्तर्षि होंगे। [इस मन्वन्तरमें] पवित्र चाक्षुष देवगण होंगे और शुचि नामक इन्द्र होंगे॥ ६६—६८॥

अतीत तथा अनागत—इन महर्षियोंका सर्वदा प्रात:काल उठकर नाम-कीर्तन करनेसे मनुष्योंके सुखोंकी वृद्धि होती है॥ ६९॥

हे महामुने! सुनिये; इसमें देवताओंके पाँच गण कहे गये हैं और तुरंगभीरु, बुध्न, तनुग्र, अनुग्र, अतिमानी, प्रवीण, विष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी तथा सबल—ये दस भौत्यमनुके पुत्र होंगे॥ ७०-७१॥

भौत्य मनुके अधिकारकालकी पूर्णताके साथ कल्प पूर्ण हो जाता है। इस प्रकार मैंने भूत, भविष्यके इन मनुओंका वर्णन किया, जिनके विषयमें महातेजस्वी सनत्कुमारने व्यासजीसे कहा था। वे मनु एक हजार युगपर्यन्त अपने धर्मके अनुसार प्रजाओंका पालनकर तपस्यासे युक्त हो प्रजाओंके साथ ब्रह्मलोकको जाते हैं॥ ७२—७३½॥

इकहत्तर चतुर्युगीको एक मन्वन्तरका काल कहा जाता है। [हे महर्षे!] इस प्रकार मैंने कीर्तिको बढ़ानेवाले इन चौदह मनुओंका वर्णन कर दिया। सभी मन्वन्तरोंके पूर्ण हो जानेपर संहारके अन्तमें पुन: सृष्टि होती है। सैकड़ों वर्षोंमें भी उनके मन्वन्तरोंका वर्णन नहीं किया जा सकता है। सौ हजार चतुर्युगीके बीत जानेपर एक कल्पकी समाप्ति कही जाती है॥ ७४—७६॥

उस समय सूर्यकी किरणोंसे सभी प्राणी भस्म हो जाते हैं। हे मुने! वे समस्त प्राणी कल्पोंके अन्तमें ब्रह्मदेवको आगेकर आदित्यगणोंके साथ सभी प्राणियोंके स्रष्टा तथा देवताओंमें श्रेष्ठ श्रीहरि नारायणमें बार-बार प्रविष्ट होते रहते हैं॥ ७७-७८॥

इस प्रकार प्रत्येक कल्पके अन्तमें कालस्वरूप भगवान् रुद्र पुन: संहार करते हैं, इसका वर्णन मैं वैवस्वत मनुके प्रसंगमें करूँगा। इस प्रकार मैंने मन्वन्तरोंकी उत्पत्ति तथा विसर्गसे सम्बन्धित सम्पूर्ण आख्यान आपसे कह दिया। जो पुण्यप्रद, धन्यताको देनेवाला तथा कुलकी वृद्धि करनेवाला है॥ ७९-८०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सर्वमन्वन्तरानुकीर्तनवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

विवस्वान् एवं संज्ञाका वृत्तान्तवर्णनपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका वर्णन

सूतजी बोले—महर्षि कश्यपसे दक्षपुत्री [अदिति]-में विवस्वान् उत्पन्न हुए; उनकी पत्नी त्वष्टापुत्री देवी संज्ञा हुईं, जो सुरेणुका नामसे भी विख्यात हैं॥ १॥

रूप-यौवनसे समन्वित वह [संज्ञा] अपने पतिके असहिष्णु तथा दु:सह तेजसे सन्तुष्ट नहीं हुई॥ २॥

तब अत्यन्त तेजस्वी सूर्यके उस तेजको सहनेमें असमर्थ वह सुन्दरी जलती हुई [अत्यन्त] उद्विग्न हो गयी॥ ३॥

हे ऋषे! आदित्यने इस संज्ञासे तीन सन्तानें उत्पन्न कीं। सर्वप्रथम श्राद्धदेव प्रजापति मनु हुए, उसके अनन्तर यम और यमुना—ये दोनों जुड़वें पैदा हुए। इस प्रकार सूर्यसे संज्ञामें तीन सन्तानें उत्पन्न हुईं॥ ४-५॥

उसके बाद सूर्यके उस संवर्तुल अर्थात् उत्पीडक रूपको देखकर उसे सहन न करती हुई उस संज्ञाने अपनी सुन्दर छायाका निर्माण किया॥ ६॥

तब उस मायामयी छायाने संज्ञासे भक्तिपूर्वक कहा—हे शुभे! हे शुचिस्मिते! मैं यहाँ आपका कौन-सा कार्य करूँ, बताओ?॥ ७॥

संज्ञा बोली—तुम्हारा कल्याण हो, मैं अपने पिताके घर जा रही हूँ, तुम इस भवनमें निर्विकार भावसे निवास करो। यदि तुम मेरा हित चाहती हो, तो मेरे इन दोनों साधुस्वभाव पुत्रोंका और इस सुन्दरी कन्याका

सुखपूर्वक पालन करना॥ ८-९॥

छाया बोली—हे देवि! मैं अपना केश पकड़े जानेतक अत्याचार सहन करूँगी और तबतक आपका रहस्य सूर्यसे नहीं कहूँगी, आप सुखपूर्वक जाइये॥ १०॥

सूतजी बोले—ऐसा कहे जानेपर वह संज्ञा लज्जित हो अपने पिताके पास चली गयी। वहाँपर पिताने उसे बहुत फटकारा और वहाँ जानेके लिये उसे बारंबार विवश किया। तब वह अपने स्वरूपको छिपाकर घोड़ीका रूप धारण करके उत्तर कुरुदेशमें जाकर तृणोंके बीच [गुप्त रूपसे] विचरण करने लगी॥ ११-१२॥

उसके बाद सूर्यने छायाको ही संज्ञा समझकर उससे सावर्णि मनु नामक सुन्दर पुत्रको उत्पन्न किया॥ १३॥

संज्ञाद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भी वह छाया अपने पुत्र सावर्णिसे अधिक स्नेह करती थी, किंतु संज्ञापुत्रोंसे उतना स्नेह नहीं करती थी॥ १४॥

श्राद्धदेव मनुने तो इसे सह लिया, किंतु यमको यह सहन नहीं हुआ। इसलिये जब बचपनेके कारण तथा भवितव्यताके वश हो क्रोधित होकर उन वैवस्वत यमने छायाको पैर उठाकर धमकाया, तब पापिनी छायाने क्रोधपूर्वक उसे शाप दे दिया कि तुम्हारा यह चरण पृथ्वीपर गिर जाय। उसके बाद यमने हाथ जोड़कर सारा समाचार अपने पितासे निवेदन किया। शापके भयसे अत्यन्त व्याकुल एवं संज्ञाके वचनोंसे प्रेरित हुए यमने कहा कि माताको चाहिये कि वह अपने सभी पुत्रोंमें स्नेहपूर्वक समताका व्यवहार करे। किंतु वह छाया तो हमलोगोंसे स्नेह हटाकर केवल छोटे भाईका लालन-पालन करती है, इसीलिये मैंने उसे मारनेके लिये पैर उठाया, इसे आप क्षमा कीजिये। हे देवेश! हे तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ! हे गोपते! माताने मुझे शाप दिया है, अतः आपकी कृपासे मेरा चरण न गिरे॥ १५—२०॥

सविता बोले—हे पुत्र! इसमें निःसन्देह कोई कारण होगा, जिससे तुम्हारे जैसे धर्मज्ञ तथा सत्यवादीको क्रोध उत्पन्न हुआ। तुम्हारी माताका वचन तो मिथ्या नहीं किया जा सकता है। कीड़े तुम्हारे चरणोंका मांस लेकर पृथ्वीमें चले जायँगे। इससे उसकी बात भी सत्य हो जायगी और तुम्हारी रक्षा भी हो जायगी। हे तात! हे प्रभो! अपने मनको आश्वस्त कर लो और सन्देह मत करो॥ २१—२३॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वर! यम नामक पुत्रसे ऐसा कहकर आदित्य सूर्यने क्रोधित हो उस छायासे कहा— ॥ २४॥

सूर्य बोले—हे प्रिये! हे कुमते! हे चण्डि! तुमने यह क्या किया? तुम अपने पुत्रोंमें न्यूनाधिक स्नेह क्यों करती हो, इसे मुझको बताओ॥ २५॥

सूतजी बोले—अपनी इच्छासे प्रज्वलित हुए सूर्यदेवके द्वारा जलायी जाती हुई छायाने उनका कथन सुनकर तथ्यपूर्ण उत्तर दिया, तब सूर्यदेवने उसे सान्त्वना प्रदान की। उसकी बात सुनकर सूर्य त्वष्टाके पास गये और उन्होंने उनसे पूछा कि संज्ञा कहाँ है? तब त्वष्टाने सूर्यसे कहा— ॥ २६-२७॥

त्वष्टा बोले—आपके अत्यन्त तेजसे जलती रहनेके कारण उसे आपका यह रूप अच्छा नहीं लगता है, अतः उसे सहन न करती हुई वह तृणोंसे भरे वनमें निवास करती है। हे गोपते! योगबलसे युक्त तथा योगका आश्रय लेकर स्थित वह संज्ञा प्रशंसनीय है। हे देवेश! अपनी बात कहकर आप अनुकूल हो जाइये। अब मैं आपके रूपको मनोहर बना देता हूँ॥ २८-२९॥

सूतजी बोले—यह सुनकर विवस्वान् सूर्यका क्रोध दूर हो गया। तब त्वष्टा मुनिने सानपर स्थापितकर उनके तेजको छील दिया। इसके बाद तेजके छील दिये जानेसे उनका रूप मनोहारी हो गया। जब त्वष्टाने उनके रूपको अत्यधिक सुन्दर बना दिया, तब वे अति शोभित होने लगे। इस प्रकार सूर्यदेवने योगमें स्थित होकर अपने नियम और तेजके कारण सम्पूर्ण प्राणियोंद्वारा अपराजेय अपनी भार्याको देखा। तब अश्वका रूप धारणकर सूर्य संगकी इच्छासे वहाँ पहुँचे। हे मुने! तब संगके लिये चेष्टा करते हुए सूर्यको देखकर परपुरुषकी शंकासे युक्त संज्ञाने उनका शुक्र मुखसे लेकर नासिकामें धारण कर लिया॥ ३०—३४॥

उससे वैद्योंमें श्रेष्ठ युगल अश्विनीकुमार देवता उत्पन्न हुए। वे दोनों अश्विनीकुमार नासत्य अथवा दस्र कहे गये हैं॥ ३५॥

उसके बाद सूर्यने उसको अपने मनोहर रूपका दर्शन कराया। तब आत्मस्वरूप अपने पतिदेवको आदरपूर्वक देखकर वह (संज्ञा) प्रसन्न हो गयी। इसके बाद प्रसन्नमुखवाली वह सती पतिके साथ अपने घर चली गयी। इस प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष प्रीतिसे युक्त हो पहलेसे अधिक प्रसन्न हो गये॥ ३६-३७॥

[माताके तिरस्काररूप] उस कर्मसे अत्यन्त व्यथित धर्मराज यम धर्मपूर्वक प्रजाओंको प्रसन्न करने लगे। उस कर्मसे महातेजस्वी धर्मराजको पितरोंका आधिपत्य तथा लोकपालका पद प्राप्त हुआ॥ ३८-३९॥

तपोधन सावर्णिको भी प्रजापति मनुका पद प्राप्त हुआ। वे अपने उस कर्मसे वैवस्वत मनुके बाद सावर्णि मन्वन्तरके मनु होंगे॥ ४०॥

वे प्रभु आज भी सुमेरुपर्वतपर घोर तप कर रहे हैं। लोकमें उन्हें मनु कहा जाता है और सावर्णि भी कहा जाता है। उन दोनोंसे छोटी जो यशस्विनी कन्या यमी थी, वह नदियोंमें श्रेष्ठ लोकपावनी यमुना हुई॥ ४१-४२॥

जो देवगणोंके जन्मके इस आख्यानका श्रवण करता है अथवा स्मरण करता है, वह आपद्ग्रस्त होनेपर भी उससे मुक्त हो जाता है और महान् यश प्राप्त करता है॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें मन्वन्तरकीर्तनमें वैवस्वतवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

वैवस्वतमनुके नौ पुत्रोंके वंशका वर्णन

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] बादमें वैवस्वत मनुके नौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो उन्हींके समान विशालकाय, धैर्यशाली एवं क्षत्रिय धर्ममें तत्पर थे॥ १॥

[वे मनु पुत्र] इक्ष्वाकु, शिबि, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग [नाभागारिष्ट], करूष और प्रियव्रत नामवाले थे॥ २॥

हे मुनिश्रेष्ठ! [किसी समय] पुत्रकी कामनावाले प्रजापति मनुने यज्ञ किया, किंतु उस यज्ञमें पुत्र उत्पन्न नहीं हुए अपितु दिव्य वस्त्र धारण की हुई, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित तथा दिव्य अंगोंवाली इला [इडा] नामक कन्या उत्पन्न हुई॥ ३-४॥

तब दण्डधारी मनुने उससे कहा—हे इडा! तुम मेरा अनुसरण करो, इसपर इडाने पुत्रकी कामनावाले उन प्रजापति मनुसे यह धर्मसम्मत बात कही—॥ ५॥

इडा बोली—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं मित्रावरुणके अंशसे मैं उत्पन्न हुई हूँ। मैं उन्हीं दोनोंके पास जाऊँगी। मेरी रुचि इस प्रकारके अधर्ममें नहीं है॥ ६॥

ऐसा कहकर उस सुन्दरी सतीने मित्रावरुणके पास जाकर हाथ जोड़कर यह वचन कहा—हे महामुनियो! मैं मनुके यज्ञमें आप दोनोंके अंशसे उत्पन्न हुई हूँ। अब मैं आप दोनोंके समीप आयी हूँ। बताइये कि मैं क्या करूँ? [इडाने मनुसे भी कहा कि—] हे विभो! आपलोग अन्य पुत्रोंको उत्पन्न कीजिये, उन्हींसे आपका वंश चलेगा॥ ७—९॥

सूतजी बोले—ऐसा कहनेवाली, मनुके यज्ञमें उत्पन्न हुई उस साध्वी इडासे मित्रावरुण नामवाले दोनों मुनियोंने आदरपूर्वक कहा—॥ १०॥

मित्रावरुण बोले—हे धर्मज्ञे! हे सुश्रोणि! हे सुन्दरि! हम दोनों तुम्हारे इस विनय, नियम तथा सत्यसे प्रसन्न हैं॥ ११॥

हे महाभागे! तुम हम दोनोंकी ख्याति प्राप्त करोगी और तुम्हीं मनुका वंश बढ़ानेवाला पुत्र होओगी, जो सुद्युम्न नामसे तीनों लोकोंमें विख्यात होगा और संसारका प्रिय, धर्मपरायण तथा मनुवंशको बढ़ानेवाला होगा॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—ऐसा सुनकर वह लौट करके अपने पिताके पास जाने लगी, तभी अवसर पाकर बुधने उसे संगके लिये आमन्त्रित किया॥ १४॥

उसके पश्चात् चन्द्रमापुत्र बुधसे उस इडामें राजा पुरूरवाकी उत्पत्ति हुई, वह पुत्र अत्यन्त सुन्दर, बुद्धिमान् और उन्नत था, जो आगे चलकर उर्वशीका पति हुआ। इस प्रकार प्रेमपूर्वक पुरूरवा नामक पुत्रको जन्म देकर वह शिवजीकी कृपासे पुनः सुद्युम्न हो गयी॥ १५-१६॥

सुद्युम्नके तीन परम धार्मिक पुत्र हुए—उत्कल, गय तथा पराक्रमी विनताश्व। हे विप्रो! उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई, विनताश्वको पश्चिम दिशाका राज्य मिला और हे मुनिश्रेष्ठ! गयकी राजधानी पूर्वदिशामें गया नामकी पुरी कही गयी॥ १७-१८॥

हे तात! मनुके दिवाकरके शरीरमें प्रविष्ट होनेपर इस पृथ्वीको [इक्ष्वाकुने] दस भागोंमें विभक्त किया। ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकुने मध्यदेश प्राप्त किया। वसिष्ठके वचनके अनुसार उन महात्मा [सुद्युम्न]-का प्रतिष्ठानपुर राज्य हुआ। महायशस्वी सुद्युम्नने भी प्रतिष्ठानका राज्य प्राप्तकर उसमें धर्मराज्यकी प्रतिष्ठा की और वह प्रतिष्ठान नामक नगर पुरूरवाको दे दिया। हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार जो मनुपुत्र सुद्युम्न थे, वे स्त्री-पुरुषके लक्षणसे युक्त राजा हुए। नरिष्यन्तके पुत्र शक हुए। नभग (नाभाग)-के पुत्र अम्बरीष हुए। उन्हें बाह्लक देश प्राप्त हुआ। शर्यातिने युग्म सन्तानको उत्पन्न किया, जिसमें पुत्र आनर्त नामसे प्रसिद्ध हुआ तथा कन्याका नाम सुकन्या हुआ, जो च्यवनकी पत्नी बनी। आनर्तके पुत्रका नाम रैभ्य था, जो रैवत नामसे प्रसिद्ध हुए और जिनकी कुशस्थली नामक पुरी आनर्त देशमें थी, जो परम दिव्य तथा सप्त महापुरियोंमें क्रममें सातवीं मानी गयी है॥ १९—२५॥

उन रैवतके सौ पुत्र हुए, जिनमें ककुद्मी ज्येष्ठ थे, वे उत्तम, तेजस्वी, महाबली, पारगामी, धर्मपरायण और ब्राह्मणोंके पालनकर्ता थे। ककुद्मीसे रेवती नामक कन्या हुई, जो परम सौन्दर्ययुक्त तथा दूसरी लक्ष्मीके समान दिव्य थी॥ २६-२७॥

किसी समय सबके स्वामी राजा ककुद्मी अपनी कन्याको साथ लेकर उसके लिये ब्रह्माजीसे वर पूछनेहेतु ब्रह्मलोकमें गये॥ २८॥

उस समय वहाँ गायन हो रहा था, अवसर पाकर वे भी क्षणमात्र ब्रह्मदेवके पास रुककर गान-नृत्य सुनने-देखने लगे। हे मुनियो! उस मुहूर्तमात्रमें बहुत-से युग बीत गये, किंतु उन ककुद्मी राजाको इसका कुछ भी पता न लगा॥ २९-३०॥

इसके बाद उन्होंने ब्रह्माजीको नमस्कारकर हाथ जोड़ करके विनीतभावसे परमात्मा ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय निवेदन किया॥ ३१॥

उनका अभिप्राय सुनकर वे प्रजापति कुशल-मंगल पूछकर महाराज ककुद्मीसे हँसकर कहने लगे— ॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—हे राजन्! हे रैभ्यपुत्र! हे ककुद्मिन्! हे पृथ्वीपते! मेरी बात प्रेमपूर्वक सुनिये। मैं पूर्णतः सत्य कह रहा हूँ॥ ३३॥

आप जिन वरोंको हृदयसे चाहते हैं, उन्हें कालने हरण कर लिया है। अब वहाँ उनके गोत्रमें भी कोई नहीं रहा, क्योंकि काल सबका भक्षक है॥ ३४॥

हे राजन्! पुण्यजनों एवं राक्षसोंने आपकी पुरीको भी नष्ट कर दिया है, इस समय चल रहे अट्ठाईसवें द्वापरमें श्रीकृष्णने पुनः उसका निर्माण कराया है। अनेक द्वारोंवाली उस मनोरम पुरीका नाम द्वारावती है, वह वासुदेव आदि भोज, वृष्णि तथा अन्धकवंशियोंसे सुरक्षित है॥ ३५-३६॥

हे राजन्! अब आप प्रसन्नचित्त होकर वहीं चले जाइये और अपनी इस कन्याको वसुदेवपुत्र बलदेवको प्रदान कर दीजिये॥ ३७॥

सूतजी बोले—इस प्रकार आज्ञा प्राप्तकर वे राजा ककुद्मी उन्हें नमस्कारकर कन्याके साथ उस पुरीको गये और बहुत-से युगोंको बीता हुआ जानकर परम विस्मयको प्राप्त हुए। इसके बाद उन्होंने अपनी रेवती नामक युवती

कन्याको शीघ्र ही विधिपूर्वक श्रीकृष्णके ज्येष्ठ भ्राता बलरामको अर्पित कर दिया॥ ३८-३९॥

तत्पश्चात् वे महाप्रभु राजा मेरुके दिव्य शिखरपर चले गये और तपस्यामें निरत होकर शिवाराधन करने लगे॥ ४०॥

ऋषि बोले—[हे सूतजी!] वे ककुद्मी बहुत युगोंतक ब्रह्मलोकमें स्थित रहे, किंतु युवा रहकर ही मृत्युलोकको लौटे, हमलोगोंको यह महान् संशय है॥ ४१॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! वहाँपर ब्रह्माजीके समीप किसीको भी जरा, क्षुधा, प्यास आदि विकार एवं अकालमृत्यु आदि कुछ नहीं होता है॥ ४२॥

अत: वे राजा तथा वह कन्या जरा एवं मृत्युको प्राप्त नहीं हुए और वे अपनी कन्याके लिये वरहेतु परामर्श करके युवा ही लौट आये। इसके बाद उन्होंने श्रीकृष्णद्वारा निर्मित दिव्य द्वारकापुरीमें जाकर अपनी कन्याका विवाह बलरामके साथ कराया॥ ४३-४४॥

तदनन्तर उन धर्मनिष्ठ महाप्रभु बलरामके सौ पुत्र हुए और श्रीकृष्णके भी अनेक स्त्रियोंसे बहुत-से पुत्र हुए। उन दोनों ही महात्माओंका पर्याप्त वंशविस्तार हुआ और [उनके वंशज] धर्मात्मा क्षत्रिय प्रसन्न होकर सभी दिशाओंको फैल गये॥ ४५-४६॥

हे द्विजो! इस प्रकार शर्यातिके वंशका वर्णन किया, अब अन्य मनुपुत्रोंके वंशका वर्णन संक्षेपमें करता हूँ, आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ ४७॥

नाभागारिष्टका जो पुत्र हुआ, उसने ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया, वह अपने क्षत्रिय वंशकी स्थापना करके ब्राह्मणकर्मोंसे युक्त हुआ। धृष्टसे धार्ष्ट उत्पन्न हुए, वे भी क्षत्रिय थे, किंतु पृथ्वीपर ब्राह्मणत्वके आधिक्यसे युक्त हुए। करूषके पुत्र कारूष क्षत्रिय हुए, जो युद्धके मदसे उन्मत्त रहते थे॥ ४८-४९॥

मनुके ही एक पुत्र नृग हुए, जो विशेष रूपसे महादानी थे, वे ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी सम्पत्तियों तथा गौओंका दान करते थे॥ ५०॥

वे गोदानविधिमें गड़बड़ी होनेसे, अपनी कुबुद्धिसे तथा अपने पापसे गिरगिटकी योनिको प्राप्त हुए, बादमें श्रीकृष्णने उनका उद्धार किया। उन्हें प्रयाति नामक एक पुत्र हुआ, जो धर्मात्मा था। इस प्रकार मैंने व्यासजीसे जो सुना था, उसे संक्षेपमें कह दिया॥ ५१-५२॥

गुरुने मनुके पुत्र वृषघ्न (पृषध्र)-को गोपालनमें नियुक्त किया, वे वीरासनमें स्थित होकर सावधानीपूर्वक रात्रिमें गायोंकी रक्षा करने लगे। किसी समय गायोंका क्रन्दन सुनकर वे जग गये और गायोंकी हिंसा करनेके लिये गोशालामें आये हुए व्याघ्रको मारनेके लिये वे बलशाली वृषघ्न हाथमें तलवार लेकर दौड़े॥ ५३-५४॥

उन्होंने शेरके भ्रममें किसी बछड़ेका सिर काट दिया और वह व्याघ्र खड्ग धारण किये हुए उन राजाको देखकर भयभीत हो भाग गया॥ ५५॥

उस रात्रिमें वर्षा तथा आँधीसे बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण वे भ्रममें पड़ गये थे, अतएव वे व्याघ्रको मरा जानकर अपने स्थानको लौट गये॥ ५६॥

रात्रिके व्यतीत हो जानेपर वे प्रात:काल उठकर गोशालामें गये। वहाँ उन्होंने व्याघ्रके स्थानपर बछड़ेको मरा हुआ देखा, तब वे बड़े दुखी हुए॥ ५७॥

इस बातको सुनकर गुरुने बिना कारण जाने और बिना विचार किये उन अपराधी पृषध्रको शाप दिया कि अब तुम क्षत्रिय न रहकर शूद्र हो जाओ॥ ५८॥

इस प्रकार क्रोधपूर्वक कुलाचार्य गुरुके द्वारा शापित वे पृषध्र वहाँसे निकल गये और घोर वनमें चले गये। वे उस कष्टसे इतना दुखी हुए कि विरक्त होकर उन्होंने योगका आश्रय लिया और वनकी अग्निमें अपना शरीर जलाकर परम गतिको प्राप्त हुए॥ ५९-६०॥

मनुके एक अन्य पुत्र कवि शिवका अनुग्रह प्राप्तकर महाबुद्धिमान् हुए। उन्होंने इस लोकमें दिव्य सुख भोगकर परम दुर्लभ मुक्ति प्राप्त की॥ ६१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें मनुके नौ पुत्रोंका वंशवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

इक्ष्वाकु आदि मनुवंशीय राजाओंका वर्णन

सूतजी बोले—पूर्व समयमें [छींकते समय] मनुकी नासिकासे इक्ष्वाकु नामक पुत्रका जन्म हुआ। उन इक्ष्वाकुके विपुल दक्षिणा देनेवाले सौ पुत्र हुए॥ १॥

हे द्विजो! उनके बाद इस आर्यावर्तमें अनेक राजा हुए। इक्ष्वाकुके पुत्रोंमें सबसे बड़ा विकुक्षि था, वह अयोध्याका राजा हुआ॥ २॥

उसका वह कर्म प्रेमपूर्वक श्रवण करें, जो ब्रह्मवंशमें उत्पन्न होनेपर भी उससे [मोहवश] हो गया। पिताने श्राद्धकर्म करनेके लिये उसे श्राद्धसामग्री एकत्रित करनेकी आज्ञा दी, किंतु उसने श्राद्धकर्म किये बिना ही श्राद्धके लिये लाये गये खरगोशका भक्षण कर लिया, जिससे वह 'शशाद' कहा जाने लगा। इक्ष्वाकुने उसका त्याग कर दिया, तब वह शशाद वनकी ओर चला गया॥ ३-४॥

इक्ष्वाकुके मरनेके पश्चात् वह वसिष्ठके वचनानुसार राजा हुआ। शकुनि आदि नामोंवाले उसके पन्द्रह पुत्र कहे गये हैं॥ ५॥

वे सभी उत्तरापथ देशकी रक्षा करनेवाले राजा हुए। अयोधका पराक्रमी पुत्र ककुत्स्थ नामवाला हुआ। ककुत्स्थका पुत्र अरिनाभ तथा उसका पुत्र पृथु हुआ। पृथुका पुत्र विष्टराश्व और उससे इन्द्र [नामक] प्रजापति हुए॥ ६-७॥

इन्द्रका पुत्र युवनाश्व और उसका पुत्र प्रजापति श्राव हुआ। उसका पुत्र बुद्धिमान् श्रावस्त हुआ, जिसने श्रावस्ती नामक पुरीका निर्माण किया। श्रावस्तका पुत्र महायशस्वी बृहदश्व हुआ। उसका पुत्र युवनाश्व तथा उसका पुत्र कुवलाश्व हुआ, वह श्रेष्ठ राजा [कुवलाश्व] धुन्धुका वध करनेके कारण धुन्धुमार नामसे प्रसिद्ध हुआ। कुवलाश्वके पिताने कुवलाश्वको राजपदपर अभिषिक्त किया। कुवलाश्वके महाधनुर्धर सौ पुत्र थे॥ ८—१०॥

पुत्रको अपना राज्यभार देकर राजा [युवनाश्व] वनको जाने लगे, तब [वन] जाते हुए उन राजर्षिको उत्तंकने रोका॥ ११॥

उत्तंक बोले—हे राजन्! सुनिये, आपको धर्मपूर्वक पृथ्वीकी रक्षा करनी चाहिये, आप महात्माद्वारा रक्षा की जाती हुई इस पृथ्वीपर शान्ति रहेगी, अतः वन मत जाइये। मेरे आश्रमके समीप समतल मरुस्थलमें, जो कि समुद्रकी बालुकाओंसे पूर्ण है, एक बलोन्मत्त दानव रहता है, वह देवताओंसे भी अवध्य है, विशाल शरीरवाला तथा महाबली है॥ १२—१४॥

भूमिके भीतर प्रविष्ट होकर बालुकाके मध्यमें छिपा हुआ राक्षस मधुका अत्यन्त भयंकर धुन्धु नामक पुत्र कठिन तपस्यामें स्थित होकर लोकका नाश करनेके लिये उसीमें शयन कर रहा है॥ १५½॥

वह एक वर्षके बाद जब श्वास छोड़ता है, तब वन तथा पर्वतोंके सहित पृथ्वी कम्पित हो जाती है, उस समय उसके अंगार, चिनगारी और धुआँसे युक्त भयानक निःश्वाससे लोक भर जाता है। हे राजन्! इस कारणसे मैं अपने उस आश्रममें रहनेमें समर्थ नहीं हो पाता हूँ। अतः हे महाबाहो! लोकहितकी कामनासे आप उसे मार डालिये। आपके द्वारा उसके मारे जानेपर सभी लोग सुखी हो जायँगे, हे पृथ्वीपते! उसे मारनेमें आप ही समर्थ हैं॥ १६—१९॥

हे अनघ! पूर्व युगमें विष्णुने मुझको महान् वरदान दिया था, अतः वे विष्णु अपने तेजसे आपके तेजका संवर्धन करेंगे। इस लोकमें प्रजापालनमें महान् धर्म देखा जाता है, वैसा धर्म वनमें नहीं देखा जाता है, अतः आप ऐसा विचार छोड़ दें। हे राजेन्द्र! ऐसा धर्म कहीं नहीं है, जैसा प्रजाओंके पालनमें है, पूर्वकालके राजर्षियोंने ऐसा ही धर्माचरण किया था॥ २०—२२॥

इस प्रकार महात्मा उत्तंकके द्वारा कहे जानेपर उन राजर्षिने धुन्धुका वध करनेके लिये अपना पुत्र कुवलाश्व उनको दे दिया॥ २३॥

हे भगवन्! हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने शस्त्रका त्याग कर दिया है, यह मेरा पुत्र ही [उस दैत्य] धुन्धुका वध करेगा, इसमें सन्देह नहीं है—ऐसा कहकर और अपने पुत्रको आज्ञा देकर वे राजा तप करनेके लिये चले गये।

इसके बाद कुवलाश्व धुन्धुका वध करनेके लिये उत्तंकके साथ चल दिया॥ २४-२५॥

उस समय प्रभु भगवान् विष्णु उत्तंककी प्रेरणासे तथा लोकहितकी कामनासे अपने तेजके साथ उसमें प्रवेश कर गये॥ २६॥

उस दुर्धर्ष कुवलाश्वके प्रस्थान करनेपर आकाशमें महान् ध्वनि होने लगी कि यह श्रीमान् राजपुत्र धुन्धुका वध करेगा। उस समय देवता सभी ओरसे उसके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे और जय-जीव कहते हुए उसकी प्रशंसा करने लगे॥ २७-२८॥

जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ उस राजाने अपने पुत्रोंके साथ वहाँ जाकर बालुकाके मध्यमें समुद्रको खोदना प्रारम्भ किया। विप्रर्षि [उत्तंक तथा] नारायणके तेजसे व्याप्त हुआ वह [राजपुत्र कुवलाश्व] महातेजस्वी तथा अत्यन्त बलवान् हो गया था॥ २९-३०॥

हे ब्रह्मन्! समुद्रको खोदते हुए उसके पुत्रोंने पश्चिम दिशाका आश्रय ले करके बालुकाके बीचमें स्थित उस धुन्धुको प्राप्त कर लिया॥ ३१॥

वह अपने मुखसे उत्पन्न अग्निसे क्रोधपूर्वक जगत्को मानो भस्म-सा करता हुआ वेगके साथ जल बरसाने लगा, जैसे कि पूर्ण चन्द्रमाके उदय होनेपर समुद्रका जल भी ऊपर उठने लगता है॥ ३२॥

हे मुनीश्वर! उसकी मुखाग्निसे कुवलाश्वके जो सौ पुत्र थे, उनमें केवल तीन ही शेष रहे और सब मरकर भस्म हो गये। हे विप्रेन्द्र! इसके बाद वह महातेजस्वी राजा महाबलवान् तथा ब्राह्मणविनाशक उस धुन्धु राक्षसके समीप पहुँच गया॥ ३३-३४॥

उस राजाने अग्निबाणसे उसके वारिमय वेगको पीकर शान्त किया और वारुण बाणसे उसकी मुखाग्निकी ज्वाला शान्त कर दी। इस प्रकार उस राजाने जलके मध्यमें रहनेवाले उस महाकाय राक्षसका वधकर उत्तंककी कृपासे अपना सारा कार्य सिद्ध माना॥ ३५-३६॥

हे महामुने! उत्तंकने उस राजाको वरदान दिया। उन्होंने उसे अक्षय धन दिया और शत्रुओंसे पराजय न होनेका वरदान दिया। धर्ममें सदा बुद्धि, स्वर्गमें अक्षय वास तथा राक्षसके द्वारा मारे गये पुत्रोंको अक्षयलोककी प्राप्तिका भी वरदान दिया॥ ३७-३८॥

उसके जो तीन पुत्र बचे थे, उनमें दृढाश्व श्रेष्ठ [ज्येष्ठ] कहा गया। कुमार हंसाश्व तथा कपिलाश्व उससे छोटे थे। जो धुन्धुमारका पुत्र दृढाश्व था, उसका पुत्र हर्यश्व हुआ। हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सदा धर्ममें संलग्न रहता था॥ ३९-४०॥

निकुम्भका पुत्र संहताश्व था, जो संग्रामविशारद था। हे द्विजो! संहताश्वके अक्षाश्व और कृताश्व नामक पुत्र हुए। सज्जनोंद्वारा समादृत हिमवान्की पुत्री दृषद्वती कृताश्वकी भार्या हुई, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थी, उसीका पुत्र प्रसेनजित् हुआ। प्रसेनजित्ने गौरी नामक पतिव्रता स्त्रीको प्राप्त किया, उसके पतिने उसे शाप दे दिया और वह बाहुदा नामक नदी हुई॥ ४१—४३॥

उसका पुत्र युवनाश्व महान् राजा हुआ। युवनाश्वका पुत्र मान्धाता तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध था। उसकी पत्नी चैत्ररथी थी, जो शशबिन्दुकी कन्या थी। वह महान् पतिव्रता थी और अपने दस हजार भाइयोंमें सबसे बड़ी थी। उस मान्धाताने उससे धर्मज्ञ तथा धर्मपरायण पुरुकुत्स तथा मुचुकुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न किये॥ ४४—४६॥

पुरुकुत्सका पुत्र विद्वान् और कवि त्रय्यारुणि नामवाला हुआ और उसका सत्यव्रत नामक महाबली पुत्र हुआ॥ ४७॥

उसने ब्राह्मण महात्माओंके द्वारा पाणिग्रहण मन्त्रोंके पाठ किये जाते समय किसी दूसरे पुरुषसे ब्याही जानेवाली स्त्रीका अपहरण कर लिया॥ ४८॥

उसने आसक्ति, मोह, हर्ष, मदकी अधिकता तथा स्वेच्छासे किसी पुरवासीकी कन्याका बलपूर्वक अपहरण किया था, इसलिये राजा त्रय्यारुणिने उस अधर्मीका त्याग करते हुए कुपित होकर उससे बारंबार कहा—'अब तुम चले जाओ'॥ ४९-५०॥

तब उस दुष्टने पितासे कहा कि 'मैं कहाँ जाऊँ?' इसपर राजाने उससे कहा कि तुम चाण्डालोंके समीप रहो। इस प्रकार अपने धार्मिक पिताके द्वारा परित्यक्त हुआ वह वीर सत्यव्रत चाण्डालोंकी बस्तीके समीप निवास करने लगा॥ ५१-५२॥

इसके बाद पुत्रके कर्मके कारण विरक्त हुआ वह

राजा त्रय्यारुणि सब कुछ छोड़कर भगवान् शंकरकी तपस्या करनेके लिये वनको चला गया। हे विप्रर्षे! तब उस अधर्मके कारण उसके राज्यमें बारह वर्षतक इन्द्रने वर्षा नहीं की। उस समय महातपस्वी विश्वामित्र अपनी स्त्रीको सत्यव्रतके समीप रखकर समुद्रके समीप कठिन तप करने लगे॥ ५३—५५॥

उनकी स्त्री अपने मध्यम औरस पुत्रको गलेमें बाँधकर शेष पुत्रोंके भरण-पोषणके लिये सौ गाएँ लेकर उसे बेचने लगी। तब गलेमें बँधे हुए अपने पुत्रको बेचती हुई उस स्त्रीको देखकर धर्मात्मा सत्यव्रतने महर्षिके उस पुत्रको छुड़ाया॥ ५६-५७॥

महाबाहु सत्यव्रत विश्वामित्रको प्रसन्न करनेके लिये तथा दयापरवश होकर उस पुत्रका भरण-पोषण करने लगा। उसी समयसे मुनि विश्वामित्रका वह पुत्र गलेमें बाँधे जानेके कारण महातपस्वी 'गालव' नामसे विख्यात हुआ॥ ५८-५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें मनुवंशवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

सत्यव्रत-त्रिशंकु-सगर आदिके जन्मके निरूपणपूर्वक उनके चरित्रका वर्णन

सूतजी बोले—तदनन्तर सत्यव्रत उनकी सेवाके उद्देश्यसे तथा कृपासे और अपनी प्रतिज्ञासे विश्वामित्रकी पत्नीका [भरण-] पोषण करने लगा॥ १॥

हे मुने! वह मृग, वाराह, महिष तथा अन्य वनेचर जन्तुओंका वधकर उनका मांस नित्य विश्वामित्रके आश्रमके समीप रख देता था॥ २॥

इधर [त्रय्यारुणिके वन चले जानेपर] मुनि वसिष्ठ यजमान तथा पुरोहितके सम्बन्धसे उनके तीर्थ, पृथ्वी, राज्य तथा अन्तःपुरकी रक्षा करने लगे॥ ३॥

सत्यव्रतके वचनसे अथवा होनहारकी प्रेरणासे वसिष्ठजी उसके प्रति अधिक क्रोध रखते थे। इसी कारणसे पिताके द्वारा राज्यसे अपने पुत्रके निकाल दिये जानेपर भी मुनि वसिष्ठने मना नहीं किया था॥ ४-५॥

यद्यपि पाणिग्रहण-क्रियाकी समाप्ति सप्तपदीपर होती है, [इससे पूर्व कन्याग्रहण विहित है, तथापि इसी बहाने इसका व्रत हो जायगा, इस प्रकारके] वसिष्ठजीके आशयको सत्यव्रत समझ नहीं सका। वसिष्ठजीने सोचा कि ऐसा करनेसे पिता भी प्रसन्न हो जायँगे और इसके कुलकी निष्कृति भी हो जायगी। इसलिये पिताके द्वारा परित्याग करनेपर भी वसिष्ठने उन्हें मना नहीं किया। उन्होंने सोचा कि उपांशुव्रत पूरा हो जानेपर मैं स्वयं इसका अभिषेक करूँगा, इसलिये उस समय मुनिने कुछ नहीं कहा॥ ६—८॥

इस प्रकार उस बली राजपुत्रने बारह वर्षतक उस दीक्षाको धारण किया। किसी समय कहीं भी मांस न मिलनेपर उस राजकुमारने महात्मा वसिष्ठकी गौको देखा, जो सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली थी। हे मुने! क्रोध, लोभ एवं मोहके कारण चाण्डालधर्मको प्राप्त हुए क्षुधासे पीड़ित उस राजाने उस गायको मार दिया और उसने उसके मांसको स्वयं खाया और विश्वामित्रके पुत्रको भी खिलाया। तब यह सुनकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ उसपर बहुत कुपित हुए और क्रोधित होकर उससे कहने लगे—॥ ९—१२॥

वसिष्ठजी बोले—अरे क्रूर! यदि तुझमें फिरसे किये गये ये दो शंकु (पाप) न होते तो मैं तेरे प्रथम शंकुको अवश्य नष्ट कर देता॥ १३॥

[कन्याहरणद्वारा] पिताको असन्तुष्ट करने, गुरुकी गायका वध करने और अप्रोक्षित मांसका भक्षण करनेके कारण तुमने तीन प्रकारका अपराध किया है, अतः तुम त्रिशंकु हो जाओगे, तब उनके इस प्रकार कहनेपर वह त्रिशंकु—इस नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ $१४^१/_२$॥

जब विश्वामित्र तपस्याकर [अपने आश्रम] आये, तब त्रिशंकुके द्वारा अपनी स्त्रीका भरण-पोषण किये जानेके कारण उन्होंने वर माँगनेके लिये उससे कहा,

तब राजपुत्रने वर माँगा और उन मुनिने प्रसन्न होकर उस त्रिशंकुको वर प्रदान किया॥ १५-१६॥

बारह वर्षकी इस अनावृष्टिका भय दूर हो जानेपर मुनिने उसे पिताके राज्यपर अभिषिक्त करके उससे यज्ञ कराया। उसके बाद प्रभु विश्वामित्रने वसिष्ठ एवं सभी देवताओंके देखते-देखते उसे सशरीर स्वर्ग भेज दिया॥ १७-१८॥

केकयवंशमें उत्पन्न उसकी सत्यरथा नामक भार्याने हरिश्चन्द्र नामक निष्पाप पुत्रको उत्पन्न किया। वे ही राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकुके पुत्र होनेसे त्रैशंकव भी कहे गये हैं। ये राजसूययज्ञके कर्ता और चक्रवर्ती राजाके रूपमें प्रसिद्ध हुए॥ १९-२०॥

हरिश्चन्द्रका पुत्र रोहित नामसे प्रसिद्ध हुआ। रोहितका पुत्र वृक था और वृकसे बाहु उत्पन्न हुआ॥ २१॥

हे विप्रो! उस धर्मयुगमें वह राजा सम्यग् रीतिसे धर्मका पालन नहीं करता था, [जिसके कारण] हैहय और तालजंघ राजाओंने उसे [धर्महीन जानकर] राज्यसे हटा दिया। [तत्पश्चात्] और्वके आश्रममें आकर भार्गवके द्वारा रक्षित उस बाहुने गरसहित सगर नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥ २२-२३॥

राजा सगरने भार्गवसे आग्नेयास्त्र पाकर हैहयवंशी तालजंघों, शकों, बहूदकों, पारदों एवं गणोंसहित खशोंको मारकर पृथ्वीको जीत लिया एवं उत्तम धर्मकी स्थापना की तथा धर्मपूर्वक पृथ्वीपर शासन किया॥ २४-२५॥

शौनक बोले—हे सूतजी! वे [सगर] क्षत्रिय बाहुसे किस प्रकार गरके सहित उत्पन्न हुए और उन्होंने किस प्रकार सभीको जीता, इसे विस्तारपूर्वक कहिये॥ २६॥

सूतजी बोले—हे मुने! परीक्षित्-पुत्र (जनमेजय)-के पूछनेपर वैशम्पायनने जो कहा था, उसीको मैं कह रहा हूँ, आप एकाग्रचित्त होकर सुनें॥ २७॥

परीक्षित्के पुत्र (जनमेजय) बोले—हे मुने! वे राजा सगर किस प्रकार गरसहित उत्पन्न हुए और उन्होंने उन राजाओंका वध कैसे किया? आप इसे बतानेकी कृपा करें॥ २८॥

वैशम्पायन बोले—हे तात! हे विशाम्पते! व्यसन-ग्रस्त बाहुका सारा राज्य शकोंके साथ हैहयवंशी तालजंघोंने छीन लिया॥ २९॥

यवन, पारद, काम्बोज, पाह्लव और बहूदक राक्षसोंके ये पाँच गण कहे गये हैं। हे राजन्! राक्षसोंके इन पाँच गणोंने हैहयोंके लिये पराक्रम करके बलपूर्वक बाहुका राज्य उन्हें दे दिया॥ ३०-३१॥

नष्ट राज्यवाला वह राजा [बाहु] दु:खित होकर अपनी पत्नीके साथ वन चला गया और उसने प्राण त्याग दिये। उसकी जो यादवी नामक पत्नी साथमें गयी थी, वह गर्भिणी अवस्थामें थी और उसकी सौतने पुत्रके ईर्ष्यावश उसे विष दे दिया॥ ३२-३३॥

हे राजन्! वह पतिकी चिता बनाकर अग्निमें प्रवेश करने लगी, तब भार्गव और्वने दयापूर्वक उसे [सती होनेसे] रोक दिया। उसके अनन्तर अपने गर्भकी रक्षाके लिये वह उन्हींके आश्रममें निवास करने लगी और मनमें शंकरका ध्यान करती हुई उन महामुनिकी सेवा करने लगी॥ ३४-३५॥

किसी समय पाँच उच्च ग्रहोंसे युक्त शुभ मुहूर्त तथा शुभ लग्नमें उसका गर्भ विषके साथ उत्पन्न हुआ॥ ३६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस सर्वथा बलवान् लग्नमें महाबाहु राजा सगरने जन्म लिया॥ ३७॥

और्वने उस महात्माके जातकर्म आदि संस्कार करके बादमें वेद-शास्त्रोंको पढ़ाकर उसे अस्त्र-विद्या सिखायी और उन नृपश्रेष्ठ महाभाग सगरने विधिपूर्वक प्रसन्नतासे देवताओंके लिये भी दु:सह उस आग्नेयास्त्रकी शिक्षा ग्रहण की॥ ३८-३९॥

इसके बाद उसने अपनी सेनासे युक्त होकर आग्नेयास्त्रके बलसे क्रुद्ध हो शीघ्र ही हैहयोंका वध किया और यशस्वियोंमें श्रेष्ठ उन सगरने लोकोंमें अपना यश फैलाया तथा पृथ्वीतलपर धर्मकी स्थापना की॥ ४०-४१॥

तब उनके द्वारा मारे जाते हुए शक, यवन, काम्बोज तथा पाह्लव [नरेश भयभीत हो] वसिष्ठकी शरणमें गये। महातेजस्वी वसिष्ठने नैतिक छल करके कुछ शर्तोंके द्वारा उन्हें अभय प्रदानकर राजा सगरको उनका वध करनेसे रोक दिया॥ ४२-४३॥

सगरने अपनी प्रतिज्ञा और गुरुके वाक्यको ध्यानमें

रखकर उनके धर्म नष्ट कर दिये और उनके केशोंको विरूप कर दिया॥ ४४॥

उन्होंने शकोंका आधा सिर और यवनों तथा काम्बोजोंका सारा सिर मुंडवाकर उन्हें छोड़ दिया॥ ४५॥

उन महात्माने पारदोंका केश मुड़वा दिया तथा पह्लवोंको दाढ़ी-मूँछ धारण करा दिया और उन्हें स्वाध्याय एवं वषट्कारसे रहित कर दिया॥ ४६॥

हे तात! पूर्वकालमें उस राजाने सम्पूर्ण पृथ्वीको धर्मपूर्वक जीत लिया और उन सभी क्षत्रियोंको धर्महीन बना दिया। इस प्रकार उस धर्मविजयी राजाने इस पृथ्वीको जीतकर अश्वमेध-यज्ञ करनेके लिये एक घोड़ेका संस्कार कराया॥ ४७-४८॥

हे मुने! अश्वको छोड़ दिये जानेपर वह पूर्व-दक्षिण समुद्रके तटपर पहुँच गया, राजा सगरके साठ हजार पुत्र उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवाले देवराज इन्द्रने समुद्रके तटसे उस घोड़ेको चुरा लिया और उसे भूमितलमें रख दिया॥ ४९-५०॥

तब महाराज सगरने उस घोड़ेको खोजनेके लिये अपने पुत्रोंसे उस देशको सभी ओरसे खुदवा डाला॥ ५१॥

तदनन्तर उन सबने उस खोदे जाते हुए महासागरमें विश्वरूपी आदिपुरुष उन प्रभु [महर्षि] कपिलको प्राप्त किया॥ ५२॥

उनके जागते ही उनके नेत्रोंसे निकली हुई अग्निके द्वारा [सगरके] साठ हजार पुत्र जल गये और केवल चार ही शेष रहे। हर्षकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और पराक्रमी पंचजन—ये ही उनके वंशको चलानेवाले राजा बचे थे॥ ५३-५४॥

भगवान् कपिलने [प्रसन्न होकर] उन्हें स्वयं वंश, विद्या, कीर्ति, पुत्रके रूपमें समुद्र और धन—ये पाँच वर दिये। अपने उस कर्मसे समुद्रने सागरत्व अर्थात् सगरका पुत्रत्व प्राप्त किया और उन्होंने उस आश्वमेधिक घोड़ेको भी समुद्रसे प्राप्त किया। उन महायशस्वीने सौ अश्वमेध-यज्ञ सम्पन्न किये और शिवकी विभूतियों तथा सच्चरित्र देवताओंका पूजन किया॥ ५५—५७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें सत्यव्रतादिसगरपर्यन्तवंशवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

सगरकी दोनों पत्नियोंके वंशविस्तारवर्णनपूर्वक वैवस्वतवंशमें उत्पन्न राजाओंका वर्णन

शौनक बोले—हे सूतजी! सगरके साठ हजार महाबली पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुए और उन्होंने किस प्रकार अपना पराक्रम प्रदर्शित किया, वह सब कहिये॥ १॥

सूतजी बोले—हे शौनक! महाराज सगरकी दो स्त्रियाँ थीं, उन्होंने तपस्याके द्वारा अपने पापको दग्ध कर दिया, तब मुनिश्रेष्ठ और्वने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया॥ २॥

उनमेंसे एकने तो महाबलशाली साठ हजार पुत्रोंका वर माँगा और दूसरी वरशालिनीने स्वेच्छासे वंशवृद्धि करनेवाले एक ही पुत्रको माँगा। पहलीने घर आनेपर यथासमय बहुतसे शूरवीर पुत्रोंके वरके कारण पुत्ररूप बीजोंसे पूर्ण तुम्बीको उत्पन्न किया, जिसमें अलग-अलग सभी बालक बीजरूपसे वर्तमान थे॥ ३-४॥

सगरको प्रसन्न करनेवाले ये बालक पृथक्-पृथक् घृतकुम्भोंमें रखे गये और धाइयोंने यथाक्रम इनका पालन-पोषण किया। [आगे चलकर] महर्षि कपिलकी क्रोधाग्निमें जलकर भस्म हुए उन महात्मा पुत्रोंके अतिरिक्त [दूसरी रानीसे उत्पन्न हुआ] एक पंचजन नामक पुत्र [बादमें] राजा हुआ॥ ५-६॥

उसके बाद पंचजनके पराक्रमी पुत्र अंशुमान् हुए। उनके पुत्र दिलीप हुए, जिनके पुत्र भगीरथ हुए, जिन सामर्थ्यवान्ने नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाको लाकर पृथ्वीपर उतारा तथा इन्हें समुद्रमें मिलाया और इन्हें अपनी पुत्री बनाया॥ ७-८॥

भगीरथके पुत्र राजा श्रुतसेन कहे गये हैं। उनके पुत्र नाभाग हुए, जो परम धार्मिक थे। नाभागके पुत्र

अम्बरीष और उनके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीपके पुत्र वीर्यवान् अयुताजित् हुए॥ ९-१०॥

अयुताजित्के पुत्र महायशस्वी राजा ऋतुपर्ण हुए, जो दिव्य अक्ष (द्यूतक्रीड़ा)-के मर्मज्ञ थे एवं नलके परम सुहृद् थे॥ ११॥

ऋतुपर्णके पुत्र महातेजस्वी अनुपर्ण हुए और उनके पुत्र कल्माषपाद हुए, जिनका दूसरा नाम मित्रसह भी था। कल्माषपादके सर्वकर्मा नामक पुत्र हुए और सर्वकर्माके अनरण्य नामक पुत्र हुए॥ १२-१३॥

अनरण्यके पुत्र विद्वान् राजा मुण्डिद्रुह हुए उनके पुत्र निषध, रति और खट्वांग हुए। हे अनघ! जिन खट्वांगने स्वर्गसे इस लोकमें आकर मुहूर्तमात्रका जीवन प्राप्तकर अपनी बुद्धि एवं सत्यसे तीनों लोकोंका संग्रह किया॥ १४-१५॥

उनके पुत्र दीर्घबाहु हुए और उनके पुत्र रघु हुए। उनके पुत्र अज हुए और उनसे दशरथ उत्पन्न हुए॥ १६॥

दशरथसे रामचन्द्र उत्पन्न हुए, जो धर्मात्मा तथा महायशस्वी थे। जो विष्णुके अंश तथा महाशैव थे और जिन्होंने रावणका वध किया था। उनका चरित्र पुराणोंमें अनेक प्रकारसे वर्णित है तथा रामायणमें तो प्रसिद्ध ही है, इसलिये यहाँ विस्तारसे वर्णन नहीं किया गया॥ १७-१८॥

रामचन्द्रके कुश नामक पुत्र हुए, जो अत्यन्त प्रसिद्ध थे, कुशसे अतिथि उत्पन्न हुए। उन अतिथिके पुत्र निषध हुए॥ १९॥

निषधके पुत्र नल, नलके पुत्र नभ, नभके पुत्र पुण्डरीक और उनके पुत्र क्षेमधन्वा कहे गये हैं॥ २०॥

क्षेमधन्वाके पुत्र महाप्रतापी देवानीक थे और देवानीकके पुत्र राजा अहीनगु थे॥ २१॥

अहीनगुके पुत्र पराक्रमी सहस्वान् हुए तथा उनके पुत्र वीरसेन हुए। ये वीरसेन (निषधराज नलके पिता वीरसेनसे भिन्न) इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुए थे। इनके पुत्र पारियात्र थे, जिनके बल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बलके पुत्रका नाम स्थल था॥ २२-२३॥

सूर्यदेवके अंशसे उत्पन्न तथा अतिपराक्रमी यक्ष स्थलके पुत्र थे। यक्षके पुत्रका नाम अगुण था, जिनके पुत्र विधृति हुए। उनके पुत्र योगाचार्य हिरण्यनाभ हुए। वे महर्षि जैमिनिके शिष्य तथा अध्यात्मविद्याके विशिष्ट वेत्ता थे। इन्हीं नृपश्रेष्ठ हिरण्यनाभसे कोसलदेशवासी याज्ञवल्क्यऋषिने हृदयग्रन्थिका भेदन करनेवाला अध्यात्मयोग प्राप्त किया था॥ २४—२६॥

हिरण्यनाभके पुत्र पुष्य थे और उनके पुत्र ध्रुव हुए। ध्रुवके पुत्र अग्निवर्ण थे, जिनके पुत्रका नाम शीघ्र था। शीघ्रके पुत्र सिद्धयोगी मरुत् (मरु) हुए, जो कलाप-ग्रामवासी मुनियोंके साथ इस समय भी विद्यमान हैं। वे [राजर्षि] मरु कलियुगके अन्तमें नष्ट हुए सूर्यवंशका पुनः प्रवर्तन करेंगे॥ २७—२९॥

उनके पुत्र पृथुश्रुत हुए तथा पृथुश्रुतके पुत्र सन्धि हुए। उनके अमर्षण हुए और अमर्षणके पुत्र मरुत्वान् हुए। उनके विश्वसाह्व तथा विश्वसाह्वके प्रसेनजित् हुए। प्रसेनजित्से तक्षकका जन्म हुआ, जिनके पुत्र बृहद्बल थे॥ ३०-३१॥

ये इक्ष्वाकुवंशमें अभीतक हुए राजागण यहाँ बताये गये हैं, आगे होनेवाले धर्मविद् राजाओं तथा उनके वंशधरोंके विषयमें श्रवण कीजिये। बृहद्बलका पुत्र बृहद्रण होगा तथा उसका पुत्र उरुक्रिय होगा। उरुक्रियसे वत्सवृद्ध और उससे प्रतिव्योमा होगा। प्रतिव्योमासे भानु तथा उससे सेनापति दिवाक होगा। दिवाकका पुत्र महावीर सहदेव तथा उसका पुत्र बृहदश्व होगा। बृहदश्वसे भानुमान् नामक बलवान् पुत्र होगा॥ ३२—३५॥

भानुमान्का पुत्र भावी होगा और उसका पुत्र पराक्रमशाली प्रतीकाश्व होगा। प्रतीकाश्वसे नृपश्रेष्ठ सुप्रतीक होगा। उससे मरुदेव तथा मरुदेवसे सुनक्षत्रका जन्म होगा। हे ब्राह्मणो! उसका पुत्र पुष्कर होगा, जिससे अन्तरिक्षका जन्म होगा। उससे सुतपा नामक वीर पुत्र होगा, जिसका पुत्र मित्रचित् होगा। मित्रचित्से बृहद्भ्राज तथा उससे बर्हिका जन्म होगा॥ ३६—३८॥

बर्हिसे कृतंजय और उससे रणंजय होगा। उसका पुत्र संजय तथा संजयसे शाक्यका जन्म होगा। शाक्यका

पुत्र शुद्धोद तथा उससे लांगणका जन्म होगा। उससे प्रसेनजित्, प्रसेनजित्से शूद्रक, उससे रुणक, रुणकसे सुरथ तथा सुरथसे इस वंशके अन्तिम राजा सुमित्रका जन्म होगा॥ ३९—४१॥

धर्ममें निरत, पवित्र आचरणवाले तथा आश्चर्यजनक पराक्रमसे सम्पन्न इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंका यह वंश [महाराज] सुमित्रतक ही रहेगा। कलियुगमें राजा सुमित्रके साथ ही यह शोभन राजवंश समाप्त हो जायगा और पुनः ब्राह्म सत्ययुगमें बढ़ेगा॥ ४२-४३॥

इस प्रकार मैंने वैवस्वतवंशमें हुए विपुल दक्षिणा देनेवाले इक्ष्वाकुवंशीय मुख्य-मुख्य राजाओंका वर्णन कर दिया। प्रजाओंको पुष्टि प्रदान करनेवाले भगवान् आदित्यके पुत्र वैवस्वत श्राद्धदेवकी यह सृष्टि परम पुण्य प्रदान करनेवाली है॥ ४४-४५॥

[भगवान्] आदित्यकी इस सृष्टिको पढ़ने तथा सुननेवाला मानव सन्तानपरम्परासे युक्त होता है और इस लोकमें परम सुख भोगकर सायुज्यमुक्ति प्राप्त करता है॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें वैवस्वतवंशोद्भवराजवर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

पितृश्राद्धका प्रभाव-वर्णन

व्यासजी बोले—श्राद्धदेव सूर्यके वंशके वर्णनको सुनकर मुनिश्रेष्ठ शौनकने सूतजीसे आदरपूर्वक पूछा॥ १॥

शौनकजी बोले—हे सूतजी! हे चिरंजीव! हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है, आपने परम दिव्य एवं अति पवित्र कथा सुनायी॥ २॥

आपने कहा कि श्राद्धके देवता सूर्यदेव हैं, जो उत्तम वंशकी वृद्धि करनेवाले हैं, इस विषयमें मुझे एक सन्देह है, उसे मैं आपके समक्ष कहता हूँ॥ ३॥

विवस्वान् सूर्यदेव श्राद्धदेव क्यों कहे जाते हैं? मेरे इस सन्देहको दूर कीजिये, मैं उसे प्रेमपूर्वक सुनना चाहता हूँ॥ ४॥

हे प्रभो! आप श्राद्धके माहात्म्य तथा उसके फलको भी कहिये, जिससे पितृगण प्रसन्न होकर अपने वंशजका निरन्तर कल्याण करते हैं॥ ५॥

हे महामते! मैं पितरोंकी श्रेष्ठ उत्पत्तिको सुनना चाहता हूँ, आप इसे कहिये और [मेरे ऊपर] विशेष कृपा कीजिये॥ ६॥

सूतजी बोले—हे शौनक! मैं उस समस्त पितृसर्गको आपसे प्रेमपूर्वक कह रहा हूँ, जैसा कि भीष्मके पूछनेपर मार्कण्डेयने उनसे कहा था और महर्षि सनत्कुमारने बुद्धिमान् मार्कण्डेयसे जो कहा था, उसे मैं आपसे कहूँगा। यह सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ ७-८॥

युधिष्ठिरके पूछनेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भीष्मने शरशय्यापर लेटे हुए जो कहा था, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनिये॥ ९॥

युधिष्ठिरजी बोले—[हे पितामह!] पुष्टि चाहनेवाले पुरुषको किस प्रकार पुष्टिकी प्राप्ति होती है और कौन-सा कार्य करनेवाला [मनुष्य] दुखी नहीं होता, इसे मैं सुनना चाहता हूँ॥ १०॥

सूतजी बोले—युधिष्ठिरके द्वारा आदरसहित पूछे गये प्रश्नको सुनकर वे धर्मात्मा भीष्म सभीको सुनाते हुए प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे—॥ ११॥

भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर! जो मनुष्य प्रेमसे श्राद्धोंको करते हैं, उन श्राद्धोंसे निश्चय ही पितरोंकी कृपासे उसका सब कुछ सम्पन्न हो जाता है। श्रेष्ठ फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य पिता, पितामह और प्रपितामह—इन तीनोंका पिण्डोंसे श्राद्ध सदा करते हैं। हे युधिष्ठिर! [श्राद्धसे प्रसन्न हुए] पितर धर्म तथा प्रजाकी इच्छा करनेवालेको धर्म तथा सन्तान प्रदान करते हैं और पुष्टि चाहनेवालेको पुष्टि प्रदान करते हैं॥ १२—१५॥

युधिष्ठिर बोले—[हे पितामह!] किन्हींके पितर स्वर्गमें और किन्हींके नरकमें निवास करते हैं और प्राणियोंका कर्मजन्य फल भी नियत कहा जाता है। किये गये वे श्राद्ध पितरोंको किस प्रकार प्राप्त होते हैं और नरकमें स्थित पितर किस प्रकार श्राद्धोंको प्राप्त करनेमें तथा फल देनेमें समर्थ होते हैं? मैंने सुना है कि देवतालोग भी स्वर्गमें पितरोंका यजन करते हैं। मैं यह सब सुनना चाहता हूँ, आप विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये॥ १६—१८॥

भीष्मजी बोले—हे शत्रुमर्दन! इस विषयमें जैसा मैंने सुना है और परलोकमें गये हुए मेरे पिताने जैसा मुझसे कहा है, उसे आपसे मैं कह रहा हूँ॥ १९॥

किसी समय जब मैं श्राद्धकालमें पिण्डदान देने लगा, तब मेरे पिताने भूमिका भेदनकर अपने हाथमें पिण्डदान ग्रहण करना चाहा। किंतु ऐसी कल्प-विधि नहीं देखी गयी है—ऐसा निश्चय करके [पिताके अनुरोधका] बिना विचार किये मैंने कुशाओंपर ही पिण्डदान किया॥ २०-२१॥

तब मुझसे सन्तुष्ट हुए मेरे पिताने मधुर वाणीमें कहा—हे अनघ! हे भरतश्रेष्ठ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारे जैसे धर्मात्मा एवं विद्वान् [पुत्र]-से मैं पुत्रवान् हूँ। हे पुरुषोत्तम! तुमसे जैसी आशा थी, तुमने मुझे तार दिया। मैंने तो [तुम्हारी धर्मनिष्ठाकी] परीक्षा की थी॥ २२-२३॥

राजधर्मकी प्रधानतासे राजा जैसा आचरण करता है, प्रजाएँ भी प्रमाण मानकर उसी आचरणका अनुसरण करती हैं॥ २४॥

हे भरतश्रेष्ठ! हे पुत्र! तुम सनातन वेदधर्मोंको सुनो, तुमने वेदधर्मके प्रमाणानुसार कर्म किया है। अतः तुमसे प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक मैं तुम्हें तीनों लोकोंमें दुर्लभ उत्तम वर देता हूँ, तुम उसे ग्रहण करो॥ २५-२६॥

तुम जबतक जीवित रहना चाहोगे, तबतक मृत्यु तुमपर प्रभावी नहीं होगी। तुमसे आज्ञा पाकर ही मृत्यु [तुम्हारे ऊपर] प्रभाव डाल सकेगी। अब इसके अतिरिक्त तुम और जो उत्तम वर चाहते हो, उसे मैं तुम्हें दूँगा। हे भरतश्रेष्ठ! तुम्हारे मनमें जो हो, उसे माँगो॥ २७-२८॥

उनके इस प्रकार कहनेपर मैंने हाथ जोड़कर उनका अभिवादन करके कहा—हे मानद! आपके प्रसन्न होनेसे मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। मैं कुछ प्रश्न पूछता हूँ, आप उसका उत्तर दें॥ २९॥

तब उन्होंने मुझसे कहा—तुम जो [जानना] चाहते हो, उसे पूछो, मैं उसे बताऊँगा। उनके ऐसा कहनेपर मैंने राजासे पूछा, तब वे उसे कहने लगे—॥ ३०॥

शान्तनु बोले—हे तात! सुनो, मैं तुम्हारे प्रश्नका उत्तर यथार्थ रूपसे दे रहा हूँ, जैसा कि मैंने मार्कण्डेयसे समस्त पितृकल्प सुना है। हे तात! तुम मुझसे जो पूछते हो, उसीको मैंने महामुनि मार्कण्डेयसे पूछा था, तब उन धर्मवेत्ताने मुझसे कहा—॥ ३१-३२॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे राजन्! सुनो, किसी समय आकाशकी ओर देखते हुए मैंने पर्वतके अन्दरसे आते हुए किसी विशाल विमानको देखा॥ ३३॥

मैंने उस विमानमें स्थित पर्यंकमें जलते हुए अंगारके समान प्रभावाले, अत्यन्त असामान्य मनोहर तथा प्रज्वलित महातेजके सदृश एक अंगुष्ठमात्र पुरुषको लेटे हुए देखा, जो कि अग्निमें स्थापित अग्निके समान तेजोमय प्रतीत हो रहा था॥ ३४-३५॥

मैंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके उन प्रभुसे पूछा—हे विभो! मैं आपको किस प्रकार जान सकता हूँ?॥ ३६॥

तब उन धर्मात्माने मुझसे कहा—हे मुने! निश्चय ही तुम्हारेमें वह तप नहीं है, जिससे तुम मुझ ब्रह्मपुत्रको जान सको। तुम मुझे सनत्कुमार समझो। मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य सम्पन्न करूँ? ब्रह्माके जो अन्य पुत्र हैं, वे मेरे सात छोटे भाई हैं, जिनके वंश प्रतिष्ठित हैं। हमलोग अपनेमें ही आत्माको स्थिर करके यतिधर्ममें संलग्न रहनेवाले हैं॥ ३७—३९॥

मैं जैसे उत्पन्न हुआ हूँ, वैसा ही हूँ अतः कुमार इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। अतः हे मुने! सनत्कुमार—यह मेरा नाम कहा गया है॥ ४०॥

तुमने मेरे दर्शनकी इच्छासे भक्तिपूर्वक तपस्या की है, इसलिये मैंने तुम्हें दर्शन दिया, तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं तुम्हारा कौन-सा मनोरथ पूर्ण करूँ?॥ ४१॥

उनके इस प्रकार कहनेपर मैंने उनसे कहा—हे प्रभो! सुनिये, आप पितरोंके आदिसर्गको मुझसे यथार्थ रूपसे कहिये॥ ४२॥

मेरे ऐसा कहनेपर उन्होंने कहा—हे तात! सुनो, मैं तुमसे सुखदायक सम्पूर्ण पितृसर्ग यथार्थरूपसे तत्त्वपूर्वक कहता हूँ॥ ४३॥

सनत्कुमारजी बोले—पूर्वकालमें ब्रह्माजीने देवगणोंको उत्पन्न किया और उनसे कहा—तुमलोग मेरा यजन करो, किंतु फलकी आकांक्षा करनेवाले वे उन्हें छोड़कर आत्मयजन करने लगे। तब ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया—मूढो! तुमलोगोंका ज्ञान नष्ट हो जायगा। उसके अनन्तर कुछ भी न जानते हुए वे सभी नष्ट ज्ञानवाले देवता सिर झुकाकर उन पितामहसे बोले—हमलोगोंपर कृपा कीजिये॥ ४४—४५ १/२॥

उनके ऐसा कहनेपर ब्रह्माने इस कर्मका प्रायश्चित्त करनेके लिये यह कहा कि तुमलोग अपने पुत्रोंसे पूछो, तभी ज्ञान प्राप्त होगा॥ ४६ १/२॥

उनके ऐसा कहनेपर नष्ट ज्ञानवाले वे देवता प्रायश्चित्त जाननेके लिये पुत्रोंके पास गये और इस कर्मका प्रायश्चित्त उनसे पूछा। हे अनघ! तब उनका [समाधान करके] पुत्रोंने उनसे कहा—प्राप्त हुए ज्ञानवाले हे पुत्रो! आप सभी देवता प्रायश्चित्तके लिये जाइये। तब अभिशप्त वे सभी देवता पुत्रोंकी इच्छासे प्रेरित हो ब्रह्मदेवके पास पुनः जा पहुँचे तथा [समग्र वृत्तान्त कह सुनाया और] पूछने लगे कि हमारे पुत्रोंने हमें 'पुत्र' कहा है [इसका क्या रहस्य है?]॥ ४७—४९॥

तब ब्रह्माजीने संशययुक्त उन देवताओंसे कहा—हे देवताओ! सुनो, तुमलोग ब्रह्मवादी नहीं हो। अतः तुमलोगोंके उन परम ज्ञानी पुत्रोंने जो कहा—उसे सन्देहका त्याग करके ठीक समझो, वह अन्यथा नहीं है। तुमलोग देवता हो और वे [ज्ञान प्रदान करनेसे] तुम्हारे पितर हैं। अतः सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाले आपलोग प्रसन्नतासे परस्पर एक-दूसरेका यजन करें॥ ५०—५२॥

सनत्कुमारजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! तब ब्रह्माजीके वचनसे सन्देहरहित हो वे एक-दूसरेपर प्रसन्न होकर आपसमें सुख देनेवाले हुए॥ ५३॥

इसके बाद देवगणोंने अपने पुत्रोंसे कहा—तुमलोगोंने हमें '**पुत्रकाः**'—ऐसा कहा है, अतः तुमलोग पितर होओगे, इसमें संशय नहीं है॥ ५४॥

जो कोई भी पितृश्राद्धमें पितृकर्म करेगा, [वह निश्चय ही पूर्णमनोरथ होगा] उसके श्राद्धोंसे तृप्त हुए चन्द्रदेव सभी लोगोंको एवं समुद्र, पर्वत तथा वनसहित चराचरको तृप्त करेंगे। जो मनुष्य पुष्टिकी कामनासे श्राद्ध करेंगे, उससे प्रसन्न हुए पितर उन्हें सदा पुष्टि प्रदान करेंगे। जो लोग श्राद्धमें नाम-गोत्रपूर्वक तीन पिण्डदान करेंगे, उनके श्राद्धसे तृप्त हुए तथा सर्वत्र वर्तमान वे पितर तथा प्रपितामह उनकी सभी कामनाओंकी पूर्ति करेंगे॥ ५५—५८॥

[ब्रह्माजीने कहा ही था कि] हे देवताओ! उनका यह कथन सत्य हो। इसलिये हम सभी देवगण तथा पितृगण परस्पर पिता तथा पुत्र हैं। उन पितरोंके भी पिता वे देवगण [ज्ञानोपदेशरूप] धर्मसम्बन्धके कारण पितरोंके पुत्र बने और परस्पर एक-दूसरेके पिता-पुत्रके रूपमें पृथ्वीपर प्रसिद्ध हुए॥ ५९-६०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहिताके श्राद्धकल्पमें पितृप्रभाववर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

पितरोंकी महिमाके वर्णनक्रममें सप्त व्याधोंके आख्यानका प्रारम्भ

सनत्कुमारजी बोले—हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ! स्वर्गमें सात पितृगण कहे गये हैं, जिनमें चार मूर्तिमान् हैं एवं तीन अमूर्त हैं। वे पितर पूर्वसे ही योगबलके द्वारा सोमको तृप्त करते रहे हैं। देवगण तथा ब्राह्मण उन्हींका यजन करते हैं॥ १-२॥

इसलिये योगनिष्ठ पितरोंको विशेष रूपसे श्राद्ध देने चाहिये। इन सभी [सातों] पितरोंको चाँदी या चाँदीसे युक्त पात्र तथा स्वधापूर्वक दिया गया श्राद्ध प्रसन्नता प्रदान करता है। जो मनुष्य अग्नि, सोम तथा यमका आप्यायनकर अग्निमें उदगायन करता है अथवा

अग्निके अभावमें जलमें उदगायन करके भक्तिसे पितरोंको तृप्त करता है, उससे सन्तुष्ट हुए पितर उसे भी सन्तुष्ट करते हैं। पितृगण प्रसन्न हो जानेपर उसे पुष्टि, विपुल सन्तति, स्वर्ग, आरोग्यवृद्धि तथा अन्य अभीष्ट भी प्रदान करते हैं॥ ३—६॥

हे मुने! देवकार्यकी अपेक्षा पितृकार्यको विशेष कहा गया है, हे विप्रर्षे! आप पितृभक्त हैं, इसलिये अजर-अमर हैं॥ ७॥

हे मुने! योगसे भी वह गति नहीं प्राप्त होती, जो पितृभक्तको प्राप्त होती है, इसलिये हे महामुने! विशेष रूपसे पितृभक्ति करनी चाहिये॥ ८॥

मार्कण्डेयजी बोले—ऐसा कहकर वे देवेश [सनत्कुमार] मुझे देवताओंके लिये भी दुर्लभ विज्ञानमय दृष्टि देकर शीघ्र ही योगगतिको प्राप्त हो गये॥ ९॥

हे भीष्म! सुनो* पूर्व समयमें कुछ ब्राह्मण रहते थे, जो भरद्वाजके पुत्र थे। वे योगधर्मका सेवन करते-करते दुराचारमें फँस जानेके कारण [स्वर्गसे] भ्रष्ट हो गये। वे वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, खसृम और पितृवर्ती नामवाले थे और अपने नामके अनुसार कार्य भी किया करते थे॥ १०-११॥

हे तात! [दूसरे जन्ममें] वे सभी कौशिकके पुत्र एवं गर्गके शिष्य हुए। पिताके मर जानेपर वे सभी प्रवास (गुरुके आश्रम)-में रहने लगे। एक समय उन गुरुकी आज्ञासे दूध देनेवाली तथा बछड़ेसे युक्त कपिला गौको चराते-चराते वे अन्यायमें प्रवृत्त हो गये॥ १२-१३॥

हे भारत! मोह तथा मूर्खताके कारण भूखसे व्याकुल उन सभीको मार्गमें उसे मारनेके लिये क्रूर बुद्धि उत्पन्न हुई। कवि तथा खसृमने उनसे गौकी माँग की, किंतु उन्होंने नहीं दिया और उन भाइयोंसे उसे बचानेमें भी वे दोनों समर्थ नहीं हो सके॥ १४-१५॥

उनमें जो पितृवर्ती नामक भाई था, वह नित्यश्राद्ध करनेवाला था, पितृभक्तिसे युक्त वह क्रोधपूर्वक उन सभीसे कहने लगा—यदि तुम लोग इसका वध अवश्य करना चाहते ही हो तो पितरोंको उद्देश्यकर ऐसा करो और सावधान होकर उससे पितरोंका श्राद्ध करो॥ १६-१७॥

ऐसा करनेसे यह गौ धर्मको प्राप्त होगी, इसमें संशय नहीं है। धर्मपूर्वक पितरोंका पूजन कर लेनेसे हमलोगोंको [वधजन्य] अधर्म भी नहीं होगा॥ १८॥

हे भारत! उसके ऐसा कहनेपर उन सभीने गौका प्रोक्षण करके उसको मारकर उससे पितरोंका श्राद्ध किया और उसे उपयोगमें ले लिया॥ १९॥

इस प्रकार सभीने गायका उपयोगकर गुरुसे निवेदन किया कि सिंहने गायको मार दिया, अब इस बछड़ेको ग्रहण कीजिये॥ २०॥

सरल स्वभावके कारण ब्राह्मणने भी उस बछड़ेको ग्रहण कर लिया, इस मिथ्या उपचार [असत्ययुक्त अपकर्म]-से उन गोहत्यारोंको पाप लगा॥ २१॥

हे तात! इसके बाद कुछ काल बीत जानेपर वे सातों भाई अपनी आयुके क्षीण होनेपर कालधर्म (मृत्यु)-को प्राप्त हुए॥ २२॥

क्रूरकर्म, हत्या एवं गुरुसे अनार्य व्यवहार करनेके कारण उग्र स्वभाववाले तथा हिंसामें ही रमण करनेवाले वे सभी सातों भाई दशार्ण देशमें किसी बहेलियेके बलवान्, मनस्वी तथा धर्मप्रवीण सात पुत्र हुए॥ २३-२४॥

उसके अनन्तर अपने धर्ममें निरत वे सभी कालधर्मको प्राप्त होकर दूसरे जन्ममें रम्य कालंजरपर्वतपर [पूर्वकृत कर्मोंके कारण] उद्वेगसे युक्त तथा [जातिस्मरताके कारण] मोहविवर्जित मृगजन्मको प्राप्त होकर वहीं विहार करने लगे॥ २५॥

उस जन्ममें भी वे जातिस्मरताको प्राप्तकर पूर्वकृत कर्मोंके फलका स्मरण करते हुए निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह तथा क्षमाशील हो वनमें विचरण करते थे॥ २६॥

वे सभी वनेचर मृग शुभ कर्मवाले, उत्तम धर्मका

* यह आख्यान अनेक पुराणोंमें तथा हरिवंशपुराणके हरिवंशपर्वमें अध्याय २१ से अध्याय २४ के मध्य विशेष विस्तारसे वर्णित है। यहाँका कथानक वहाँसे किंचित् भिन्न भी है।

आचरण करनेवाले, विधर्म आचरणसे रहित तथा जातिस्मरणकी सिद्धिवाले थे। उन्होंने पूर्वजन्ममें गुरुकुलोंमें जो धर्म सुन रखा था, वे संसारसे निवृत्त होनेके लिये उसीको बुद्धिमें रखते थे॥ २७-२८॥

उसके अनन्तर उन तपस्वी मृगोंने [बिना यत्नके] प्राप्त आहारको ग्रहण करते हुए वहीं पर्वतके मध्यमें अपने प्राणोंका त्याग कर दिया। हे भारत! हे नृप! उन पतितोंके जो स्थान थे, वे आज भी कालंजरपर्वतपर दिखायी पड़ते हैं। इस शुभकर्मके प्रभावसे वे शुभ तथा अशुभ दोनोंसे मुक्त हो गये॥ २९-३०॥

पुनः वे सातों मृग परमपुण्य क्षेत्र शरद्वीपमें शुभसे भी शुभ जलवासी चक्रवाक योनिको प्राप्त हुए। वे सहचारी धर्मका त्याग करके मुनियोंकी भाँति धर्मनिरत होकर रहते थे। वे पक्षी निःसंग, निर्मम, शान्त, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, निवृत्ति तथा निर्वृत नामवाले थे। वे सभी ब्रह्मचर्यपरायण तथा धर्मनिरत थे। जातिस्मरणवाले तथा अभ्युदयसे युक्त वे सातों पक्षी विकारसे रहित हो सर्वदा एक ही स्थानमें निवास करते थे॥ ३१—३४॥

उन्होंने ब्राह्मणयोनिमें जो गुरुके प्रति दोषपूर्ण मिथ्या आचार किया था, इस कारण उन्हें पक्षियोनि प्राप्त हुई, किंतु श्राद्ध करनेके कारण उन्हें ज्ञानबल रहा। उन्होंने व्यवस्थित होकर पितरोंको प्रसन्न करनेके निमित्त श्राद्ध किया था, इसलिये उन्होंने क्रमसे उत्कृष्ट गुणोंसे युक्त ज्ञान तथा जातिको प्राप्त किया॥ ३५-३६॥

पूर्वजन्मोंमें गुरुकुलोंमें उन्होंने जो ज्ञान सुना था, वही ज्ञान उनमें बना हुआ था। अतः सबको ज्ञानका अभ्यास करना चाहिये॥ ३७॥

[उस योनिमें] वे पक्षी सुमना, सुवाक्, शुद्ध, पंचम, छिद्रदर्शक, स्वतन्त्र और सुयज्ञ नामवाले हुए॥ ३८॥

हे महामुने! वनमें विचरण करनेवाले उन धर्मात्मा पक्षियोंके सामने जो सुन्दर घटना घटी, उसे आप सुनें। नीप देशका बड़ा प्रभावशाली तथा श्रीमान् राजा [विभ्राज] एक समय अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे युक्त हो उस वनमें आया॥ ३९-४०॥

सुखसम्पन्न तथा राज्यशोभायुक्त उस राजाको आया हुआ देखकर स्वतन्त्र नामक उस चक्रवाकने यह इच्छा की॥ ४१॥

इस निश्चल तप एवं निरन्तर उपवाससे मैं अत्यन्त शिथिल हो गया हूँ, यदि मेरा कुछ पुण्य, तप, नियम हो तो उसके करनेसे प्राप्त हुए पूर्ण फलसे मैं इसीके सदृश सम्पूर्ण सौभाग्यका पात्र हो जाऊँ॥ ४२-४३॥

मार्कण्डेयजी बोले—उसके बाद दोनों सहचारी चकवोंने कहा कि हम दोनों तुम्हारे राजा होनेपर तुम्हारे प्रिय तथा हितैषी मन्त्री होवें॥ ४४॥

तब ऐसा ही हो, ऐसा उनके कहनेसे उस योगात्माकी वैसी ही गति हो गयी, जिससे दोनों चकवोंने मन्त्री होनेके लिये अपनी बात की थी॥ ४५॥

[तदुपरान्त उन तीनों पक्षियोंसे चौथा पक्षी शुचिवाक् कहने लगा—] योगधर्मको प्राप्त करके भी ऐसा वर चाह रहे हो। तुम कर्मकी बात कह रहे हो अर्थात् कर्मबन्धनमें बँधना चाहते हो तो अब मैं जो कह रहा हूँ, उसे सुनो॥ ४६॥

हे तात! तुम श्रेष्ठ काम्पिल्यनगरमें राजा होगे एवं योगसे भ्रष्ट हुए ये दोनों चक्रवाक तुम्हारे मन्त्री होंगे। तदुपरान्त राज्यलोलुप उन पक्षियोंसे जब अन्य पक्षियोंने बोलना बन्द कर दिया, तब वे तीनों अपने चारों सहचरोंसे कहने लगे—'हमपर कृपा कीजिये।' तब उनमेंसे सुमना नामक पक्षी बोला—॥ ४७-४८॥

तुमलोगोंका शाप भी मिट जायगा और तुमलोग पुनः योग प्राप्त करोगे—यह स्वतन्त्र सभी प्राणियोंकी भाषाका जानकार होगा। तुम सभीको पितरोंके प्रसादका पुण्य प्राप्त होगा, क्योंकि गौका प्रोक्षणकर तुमलोगोंने पितरोंके निमित्त श्राद्ध किया है॥ ४९-५०॥

हमलोगोंके ज्ञानका संयोग तुम सभीके योगका निमित्त कैसे बनेगा—इस विषयमें जब तुमलोग किसी पुरुषसे हमलोगोंके द्वारा कहा गया श्लोक

सुनोगे, तब तुम्हें योगकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार कहकर वह सुमना नामक बुद्धिमान् चक्रवाक चुप हो गया॥ ५१-५२॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे तात! हे शन्तनुपुत्र! मैंने लोककल्याणके निमित्त यह चरित्र आपसे कहा, अब दूसरा क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें पितृसर्गवर्णन तथा सप्तव्याधगतिवर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

'सप्त व्याध' सम्बन्धी श्लोक सुनकर राजा ब्रह्मदत्त और उनके मन्त्रियोंको पूर्वजन्मका स्मरण होना और योगका आश्रय लेकर उनका मुक्त होना

भीष्मजी बोले—हे मार्कण्डेयजी! हे महाप्राज्ञ! हे पितृभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे मुनिश्रेष्ठ! इसके अनन्तर क्या हुआ, कृपया आप बताइये?॥ १॥

मार्कण्डेयजी बोले—[तदुपरान्त उनका जन्म मानसरोवरके हंसोंके रूपमें हुआ।] वे मानसरोवरमें विचरण करनेवाले सातों पक्षी धर्मयोगमें तत्पर हो पवन तथा जलका आहार करते हुए अपना शरीर सुखाने लगे। इधर, नीपदेशका वह राजा [उन पक्षियोंकी योगचर्याको देखकर योगधर्मकी प्राप्तिकी अभिलाषा करता हुआ] अन्त:पुरकी स्त्रियोंके साथ नन्दनवनमें इन्द्रके समान क्रीड़ाकर भार्यासहित अपने नगरको चला गया॥ २-३॥

उसका अनूह (अणुह) नामक परम धर्मात्मा पुत्र था, उस पुत्रको राज्यपर स्थापित करके उसने वनकी ओर प्रस्थान किया और जहाँ वे सहचारी हंस पक्षी थे, वहींपर वह महातपस्वी निराहार रहकर वायुभक्षण करते हुए तप करने लगा॥ ४-५॥

उससे विभ्राजित होनेके कारण वह वन योगसिद्धिप्रदायक वैभ्राज नामसे विशेष प्रसिद्ध हुआ॥ ६॥

वहींपर योगधर्ममें तत्पर उन चारों पक्षियोंने तथा योगसे भ्रष्ट शेष तीन पक्षियोंने अपने शरीरका त्याग किया, पुन: वे काम्पिल्य नामक नगरमें ब्रह्मदत्त आदि नामवाले सात निष्पाप महात्मा हुए॥ ७-८॥

इनमें चारको तो अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही, किंतु [शेष] तीन पूर्वजन्मकी स्मृतिके नष्ट हो जानेसे मोहमें पड़ गये थे। उनमें स्वतन्त्र नामक चक्रवाक महातेजस्वी अणुहके पुत्र ब्रह्मदत्त नामसे विख्यात हुआ॥ ९॥

छिद्रदर्शी और सुनेत्र पूर्वजन्ममें उसके साथ रहनेके कारण उसी नगरमें वेद-वेदांगपारगामी [पंचाल तथा पुण्डरीक नामवाले] श्रोत्रियपुत्र हुए। पंचाल बह्वृच अर्थात् ऋग्वेदी था और आचार्यत्व करता था। पुण्डरीक दो वेदोंका ज्ञाता होनेसे छन्दोगान करनेवाला और अध्वर्यु हुआ॥ १०-११॥

इधर राजाने अपने पुत्र ब्रह्मदत्तको पापरहित देखकर उसका राज्याभिषेक करके परम गति प्राप्त की। पंचाल और पुण्डरीकके भी पिताने अपने दोनों पुत्रोंको राजाके मन्त्रिपदपर अभिषिक्तकर वनमें जाकर परम गति प्राप्त की। हे भारत! ब्रह्मदत्तकी सन्नति नामक भार्या थी, वह अपने पतिमें अनन्यभावसे रमण करती थी॥ १२—१४॥

हे राजन्! सहचारी (चारों) चक्रवाक उसी काम्पिल्य नगरमें किसी दरिद्र श्रोत्रियके पुत्रोंके रूपमें उत्पन्न हुए। धृतिमान्, सुमहात्मा, तत्त्वदर्शी और निरुत्सुक उनके नाम थे। ये सभी चारों वेदाध्ययनसम्पन्न और सांसारिक दोषोंके ज्ञाता थे॥ १५-१६॥

एक समय इन योगनिरत सिद्ध पुरुषोंने परस्पर विचार किया और [अपना कल्याण करनेके लिये] वे शिवजीके चरणकमलोंमें प्रणामकर प्रस्थान करने लगे। उस समय [पिताके द्वारा रोके जानेपर] उन सभी ब्राह्मणोंने अपने पितासे कहा—हम आपकी आजीविकाकी व्यवस्था किये जा रहे हैं, जिससे आपका निर्वाह हो जायगा॥ १७-१८॥

आप मन्त्रियोंसहित निष्पाप ब्रह्मदत्त राजाके पास

जाकर महान् अर्थपूर्ण इस श्लोक*को सुना देना॥ १९॥

इस श्लोकसे हर्षित हुआ राजा अनेक ग्राम तथा नाना प्रकारकी भोग-सामग्री देगा। इस प्रकार कहकर वे अपने पिताकी पूजा कर और योगधर्म प्राप्तकर परमशान्तिका अनुभव करने लगे। उन चारोंके पिता भी अपने महात्मा पुत्रोंके द्वारा कहे गये श्लोकका अध्ययनकर कृतकृत्य हो गये॥ २०-२१॥

उसने राजाके पास जाकर मन्त्रियोंकी उपस्थितिमें उस श्लोकको सुनाया—'जो दशार्ण देशमें सात व्याध हुए, कालंजरपर्वतपर सात हरिण हुए, शरद्वीपमें सात चक्रवाक और पुनः मानसरोवरमें सात हंस हुए; वे ही कुरुक्षेत्रमें वेदवेत्ता ब्राह्मण हुए हैं। चार तो अपना रास्ता पार कर चुके, अब तीन शेष तुमलोग क्यों इस जगत्के दुर्गम मार्गमें भटक रहे हो?' इतना सुनते ही राजा ब्रह्मदत्त उसी क्षण मोहित हो गया॥ २२—२४॥

हे भारत! उसीके साथ उसके सचिव पांचाल और पुण्डरीक भी मोहित हो गये। फिर वे मानसरोवरका स्मरण करते ही योगको प्राप्त हो गये। उसके अनन्तर ब्रह्मदत्तने उस ब्राह्मणको बहुत-सा रथ, भोगसामग्री एवं धन दिया और अपने विष्वक्सेन नामक शत्रुहन्ता पुत्रको राज्यपर अभिषिक्तकर स्वयं पत्नीसमेत वन चला गया और योगबलसे श्रेष्ठ गतिको प्राप्त किया॥ २५—२७॥

धर्मात्मा पुण्डरीक भी सर्वश्रेष्ठ सांख्ययोगको प्राप्तकर योगका आश्रय ले उसके साधनसे विशुद्ध और सिद्ध हो गया। इसी प्रकार महातपस्वी पांचाल (पंचाल)-ने भी [वैदिकोंमें प्रसिद्ध] क्रमपाठ तथा शिक्षा [वेदांगविशेष अथवा योगशास्त्रीय ग्रन्थ]-का प्रणयनकर उत्तम कीर्ति तथा योगाचार्यगति (मोक्ष) प्राप्त की॥ २८-२९॥

जिन शूरोंको मुक्तिकी इच्छा हो, वे भगवान् सदाशिवके चरणकमलोंका ध्यानकर अपना पाप नष्ट करें। हे महामुने! शरीर, मन तथा वाणीसे किये गये पापके नाशके लिये श्रद्धा एवं भक्तिसे समन्वित हो इस आख्यानका भलीभाँति पाठ करना चाहिये॥ ३०-३१॥

शिवनामका पुनः-पुनः कीर्तन करनेसे व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। उन देवदेव शिवके नामोंका उच्चारण होते ही पाप उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जैसे पानी भरते ही मिट्टीका कच्चा घड़ा विनष्ट हो जाता है॥ ३२$^{1}/_{2}$॥

इतना ही नहीं, हे महामुने! संचित [अथवा किये गये] पापके नाशके लिये भी निरन्तर शिवनामका जप अवश्य करना चाहिये। श्रद्धालुजनोंको अपने मनोभिलषितकी सिद्धिहेतु भी शिवनामका जप करना आवश्यक है। जो मनुष्य पुष्टिके लिये इस अध्यायको पढ़ता और सुनता है, वह सब पापोंसे छूटकर मोक्षको प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं॥ ३३—३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें पितृप्रभाववर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

आचार्यपूजन एवं पुराणश्रवणके अनन्तर कर्तव्य-कथन

शौनकजी बोले—हे सूतजी! हे व्यासशिष्य! अब आचार्यपूजनकी विधिको कहिये और पुराण सुननेके बाद क्या करना चाहिये, यह भी बताइये?॥ १॥

सूतजी बोले—इस सर्वोत्तम कथाको सुनकर भक्तिपूर्वक सविधि आचार्यका पूजन करना चाहिये और प्रसन्नतापूर्वक उन्हें दक्षिणा देनी चाहिये॥ २॥

उसके अनन्तर बुद्धिमान्को चाहिये कि पुराणवक्ताको नमस्कारकर विधिपूर्वक हाथ एवं कानोंके आभूषण और रेशमी तथा सूती वस्त्रोंसे उनका पूजन करे। शिवपूजा समाप्त हो जानेपर सवत्सा गौका दान करे। उसके बाद

---

* सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ॥
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे। तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः॥
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ। (श्रीशिवमहापुराण, उमा० ४२। २२—२४)

वह सुधी एक पल सुवर्णसे आसन [सिंहासन] बनवाकर उसपर वस्त्र बिछाये और उस आसनपर सुन्दर अक्षरोंसे लिखे हुए शुभ ग्रन्थको स्थापितकर आचार्यको प्रदान करे, ऐसा करनेसे वह संसारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३—५॥

हे महामुने! महात्मा कथावाचकको यथाशक्ति ग्राम, गज, घोड़ा एवं अन्य सभी वस्तुएँ भी देनी चाहिये। हे शौनक! विधिपूर्वक भलीभाँति सुना हुआ यह पुराण फलदायी कहा गया है। यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ६-७॥

अत: हे मुने! वेदार्थसे युक्त, पुण्यप्रद तथा श्रुतिके हृदयरूप पुराणको भक्तिपूर्वक विधानके साथ सुनना चाहिये॥ ८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें व्यासपूजनप्रकार नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

व्यासजीकी उत्पत्तिकी कथा, उनके द्वारा तीर्थाटनके प्रसंगमें काशीमें व्यासेश्वरलिंगकी स्थापना तथा मध्यमेश्वरके अनुग्रहसे पुराणनिर्माण

मुनि बोले—हे महाबुद्धे! हे सूत! हे दयासागर! हे स्वामिन्! हे प्रभो! अब आप व्यासजीकी उत्पत्तिके विषयमें कहिये और अपनी परम कृपासे हमलोगोंको कृतार्थ कीजिये॥ १॥

व्यासजीकी माता कल्याणमयी सत्यवती कही गयी हैं और उन देवीका विवाह राजा शन्तनुसे हुआ था॥ २॥

महायोगी व्यास उनके गर्भमें पराशरसे किस प्रकार उत्पन्न हुए? इस विषयमें [हमलोगोंको] महान् सन्देह है, आप उसे दूर कीजिये॥ ३॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] किसी समय तीर्थयात्रापर जाते हुए योगी पराशर अकस्मात् यमुनाके रम्य तथा सुन्दर तटपर पहुँचे। तब उन धर्मात्माने भोजन करते हुए निषादराजसे कहा—तुम मुझे शीघ्र ही नावसे यमुनाके उस पार ले चलो॥ ४-५॥

इस प्रकार उन मुनिद्वारा कहे जानेपर उस निषादने अपनी मत्स्यगन्धा नामक कन्यासे कहा—हे पुत्रि! तुम शीघ्र ही नावसे इन्हें पार ले जाओ। हे महाभागे! दृश्यन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुए ये तपस्वी चारों वेदोंके पारगामी विद्वान् एवं धर्मके समुद्र हैं, ये इस समय यमुना पार करना चाहते हैं॥ ६-७॥

पिताके इतना कहनेपर मत्स्यगन्धा सूर्यके समान कान्तिवाले उन महामुनिको नावमें बैठाकर पार ले जाने लगी। जो कभी अप्सराओंके रूपको देखकर भी विमोहित नहीं हुए, वे महायोगी पराशरमुनि कालके प्रभावसे उस (मत्स्यगन्धा)-के प्रति आसक्त हो उठे॥ ८-९॥

उन मुनिने उस मनोहर दाश-कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छासे अपने दाहिने हाथसे उसके दाहिने हाथका स्पर्श किया। तब विशाल नयनोंवाली उस कन्याने मुसकराकर उनसे यह वचन कहा—हे महर्षे! आप ऐसा निन्दनीय कर्म क्यों कर रहे हैं?॥ १०-११॥

हे महामते! आप वसिष्ठके उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं और मैं निषादकन्या हूँ, अत: हे ब्रह्मन्! हम दोनोंका संग कैसे सम्भव है?॥ १२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मनुष्य-जन्म ही दुर्लभ है, विशेषकर ब्राह्मणजन्म तो और भी दुर्लभ है और उसमें भी तपस्वी होना तो अति दुर्लभ है। आप विद्या, शरीर, वाणी, कुल एवं शीलसे युक्त होकर भी कामबाणके वशीभूत हो गये, यह तो महान् आश्चर्य है!॥ १३-१४॥

इन योगीके शापके भयसे अनुचित कर्म करनेमें प्रवृत्त इनको इस पृथ्वीपर कोई भी रोक पानेमें समर्थ नहीं है—ऐसा मनमें विचारकर उसने महामुनिसे कहा—हे स्वामिन्! जबतक मैं आपको पार नहीं ले चलती, तबतक आप धैर्य धारण कीजिये॥ १५-१६॥

सूतजी बोले—उसकी यह बात सुनकर योगिराज पराशरने शीघ्र ही उसका हाथ छोड़ दिया और पुन: नदीके पार चले गये॥ १७॥

उसके अनन्तर कामके वशीभूत हुए मुनिने पुनः उसका हाथ पकड़ा, तब काँपती हुई उस कन्याने उन करुणासागरसे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं दुर्गन्धियुक्त तथा काले वर्णवाली निषादकन्या हूँ और आप परम उदार विचारवान् योगिश्रेष्ठ हैं। काँच और कांचनके समान हम दोनोंका संयोग उचित नहीं है। समान जाति एवं रूपवालोंका संग सुखदायक होता है॥ १८—२०॥

उसके ऐसा कहनेपर उन्होंने क्षणमात्रमें उसे योजनमात्रतक सुगन्धि फैलानेवाली, रम्य रूपवाली तथा मनोरम कामिनी बना दिया॥ २१॥

इसके बाद मोहित हुए उन मुनिने उसे पुनः पकड़ लिया, तब ग्रहण करनेकी इच्छावाले उन मुनिकी ओर देखकर वासवीने पुनः कहा—रात्रिमें प्रसंग करना चाहिये, दिनमें उचित नहीं है—ऐसा वेदने कहा है। दिनमें प्रसंग करनेसे महान् दोष होता है तथा दुःखदायी निन्दा भी होती है। अतः जबतक रात न हो, तबतक प्रतीक्षा कीजिये, यहाँ मनुष्य देख रहे हैं और विशेषकर मेरे पिता तो नदीतटपर ही स्थित हैं॥ २२—२४॥

उसकी यह बात सुनकर उन मुनिश्रेष्ठने शीघ्रतासे अपने पुण्यबलसे कोहरेका निर्माण कर दिया॥ २५॥

अन्धकारके कारण रात्रिसदृश प्रतीत होनेवाले उस उत्पन्न हुए कोहरेको देखकर संसर्गके प्रति आश्चर्यचकित हुई उस निषाद-कन्याने पुनः कहा—हे योगिन्! आप तो अमोघवीर्य हैं। हे स्वामिन्! मेरा संगकर आप तो चले जायँगे और यदि मैं गर्भवती हो गयी तो मेरी क्या गति होगी? हे महाबुद्धे! इससे मेरा कन्याव्रत नष्ट हो जायगा, तब सभी लोग मेरी हँसी करेंगे और मैं अपने पितासे क्या कहूँगी?॥ २६—२८॥

पराशर बोले—हे बाले! हे प्रिये! तुम इस समय मेरे साथ अनुरागसहित स्वच्छन्द होकर रमण करो, तुम अपनी अभिलाषा बताओ, मैं उसे पूर्ण करूँगा। मेरी आज्ञाको सत्य करनेसे तुम सत्यवती नामवाली होगी और सम्पूर्ण योगीजन तथा देवगण तुम्हारी वन्दना करेंगे॥ २९-३०॥

सत्यवती बोली—[हे महर्षे!] यदि मेरे माता-पिता एवं पृथ्वीके अन्य मनुष्य इस कृत्यको न जानें तथा मेरा कन्याधर्म नष्ट न हो तो आप मुझे ग्रहण करें और हे नाथ! मेरा पुत्र आपके समान ही अद्भुत शक्तिसम्पन्न हो। मेरे शरीरमें सुगन्धि तथा नवयौवन सदा बना रहे॥ ३१-३२॥

पराशर बोले—हे प्रिये! सुनो, तुम्हारा सारा मनोरथ पूर्ण होगा। तुम्हारा पुत्र विष्णुके अंशसे युक्त तथा महायशस्वी होगा॥ ३३॥

मैं जो इस समय मुग्ध हुआ हूँ, उसमें निश्चय ही कुछ कारण समझो। अप्सराओंके रूपको देखकर भी मेरा मन कभी मोहित नहीं हुआ, किंतु मछलीके समान गन्धवाली तुम्हें देखकर मैं मोहके वशीभूत हो गया हूँ। हे बाले! ललाटमें लिखी हुई ब्रह्मलिपि अन्यथा होनेवाली नहीं है। हे वरारोहे! तुम्हारा पुत्र पुराणोंका कर्ता, वेदशाखाओंका विभाग करनेवाला और तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कीर्तिवाला होगा॥ ३४—३६॥

हे महामुने! ऐसा कहकर मनोहर अंगोंवाली उस मत्स्यगन्धाका संगकर योगप्रवीण पराशरजी यमुनामें स्नानकर शीघ्र चले गये। उसके अनन्तर उस कन्याने शीघ्र ही गर्भ धारण किया और यमुनाके द्वीपमें सूर्यके समान प्रभावाले तथा कामदेवके समान सुन्दर पुत्रको उत्पन्न किया॥ ३७-३८॥

वह [बालक] अपने बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिने हाथमें श्रेष्ठ दण्ड धारण किये हुए, पीतवर्णकी जटाओंसे सुशोभित और महान् तेजोराशिवाला था॥ ३९॥

उत्पन्न होते ही उस तेजस्वीने अपनी मातासे कहा—हे मातः! तुम अपने यथेष्ट स्थानको जाओ, अब मैं भी जाता हूँ। हे मातः! जब कभी भी तुम्हारा कोई अभीष्ट कार्य हो, तब तुम्हारे द्वारा स्मरण किये जानेपर मैं तुम्हारी इच्छाकी पूर्तिके लिये उपस्थित हो जाऊँगा॥ ४०-४१॥

ऐसा कहकर उस महातपस्वीने अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया और तप करनेके लिये पापनाशक तीर्थमें चला गया॥ ४२॥

सत्यवती भी पुत्रस्नेहसे व्याकुल होकर अपने पुत्रके चरित्रका स्मरण करती हुई तथा अपने भाग्यकी सराहना करती हुई पिताके पास चली गयी॥ ४३॥

द्वीपमें उत्पन्न होनेके कारण उस बालकका नाम द्वैपायन हुआ और वेद-शाखाओंका विभाग करनेके कारण वह वेदव्यास कहा गया॥ ४४॥

धर्म-अर्थ-काम-मोक्षको देनेवाले तीर्थराज प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार, अवन्तिका, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, अमरावती, सरस्वती, सिन्धुसंगम, गंगासागरसंगम, कांची, त्र्यम्बक, सप्तगोदावरीतट, कालंजर, प्रभास, बदरिकाश्रम, महालय, ॐकारेश्वरक्षेत्र, पुरुषोत्तमक्षेत्र, गोकर्ण, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर, श्रीपर्वत और धारातीर्थ आदि तीर्थोंमें जाकर वहाँ विधिपूर्वक स्नानकर उस (सत्यवतीनन्दन)-ने उत्तम तपस्या की॥ ४५—४९॥

इस प्रकार अनेक देशोंमें स्थित अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए वे कालीपुत्र व्यास वाराणसीपुरीमें जा पहुँचे, जहाँ कृपानिधि साक्षात् विश्वेश्वर तथा महेश्वरी अन्नपूर्णा अपने भक्तोंको अमृतत्व प्रदान करनेके लिये विराजमान हैं॥ ५०-५१॥

वाराणसीतीर्थमें पहुँचकर मणिकर्णिकाका दर्शन करके उन मुनीश्वरने करोड़ों जन्मोंमें अर्जित पापोंका परित्याग किया॥ ५२॥

इसके बाद उन्होंने विश्वेश्वर आदि सम्पूर्ण लिंगोंका दर्शनकर वहाँके समस्त कुण्ड, वापी, कूप तथा सरोवरोंमें स्नान करके, सभी विनायकोंको नमस्कार करके, सभी गौरियोंको प्रणामकर, पापभक्षक कालराज भैरवका पूजन करके, यत्नपूर्वक दण्डनायकादि गणोंका स्तवन करके, आदिकेशव आदि केशवोंको सन्तुष्टकर, लोलार्क आदि सूर्योंको बार-बार प्रणाम करके और सावधानीसे समस्त तीर्थोंमें पिण्डदानकर व्यासेश्वर नामक लिंगको स्थापित किया, हे ब्राह्मणो! जिसके दर्शनसे मनुष्य सम्पूर्ण विद्याओंमें बृहस्पतिके समान [निपुण] हो जाता है॥ ५३—५७॥

भक्तिपूर्वक विश्वेश्वर आदि लिंगोंका पूजन करके वे बार-बार विचार करने लगे कि कौन-सा लिंग शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला है, जिसकी आराधनाकर मैं सम्पूर्ण विद्याओंको प्राप्त करूँ तथा जिसके अनुग्रहसे मुझे पुराण-रचनाकी शक्ति प्राप्त हो? श्रीमद्‌ओंकारेश्वर, कृत्तिवासेश्वर, केदारेश्वर, कामेश्वर, चन्द्रेश्वर, त्रिलोचन, कालेश, वृद्धकालेश, कलशेश्वर, ज्येष्ठेश, जम्बुकेश, जैगीषव्येश्वर, दशाश्वमेधेश्वर, द्रुमचण्डेश, दृक्केश, गरुडेश, गोकर्णेश, गणेश्वर, प्रसन्नवदनेश्वर, धर्मेश्वर, तारकेश्वर, नन्दिकेश्वर, निवासेश्वर, पत्रीश्वर, प्रीतिकेश्वर, पर्वतेश्वर, पशुपतीश्वर, हाटकेश्वर, बृहस्पतीश्वर, तिलभाण्डेश्वर, भारभूतेश्वर, महालक्ष्मीश्वर, मरुतेश्वर, मोक्षेश्वर, गंगेश्वर, नर्मदेश्वर, कृष्णेश्वर, परमेशान, रत्नेश्वर, यामुनेश्वर, लांगलीश्वर, प्रभु श्रीमद्विश्वेश्वर, अविमुक्तेश्वर, विशालाक्षीश्वर, व्याघ्रेश्वर, वराहेश्वर, विद्येश्वर, वरुणेश्वर, विधीश्वर, हरिकेशेश्वर, भवानीश्वर, कपर्दीश्वर, कन्दुकेश्वर, अजेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, वीरेश्वर, नादेश, कपिलेश, भुवनेश्वर, वाष्कुलीश्वर महादेव, सिद्धीश्वर, विश्वेदेवेश्वर, वीरभद्रेश्वर, भैरवेश्वर, अमृतेश्वर, सतीश्वर, पार्वतीश्वर, सिद्धेश्वर, मतंगेश्वर, भूतीश्वर, आषाढीश्वर, प्रकाशेश्वर, कोटिरुद्रेश्वर, मदालसेश्वर, तिलपर्णेश्वर, हिरण्यगर्भेश्वर एवं श्रीमध्यमेश्वर इत्यादि कोटिलिंगोंमें मैं किसकी उपासना करूँ?॥ ५८—७३॥

इस प्रकारकी चिन्तामें मग्न हुए शिवभक्तिपरायण-चित्तवाले व्यासजी क्षणभर ध्यानसे चित्तको स्थिरकर विचार करने लगे। ओह! मैं तो भूल गया था, अब जान लिया, निश्चय ही मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गयी। सिद्धोंसे पूजित एवं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष देनेवाला यह मध्यमेश्वरलिंग है, जिसके दर्शन एवं स्पर्शसे चित्त निर्मल हो जाता है और जहाँ स्वर्गका द्वार सर्वदा खुला रहता है॥ ७४—७६॥

अविमुक्त नामक महाक्षेत्र तथा सिद्धक्षेत्रमें वह मध्यमेश्वर नामक श्रेष्ठ लिंग है॥ ७७॥

काशीमें मध्यमेश्वर लिंगसे बढ़कर और कोई लिंग नहीं है, जिसका दर्शन करनेके लिये प्रत्येक पर्वपर देवतालोग भी स्वर्गसे आते हैं। अत: मध्यमेश्वर नामक लिंगकी सेवा करनी चाहिये, हे विप्रो! इसकी आराधना

करनेसे अनेक लोगोंको सिद्धि प्राप्त हुई है॥ ७८-७९॥

शिवजी अपनी पुरीके लोगोंको सुख देनेके लिये काशीके मध्यमें प्रधानरूपसे स्थित हैं, अत: वे मध्यमेश्वर कहे जाते हैं॥ ८०॥

तुम्बुरु नामक गन्धर्व एवं देवर्षि नारद इनकी आराधनाकर गानविद्यामें विशारद हो गये। इन्हींकी आराधना करके विष्णु मोक्ष देनेवाले हुए तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र स्रष्टा, पालक तथा संहारक हुए, कुबेर धनाध्यक्ष एवं वामदेव महाशैव हो गये तथा [पूर्वमें] सन्तानरहित खट्वांग नामके राजा सन्तानयुक्त हो गये॥ ८१—८३॥

कोयलके समान स्वरवाली चन्द्रभागा नामक अप्सरा नृत्य करती हुई इस लिंगमें अपने [भक्ति] भावके कारण सशरीर विलीन हो गयी। गोपिकाके पुत्र श्रीकरने मध्यमेश्वरकी आराधना करके दयालु चित्तवाले शिवका गाणपत्यपद प्राप्त किया॥ ८४-८५॥

दैत्यपूजित भार्गव तथा देवपूजित बृहस्पति मध्यमेश्वरकी कृपासे विद्याओंमें पारंगत हो गये॥ ८६॥

अत: मैं भी यहाँ मध्यमेश्वरकी आराधनाकर पुराण रचनेकी शक्ति शीघ्र ही निश्चित रूपसे प्राप्त करूँगा॥ ८७॥

धैर्यशाली, व्रतनिष्ठ, सत्यवतीपुत्र व्यासने ऐसा विचारकर भागीरथीके जलमें स्नानकर [मध्यमेश्वरके पूजनका] नियम ग्रहण किया॥ ८८॥

व्यासजी कभी पत्तेका भक्षण कर रह जाते, कभी फल एवं शाकाहार करते। कभी वायु पीते, कभी जल पीते एवं कभी निराहार ही रह जाते थे, इन नियमोंद्वारा वे धर्मात्मा योगी अनेक प्रकारके वृक्षोंके फलोंसे तीनों समय मध्यमेश्वरका पूजन करने लगे॥ ८९-९०॥

इस प्रकार आराधना करते हुए बहुत दिन बीत जानेपर एक दिन जब व्यासजी प्रात:काल गंगास्नानकर पूजनके लिये मध्यमेश्वरमें गये, उसी समय उन पुण्यात्माने शिवलिंगके बीचमें भक्तोंको अभीष्ट वर देनेवाले ईशान मध्यमेश्वरका दर्शन प्राप्त किया। उनके वामांगमें उमा सुशोभित हो रही थीं, वे व्याघ्रचर्मका उत्तरीय धारण किये हुए थे, जटाजूटमें निवास करनेवाली गंगाकी चलायमान तरंगोंसे उनका विग्रह शोभित हो रहा था, शोभायमान शारदीय बालचन्द्रमाकी चन्द्रिकासे उनके अलक शोभा पा रहे थे, कर्पूरके समान स्वच्छ, समग्र शरीरमें भस्मका लेप लगा हुआ था, उनकी बड़ी-बड़ी आँखें कानोंतक फैली हुई थीं, उनके ओष्ठ विद्रुमके सदृश अरुण थे, बालकोंके योग्य भूषणोंसे युक्त शिवजी पाँच वर्षके बालककी-सी आकृतिवाले थे, करोड़ों कामदेवोंके अभिमानको दूर करनेवाली शरीरकान्तिको धारण किये हुए थे, वे नग्न थे, हँसते हुए मुखकमलसे वे लीलापूर्वक सामवेदका गान कर रहे थे, वे [व्यासजी] इस प्रकार करुणाके अगाध सागर, भक्तवत्सल, आशुतोष, योगियोंके लिये भी अज्ञेय, दीनबन्धु, चैतन्यस्वरूप, कृपादृष्टिसे निहारते हुए उमापतिको देखकर प्रेमसे गद्गद वाणीद्वारा उनकी स्तुति करने लगे॥ ९१—९८॥

वेदव्यासजी बोले—हे देवदेव! हे महाभाग! हे शरणागतवत्सल! वाणी-मन एवं कर्मसे दुष्प्राप्य तथा योगियोंके लिये भी अगोचर हे उमापते! वेद भी आपकी महिमा नहीं जानते। आप ही इस जगत्‌के कर्ता, पालक और हर्ता हैं॥ ९९-१००॥

हे सदाशिव! आप ही सभी देवताओंमें आदिदेव, सच्चिदानन्द तथा ईश्वर हैं, आपका नाम-गोत्र कुछ भी नहीं है, आप सर्वज्ञ हैं। आप ही मायापाशको नष्ट करनेवाले परब्रह्म हैं और आप जलसे [निर्लिप्त] कमलपत्रकी भाँति तीनों गुणोंसे लिप्त नहीं हैं॥ १०१-१०२॥

आपका जन्म, शील, देश और कुल कुछ भी नहीं है, इस प्रकारके होते हुए भी आप परमेश्वर त्रैलोक्यकी कामनाओंको पूर्ण करते हैं॥ १०३॥

हे प्रभो! ब्रह्मा, विष्णु एवं इन्द्रसहित देवता भी जिन आपके तत्त्वको नहीं जानते, ऐसे आपकी उपासना मैं किस प्रकार करूँ? आपसे ही सब कुछ है और आप ही सब कुछ हैं, आप ही गौरीश तथा त्रिपुरान्तक हैं। आप बालक, वृद्ध तथा युवा हैं, ऐसे आपको मैं हृदयमें धारण करता हूँ॥ १०४-१०५॥

मैं भक्तोंके ध्येय, शम्भु, पुराणपुरुष, शंकर तथा परमात्मा उन महेश्वरको नमस्कार करता हूँ॥ १०६॥

इस प्रकार स्तुतिकर वे ज्यों ही दण्डवत् पृथ्वीपर गिरे, तभी प्रसन्नचित्त उस बालकने वेदव्याससे कहा— हे योगिन्! तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, उसे वररूपमें माँगो, मेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है; क्योंकि मैं भक्तोंके अधीन हूँ॥ १०७-१०८॥

तब प्रसन्न मनवाले महातपस्वी व्यासने उठकर कहा—हे प्रभो! सब कुछ जाननेवाले आपसे कौन बात छिपी हुई है। आप सर्वान्तरात्मा, भगवान्, शर्व एवं सर्वप्रद हैं, अत: इस प्रकारकी दैन्यकारिणी याचनामें मुझे क्यों नियुक्त कर रहे हैं?॥ १०९-११०॥

इसके बाद निर्मल चित्तवाले उन व्यासजीका यह वचन सुनकर बालकरूपधारी महादेवजी मन्द-मन्द मुसकराकर कहने लगे— ॥ १११॥

बालक शिव बोले—हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने जो अभिलाषा अपने मनमें की है, वह निश्चित रूपसे शीघ्र ही पूर्ण होगी, इसमें संशय नहीं है॥ ११२॥

हे ब्रह्मन्! मैं अन्तर्यामी ईश्वर [स्वयं] आपके कण्ठमें स्थित हो इतिहास-पुराणोंका निर्माण आपसे कराऊँगा॥ ११३॥

आपने जो यह पवित्र अभिलाषाष्टक स्तोत्र कहा है, शिवस्थानमें निरन्तर एक वर्षतक तीनों कालोंमें इसका पाठ करनेसे सारी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी॥ ११४॥

इस स्तोत्रका पाठ मनुष्योंकी विद्या तथा बुद्धिको बढ़ानेवाला होगा। यह सम्पूर्ण सम्पत्ति, धर्म एवं मोक्षको देनेवाला है॥ ११५॥

प्रात:काल उठकर भलीभाँति स्नान करके शिवलिंगका अर्चनकर वर्षभर इस स्तोत्रका पाठ करनेवाला मूर्ख व्यक्ति भी बृहस्पतिके समान हो जायगा॥ ११६॥

स्त्री हो या पुरुष जो भी नियमपूर्वक शिवलिंगके समीप एक वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका जप-पाठ करेगा, उसकी विद्या एवं बुद्धिमें वृद्धि होगी॥ ११७॥

ऐसा कहकर बालकरूपधारी वे महादेव उसी शिवलिंगमें अदृश्य हो गये और व्यासजी भी अश्रुपात करते हुए शिवप्रेममें निमग्न हो गये॥ ११८॥

इस प्रकार मध्यमेश्वर महेशसे वर प्राप्तकर व्यासजीने अपनी लीलासे अठारह पुराणोंकी रचना की। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड, स्कन्द तथा ब्रह्माण्ड—ये [अठारह] पुराण कहे गये हैं। शिवजीका यश सुननेवाले मनुष्योंको ये पुराण यश तथा पुण्य प्रदान करते हैं॥ ११९—१२२॥

सूतजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने जिन अठारह पुराणोंके नाम कहे हैं, अब उनका निर्वचन कीजिये॥ १२३॥

व्यासजी बोले—[हे सूत!] यही प्रश्न ब्रह्मयोनि तण्डीने नन्दिकेश्वरसे किया था, तब उन्होंने जो उत्तर दिया था, उसीको मैं कह रहा हूँ॥ १२४॥

नन्दिकेश्वर बोले—हे तण्डि मुने! साक्षात् चतुर्मुख ब्रह्मा स्वयं जिसमें वक्ता हैं, उस प्रथम पुराणको इसीलिये ब्रह्मपुराण कहा गया है॥ १२५॥

जिसमें पद्मकल्पका माहात्म्य कहा गया है, वह दूसरा पद्मपुराण कहा गया है॥ १२६॥

पराशरने जिस पुराणको कहा है, वह विष्णुका ज्ञान करानेवाला पुराण विष्णुपुराण कहा गया है। पिता एवं पुत्रमें अभेद होनेके कारण यह व्यासरचित भी माना जाता है॥ १२७॥

जिसके पूर्व तथा उत्तरखण्डमें शिवजीका विस्तृत चरित्र है, उसे पुराणज्ञ शिवपुराण कहते हैं॥ १२८॥

जिसमें भगवती दुर्गाका चरित्र है, उसे देवीभागवत नामक पुराण कहा गया है॥ १२९॥

नारदजीद्वारा कहा गया पुराण नारदीय पुराण कहा जाता है। हे तण्डि मुने! जिसमें मार्कण्डेय महामुनि वक्ता हैं, उसे सातवाँ मार्कण्डेयपुराण कहा गया है। अग्निद्वारा कथित होनेसे अग्निपुराण एवं भविष्यका वर्णन होनेसे भविष्यपुराण कहा गया है॥ १३०-१३१॥

ब्रह्मके विवर्तका आख्यान होनेसे ब्रह्मवैवर्तपुराण कहा जाता है तथा लिंगचरित्रका वर्णन होनेसे लिंगपुराण कहा जाता है॥ १३२॥

हे मुने! भगवान् वराहका वर्णन होनेसे बारहवाँ वाराहपुराण है, जिसमें साक्षात् महेश्वर वक्ता हैं और

स्वयं स्कन्द श्रोता हैं, उसे स्कन्दपुराण कहा गया है। वामनका चरित्र होनेसे वामनपुराण है। कूर्मका चरित्र होनेसे कूर्मपुराण है तथा मत्स्यके द्वारा कथित [सोलहवाँ] मत्स्यपुराण है॥ १३३-१३४॥

जिसके वक्ता स्वयं गरुड हैं, वह [सत्रहवाँ] गरुडपुराण है। ब्रह्माण्डके चरित्रका वर्णन होनेके कारण [अठारहवाँ] ब्रह्माण्डपुराण कहा गया है॥ १३५॥

सूतजी बोले—[हे शौनक!] मैंने यही प्रश्न बुद्धिमान् व्यासजीसे किया था, तब उनसे मैंने सभी पुराणोंका निर्वचन सुना॥ १३६॥

इस प्रकार सत्यवतीके गर्भसे पराशरके द्वारा उत्पन्न हुए व्यासजीने पुराणसंहिता तथा उत्तम महाभारतकी रचना की। हे ब्रह्मन्! प्रथम सत्यवतीका संयोग पराशरसे और उसके बाद शान्तनुसे हुआ, इसमें सन्देह मत कीजिये॥ १३७-१३८॥

यह आश्चर्यकारिणी उत्पत्ति सकारण कही गयी है। महान् पुरुषोंके चरित्रमें बुद्धिमानोंको गुणोंको ही ग्रहण करना चाहिये। जो [मनुष्य] इस परम रहस्यको सुनता है अथवा पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ऋषिलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १३९-१४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें व्यासोत्पत्तिवर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

भगवती जगदम्बाके चरितवर्णनक्रममें सुरथराज एवं समाधि वैश्यका वृत्तान्त तथा मधु-कैटभके वधका वर्णन

मुनिगण बोले—हे सूतजी! हमलोगोंने अनेक आख्यानोंसे युक्त मनोहर शिवकथा सुनी, जो अनेक अवतारोंसे सम्बन्धित तथा मनुष्योंको मुक्ति एवं भुक्ति देनेवाली है। हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! अब हमलोग आपसे भगवती जगदम्बाके मनोहर चरित्रको सुनना चाहते हैं। परब्रह्म महेश्वरकी जो सनातनी आद्या शक्ति हैं, वे उमा नामसे विख्यात हैं। वे ही त्रिलोकीको उत्पन्न करनेवाली पराशक्ति हैं। उनके दक्षकन्या सती तथा हैमवती पार्वती—ये दो अवतार हमने सुने। हे महामते सूतजी! अब आप उनके अन्य अवतारोंका वर्णन कीजिये॥ १—४॥

उन श्रीमाताके गुणोंका श्रवण करनेसे भला कौन बुद्धिमान् विरत होना चाहेगा, [जबकि] ज्ञानीलोग भी उनके गुणानुवाद-श्रवणका त्याग नहीं करते॥ ५॥

सूतजी बोले—आप सभी महात्मा धन्य एवं कृतकृत्य हैं, जो सर्वदा पराम्बा भगवती पार्वतीका महान् चरित्र पूछते हैं॥ ६॥

मुनियोंने जगदम्बाका चरित्र पूछनेवालों, सुननेवालों तथा पढ़नेवालोंके चरणकमलोंकी धूलिको ही तीर्थ कहा है। जिन लोगोंका चित्त परमसंवित्स्वरूपिणी श्रीदेवीके चिन्तनमें लीन रहता है, वे धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और उनकी जननी तथा कुल भी धन्य हैं॥ ७-८॥

जो लोग समस्त कारणोंकी कारणभूता जगदम्बाकी स्तुति नहीं करते हैं, वे मायाके गुणोंसे मोहित और भाग्यहीन ही रहते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

जो करुणारसकी सिन्धुस्वरूपा महादेवीका भजन नहीं करते, वे संसाररूपी घोर अन्धकूपमें पड़ते हैं॥ १०॥

जो मनुष्य देवीको छोड़कर दूसरे देवताओंकी शरण लेता है, वह मानो गंगाजीको छोड़कर मरुस्थलके जलाशयके पास जाता है॥ ११॥

जिनके स्मरणमात्रसे चारों पुरुषार्थ [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] बिना परिश्रमके प्राप्त हो जाते हैं, उन देवीका कौन श्रेष्ठ पुरुष त्याग करेगा? पूर्व समयमें महात्मा सुरथने मेधा ऋषिसे यही पूछा था, तब मेधाने जो कहा था, उसीको मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनिये॥ १२-१३॥

पहले स्वारोचिष मन्वन्तरमें विरथ नामक राजा हुआ था, उसका पुत्र सुरथ महाबली एवं पराक्रमशाली था। वह

दानमें निपुण, सत्यवादी, अपने धर्ममें कुशल, सफल, देवीभक्त, दयासागर और प्रजापालक था॥ १४-१५॥

इन्द्रके समान तेजसम्पन्न वह राजा जब पृथ्वीका शासन कर रहा था, उस समय नौ राजा ऐसे थे, जो उसका राज्य लेनेको उद्यत हो गये। उन्होंने उस राजाकी कोला नामक राजधानीको घेर लिया और उनके साथ [सुरथका] भयंकर संग्राम हुआ। उन महाबली शत्रुओंने युद्धमें उस राजाको पराजित कर दिया और उसका सारा राज्य छीनकर उसे कोलापुरीसे बाहर निकाल दिया॥ १६—१८॥

वह राजा अपनी पुरीमें आकर अपने मन्त्रियोंके साथ राज्य करने लगा, किंतु वहाँ भी उसके प्रबल शत्रुओंने उसे पराजित कर दिया। दैवयोगसे शत्रुता करके उसके मन्त्री आदि प्रमुख सहायकोंने कोषमें जो भी धन स्थित था, वह सब स्वयं ले लिया॥ १९-२०॥

इसके बाद असहाय वह राजा आखेटके बहाने घोड़ेपर चढ़कर घने वनमें चला गया॥ २१॥

वहाँ इधर-उधर भटकते हुए उस राजाने किसी मुनिके उत्तम आश्रमको देखा, जो चारों ओरसे पुष्प-



वाटिकाओंसे सुशोभित था, वेदध्वनिसे गुंजित, शान्त जन्तुओंसे परिव्याप्त और उनके शिष्यों, प्रशिष्यों तथा उनके भी शिष्योंसे सभी ओरसे घिरा हुआ था॥ २२-२३॥

हे महामते! उन द्विजवरके प्रभावसे उस आश्रममें महाबलवान् व्याघ्र आदि जन्तु निर्बल जन्तुओंको पीड़ा नहीं पहुँचाते थे॥ २४॥

वहाँपर परम दयालु तथा बुद्धिमान् राजा मुनिवर्यके द्वारा मधुर वचन, भोजन, आसन, पान आदिसे सत्कृत होकर निवास करने लगा॥ २५॥

एक समय वह राजा अत्यधिक चिन्तामग्न होकर सोचने लगा। आश्चर्य है कि मुझ भाग्यहीन, बुद्धिहीन एवं निस्तेजका सम्पूर्ण राज्य मदोन्मत्त शत्रुओंने छीन लिया। मेरे पूर्वजोंसे रक्षित राज्यका उपभोग इस समय शत्रु कर रहे हैं॥ २६-२७॥

इस चैत्रवंशमें मेरे-जैसा [अभागा] कोई राजा नहीं हुआ। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किस प्रकार अपना राज्य प्राप्त करूँ?॥ २८॥

जो मेरे परम्परागत अमात्य तथा मन्त्री थे, वे इस समय न जाने किस राजाका आश्रय लेकर निवास करते होंगे। वे इस राज्यका विनाश करके न जाने अब किस गतिको प्राप्त हुए होंगे। युद्धभूमिमें महान् उत्साहवाले एवं शत्रुवर्गका छेदन करनेवाले मेरे जो महान् शूरवीर थे, वे दूसरे राजाके आश्रयमें होंगे। पर्वतके समान हाथियों और वायुके समान वेगशाली घोड़ों तथा पहलेके पूर्वजोंद्वारा अर्जित मेरे कोषकी रक्षा वे इस समय करते होंगे अथवा नहीं। इस प्रकार विचार करता हुआ वह परम धार्मिक राजा मोहके वशीभूत हो गया॥ २९—३२॥

इसी बीच कोई वैश्य वहाँ आया। राजाने उससे पूछा—तुम कौन हो? और किसलिये यहाँ आये हो?॥ ३३॥

इस समय तुम इतने दुखी क्यों दिखायी पड़ रहे हो, इसे मुझे बताओ। राजाके द्वारा कहे गये इस मनोहर वचनको सुनकर वह वैश्यश्रेष्ठ समाधि अपने नेत्रोंसे आँसू बहाता हुआ प्रेम और विनययुक्त वाणीमें राजासे कहने लगा—॥ ३४-३५॥

वैश्य बोला—हे महीपते! मैं धनियोंके वंशमें उत्पन्न समाधि नामक वैश्य हूँ; मेरे स्त्री-पुत्र आदिने

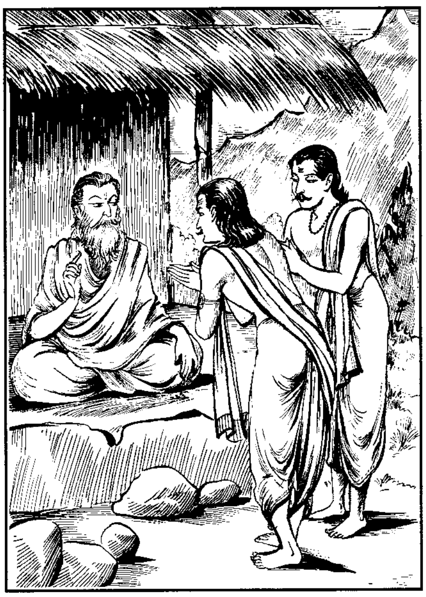
धनलोभके कारण मेरा त्याग कर दिया है॥ ३६॥

हे राजन्! अपने [पूर्वकृत] कर्मसे दु:खित होकर मैं इस वनमें आया हूँ। हे करुणासागर! हे प्रभो! मैं अपने पुत्रों, पौत्रों, स्त्रियों, भाइयों, भतीजों एवं अन्य सुहृदोंका कुशल भलीभाँति नहीं जान पा रहा हूँ॥ ३७-३८॥

राजा बोला—दुराचारी तथा धनके लोभी जिन पुत्र आदिने तुम्हें [घरके बाहर] निकाल दिया, उनसे तुम मूर्ख प्राणीके समान प्रीति क्यों करते हो?॥ ३९॥

वैश्य बोला—हे राजन्! आपने सचमुच सारगर्भित बात कही है, किंतु स्नेहपाशसे जकड़े रहनेके कारण मेरा मन अत्यन्त मोहग्रस्त हो रहा है॥ ४०॥

[सूतजी बोले—] हे मुनिश्रेष्ठ! तदुपरान्त इस प्रकार मोहसे व्याकुल राजा एवं वैश्य दोनों ही मुनिवर सुमेधाके पास गये। वैश्यवरसहित उस प्रतापी महाधैर्यशाली राजाने सिर झुकाकर योगिराजको प्रणाम किया॥ ४१-४२॥



उसके अनन्तर राजाने हाथ जोड़कर मुनिसे यह वचन कहा—हे भगवन्! इस समय आप हम दोनोंका संशय दूर करनेकी कृपा कीजिये। मैं अपनी राज्यलक्ष्मीसे त्यक्त होकर इस गहन वनमें आया हूँ, तथापि राज्यके अपहरण हो जानेके कारण मुझे शान्ति नहीं है। यह वैश्य भी अपने कुटुम्बियोंद्वारा घरसे निकाल दिया गया है, फिर भी इसकी ममता दूर नहीं हो रही है। इसमें क्या कारण है, उसे कहिये, जानकार होते हुए भी हम दोनोंका मन मोहसे व्याकुल हो गया है, यह तो महान् मूर्खता है!॥ ४३—४६॥

ऋषि बोले—हे राजन्! वे जगद्धात्री शक्तिरूपा सनातनी महामाया ही सबके मनको आकृष्टकर मोहमें डाल देती हैं॥ ४७॥

हे प्रभो! ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी जिनकी मायासे मोहित होकर परमतत्त्वको नहीं जान पाते, फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या?॥ ४८॥

वे त्रिगुणा परमेश्वरी सम्पूर्ण संसारको उत्पन्न करती हैं, वे ही उसका पालन करती हैं और वे ही फिर समय प्राप्त होनेपर उसका विनाश भी करती हैं॥ ४९॥

हे नृपश्रेष्ठ! वरदायिनी एवं कामरूपिणी वे देवी जिसके ऊपर प्रसन्न होती हैं, वही मोहका अतिक्रमण करता है, दूसरा कोई नहीं॥ ५०॥

राजा बोला—वे देवी महामाया कौन हैं, जो सभीको मोहित कर देती हैं, वे देवी किस प्रकार उत्पन्न हुईं? हे मुने! कृपाकर मुझसे कहिये॥ ५१॥

ऋषि बोले—जगत्के एकार्णव हो जानेपर जब योगिराज विष्णु योगनिद्राका आश्रय लेकर शेषशय्यापर सो रहे थे, उस समय विष्णुके कानोंके मलसे दो दैत्य उत्पन्न हुए, जो मधु और कैटभ नामसे भूतलपर प्रसिद्ध हुए। वे प्रलयकालीन सूर्यके समान तेजस्वी, भयानक, विशाल शरीरवाले, बड़ी ठोढ़ीवाले और दाढ़ोंके कारण विकराल मुखवाले थे, ऐसा प्रतीत होता था कि वे सभी लोकोंका भक्षण कर जायँगे॥ ५२—५४॥

उस समय भगवान्के नाभिकमलपर ब्रह्माजीको स्थित देखकर वे दोनों दैत्य उन्हें मारनेको उद्यत हुए और कहने लगे—'तुम कौन हो?'॥ ५५॥

उस समय उन दोनों दैत्योंको देखकर तथा विष्णुको क्षीरसागरमें शयन करते हुए जानकर ब्रह्माजी परमेश्वरीकी स्तुति करने लगे॥ ५६॥

ब्रह्माजी बोले—हे महामाये! हे शरणागतवत्सले! हे जगदम्बे! घोर रूपवाले इन दोनों दैत्योंसे रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ ५७॥

मैं महामाया, योगनिद्रा, उमा, सती, कालरात्रि, महारात्रि, मोहरात्रि, परात्परा, तीनों देवताओंकी जननी, नित्या, भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली, समस्त देवोंका पालन करनेवाली तथा करुणासागररूपिणी देवीको प्रणाम करता हूँ॥ ५८-५९॥

[हे देवि!] आपके प्रभावसे मैं ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इस जगत्का सृजन, पालन तथा समय प्राप्त होनेपर संहार करते हैं॥ ६०॥

हे अम्ब! आप ही स्वाहा, स्वधा, लज्जा तथा निर्मल बुद्धि कही गयी हैं, आप ही तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, क्षान्ति, क्षुधा और दया हैं॥ ६१॥

हे अम्ब! आप ही विष्णुमाया और चेतना कही गयी हैं। आप ही परमाशक्ति, लज्जा एवं तृष्णा कही गयी हैं॥ ६२॥

आप भ्रान्ति तथा स्मृति हैं एवं मातृरूपसे स्थित हैं। आप ही पुण्य आचारमें संलग्न मनुष्योंके घरमें लक्ष्मीरूपसे स्थित हैं॥ ६३॥

आप ही जाति तथा वृत्ति कही गयी हैं। आप ही व्याप्तिरूपा हैं। आप ही चित्तिरूपसे सारे संसारमें व्याप्त होकर स्थित हैं॥ ६४॥

हे अम्बिके! हे जगद्योने! आप इन दोनों अजेय दैत्योंको मोहित कीजिये और अजन्मा तथा सर्वव्यापी नारायणको जगाइये॥ ६५॥

ऋषि बोले—हे नृप! ब्रह्माजीके द्वारा प्रार्थित वे महाविद्या, जगद्धात्री, समस्त विद्याओंकी अधिदेवता भगवती मधु-कैटभका नाश करनेहेतु फाल्गुन शुक्ल द्वादशीको प्रकट हुईं, वे तीनों लोकोंको मोहित करनेवाली शक्ति महाकाली—इस नामसे प्रसिद्ध हुईं॥ ६६-६७॥

तब आकाशवाणी हुई—'हे ब्रह्मदेव! तुम भयभीत मत होओ, मैं युद्धमें मधु-कैटभका वधकर आज तुम्हारा दु:ख दूर करूँगी'—ऐसा कहकर वे महामाया विष्णुके नेत्र एवं मुख आदिसे निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके समक्ष स्थित हो गयीं॥ ६८-६९॥

उसके बाद देवदेव जनार्दन हृषीकेश [निद्रासे] उठे और उन्होंने अपने सामने मधु-कैटभ नामक दोनों दैत्योंको देखा॥ ७०॥

तब उन दोनोंके साथ महातेजस्वी विष्णुका युद्ध आरम्भ हो गया, पाँच हजार वर्षपर्यन्त बाहुयुद्ध हुआ। उसके अनन्तर महामायाके प्रभावसे मोहित हुए दोनों दैत्यश्रेष्ठ विष्णुसे बोले—आप मनोवांछित वर ग्रहण कीजिये॥ ७१-७२॥

नारायण बोले—यदि तुम दोनों मुझसे प्रसन्न हो तो मुझे यह वर दो कि मैं स्वयं तुम दोनोंका वध कर सकूँ, मैं तुम दोनोंसे अन्य वर नहीं माँगता हूँ॥ ७३॥

ऋषि बोले—तब सभी ओरसे जलमग्न पृथ्वीकी ओर देखकर उन दोनोंने विष्णुसे यह वचन कहा—जहाँ पृथ्वीपर जल न हो, उस स्थानपर आप हम दोनोंका वध कीजिये॥ ७४॥

'ऐसा ही होगा'—यह कहकर भगवान्ने अपना अत्यन्त देदीप्यमान चक्र उठाकर उन दोनों दैत्योंको अपनी जंघापर रखकर उनके सिर काट दिये॥ ७५॥

हे राजन्! हे महामते! इस प्रकार मैंने आपसे कालिकाकी उत्पत्ति कह दी, अब महालक्ष्मीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त सुनिये॥ ७६॥

निर्विकार तथा निराकार होनेपर भी वे भगवती उमा देवगणोंका दु:ख दूर करनेके लिये युग-युगमें शरीर धारणकर प्रकट होती हैं॥ ७७॥

अपनी इच्छाके अनुसार देह धारण करना उन भगवतीका इच्छावैभव कहा गया है और वे भी लीलासे इसलिये शरीर धारण करती हैं कि भक्त उनके गुणोंका गान करते रहें॥ ७८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें महाकालिकावतारवर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

महिषासुरके अत्याचारसे पीड़ित ब्रह्मादि देवोंकी प्रार्थनासे प्रादुर्भूत महालक्ष्मीद्वारा महिषासुरका वध

ऋषि बोले—[हे राजन्!] पूर्व समयमें दैत्यवंशशिरोमणि रम्भ नामक दैत्य था, उससे महिष नामक महातेजस्वी दानव उत्पन्न हुआ। उस दैत्यराज महिषने युद्धमें सभी देवताओंको जीत लिया और स्वर्गलोकमें इन्द्रासनपर बैठकर राज्य करने लगा॥ १-२॥

तब पराजित हुए देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्मा भी उन्हें लेकर वहाँ गये, जहाँ शिव और विष्णु स्थित थे। वहाँ जाकर सभी देवता शंकर एवं केशवको नमस्कारकर अपना सारा वृत्तान्त भलीभाँति क्रमसे कहने लगे—॥ ३-४॥

हे भगवन्! दुष्टात्मा महिषासुरने संग्राममें हमलोगोंको जीतकर स्वर्गलोकसे निकाल दिया है। अब हमलोग मनुष्यलोकमें घूम रहे हैं, किंतु कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। उसने इन्द्र आदि प्रमुख देवताओंकी कौन-कौन-सी दुर्गति नहीं की। दैत्यपक्षको अभय देनेवाला वह पापात्मा असुर सूर्य, चन्द्रमा, वरुण, कुबेर, यम, इन्द्र, अग्नि, पवन, गन्धर्व, विद्याधर एवं चारण—इन देवताओं तथा अन्य देवगणोंके विधेय कर्मको स्वयं सम्पन्न करता है। इसलिये आपकी शरणमें आये हुए हम देवताओंकी आप दोनों रक्षा करें और शीघ्र ही उस दैत्यके वधका उपाय सोचें, आप दोनों हमलोगोंके प्रभु हैं॥ ५—९॥

देवगणोंका वचन सुनकर क्रोधसे घूरते हुए विष्णु और शिव अत्यन्त कुपित हुए। उस समय कुपित विष्णु तथा शिवके मुखसे और अन्य देवताओंके शरीरसे तेज निकला॥ १०-११॥

दुर्गाध्यानपरायण सभी देवगणोंने उस अतिशायि तेजसमूहको दसों दिशाओंमें देदीप्यमान देखा॥ १२॥

सभी देवगणोंके शरीरसे उत्पन्न वह भयंकर तेज एकत्रित होकर साक्षात् महिषमर्दिनी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गया॥ १३॥

देवीका कान्तिमान् मुख शिवजीके तेजसे उत्पन्न हुआ। यमके तेजसे केश और विष्णुके तेजसे उनकी भुजाएँ उत्पन्न हुईं॥ १४॥

चन्द्रमाके तेजसे उनके दोनों स्तन, इन्द्रके तेजसे कटिप्रदेश एवं वरुणके तेजसे जंघा तथा ऊरु उत्पन्न हुए। पृथ्वीके तेजसे नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पैरोंकी अँगुलियाँ, इन्द्रके तेजसे हाथोंकी अँगुलियाँ, कुबेरके तेजसे नासिका, प्रजापतिके तेजसे दाँत, अग्निके तेजसे तीनों नेत्र, सन्ध्याके तेजसे उनकी दोनों भौंहें और पवनके तेजसे दोनों कान एवं अन्य सभी देवगणोंके तेजसे [प्रकट अवयवोंसे युक्त] वे कमलनिवासिनी महालक्ष्मी आविर्भूत हुईं॥ १५—१८॥

इस प्रकार समस्त देवगणोंकी तेजोराशिसे उन देवीको प्रकट हुआ देखकर सम्पूर्ण देवता अत्यन्त हर्षित हो गये। उसके बाद उन देवीको अस्त्रहीन देखकर ब्रह्मा आदि देवगणोंने उन शिवाको शस्त्रयुक्त करनेका मनमें विचार किया॥ १९-२०॥

शिवजीने महेश्वरीको अपना त्रिशूल दिया, भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें शंख एवं सुदर्शन चक्र दिया तथा पाश धारण करनेवाले वरुणने पाश दिया॥ २१॥

अग्निने शक्ति, पवनने धनुष-बाणोंसे परिपूर्ण तरकस और शचीपति इन्द्रने वज्र एवं घण्टा दिया। यमराजने कालदण्ड, प्रजापतिने अक्षमाला, ब्रह्मदेवने कमण्डलु तथा सूर्यने समस्त रोमकूपोंमें रश्मियाँ अर्पित कीं॥ २२-२३॥

कालने खड्ग एवं उज्ज्वल ढाल दी, क्षीरसागरने गलेकी मनोहर माला, कभी जीर्ण न होनेवाले दो वस्त्र, चूडामणि, कुण्डल, कटक, अर्धचन्द्र, केयूर, दो मनोहर नूपुर, ग्रीवाके आभूषण तथा समस्त अँगुलियोंके लिये अँगूठियाँ दीं। विश्वकर्माने उन्हें मनोहर परशु प्रदान किया और साथ ही अनेक अस्त्र तथा अभेद्य कवच भी प्रदान किया॥ २४—२६॥

समुद्रने सुरम्य, सरस माला तथा कमलपुष्प प्रदान

किये। हिमालयने इन्हें सिंह तथा अनेक प्रकारके रत्न दिये और कुबेरने मधुसे भरा पात्र दिया॥ २७-२८॥

सभी सर्पोंके अधिपति शेषने विचित्ररचनायुक्त तथा अनेक उत्तम मणियोंसे जटित नागहार उन्हें दिया॥ २९॥

इस प्रकार इन देवताओं तथा दूसरे देवगणोंके द्वारा प्रदत्त भूषणों एवं आयुधोंसे सत्कृत हुई देवीने ऊँचे स्वरसे बार-बार अट्टहासपूर्वक गर्जना की॥ ३०॥

उनके इस भीषण नादसे सारा आकाशमण्डल पूर्ण हो गया और ऐसी प्रतिध्वनि हुई कि त्रैलोक्य विक्षुब्ध हो उठा। चारों समुद्र चंचल हो गये और पृथ्वी भी डगमगाने लगी। इसके बाद महिषासुरसे पीड़ित हुए देवगणोंने जय-जयकार किया॥ ३१-३२॥



तदनन्तर वे सभी देवता भक्तियुक्त गद्‌गद वाणीमें महालक्ष्मीस्वरूपिणी पराशक्ति अम्बिकाकी स्तुति करने लगे॥ ३३॥

लोकको इस प्रकार संक्षुब्ध देखकर देवताओंके शत्रु असुरगण अपने सैनिकोंके साथ अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त होकर संग्रामके लिये उद्यत हो गये॥ ३४॥

तब महिषासुर भी उस शब्दको लक्ष्यकर क्रोधसे कुपित हो दौड़ पड़ा और उसने अपनी कान्तिसे तीनों लोकोंको व्याप्त करती हुई देवीको देखा॥ ३५॥

इसी बीच महिषासुरके द्वारा पालित करोड़ों महावीर शस्त्र धारण किये हुए वहाँ पहुँच गये॥ ३६॥

चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, उद्धत, वाष्कल, ताम्र, उग्रास्य, उग्रवीर्य, बिडाल, अन्धक, दुर्धर, दुर्मुख, त्रिनेत्र और महाहनु—ये तथा अन्य युद्धविशारद और शस्त्रास्त्रविद्यामें पारंगत अनेक वीर समरमें देवीके साथ युद्ध करने लगे। इस प्रकार युद्ध करते हुए उन दोनों पक्षोंका भयावह समय बीत गया॥ ३७—३९॥

शत्रुवर्गके द्वारा छोड़े गये अनेक शस्त्रास्त्रोंके समूह महामायाके प्रभावसे क्षणमात्रमें ही विनष्ट हो गये॥ ४०॥

तत्पश्चात् देवीने सैन्यसहित चिक्षुर आदि प्रमुख शत्रुओंपर गदा, बाण, त्रिशूल, शक्ति एवं परशुसे प्रहार किया॥ ४१॥

इस प्रकार युद्ध करते-करते जब महिषासुरकी सारी सेना नष्ट हो गयी, तब वह दैत्य देवीके निःश्वाससे उत्पन्न हुए गणोंको आक्रान्त करने लगा। उसने कुछ गणोंपर खुरसे, कुछपर अपनी दोनों सींगोंसे, किसीपर पूँछसे और किसीपर तुण्डसे बार-बार प्रहार करना आरम्भ किया॥ ४२-४३॥

इस प्रकार देवीके गणोंको मारकर वह असुरराज देवीके सिंहको मारने दौड़ा और अत्यधिक कुपित हो गया। क्रोधके कारण वह महापराक्रमी महिषासुर खुरोंसे पृथ्वीको खोदने लगा और सींगोंसे पर्वतोंको उखाड़कर फेंकने लगा तथा घनघोर गर्जना करने लगा॥ ४४-४५॥

हे नृपसत्तम! उस महिषासुरके द्वारा चारों ओर वेगसे दौड़ते हुए फेंके गये बड़े-बड़े पहाड़ ऊपरसे पृथ्वीपर गिरने लगे॥ ४६॥

उसकी सींगोंसे विदीर्ण हुए बादल खण्ड-खण्ड हो गये और पूँछसे ताडित हो समुद्र चारों ओरके किनारोंको तोड़कर इधर-उधर बहने लगे॥ ४७॥

इस प्रकार क्रुद्ध हुए उस महिषासुरको देखकर देवताओंको अभयदान देनेवाली अम्बिकाने उसके वधका उपाय किया॥ ४८॥

उन ईश्वरीने अपना पाश उठाकर महिषासुरके

ऊपर फेंककर जब उसे बाँधना चाहा, तब महिषासुरने अपना महिषरूप त्याग दिया और उसी क्षण सिंहका रूप धारण कर लिया, इसके बाद जबतक देवीने तलवारसे उसके सिरपर प्रहार किया, तबतक वह मायावी खड्गधारी पुरुष हो गया॥ ४९-५०॥

इसके बाद ढाल एवं तलवार लिये हुए उस पुरुषपर जब देवीने बाणोंसे प्रहार किया, तब उसने हाथीका रूप धारणकर अपनी सूँड़से देवीके सिंहपर प्रहार करना आरम्भ किया॥ ५१॥

इसके बाद देवीने अपने महाखड्गसे उसकी सूँड़ काट दी, तब उस राक्षसने पुनः अपना महिषरूप धारण कर लिया और सारे चराचर जगत्‌को क्षुब्ध करने लगा। यह देख महामानिनी चण्डिकाको अपार क्रोध हुआ और घूर्णित नेत्रोंवाली वे बार-बार मधुपान करने लगीं तथा अट्टहास करने लगीं। इसके बाद बल और पराक्रमसे मतवाला वह असुर गर्जना करने लगा॥ ५२—५४॥

वह असुर पर्वतोंको उखाड़कर उनके ऊपर फेंकने लगा। तब उन देवीने बाणसमूहके प्रहारोंसे उन्हें शीघ्र ही चूर-चूर कर डाला। उसके अनन्तर मधुके मदसे आरक्त मुखवाली तथा विह्वल इन्द्रियोंवाली देवी मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगीं—॥ ५५-५६॥

देवी बोलीं—हे मूर्ख! हे हतबुद्धि! तुम व्यर्थ हठ क्यों कर रहे हो? त्रैलोक्यमें कोई भी असुर मेरे सामने टिक नहीं सकता है॥ ५७॥

ऋषि [सुमेधा] बोले—ऐसा कहकर समस्त कलामयी उन देवीने कूदकर उस दैत्यको पैरोंसे दबाकर भयंकर त्रिशूलसे उसके कण्ठपर प्रहार किया॥ ५८॥

तत्पश्चात् देवीके चरणोंसे दबा हुआ और देवीके पराक्रमसे विवश हुआ वह अपने मुखसे आधा निकल आया, वह महाधम दैत्य अपने आधे रूपसे निकलकर देवीके साथ पुनः संग्राम करने लगा। तब देवीने अपने महाखड्गसे उसका सिर काटकर पृथ्वीतलपर गिरा दिया॥ ५९-६०॥

उसके बाद महिषासुरके गण 'हाय-हाय' शब्दका उच्चारण करके मुख नीचे किये हुए भयभीत होकर 'रक्षा करो, रक्षा करो'—ऐसा कहते हुए युद्धभूमिसे भाग गये। तब इन्द्र आदि सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे, गन्धर्व गीत गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं॥ ६१-६२॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे महालक्ष्मीकी उत्पत्ति कही, अब आप स्वस्थचित्तसे सरस्वतीकी उत्पत्तिका वृत्तान्त श्रवण कीजिये॥ ६३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें महिषासुरवधके उपाख्यानमें महालक्ष्मीका अवतारवर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

शुम्भ-निशुम्भसे पीड़ित देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड आदि असुरोंका वध

ऋषि बोले—हे राजन्! पूर्व समयमें शुम्भ एवं निशुम्भ नामक प्रतापी दैत्य हुए। उन दोनों भाइयोंने अपने तेजसे चराचरसहित तीनों लोकोंको आक्रान्त कर रखा था। उन दोनोंसे पीड़ित हुए देवगण हिमालयपर्वतपर गये और समस्त प्राणियोंकी माता तथा कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवीकी स्तुति करने लगे॥ १-२॥

देवगण बोले—हे दुर्गे! हे महेश्वरि! आपकी जय हो, हे आत्मीयजनप्रिये! आपकी जय हो, त्रैलोक्यकी रक्षा करनेवाली आप शिवाको नमस्कार है, नमस्कार है। मुक्तिदायिनीको नमस्कार है, पराम्बाको नमस्कार है, समस्त जगत्‌का सृजन, पालन तथा संहार करनेवालीको नमस्कार है॥ ३-४॥

हे कालिकारूपसम्पन्ने! आपको नमस्कार है। आप ताराकृतिको नमस्कार है। आप छिन्नमस्तास्वरूपा तथा श्रीविद्याको नमस्कार है॥ ५॥

हे भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है, आप भैरवाकृतिको नमस्कार है। आप बगलामुखीको नमस्कार है। आप धूमावतीको बार-बार नमस्कार है॥ ६॥

त्रिपुरसुन्दरीको नमस्कार है, मातंगीको बार-बार नमस्कार है। आप अजिताको नमस्कार है, विजयाको बार-बार नमस्कार है। आप जया, मंगला तथा विलासिनीको बार-बार नमस्कार है, आप दोग्ध्रीरूपाको नमस्कार है, आप घोराकृतिको नमस्कार है॥ ७-८॥

हे अपराजिताकारे! आपको नमस्कार है, हे नित्याकारे! आपको नमस्कार है। शरणागतोंका पालन करनेवाली आप रुद्राणीको बार-बार नमस्कार है॥ ९॥

आप वेदान्तवेद्याको नमस्कार है, आप परमात्माको नमस्कार है, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी नायिकाको बार-बार नमस्कार है॥ १०॥

इस प्रकार देवताओंद्वारा स्तुति की जाती हुई वरदायिनी गौरी शिवाने प्रसन्न होकर सभी देवगणोंसे कहा—आपलोग यहाँपर किसकी स्तुति कर रहे हैं?॥ ११॥

उसी समय पार्वतीके शरीरसे एक कन्या प्रकट हुई, उन देवगणोंके देखते-देखते ही उसने अत्यन्त आदरपूर्वक शिवशक्ति पार्वतीजीसे कहा—हे मात:! महाबली शुम्भ-निशुम्भसे पीड़ित हुए सभी स्वर्गवासी देवता मेरी स्तुति कर रहे हैं॥ १२-१३॥

वे पार्वतीके शरीरकोशसे उत्पन्न हुईं, अत: शुम्भासुरका नाश करनेवाली वे कौशिकी नामसे पुकारी जाती हैं। वे ही उग्रतारिका एवं वही महोग्रतारिका भी कही गयी हैं। वे प्रकट हुईं, इसलिये लोकमें मातंगी कही जाती हैं॥ १४-१५॥

उन्होंने सभी देवताओंसे कहा—आप सब निर्भय होकर निवास कीजिये। मैं स्वतन्त्र हूँ, इसलिये किसीके सहारेके बिना ही मैं आपलोगोंका कार्य सिद्ध करूँगी॥ १६॥

तब ऐसा कहकर वे देवी उसी क्षण अन्तर्धान हो गयीं। उन दोनों शुम्भ-निशुम्भके चण्ड-मुण्ड नामक सेवकोंने [उसी समय] उन देवीको देखा। नेत्रोंको सुख प्रदान करनेवाले उनके मनोहर रूपको देखते ही वे चेतनाहीन तथा मोहित हो पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १७-१८॥

इसके बाद जाकर उन दोनोंने [अपने] राजासे आरम्भसे लेकर सारा वृत्तान्त कहा—हे राजन्! हमने एक मनोहर अपूर्व स्त्री देखी है, जो हिमालयके रम्य शिखरपर सिंहारूढ होकर स्थित है। सभी ओरसे देवकन्याएँ हाथ जोड़कर उसकी सेवा कर रही हैं। कोई [देवकन्या] उसका पैर दबाती है, कोई केश सँवारती है, कोई हाथ दबाती है, कोई नेत्रोंमें सुरमा लगाती है। कोई हाथमें दर्पण लेकर उन्हें मुख दिखा रही है, कोई लौंग-इलायचीमिश्रित पान खिला रही है, कोई स्त्री हाथमें पीकदान लेकर उसके सामने खड़ी है और कोई आभूषण एवं वस्त्रोंसे उसके सभी अंगोंका शृंगार कर रही है॥ १९—२३॥

वह देवी केलेके स्तम्भके समान ऊरुदेशवाली, शुकसदृश नासिकावाली, सर्पके समान भुजावल्लीवाली, बजते हुए नूपुरोंसे युक्त चरणोंवाली, रम्य मेखलासे युक्त, कस्तूरीकी गन्ध तथा मोतियोंकी मालासे शोभायमान हिलते हुए स्तनवाली, ग्रैवेयकसे सुशोभित ग्रीवावाली, बिजलीके समान कान्तिसे देदीप्यमान, अर्धचन्द्र तथा मणिमय कुण्डल धारण किये हुए स्थित है॥ २४—२६॥

मनोहर चोटीवाली, विशाल नेत्रोंवाली, तीन नेत्रोंसे सुशोभित, अक्षरब्रह्ममयी माला धारण किये हुए, हाथोंमें मनोहर कंकणसे सुशोभित, स्वर्णकी अँगूठीसे युक्त अँगुलियोंवाली, उज्ज्वल बाजूबन्दसे सुशोभित भुजाओंवाली, श्वेत वस्त्र पहने हुए, गौरवर्णवाली, कमलके आसनपर विराजमान, केसरबिन्दुका तिलक धारण किये हुए चन्द्रमासे अलंकृत मस्तकवाली, विद्युत्के समान कान्तिवाली, बहुमूल्य वस्त्रका चोल धारण किये हुए, ऊँचे स्तनोंवाली तथा उत्तुंग आठों हाथोंमें श्रेष्ठ आयुध धारण की हुई स्थित है॥ २७—२९॥

वह जैसी सुन्दर है, वैसी त्रिलोकीमें न कोई असुर

स्त्री है, न नाग स्त्री है, न गन्धर्व स्त्री है और न ही दानव स्त्री है। अतः हे प्रभो! उसके परिग्रहकी योग्यता आपमें ही शोभित होती है; क्योंकि आप पुरुषरत्न हैं और वह स्त्रीरत्न है॥ ३०-३१॥

चण्ड-मुण्डके द्वारा कहा गया यह वचन सुनकर उस महान् असुरने देवीके पास अपना सुग्रीव नामक दूत भेजा और उससे कहा—हे दूत! तुम हिमालयपर्वतपर जाओ, वहाँ एक सुन्दर स्त्री है, मेरा सन्देश कहकर उसे यत्नपूर्वक [मेरे पास] लाओ॥ ३२-३३॥

उसकी यह आज्ञा पाकर दैत्योंमें श्रेष्ठ उस सुग्रीवने हिमालयपर्वतपर जाकर महेश्वरी जगदम्बासे कहा— ॥ ३४॥



दूत बोला—हे देवि! महान् बल तथा पराक्रमवाले शुम्भासुर एवं उनके छोटे भाई निशुम्भ तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। मैं उनका दूत हूँ। उनके द्वारा भेजा गया मैं आपके पास आया हूँ। हे सुरेश्वरि! उन्होंने जो कहा है, उसे अब आप सुनिये॥ ३५-३६॥

मैंने इन्द्र आदिको युद्धमें जीतकर उनके सारे रत्न ले लिये हैं और यज्ञमें देवगणोंके द्वारा दिये गये यज्ञभागको मैं स्वयं ग्रहण करता हूँ॥ ३७॥

मैं तुम्हें सभी रत्नोंमें सर्वश्रेष्ठ स्त्रीरत्न समझता हूँ, अतः तुम कामजन्य रसोंके द्वारा मेरा अथवा मेरे छोटे भाईका सेवन करो॥ ३८॥

शुम्भके द्वारा सन्दिष्ट दूतका कहा हुआ वचन सुनकर शिवप्राणप्रिया वे महामाया कहने लगीं— ॥ ३९॥

देवी बोलीं—हे दूत! तुम सत्य कह रहे हो, तुमने थोड़ा-सा भी असत्य नहीं कहा है, किंतु मैंने पहले एक प्रतिज्ञा की है, उसे मुझसे जान लो। जो युद्धमें मुझे जीत लेगा और जो मेरा अहंकार दूर करेगा, मैं उसे ही पतिरूपमें वरण करूँगी, दूसरेको नहीं, यह निश्चित है। तुम शुम्भ-निशुम्भसे मेरा यह वचन कह दो। इस विषयमें जैसा उचित हो, वह वैसा ही करे॥ ४०—४२॥

तब सुग्रीव नामक दूतने देवीका यह वचन सुनकर वहाँ जाकर विस्तारपूर्वक अपने राजासे कह दिया॥ ४३॥

उसके अनन्तर दूतकी बात सुनकर प्रचण्ड शासनवाले शुम्भने क्रोधित हो बलवानोंमें श्रेष्ठ अपने सेनापति धूम्राक्षसे कहा—हे धूम्राक्ष! हिमालयपर्वतपर कोई सुन्दरी स्थित है, तुम वहाँ शीघ्र जाकर वह जिस किसी प्रकार भी यहाँ आये, उसे लिवा लाओ। हे दैत्यसत्तम! उसके लानेमें भय मत करना, यदि वह युद्ध भी करना चाहे तो तुम प्रयत्नपूर्वक युद्ध करना॥ ४४—४६॥

इस प्रकार शुम्भकी आज्ञा प्राप्तकर उस धूम्रलोचन नामक दैत्यने हिमालयपर जाकर उमाके अंशसे उत्पन्न भुवनेश्वरीसे कहा—हे नितम्बिनि! तुम मेरे स्वामीके पास चलो, नहीं तो साठ हजार सैनिकोंसे युक्त मैं तुम्हें मार डालूँगा॥ ४७-४८॥

देवी बोलीं—हे वीर! दैत्यराजने तुम्हें भेजा है, यदि तुम मुझे मार दोगे, तो मैं तुम्हारा क्या कर सकती हूँ, किंतु मैं युद्धके बिना वहाँ जाना असम्भव समझती हूँ॥ ४९॥

देवीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर वह दानव धूम्रलोचन उनकी ओर झपटा, किंतु महेश्वरीने 'हुं' के उच्चारणमात्रसे उसे [उसी क्षण] भस्म कर दिया। उसी समयसे वे देवी लोकमें धूमावती नामसे विख्यात हुईं, जो आराधित होकर अपने भक्तोंके शत्रुओंका नाश कर देती हैं॥ ५०-५१॥

धूम्राक्षके मार दिये जानेपर देवीके वाहन सिंहने

अत्यन्त कुपित होकर उसके सैनिकोंका भक्षण कर डाला और जो शेष बचे, वे सब भाग गये॥ ५२॥

इस प्रकार देवीके द्वारा धूम्रलोचन दैत्यको मारा गया सुनकर वह प्रतापी शुम्भ अपने दोनों ओठोंको चबाता हुआ अत्यन्त क्रोधित हुआ॥ ५३॥

उसने क्रमसे चण्ड, मुण्ड और रक्तबीज नामक दैत्योंको भेजा, तब उसकी आज्ञा पाकर वे भी वहाँ गये, जहाँ देवी स्थित थीं॥ ५४॥

सिंहपर आरूढ, अणिमादि सिद्धियोंसे युक्त और अपने तेजसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई भगवतीको देखकर उन दैत्यराजोंने कहा—हे देवि! तुम शीघ्रतासे शुम्भ एवं निशुम्भके पास चलो, अन्यथा हमलोग तुम्हें गणों एवं वाहनके साथ मार डालेंगे। हे वामे! लोकपालों आदिके द्वारा स्तुत उन शुम्भका पतिरूपमें वरण करो, इससे तुम देवताओंके लिये भी दुर्लभ महान् आनन्द प्राप्त करोगी॥ ५५—५७॥

उनका यह वचन सुनकर वे परमेश्वरी देवी हँसकर रसमय सत्य वचन कहने लगीं— ॥ ५८॥

देवी बोलीं—जो अद्वितीय महेशान परब्रह्म सदाशिव कहे जाते हैं और जिन्हें वेद भी तत्त्वत: नहीं जानते, फिर विष्णु आदिकी तो बात ही क्या? मैं उन्हींकी सूक्ष्म प्रकृति हूँ, अत: किसी दूसरेको पतिरूपमें किस प्रकार वरण करूँ? कामपीड़ित सिंहिनी कभी गीदड़का, हथिनी कभी गधेका एवं व्याघ्री खरगोशका वरण नहीं कर सकती है? हे दैत्यो! कालसर्पसे ग्रस्त हुए तुमलोग झूठ बोल रहे हो। अब शीघ्र ही पाताल चले जाओ अथवा यदि सामर्थ्य हो तो युद्ध करो॥ ५९—६१$^1/_2$॥

क्रोधको उत्पन्न करनेवाले इस प्रकारके वचन सुनकर वे परस्पर कहने लगे—हमलोग अपने मनमें तुम्हें अबला समझकर नहीं मार रहे हैं, हे सिंहवाहिनि! यदि तुम मनसे युद्धकी लालसा रखती हो तो सिंहपर सुस्थिर होकर बैठ जाओ और [युद्धके लिये] आओ॥ ६२-६३॥

इस प्रकार उनके विवाद करनेपर कलह बढ़ गया और युद्धमें दोनों ही पक्षोंसे तीखे बाण बरसने लगे॥ ६४॥

इस प्रकार उनके साथ युद्ध करके परमेश्वरीने लीलामात्रसे चण्ड-मुण्डसहित महान् असुर रक्तबीजको मार डाला। द्वेषबुद्धि रखनेपर भी उन देवशत्रुओंने अन्तमें उस श्रेष्ठ लोकको प्राप्त किया, जिस लोकको देवीके भक्त प्राप्त करते हैं॥ ६५-६६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें धूम्रलोचन-चण्ड-मुण्ड-रक्तबीजका वध नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

सरस्वतीदेवीके द्वारा सेनासहित शुम्भ-निशुम्भका वध

राजा बोले—हे भगवन्! देवीके द्वारा धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड एवं रक्तबीजको मारा गया सुनकर देवताओंको कष्ट देनेवाले शुम्भने क्या किया? हे ब्रह्मन्! अब आप जगत्कारणभूता देवीके पापनाशक चरित्रको सुननेकी इच्छावाले मुझे इसे बताइये॥ १-२॥

ऋषि बोले—हे राजन्! मान्य पराक्रमवाले उस महान् असुरने इन दैत्यवरोंके मारे जानेका समाचार सुनकर युद्धका नाम लेते ही मदोन्मत्त होनेवाले अपने दुर्धर्ष सैनिकोंको आज्ञा दी—मेरी आज्ञासे कालकवंशीय, कालकेय, मौर्य एवं दौर्हद नामवाले सभी असुर एवं अन्य असुर भी विजयकी आशा लेकर सेनासे युक्त होकर एक साथ युद्धके लिये प्रस्थान करें॥ ३-४॥

उन दैत्योंको इस प्रकारकी आज्ञा देकर शुम्भ एवं निशुम्भ भी रथपर सवार हो निकल पड़े। उन महाबलशालियोंके सैनिक उनके पीछे-पीछे ऐसे चले, मानो विनष्ट होनेवाले शलभ [पतिंगे] पृथ्वीसे निकल पड़े हों॥ ५॥

उस समय [वह दैत्यराज] मृदंग, ढोल, भेरी,

डिण्डिम, झाँझ, नगाड़ा आदि अनेक बाजे संग्रामभूमिमें बजवाने लगा, रणप्रिय योद्धा हर्षित हो उठे और प्राणसे मोह रखनेवाले युद्धभूमिसे भाग गये॥ ६॥

कवच धारण किये हुए तथा निष्पाप शरीरवाले वे समस्त राक्षस वीर ढेरों अस्त्र-शस्त्र लेकर विजयकी इच्छासे एक-दूसरेको खूब ललकारते हुए युद्धभूमिमें पहुँचे॥ ७॥

कुछ राक्षस सैनिक हाथीपर सवार थे, कुछ घोड़ेपर सवार थे, कुछ रथपर आरूढ़ थे, इस प्रकार सभी असुर अपने-परायेको न देखते हुए शुम्भके साथ प्रसन्न होकर युद्धभूमिमें इधर-उधर घूमने लगे॥ ८॥

उस समय शतघ्नीकी ध्वनि होने लगी, उससे देवता कम्पित हो उठे। आकाशमण्डलमें अन्धकार छा गया, जिससे सूर्यका रथमण्डल नहीं दिखायी पड़ता था॥ ९॥

विजयके इच्छुक करोड़ों महामानी राक्षस पैदल ही चल पड़े और अन्य करोड़ों राक्षस रथों, हाथियों तथा घोड़ोंपर सवार हो प्रसन्नतापूर्वक पहुँचे॥ १०॥

काले पर्वतके समान मदमत्त हाथी युद्धस्थलमें चिंग्घाड़ने लगे और छोटे पर्वतोंके समान ऊँट भी गलगल ध्वनि करने लगे॥ ११॥

विशाल कण्ठहार पहने हुए, उत्तम देशमें उत्पन्न तथा गतिका ज्ञान रखनेवाले घोड़े हिनहिनाने लगे और हाथियोंके मस्तकपर अपना पैर रखकर पक्षियोंके समान आकाशमार्गमें उड़ने लगे॥ १२॥

तब इस प्रकार शत्रुओंकी सेनाको उपस्थित देखकर अम्बिकाने धनुषपर डोरी चढ़ायी और शत्रुओंको कष्ट देनेवाले अपने घण्टेका नाद किया। उधर, सिंह भी अपना अयाल हिलाता हुआ गर्जन करने लगा॥ १३॥

तत्पश्चात् हिमालयपर विराजमान और रम्य आभूषण तथा शस्त्रोंको धारण करनेवाली शिवाको देखकर वह निशुम्भ कामुकके समान रससे भरी हुई उत्तम वाणीमें बोला—हे महेशि! तुम-जैसी सुन्दरियोंके रमणीय शरीरपर गिरा हुआ मालतीपुष्प भी कष्ट पहुँचाता है, अतः तुम इस कोमल शरीरसे यह भयंकर संग्राम क्यों करना चाहती हो?॥ १४-१५॥

ऐसा वचन कहकर वह महान् असुर चुप हो गया। तब चण्डिकाने उससे कहा—अरे मूर्ख असुर! व्यर्थ क्यों बोल रहे हो? युद्ध करो, अन्यथा पातालमें चले जाओ। तब अत्यधिक क्रोधित हुआ वह महारथी दैत्य युद्धमें बाणोंकी ऐसी अद्भुत वर्षा करने लगा, जिस प्रकार आये हुए मेघ वर्षाकालमें जलकी वृष्टि करते हैं॥ १६-१७॥

वह मदसे उन्मत्त हो तीखे बाणों, त्रिशूल, फरसा, भिन्दिपाल, परिघ, तरकसों, तोप, भाला, छूरी एवं महान् खड्ग [से युक्त सैनिकों]-को साथ लेकर संग्राम करने लगा॥ १८॥

उस संग्राममें विदीर्ण मस्तकोंवाले, काले पर्वतोंके समान बड़े-बड़े हाथी घूमने लगे और उड़ती हुई बलाकाओंकी पंक्ति-जैसी श्वेत शुम्भ-निशुम्भकी पताकाएँ खण्डित होकर नीचे गिरने लगीं॥ १९॥

कालिकाने रणमें राक्षसोंको मछलीके समान काटकर प्राणहीन कर डाला, गर्दनके कट जानेके कारण घोड़े भयंकर दिखायी पड़ने लगे। उस समय अन्य राक्षसोंको सिंहने अपना आहार बना लिया॥ २०॥

युद्धके बीचमें रक्तकी धाराओंवाली कितनी ही नदियाँ बह चलीं और उनमें कटे हुए रुण्ड-मुण्ड बहने लगे। योद्धाओंके केश जलकी काईके समान दिखायी पड़ रहे थे और उनके उत्तरीय सफेद फेन-जैसे प्रतीत हो रहे थे॥ २१॥

उस समय घुड़सवार घुड़सवारोंसे, हाथीपर सवार हाथीपर सवारी करनेवालोंसे, रथी रथके स्वामीसे और पैदल सैनिक पैदल सैनिकोंसे लड़ने लगे। इस प्रकार परस्पर समान प्रतिद्वन्द्वियोंवाला घमासान संग्राम होने लगा॥ २२॥

उसके बाद निशुम्भने मनमें विचार किया कि इस समय यह भयंकर काल उपस्थित हो गया है, कालकी विपरीततासे दरिद्र महान् धनवान् तथा महान् धनवान् दरिद्र हो जाता है। जड़ महाबुद्धिमान् एवं महाबुद्धिमान् जड़ हो जाता है, हत्यारा बड़े-बड़े मुनियोंसे प्रशंसित

होता है, महाबली पराजित हो जाते हैं और दुर्बल युद्धमें विजय प्राप्त कर लेते हैं॥ २३-२४॥

अत: प्राणियोंकी जय अथवा पराजय परमेश्वरकी इच्छासे अनायास ही होती रहती है। महेश्वर, ब्रह्मा एवं विष्णु भी कालका अतिक्रमणकर जीनेमें समर्थ नहीं हो सकते। उत्तम वीर रणभूमिमें [शत्रुके सामने] जाकर पुन: भाग जाना अपने मनमें उचित नहीं समझते हैं, किंतु इसके साथ युद्धमें विजय कैसे होगी, जिसने मेरी सम्पूर्ण सेना नष्ट कर दी है॥ २५-२६॥

यह निश्चय ही देवगणोंके कार्यको सिद्ध करनेके लिये एवं दैत्यसेनाके विनाशके लिये आयी हुई है। यह सनातनमूर्ति परा प्रकृति शिवा है, यह सांसारिक स्त्री कदापि नहीं है॥ २७॥

युद्धरसका आस्वादन करनेवाले वीरोंने स्त्रीद्वारा हुए वधको निन्दित बताया है, फिर भी बिना युद्ध किये दैत्यराजके सामने मुँह किस प्रकार दिखायेंगे?॥ २८॥

ऐसा विचारकर वह महारथी अपने सारथिसे हाँके जाते हुए विशाल रथपर आरूढ हो शीघ्रतासे उस स्थानपर गया, जहाँ देवांगनाओंसे प्रार्थित वे यौवनकी उद्‌गमस्वरूपा पार्वती विराजमान थीं॥ २९॥

उसने उनसे कहा—हे महेश्वरि! इन आजीविकाके लिये ही युद्धमें प्रवृत्त योद्धाओंको मारनेसे क्या लाभ! यदि हम दोनोंसे तुम्हारी युद्ध करनेकी अभिलाषा हो, तो कवच उतारकर हमलोगोंका युद्ध हो॥ ३०॥

तब कौशिकीने कालीसे कहा—इन दोनोंके इस दुराग्रहको देखो, अच्छे और बुरे मार्गमें प्रेरित करनेवाला काल विपत्ति आनेपर बुद्धिको विपरीत वृत्तिवाला बना देता है। उसके बाद निशुम्भने चण्डिका एवं कालिकापर हजारों बाणोंसे प्रहार किया, किंतु शिवाने अपने बाणोंसे उस असुरके द्वारा चलाये गये बाणोंके हजारों टुकड़े कर दिये॥ ३१-३२॥

इसके बाद उसने ढालसहित उज्ज्वल खड्ग उठाकर सिंहके सिरपर मारा, किंतु अम्बिकाने अपने महाखड्गसे उसके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये, जिस प्रकार कुल्हाड़ी बड़े-बड़े वृक्षोंको टुकड़े-टुकड़े कर देती है॥ ३३॥

उसके खड्गके टुकड़े-टुकड़े हो जानेपर उसने अम्बिकाके वक्ष:स्थलपर बाणसे प्रहार किया, तब देवीने उसे भी काट दिया। इसके बाद उसने देवीके हृदयपर त्रिशूल फेंका, उन्होंने उसे भी [अपने] मुष्टिप्रहारसे चूर-चूर कर दिया। तब मरनेके लिये उद्यत हुआ वह महारथी दैत्य गदा लेकर देवीकी ओर दौड़ा, देवीने उसे भी अपने त्रिशूलकी धारसे चूर्ण कर दिया। उसने पुन: दूसरी गदासे देवीके त्रिशूलको चूर-चूर कर दिया॥ ३४-३५॥

तदनन्तर अम्बिकाने देव-शत्रुओंके रक्तको चूसनेयोग्य, भयंकर सर्पसदृश तथा विषदिग्ध अपने तीक्ष्ण बाणोंसे निशुम्भको मारकर भूमिपर गिरा दिया। अमित बलवाले अपने छोटे भाईके मार दिये जानेपर क्रोधमें भरा हुआ आठ भुजाओंसे युक्त दैत्यराज शुम्भ रथपर सवार होकर वहाँ पहुँचा, जहाँ [भगवती] महेश्वरी थीं॥ ३६-३७॥

उसने शत्रुओंको दमितकर देनेवाला शंखनाद किया और धनुषके दु:सह टंकारकी ध्वनि की। इधर [देवीका] सिंह भी अपने अयालोंको हिलाता हुआ भयंकर गर्जना करने लगा, इन तीनों नादोंसे आकाश गूँज उठा॥ ३८॥

उसके पश्चात् अम्बिकाने अट्टहास किया, उससे सभी असुर भयभीत हो उठे। जब अम्बिकाने उससे कहा कि युद्धमें खड़े रहो, तब देवताओंने जय-जयकार किया। तब उस दैत्यराजने प्रदीप्त अग्निशिखाके समान अपनी भीषण शक्तिसे देवीपर प्रहार किया, किंतु देवीने उसे उल्काके द्वारा काट दिया। फिर शिवाने शुम्भके द्वारा चलाये गये बाणोंके और उसने भी शिवाके द्वारा छोड़े गये बाणोंके हजारों टुकड़े कर दिये॥ ३९-४०॥

इसके बाद चण्डिकाने त्रिशूल उठाकर उस महान् असुरपर ऐसा प्रहार किया, जिससे वह मूर्च्छित होकर आकाश तथा समुद्रसहित पृथ्वीको कँपाता हुआ उसी प्रकार गिर पड़ा, जैसे इन्द्रके द्वारा काटे गये पंखवाला पर्वत गिर पड़ता है॥ ४१॥

इसके बाद वह महाबली [दैत्य] त्रिशूलकी व्यथाको सहकर [मायासे] दस हजार भुजाएँ बनाकर

देवताओंका भी नाश करनेमें समर्थ चक्रोंसे सिंहपर सवार महेश्वरी कालिकापर प्रहार करने लगा॥ ४२॥

तब उन शिवाने लीलापूर्वक उसके चक्रोंको नष्ट करके अपना त्रिशूल उठाकर उस असुरको मार दिया। इस प्रकार शिवाके जगत्पावन करकमलसे मृत्युको प्राप्त होकर वे दोनों [दैत्य] परमपदके भागी हुए॥ ४३॥

तब उस महाबली तथा प्रचण्ड पराक्रमवाले निशुम्भ एवं शुम्भके मार दिये जानेपर सभी दैत्य पातालमें प्रवेश कर गये और कुछ दैत्योंको काली तथा सिंह आदिने भक्षण कर लिया तथा अन्य दैत्य भयभीत होकर दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ४४-४५॥

[दैत्योंके मारे जानेपर] नदियाँ स्वच्छ जलवाली होकर अपने मार्गसे बहने लगीं, सुखदायक पवन बहने लगा, आकाश निर्मल हो गया। देवगणों तथा ब्रह्मर्षियोंने यज्ञ प्रारम्भ कर दिये और इन्द्र आदि सभी देवता सुखी हो गये॥ ४६-४७॥

हे प्रभो! जो दैत्यराजके वधसे युक्त पार्वतीके इस परम पवित्र तथा पुण्यप्रद चरित्रको श्रद्धापूर्वक पढ़ता है, वह इस लोकमें देवताओंके लिये भी दुर्लभ सभी सुखोंको भोगकर महामायाके अनुग्रहसे देवीलोकको प्राप्त करता है॥ ४८-४९॥

ऋषि बोले—हे राजन्! शुम्भासुरका वध करनेवाली देवी इस प्रकार उत्पन्न हुईं, जो साक्षात् पार्वतीके अंशसे उत्पन्न सरस्वती कही गयी हैं॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें शुम्भ-निशुम्भवध-उपाख्यानमें सरस्वतीप्रादुर्भाववर्णन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

भगवती उमाके प्रादुर्भावका वर्णन

मुनिगण बोले—सर्वार्थवेत्ता सूतजी! अब आप भुवनेश्वरी उमाके अवतारका वर्णन करें, जिनसे सरस्वती उत्पन्न हुईं, जो परब्रह्म, मूलप्रकृति, ईश्वरी, निराकार होकर भी साकार एवं नित्यानन्दमयी सती कही जाती हैं॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे तपस्वियो! आपलोग उनके अति महान् चरित्रका प्रेमपूर्वक श्रवण कीजिये, जिसके जाननेमात्रसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त कर लेता है॥ ३॥

एक बार दैत्यों एवं देवताओंमें परस्पर युद्ध हुआ, उसमें महामायाके प्रभावसे देवगणोंकी विजय हुई॥ ४॥

इससे देवताओंको अहंकार हो गया और वे अपनी प्रशंसा करने लगे कि हमलोग धन्य हैं, हमलोग धन्य हैं। वे असुर हमलोगोंका क्या कर लेंगे, जो हमारे अति दु:सह प्रतापको देखकर भयभीत हो 'भागो, भागो' ऐसा कहकर पाताललोकको चले गये। अहो, दैत्योंके वंशका नाश करनेवाला हमारा बल एवं तेज अद्भुत है, देवताओंका आश्चर्यकारक भाग्य है—इस प्रकार वे सब आत्मश्लाघा करने लगे॥ ५—७॥

उसी समय वहाँ एक पुंजीभूत तेज प्रकट हुआ, जिसे पहले नहीं देखा गया था। उसे देखकर देवता आश्चर्यचकित हो उठे। देवी श्यामाके अभिमाननाशक उस प्रभावको न जानते हुए वे रुँधे कण्ठसे कहने लगे—यह क्या है, यह क्या है!॥ ८-९॥

तब देवताओंके अधिपतिने देवताओंको आज्ञा दी कि आपलोग जाइये और ठीक-ठीक परीक्षा कीजिये कि यह क्या है? तब देवेन्द्रसे प्रेरित पवनदेव उस तेजके पास गये। उस तेजने उनको सम्बोधितकर कहा—तुम कौन हो?। तब उस प्रबल तेजके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर अभिमानसे परिपूर्ण वायुने यह कहा—मैं जगत्का प्राण वायु हूँ। यह चराचर सारा जगत् सबके आधारस्वरूप मुझमें ही ओत-प्रोत है, मैं ही सम्पूर्ण जगत्का संचालन करता हूँ॥ १०—१३॥

उसके अनन्तर महातेजने कहा—हे वायो! यदि तुम चलानेमें समर्थ हो, तो इस रखे हुए तृणको स्वेच्छासे चला दो। तब वायुने सभी उपायोंसे उसे चलानेका यत्न

किया, किंतु जब वह [तृण] अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ, तब वे वायुदेव लज्जित हो गये॥ १४-१५॥

इसके बाद चुप होकर वायु इन्द्रकी सभामें गये और अपने पराभवका वह समाचार बताया॥ १६॥

हम सब व्यर्थ ही अपनेमें सर्वेश्वरत्वका अभिमान करते हैं, हमलोग छोटे-से-छोटा कार्य भी नहीं कर सकते हैं। इसके बाद इन्द्रने सभी देवताओंको भेजा, किंतु जब वे भी उसे नहीं जान सके, तब स्वयं इन्द्र उसके पास गये॥ १७-१८॥

इन्द्रको आता हुआ देखकर वह अति दु:सह तेज उसी क्षण अन्तर्धान हो गया, इन्द्र आश्चर्यचकित हो गये। तब इन्द्रने बार-बार यह विचार किया कि जिसका ऐसा चरित्र है, मुझे उसीके शरणमें जाना चाहिये॥ १९-२०॥

इसी बीच अकारण करुणामूर्ति सच्चिदानन्दरूपिणी शिवांगना भगवती उमा उन सभीपर अनुग्रह करनेके लिये



एवं उनका अभिमान दूर करनेके लिये चैत्र शुक्ल नवमीको मध्याह्नकालमें वहाँ प्रकट हुईं। तेजके मध्यमें विराजमान, अपनी प्रभासे दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई, 'मैं ही ब्रह्म हूँ'—ऐसा सभी देवताओंको स्पष्ट रूपसे बतलाती हुई, अपने चारों हाथोंमें वरद मुद्रा, पाश, अंकुश एवं अभयमुद्रा धारण की हुई, वेदोंके द्वारा सेवित, मनोहर, नवयौवनसे गर्वित, रक्त वस्त्र धारण की हुई, रक्तपुष्पोंकी माला पहनी हुई, रक्त चन्दनके अनुलेपसे युक्त, करोड़ों कामदेवके सदृश विमोहिनी; करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिवाली उन सर्वान्तर्यामिनी सर्वभूतसाक्षिणी परब्रह्मस्वरूपिणी महामायाने कहा— ॥ २१—२६॥

उमा बोलीं—मेरे सामने न ब्रह्मा, न विष्णु एवं न तो महेश्वर ही कुछ भी गर्व करनेमें समर्थ हैं, अन्य देवताओंकी तो बात ही क्या है?॥ २७॥

मैं ही परब्रह्म, परमज्योति, प्रणव और युगलरूपिणी हूँ, मैं ही सब कुछ हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य कोई कुछ नहीं है। मैं निराकार होकर भी साकार, सर्वतत्त्वस्वरूपिणी, तर्कसे परे गुणोंवाली, नित्य तथा कार्य-कारणस्वरूपिणी हूँ। मैं कभी स्त्रीरूपवाली, कभी पुरुषरूपवाली तथा कभी दोनों ही स्वरूपोंवाली हो जाती हूँ, इस प्रकार मैं सर्वस्वरूपा महेश्वरी हूँ॥ २८—३०॥

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा मै ही हूँ, जगत्का पालन करनेवाला विष्णु मैं ही हूँ, संहार करनेवाला शिव भी मैं ही हूँ एवं जगत्को मोहनेवाली (महामाया) भी मैं ही हूँ॥ ३१॥

कालिका, कमला, सरस्वती आदि समस्त शक्तियाँ मेरे ही अंशसे उत्पन्न हुई हैं और ये सब मेरी कलाएँ हैं। मेरे ही प्रभावसे तुमलोगोंने दैत्योंपर विजय प्राप्त की है, उस मुझ [शक्ति]-को न जानकर तुमलोग व्यर्थ ही अपनेको सर्वेश समझते हो॥ ३२-३३॥

जिस प्रकार ऐन्द्रजालिक काठकी पुतलीको नचाता है, उसी प्रकार मैं ईश्वरी सभी प्राणियोंको नचाती हूँ। मेरे भयसे पवन बहता है, अग्नि सबको जलाती है एवं लोकपाल निरन्तर अपने-अपने कार्य करते हैं॥ ३४-३५॥

मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ, इसलिये अपनी लीलासे कभी देवगणोंकी और कभी दैत्योंकी भलीभाँति विजय कराती हूँ। वेद जिस अविनाशी तथा मायातीत परात्पर परमधामका वर्णन करते हैं, वह तो मेरा ही रूप है॥ ३६-३७॥

सगुण एवं निर्गुण—यह मेरा दो प्रकारका रूप कहा गया है। प्रथम रूप मायामय है एवं दूसरा रूप माया-रहित है। हे देवताओ! इस प्रकार मुझे जानकर और

अपने-अपने गर्वका परित्याग करके भक्तिसे युक्त होकर मुझ सनातनी प्रकृतिकी आराधना करो* ॥ ३८-३९ ॥

देवीके ऐसे दयायुक्त वचनको सुनकर भक्तिसे सिर झुकाये हुए देवतालोग परमेश्वरीकी स्तुति करने लगे—हे जगदीश्वरि! क्षमा कीजिये। हे परमेश्वरि! प्रसन्न हो जाइये, अब हमलोगोंको ऐसा गर्व कभी न हो। हे मातः! दया कीजिये ॥ ४०-४१ ॥

उसी समयसे वे देवता अभिमान छोड़कर एकाग्रचित्त हो पूर्वकी भाँति विधिपूर्वक पार्वतीकी आराधना करने लगे। हे विप्रो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे उमाके प्रादुर्भावका वर्णन कर दिया, जिसके श्रवणमात्रसे परमपद प्राप्त होता है ॥ ४२-४३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें उमाप्रादुर्भाववर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४९ ॥

पचासवाँ अध्याय

दस महाविद्याओंकी उत्पत्ति तथा देवीके दुर्गा, शताक्षी, शाकम्भरी और भ्रामरी आदि नामोंके पड़नेका कारण

मुनिगण बोले—हे महाप्राज्ञ! हमलोग दुर्गाके चरित्रको निरन्तर सुनना चाहते हैं, अतः आप हमलोगोंसे दूसरे अद्भुत [लीला] तत्त्वका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

समस्त अर्थोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हे सूतजी! आपके मुखारविन्दसे निकलती हुई अमृतके समान अनेक कथाओंको सुनते हुए हमलोगोंका मन तृप्त नहीं होता है ॥ २ ॥

सूतजी बोले—[पूर्वकालमें] रुरुके दुर्गम नामसे विख्यात महाबली पुत्रने ब्रह्मदेवके वरदानसे चारों वेदोंको प्राप्त किया। वह देवगणोंसे भी अजेय बल प्राप्तकर पृथ्वीतलपर बहुत उपद्रव करने लगा, जिससे स्वर्गमें देवता भी काँप उठे। उस समय वेदोंके नष्ट हो जानेसे सारी क्रियाएँ नष्ट हो गयीं और देवताओंसहित ब्राह्मण दुराचारी हो गये ॥ ३—५ ॥

उस समय न तो कहीं दान किया जाता था, न उग्र तपस्या की जाती थी, न यज्ञ होता था और न हवन ही होता था, उससे पृथ्वीपर सौ वर्षकी अनावृष्टि हुई ॥ ६ ॥

तीनों लोकोंमें हाहाकार होने लगा। सभी लोग भूख-प्याससे पीड़ित होकर अत्यन्त दुखी हो गये। सभी नदियाँ, समुद्र, बावली, कूप, सरोवर जलविहीन हो गये और वृक्ष तथा लताएँ सूख गयीं ॥ ७-८ ॥

तब दीन चित्तवाली प्रजाओंकी महान् विपत्ति

---

* उमोवाच— न ब्रह्मा न मुरारातिर्न पुरारातिरीश्वरः। मदग्रे गर्वितुं किञ्चित्का कथान्यसुपर्वणाम् ॥
परं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रणवद्वन्द्वरूपिणी। अहमेवास्मि सकलं मदन्यो नास्ति कश्चन ॥
निराकारापि साकारा सर्वतत्त्वस्वरूपिणी। अप्रतर्क्यगुणा नित्या कार्यकारणरूपिणी ॥
कदाचिद्दयिताकारा कदाचित्पुरुषाकृतिः। कदाचिदुभयाकारा सर्वाकाराहमीश्वरी ॥
विरञ्चिः सृष्टिकर्ताहं जगत्पाताहमच्युतः। रुद्रः संहारकर्ताहं सर्वविश्वविमोहिनी ॥
कालिकाकमलावाणीमुखाः सर्वा हि शक्तयः। मदंशादेव संजातास्तथेमाः सकलाः कलाः ॥
मत्प्रभावाज्जिताः सर्वे युष्माभिर्दितिनन्दनाः। तामविज्ञाय मां यूयं वृथा सर्वेशमानिनः ॥
यथा दारुमयीं योषां नर्तयत्यैन्द्रजालिकः। तथैव सर्वभूतानि नर्तयाम्यहमीश्वरी ॥
मद्भयाद्वाति पवनः सर्वं दहति हव्यभुक्। लोकपालाः प्रकुर्वन्ति स्वस्वकर्माण्यनारतम् ॥
कदाचिद्देववर्गाणां कदाचिद्दितिजन्मनाम्। करोमि विजयं सम्यक् स्वतन्त्रा निजलीलया ॥
अविनाशि परं धाम मायातीतं परात्परम्। श्रुतयो वर्णयन्ते यत्तद्रूपं तु ममैव हि ॥
सगुणं निर्गुणं चेति मद्रूपं द्विविधं मतम्। मायाशबलितं चैकं द्वितीयं तदनाश्रितम् ॥
एवं विज्ञाय मां देवाः स्वं स्वं गर्वं विहाय च। भजत प्रणयोपेताः प्रकृतिं मां सनातनीम् ॥
(उमासंहिता ४९। २७—३९)

देखकर देवता योगमाया महेश्वरीके शरणमें गये॥ ९॥

देवगण बोले—हे महामाये! आप अपनी समस्त प्रजाओंकी रक्षा करें और अपने क्रोधको दूर करें, अन्यथा सभी लोक अवश्य नष्ट हो जायँगे॥ १०॥

हे कृपासिन्धो! हे दीनबन्धो! जिस प्रकार आपने दैत्य शुम्भ, महाबलशाली निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड, मुण्ड, महाबली रक्तबीज, मधु, कैटभ तथा महिषासुरका वध किया था; उसी प्रकार शीघ्र इसका भी वध कीजिये॥ ११-१२॥

बालकोंसे तो अपराध पद-पदपर होता है, केवल माताके अतिरिक्त लोकमें उसे कौन सह सकता है!॥ १३॥

हे देवि! जब-जब देवगणों और ब्राह्मणोंको दुःख हुआ, तब-तब आपने अवतार लेकर उन लोगोंको सुखी बनाया है॥ १४॥

उन देवताओंके इस दीन वचनको सुनकर कृपामयी



भगवतीने उस समय अनन्त नेत्रोंवाला अपना स्वरूप दिखाया। वे प्रसन्न मुखकमलवाली थीं और चारों हाथोंमें धनुष, बाण, कमल तथा नाना प्रकारके फल-मूल धारण की हुई थीं॥ १५-१६॥

तदनन्तर प्रजाओंको दुखी देखकर करुणाभरे नेत्रोंवाली वे व्याकुल होकर लगातार नौ दिन एवं नौ रात्रितक रोती रहीं। उस समय वे नेत्रोंसे हजारों जलधाराएँ बहाने लगीं, उन धाराओंसे सभी लोक तथा समस्त औषधियाँ तृप्त हो गयीं॥ १७-१८॥

समुद्र एवं नदियाँ अगाध जलसे परिपूर्ण हो गयीं और पृथ्वीतलपर शाक तथा फल-मूल उगने लगे॥ १९॥

भगवती शुद्ध हृदयवाले महात्मा पुरुषोंको अपने हाथोंमें रखे हुए फल बाँटने लगीं। उन्होंने गौओंके लिये सुस्वादु तृण और दूसरे प्राणियोंके लिये यथायोग्य भोज्य वस्तुओंको प्रस्तुत किया॥ २०॥

इस प्रकार ब्राह्मण, देवता और मनुष्योंसहित सभी सन्तुष्ट हो गये, तब उन देवीने कहा—अब मैं आपलोगोंका कौन-सा कार्य करूँ?॥ २१॥

तब सभी देवताओंने मिलकर [हे देवि!] आपने सभी लोगोंको सन्तुष्ट कर दिया, अब कृपाकर दुर्गमद्वारा हरण किये गये वेदोंको हमें उपलब्ध कराइये॥ २२॥

तब देवीने 'ऐसा ही होगा' कहकर पुनः उनसे कहा कि अब आपलोग अपने घर जाइये, मैं शीघ्र ही आपलोगोंको वेद प्रदान करूँगी॥ २३॥

इसके बाद प्रसन्न हुए देवतालोग जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली तथा विकसित नीलकमलके समान नेत्रोंवाली देवीको प्रणामकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ २४॥

तब स्वर्ग, भूलोक तथा अन्तरिक्षमें कोलाहल मच गया, उसे सुनकर दुर्गमने चारों ओरसे [अमरावती] पुरीको घेर लिया॥ २५॥

इसके बाद शिवा—पार्वती देवताओंकी रक्षाके लिये पुरीके चारों ओर तेजोमय मण्डलका निर्माणकर स्वयं उस [घेरे]-से बाहर आ गयीं। तब देवी और दैत्य दोनोंके बीच संग्राम छिड़ गया। दोनों पक्षोंसे कवचोंको काटनेवाले तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा होने लगी॥ २६-२७॥

इसी बीच उनके शरीरसे काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, बगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी तथा मातंगी—ये मनोहर रूपवाली दस महाविद्याएँ शस्त्रयुक्त हो प्रकट हो गयीं॥ २८-२९॥

उसके बाद दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ प्रकट

हुईं, वे सब चन्द्रलेखाको धारण किये थीं तथा विद्युत्‌के समान कान्तिवाली थीं। तब मातृगणोंके साथ उस दुर्गमका भयंकर संग्राम होने लगा, उन देवियोंने रुरुपुत्र दुर्गमकी सौ अक्षौहिणी सेना नष्ट कर दी॥ ३०-३१॥

तब उन्होंने अपने त्रिशूलकी धारसे उस दैत्यपर प्रहार किया और वह उखड़े हुए मूलवाले वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३२॥

इस प्रकार दुर्गम नामक असुरको मारकर उससे चारों वेदोंको लेकर ईश्वरीने देवताओंको दे दिया॥ ३३॥

देवता बोले—हे अम्बिके! हमलोगोंके लिये आपने अनन्त नेत्रोंवाला स्वरूप धारण किया, अतः मुनिलोग आपको 'शताक्षी' कहेंगे। आपने अपनी देहसे उत्पन्न शाकोंद्वारा लोकोंका भरण [-पोषण] किया, अतः आपका 'शाकम्भरी'—यह नाम विख्यात होगा। हे शिवे! आपने दुर्गम नामक महादैत्यका वध किया है, इसलिये मानव आप कल्याणमयी भगवतीको 'दुर्गा' कहेंगे॥ ३४—३६॥

हे योगनिद्रे! आपको नमस्कार है। हे महाबले! आपको नमस्कार है। हे ज्ञानप्रदे! आपको नमस्कार है। आप विश्वमाताको बार-बार नमस्कार है॥ ३७॥

जिन परमेश्वरीका ज्ञान 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंसे होता है, उन अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिकाको बार-बार नमस्कार है॥ ३८॥

हे मातः! आपके प्रभावको न जाननेवाले हमलोग वाणी, मन और शरीरसे दुष्प्राप्य तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्निरूपी तीन नेत्रोंवाली आपकी स्तुति नहीं कर सकते हैं॥ ३९॥

हम-जैसे देवगणोंको देखकर सुरेश्वरी माता शताक्षीके बिना कौन इस प्रकारकी दया कर सकता है॥ ४०॥

अब आप इस प्रकारका यत्न करें कि बाधाओंसे निरन्तर त्रिलोकी पराभूत न हो सके और हमारे शत्रुओंका नाश हो॥ ४१॥

देवी बोलीं—[हे देवगणो!] जिस प्रकार अपने बछड़ोंको देखकर गायें शीघ्रतासे व्यग्र हो दौड़ती हैं, उसी प्रकार मैं भी आपलोगोंको देखकर व्यग्र होकर दौड़ पड़ती हूँ॥ ४२॥

मैं आपलोगोंको सन्तानके समान देखती रहती हूँ, किंतु जब नहीं देख पाती तो मेरा एक-एक क्षण युगके समान बीतता है। मैं आपलोगोंके लिये अपने प्राणोंको भी न्योछावर कर सकती हूँ॥ ४३॥

आपलोगोंकी विपत्तियोंको दूर करनेवाली मेरे रहते आप भक्तोंको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ ४४॥

जिस प्रकार मैंने पूर्व समयमें दैत्योंका वध किया था, उसी प्रकार [आगे भी] असुरोंका वध करूँगी, इसमें संशय नहीं करना चाहिये, यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ॥ ४५॥

जब दूसरे शुम्भ एवं निशुम्भ नामक दैत्य उत्पन्न होंगे, तब यशोमयी मैं नन्दभार्या यशोदाके गर्भसे योनिज रूप ग्रहणकर गोपोंके गोकुलमें अवतरित होऊँगी और उन दोनोंका वध करूँगी, तब लोग मुझे 'नन्दजा' कहेंगे॥ ४६-४७॥

मैं भ्रमरका रूप धारणकर अरुण नामक दैत्यका वध करूँगी। अतः मानव लोकमें मुझे 'भ्रामरी'—इस नामसे पुकारेंगे। पुनः जब मैं भीम [भयंकर] रूप धारणकर राक्षसोंका भक्षण करूँगी, तब मेरा 'भीमादेवी'—यह नाम विख्यात होगा॥ ४८-४९॥

इस प्रकार जब-जब पृथ्वीपर दैत्योंके द्वारा बाधा उत्पन्न होगी, तब-तब मैं अवतार लेकर निस्सन्देह कल्याण करूँगी॥ ५०॥

जो देवी शताक्षी कही गयी हैं, वे ही शाकम्भरी हैं और वे ही दुर्गा भी कहलाती हैं, इन तीनों नामोंद्वारा एक ही सत्ताका प्रतिपादन होता है॥ ५१॥

भूलोकमें शताक्षीके समान कोई दयालु देवता नहीं है, जिन्होंने प्रजाओंको सन्तप्त देखकर निरन्तर नौ दिनोंतक रुदन किया॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें शताक्ष्याद्यवतारवर्णन नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

भगवतीके मन्दिरनिर्माण, प्रतिमास्थापन तथा पूजनका माहात्म्य और उमासंहिताके श्रवण एवं पाठकी महिमा

मुनिगण बोले—हे व्यासशिष्य! हे महाभाग! हे पौराणिकोत्तम सूतजी! हमलोग महेश्वरी उमा जगदम्बाके अद्वितीय अनुत्तम क्रियायोगाख्यानको सुनना चाहते हैं, जिसे सनत्कुमारने महात्मा व्याससे कहा था॥ १-२॥

सूतजी बोले—देवीकी भक्तिमें दृढ़ व्रतवाले आप सभी महात्मा धन्य हैं; अब पराशक्तिके अत्यन्त गुप्त रहस्यको आपलोग आदरपूर्वक सुनिये॥ ३॥

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे ब्रह्मपुत्र! हे महामते! मैं पार्वतीके अत्यन्त अद्भुत क्रियायोगको सुनना चाहता हूँ। उसका क्या लक्षण है, उसके अनुष्ठानका क्या फल होता है और पराम्बाको जो प्रिय है, उसे पूर्णरूपसे बताइये॥ ४-५॥

सनत्कुमार बोले—हे द्वैपायन! हे महाबुद्धे! आप जिस रहस्यको पूछ रहे हैं, उसका वर्णन मैं कर रहा हूँ, आप सुनें॥ ६॥

ज्ञानयोग, क्रियायोग और भक्तियोग—ये श्रीमाता [की उपासना]-के तीन मार्ग हैं, जो भोग एवं मोक्षको देनेवाले कहे गये हैं॥ ७॥

चित्तका आत्माके साथ जो संयोग है, वह ज्ञानयोग कहा गया है और जो बाहरके अर्थों (वस्तुओं)-का संयोग है, वह क्रियायोग कहा जाता है और देवीके साथ आत्माका संयुक्त हो एकरस हो जाना भक्तियोग माना गया है। अब मैं इन तीनों योगोंमें जो क्रियायोग है, उसका वर्णन कर रहा हूँ॥ ८-९॥

कर्मसे भक्ति होती है, भक्तिसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे मुक्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंमें निर्णय किया गया है॥ १०॥

हे मुनिसत्तम! मुक्तिका प्रधान कारण योग है और क्रियायोग उस योगके ध्येयका उत्तम साधन है॥ ११॥

प्रकृतिको माया तथा शाश्वत ब्रह्मको मायावी जानना चाहिये, उन दोनोंके स्वरूपको परस्पर अभिन्न जानकर व्यक्ति संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ १२॥

हे कालीपुत्र [हे व्यास!] जो पत्थर, काष्ठ अथवा मिट्टीसे देवीका मन्दिर बनवाता है, उसके पुण्यका फल सुनिये। प्रतिदिन योगके द्वारा यजन करनेवालेको जो महान् फल मिलता है, उस फलको वह मनुष्य प्राप्त करता है, जो देवीका मन्दिर बनवाता है। श्रीमाताके मन्दिरको बनवानेवाला वह धर्मात्मा अपनेसे पहलेके हजार कुलोंको एवं बादके हजार कुलोंको तार देता है। श्रीमाताके मन्दिरके आरम्भके क्षण ही करोड़ों जन्मोंमें किये गये उसके छोटे अथवा बड़े सभी पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १३—१५॥

जिस प्रकार नदियोंमें गंगा, नदोंमें शोण, क्षमामें पृथ्वी, गम्भीरतामें समुद्र और सभी ग्रहोंमें सूर्य श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सभी देवोंमें श्रीपराम्बा श्रेष्ठ हैं, वे सभी देवताओंमें प्रधान हैं, अत: जो उनके मन्दिरका निर्माण करवाता है, वह जन्म-जन्मान्तरमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १६—१८॥

वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गंगासागर, नैमिषारण्य, अमरकण्टक, महापुण्यदायी श्रीपर्वत, गोकर्ण, ज्ञानपर्वत, मथुरा, अयोध्या एवं द्वारका आदि पुण्यस्थलोंमें अथवा जिस-किसी भी जगह श्रीमाताके मन्दिरका निर्माण करवानेवाला संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ १९—२१॥

जितने वर्षोंतक [देवीके मन्दिरकी] ईंटोंका विन्यास स्थित रहता है, उतने हजार वर्षपर्यन्त मनुष्य मणिद्वीपमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २२॥

जो भगवतीकी सर्वलक्षणयुक्त प्रतिमाका निर्माण करवाता है, वह निर्भय हो निश्चित रूपसे देवीके परम लोकको जाता है॥ २३॥

शुभ ऋतु, शुभ ग्रह एवं शुभ नक्षत्रमें देवीकी मूर्तिको प्रतिष्ठापित करके मनुष्य योगमायाकी कृपासे

कृतकृत्य हो जाता है। उसके कुलमें कल्पसे लेकर जितनी भी पीढ़ियाँ हैं और जो भी आगे उत्पन्न होंगी, उन सभीको वह देवीकी उत्तम मूर्तिकी स्थापना करके तार देता है॥ २४-२५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! त्रिलोकीके स्थापित करनेसे जो पुण्य होता है, उसका करोड़ों गुना पुण्य श्रीदेवीकी प्रतिष्ठा करनेसे होता है॥ २६॥

जो मन्दिरके मध्यमें देवीकी प्रतिष्ठाकर उनके चारों ओर पंचायतन देवताओंको स्थापित करता है, उसके पुण्यकी गणना नहीं की जा सकती है॥ २७॥

सूर्य-चन्द्रग्रहणमें विष्णुके नामोंको करोड़ों बार जपनेसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उससे सौ करोड़ गुना अधिक पुण्यफल शिवनामके जपसे होता है, उससे भी करोड़ गुना पुण्यफल देवीके नाम-जपसे होता है और उससे भी करोड़ गुना अधिक पुण्यफल देवीके मन्दिरका निर्माण करानेसे प्राप्त होता है। जिसने वेदरूपा तथा त्रिगुणात्मिका जगज्जननी देवीको प्रतिष्ठापित किया, श्रीमाताकी दयासे उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। उसके पुत्र-पौत्रादि निरन्तर बढ़ते रहते हैं और उसका सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाता है॥ २८—३१॥

जो लोग मनमें भी देवीकी उत्तम मूर्तिस्थापनाकी इच्छा करते हैं, वे मुनियोंके लिये भी दुर्लभ उमादेवीके परमलोकको प्राप्त करते हैं॥ ३२॥

किसीके द्वारा बनवाये जाते हुए मन्दिरको देखकर जो मनमें यह सोचता है कि जब मुझे सम्पत्ति होगी, तब मैं भी मन्दिर बनवाऊँगा। इस प्रकार सोचनेवालेका कुल शीघ्र ही स्वर्गको जाता है, इसमें संशय नहीं है। महामायाके प्रभावसे त्रिलोकीमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ है॥ ३३-३४॥

जो जगत्कारणभूता श्रीपराम्बाका एकमात्र आश्रय ग्रहण करते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं समझना चाहिये, वे तो देवीके साक्षात् गण हैं॥ ३५॥

जो चलते-सोते अथवा बैठे हुए उमा—इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करते रहते हैं, वे तो शिवाके साक्षात् गण हैं॥ ३६॥

जो लोग नित्य तथा नैमित्तिक कर्मोंमें पुष्पों, धूपों तथा दीपोंसे परा शिवाकी पूजा करते हैं, वे उमालोक प्राप्त करते हैं॥ ३७॥

जो लोग प्रतिदिन गोमयसे अथवा मृत्तिकासे देवी-मण्डपका उपलेप करते हैं तथा उसका मार्जन करते हैं, वे उमालोक प्राप्त करते हैं॥ ३८॥

जिन्होंने देवीके रम्य तथा उत्तम मन्दिरका निर्माण करवाया है, उनके कुलमें उत्पन्न लोगोंको देवी आशीर्वाद देती हैं—'मेरे प्रेमपात्र भक्त सौ वर्षतक जीवित रहें और उनपर कदापि कोई विपत्ति न आये'—ऐसा वे श्रीमाता रात-दिन कहती हैं॥ ३९-४०॥

जिसने महादेवी उमाकी शुभ मूर्तिका निर्माण करवाया है, उसके कुलके दस हजार पीढ़ियोंतकके लोग मणिद्वीपमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं॥ ४१॥

साधक महामायाकी मूर्ति स्थापित करके और उसकी विधिवत् पूजाकर जिस-जिस मनोरथके लिये प्रार्थना करता है, उसे [अवश्य ही] प्राप्त कर लेता है॥ ४२॥

जो श्रीमाताकी स्थापित की गयी उत्तम मूर्तिको मधुमिश्रित घृतसे स्नान कराता है, उसके फलकी गणना कौन कर सकता है॥ ४३॥

एक वर्णवाली गौओंके दूधसे तथा चन्दन, अगरु, कपूर, जटामांसी, मोथा आदिसे मिश्रित जलसे परमेश्वरीको स्नान कराना चाहिये॥ ४४॥

अठारह [सुगन्धित] द्रव्योंसे बनाये गये धूपसे उत्तम आहुति प्रदान करनी चाहिये। घी तथा कपूरयुक्त बत्तियोंसे देवीकी आरती करनी चाहिये॥ ४५॥

कृष्णपक्षकी अष्टमी, नवमी, अमावास्यामें अथवा [शुक्लपक्षकी] पूर्णिमा तिथिको मातृसूक्त, श्रीसूक्त पढ़ते हुए अथवा देवीसूक्त पढ़ते हुए अथवा मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए गन्ध-पुष्पोंद्वारा विशेष रूपसे जगज्जननीका पूजन करना चाहिये॥ ४६-४७॥

विष्णुकान्ता एवं तुलसीको छोड़कर अन्य सभी

पुष्पोंको देवीके लिये प्रीतिकर जानना चाहिये तथा कमल विशेषरूपसे देवीको प्रिय है। जो देवीको स्वर्णपुष्प अथवा रजतपुष्प समर्पित करता है, वह करोड़ों सिद्धोंके द्वारा सेवित परम धामको जाता है॥ ४८-४९॥

भक्तोंको चाहिये कि वे पूजनके अन्तमें अपने पापोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करें। हे परमेश्वरि! हे जगदानन्ददायिनि! प्रसन्न होइये। देवीभक्तिपरायण साधकको इन वाक्योंसे स्तुति करते हुए सिंहपर आरूढ़ तथा हाथोंमें वरद एवं अभयमुद्रा धारण करनेवाली भगवतीका ध्यान करना चाहिये॥ ५०-५१॥

इस प्रकार भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली महेश्वरीका ध्यान करके नैवेद्यके रूपमें अनेक प्रकारके पके हुए फल अर्पित करना चाहिये॥ ५२॥

जो मनुष्य परमेश्वरी शम्भुशक्तिके नैवेद्यका भक्षण करता है, वह अपने सम्पूर्ण पापपंकको धोकर निर्मल हो जाता है॥ ५३॥

जो चैत्र शुक्ल तृतीयाको भवानीव्रतका अनुष्ठान करता है, वह सांसारिक बन्धनसे छूटकर परमपद प्राप्त करता है॥ ५४॥

बुद्धिमान् पुरुष इसी तृतीया तिथिको दोलोत्सव सम्पन्न करे और पुष्प, कुंकुम, वस्त्र, कपूर, अगुरु, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, माला एवं अन्य मनोहर गन्धोंसे शिवसहित जगद्धात्रीका पूजन करे॥ ५५-५६॥

इसके बाद सबका कल्याण करनेवाली महामाया भगवती महेश्वरी श्रीगौरीको शिवसहित [पालनेमें बैठाकर] झुलाये। जो इस तिथिको प्रतिवर्ष नियमानुसार व्रत तथा झूलनोत्सव करता है, उसे शिवा समस्त अभीष्ट फल प्रदान करती हैं॥ ५७-५८॥

वैशाख शुक्लपक्षमें जो अक्षय तृतीया नामक तिथि है, उसमें जो आलस्यरहित होकर जगदम्बाका व्रत करता है एवं मल्लिका, मालती, चम्पा, जपा, बन्धूक तथा कमलपुष्पोंसे शिवसमेत पार्वतीका पूजन करता है, वह करोड़ों जन्मोंमें मन, वाणी तथा शरीरसे किये गये पापोंको विनष्टकर अक्षय चतुर्वर्ग [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष]-को प्राप्त कर लेता है॥ ५९—६१॥

जो ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको व्रत करके परम प्रीतिसे महेश्वरीका पूजन करता है, उसके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है॥ ६२॥

आषाढ़मासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको अपने धनसामर्थ्यके अनुसार देवीका अतिप्रिय रथोत्सव सम्पन्न करना चाहिये। उसमें पृथ्वीको रथ और चन्द्रमा तथा सूर्यको रथके दोनों पहिये समझना चाहिये, वेदोंको घोड़े तथा ब्रह्माको सारथि समझना चाहिये॥ ६३-६४॥

इस प्रकार अनेक मणियोंसे जटित एवं पुष्पमालाओंसे सुशोभित रथका निर्माणकर उसपर शिवाको स्थापित करे। उस समय बुद्धिमान् मनुष्य [मनमें] यह भावना करे कि श्रीपराम्बा लोककी रक्षाके लिये एवं लोकका अवलोकन करनेके लिये रथके मध्यमें बैठी हुई हैं॥ ६५-६६॥

रथके धीरे-धीरे चलनेपर देवीकी जयकार करे और प्रार्थना करे कि हे देवि! हे दीनवत्सले! हम शरणागत जनोंकी रक्षा कीजिये। इन वचनोंसे तथा अनेक वाद्योंकी ध्वनियोंसे भगवतीको सन्तुष्ट करे और सीमापर्यन्त रथ ले जाकर वहाँ रथमें भगवतीका पूजन करे। इसके बाद अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके उन जगदम्बाको अपने घर ले आये और सैकड़ों प्रणाम करके उनकी प्रार्थना करे॥ ६७—६९॥

जो विद्वान् इस प्रकार देवीका पूजन, व्रत एवं रथोत्सव करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग करके अन्तमें देवीके धामको जाता है॥ ७०॥

इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपदमासकी शुक्ल तृतीयाको जो विधिपूर्वक अम्बाका व्रत और पूजन करता है, वह इस लोकमें पुत्र, पौत्र एवं धन आदिसे सम्पन्न होकर सदा आनन्दित रहता है तथा अन्तमें सब लोकोंसे ऊपर विराजमान उमालोकको जाता है॥ ७१-७२॥

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें नवरात्रव्रत करना चाहिये, जिसे करनेपर सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ७३॥

इस नवरात्रव्रतके प्रभावका वर्णन करनेमें ब्रह्मा,

महादेव तथा कार्तिकेय भी समर्थ नहीं हैं, फिर दूसरा कौन समर्थ हो सकता है। हे मुनिवरो! नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करके विरथके पुत्र राजा सुरथने छीने गये अपने राज्यको [पुनः] प्राप्त कर लिया था॥ ७४-७५॥

अयोध्याके अधिपति बुद्धिमान् ध्रुवसन्धिपुत्र राजा सुदर्शनने इसके प्रभावसे ही [शत्रुओंके द्वारा] छीना गया अपना राज्य प्राप्त किया था॥ ७६॥

इस व्रतराजका अनुष्ठान करके तथा महेश्वरीकी आराधना करके समाधि [नामक वैश्य] संसारबन्धनसे मुक्त होकर मोक्षका भागी हुआ॥ ७७॥

जो मनुष्य आश्विनमासके शुक्लपक्षमें तृतीया, पंचमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियोंको विधिपूर्वक व्रत करके देवीका पूजन करता है, उसकी सभी मनोवांछाओंको शिवा निरन्तर पूर्ण करती रहती हैं॥ ७८-७९॥

जो कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें तृतीयाको व्रत करता है तथा लाल कनेर आदिके फूलों एवं सुगन्धित धूपोंसे मंगलमयी देवीकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण मंगलको प्राप्त कर लेता है॥ ८०-८१॥

स्त्रियोंको अपने सौभाग्यके लिये इस महान् व्रतका सदा अनुष्ठान करना चाहिये और पुरुषोंको भी विद्या, धन एवं पुत्रप्राप्तिके लिये इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये॥ ८२॥

इसी प्रकार देवीको प्रिय लगनेवाले उमा-महेश्वर आदि जो भी अन्य व्रत हैं, उनका अनुष्ठान मोक्षकी अभिलाषा रखनेवालोंको भक्तिभावसे करना चाहिये॥ ८३॥

यह उमासंहिता परम पुण्यमयी, शिवभक्तिको बढ़ानेवाली, अनेक आख्यानोंसे युक्त, भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली और कल्याणकारिणी है॥ ८४॥

जो सावधान होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा सुनाता है, पढ़ता है या पढ़ाता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है॥ ८५॥

जिसके घरमें सुन्दर अक्षरोंमें लिखी गयी यह संहिता स्थित रहती है और विधिवत् पूजित होती है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। उसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि दुष्टोंसे कभी भय नहीं होता और वह पुत्र-पौत्र आदि तथा सम्पत्तिको प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है॥ ८६-८७॥

अतः शिवकी भक्ति चाहनेवालोंको इस परम पुण्यमयी तथा रम्य उमासंहिताका सदा श्रवण एवं पाठ करना चाहिये॥ ८८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत पाँचवीं उमासंहितामें क्रियायोगनिरूपण नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५१॥

॥ पंचम उमासंहिता पूर्ण हुई॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

कैलाससंहिता

पहला अध्याय

व्यासजीसे शौनकादि ऋषियोंका संवाद

नमः शिवाय साम्बाय सगणाय ससूनवे।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥

जो प्रधान (प्रकृति) और पुरुषके नियन्ता तथा सृष्टि-पालन-संहारके कारण हैं, उन पार्वतीसहित शिवजीको पार्षदों और पुत्रोंके साथ नमस्कार है॥ १॥

ऋषि बोले— हमने अनेक आख्यानोंसे समन्वित मनोहर उमासंहिता सुनी, अब आप शिवतत्त्वको बढ़ानेवाली कैलाससंहिताका वर्णन कीजिये॥ २॥

व्यासजी बोले— हे वत्स! शिवतत्त्वसे युक्त, दिव्य तथा उत्कृष्ट कैलास नामक संहिताका वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग प्रेमपूर्वक सुनिये। पूर्वसमयमें हिमालयपर तप करनेवाले महातेजस्वी ऋषियोंने आपसमें विचारकर काशी जानेकी इच्छा की॥ ३-४॥

उस पर्वतसे चलकर एकाग्रचित्त हो काशी पहुँचकर वे स्नान करनेकी इच्छासे मणिकर्णिकाको देखने लगे॥ ५॥

वेदमें पारंगत उन मुनियोंने वहाँ स्नानकर देवता आदिका तर्पण करके पुनः गंगाजीका दर्शनकर उस [जल]-में स्नान करके देवाधिदेव विश्वेश्वरको नमस्कारकर परम भक्तिसे युक्त होकर उनका पूजन करके शतरुद्रिय आदि मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करके अपनेको कृतार्थ समझा और कहा कि सर्वदा शिवभक्तिपरायण हमलोग [आज] शिवकृपासे पूर्णमनोरथवाले हो गये॥ ६—८॥

उसी समय पंचक्रोशको देखनेकी इच्छासे (अर्थात् पंचक्रोशी परिक्रमा करनेके लिये) आये हुए सूतजीको देखकर उनके पास जाकर उन सभीने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया॥ ९॥

इसके बाद उन्होंने भी साक्षात् देवाधिदेव उमापति विश्वेश्वरको प्रणामकर उन सभीके साथ मुक्तिमण्डपमें प्रवेश किया। उसके अनन्तर सभी मुनियोंने अर्घ्यादि [पूजनद्रव्यों]-से वहाँपर बैठे हुए पौराणिकोत्तम महात्मा सूतजीका पूजन किया॥ १०-११॥

तत्पश्चात् सूतजीने प्रसन्नचित्त होकर उत्तम व्रतवाले मुनियोंकी ओर देखकर उनका कुशलक्षेम पूछा, तब उन सभीने भी अपना कुशल बताया। इसके बाद उन मुनीश्वरोंने उन्हें प्रसन्नचित्त जानकर प्रणवका अर्थ जाननेके लिये प्रास्ताविक वचन कहना प्रारम्भ किया॥ १२-१३॥

मुनि बोले— हे व्यासशिष्य! हे महाभाग! हे पौराणिकोत्तम सूतजी! आप धन्य हैं; क्योंकि आप समस्त विज्ञानके सागर एवं शिवभक्त हैं। सम्पूर्ण संसारके गुरु भगवान् व्यासजीने आपको सभी पुराणोंके गुरुरूपमें अभिषिक्तकर सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है। अतः [समग्र] पौराणिकी विद्या आपके हृदयमें स्थित है। सभी पुराण वेदार्थका प्रतिपादन करते हैं। समग्र वेद प्रणवसे उत्पन्न हुए हैं और प्रणवका तात्पर्य [स्वयं] महेश्वर हैं, अतः महेश्वरका स्थान आपके [हृदय-] स्थलमें प्रतिष्ठित है। हमलोग आपके मुखकमलसे निकलते हुए सुन्दर मकरन्दसदृश प्रणवार्थरूप अमृतको पीकर सन्तापरहित हो जायँगे। हे महामते! आप ही हमलोगोंके विशेष गुरु हैं, कोई दूसरा नहीं, अतः आप परम कृपापूर्वक महेश्वरके श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश कीजिये॥ १४—१९॥

उनके इस वचनको सुनकर व्यासजीके परम प्रिय शिष्य विद्वान् सूतजी गणेश, कार्तिकेय, साक्षात् महेश्वर, शिलादके

पुत्र तथा सुयशाके पति प्रभु नन्दीश्वर, सनत्कुमार तथा व्यासजीको नमस्कारकर यह कहने लगे— ॥ २०-२१ ॥

सूतजी बोले—हे पापरहित महाभाग्यशाली मुनियो! आपलोग धन्य हैं, जो कि आपलोगोंकी ऐसी अत्यन्त दृढ़ मति है, वह पापियोंके लिये [सर्वथा] दुर्लभ है ॥ २२ ॥

हे महर्षियो! पूर्व समयमें पराशरपुत्र गुरुदेव व्यासजीने नैमिषारण्यनिवासी मुनियोंको जो उपदेश दिया था, उसीको मैं [आपलोगोंसे] कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे मनुष्योंमें शिवभक्ति उत्पन्न हो जाती है, अब आपलोग सावधान होकर परम प्रसन्नताके साथ उसे सुनिये ॥ २३-२४ ॥

पूर्वकालमें स्वारोचिष मन्वन्तरमें दृढ़ व्रतवाले ऋषिगण सभी सिद्धोंके द्वारा निषेवित नैमिषारण्यमें तप करते हुए तथा यज्ञाधिपति रुद्रको प्रसन्न करते हुए उनके परम ऐश्वर्यको जाननेकी इच्छासे दीर्घसत्र करने लगे। इस प्रकार वे सब व्यासजीके दर्शनकी इच्छावाले महर्षि शिवभक्तिपरायण हो भस्म एवं रुद्राक्ष धारण किये हुए वहाँ निवास करने लगे ॥ २५—२७ ॥

उनकी ऐसी भावना देखकर महर्षि पराशरके तपःफलरूप सर्वात्मा भगवान् वेदव्यास वहींपर प्रकट हो गये। उन्हें देखकर प्रसन्न मुखकमल तथा नेत्रवाले मुनियोंने प्रत्युत्थान (अगवानी) आदि सभी उपचारोंसे उनका पूजन किया और सत्कार करके उन्हें सुवर्णमय उत्तम आसन प्रदान किया। तब उस सुवर्णमय आसनपर सुखपूर्वक बैठे हुए महामुनि व्यासजी गम्भीर वाणीमें कहने लगे— ॥ २८—३० ॥

व्यासजी बोले—आपलोग बतायें कि इस महायज्ञमें आपलोगोंका कुशल तो है, आपलोगोंने यज्ञाधिपति शिवका पूजन अच्छी प्रकार कर तो लिया है? आपलोगोंने इस यज्ञमें संसारसे मुक्त करनेवाले पार्वतीसहित सदाशिवका भक्तिभावसे किसलिये पूजन किया है? मुझे तो ऐसा मालूम हो रहा है कि महेश्वर शिवके परभावमें आपलोगोंकी इस प्रकारकी प्रवृत्ति एवं शुश्रूषा मोक्ष पानेके लिये ही हुई है ॥ ३१—३३ ॥

अमित तेजस्वी व्यासजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर नैमिषारण्यवासी परम ओजस्वी मुनियोंने शिवके अनुरागसे प्रसन्नचित्त उन महात्मा महामुनि व्यासजीको प्रणाम करके कहा— ॥ ३४-३५ ॥

मुनि बोले—साक्षात् विष्णुजीके अंशसे अवतार धारण करनेवाले हे भगवन्! हे मुनिश्रेष्ठ! हे कृपानिधान! हे महाप्राज्ञ! हे सर्वविद्येश्वर! हे प्रभो! आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी, सृष्टिकर्ता एवं पार्वती तथा गणोंसहित इन महादेवकी कृपाके साक्षात् समुद्र हैं। आपके चरणकमलके मकरन्दके स्वादमें [आसक्त हुए] भ्रमरस्वरूप मनवाले हमलोग आज आपके चरणकमलके दर्शनसे कृतार्थ हो गये हैं। हमलोगोंने पापीजनोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ आपके चरणकमलका दर्शन प्राप्त किया, अतः हमलोग महान् पुण्यवाले हैं ॥ ३६—३९ ॥

हे महाभाग! प्रणवके अर्थको प्रकाशित करनेकी इच्छावाले हमलोग नैमिषारण्य नामक इस महातीर्थमें महासत्र सम्पादित कर रहे हैं। महेश्वरके परम भावका चिन्तन करते हुए हमलोगोंने यह निश्चय किया है कि परमेश्वरके विषयमें सुनना चाहिये। हे प्रभो! अभीतक हमलोग उनकी महिमाको नहीं जान पाये हैं। अतः आप हम अल्पबुद्धिवालोंके उन समस्त सन्देहोंको दूर करनेकी कृपा करें। इस त्रिलोकीमें आपके अतिरिक्त कोई दूसरा इस संशयको दूर करनेवाला नहीं है। अतः हे दयानिधे! आप इस अपार तथा अथाह भ्रम-सागरमें डूबते हुए हमलोगोंको शिवज्ञानरूपी नौकासे पार कर दीजिये; हमलोग शिवकी उत्तम भक्तिके तत्त्वार्थको जाननेके लिये श्रद्धायुक्त हैं ॥ ४०—४४ ॥

इस प्रकार वेदोंमें पारंगत मुनियोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर समस्त वेदार्थके ज्ञाताओंमें मुख्य शुकदेवके पिता महामुनि व्यासजी वेदान्तके सारसर्वस्व प्रणवरूप तथा संसारसे मुक्त करनेवाले पार्वतीसहित परमेश्वरका अपने हदयकमलमें ध्यान करके प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे— ॥ ४५-४६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें व्यासशौनकादिसंवाद नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

भगवान् शिवसे पार्वतीजीकी प्रणवविषयक जिज्ञासा

व्यासजी बोले—हे ब्राह्मणो! परम सौभाग्यशाली आपलोगोंने यह बहुत अच्छी बात पूछी है; क्योंकि प्रणवार्थको प्रकाशित करनेवाला शिवज्ञान [सर्वथा] दुर्लभ है॥ १॥

त्रिशूल नामक उत्तम आयुध धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् शिव जिनपर प्रसन्न होते हैं, उन्हींको प्रणवार्थको प्रकाशित करनेवाला शिवज्ञान प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है; यह शिवभक्तिसे रहित अन्य लोगोंको नहीं प्राप्त होता है—यह वेदवचन है तथा यथार्थ तत्त्वका निश्चय है॥ २-३॥

आपलोगोंने इस दीर्घ सत्रके माध्यमसे अम्बिकापति भगवान् सदाशिवकी उपासना की है, इसे मैंने आज निश्चित रूपसे देख लिया। अत: हे आस्तिको! मैं आपलोगोंसे उमा-महेश्वरका संवादरूप प्राचीन तथा अद्भुत इतिहास कह रहा हूँ॥ ४-५॥

पूर्व समयमें दक्षपुत्री जगन्माता सतीने पिताके यज्ञमें शिवजीकी निन्दाके कारण अपना शरीरत्याग कर दिया। इसके बाद वे देवी उस शिवनिष्ठाके प्रभावसे [दूसरे जन्ममें] हिमालयकी पुत्री हुईं। वे नारदजीके उपदेशसे शिवके निमित्त तप करने लगीं॥ ६-७॥

उसके अनन्तर हिमालयने स्वयंवरविधिसे शिवजीके साथ उनका विवाह कर दिया, इससे वे पार्वती आनन्दित हुईं। इसके बाद किसी समय हिमालयपर्वतपर पतिके साथ सुखपूर्वक बैठी हुई महादेवी गौरी शिवजीसे कहने लगीं—॥ ८-९॥

महादेवी बोलीं—हे भगवन्! हे परमेश्वर! हे पंचकृत्यविधायक! हे सर्वज्ञ! हे भक्तिसुलभ! हे परम अमृतस्वरूप! मैंने तुम्हारी निन्दा होनेके कारण पूर्वजन्ममें दक्षपुत्रीका शरीर त्यागकर इस समय हिमालयकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया है। हे परमेशान! हे महेश्वर! अब कृपापूर्वक मुझे मन्त्रदीक्षाविधिसे विशुद्ध आत्मतत्त्वमें सदाके लिये स्थित कीजिये॥ १०—१२॥

इस प्रकार जब देवीने चन्द्रभूषण सदाशिवसे प्रार्थना की, तब वे प्रसन्नमनसे देवीसे कहने लगे—॥ १३॥

महादेव बोले—हे देवि! आप धन्य हैं, जो आपकी ऐसी बुद्धि हुई है, मैं कैलास-शिखरपर जाकर आपको विशुद्ध तत्त्वमें स्थित करूँगा॥ १४॥

इसके बाद हिमालयसे पर्वतश्रेष्ठ कैलासके शिखरपर जाकर शिवजीने दीक्षाविधिसे उन्हें प्रणवादि मन्त्रोंका उपदेश दिया। इस प्रकार उन मन्त्रोंका उपदेश करके देवीको विशुद्ध आत्मतत्त्वमें स्थितकर महादेवजी देवीके साथ देवोद्यानमें चले गये॥ १५-१६॥

इसके बाद देवीकी सुमालिनी आदि प्रिय सखियोंके द्वारा लाये गये कल्पवृक्षके खिले हुए पुष्पोंसे महादेवीको अलंकृत करके उन्हें अपनी गोदमें बैठाकर उनका मुख देखकर प्रसन्नमुख शिवजी वहाँ बैठ गये॥ १७-१८॥

तत्पश्चात् सभी लोकोंके कल्याणके लिये पार्वती एवं परमेश्वरके बीच वेदार्थसम्मत प्रिय कथाएँ होने लगीं। हे तपोधनो! उसी समय अपने पतिकी गोदमें विराजमान सम्पूर्ण जगत्की माताने अपने पतिके मुखको देखकर यह कहा—॥ १९-२०॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देव! आपके द्वारा उपदिष्ट मन्त्र प्रणवयुक्त कहे गये हैं, अत: सबसे पहले मैं प्रणवके निश्चित अर्थको सुनना चाहती हूँ॥ २१॥

प्रणव किस प्रकार उत्पन्न हुआ, इसे प्रणव क्यों कहा जाता है, इसमें कितनी मात्राएँ कही गयी हैं और यह वेदोंका आदि क्यों कहा जाता है? इसके कितने देवता कहे गये हैं, इसमें किस प्रकार देवादिकी भावना की जाती है, इसमें कितने प्रकारकी क्रियाएँ बतायी गयी हैं और इसकी व्याप्य-व्यापकता कैसी है? क्रमश: सद्योजातादि पंचब्रह्म इस मन्त्रमें किस प्रकार निवास करते हैं, कितनी कलाएँ कही गयी हैं? और प्रपंचात्मकता क्या है? इसका वाच्य-वाचकसम्बन्ध और स्थान किस प्रकारका है, इसका अधिकारी किसे जानना चाहिये और इसका विषय किसे कहा गया है? इसमें सम्बन्ध किसे

जानना चाहिये, इसका कौन-सा प्रयोजन कहा जाता है, इसकी उपासना करनेवाला किस रूपका होता है और उपासनाके योग्य स्थान कैसा होता है? हे प्रभो! इसकी उपास्य वस्तु किस प्रकारकी है, इसकी उपासना करनेवालोंका फल क्या होता है, इसकी अनुष्ठानविधि क्या है तथा पूजनका स्थान क्या है? हे हर! पूजामें मण्डल कैसा हो, इसके ऋषि आदि कौन हैं, इसमें न्यास तथा जपकी विधि क्या है और पूजाविधिका क्रम क्या है? हे महेशान! यदि आपकी मुझपर कृपा है, तो यह सब मुझे विशेषरूपसे बताइये, मैं इसे यथार्थरूपसे सुनना चाहती हूँ॥ २२—२९॥

देवीके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् चन्द्रभूषण [उन] महेश्वरीकी प्रशंसा करके कहने लगे— ॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें देवीदेवसंवादमें देवीकृत प्रश्नवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

प्रणवमीमांसा तथा संन्यासविधिवर्णन

ईश्वर बोले—हे देवि! आप मुझसे जो पूछ रही हैं, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनिये; उसके सुननेमात्रसे जीव साक्षात् शिव हो जाता है॥ १॥

प्रणवके अर्थको जान लेना ही मेरा ज्ञान है, प्रणव नामक वह मन्त्र सभी विद्याओंका बीज है॥ २॥

उसे वटबीजके समान अति सूक्ष्म तथा [विशाल] वटवृक्षके समान महान् अर्थवाला जानना चाहिये, यह वेदका आदि, वेदका सार और विशेषरूपसे मेरा स्वरूप है। तीनों गुणोंसे परे, सर्वज्ञ, सर्वकृत्, देवस्वरूप, सर्वसमर्थ तथा सर्वत्र व्याप्त मैं शिव इस ओम् नामक एकाक्षर मन्त्रमें निवास करता हूँ॥ ३-४॥

[इस जगत्में] जो भी वस्तु है, वह सब गुणोंकी प्रधानतासे और समष्टि या व्यष्टिरूपसे प्रणवार्थ ही है। इसीलिये एकाक्षर ब्रह्मस्वरूप यह प्रणव सभी अर्थोंका साधक है। शिवजी इसी प्रणवसे सबसे पहले समस्त संसारका निर्माण करते हैं॥ ५-६॥

शिवको ही प्रणवस्वरूप तथा प्रणवको ही शिवस्वरूप कहा गया है; क्योंकि वाच्य-वाचकमें कुछ भी भेद नहीं होता है। इसीलिये वाच्य तथा वाचकमें एकता मानते हुए ब्रह्मर्षिगण मुझ शिवको एकाक्षर कहते हैं॥ ७-८॥

अत: विकाररहित तथा मोक्षकी इच्छावालेको चाहिये कि उस प्रणवको ही मुझ सर्वकारण, निर्गुण परमेश्वरके रूपमें समझे॥ ९॥

हे देवेशि! मैं काशीमें जीवोंकी मुक्तिके लिये सभी मन्त्रोंमें श्रेष्ठ इसी प्रणवका उपदेश करता हूँ॥ १०॥

हे अम्बिके! अब मैं सर्वप्रथम प्रणवोद्धारका वर्णन करूँगा, जिसका ज्ञान हो जानेसे परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥ ११॥

सर्वप्रथम निवृत्तिकलारूप अकारका उद्धार करे, तत्पश्चात् इन्धनकलारूप उकारका, कालकलारूप मकारका, दण्डकलारूप बिन्दुका तथा ईश्वरकलारूप नादका उद्धार करे। इस प्रकार तीन मात्रा, बिन्दु तथा नादस्वरूप पंचवर्णरूप यह प्रणव उद्धृत किये जानेपर जप करनेवालोंको सदा मुक्ति प्रदान करता है॥ १२-१३॥

यह प्रणव ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण ही है, अत: इसे प्रणव कहा गया है। इस प्रणवका आदि अक्षर अकार है, उसके बाद उकार, मध्यमें मकार और अन्तमें नाद है, इनके संयोगसे 'ओम्' बनता है॥ १४-१५॥

हे मुनिसत्तम! आदि वर्ण अकार, जो कि उकारके दक्षिणमें है तथा अकारके उत्तरमें स्थित उकार—ये दोनों जलवत् शुभ्र आभावाले हैं तथा ओंकारके मध्यमें स्थित मकार अग्निकी भाँति तेजोमय है॥ १६॥

अकार, उकार एवं मकार—ये क्रमसे तीन मात्राएँ कही गयी हैं, उसके बाद अर्धमात्रा है। हे महेशानि! यह अर्धमात्रा ही नाद-बिन्दुस्वरूपवाली है, जिसका निश्चय

ही वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे तो ज्ञानीलोग ही जान सकते हैं॥ १७-१८॥

'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि श्रुतियाँ मुझसे ही प्रकट हुई हैं—ऐसा वेदोंने सत्य कहा है। इसलिये वेदका आदि मैं ही हूँ और प्रणव मेरा वाचक है। मेरा वाचक होनेके कारण यह प्रणव वेदोंका आदि भी कहा जाता है॥ १९-२०॥

अकार इसका महान् बीज है, जो रजोगुणयुक्त सृष्टिकर्ता ब्रह्मास्वरूप है। उकार उसकी योनिरूपा प्रकृति है, जो सत्त्वगुणयुक्त पालनकर्ता हरिका स्वरूप है। मकार बीजयुक्त पुरुष है, जो तमोगुणसे युक्त संहारकर्ता सदाशिवका स्वरूप है। बिन्दु साक्षात् प्रभु महेश्वर हैं, उन्हींसे जगत्का तिरोभाव कहा गया है। नादको सदाशिव कहा गया है, जो सबपर अनुग्रह करनेवाले हैं, नादरूप मूर्धामें परात्परतर शिवका ध्यान करना चाहिये॥ २१—२३॥

वे सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश, निर्मल, अविनाशी, अनिर्देश्य तथा सत्-असत्से परे साक्षात् परब्रह्म हैं॥ २४॥

[प्रणवके घटक] वे अकारादि वर्ण क्रमशः उत्तरोत्तर व्यापक हैं और वे ही पूर्व-पूर्व वर्ण व्याप्य हैं, इस प्रकारकी भावना सर्वत्र करनी चाहिये॥ २५॥

अकारादि पाँचों वर्णोंमें क्रमशः सद्योजातसे ईशानपर्यन्त पाँच ब्रह्म स्थित हैं, वे मेरी ही मूर्तियाँ हैं॥ २६॥

हे शिवे! अकारमें सद्योजातसे उत्पन्न आठ कलाएँ कही गयी हैं। उकारमें वामदेवरूपिणी तेरह कलाएँ कही गयी हैं। मकारमें अघोररूपिणी आठ कलाएँ स्थित हैं। बिन्दुमें पुरुषरूपिणी चार कलाएँ स्थित हैं। नादमें ईशानसे प्रादुर्भूत पाँच कलाएँ कही गयी हैं। छः पदार्थोंकी एकताके अनुसन्धानसे [प्रणवकी] प्रपंचात्मकता कही जाती है। मन्त्र, यन्त्र, देवता, प्रपंच, गुरु एवं शिष्य—ये ही छः पदार्थ हैं। हे प्रिये! इन छः पदार्थोंका अर्थ सुनो॥ २७—३०॥

प्रणवमन्त्र पाँच वर्णोंका समुदाय है, यह पहले ही कहा गया है, देवता ही यन्त्रभावको प्राप्त होता है, अब मैं उसके मण्डलक्रमको कहता हूँ। यन्त्र देवतास्वरूप है और देवता विश्वरूप है, गुरुको विश्वरूप कहा गया है और शिष्यको गुरुका शरीर कहा गया है॥ ३१-३२॥

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—इस श्रुतिसे सारा प्रपंच ही ओंकारस्वरूप है, इसी वाच्य-वाचक सम्बन्धसे [प्रपंचकी वाचकता तथा ब्रह्मकी वाच्यतारूप] अर्थ भी कह दिया गया॥ ३३॥

हे देवेशि! मूलाधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धि, आज्ञा, शक्ति, शान्ति और परात्पर शान्त्यतीत—ये [आठ] स्थान हैं, जिसे दृढ़ वैराग्य होता है, वही इस प्रणवका अधिकारी है॥ ३४-३५॥

हे देवि! मैं ही जीव और ब्रह्मकी एकत्वभावनासे इस प्रणवका विषय हूँ। हे देवेशि! प्रणवका विषय [नामक अनुबन्ध] भलीभाँति कह दिया, अब सम्बन्धको सुनिये। जीवात्माका मुझ परमात्माके साथ ऐक्य इस प्रणवका विषय है और वाच्यवाचकभाव ही यहाँपर सम्बन्ध है॥ ३६-३७॥

व्रत आदिमें निरत, शान्त, तपस्वी, जितेन्द्रिय, पवित्र आचरणसे युक्त, इस लोक तथा परलोकके विषयोंसे विरक्त, देवताओं तथा ब्राह्मणोंमें उत्तम भक्ति रखनेवाले, बुद्धिमान्, शिवव्रती, शान्ति आदि गुणोंसे युक्त, सुशील तथा श्रेष्ठ वेदवेत्ता ब्राह्मण शिष्यको चाहिये कि सभी शास्त्रोंके अर्थको तत्त्वतः जाननेवाले, वेदान्तज्ञानमें पारंगत, तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ यति आचार्यके पास जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम आदिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक सन्तुष्ट करे॥ ३८—४१॥

जो गुरु हैं, वे ही शिव कहे गये हैं और जो शिव हैं, वे ही गुरु कहे गये हैं—ऐसा मनसे सोचकर अपना विचार निवेदन करना चाहिये॥ ४२॥

बुद्धिमान् शिष्यको चाहिये कि गुरुसे आज्ञा प्राप्त करके बारह दिनपर्यन्त केवल दूध पीकर रहे, पुनः समुद्रके तटपर, नदीके किनारे, पर्वतपर अथवा शिवालयमें शुक्लपक्षकी पंचमी अथवा एकादशीके दिन प्रातःकाल स्नान करके शुद्धचित्त होकर नित्यकृत्य करके गुरुको बुलाकर विधिपूर्वक नान्दीश्राद्ध करके कक्ष (काँख) तथा गुह्यस्थानके केशोंको छोड़कर सिर, दाढ़ी, मूँछके

बालोंको बनवाकर, नाखून कटवाकर पुनः स्नान करके जितेन्द्रिय हो सन्ध्योपासन करके सत्तूका भोजन करके सायंकाल पुनः स्नानकर सन्ध्योपासन करे। ब्राह्मणको चाहिये कि गुरुके साथ सन्ध्याकालकी उपासना करके गुरुरूपी शिवको शास्त्रोक्त दक्षिणा देकर अपने गृह्यसूत्रमें बताये गये विधानके अनुसार होमद्रव्य लेकर लौकिक आदि भेदसे अग्निका आधान करे। इस प्रकार अग्न्याधान करके जो ब्राह्मण प्राजापत्य यज्ञके अनुसार हवन कर चुका है, वह वेदसहित सम्पूर्ण धनको दक्षिणामें देकर अग्निको आत्मामें धारणकर घरसे संन्यास ग्रहण करे। पुनः चरु तैयार करके समिधा, अन्न, घृतके द्वारा जितेन्द्रिय होकर पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचासे हवन उस अग्निमें करके पुनः अपने [गृह्य] सूत्रके अनुसार स्विष्टकृत् आहुतियोंसे हवन करे॥ ४३—५१॥

इस प्रकार हवन करके एकतन्त्रसे अग्निके उत्तरमें उदीच्यकर्म करे। बुद्धिमान् शिष्यको कुशाके ऊपर मृगचर्म एवं उसके ऊपर कपड़ेके आसनपर बैठकर मौन तथा स्थिरचित्त होकर ब्राह्ममुहूर्तपर्यन्त गायत्रीका जप करना चाहिये॥ ५२॥

इसके बाद प्रात:काल स्नान करके चरुका निर्माणकर पुरुषसूक्तसे आरम्भकर विरजापर्यन्त वामदेव अथवा शौनकादिके मतानुसार हवन करे। इनमें वामदेवका मत अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि वामदेवमुनि गर्भमें ही योगयुक्त हो गये थे॥ ५३-५४॥

इसके बाद शेष हवनको समाप्तकर प्रात:कालकी उपासनाका हवन सम्पन्न करे। तदनन्तर आत्मामें अग्निका आरोपणकर प्रात:कालिक सन्ध्योपासन करके सूर्यके उदय हो जानेपर सावित्रीमें क्रमशः प्रवेश करे और तीनों एषणाओं (लोकैषणा, पुत्रैषणा तथा धनैषणा)-का त्यागकर प्रैषोच्चारण करके क्रमसे शिखा, उपवीतका त्याग करके पुनः कटिसूत्र आदिको भी त्यागकर पूर्व अथवा उत्तरदिशाकी ओर मुख करके गमन करना चाहिये और लोकव्यवहारके लिये उचित दण्ड तथा कौपीन आदि धारण करना चाहिये, जिसे लोकव्यवहारका ध्यान न हो, वह इन्हें धारण न भी करे॥ ५५—५८॥

गुरुके समीप जाकर तीन बार दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये, पुनः उठकर गुरुके चरणोंके समीप बैठना चाहिये॥ ५९॥

इसके बाद गुरुको चाहिये कि विरजा अग्निसे उत्पन्न श्वेत भस्म लेकर उससे विधिपूर्वक शिष्यके शरीरपर उद्धूलन करके **'अग्निरिति भस्म'** इत्यादि मन्त्रोंसे त्रिपुण्ड्र धारण कराये और हृदयकमलमें स्थित पार्वतीसहित मेरा ध्यान कराये। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त होकर श्रेष्ठ गुरु शिष्यके मस्तकपर अपना हाथ रखकर उसके दाहिने कानमें ऋषि आदिके सहित तीन बार प्रणवका उच्चारण करे और पुनः सविस्तार उसके षड्विध अर्थका समग्रतः उपदेश करे॥ ६०—६३॥

तदनन्तर वह शिष्य गुरुको बारह प्रकारसे भूमिपर दण्डवत् करके उनके अधीन रहकर वेदान्तका नित्य अभ्यास करे और अपने निर्विकार एवं विशुद्ध मनमें सदा मुझ ब्रह्म, साक्षी तथा अव्यय परमात्माका चिन्तन करे। शम आदि धर्मोंमें निरत, वेदान्तज्ञानमें पारंगत तथा ईर्ष्यारहित यति ही इस प्रणवका अधिकारी कहा गया है॥ ६४—६६॥

स्वच्छ, शोकरहित, परम उज्ज्वल, अष्टपत्रयुक्त, कर्णिकामें विराजमान मकरन्दयुक्त हृत्कमलके मध्यमें आधारशक्तिसे आरम्भ करके मणिपूरकपर्यन्त दहर आकाशमें त्रितत्त्वयुक्त प्रणवकी भावना करे॥ ६७-६८॥

सावधानचित्त होकर 'ओम्' इस एकाक्षरमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस दहराकाशके मध्य तुम्हारे साथ मेरा स्मरण सदा करता रहे॥ ६९॥

हे प्रिये! इस प्रकारके उपासकको मेरा लोक प्राप्त होता है और वह मुझसे ज्ञान पाकर मेरे सायुज्यका फल प्राप्त कर लेता है॥ ७०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासपद्धतिवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

संन्यासदीक्षासे पूर्वकी आह्निकविधि

शिवजी बोले—हे महादेवि! अब मैं आपके ऊपर स्नेहके कारण सम्प्रदायोंके अनुसार संन्यास लेनेसे पूर्वके आह्निक कर्मका वर्णन करूँगा॥ १॥

हे महादेवि! ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर यति अपने सिरमें सहस्र दलवाले श्वेत कमलपर बैठे हुए, शुद्ध स्फटिकके समान अत्यन्त निर्मल, दो नेत्रोंवाले, वरद एवं अभयमुद्राको धारण किये हुए शिवके समान कल्याणकारी एवं अत्यन्त मनोहर स्वरूपवाले गुरुका ध्यान करे। उसके अनन्तर मानसिक भावोंसे लाये गये गन्ध आदिसे क्रमशः पूजन करके हाथ जोड़कर गुरुको नमस्कार करे॥ २—४॥

हे महादेव! प्रातःकालसे सन्ध्यापर्यन्त तथा सन्ध्यासे प्रातःकालपर्यन्त मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह सब आपका ही पूजन हो। इस प्रकार गुरुसे निवेदनकर उनसे आज्ञा लेकर प्राणोंको रोक करके मन एवं इन्द्रियोंको वशमें रखकर आसनपर बैठे और मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त छः चक्रोंका ध्यान करे। उनके मध्यमें करोड़ों विद्युत्‌के समान कान्तिवाले, सर्वतेजोमय, सच्चिदानन्दस्वरूप, निर्गुण, निर्विकार, परब्रह्मरूप मुझ सदाशिवका चिन्तन करे॥ ५—८॥

उसके अनन्तर उस बुद्धिमान्‌को चाहिये कि 'वह मैं ही हूँ'—इस प्रकार मेरे साथ एकताका अनुभव करके बाहर निकलकर सुविधानुरूप दूर चला जाय॥ ९॥

वह बुद्धिमान् [शिष्य] वस्त्रसे नासिका तथा सिरको ढँककर पृथ्वीपर तृण रखकर विधिवत् शौच करके वहाँसे उठकर शिश्नको हाथसे पकड़े हुए जलाशयकी ओर जाय और उचित रीतिसे जल लेकर सावधान हो विधिपूर्वक शुद्धि करे। पुनः हाथ-पैर धोकर '**ॐ**' इस मन्त्रका स्मरण करता हुआ दो बार आचमन करके मौन धारणकर उत्तराभिमुख हो दन्तधावन करे॥ १०—१२॥

एकादशी तथा अमावास्याको छोड़कर तृण तथा पत्ते (डण्ठल आदि)-से सदा दन्तधावन करे, इसके बाद जलसे बारह कुल्लाकर मुखको शुद्ध करे, पुनः दो बार आचमनकर मिट्टी तथा जलसे कटिपर्यन्त शरीरभागको शुद्ध करके सूर्योदयके समय मिट्टीका लेपनकर स्नान करे॥ १३-१४॥

गुरुका तथा मेरा स्मरण करते हुए स्नान-सन्ध्या आदि करना चाहिये। इस विषयमें विस्तारके भयसे अधिक नहीं कहा गया है, इसे अन्यत्र देख लेना चाहिये॥ १५॥

शंखमुद्रा बाँधकर प्रणवसे सिरपर बारह बार, उसका आधा छः बार अथवा उसका भी आधा तीन बार जल छिड़के। उसके अनन्तर किनारेपर आकर कौपीनका प्रक्षालनकर दो बार आचमन करके प्रणवसे ही वस्त्रपर जल छिड़के तथा अंगोंका मार्जन करे॥ १६-१७॥

सबसे पहले अँगोछेसे मुख पोंछकर बादमें सिरसे लेकर सम्पूर्ण देहको पोंछे। इसके बाद गुरुके समीप ही स्थित हो शुद्ध कौपीन धारणकर डोरेसे बाँध ले। पुनः भस्म धारण करे, हे प्रिये! उसकी विधि कह रहा हूँ॥ १८-१९॥

दो बार आचमन करके **सद्योजात०** इस आद्य मन्त्रसे भस्म ग्रहण करके **अग्निरिति०** इत्यादि मन्त्रोंसे उसे अभिमन्त्रित करते हुए शरीरका स्पर्श करे। इसके बाद '**आपो वा**' इस मन्त्रसे भस्ममें जल मिलाये। पुनः **ॐ आपो ज्योतिः**—इस मन्त्रको पढ़कर **मानस्तोके**—इस मन्त्रसे [भस्मको] मसलकर कवलके आकारके दो पिण्ड बनाये। फिर एकके पाँच भाग करे। हे परमेश्वरि! उसे सिर, मुख, हृदय, गुह्यस्थान तथा चरणमें ईशानसे लेकर सद्योजातपर्यन्त पाँच मन्त्रोंसे क्रमशः लगाकर बादमें प्रणवसे अभिषेक करे। इसके साथ सभी अंगोंको तथा तत्पश्चात् दोनों हाथोंको धोकर दूसरा पिण्ड ग्रहण करे और पहलेकी तरह मसलकर उससे त्रिपुण्ड्र धारण करे, '**त्र्यायुषं जमदग्नेः**', '**त्र्यम्बकं यजामहे**', प्रणव अथवा अन्य शिवमन्त्रके द्वारा सिर, ललाट, वक्षःस्थल, कन्धा, नाभि, दोनों बाहुओं, सन्धियों तथा पीठपर क्रमशः भस्म लगाये। इसके बाद दोनों हाथ धोकर यथाविधि दो बार आचमन

करके पंचाक्षर मन्त्रका उच्चारणकर वह विद्वान् [शिष्य] अपने गुरुका ध्यान करे और आगे कही जानेवाली विधिके अनुसार छः प्राणायाम करे॥ २०—२७॥

दाहिने हाथमें जल लेकर उसे बायें हाथसे ढँककर बारह बार प्रणवमन्त्र पढ़कर उसे अभिमन्त्रित करे। इसके बाद तीन बार उसे अपने सिरपर छिड़ककर तीन बार उसका पान करे और एकाग्र मनसे सूर्यमण्डलमें स्थित, सर्वतेजोमय, आठ भुजावाले, चार मुखसे युक्त, अर्धनारीश्वर, अद्भुत स्वरूपवाले, सम्पूर्ण आश्चर्यमय गुणोंसे युक्त तथा सभी अलंकारोंसे सुशोभित ओंकाररूपी ईश्वरका ध्यान करे॥ २८—३०१/२॥

इस प्रकार ध्यान करके विधिपूर्वक तीन बार अर्घ्य दे। इसके बाद एक सौ आठ बार [शिवमन्त्रका] जप करके बारह बार तर्पण करे, पुनः विधिवत् आचमनकर तीन प्रणायाम करे॥ ३१-३२॥

तदनन्तर मनसे शिवजीका स्मरण करते हुए पूजास्थानमें आये, वहाँ द्वारपर दोनों पैर धो करके मौन होकर दो बार आचमन करे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि दाहिना चरण आगे करके पूजामण्डपमें विधिवत् प्रवेश करे और वहाँ क्रमसे मण्डलकी रचना करे॥ ३३-३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासाचारवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

संन्यासदीक्षाहेतु मण्डलनिर्माणकी विधि

ईश्वर बोले—भूमिके गन्ध, वर्ण, रस आदिकी भलीभाँति परीक्षाकर वहाँ अपने मनके अनुकूल स्थानपर वस्त्रका विशाल चँदोवा लगाकर दर्पणतलके तुल्य [सम तथा स्निग्ध] पृथ्वीतलपर दो हाथ प्रमाणके चौकोर मण्डलका निर्माण करे॥ १-२॥

ताड़का पत्ता लेकर उसीके समान लम्बे एवं चौड़े स्थानमें बराबर तेरह भाग करे। उस ताड़पत्रको वहीं रखकर पश्चिमकी ओर मुख करके बैठे और रँगा हुआ सुदृढ़ धागा लेकर उसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—चारों दिशाओंमें लपेटे। हे देवदेवेशि! इस प्रकार करनेसे उस मण्डलके एक सौ उनहत्तर कोष्ठक हो जायँगे। उसके मध्यका कोष्ठक कर्णिका है, उसके बाहरके आठ कोष्ठक आठ दल कहे जाते हैं॥ ३—६॥

सभी दलोंको श्वेत वर्णका बनाये। कर्णिकाको पीले रंगसे रँगना चाहिये और उसके चारों ओर लाल रंगका वृत्त बनाकर हे सुरेश्वरि! [उस अष्टदल] कमलके दलोंके दाहिनी ओरसे आरम्भ करके दलोंके सन्धिस्थानको क्रमसे लाल तथा काले रंगसे रँगना चाहिये॥ ७-८॥

कर्णिकामें प्रणवार्थको प्रकाशित करनेवाला यन्त्र लिखे। पुनः नीचेकी ओर पीठ और उसके ऊपर श्रीकण्ठ लिखकर उसके ऊपर अमरेश, मध्यमें महाकाल और महाकालके मस्तकके समीप दण्ड लिखकर फिर ईश्वरको लिखे। श्याम रंगसे पीठ और पीत रंगसे श्रीकण्ठको चित्रित करे। अमरेश और महाकालको क्रमशः लाल तथा काले रंगसे चित्रित करे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि दण्डको धूमवर्ण तथा ईश्वरको धवलवर्णका बनाये। इस प्रकार रंग भरकर बनाये गये यन्त्रको सद्योजात मन्त्रसे वेष्टित कर दे॥ ९—१२॥

हे ईश्वरि! उस मन्त्रसे उठे हुए नादसे ईशानका भेदन करे और आग्नेय आदिके क्रमसे उनकी बाह्य पंक्तियोंको ग्रहण करे॥ १३॥

हे सुन्दरि! उन कोणोंके चार कोष्ठकोंको श्वेत तथा लाल धातुओंसे रँगकर चार द्वारोंकी परिकल्पना करे। उनके बगलके दोनों कोष्ठकोंको पीले रंगसे परिपूर्ण करना चाहिये॥ १४-१५॥

आग्नेय कोणके कोष्ठके मध्यभागमें पीतवर्णवाले चौकोर स्थानमें लालरंगके अष्टदल कमलका निर्माण करना चाहिये और उसकी कर्णिकाको पीले रंगसे रँगना चाहिये॥ १६॥

तत्पश्चात् सावधान होकर उसके मध्यमें बिन्दुयुक्त हकार लिखे। उस कमलके नैर्ऋत्यकोणवाले कोष्ठकमें चौकोर [वृत्तवाला] रक्तवर्णका अष्टदल कमल बनाये

और उसकी कर्णिकाओंमें पीला रंग भर दे। उसमें शवर्गके तीसरे अक्षर 'स' को छठे स्वर 'ऊ' से युक्त करके 'सू' लिखे॥ १७-१८॥

हे भद्रे! बिन्दु-नादसे युक्त चौदहवाँ स्वर 'औं'—इस श्रेष्ठ बीजमन्त्रको पद्मके मध्यमें लिखे॥ १९॥

इसी प्रकार पद्मके ईशानकोणवाले कोष्ठकमें भी रक्तवर्णका वैसा ही कमल बनाये और उसमें कवर्गके तीसरे अक्षर 'ग' को पंचम स्वरसे युक्त करके 'गु' लिखे। उस वर्णके कण्ठभागमें बिन्दु लिखे। हे पार्वति! हे शिवे! इसकी बाहरवाली तीन पंक्तियोंमें पूर्वादि दिशाके क्रमसे चारों ओरके पाँच कोष्ठ ग्रहण करे और उसके मध्यमें कर्णिकाको पीला करे एवं वृत्तको रक्तवर्णका कर दे॥ २०—२२॥

इसकी विधि जाननेवालेको चाहिये कि कमलदलोंको लाल बनाये और दलोंके बाहरवाले छिद्रोंको काले रंगसे भर दे। आग्नेय आदि चारों कोनोंको सफेद रंगसे परिपूर्ण करे। पूर्वकी ओर छ: बिन्दुसे युक्त षट्कोणको काले रंगसे लिखे॥ २३-२४॥

दक्षिण कोष्ठकमें रक्तवर्ण त्रिकोण, उत्तरकोष्ठकमें श्वेताभ अर्धचन्द्र, पश्चिम कोष्ठकमें पीतवर्ण चतुरस्र अंकित करके क्रमश: चार बीज लिखे। पूर्वकोष्ठकमें शुक्लवर्ण बिन्दु, दक्षिणकोष्ठकमें कृष्णवर्ण उकार, उत्तरकोष्ठकमें रक्तवर्ण मकार और पश्चिम कोष्ठकमें पीतवर्ण अकार लिखे। हे सुन्दरि! सबसे ऊपरकी पंक्तिसे नीचेवाली पंक्तिमें पीला, श्वेत, लाल और काला—ये चारों रंग भरे॥ २५—२८॥

उसके नीचे श्वेत, श्याम, पीत एवं रक्त रंगसे रँगे। हे वरानने! नीचेके त्रिकोणमें लाल, सफेद और पीला रंग भरे। हे ईश्वरि! इस प्रकार दक्षिणसे प्रारम्भकर उत्तर दिशातक चित्रण करे। उसकी बाहरी पंक्तिमें पूर्वसे मध्यभागतक पीला, लाल, काला, श्याम, श्वेत, पीतवर्ण चित्रित करे। हे प्रिये! रक्त, श्याम, श्वेत, लाल, कृष्ण, लाल—ये छ: रंग कहे गये हैं। आग्नेयकोणसे आरम्भकर [वायुकोणपर्यन्त] इन रंगोंका क्रमश: प्रयोग करे। हे महेशानि! दक्षिणसे लेकर पूर्वपर्यन्त ये सब बताये गये हैं। हे ईश्वरि! वैसे ही नैर्ऋत्यदिशासे लेकर आग्नेयदिशापर्यन्त जानना चाहिये, उसी रीतिसे पश्चिमदिशासे लेकर दक्षिणदिशापर्यन्त भी कहा गया है। हे महादेवि! वायव्यसे लेकर नैर्ऋत्यदिशातक यह क्रम कह दिया। इसी प्रकार परमेशानि! पूर्वसे लेकर पश्चिम दिशातक कहा गया। हे अम्बिके! उत्तरसे लेकर वायव्यतक यह क्रम जानना चाहिये। हे पार्वति! इस प्रकार मैंने मण्डलकी विधि आपसे कह दी। जितेन्द्रिय यतिको चाहिये कि स्वयं इस प्रकार मण्डल लिखकर ब्रह्ममें तत्पर हो सौरपूजा करे॥ २९—३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासमण्डलविधिवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

पूजाके अंगभूत न्यासादि कर्म

ईश्वर बोले—मण्डलके दक्षिणमें मनोहर व्याघ्रचर्म बिछाकर अस्त्र-मन्त्रके द्वारा शुद्ध जलसे उसका प्रोक्षण करे। पहले प्रणवका उद्धार करके बादमें आधारका उद्धार करे। उसके अनन्तर शक्तिकमलका उद्धार करे। इन सबमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें नम: पदका प्रयोग करे। इस प्रकार मन्त्रका उच्चारण करके वहाँपर उत्तरकी ओर मुख करके बैठकर प्रणवका उच्चारण करते हुए विधिवत् प्राणायाम करे॥ १—३॥

'अग्निरिति भस्म०' इत्यादि मन्त्रका उच्चारणकर मस्तकपर भस्म लगाये, उसके बाद गुरुको नमस्कारकर मण्डलकी रचना करे। मण्डलमें त्रिकोण तथा वृत्तकी रचनाकर उसे चतुरस्रके द्वारा बाहरसे आवेष्टित करे। फिर **'ओम्'** मन्त्रसे उसपर आधारसहित शंख रखकर उसकी भी अर्चना करे॥ ४-५॥

तदनन्तर प्रणवका उच्चारणकर शुद्ध तथा सुगन्धित जलसे शंखको पूर्ण करके [प्रणवका उच्चारणकर]

गन्ध-पुष्पादिसे शंखका पूजन करके पुनः सात बार प्रणवसे अभिमन्त्रितकर धेनुमुद्रा तथा शंखमुद्रा प्रदर्शित करे। पुनः अस्त्रमन्त्रसे अपना तथा गन्ध, पुष्प आदि पूजा-सामग्रियोंका प्रोक्षण करे। इसके बाद तीन बार प्राणायाम करके ऋषि आदिका न्यास करे। इस सौरमन्त्रके देवभाग ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और सूर्यरूप महेश्वर इसके देवता हैं॥ ६—९१/२ ॥

'ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः' इत्यादि मन्त्रोंसे न्यास करे। फिर अस्त्रमन्त्रसे आग्नेय कोणके कमलको प्रोक्षित करे। विद्वान् पुरुष उस कमलपर पूर्वादि क्रमसे प्रभूता, विमला तथा साराकी आराधनाकर उनका पूजन करे॥ १०-११ ॥

इसके बाद कालाग्निरुद्र, आधारशक्ति, अनन्त, पृथ्वी, मणिद्वीप, कल्पवृक्षका उद्यान, मणिमय गृह एवं रक्तपीठकी पूजाकर उसके पादस्थानमें चारों ओर पूर्वादि क्रमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यका तथा आग्नेयादि चार कोणोंमें अधर्म आदिका पूजन करे॥ १२—१४॥

माया [बीज]-से नीचेके भागका आच्छादन और विद्या [बीज]-से ऊर्ध्वभागका आच्छादनकर पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः सत्त्व, रज तथा तमका पूजन करे एवं मध्यमें क्रमशः दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा और विद्युताकी भी पूजा करे॥ १५-१६ ॥

इसके बाद सर्वतोमुख, कन्दनाल, सुषिर, कण्टक, मूल, पत्र, किंजल्क तथा आत्मप्रकाशका पूजन करे, फिर पंचग्रन्थि, कर्णिका, कमलदल तथा केसरोंका पूजन करे। तदनन्तर कमलके केसरपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा तथा परमात्माका पूजनकर सौर नामक योगपीठकी पूजा करे। तदुपरान्त मन्त्रवेत्ता सिंहासनके ऊपर मूलमन्त्रसे मूर्तिकी स्थापना करे॥ १७—२० ॥

तत्पश्चात् संयतप्राण होकर उसी मूलमन्त्रसे मूलाधारमें स्थित आधारशक्तिको पिंगलानाडीके मार्गसे ऊपर उठाये॥ २१ ॥

मण्डलमें स्थित अत्यन्त तेजस्वी तथा सिन्दूरके समान अरुणवर्णवाले पार्वतीसहित अर्धनारीश्वर भगवान्‌को पुष्पांजलिमें आकृष्ट करे, जिनके हाथोंमें रुद्राक्षकी माला, पाश, खट्वांग, कपाल, अंकुश, कमल, शंख और चक्र विराजमान हैं, जिनके चार मुख और बारह नेत्र हैं, उन सौररूप महादेवके हृदयकमलके मध्यमें सर्वप्रथम प्रणवका उद्धार करके पुनः **ह्रां ह्रीं सः** का उद्धार करे॥ २२—२४॥

तत्पश्चात् **'प्रकाशशक्तिसहितं मार्तण्डमावाहयामि नमः'** इस मन्त्रसे सूर्यरूप महेश्वरका आवाहन करके आवाहनी नामक मुद्राके द्वारा स्थापन [आदि क्रियाएँ सम्पन्न]-कर मुद्रा प्रदर्शित करे। **ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः**—इन मन्त्रोंसे अंगन्यास तथा करन्यास करे॥ २५-२६ ॥

पंचोपचारोंको परिकल्पित करके पद्मकेसरोंमें मूलमन्त्रसे षडंग (ह्रां, ह्रीं आदि)-की तीन बार अर्चना करे। हे महेश्वरि! तदुपरान्त विज्ञ साधक अग्नि, ईश्वर, राक्षस, वायु आदि चारों मूर्तियोंका क्रमशः दूसरे आवरणमें पूजन करे॥ २७-२८ ॥

हे पार्वति! पूर्वसे लेकर उत्तर दलके मूल भागतकमें आदित्य, भास्कर, भानु तथा रविका एवं ईशानादि चारों कोणोंमें अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुका इसी प्रकार तृतीय आवरणमें पूजन करे। पूर्वादि दलोंके मध्यमें सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा केतुका पूजन करना चाहिये अथवा द्वितीय आवरणमें ही द्वादश आदित्योंका पूजन करे। तीसरे आवरणमें बारह राशियोंका पूजन करे॥ २९—३२ ॥

इसके बाहर चारों ओर सप्तसागर, गंगा, ऋषि, देवता, गन्धर्व, पन्नग, अप्सराएँ, ग्रामणी, यक्ष, यातुधान, सप्तछन्दरूप सात घोड़े तथा बालखिल्योंका भी पूजन करे॥ ३३-३४॥

इस प्रकार तीन आवरणवाले दिवाकर देवका पूजनकर समाहितचित्त हो चौकोर मण्डलका निर्माण करे। पुष्प आदिसे सुवासित शुद्ध जलसे परिपूर्ण, ताम्रनिर्मित, प्रस्थमात्र जल भरनेके योग्य विस्तारवाला आधारसहित कलश स्थापित करके गन्ध, पुष्पादिसे ताम्रकलशका पूजनकर दोनों घुटनोंके बल पृथ्वीपर बैठकर हाथमें अर्घ्यपात्रको लेकर उसे भौंहपर्यन्त ऊपर उठाये और तब सविता देवताके सर्वसिद्धिप्रद इस मन्त्रका पाठ करे। हे महादेवि! सर्वदा भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले इस मन्त्रको सुनो—॥ ३५—३८ ॥

सिन्दूरकी-सी आभावाले, उत्तम मण्डलसे युक्त,

कमलके समान कान्तिमय नेत्रोंवाले, कमलपुष्पसे शोभित तथा ब्रह्मा, इन्द्र और नारायणके उद्भवहेतु, हीरकभूषित आपको नमस्कार है। हे भगवन्! रोली, सुवर्ण, पुष्पमाला, कुश, पुष्प तथा कुंकुमसे युक्त, स्वर्णपात्रमें स्थित यह जलसहित उत्तम अर्घ्य [आपको] अर्पित है, इसे ग्रहणकर [आप] प्रसन्न होइये॥ ३९-४०॥

इस प्रकार सूर्यरूपी महेश्वरको अर्घ्य प्रदानकर सावधानीसे 'पार्वतीजी एवं प्रमथगणोंसे समन्वित, संसारके आदि कारण, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्ररूप तीन विग्रहोंवाले आप शिवजीको नमस्कार है।' यह मन्त्र पढ़कर नमस्कार करे॥ ४१-४२॥

इस प्रकार बोलते हुए नमस्कार करनेके उपरान्त अपने आसनपर स्थित हो ऋषि आदिका न्यास करके तथा जलसे हाथोंको शुद्ध करके पूर्वोक्त विधिसे पुनः भस्म धारणकर शिवमें भावनाकी दृढ़ताके लिये नानाविध न्यास करे॥ ४३-४४॥

बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि पंचोपचारसे गुरुदेवकी पूजाकर '**श्रीगुरवे नमः**' मन्त्रका उच्चारण करके उन्हें सिरसे प्रणाम करे। पंचात्मक, बिन्दुयुक्त पंचम स्वर उकारसहित, वैसे ही बिन्दुसहित, पंचम स्वररहित तथा [पुनः] पंचमस्वरसहितका उद्धारकर बिन्दुसहित अकार तथा संवर्तक बीजका उच्चारण करे॥ ४५—४७॥

इस प्रकार क्रमशः बीजोंका उद्धारकर दोनों भुजा, तथा ऊरुको झुकाकर बुद्धिमान् पुरुष गुरु तथा गणपतिको प्रणाम करे। उसके अनन्तर हाथ जोड़कर दुर्गा तथा क्षेत्रपालको प्रणाम करे। '**ॐ अस्त्राय फट्**'—इस मन्त्रका छः बार उच्चारणकर हाथोंको शुद्ध करे॥ ४८-४९॥

'**अपसर्पन्तु ते भूताः**'—इस मन्त्रको पढ़कर प्रणवपूर्वक '**अस्त्राय फट्**'—इस मन्त्रका उच्चारणकर बगलमें तीन बार ताली बजाकर भूतलमें स्थित समस्त विघ्नोंको आकाशमें भगा दे। उसके बाद विघ्नोंको अन्तरिक्षमें गया हुआ तथा वहाँ स्थित हुआ देखकर प्राणायाम करना चाहिये। फिर '**सोऽहम्**'—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए हृदयमें विराजमान जीवचैतन्यको सुषुम्ना नाड़ीद्वारा द्वादशान्तपर्यन्त विस्तारवाले सहस्रदलकमलमें स्थित चैतन्यमय चन्द्रमण्डलमें विराजमान चिद्रूप परमेश्वरके साथ योजित कर दे॥ ५०—५३॥

वायु, अग्नि तथा जलके बीजमन्त्रोंसहित सोलह, चौंसठ एवं बत्तीस प्राणायामोंके द्वारा रेचक आदिके क्रमसे शोषण, दाह तथा प्लावन अपनी-अपनी वेदशाखामें निर्दिष्ट मन्त्रोंसे करे॥ ५४१/२॥

तदनन्तर प्राणायाम करके मूलाधारमें स्थित तथा ब्रह्मरन्ध्रकी ओर उन्मुख कुण्डलिनीको लाकर द्वादशान्तमें स्थित सहस्रारपद्मके मध्यमें विद्यमान चैतन्यमय चन्द्रमण्डलसे निकली हुई उत्कृष्ट अमृतधारासे आप्लुत हुए पवित्र देहवाला [साधक] भलीभाँति '**सोऽहम्**'—इस प्रकारकी भावना करते हुए अपने आत्मतत्त्वको हृदयकमलमें उद्बुद्ध करे॥ ५५—५७॥

उसके अनन्तर [उस चैतन्यमय चन्द्रमण्डलसे] झरती हुई अमृतधारासे आप्लुत आत्मतत्त्वको परमात्मामें आविष्टकर एकाग्रचित्तसे विधिपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा करे। इस प्रकार योगी एकाग्र मन हो मातृकाशक्तिका स्मरण करे और प्रणवसे सम्पुटित मातृकाओंको बाहर तथा भीतर न्यस्त करे। तत्पश्चात् प्राणवायुको रोककर बुद्धिमान् पुरुष ध्यान आदि करे और चित्तमें शंकरका स्मरण करते हुए मत्सरताका त्याग करके न्यास करे॥ ५८—६०॥

हे देवि! प्रणवके ऋषि ब्रह्मा तथा गायत्री छन्द कहा गया है। मैं परमात्मा सदाशिव उसका देवता हूँ। अकार उसका बीज कहा गया है, उकार शक्ति कहा गया है और मकार कीलक है तथा मोक्षकी कामनाके लिये इसका विनियोग किया जाता है॥ ६१-६२॥

हे देवेशि! दोनों अँगूठोंसे लेकर दोनों हाथोंके तल-भागको शुद्धकर ॐका उच्चारण करके करन्यास करे। दाहिने हाथके अँगूठेसे प्रारम्भकर बायें हाथकी कनिष्ठा अँगुलीपर्यन्त पूर्ववत् क्रमसे न्यास करे॥ ६३-६४॥

अकार, उकार और बिन्दुसहित मकार—इनके अन्तमें 'नमः' लगाकर हृदयादिका स्पर्शकर न्यास करे॥ ६५॥

सर्वप्रथम अकारका उद्धारकर चतुर्थी एकवचनान्त ब्रह्मात्म शब्दके अन्तमें नमः लगाकर '**ब्रह्मात्मने नमः**'—इस प्रकार कह करके हृदयका स्पर्श करे। उकारपूर्वक 'विष्णु' शब्दका शिरःप्रदेशमें न्यास करे। मकारपूर्वक 'रुद्र' शब्दका शिखामें न्यास करे॥ ६६-६७॥

हे देवदेवेशि! इस प्रकार कहकर मन्त्रको जाननेवाला मुनि सावधानीसे कवच, नेत्र तथा मस्तकका भी न्यास करे। इसी प्रकार अंग, वक्त्र तथा कलाभेदसे पंचब्रह्मको सिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणोंमें भी न्यस्त करना चाहिये॥ ६८-६९॥

ईशानकी पाँच कलाओंका क्रमशः इन्हीं पाँचों स्थानोंमें क्रमसे न्यास करे। पुनः पूर्वादि क्रमसे स्थित शिवके चार मुखोंमें तत्पुरुषकी चार कलाओंका भी पूर्वादि दिशाओंमें न्यास करे। इसी प्रकार अघोरकी आठ कलाओंको भी हृदय, कण्ठ, दोनों कन्धों, नाभि, कुक्षि, पृष्ठ तथा वक्षःस्थलपर न्यस्त करे। उसके अनन्तर वामदेवकी तेरह कलाओंका भी पायु, मेढ्र, ऊरु, जानु, जंघा, स्फिक्, कटि और पार्श्वमें न्यास करे। इसी तरह विद्वान् सद्योजातकी आठ कलाओंका यथाक्रमसे नेत्र, पाद, हस्त, प्राण तथा सिरमें न्यास करे॥ ७०—७४॥

इस तरह [ईशानकी पाँच, तत्पुरुषकी चार, अघोरकी आठ, वामदेवकी तेरह और सद्योजातकी आठ] अड़तीस कलाओंका न्यास करके प्रणववेत्ता बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह प्रणवन्यास आरम्भ करे, हे परमात्मविबोधिनि! दोनों बाहुओं, केहुनी, मणिबन्ध, पार्श्व, उदर, जंघा, दोनों पाद और पीठमें प्रणवन्यास करके न्यासज्ञाता हंसन्यास करे॥ ७५—७७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासपद्धतिमें न्यासवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

शिवजीके विविध ध्यानों तथा पूजा-विधिका वर्णन

ईश्वर बोले—साधकको अपनी बायीं ओर चौकोर मण्डलका निर्माण करना चाहिये। उस मण्डलकी प्रणवके द्वारा पूजाकर अस्त्रमन्त्रसे शोधितकर आधारसहित शंख स्थापित करे। इस प्रकार मण्डलमें स्थित शंखका प्रणवसे पूजन करे। सबसे पहले चन्दनादिके द्वारा सुवासित जलसे शंखको पूर्ण करके सात बार प्रणवद्वारा अभिमन्त्रितकर गन्ध, पुष्प आदिसे उसका पूजन करे और धेनुमुद्रा तथा शंखमुद्राका प्रदर्शन करे॥ १—३॥

उसके आगे चतुष्कोणका निर्माण करे। उसके बीचमें अर्धचन्द्र तथा उसके मध्यभागमें त्रिकोण बनाये, फिर उस त्रिकोणमें षट्कोणात्मक वृत्त बनाये। इस प्रकार मण्डलकी परिकल्पना करे। मण्डलका गन्ध, पुष्पादिद्वारा प्रणवसे पूजन करके वहाँपर आधारयुक्त अर्घ्यपात्र स्थापितकर उसे जलसे परिपूर्णकर गन्धादिसे अर्चित करे और उसमें कुशाका अग्रभाग, अक्षत, जौ, व्रीहि, तिल, घृत, पीली सरसों, पुष्प और भस्मका निक्षेपकर सद्योजातादि षडंग मन्त्रों और प्रणवमन्त्रसे पूजा करे। उस अर्घ्यपात्रकी गन्ध, पुष्पादिसे पूजाकर कवचसे अभिमन्त्रित करना चाहिये॥ ४—८॥

अस्त्रमन्त्रसे उसका अवगुण्ठन करके रक्षाहेतु धेनुमुद्रा प्रदर्शित करना चाहिये, फिर अस्त्रमन्त्रद्वारा उसका, अपना तथा गन्धादि पूजनसामग्रीका प्रोक्षण करे। उसके अनन्तर कमलकी ईशान दिशामें स्थित कमलपर ओंकारका उच्चारण करके '**गुर्वासनाय नमः**'—इस प्रकार कहकर आसन प्रदान करनेकी भावना करे और गुरुके उपदेशानुसार वहाँ गुरुमूर्तिकी परिकल्पना करे॥ ९—११॥

'**ॐ गुं गुरुभ्यो नमः**'—इस मन्त्रका उच्चारणकर गुरुका आवाहन करे तथा दक्षिणाभिमुख स्थित हुए उनका ध्यान करे। जो प्रसन्नमुख हैं, सौम्य एवं शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल हैं तथा हाथमें वर एवं अभयमुद्राको धारण किये हुए हैं, जिनके दो नेत्र हैं और जो साक्षात् शिवस्वरूप हैं। इस प्रकार गुरुका ध्यानकर क्रमशः गन्ध-पुष्पादिसे उनका पूजन करे, फिर उस पद्मके नैर्ऋत्यकोणमें स्थित पद्मपर गणेशके आसनके ऊपर गणपतिमूर्तिकी परिकल्पना करे और '**गणानां त्वा०**'—इस मन्त्रसे गणपतिका आवाहन करे, तदुपरान्त एकाग्रचित्त होकर इस प्रकार उनका ध्यान करे—वे रक्तवर्णवाले, विशालकाय, सम्पूर्ण आभूषणोंसे अलंकृत, चारों हाथोंमें क्रमशः पाश-अंकुश, अक्षमाला तथा वर-

मुद्रा धारण किये हुए हैं, वे गजानन प्रभु ध्यान करनेवाले उपासकोंके सम्पूर्ण विघ्नोंको नष्ट करनेवाले हैं। इस प्रकार गणपतिका ध्यानकर गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे उनका पूजन करे॥ १२—१७॥

केला, नारिकेल, आम्रफल, लड्डू तथा फलसहित नैवेद्य समर्पितकर नमस्कार करे। पद्मके वायव्यकोणवाले कमलपर संकल्पपूर्वक स्कन्दके लिये आसन प्रदान करे और स्कन्दकी मूर्ति बनाकर बुद्धिमान् साधक उसीमें उनका आवाहन करे॥ १८-१९॥

स्कन्दगायत्रीका उच्चारण करनेके अनन्तर कुमारका इस प्रकार ध्यान करे—जो उदीयमान सूर्यके समान तेजस्वी तथा श्रेष्ठ मयूरके आसनपर स्थित हैं। जो चार भुजाओंसे युक्त, परम कृपालु, मुकुट आदि आभूषणोंसे सुशोभित और अपने चारों हाथोंमें वर-अभय मुद्रा, शक्ति तथा कुक्कुट धारण किये हुए हैं॥ २०-२१॥

इस प्रकार ध्यान करके गन्ध, पुष्पादि पूजोपचार सामग्रीसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। इसके बाद पूर्वद्वारके दाहिनी ओर रहनेवाले अन्त:पुरके रक्षक साक्षात् नन्दीश्वरकी भलीभाँति पूजा करे। जो सोनेके पर्वतके समान, सम्पूर्ण आभरणोंसे विभूषित, बालचन्द्रयुक्त मुकुट धारण किये हुए, सौम्यमूर्ति, त्रिनेत्र, चतुर्भुज, अपनी भुजाओंमें देदीप्यमान शूल, मृगमुद्रा, टंक तथा सुवर्णका वेत्र धारण किये हुए हैं; चन्द्रबिम्बकी-सी प्रभासे युक्त तथा वानरके मुखसदृश जिनका मुख है—ऐसे नन्दीकी तथा उनके उत्तरकी ओर मरुतोंकी कन्या सुयशा, जो नन्दीश्वरकी भार्या हैं, जो अत्यन्त पतिव्रता तथा पार्वतीजीके चरणोंको [आलता आदिसे] अलंकृत करनेमें तत्पर रहती हैं, उनका भी गन्ध, पुष्पादि उपहारोंसे पूजन करे॥ २२—२६॥

तत्पश्चात् अस्त्रमन्त्र पढ़कर शंखोदकसे उस पद्मका प्रोक्षण करे। यथाक्रम आधारादि आसनका भी निर्माण करे। पृथ्वीके नीचे श्यामवर्णकी कल्याणकारिणी आधारशक्तिका ध्यान करे। उसके आगे ऊपरकी ओर मुख किये कुण्डलके आकारवाले उन अनन्त भगवान्‌का ध्यान करे—॥ २७-२८॥

जिनका शरीर धवल वर्णका है, जो पाँच फणवाले हैं और जो मानो आकाशको चाट-से रहे हैं। तत्पश्चात् उस आधारशक्तिके ऊपर चार पादवाला एक श्रेष्ठ सिंहासन स्थापित करे। उस सिंहासनके चारों पादोंके नाम आग्नेय आदि कोणोंके क्रमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य हैं। उनका वर्ण श्वेत, पीत, रक्त तथा श्याम है॥ २९-३०॥

उसके अनन्तर पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे उत्तरदिशापर्यन्त अधर्म आदिका आवाहन करे और लाजावर्तमणिके समान कान्तिमय उन अनन्तदेवके शरीरकी भावना करे। उसके अनन्तर कमलके अधश्छद, ऊर्ध्वछद, कन्द, नाल, कण्टक, दल और कर्णिकामें इस प्रकार भावनाकर क्रमश: उनका अर्चन करे॥ ३१-३२॥

दलोंमें आठों सिद्धियों तथा केसरोंमें रुद्रा, वामा आदि आठों शक्तियोंकी पूर्व आदिके क्रमसे चतुर्दिक् भावना करे। कर्णिकामें वैराग्य और बीजोंमें नौ शक्तियोंकी भावना करे। इसी प्रकार वामादि शक्तियोंकी पूर्वादि दिशाओंमें कल्पनाकर बादमें मनोन्मनीकी कल्पना करे॥ ३३-३४॥

कन्दमें शिवात्मक धर्म, नालमें शिवाश्रयभूत ज्ञान, कर्णिकाके ऊपर आग्नेयमण्डल, चन्द्रमण्डल तथा सूर्यमण्डलका ध्यान करे॥ ३५॥

आत्मा, विद्या तथा शिव—इन तीन तत्त्वोंकी कल्पना करनेके अनन्तर सभी आसनोंके ऊपर सुखकर, चित्र-विचित्र पुष्पोंसे उद्भासित तथा परव्योमावकाश नामवाली विद्याके द्वारा अत्यन्त प्रकाशमान आसनकी मूर्तिके उद्देश्यसे पुष्प अर्पित करते हुए परिकल्पना करे॥ ३६-३७॥

तत्पश्चात् आधारशक्तिसे आरम्भकर शुद्धविद्या आसन (विशुद्ध ज्ञानासन)-पर्यन्त ओंकारसहित चतुर्थी विभक्तिके अन्तमें '**नम:**' लगाकर नाममन्त्रोंका उच्चारण करके विद्वान् साधक पूजन करे, यही विधिक्रम सर्वत्र है। मुद्रावित् पुरुष अंग, मुख तथा कलाके भेदसे उन सद्योजातादि पाँचों ब्रह्मदेवताओंको पूर्ववत् उनकी मूर्तिमें क्रमश: विन्यस्त करे, फिर पुष्पांजलि हाथमें लेकर देवताका आवाहन करे॥ ३८—४०॥

'**सद्योजातं प्रपद्यामि**' से लेकर '**शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्**' यहाँतक मन्त्रका उच्चारण करते हुए

मूलाधारसे उठे हुए नादका बारह चक्रोंकी ग्रन्थियोंको भेदकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त उच्चारणकर ओंकारसे प्रत्यक्ष होनेवाले शिवका इस प्रकार ध्यान करे कि वे सदाशिव शुद्ध स्फटिकके समान वर्णवाले, निष्कल, अक्षर, सभी लोकोंके कारण, सर्वलोकमय, परम तत्त्व, बाहर तथा भीतर सर्वत्र व्याप्त होकर स्थित, अणुसे अणु तथा महान्‌से महान्, भक्तोंको बिना प्रयत्न दिखायी पड़नेवाले, ईश्वर, अव्यय, ब्रह्मा-इन्द्र-विष्णु-रुद्र आदि देवगणोंको भी दिखायी न देनेवाले, वेदोंके सारस्वरूप, विद्वानोंके द्वारा अगोचर सुने जानेवाले, आदि-मध्य-अन्तरहित और भवरोगियोंके लिये औषधस्वरूप हैं। इस प्रकार एकाग्रचित्त हो परमेश्वरका ध्यान करके पृथक्-पृथक् मुद्राओंका प्रदर्शन करते हुए उनका आवाहन, स्थापन, सन्निरोध, निरीक्षण तथा नमस्कार करे।॥ ४१—४६१/२ ॥

सकल तथा निष्कल दोनों ही स्वरूपोंवाले साक्षात् सदाशिव देवका इस प्रकार ध्यान करे कि वे शुद्ध स्फटिकके समान स्वच्छ, [सर्वदा] प्रसन्न, शीतल कान्तिसे युक्त, विद्युत्‌के वलयके सदृश, जटारूपी मुकुटसे सुशोभित, व्याघ्र-चर्मका वस्त्र धारण किये हुए, मन्द हास्यसे युक्त मुखकमलवाले, रक्तकमलकी पंखुड़ीके समान प्रतीत होते हुए करतल-पदतल तथा अधरवाले, सम्पूर्ण लक्षणोंसे सम्पन्न, सभी आभरणोंसे विभूषित, हाथोंमें दिव्य आयुध धारण किये हुए, दिव्य गन्धका लेप लगाये हुए, पाँच मुख तथा दस भुजाओंवाले और सिरपर अर्धचन्द्ररूप मणिको धारण किये हुए हैं ॥ ४७—५०१/२ ॥

इनका पूर्व दिशाका मुख सौम्य, बालसूर्यके समान कान्तिमान्, कमलके समान तीन नेत्रोंसे युक्त तथा बालचन्द्रसे सुशोभित मस्तकवाला है, इनका दक्षिण-मुख नील मेघके समान सुन्दर कान्तिवाला, टेढ़ी भ्रुकुटीयुक्त, भयानक, लाल तथा गोल तीन नेत्रोंसे युक्त, दाढ़ोंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला, कठिनाईसे देखा जानेयोग्य तथा फड़कते ओठोंसे युक्त है, इनका उत्तरमुख मूँगे समान रक्ताभ, नीलवर्णकी अलकावलीसे सुशोभित, सुन्दर विलासयुक्त, तीन नेत्रोंसे युक्त तथा अर्धचन्द्रसे शोभित मस्तकसे समन्वित है। इनका पश्चिममुख पूर्णचन्द्रके समान मनोहर, तीन नेत्रोंसे उज्ज्वल, चन्द्ररेखाको धारण करनेवाला, सौम्य एवं मन्द हास्यके कारण मनोहर है, इनका पाँचवाँ मुख स्फटिकके समान स्वच्छ, चन्द्ररेखाके द्वारा उद्भासित, अत्यन्त सौम्य तथा खिले हुए तीन नेत्रोंसे भासमान है, इनके दक्षिणका भाग शूल, परशु, वज्र, खड्ग एवं अग्निसे उद्भासित है और वामभाग पिनाक नामक धनुष, बाण, घण्टा, पाश एवं अंकुशसे देदीप्यमान है, वे जानुपर्यन्त निवृत्ति नामक कलासे, नाभिपर्यन्त प्रतिष्ठा नामक कलासे, कण्ठपर्यन्त विद्या नामक कलासे, ललाटपर्यन्त शान्ता नामक कलासे तथा उसके ऊपर शान्त्यतीता नामक परा कलासे युक्त हैं॥ ५१—५९ ॥

भगवान् शिवका अड़तीस कलाओंसे समन्वित स्वरूप पंचाध्वव्यापी तथा वैसे ही पंचकलामय विग्रहवाला है। इन पुरातन महेश्वरदेवके मन्त्रात्मक श्रीविग्रहका ईशानमन्त्र शिरोमुकुट, तत्पुरुषमन्त्र मुख, अघोरमन्त्र हृदय, वैसे ही गुह्यदेश वामदेवमन्त्र तथा चरण सद्योजात मन्त्र है। वे मातृकामय, पंच ब्रह्ममय, ओंकारमय तथा हंसन्यासमय हैं; वे पंचाक्षरमय, षडक्षरमय, छः अंगोंसे युक्त तथा छः जातियोंसे युक्त हैं॥ ६०—६३ ॥

हे प्रिये! इस प्रकार मेरा ध्यानकर मेरे वामभागमें मनोन्मनीस्वरूपा आप गौरीका '**गौरीर्मिमाय**' इस मन्त्रके आदिमें ओंकार लगाकर भक्तिपूर्वक आवाहन करके पूर्ववत् नमस्कारपर्यन्त पूजन करे। हे ईश्वरि! हे देवेशि! तब एकाग्रमन हो साधक इस प्रकार तुम्हारा ध्यान करे—खिले हुए कमलके समान कान्तियुक्त एवं विस्तीर्ण तथा दीर्घ जिनके नेत्र हैं, पूर्ण चन्द्रके समान मुख तथा केश नीले एवं घुँघराले हैं, जिनके शरीरका वर्ण नील कमलके समान है, जिनके मस्तकपर अर्धचन्द्र विराज रहा है, जिनका वक्ष:स्थल अत्यन्त उत्तुंग, घन, स्निग्ध तथा वृत्ताकार है, जिनकी कटि अत्यन्त सूक्ष्म तथा श्रोणिप्रदेश स्थूल है, जो पीत और सूक्ष्म वस्त्र धारण की हुई हैं, जो सर्वाभरणभूषित हैं तथा मस्तकपर उज्ज्वल तिलकसे युक्त हैं, जिनके केशपाश सुन्दर पुष्पसे ग्रथित

हैं, जो सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं, कुछ-कुछ लज्जासे जिनका मुख नीचेकी ओर झुका हुआ है, जो अपने दाहिने हाथमें सुवर्ण कमल धारण की हुई हैं और जो हाथमें चामरदण्ड लेकर सुखासनपर विराजमान हैं॥ ६४—७०॥

हे देवेशि! इस प्रकार स्थिरचित्त होकर मेरा तथा तुम्हारा ध्यान करके ओंकारसे प्रोक्षणादिपूर्वक शंखके जलसे स्नान कराये। '**भवे भवे नातिभवे**' इस मन्त्रसे पाद्य अर्पित करे, '**वामदेवाय नमः**'—इस मन्त्रको पढ़कर आचमन प्रदान करे, '**ज्येष्ठाय नमः**'—ऐसा कहकर शुभ वस्त्र प्रदान करे तथा '**श्रेष्ठाय नमः**'—ऐसा कहकर यज्ञोपवीत प्रदान करे॥ ७१—७३॥

इसके बाद '**रुद्राय नमः**' इस प्रकार कहकर पुनः आचमन कराये, '**कालाय नमः**'—ऐसा कहकर भलीभाँति निर्मित उत्तम गन्ध प्रदान करे। '**कलविकरणाय नमः**' ऐसा कहकर अक्षत प्रदान करे तथा '**बलविकरणाय नमः**' ऐसा उच्चारणकर पुष्प अर्पित करे। '**बलाय नमः**' ऐसा बोलकर यत्नपूर्वक धूप दे और '**बलप्रमथनाय नमः**' ऐसा कहकर उत्तम दीप प्रदान करे॥ ७४—७६॥

षडंग ब्रह्म मन्त्रों, मातृकासहित प्रणव, शिव और शक्तिसहित क्रमसे मुझे तथा आपको मुद्रा दिखाये। हे सुन्दरि! उसके बाद पहले मेरा पूजन करे तथा बादमें तुम्हारा पूजन करे। जब तुम्हारी पूजा करे, तब स्त्रीलिंग पदोंका प्रयोग करे। हे पार्वति! मात्र इतना ही भेद है और कुछ नहीं॥ ७७—७९॥

इस प्रकार भलीभाँति विधिके अनुसार ध्यान और पूजनकर बुद्धिमान् पुरुष मेरी आवरणपूजा आरम्भ करे॥ ८०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें शिवध्यानपूजनवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

आवरणपूजा-विधि-वर्णन

ईश्वर बोले—हे महादेवि! मेरी पूजाके पाँच आवरण हैं। अतः क्रमके अनुसार पाँचों आवरणोंकी पूजा करनी चाहिये। जहाँसे दोनोंकी पूजा की गयी है, उसी क्रमसे बुद्धिमान् पुरुष गणेश एवं कार्तिकेयका गन्धादिसे पूजन करे॥ १-२॥

मण्डलमें स्थित वृत्तमें चारों ओर [सद्योजातादि] पंचब्रह्म देवताओंका क्रमसे पूजन करे। ईशानभागमें, पूर्वमें, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिममें छः अंगोंकी पूजा करे। आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं मध्यमें नेत्र एवं अस्त्र आदिकी पूर्वादि क्रमसे प्रतिष्ठाकर पूजा करे। इस प्रकार मैंने प्रथम आवरण [का पूजाक्रम] कहा, अब दूसरा आवरण सुनिये—॥ ३—५॥

पूर्व दिशाके पत्रमें अनन्तकी, दक्षिण पत्रमें सूक्ष्मकी, पश्चिम दिशामें शिवोत्तमकी एवं उत्तर दिशामें एकनेत्रकी, एकरुद्रकी ईशानमें, त्रिमूर्तिकी आग्नेयमें, श्रीकण्ठकी नैर्ऋत्यमें तथा शिखण्डीशकी वायव्यमें स्थापनाकर पूजन करे॥ ६-७॥

इस प्रकार द्वितीयावरणके चक्रमें निवास करनेवालोंकी पूजा करे। पूर्व द्वारके मध्यमें वृषेशानकी पूजा करे॥ ८॥

दक्षिण द्वारपर नन्दीश्वरका, उत्तरद्वारपर महाकालका तथा भृंगीशका दक्षिणद्वारके पृष्ठभागमें पूजन करे। उसके पूर्ववाले कोष्ठकपर विनायककी गन्धादिसे पूजाकर पश्चिमोत्तर कोष्ठमें वृषभकी और दक्षिणमें स्कन्दकी पूजा करे॥ ९-१०॥

अब उत्तरद्वारके पूर्व भागमें प्रदक्षिणक्रमसे जिन आठ नामोंद्वारा पूजा करे, उसे कह रहा हूँ। वे भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम और महादेव हैं, यह तृतीय आवरण है॥ ११-१२॥

'**यो वेदादौ स्वर**'—इत्यादि मन्त्रसे पूर्वदिग्भागकी कमलकर्णिकापर महादेवका आवाहन करके उनका

पूजन करे॥ १३॥

ईश्वरकी पूर्व दिशाके पत्रपर, विश्वेशकी दक्षिणदिशाके पत्रपर, परमेशानकी उत्तरदिशाके पत्रपर तथा सर्वेशकी पश्चिमदिशाके पत्रपर पूजा करे॥ १४॥

दक्षिणके पत्रपर '**आवो राजानम्**'—इस ऋचासे रुद्रका पूजन करे। उसके अनन्तर कर्णिकाओंमें एवं दलोंमें देवताओंको आवाहितकर गन्ध, पुष्प आदिसे उनका पूजन करे। शिवको पूर्वमें, हरको दक्षिणमें, मृडको उत्तरमें तथा भवको पश्चिम पत्रमें यथाक्रम आवाहित करके पूजन करे॥ १५-१६॥

उत्तरमें विष्णुका आवाहनकर गन्ध, पुष्पादिसे '**प्रतद्विष्णु**'—इस प्रकार मन्त्र पढ़कर कर्णिकामें तथा दलोंमें पूजन करे॥ १७॥

पूर्वभागमें वासुदेवकी, दक्षिणमें अनिरुद्धकी, उत्तरमें संकर्षणकी और पश्चिम दिशामें प्रद्युम्नकी पूजा करे॥ १८॥

पश्चिमके कमलमें ब्रह्माजीका आवाहनकर पूजन करे। मन्त्रमर्मज्ञ '**हिरण्यगर्भः समवर्तत**'—इस मन्त्रसे हिरण्यगर्भका पूर्वमें, विराट्पुरुषका दक्षिणमें, पुष्करका उत्तरमें एवं कालपुरुषका पश्चिम दिशामें पूजन करे॥ १९-२०॥

पूर्वादि प्रदक्षिणविधिसे सबसे ऊपरकी पंक्तिमें उन-उन स्थानोंपर क्रमानुसार लोकपालोंकी पूजा करे॥ २१॥

ॐ रां, ॐ मां, ॐ क्षां, ॐ लां, ॐ वां, ॐ शां, ॐ सां, ॐ हां, ॐ ऊँ, ॐ श्रीं—यही दस लोकपालोंके दस बीजमन्त्र हैं, इनका उद्धारकर क्रमसे उनकी पूजा करे। नैर्ऋत्य और उत्तरदिशामें ब्रह्मदेव एवं विष्णुका तथा दक्षिणमें ईशानका षोडशोपचारसे पूजन करे और पाँचवें आवरणकी बाह्य रेखाओंमें देवेशकी पूजा करे॥ २२—२४॥

ईशानमें ऐश्वर्यमय त्रिशूल, पूर्वमें वज्र, आग्नेयकोणमें परशु, दक्षिणमें बाण, नैर्ऋत्यकोणमें खड्ग, पश्चिममें पाश, वायव्यमें अंकुश और उत्तरभागमें पिनाकका पूजन करे॥ २५-२६॥

विधिवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह यथाविधि शिवजीकी प्रसन्नताके निमित्त रौद्र स्वरूपवाले पश्चिमाभिमुख क्षेत्रपालका पूजन करे। ऐसी भावना करे कि हास्ययुक्त मुखकमलवाले सभी देवता हाथ जोड़कर सादर देवाधिदेव महादेव तथा देवीकी ओर सतत देख रहे हैं॥ २७-२८॥

इस तरह आवरणकी पूजाकर विघ्नकी शान्तिके लिये पुनः देवेशकी अर्चना करके प्रणवसे युक्त शिवका '**ॐ शिव**' इस प्रकार स्मरण करे॥ २९॥

इस प्रकार गन्धादि उपचारोंसे विधिपूर्वक शिवकी पूजा करनेके पश्चात् [शास्त्रीय] विधिसे बनाया हुआ नैवेद्य उन्हें समर्पित करे। इसके बाद पहलेकी तरह आचमनीय तथा अर्घ्य प्रदान करे, फिर जल तथा ताम्बूल निवेदनकर नीराजन आदि करके शेष पूजा सम्पन्न करे। तदनन्तर देवाधिदेव शिव तथा शिवाका ध्यानकर एक सौ आठ बार उनके मन्त्रका जप करे॥ ३०—३२॥

तत्पश्चात् उठकर हाथमें पुष्पांजलि लेकर स्थित हो जाय और महादेवका ध्यान करके '**यो देवानाम्**' से लेकर '**यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः**' पर्यन्त जप करे। हे परमेश्वरि! पुनः पुष्पांजलि देकर तीन बार प्रदक्षिणा करे॥ ३३-३४॥

इसके पश्चात् अत्यन्त भक्तिभावसे युक्त हो साष्टांग प्रणाम करे, पुनः प्रदक्षिणा करके एक बार नमस्कार करे॥ ३५॥

तदनन्तर आसनपर बैठकर शिवके आठ नामोंके द्वारा पूजनकर उनकी प्रार्थना करके ऐसा कहे—हे भगवन्! हे शम्भो! मैंने जो कुछ भी विधियुक्त या विधिहीन कर्मानुष्ठान किया है, वह सब आपकी ही आराधना हो जाय, इस प्रकार कहकर पुष्पसहित शंख-जलसे पूजा उन्हींको समर्पितकर पुनः पूज्यकी पूजा करके उनके आठ नामोंका अर्थसहित जप करे। देवेशि! आपकी भक्तिसे [प्रसन्न होकर] अब मैं उसीको कह रहा हूँ, आप सुनें॥ ३६—३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें आवरणपूजावर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

प्रणवोपासनाकी विधि

ईश्वर बोले—परमात्मा शिवजीके मुख्य नाम हैं—शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा। ये आठ नाम शिवजीके प्रतिपादक हैं, इनमें आदिसे पितामहपर्यन्त पाँच नामोंमें शान्त्यतीतादि पाँच उपाधियोंके ग्रहणक्रमसे शिवादि संज्ञाएँ ग्रहण की गयी हैं। उपाधिके निवृत्त हो जानेपर संज्ञाकी भी निवृत्ति हो जाती है; क्योंकि पद तो नित्य है किंतु पदपर रहनेवाले अनित्य हैं। पदोंकी परिवृत्ति होती रहती है, जिससे पदपर रहनेवाले हटते रहते हैं॥ १—४॥

पदोंकी परिवृत्तिके मध्यमें इसी प्रकार वैसी ही उपाधिसे युक्त इन्हीं पाँच नामोंसे दूसरी-दूसरी आत्माएँ पदस्थ होती रहती हैं॥ ५॥

इन पाँच नामोंके अतिरिक्त शेष जो तीन नाम हैं, वे जगत्‌के उपादान आदिके भेदसे तीन प्रकारकी उपाधिके कारण शिव ही हैं॥ ६॥

उन शिवमें अनादि मलके संश्लेषका पूर्वसे ही अभाव होनेसे वे अत्यन्त परिशुद्ध आत्मावाले हैं, इसीलिये उन्हें शिव नामसे जाना जाता है अथवा सभी कल्याणकारी गुणोंका घनीभूत एकमात्र आधार होनेसे ही ईश्वरको शिवतत्त्वके ज्ञाता पुरुष शिव कहते हैं॥ ७-८॥

तेईस तत्त्वोंके अतिरिक्त चौबीसवाँ तत्त्व पराप्रकृति है और इस चौबीसवें प्रकृतितत्त्वसे परे पचीसवें तत्त्वको पुरुष कहा जाता है, जिसको वेद आदिमें वाच्य-वाचकभावसे स्वर कहा जाता है, जो केवल वेदके द्वारा ज्ञेय है और जो वेदान्त अर्थात् दो उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित है। वही प्रकृतिमें लीन होकर प्रकृतिका भोग करता है। उस प्रकृतिलीन पुरुषसे जो परे हैं, वही महेश्वर जाने जाते हैं; क्योंकि पुरुष और प्रकृतिकी प्रवृत्ति उसके अधीन है अथवा अव्यय त्रिगुणतत्त्व ही माया है, माया ही प्रकृति है और जिसकी वह माया है, उसी मायीको महेश्वर जानना चाहिये, क्योंकि उन अनन्त महेश्वरको प्राप्त कर लेनेपर वे मायासे मुक्त कर देते हैं। रुत्‌को दु:ख अथवा दु:खका कारण कहा जाता है, उसे वे प्रभावसम्पन्न तथा जगत्‌के परमकारण भगवान् शंकर विनष्ट कर देते हैं, अत: उनको 'रुद्र' कहा जाता है॥ ९—१४॥

शिवतत्त्वसे लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त समस्त शरीरोंमें घटाकाशवत् शिवजी व्याप्त होकर स्थित हैं, अत: उन्हें 'विष्णु' कहा जाता है॥ १५॥

संसारको उत्पन्न करनेवाले पितृस्थानीय समस्त शरीरधारी ब्रह्मादिकोंके भी पिता होनेसे वे पितामह कहे गये हैं। जिस प्रकार निदान जाननेवाला वैद्य चिकित्सकीय उपायों तथा ओषधियोंसे रोगको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मोक्ष तथा भोग देकर स्थूल संसारसे सर्वथा मुक्त कर देनेवाले उन जगदीश्वरको समस्त तत्त्वार्थविदोंने संसारका वैद्य कहा है॥ १६—१८॥

शब्दादि पंचविषयोंके ज्ञानके लिये यद्यपि जीवको इन्द्रियाँ प्राप्त हैं तथापि तीनों कालोंमें होनेवाली स्थूल तथा सूक्ष्म क्रियाओंको मायार्णवमलसे आवृत मलिन वह जीव समग्रतया जाननेमें समर्थ नहीं होता। सिद्ध, साध्यादि सभी पदार्थोंका ज्ञान करानेवाली इन्द्रियोंसे रहित होकर भी सदाशिव जो वस्तु जिस रूपमें स्थित है, उसे उसी रूपमें बिना यत्नके ही जान लेते हैं, इसलिये उन्हें सर्वज्ञ कहा जाता है॥ १९—२१॥

वे इन सर्वज्ञत्वादि गुणोंसे नित्य युक्त हैं, सर्वात्मस्वरूप हैं, उनमें अपनी आत्मा तथा परमात्माका भेद नहीं रहता, इसलिये वे शिव स्वयं परमात्मा हैं॥ २२॥

इस प्रकार प्रणवस्वरूप अव्यय परमात्माकी स्तुतिकर उनके सम्मुख अर्घ्य तथा पाद्य प्रदान करके बादमें ईशानके मस्तकपर एकाग्रचित्त हो ॐकारमन्त्रसे देवेशका अर्चन करे और पूजाके पुष्पोंको लेकर अंजलि बाँधकर बायीं ओरकी नासिकाके मार्गसे उन्मनी नाड़ीपर्यन्त शिवको ले जाकर दाहिने नासापुटके मार्गसे देवीको ले जाकर 'मैं ही शिव हूँ'—इस प्रकारकी भावनाकर शिवजीसे तादात्म्य स्थापित करके सभी आवरण देवगणोंका हृदयमें ध्यान करे और इसके बाद क्रमसे गुरु तथा विद्याकी पूजाकर शंखरूप अर्घ्यपात्रसे अर्घ्यपाद्यादि प्रदान करके मन्त्रद्वारा हृदयमें

न्यास करे। तत्पश्चात् निर्माल्यको सदाशिवके समक्ष ही चण्डेश्वरको अर्पितकर पुन: प्राणायाम करके ऋषि आदिका उच्चारण करे॥ २३—२८॥

इस प्रकार मैंने कैलासप्रस्तर नामक मण्डलका वर्णन किया, इसी प्रक्रियासे नित्य, पक्षमें, महीने-महीने, छ: मासपर, वर्षमें या चातुर्मास्य आदि पर्वमें आस्तिकपुरुष मेरे लिंगकी पूजा अवश्य करे॥ २९-३०॥

हे महादेवि! इस विषयमें कुछ लोगोंका विशेष विचार यह भी है कि दीक्षाके दिन गुरुके साथ पूजित लिंगको हाथमें ग्रहण करे और कहे कि मैं प्राणक्षयपर्यन्त निरन्तर शिवजीकी पूजा करता रहूँगा—इस प्रकार तीन बार गुरुके निकट प्रतिज्ञाकर हे प्रिये! पूर्वोक्त विधिसे शिवजीका नित्य पूजन करे। अर्घ्योदकके द्वारा लिंगके मस्तकपर अर्घ्य समर्पित करे और प्रणवसे पूजनकर धूप, दीप [तथा अन्य उपचार] अर्पित करे। ईशान दिशामें चण्डकी पूजाकर उन्हें निर्माल्य निवेदित करे॥ ३१-३४॥

वस्त्रद्वारा छाने गये जलसे लिंग और वेदीका प्रक्षालन करे। फिर लिंगके मस्तकपर ॐकारका उच्चारणकर पुष्प अर्पित करके आधारशक्तिसे आरम्भकर शुद्ध विद्यासनपर्यन्त शक्तियोंका मनमें स्मरणकर परमेश्वरको स्नान कराये। अपने ऐश्वर्यानुसार पंचगव्यादि द्रव्योंसे अथवा सुगन्धित द्रव्यसे वासित शुद्ध जलसे 'पवमानसूक्त' द्वारा अथवा रुद्रसूक्तके द्वारा अथवा नीलसूक्तसे या त्वरित सूक्तसे अथवा सामवेदके मन्त्रोंसे अथवा सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंसे अथवा '**ॐ नमः शिवाय**'—इस मन्त्रसे या प्रणवसे शिवजीको स्नान कराये। प्रणवके द्वारा विशेषार्घ्यके जलसे शिवजीको स्नान कराये॥ ३५—३९॥

इसके पश्चात् वस्त्रके द्वारा लिंगका प्रोक्षणकर सुगन्धित पुष्पोंको लिंगके ऊपर चढ़ाये तथा पीठपर लिंगको स्थापितकर सूर्य आदिका अर्चन करे॥ ४०॥

पीठके नीचे आधारशक्ति तथा अनन्तकी पूजा करे। इसके पश्चात् उसके ऊपर सिंहासन रखकर यथाक्रम उसका भी पूजन करे॥ ४१॥

ऊर्ध्वच्छदनकी [पूजा] तथा पीठपादमें स्कन्दकी पूजा करनेके अनन्तर लिंगमें मूर्तिकी कल्पनाकर तुम्हारे साथ मेरी पूजा करे॥ ४२॥

यह सब कार्य यति मेरे ध्यानमें तत्पर हो भक्तिपूर्वक करे। हे प्रिये! पूजाकी यह अतिगुह्य विधि मैंने तुमसे कही। इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये और जिस किसीको नहीं दे देना चाहिये। मेरे भक्त तथा रागरहित यतिको ही इसे प्रदान करे॥ ४३-४४॥

गुरुभक्त, शान्तचित्त तथा मेरी प्राप्तिके लिये योगपरायण [यति]-को ही इसे प्रदान करे, किंतु मेरी आज्ञाका उल्लंघनकर जो बुद्धिहीन इसे अपात्रको देता है, वह मेरा द्रोही है और वह नरकमें जायगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे देवेशि! इस पूजाको जो मेरे भक्तोंको देता है, वह मेरा प्रिय होता है, वह इस लोकके सभी भोगोंको भोगकर अन्तमें मेरा सान्निध्य प्राप्त कर लेता है॥ ४५-४६॥

व्यासजी बोले—हे मुनिगणो! शिवजीके इस प्रकारके वचनको सुनकर अतिप्रसन्न हृदयवाली परमेश्वरी पार्वती वेदार्थयुक्त अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुतिकर तथा अपने पतिके श्रीसम्पन्न चरण-कमलोंमें प्रेमपूर्वक नमस्कारकर बहुत ही हर्षित हुईं॥ ४७-४८॥

हे ब्राह्मणो! प्रणवार्थकी प्रकाशिका यह विधि अत्यन्त गुप्त है, शिवज्ञानसे पूर्ण है और आपलोगोंके सभी दु:खोंको दूर करनेवाली है॥ ४९॥

सूतजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार कहकर महातपस्वी पराशरपुत्र व्यासदेव वेदवेत्ता महर्षियोंसे परम भक्तिपूर्वक पूजित हो [शिवजीका] स्मरणकर उस तपोवनसे कैलासपर्वतकी ओर चले गये। ऋषिगण भी प्रसन्नचित्त होकर यज्ञके अन्तमें उत्तम भक्तिभावपूर्वक चन्द्रशेखर परमेश्वर शंकरका पूजनकर यमादि योगोंमें तत्पर हो शिवध्यानपरायण हो गये॥ ५०—५२॥

हे मुनिश्रेष्ठो! इस कथाको देवीने स्कन्दसे, स्कन्दने नन्दीसे, भगवान् नन्दीने मुनिवर सनत्कुमारसे कहा था और सनत्कुमारने भगवान् वेदव्याससे कहा। इसके पश्चात् उन महातेजस्वी व्यासजीद्वारा यह पवित्र प्रसंग मैंने प्राप्त किया॥ ५३-५४॥

[हे मुनिश्रेष्ठ!] मैंने यह गुह्यातिगुह्य तथा शिवप्रिय चरित्र आपलोगोंको शिवभक्त जानकर भक्तिपूर्वक सुनाया॥ ५५॥

शिवजीको प्रिय, अत्यन्त गुप्त तथा प्रणवार्थप्रकाशक, जो यह चरित्र है, उसे आपलोगोंको भी शिवजीके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले शान्तचित्त यतियोंको ही देना चाहिये॥ ५६॥

पुराणवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी इस प्रकार कहकर तीर्थयात्राके प्रसंगसे पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे॥ ५७॥

इसके पश्चात् सूतजीसे इस गुप्त रहस्यको ग्रहणकर वे सभी ऋषि काशीमें निवासकर मुक्त हो गये और शिवजीके धामको चले गये॥ ५८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें प्रणवार्थपद्धति-वर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

सूतजीका काशीमें आगमन

व्यासजी बोले—हे मुनीश्वर! सूतजीके चले जानेपर मुनिगण बहुत ही आश्चर्यचकित हुए और आपसमें विचार करके कहने लगे कि वामदेवका मत जिसे सूतजीने कहा था और जो बहुत कठिन है, उसे तो हमलोगोंने भुला दिया॥ १॥

अब यही ज्ञात नहीं कि उन मुनिवर्यके कब दर्शन होंगे? उनका उत्तम दर्शन तो संसारसागरके दुःखसमूहसे पार करनेवाला है। हमारी इच्छा है कि महेश्वरके आराधनरूप पुण्यप्रतापसे शीघ्र ही सूतजीका दर्शन प्राप्त हो॥ २॥

इस प्रकारकी चिन्तामें निमग्न सभी मुनिगण हृदयकमलमें व्यासजीकी पूजा करके उत्सुकतापूर्वक उनके दर्शनकी प्रतीक्षा करते हुए वहीं स्थित हो गये। एक संवत्सरके बीत जानेके बाद शिवभक्त, ज्ञानी एवं पुराणार्थ-प्रकाशक महामुनि सूतजी पुनः काशीमें आये॥ ३-४॥

सूतजीको आता हुआ देखकर ऋषिगण बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वागत, आसनदान तथा अर्घ्यदान आदिसे उनकी पूजा की॥ ५॥

इसके पश्चात् सूतजीने उन श्रेष्ठ मुनिगणोंद्वारा पूजित हो प्रसन्नतापूर्वक मन्द-मन्द मुसकराकर उनका अभिनन्दन किया। तदनन्तर उन्होंने गंगाजीके परम पवित्र जलमें स्नानकर ऋषिगणों, देवगणों और पितरोंका अक्षत एवं तिलादिसे तर्पणकर तटपर आ करके शरीरको पोंछकर वस्त्र एवं उत्तरीय धारण किया और दो बार आचमन करके भस्म लेकर सद्योजातादि मन्त्रसे क्रमशः भस्मोद्धूलन किया। रुद्राक्षमाला धारणकर उन बुद्धिमान् सूतजीने अपना नित्यकर्म सम्पादन किया और विधिपूर्वक उन-उन स्थानोंपर त्रिपुण्ड्र लगाकर प्रधान गण तथा गणपतिसहित उमाकान्त भगवान् विश्वेश्वरका उत्तम भक्तिभावसे पूजन किया तथा बार-बार हाथ जोड़कर नमस्कार किया॥ ६—१०॥

इसके बाद उन्होंने विधिविधानसे कालभैरवनाथकी पूजाकर तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक पाँच बार उन्हें नमस्कार किया और पुनः प्रदक्षिणापूर्वक पृथ्वीपर साष्टांग प्रणामकर उनके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए पराभक्तिसे युक्त हो उनकी स्तुति की॥ ११-१२॥

उन्होंने एक हजार आठ बार ऐश्वर्यमयी पंचाक्षरी विद्याका जपकर महेश्वरके सम्मुख स्थित हो उनसे क्षमा-प्रार्थना की। इसके बाद वे मुक्तिमण्डपके बीचमें चण्डीश्वरकी पूजाकर वेदविद्याविशारद महर्षियोंके द्वारा निर्दिष्ट आसनपर बैठे॥ १३-१४॥

जब सभी लोग बैठ गये। तब वे मन्त्रपूर्वक शान्तिपाठ, मंगलाचरणादि करनेके उपरान्त मुनिगणोंके हृदयमें सद्भावकी वृद्धि करते हुए इस प्रकार कहने लगे—॥ १५॥

सूतजी बोले—प्रशंसनीय व्रतवाले हे महाप्राज्ञ ऋषियो! आपलोग धन्य हैं, आपलोगोंके पास मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ, उसका वृत्तान्त आपलोग सुनें॥ १६॥

आपलोगोंको प्रणवका उपदेश देकर उस समयमें मैं तीर्थयात्रा करने चला गया था, अब उसका वृत्तान्त आपलोगोंसे कह रहा हूँ॥ १७॥

सर्वप्रथम मैं यहाँसे चलकर दक्षिण समुद्रतटपर गया, वहाँपर स्नानकर विधिपूर्वक कन्याकुमारी देवी शिवाका पूजन किया। इसके पश्चात् हे ब्राह्मणो! वहाँसे सुवर्णमुखरीके तटपर गया। वहाँ कालहस्ती शैल नामक अत्यन्त अद्भुत नगर है, जहाँ सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान करके देवगणों तथा ऋषिगणोंका भक्तिके साथ विधिपूर्वक तर्पणकर समुद्र और भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए चन्द्रकान्तके समान प्रभामण्डलसे युक्त पश्चिमाभिमुख स्थित, पाँच सिरवाले, अत्यन्त अद्भुत, एक ही बारके दर्शनसे सारे पापोंको विनष्ट करनेवाले, सभी प्रकारकी सिद्धि, भुक्ति तथा मुक्ति देनेवाले त्रिगुणेश्वर कालहस्तीश्वरका पूजन किया और बादमें मैंने भक्तिभावसमन्वित हो उनके दक्षिण भागमें विराजमान पार्वती, जो जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली तथा ब्रह्मज्ञानरूपी पुष्पकी कली हैं, उनका पूजन किया और एक हजार आठ बार ऐश्वर्यशालिनी पंचाक्षरी महाविद्याका जपकर उनकी प्रदक्षिणा तथा स्तुति करके बार-बार उन्हें नमस्कार किया॥ १८—२४॥

इसके बाद मैं प्रसन्नतापूर्वक प्रतिदिन काल-हस्तीश्वरकी प्रदक्षिणा करते हुए नियमपूर्वक उसी क्षेत्रमें निवास करने लगा। हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने ज्ञानप्रसूनकी कलिका श्रीमहादेवीकी कृपासे चार महीनेका समय उस क्षेत्रमें बिताया॥ २५-२६॥

तदनन्तर एक बार जब मैं कुशा, मृगचर्म एवं उसके ऊपर वस्त्रका आसन बिछाकर उसपर बैठकर मौन धारण करके इन्द्रियोंको रोककर समाधिस्थ हो 'मैं सर्वदा परमानन्द चिद्घन परिपूर्ण शिव हूँ'—इस प्रकार ध्यान करता हुआ हृदयमें शान्तिका अनुभव कर रहा था कि इतनेमें ही नीले मेघके समान कान्तियुक्त, बिजलीके समान पीली जटा धारण किये, विशालकाय, कमण्डलु-दण्ड एवं कृष्णाजिन धारण किये, सम्पूर्ण अंगोंमें भस्म लगाये हुए, सभी प्रकारके लक्षणोंसे युक्त, ललाटपर त्रिपुण्ड्र धारण किये तथा रुद्राक्षसे अलंकृत देहवाले मेरे सद्गुरु करुणा-वरुणालय व्यासजी मेरे हृदयकमलमें प्रकट हो गये। हे मुनियो! उनके दोनों नेत्र कमलदलके समान अरुण तथा विस्तृत थे। हे आस्तिक मुनियो! इस प्रकार अपने हृदयकमलमें [परिपूर्ण शोभासे समन्वित] व्यासजीके अद्भुत प्राकट्यको देखकर मैं सर्वथा मोहित हो गया॥ २७—३२॥

इसके पश्चात् मैं नेत्र खोलकर विलाप करने लगा। उस समय पर्वतके झरनेके समान मेरे नेत्रोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। हे विप्रो! ठीक उसी समय मुझे आकाशमण्डलसे परम आश्चर्यमयी अव्यक्त वाणी सुनायी पड़ी। आपलोग उसे आदरपूर्वक सुनें॥ ३३-३४॥

हे महाभाग! हे लोमहर्षण! हे सूतपुत्र! तुम शीघ्र ही वाराणसीपुरी जाओ, पूर्व समयमें वहाँपर जिन मुनियोंको तुमने उपदेश दिया था, वे मुनिगण निराहार व्रत करते हुए अपने कल्याणकी कामनासे तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, ऐसा कहकर आकाशवाणी विरत गयी॥ ३५-३६॥

तदनन्तर मैं शीघ्र ही उठकर शिव तथा शिवाको भक्तिपूर्वक भूमिपर दण्डवत् प्रणाम करके पुनः बारह बार उनकी प्रदक्षिणाकर गुरुकी आज्ञाको जानकर शिव तथा शिवाके उस क्षेत्रसे शीघ्र निकलकर अब चालीस दिनके बाद यहाँ पहुँचा हूँ। हे मुनिश्रेष्ठो! अब आपलोग मेरे ऊपर दया कीजिये। मैं आपलोगोंसे इस समय क्या कहूँ, उसे आपलोग मुझसे कहिये॥ ३७—३९॥

सूतजीका यह वचन सुनकर ऋषियोंने प्रसन्नचित्त होकर मुनिश्रेष्ठ व्यासजीको बारंबार प्रणाम करके यह कहा— ॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें सूतोपदेश नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् कार्तिकेयसे वामदेवमुनिकी प्रणवजिज्ञासा

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महाभाग! आप हमलोगोंके श्रेष्ठ गुरु हैं, आपकी [हम सबपर बड़ी] कृपा है, इसीलिये हमलोग आपसे पूछ रहे हैं। आप-जैसे गुरु श्रद्धालु शिष्योंके प्रति सदा स्नेहभाव रखते हैं, ऐसा आपने इस समय प्रदर्शित कर दिया॥ १-२॥

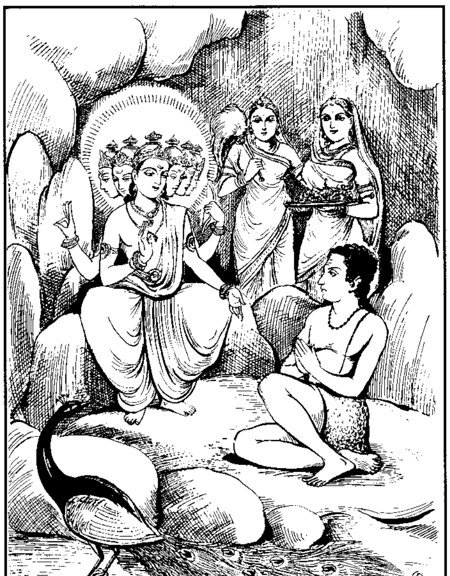
हे मुने! पहले आपने विरजाहोमके उपदेशके समय वामदेवके मतको बताया था, उसे हमलोगोंने विस्तारपूर्वक नहीं सुना है। हे कृपासिन्धो! इस समय हम सभी लोग श्रद्धा और बड़े ही आदरसे उसे सुनना चाहते हैं, अत: आप प्रेमपूर्वक उसे कहिये॥ ३-४॥

उनका यह वचन सुनकर सूतजी हर्षसे प्रफुल्लित हो गुरुसे भी श्रेष्ठ गुरु महादेवको, तीनों लोकोंकी जननी महादेवीको तथा [अपने] गुरु व्यासजीको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके मुनियोंको प्रसन्न करते हुए गम्भीर वाणीमें यह कहने लगे॥ ५-६॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप सभीका कल्याण हो, आपलोग सर्वदा सुखी रहें, आपलोग शिवभक्त, स्थिरचित्त तथा शिवभक्तिका प्रचार करनेवाले हैं। मैंने गुरुके मुखकमलसे यह अत्यन्त अद्भुत बात सुनी थी, परंतु इस गुह्य रहस्यको प्रकट हो जानेके भयसे आजतक किसीसे नहीं कहा। आपलोग निश्चितरूपसे शिवभक्त, दृढ़व्रती एवं महाभाग्यशाली हैं—ऐसा सोचकर मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ, प्रसन्नतापूर्वक सुनिये॥ ७—९॥

पूर्व समयमें रथन्तर कल्पमें महामुनि वामदेवजी गर्भसे उत्पन्न होते ही सभी शिवज्ञानवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे। वे वेद, आगम, पुराण आदि सभी शास्त्रोंके अर्थतत्त्वके ज्ञाता और देव, असुर, मनुष्य आदि सभी जीवोंके जन्म एवं कर्मके वेत्ता थे। वे सम्पूर्ण शरीरमें भस्मलेपसे युक्त, जटामण्डलसे मण्डित, निराश्रय, नि:स्पृह, निर्द्वन्द्व, अहंकारहीन, दिगम्बर, महाज्ञानी तथा दूसरे शिवके समान थे और अपने ही सदृश बड़े-बड़े शिष्यरूप मुनियोंसे सदा घिरे रहते थे। परब्रह्ममें सदा निमग्न चित्तवाले, भ्रमणनिरत तथा अपने चरणोंके स्पर्शजनित पुण्यसे इस पृथ्वीको पवित्र करते हुए वे एक समय मेरुके दक्षिणमें स्थित कुमारशिखरपर प्रसन्नतापूर्वक पहुँचे, जहाँ ज्ञानरूपी शक्तिको धारण करनेवाले, महावीर, सभी असुरोंके विनाशक [अपनी पत्नी] गजावल्लीसे सुशोभित तथा सभी देवगणोंके द्वारा नमस्कृत शिवपुत्र भगवान् कार्तिकेय विराजमान थे॥ १०—१६॥

वहाँ स्कन्दसर नामका सरोवर था, जो सागरके समान गम्भीर, शीतल एवं स्वादिष्ट जलसे परिपूर्ण, अत्यन्त स्वच्छ, अगाध तथा पर्याप्त जलवाला था। सभी आश्चर्यमय गुणोंसे युक्त वह सरोवर स्वामी कार्तिकेयके समीप विद्यमान था। महामुनि वामदेव अपने शिष्योंके साथ उसमें स्नान करके कुमारशिखरपर विराजमान, मुनिवृन्दद्वारा सेवित, उदीयमान सूर्यके समान तेजस्वी, श्रेष्ठ मयूरपर आरूढ़, चार भुजाओंवाले, मनोहर विग्रहवाले, मुकुट आदिसे विभूषित, रत्नभूत दो शक्तियोंसे उपासित, [अपने चारों हाथोंमें] शक्ति, कुक्कुट, वर तथा अभय मुद्रा धारण करनेवाले स्कन्दको देखकर परम भक्तिसे उनका पूजन करके स्तुति करने लगे॥ १७—२१॥



वामदेव बोले—प्रणवके अर्थ-स्वरूप तथा प्रणवार्थके प्रतिपादकको नमस्कार है। प्रणवाक्षररूप बीज

एवं प्रणवस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है॥ २२॥

वेदान्तके अर्थस्वरूप, वेदान्तके अर्थका विधान करनेवाले, वेदान्तके अर्थके वेत्ता एवं सर्वत्र व्याप्त आपको बार-बार प्रणाम है। सभी प्राणियोंके अन्त:करणरूपी गुहामें स्थित कार्तिकेयको नमस्कार है, गुह्य, गुह्यरूप एवं गुह्यशास्त्रवेत्ताको बार-बार नमस्कार है॥ २३-२४॥

सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, महान्से भी महान्, पर-अपरके ज्ञाता एवं परमात्मस्वरूप आपको नमस्कार है॥ २५॥

स्कन्दस्वरूप, आदित्यके समान अरुण तेजवाले, मन्दारमाला एवं कान्तिमान् मुकुट धारण करनेवाले आप स्कन्दको सर्वदा नमस्कार है॥ २६॥

शिवके शिष्य, शिवके पुत्र, कल्याण करनेवाले, शिवप्रिय एवं शिव-शिवाके आनन्दनिधिस्वरूप आपको नमस्कार है। गंगापुत्र, परम बुद्धिमान्, महान्, उमापुत्र एवं सरकण्डोंके वनमें शयन करनेवाले आप कार्तिकेयको नमस्कार है॥ २७-२८॥

षडक्षररूप शरीरवाले, छ: प्रकारके अर्थोंका प्रतिपादन करनेवाले तथा षडध्वाओंसे अतीत रूपवाले षण्मुखको बार-बार नमस्कार है। बड़े-बड़े बारह नेत्रोंवाले, उठी हुई बारह भुजाओंवाले, बारह आयुध धारण करनेवाले एवं बारह रूपोंवाले आपको नमस्कार है॥ २९-३०॥

चार भुजाओंवाले, शान्त, शक्ति-कुक्कुट, वर तथा अभयमुद्रा धारण करनेवाले, वर प्रदान करनेवाले तथा असुरोंका वध करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३१॥

[अपनी भार्या] गजावल्लीके स्तनोंपर लिप्त कुंकुमसे अंकित वक्ष:स्थलवाले, गजाननको आनन्द प्रदान करनेवाले और अपनी महिमासे स्वयं आनन्दित रहनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३२॥

जिनकी गाथाका ब्रह्मादि देवता, ऋषि एवं किन्नरगण गान करते हैं और जिनकी कीर्ति पवित्र चरित्रवाले महात्माओंके द्वारा गायी जा रही है। देवताओंके निर्मल किरीटको विभूषित करनेवाली पुष्पमालासे पूजित मनोहर चरणकमलोंवाले [भगवन्!] आपको नमस्कार है॥ ३३॥

वामदेवजीके द्वारा कहे गये इस दिव्य कार्तिकेयस्तोत्रको जो पढ़ता है अथवा सुनता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। यह [स्तोत्र] विशद बुद्धि प्रदान करनेवाला, शिवभक्तिको बढ़ानेवाला, आयु-आरोग्य-धनकी वृद्धि करनेवाला एवं सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ ३४-३५॥

हे द्विजो! वामदेवजी देवताओंके सेनापति प्रभु कार्तिकेयकी इस प्रकार स्तुति करके तीन बार प्रदक्षिणाकर पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करके पुन: साष्टांग प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके विनयावनत हो उनके समीप बैठ गये। वामदेवजीद्वारा किये गये परमार्थयुक्त स्तोत्रको सुनकर महेश्वरपुत्र प्रभु स्कन्द प्रसन्न हो गये॥ ३६—३८॥

इसके बाद कार्तिकेयजीने उनसे कहा—मैं आपकी पूजा, भक्ति तथा स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, मैं इस समय आपका कौन-सा कल्याण करूँ? हे मुने! आप योगियोंमें प्रधान, परिपूर्णकाम और नि:स्पृह हैं, इस लोकमें आप-जैसे लोगोंके लिये कुछ भी प्रार्थनीय नहीं है। फिर भी धर्मकी रक्षाके लिये तथा लोगोंपर कृपा करनेकी कामनासे आप-जैसे साधु-सन्त पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं। हे ब्रह्मन्! जो आप सुनना चाहते हैं, उसे इस समय पूछिये; मैं लोककल्याणके लिये उसे अवश्य कहूँगा॥ ३९—४२॥

स्कन्दजीका यह वचन सुनकर महामुनि वामदेवजी विनयावनत होकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ ४३॥

वामदेव बोले—हे भगवन्! आप पर तथा अवर विभूतिको देनेवाले, सर्वज्ञ, सब कुछ करनेवाले, समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले तथा सर्वसमर्थ परमेश्वर हैं। हमलोग तो जीव हैं और आप परमेश्वरके सन्निधानमें कुछ कहनेमें असमर्थ हैं, यह तो आपकी कृपा है, जो आप मुझसे ऐसा कह रहे हैं॥ ४४-४५॥

हे महाप्राज्ञ! मैं कृतकृत्य हो गया, फिर भी कणमात्र ज्ञानसे प्रेरित होकर कुछ पूछ रहा हूँ, मेरे इस दुस्साहसको क्षमा कीजिये॥ ४६॥

प्रणव श्रेष्ठ [मन्त्र] है, यह साक्षात् परमेश्वरका वाचक है एवं जीवोंको बन्धनसे मुक्त करनेवाले पशुपति देव इसके वाच्य हैं। प्रणवरूप वाचकसे भलीभाँति आहूत होनेपर वे [पशुपति] क्षणमात्रमें जीवोंको मुक्त कर देते हैं, इसलिये प्रणवकी शिवजीके प्रति वाचकता

सिद्ध हो जाती है॥ ४७-४८॥

सनातन श्रुतिमें भी कहा गया है **'ओमितीदं सर्वम्, ओमिति ब्रह्म सर्वम्'** यह सब कुछ ॐकार है और ॐकार ही ब्रह्म है। हे देवसेनापते! देवताओंके स्वामी आपको नमस्कार है, यतियोंके पतिको नमस्कार है, परिपूर्णस्वरूप आपको नमस्कार है॥ ४९-५०॥

ऐसा होनेपर इस संसारमें शिवजीके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है। महेश्वर शिव ही सभी रूप धारण करनेवाले, व्यापक और सबके स्वामी हैं॥ ५१॥

मैंने समष्टि-व्यष्टिभावसे प्रणवका अर्थ सुना है। हे महासेन! मुझे आपके समान गुरु नहीं प्राप्त हुआ है। इसलिये मेरे ऊपर कृपा करके उपदेशविधिसे तथा सदाचारक्रमके साथ उस अर्थको बतानेकी कृपा करें। आप सभी जन्तुओंके एकमात्र स्वामी एवं भव-बन्धनको काटनेवाले गुरु हैं, अतः हे गुरो! मैं आपकी कृपासे उस अर्थको सुनना चाहता हूँ॥ ५२—५४॥

जब मुनिने कार्तिकेयसे इस प्रकार पूछा, तब उन्होंने अड़तीस उत्तम कलाओंसे समन्वित प्रणव-शरीरवाले, श्रेष्ठ मुनियोंसे घिरे हुए तथा पार्श्वभागमें निरन्तर विराजमान पार्वतीसहित शिवजीको प्रणाम करके वेदोंमें भी छिपे हुए श्रेयको मुनिसे कहना आरम्भ किया॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें वामदेवब्रह्मवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

प्रणवरूप शिवतत्त्वका वर्णन तथा संन्यासांगभूत नान्दीश्राद्ध-विधि

श्रीब्रह्मण्य [स्कन्दजी] बोले—हे महाभाग! हे मुनिश्रेष्ठ! हे वामदेवजी! आप धन्य हैं, आप शिवजीके परमभक्त हैं तथा शिवज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं॥ १॥

सभी लोकोंमें कहीं भी आप [अन्तर्यामी]-को कुछ भी अविदित नहीं है, फिर भी मैं लोकपर कृपा करनेवाले आपसे कह रहा हूँ॥ २॥

इस लोकमें सभी जीव विविध शास्त्रोंके व्यामोहमें पड़े हुए हैं और परमेश्वरकी अति विचित्र मायासे ठगे गये हैं। वे महेश्वर सगुण, निर्गुण, परब्रह्मरूप तथा तीनों देवोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। प्रणवके अर्थ साक्षात् शिव ही हैं। श्रुतियों, स्मृति-शास्त्रों, पुराणों तथा आगमोंमें प्रधानतया उन्हींको प्रणवका वाच्यार्थ बताया गया है। जहाँसे मनसहित वाणी आदि सभी इन्द्रियाँ उस परमेश्वरको न पाकर लौट आती हैं, जिसके आनन्दका अनुभव करनेवाला पुरुष किसीसे डरता नहीं, ब्रह्मा-विष्णु तथा इन्द्रसहित यह सम्पूर्ण जगत् भूतों और इन्द्रियसमुदायके साथ सर्वप्रथम जिससे प्रकट होता है, जो परमात्मा स्वयं किसीसे और कभी भी उत्पन्न नहीं होता, जिसके निकट विद्युत्, सूर्य और चन्द्रमाका प्रकाश काम नहीं देता तथा जिसके ही प्रकाशसे यह सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे प्रकाशित होता है, वह परब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं ही सर्वेश्वर 'शिव' नाम धारण करता है। जो सर्वव्यापी, प्रकाशात्मा, प्रकाशरूप एवं चिन्मय शम्भु मुमुक्षुओंके द्वारा हृदयाकाशमें ध्यान किये जानेयोग्य हैं, जिन परम पुरुषकी परा शक्ति शिवा भावगम्य, मनोहर, निर्गुण, अपने गुणोंसे निगूढ़ तथा निष्कल हैं, हे मुने! उनके स्थूल, सूक्ष्म तथा उससे भी परे—इन तीन प्रकारके रूपोंका ध्यान मोक्ष चाहनेवाले योगियोंको क्रमसे नित्य करना चाहिये॥ ३—१३॥

वे सम्पूर्ण देवोंके आदिदेव, सनातन एवं निष्कल हैं, जो ज्ञान, क्रिया, स्वभाव एवं परमात्मा कहे जाते हैं; उन देवाधिदेवकी साक्षात् मूर्ति ही साक्षात् सदाशिव हैं। वे देव पंचमन्त्रात्मक शरीरवाले, पंचकलात्मक विग्रहवाले, शुद्ध स्फटिकके सदृश, प्रसन्न, शीतल कान्तिवाले, पाँच मुखवाले, दस भुजाओंसे युक्त तथा पन्द्रह नेत्रोंवाले हैं॥ १४—१६॥

ईशानमन्त्र उनका मुकुटमण्डित शिरोभाग है, तत्पुरुषमन्त्र उन पुरातन पुरुषका मुख है, अघोरमन्त्र हृदय है, वामदेवमन्त्र गुह्यप्रदेश है तथा सद्योजातमन्त्र उनका पाददेश है। वे ही साक्षात् साकार तथा निराकार परमात्मा हैं। सर्वज्ञत्व आदि छः शक्तियाँ ही उनके शरीरके छः अंग हैं, वे शब्दादि शक्तियोंसे स्फुरित हृदयकमलमें विराजमान हैं और वामभागमें अपनी शक्ति मनोन्मनीसे विभूषित हैं॥ १७—१९॥

अब मन्त्रादि छः प्रकारके अर्थोंको प्रकट करनेके लिये अर्थोपन्यासमार्गसे समष्टि-व्यष्टिभावरूप प्रणवात्मक तत्त्वको कहूँगा॥ २०॥

मैं पहले उपदेश-क्रम कहता हूँ, इसे सुनिये। हे मुने! इस मनुष्यलोकमें चार वर्ण प्रसिद्ध हैं। इनमें तीन वर्णोंके लिये ही श्रुतियोंमें सदाचारका विधान है। वेदसे बहिष्कृत शूद्रोंको शुश्रूषामात्रका अधिकार है॥ २१-२२॥

अपने-अपने आश्रमोचित कर्तव्योंमें निरत चित्तवाले तीनों वर्णोंको श्रुति एवं स्मृतिमें कहे गये धर्मका ही अनुष्ठान करना चाहिये, द्विज किसी अन्य धर्मका कभी भी अनुष्ठान नहीं करे। श्रुति तथा स्मृतिमें कहे गये कर्मको करनेवाला सिद्धि प्राप्त करेगा—वेदपथप्रदर्शक [भगवान्] परमेश्वरने ऐसा कहा है॥ २३-२४॥

वर्णाश्रमोचित आचारोंके पुण्यकर्मोंसे परमेश्वरकी पूजा करके बहुत-से श्रेष्ठ मुनि शिव-सायुज्यको प्राप्त हुए हैं। मुनिगण ब्रह्मचर्यसे, देवतागण यज्ञकर्मानुष्ठानसे तथा पितरगण [धर्मपूर्वक] सन्तानोत्पादनसे तृप्त होते हैं—ऐसा वेदने कहा है॥ २५-२६॥

इस प्रकार तीनों ऋणोंसे मुक्ति पाकर पुरुषको वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट हो शीत-उष्ण, सुख-दुःखको सहते हुए जितेन्द्रिय तथा तपस्वी होकर एवं आहारपर विजय प्राप्तकर यम आदि योगोंका अभ्यास करना चाहिये, जिससे बुद्धि अत्यधिक दृढ़ तथा निश्चल हो जाय॥ २७-२८॥

इस प्रकार क्रमसे शुद्ध मनवाला होकर सभी कर्मोंका विन्यास करे; सभी कर्मोंका त्यागकर ज्ञानमयी पूजामें तत्पर हो जाय॥ २९॥

वह ज्ञानमयी पूजा साक्षात् शिवजीसे ऐक्यके द्वारा जीवन्मुक्ति देनेवाली है; इसे जितेन्द्रियोंके लिये सर्वोत्तम एवं निर्विकार जानना चाहिये॥ ३०॥

हे महाप्राज्ञ! अब मैं आपके स्नेह एवं लोकके ऊपर अनुग्रहकी कामनासे उस ज्ञानपूजाके प्रकारको कह रहा हूँ; सावधानीपूर्वक सुनिये॥ ३१॥

[ज्ञानपूजाकी इच्छा रखनेवाला] वह यति सभी शास्त्रोंके अर्थतत्त्वको जाननेवाले, वेदान्तज्ञानमें पारंगत तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ आचार्यके समीप जाय। उनके पास जाकर वह बुद्धिमान् तथा विद्वान् [मुमुक्षु] यथाविधि दण्डवत् प्रणाम आदिसे यत्नपूर्वक उन्हें सन्तुष्ट करे॥ ३२-३३॥

जो गुरु हैं, वे ही शिव कहे गये हैं और जो शिव हैं, वे ही गुरु कहे गये हैं, ऐसा मनमें निश्चय करके उनसे अपना विचार प्रकट करना चाहिये॥ ३४॥

इसके पश्चात् उस विद्वान्‌को चाहिये कि गुरुसे आज्ञा प्राप्तकर बारह दिनपर्यन्त दूध पीकर व्रत करे तथा शुक्लपक्षकी चतुर्थी अथवा दशमीको विधानपूर्वक प्रातःकाल स्नान करके विशुद्ध होकर नित्यक्रिया सम्पन्न करे और गुरुको बुलाकर विधिपूर्वक नान्दीश्राद्ध करे॥ ३५-३६॥

उस श्राद्धमें सत्य-वसुसंज्ञक विश्वेदेव कहे गये हैं और उस देवश्राद्धमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश ये तीन [देवता] कहे गये हैं। ऋषिश्राद्धमें देवता, ऋषि तथा मनुष्यकी सन्तानें [पितृगण] कहे गये हैं। देवश्राद्धमें वसु, रुद्र एवं आदित्य [पितृगण] कहे गये हैं। मनुष्यश्राद्धमें सनक आदि चारों मुनीश्वर कहे गये हैं और भूतश्राद्धमें पंच महाभूत तथा उसके बाद चक्षु आदि इन्द्रियसमूह और चार प्रकारके भूतसमूह कहे गये हैं। पितृश्राद्धमें पिता, पितामह एवं प्रपितामह—ये तीन कहे गये हैं। मातृश्राद्धमें माता, पितामही एवं प्रपितामही कही गयी हैं। आत्मश्राद्धमें ये चारों—स्वयं श्राद्धकर्ता, अपने पिता, पितामह एवं प्रपितामह सपत्नीक कहे गये हैं। मातामहके श्राद्धमें मातामह आदि ये तीन (मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह) ग्रहण किये जाते हैं॥ ३७—४२॥

प्रत्येक श्राद्धमें दो ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करना चाहिये; आमन्त्रित ब्राह्मणोंको बुलाकर यत्नपूर्वक आचमन कराकर उनके दोनों पैर धो करके [कहे—] 'समस्त सम्पत्तिकी प्राप्तिके हेतुभूत, आनेवाली विपत्तियोंका विनाश करनेके लिये धूमकेतुसदृश और अपार संसाररूपी समुद्रको पार करने हेतु सेतुस्वरूप ब्राह्मणचरणरज मुझे पवित्र करे। आपदारूपी घने अन्धकारको नष्ट करनेके लिये हजार सूर्योंके समान, वांछित फलको देनेहेतु कामधेनुसदृश और समस्त तीर्थोंके जलसदृश पवित्र मूर्तिवाले ब्राह्मणोंकी चरणरज मुझे पवित्र करे।' तदुपरान्त पृथ्वीपर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके पूर्वाभिमुख बैठकर शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करे; पुन: हाथमें पवित्री धारणकर शुद्ध हो और यज्ञोपवीत धारणकर आसनपर दृढ़तापूर्वक बैठ करके तीन प्राणायाम करे। उसके बाद तिथि आदिका स्मरणकर '**मत्संन्यासाङ्गभूतं विश्वेदेवादि-मातामहान्तम्, अष्टविधश्राद्धं पार्वणेन विधानेन युष्मदाज्ञापुरस्सरं करिष्यामि**'—इस प्रकारका संकल्पकर कुशाको उत्तरकी ओर त्याग दे॥ ४३—४९॥

तत्पश्चात् जलसे आचमन करके उठकर वरणक्रिया आरम्भ करे। हाथमें पवित्री धारणकर दो ब्राह्मणोंका हाथ स्पर्शकर उनसे इस प्रकार कहे '**विश्वेदेवार्थं भवन्तौ वृणे भवद्भ्यां क्षणः प्रसादनीयः।**' यही विधि सर्वत्र है। इस प्रकार वरणक्रम समाप्तकर मण्डलोंकी रचना करे। उत्तरसे लेकर दस मण्डल बनाकर, अक्षतोंसे पूजन करके उनमें क्रमसे ब्राह्मणोंको बैठाकर उनके पैरोंपर अक्षत आदि चढ़ाये और विश्वेदेवा आदि नामोंसे सम्बोधनपूर्वक यह कहे कि आप लोगोंके लिये कुश, पुष्प, अक्षत तथा जलसहित यह पाद्य[1] है। पाद्य देनेके बाद स्वयं भी पैर धोकर उत्तराभिमुख हो आचमनकर उन दो ब्राह्मणोंको आसनोंपर बैठाकर 'विश्वेदेवस्वरूप ब्राह्मणके लिये यह आसन है'—ऐसा कहकर उन्हें कुशका आसन प्रदान करके स्वयं हाथमें कुश लेकर बैठे॥ ५०—५६॥

'**अस्मिन् नान्दीश्राद्धे विश्वेदेवार्थमिदं पाद्यं भवद्भ्यां क्षणः क्रियताम्, भवन्तौ प्राप्नुताम्**' इस वाक्यको कहे। इसके पश्चात् ब्राह्मण कहें कि '**पाद्यं प्राप्नुयाव, दर्भं प्राप्नुयाव**' इस प्रकार स्वीकारात्मक वाक्य कहना चाहिये॥ ५७-५८॥

इसके बाद उन श्रेष्ठ द्विजोंसे यह प्रार्थना करे—'मेरा कार्य पूर्ण हो, मेरे संकल्पकी सिद्धि हो और आप लोग मेरे ऊपर कृपा करें'॥ ५९॥

इसके पश्चात् केलेके धुले हुए शुद्ध पत्तोंपर अन्न आदि भोज्य पदार्थोंको परोसकर अलग-अलग कुशा बिछाकर उसपर जल छिड़कनेके बाद प्रत्येक पात्रपर अपने दोनों हाथ रखकर आदरपूर्वक '**पृथिवी ते पात्रम्**'[2] आदि मन्त्र पढ़ना चाहिये और देवादिकोंमें चतुर्थी विभक्तिका उच्चारणकर अक्षतके साथ जल लेकर '**विश्वेभ्यः एतदन्नं स्वाहा इदं न मम**'[3]—ऐसा पढ़कर अक्षतसहित जल भोजनपात्रपर संकल्पित करे; सभी जगह (माता आदिके लिये) यही विधि है॥ ६०—६३॥

इसके बाद 'जिनके चरणकमलके स्मरणसे तथा जिनके नाम-जपसे न्यून कर्म भी पूर्ण हो जाता है, उन साम्ब शिवको मैं प्रणाम करता हूँ'—इस प्रकार प्रार्थनाकर फिर बोले कि मैंने जो यह नान्दीमुख श्राद्ध किया है, वह यथायोग्य है, ऐसा आप कहें; तब ब्राह्मण कहें कि 'ऐसा ही हो।' तत्पश्चात् उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके अपने हाथमें स्थित जलको पृथ्वीपर छोड़कर दण्डवत्

१-प्रथम मण्डलमें दो विश्वेदेवोंके लिये, फिर आठ मण्डलोंमें क्रमशः देवादि आठ श्राद्धोंके अधिकारियोंके लिये तथा दसवें मण्डलमें सपत्नीक मातामह आदिके लिये पाद्य अर्पण करने चाहिये। अर्पण-वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—

ॐ सत्यवसुसंज्ञकाः विश्वेदेवाः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः॥ १॥

ॐ ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः॥ २॥

ॐ देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयो नान्दीमुखाः भूर्भुवः स्वः इदं वः पाद्यं पादावनेजनं पादप्रक्षालनं वृद्धिः॥ ३॥

इसी प्रकार अन्य श्राद्धोंके लिये वाक्यकी ऊहा कर लेनी चाहिये।

२-'**पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा**'—यह पूरा मन्त्र है।

३-वाक्यका प्रयोग इस प्रकार है—'**ॐ सत्यवसुसंज्ञकेभ्यो विश्वेभ्यो देवेभ्यो नान्दीमुखेभ्यः स्वाहा न मम**' इत्यादि।

प्रणाम करके फिर उठकर उदार बुद्धिवाला वह यजमान अत्यन्त प्रेमपूर्वक ब्राह्मणोंसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि यह अन्न अमृत हो। इसके बाद 'श्रीरुद्रसूक्त', चमकाध्याय तथा पुरुषसूक्तका यथाविधि पाठ करे और सदाशिवका ध्यानकर (ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव एवं सद्योजात) पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे॥ ६४—६८॥

भोजनके अन्तमें रुद्रसूक्तका पाठ कराकर ब्राह्मणोंसे क्षमा-प्रार्थना करे और '**अमृतापिधानमसि स्वाहा**' मन्त्रसे उत्तरापोशनार्थ जल प्रदान करे। इसके बाद पैर धोकर आचमन करके पिण्डस्थानपर जाय और पूर्वाभिमुख बैठकर मौन धारण करके तीन बार प्राणायाम करे॥ ६९-७०॥

'अब मैं नान्दीमुखश्राद्धका अंगभूत पिण्डदान करूँगा'—ऐसा संकल्पकर दक्षिणसे आरम्भकर उत्तरतक नौ रेखाएँ बनाकर उनके आगे पूर्वकी ओर अग्रभागवाले बारह कुशोंको क्रमशः दक्षिणकी ओरसे देवता आदिके पाँच स्थानोंमें बिछाकर तथा क्रमसे पितृवर्गके तीन स्थानोंमें मौनभावसे अक्षत और जल छोड़े। अन्य मातृपक्षके स्थानोंमें भी जलसे मार्जन कर देना चाहिये। इसके बाद '**अत्र पितरो मादयध्वम्**'—यह कहकर अक्षतसहित जलसे पूजन करके इसी क्रमसे देवगणोंके पाँचों स्थानोंपर भी अक्षत, जल समर्पित करना चाहिये॥ ७१—७४॥

तदनन्तर उन-उन देवताओंके चतुर्थ्यन्त नामोंका उच्चारण करके पाँचों स्थानोंमें प्रत्येक स्थानपर तीन-तीन पिण्ड प्रदान करे। (इसी तरह शेष स्थानोंपर भी पिण्ड प्रदान करे।) अपने गृह्यसूत्रमें बताये गये विधानसे पृथक्-पृथक् पिण्डदान करे और पितरोंके साद्गुण्यके लिये इसे जल-अक्षतसहित दे॥ ७५-७६॥

इसके पश्चात् '**यत्पादपद्मस्मरणात्**'* इस श्लोकको पढ़ते हुए हृदयकमलके मध्यमें सदाशिवका ध्यान करे। ब्राह्मणोंको नमस्कारकर उन्हें अपने सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा प्रदान करके क्षमाप्रार्थना करे और उन्हें विदा करके क्रमसे पिण्डोंको उठाकर गौको खिला दे अथवा जलमें डाल दे। इसके अनन्तर पुण्याहवाचन [करा] कर बन्धुजनोंके साथ भोजन करे॥ ७७—७९॥

तत्पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर वह बुद्धिमान् नित्यक्रिया सम्पन्नकर उपवास करते हुए कक्ष (काँख) तथा उपस्थके बालोंको छोड़कर क्षौरकर्म कराये। कर्म करनेतक दाढ़ी, केश, मूँछ तथा नाखूनको न कटवाये; बादमें विधिपूर्वक समस्त केशोंका वपन कराकर स्नानकर धौतवस्त्र धारण कर ले और शुद्ध होकर मौन भावसे दो बार आचमन करके विधिपूर्वक भस्म धारण करे। पुण्याहवाचन करके स्वयंका प्रोक्षणकर उससे स्वभावतः शुद्धदेहवाला होकर होमसामग्री तथा आचार्य-दक्षिणाके निमित्तभूत द्रव्योंको छोड़कर सम्पूर्ण द्रव्योंको महेश्वर, ब्राह्मणों, विशेषकर शिवभक्तों तथा गुरुस्वरूप शिवको समर्पित करके वस्त्र आदि तथा दक्षिणा प्रदान करे, तदुपरान्त पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करके धुले हुए डोरा, कौपीन वस्त्र, दण्ड आदि धारण करके होमद्रव्य तथा समिधा आदिको क्रमसे लेकर समुद्रतटपर, नदीके किनारे, पर्वतपर, शिवालयमें, वनमें, गोशालामें—कहीं भी उत्तम स्थानका विचार करके वहाँ स्थित होकर आचमन करनेके अनन्तर सर्वप्रथम मनमें मालाकी परिकल्पनाकर ओंकारसहित ब्रह्ममन्त्र '**ॐ नमो ब्रह्मणे**'—इस मन्त्रको तीन बार जपकर '**अग्निमीळे पुरोहितम्**' इस मन्त्रका उच्चारण करे॥ ८०—८८॥

इसके बाद '**अथ महाव्रतम्**', '**अग्निर्वै देवानाम्**', '**एतस्य समाम्नायम्**', '**ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ**', '**अग्न आयाहि वीतये**' तथा '**शं नो देवीरभीष्टये**' इत्यादिका पाठ करे। तत्पश्चात् '**म य र स त ज भ न ल ग**' '**पञ्च संवत्सरमयम्**', '**समाम्नायः समाम्नातः**', '**अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि**', '**वृद्धिरादैच्**', '**अथातो धर्मजिज्ञासा**', '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**'—इन सबका पाठ करे। तदनन्तर यथासम्भव वेद, पुराण आदिका स्वाध्याय करे॥ ८९—९२॥

ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, सोम, प्रजापति, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा, परमात्मा—इनके आदिमें '**ॐ**' तथा अन्तमें चतुर्थ्यन्त विभक्ति लगाकर अन्तमें नमः '**ॐ इन्द्राय नमः**' इत्यादि क्रमसे पद लगाकर जप करे। तदुपरान्त एक मुट्ठी सत्तू लेकर प्रणवका उच्चारण करके उसे खाये और दो बार आचमन करके नाभिका स्पर्श करे। इसके पश्चात् पूर्वमें

*यत्पादपद्मस्मरणाद्यस्य नामजपादपि। न्यूनं कर्म भवेत्पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम्॥ (श्रीशिवमहापुराण, कैलास० १२।६४)

प्रणव तथा अन्तमें स्वाहापदसे युक्त बताये जा रहे आत्मा आदि शब्दोंके [चतुर्थ्यन्त] रूपोंका पुन: जप करे। '**आत्मने स्वाहा**', '**अन्तरात्मने स्वाहा**', '**ज्ञानात्मने स्वाहा**', '**परमात्मने स्वाहा**', '**प्रजापतये स्वाहा**' [इन] मन्त्रोंका जपकर अलग-अलग दूध, दही एवं घीका तीन बार प्रणव-मन्त्र पढ़कर प्राशनकर दो बार आचमन करे और पूर्वदिशाकी ओर मुख करके एकाग्रचित्त हो स्थिरतापूर्वक आसनपर बैठकर यथोक्त विधिसे तीन प्राणायाम करे॥ ९३—९८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासविधिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

संन्यासकी विधि

सुब्रह्मण्य बोले—इसके पश्चात् मध्याह्नकालमें स्नान करके समाहितचित्त होकर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि पूजन-सामग्रियोंको एकत्रित करे॥ १॥

नैर्ऋत्यकोणमें देवपूजित विघ्नेश्वर देवकी पूजा करे। पहले '**गणानां त्वा०**'—इस मन्त्रद्वारा विधि-विधानसे उनका आवाहन करे। रक्तवर्णवाले, विशालकाय, सभी आभरणोंसे विभूषित और अपने करकमलोंमें पाश-अंकुश-अक्षमाला तथा अभीष्ट (वर) मुद्रा धारण किये हुए शम्भुपुत्र गजाननका इस प्रकार आवाहन तथा ध्यान करके खीर, मालपूआ, नारियल, गुड़ आदिसे पूजन करके उत्तम नैवेद्य अर्पण करे और इसके बाद ताम्बूल दे। इस प्रकार उन्हें प्रसन्न करके नमस्कारकर निर्विघ्नताहेतु प्रार्थना करे॥ २—५॥

तत्पश्चात् अपने गृह्यसूत्रके अनुसार औपासन अग्निमें आज्यभागान्त* हवन करे और इसके बाद अग्निसम्बन्धी मखतन्त्र आरम्भ करे। '**भूः स्वाहा**' आदि तीनों व्याहृतियोंसे पूर्णाहुति प्रदानकर हवनकी क्रिया सम्पन्न करके आलस्यरहित होकर अपराह्णकालतक गायत्रीमन्त्रका जप करे॥ ६-७॥

इसके पश्चात् स्नान करके सायंकालकी सन्ध्या तथा सायंकालिक होम करनेके पश्चात् मौन हो गुरुसे आज्ञा माँगे॥ ८॥

तदुपरान्त चरुको पकाकर अग्निमें समिधा अन्न तथा घीके द्वारा रुद्रसूक्त तथा सद्योजात आदि पाँच ब्रह्ममन्त्रोंसे हवन करे तथा अग्निमें अम्बासहित महादेवकी भावना करे। पुन: गौरीका स्मरण करते हुए '**गौरीर्मिमाय**' मन्त्रसे हवन करनेके अनन्तर '**अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा**'—इस मन्त्रसे एक बार फिर आहुति प्रदान करे। इस प्रकार निर्दिष्ट विधिसे हवनके पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष अग्निके उत्तरकी ओर कुशा, मृगचर्म तथा वस्त्रसे समन्वित आसनपर बैठकर मौन हो स्थिर चित्तसे ब्राह्ममुहूर्तपर्यन्त गायत्रीका जप करे॥ ९—१२॥

तदनन्तर स्नान करके अथवा यदि [जलसे स्नान करनेमें] असमर्थ हो तो विधिपूर्वक भस्मस्नान करके उसी अग्निमें चरु पकाकर घृतसे सिक्त करे और उसे निकालकर उत्तरदिशाकी ओर कुशापर रखे और चरुमें घी मिलाकर शिवजीके चरणकमलमें ध्यान लगाकर व्याहृति, रुद्रसूक्त तथा ईशानादि पंच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे। इसके बाद प्रजापति, इन्द्र, विश्वेदेव तथा ब्रह्माके चतुर्थ्यन्त नामोंके आगे प्रणव तथा अन्तमें स्वाहा लगाकर जप करके पुन: पुण्याहवाचन करनेके अनन्तर '**अग्नये स्वाहा**' कहकर अग्निके मुखमें आहुति देनेतकका कार्य करे। तदनन्तर '**प्राणाय स्वाहा**' आदि पाँच मन्त्रोंसे घृतयुक्त चरुसे आहुतियाँ देकर '**अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा**'—ऐसा कहकर हवन करे। इसके बाद फिरसे रुद्रसूक्त एवं ईशानादि पंच ब्रह्ममन्त्रोंका

* कुशकण्डिकाके अनन्तर अग्निमें जो चार आहुतियाँ दी जाती हैं, उनमें प्रथम दोको 'आघार' और अन्तिम दोको 'आज्यभाग' कहते हैं। प्रजापति और इन्द्रके उद्देश्यसे 'आघार' तथा अग्नि और सोमके उद्देश्यसे 'आज्यभाग' दिया जाता है।

जप करे॥ १३—१८॥

इसके बाद महेशादि (ईशानादि) चतुर्व्यूहके मन्त्रोंका जपकर बुद्धिमान् पुरुष अपनी शाखाके अनुसार उन-उन देवगणोंको उद्देश्यकर सांग होम करे। इस तरह जो अग्निमुखादि कर्मतन्त्र प्रवृत्त किया गया है, उसका निर्वाह करे॥ १९-२०॥

तत्पश्चात् छब्बीस तत्त्वोंसे बने हुए इस शरीरमें अवस्थित तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये विरजा होम करे। मनमें भावना करे कि 'मेरे शरीरमें विराजमान ये सभी तत्त्व शुद्ध हो जायँ; हे मुने! उस प्रसंगमें आत्मशुद्धिके निमित्त आरुणकेतुक मन्त्रोंसे पृथ्वीतत्त्वसे लेकर पुरुषतत्त्वपर्यन्त क्रमशः सभी तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये मौन धारणकर शिवके चरणकमलका स्मरण करते हुए घृत तथा चरुसे हवन करे॥ २१—२३॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पृथिव्यादिपंचक कहलाते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये शब्दादि पंचक हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ—ये वागादिपंचक हैं। श्रोत्र, नेत्र, नासिका, रसना और त्वक्—ये श्रोत्रादिपंचक हैं। शिर, पार्श्व, पृष्ठ और उदर—ये चार हैं। इन्हींमें जंघाको भी जोड़ ले। फिर त्वक् आदि सात धातुएँ हैं। प्राण, अपान आदि पाँच वायुओंको प्राणादिपंचक कहा गया है। अन्नमयादि पाँचों कोशोंको कोशपंचक कहते हैं। (उनके नाम इस प्रकार हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय।) इनके सिवा मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार, ख्याति, संकल्प, गुण, प्रकृति और पुरुष हैं। भोक्तापनको प्राप्त हुए पुरुषके लिये भोग-कालमें जो पाँच अन्तरंग साधन हैं, उन्हें तत्त्वपंचक कहा गया है। उनके नाम ये हैं—नियति, काल, राग, विद्या और कला। ये पाँचों मायासे उत्पन्न हैं॥ २४—२८॥

श्रुतिमें प्रकृतिको ही माया कहा गया है तथा उसी मायासे इन तत्त्वोंकी उत्पत्ति भी श्रुतिमें कही गयी है; इसमें संशय नहीं है॥ २९॥

कालका स्वभाव ही नियति है—ऐसा श्रुतिने कहा है। इन्हीं [नियति आदि] पाँचोंके समूहको पंचकंचुक भी कहा जाता है। इन पाँच तत्त्वोंको बिना जाने विद्वान् भी मूर्ख ही होता है। प्रकृतिके नीचे नियति और ऊपर पुरुष है॥ ३०-३१॥

काकाक्षिगोलकन्यायका आश्रय लेकर पुरुष नियति एवं प्रकृति दोनोंके पार्श्वमें रहता है, इसीको विद्यातत्त्व कहा गया है। शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव यही पंचक या तत्त्वसमुदाय [समष्टिरूपमें] शिवतत्त्व कहा गया है। हे ब्रह्मन्! **'प्रज्ञानं ब्रह्म'** इस वाक्यसे यह शिवतत्त्व ही जाना जाता है॥ ३२-३३॥

हे मुनीश्वर! पृथ्वीसे लेकर शिवपर्यन्त जो तत्त्वसमूह हैं, उसमेंसे प्रत्येकको क्रमशः अपने-अपने कारणमें लीन करते हुए उसकी शुद्धि करना चाहिये। १. पृथिव्यादिपंचक, २. शब्दादिपंचक, ३. वागादिपंचक, ४.श्रोत्रादिपंचक, ५. शिरादिपंचक, ६. त्वगादिधातुसप्तक, ७.प्राणादिपंचक, ८. अन्नमयादिकोश-पंचक, ९. मन आदि पुरुषान्त तत्त्व, १०. नियत्यादि तत्त्वपंचक (अथवा पंचकंचुक) और ११. शिवतत्त्व-पंचक—ये ग्यारह वर्ग हैं; इन एकादश-वर्गसम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें **'परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम'** इस वाक्यका उच्चारण करे*। इसके द्वारा अपने उद्देश्यका त्याग बताया गया है।

इसके बाद 'विविद्या' तथा 'कर्षोत्क' सम्बन्धी मन्त्रोंके अन्तमें अर्थात् **'विविद्यायै स्वाहा'**, **'कर्षोत्काय स्वाहा'** इनके अन्तमें स्वत्वत्यागके लिये **'व्यापकाय परमात्मने शिवज्योतिषे विश्वभूतघसनोत्सुकाय परस्मै देवाय इदं न मम'** इसका उच्चारण करे॥ ३४—३८॥

इसके अनन्तर **'उत्तिष्ठस्व विश्वरूपाय पुरुषाय ॐ स्वाहा'**—इस प्रकार उच्चारणकर आहुति प्रदान करे॥ ३९॥

तदनन्तर **'त्रैलोक्यव्यापिने परमात्मने शिवाय इदं न मम'**—ऐसा कहे और पुनः अपनी शाखाके अनुसार पहले तन्त्रकर्म समाप्तकर घृतयुक्त चरुका प्राशन कराके अपने पुरोहितको सुवर्णादिसे युक्त दक्षिणा प्रदान करे। पुनः ब्रह्माको विसर्जित करके प्रातःकाल होनेपर

* यथा—'पृथिव्यादिपञ्चकं मे शुध्यतां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासꣳस्वाहा—पृथिव्यादिपञ्चकाय परस्मै शिवज्योतिषे इदं न मम।'

औपासनिक हवन करे॥ ४०—४२॥

तत्पश्चात् साधक '**सं मा सिञ्चन्तु मरुतः**' इस मन्त्रका जप करे और '**या ते अग्ने**'—इस मन्त्रके द्वारा हाथको अग्निमें तपाकर अद्वैत धामस्वरूप अपनी आत्मामें अग्निको आरोपित करे। इसके पश्चात् प्रभातकालीन सन्ध्योपासन तथा सूर्योपस्थान करके नाभिमात्र जलमें प्रविष्ट हो स्थिरचित्त तथा श्रद्धायुक्त होकर प्रेमपूर्वक सूर्यके मन्त्रोंका जप करे॥ ४३—४५॥

यदि अग्निहोत्रीको विरजा होम करना हो तो वह स्थापित अग्निमें प्राजापत्येष्टि करे, फिर अच्छी प्रकार श्रौताग्निमें हवनकर दक्षिणाके सहित समस्त वेदोंका दान करे॥ ४६॥

तदनन्तर अपनी आत्मामें अग्निको धारणकर साधक घरसे निकल जाय। इसके बाद गायत्रीके प्रथम पादका उच्चारण करके '**सावित्रीं प्रवेशयामि**'—ऐसा कहकर '**भूरोम्**' यह बोले इसके बाद दूसरे पादका उच्चारण करके '**सावित्रीं प्रवेशयामि**' कहकर '**भुवरोम्**'—ऐसा कहे। इसके अनन्तर तीसरे पादका उच्चारण करके '**सावित्रीं प्रवेशयामि**' शब्दके अन्तमें '**सुवरोम्**'—ऐसा कहे। हे मुनीश्वर! इसके बाद निश्चल मनवाला होकर प्रेमपूर्वक तीनों पादोंका एक साथ उच्चारण करे और बादमें '**सावित्रीं प्रवेशयामि**' कहकर '**भूर्भुवस्सुवरोम्**'-का उच्चारण करे॥ ४७—५१॥

ये भगवती सावित्री साक्षात् शंकरकी अर्धांगिनी हैं, पाँच मुख-दस भुजाएँ तथा पंद्रह नेत्रोंसे समन्वित हैं, इनके शरीरका वर्ण अत्यन्त उज्ज्वल है, नवरत्नसे जटित इनका किरीट मस्तकपर चन्द्रमाकी लेखासे सुशोभित हो रहा है, शुद्ध स्फटिकके समान इनके शरीरकी कान्ति है, मंगलमयी ये हाथोंमें दस आयुध धारण की हुई हैं, इनके अंगोंमें हार-केयूर-किंकिणी तथा नूपुर आदि आभूषण सुशोभित हो रहे हैं, ये दिव्य वस्त्र तथा रत्नोंके आभूषणोंसे मण्डित हैं॥ ५२—५४॥

ये शिवा सर्वव्यापिनी हैं एवं विष्णु, ब्रह्मा, देवता, ऋषि, गन्धर्व, दानव एवं मनुष्योंसे सर्वदा सेवनीय हैं, ये सदाशिवकी मनोहर धर्मपत्नी हैं, जगदम्बा हैं, तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेवाली हैं, त्रिगुणात्मिका, निर्गुणा एवं अजा हैं॥ ५५-५६॥

इस प्रकारका विचार करके बुद्धिमान् पुरुषको गायत्रीका जप करना चाहिये; क्योंकि ये आदिदेवी हैं, त्रिपदा हैं, ब्राह्मणत्व आदि प्रदान करनेवाली एवं अजा हैं। जो पापी शास्त्रीयविधिका अतिक्रमणकर शिवरूपा गायत्रीका जप करते हैं, वे कल्पपर्यन्त नरकमें यातना प्राप्त करते हैं॥ ५७-५८॥

व्याहृतियोंसे ही गायत्री उत्पन्न हुई हैं और उन्हींमें लीन हो जाती हैं और व्याहृतियाँ प्रणवसे उत्पन्न होकर उसीमें लीन होती हैं॥ ५९॥

सम्पूर्ण वेदोंका आदि प्रणव ही है तथा शिवका वाचक भी प्रणव ही है। यह श्रेष्ठ मन्त्र मन्त्रोंका राजाधिराज तथा महाबीजस्वरूप है॥ ६०॥

प्रणव ही शिव और शिव ही प्रणव कहे गये हैं; क्योंकि वाचक और वाच्यमें कुछ भी भेद नहीं है॥ ६१॥

काशीमें मृत्यु प्राप्त करते समय शिवजी प्राणियोंको इसी मन्त्रका उपदेश देकर मुक्त करते हैं। इसीलिये एकाक्षर-स्वरूप, दिव्य, मंगलमय तथा परमकारणरूप इस मन्त्रकी यतिश्रेष्ठ हृदयकमलमें उपासना करते हैं॥ ६२-६३॥

अन्य मुमुक्षु, धीर, विरक्त तथा लौकिक पुरुष भी इन विषयोंको अच्छी तरह जानकर परमकल्याणमय प्रणवकी उपासना करते हैं॥ ६४॥

इस प्रकार गायत्रीको शिववाचक प्रणवमें लीन करनेके पश्चात् '**अहं वृक्षस्य रेरिवा**'*—इस अनुवाकका जप करना चाहिये॥ ६५॥

तत्पश्चात् '**यश्छन्दसामृषभः**' (तैत्तिरीय० १। ४। १)—इस अनुवाकको आरम्भसे लेकर······'**श्रुतं मे**

* अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि। द्रविणं सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः। इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम्। (तैत्तिरीय० १। १०। १)

'मैं संसारवृक्षका उच्छेद करनेवाला हूँ, मेरी कीर्ति पर्वतके शिखरकी भाँति उन्नत है; अन्नोत्पादक शक्तिसे युक्त सूर्यमें जैसे उत्तम अमृत है, उसी प्रकार मैं भी अतिशय पवित्र अमृतस्वरूप हूँ तथा मैं प्रकाशयुक्त धनका भण्डार हूँ, परमानन्दमय अमृतसे अभिषिक्त तथा श्रेष्ठ बुद्धिवाला हूँ—इस प्रकार यह त्रिशंकु ऋषिका अनुभव किया हुआ वैदिक प्रवचन है।'

गोपाय'[१] तक पढ़कर कहे—'**दारैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थितोऽहम्**' अर्थात् 'मैं स्त्रीकी कामना, धनकी कामना और लोकोंमें ख्यातिकी कामनासे ऊपर उठ गया हूँ।' मुने! इस वाक्यका मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे क्रमशः तीन बार उच्चारण करे। तत्पश्चात् सृष्टि, स्थिति और लयके क्रमसे पहले प्रणवमन्त्रका उद्धार करे, फिर क्रमशः इन वाक्योंका उच्चारण करे—'**ॐ भूः संन्यस्तं मया**', '**ॐ भुवः संन्यस्तं मया**', '**ॐ सुवः संन्यस्तं मया**', '**ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया**'[२] इन वाक्योंका मन्द, मध्यम और उच्चस्वरसे हृदयमें सदाशिवका ध्यान करते हुए सावधान चित्तसे उच्चारण करे। तदनन्तर '**अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा**' (मेरी ओरसे सब प्राणियोंको अभयदान दिया गया)—ऐसा कहते हुए पूर्व दिशामें एक अंजलि जल लेकर छोड़े। इसके बाद शिखाके शेष बालोंको हाथसे उखाड़ डाले और यज्ञोपवीतको निकालकर जलके साथ हाथमें ले इस प्रकार कहे—'**ॐ भूः समुद्रं गच्छ स्वाहा**' यों कहकर उसका जलमें होम कर दे। फिर '**ॐ भूः संन्यस्तं मया**', '**ॐ भुवः संन्यस्तं मया**', '**ॐ सुवः संन्यस्तं मया**'—इस प्रकार तीन बार कहकर तीन बार जलको अभिमन्त्रित करके उसका आचमन करे। फिर जलाशयके किनारे आकर वस्त्र और कटिसूत्रको भूमिपर त्याग दे तथा उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह करके सात पदसे कुछ अधिक चले। कुछ दूर जानेपर आचार्य उससे कहे, 'ठहरो, ठहरो भगवन्! लोक-व्यवहारके लिये कौपीन और दण्ड स्वीकार करो।' यों कह आचार्य अपने हाथसे ही उसे कटिसूत्र और कौपीन देकर गेरुआ वस्त्र भी अर्पित करे। तत्पश्चात् संन्यासी जब उससे अपने शरीरको ढककर दो बार आचमन कर ले तब आचार्य शिष्यसे कहे—'**इन्द्रस्य वज्रोऽसि**' यह मन्त्र बोलकर दण्ड ग्रहण करो। तब वह इस मन्त्रको पढ़े और '**सखा मा गोपायौजः सखा योऽसीन्द्रस्य वज्रोऽसि वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय**'[३]—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए दण्डकी प्रार्थना करके उसे हाथमें ले। (तत्पश्चात् प्रणव या गायत्रीका उच्चारण करके कमण्डलु ग्रहण करे।)

तदनन्तर भगवान् शिवके चरणारविन्दका चिन्तन करते हुए गुरुके निकट जा वह तीन बार पृथ्वीमें लोटकर दण्डवत् प्रणाम करे। उस समय वह अपने मनको पूर्णतया संयममें रखे। फिर धीरेसे उठकर प्रेमपूर्वक अपने गुरुकी ओर देखते हुए हाथ जोड़ उनके चरणोंके समीप खड़ा हो जाय। संन्यास-दीक्षा-विषयक कर्म आरम्भ होनेके पहले ही शुद्ध गोबर लेकर आँवले बराबर उसके गोले बना ले और सूर्यकी किरणोंसे ही उन्हें सुखाये। फिर होम आरम्भ होनेपर उन गोलोंको होमाग्निके बीचमें डाल दे। होम समाप्त होनेपर उन सबको संग्रह करके सुरक्षित रखे। तदनन्तर दण्डधारणके पश्चात् गुरु विरजाग्निजनित उस श्वेत भस्मको लेकर उसीको शिष्यके अंगोंमें लगाये अथवा उसे लगानेकी आज्ञा दे। उसका क्रम इस प्रकार है—'**ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वꣳह वा इदं भस्म मन एतानि चक्षूꣳषि**' इस

१-यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देव धारणो भूयासम। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः केशोऽसि मेधया पिहितः श्रुतं मे गोपाय।

'जो वेदोंमें सर्वश्रेष्ठ है, सर्वरूप है और अमृतस्वरूप वेदोंसे प्रधानरूपमें प्रकट हुआ है, वह सबका स्वामी परमेश्वर मुझे धारणायुक्त बुद्धिसे सम्पन्न करे। हे देव! मैं आपकी कृपासे अमृतमय परमात्माको अपने हृदयमें धारण करनेवाला बन जाऊँ। मेरा शरीर विशेष फुर्तीला—सब प्रकारसे रोगरहित हो और मेरी जिह्वा अतिशय मधुमती (मधुरभाषिणी) हो जाय। मैं दोनों कानोंद्वारा अधिक सुनता रहूँ। (हे प्रणव! तू) लौकिक बुद्धिसे ढकी हुई परमात्माकी निधि है। तू मेरे सुने हुए उपदेशकी रक्षा करे।'

२-मैंने भूलोकका संन्यास (पूर्णतः त्याग) कर दिया। मैंने भुवः (अन्तरिक्ष) लोकका परित्याग कर दिया तथा मैंने स्वर्गलोकका भी सर्वथा त्याग कर दिया। मैंने भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक—इन तीनोंको भलीभाँति त्याग दिया।

३-हे दण्ड! तुम मेरे सखा (सहायक) हो, मेरी रक्षा करो। मेरे ओज (प्राणशक्ति)-की रक्षा करो। तुम वही मेरे सखा हो, जो इन्द्रके हाथमें वज्रके रूपमें रहते हो। तुमने ही वज्ररूपसे आघात करके वृत्रासुरका संहार किया है। तुम मेरे लिये कल्याणमय बनो। मुझमें जो पाप हो, उसका निवारण करो।

मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे। तदनन्तर ईशानादि पाँच मन्त्रोंद्वारा उस भस्मका शिष्यके अंगोंसे स्पर्श कराकर उसे मस्तकसे लेकर पैरोंतक सर्वांगमें लगानेके लिये दे दे। शिष्य उस भस्मको विधि-पूर्वक हाथमें लेकर '**त्र्यायुषम्०**[१]' तथा '**त्र्यम्बकम्०**[२]' इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए ललाट आदि अंगोंमें क्रमशः त्रिपुण्ड्र धारण करे॥ ६६—८५॥

इसके पश्चात् अत्यन्त भक्तिभावसे समन्वित हो उत्तम शिष्य अपने हृदयकमलमें विराजमान उमासहित शिवजीका ध्यान करे॥ ८६॥

गुरु प्रसन्नतापूर्वक शिष्यके सिरपर हाथ रखकर दाहिने कानमें तीन बार ऋषि, छन्द, देवतासहित प्रणवमन्त्रका उपदेश करे। इसके बाद श्रेष्ठ गुरु शिष्यपर करुणा करके छः प्रकारके अर्थोंसे युक्त प्रणवके तात्पर्यको भी समझाये॥ ८७-८८॥

शिष्य भी पृथ्वीपर दण्डवत् गिरकर बारह बार गुरुको प्रणाम करे और सदा गुरुके अधीन रहे तथा [उनकी आज्ञाके बिना] अन्य कर्म न करे॥ ८९॥

गुरुकी आज्ञासे शिष्य सर्वदा वेदान्तके अर्थके अनुसार सगुण एवं निर्गुण भेदसे शिवज्ञानमें तत्पर रहे। गुरु सर्वदा श्रवण, मनन, निदिध्यासन, प्रातःकालिक अनुष्ठान तथा अन्तमें जपादि कार्य उस शिष्यसे कराता रहे॥ ९०-९१॥

शिष्य भी कैलासप्रस्तर नामक मण्डलमें शिवजीद्वारा कही गयी विधिके अनुसार शिवपूजन करता रहे॥ ९२॥

यदि शिष्य गुरुके आज्ञानुसार मण्डलमें शिवजीका सदा पूजन करनेमें असमर्थ हो, तो गुरुसे शिवका पीठयुक्त स्फटिक लिंग ग्रहणकर उसीकी पूजा करे। चाहे मेरे प्राण चले जायँ अथवा भले ही सिर कटा लेना पड़े, किंतु भलीभाँति भगवान् त्र्यम्बकका अर्चन किये बिना कभी भी भोजन नहीं करूँगा, इस प्रकार शिवभक्ति रखते हुए वह शिष्य गुरुके समीप दृढ़चित्त होकर तीन बार उच्चारण करके शपथ ग्रहण करे। इसके बाद शिवभक्तिमें तत्पर मनवाला वह पंचावरण मार्गसे परम भक्तिके साथ नित्य महादेवका पूजन करे॥ ९३—९६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासविधि नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

शिवस्वरूप प्रणवका वर्णन

वामदेव बोले—हे भगवन्! हे षण्मुख! हे सम्पूर्ण विज्ञानरूपी अमृतके सागर! हे समस्त देवताओंके स्वामी शिवजीके पुत्र! हे शरणागतोंके दुःखके विनाशक! आपने कहा कि प्रणवके छः प्रकारोंके अर्थोंका ज्ञान अभीष्ट प्रदान करनेवाला है—वह क्या है, उसमें छः प्रकारके कौन-से अर्थ हैं, उनका ज्ञान किस प्रकारसे किया जा सकता है, उसका प्रतिपाद्य कौन है और उसके परिज्ञानका फल क्या है? हे कार्तिकेय! मैंने जो-जो पूछा है, यह सब बताइये॥ १—३॥

हे महासेन! इस अर्थको बिना जाने पशुशास्त्रसे मोहित हुआ मैं आज भी शिवजीकी मायासे भ्रमित हो रहा हूँ॥ ४॥

मैं अब जिस प्रकार शिवजीके चरणयुगलके ज्ञानामृत रसायनका पानकर मायासे रहित हो जाऊँ, वैसा कीजिये। कृपामृतसे आर्द्र दृष्टिसे निरन्तर मेरी ओर देखकर आपके ऐश्वर्यमय चरणकमलकी शरणमें आये हुए मुझपर अनुग्रह कीजिये॥ ५-६॥

मुनिवरकी यह बात सुनकर ज्ञानशक्तिको धारण करनेवाले वे प्रभु शिवशास्त्रको विपरीत माननेवालोंको महान् भय उत्पन्न करनेवाला वचन कहने लगे॥ ७॥

१-त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥ (यजुर्वेद ३। ६२)

२-त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ (यजुर्वेद ३। ६०)

सुब्रह्मण्य बोले—हे मुनिशार्दूल! आपने आदरपूर्वक समष्टि तथा व्यष्टि भावसे [इस जगत्में विराजमान] महेश्वरके जिस परिज्ञानको पूछा है, उसे सुनिये। हे सुव्रत! मैं उस प्रणवार्थपरिज्ञानरूप एक ही विषयको छः प्रकारके तात्पर्योंकी [वस्तुतः] एकताके परिज्ञानसहित विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ॥ ८-९॥

पहला मन्त्ररूप अर्थ, दूसरा यन्त्ररूप अर्थ, तीसरा देवताबोधक अर्थ, चौथा प्रपंचरूप अर्थ, पाँचवाँ गुरुरूपको दिखानेवाला अर्थ और छठा शिष्यके स्वरूपका बोधक अर्थ—ये छः प्रकारके अर्थ कहे गये हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं उनमें मन्त्ररूप अर्थको आपसे कहता हूँ, जिसे जाननेमात्रसे मनुष्य महाज्ञानी हो जाता है॥ १०—१२॥

पहला स्वर अकार, दूसरा स्वर उकार, पाँचवें वर्गका अन्तिम वर्ण मकार, बिन्दु एवं नाद—ये ही पाँच वर्ण वेदोंके द्वारा ओंकारमें कहे गये हैं, दूसरे नहीं। इनका समष्टिरूप ॐकार ही वेदका आदि कहा गया है। नाद सर्वसमष्टिरूप है और बिन्दुसहित जो चार वर्णोंका समूह है, वह शिववाचक प्रणवमें व्यष्टिरूपसे प्रतिष्ठित है। हे प्राज्ञ! अब यन्त्ररूप सुनें; वही शिवलिंगस्वरूप है॥ १३—१५॥

सबसे नीचे पीठकी रचना करे। उसके ऊपर प्रथम स्वर अकार, उसके ऊपर उकार, उसके ऊपर पवर्गका अन्तिम वर्ण मकार, उसके मस्तकपर बिन्दु और उसके ऊपर [अर्धचन्द्राकार] नाद लिखे। इस प्रकार यन्त्रके पूर्ण हो जानेपर सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। इस रीतिसे यन्त्रको लिखकर उसे ॐकारसे वेष्टित करे। उससे उठे हुए नादसे ही नादकी पूर्णताको जाने॥ १६—१८॥

हे मुने! हे वामदेव! अब मैं शिवजीद्वारा कहे गये देवतार्थको, जो सर्वत्र गूढ़ है, आपके स्नेहवश कह रहा हूँ। श्रुतिने स्वयं **'सद्योजातं प्रपद्यामि'** से **सदाशिवोम्'** पर्यन्त इन पाँच मन्त्रोंका वाचक तार अर्थात् ॐको कहा है॥ १९-२०॥

ब्रह्मरूपी सूक्ष्म देवता भी पाँच ही हैं, इस प्रकार समझना चाहिये और ये सभी शिवकी मूर्तिके रूपमें भी प्रतिष्ठित हैं, यह मन्त्र शिवका वाचक है तथा शिवमूर्तिका भी वाचक है; क्योंकि मूर्ति और मूर्तिमान्में वस्तुतः भेद नहीं है॥ २१-२२॥

'ईशानमुकुटोपेतः' इत्यादि श्लोकोंके द्वारा भगवान् शिवके विग्रहको पहले ही बताया जा चुका है, अब उनके पाँच मुखोंको सुनें। पंचम अर्थात् ईशानसे आरम्भ करके सद्योजातादिके अनुक्रमसे उनका श्रीविग्रह कहा गया तथा [पश्चिममुख सद्योजातसे लेकर] ऊर्ध्वमुख ईशानपर्यन्त शिवके पाँच मुख कहे गये हैं॥ २३-२४॥

तत्पुरुषसे लेकर सद्योजातपर्यन्त ये चार ब्रह्मरूप ईशानदेवके चतुर्व्यूहके रूपमें स्थित हैं॥ २५॥

हे मुने! सुविख्यात ईशान नामक ब्रह्मरूपके साथ [सद्योजातादिके] समन्वित होनेकी स्थिति पंचब्रह्मात्मक समष्टि कही जाती है तथा तत्पुरुषसे लेकर सद्योजातपर्यन्त [पाँचों] ब्रह्मरूपोंकी [पृथक्-पृथक्] स्थिति व्यष्टि कहलाती है॥ २६॥

यह अनुग्रहमयचक्र है, यह पंचार्थका कारण, परब्रह्मस्वरूप, सूक्ष्म, निर्विकार तथा अनामय है॥ २७॥

अनुग्रह भी दो प्रकारका है—एक तिरोभाव और दूसरा प्रकट रूप। दूसरा जो प्रकट रूप अनुग्रह है, वह जीवोंका अनुशासक और उन्हें पर-अवर मुक्ति देनेवाला है। सदाशिवके ये दो कार्य कहे गये हैं। विभुके अनुग्रहमें भी सृष्टि आदि पाँच कृत्य होते हैं॥ २८-२९॥

हे मुने! उन सर्गादि कृत्योंके सद्योजातादि पाँच देवता कहे गये हैं। वे पाँचों परब्रह्मके स्वरूप एवं सदा कल्याण करनेवाले हैं। अनुग्रहमय चक्र शान्त्यतीतकलासे युक्त है और सदाशिवके द्वारा अधिष्ठित होनेसे परम पद कहा जाता है॥ ३०-३१॥

प्रणवमें निष्ठा रखनेवाले सदाशिवके उपासकों तथा आत्मानुसन्धानमें निरत यतियोंको यही पद प्राप्त करना चाहिये। इसी पदको प्राप्त करके श्रेष्ठ मुनिगण ब्रह्मरूपी उन शिवके साथ अनेक प्रकारके उत्तम सुखोंको भोगकर महाप्रलय होनेपर शिवसाम्य प्राप्त कर लेते हैं और वे लोग फिर कभी संसारसागरमें नहीं गिरते हैं॥ ३२—३४॥

'ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति

सर्वे'—ऐसा सनातनी श्रुति कहती है। यह समष्टि ही सदाशिवका ऐश्वर्य है। वे सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं—ऐसा आथर्वणी श्रुति कहती है। वे समस्त ऐश्वर्य देते हैं—ऐसा वेद कहते हैं॥ ३५-३६॥

चमकाध्यायके पदसे [यह ज्ञात होता है कि शिवसे] श्रेष्ठ कोई पद नहीं है। ब्रह्मपंचकका विस्तार ही प्रपंच कहलाता है॥ ३७॥

निवृत्ति आदि कलाएँ पंचब्रह्मसे ही उत्पन्न कही गयी हैं, जो सूक्ष्मभूत स्वरूपवाली हैं तथा कारणके रूपमें प्रसिद्ध हैं। हे सुव्रत! स्थूलस्वरूपवाले इस प्रपंचकी जो पाँच प्रकारकी स्थिति है, वही ब्राह्मपंचक कहा जाता है॥ ३८-३९॥

हे मुनिसत्तम! पुरुष, श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश—यह पंचसमुदाय ईशानरूप ब्रह्मसे व्याप्त है। हे मुनीश्वर! प्रकृति, त्वक्, हाथ, स्पर्श और वायु—ये पाँच तत्पुरुषरूप ब्रह्मसे व्याप्त हैं। अहंकार, चक्षु, चरण, रूप और अग्नि—यह पंचसमुदाय अघोररूप ब्रह्मसे व्याप्त है। बुद्धि, रसना, पायु, रस तथा जल—यह पंचसमुदाय वामदेवरूप ब्रह्मसे व्याप्त है। मन, नासिका, उपस्थ, गन्ध और भूमि—यह पंचसमुदाय सद्योजातरूप ब्रह्मसे व्याप्त है। इस प्रकार यह सारा जगत् पंचब्रह्ममय है॥ ४०—४४॥

शिववाचक प्रणव यन्त्ररूपसे कहा गया है। वह [नादपर्यन्त] पाँचों वर्णोंका समष्टिरूप है तथा बिन्दुयुक्त जो चार वर्ण हैं, वे प्रणवके व्यष्टिरूप हैं। शिवजीके द्वारा उपदिष्ट मार्गसे सर्वश्रेष्ठ मन्त्राधिराज तथा शिवरूपी प्रणवका यन्त्ररूपसे ध्यान करना चाहिये॥ ४५-४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें शिवरूप प्रणववर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

तिरोभावादि चक्रों तथा उनके अधिदेवताओं आदिका वर्णन

ईश्वर बोले—हे वरानने! इसके बाद सदाशिवसे जिस प्रकार महेश्वरादि व्यूहचतुष्टयकी उत्पत्ति होती है, उस उत्तम सृष्टि-पद्धतिको मैं कह रहा हूँ॥ १॥

आकाशके अधिपति प्रभु सदाशिव समष्टिस्वरूप हैं। महेश्वरादि चाररूप (महेश्वर, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा) उन्हींकी व्यष्टि हैं। महेश्वरकी उत्पत्ति सदाशिवके हजारवें भागसे होती है। पुरुषके अनन्तरूप होनेसे वे वायुके अधिपति हैं॥ २-३॥

वे वामभागमें मायाशक्तिसे युक्त, सकल तथा क्रियाओंके स्वामी हैं। ईश्वर आदि चारोंका समूह इन्हींका व्यष्टिरूप है। ईश, विश्वेश्वर, परमेश, सर्वेश्वर—यह उत्तम तिरोधानचक्र है॥ ४-५॥

तिरोभाव भी दो प्रकारका है, एक रुद्र आदिके रूपमें दिखायी पड़ता है और दूसरा जीवसमूहके विस्तारके रूपमें देहभावसे स्थित है॥ ६॥

यह शरीर तभीतक रहता है, जबतक पुण्य और पाप जीवमें रहता है। इसकी अवधि कर्मसाम्यपर्यन्त है। कर्मसाम्य होनेपर वह जीव अनुग्रहमय परमात्मामें मिलकर एक हो जाता है॥ ७॥

उसमें सर्वेश्वर आदि जो चार देवता कहे गये हैं, वे साक्षात् परब्रह्मात्मक, निर्विकल्प एवं निरामय हैं॥ ८॥

तिरोभावात्मक चक्र शान्तिकलामय है, यह उत्तम पद महेश्वरसे अधिष्ठित है। यह पद [तिरोभावात्मक चक्र] ही महेश्वरके चरणोंकी सेवा करनेवालोंका प्राप्य है तथा शिवोपासकोंको [अधिकारके अनुसार] क्रमशः सालोक्य आदि मुक्तियाँ प्रदान करनेवाला है॥ ९-१०॥

रुद्रमूर्तिकी उत्पत्ति महेश्वरके हजारवें अंशसे हुई है, वे अघोर वदनके आकारवाले तथा तेजस्तत्त्वके स्वामी हैं॥ ११॥

सबका संहार करनेवाले वे प्रभु अपने वामभागमें गौरीशक्तिसे युक्त हैं तथा शिवादि चार रूप इन्हींके व्यष्टिरूप हैं। हे मुनीश्वर! शिव, हर, मृड और भव—

[इनसे युक्त] यह सुप्रसिद्ध, अद्भुत तथा महादिव्य 'संहार' नामक चक्र है॥ १२-१३॥

विद्वानोंने उस संहारचक्रको नित्य आदिके भेदसे तीन प्रकारका कहा है। नित्य वह है, जिसमें जीव सुषुप्तिमें रहता है। सृष्टिके निमित्तभूत (संहारचक्र)-को नैमित्तिक कहते हैं और उस [जगत्]-के विलयको महाप्रलय कहते हैं—इसका वेदमें निर्देश है। जब जीव संसारमें जन्म-दुःखादिसे श्रान्त हो जाता है, उस समय हे मुनिश्रेष्ठ! उस जीवकी विश्रान्ति और उसके कर्मपरिपाकके लिये अमित तेजस्वी रुद्रने तीन प्रकारके संहारोंकी कल्पना की है॥ १४—१६॥

ये तीनों प्रकारके संहारकृत्य रुद्रके ही कहे गये हैं। संहारकालमें भी उन विभुके सृष्टि आदि पाँच कार्योंका यह समुदाय (सृष्टि, स्थिति, लय, तिरोभाव, अनुग्रह रहता है। हे मुने! सृष्टि आदि) पाँच कृत्योंके वे भव आदि देवता कहे गये हैं, जो परब्रह्मके स्वरूप और लोकपर अनुग्रह करनेवाले हैं॥ १७-१८॥

यह संहार नामक चक्र विद्यारूप और कलामय है। यह निरामय पद रुद्रसे अधिष्ठित है॥ १९॥

रुद्राराधनमें निरत चित्तवाले रुद्रोपासकोंके लिये यह पद ही प्राप्य है तथा उन्हें सालोक्यमुक्तिके क्रमसे शिवसायुज्य प्रदान करनेवाला है॥ २०॥

रुद्रमूर्तिके हजारवें भागसे विष्णुकी उत्पत्ति हुई है, वे वामदेवचक्रके आत्मारूप तथा जलतत्त्वके अधिपति हैं। वे बायें भागमें रमाशक्तिसे समन्वित, सबकी रक्षा करनेवाले, महान्, चार भुजाओंवाले, कमलसदृश नेत्रवाले, श्यामवर्ण तथा शंख आदि चिह्नोंको धारण करनेवाले हैं॥ २१-२२॥

व्यष्टिकी दशामें इन्हींके वासुदेव आदि चार रूप होते हैं, जो उपासनापरायण वैष्णवोंको मुक्ति प्रदान करते हैं। यह उत्तम स्थितिचक्र वासुदेव, अनिरुद्ध, संकर्षण तथा प्रद्युम्न नामसे विख्यात है॥ २३-२४॥

उत्पन्न किये गये जगत्की स्थिति-सम्पादन तथा ब्रह्माके साथ [अपने कर्मके अनुसार] फलका भोग करनेवाले जीवोंका आरब्ध कर्मके भोगपर्यन्त पालन करना—यह रक्षा करनेवाले विष्णुका कृत्य कहा गया है। स्थितिमें भी विभु विष्णुके सृष्टि आदि पाँच कृत्य हैं, उसमें प्रद्युम्न आदि वे पाँच देवता हो गये हैं, जो सर्वदा निर्विकल्प, निरातंक तथा मुक्तिरूप आनन्दको देनेवाले हैं॥ २५—२७॥

हे ब्रह्मन्! यह प्रतिष्ठा नामक स्थितिचक्र जनार्दनसे अधिष्ठित है तथा परम पद कहा जाता है॥ २८॥

विष्णुके चरणकमलोंकी सेवा करनेवालोंके लिये यही पद प्राप्तव्य है, वैष्णवोंका यह चक्र सालोक्य आदि मुक्तिपद देनेवाला है। विष्णुके हजारवें भागसे पितामह उत्पन्न हुए हैं, जो सद्योजात नामक शिवके मुखरूप हैं और पृथ्वीतत्त्वके नायक हैं॥ २९-३०॥

वे वामभागमें सरस्वतीसे युक्त, सृष्टिकर्ता, जगत्के स्वामी, चतुर्मुख, रक्तवर्ण तथा रजोगुणवाले हैं॥ ३१॥

हिरण्यगर्भ आदि चार इन्हींके व्यष्टिरूप हैं, जो हिरण्यगर्भ, विराट्, पुरुष और काल नामवाले हैं॥ ३२॥

हे ब्रह्मन्! यह सृष्टिचक्र ब्रह्मपुत्र [भृगु] आदि ऋषियोंसे सेवित, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और परिवार-सुखको प्रदान करनेवाला है॥ ३३॥

प्रकृतिमें लीन हुए जीवके कर्मभोगके निमित्त बाहरसे भोगके साधनभूत स्त्री-पुत्र और उनके फलोंको लाकर संयुक्त करनेका नाम सृष्टि है, इसे पितामहका कृत्य कहा गया है। विद्वानोंके मतमें यही जगत्-सृष्टिकी क्रिया है, यह व्यूह सुख देनेवाला है॥ ३४-३५॥

हे मुने! जगत्की सृष्टिमें भी उन ईश्वरके ये पाँच कृत्य हैं, उसके काल आदि देवता कहे गये हैं॥ ३६॥

विद्वानोंने इसको निवृत्ति नामक सृष्टिचक्र कहा है। यह सुन्दर पद पितामहसे अधिष्ठित है॥ ३७॥

ब्रह्मदेवमें मन लगानेवाले मनुष्योंको यही पद प्राप्त करना चाहिये, यह पैतामह अर्थात् ब्रह्मोपासकोंको सालोक्य आदि पद देनेवाला है। महेशादिके क्रमसे चार चक्रोंका यह समुदाय गौणीवृत्ति अर्थात् पारम्परिक सम्बन्धसे प्रणवका ही बोध करानेवाला कहा गया है। हे मुने! वेदोंमें प्रसिद्ध वैभववाला यह जगच्चक्र पंचारचक्र कहा जाता है, श्रुति इस चक्रकी स्तुति करती है॥ ३८—४०॥

यह एकमात्र जगच्चक्र केवल शिवशक्तिसे विजृम्भित है। सृष्टि आदि पाँच अवयववाला होनेसे इस जगच्चक्रको पंचार कहा जाता है। निरन्तर लय और उदयको प्राप्त हुआ यह जगच्चक्र घूमते हुए अलातचक्रके समान अविच्छिन्न प्रतीत हो रहा है, यह चारों ओर विद्यमान है, इसलिये इसे चक्र कहा गया है॥ ४१-४२॥

स्थूल सृष्टिके दिखायी देनेके कारण इसे पृथु भी कहा जाता है। परम तेजस्वी हिरण्यमय शिवजीका शक्ति-कार्यरूपी यह चक्र हिरण्य ज्योतिवाला है। यह [हिरण्यमय जगच्चक्र] जलसे व्याप्त है, जल अग्निसे व्याप्त है, अग्नि वायुसे व्याप्त है, वायु आकाशसे व्याप्त है, आकाश भूतादिसे व्याप्त है, भूतादि महत्तत्त्वसे आवृत हैं और महत्तत्त्व सर्वदा अव्यक्तसे आवृत है, हे मुने! आस्तिक आचार्योंने इसीको ब्रह्माण्ड कहा है॥ ४३—४६॥

इस संसारचक्रकी रक्षाके लिये सात आवरण कहे गये हैं। संसारचक्रसे दस गुना अधिक जलतत्त्व है। इसी प्रकार ऊपर-ऊपरके आवरण नीचेके आवरणकी अपेक्षा दस गुना अधिक हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मणोंको उसे ही ब्रह्माण्ड जानना चाहिये॥ ४७-४८॥

इसी अर्थको समझकर ब्रह्माण्डरूप चक्रके समीप जलके होनेसे श्रुतिने भी जगत्‌को जलमध्यशायी कहा है। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टिके द्वारा एकमात्र शिव ही अपनी शक्तिसे युक्त होकर निरन्तर लीला करते रहते हैं॥ ४९-५०॥

हे मुने! यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ, मैं आपसे सारतत्त्व कह रहा हूँ कि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शक्तिमान् शिवरूप ही है—यह सुनिश्चित है॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें उपासनामूर्तिवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, जगत्-प्रपंच और जीवतत्त्वके विषयमें विशद विवेचन तथा शिवसे जीव और जगत्‌की अभिन्नताका प्रतिपादन

सूतजी बोले—गुरुके द्वारा उपदिष्ट वेदार्थको सुनकर मुनिवर वामदेव परमात्मविषयक सन्देहोंको आदरपूर्वक पूछने लगे— ॥ १॥

वामदेवजी बोले—हे ज्ञानशक्तिके धारक! हे स्वामिन्! हे परमानन्दविग्रह! मैंने आपके मुखकमलसे बहते हुए प्रणवार्थरूप अमृतका पान किया। अब मेरी बुद्धि दृढ़ हो गयी और मेरा सन्देह दूर हो गया। हे महासेन! अब मैं आपसे कुछ और बात पूछना चाहता हूँ। हे प्रभो! सुनिये॥ २-३॥

सदाशिवसे लेकर कीटपर्यन्त रूपवाले जगत्‌की स्थिति सभी जगह स्त्री-पुरुषमय दिखायी पड़ती है, इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकारके रूपवाले जगत्‌का जो सनातन कारण है, वह स्त्रीरूप है अथवा पुरुषरूप अथवा नपुंसक है अथवा मिश्रितरूप है अथवा कोई अन्यरूप है, इसका निर्णय नहीं हुआ। शास्त्रोंके सिद्धान्तसे मोहित हुए विद्वान् लोग अनेक प्रकारकी बातें कहते हैं॥ ४—६॥

संसारसृष्टिका विधान करनेवाली श्रुतियाँ जगत्‌के साथ जिस प्रकारसे [एकीकरणको प्राप्त होती] हैं और जिसे ब्रह्मा, विष्णु, देवगण एवं सिद्ध भी नहीं जानते, उसे अथवा इस विषयमें अन्य जो भी बातें हैं, उन्हें आप कहें। [लोकमें] जानता हूँ, करता हूँ—इस प्रकारका व्यवहार देखा जाता है, ऐसा सर्वानुभवसिद्ध व्यवहार शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं अहंकारसे उत्पन्न होता है। इसमें किसी भी तरहका विवाद नहीं है परंतु यह जगत् आत्माका ही दृष्टिगोचर होनेवाला परिणाम है, इस मतमें महान् संशय है। इस प्रकार जगत्सृष्टिके विषयमें ये दो विवादास्पद विचित्र मत [लोकमें प्रसिद्ध] हैं॥ ७—१०॥

अत: आप अज्ञानसे उत्पन्न संशयरूपी इस विषवृक्षको उखाड़ दीजिये, जिससे मेरा चित्त शिवाद्वैतरूपी महान् कल्पवृक्षकी [आधार] भूमि हो जाय। हे देव! आप मुझपर कृपा करके इस प्रकारका ज्ञान दीजिये कि हे देवेश! मैं आपके अनुग्रहसे दृढ़ ज्ञानी हो जाऊँ॥ ११-१२॥

सूतजी बोले—इस प्रकार मुनिद्वारा पूछे गये वेदान्तगर्भित रहस्यमय वचनको सुनकर मन्द हास्ययुक्त मुखवाले प्रभु कहने लगे—॥ १३॥

सुब्रह्मण्य बोले—हे मुने! इसी गुह्य तत्त्वको सदाशिवने कहा है। हे वामदेव! जब वे देवी अम्बासे कह रहे थे, उस समय मैं उनका दूध पीकर अत्यन्त तृप्त हो रहा था। उस समय उनके निश्चल विचारको मैंने [स्वस्थचित्त हो] बार-बार सुना और उसपर विचारपूर्वक निश्चय किया। हे वामदेव! हे महामुने! मैं उसीको आपसे दयापूर्वक कह रहा हूँ, हे पुत्र! इस समय आप उस परम गोपनीय श्रेष्ठ रहस्यको सुनिये॥ १४—१६॥

हे मुने! कर्मास्तितत्त्वसे लेकर जो विस्तृत शास्त्रवाद है अर्थात् कर्मसत्ताके प्रतिपादक कर्मफलवादसे आरम्भ करके शास्त्रोंमें विविध विषयोंका जो विशद विवेचन है, उसे विचारवान् पुरुषको विवेकपूर्वक सुनना चाहिये, क्योंकि वह ज्ञान देनेवाला है॥ १७॥

आपने जिन शिष्योंको उपदेश दिया है, उनमें आपके समान कौन है? वे अधम आज भी [अनीश्वरवादी] कपिल आदिके शास्त्रोंमें भटक रहे हैं। शिवकी निन्दा करनेवाले वे पहले ही छः मुनियोंके द्वारा शापित हुए हैं, वे अन्यथावादी हैं, अत: उनकी बात नहीं सुननी चाहिये॥ १८-१९॥

जिस प्रकार ईश्वरके विषयमें नैयायिक लोग पंचावयव वाक्य [रूपा अनुमिति-प्रक्रिया]-का प्रयोगकर धूमदर्शन [-रूपलिंग]-से अग्निको अनुमानके द्वारा सिद्ध करते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी अनुमान प्रयोगका अवकाश तो है ही, इस प्रत्यक्ष प्रपंचके दर्शनरूप हेतुका अवलम्बन करके भी परमेश्वर परमात्माको निस्सन्देह जाना जा सकता है। स्त्री-पुरुषरूप यह विश्व प्रत्यक्ष ही दिखायी पड़ता है॥ २०—२२॥

छः कोशवाले इस शरीरमें प्रथम तीन कोश माताके अंशसे तथा अन्य तीन कोश पिताके अंशसे उत्पन्न होते हैं, ऐसा श्रुतिका कथन है। हे मुने! इस प्रकार सभी शरीरोंमें स्त्री-पुरुषभावको जाननेवाले विद्वज्जन परमात्मामें भी स्त्री-पुरुषभावको जानते हैं॥ २३-२४॥

श्रुति ब्रह्मके सच्चिदानन्दस्वरूपका प्रतिपादन करती है, इसमें आत्मवाचक सत् शब्दसे असत्की निवृत्ति हो जाती है। 'चित्' शब्द जडत्वका निवर्तक है। यद्यपि 'सत्' शब्द तीनों लिंगोंमें गृहीत होता है तथापि यहाँ परब्रह्म परमात्माके अर्थमें पुल्लिंग 'सत्' शब्द ही ग्रहण करनेयोग्य है॥ २५-२६॥

उस 'सत्' शब्दसे प्रकाशका बोध होता है—यह बात स्पष्ट ही है। (प्रकाशके पुल्लिंग होनेसे सत् शब्द ही पुल्लिंगरूपसे ब्रह्मके लिये व्यवहृत होता है।) 'चित्' शब्द ज्ञानवाचक या कि चेतनार्थक है, जो स्त्रीलिंग है अर्थात् परमात्मामें चिद्रूपता उसके स्त्रीभावको सूचित करती है॥ २७॥

प्रकाश पुल्लिंग और चित् चेतना—ये दोनों ही सम्मिलित रूपसे जगत्की उत्पत्तिमें कारण हैं। इसी प्रकार सच्चिदात्मामें जगत्की कारणता प्राप्त होनेमें एकमात्र परमात्मामें ही शिवभाव तथा शक्ति-भावका भेद किया जाता है। तेल और बत्तीके मलिन होनेसे प्रकाश भी मलिन अर्थात् मन्द हो जाता है॥ २८-२९॥

मलिनता और अशिवता दोनों ही चिताकी अग्नि आदिमें देखी जाती हैं, परंतु ये आरोपित हैं, इस आरोपका निवर्तक होनेके कारण वेदोंमें [परमात्माके] शिवत्वका प्रतिपादन किया गया है। यही चित् शक्ति जब जीवोंके आश्रित होती है, तब वह दुर्बल हो जाती है, उसकी निवृत्तिके लिये ही इन (परमात्मामें) सार्वकालिक चित् शक्ति विद्यमान है, अत: परमात्मा ही बलवान् तथा शक्तिमान् है—[लोकमें] ऐसा व्यवहार देखा जाता है॥ ३०—३१½॥

हे वामदेव! हे महामुने! इस प्रकार लोक तथा

वेदमें सदा ही परमात्मामें शिवत्व और शक्तित्व दिखाया गया है। शिव तथा शक्तिके संयोगसे ही सदा आनन्द उदित होता है॥ ३२-३३॥

अत: हे मुने! निष्पाप मुनिगण उन शिवको उद्देश्य करके शिवमें मन लगाकर अनामय शिवको प्राप्त हुए हैं। उन शिव और शक्तिको उपनिषदोंमें सर्वात्मा तथा ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म शब्दसे ही बृंहि धात्वर्थरूप व्यापकता तथा सर्वात्मकताका प्रतिपादन होता है॥ ३४-३५॥

शम्भु नामक विग्रहमें बृंहणत्व तथा बृहत्त्व (व्यापकता एवं विशालता) सदा ही विद्यमान है। (सद्योजातादि) पंचब्रह्ममय शिवविग्रहमें विद्यमान विश्वप्रतीति 'ब्रह्म' शब्दसे व्यवहृत होती है॥ ३६॥

हे वामदेव! अब मैं आपके स्नेहवश 'हंस' इस पदमें स्थित इसके प्रतिलोमात्मक प्रणव मन्त्रका उद्भव कहता हूँ, आप सावधानीपूर्वक सुनें। हंस—इस मन्त्रका प्रतिलोम करनेपर '**सोऽहम्**' (पद सिद्ध होता है।) इसके सकार एवं हकार—इन दो वर्णोंका लोप कर देनेपर स्थूल ओंकारमात्र शेष रहता है, यही शब्द परमात्माका वाचक है। तत्त्वदर्शी महर्षियोंके अनुसार उसे महामन्त्र समझना चाहिये। अब मैं सूक्ष्म महामन्त्रका उद्धार आपसे कह रहा हूँ॥ ३७—३९॥

[**हंसः—**इस पदमें तीन अक्षर हैं—ह्, अ, स।] इनमें आदिस्वर 'अ' पन्द्रहवें (अनुस्वार) और सोलहवें [विसर्ग]-के साथ है। सकारके साथवाला 'अ' विसर्गसहित है। यदि वह सकारके साथ 'हं' के आदिमें चला जाय तो सोऽहम् यह महामन्त्र हो जायगा॥ ४०॥

हंसका प्रतिलोम कर देनेपर '**सोऽहम्**' यह महामन्त्र सिद्ध होता है, जिसमें सकारका अर्थ शिव कहा गया है। वे शिव ही शक्त्यात्मक महामन्त्रके वाच्यार्थ हैं—ऐसा ही निर्णय है॥ ४१॥

गुरुके द्वारा उपदेशके समय '**सोऽहम्**'—इस पदसे उसको शक्त्यात्मक शिवका बोध कराना ही अभीष्ट होता है। अर्थात् वह यह अनुभव करे कि मैं शक्त्यात्मक शिवरूप हूँ। इस प्रकार जब यह महामन्त्र जीवपरक होता है अर्थात् जीवकी शिवरूपताका बोध कराता है तब पशु (जीव) अपनेको शक्त्यात्मक एवं शिवांश जानकर शिवके साथ अपनी एकता सिद्ध हो जानेसे शिवकी समताका भागी हो जाता है॥ ४२१/२॥

'**प्रज्ञानं ब्रह्म**'—इस ब्रह्मवाक्यमें प्रज्ञानका अर्थ इस प्रकार दिखायी देता है। प्रज्ञान शब्द चैतन्यका पर्याय है, इसमें सन्देह नहीं है। इसीलिये हे मुने! '**चैतन्यमात्मा**' (अर्थात् आत्मा चैतन्यरूप है) यह शिवसूत्र कहा गया है॥ ४३-४४॥

अब श्रुतिके '**प्रज्ञानं ब्रह्म**' इस वाक्यमें जो '**प्रज्ञानम्**' पद आया है, उसके अर्थको दिखाया जा रहा है। 'प्रज्ञान' शब्द 'चैतन्य'का पर्याय है, इसमें संशय नहीं है। मुने! शिवसूत्रमें यह कहा गया है कि '**चैतन्यम् आत्मा**' अर्थात् आत्मा (ब्रह्म या परमात्मा) चैतन्यरूप है। चैतन्य शब्दसे यह सूचित होता है कि जिसमें विश्वका सम्पूर्ण ज्ञान तथा स्वतन्त्रतापूर्वक जगत्के निर्माणकी क्रिया स्वभावत: विद्यमान है, उसीको आत्मा या परमात्मा कहा गया है। इस प्रकार मैंने यहाँ शिवसूत्रोंकी ही व्याख्या की है॥ ४५१/२॥

'**ज्ञानं बन्धः**' यह दूसरा शिवसूत्र है। इसमें पशुवर्ग (जीवसमुदाय)-का लक्षण बताया गया है। इस सूत्रमें आदि पद '**ज्ञानम्**' के द्वारा किंचिन्मात्र ज्ञान और क्रियाका होना ही जीवका लक्षण कहा गया है। यह ज्ञान और क्रिया पराशक्तिका प्रथम स्पन्दन है। कृष्ण यजुर्वेदकी श्वेताश्वतर शाखाका अध्ययन करनेवाले विद्वानोंने '**स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च**'* इस श्रुतिके द्वारा इसी पराशक्तिका प्रसन्नतापूर्वक स्तवन किया है। भगवान् शंकरकी तीन दृष्टियाँ मानी गयी हैं—ज्ञान, क्रिया और इच्छारूप। ये तीनों दृष्टियाँ जीवके मनमें स्थित हो अर्थात् इन्द्रियज्ञानगोचर देहमें प्रवेश करके जीवरूप हो

---

* यह श्रुति श्वेताश्वतरोपनिषद् (६।८) की है। इसका पूरा पाठ इस प्रकार है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

अर्थात्—

देह और इन्द्रियसे उनका है सम्बन्ध नहीं कोई। अधिक कहाँ, उनके सम भी तो दीख रहा न कहीं कोई॥
ज्ञानरूप, बलरूप, क्रियामय उनकी पराशक्ति भारी। विविध रूपमें सुनी गयी है, स्वाभाविक उनमें सारी॥

सदा जानती और करती हैं। अतः यह दृष्टित्रयरूप जीव आत्मा (महेश्वर)-का स्वरूप ही है, ऐसा निश्चित सिद्धान्त है॥ ४६—५०१/२॥

अब मैं जगत्प्रपंचके साथ प्रणवकी एकताका बोध करानेवाले प्रपंचार्थका वर्णन करूँगा। '**ओमितीदं सर्वम्**' (तैत्तिरीय० १।८।१) अर्थात् यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला समस्त जगत् ओंकार है—यह सनातन श्रुतिका कथन है। इससे प्रणव और जगत्की एकता सूचित होती है। '**तस्माद्वा**' (तैत्तिरीय० २।१) इस वाक्यसे आरम्भ करके तैत्तिरीय श्रुतिने संसारकी सृष्टिके क्रमका वर्णन किया है। वामदेव! उस श्रुतिका जो विवेकपूर्ण तात्पर्य है, उसे मैं तुम्हारे स्नेहवश बता रहा हूँ, सुनो॥ ५१—५३॥

शिवशक्तिका संयोग ही परमात्मा है, यह ज्ञानी पुरुषोंका निश्चित मत है। शिवकी जो पराशक्ति है, उससे चिच्छक्ति प्रकट होती है। चिच्छक्तिसे आनन्दशक्तिका प्रादुर्भाव होता है, आनन्दशक्तिसे इच्छाशक्तिका उद्भव हुआ है, इच्छाशक्तिसे ज्ञानशक्ति और ज्ञानशक्तिसे पाँचवीं क्रियाशक्ति प्रकट हुई है॥ ५४१/२॥

मुने! इन्हींसे निवृत्ति आदि कलाएँ उत्पन्न हुई हैं। चिच्छक्तिसे नाद और आनन्दशक्तिसे बिन्दुका प्राकट्य बताया गया है। इच्छाशक्तिसे मकार प्रकट हुआ है। ज्ञानशक्तिसे पाँचवाँ स्वर उकार उत्पन्न हुआ है और क्रियाशक्तिसे अकारकी उत्पत्ति हुई है। मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रणवकी उत्पत्ति बतलायी है। अब ईशानादि पंच ब्रह्मकी उत्पत्तिका वर्णन सुनो॥ ५५—५७॥

शिवसे ईशान उत्पन्न हुए हैं, ईशानसे तत्पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ है, तत्पुरुषसे अघोरका, अघोरसे वामदेवका और वामदेवसे सद्योजातका प्राकट्य हुआ है। इस आदि अक्षर प्रणवसे ही मूलभूत पाँच स्वर और तैंतीस व्यंजनके रूपमें अड़तीस अक्षरोंका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ५८१/२॥

अब कलाओंकी उत्पत्तिका क्रम सुनो। ईशानसे शान्त्यतीताकला उत्पन्न हुई है। तत्पुरुषसे शान्तिकला, अघोरसे विद्याकला, वामदेवसे प्रतिष्ठाकला और सद्योजातसे निवृत्तिकलाकी उत्पत्ति हुई है। ईशानसे चिच्छक्तिद्वारा मिथुनपंचककी उत्पत्ति होती है। अनुग्रह, तिरोभाव, संहार, स्थिति और सृष्टि—इन पाँच कृत्योंका हेतु होनेके कारण उसे पंचक कहते हैं। यह बात तत्त्वदर्शी ज्ञानी मुनियोंने कही है॥ ५९—६१॥

वाच्य-वाचकके सम्बन्धसे उनमें मिथुनत्वकी प्राप्ति हुई है। कला वर्णस्वरूप इस पंचकमें भूतपंचककी गणना है। मुनिश्रेष्ठ! आकाशादिके क्रमसे इन पाँचों मिथुनोंकी उत्पत्ति हुई है। इनमें पहला मिथुन है आकाश, दूसरा वायु, तीसरा अग्नि, चौथा जल और पाँचवाँ मिथुन पृथ्वी है॥ ६२-६३॥

[इनमें आकाशसे लेकर पृथ्वीतकके भूतोंका जैसा स्वरूप बताया गया है, उसे सुनो।] आकाशमें एकमात्र शब्द ही गुण है; वायुमें शब्द और स्पर्श दो गुण हैं; अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप—इन तीन गुणोंकी प्रधानता है; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण माने गये हैं तथा पृथ्वी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—इन पाँच गुणोंसे सम्पन्न है। यही भूतोंका व्यापकत्व कहा गया है अर्थात् शब्दादि गुणोंद्वारा आकाशादि भूत वायु आदि परवर्ती भूतोंमें किस प्रकार व्यापक हैं, यह दिखाया गया है। इसके विपरीत गन्धादि गुणोंके क्रमसे वे भूत पूर्ववर्ती भूतोंसे व्याप्य हैं अर्थात् गन्ध गुणवाली पृथ्वी जलका और रसगुणवाला जल अग्निका व्याप्य है, इत्यादि रूपसे इनकी व्याप्यताको समझना चाहिये॥ ६४—६६॥

पाँच भूतोंका यह विस्तार ही 'प्रपंच' कहलाता है। सर्वसमष्टिका जो आत्मा है, उसीका नाम 'विराट्' है और पृथ्वीतत्त्वसे लेकर क्रमशः शिवतत्त्वतक जो तत्त्वोंका समुदाय है, वही 'ब्रह्माण्ड' है। वह क्रमशः तत्त्वसमूहमें लीन होता हुआ अन्ततोगत्वा सबके जीवनभूत चैतन्यमय परमेश्वरमें ही लयको प्राप्त होता है और सृष्टिकालमें फिर शक्तिद्वारा शिवसे निकलकर स्थूल प्रपंचके रूपमें प्रलय-कालपर्यन्त सुखपूर्वक स्थित रहता है॥ ६७—६९॥

अपनी इच्छासे संसारकी सृष्टिके लिये उद्यत हुए महेश्वरका जो प्रथम परिस्पन्द है, उसे 'शिवतत्त्व' कहते हैं। यही इच्छाशक्ति-तत्त्व है; क्योंकि सम्पूर्ण कृत्योंमें इसीका अनुवर्तन होता है॥ ७०१/२॥

मुनीश्वर! ज्ञान और क्रिया—इन दो शक्तियोंमें जब ज्ञानका आधिक्य हो, तब उसे सदाशिवतत्त्व समझना

चाहिये; जब क्रिया-शक्तिका उद्रेक हो तब उसे महेश्वरतत्त्व जानना चाहिये तथा जब ज्ञान और क्रिया दोनों शक्तियाँ समान हों तब वहाँ शुद्ध विद्यात्मक-तत्त्व समझना चाहिये॥ ७१-७२॥

समस्त भाव-पदार्थ परमेश्वरके अंगभूत ही हैं; तथापि उनमें जो भेदबुद्धि होती है, उसका नाम माया-तत्त्व है। जब शिव अपने परम ऐश्वर्यशाली रूपको मायासे निगृहीत करके सम्पूर्ण पदार्थोंको ग्रहण करने लगते हैं, तब उनका नाम 'पुरुष' होता है। '**तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्**' (उस शरीरको रचकर स्वयं उसमें प्रविष्ट हुआ) इस श्रुतिने उनके इसी स्वरूपका प्रतिपादन किया है अथवा इसी तत्त्वका प्रतिपादन करनेके लिये उक्त श्रुतिका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ७३-७४॥

यही पुरुष मायासे मोहित होकर संसारी (संसारबन्धनमें बँधा हुआ) पशु कहलाता है। शिवतत्त्वके ज्ञानसे शून्य होनेके कारण उसकी बुद्धि नाना कर्मोंमें आसक्त हो मूढ़ताको प्राप्त हो जाती है। वह जगत्‌को शिवसे अभिन्न नहीं जानता तथा अपनेको भी शिवसे भिन्न ही समझता है। प्रभो! यदि शिवसे अपनी तथा जगत्‌की अभिन्नताका बोध हो जाय तो इस पशु (जीव)-को मोहका बन्धन न प्राप्त हो। जैसे इन्द्रजाल-विद्याके ज्ञाता (बाजीगर)- को अपनी रची हुई अद्भुत वस्तुओंके विषयमें मोह या भ्रम नहीं होता है, उसी प्रकार ज्ञानयोगीको भी नहीं होता। गुरुके उपदेशद्वारा अपने ऐश्वर्यका बोध प्राप्त हो जानेपर वह चिदानन्दघन शिवरूप ही हो जाता है॥ ७५—७७॥

शिवकी पाँच शक्तियाँ हैं—१-सर्व-कर्तृत्वरूपा, २-सर्वतत्त्वरूपा, ३-पूर्णत्वरूपा, ४-नित्यत्वरूपा और ५-व्यापकत्वरूपा। ये शक्तियाँ सूर्यके समान अपने स्वरूपको संकुचित करनेमें भी समर्थ हैं। संकुचित होनेपर भी ये सदैव भासित होती रहती हैं॥ ७८-७९॥

जीवकी पाँच कलाएँ हैं—१-कला, २-विद्या, ३-राग, ४-काल और ५-नियति। इन्हें कलापंचक कहते हैं। जो यहाँ पाँच तत्त्वोंके रूपमें प्रकट होती है, उसका नाम 'कला' है। जो कुछ-कुछ कर्तृत्वमें हेतु बनती है और कुछ तत्त्वका साधन होती है, उस कलाका नाम 'विद्या' है। जो विषयोंमें आसक्ति पैदा करनेवाली है, उस कलाका नाम 'राग' है॥ ८०-८१॥

जो भाव पदार्थों और प्रकाशोंका भासनात्मकरूपसे क्रमशः अवच्छेदक होकर सम्पूर्ण भूतोंका आदि कहलाता है, वही 'काल' है। यह मेरा कर्तव्य है और यह नहीं है—इस प्रकार नियन्त्रण करनेवाली जो विभुकी शक्ति है, उसका नाम 'नियति' है। उसके आक्षेपसे जीवका पतन होता है। ये पाँचों ही जीवके स्वरूपको आच्छादित करनेवाले आवरण हैं। इसलिये 'पंचकंचुक' कहे गये हैं। इनके निवारणके लिये अन्तरंग साधनकी आवश्यकता है॥ ८२—८४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें शिवतत्त्ववर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

अद्वैत शैववाद एवं सृष्टिप्रक्रियाका प्रतिपादन

वामदेवजी बोले—हे भगवन्! आपने पहले कहा कि प्रकृतिके नीचे नियति और ऊपर पुरुष है, अब आप अन्यथा कैसे कह रहे हैं? हे प्रभो! मायासे जिसका स्वरूप ढका हुआ है, उस जीवरूप पुरुषको तो मायासे नीचे होना चाहिये। हे नाथ! आप मेरा यह सन्देह तत्त्वतः दूर कीजिये॥ १-२॥

सुब्रह्मण्य बोले—यह अद्वैत शैववाद है, जो किसी भी प्रकार द्वैतमतको स्वीकार नहीं करता है; क्योंकि द्वैत नश्वर है और अद्वैत अविनाशी परब्रह्म है। शिवजी सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश्वर, निर्गुण, त्रिदेवोंके जनक, ब्रह्म एवं सच्चिदानन्द स्वरूपवाले हैं॥ ३-४॥

वही महादेव शंकर अपनी इच्छासे तथा अपनी मायासे संकुचितरूप धारणकर पुरुषरूप हो गये॥ ५॥

कलादि पंचकंचुकके कारण यह पुरुष भोक्ता बनता

है तथा प्रकृतिमें रहकर प्रकृतिके गुणोंको भोगता है। इस प्रकार दोनों स्थानमें स्थित होनेपर भी पुरुषका प्रकृतिसे कोई विरोध नहीं है, क्योंकि वह अपने रूपको संकुचित करनेपर भी ज्ञानरूपसे समष्टिमें स्थित है॥ ६-७॥

वह सत्त्व गुणोंसे साध्य है एवं बुद्धि आदि त्रितयसे युक्त है, सत्त्व आदि गुणोंके कारण वह चित्-प्रकृतितत्त्व भी है। सात्त्विक आदि भेदसे तीनों गुण प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं, इन्हीं गुणोंसे वस्तुका निश्चय करानेवाली बुद्धि उत्पन्न हुई है। उस बुद्धिसे महान्, महान्से अहंकार, अहंकारसे ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं, [उसी तैजस अहंकारसे मन भी उत्पन्न हुआ है।] मनका रूप संकल्प-विकल्पात्मक है॥ ८—१०॥

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और नासिका—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये श्रोत्र आदिके क्रमसे ज्ञानेन्द्रियोंके गुण कहे गये हैं। वैकारिक अहंकारसे क्रमशः तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं॥ ११-१२॥

तत्त्वद्रष्टा मुनियोंने उन तन्मात्राओंको सूक्ष्म [भूत] कहा है। कर्मेन्द्रियोंको उनके कार्योंके सहित समझना चाहिये। हे विप्रर्षे! वे वाणी, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ हैं; उनके कार्य बोलना, ग्रहण करना, चलना, मलत्याग तथा आनन्द लेना है। भूतादि अहंकारसे क्रमशः तन्मात्राओंकी उत्पत्ति हुई है, उन्हीं सूक्ष्मभूतोंको शब्दादि सूक्ष्म तन्मात्रा कहा जाता है॥ १३—१५॥

उन्हींसे क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वीकी उत्पत्ति जाननी चाहिये। हे मुनिशार्दूल! इन्हें ही पंचभूत भी कहा जाता है। अवकाश प्रदान करना, वहन करना, पकाना, वेग एवं धारण करना—ये उनके कार्य कहे गये हैं॥ १६-१७॥

वामदेवजी बोले—हे स्कन्द! आपने पहले कलाओंसे भूतसृष्टि कही थी, किंतु अब आप इसके विपरीत क्यों कह रहे हैं, इस विषयमें मुझे महान् सन्देह हो रहा है। आपने कहा था 'हे वामदेव! अकार आत्मतत्त्व है, उकार विद्यातत्त्व है, मकार शिवतत्त्व है, ऐसा समझना चाहिये। बिन्दु-नादको सर्वतत्त्वार्थक जानना चाहिये। हे मुने! उसके जो देवता हैं, उन्हें अब सुनिये। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिव—ये सभी साक्षात् शिवकी ही मूर्तियाँ हैं, जो श्रुतिमें कही गयी हैं'—ऐसा आपने पहले कहा था, किंतु अब उसके विपरीत कह रहे हैं कि ये तन्मात्राओंसे होती हैं, मुझे इस विषयमें महान् सन्देह है। हे स्कन्दजी! आप दया करके इस सन्देहको दूर कीजिये। मुनिका यह वचन सुनकर कुमार कहने लगे—॥ १८—२३॥

श्रीसुब्रह्मण्य बोले—हे मुने! हे महाप्राज्ञ! **'तस्माद्वा'** इस श्रुतिसे प्रारम्भकर भूतसृष्टिक्रमको मैं कह रहा हूँ, उसे सावधान होकर आदरपूर्वक सुनें॥ २४॥

कलाओंसे पंचमहाभूत उत्पन्न हुए हैं। यह तो निश्चित ही है। अतः स्थूल प्रपंचरूप वे पंचमहाभूत शिवजीके शरीर हैं। शिवतत्त्वसे लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त सभी तत्त्व क्रमसे तन्मात्राओंद्वारा उत्पन्न होते हैं। हे मुने! अब मैं क्रमसे उन्हीं तत्त्वोंको कहूँगा॥ २५-२६॥

सभी भूतोंके जो कारण हैं, वे कला तथा तन्मात्राएँ एक ही वस्तु हैं। हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! इनमें विरोध मत समझिये॥ २७॥

इस स्थूल-सूक्ष्मात्मक संसारमें नक्षत्रोंके सहित सूर्य, चन्द्रादि ग्रह तथा अन्य ज्योतिर्गण उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि देवता, समस्त भूतसमुदाय, इन्द्रादि दिक्पाल, देवता, पितर, असुर, राक्षस, मनुष्य एवं अन्य प्रकारके जंगम प्राणी, पशु, पक्षी, कीट, पन्नग (सर्प) आदि नाम भेदवाले जीव, वृक्ष, गुल्म, लता, औषधि, पर्वत, गंगा आदि आठ प्रसिद्ध नदियाँ तथा महान् ऋद्धिसम्पन्न सात समुद्र और जो कुछ भी वस्तुएँ हैं, वे सब इसीमें प्रतिष्ठित हैं, बाहर नहीं, हे मुनिश्रेष्ठ! इसे बुद्धिसे विचार करना चाहिये॥ २८—३२॥

शिवज्ञानविशारद आप-जैसे बुद्धिमानोंको इसीकी उपासना करनी चाहिये; क्योंकि यह सारा स्त्री-पुरुषरूप विश्व शिवशक्तिस्वरूप है॥ ३३॥

हे मुने! यह सब ब्रह्म है, यह सब रुद्र है—ऐसा मानकर उपासना करनी चाहिये—श्रुति ऐसा कहती है तथा इसीलिये सदाशिव इस प्रपंचकी आत्मा कहे जाते हैं॥ ३४॥

अड़तीस कलाओंके न्याससम्पादनमें जो समर्थ हैं तथा 'मैं सदा शिवसे सर्वथा अभिन्न हूँ', ऐसी अद्वैत भावनासे युक्त जो गुरु हैं, वे साक्षात् सदाशिव ही हैं तथा शिवस्वरूप गुरु ही प्रपंच, देवता, यन्त्र तथा मन्त्रस्वरूप भी हैं, इसमें संशय नहीं है। इस प्रकारसे विचार करनेवाला वह श्रेष्ठ शिष्य गुरुकी भाँति शिवस्वरूप हो जाता है॥ ३५-३६॥

हे विप्र! आचार्यकी कृपासे सभी बन्धनोंसे मुक्त होकर शिवजीके चरणोंमें आसक्त हुआ शिष्य निश्चित रूपसे महान् आत्मावाला हो जाता है॥ ३७॥

[इस जगत्‌में] जो भी वस्तु है, वह सब गुणोंकी प्रधानताके कारण समष्टि और व्यष्टिरूपसे प्रणवके ही अर्थको कहती है। रागादि दोषोंसे रहित, वेदोंका सारस्वरूप, शिवप्रिय तथा शिवजीद्वारा कथित यह अद्वैतज्ञान मैंने आपसे प्रेमपूर्वक कह दिया॥ ३८-३९॥

जो अहंकारमें भरकर मेरी बातको मिथ्या कहेगा, वह देवता, दानव, सिद्ध, गन्धर्व अथवा मनुष्य कोई भी हो, मैं अवश्य ही उस दुरात्माका सिर शत्रुओंके लिये कालाग्निके समान अपनी महान् शक्तिसे काट दूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०-४१॥

हे मुने! आप तो साक्षात् शैवाद्वैतवेत्ताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और शिवज्ञानके उपदेश [करनेमें कुशल] तथा शिवाचारके प्रदर्शक हैं, जिन आपके देहकी भस्मके स्पर्शमात्रसे अपवित्र महापिशाचने भी पापराशिको ध्वस्तकर आपकी कृपासे सद्‌गतिको प्राप्त किया था*॥ ४२-४३॥

त्रैलोक्यका ऐश्वर्य धारण करनेवाले आप शिवयोगी कहे जाते हैं। आपकी कृपादृष्टिके पड़ते ही पशु भी पशुपति अर्थात् साक्षात् शिव हो जाता है। आपने जो आदरपूर्वक मुझसे प्रश्न किया, वह तो केवल लोकशिक्षाके लिये किया; क्योंकि साधुलोग लोकोपकारके लिये ही इस लोकमें विचरण करते हैं॥ ४४-४५॥

यह परम रहस्य सदा आपमें प्रतिष्ठित है ही, अत: आप श्रद्धा एवं भक्तिभावसे आदरपूर्वक अपने मनको प्रणवमें लगाकर उन संसारी जीवोंको परमेश्वरमें युक्त करके उन्हें भस्म और रुद्राक्षमाला [धारण-विधिके उपदेश]-सहित शिवाचारकी शिक्षा प्रदान करें॥ ४६-४७॥

आप कल्याणमय हैं, शैवोचित आचरण करते हैं और अद्वैत भावनाको प्राप्त हैं, अत: लोकरक्षाहेतु विचरण करते हुए आप अक्षय सुख प्राप्त करें॥ ४८॥

सूतजी बोले—स्कन्दजीद्वारा कथित इस अद्भुत वेदान्तनिष्ठित मतको सुनकर महर्षि वामदेव विनम्र हो कार्तिकेयको पृथ्वीपर बार-बार दण्डवत् प्रणामकर उनके चरणकमलके मकरन्दका भ्रमरके समान आस्वादन करते हुए तत्त्वज्ञ हो गये॥ ४९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें शिवाद्वैतज्ञानकथनादिसृष्टिकथन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

संन्यासपद्धतिमें शिष्य बनानेकी विधि

शौनकजी बोले—[हे सूतजी!] तब वेदान्तसारस्वरूप उस परम अद्भुत रहस्यको सुनकर वामदेवने महेश्वरपुत्र कार्तिकेयसे [और] क्या पूछा? शिवज्ञानमें सदा तत्पर रहनेवाले योगी वामदेव धन्य हैं, जिनके सम्बन्धसे इस प्रकारकी दिव्य एवं परम पावनी कथा उत्पन्न हुई॥ १-२॥

इस प्रकार मुनियोंके उस स्नेहयुक्त वचनको सुनकर शिवमें आसक्त चित्तवाले बुद्धिमान् सूतजी प्रसन्न होकर उनसे कहने लगे—॥ ३॥

सूतजी बोले—आपलोग महादेवके भक्त एवं लोकोपकारी हैं, अत: धन्य हैं। हे मुनियो! अब आप सभी लोग उन दोनोंके संवादको पुन: सुनें॥ ४॥

* स्कन्दपुराणके ब्राह्मखण्डान्तर्गत ब्रह्मोत्तर नामक उपखण्डके पन्द्रहवें अध्यायमें भस्ममाहात्म्यके प्रसंगमें यह कथा आयी है।

इस प्रकार महेशपुत्र स्कन्दके द्वैतनाशक तथा अद्वैतज्ञानको उत्पन्न करनेवाले वचनको सुनकर महर्षि [वामदेव] प्रसन्न हुए। शिवपुत्र कार्तिकेयको बार-बार नमस्कार करके तथा उनकी स्तुति करके महामुनिने विनयपूर्वक पुनः पूछा— ॥ ५-६ ॥

वामदेव बोले—हे भगवन्! हे सर्वतत्त्वज्ञ! हे अमृतवारिधि कार्तिकेय! इन आत्मज्ञानी यतियोंका गुरुत्व कैसे है? जीवोंको भोग-मोक्षादिकी सिद्धि किस कारणसे होती है? सम्प्रदायकी परम्पराके बिना इन्हें उपदेशमें अधिकार क्यों नहीं है? ॥ ७-८ ॥

इनका इस प्रकार क्षौरकर्म क्यों होता है तथा ऐसा अभिषेक क्यों किया जाता है? इन सभी बातोंको बताइये। हे स्वामिन्! आप मेरा सन्देह दूर करनेकी कृपा कीजिये। वामदेवका यह वचन सुनकर कार्तिकेयजी मनमें शिव तथा पार्वतीका ध्यान करते हुए कहने लगे— ॥ ९-१० ॥

श्रीसुब्रह्मण्य बोले—अब मैं आपके स्नेहवश योगपट्टका वर्णन करूँगा, जिसके कारण गुरुत्व प्राप्त होता है। हे वामदेव! यह अत्यन्त गोपनीय तथा मुक्तिप्रद है॥ ११ ॥

वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष अथवा माघमासके शुक्लपक्षमें, उत्तम दिनमें पंचमी अथवा पूर्णमासीको प्रातःकालकी नित्य कर्मविधि समाप्तकर शिष्य गुरुकी आज्ञासे स्थिरचित्त होकर नियमपूर्वक स्नान करके पर्यंक अर्थात् आसनकी शुद्धि करे तथा उसके बाद वस्त्रसे अपने शरीरको पोंछकर दूना डोरा बाँध करके कटिवस्त्र एवं उत्तरीय धारण करे, फिर पैर धोकर दो बार आचमन करके सद्योजातादि मन्त्रसे विधिपूर्वक भस्म धारण करे। इसके बाद फिर भस्म लेकर उसे सारे शरीरमें लगाये॥ १२—१५ ॥

हे मुने! तब आचार्य प्रसन्न होकर शिष्यका हाथ ग्रहण करे और वह शिष्य दोनों हाथोंसे अंजलि बनाकर पूर्वाभिमुख अलंकृत मण्डपमें जहाँ कुश, उसके ऊपर मृगचर्म तथा उसपर वस्त्र बिछा हो—ऐसे आसनपर बैठे॥ १६-१७॥

इसके बाद आचार्यको चाहिये कि अपने हाथमें आधारसहित शंख लेकर अस्त्रमन्त्रसे उसे शुद्ध करके [शिष्यके प्रति अनुकूल होकर उसके आगे] आधारपर स्थापित करे॥ १८ ॥

तत्पश्चात् आधारसहित शंखकी कुसुमादिसे पूजाकर कवच एवं अस्त्रमन्त्रसे उस शंखमें शोधित किया गया उत्तम जल डाले और पूर्ववत् पुनः कथित षडंगके क्रमसे उसका पूजनकर प्रणवमन्त्रसे सात बार उस जलको अभिमन्त्रित करे। पुनः गन्ध, पुष्प आदिसे पूजनकर धूप तथा दीप दिखाकर अस्त्र-मन्त्रसे रक्षा करके उस शंखको कवचमन्त्रसे अवगुण्ठित करे॥ १९—२१ ॥

उसके बाद आचार्य स्वयं धेनु और शंखमुद्रा दिखाये। तदनन्तर उस शंखको अपने आगे दक्षिण दिशामें उत्तम स्थानपर रखकर पूजाके अर्घ्यविधानके अनुसार उत्तम तथा शुभ मण्डलका निर्माण करे और सुगन्धित पुष्पोंसे उसकी पूजा करे॥ २२-२३ ॥

[उस मण्डलपर] आधारसहित, शोधित, धूपित, सूतसे आवेष्टित तथा सुगन्धित निर्मल जलसे भरा हुआ उत्तम घट स्थापित करे। हे मुनीश्वर! उसमें पाँच वृक्षों [पीपल, प्लक्ष, गूलर, आम तथा बरगद]-की छाल, पंचपल्लव रखे और पाँच प्रकारकी मिट्टीमें सुगन्धित जल मिलाकर कलशमें उसीसे लेप करे। इसके बाद वस्त्र, आम्रपत्र, दूर्वादल, [कुशाग्र], नारियल तथा फूलोंसे कलशको पूर्ण करे। इसी प्रकार अन्य वस्तुओंसे भी उस घटको अलंकृत करे॥ २४—२६ ॥

हे मुनीश्वर! उस घटमें पंचरत्न अथवा उसके अभावमें भक्तिपूर्वक केवल सुवर्ण डाले। नीलम, माणिक्य, सुवर्ण, मूँगा, गोमेद—इन्हें पंचरत्न कहा गया है॥ २७-२८ ॥

'नृम्लुस्क' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करते हुए **'ग्लूम्'** इस बीजको अन्तमें लगाकर आचार्य प्रेमसे विधिपूर्वक आधारशक्तिसे लेकर पंचावरणपर्यन्त उन-उन देवोंका आवाहनकर पूजा करे॥ २९-३० ॥

तत्पश्चात् पायसका नैवेद्य अर्पितकर पूर्वकी भाँति ताम्बूलादि उपचारोंको समर्पित करे और [शर्व आदि] आठ नामोंसे पूजन करे। तदुपरान्त अष्टोत्तरशत प्रणवका उच्चारण करके उस [घट]-को अभिमन्त्रित करे। उसके अनन्तर पंच ब्रह्ममन्त्रोंसे सद्योजातादिका अर्चनकर [मुद्राओंका] प्रदर्शन करते हुए अस्त्रमन्त्रसे रक्षण तथा कवचमन्त्रसे अवगुण्ठन करे। इसके पश्चात् भक्तिपूर्वक धूप एवं दीप दिखाकर बादमें धेनु और योनि नामक मुद्राएँ प्रदर्शित करे॥ ३१—३३ ॥

उसके बाद आचार्य उस शिष्यके मस्तकको कुशोंसे ढँककर मण्डलके ईशानकोणमें चौकोर मण्डलका निर्माण करे। उसके ऊपर विधिपूर्वक सुन्दर आसन रखकर उसपर उस शिशु शिष्यको प्रेमपूर्वक बैठाये॥ ३४-३५॥

उसके बाद कलशको उठाकर स्वस्तिवाचन करते हुए गुरु प्रदक्षिणक्रमसे अपने शिष्यके मस्तकपर अभिषेक करे। तदनन्तर प्रणवका सात बार उच्चारणकर पंचब्रह्मके मन्त्रोंसे अभिषेककर शंखका जल उसके चारों ओर अभिवेष्टित कर दे॥ ३६-३७॥

तदनन्तर मनोहर दीप दिखाकर वस्त्रसे पोंछकर नये डोरेसे युक्त वस्त्र तथा कौपीन धारण कराये॥ ३८॥

इसके बाद पैर धोकर तथा दो बार आचमन कराके भस्म लगाकर आचार्य अपने हाथोंसे उसके दोनों हाथोंको पकड़कर मण्डपके मध्यमें उसे ले जाय। पुनः गुरु उसके अंगोंमें विधिपूर्वक भस्म लगाकर उसके लिये रखे हुए आसनपर सुखपूर्वक बैठाये॥ ३९-४०॥

तदनन्तर पूर्वकी ओर मुखकर बैठे हुए शिष्यको आत्मतत्त्वज्ञानका अभिलाषी जानकर अपने आसनपर बैठा हुआ आचार्य उससे कहे—विशुद्ध आत्मावाले हो जाओ। तत्पश्चात् गुरु 'परिपूर्ण शिव हूँ'—ऐसा कहकर अचल हो दो घड़ीतकके लिये स्थिरचित्त हो समाधिमें लीन रहे। इसके बाद नेत्र खोलकर अपने सामने अंजलि बाँधकर खड़े हुए अपने शिष्यकी ओर प्रेमसे देखे॥ ४१—४३॥

इसके बाद भस्मलिप्त अपने हाथको शिष्यके मस्तकपर रखकर दाहिने कानमें **'हंसः सोऽहम्'** इस मन्त्रका स्पष्ट उपदेश करे और शिष्यसे कहे कि इस मन्त्रके आद्य पद अहंका अर्थ स्वयं वे शक्त्यात्मा शिव हैं, वही शिव मैं हूँ—ऐसा अपने मनमें विचार करो॥ ४४-४५॥

'य इत्यणो०' इत्यादि मन्त्रके अर्थतत्त्वका उपदेशकर बादमें ब्रह्मके परोक्ष ज्ञानको कहनेवाले महावाक्योंको मैं तुमसे कहता हूँ, हे ब्रह्मन्! सावधान होकर सुनो और उन्हें चित्तमें धारण करो—इस प्रकार कहकर स्पष्ट रूपसे उन महावाक्योंका उपदेश करे॥ ४६-४७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासपद्धतिमें शिष्यकरणविधि नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

महावाक्योंके तात्पर्य तथा योगपट्टविधिका वर्णन

सुब्रह्मण्य बोले—अब महावाक्योंको कहता हूँ—

१-**प्रज्ञानं ब्रह्म**—ब्रह्म उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप अथवा चैतन्यरूप है। (ऐतरेय० ३। ३ तथा आत्मप्र० १)

२-**अहं ब्रह्मास्मि**—वह ब्रह्म मैं हूँ। (बृहदारण्यक० १। ४। १०)

३-**तत्त्वमसि**—वह ब्रह्म तू है। (छा० उ० अ० ६ ख० ८ से १६ तक)

४-**अयमात्मा ब्रह्म**—यह आत्मा ब्रह्म है। (माण्डूक्य० २; बृह० २। ५। १९)

५-**ईशा वास्यमिदꣳ सर्वम्**—यह सब ईश्वरसे व्याप्त है। (ईशा० १)

६-**प्राणोऽस्मि**—मैं प्राण हूँ। (कौषी० ३)

७-**प्रज्ञानात्मा**—प्रज्ञानस्वरूप हूँ। (कौषी० ३)

८-**यदेवेह तदमुत्र तदन्विह**—जो परब्रह्म यहाँ है, वही वहाँ (परलोकमें) भी है; जो वहाँ है, वही यहाँ (इस लोकमें) भी है। (कठ० २। १। १०)

९-**अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि**—वह ब्रह्म विदित (ज्ञात वस्तुओं)-से भिन्न है और अविदित (अज्ञात)-से भी ऊपर है। (केन० १। ३)

१०-**एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः**—वह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है। (बृह० ३। ७। ३—२३)

११-**स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः**—वह जो यह पुरुषमें है और वह जो यह आदित्यमें है, एक ही है। (तैत्तिरीय० २। ८)

१२-**अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम्**—मैं परापरस्वरूप परात्पर परब्रह्म हूँ।

१३-**वेदशास्त्रगुरूणां तु स्वयमानन्दलक्षणम्**—वेदों, शास्त्रों और गुरुजनोंके वचनोंसे स्वयं ही हृदयमें आनन्दस्वरूप ब्रह्मका अनुभव होने लगता है।

१४-**सर्वभूतस्थितं ब्रह्म तदेवाहं न संशयः**—जो सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित है, वही ब्रह्म मैं हूँ—इसमें संशय नहीं है।

१५-**तत्त्वस्य प्राणोऽहमस्मि पृथिव्याः प्राणोऽहमस्मि**—मैं तत्त्वका प्राण हूँ, पृथ्वीका प्राण हूँ।

१६-**अपां च प्राणोऽहमस्मि तेजसश्च प्राणोऽहमस्मि**—मैं जलका प्राण हूँ, तेजका प्राण हूँ।

१७-**वायोश्च प्राणोऽहमस्मि आकाशस्य प्राणोऽहमस्मि**—मैं वायुका प्राण हूँ, मैं आकाशका प्राण हूँ।

१८-**त्रिगुणस्य प्राणोऽहमस्मि**—मैं त्रिगुणका प्राण हूँ।

१९-**सर्वोऽहं सर्वात्मको संसारी यद्भूतं यच्च भव्यं यद्वर्तमानं सर्वात्मकत्वादद्वितीयोऽहम्**—मैं सब हूँ, सर्वरूप हूँ, संसारी जीवात्मा हूँ; जो भूत, वर्तमान और भविष्य है, वह सब मेरा ही स्वरूप होनेके कारण मैं अद्वितीय परमात्मा हूँ।

२०-**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**—यह सब निश्चय ही ब्रह्म है। (छान्दोग्य० ३। १४। १)

२१-**सर्वोऽहं विमुक्तोऽहम्**—मैं सर्वरूप हूँ, मुक्त हूँ।

२२-**योऽसौ सोऽहं हंसः सोऽहमस्मि**—जो वह है, वह मैं हूँ। मैं वह हूँ और वह मैं हूँ।

इस प्रकार सर्वत्र चिन्तन करे। अब इन महावाक्योंका भावार्थ कहते हैं—'**प्रज्ञानं ब्रह्म**' का वाक्यार्थ पहले ही समझाया जा चुका है। (अब '**अहं ब्रह्मास्मि**' का अर्थ बताया जाता है।) शक्तिस्वरूप अथवा शक्तियुक्त परमेश्वर ही '**अहम्**' पदके अर्थभूत हैं॥ १॥

'अकार' सब वर्णोंका अग्रगण्य, परम प्रकाश शिवरूप है। 'हकार'के व्योमस्वरूप होनेके कारण उसका शक्तिरूपसे वर्णन किया गया है। शिव और शक्तिके संयोगसे सदा आनन्द उदित होता है। ['मकार' उसी आनन्दका बोधक है।] 'ब्रह्म' शब्दसे शिवशक्तिकी सर्वरूपता स्पष्ट ही सूचित होती है॥ २-३॥

पहले ही इस बातका उपदेश किया गया है कि वह शक्तिमान् परमेश्वर मैं हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिये। [अब तत्त्वमसिका अर्थ कहते हैं—] '**तत्त्वमसि**' इस वाक्यमें तत्पदका वही अर्थ है, जो '**सोऽहमस्मि**' में '**सः**' पदका अर्थ बताया गया है अर्थात् तत्पद शक्त्यात्मक परमेश्वरका ही वाचक है, अन्यथा '**सोऽहम्**' इस वाक्यमें विपरीत अर्थकी भावना हो सकती है। क्योंकि '**अहम्**' पद पुँल्लिंग है, अतः '**सः**'के साथ उसका अन्वय हो जायगा; परंतु '**तत्**' पद नपुंसक है और '**त्वम्**' पुँल्लिंग, अतः परस्परविरोधीलिंग होनेके कारण उन दोनोंमें अन्वय नहीं हो सकता। जब दोनोंका अर्थ 'शक्तिमान् परमेश्वर' होगा, तब अर्थमें समानलिंगता होनेसे अन्वयमें अनुपपत्ति नहीं होगी। यदि ऐसा न माना जाय तो स्त्री-पुरुषरूप जगत्का कारण भी किसी और ही प्रकारका होगा। इसलिये '**सोऽहमस्मि**'का '**सः**' और '**तत्त्वमसि**'का **तत्**—ये दोनों समानार्थक हैं। इन महावाक्योंके उपदेशसे एक ही अर्थकी भावनाका विधान है॥ ४—६॥

[अब '**अयमात्मा ब्रह्म**'का अर्थ बताया जाता है—] '**अयमात्मा ब्रह्म**' इस वाक्यमें '**अयम्**' और '**आत्मा**'—ये दोनों पद पुँल्लिग-रूप हैं। अतः यहाँ अन्वयमें बाधा नहीं है। '**अयम्**' शक्तिमान् परमेश्वररूप आत्मा ब्रह्म है—यह इस वाक्यका तात्पर्य है। [अब '**ईशा वास्यमिदं सर्वम्**'का भावार्थ बता रहे हैं—] परमेश्वरसे रक्षणीय होनेके कारण यह सम्पूर्ण जगत् उनसे व्याप्त है। [अब '**प्राणोऽस्मि**' '**प्रज्ञानात्मा**' और '**यदेवेह तदमुत्र०**' इन वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है—] मैं प्रज्ञानस्वरूप प्राण हूँ। यहाँ प्राण शब्द परमेश्वरका ही वाचक है। जो यहाँ है, वह वहाँ है—ऐसा चिन्तन करे। यहाँ '**यत्, तत्**'का अर्थ क्रमशः '**यः**' और '**सः**' है अर्थात् जो परमात्मा यहाँ है, वह परमात्मा वहाँ है—ऐसा सिद्धान्तपक्षका अवलम्बन करनेवाले विद्वानोंने कहा है॥ ७-८॥

उपर्युक्त वाक्यमें '**यदमुत्र तदन्विह**' इस वाक्यांशका भाव यह है कि '**योऽमुत्र स इह स्थितः**' अर्थात् जो परमात्मा वहाँ परलोकमें स्थित है, वही यहाँ (इस लोकमें) भी स्थित है। इस प्रकार विद्वानोंको पहलेके समान ही

परमपुरुष परमात्मारूप अर्थ यहाँ अभीष्ट है॥ ९॥

[अब '**अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि**' इस वाक्यपर विचार करते हैं—] मुने! '**अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि**' इस वाक्यमें जिस प्रकार फलकी भी विपरीतताकी भावना होती है, उसे यहाँ बताता हूँ; सुनो। '**विदितात्**' यह पद '**अयथाविदितात्**' के अर्थमें प्रवृत्त हो सकता है। वह विदितसे भिन्न है अर्थात् जो असम्यग्रूपसे ज्ञात है, उससे भिन्न है। इसी प्रकार जो यथावत् रूपसे विदित नहीं है, उससे भी पृथक् है। इस कथनसे यह निश्चित होता है कि मुक्तिरूप फलकी सिद्धिके लिये कोई और ही तत्त्व है, जो विदिताविदितसे पर है। परंतु जो आत्मा है, वह सर्वरूप है, वह किसीसे अन्य नहीं हो सकता। अतः आत्मा या ब्रह्म आदि पद पूर्ववत् शक्तिमान् परमेश्वर शिवके ही बोधक हैं, यह मानना चाहिये॥ १०—१२॥

[अब '**एष त आत्मा**' तथा '**यश्चायं पुरुषे**' इन दो वाक्योंके अर्थपर विचार किया जाता है—] यह तुम्हारा अन्तर्यामी आत्मा है, जो स्वयं ही अमृतस्वरूप शिव है। यह जो पुरुषमें शम्भु है, वही सूर्यमें भी स्थित है। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो पुरुषमें है, वही आदित्यमें है। इन दोनोंमें पृथक्ता नहीं है। वह तत्त्व एक ही है। उसीको सर्वरूप कहा गया है। पुरुष और आदित्य—इन दो उपाधियोंसे युक्त जो अर्थ किया जाता है, वह औपचारिक है॥ १३-१४॥

उन शम्भुनाथको सब श्रुतियाँ हिरण्मय बताती हैं। '**हिरण्यबाहवे नमः**' इसमें जो 'बाहु' शब्द है, वह सब अंगोंका उपलक्षण है। अन्यथा उसे हिरण्यपति कहना किसी भी यत्नसे सम्भव नहीं होता। छान्दोग्योपनिषद्में जो यह श्रुति है—'**य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात् सर्व एव सुवर्णः।**' (छान्दोग्य० १।६।६) इसके द्वारा आदित्य-मण्डलान्तर्गत पुरुषको सुवर्णमय दाढ़ी-मूँछोंवाला, सुवर्णसदृश केशोंवाला तथा नखसे लेकर केशाग्रभागपर्यन्त सारा-का-सारा सुवर्णमय—प्रकाशमय ही बताया गया है। अतः वह हिरण्मय पुरुष साक्षात् शम्भु ही हैं॥ १५—१७॥

अब '**अहमस्मि परं ब्रह्म परापरपरात्परम्**' इस वाक्यका तात्पर्य बताता हूँ, सुनो। '**अहम्**' पदके अर्थभूत सत्यात्मा शिव ही बताये गये हैं। वे ही शिव मैं हूँ, ऐसी वाक्यार्थयोजना अवश्य होती है। उन्हींको सबसे उत्कृष्ट और सर्वस्वरूप परब्रह्म कहा गया है। उसके तीन भेद हैं—पर, अपर तथा परात्पर। रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु—ये तीन देवता श्रुतिने ही बताये हैं। ये ही क्रमशः पर, अपर तथा परात्पररूप हैं। इन तीनोंसे भी जो श्रेष्ठ देवता हैं, वे शम्भु 'परब्रह्म' शब्दसे कहे गये हैं॥ १८—२१॥

वेदों, शास्त्रों और गुरुके वचनोंके अभ्याससे शिष्यके हृदयमें स्वयं ही पूर्णानन्दमय शम्भुका प्रादुर्भाव होता है। सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें विराजमान शम्भु ब्रह्मरूप ही हैं। वही मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है। मैं शिव ही सम्पूर्ण तत्त्वसमुदायका प्राण हूँ॥ २२-२३॥

ऐसा कहकर स्कन्दजी फिर कहते हैं— मुने! मैं शिव आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व—इन तीनोंका प्राण हूँ। पृथिवी आदिका भी प्राण हूँ। पृथ्वी आदिके गुणोंतकका ग्रहण होनेसे यह समझ लो कि यहाँ सारे आत्मतत्त्व गृहीत हो गये। फिर सबका ग्रहण विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका भी ग्रहण कराता है॥ २४-२५॥

इन सब तत्त्वोंका मैं प्राण हूँ। मैं सर्व हूँ, सर्वात्मक हूँ, जीवका भी अन्तर्यामी होनेसे उसका भी जीव (आत्मा) हूँ। जो भूत, वर्तमान और भविष्यत्काल है, वह सब मेरा स्वरूप होनेके कारण मैं ही हूँ। '**सर्वो वै रुद्रः**' (सब कुछ रुद्र ही है)—यह श्रुति साक्षात् शिवके मुखसे प्रकट हुई है। अतः शिव ही सर्वरूप हैं; क्योंकि उन्हींका इन समस्त उत्कृष्ट गुणोंसे नित्य सम्बन्ध है। अपने और परायेके भेदसे रहित होनेके कारण मैं ही अद्वितीय आत्मा हूँ। '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' इस वाक्यका अर्थ पहले बताया जा चुका है॥ २६—२९॥

मैं भावरूप होनेके कारण पूर्ण हूँ। नित्यमुक्त भी मैं ही हूँ। पशु (जीव) मेरी कृपासे मुक्त होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त होते हैं। जो सर्वात्मक शम्भु हैं, वही मैं हूँ। मैं हंसरूप तथा शिवरूप हूँ। वामदेव! इस

प्रकार सम्पूर्ण वाक्योंके अर्थ भगवान् शिव ही बताये गये हैं॥ ३०-३१॥

ईशावास्योपनिषद्की श्रुतिके दो वाक्योंद्वारा प्रतिपादित अर्थ साक्षात् शिवकी एकताका ज्ञान प्रदान करनेवाला होता है। गुरुको चाहिये कि शिष्योंको इसका आदरपूर्वक उपदेश करे॥ ३२॥

गुरुको उचित है कि वे आधारसहित शंखको लेकर अस्त्र-मन्त्र (फट्)-से तथा भस्मद्वारा उसकी शुद्धि करके उसे अपने सामने पूजित हुए चौकोर मण्डलमें स्थापित करे। फिर ओंकारका उच्चारण करके गन्ध आदिके द्वारा उस शंखकी पूजा करे। उसमें वस्त्र लपेट दे और सुगन्धित जल भरकर प्रणवका उच्चारण करते हुए उसका पूजन करे॥ ३३-३४॥

तत्पश्चात् सात बार प्रणवके द्वारा फिर उस शंखको अभिमन्त्रित करके शिष्यसे कहे—'हे शिष्य! जो थोड़ा-सा भी अन्तर करता है—भेदभाव रखता है, वह भयका भागी होता है। यह श्रुतिका सिद्धान्त बताया गया, इसलिये तुम अपने चित्तको स्थिर करके निर्भय हो जाओ*।' ऐसा कहकर गुरु स्वयं महादेवजीका ध्यान करते हुए उन्हींके रूपमें शिष्यका अर्चन करे॥ ३५-३६॥

शिष्यके आसनकी पूजा करके उसमें शिवके आसन और शिवकी मूर्तिकी भावना करे। फिर सिरसे पैरतक **'सद्योजातादि'** पाँच मन्त्रोंका न्यास करके मस्तक, मुख और कलाओंके भेदसे प्रणवकी कलाओंका भी न्यास करे। शिष्यके शरीरमें अड़तीस मन्त्ररूपा प्रणवकी कलाओंका न्यास करके उसके मस्तकपर शिवका आवाहन करे। तत्पश्चात् स्थापनी आदि मुद्राओंका प्रदर्शन करे। फिर सर्वज्ञादि मन्त्रसे क्रमशः अंगन्यास करके आसनपूर्वक षोडश उपचारोंकी कल्पना करे॥ ३७—४०॥

खीरका नैवेद्य अर्पण करके **'ॐ स्वाहा'** का उच्चारण करे। कुल्ला और आचमन कराये। अर्घ्य आदि देकर क्रमशः धूप-दीपादि समर्पित करे। शिवके आठ नामोंसे पूजन करके वेदोंके पारंगत ब्राह्मणोंके साथ **'ब्रह्मविदाप्नोति परम्'** इत्यादि ब्रह्मानन्दवल्लीके मन्त्रोंको तथा **'भृगुर्वै वारुणिः'** इत्यादि भृगुवल्लीके मन्त्रोंको पढ़े॥ ४१-४२॥

तत्पश्चात् **'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्'**—(१०।३) से लेकर **'तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः'** (१०।८) तक [महानारायणोपनिषद्के मन्त्रोंका] पाठ करे। इसके बाद शिष्यके सामने कह्लार आदिकी बनी हुई माला लेकर खड़े हो गुरु शिवनिर्मित पांचास्यिक शास्त्रके सिद्धिस्कन्धका धीरे-धीरे जप करे। अनुकूल चित्तसे **'ख्यातिः पूर्णोऽहम्'** इस मन्त्रतकका जप करके गुरु उस मालाको शिष्यके कण्ठमें पहना दे॥ ४३—४५॥

तदनन्तर ललाटमें तिलक लगाकर सम्प्रदायके अनुसार उसके सर्वांगमें विधिवत् चन्दनका लेप कराये। तत्पश्चात् गुरु प्रसन्नतापूर्वक श्रीपादयुक्त नाम देकर शिष्यको छत्र और चरणपादुका अर्पित करे। उसे व्याख्यान देने तथा आवश्यक कर्म आदिके लिये गुर्वासन ग्रहण करनेका तथा दूर्वार्चनका अधिकार दे। फिर गुरु अपने उस शिवरूपी शिष्यपर अनुग्रह करके कहे—''तुम सदा समाधिस्थ रहकर 'मैं शिव हूँ' इस प्रकारकी भावना करते रहो।'' यों कहकर वह स्वयं शिष्यको नमस्कार करे॥ ४६—४९॥

फिर सम्प्रदायकी मर्यादाके अनुसार दूसरे लोग भी उसे नमस्कार करें। उस समय शिष्य उठकर गुरुको नमस्कार करे। अपने गुरुके गुरुको और उनके शिष्योंको भी मस्तक झुकाये॥ ५०॥

इस प्रकार नमस्कार करके सुशील शिष्य जब मौन और विनीतभावसे गुरुके समीप खड़ा हो, तब गुरु स्वयं उसे इस प्रकारका उपदेश दे—'बेटा! आजसे तुम समस्त लोकोंपर अनुग्रह करते रहो। यदि कोई शिष्य होनेके लिये आये तो पहले एक वर्षतक उसकी परीक्षा कर लो, फिर शास्त्रविधिके अनुसार उसे शिष्य बनाओ॥ ५१-५२॥

राग आदि दोषोंका त्याग करके निरन्तर शिवका चिन्तन करते रहो। श्रेष्ठ सम्प्रदायके सिद्ध पुरुषोंका संग

* यस्त्वन्तरं किञ्चिदपि कुरुतेऽस्त्यति भीतिभाक्॥ इत्याह श्रुतिसत्तत्त्वं दृष्ट्वात्मा गतभीर्भव। (शि० पु० कै० सं० १९। ३५-३६)

करो, दूसरोंका नहीं। प्राणोंपर संकट आ जाय तो भी शिवका पूजन किये बिना कभी भोजन न करो। गुरुभक्तिका आश्रय ले सुखी रहो, सुखी रहो।'* ॥ ५३-५४ ॥

इस उपदिष्ट क्रमसे दयालु, ज्ञानसागर श्रेष्ठ गुरु प्रसन्न चित्तसे शिष्यको अपने समान बना दे॥ ५५॥

मुनीश्वर वामदेव! तुम्हारे स्नेहवश अत्यन्त गोपनीय होनेपर भी मैंने यह योगपट्टका प्रकार तुम्हें बताया है। ऐसा कहकर स्कन्दने यतियोंपर कृपा करके उनसे संन्यासियोंके क्षौर और स्नानविधिका वर्णन किया॥ ५६-५७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें योगपट्टविधिवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

यतियोंके क्षौर-स्नानादिकी विधि तथा अन्य आचारोंका वर्णन

सुब्रह्मण्य बोले—हे वामदेव! हे महामुने! अब मैं क्षौर तथा स्नानविधि कहता हूँ, जिसके करनेसे यतिकी तत्क्षण परम शुद्धि होती है॥ १॥

हे मुनीश्वर! योगपट्टकी विधि प्राप्तकर शिष्य पूर्ण व्रती हो और तब क्षौर-कर्मके लिये उद्यत हो जाय॥ २॥

तदनन्तर गुरुको विशेषरूपसे नमस्कारकर उनसे आज्ञा लेकर सिर प्रक्षालन करके आचमन करे और वस्त्र पहने हुए ही क्षौरकर्म कराये॥ ३॥

[नापितके द्वारा] वस्त्रप्रक्षालन कराये, उसका क्षुरा मिट्टी और जलसे शुद्ध करवा ले। उस नापितके हाथमें मिट्टी देकर कहे कि इस मिट्टीसे हाथ शुद्ध करो॥ ४॥

प्रक्षालित क्षुरेको शिव-शिव कहते हुए किसी पत्रपर स्थापित करे, फिर अनामिका एवं अँगूठेको अभिमन्त्रितकर उन दोनों अँगुलियोंसे नेत्र बन्द करे। अस्त्र मन्त्रसे नेत्रोंको खोलकर क्षौरके साधनभूत क्षुरेको देखे। बारह बार अभिमन्त्रितकर अस्त्रमन्त्रसे क्षुरेको पुनः प्रक्षालित करे॥ ५-६॥

प्रणवका उच्चारणकर यति नापितके हाथमें क्षुरा देकर दाहिनी ओरसे क्षौर क्रिया कराये। उस समय आगेके कुछ बालोंको कटवाकर पुनः समस्त बालोंका वपन करवा ले॥ ७॥

एक पत्ता भूमिपर रखकर उसीके ऊपर बालोंको रखे, उन्हें पृथ्वीपर नहीं रखना चाहिये। मूँछ और हाथ-पैरके नाखून भी कटवा लेना चाहिये॥ ८॥

इसके बाद बेल, पीपल, तुलसी आदि वृक्षोंके स्थानकी मिट्टीका संग्रह करे। बारह बार जलमें डुबकी लगा किनारेपर जाकर बैठे। किसी शुद्ध स्थानपर उस मृत्तिकाको रख करके उसके तीन भाग करके पुनः एकके तीन भाग करे एवं अस्त्रमन्त्रद्वारा उसका प्रोक्षण तथा अभिमन्त्रण करे॥ ९-१०॥

उसमेंसे एक भाग मृत्तिका लेकर दूसरे हाथमें भी उसे रखकर बारह बार हाथोंमें लेपकर प्रत्येक बार जलसे दोनों हाथोंको धो डाले॥ ११॥

एक भागको दोनों पैरोंमें और शेष एक भागको मुखमें तथा हाथमें क्रमसे लगाकर जलसे धोकर पुनः जलमें प्रवेश करे॥ १२॥

इसके बाद मिट्टीके दूसरे भागको लेकर बारह बार क्रमशः सिरसे मुखपर्यन्त लेपकर बार-बार गोता लगाये और तटपर जाकर सोलह बार कुल्ला करके दो बार आचमन करे। पुनः ॐकारपूर्वक सोलह प्राणायाम करे॥ १३-१४॥

इसके पश्चात् अन्य मृत्तिकाको लेकर उसके तीन भाग करके उनमेंसे एक भागके द्वारा कटिशौच और पादशौच करके दो बार आचमन करे और मौन हो प्रणवमन्त्रसे सोलह बार प्राणायाम करे। फिर दूसरे भागको लेकर उसे ऊरुदेशपर रखकर प्रणवसे तीन भाग

* रागादिदोषान् संत्यज्य शिवध्यानपरो भव। सत्सम्प्रदायसंसिद्धैः सङ्गं कुरु न चेतरैः॥
अनभ्यर्च्य शिवं जातु मा भुङ्क्ष्वाप्राणसंक्षयम्। गुरुभक्तिं समास्थाय सुखी भव सुखी भव॥ (शि० पु० कै० सं० १९। ५३-५४)

करे। पुनः प्रोक्षणकर उसे सात बार अभिमन्त्रित करे। एक-एकके क्रमसे तीन बार दोनों हाथोंके तलवोंमें उसे लगाकर सबको पवित्र करनेवाली सूर्यमूर्तिका दर्शन करे॥ १५—१७॥

बुद्धिमान् शिष्य स्वस्थचित्त होकर मिट्टी लेकर दाहिने हाथसे बायीं काँख तथा बायें हाथसे दाहिनी काँखमें उसे लगाये। तत्पश्चात् गुरुभक्त शिष्य दूसरी शुद्ध मिट्टीको लेकर सूर्यको देखता हुआ सिरसे पैरतक उस मिट्टीको लगाये और उठ करके पृथ्वीपर स्थित दण्ड लेकर अपने मन्त्रदाता गुरुका भक्तिपूर्वक तत्त्वबुद्धिसे स्मरण करे। इसके बाद वह शिष्य भक्तिपूर्वक सर्वैश्वर्यपति, चन्द्रमाको धारण करनेवाले, पार्वतीसहित कल्याणमय महेश्वर शंकरजीका स्मरण करे॥ १८—२१॥

इसके बाद प्रेमपूर्वक तीन बार गुरु तथा शिवको साष्टांग प्रणाम करे, फिर उठकर उन्हें एक बार पंचांग प्रणाम करे॥ २२॥

इसके बाद जलमें प्रवेशकर बार-बार डुबकी लगानेके बाद कन्धेपर [तीर्थकी] मृत्तिका रखकर पहले बतायी गयी विधिसे शरीरमें लेप करे। अवशिष्ट मिट्टीको लेकर जलमें प्रविष्ट हो उसे मल करके अच्छी तरह सभी अंगोंमें लगाकर तीन बार ॐकारका उच्चारणकर संसारसागरसे पार करनेवाले शिवके चरणकमलका स्मरण करते हुए स्नान करे, इसके बाद विरजा भस्ममिश्रित जलसे शरीरके अंगोंका उपमार्जनकर भलीभाँति भस्मसे स्नान करे॥ २३—२६॥

उसके बाद शास्त्रविधिके अनुसार उत्तम त्रिपुण्ड्र धारण करके हे मुने! सावधानीसे यथोक्त सभी अंगोंमें भस्म लगाये॥ २७॥

इसके पश्चात् शुद्धचित्त होकर मध्याह्नकी क्रियाएँ सम्पादित करे। तदनन्तर महेश्वर, गुरुजनों तथा तीर्थों आदिको नमस्कारकर हे मुने! परम भक्तिपूर्वक ज्ञानदाता, त्रैलोक्यरक्षक साम्ब सदाशिवका पूजन करे॥ २८-२९॥

तत्पश्चात् स्वस्थचित्त हो उस शुद्ध यतिको अपने धर्ममें स्थित होकर ब्राह्मणों अथवा साधुओंके बीच भिक्षाके लिये जाना चाहिये। [शास्त्रकारोंके आदेशानुसार] वह शुद्धात्मा पाँच घरोंसे भिक्षा ग्रहण करे, किंतु दूषित अन्न कभी ग्रहण न करे॥ ३०-३१॥

भिक्षुके चार कर्म हैं—शौच, स्नान, भिक्षा तथा एकान्तवास; इसके अतिरिक्त पाँचवाँ कर्म नहीं है। लौकीका पात्र, वेणुका पात्र, लकड़ीका पात्र तथा मिट्टीका पात्र—ये चार प्रकारके पात्र भिक्षुकको ग्राह्य हैं, पाँचवाँ कोई अन्य नहीं॥ ३२-३३॥

ताम्बूल, स्वर्णादि धातुका पात्र, वीर्यसेचन, श्वेत वस्त्रधारण, दिनमें शयन तथा रात्रिमें भोजन—ये छः कर्म यतियोंके लिये सर्वथा वर्जित हैं॥ ३४॥

विपरीत आचरण करनेवाले साक्षर भी राक्षस कहे गये हैं, इसलिये यतिको विपरीत आचरण कभी नहीं करना चाहिये। यतिको शुद्धिके लिये शुद्ध सनातन शिवतत्त्वका स्मरण करते हुए यत्नपूर्वक क्षौर एवं स्नान करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार आपके स्नेहके कारण मैंने क्षौरस्नानकी सम्पूर्ण विधि कह दी, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३५—३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें क्षौरस्नानविधिवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

यतिके अन्त्येष्टिकर्मकी दशाहपर्यन्त विधिका वर्णन

वामदेवजी बोले—जो मुक्त यति हैं, उनके शरीरका दाहकर्म नहीं होता। मरनेपर उनके शरीरको गाड़ दिया जाता है, यह मैंने सुना है। मेरे गुरु कार्तिकेय! आप प्रसन्नतापूर्वक यतियोंके उस अन्त्येष्टिकर्मका मुझसे वर्णन कीजिये; क्योंकि तीनों लोकोंमें आपके सिवा दूसरा कोई इस विषयका वर्णन करनेवाला नहीं है॥ १-२॥

भगवन्! शंकरनन्दन! जो पूर्ण परब्रह्ममें अहंभावका आश्रय ले देहपंजरसे मुक्त हो गये हैं तथा जो उपासनाके

मार्गसे शरीरबन्धनसे मुक्त हो परमात्माको प्राप्त हुए हैं, उनकी गतिमें क्या अन्तर है—यह बताइये। प्रभो! मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये अच्छी तरह विचार करके प्रसन्नतापूर्वक मुझसे इस विषयका वर्णन कीजिये॥ ३-४॥

सूतजी बोले—मुनि वामदेवजीका निवेदन सुनकर देवशत्रुओंका नाश करनेवाले पार्वतीनन्दन स्कन्दजी शिवजीसे भृगुके द्वारा सुने गये परम रहस्यको कहने लगे— ॥ ५॥

सुब्रह्मण्य बोले—हे मुने! हे ब्रह्मन्! इस गुप्त बातका सर्वज्ञ सदाशिवने परम शैव भृगुसे जैसा वर्णन किया था। मैं वही आपसे कह रहा हूँ। यह ज्ञान जिस किसीको नहीं देना चाहये, इसे शान्तचित्त तथा शिवभक्तिसमन्वित शिष्यको ही देना चाहिये॥ ६-७॥

जो कोई यति समाधिस्थ हो शिवके चिन्तनपूर्वक अपने शरीरका परित्याग करता है, वह यदि महान् धीर हो तो परिपूर्ण शिवरूप हो जाता है; किंतु यदि कोई अधीरचित्त होनेके कारण समाधिलाभ नहीं कर पाता तो उसके लिये उपाय बताता हूँ; सावधान होकर सुनो॥ ८-९॥

वेदान्त-शास्त्रके वाक्योंसे जो ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीन पदार्थोंका परिज्ञान होता है, उसे गुरुके मुखसे सुनकर यति यम-नियमादिरूप योगका अभ्यास करे। उसे करते हुए वह भलीभाँति शिवके ध्यानमें तत्पर रहे। मुने! उसे नित्य नियमपूर्वक प्रणवके जप और अर्थचिन्तनमें मनको लगाये रखना चाहिये॥ १०-११॥

मुने! यदि देहकी दुर्बलताके कारण धीरता धारण करनेमें असमर्थ यति निष्कामभावसे शिवका स्मरण करके अपने जीर्ण शरीरको त्याग दे तो भगवान् सदाशिवके अनुग्रहसे नन्दीके भेजे हुए विख्यात पाँच आतिवाहिक देवता आते हैं॥ १२-१३॥

उनमेंसे कोई तो अग्निका अभिमानी, कोई ज्योतिःपुंजस्वरूप, कोई दिनाभिमानी, कोई शुक्लपक्षाभिमानी और कोई उत्तरायणका अभिमानी होता है। ये पाँचों सब प्राणियोंपर अनुग्रह करनेमें तत्पर रहते हैं। इसी तरह धूमाभिमानी, तमका अभिमानी, रात्रिका अभिमानी, कृष्णपक्षका अभिमानी और दक्षिणायनका अभिमानी—ये सब मिलकर पाँच होते हैं। ये पाँचों विख्यात देवता दक्षिण मार्गमें प्रसिद्ध हैं। महामुने वामदेव! अब तुम उन सब देवताओंकी वृत्तिका वर्णन सुनो॥ १४—१६॥

कर्मके अनुष्ठानमें लगे हुए जीवोंको साथ ले वे पाँचों देवता उनके पुण्यवश स्वर्गलोकको जाते हैं और वहाँ यथोक्त भोगोंका उपभोग करके वे जीव पुण्य क्षीण होनेपर पुनः मनुष्यलोकमें आते तथा पूर्ववत् जन्म ग्रहण करते हैं॥ १७-१८॥

इनके सिवा जो उत्तर मार्गके पाँच देवता हैं, वे भूतलसे लेकर ऊर्ध्वलोकतकके मार्गको पाँच भागोंमें विभक्त करके यतिको साथ ले क्रमशः अग्नि आदिके मार्गमें होते हुए उसे सदाशिवके धाममें पहुँचाते हैं। वहाँ देवाधिदेव महादेवके चरणोंमें प्रणाम करके लोकानुग्रहके कर्ममें ही लगाये गये वे अनुग्रहाकार देवता उन सदाशिवके पीछे खड़े हो जाते हैं॥ १९-२०॥

यतिको आया देख देवाधिदेव सदाशिव यदि वह विरक्त हो तो उसे महामन्त्रके तात्पर्यका उपदेश दे गणपतिके पदपर अभिषिक्त करके अपने ही समान शरीर देते हैं। इस प्रकार सर्वेश्वर सर्वनियन्ता भगवान् शंकर उसपर अनुग्रह करते हैं॥ २१-२२॥

उसे मृग, टंक, त्रिशूल, वरदान [मुद्रा]-से विभूषितकर अर्धचन्द्रसमन्वित तथा गंगाप्रवाहसे उल्लसित जटाओंवाला बना देते हैं॥ २३॥

जो यति नाना शाखाओंवाले विषयभोगोंसे विरक्त नहीं हुआ है, उसे कृपापूर्वक शिवजी सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाला, रुद्रकन्याओंसे समावृत, मृदंगादि वाद्यध्वनियों तथा नृत्य-गीतादिसे मनोहर, दिव्य वस्त्र, माल्य, आभूषण आदिसे विभूषित, दिव्य अमृत घटोंसे पूर्ण, दिव्य शय्याओंसे युक्त, करोड़ों सूर्योंके समान दीप्तिमान् तथा करोड़ों चन्द्रोंके समान शीतल, मनके समान वेगवाला, सर्वत्रगामी विमान प्रदान करते हैं। इन भोगोंको भोग लेनेपर निवृत्त हुई भोगासक्तिवाले यतिको स्वभावतः अत्यन्त दुर्गम, तीव्रतर, [विषय-वासनारूपी] वनको दग्ध करनेके लिये उद्यत,

प्रलयकालीन अग्निके सदृश प्रभावाली शक्ति प्रदान करते हैं॥ २४—२८॥

वे परमेश्वर अनुग्रहपूर्वक उस यतिको महामन्त्रके तात्पर्यका उपदेश करते हैं [जिसके फलस्वरूप वह] 'मैं परिपूर्ण शिव ही हूँ' इस प्रकारकी निश्चल भावनावाला हो जाता है॥ २९॥

उसे वे अनुगृहीत करके निश्चल समाधि देते हैं। अपने प्रति दास्यभावकी फलस्वरूपा तथा सूर्य आदिके कार्य करनेकी शक्तिरूपा ऐसी सिद्धियाँ प्रदान करते हैं, जो कहीं अवरुद्ध नहीं होतीं। साथ ही वे जगद्गुरु शंकर उस यतिको वह परम मुक्ति देते हैं, जो ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर भी पुनरावृत्तिके चक्करसे दूर रहती है॥ ३०—३१॥

अतः यही समष्टिमान् सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त पद है और यही मोक्षका राजमार्ग है, ऐसा वेदान्तशास्त्रका निश्चय है॥ ३२॥

जिस समय यति मरणासन्न हो शरीरसे शिथिल हो जाय, उस समय श्रेष्ठ सम्प्रदायवाले दूसरे यति अनुकूलताकी भावना ले उसके चारों ओर खड़े हो जायँ। वे सब वहाँ क्रमशः प्रणव आदि वाक्योंका उपदेश दे उनके तात्पर्यका सावधानी और प्रसन्नताके साथ सुस्पष्ट वर्णन करें तथा जबतक उसके प्राणोंका लय न हो जाय तबतक निर्गुण परमज्योतिः-स्वरूप सदाशिवका उसे निरन्तर स्मरण कराते रहें॥ ३३—३५॥

सब यतियोंका यहाँ समानरूपसे संस्कार-क्रम बताया जाता है। संन्यासी सब कर्मोंका त्याग करके भगवान् शिवका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। इसलिये उनके शरीरका दाहसंस्कार नहीं होता और उसके न होनेसे उनकी दुर्गति नहीं होती। संन्यासीके शरीरको दूषित करनेवाले राजाका राज्य नष्ट हो जाता है। उसके गाँवोंमें रहनेवाले लोग अत्यन्त दुखी हो जाते हैं। इसलिये उस दोषका परिहार करनेके लिये शान्तिका विधान बताया जाता है॥ ३६—३८॥

उस समय **'नम इरिण्याय'** से लेकर **'नम अमीवकेभ्यः'** तकके मन्त्रका विनीतचित्त होकर जप करे। फिर अन्तमें ओंकारका जप करते हुए मिट्टीसे देवयजनकी* पूर्ति करे। मुनीश्वर ! ऐसा करनेसे उस दोषकी शान्ति हो जाती है॥ ३९-४०॥

[अब संन्यासीके शवके संस्कारकी विधि बताते हैं।] पुत्र या शिष्य आदिको चाहिये कि यतिके शरीरका यथोचित रीतिसे उत्तम संस्कार करे। हे ब्रह्मन्! मैं कृपापूर्वक संस्कारकी विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो॥ ४१॥

पहले यतिके शरीरको शुद्ध जलसे नहलाकर पुष्प आदिसे उसकी पूजा करे। पूजनके समय श्रीरुद्रसम्बन्धी चमकाध्याय और नमकाध्यायका पाठ करके रुद्रसूक्तका उच्चारण करे। उसके आगे शंखकी स्थापना करके शंखस्थ जलसे यतिके शरीरका अभिषेक करे। सिरपर पुष्प रखकर प्रणवद्वारा उसका मार्जन करे॥ ४२-४३॥

पहलेके कौपीन आदिको हटाकर दूसरे नवीन कौपीन आदि धारण कराये। फिर विधिपूर्वक उसके सारे अंगोंमें भस्म लगाये। विधिवत् त्रिपुण्ड्र लगाकर चन्दनद्वारा तिलक करे। फिर फूलों और मालाओंसे उसके शरीरको अलंकृत करे॥ ४४-४५॥

छाती, कण्ठ, मस्तक, बाँह, कलाई और कानोंमें क्रमशः रुद्राक्षकी मालाके आभूषण मन्त्रोच्चारण-पूर्वक धारण कराकर उन सब अंगोंको सुशोभित करे। फिर धूप देकर उस शरीरको उठाये और विमानके ऊपर रखकर ईशानादि पंचब्रह्ममय रमणीय रथपर स्थापित करे॥ ४६-४७॥

आदिमें ओंकारसे युक्त पाँच सद्योजातादि ब्रह्ममन्त्रोंका उच्चारण करके सुगन्धित पुष्पों और मालाओंसे उस रथको सुसज्जित करे। फिर नृत्य, वाद्य तथा ब्राह्मणोंके वेदमन्त्रोच्चारणकी ध्वनिके साथ ग्रामकी सभी ओरसे प्रदक्षिणा करते हुए उस प्रेतको बाहर ले जाय॥ ४८-४९॥

* संन्यासीके शरीरको गाड़नेके लिये जो गड्ढा खोदा जाता है, उसको 'देवयजन' कहते हैं।

तदनन्तर साथ गये हुए वे सब यति गाँवके पूर्व या उत्तरदिशामें पवित्र स्थानमें किसी पवित्र वृक्षके निकट देवयजन (गड्ढा) खोदें। उसकी लम्बाई संन्यासीके दण्डके बराबर ही होनी चाहिये॥ ५०१/२॥

फिर प्रणव तथा व्याहृति-मन्त्रोंसे उस स्थानका प्रोक्षण करके वहाँ क्रमशः शमीके पत्र और फूल बिछाये। उनके ऊपर उत्तराग्र कुश बिछाकर उसपर योगपीठ रखे। उसके ऊपर पहले कुश बिछाये, कुशोंके ऊपर मृगचर्म तथा उसके भी ऊपर वस्त्र बिछाकर प्रणवसहित सद्योजातादि पंचब्रह्ममन्त्रोंका पाठ करते हुए पंचगव्यद्वारा उस शवका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् रुद्रसूक्त एवं प्रणवका उच्चारण करते हुए शंखके जलसे उसका अभिषेक करके उसके मस्तकपर फूल डाले। वहाँ गये हुए शिष्य आदि संस्कारकर्ता पुरुष मृत यतिके प्रति अनुकूल भाव रखते हुए शिवका चिन्तन करते रहें॥ ५१—५४॥

तदनन्तर ॐकारका उच्चारण और स्वस्तिवाचन करके उस शवको उठाकर गड्ढेके भीतर योगासनपर इस तरह बिठाये, जिससे उसका मुख पूर्व-दिशाकी ओर रहे॥ ५५॥

फिर चन्दन-पुष्पसे अलंकृत करके उसे धूप और गुग्गुलकी सुगन्ध दे। इसके बाद **'विष्णो! हव्यमिदं रक्षस्व'** ऐसा कहकर उसके दाहिने हाथमें दण्ड दे और **'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो०'** (शु० यजु० २३। ६५) इस मन्त्रको पढ़कर बायें हाथमें जलसहित कमण्डलु अर्पित करे॥ ५६-५७॥

फिर **'ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं०'** (शु० यजु० १३। ३) इस मन्त्रसे उसके मस्तकका स्पर्श करके दोनों भौंहोंके स्पर्शपूर्वक रुद्रसूक्तका जप करे। तत्पश्चात् **'मा नो महान्तमुत०'** (शु० यजु० १६। १५) इत्यादि चार मन्त्रोंको पढ़कर नारियलके द्वारा यतिके शवके मस्तकका भेदन करे। इसके बाद उस गड्ढेको पाट दे॥ ५८-५९॥

फिर उस स्थानका स्पर्श करके अनन्यचित्तसे पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका जप करे। तदनन्तर **'यो देवानां प्रथमं पुरस्तात्'** (१०। ३)-से लेकर **'तस्य प्रकृति-लीनस्य यः परः स महेश्वरः।'** (१०। ८) तक [महानारायणोपनिषद्के] मन्त्रोंका जप करके संसाररूपी रोगके भेषज, सर्वज्ञ, स्वतन्त्र तथा सबपर अनुग्रह करनेवाले उमासहित महादेवजीका चिन्तन एवं पूजन करे॥ ६०-६१॥

[पूजनकी विधि यों है—] एक हाथ ऊँचे और दो हाथ लम्बे-चौड़े एक पीठका मिट्टीके द्वारा निर्माण करे। फिर उसे गोबरसे लीपे। वह पीठ चौकोर होना चाहिये। उसके मध्यभागमें [उमा-महेश्वरको स्थापित करके] गन्ध, अक्षत, सुगन्धित पुष्प, बिल्वपत्र और तुलसीदलोंसे उनकी पूजा करे॥ ६२-६३॥

तत्पश्चात् प्रणवसे धूप और दीप निवेदन करे। फिर दूध और हविष्यका नैवेद्य लगाकर पाँच बार परिक्रमा करके नमस्कार करे॥ ६४॥

फिर बारह बार प्रणवका जप करके प्रणाम करे। तदनन्तर (ब्रह्मीभूत यतिकी तृप्तिके लिये नारायणपूजन, बलिदान, घृतदीपदानका संकल्प करके गर्तके ऊपर मृण्मय लिंग बनाकर पुरुषसूक्तसे पूजा करके घृतमिश्रित पायसकी बलि दे। घीका दीप जला पायसबलिको जलमें डाल दे) तत्पश्चात् दिशा-विदिशाओंके क्रमसे प्रणवके उच्चारणपूर्वक **'ॐ ब्रह्मणे नमः'** इस मन्त्रसे [ब्रह्मीभूत] यतिके लिये शंखसे आठ बार अर्घ्यजल दे॥ ६५॥

इस प्रकार दस दिनोंतक करता रहे। मुनिश्रेष्ठ! यह दशाहतककी विधि तुम्हें बतायी गयी। अब यतियोंके एकादशाहकी विधि सुनो॥ ६६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें यतियोंके मरणकालके अनन्तर दशाहपर्यन्त कृत्यवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

यतिके लिये एकादशाह-कृत्यका वर्णन

स्कन्दजी बोले—मुनिश्रेष्ठ वामदेव! यतिका एकादशाह प्राप्त होनेपर जो विधि बतायी गयी है, उसका मैं तुम्हारे स्नेहवश वर्णन करता हूँ। मिट्टीकी वेदी बनाकर उसका सम्मार्जन और उपलेपन करे। तत्पश्चात् पुण्याहवाचनपूर्वक प्रोक्षण करके पश्चिमसे लेकर पूर्वकी ओर क्रमसे पाँच मण्डल बनाये और स्वयं श्राद्धकर्ता उत्तराभिमुख बैठकर कार्य करे। प्रादेशमात्र लंबा-चौड़ा चौकोर मण्डल बनाकर उसके मध्यभागमें बिन्दु, उसके ऊपर त्रिकोण मण्डल, उसके ऊपर षट्कोण मण्डल और उसके ऊपर गोल मण्डल बनाये॥ १—३$^{1}/_{2}$॥

फिर अपने सामने शंखकी स्थापना करके पूजाके लिये बतायी हुई पद्धतिके क्रमसे आचमन, प्राणायाम एवं संकल्प करके पूर्वोक्त पाँच आतिवाहिक देवताओंका देवेश्वरी देवियोंके रूपमें पूजन करे॥ ४-५॥

उत्तरकी ओर आसनके लिये कुश डालकर जलका स्पर्श करे। पश्चिमसे आरम्भ करके पूर्वपर्यन्त जो मण्डल बताये गये हैं, उनके भीतर षडध्वाविधिसे पीठके रूपमें पुष्प रखे और उन पुष्पोंपर क्रमशः उक्त पाँचों देवियोंका आवाहन करे। पहले अग्निपुंजस्वरूपिणी आतिवाहिक देवीका आवाहन करते हुए इस प्रकार कहे—'**ॐ ह्रीं अग्निरूपामातिवाहिकदेवताम् आवाहयामि नमः**'। इस प्रकार सर्वत्र वाक्ययोजना और भावना करे। इस तरह पाँचों देवियोंका आवाहन करके प्रत्येकके लिये आदरपूर्वक स्थापनी आदि मुद्राओंका प्रदर्शन करे॥ ६—८॥

तत्पश्चात् **ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः**—इन बीजमन्त्रोंद्वारा षडंगन्यास और करन्यास करे। इसके बाद उन देवियोंका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये। उन सबके चार-चार हाथ हैं। उनमेंसे दो हाथोंमें वे पाश और अंकुश धारण करती हैं तथा शेष दो हाथोंमें अभय और वरद मुद्राएँ हैं। उनकी अंगकान्ति चन्द्रकान्तमणिके समान है। लाल अँगूठियोंकी प्रभासे उन्होंने सम्पूर्ण दिशाओंके मुख-मण्डलको रँग दिया है। वे लाल वस्त्र धारण करती हैं। उनके हाथ और पैर कमलोंके समान शोभा पाते हैं। तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमाकी छटासे वे मनको मोहे लेती हैं। माणिक्यनिर्मित मुकुटोंसे उद्भासित चन्द्रलेखा उनके सीमन्तको विभूषित कर रही है। कपोलोंपर रत्नमय कुण्डल झलमला रहे हैं। उनके उरोज पीन तथा उन्नत हैं। हार, केयूर, कड़े और करधनीकी लड़ियोंसे विभूषित होनेके कारण वे बड़ी मनोहारिणी जान पड़ती हैं। उनका कटिभाग कृश और नितम्ब स्थूल हैं। उनके अंग लाल रंगके दिव्य वस्त्रोंसे आच्छादित हैं। चरणारविन्दोंमें माणिक्य-निर्मित पायजेबोंकी झनकार होती रहती है। पैरोंकी अँगुलियोंमें बिछुओंकी पंक्ति अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहर है॥ ९—१३॥

शक्तिविशिष्ट अनुग्रहमूर्ति शिवजीके द्वारा क्या सिद्ध नहीं हो सकता, अर्थात् सब कुछ सिद्ध हो सकता है। इसलिये वे देवियाँ महेश्वरकी भाँति शक्त्यात्मक मूर्तिवाले अनुग्रहसे सम्पन्न हैं। अतः उनके अनुग्रहसे सब कुछ सिद्ध हो सकता है। सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् शिवने ही उन पाँच मूर्तियोंको स्वीकार किया है। इसलिये वे दिव्य, सम्पूर्ण कार्य करनेमें समर्थ तथा परम अनुग्रहमें तत्पर हैं॥ १४-१५॥

इस प्रकार उन सब अनुग्रहपरायण कल्याणमयी देवियोंका ध्यान करके इनके लिये शंखस्थ जलके बिन्दुओंद्वारा पैरोंमें पाद्य, हाथोंमें आचमनीय तथा मस्तकोंपर अर्घ्य देना चाहिये। तदनन्तर शंखके जलकी बूँदोंसे उनका स्नानकर्म सम्पन्न कराना चाहिये॥ १६-१७॥

[स्नानके पश्चात्] दिव्य लाल रंगके वस्त्र और उत्तरीय अर्पित करे। बहुमूल्य मुकुट एवं आभूषण दे [इन वस्तुओंके अभावमें मनके द्वारा भावना करके इन्हें

अर्पित करना चाहिये]। तत्पश्चात् सुगन्धित चन्दन, अत्यन्त सुन्दर अक्षत तथा उत्तम गन्धसे युक्त मनोहर पुष्प चढ़ाये॥ १८-१९॥

अत्यन्त सुगन्धित धूप और घीकी बत्तीसे युक्त दीपक निवेदन करे। इन सब वस्तुओंको अर्पण करते समय आरम्भमें '**ओं ह्रीं**' का प्रयोग करके फिर '**समर्पयामि नमः**' बोलना चाहिये यथा '**ॐ ह्रीं अग्न्यादिरूपाभ्यः पञ्चदेवीभ्यः दीपं समर्पयामि नमः।**' इसी तरह अन्य उपचारोंको अर्पित करते समय वाक्ययोजना कर लेनी चाहिये। दीपसमर्पणके पश्चात् हाथ जोड़कर प्रत्येक देवीके लिये पृथक्-पृथक् केलेके पत्तेपर पूरा-पूरा सुवासित नैवेद्य रखे। वह नैवेद्य घी, शक्कर और मधुसे मिश्रित खीर, पूआ, केलेके फल और गुड़ आदिके रूपमें होना चाहिये। '**भूर्भुवः स्वः**' बोलकर उसका प्रोक्षण आदि संस्कार करे॥ २०—२२॥

फिर '**ॐ ह्रीं स्वाहा नैवेद्यं निवेदयामि नमः**' बोलकर नैवेद्य-समर्पणके पश्चात् '**ॐ ह्रीं नैवेद्यान्ते आचमनार्थं पानीयं समर्पयामि नमः।**' कहते हुए बड़े प्रेमसे जल अर्पित करे। मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् प्रसन्नतापूर्वक नैवेद्यको पूर्व दिशामें हटा दे और उस स्थानको शुद्ध करके कुल्ला, आचमन तथा अर्घ्यके लिये जल दे। फिर ताम्बूल, धूप और दीप देकर परिक्रमा एवं नमस्कार करके मस्तकपर हाथ जोड़ इन सब देवियोंसे इस प्रकार प्रार्थना करे॥ २३—२५॥

'हे श्रीमाताओ! आप अत्यन्त प्रसन्न हो शिव-पदकी अभिलाषा रखनेवाले इस यतिको परमेश्वरके चरणारविन्दोंमें रख दें और इसके लिये अपनी स्वीकृति दें'॥ २६॥

इस प्रकार प्रार्थना करके उन सबका, वे जैसे आयी थीं, उसी तरह विदा देकर, विसर्जन कर दे और उनका प्रसाद लेकर कुमारी कन्याओंको बाँट दे या गौओंको खिला दे अथवा जलमें डाल दे। इसके सिवा और कहीं किसी प्रकार भी न डाले। यहीं पार्वण करे। यतिके लिये कहीं भी एकोद्दिष्ट-श्राद्धका विधान नहीं है॥ २७-२८॥

यहाँ पार्वण-श्राद्धके लिये जो नियम है, उसे मैं बता रहा हूँ। मुनिश्रेष्ठ! तुम उसे सुनो। इससे कल्याणकी प्राप्ति होगी। श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान करके प्राणायाम करे। यज्ञोपवीत पहन सावधान हो हाथमें पवित्री धारण करके [देश-कालका कीर्तन करनेके पश्चात्] 'मैं इस पुण्यतिथिको पार्वण-श्राद्ध करूँगा' इस तरह संकल्प करे। संकल्पके बाद उत्तर- दिशामें आसनके लिये उत्तम कुश बिछाये। फिर जलका स्पर्श करे॥ २९—३१॥

उन आसनोंपर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाले चार शिवभक्त ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे बिठाये। वे ब्राह्मण उबटन लगाकर स्नान किये होने चाहिये॥ ३२॥

उनमेंसे एक ब्राह्मणसे कहे—'आप विश्वेदेवके लिये यहाँ श्राद्ध ग्रहण करनेकी कृपा करें।' इसी तरह दूसरेसे आत्माके लिये, तीसरेसे अन्तरात्माके लिये और चौथेसे परमात्माके लिये श्राद्ध ग्रहण करनेकी प्रार्थना करके संयतचित्त श्राद्धकर्ता श्रद्धा और आदरपूर्वक उन सबका यथोचितरूपसे वरण करे॥ ३३-३४॥

फिर उन सबके पैर धोकर उन्हें पूर्वाभिमुख बिठाये और गन्ध आदिसे अलंकृत करके शिवके सम्मुख भोजन कराये॥ ३५॥

तदनन्तर वहाँ गोबरसे भूमिको लीपकर पूर्वाग्र कुश बिछाये और प्राणायामपूर्वक पिण्डदानके लिये संकल्प करके तीन मण्डलोंकी पूजा करे। इसके बाद पहले पिण्डको हाथमें ले '**आत्मने इमं पिण्डं ददामि**' ऐसा कहकर उस पिण्डको प्रथम मण्डलमें दे दे। तत्पश्चात् दूसरे पिण्डको '**अन्तरात्मने इमं पिण्डं ददामि**' कहकर दूसरे मण्डलमें दे दे। फिर तीसरे पिण्डको '**परमात्मने इमं पिण्डं ददामि**' कहकर तीसरे मण्डलमें अर्पित करे। इस तरह भक्तिभावसे विधिपूर्वक पिण्ड और कुशोदक दे। तत्पश्चात् उठकर परिक्रमा और नमस्कार करे॥ ३६—३९॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंको विधिवत् दक्षिणा दे। उसी जगह और उसी दिन नारायणबलि करे। रक्षाके लिये ही सर्वत्र श्रीविष्णुकी पूजाका विधान है। अतः विष्णुकी महापूजा करे और खीरका नैवेद्य लगाये॥ ४०-४१॥

इसके बाद वेदोंके पारंगत बारह विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर केशव आदि नाम-मन्त्रोंद्वारा गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिसे उनकी पूजा करे। उनके लिये विधिपूर्वक जूता, छाता और वस्त्र आदि दे। अत्यन्त भक्तिसे भाँति-भाँतिके शुभ वचन कहकर उन्हें सन्तोष दे॥ ४२-४३॥

फिर पूर्वाग्र कुशोंको बिछाकर '**ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा**' ऐसा उच्चारण करके पृथ्वीपर खीरकी बलि दे। मुनीश्वर ! यह मैंने एकादशाहकी विधि बतायी है। अब द्वादशाहकी विधि बताता हूँ, आदरपूर्वक सुनो॥ ४४-४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें यतियोंका एकादशाहकृत्यवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

यतिके द्वादशाह-कृत्यका वर्णन, स्कन्द और वामदेवका कैलासपर्वतपर जाना तथा सूतजीके द्वारा इस संहिताका उपसंहार

स्कन्दजी बोले—[वामदेव!] बारहवें दिन प्रातःकाल उठकर श्राद्धकर्ता पुरुष स्नान और नित्यकर्म करके शिवभक्तों, यतियों अथवा शिवके प्रति प्रेम रखनेवाले ब्राह्मणोंको* निमन्त्रित करे। मध्याह्नकालमें स्नान करके पवित्र हुए उन ब्राह्मणोंको बुलाकर भक्तिभावसे विधिपूर्वक भाँति-भाँतिके स्वादिष्ट अन्नका भोजन कराये॥ १-२॥

फिर परमेश्वरके निकट बिठाकर पंचावरण-पद्धतिसे उनका पूजन करे। तत्पश्चात् मौनभावसे प्राणायाम करके [देश-काल आदिके कीर्तनपूर्वक] महान् संकल्पकी प्रणालीके अनुसार संकल्प करते हुए—'**अस्मद्गुरोरिह पूजां करिष्ये** (मैं अपने गुरुकी यहाँ पूजा करूँगा)' ऐसा कहकर कुशोंका स्पर्श करे॥ ३-४॥

फिर ब्राह्मणोंके पैर धोकर आचमन करके श्राद्धकर्ता मौन रहे और भस्मसे विभूषित उन ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख आसनपर बिठाये। वहाँ सदाशिव आदिके क्रमसे उन आठ ब्राह्मणोंका बड़े आदरके साथ चिन्तन करे अर्थात् उन्हें सदाशिव आदिका स्वरूप माने। मुने! अन्य [चार] ब्राह्मणोंका भी [चार गुरुओंके रूपमें] चिन्तन करे॥ ५-६॥

चारों गुरु ये हैं—गुरु, परम गुरु, परात्पर गुरु और परमेष्ठी गुरु। परमेष्ठी गुरुका उनमें उमासहित महेश्वरकी भावना करते हुए चिन्तन करे। अपने गुरुका नाम लेकर ध्यान करे। उन सबके लिये '**इदमासनम्**' ऐसा कहकर पृथक्-पृथक् आसन रखे। आदिमें प्रणव, बीचमें द्वितीयान्त गुरु तथा अन्तमें '**आवाहयामि नमः**' बोलकर आवाहन करे। यथा—**ॐ अमुकनामानं गुरुम् आवाहयामि नमः। ॐ परमगुरुम् आवाहयामि नमः। ॐ परात्परगुरुम् आवाहयामि नमः। ॐ परमेष्ठिगुरुम् आवाहयामि नमः।** इस प्रकार आवाहन करके अर्घोदक (अर्घमें रखे हुए जल)-से पाद्य, आचमन और अर्घ्य निवेदन करे। फिर वस्त्र, गन्ध और अक्षत देकर '**ॐ गुरवे नमः**' इत्यादि रूपसे गुरुओंको तथा '**ॐ सदाशिवाय नमः**' इत्यादि रूपसे आठ नामोंके उच्चारणपूर्वक आठ अन्य ब्राह्मणोंको सुगन्धित फूलोंसे अलंकृत करे॥ ७—१०॥

तत्पश्चात् धूप, दीप देकर '**कृतमिदं सकलमाराधनं सम्पूर्णमस्तु** (की गयी यह सारी आराधना पूर्णरूपसे सफल हो)' ऐसा कहकर खड़ा हो नमस्कार करे॥ ११॥

इसके बाद केलेके पत्तोंको पात्ररूपमें बिछाकर

* धर्मसिन्धुके अनुसार सोलह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये। इनमेंसे चार तो गुरु, परमगुरु, परमेष्ठि गुरु और परात्पर गुरुके लिये होते हैं और बारह ब्राह्मणोंकी केशवादि नामसे पूजा होती है। परंतु इस पुराणमें दिये गये वर्णनके अनुसार बारह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना आवश्यक है।

जलसे शुद्ध करके उनपर शुद्ध अन्न, खीर, पूआ, दाल और साग आदि व्यंजन परोसकर केलेके फल, नारियल और गुड़ भी रखे। पात्रोंको रखनेके लिये आसन भी अलग-अलग दे। उन आसनोंका क्रमशः प्रोक्षण करके उन्हें यथास्थान रखे। फिर भोजनपात्रका भी प्रोक्षण एवं अभिषेक करके हाथसे उसका स्पर्श करते हुए कहे—**'विष्णो! हव्यमिदं रक्षस्व** (हे विष्णो ! इस हविष्यको आप सुरक्षित रखें)' फिर उठकर उन ब्राह्मणोंको पीनेके लिये जल देकर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—**'सदाशिवादयो मे प्रीता वरदा भवन्तु** (सदाशिव आदि मुझपर प्रसन्न हो अभीष्ट वर देनेवाले हों)'॥ १२—१५॥

इसके बाद **'ये देवा'** (शु० यजु० १७। १३-१४) आदि मन्त्रका उच्चारण करके अक्षतसहित इस अन्नका त्याग करे। फिर नमस्कार करके उठे और **'सर्वत्रामृतमस्तु।'** ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट करके **'गणानां त्वा'** (शु० यजु० २३। १९) इस मन्त्रका पहले पाठ करके चारों वेदोंके आदिमन्त्रोंका, रुद्राध्यायका, चमकाध्यायका, रुद्रसूक्तका तथा सद्योजातादि पाँच ब्रह्ममन्त्रोंका पाठ करे॥ १६-१७॥

ब्राह्मण-भोजनके अन्तमें भी यथासम्भव मन्त्र बोले और अक्षत छोड़े, फिर आचमनादिके लिये जल दे। हाथ-पैर और मुँह धोनेके लिये भी जल अर्पित करे॥ १८॥

आचमनके पश्चात् सब ब्राह्मणोंको सुखपूर्वक आसनोंपर बिठाकर शुद्ध जल देनेके अनन्तर मुखशुद्धिके लिये यथोचित कपूर आदिसे युक्त ताम्बूल अर्पित करे। फिर दक्षिणा, चरणपादुका, आसन, छाता, व्यजन, चौकी और बाँसकी छड़ी देकर परिक्रमा और नमस्कारके द्वारा उन ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करे तथा उनसे आशीर्वाद ले। पुनः प्रणाम करके गुरुके प्रति अविचल भक्तिके लिये प्रार्थना करे॥ १९—२१॥

[तत्पश्चात् विसर्जनकी भावनासे कहे—] **'सदाशिवादयः प्रीता यथासुखं गच्छन्तु'** (सदाशिव आदि सन्तुष्ट हो सुखपूर्वक यहाँसे पधारें)। इस प्रकार विदा करके दरवाजेतक उनके पीछे-पीछे जाय। फिर उनके रोकनेपर आगे न जाकर लौट आये। लौटकर द्वारपर बैठे हुए ब्राह्मणों, बन्धुजनों, दीनों और अनाथोंके साथ स्वयं भी भोजन करके सुखपूर्वक रहे॥ २२-२३॥

ऐसा करनेसे उसमें कहीं भी विकृति नहीं हो सकती। यह सब सत्य है, सत्य है और बारंबार सत्य है। इस प्रकार प्रतिवर्ष गुरुकी उत्तम आराधना करनेवाला शिष्य इस लोकमें महान् भोगोंका उपभोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है॥ २४॥

सूतजी बोले—अपने शिष्य मुनिवर वामदेवपर इस प्रकार शीघ्र ही परम अनुग्रहकर निर्मलबुद्धि, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ महात्मा स्कन्ददेव पुनः कहने लगे—यह बात मुनीश्वर व्यासने नैमिषारण्यवासी मुनियोंसे कही थी, इसलिये वे आदिगुरु हैं और आप जगत्में दूसरे गुरुके रूपमें प्रसिद्ध हैं। मुनीन्द्र सनत्कुमार आपके मुखकमलसे इस बातको सुनकर शिवभक्तिमें पूर्ण रहेंगे। वे महाशैव सनत्कुमार व्यासजीको उपदेश करेंगे और वे महर्षि व्यास शुकदेवको उपदेश करेंगे, जिससे वे शिवभक्तिमें पूर्ण होंगे॥ २५—२७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इन शिवभक्त महात्माओंकी प्रत्येक शिष्यपरम्परामें चार-चार शिष्य होंगे, जो निरन्तर वेदाध्ययन एवं धर्मसंस्थापनके कार्यमें लगे रहेंगे। वैशम्पायन, पैल, जैमिनि एवं सुमन्तु—ये चार व्यासजीके महातेजस्वी शिष्य होंगे॥ २८-२९॥

हे वामदेव! हे महामुने! अगस्त्य, पुलस्त्य, पुलह एवं क्रतु—ये महात्मा आपके शिष्य होंगे॥ ३०॥

सनक, सनन्दन, सनातनमुनि और सनत्सुजात—ये योगियोंमें श्रेष्ठ, शिवप्रिय तथा सभी वेदार्थोंके ज्ञाता मुनिगण सनत्कुमारके शिष्य होंगे। गुरु, परमगुरु, परात्परगुरु और परमेष्ठी गुरु—यह [गुरुचतुष्टय] योगी शुकदेवजीका पूज्य है॥ ३१-३२॥

यह प्रणव-विज्ञान इन्हीं व्यास, वामदेव, सनत्कुमार एवं शुकदेव—इन चार वर्गोंकी परम्परामें सुरक्षित रहेगा। यह ज्ञान सर्वोत्तम है और काशीमें मुक्ति प्रदान करनेवाला है॥ ३३॥

जो अद्भुत स्वरूपवाला, परमशिवका साक्षात् अधिष्ठान, वेदान्तके तात्पर्य-विचारमें निरत बुद्धिवाले यतीन्द्रोंके द्वारा

परम पूजनीय तथा वेदादिकी शाखा-प्रशाखाओंमें उपनिबद्ध और महाकाश आदिके द्वारा आवृत है, ऐसा वह संसारको श्रेय तथा श्री प्रदान करनेवाला [प्रणववेत्ताओंका] मण्डल आपको परम आनन्द प्रदान करनेवाला हो॥ ३४॥

मुने! यह साक्षात् भगवान् शिवका कहा हुआ उत्तम रहस्य है, जो वेदान्तके सिद्धान्तसे निश्चित किया गया है। तुमने मुझसे जो कुछ सुना है, उसे विद्वान् पुरुष तुम्हारा ही मत कहेंगे। यति इसी मार्गसे चलकर '**शिवोऽहमस्मि**' (मैं शिव हूँ) इस रूपमें आत्मस्वरूप शिवकी भावना करता हुआ शिवरूप हो जाता है॥ ३५-३६॥

सूतजी बोले—इस प्रकार मुनीश्वर वामदेवको उपदेश देकर दिव्य ज्ञानदाता गुरु देवेश्वर कार्तिकेय पिता-माताके सर्वदेव-वन्दित चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए अनेक शिखरोंसे आवृत, शोभाशाली एवं परम आश्चर्यमय कैलासशिखरको चले गये॥ ३७-३८॥

श्रेष्ठ शिष्योंसहित वामदेव भी मयूर-वाहन कार्तिकेयको प्रणाम करके शीघ्र ही परम अद्भुत कैलासशिखरपर जा पहुँचे और महादेवजीके निकट जा उन्होंने उमासहित महेश्वरके मायानाशक मोक्षदायक चरणोंका दर्शन किया॥ ३९-४०॥

फिर भक्तिभावसे अपना सारा कलेवर भगवान् शिवको समर्पित करके, वे शरीरकी सुधि भुलाकर उनके निकट दण्डकी भाँति पड़ गये और बारंबार उठ-उठकर नमस्कार करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने भाँति-भाँतिके स्तोत्रोंद्वारा, जो वेदों और आगमोंके रससे पूर्ण थे, जगदम्बा और पुत्रसहित परमेश्वर शिवका स्तवन किया॥ ४१-४२॥

इसके बाद देवी पार्वती और महादेवजीके चरणारविन्दको अपने मस्तकपर रखकर उनका पूर्ण अनुग्रह प्राप्त करके वे वहीं सुखपूर्वक रहने लगे। तुम सभी ऋषि भी इसी प्रकार प्रणवके अर्थभूत महेश्वरका तथा वेदोंके गोपनीय रहस्य, वेदसर्वस्व और मोक्षदायक तारक मन्त्र ॐकारका ज्ञान प्राप्त करके यहीं सुखसे रहो तथा विश्वनाथजीके चरणोंमें [अवस्थित] सायुज्यरूपा अनुपम एवं उत्तम मुक्तिका चिन्तन किया करो॥ ४३—४५॥

अब मैं गुरुदेवकी सेवाके लिये बदरिकाश्रमतीर्थको जाऊँगा। तुम्हें फिर मेरे साथ सम्भाषणका एवं सत्संगका अवसर प्राप्त हो॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें द्वादशाहकृत्यवर्णनपूर्वक व्यासादिशिष्यवर्गकथनवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

॥ छठी कैलाससंहिता पूर्ण हुई॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

वायवीयसंहिता [पूर्वखण्ड]

पहला अध्याय

ऋषियोंद्वारा सम्मानित सूतजीके द्वारा कथाका आरम्भ, विद्यास्थानों एवं पुराणोंका परिचय तथा वायुसंहिताका प्रारम्भ

नमः शिवाय सोमाय सगणाय ससूनवे।
प्रधानपुरुषेशाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥
शक्तिरप्रतिमा यस्य ह्यैश्वर्यं चापि सर्वगम्।
स्वामित्वं च विभुत्वं च स्वभावं सम्प्रचक्षते॥
तमजं विश्वकर्माणं शाश्वतं शिवमव्ययम्।
महादेवं महात्मानं व्रजामि शरणं शिवम्॥

व्यासजी बोले—जो जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहारके हेतु तथा प्रकृति और पुरुषके ईश्वर हैं, उन प्रमथगण, पुत्रद्वय तथा उमासहित भगवान् शिवको नमस्कार है॥ १॥

जिनकी शक्तिकी कहीं तुलना नहीं है, जिनका ऐश्वर्य सर्वत्र व्यापक है तथा स्वामित्व और विभुत्व जिनका स्वभाव कहा गया है, उन विश्वस्रष्टा, सनातन, अजन्मा, अविनाशी, महान् देव, मंगलमय परमात्मा शिवकी मैं शरण लेता हूँ॥ २-३॥

किसी समय धर्मक्षेत्र, महातीर्थ, ब्रह्मलोकके मार्गभूत तथा गंगा-यमुनाके संगमसे युक्त प्रयागतीर्थवाले नैमिषारण्यमें विशुद्ध अन्तःकरणवाले, सत्यव्रतपरायण, महातेजस्वी एवं महाभाग्यशाली मुनियोंने महायज्ञका आयोजन किया था॥ ४-५॥

अक्लिष्ट कर्म करनेवाले उन महर्षियोंके यज्ञका वृत्तान्त सुनकर सत्यवतीसुत महाबुद्धिमान् वेदव्यासके साक्षात् शिष्य सूतजी, जो महात्मा, मेधावी, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध, पंचावयवसे युक्त वाक्यके गुण-दोषोंको जाननेवाले, बृहस्पतिको भी वादमें निरुत्तर करनेवाले, श्रवणसुखद तथा मनोहर शब्दोंसे संघटित कथाओंके निपुण वाचक, कालवेत्ता, नीतिके ज्ञाता, कवि एवं पौराणिकोंमें श्रेष्ठ हैं, वे उस स्थानपर आये॥ ६—९॥

उन सूतजीको आते हुए देखकर प्रसन्नचित्त मुनियोंने उनका यथोचित स्वागत तथा पूजन किया॥ १०॥

मुनियोंके द्वारा की गयी उस पूजाको ग्रहणकर



सूतजी उनके द्वारा दिये गये अपने उचित आसनपर विराजमान हुए॥ ११॥

इसके पश्चात् सद्भावयुक्त मनवाले उन मुनियोंका चित्त उनकी उपस्थितिमात्रसे ही पौराणिक कथा सुननेके लिये उत्कण्ठित हो उठा। तब सभी महर्षिगण प्रिय

वचनोंसे उनकी स्तुतिकर उन्हें अत्यधिक अभिमुख करके यह वचन कहने लगे— ॥ १२-१३ ॥

ऋषिगण बोले—हे रोमहर्षण! हे महाभाग! हे सर्वज्ञ! हे शैवराज! हे महामते! आप हमलोगोंके सौभाग्यसे आज यहाँ आये हुए हैं। आपने व्यासजीसे समस्त पुराणविद्या प्रत्यक्षरूपसे प्राप्त की है। अतः आप निश्चय ही आश्चर्यपूर्ण कथाओंके पात्र हैं। जिस प्रकार बड़े-बड़े अनमोल रत्नोंका भण्डार समुद्र है, [उसी प्रकार आप भी उत्तमोत्तम पुराणकथाओंके मानो समुद्र ही हैं।] तीनों लोकोंमें जो भी भूत एवं भविष्यकी बात तथा अन्य जो भी वस्तु है, आपके लिये कोई भी अविदित नहीं है। आप हमलोगोंके भाग्यसे ही दर्शन देनेके लिये यहाँ आये हैं। अब हमलोगोंका कुछ कल्याण किये बिना आप यहाँसे व्यर्थ मत जाइये। अतः सुननेके योग्य, पुण्यप्रद, उत्तम कथा एवं ज्ञानसे युक्त तथा वेदान्तके सारस्वरूप पुराणको हमें सुनाइये ॥ १४—१८ ॥

इस प्रकार वेदज्ञाता मुनिजनोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर सूतजी मधुर, न्याययुक्त एवं शुभ वाणीमें कहने लगे— ॥ १९ ॥

सूतजी बोले—आपलोगोंने मेरी पूजाकर अनुगृहीत कर दिया है, इसलिये मैं आपलोगोंके कहनेपर ऋषियोंद्वारा समादृत पुराणका भलीभाँति वर्णन क्यों नहीं करूँगा ॥ २० ॥

महादेव, भगवती, स्कन्द, गणेश, नन्दी तथा साक्षात् सत्यवतीपुत्र व्यासजीको नमस्कारकर उस पुराणको कहूँगा, जो परम पुण्यको देनेवाला, वेदतुल्य, शिवविषयक ज्ञानका समुद्र, साक्षात् भोग तथा मोक्षको देनेवाला और [यथोचित] शब्द तथा [तदनुकूल] तर्कसंगत अभिप्रायवाले शैवागमोक्त सिद्धान्तोंसे विभूषित है। पूर्वकालमें वायुने श्वेतकल्पके प्रसंगसे इसका वर्णन किया था ॥ २१—२३ ॥

अब मैं विद्याके सभी स्थान, पुराणानुक्रम एवं उस पुराणकी उत्पत्तिका वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग सुनिये। चारों वेद, उनके छः अंग, मीमांसा, न्याय, पुराण एवं धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं। इनके अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा अर्थशास्त्र [—ये चार उपांग हैं], इन्हें मिलाकर कुल अठारह विद्याएँ कही गयी हैं ॥ २४—२६ ॥

भिन्न-भिन्न मार्गोंवाली इन अठारह विद्याओंके आदिकर्ता कवि साक्षात् महेश्वर हैं—ऐसा श्रुति कहती है। सम्पूर्ण जगत्के स्वामी उन सदाशिवने समस्त जगत्को उत्पन्न करनेकी इच्छा की तो उन्होंने सबसे पहले सनातन ब्रह्मदेवको साक्षात् पुत्ररूपमें उत्पन्न किया ॥ २७-२८ ॥

सदाशिवने विश्वके कारणभूत अपने प्रथम पुत्र ब्रह्माको विश्वसृष्टिके लिये इन विद्याओंको प्रदान किया। तत्पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजीकी भी रक्षा करनेवाले अपने मध्यम पुत्र श्रीहरि भगवान् विष्णुको जगत्के पालनके लिये रक्षाशक्ति प्रदान की ॥ २९-३० ॥

शिवजीसे विद्याओंको प्राप्त किये हुए ब्रह्माजीने प्रजासृष्टिका विस्तार करते हुए सभी शास्त्रोंके पहले पुराणका स्मरण किया ॥ ३१ ॥

इसके पश्चात् उनके मुखसे वेद उत्पन्न हुए। तदनन्तर उनके मुखसे सभी शास्त्र उत्पन्न हुए ॥ ३२ ॥

जब पृथ्वीपर प्रजाएँ इन विस्तृत विद्याओंको धारण करनेमें असमर्थ हो जाती हैं, उस समय उन विद्याओंको संक्षिप्त करनेके लिये विश्वेश्वरकी आज्ञासे प्रत्येक द्वापरके अन्तमें विश्वात्मा विश्वम्भर प्रभु विष्णु व्यासरूपसे इस पृथ्वीपर अवतार लेकर विचरण करते हैं ॥ ३३-३४ ॥

हे द्विज! इस प्रकार प्रत्येक द्वापरके अन्तमें वे वेदोंका विभाग करते हैं और इसके बाद अन्य पुराणोंकी भी रचना करते हैं। वे इस द्वापरमें कृष्णद्वैपायन नामसे सत्यवतीसे [वैसे ही] उत्पन्न हुए, जिस प्रकार अरणीसे अग्नि उत्पन्न होती है ॥ ३५-३६ ॥

उन महर्षिने बादमें वेदोंको संक्षिप्तकर उन्हें चार भागोंमें विभक्त किया। इसके बाद उन मुनिने वेदोंका संक्षेपण करनेके अनन्तर [पुराणवाङ्मयको] अठारह भागोंमें विभक्त किया। वेदोंका विभाग करनेके कारण उन्हें लोकमें वेदव्यास कहा गया है ॥ ३७ ॥

पुराण आज भी देवलोकमें सौ करोड़ श्लोक-संख्यावाले हैं, उन्हें वेदव्यासने संक्षिप्तकर चार लाख श्लोकोंका बना दिया ॥ ३८ ॥

जो ब्राह्मण छहों अंगों एवं उपनिषदोंके सहित सभी वेदोंको जानता है, परंतु पुराणको नहीं जानता, वह

विद्वान् नहीं है। इतिहास तथा पुराणोंके द्वारा वेदोंका उपबृंहण (विस्तार) करना चाहिये। अल्पज्ञसे वेद डरता है कि यह मुझपर प्रहार कर बैठेगा॥ ३९-४०॥

सृष्टि, सृष्टिका प्रलय, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—ये पुराणोंके पाँच लक्षण हैं॥ ४१॥

तत्त्वदर्शी मुनियोंने स्थूल-सूक्ष्मके भेदसे पुराणोंकी संख्या अठारह कही है—ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, भविष्यपुराण, नारदीयपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंगपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुडपुराण एवं ब्रह्माण्डपुराण—यह पुराणोंका पुण्यप्रद अनुक्रम है। उनमें भगवान् शंकरसे सम्बन्धित जो चौथा शिवपुराण है, वह सभी प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है॥ ४२—४५॥

यह ग्रन्थ एक लाख श्लोकों तथा बारह संहिताओंवाला है। इसका निर्माण स्वयं शिवजीने किया है, इसमें साक्षात् धर्म प्रतिष्ठित है॥ ४६॥

उसके द्वारा बताये गये धर्मसे तीनों वर्णोंके पुरुष शिवभक्त हो जाते हैं। अत: मुक्तिकी इच्छा करते हुए शिवका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। उनका आश्रय लेनेसे ही देवगणोंकी भी मुक्ति सम्भव है, अन्यथा नहीं। यह शिवपुराण वेदसम्मित कहा गया है। अब मैं संक्षिप्त रूपसे इसके भेदोंको कह रहा हूँ, आपलोग सुनिये॥ ४७—४९॥

विद्येश्वरसंहिता, रुद्र, विनायक, उमा, मातृसंहिता, एकादशरुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्र, सहस्रकोटिरुद्र, वायवीयसंहिता तथा धर्मसंहिता—ये बारह संहिताएँ हैं। श्लोकसंख्याकी दृष्टिसे विद्येश्वरसंहिता दस हजार श्लोकोंवाली कही गयी है। रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता और मातृसंहिता—इनमें-से प्रत्येक संहितामें आठ-आठ हजार श्लोक हैं। एकादश-रुद्रसंहितामें तेरह हजार श्लोक हैं और कैलाससंहितामें छ: हजार श्लोक हैं। शतरुद्रसंहितामें तीन हजार श्लोक हैं। इसके बाद कोटिरुद्रसंहिता नौ हजार श्लोकोंसे युक्त है तथा इसमें समस्त तत्त्वज्ञान भरा हुआ है। सहस्र-कोटिरुद्रसंहितामें ग्यारह हजार श्लोक हैं। सर्वोत्कृष्ट वायवीयसंहितामें चार हजार श्लोक हैं तथा जो धर्मसंहिता है, वह बारह हजार श्लोकोंसे युक्त है॥ ५०—५६॥

इस प्रकार शाखा-भेदके अनुसार शिवपुराणके श्लोकोंकी संख्या एक लाख कही गयी है। यह पुराण वेदोंका सारभूत और भोग तथा मोक्षको देनेवाला है॥ ५७॥

व्यासजीने इसे संक्षिप्तकर चौबीस हजार श्लोकोंवाला बना दिया। इस प्रकार यह चौथा शिवपुराण अब सात संहिताओंसे युक्त है। पहली विद्येश्वरसंहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्रसंहिता एवं चौथी कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवीं उमासंहिता, छठी कैलाससंहिता तथा सातवीं वायवीयसंहिता है। इस प्रकार इसमें सात संहिताएँ हैं॥ ५८—६०॥

विद्येश्वरसंहिता दो हजार, रुद्रसंहिता दस हजार और शतरुद्रसंहिता दो हजार एक सौ अस्सी श्लोंकोसे युक्त कही गयी है। कोटिरुद्रसंहिता दो हजार दो सौ बीस, उमासंहिता एक हजार आठ सौ चालीस, कैलाससंहिता एक हजार दो सौ चालीस और वायवीयसंहिता चार हजार श्लोकोंसे युक्त है। इस प्रकार यह परम पुण्यप्रद शिवपुराण संख्याभेदसे सुना गया है॥ ६१—६४॥

हमने पहले जिस वायवीयसंहिताके श्लोकोंकी संख्या चार हजार कही है, वह दो भागोंमें विभक्त है। अब मैं उसका वर्णन करूँगा। इस उत्तम शास्त्रका उपदेश वेद तथा पुराणको न जाननेवाले और इसके प्रति श्रद्धा न रखनेवालेको नहीं करना चाहिये॥ ६५-६६॥

परीक्षा किये गये, धर्मनिष्ठ, ईर्ष्यारहित, शिवभक्त तथा शिवधर्मके अनुसार आचरण करनेवाले शिष्यको इसका उपदेश करना चाहिये। जिनकी कृपासे मुझे यह पुराणसंहिता प्राप्त हुई है, उन महातेजस्वी भगवान् व्यासजीको मेरा नमस्कार है॥ ६७-६८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें विद्यावतारकथन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

ऋषियोंका ब्रह्माजीके पास जाकर उनकी स्तुति करके उनसे परमपुरुषके विषयमें प्रश्न करना और ब्रह्माजीका आनन्दमग्न हो 'रुद्र' कहकर उत्तर देना

सूतजी बोले—पूर्व समयमें अनेक कल्पोंके पुनः-पुनः बीत जानेके बाद जब यह वर्तमान [श्वेतवाराह] कल्प उपस्थित हुआ और सृष्टिका कार्य उपस्थित हुआ, जब जीविकाओंकी प्रतिष्ठा हो गयी और प्रजाएँ सजग हो गयीं, उस समय छः कुलोंमें उत्पन्न हुए मुनिगण आपसमें कहने लगे— ॥ १-२ ॥

यह परब्रह्म है, यह नहीं है—इस प्रकारका बहुत बड़ा विवाद उनमें होने लगा और परब्रह्मका निरूपण बहुत कठिन होनेके कारण उस समय कोई निर्णय नहीं हो सका॥ ३ ॥

तब वे मुनिगण सृष्टिकर्ता तथा अविनाशी ब्रह्माजीके दर्शनके लिये [वहाँ] गये, जहाँ देवताओं तथा दानवोंके द्वारा निषेवित, सिद्धों तथा चारणोंसे युक्त, यक्षों तथा गन्धर्वोंसे सेवित, पक्षिसमूहके कलरवसे भरे हुए, मणियों तथा मूँगोंसे विभूषित और नाना प्रकारके निकुंज-कन्दराओं-गुफाओं तथा झरनोंसे शोभित सुन्दर तथा रम्य [स्थानमें] देवताओं तथा दानवोंसे स्तुत होते हुए वे भगवान् ब्रह्मा विराजमान थे॥ ४—६ ॥

वहाँ ब्रह्मवन नामसे प्रसिद्ध एक वन था, जो दस योजन विस्तृत, सौ योजन लम्बा, अनेकविध वन्य पशुओंसे युक्त, सुमधुर तथा स्वच्छ जलसे पूर्ण रमणीय सरोवरसे सुशोभित और मत्त भ्रमरोंसे भरे हुए सुन्दर एवं पुष्पित वृक्षोंसे युक्त था॥ ७-८ ॥

वहाँपर मध्याह्नकालीन सूर्यके जैसी आभावाला एक विशाल, सुन्दर नगर था, जो कि बलसे उन्मत्त दैत्य-दानव-राक्षसादिके लिये अत्यन्त दुर्धर्ष था। वह नगर तपे हुए जाम्बूनदस्वर्णसे निर्मित, ऊँचे गोपुर तथा तोरणवाला था। वह हाथीदाँतसे बनी सैकड़ों छतों तथा मार्गोंसे शोभायमान था और आकाशको मानो चूमते हुए-से प्रतीत होनेवाले, बहुमूल्य मणियोंसे चित्रित भवनसमूहोंसे अलंकृत था॥ ९—११ ॥

उसमें प्रजापति ब्रह्मदेव अपने सभासदोंके साथ निवास करते हैं। वहाँ जाकर उन मुनियोंने देवताओं तथा ऋषियोंसे सेवित, शुद्ध सुवर्णके समान प्रभावाले, सभी आभूषणोंसे विभूषित, प्रसन्न मुखमण्डलवाले, सौम्य, कमलदलके सदृश विशाल नेत्रोंवाले, दिव्य कान्तिसे युक्त, दिव्य गन्धका अनुलेप किये हुए, दिव्य श्वेत वस्त्र पहने, दिव्य मालाओंसे विभूषित, देवता-असुर एवं योगीन्द्रोंसे वन्द्यमान चरणकमलवाले, सभी लक्षणोंसे समन्वित अंगोंवाली तथा हाथमें चामर धारण की हुई सरस्वतीके साथ प्रभासे युक्त सूर्यकी भाँति सुशोभित होते हुए महात्मा साक्षात् लोकपितामह ब्रह्माको देखा। उन्हें देखकर प्रसन्नमुख तथा नेत्रोंवाले सभी मुनिगण सिरपर अंजलि



बाँधकर उन देवश्रेष्ठकी स्तुति करने लगे॥ १२—१७ ॥

मुनिगण बोले—संसारका सृजन, पालन और संहार करनेवाले, त्रिमूर्तिस्वरूप, पुराणपुरुष तथा परमात्मा आप ब्रह्मदेवको नमस्कार है॥ १८ ॥

प्रकृति जिनका स्वरूप है, जो प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले हैं तथा प्रकृतिरूपमें तेईस प्रकारके

विकारोंसे युक्त होकर भी स्वयं अविकृत रहनेवाले हैं— ऐसे आपको नमस्कार है। ब्रह्माण्डरूप शरीरवाले, ब्रह्माण्डके बीचमें निवास करनेवाले, सम्यक् रूपसे सिद्ध कार्य एवं करणस्वरूप आपको नमस्कार है॥ १९-२०॥

जो सर्वलोकस्वरूप, सम्पूर्ण लोकके कर्ता एवं सभीके आत्मा तथा देहका संयोग-वियोग करानेवाले हैं, [उन] आपको नमस्कार है॥ २१॥

हे नाथ! आप ही इस समग्र संसारके उत्पत्तिकर्ता, पालक तथा संहारकर्ता हैं, तथापि हे पितामह! आपकी मायाके कारण हमलोग आपको नहीं समझ पाते॥ २२॥

सूतजी बोले—महाभाग्यशाली महर्षियोंके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर ब्रह्माजी उन मुनियोंको हर्षित-सा करते हुए गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग्यशाली, महाप्राण एवं महातेजस्वी ऋषियो! आप सभी लोग मिलकर एक साथ यहाँ क्यों आये हैं?॥ २४॥

जब देवाधिदेव ब्रह्माजीने उन लोगोंसे ऐसा कहा, तब हाथ जोड़कर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ वे सभी ऋषिगण विनयसे समन्वित वाणीमें कहने लगे—॥ २५॥

मुनिगण बोले—हे भगवन्! हमलोग घोर अज्ञानान्धकारसे घिरे हुए हैं, अत: परस्पर विवाद करते हुए दुखी हैं, हमलोगोंको परमतत्त्वका ज्ञान अभीतक नहीं हो पाया है। आप सम्पूर्ण जगत्के पालक हैं और सभी कारणोंके भी कारण हैं। हे नाथ! आपको इस जगत्में कुछ भी अविदित नहीं है॥ २६-२७॥

कौन पुरुष सभी प्राणियोंसे प्राचीन, परम पुरुष, विशुद्ध, परिपूर्ण, शाश्वत तथा परमेश्वर है॥ २८॥

वह अपने किस विचित्र कृत्यसे सर्वप्रथम इस जगत्का निर्माण करता है। हे महाप्राज्ञ! हमारे सन्देहको दूर करनेके लिये आप इसे कहिये॥ २९॥

ऐसा पूछे जानेपर ब्रह्माजीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और वे देवताओं, दानवों तथा मुनियोंके सामने उठ करके बहुत देरतक ध्यान करते रहे, तदुपरान्त आनन्दसे सिक्त समस्त अंगोंवाले वे 'रुद्र-रुद्र' इस प्रकारका शब्द उच्चारण करते हुए हाथ जोड़कर कहने लगे—॥ ३०-३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें मुनिप्रस्ताववर्णन नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा परमतत्त्वके रूपमें भगवान् शिवकी महत्ताका प्रतिपादन तथा उनकी आज्ञासे सब मुनियोंका नैमिषारण्यमें आना

ब्रह्माजी बोले—मनके साथ वाणी जिनको प्राप्त किये बिना ही लौट आती है, जिनके आनन्दमय स्वरूपको प्राप्तकर विद्वान् पुरुष किसीसे भयभीत नहीं होता, जिनसे ये सभी ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र एवं इन्द्रादि देवता उत्पन्न हुए हैं एवं जो सभीके साथ पंचमहाभूतों एवं इन्द्रियोंकी सृष्टि करते हैं, जो सभी कारणोंके कारण हैं, जो धाता एवं ध्याता दोनों हैं, जो अन्य किसीसे कभी भी उत्पन्न नहीं होते, वे सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होनेके कारण स्वयं सर्वेश्वर हैं। हृदयाकाशमें रहनेवाले वे महेश्वर सभी मुमुक्षुओंके द्वारा ध्यान किये जानेयोग्य हैं॥ १—४॥

जिन्होंने सर्वप्रथम मुझे पुत्ररूपसे उत्पन्न किया और [वेदोंका] ज्ञान प्रदान किया तथा उन्हींकी कृपासे मैंने इस प्रजापतिपदको प्राप्त किया है॥ ५॥

जो ईश्वर अकेले ही वृक्षके समान निश्चल हो आकाशमें विराजमान हैं, जिन महात्मा पुरुषसे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है, जो अकेले ही सभी निष्क्रिय जीवोंको सक्रिय बनाते हैं और जो अकेले ही एक बीजको अनेक रूपोंमें परिणत कर देते हैं, वे ही महान् ऐश्वर्यवाले हैं॥ ६-७॥

जो ईश्वर इन जीवोंसे युक्त सभी लोकोंपर शासन करते हैं, वे एकमात्र भगवान् रुद्र हैं, दूसरा कोई नहीं है॥ ८॥

जो सर्वदा सभी लोगोंके हृदयमें सन्निविष्ट हो करके विश्वको देखते हुए भी दूसरोंके द्वारा देखे नहीं जा पाते और [जगत्‌में] अधिष्ठित रहते हैं, जो अनन्त शक्तिशाली एकमात्र भगवान् [रुद्र] कालसे भी परे और आत्मा एवं आकाशादि सभी कारणोंमें व्याप्त हैं, जिनके लिये दिन एवं रात्रि कुछ नहीं है, जिनके समान अथवा अधिक कोई नहीं है, जिनकी ज्ञान [बल और] क्रियारूपा पराशक्ति नित्या तथा स्वाभाविकी है, जो क्षर एवं अव्यक्त हैं, अक्षर और अमृत हैं—इस प्रकार क्षर एवं अक्षरभावसे स्थित हैं, वे एकमात्र महेश्वरदेव ही [सर्वोपरि] हैं॥ ९—१२॥

भगवान् शिवके साथ मन:संयोग करनेसे तथा तात्त्विक रूपसे अपनेको उनसे अभिन्न चिन्तन करनेसे जीव सामर्थ्यवान् हो जाता है, उनके ध्यानसे इस जगत्‌का शासक हो जाता है और उनकी कृपासे अन्तमें पशुरूप जीवकी माया भी निवृत्त हो जाती है॥ १३॥

जिसको विद्युत्, सूर्य एवं चन्द्रमा कोई भी प्रकाशित नहीं करता, किंतु जिसके प्रकाशसे यह जगत् प्रकाशित होता है—ऐसा सनातन श्रुति भी कहती है। ऐसे एकमात्र प्रभु महेश्वर महादेव ही जाननेयोग्य हैं, उनसे श्रेष्ठ कोई भी पद प्राप्त नहीं किया जा सकता है॥ १४-१५॥

वे सबके आदि, स्वयं आदि एवं अन्तसे रहित, स्वभावसे निर्मल, स्वतन्त्र, परिपूर्ण तथा चराचर विश्वको अपने अधीन किये हुए हैं॥ १६॥

समस्त ऐश्वर्यसे युक्त ये प्रकृतिसे भिन्न (दिव्य) शरीरवाले, लक्ष्य तथा लक्षणसे रहित, स्वयं मुक्त, दूसरोंको मुक्त करनेवाले और स्वयं कालके वशमें न रहकर कालके भी प्रेरक हैं॥ १७॥

उनका स्थान सबके ऊपर है तथा वे ही सबके आश्रय स्थान एवं सबको जाननेवाले हैं। वे छ: प्रकारके मार्गवाले इस सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं तथा उत्तरोत्तर उत्कृष्ट प्राणियोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, उनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है, वे अनन्त आनन्दराशिरूप मकरन्दका पान करनेवाले भ्रमर हैं॥ १८-१९॥

वे अखण्ड गतिशील ब्रह्माण्डोंके पिण्डीकरणमें पण्डित हैं और औदार्य, पराक्रम, गाम्भीर्य एवं माधुर्यके समुद्र हैं। इनके समान कोई भी वस्तु अर्थात् परमतत्त्व नहीं है और इनसे अधिक भी कोई वस्तु नहीं है। ये सभी प्राणियोंमें अतुलनीय हैं और राजराजेश्वर होकर विराजमान हैं॥ २०-२१॥

ये अपने अद्भुत क्रिया-कलापोंसे जगत्‌की सृष्टि करते हैं और पुन: अन्त:काल उपस्थित होनेपर यह जगत् उनमें विलीन हो जाता है। समस्त जीव इनके वशमें हैं, ये सबके प्रेरक हैं, ये परम भक्तिसे ही देखे जा सकते हैं, अन्य उपायोंसे कभी नहीं॥ २२-२३॥

महात्माओंने इनकी प्राप्तिके लिये ही व्रतों, सर्वविध दानों, तपों एवं नियमोंका निरूपण किया है, इसमें सन्देह नहीं है। विष्णु, मैं [ब्रह्मा], रुद्र, अन्य देवता एवं असुर आज भी कठोर तपोंके द्वारा उनके दर्शनकी आकांक्षा रखते हैं॥ २४-२५॥

वे पतित, मूढ, कुत्सित तथा दुर्जन पुरुषोंके लिये अदृश्य हैं, किंतु भक्तजनोंके द्वारा बाहर-भीतर पूज्य हैं और सम्भाषणके योग्य हैं॥ २६॥

उनके तीन रूप हैं, स्थूल, सूक्ष्म एवं उनसे भी परे। हम देवताओंसे उनका स्थूल रूप दृश्य है, योगियोंसे उनका सूक्ष्म रूप दृश्य है, किंतु उससे भी परे जो उनका नित्य-ज्ञानमय, आनन्दमय एवं अविनाशी रूप है, वह तो उनमें निष्ठा रखनेवाले, उनके प्रति परायण रहनेवाले तथा उनके व्रतमें आश्रित जनोंके द्वारा ही दृश्य है॥ २७-२८॥

बहुत कहनेका क्या प्रयोजन? उस परमात्माका परस्वरूप गुप्तसे भी गुप्ततर है। शिवजीमें भक्ति रखनी चाहिये, उससे युक्त प्राणी मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। वह भक्ति शिवकी कृपासे ही हो सकती है और उनकी कृपा भक्तिसे उत्पन्न होती है, जैसे अंकुरसे बीज और बीजसे अंकुर उत्पन्न होता है॥ २९-३०॥

उस ईश्वरका प्रसाद प्राप्त हो जानेपर जीवको सर्वत्र सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सभी लोग सम्पूर्ण साधनोंसे अन्तमें उसीको प्राप्त करते हैं। परमात्मा शिवको प्रसन्न करनेका साधन धर्म है और वेदने उस धर्मके स्वरूपका प्रतिपादन किया है। उसका अभ्यास

करते रहनेसे पूर्वजन्मार्जित पुण्य एवं पापमें समता आ जाती है॥ ३१-३२॥

उस साम्यसे प्रसाद [प्रसन्नता या चित्तशुद्धि]-की उपलब्धि होती है, उससे धर्मकी वृद्धि होती है और धर्मकी वृद्धिको प्राप्त करके जीवके पापका विनाश हो जाता है। इस प्रकार क्रमसे बहुत जन्म-जन्मान्तरोंमें हुए पापोंका विनाश हो जानेपर साम्बसदाशिवमें ज्ञानपूर्विका भक्ति उत्पन्न होती है॥ ३३-३४॥

भक्तोंके भावोंके अनुरूप ही शिवका अनुग्रह प्राप्त होता है, उनका प्रसाद प्राप्त हो जानेपर ही कर्मका त्याग होता है, जिसमें फलवासना नहीं होती, यद्यपि भक्त स्वरूपतः कर्म करता रहता है॥ ३५॥

तदुपरान्त कर्मफलके त्यागसे जीवका शुभ सम्बन्ध शिवधर्मसे हो जाता है। वह [धर्म] भी दो प्रकारका होता है—एक गुरुकी अपेक्षासे रहित तथा दूसरा गुरुकी अपेक्षा रखनेवाला ॥ ३६॥

उसमें गुरुकी अपेक्षा रखनेवाला शिवधर्म गुरुकी अपेक्षा न करनेवालेसे सौ गुना अधिक उत्तम है। जो गुरुकी शिक्षाद्वारा शिवधर्ममें तत्पर रहता है, वह शीघ्र ही शिव-ज्ञानकी प्राप्ति कर लेता है॥ ३७॥

ज्ञानयुक्त हो जानेसे मनुष्यको इस जगत्‌में दोष दिखायी पड़ने लगता है, तदनन्तर विषयोंके प्रति वैराग्य हो जाता है और वैराग्यसे भावसिद्धि हो जाती है॥ ३८॥

भावसिद्धिको प्राप्त हुए व्यक्तिकी निष्ठा ध्यानमें होती है, कर्ममें नहीं। ज्ञान तथा ध्यानसे युक्त मनुष्यको योगकी प्राप्ति होती है॥ ३९॥

योगसे पराभक्ति प्राप्त होती है, इसके पश्चात् [भक्तिकी महिमासे] शिवका प्रसाद उपलब्ध होता है, शिवके प्रसादसे जीव मुक्त हो जाता है और मुक्त हो जानेपर वह शिवके समान हो जाता है॥ ४०॥

इस प्रकार शिवजीके अनुग्रहका जो यह स्वरूप है, वह इसी प्रकारका है—यह कहना सम्भव नहीं है। मनुष्यकी जैसी योग्यता होती है, उसीके अनुरूप उसे शिवजीका अनुग्रह प्राप्त होता है॥ ४१॥

कोई गर्भमें निवास करते ही मुक्त हो जाता है। कोई उत्पन्न होते ही, कोई बालक होकर, कोई युवा होकर और कोई वृद्ध होकर मुक्त हो जाता है। कोई पशु-पक्षियोंकी योनिमें मुक्त हो जाता है। कोई नरकमें और कोई वैकुण्ठादि उत्तम लोक प्राप्तकर पुण्य-क्षय हो जानेपर मुक्त हो जाता है। कोई [पुण्यशेष होनेपर] अपने पदसे च्युत होकर संसारमें जन्म लेकर मुक्त होता है। कोई संसाररूपी मार्गमें क्रमशः जन्म-मरणका चक्र प्राप्तकर धीरे-धीरे मुक्त होता है॥ ४२—४४॥

अतः मनुष्योंकी मुक्ति अनेक प्रकारसे होती है। ज्ञान और भक्तिके अनुरूप शिवकी कृपा प्राप्त होनेपर मुक्ति होती है॥ ४५॥

अतः इन्हें प्रसन्न करनेके लिये वाणी, मन तथा शरीरके दोषोंको त्यागकर स्त्री-पुत्रों एवं अग्नियोंके सहित आप सभीको शिवजीका ध्यान, उनमें निष्ठा, भक्ति, शिवशरणागति एवं मनसे उनका ध्यान करते हुए समस्त क्रियाएँ करनी चाहिये॥ ४६-४७॥

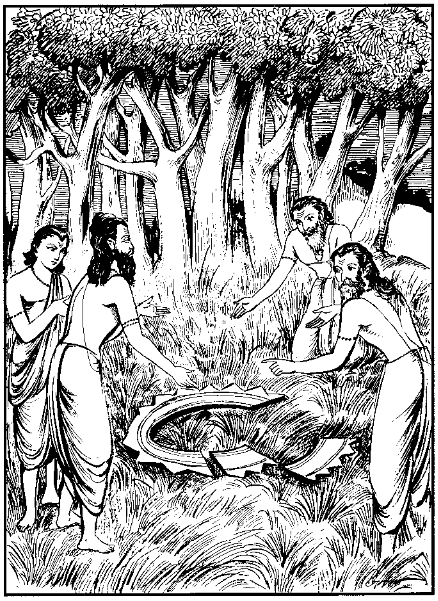
इस समय आपलोगोंने जो दिव्य सहस्रवर्षवाला दीर्घ यज्ञानुष्ठान प्रवर्तित किया है, उस यज्ञके अन्तमें मन्त्रद्वारा आवाहन करनेपर वायुदेव वहाँ पधारेंगे। वे ही आपलोगोंके कल्याणका साधन एवं उपाय बतायेंगे। इसके पश्चात् आपलोग परम सुन्दर तथा पुण्यमयी वाराणसी पुरी चले जाना, जहाँ पिनाकपाणि भगवान् विश्वनाथ भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये देवी पार्वतीके साथ सदा विहार करते हैं॥ ४८—५०॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! आपलोग वहाँ बड़ा भारी आश्चर्य देखकर मेरे पास आना, तब मैं आपलोगोंको मुक्तिका उपाय बताऊँगा, जिससे जन्म-जन्मान्तरके संसार-बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली मुक्ति आपलोगोंको एक ही जन्ममें मिल जायगी॥ ५१-५२॥

मैंने इस मनोमय चक्रका निर्माण किया है, मैं इस चक्रको छोड़ रहा हूँ, जहाँ इसकी नेमि टूटकर गिर जाय, वही देश तपस्याके लिये शुभ होगा—ऐसा कहकर पितामहने उस सूर्यतुल्य मनोमय चक्रकी ओर देखकर और महादेवजीको प्रणामकर उसे छोड़ दिया॥ ५३-५४॥

वे ब्राह्मण भी अत्यन्त प्रसन्न होकर लोकनाथ ब्रह्माजीको प्रणाम करके उस स्थानके लिये चल दिये,

जहाँ उस चक्रकी नेमि विशीर्ण होनेवाली थी। इसके पश्चात् वह फेंका गया कान्तिमय चक्र स्वादिष्ट एवं विमल जलसे युक्त [सरोवरवाले] किसी वनमें एक



मनोहर शिलातलपर गिर पड़ा, इसी कारणसे वह वन मुनिपूजित नैमिषारण्य नामसे विख्यात हुआ, जो अनेक यक्ष, गन्धर्व और विद्याधरोंसे व्याप्त है॥ ५५—५७॥

समुद्रोंसे वेष्टित अठारह द्वीपोंका उपभोग करनेवाले महाराज पुरूरवा* प्रारब्धसे प्रेरित होकर उर्वशीके रूपसौन्दर्यके वशीभूत हो गये और उन्होंने अज्ञानवश धर्मका अतिक्रमण करके [ऋषियोंकी] सुवर्णमयी यज्ञशालाका हरण कर लिया, तब कुपित मुनियोंने अभिमन्त्रित होनेसे वज्रसदृश प्रभाववाले कुशोंसे उन्हें विनष्ट कर दिया॥ ५८-५९॥

जहाँपर पूर्वकालमें वेदज्ञ, गार्हपत्याग्निके उपासक एवं विश्वकी सृष्टि करनेवाले महर्षियोंने ब्रह्मदेवके उद्देश्यसे यज्ञका प्रारम्भ किया था, जिस यज्ञमें शब्दशास्त्र, अर्थशास्त्र और न्यायशास्त्रके ज्ञाता विद्वान् महर्षियोंने अपनी शक्ति, प्रज्ञा तथा क्रियाके माध्यमसे शास्त्रीय विधिका अनुष्ठान किया था, जहाँपर वेदवेत्ता ब्राह्मण वेदोंको न माननेवाले और स्वच्छन्द शास्त्रका निर्माण करनेवाले नास्तिकोंको तार्किक प्रक्रियाके द्वारा निरन्तर पराजित करते हैं, जहाँ स्फटिक मणिमय पर्वतकी शिलाओंसे अमृतके समान मधुर निर्मल जल प्रवाहित होता रहता है, वृक्षोंपर स्वादिष्ट रसीले फल लगे रहते हैं एवं अनेक जीव-जन्तु निवास करते हैं—इस प्रकारका वह नैमिषारण्य मुनियोंके तपके योग्य है॥ ६०—६३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें नैमिषोपाख्यान नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

नैमिषारण्यमें दीर्घसत्रके अन्तमें मुनियोंके पास वायुदेवताका आगमन

सूतजी बोले—उस समय उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग्यवान् उन ऋषियोंने महादेवका अर्चन करते हुए उस स्थानमें यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ किया॥ १॥

उन महर्षियोंका वह यज्ञ अनेक प्रकारके आश्चर्योंसे वैसे ही परिपूर्ण था, जिस प्रकार पूर्व समयमें सृष्टिकी इच्छा करनेवाले विश्वस्रष्टा प्रजापतियोंका यज्ञ था॥ २॥

कुछ समय बीत जानेपर प्रचुर दक्षिणावाला वह यज्ञ जब समाप्त हो गया, तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे वहाँ स्वयं वायुदेव आये॥ ३॥

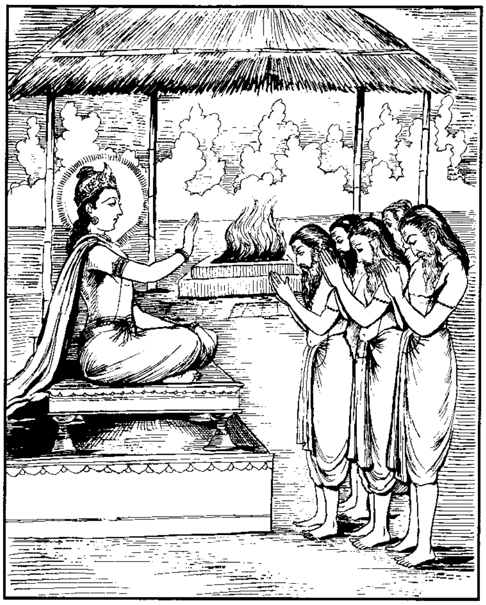
वे वायुदेव साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माजीके शिष्य, सब कुछ प्रत्यक्ष देखनेवाले तथा इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले थे। जिनकी आज्ञामें उनचास मरुद्गण सर्वदा समुद्यत रहते हैं, जो प्राण आदि अपनी वृत्तियोंके द्वारा अंगोंको चेष्टावान् करते रहते हैं, जो समस्त प्राणियोंके शरीरोंको धारण करते हैं, जो अणिमादि आठ प्रकारकी सिद्धियों तथा नानाविध ऐश्वर्योंसे युक्त हैं, जो तिरछी पड़नेवाली

* मत्स्यपुराण अ० २४ के अनुसार धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंकी पूजाके प्रसंगमें राजर्षि पुरूरवाको उनके द्वारा किंचित् उपेक्षित काम तथा अर्थने शाप दिया था, इसी कारण वे उर्वशीके वियोगदुःख तथा अर्थलोभसे आक्रान्त हुए।

अपनी पवित्र गतियोंसे भुवनोंको धारण करते हैं, जो आकाशसे उत्पन्न हुए हैं, जो स्पर्श एवं शब्द नामक दो गुणोंवाले हैं, तत्त्ववेत्ता लोग जिन्हें तेजोंकी प्रकृति कहते हैं—उन्हें आश्रममें आया देखकर दीर्घकालिक यज्ञ करनेवाले मुनिगण ब्रह्माजीके वचनका स्मरणकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ४—८॥

तब सभीने उठकर आकाशजन्मा वायुदेवको प्रणामकर उन्हें [बैठनेके लिये] सुवर्णमय आसन प्रदान किया॥ ९॥

इसके पश्चात् मुनियोंने उस आसनपर बैठे हुए वायुदेवकी भलीभाँति पूजा की और उन्होंने भी उन सभीकी प्रशंसाकर उनसे कुशल पूछा॥ १०॥



वायु बोले—हे ब्राह्मणो! इस महायज्ञके पूरे होनेतक आपलोग सकुशल तो रहे; यज्ञमें विघ्न डालनेवाले देवशत्रु दैत्योंने कहीं विघ्न तो उपस्थित नहीं किया? आपके इस यज्ञमें कोई प्रत्यवाय अथवा उपद्रव तो नहीं हुआ? आपलोगोंने स्तवन तथा मन्त्रजपके द्वारा देवगणोंका तथा पितृ-कर्मोंके द्वारा पितरोंका पूजनकर ठीक तरहसे यज्ञानुष्ठानकी विधि सम्पन्न तो कर ली। अब इस महायज्ञके समाप्त हो जानेके अनन्तर आपलोगोंकी क्या करनेकी इच्छा है?॥ ११—१३॥

तब शिवभक्त वायुके द्वारा इस प्रकार पूछे गये सभी मुनि प्रसन्नचित्त तथा विनयावनत होकर कहने लगे— ॥ १४॥

मुनि बोले—जब आप हमारे कल्याणकी वृद्धिके लिये यहाँ आ गये हैं तो आज हमलोगोंका पूर्णतः मंगल हो गया और हमारी तपस्या सफल हो गयी॥ १५॥

अब आप पहलेका एक वृत्तान्त सुनिये। तमोगुणसे आक्रान्त मनवाले हमलोगोंने पूर्वकालमें विशिष्ट ज्ञानके निमित्त प्रजापति ब्रह्माजीकी उपासना की थी॥ १६॥

तब शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले उन्होंने हम शरणागतोंपर कृपा करके कहा—हे ब्राह्मणो! सभी कारणोंके कारण रुद्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं। तर्कसे परे उन रुद्र देवताको यथार्थ रूपसे भक्तिमान् ही देख सकता है और इन्हींकी प्रसन्नतासे भक्ति मिलती है और [अन्तमें] मुक्ति भी प्राप्त होती है॥ १७-१८॥

अतः आपलोग इनकी प्रसन्नता प्राप्त करनेहेतु नैमिषारण्यमें यज्ञनियमोंमें दीक्षित होकर दीर्घसत्रके द्वारा परमकारण रुद्रका यजन कीजिये। तब उनकी प्रसन्नतासे यज्ञके अन्तमें वायुदेव आयेंगे। उनके मुखसे आपलोगोंको ज्ञानलाभ होगा और कल्याणकी प्राप्ति होगी॥ १९-२०॥

इस प्रकारका आदेश देकर ब्रह्माजीने हमलोगोंको इस स्थानपर भेजा है। हे महाभाग! हमलोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं॥ २१॥

दिव्य हजार वर्षपर्यन्त हमलोग यहाँ बैठकर जो दीर्घसत्र कर रहे थे, उसका उद्देश्य आपके आगमनके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था॥ २२॥

तब प्रसन्न मनसे वायुदेवने दीर्घसत्र करनेवाले ऋषियोंके उस प्राचीन वृत्तान्तका श्रवण किया और मुनियोंसे घिरे हुए वे वहींपर विराजमान हो गये॥ २३॥

इसके पश्चात् मुनियोंके द्वारा पूछे जानेपर शिवमें उनकी भक्ति बढ़ानेके लिये सर्वव्यापक वायुदेवने सृष्टिकी उत्पत्ति एवं शिवका ऐश्वर्य संक्षेपमें बताया॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें वायुसमागम नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

ऋषियोंके पूछनेपर वायुदेवद्वारा पशु, पाश एवं पशुपतिका तात्त्विक विवेचन

सूतजी बोले—हे महाभाग्यवान् ऋषियो! नैमिषारण्यनिवासी उन ऋषियोंने विधिपूर्वक वायुदेवको प्रणामकर उनसे पहले पूछा॥ १ ॥

नैमिषारण्यके ऋषियोंने पूछा—देव! आपने ईश्वरविषयक ज्ञान कैसे प्राप्त किया? तथा आप अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीके शिष्य किस प्रकार हुए?॥ २ ॥

वायुदेवता बोले—महर्षियो! उन्नीसवें कल्पका नाम श्वेतलोहितकल्प समझना चाहिये। उसी कल्पमें चतुर्मुख ब्रह्माने सृष्टिकी कामनासे तपस्या की। उनकी उस तीव्र तपस्यासे संतुष्ट हो स्वयं उनके पिता देवदेव महेश्वरने उन्हें दर्शन दिया। वे दिव्य कुमारावस्थासे युक्त रूप धारण करके रूपवानोंमें श्रेष्ठ श्वेत नामक मुनि होकर दिव्य वाणी बोलते हुए उनके सामने उपस्थित हुए। वेदोंके अधिपति तथा सबके पालक पिता महेश्वरका दर्शन करके गायत्रीसहित ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम किया और उन्हींसे उत्तम ज्ञान पाया। ज्ञान पाकर विश्वकर्मा चतुर्मुख ब्रह्मा सम्पूर्ण चराचर भूतोंकी सृष्टि करने लगे। साक्षात् परमेश्वर शिवसे सुनकर ब्रह्माजीने अमृतस्वरूप ज्ञान प्राप्त किया था, इसलिये मैंने तपस्याके बलसे उन्हींके मुखसे उस ज्ञानको उपलब्ध किया॥ ३—८॥

मुनियोंने पूछा—आपने वह कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया, जो सत्यसे भी परम सत्य एवं शुभ है तथा जिसमें उत्तम निष्ठा रखकर पुरुष परमानन्दको प्राप्त करता है?॥ ९ ॥

वायुदेवता बोले—महर्षियो ! मैंने पूर्वकालमें पशु-पाश और पशुपतिका जो ज्ञान प्राप्त किया था, सुख चाहनेवाले पुरुषको उसीमें ऊँची निष्ठा रखनी चाहिये। अज्ञानसे उत्पन्न होनेवाला दुःख ज्ञानसे ही दूर होता है। वस्तुके विवेकका नाम ज्ञान है। वस्तुके तीन भेद माने गये हैं—जड (प्रकृति), चेतन (जीव) और उन दोनोंका नियन्ता (परमेश्वर)। इन्हीं तीनोंको क्रमसे पाश, पशु तथा पशुपति कहते हैं॥ १०—१२॥

तत्त्वज्ञ पुरुष प्रायः इन्हीं तीन तत्त्वोंको क्षर, अक्षर तथा उन दोनोंसे अतीत कहते हैं। अक्षर ही पशु कहा गया है। क्षर तत्त्वका ही नाम पाश है तथा क्षर और अक्षर दोनोंसे परे जो परमतत्त्व है, उसीको पति या पशुपति कहते हैं॥ १३-१४॥

मुनिगण बोले—हे मारुत! क्षर किसे कहा गया है और अक्षर किसे कहते हैं एवं उन दोनों क्षराक्षरसे परे क्या है? उसका वर्णन कीजिये॥ १५॥

वायुदेव बोले—प्रकृतिको ही क्षर कहा गया है। पुरुष (जीव)-को अक्षर कहते हैं और जो इन दोनोंको प्रेरित करता है, वह क्षर और अक्षर दोनोंसे भिन्न तत्त्व ही परमेश्वर कहा गया है॥ १६॥

मुनिगण बोले—हे देव! यह प्रकृति कौन कही गयी है, और यह पुरुष कौन कहा गया है? इनका सम्बन्ध किसके द्वारा होता है और यह प्रेरक ईश्वर कौन है?॥ १७॥

वायुदेव बोले—मायाका ही नाम प्रकृति है। पुरुष उस मायासे आवृत है। मल और कर्मके द्वारा प्रकृतिका पुरुषके साथ सम्बन्ध होता है। शिव ही इन दोनोंके प्रेरक ईश्वर हैं॥ १८॥

मुनिगण बोले—माया किसे कहते हैं, मायासे आच्छादित होनेपर पुरुष किस रूपका हो जाता है, यह मल क्या है और कहाँसे आया, शिवतत्त्व क्या है तथा शिव कौन है?॥ १९॥

वायुदेव बोले—माया महेश्वरकी शक्ति है। चित्स्वरूप जीव उस मायासे आवृत है। चेतन जीवको आच्छादित करनेवाला अज्ञानमय पाश ही मल कहलाता है। उससे शुद्ध हो जानेपर जीव स्वतः शिव हो जाता है। वह विशुद्धता ही शिवत्व है॥ २०॥

मुनियोंने पूछा—सर्वव्यापी चेतनको माया किस हेतुसे आवृत करती है? किसलिये पुरुषको आवरण प्राप्त होता है? और किस उपायसे उसका निवारण होता है?॥ २१॥

वायुदेवता बोले—व्यापक तत्त्वको भी आंशिक आवरण प्राप्त होता है; क्योंकि कला आदि भी व्यापक हैं। भोगके लिये किया गया कर्म ही उस आवरणमें कारण है। मलका नाश होनेसे वह आवरण दूर हो जाता है॥ २२॥

मुनिगण बोले—हे वायुदेव! वह कलादि क्या है, कर्म किसे कहते हैं? उसका आदि एवं अन्त क्या

है और उसका फल तथा आश्रय क्या है?॥ २३॥

किसके भोगसे क्या भोगना पड़ता है, उस भोगका साधन क्या है, मलक्षयका हेतु क्या है और क्षीणमलवाला पुरुष कैसा होता है?॥ २४॥

वायुदेवता बोले—कला, विद्या, राग, काल और नियति—इन्हींको कलादि कहते हैं। कर्मफलका जो उपभोग करता है, उसीका नाम पुरुष (जीव) है। कर्म दो प्रकारके हैं—पुण्यकर्म और पापकर्म। पुण्यकर्मका फल सुख और पापकर्मका फल दु:ख है। कर्म अनादि है और फलका उपभोग कर लेनेपर उसका अन्त हो जाता है। यद्यपि जड कर्मका चेतन आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है, तथापि अज्ञानवश जीवने उसे अपने-आपमें मान रखा है। भोग कर्मका विनाश करनेवाला है, प्रकृतिको भोग्य कहते हैं और भोगका साधन है शरीर। बाह्य इन्द्रियाँ और अन्त:करण उसके द्वार हैं। अतिशय भक्तिभावसे उपलब्ध हुए महेश्वरके कृपाप्रसादसे मलका नाश होता है और मलका नाश हो जानेपर पुरुष निर्मल—शिवके समान हो जाता है॥ २५—२८॥

मुनिगण बोले—कलादि पाँच तत्त्वोंका अलग-अलग कर्म क्या कहा जाता है? क्या आत्माको ही भोक्ता एवं पुरुषके नामसे पुकारा जाता है? उस अव्यक्त तत्त्वका स्वरूप क्या है और वह किस प्रकारसे भोगा जाता है? उस [भोग्य]-के भोगका आश्रय क्या है और शरीर किसे कहते हैं?॥ २९-३०॥

वायुदेवता बोले—विद्या पुरुषकी ज्ञानशक्तिको और कला उसकी क्रियाशक्तिको अभिव्यक्त करनेवाली है। राग भोग्य वस्तुके लिये क्रियामें प्रवृत्त करनेवाला होता है। काल उसमें अवच्छेदक होता है और नियति उसे नियन्त्रणमें रखनेवाली है। अव्यक्तरूप जो कारण है, वह त्रिगुणमय है; उसीसे जड जगत्‌की उत्पत्ति होती है और उसीमें उसका लय होता है। तत्त्वचिन्तक पुरुष उस अव्यक्तको ही प्रधान और प्रकृति कहते हैं। अप्रकटित लक्षणोंवाला वह प्रधान तत्त्व कलाओंके माध्यमसे अभिव्यक्तिको प्राप्त करता है। उस सत्त्वादिगुणत्रयात्मक प्रधानका स्वरूप सुख-दु:ख-विमोहात्मक है, जो पुरुषके द्वारा भोगा जाता है॥ ३१—३३॥

सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिसे प्रकट होते हैं; तिलमें तेलकी भाँति वे प्रकृतिमें सूक्ष्मरूपसे विद्यमान रहते हैं। सुख और उसके हेतुको संक्षेपसे सात्त्विक कहा गया है, दु:ख और उसके हेतु राजस कार्य हैं तथा जडता और मोह—वे तमोगुणके कार्य हैं। सात्त्विकी वृत्ति ऊर्ध्वमें ले जानेवाली है, तामसी वृत्ति अधोगतिमें डालनेवाली है तथा राजसी वृत्ति मध्यम स्थितिमें रखनेवाली है॥ ३४—३६॥

पाँच तन्मात्राएँ, पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा प्रधान (चित्त), महत्तत्त्व (बुद्धि), अहंकार और मन—ये चार अन्त:करण—सब मिलकर चौबीस तत्त्व होते हैं। इस प्रकार संक्षेपसे ही विकारसहित अव्यक्त (प्रकृति)-का वर्णन किया गया॥ ३७-३८॥

कारणावस्थामें रहनेपर ही इसे अव्यक्त कहते हैं और शरीर आदिके रूपमें जब वह कार्यावस्थाको प्राप्त होता है, तब उसकी 'व्यक्त' संज्ञा होती है—ठीक उसी तरह, जैसे कारणावस्थामें स्थित होनेपर जिसे हम 'मिट्टी' कहते हैं, वही कार्यावस्थामें 'घट' आदि नाम धारण कर लेती है। जैसे घट आदि कार्य मृत्तिका आदि कारणसे अधिक भिन्न नहीं है, उसी प्रकार शरीर आदि व्यक्त पदार्थ अव्यक्तसे अधिक भिन्न नहीं हैं। इसलिये एकमात्र अव्यक्त ही कारण, करण, उनका आधारभूत शरीर तथा भोग्य वस्तु है, दूसरा कोई नहीं॥ ३९—४१॥

मुनियोंने पूछा—प्रभो! बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे व्यतिरिक्त किसी आत्मा नामक वस्तुकी वास्तविक स्थिति कहाँ है?॥ ४२॥

वायुदेवता बोले—महर्षियो! सर्वव्यापी चेतनका बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरसे पार्थक्य अवश्य है। आत्मा नामक कोई पदार्थ निश्चय ही विद्यमान है; परन्तु उसकी सत्तामें किसी हेतुकी उपलब्धि बहुत ही कठिन है ! सत्पुरुष बुद्धि, इन्द्रिय और शरीरको आत्मा नहीं मानते; क्योंकि स्मृति (बुद्धिका ज्ञान) अनियत है तथा उसे सम्पूर्ण शरीरका एक साथ अनुभव नहीं होता। इसीलिये वेदों और वेदान्तोंमें आत्माको पूर्वानुभूत विषयोंका स्मरणकर्ता, सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थोंमें व्यापक तथा अन्तर्यामी कहा जाता है॥ ४३—४५॥

उसमें सब कुछ है और वह शाश्वत आत्मा सभीको व्याप्त करके सर्वत्र स्थित रहता है, फिर भी

व्यक्तरूपमें कोई भी कहीं भी उसे प्रत्यक्ष नहीं देख पाता है। यह नेत्र तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी ग्राह्य नहीं है। वह महान् आत्मा ज्ञानप्रदीप्त मनसे ही ग्राह्य है॥ ४६-४७॥

यह न स्त्री है, न पुरुष है और न नपुंसक ही है। न ऊपर है, न अगल-बगलमें है, न नीचे है और न किसी स्थान-विशेषमें। यह सम्पूर्ण चल शरीरोंमें अविचल, निराकार एवं अविनाशीरूपसे स्थित है। ज्ञानी पुरुष निरन्तर विचार करनेसे उस आत्मतत्त्वका साक्षात्कार कर पाते हैं। बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन? आत्मा देहसे पृथक् है। जो लोग इसे अपृथक् देखते हैं, उनको इसका यथार्थ ज्ञान नहीं है॥ ४८—५०॥

पुरुषका जो वह शरीर कहा गया है, इससे बढ़कर अशुद्ध, पराधीन, दुःखमय और अस्थिर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। शरीर ही सब विपत्तियोंका मूल कारण है। उससे युक्त हुआ पुरुष अपने कर्मके अनुसार सुखी, दुखी और मूढ़ होता है। जैसे पानीसे सींचा हुआ खेत अंकुर उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अज्ञानसे आप्लावित हुआ कर्म नूतन शरीरको जन्म देता है॥ ५१—५३॥

ये शरीर अत्यन्त दुःखोंके आलय माने जाते हैं। इनकी मृत्यु अनिवार्य होती है। भूतकालमें कितने ही शरीर नष्ट हो गये और भविष्यकालमें सहस्त्रों शरीर आनेवाले हैं, वे सब आ-आकर जब जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, तब पुरुष उन्हें छोड़ देता है। कोई भी जीवात्मा किसी भी शरीरमें अनन्त कालतक रहनेका अवसर नहीं पाता॥ ५४-५५॥

कभी यह शरीरोंमें व्याप्त होकर निवास करता है और कभी उन्हें छोड़ देता है, जैसे चन्द्रबिम्ब आकाशमें कभी चंचल मेघोंसे आच्छादित रहता है और कभी मुक्त रहता है। इसकी वृत्ति देहभेदसे भिन्न-भिन्न रसोंवाली होती है, जिस प्रकार पासा एक होते हुए भी पटलपर फेंके जानेपर भिन्न-भिन्न रूपोंमें दिखायी पड़ता है॥ ५६-५७॥

यहाँ स्त्रियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंसे जो मिलन होता है, वह पथिकको मार्गमें मिले हुए दूसरे पथिकोंके समागमके ही समान है। जैसे महासागरमें एक काष्ठ कहींसे और दूसरा काष्ठ कहींसे बहता आता है, वे दोनों काष्ठ कहीं थोड़ी देरके लिये मिल जाते हैं और मिलकर फिर बिछुड़ जाते हैं। उसी प्रकार प्राणियोंका यह समागम भी संयोग-वियोगसे युक्त है॥ ५८-५९॥

वह [परमात्मा] शरीर [और जीवात्मा]-को [तत्त्वतः] जानता है, किंतु शरीर उसे नहीं जान पाता; परमतत्त्व शरीरादिका द्रष्टा [ज्ञाता] होकर भी इनके द्वारा दृश्य अर्थात् ज्ञेय नहीं है॥ ६०॥

ब्रह्माजीसे लेकर स्थावर प्राणियोंतक सभी जीव पशु कहे गये हैं। उन सभी पशुओंके लिये ही यह दृष्टान्त या दर्शन-शास्त्र कहा गया है। यह जीव पाशोंमें बँधता और सुख-दुःख भोगता है, इसलिये 'पशु' कहलाता है। यह ईश्वरकी लीलाका साधन-भूत है, ऐसा ज्ञानी महात्मा कहते हैं। यह जीव अज्ञानी है एवं अपने सुख-दुःखको भोगनमें सर्वदा परतन्त्र है। यह ईश्वरसे प्रेरित होकर स्वर्ग अथवा नरकमें जाता है॥ ६१—६३॥

सूतजी बोले—वायुका यह वचन सुनकर मुनिगण प्रसन्नचित्त हो गये और शैवागममें कुशल वायुदेवको प्रणाम करके कहने लगे॥ ६४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवतत्त्वज्ञानवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

महेश्वरकी महत्ताका प्रतिपादन

मुनि बोले—[हे देव!] आपने पूर्वमें पशु तथा पाशके विषयमें बताया है, अब इन दोनोंसे विलक्षण तथा इनपर शासन करनेवाले किसी [तत्त्व] अर्थात् पशुपतिके विषयमें बताइये॥ १॥

वायुदेवता कहते हैं—महर्षियो! इस विश्वका निर्माण करनेवाला कोई पति है, जो अनन्त रमणीय गुणोंका आश्रय कहा गया है। वही पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाला है। उसके बिना संसारकी सृष्टि कैसे हो सकती है; क्योंकि पशु अज्ञानी और पाश अचेतन है। प्रधान परमाणु आदि जितने भी जड तत्त्व हैं, उन सबका

कर्ता वह पति ही है—यह बात स्वयं समझमें आ जाती है। किसी बुद्धिमान् या चेतन कारणके बिना इन जड तत्त्वोंका निर्माण कैसे सम्भव है॥ २—४॥

यह जगत् कर्तृसापेक्ष है; क्योंकि [घटादिके समान] कार्य सावयव है। अत: कार्यका कर्ता ईश्वर ही हो सकता है, पशु और पाश नहीं॥ ५॥

पशु भी कर्ता होता है, किंतु वह ईश्वरकी प्रेरणासे ही होता है, उसका यह कर्तृत्व [दूसरेके आश्रयसे] अन्धेके चलनेके समान भ्रमात्मक होता है। यह जीव जब अपनेको प्रेरक ईश्वरसे भिन्न मानकर उसकी उपासना करता है, तब ईश्वरसे उपकृत हो जानेके कारण, वह अमृतत्वको प्राप्त कर लेता है॥ ६-७॥

पशु, पाश और पतिका जो वास्तवमें पृथक्-पृथक् स्वरूप है, उसे जानकर ही ब्रह्मवेत्ता पुरुष योनिसे मुक्त होता है। क्षर और अक्षर—ये दोनों एक-दूसरेसे संयुक्त होते हैं। पति या महेश्वर ही व्यक्ताव्यक्त जगत्का भरण-पोषण करते हैं। वे ही जगत्को बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं॥ ८-९॥

भोक्ता, भोग्य और प्रेरक—ये तीन ही तत्त्व जाननेयोग्य हैं। विज्ञ पुरुषोंके लिये इनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु जाननेयोग्य नहीं है॥ १०॥

जिस प्रकार तिलमें तेल, दहीमें घृत, स्रोतमें जल तथा अरणिमें अग्नि व्याप्त रहती है, उसी प्रकार विलक्षण महान् आत्माको सत्य एवं तपसे नित्ययुक्त व्यक्ति अपनेमें सतत देखता है॥ ११-१२॥

इन्द्रजालके समान एक ही ईश्वर वशमें करनेवाली अपनी माया शक्तियोंसे इन सभी लोकोंको वशमें करके अपना ऐश्वर्य-विस्तार करता है॥ १३॥

सृष्टिके आरम्भमें एक ही रुद्रदेव विद्यमान रहते हैं, दूसरा कोई नहीं होता। वे ही इस जगत्की सृष्टि करके इसकी रक्षा करते हैं और अन्तमें सबका संहार कर डालते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर भुजाएँ हैं और सब ओर चरण हैं॥ १४-१५॥

वे ही एक महेश्वर देव द्यौ तथा पृथ्वीको उत्पन्न करते हैं और वे ही सम्पूर्ण देवगणोंको उत्पन्न करते हैं तथा उनकी अभिवृद्धि करते हैं॥ १६॥

ये ही सबसे पहले देवताओंमें ब्रह्माजीको उत्पन्न करते हैं। श्रुति कहती है कि 'रुद्रदेव सबसे श्रेष्ठ महान् ऋषि हैं। मैं इन महान् अमृतस्वरूप अविनाशी पुरुष परमेश्वरको जानता हूँ। इनकी अंगकान्ति सूर्यके समान है। ये प्रभु अज्ञानान्धकारसे परे विराजमान हैं।' इन परमात्मासे परे दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इनसे अत्यन्त सूक्ष्म और इनसे अधिक महान् भी कुछ नहीं है। इनसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है॥ १७—१९॥

उन परमात्मा रुद्रके मुख, सिर और ग्रीवा सर्वत्र व्याप्त हैं, सभी प्राणियोंके हृदयस्थलमें वे स्थित हैं, वे सर्वव्यापी, सर्वगत, ऐश्वर्यशाली एवं शिवस्वरूप हैं॥ २०॥

इनके सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख और कान हैं। ये लोकमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं। ये सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जाननेवाले हैं, परंतु वास्तवमें सब इन्द्रियोंसे रहित हैं। सबके स्वामी, शासक, शरणदाता और सुहृद् हैं॥ २१-२२॥

ये नेत्रके बिना भी देखते हैं और कानके बिना भी सुनते हैं। ये सबको जानते हैं, किंतु इनको पूर्णरूपसे जाननेवाला कोई नहीं है। इन्हें परम पुरुष कहते हैं। ये अणुसे भी अत्यन्त अणु और महान्से भी परम महान् हैं। ये अविनाशी महेश्वर इस जीवकी हृदय-गुफामें निवास करते हैं॥ २३-२४॥

उस यज्ञरहित, यज्ञस्वरूप, अतिशय महिमावाले जगन्नियन्ता [परमात्मा]-को उसी परमात्माकी कृपासे शोकरहित हुआ पुरुष देख पाता है॥ २५॥

मैं उस जरारहित, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञ पुराणपुरुषको जानता हूँ, जिसके ध्यानसे जन्म, मरणादिका निरोध हो जाता है—ऐसा ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं॥ २६॥

वे अकेले महेश्वर ही सर्वप्रथम अपनी शक्तिके साथ मिलकर बहुत प्रकारसे इन तीनों लोकोंकी सृष्टि करते हैं और अन्तमें उसका संहार भी करते हैं॥ २७॥

विश्वको धारण करनेवाली वह शैवी शक्ति अजा, चित्राकृति (अद्भुत स्वरूपा) एवं परा आदि नामोंसे पुकारी जाती है। जन्मरहिता उस रक्त-श्वेत-कृष्णवर्णा (सत्त्व-रजस्तमोमयी) समष्टिरूपा, तथा प्रजाओंको उत्पन्न करनेवाली [मूल प्रकृति]-का सेवन वह अजन्मा (जीवात्मा) करता है और आत्मस्वरूपमें स्थिता भुक्तभोगा उस प्रकृतिका

दूसरा पुरुष (परमात्मा) त्याग कर देता है॥ २८-२९॥

एक साथ रहनेवाले दो पक्षी एक ही वृक्ष (शरीर)-का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमेंसे एक तो उस वृक्षके कर्मरूप फलोंका स्वाद ले-लेकर उपभोग करता है, किंतु दूसरा उस वृक्षके फलका उपभोग न करता हुआ केवल देखता रहता है। जीवात्मा इस वृक्षके प्रति आसक्तिमें डूबा हुआ है, अतः मोहित होकर शोक करता रहता है। वह जब कभी भगवत्कृपासे भक्तसेवित परम कारणरूप परमेश्वरका और उनकी महिमाका साक्षात्कार कर लेता है, तब शोकरहित हो सुखी हो जाता है॥ ३०-३१ १/२॥

छन्द, यज्ञ, क्रतु तथा भूत, वर्तमान और भविष्य सम्पूर्ण विश्वको वह मायावी रचता है और मायासे ही उसमें प्रविष्ट होकर रहता है। प्रकृतिको ही माया समझना चाहिये और महेश्वर ही वह मायावी है॥ ३२-३३॥

उस प्रकृतिके अवयवोंसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। [गर्भाशयके] मध्यमें स्थित कललमें विद्यमान बीजसे भी अधिक परमात्मा सूक्ष्म है। उस मंगलमय परमेश्वरको इस विश्वका स्रष्टा एवं परिचालक जानकर [साधक] परमशक्ति प्राप्त कर लेता है॥ ३४-३५॥

वह परमेश्वर ही कालस्वरूप, रक्षक एवं विश्वका अधिपति है। उस विश्वाधिपतिको जानकर जीव कालपाशसे छुटकारा पा जाता है। घृतमें मण्डकी भाँति सूक्ष्म एवं सारे प्राणियोंके भीतर निगूढ़भावसे विद्यमान प्रभुको जानकर मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है॥ ३६-३७॥

ये विश्वकर्मा महेश्वर ही परम देवता परमात्मा हैं, जो सबके हृदयमें विराजमान हैं। उन्हें जानकर ही पुरुष परमानन्दमय अमृतका अनुभव करता है॥ ३८॥

जब दिन-रात, सत्-असत् कुछ भी—यह समस्त [जगत्प्रपंच] नहीं था, तब केवल एकमात्र शिव ही विद्यमान थे, उन्हींसे यह शाश्वती प्रज्ञा उत्पन्न होती है। ऊँचे, नीचे, तिरछे तथा मध्यमें कोई भी उन्हें पकड़ नहीं सकता। वे महान् यशवाले हैं तथा उनकी कोई तुलना नहीं है। जन्म [मृत्यु]-के भयसे आक्रान्त पुरुष उन अजन्मा तथा अद्वितीय भगवान् रुद्रको [तत्त्वतः] जानकर रक्षाके लिये उनके कल्याणमय स्वरूपकी शरण ग्रहण कर लेते हैं॥ ३९—४१॥

ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ, असीम एवं अविनाशी परमात्मामें विद्या और अविद्या दोनों गूढ़भावसे स्थित हैं। विनाशशील जडवर्गको ही यहाँ अविद्या कहा गया है और अविनाशी जीवको विद्या नाम दिया गया है; जो उन दोनों विद्या और अविद्यापर शासन करते हैं, वे महेश्वर उनसे सर्वथा भिन्न—विलक्षण हैं॥ ४२-४३॥

ये प्रतापी महेश्वर इस जगत्में समष्टिभूत और इन्द्रिय-वर्गरूप एक-एक जालको अनेक प्रकारसे रचकर इसका विस्तार करते हैं। फिर अन्तमें संहार करके सबको अनेकसे एकमें परिणत कर देते हैं तथा पुनः सृष्टिकालमें सबकी पूर्ववत् रचना करके सबपर आधिपत्य करते हैं। जैसे सूर्य अकेला ही ऊपर-नीचे तथा अगल-बगलकी दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ स्वयं भी देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार ये भजनीय परमेश्वर अकेले ही समस्त कारणरूप पृथ्वी आदि तत्त्वोंका नियमन करते हैं॥ ४४-४५॥

वे ही वस्तुस्वरूप वाच्य एवं वाचकको [जगद्रूपमें परिणमित करते हुए] और गुणोंको भोक्ता तथा भोग्यके रूपमें परिणमित करते हुए संसारमें अधिष्ठित हैं॥ ४६॥

गुह्य उपनिषदोंमें गूढ़ रूपसे प्रतिपाद्य जगत्कर्ता तथा ब्रह्माजीको भी उत्पन्न करनेवाले उस परात्पर ब्रह्मको पहले देवगणों एवं महर्षियोंने जाना था॥ ४७॥

श्रद्धा और भक्तिभावसे प्राप्त होनेयोग्य, आश्रयरहित कहे जानेवाले, जगत्की उत्पत्ति और संहार करनेवाले, कल्याण-स्वरूप एवं सोलह कलाओंकी रचना करनेवाले उन महादेवको जो जानते हैं, वे शरीरके बन्धनको सदाके लिये त्याग देते हैं अर्थात् जन्म-मृत्युके चक्करसे छूट जाते हैं। मोहमें पड़े हुए कुछ लोग उन्हें स्वभाव और कुछ लोग काल मानते हैं, यह उन परमात्माकी महिमा ही है, जिससे यह संसार भ्रमित है॥ ४८-४९॥

कालके भी कालस्वरूप जिन परमात्माने सारे जगत्को आवृत कर रखा है, उन्हींसे प्रेरित यह कर्म प्राणियोंके साथ प्रवृत्त होता है॥ ५०॥

वे परमात्मा [कला आदि] तत्त्वोंका सत्त्व [आदि गुणों]-के साथ योग करके बारम्बार नानाविध कर्मोंको सम्पन्नकर उनसे विनिवृत्त हो जाते हैं। [आकाश आदि] आठ मूर्तियों, [सत्त्वादि] तीनों गुणों, [विद्या-

अविद्या] दोनों शक्तियों अथवा एकमात्र [मूल-प्रकृति] काल तथा [इच्छा आदि] आत्मगुणोंके द्वारा यह समस्त विश्व अभिव्याप्त है। [वह परमात्मा सत्त्वादि] गुणोंके द्वारा कर्मोंकी परिकल्पनाकर उनसे स्वभाव आदिका योग करता है। उन [गुण एवं स्वाभावादिका]-का अभाव होनेपर किये गये कर्मका भी नाश हो जाता है। [प्राणियोंके] कर्मका क्षय होनेपर [परमेश्वर] पुनः अन्य [कर्म, स्वभावादि]-की प्राप्ति कराता है। वह आदिपुरुष परमात्मा ही भोक्ता और भोगके [पारस्परिक] संयोगमें निमित्त बनता है॥ ५१—५४॥

वे ही परमेश्वर तीनों कालोंसे परे, निष्कल, सर्वज्ञ, त्रिगुणाधीश्वर एवं साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। सम्पूर्ण विश्व उन्हींका रूप है। वे सबकी उत्पत्तिके कारण होकर भी स्वयं अजन्मा हैं, स्तुतिके योग्य हैं, प्रजाओंके पालक, देवताओंके भी देवता और सम्पूर्ण जगत्‌के लिये पूजनीय हैं। अपने हृदयमें विराजमान उन परमेश्वरकी हम उपासना करते हैं॥ ५५-५६॥

जो काल आदिसे परे हैं, जिनसे यह समस्त प्रपंच प्रकट होता है, जो धर्मके पालक, पापके नाशक, भोगोंके स्वामी तथा सम्पूर्ण विश्वके धाम हैं, जो ईश्वरोंके भी परम महेश्वर, देवताओंके भी परम देवता तथा पतियोंके भी परम पति हैं, उन भुवनेश्वरोंके भी ईश्वर महादेवको हम सबसे परे जानते हैं॥ ५७-५८॥

उनके शरीररूप कार्य और इन्द्रिय तथा मनरूपी करण नहीं हैं, उनके समान और उनसे अधिक भी इस जगत्‌में कोई नहीं दिखायी देता। ज्ञान, बल और क्रियारूप उनकी स्वाभाविक पराशक्ति वेदोंमें नाना प्रकारकी सुनी गयी है। उन्हीं शक्तियोंसे इस सम्पूर्ण विश्वकी रचना हुई है॥ ५९-६०॥

उसका न कोई स्वामी है, न कोई निश्चित चिह्न है, न उसपर किसीका शासन है। वह समस्त कारणोंका कारण होता हुआ ही उनका अधीश्वर भी है। उनका न कोई जन्मदाता है, न जन्म है, न जन्मके माया-मलादि हेतु ही हैं। वह एक ही सम्पूर्ण विश्वमें, समस्त भूतोंमें गुह्यरूपसे व्याप्त है। वही सब भूतोंका अन्तरात्मा और धर्माध्यक्ष कहलाता है॥ ६१—६३॥

वह सब भूतोंके अंदर बसा हुआ, [सबका द्रष्टा] साक्षी, चेतन और निर्गुण है। वह एक है, वशी है, अनेकों विवशात्मा निष्क्रिय पुरुषोंको वशमें रखनेवाला है। वह नित्योंका नित्य, चेतनोंका चेतन है। वह एक है, कामनारहित है और बहुतोंकी कामना पूर्ण करनेवाला ईश्वर है॥ ६४-६५॥

सांख्य और योग अर्थात् ज्ञानयोग और निष्काम कर्मयोगसे प्राप्त करनेयोग्य सबके कारणरूप उन जगदीश्वर परमदेवको जानकर जीव सम्पूर्ण पाशों (बन्धनों)-से मुक्त हो जाता है। वे सम्पूर्ण विश्वके स्रष्टा, सर्वज्ञ, स्वयं ही अपने प्राकट्यके हेतु, ज्ञानस्वरूप, कालके भी स्रष्टा, सम्पूर्ण दिव्य गुणोंसे सम्पन्न, प्रकृति और जीवात्माके स्वामी, समस्त गुणोंके शासक तथा संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाले हैं॥ ६६-६७॥

जिन परमदेवने सबसे पहले ब्रह्माजीको उत्पन्न किया और स्वयं उन्हें वेदोंका ज्ञान दिया, अपने स्वरूपविषयक बुद्धिको प्रसन्न (निर्मल) करनेवाले उन परमेश्वर शिवको जानकर मैं इस संसारबन्धनसे छूटनेके लिये उनकी शरणमें जाता हूँ॥ ६८$^1/_2$॥

निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, निष्कलंक, निरंजन, अमृतस्वरूप मोक्षके परमसेतु तथा काष्ठके दग्ध हो जानेपर देदीप्यमान होनेवाली अग्निके समान निर्विकार [परमेश्वर शिवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ] ॥ ६९-७०॥

यदि कोई आकाशको चमड़ेके समान [अपने शरीरमें] लपेट ले, तब वह शिवको बिना जाने अपना दुःख दूर कर सकता है अर्थात् शिवके ज्ञानके बिना दुःखका अन्त असम्भव है॥ ७१॥

हे महर्षियो! अपनी तपस्याके प्रभाव और शिवके अनुग्रहसे संन्यासाश्रमोचित, पापनाशक, पवित्र, वेदान्तमें परम गुप्त और पूर्वकल्पमें कहे गये इस ज्ञानको मैंने अपने भाग्यके प्रभावसे ब्रह्माजीके मुखसे प्राप्त किया है॥ ७२-७३॥

यह श्रेष्ठ ज्ञान न अस्थिर चित्तवाले व्यक्तिको, न सदाचारविहीन पुत्रको तथा न तो अयोग्य शिष्यको ही

देना चाहिये॥ ७४॥

जिनकी परमदेव परमेश्वरमें परम भक्ति है, जैसे परमेश्वरमें है, वैसे ही गुरुमें भी है, उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। अतः संक्षेपसे यह सिद्धान्तकी बात सुनो। भगवान् शिव प्रकृति और पुरुषसे परे हैं। वे ही सृष्टिकालमें जगत्को रचते और संहारकालमें पुनः सबको आत्मसात् कर लेते हैं॥ ७५-७६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवतत्त्वज्ञानवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

कालकी महिमाका वर्णन

मुनिगण बोले—कालसे ही सब कुछ उत्पन्न होता है और कालसे ही सब कुछ नष्ट हो जाता है। कालके बिना कहीं कुछ भी नहीं होता है॥ १॥

यह सारा संसारमण्डल कालके मुखमें वर्तमान रहकर उत्पत्ति तथा प्रलयरूप लक्षणोंसे लक्षित चक्रकी भाँति निरन्तर घूमता रहता है॥ २॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवता एवं असुर जिसके द्वारा बनाये गये नियमको प्राप्तकर उसका उल्लंघन करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं, अत्यन्त भयानक वह काल भूत, भविष्य, वर्तमान आदि रूपोंमें अपनेको विभक्तकर प्रजाओंको क्षीण करता हुआ सर्वसमर्थ होकर स्वच्छन्दतापूर्वक व्यवहार करता रहता है॥ ३-४॥

यह भगवत्स्वरूप काल कौन है, यह किसके अधीन रहनेवाला है और कौन इसके वशमें नहीं है? हे विचक्षण! इसे बताइये॥ ५॥

वायु बोले—कला, काष्ठा, निमेष आदि इकाइयोंसे घटित मूर्तस्वरूप धारण करनेवाला महेश्वरका परम तेज ही कालात्मा कहा गया है, जिसका उल्लंघन समस्त स्थावर तथा जंगम रूपवाला कोई भी [प्राणी] नहीं कर सकता। वह ईश्वरका आदेशरूप है और विश्वको अपने वशमें रखनेवाला ईश्वरका [साक्षात्] बल है॥ ६-७॥

उन परमेश्वरकी अंशांशरूपा शक्ति उनसे निकलकर महिमामय कालात्मामें उसी प्रकार संक्रान्त हो गयी है, जिस प्रकार दाहिका शक्ति अग्निसे निकलकर लोहेमें संक्रान्त हो जाती है। इसलिये सम्पूर्ण जगत् तो कालके वशमें है, पर काल विश्वके वशमें नहीं है और वह काल शिवके वशमें है, किंतु शिव कालके वशमें नहीं हैं। शिवजीका अप्रतिहत तेज कालमें सन्निविष्ट है, इसलिये कालकी महान् मर्यादा मिटायी नहीं जा सकती॥ ८—१०॥

अपनी विशिष्ट बुद्धिसे भी भला कौन कालका अतिक्रमण करनेमें समर्थ है। कोई भी कालके द्वारा किये गये कर्मको नहीं मिटा सकता है॥ ११॥

जो पराक्रम करके सम्पूर्ण पृथ्वीपर एकछत्र शासन करते हैं, वे भी कालकी मर्यादाको नहीं मिटा सकते, जैसे तटकी मर्यादाको सागर नहीं मिटा सकते॥ १२॥

जो लोग इन्द्रियोंको वशमें करके सारे संसारको जीत लेते हैं, वे भी कालको नहीं जीत पाते, अपितु काल ही उन्हें जीत लेता है। आयुर्वेदके ज्ञाता और रसायनका प्रयोग करनेवाले वैद्य भी मृत्युको नहीं टाल सकते हैं; क्योंकि काल दुरतिक्रम है॥ १३-१४॥

श्री (धन), रूप, शील, बल और कुलके द्वारा [समृद्ध] प्राणी कुछ और सोचता है, किंतु काल बलपूर्वक कुछ और ही कर देता है॥ १५॥

वह सामर्थ्यशाली काल प्रिय और अप्रिय घटनाओंके अकल्पित समागमके द्वारा कभी प्राणियोंका संयोग और कभी वियोग प्राप्त कराता रहता है॥ १६॥

जिस समय कोई दुखी रहता है, उसी समय कोई दूसरा सुखी रहता है। अहो! कठिनतासे जाननेयोग्य स्वभाववाले कालकी कैसी विचित्रता है!॥ १७॥

जो युवा है, वह वृद्ध हो जाता है, जो बलवान् है, वह दुर्बल हो जाता है और जो श्रीसम्पन्न है, वह

निर्धन भी हो सकता है। हे ब्राह्मणो! कालकी गति बड़ी विचित्र है। कालके प्रतिकूल होनेपर कुलीनता, शील, सामर्थ्य तथा कुशलता—ये कोई भी गुण कार्यसिद्धिमें सफलता नहीं दे पाते॥ १८-१९ ॥

जो प्राणी सनाथ हैं, दानशील हैं और जिनका मनोरंजन गीत-वाद्यादिके द्वारा किया जाता है, वे लोग और जो अनाथ हैं तथा दूसरोंके द्वारा दिये गये अन्नका भोजन करते हैं—उन सभीके प्रति काल समान व्यवहारवाला होता है॥ २० ॥

असमयमें अच्छी तरहसे प्रयोगमें लाये गये रसायन तथा औषध कारगर नहीं होते हैं, किंतु समयसे दिये जानेपर वे ही सफल होते हैं तथा सुख प्रदान करते हैं। यह जीव बिना समयके न मरता है, न जन्म ही लेता है और न उत्तम पोषण ही प्राप्त करता है। बिना कालके कोई सुखी अथवा दुखी भी नहीं होता है। [इस संसारमें] कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जो अकालिक हो॥ २१-२२ ॥

समयसे ही ठण्डी हवा चलती है, समयसे ही मेघोंसे वर्षा होती है और समयसे ही गर्मी शान्त होती है, कालसे ही सब कुछ सफल होता है॥ २३ ॥

काल ही सभीकी उत्पत्तिका कारण है। समयपर ही फसलें होती हैं और समयपर ही फसलें कटती हैं, कालसे ही सब लोग जीवित रहते हैं॥ २४ ॥

इस प्रकार जो कालात्माके तात्त्विक स्वरूपको यथार्थरूपसे जानता है, वह कालात्माका अतिक्रमणकर कालसे परे निर्गुण परमेश्वरका दर्शन कर लेता है॥ २५ ॥

जिसका न काल है, न बन्धन है और न मुक्ति है; जो न पुरुष है, न प्रकृति है तथा न विश्व है—उस विचित्र रूपवाले परात्पर परमेश्वर शिवको नमस्कार है॥ २६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें कालमहिमवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

कालका परिमाण एवं त्रिदेवोंके आयुमानका वर्णन

ऋषिगण बोले—इस कालमें किस प्रमाणके द्वारा आयु-गणनाकी कल्पना की जाती है और संख्यारूप कालकी परम अवधि क्या है?॥ १ ॥

वायुदेव बोले—आयुका पहला मान निमेष कहा जाता है। संख्यारूप कालकी शान्त्यतीत कला चरम सीमा है। पलक गिरनेमें जो समय लगता है, उसे ही निमेष कहा गया है। उस प्रकारके पन्द्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है॥ २-३ ॥

तीस काष्ठाओंकी एक कला, तीस कलाओंका एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तोंका एक अहोरात्र कहा जाता है। मास तीस दिन-रातका तथा दो पक्षोंवाला होता है। एक मासके बराबर पितरोंका एक अहोरात्र होता है, जिसमें रात्रि कृष्णपक्ष और दिन शुक्लपक्ष माना जाता है॥ ४—६ ॥

छः महीनोंका एक अयन होता है। दो अयनोंका एक वर्ष माना गया है, जिसे लौकिक मानसे मनुष्योंका वर्ष कहा जाता है। यही एक वर्ष देवताओंका एक अहोरात्र होता है—ऐसा शास्त्रका निश्चय है। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि एवं उत्तरायण दिन होता है॥ ७-८ ॥

मनुष्योंकी भाँति देवताओंके भी तीस अहोरात्रोंको उनका एक मास कहा गया है और इस प्रकारके बारह महीनोंका देवताओंका भी एक वर्ष होता है। मनुष्योंके तीन सौ साठ वर्षोंका देवताओंका एक वर्ष जानना चाहिये। उसी दिव्य वर्षसे युगसंख्या होती है। विद्वानोंने भारतवर्षमें चार युगोंकी कल्पना की है॥ ९—११ ॥

सबसे पहले कृतयुग (सत्ययुग), इसके बाद त्रेतायुग होता है, फिर द्वापर तथा कलियुग होते हैं—इस प्रकार कुल ये ही चार युग हैं॥ १२ ॥

इनमें देवताओंके चार हजार वर्षोंका सत्ययुग होता है, इसके अतिरिक्त चार सौ वर्षोंकी सन्ध्या तथा इतने ही वर्षोंका सन्ध्यांश होता है॥ १३ ॥

अन्य तीन युगोंमें वर्ष तथा सन्ध्या-सन्ध्यांशमें एक-

एक पाद क्रमशः हजार तथा सौ कम होता है अर्थात् त्रेता तीन हजार वर्षका, उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश तीन सौ वर्षके, द्वापर दो हजार वर्षका तथा उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश दो सौ वर्षके और कलियुग एक हजार वर्षका तथा उसकी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश एक-एक सौ वर्षके होते हैं। इस तरह सन्ध्या एवं सन्ध्यांशके सहित चारों युग बारह हजार वर्षके होते हैं। एक हजार चतुर्युगीका एक कल्प कहा जाता है॥ १४-१५॥

इकहत्तर चतुर्युगीका एक मन्वन्तर कहा जाता है। एक कल्पमें चौदह मनुओंका आवर्तन होता है॥ १६॥

इस क्रमयोगसे प्रजाओंसहित सैकड़ों-हजारों कल्प और मन्वन्तर बीत चुके हैं। उन सभीको न जाननेके कारण तथा उनकी गणना न कर सकनेके कारण क्रमबद्धरूपसे उनके विस्तारका निरूपण नहीं किया जा सकता है। एक कल्पके बराबर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीका एक दिन कहा गया है तथा यहाँपर हजार कल्पोंका ब्रह्माका एक वर्ष कहा जाता है॥ १७—१९॥

ऐसे आठ हजार वर्षोंका ब्रह्माका एक युग होता है और पद्मयोनि ब्रह्माके हजार युगोंका एक सवन होता है। एक हजार सवनोंका तीन गुना तथा उस तीन गुनाका भी तीन गुना अर्थात् नौ हजार सवनोंका ब्रह्माजीका कालमान कहा गया है। उनके एक दिनमें चौदह, एक मासमें चार सौ बीस, एक वर्षमें पाँच हजार चालीस तथा उनकी पूरी आयुमें पाँच लाख चालीस हजार इन्द्र व्यतीत हो जाते हैं॥ २०—२३॥

ब्रह्मा विष्णुके एक दिनपर्यन्त, विष्णु रुद्रके एक दिनपर्यन्त, रुद्र ईश्वरके एक दिनपर्यन्त और ईश्वर सत् नामक शिवके एक दिनपर्यन्त रहते हैं॥ २४॥

यही साक्षात् शिवके लिये कालकी संख्या है, उन्हें सदाशिव भी कहा जाता है। इनकी पूर्ण आयुमें पूर्वोक्त क्रमसे पाँच लाख चालीस हजार रुद्र हो जाते हैं॥ २५॥

उन साक्षात् सदाशिवके द्वारा ही वह कालात्मा प्रवर्तित होता है। हे ब्राह्मणो! सृष्टिके कालान्तरका मैंने वर्णन कर दिया, इतने कालको परमेश्वरका एक दिन जानना चाहिये और उतने ही कालको परमेश्वरकी एक पूर्ण रात्रि भी जाननी चाहिये। सृष्टिको दिन और प्रलयको रात्रि कहा गया है, किंतु उनके लिये न दिन है और न रात्रि—ऐसा समझना चाहिये॥ २६—२८॥

यह औपचारिक व्यवहार तो लोकके हितकी कामनासे किया जाता है। प्रजा, प्रजापति, नानाविध शरीर, सुर, असुर, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय, पंचमहाभूत, तन्मात्राएँ, भूतादि (अहंकार), देवगणोंके साथ बुद्धि—ये सब धीमान् परमेश्वरके दिनमें स्थित रहते हैं और दिनके अन्तमें प्रलयको प्राप्त हो जाते हैं, इसके बाद रात्रिके अन्तमें पुनः विश्वकी उत्पत्ति होती है॥ २९-३०॥

जो विश्वात्मा हैं और काल, कर्म तथा स्वभावादि अर्थमें जिनकी शक्तिका उल्लंघन नहीं किया जा सकता और जिनकी आज्ञाके अधीन यह समस्त जगत् है, उन महान् शंकरको नमस्कार है॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें कालप्रभावमें त्रिदेवोंका आयुवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

सृष्टिके पालन एवं प्रलयकर्तृत्वका वर्णन

मुनिगण बोले—[हे वायुदेव!] परमात्मा शिव किस प्रकारसे इस सम्पूर्ण जगत्का निर्माणकर पुनः इसे स्थापित करके अपनी शक्तिके साथ उत्तम क्रीड़ा करते हैं?॥ १॥

यह संसार सर्वप्रथम किस प्रकारसे उत्पन्न हुआ, किसने इस सम्पूर्ण जगत्का विस्तार किया और विशाल उदरवाला कौन इसे बादमें ग्रास बना लेता है?॥ २॥

वायु बोले—सबसे पहले शक्तिकी उत्पत्ति हुई, इसके पश्चात् शान्त्यतीतपद उत्पन्न हुआ, तदनन्तर शक्तिमान् प्रभु शिवसे माया एवं अव्यक्त प्रकृति

उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥

[प्रथमोत्पन्न] शक्तिसे शान्त्यतीतपद, इसके पश्चात् शान्तिपद, तदनन्तर विद्यापद, उसके आगे प्रतिष्ठापद और उसके आगे निवृत्तिपद क्रमशः उत्पन्न हुए। इस प्रकार मैंने ईश्वरप्रेरित सृष्टिका वर्णन संक्षेपमें किया है ॥ ४-५ ॥

सृष्टिकी उत्पत्ति अनुलोम क्रमसे होती है और प्रतिलोम क्रमसे उसका संहार होता है। इन पाँच पदोंसे उपदिष्ट सृष्टिके अतिरिक्त एक स्रष्टा भी कहा जाता है ॥ ६ ॥

अव्यक्त कारण जो पाँच कलाओंसे व्याप्त हैं तथा जिससे इस विश्वकी उत्पत्ति है और जो चेतनसे अधिष्ठित है, वह अव्यक्त महत्तत्त्वसे लेकर विशेष-तत्त्वपर्यन्त इस संसारकी सृष्टि करता है—यह सर्व-सम्मत है, फिर भी इसमें अव्यक्त तथा जीवका कर्तृत्व नहीं है ॥ ७-८ ॥

प्रकृतिके अचेतन होनेसे और पुरुषके अज्ञानी होनेसे प्रधान, परमाणु आदि जो कुछ भी हैं, सभी अचेतन ही हैं ॥ ९ ॥

उनका कर्ता कोई चेतन होना चाहिये, जो बुद्धिसे युक्त हो, इसके बिना कार्य-कारणभावकी संगति नहीं बैठती, क्योंकि यह जगत् कार्यरूप है, सावयव है और कर्तृसापेक्ष है ॥ १० ॥

अतएव जो समर्थ, स्वतन्त्र, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, आदि-अन्तसे परे और महान् ऐश्वर्यसे समन्वित हैं, वे महेश्वर महादेव ही सम्पूर्ण जगत्की रचना करनेवाले, पालन करनेवाले तथा संहार करनेवाले हैं और सबसे पृथक् तथा अन्वयरहित हैं ॥ ११-१२ ॥

प्रधानका परिणाम तथा पुरुषकी प्रवृत्ति—यह सब कुछ उस सत्यव्रत [परमेश्वर]-के शासनसे ही प्रवर्तित होता है। सज्जनोंके मनमें यह शाश्वत निष्ठा बनी हुई है, किंतु अल्पबुद्धिवाला इस पक्षको ग्रहण नहीं कर पाता है ॥ १३-१४ ॥

जबसे इस सृष्टिका आरम्भ होता है और जबतक प्रलय होता है, तबतक ब्रह्मदेवके पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो जाते हैं ॥ १५ ॥

अव्यक्तजन्मा ब्रह्माकी आयुका नाम 'पर' है। उस परके आधे भागको प्रथम परार्ध तथा द्वितीय भागको द्वितीय परार्ध कहते हैं। दोनों परार्धोंके बीत जानेके बाद प्रलयके उपस्थित होनेपर अव्यक्त अपने कार्यभूत जगत्को लेकर अपने स्वरूपमें अवस्थित हो जाता है ॥ १६-१७ ॥

अव्यक्तके स्वस्वरूपमें अवस्थित हो जानेपर तथा [जगद्रूप] विकारका प्रतिलोमक्रमसे विलय हो जानेपर प्रधान और पुरुष दोनों समान धर्मसे स्थित हो जाते हैं ॥ १८ ॥

तब तम तथा सत्त्वगुण—ये दोनों समरूपमें स्थित रहते हैं। वे दोनों वृद्धि और न्यूनतासे रहित होकर परस्पर चेष्टाशून्य ओत-प्रोत रहते हैं ॥ १९ ॥

उस समय गुणोंकी साम्यावस्था होनेसे परस्पर वे अविभक्त थे तथा [सर्वत्र घनीभूत] अन्धकार व्याप्त था। वायु तथा जलकी गति शान्त थी और कुछ भी ज्ञात नहीं हो पा रहा था। उस समय जब संसारमें कुछ भी प्रतीत नहीं हो रहा था, तब एकमात्र महेश्वर ही विद्यमान थे। उन परमात्मा महेश्वरने उस सम्पूर्ण माहेश्वरी रात्रिको व्यतीत किया। रात्रिके अवसान तथा प्रभातके आगमनपर उन्होंने मायाके योगसे प्रधान तथा पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको क्षुब्ध कर दिया ॥ २०—२२ ॥

इसके बाद परमेष्ठीकी आज्ञासे अव्यक्तसे पुनः उत्पत्ति और लयके निमित्त सभी प्राणियोंकी सृष्टि हुई। जिनकी इच्छाके द्वारा यह विचित्र विश्व उत्तरोत्तर उत्पन्न हुआ था, जिनकी शक्तिके मात्र एक अंशमें यह समस्त जगत् लयको प्राप्त हो जाता है। मोक्षमार्गको जाननेवाले लोग जिन्हें मोक्षमार्गका नियामक तथा आत्मस्वरूप बताते हैं, उन सर्वलोकविलक्षण [परमेश्वर]-को नमस्कार है ॥ २३-२४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सृष्टिपालन तथा प्रलयकर्तृत्ववर्णन नामक नवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

ब्रह्माण्डकी स्थिति, स्वरूप आदिका वर्णन

वायु बोले—पहले ईश्वरकी आज्ञासे पुरुषसे समन्वित अव्यक्तसे बुद्धि आदिसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी विकार क्रमशः उत्पन्न हुए॥ १॥

इसके बाद उन्हीं विकारोंसे रुद्र, विष्णु एवं पितामह—ये तीन जगत्कारणभूत देवता उत्पन्न हुए॥ २॥

तत्पश्चात् उन्होंने [ब्रह्मा आदिको] इस संसारमें सभी जगह व्याप्त रहनेवाली अप्रतिहत शक्ति, अप्रतिम ज्ञान, अणिमादि ऐश्वर्य और सृष्टि, स्थिति तथा लय—इन तीन कार्योंका सामर्थ्य प्रदान किया, [इस प्रकार] उन ब्रह्मादि देवोंको प्रभुत्वसे [अनुगृहीत करते हुए] उनपर महेश्वर प्रसन्न हुए। उन्होंने कल्पान्तरमें स्पर्धारहित तथा निर्भ्रान्त बुद्धिवाले इन देवगणोंको सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयका कार्य क्रमसे सौंपा॥ ३—५॥

ये [देवगण] परस्पर उत्पन्न होकर आपसमें एक-दूसरेको धारण करते हैं और परस्पर एक-दूसरेका अनुवर्तन करते हुए वृद्धिको प्राप्त होते रहते हैं॥ ६॥

कभी ब्रह्मा, कभी विष्णु तथा कभी रुद्र प्रशंसित होते हैं, परंतु इससे उनके ऐश्वर्यकी न्यूनता अथवा अधिकता नहीं होती है। दुराग्रहसे युक्त मूर्खलोग वाणीसे उनकी निन्दा करते हैं और [उस अपराधके कारण] वे [दूसरे जन्ममें] राक्षस और पिशाच होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ७-८॥

वे चतुर्व्यूहरूप महेश्वर देव तीनों गुणोंसे परे, कलायुक्त, सबको धारण करनेमें समर्थ तथा शक्तिकी उत्पत्तिके कारण हैं। लीलामात्रसे जगत्की रचना करनेवाले वे शिवजी [ब्रह्मा आदि] तीनों देवताओं, प्रकृति तथा पुरुषके अधीश्वरके रूपमें विराजमान रहते हैं॥ ९-१०॥

जो परमेश्वर सबसे परे, नित्य तथा निष्कल हैं, वे ही सबके आधार, सबकी आत्मा तथा सभीमें अधिष्ठित हैं। अतः महेश्वर, प्रकृति पुरुष, सदाशिव, भव, विष्णु, ब्रह्मा—ये सभी शिवात्मक हैं॥ ११-१२॥

प्रधानसे सर्वप्रथम बुद्धि, ख्याति, मति तथा महत्तत्त्व उत्पन्न हुए, पुनः महत्तत्त्वके संक्षोभसे तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ। पंचमहाभूत, पंचतन्मात्राएँ एवं इन्द्रियाँ—ये अहंकारसे उत्पन्न हुए। सत्त्वप्रधान उस वैकारिक अहंकारसे सात्त्विक सर्ग उत्पन्न हुआ॥ १३-१४॥

यह वैकारिक सर्ग एक साथ ही प्रवृत्त होता है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, इन दस इन्द्रियोंके अतिरिक्त ग्यारहवाँ मन भी एक इन्द्रिय है, जो अपने गुणोंसे कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय दोनों है—ये उत्पन्न हुए। तामस अहंकारसे महाभूतों तथा तन्मात्राओंकी उत्पत्ति हुई। पंचभूतोंसे पहले उत्पन्न होनेके कारण उसे भूतादि कहा जाता है। भूतादि अहंकारसे सर्वप्रथम शब्दतन्मात्राकी उत्पत्ति हुई, जिससे आकाश उत्पन्न हुआ। आकाशसे स्पर्श उत्पन्न हुआ, स्पर्शसे वायुकी उत्पत्ति हुई। वायुसे रूप, रूपसे तेज, तेजसे रस उत्पन्न हुआ। रससे जल उत्पन्न हुआ, जलसे गन्ध उत्पन्न हुआ और गन्धसे पृथ्वी उत्पन्न हुई और इन पंचभूतोंद्वारा अन्य चराचरकी उत्पत्ति हुई॥ १५—१९॥

वे पुरुषके अधिष्ठित होनेसे और अव्यक्तके अनुग्रहसे महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त समस्त ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति करते हैं। इस प्रकारका जब ब्रह्माजीका कार्य-कारणभाव सिद्ध हो गया, तब उस अण्डमें ब्रह्मसंज्ञक क्षेत्रज्ञ वृद्धिको प्राप्त होने लगा॥ २०-२१॥

वही प्रथम शरीरी है और उसीको पुरुष भी कहा जाता है। प्राणियोंके कर्ता वही ब्रह्मा सबसे पहले उत्पन्न हुए॥ २२॥

तदनन्तर क्षेत्राभिमानी उन ब्रह्माजीकी ज्ञान-वैराग्यसे युक्त, धर्मैश्वर्यप्रदायिनी, अतुलनीया ब्राह्मी बुद्धि उत्पन्न हुई। उन ब्रह्माजीने अपने मनमें जो-जो कामना की, वह सब अव्यक्त [प्रकृति]-से उत्पन्न हुई॥ २३$^{1}/_{2}$॥

वे ब्रह्माजी स्वभावतः त्रिगुणके वशीभूत एवं [प्रकृतिके] सापेक्ष होनेके कारण अपनेको तीन रूपोंमें विभक्तकर त्रैलोक्यमें भलीभाँति अधिष्ठित होते हैं और इन तीनों रूपोंके द्वारा सृजन, पालन तथा संहार करते हैं॥ २४-२५॥

वे सृष्टि करते समय चतुर्मुख ब्रह्मा, लयकालमें रुद्र तथा पालनकालमें सहस्र सिरवाले पुरुष विष्णु कहे गये हैं। स्वयम्भू परमात्माकी ये तीन अवस्थाएँ हैं॥ २६॥

उन विभुके ब्रह्मरूप धारण करनेमें सत्त्वगुण तथा रजोगुण, [संहारक] कालस्वरूप धारण करनेमें रजोगुण एवं तमोगुण तथा विष्णुरूप धारण करनेमें सत्त्वगुणकी कारणता कही जाती है। ये गुणवृद्धिके तीन प्रकार हैं। वे ब्रह्माके रूपमें लोकोंकी रचना करते हैं, रुद्ररूपमें लोकोंका संहार करते हैं और पुरुष विष्णुरूपमें अत्यन्त उत्कृष्टरूपमें स्थित रहकर पालन करते हैं। यही उन विभुका तीन प्रकारका कर्म है॥ २७-२८॥

इस प्रकार तीन रूपोंमें विभक्त होनेके कारण ब्रह्मा त्रिगुणात्मक कहे जाते हैं तथा चार भागोंमें विभक्त होनेके कारण वे चतुर्व्यूह कहे जाते हैं॥ २९॥

वे सबके आदि होनेसे आदिदेव तथा अजन्मा होनेसे अज कहे गये हैं। वे सभी प्रजाओंकी रक्षा करते हैं, अतः प्रजापति कहे गये हैं॥ ३०॥

सुवर्णमय जो मेरु पर्वत है, वह उन महात्माका गर्भाशय है, समुद्र उस गर्भका जल है तथा पर्वत जरायु हैं। उस अण्डमें ये लोक स्थित हैं, इसीके भीतर नक्षत्र, ग्रह वायुके सहित सूर्य तथा चन्द्रमा और यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है॥ ३१-३२॥

यह अण्ड बाहरसे अपने दस गुने परिमाणवाले जलसे व्याप्त है, जल बाहरसे अपनेसे दस गुने परिमाणवाले तेजसे व्याप्त है और तेज भी बाहरसे अपनेसे दस गुने परिमाणवाले वायुसे व्याप्त है, वायु आकाशसे आवृत है और आकाश भूतादिसे आवृत है। भूतादि महान्से और महान् अव्यक्त तत्त्वसे आवृत है। इस प्रकार यह ब्रह्माण्ड बाहरसे इन सात आवरणोंसे घिरा हुआ है॥ ३३—३५॥

ये आठ प्रकृतियाँ एक-दूसरेको आवृतकर स्थित हैं। हे ब्राह्मणो! ये सृष्टि, पालन तथा संहारका कार्य करती रहती हैं। इस प्रकार ये एक-दूसरेसे उत्पन्न होकर एक-दूसरेको धारण करती हैं। इनका परस्पर आधार-आधेयभावसे विकारियोंमें विकार होता है॥ ३६-३७॥

जिस प्रकार कछुआ पहले अपने अंगोंको फैलाकर पुनः समेट लेता है, उसी प्रकार अव्यक्त भी विकारोंकी सृष्टिकर उन्हें पुनः समेट लेता है॥ ३८॥

यह संसार अनुलोमक्रमसे अव्यक्तसे उत्पन्न होता है और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर प्रतिलोम क्रमसे विलयको प्राप्त होता है॥ ३९॥

कालके प्रभावसे ही गुण सम और विषम होते हैं। गुणोंमें साम्यकी स्थितिमें लय समझना चाहिये और वैषम्यकी स्थितिमें सृष्टि कही जाती है॥ ४०॥

यह घनीभूत महान् अण्ड ब्रह्माकी उत्पत्तिमें कारण है। यह ब्रह्मदेवका क्षेत्र कहा जाता है और ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं। इस प्रकारके हजारों ब्रह्माण्डसमूहोंको जानना चाहिये। प्रधानके सर्वत्र व्याप्त होनेसे ये ऊपर-नीचे तथा तिरछे विद्यमान हैं॥ ४१-४२॥

उन सभी स्थानोंमें चतुर्मुख ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित हैं, जो शिवका सान्निध्य प्राप्त करके प्रधानके द्वारा सृजित किये गये हैं॥ ४३॥

महेश्वर अव्यक्तसे परे हैं। यह अण्ड अव्यक्तसे उत्पन्न हुआ है, अण्डसे विभु ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं और उन्होंने ही इन लोकोंकी रचना की है॥ ४४॥

मैंने प्रथम प्रवृत्त हुई अबुद्धिपूर्वा प्रधान सृष्टिका वर्णन किया, जिसका अन्तकालमें आत्यन्तिक लय हो जाता है, यह चेष्टा ईश्वरकी लीलामात्र है॥ ४५॥

वह जो ब्रह्म जगत्का प्रधान कारण, अप्रमेय, प्रकृतिका उत्पादक, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, अनन्तवीर्य [सत्त्वगुणान्वित होनेपर] शुक्लवर्ण, [रजोगुणान्वित होनेसे] रक्तवर्ण तथा [सृष्टिकर्ता] पुरुषसे युक्त है। वह जगत्के उत्पादक रजोगुणकी अभिवृद्धिके द्वारा लोककी सन्तानपरम्पराकी वृद्धिमें हेतुभूत आठ विकारोंको सृष्टिके आदिकालमें उत्पन्न करता है और अन्तमें उनका लय कर देता है॥ ४६-४७॥

प्रकृतिद्वारा स्थापित किये गये कारणोंकी जो स्थिति एवं पुनः प्रवृत्ति है, वह सब अप्राकृत ऐश्वर्यवाले महेश्वरके संकल्पमात्रसे सम्भव होती है॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें ब्रह्माण्डस्थितिवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

अवान्तर सर्ग और प्रतिसर्गका वर्णन

मुनि बोले—[हे देव!] अब सभी मन्वन्तरों, समस्त कल्पभेदों और उनमें होनेवाले अवान्तर सर्ग तथा प्रतिसर्गका वर्णन हमलोगोंसे कीजिये॥ १॥

वायु बोले—[हे मुनियो!] मैंने कालगणनाके प्रसंगमें कहा है कि ब्रह्माकी आयु परार्धपर्यन्त है। जब परार्धकाल पूर्ण हो जाता है, तो सृष्टि विनष्ट हो जाती है। सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले उन ब्रह्माजीके एक-एक दिनमें चौदह-चौदह मनुओंका काल व्यतीत होता है। अनादि, अनन्त तथा अज्ञेय होनेसे सभी मन्वन्तर और कल्पोंका वर्णन अलग-अलग नहीं किया जा सकता है॥ २—४॥

आपलोग मेरी बात सुनिये। उन सभीका वर्णन किये जानेपर भी उस वर्णनका कोई फल नहीं है, इसीलिये मैं उन्हें पृथक्‌रूपसे नहीं कह सकता॥ ५॥

इस समय कल्पोंके क्रममें जो वर्तमान कल्प चल रहा है, उसीमें संक्षिप्त रूपसे सृष्टि और संहार होते हैं। हे द्विजश्रेष्ठो! यह जो वाराह नामक कल्प चल रहा है, इसमें भी चौदह मनु हैं॥ ६-७॥

स्वायम्भुव आदि [जो पूर्ववर्ती] सात मनु हैं तथा सावर्णि आदि [जो उत्तरवर्ती] सात मनु हैं। उनमें इस समय सातवें वैवस्वत मनु वर्तमान हैं॥ ८॥

सभी मन्वन्तरोंमें सृष्टि और संहारका क्रम समान ही होता है—विद्वानोंको ऐसा जानना चाहिये॥ ९॥

इस कल्पके पहले जब प्रलयकाल उपस्थित हुआ, तब बड़े जोरसे आँधी चलने लगी, वृक्ष एवं वन उखड़कर नष्ट हो गये, अग्निदेवने तीनों लोकोंको तृणके समान जला डाला, वर्षासे पृथ्वी भर उठी, सभी समुद्र उद्वेलित हो उठे, महान् जलराशिमें सभी दिशाएँ मग्न हो गयीं, उस प्रलयकालीन जलमें समुद्र अपनी चंचल तरंगरूपी भुजाओंको ऊपर उठा-उठाकर भयानक नृत्य करने लगे, उस समय ब्रह्माजी नारायणरूप होकर सुखपूर्वक जलमें शयन कर रहे थे। उन नारायणके प्रति यह मन्त्रात्मक श्लोक कहा गया है, हे मुनिश्रेष्ठो! अक्षर [परमतत्त्व]-का प्रतिपादन करनेवाले उस अर्थको सुनिये—जलको नार कहा गया है; क्योंकि उसकी उत्पत्ति भगवान् नरसे हुई है। वही जल पूर्वकालमें उनके रहनेका स्थान हुआ, इसीलिये उन्हें नारायण कहा गया है॥ १०—१५॥

इसके पश्चात् प्रातःकाल उपस्थित होनेपर शिवयोगमयी निद्रा लेते हुए देवेश्वर [नारायणस्वरूप ब्रह्माजी]-को जनलोकनिवासी सिद्धगण तथा देवता हाथ जोड़कर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे जगाने लगे, जैसे पूर्वकालमें सृष्टिके प्रारम्भमें श्रुतियाँ ईश्वरको जगाती रही हैं। तब योगनिद्रासे अलसाये नेत्रोंवाले वे [नारायणस्वरूप ब्रह्माजी] निद्रा त्यागकर तथा जलके मध्यमें स्थित शय्यासे उठ करके सभी दिशाओंको देखने लगे॥ १६—१८॥

जब उन्होंने अपने अतिरिक्त कुछ भी नहीं देखा, तब विस्मित होकर यह चिन्ता करने लगे—अनेक प्रकारके महाशैल, नदी, नगर तथा वनवाली, मनोहर एवं विशाल जो ऐश्वर्यशालिनी पृथ्वी थी, वह कहाँ चली गयी?॥ १९-२०॥

इस तरह सोचते हुए ब्रह्माजीको जब पृथ्वीकी स्थितिका ज्ञान नहीं हुआ, तो वे अपने पिता भगवान् सदाशिवका स्मरण करने लगे। तब अमित तेजस्वी देवदेव सदाशिवका स्मरण करते ही धरणीपति ब्रह्मदेवने जान लिया कि पृथ्वी जलमें निमग्न है॥ २१-२२॥

तत्पश्चात् पृथ्वीका उद्धार करनेकी इच्छावाले प्रजापतिने जलक्रीडाके योग्य दिव्य वाराहरूपका स्मरण किया। महान् पर्वतके समान शरीरवाले, महामेघके समान गर्जनवाले, नीलमेघसदृश कान्तिवाले तथा उत्कट, भयानक शब्द करते हुए, मोटे सुपुष्ट और गोल कन्धेवाले, मोटे और ऊँचे कटिप्रदेशवाले, छोटे एवं गोल ऊरु तथा जंघाके अग्रभागवाले, तीक्ष्ण खुरमण्डलवाले, पद्मरागमणिके समान आभावाले, गोल एवं भयानक नेत्रवाले और दीर्घ गोल गात्रवाले, स्तब्ध तथा उज्ज्वल कर्णप्रदेशवाले, छोड़े गये दीर्घ श्वासोच्छ्वाससे प्रलयकालीन समुद्रको क्षुब्ध करनेवाले, बिखरे अयालोंसे आच्छन्न कपोल एवं स्कन्धभागवाले, मणिजटित आभूषणों तथा

अद्भुत महारत्नोंसे अलंकृत, मानो विद्युत्‌से सुशोभित ऊँचा मेघमण्डल ही स्थित हो—ऐसे अत्यधिक विशाल वराहरूपको धारण करके पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये ब्रह्माजी रसातलमें प्रविष्ट हुए॥ २३—२९॥

पर्वतके समान [विशाल] शूकररूपधारी वे ब्रह्माजी शिवलिंगके पादपीठके समान अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। इसके पश्चात् वे जलमें निमग्न पृथ्वीको उठाकर अपने दाढ़के ऊपर धारणकर रसातलसे ऊपर आये॥ ३०-३१॥

उन्हें देखकर जनलोकनिवासी मुनि एवं सिद्धगण हर्षित होकर नृत्य करने लगे और उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ३२॥

उस समय पुष्पोंसे आच्छादित महावाराहका शरीर उड़-उड़कर गिरते हुए खद्योतोंसे आवृत अंजनपर्वतके समान शोभायमान हो रहा था॥ ३३॥

तत्पश्चात् भगवान् वराहने महती पृथ्वीको लाकर अपना रूप धारण करके उसे यथास्थान स्थापित कर दिया। उन्होंने पृथ्वीको समतल करके उस पृथ्वीपर पर्वतोंकी स्थापना करते हुए पूर्वकी भाँति भूः आदि चार लोकोंको भी स्थापित किया। इस प्रकार प्रलयकालीन महासागरके नीचे स्थित जलके बीचसे पर्वतोंसहित विशाल पृथ्वीको जलके ऊपर स्थापित करके पुनः उन विश्वकर्माने उसपर चराचर जगत्‌की रचना की॥ ३४—३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सृष्टि आदिवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीकी मानसी सृष्टि, ब्रह्माजीकी मूर्च्छा, उनके मुखसे रुद्रदेवका प्राकट्य, सप्राण हुए ब्रह्माजीके द्वारा आठ नामोंसे महेश्वरकी स्तुति तथा रुद्रकी आज्ञासे ब्रह्माद्वारा सृष्टि-रचना

वायु बोले—इसके पश्चात् बुद्धिपूर्विका सृष्टिका चिन्तन करते हुए उन ब्रह्माजीको ध्यानकालमें तमोमय मोहकी प्राप्ति हुई। उस समय उन महात्मासे तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र नामक पंचपर्वा अविद्या उत्पन्न हुई॥ १—२॥

उस समय उन अभिमानी ब्रह्माके ध्यान करते रहनेपर यह सर्ग पाँच प्रकारसे प्रकट हुआ, यह सभी ओरसे अन्धकारसे पूर्णतः उसी प्रकार व्याप्त था, जैसे कुम्भ बीजको आवृत किये रहता है॥ ३॥

वह बाहर-भीतरसे प्रकाशरहित, निश्चल तथा संज्ञाहीन था, अतः उसमें होनेवालोंकी बुद्धि, मुख तथा इन्द्रियाँ—ये सब ढँके हुए थे। अतः आवृत स्वरूपवाले वे सब नग कहे गये और यह सर्ग मुख्य सर्ग कहलाया। तब इस प्रकारके उस प्रथम सर्गको अनुपयोगी देखकर ब्रह्मा अप्रसन्नमन होकर दूसरे सर्गका विचार करने लगे। तब उस सर्गका ध्यान करते हुए ब्रह्माका तिर्यक्स्रोत नामक सर्ग उत्पन्न हुआ॥ ४—६॥

वे पशु-पक्षी आदि भीतरसे प्रकाश (ज्ञान)-युक्त तथा बाहरसे अज्ञानयुक्त थे, अतः उन्होंने भी सन्मार्गको ग्रहण नहीं किया॥ ७॥

तब उसे भी अनुपयोगी समझकर वे दूसरे प्रकारकी सृष्टि करनेका विचार करने लगे। उन्होंने सत्त्वगुणयुक्त ऊर्ध्वस्रोत नामक देवसर्ग प्रारम्भ किया। वे देवता स्वभावसे ही सुख तथा प्रीतिसे परिपूर्ण, बाहर-भीतरसे अज्ञानरहित तथा ज्ञानसम्पन्न हुए॥ ८-९॥

इसके बाद ब्रह्माजीके ध्यान करते समय अव्यक्तसे अर्वाक्स्रोत (संसारकी ओर सृष्टिप्रवाहवाला), [पुरुषार्थोंको] सिद्ध करनेवाला किंतु महान् दुःखोंसे युक्त मनुष्य नामक सर्ग उत्पन्न हुआ। वे [मनुष्य] बाहर-भीतरसे ज्ञानयुक्त और तमोगुण तथा रजोगुणवाले थे। पाँचवाँ अनुग्रह नामक सर्ग विपर्यय, शक्ति, तुष्टि तथा सिद्धिके द्वारा चार प्रकारसे बँटा हुआ व्यवस्थित था। [इस सर्गके अन्तर्गत जिनकी उत्पत्ति हुई] वे सब अपरिग्रही, संविभागरत, खाने-पीनेवाले तथा शीलरहित भूत-प्रेत आदि कहे गये॥ १०—१२॥

परमेष्ठी ब्रह्माका पहला सर्ग महत्तत्त्वका है।

तन्मात्राओंका जो दूसरा सर्ग है, वह भूतसर्ग कहा जाता है। तीसरा वैकारिक सर्ग इन्द्रियोंका कहा गया है। प्रकृतिकी यह सृष्टि बुद्धिपूर्वक हुई, यह जो चौथा मुख्य सर्ग है, इसके अन्तर्गत मुख्य रूपसे स्थावर कहे गये हैं॥ १३—१५॥

तिर्यक् स्रोत नामक सर्ग पाँचवाँ है, जो तिर्यक् योनियोंका सर्ग कहा गया है। जो ऊर्ध्वस्रोत नामक छठा सर्ग है, वह देवसर्ग कहा गया है॥ १६॥

इसके बाद जो सातवाँ अर्वाक्स्रोत सर्ग है, वह मनुष्योंका सर्ग है। आठवाँ अनुग्रह सर्ग है तथा नौवाँ कौमार सर्ग कहा गया है। जो प्रथम तीन प्राकृत सर्ग हैं, वे अबुद्धिपूर्वक प्रवृत्त हुए हैं। मुख्य आदि पाँच वैकारिक सर्ग बुद्धिपूर्वक प्रवृत्त हुए हैं॥ १७-१८॥

इसके अनन्तर प्रजापति ब्रह्माने सर्वप्रथम अपने ही समान मानसपुत्रों सनन्दन, सनक, विद्वान् सनातन, ऋभु और सनत्कुमारको उत्पन्न किया। उन सभीको योगी, वीतराग तथा अभिमानरहित जानना चाहिये। ईश्वरमें आसक्त मनवाले उन सबका मन सृष्टिकार्यमें नहीं लगा॥ १९—२०१/२॥

सृष्टिकी अपेक्षासे रहित उन सनक आदिके चले जानेपर सृष्टि करनेकी इच्छावाले ब्रह्माने महान् तप किया। इस प्रकार बहुत समयतक तप करते हुए ब्रह्माको जब कोई भी फल नहीं मिला, तब दुःखके कारण उन्हें क्रोध उत्पन्न हुआ॥ २१—२२१/२॥

क्रोधसे आविष्ट उन ब्रह्माके नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें गिरने लगीं, तब उन आँसूकी बूँदोंसे भूत-प्रेत उत्पन्न हुए। अपने आँसुओंसे उत्पन्न उन सभीको देखकर ब्रह्मदेवने अपनी निन्दा की। उस समय क्रोध और अमर्षके कारण उनको तीव्र मूर्च्छा आ गयी और मूर्च्छित तथा क्रोधाविष्ट प्रजापतिने अपने प्राण त्याग दिये॥ २३—२५॥

तब प्राणोंके अधिष्ठाता भगवान् नीललोहित रुद्र उनपर असीम कृपा करनेके लिये उन प्रभु ब्रह्माजीके मुखसे प्रकट हुए। उत्पन्न होकर उन सामर्थ्यशाली रुद्रने स्वयंको ग्यारह भागोंमें विभक्त कर लिया। तत्पश्चात् भगवान् शिवने उन एकादश रुद्रोंसे कहा—हे पुत्रो! मैंने लोकके कल्याणके लिये तुमलोगोंकी सृष्टि की है, अतः तुमलोग समस्त लोकोंकी स्थापना, उनके कल्याण तथा प्रजासन्तानकी वृद्धिके लिये आलस्यरहित होकर प्रयत्न करो॥ २६—२८१/२॥

तब इस प्रकार कहे गये वे सभी रुद्र रोने लगे और चारों ओर भागने लगे। रुदन करने और भागनेके कारण वे रुद्र नामसे प्रसिद्ध हुए। जो रुद्र हैं, वे ही प्राण हैं, जो प्राण हैं, वे ही महामना रुद्र हैं॥ २९-३०॥

इसके पश्चात् दयालु ब्रह्मपुत्र महेश्वरने मरे हुए परमेष्ठी ब्रह्मदेवको पुनः प्राण प्रदान किये॥ ३१॥

ब्रह्माजीके शरीरमें पुनः प्राणसंचार हो जानेसे प्रसन्नमुखवाले विश्वेश्वर रुद्र ब्रह्माजीसे उत्तम वचन कहने लगे—हे विरिंचे! हे जगद्गुरो! हे महाभाग! भय मत कीजिये, भय मत कीजिये। हे सुव्रत! मैंने आपको प्राणदान दिया है, अतः सुखपूर्वक उठिये॥ ३२-३३॥

इसके पश्चात् स्वप्नके अनुभवके समान उस मनोहर वाक्यको सुनकर विकसित कमलके समान नेत्रोंसे शिवजीकी ओर धीरे-धीरे देख करके लौटे हुए प्राणवाले ब्रह्मदेवने हाथ जोड़कर उन्हें उद्देश्य करके कोमल तथा गम्भीर वाणीमें कहा—आप अपने दर्शनमात्रसे मेरे मनको आह्लादित कर रहे हैं। आप कौन हैं, जो सम्पूर्ण जगत्के रूपमें स्थित हैं, क्या वे ही भगवान् आप ग्यारह रूपोंमें प्रकट हुए हैं?॥ ३४—३६॥

उनके उस वचनको सुनकर देवताओंके स्वामी महेश्वरने अपने परम सुखद हाथोंसे ब्रह्माजीका स्पर्श करते हुए कहा—मुझ परमात्माको अपने पुत्ररूपमें आया हुआ समझिये और ये एकादश रुद्र आपकी रक्षाहेतु यहाँ आये हैं। अतः मेरे अनुग्रहसे इस तीव्र मूर्च्छाका त्याग करके जागिये और पूर्वकी भाँति प्रजाओंकी सृष्टि कीजिये॥ ३७—३९॥

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर विश्वात्मा ब्रह्मा प्रसन्नचित्त हो गये और आठ नामों [-वाले स्तोत्र]-से परमेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ ४०॥

ब्रह्माजी बोले—हे भगवन्! रुद्र! अमित तेजस्वी, सूर्यमूर्ति आप ईशानको नमस्कार है। रसस्वरूप जलमय विग्रहवाले आप भवदेवताको नमस्कार है। सर्वदा गन्ध गुणसे समन्वित पृथ्वीरूपधारी आप शर्वको नमस्कार है।

स्पर्शमय वसु [वायु]-रूपधारी, उग्रस्वरूप आप उग्रको नमस्कार है। यजमानमूर्ति आप पशुपतिको नमस्कार है। अतीव तेजोमय अग्निमूर्ति आप रुद्रको नमस्कार है। शब्दतन्मात्रासे युक्त आकाशमूर्ति आप भीमको नमस्कार है। सोमस्वरूप अमृतमूर्ति आप महादेव शिवजीको नमस्कार है॥ ४१—४३॥

इस प्रकार लोकपितामह ब्रह्मा विश्वेश्वर महादेवकी स्तुतिकर अत्यन्त विनीत वाणीसे उनकी प्रार्थना करने लगे। हे भगवन्! हे भूतभव्येश! हे मेरे पुत्र महेश्वर! हे कामनाशक! आप सृष्टिके निमित्त मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। हे जगत्प्रभो! इस महान् कार्यमें संलग्न मेरी सभी जगह श्रेष्ठ सहायता कीजिये और श्रेष्ठ प्रजाओंकी सृष्टि कीजिये॥ ४४—४६॥

उनके द्वारा इस प्रकार प्रार्थित हुए त्रिपुरमर्दन शंकर रुद्रदेवने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उनकी बात स्वीकार कर ली। इसके पश्चात् भगवान् ब्रह्मदेव उन हर्षित रुद्रका अभिनन्दन करके सृष्टि करनेके लिये उनकी आज्ञा लेकर अन्य प्रजाओंकी रचना करने लगे॥ ४७-४८॥

ब्रह्माने मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठको अपने मनसे उत्पन्न किया, फिर उन्होंने धर्म तथा संकल्पकी रचना की॥ ४९॥

सबसे पहले ब्रह्माजीके ये बारह पुत्र कहे गये हैं। ये सभी पुराणपुरुष और गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले हैं, जो रुद्रके साथ उत्पन्न हुए हैं॥ ५०॥

देवगणोंसहित इनके बारह दिव्य वंश कहे गये हैं। वे सभी प्रजावान्, क्रियावान् तथा महर्षियोंसे विभूषित हैं। तत्पश्चात् जलमें स्थित हुए रुद्रसहित ब्रह्माजीने देवता, असुर, पितर तथा मनुष्य—इन चारोंको रचनेकी इच्छा की॥ ५१-५२॥

अतः सृष्टिके लिये ब्रह्माजीने समाधिस्थ होकर चित्तको एकाग्र किया। उन्होंने अपने मुखसे देवगणोंको, कक्षसे पितरोंको, जघनदेशसे सभी असुरोंको तथा शिश्नभागसे मनुष्योंको उत्पन्न किया। उनके गुदास्थानसे भूखे राक्षस उत्पन्न हुए। उनके वे पुत्र तमोगुण तथा रजोगुणसे समन्वित महाबली निशाचर हुए। इसी प्रकार सर्प, यक्ष, भूत तथा गन्धर्व उत्पन्न हुए॥ ५३—५५॥

उन्होंने पक्षभागसे शब्द करनेवाले पक्षियोंको तथा अन्य पक्षियोंको छातीसे उत्पन्न किया, मुखसे अजोंको तथा पार्श्वस्थानसे सर्पोंको उत्पन्न किया। उन्होंने पैरसे घोड़े, हाथी, शरभ, गवय, मृग, ऊँट, खच्चर, बारहसिंघा तथा अन्य पशु जातियोंको उत्पन्न किया॥ ५६-५७॥

रोमावलियोंसे ओषधियों और फल-मूलोंका प्राकट्य हुआ। ब्रह्माजीके पूर्ववर्ती मुखसे गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत् स्तोम, रथन्तर साम तथा अग्निष्टोम नामक यज्ञकी उत्पत्ति हुई। उनके दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पंचदश स्तोम, बृहत्साम और उक्थ नामक यज्ञकी उत्पत्ति हुई। उन्होंने अपने पश्चिम मुखसे सामवेद, जगती छन्द, सप्तदश स्तोम, वैरूप्य साम और अतिरात्र नामक यज्ञको प्रकट किया। उनके उत्तरवर्ती मुखसे एकविंश स्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम नामक याग, अनुष्टुपछन्द और वैराज नामक सामका प्रादुर्भाव हुआ। उनके अंगोंसे और भी बहुत-से छोटे-बड़े प्राणी उत्पन्न हुए॥ ५८—६२॥

उन्होंने यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराओंके समुदाय, मनुष्य, किंनर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और सर्प आदि सम्पूर्ण नित्य एवं अनित्य स्थावर-जंगम जगत्की रचना की। उनमेंसे जिन्होंने जैसे-जैसे कर्म पूर्वकल्पोंमें अपनाये थे, पुनः-पुनः सृष्टि होनेपर उन्होंने फिर उन्हीं कर्मोंको अपनाया। [नूतन सृष्टि होनेपर भी वे प्राणी] अपनी पूर्वभावनासे भावित होकर हिंसा-अहिंसासे युक्त मृदु-कठोर, धर्म-अधर्म तथा सत्य और मिथ्या कर्मको अपनाते हैं; क्योंकि पहलेकी वासनाके अनुकूल कर्म ही उन्हें अच्छे लगते हैं॥ ६३—६५ १/२॥

इस प्रकार विधाताने ही स्वयं इन्द्रियोंके विषय, भूत और शरीर आदिमें विभिन्नता एवं व्यवहारकी सृष्टि की है। उन पितामहने कल्पके आरम्भमें देवता आदि प्राणियोंके नाम, रूप तथा कार्य-विस्तारको वेदोक्त वर्णनके अनुसार ही निश्चित किया। ऋषियोंके नाम तथा जीविका-साधक कर्म भी उन्होंने वेदोंके अनुसार ही निर्दिष्ट किये॥ ६६—६८॥

अपनी रात्रिके व्यतीत होनेपर अजन्मा ब्रह्माने स्वरचित प्राणियोंको वे ही नाम और कर्म दिये, जो पूर्वकल्पमें उन्हें प्राप्त थे। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके पुनः-पुनः

आनेपर उनके चिह्न और नाम-रूप आदि पूर्ववत् रहते हैं, उसी प्रकार युगादिकालमें भी उनके पूर्वभाव ही दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार स्वयम्भू ब्रह्माजीकी लोकसृष्टि उन्हींके विभिन्न अंगोंसे प्रकट हुई है॥ ६९-७०॥

महत्से लेकर विशेषपर्यन्त सब कुछ प्रकृतिका विकार है। यह प्राकृत जगत् चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभासे उद्भासित, ग्रह और नक्षत्रोंसे मण्डित, नदियों, पर्वतों तथा समुद्रोंसे अलंकृत और भाँति-भाँतिके रमणीय नगरों एवं समृद्धिशाली जनपदोंसे सुशोभित है। [इसीको ब्रह्माजीका वन या ब्रह्मवृक्ष कहते हैं]॥ ७१-७२॥

उस ब्रह्मवनमें अव्यक्त एवं सर्वज्ञ ब्रह्मा विचरते हैं। वह सनातन ब्रह्मवृक्ष अव्यक्तरूपी बीजसे प्रकट एवं ईश्वरके अनुग्रहपर स्थित है। बुद्धि इसका तना और बड़ी-बड़ी डालियाँ है। इन्द्रियाँ भीतरके खोखले हैं। महाभूत इसकी सीमा हैं। विशेष पदार्थ इसके निर्मल पत्ते हैं। धर्म और अधर्म इसके सुन्दर फूल हैं। इसमें सुख और दुःखरूपी फल लगते हैं तथा यह सम्पूर्ण भूतोंके जीवनका सहारा है॥ ७३—७५॥

ब्राह्मणलोग द्युलोकको उनका मस्तक, आकाशको नाभि, चन्द्रमा और सूर्यको नेत्र, दिशाओंको कान और पृथ्वीको उनके पैर बताते हैं। वे अचिन्त्यस्वरूप महेश्वर ही सब भूतोंके निर्माता हैं। उनके मुखसे ब्राह्मण प्रकट हुए हैं। वक्षःस्थलके ऊपरी भागसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, दोनों जाँघोंसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार उनके अंगोंसे ही सम्पूर्ण वर्णोंका प्रादुर्भाव हुआ है॥ ७६-७७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सृष्टिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

कल्पभेदसे त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र)-के एक-दूसरेसे प्रादुर्भावका वर्णन

ऋषि बोले—[हे वायुदेव!] आपने परमात्मा शिवकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके मुखसे बतायी, इस विषयमें हमलोगोंको संशय हो रहा है॥ १॥

जो देवताओंमें श्रेष्ठ, विरूपाक्ष, दीप्तिमान्, शूल धारण करनेवाले, हर, कालात्मा, जटाधारी तथा नीललोहित हैं। जो भगवान् रुद्र युगान्तमें कुपित होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा पावकसहित इस लोकका संहार करते हैं, जिन्हें ब्रह्मा तथा विष्णु भयसे नमस्कार करते हैं, सभी लोकोंका संहार करनेवाले जिन रुद्रके वशमें वे दोनों रहते हैं, जिन देवने पूर्वकालमें अपने शरीरसे ब्रह्मा तथा विष्णुको उत्पन्न किया और जो प्रभु उन दोनोंका नित्य योगक्षेम वहन करते हैं। वे आदिदेव पुरातन अव्यक्तजन्मा शम्भु भगवान् रुद्र ब्रह्माजीके पुत्र किस प्रकार हुए?॥ २—६॥

हमलोग पहले भी सुन चुके हैं कि रुद्रके शरीरसे ब्रह्मा और विष्णु एक-एक करके उत्पन्न हुए हैं॥ ७॥

इतना ही नहीं, जब वे दोनों ही सृष्टिके हेतुभूत हैं, तब इनकी मुख्यता और गौणता एवं उत्तरोत्तर प्रादुर्भाव किस प्रकार कहा गया?॥ ८॥

ऐसी कोई बात नहीं है, जो आपने ब्रह्मदेवसे न पूछी हो और कोई ऐसी बात नहीं है, जो आपने उनसे न सुनी हो। आप ब्रह्माजीके प्रधान शिष्य हैं, अतः सभी बातें आपको स्मरण भी हैं॥ ९॥

हे तात! जैसा सर्वव्यापी ब्रह्माने आपसे कहा है, उसे आप हम मुनियोंको बताइये, हमलोग ईश्वरका उत्तम चरित्र सुननेके लिये श्रद्धायुक्त हैं॥ १०॥

वायु बोले—हे विप्रो! प्रश्न करनेमें प्रवीण आपलोगोंने यह उचित ही प्रश्न किया है। यही बात मैंने ब्रह्माजीसे भी पूछी थी, तब उन्होंने मुझे बताया था। जिस प्रकार रुद्रकी उत्पत्ति हुई तथा [उस कल्पमें पुनः] ब्रह्मा और विष्णुकी परस्पर उत्पत्ति जिस प्रकार हुई, मैं वह सब आपलोगोंसे कहूँगा॥ ११-१२॥

इस चराचर जगत्के सृष्टि, पालन तथा संहारके कारणभूत तीनों ही देवता साक्षात् महेश्वरसे उत्पन्न हुए हैं। वे परम ऐश्वर्यसे युक्त, परमेश्वरसे भावित तथा

उनकी शक्तिसे अधिष्ठित होकर उनके कार्यको करनेमें सर्वथा समर्थ हैं॥ १३-१४॥

पितृरूप परमेश्वरने पूर्व कालमें इन तीनोंको तीन कार्योंमें नियुक्त किया है। ब्रह्माको सृजनके लिये, विष्णुको पालनके लिये तथा रुद्रको संहारके लिये नियुक्त किया है। फिर भी परस्पर मत्सरताके कारण वे अपने उत्पत्तिकर्ता परमेश्वरको तपस्यासे सन्तुष्टकर एक-दूसरेसे अधिक सामर्थ्यकी अपेक्षा रखते हैं॥ १५-१६॥

उन परमेष्ठीकी पूर्णरूपसे प्रसन्नता प्राप्तकर पूर्वकल्पमें रुद्रने ब्रह्मा और नारायणको उत्पन्न किया। पुनः किसी दूसरे कल्पमें जगन्मय ब्रह्माने रुद्र और विष्णुको उत्पन्न किया। इसी प्रकार किसी [अन्य] कल्पमें भगवान् विष्णुने रुद्र तथा ब्रह्माको उत्पन्न किया। पुनः किसी कल्पमें ब्रह्मा नारायणको और किसी कल्पमें रुद्रदेवने ब्रह्माको उत्पन्न किया है, इस प्रकार प्रतिकल्पमें ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर परस्पर हित करनेकी इच्छासे एक-दूसरेके द्वारा उत्पन्न होते रहते हैं। महर्षिगण उन-उन कल्पोंके वृत्तान्तको लेकर आपसमें समुद्भवकी दृष्टिसे उनके प्रभावका वर्णन करते हैं। अब आपलोग उनकी अद्भुत, पुण्यप्रद तथा पापनाशक कथाको सुनिये, जो परमेष्ठी ब्रह्माके तत्पुरुष नामक कल्पमें घटित हुई थी॥ १७—२१½॥

पूर्वकालमें मेघवाहन नामक कल्पमें भगवान् नारायणने मेघ बनकर दिव्य सहस्रवर्षपर्यन्त पृथ्वीको धारण किया। तब उन विष्णुका भाव देखकर समस्त जगत्के गुरु सर्वात्मा शिवने उन्हें सर्वात्मभावके साथ अव्यय शक्ति दी। इस प्रकार सर्वेश्वर शिवसे शक्तिको प्राप्तकर सर्वात्मा भगवान् विष्णु ब्रह्माको साथ लेकर जगत्की रचना करने लगे॥ २२—२४½॥

विष्णुके ऐश्वर्यको देखकर उन्हींसे उत्पन्न होनेपर भी महान् ईर्ष्यासे ग्रस्त ब्रह्माजीने हँसते हुए कहा—हे विष्णो! अब चले जाओ, मैंने आपकी सृष्टिका कारण जान लिया। वे रुद्र हमदोनोंसे बढ़कर हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २५-२६॥

उन्हीं देवाधिदेव परमात्माके परम अभीष्ट अनुग्रहसे आप भगवान् इस जगत्के आदि स्रष्टा और पालक हैं। तपसे मैं भी देवताओंके नायक रुद्रकी आराधनाकर आपके साथ सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७-२८॥

इस प्रकार विष्णुको उलाहना देकर पद्मयोनि भगवान् ब्रह्माजीने तपसे शिवजीका साक्षात्कार किया और वे इस प्रकार शंकरजीसे कहने लगे—हे भगवन्! देवाधिदेव! विश्वेश्वर! हे महेश्वर! बायें अंगसे विष्णु तथा दाहिने अंगसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ तो भी मेरे साथ उत्पन्न होकर विष्णुने सारा जगत् उत्पन्न किया। इस समय मैंने भी आपके आश्रयके बलपर मत्सरतापूर्वक उनको तिरस्कृत किया। चूँकि हमदोनोंकी समान उत्पत्ति आपसे ही हुई है और आप महेश्वरमें उनकी भक्ति भी मेरी अपेक्षा अधिक नहीं है। इसलिये हे महेश्वर! जिस प्रकार पूर्वमें आपने उनकी भक्तिके कारण उनपर अनुग्रह किया है, उसी प्रकार मुझपर अनुग्रह करके वह सब कुछ प्रदान कीजिये॥ २९—३३॥

इस प्रकार उनके द्वारा प्रार्थित दयानिधि भगनेत्रनाशक भगवान् शिवने न्यायतः उन्हें भी सारी शक्ति प्रदान की॥ ३४॥

इस प्रकार ब्रह्मदेवने क्षणमात्रमें शिवद्वारा सर्वात्मता प्राप्तकर शीघ्रतासे जाकर विष्णुको देखा। वहाँ क्षीरसागरके मध्यमें सूर्यके समान प्रकाशित, सुवर्ण-रत्नजटित और अपने मनसे उत्पन्न किये गये धवल तथा दिव्य विमानमें अनन्तनागकी शय्यापर शयन करते हुए कमलनयन, चार भुजाओंवाले, कोमल अंगोंवाले, सभी आभूषणोंसे विभूषित, शंख-चक्र धारण किये हुए, सौम्य, चन्द्रबिम्बके समान मुखवाले, श्रीवत्सचिह्नसे शोभित वक्षःस्थलवाले, खिली हुई मधुर मुसकानसे युक्त, स्थलकमलके समान कोमल करकमलको अपने चरणकमलपर स्थित किये हुए, क्षीरसागरके [मन्थनसे उत्पन्न रत्नभूत] अमृतके समान, योगनिद्रामें शयन करते हुए तमोगुणसे कालरुद्र, रजोगुणसे हिरण्यगर्भ, सत्त्वगुणसे सर्वव्यापक विष्णु तथा निर्गुण होनेसे साक्षात् परमेश्वररूप उस पुरुष (विष्णु)-को देखकर ब्रह्माजीने साभिमान यह कहा—हे विष्णो! जिस प्रकार पूर्व समयमें आपने मुझे ग्रस लिया था, उसी प्रकार मैं भी आपको ग्रसता हूँ॥ ३५—४१॥

उनका वचन सुनकर महाबाहु विष्णुने जागकर ब्रह्माकी ओर देखा और थोड़ा-सा मुसकराने लगे॥ ४२॥

उसी समय उन महात्मा ब्रह्माने विष्णुको ग्रस

लिया, किंतु वे तत्काल ही ब्रह्माके भ्रूमध्यसे बिना यत्नके ही प्रकट हो गये। उस समय साक्षात् निराकार भगवान् चन्द्रमौलिने उन दोनोंकी शक्ति देखनेके लिये साकार रूप धारण कर लिया॥ ४३-४४॥

पूर्व समयमें उन्होंने दोनोंको ही वर प्रदान किया था, इसलिये उनपर अतुल अनुग्रह करनेके लिये वे वहाँ आये, जहाँ ये दोनों ब्रह्मा तथा विष्णु स्थित थे॥ ४५॥

तब उनके इस कौतुकसे प्रसन्न एवं भयभीत वे दोनों दूरसे ही शिवकी स्तुति करने लगे और सम्मानपूर्वक उन्हें बारंबार प्रणाम करने लगे। पिनाकधारी भगवान् सदाशिव भी उनपर अनुग्रह करके उन दोनोंके आदरपूर्वक देखते-देखते अन्तर्धान हो गये॥ ४६-४७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें ब्रह्माविष्णुसृष्टिकथन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

प्रत्येक कल्पमें ब्रह्मासे रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन

वायुदेव बोले—अब मैं प्रत्येक कल्पमें रुद्रके आविर्भावका कारण बताऊँगा, जिससे ब्रह्मसृष्टिका प्रवाह अविच्छिन्न रूपसे चलता रहता है॥ १॥

ब्रह्माण्डको उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी प्रत्येक कल्पमें प्रजाओंकी रचनाकर उसका विस्तार नहीं कर पानेके कारण जब अत्यन्त दुखी और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं, तब उनके दुःखके प्रशमनहेतु तथा प्रजाओंकी वृद्धिके लिये उन-उन कल्पोंमें परमेश्वरसे प्रेरित होकर रुद्रगणोंके अधिपति कालात्मा, नीललोहित, महेश्वर, रुद्र [अजन्मा होते हुए भी] बादमें ब्रह्माके पुत्र होकर ब्रह्मदेवपर कृपा करते हैं॥ २—४॥

वे ही तेजोराशि, निरामय, आदि-अन्तसे रहित, सबके निर्माता, प्राणियोंके संहारक, सर्वव्यापक भगवान् ईश परम ऐश्वर्यसे समन्वित, परमेश्वरसे भावित और सदा उन्हींकी शक्तिसे अधिष्ठित हो उन्हींके चिह्नोंको धारण करते हैं॥ ५-६॥

उनके नामके समान नामवाले, उन्हींका रूप धारण करनेवाले, उनका कार्य करनेमें समर्थ, उन्हीं परमेश्वरके समान व्यवहारवाले तथा उन्हींकी आज्ञाका पालन करनेवाले वे रुद्र हजार सूर्योंके समान दीप्तिमान्, चन्द्रखण्डका भूषण धारण करनेवाले, सर्पमय हार-केयूर-कंकण धारण करनेवाले तथा मूँजकी मेखला धारण करनेवाले हैं॥ ७-८॥

वे रुद्रदेव जलको धारण करनेवाले वरुण-ब्रह्मा-इन्द्रके कपालखण्डोंसे उज्ज्वल, गंगाकी उत्तुंग तरंगोंसे आर्द्र तथा पिंगल मुख एवं केशोंवाले, [प्रलयकालमें अपनी भयानक] दाढ़ोंके अग्रभागसे पर्वतोंके प्रान्तभागको आक्रान्त करनेवाले, अपने दाहिने कानके पार्श्व भागमें मण्डलाकार कुण्डल धारण करनेवाले, महावृषभपर सवारी करनेवाले, महामेघके समान गम्भीर वाणीवाले, प्रचण्ड अग्निके समान कान्तिवाले और महान् बल तथा पराक्रमवाले हैं। इस प्रकारके महाघोर रूपवाले ब्रह्मपुत्र महेश्वर ब्रह्माको ज्ञान देकर सृष्टिकार्यमें उन्हें साहाय्य प्रदान करते हैं॥ ९—१२॥

इस प्रकार प्रत्येक कल्पमें रुद्रकी कृपासे उन प्रजापति ब्रह्मासे नित्य प्रजा-सृष्टि प्रवाहरूपसे होती रहती है। किसी समय ब्रह्माजीने [प्रजाओंकी] सृष्टि करनेहेतु प्रार्थना की, तब उन नीललोहित प्रभुने मनसे अपने समान ही समस्त प्रजाओंकी सृष्टि की। उन्होंने जटाजूटधारी, भयरहित, नीलकण्ठ, त्रिलोचन, उन्होंने जरामरणरहित तथा देदीप्यमान त्रिशूलरूप श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए समस्त रुद्रोंकी सृष्टि की॥ १३—१५॥

उन लोगोंने समस्त चौदह भुवनोंको आच्छादित कर लिया, [तब] उन विविध रुद्रोंको देखकर ब्रह्माजीने रुद्रसे कहा—हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है, आप इस प्रकारकी प्रजाओंकी रचना मत कीजिये। आप मरणधर्मयुक्त अन्य प्रजाओंकी सृष्टि कीजिये, आपका कल्याण हो॥ १६-१७॥

ऐसा कहे जानेपर परमेश्वरने ब्रह्माजीसे हँसते हुए कहा—मेरी सृष्टिमें ऐसी प्रजा नहीं हो सकती, अतः ऐसी

अशुभ प्रजाकी सृष्टि आप ही करें। मैंने मनसे जिन महाबलवान् एवं महान् आत्मावाले रुद्रगणोंकी सृष्टि की है, वे सभी याज्ञिक बनकर मेरे साथ विचरण करेंगे॥ १८-१९॥

विश्वकर्ता ब्रह्मदेवसे ऐसा कहकर समग्र प्राणियोंके ईश्वर शिवजी रुद्रोंके साथ प्रजासर्गसे उपरत हो [स्थाणुके समान] अवस्थित हो गये। उसी समयसे उन शिवजीने शुभ प्रजाओंकी सृष्टि नहीं की और वे ऊर्ध्वरेता बनकर प्रलयकालतकके लिये स्थाणुरूपमें स्थित हो गये॥ २०-२१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें रुद्राविर्भाववर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

अर्धनारीश्वररूपमें प्रकट शिवकी ब्रह्माजीद्वारा स्तुति

वायुदेव बोले— जब ब्रह्माजीद्वारा रची गयी प्रजाओंका पुनः विस्तार नहीं हुआ, तब ब्रह्माजीने मैथुनी सृष्टि करनेका विचार किया। पूर्व समयमें तबतक स्त्रियोंका कुल ईश्वरसे उत्पन्न नहीं हुआ था, इस कारणसे ब्रह्माजी मैथुनी सृष्टि नहीं कर सके॥ १-२॥

उसके बाद ब्रह्माजीको अपना कार्य सिद्ध करनेवाली बुद्धि उत्पन्न हुई कि प्रजाओंकी वृद्धिके लिये परमेश्वरसे पूछना चाहिये; क्योंकि उनके अनुग्रहके बिना इन प्रजाओंकी वृद्धि नहीं हो सकती—ऐसा विचारकर विश्वात्मा ब्रह्माजीने तप करनेका निश्चय किया॥ ३-४॥

तब जो आद्या, अनन्ता, लोकभाविनी, आदिशक्ति, अत्यन्त सूक्ष्म, शुद्ध, भावगम्य, मनोहर, निर्गुण, प्रपंचरहित, निष्कल, उपद्रवरहित, सदा तत्पर रहनेवाली, नित्य तथा सर्वदा ईश्वरके पास रहनेवाली हैं, उन परम शक्तिसे संवलित भगवान् शिवका मनमें चिन्तन करके ब्रह्माजी कठोर तप करने लगे॥ ५—७॥

तब कठोर तपमें लीन उन ब्रह्मापर शिवजी थोड़े ही समयमें सन्तुष्ट हो गये। इसके बाद अपने अनिर्वचनीय अंशसे किसी अद्भुत मूर्तिमें प्रविष्ट हो अर्धनारीश्वररूप धारणकर शिवजी स्वयं ब्रह्माजीके समीप गये॥ ८-९॥

तमसे परे, अविनाशी, अद्वितीय, अनिर्देश्य, पापियोंके लिये अदृश्य, सभी लोकोंके विधाता, सभी लोकोंके ईश्वरके भी ईश्वर, सर्वलोकविधायिनी परम शक्तिसे समन्वित, अप्रतर्क्य, प्रत्यक्षके अविषय, अप्रमेय, अजर, ध्रुव, अचल, निर्गुण, शान्त, अनन्त महिमासे युक्त, सर्वगामी, सर्वदाता, सत्-असत् अभिव्यक्तिसे रहित, सभी उपमानोंसे रहित, शरण्य तथा शाश्वत उन परमदेव शिवजीको ब्रह्माजीने देखा, [तब वे] उठकर हाथ जोड़कर दण्डवत् प्रणाम करके श्रद्धा-विनयसे सम्पन्न, सुनानेयोग्य, संस्कार तथा यथार्थतासे युक्त, सम्पूर्ण अर्थोंसे समन्वित, वेदार्थसे परिबृंहित, सूक्ष्म अर्थोंसे परिपूर्ण सूक्तोंसे शिव तथा पार्वतीकी स्तुति करने लगे॥ १०—१५॥



ब्रह्माजी बोले— हे देव! आपकी जय हो, हे महादेव! आपकी जय हो। हे ईश्वर! हे महेश्वर! आपकी जय हो, सर्वगुणश्रेष्ठ! आपकी जय हो, हे सभी देवताओंके अधीश्वर! आपकी जय हो॥ १६॥

हे प्रकृतिकल्याणि! आपकी जय हो, हे प्रकृतिनायिके! आपकी जय हो। हे प्रकृतिदूरे! आपकी जय हो, हे

प्रकृतिसुन्दरि! आपकी जय हो॥ १७॥

हे अमोघ महामायावाले! आपकी जय हो, हे अमोघ मनोरथवाले! आपकी जय हो। हे अमोघ महालीला करनेवाले! आपकी जय हो। हे अमोघ महाबलवाले! आपकी जय हो। हे विश्वजगन्मातः! आपकी जय हो, हे विश्वजगन्मयि! आपकी जय हो। हे विश्वजगद्धात्रि! आपकी जय हो, हे विश्वजगत्सखि! आपकी जय हो। हे शाश्वत ऐश्वर्यवाले! आपकी जय हो। हे शाश्वतस्थानवाले! आपकी जय हो, हे शाश्वत आकारवाले! आपकी जय हो। हे शाश्वत अनुगमन किये जानेवाले! आपकी जय हो॥ १८—२०॥

[ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वररूप] तीनों आत्माओंका निर्माण करनेवाली! आपकी जय हो, तीनों आत्माओंका पालन करनेवाली! आपकी जय हो, तीनों आत्माओंका संहार करनेवाली! आपकी जय हो, तीनों आत्माओंकी नायिकारूपिणि! आपकी जय हो। अपने अवलोकनमात्रसे जगत्कार्यके कारणभूत [अव्यक्तादिका] उपबृंहण (विस्तार) करनेवाले! आपकी जय हो, उपेक्षापूर्वक अपने कटाक्षोंसे उत्पन्न अग्निद्वारा [प्रलयकालमें] समस्त भौतिक पदार्थोंको भस्म करनेवाले! आपकी जय हो॥ २१-२२॥

हे देवता आदिसे भी ज्ञात न होनेवाली! हे आत्मतत्त्वके सूक्ष्म विज्ञानसे प्रकाशित होनेवाली! आपकी जय हो। हे स्थूल आत्मशक्तिसे जगत्को नियन्त्रित करनेवाली! आपकी जय हो। हे [अपने स्वरूपसे] चराचरको व्याप्त करनेवाली! आपकी जय हो॥ २३॥

सारे ब्रह्माण्डके तत्त्वसमुच्चयको अनेक तथा एक रूप होकर धारण करनेवाले! आपकी जय हो। असुरोंके मस्तकोंपर [मानो] आरूढ़ हुए उत्तम भक्तवृन्दवाले! आपकी जय हो। अपनी उपासना करनेवाले भक्तोंकी रक्षामें अतिशय सामर्थ्यवाली! आपकी जय हो। संसाररूपी विषवृक्षके उगनेवाले अंकुरोंका उन्मूलन करनेवाली! आपकी जय हो॥ २४-२५॥

अपने भक्तजनोंके ऐश्वर्य, वीर्य तथा शौर्यको विकसित करनेवाले! आपकी जय हो। विश्वसे बहिर्भूत तथा अपने वैभवसे दूसरोंके वैभवोंको तिरस्कृत करनेवाले! आपकी जय हो। पंचविध मोक्षरूप पुरुषार्थके प्रयोगद्वारा परमानन्दमय अमृतकी प्राप्ति करानेवाले! आपकी जय हो। पंचविध पुरुषार्थके विज्ञानरूपी अमृतकी स्रोतस्वरूपिणि! आपकी जय हो॥ २६-२७॥

अत्यन्त घोर संसाररूपी महारोगको दूर करनेवाले श्रेष्ठ वैद्य! आपकी जय हो। अनादिकालसे होनेवाले पाप-अज्ञानरूपी अन्धकारको हरण करनेके लिये चन्द्रिकारूपिणि! आपकी जय हो। हे त्रिपुरका विनाश करनेके लिये कालाग्निस्वरूप! आपकी जय हो। हे त्रिपुरभैरवि! आपकी जय हो। हे त्रिगुणनिर्मुक्ते! आपकी जय हो, हे त्रिगुणमर्दिनि! आपकी जय हो॥ २८-२९॥

हे आदि सर्वज्ञ! आपकी जय हो, हे सर्वप्रबोधिके! आपकी जय हो, आपकी जय हो। हे अत्यन्त मनोहर अंगोंवाले! आपकी जय हो, हे प्रार्थित वस्तु प्रदान करनेवाली! आपकी जय हो॥ ३०॥

हे देव! कहाँ आपका उत्कृष्ट धाम और कहाँ हमारी तुच्छ वाणी, फिर भी हे भगवन्! भक्तिसे प्रलाप करते हुए मुझको क्षमा करें। विश्वविधाता चतुर्मुख ब्रह्माने इस प्रकारके सूक्तोंसे प्रार्थना करके रुद्र तथा रुद्राणीको बारंबार नमस्कार किया॥ ३१-३२॥

ब्रह्माजीद्वारा कथित अर्धनारीश्वर नामक यह श्रेष्ठ स्तोत्र पुण्य देनेवाला है और शिव तथा पार्वतीके हर्षको बढ़ानेवाला है। जो कोई भक्तिभावसे जिस किसी भी वस्तुकी कामनासे इसका पाठ करता है, वह शिव एवं पार्वतीको प्रसन्न करनेके कारण उस फलको प्राप्त कर लेता है। समस्त भुवनोंके प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले, जन्म और मृत्युसे रहित विग्रहवाले, श्रेष्ठ नर और नारीका देह धारण करनेवाले शिव और शिवाको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ॥ ३३—३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवशिवास्तुतिवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

महादेवजीके शरीरसे देवीका प्राकट्य और देवीके भ्रूमध्यभागसे शक्तिका प्रादुर्भाव

वायुदेव बोले—इसके पश्चात् प्रभु महादेवजी महामेघकी गर्जनाके समान मधुर-गम्भीर, मंगलदायिनी एवं कोमल वर्णोंवाली, अर्थयुक्त पदोंवाली, नृपोचित अनुशासनभावसे युक्त, अपने समस्त कथनीय विषयोंकी रक्षा करते हुए उनकी निर्दोष तथा निपुण प्रस्तुति करनेवाली, अतिशय मनोहर, उदार तथा मधुर मुसकानयुक्त वाणीमें अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्माजीसे कहने लगे— ॥ १—३ ॥

ईश्वर बोले—हे वत्स! हे महाभाग! हे मेरे पुत्र पितामह! मैंने तुम्हारी बातके सारे महत्त्वको जान लिया है। मैं तुम्हारी इस तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ, क्योंकि तुमने प्रजाओंकी वृद्धिके लिये यह तप किया है, मैं तुम्हें अभीष्ट वर प्रदान करता हूँ॥ ४-५ ॥

इस प्रकार परम उदार तथा स्वभावत: मधुर वचन कहकर देवताओंमें श्रेष्ठ महादेवने अपने शरीरके [वाम] भागसे देवीको प्रकट किया। जिन दिव्य गुणसम्पन्न देवीको ब्रह्मवेत्ता लोग परात्पर परमात्मा शिवकी पराशक्ति कहते हैं, जिनमें जन्म, मृत्यु, जरा आदि नहीं हैं, वे भवानी शिवजीके अंगसे उत्पन्न हुईं, जिन्हें न जानकर मन एवं इन्द्रियोंके साथ वाणी लौट आती है, वे अपने स्वामीके देहभागसे उत्पन्न हुई-सी दिखायी पड़ीं, जो अपनी महिमासे इस सम्पूर्ण संसारको व्याप्त करके विराजमान हैं, वे देवी शरीरधारीकी भाँति विचित्ररूपसे दिखायी पड़ीं, जो कि अपनी मायासे इस सारे जगत्को मोहित करती हैं, परमार्थकी दृष्टिसे अजन्मा होनेपर भी वे ही ईश्वरसे प्रकट हुईं। जिनका परम भाव देवताओंको भी ज्ञात नहीं है, वे ही समस्त देवताओंकी अधीश्वरी अपने पतिके शरीरसे प्रकट हुईं॥ ६—१२ ॥

सर्वव्यापिनी, सूक्ष्मा, सत्-असत् अभिव्यक्तिसे रहित, परमा और अपनी प्रभासे सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेवाली तथा सब कुछ जाननेवाली सर्वलोकमहेश्वरी परमेशानी महादेवीको देखकर प्रणाम करके विराट् [ब्रह्माजी]-ने उनसे इस प्रकार प्रार्थना की— ॥ १३-१४ ॥



ब्रह्माजी बोले—हे देवि! हे सर्वजगन्मयि! महादेवजीने सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया और प्रजाकी सृष्टिके कार्यमें लगाया, तभीसे मैं समस्त जगत्की सृष्टि कर रहा हूँ॥ १५ ॥

हे देवि! मेरे द्वारा मानसिक संकल्पसे रचे गये देवता आदि सभी लोग बारंबार सृष्टि करनेपर भी बढ़ नहीं रहे हैं। अत: अब मैं मैथुनी सृष्टि करके ही अपनी सभी प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ। [हे देवि!] आपसे पहले नारीकुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ है, इसलिये नारीकुलकी सृष्टि करनेके लिये मुझमें शक्ति नहीं है॥ १६—१८ ॥

सम्पूर्ण शक्तियोंका प्राकट्य आपसे ही होता है, अत: सर्वत्र सबको सब प्रकारकी शक्ति देनेवाली तथा वर प्रदान करनेवाली आप मायारूपिणी देवेश्वरीसे प्रार्थना करता हूँ। हे सर्वगे! हे संसारभयका नाश करनेवाली! चराचर जगत्की वृद्धिके लिये अपने एक अंशसे आप मेरे पुत्र दक्षकी कन्याके रूपमें जन्म लें॥ १९-२०½ ॥

ब्रह्मयोनि ब्रह्माके इस प्रकार याचना करनेपर देवी

रुद्राणीने अपनी भौंहोंके मध्यभागसे अपने ही समान कान्तिमयी एक शक्ति प्रकट की॥ २११/२॥

उसे देखकर देवेश्वर हरने हँसते हुए कहा—तुम अपनी तपस्यासे ब्रह्माकी आराधनाकर उनका अभीष्ट पूरा करो॥ २२१/२॥

परमेश्वरकी आज्ञाको शिरोधार्य करके वे देवी ब्रह्माजीकी प्रार्थनाके अनुसार दक्षकी पुत्री हो गयीं। इस प्रकार ब्रह्माजीको ब्रह्मरूपिणी अनुपम शक्ति देकर वे महादेवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं और [तब] महादेवजी भी अन्तर्धान हो गये॥ २३—२४१/२॥

तभीसे इस जगत्‌में स्त्रीजातिमें भोग प्रतिष्ठित हुआ और हे विप्रेन्द्रो! मैथुनद्वारा प्रजाकी सृष्टि होने लगी। हे मुनिवरो! इससे ब्रह्माजीको भी आनन्द और सन्तोष प्राप्त हुआ॥ २५-२६॥

प्राणियोंके सृष्टिप्रसंगमें मैंने देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावका यह सारा आख्यान आपलोगोंको सुनाया, जो कि पुण्यकी वृद्धि करनेवाला तथा सुनानेयोग्य है। जो प्रतिदिन देवीसे शक्तिके प्रादुर्भावकी इस कथाका कीर्तन करता है, उसे सब प्रकारका पुण्य प्राप्त होता है तथा शुभ लक्षणवाले पुत्रोंकी प्राप्ति होती है॥ २७-२८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें देवीसे शक्तिका उद्भव नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

ब्रह्माके आधे शरीरसे शतरूपाकी उत्पत्ति तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंकी उत्पत्तिका वर्णन

वायुदेवने कहा—इस प्रकार मैथुनजन्य सृष्टि करनेकी इच्छावाले प्रजापति ब्रह्मा सदाशिवसे पराशक्ति प्राप्तकर स्वयं भी आधे भागसे स्त्री तथा आधे भागसे पुरुषरूप हो गये। जो नारीरूप अर्धभाग था, उससे शतरूपा प्रकट हुईं। [दूसरा] जो पुरुषरूप अर्धभाग हुआ, उससे ब्रह्माने विराट्‌का सृजन किया। उसे ही पूर्वपुरुष स्वायम्भुव मनु कहा जाता है॥ १—३॥

उन देवी शतरूपाने अत्यन्त कठोर तप करके उज्ज्वल यशवाले स्वायम्भुव मनुको पतिरूपमें प्राप्त किया॥ ४॥

शतरूपाने उन्हीं मनुसे पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो श्रेष्ठ पुत्रों और महाभाग्यशालिनी दो कन्याओंको उत्पन्न किया, जिन दोनोंसे ये प्रजाएँ हुईं। पहलीको आकूति जानना चाहिये तथा दूसरी प्रसूति कही गयी है॥ ५-६॥

प्रभु स्वायम्भुव मनुने प्रसूति नामक कन्याको दक्षको तथा आकूतिको रुचि नामक प्रजापतिको प्रदान किया। ब्रह्माके मानसपुत्र रुचिने आकूतिमें जुड़वाँ संतान उत्पन्न की, जिनका नाम यज्ञ तथा दक्षिणा है। जिन दोनोंसे यह सारा संसार चल रहा है॥ ७-८॥

प्रभु दक्षने स्वायम्भुव मनुकी कन्या प्रसूतिमें लोकमातास्वरूपा चौबीस कन्याओंको उत्पन्न किया। उनमें श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति—ये जो कन्याएँ थीं, इन दक्षकन्याओंको प्रभु धर्मने पत्नीके रूपमें ग्रहण किया। उनसे छोटी दक्षकी ग्यारह सुलोचना कन्याएँ थीं। ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा। हे मुनिश्रेष्ठो! भृगु, शर्व, मरीचि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पावक तथा पितर—इन मुनियोंने ख्याति आदि कन्याओंसे विवाह किया। धर्मसे पूर्वोक्त तेरह कन्याओंमें कामसे लेकर यशपर्यन्त (काम, दर्प, नियम, सन्तोष, लोभ, श्रुत, दण्ड, प्रबोध, विनय, व्यवसाय, क्षेम, सुख और यश)—ये तेरह पुत्र क्रमशः उत्पन्न हुए। जो सन्तानें श्रद्धा आदिसे हुई थीं, वे सुखस्वरूप थीं। अधर्मसे हिंसा [नामक भार्या]-में दुःख देनेवाली सन्तानें उत्पन्न हुईं। अधर्मके निकृति आदि अधर्म लक्षणवाले पुत्र उत्पन्न हुए। इनको कोई स्त्री अथवा पुत्र नहीं थे, वे सभी नियमसे रहित कहे गये हैं। धर्मको संकुचित करनेवाला यह तामस सर्ग है॥ ९—१६१/२॥

जो दक्षकी कन्या सती थीं, वे रुद्रकी पत्नी हुईं। अपने पतिकी निन्दाके प्रसंगसे उन्होंने माता-पिता तथा बन्धुओंकी भर्त्सनाकर अपने शरीरको त्याग दिया और हिमालयके

घर मेनाकी पुत्री होकर उत्पन्न हुईं॥ १७—१८१/२ ॥

रुद्रने सतीको देखकर [अर्थात् प्राप्त करके उनसे] जिस प्रकार अपने समान प्रभाववाले असंख्य रुद्रोंको उत्पन्न किया, वह कथा तो हम कह चुके हैं। भृगुसे ख्यातिमें नारायणप्रिया लक्ष्मी उत्पन्न हुईं तथा मन्वन्तर धारण करनेवाले धाता और विधाता नामक दो देव भी उनके पुत्र हुए, उन्हीं दोनोंके सैकड़ों-हजारों पुत्र, पौत्र आदि हुए। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भृगुसे उत्पन्न होनेके कारण वे सभी भार्गव कहे गये। सम्भूतिने मरीचिसे पौर्णमास नामक पुत्र और चार कन्याओंको उत्पन्न किया। उनकी बहुत सन्तानें हुईं, जिनके वंशमें बहुत पुत्रोंवाले कश्यप उत्पन्न हुए॥ १९—२३ ॥

अंगिराकी पत्नी स्मृतिने आग्नीध्र तथा शरभ नामक दो पुत्र और चार कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनके हजारों पुत्र तथा पौत्र हुए। पुलस्त्यकी प्रीति नामक पत्नीमें अग्निस्वरूप दन्त नामक पुत्र हुआ, जो पूर्वजन्ममें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्यके नामसे प्रसिद्ध था। उनकी सन्तानें भी बहुत हुईं, जो पौलस्त्य—इस नामसे प्रसिद्ध थीं। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमाने भी तीन पुत्रोंको जन्म दिया। कर्दम, आसुरि तथा सहिष्णु—ये तीनों अग्नियोंके समान तेजस्वी थे, जिनका वंश स्थिर रूपसे चलता रहा॥ २४—२७ ॥

क्रतुकी सन्नति नामक भार्याने क्रतुके समान बहुतसे पुत्र उत्पन्न किये, इनकी भार्याएँ तथा पुत्र नहीं थे, वे सभी ऊर्ध्वरेता हुए। वे साठ हजार वालखिल्य कहे गये हैं, जो सूर्यको घेरकर अरुणके आगे-आगे चलते हैं॥ २८-२९ ॥

अत्रिकी भार्या अनसूयाने पाँच पुत्रों तथा श्रुति नामक कन्याको जन्म दिया, वह [श्रुति] शंखपद [ऋषि]-की माता हुई। सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनैश्चर और सोम—ये पाँचों अत्रिपुत्र कहे गये हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें उन महात्मा अत्रिपुत्रोंके सैकड़ों-हजारों पुत्र-पौत्र हुए॥ ३०—३२ ॥

ऊर्जासे वसिष्ठके सात पुत्र हुए, उनकी बड़ी बहन पुण्डरीका थी, जो अत्यन्त सुन्दरी थी। रजोगात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनय, सुतपा और शुक्र—ये सात सप्तर्षि कहे गये हैं। उन महात्मा वसिष्ठपुत्रोंके नामसे गोत्र भी प्रवर्तित हुए। इस प्रकार सैकड़ों अर्बुद वर्षोंतक स्वायम्भुव मन्वन्तरमें इनके वंश चलते रहे॥ ३३—३५ ॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने परम्परानुरूप ऋषिसृष्टिका संक्षेपमें वर्णन किया, क्योंकि विस्तारपूर्वक इसका वर्णन नहीं किया जा सकता है॥ ३६ ॥

ब्रह्माके मानस पुत्र अग्नि जो रुद्रात्मक भी कहे जाते हैं, उनकी पत्नी स्वाहाने पावक, पवमान और शुचि नामक अमित तेजस्वी तीन पुत्र उत्पन्न किये। मन्थनसे उत्पन्न अग्नि पवमान है। बिजलीसे उत्पन्न अग्नि पावक कही गयी है। तपते हुए सूर्यमें जो तेज है, वह शुचि अथवा सौर कहा गया है। हव्यवाह, कव्यवाह और सहरक्षा—ये तीनों क्रमशः उपर्युक्त अग्नियोंके पुत्र हैं। इन तीनोंके पुत्र क्रमसे देवता, पितर एवं असुर हैं। इनके उनचास पुत्र एवं पौत्र हैं॥ ३७—४० ॥

ये काम्य, नैमित्तिक तथा नित्य—इन तीनों प्रकारके कर्मोंमें निरन्तर स्थित रहते हैं। इन सभीको तपस्वी तथा निरन्तर व्रत धारण करनेवाला जानना चाहिये। ये सभी रुद्रस्वरूप तथा रुद्रपरायण हैं, इसलिये कोई अग्निमुखमें जो कुछ भी आहुति देता है, वह सब रुद्रको उद्देश्य करके दिया हुआ समझा जाता है, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार मैंने तथ्योंके आधारपर अग्निके वंशको कहा। हे ब्राह्मणो! इसके अनन्तर मैं संक्षेपमें पितरोंका वर्णन करूँगा। [वसन्त आदि] छः ऋतुएँ उन स्थानाभिमानी पितरोंके छः स्थान हैं॥ ४१—४४ ॥

पितरोंको ऋतु भी कहा जाता है—ऐसा वेदमें कहा गया है; क्योंकि स्थावर, जंगम सभी अपनी-अपनी ऋतुओंमें ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये पितर [सभीके उद्भवहेतु होनेसे ऋतु या] आर्तव भी कहे गये हैं—ऐसी श्रुति है। इस प्रकार ऋतुकालाभिमानी इन पितरोंका पितृत्व श्रुतियोंमें वर्णित है॥ ४५-४६ ॥

सभी ऐश्वर्योंको अपनेमें स्थितकर ये पितर आकाशमें स्थित रहते हैं। अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद्—ये दो प्रकारके पितर कहे गये हैं। ये यज्ञ करनेवाले तथा यज्ञ न करनेवाले गृहस्थके क्रमशः पितर हैं। स्वधाने पितरोंसे लोकविख्यात दो पुत्रियों मेना तथा धरणीको जन्म दिया। जिन्होंने इस संसारको धारण किया है। मेना अग्निष्वात्तकी पुत्री हैं तथा

धरणी बर्हिषत्की पुत्री हैं॥ ४७—४९॥

मेना हिमालयकी पत्नी हुईं, उन्होंने मैनाक तथा क्रौंच नामक दो पुत्रों और गौरी तथा गंगा नामक दो पुत्रियोंको जन्म दिया, जो शिवके देहसे संयुक्त होकर [संसारको] पवित्र करनेवाली हैं॥ ५०॥

मेरुकी पत्नी धरणी हुई, जिसने दिव्य औषधियोंसे युक्त तथा अद्भुत सुन्दर शिखरोंवाले मन्दरपर्वतको पुत्ररूपमें जन्म दिया। मेरुका वही श्रीमान् पुत्र मन्दर अपनी तपस्याके बलसे साक्षात् श्रीकण्ठनाथ शिवकी निवासभूमि हुआ॥ ५१-५२॥

उस धरणीने पुनः वेला, नियति और आयति—इन लोकप्रसिद्ध तीन कन्याओंको जन्म दिया॥ ५३॥

आयति तथा नियति भृगुके पुत्रोंकी पत्नियाँ हुईं। स्वायम्भुव मन्वन्तरके प्रसंगमें इनके वंशका वर्णन पूर्वमें किया गया है। वेलाने सागरसे एक मनोहर कन्याको जन्म दिया, जिसका नाम सामुद्री या सवर्णा है, वह प्राचीनबर्हिकी पत्नी हुई। समुद्रपुत्री सवर्णाने प्राचीनबर्हिसे दस पुत्र उत्पन्न किये, ये सभी प्रचेता नामवाले थे और धनुर्वेदके पारगामी थे॥ ५४—५६॥

प्राचीन कालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मनुके पुत्ररूपमें उत्पन्न दक्ष चाक्षुष मन्वन्तरमें शिवके शापके कारण प्रचेताओंके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ ५७॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने ब्रह्मदेवके धर्म आदि महात्मा पुत्रोंके वंशोंका वर्णन न तो बहुत संक्षेपमें तथा न तो बहुत विस्तारसे ही कहा, जो दिव्य, देवगणसमन्वित, क्रियावान्, प्रजावान् तथा महान् समृद्धियोंसे अलंकृत हैं॥ ५८-५९॥

प्रजापतिसे उत्पन्न प्रजाओंके इस सन्निवेशकी गणना तो करोड़ों वर्षोंमें भी नहीं की जा सकती है। इसी प्रकार राजाओंका भी वंश दो प्रकारका है, ये परम पवित्र सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशके नामसे भूर्लोकमें विख्यात हैं॥ ६०-६१॥

इक्ष्वाकु, अम्बरीष, ययाति, नहुष आदि जो पुण्यकीर्ति राजर्षि यहाँ सुने गये हैं, वे इन्हीं वंशोंमें उत्पन्न हुए, इनके अतिरिक्त विविध पराक्रमोंसे युक्त अन्य राजर्षि भी उत्पन्न हुए। उनका वर्णन मैंने पहले ही कर दिया है, अब जो पुराने तथा बीते हुए हैं, पहले ही कहे जा चुके उन राजर्षियोंके वर्णनसे कोई लाभ भी नहीं है॥ ६२-६३॥

बहुत क्या कहें, जहाँ शिवके चरित्रका वर्णन किया जा रहा हो, वहाँ दूसरी कथाका वर्णन सज्जन-सम्मत नहीं है—ऐसा मानकर मैं [उस विषयमें] अत्यधिक कहनेका उत्साह नहीं करता हूँ॥ ६४॥

प्रसंगवश सृष्टि आदिका वर्णन ईश्वरके प्रभावको प्रकट करनेके लिये ही किया है, अतः विस्तारका प्रयोजन व्यर्थ है॥ ६५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सृष्टिकथन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

दक्षके शिवसे द्वेषका कारण

ऋषि बोले—पूर्वकालमें दक्षकी पुत्री सती देवी दक्षसे उत्पन्न हुए अपने शरीरका त्यागकर किस तरह हिमालयपत्नी मेनामें जन्म लेकर हिमालयकी पुत्री हुईं? महात्मा दक्षने रुद्रकी निन्दा क्यों की और उसमें क्या कारण था, जिससे रुद्रदेवको निन्दित होना पड़ा? शिवजीके शापके कारण चाक्षुष मन्वन्तरमें दक्षकी पुनः उत्पत्ति कैसे हुई? हे वायुदेव! यह सब बताइये॥ १—३॥

वायुदेव बोले—सुनिये, अत्यन्त तुच्छ स्वभाववाले दक्ष पाप एवं प्रमादके कारण जिस तरह जगत्के देवताओंको निन्दितकर कलंकके भागी बने, उन सभी कथाओंको मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ॥ ४॥

पूर्व समयमें कभी शिवजीके दर्शनके लिये देवता, असुर, सिद्ध एवं महर्षिगण हिमालयके शिखरपर गये॥ ५॥

हे द्विजश्रेष्ठो! वहाँ दिव्य आसनपर विराजमान शंकर एवं देवीने उन देवता आदिको दर्शन दिया॥ ६॥

उस समय देवताओंके साथ दक्ष भी अपनी पुत्री सती

तथा जामाता शंकरको देखनेके लिये गये हुए थे॥ ७॥

उस समय देवीके साथ स्थित भगवान् सदाशिव अपनी स्वरूपमहिमामें निमग्न होनेके कारण (लोकव्यवहारमें अनासक्त होनेसे) आये हुए पितृतुल्य श्वशुर दक्षका देवताओंकी अपेक्षा विशेष आदर करना चाहिये, इस बातका तनिक भी स्मरण न कर सके॥ ८॥

भगवान् सदाशिव तथा सतीकी परम महिमासे अपरिचित तथा सती देवीको केवल पुत्री समझनेवाले दक्ष [इसी कारण] सतीसे द्वेष करने लगे॥ ९॥

इसी वैरभावके कारण तथा दुर्भाग्यसे प्रेरित हुए [यज्ञ]-दीक्षित दक्षने द्वेषवश न केवल शिवजीको अपितु अपनी पुत्रीको भी यज्ञमें आमन्त्रित नहीं किया॥ १०॥

जितने भी अन्य जामाता थे, उन सभीको बुलाकर दक्षने पृथक्-पृथक् उनका अत्यधिक सत्कार किया॥ ११॥

तब नारदजीके मुखसे अपने पिताके यज्ञमें उन सभीको गया हुआ सुनकर रुद्राणी भी रुद्रदेवको सूचितकर पिताके भवन जाने लगीं॥ १२॥

[उनकी यात्राके लिये आया हुआ जो विमान था, वह] चारों ओर खिड़कियोंवाला, सभी प्रकारके लक्षणोंसे समन्वित, सुखपूर्वक आरोहणके लिये अतीव योग्य, मनको मोहित करनेवाला, सर्वोत्तम, तप्त स्वर्णके समान देदीप्यमान, विचित्र रत्नोंसे परिष्कृत, मोतियोंसे युक्त वितानसे सुशोभित, मालाओंसे अलंकृत, विचित्र तप्त स्वर्ण-जैसी कान्तिवाली खूटियोंसे युक्त, सैकड़ों रत्नजटित स्तम्भोंसे आवृत, हीरेसे निर्मित सीढ़ियोंवाला, मूँगोंके तोरणसे सुशोभित स्तम्भवाला, बिछे हुए पुष्पोंसे युक्त विचित्र रत्नोंके आसनसे शोभायमान, हीरेकी जालियोंवाला, दोषरहित मणियोंसे निर्मित फर्शवाला था, जिसमें मणिमय मनोहर दण्ड लगा था और जो महावृषभके चिह्नसे अंकित था, ऐसे मेघसदृश उज्ज्वल ध्वजसे अलंकृत पूर्वभागवाले, रत्नजटित कंचुकसे ढँके हुए देहवाले तथा हाथमें बेंत धारण किये हुए दुर्धर्ष गणेश्वरोंसे अधिष्ठित महाद्वारवाले, मृदंग-ताल-गीत-वेणु-वीणावादनमें प्रवीण तथा मनोहर वेष धारण की हुई बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरे हुए तथा अपने पास लाये गये उस दिव्य विमानपर महादेवी अपनी प्रिय सखियोंके साथ आरूढ़ हुईं॥ १३—१९१/२॥

उस समय दो सुन्दर रुद्रकन्याएँ हीरेसे जटित दण्डवाले दो मनोहर चामर हाथोंमें लेकर उनके दोनों ओरसे डुला रही थीं। उस समय दोनों चामरोंके मध्य देवीका मुखमण्डल इस प्रकार शोभायमान होने लगा, जैसे परस्पर लड़ते हुए दो हंसोंके मध्य कमल सुशोभित हो रहा हो। सुमालिनीने प्रेमसे परिपूर्ण होकर भगवती सतीके शिरोभागमें चन्द्रके समान मनको मुग्ध करनेवाले छत्रको लगाया। वह मोतीकी झालरोंसे सुसज्जित था। देवीके मुखमण्डलपर वह समुज्ज्वल मनोहर छत्र इस तरह शोभायमान हो रहा था, मानो अमृतकलशके ऊपर चन्द्रमा सुशोभित हो रहा हो। देवी सतीके सम्मुख बैठी मन्द मुसकान करती हुई शुभावती पासेके खेलद्वारा सती देवीका मनोविनोद कर रही थी। सुयशा देवीकी रत्नजटित सुन्दर पादुका अपने वक्ष:स्थलसे लगाकर उनकी सेवा कर रही थी। स्वर्णके समान अंगवाली कोई दूसरी सखी हाथमें उज्ज्वल दर्पण धारण की हुई थी। किसी सखीने तालवृन्त धारण कर रखा था तो कोई पानदान लिये हुए थी। एक सुन्दरीने हाथमें मनोहर क्रीडाशुक धारण कर रखा था॥ २०—२७॥

कोई मनको मुग्ध करनेवाले सुगन्धित पुष्प तथा कोई कमलनयना स्त्री आभूषणोंकी पेटी लिये हुए थी। किसीके हाथमें सुगन्धित आलेप, उत्तम फूल एवं सुन्दर अंजन था। इसी तरह अन्यान्य दासियाँ उन महादेवीको चारों ओरसे घेरकर अपने-अपने अनुकूल कार्योंमें लगकर उनकी सेवा कर रही थीं। वे परमेश्वरी उनके बीचमें इस तरह अत्यधिक सुशोभित हो रही थीं, जिस तरह तारोंके समूहके मध्यमें शरत्कालीन चन्द्ररेखा सुशोभित होती है॥ २८—३०१/२॥

इसके पश्चात् शंखध्वनिके होते ही महान् ध्वनि करनेवाले, प्रस्थानके सूचक नगाड़े बज उठे। ताल और स्वरसे समन्वित दूसरे भी सुमधुर बाजे और बिना आघातके सैकड़ों काहल नामक बाजे भी बजने लगे॥ ३१—३२१/२॥

उस समय महादेवके समान अमित तेजस्वी एक हजार आठ सौ गणेशोंके समूह अस्त्र-शस्त्रसे युक्त हो उनके आगे चलने लगे। उन गणोंके मध्यमें बैलपर सवार

देववन्दित श्रीमान् गणपति सोमनन्दी हाथीपर आरूढ़ देवगुरु बृहस्पतिके समान चलने लगे॥ ३३—३४१/२॥

उस समय आकाशमें कानोंको सुख देनेवाले देवगणोंके नगाड़े बजने लगे। सभी मुनिगण नाचने लगे, सिद्ध और योगी हर्षित हो उठे एवं बादल वितानके ऊपर पुष्पवृष्टि करने लगे। मार्गमें अनेक देवताओं तथा अन्य लोगोंसे मिलती हुई वे महेश्वरी थोड़ी देरमें अपने पिता दक्षके घर पहुँच गयीं। उन्हें देखकर अपनी मृत्युके वशीभूत हुए दक्ष कुपित हो उठे और उन्होंने सतीका उतना भी सत्कार नहीं किया, जितना कि उनकी छोटी बहनोंका किया था। इसके बाद उन चन्द्रमुखी सती देवीने सभामें विराजमान अपने पिता दक्षसे युक्तियुक्त, उदार तथा धैर्ययुक्त वाणीमें कहा—॥ ३५—३९॥

देवी बोलीं—हे तात! ब्रह्मासे लेकर पिशाचपर्यन्त जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं, आपने इस समय उन देवाधिदेवकी विधिपूर्वक अर्चना नहीं की। उनकी पूजाकी बात तो छोड़िये, आपको मुझ ज्येष्ठ पुत्रीका सत्कार भी क्या इसी तरह करना चाहिये? आपने मेरा सत्कार न करके निन्दित कार्य किया है॥ ४०-४१॥

सती देवीने जब उनसे इस प्रकार कहा, तब दक्षने क्रोधसे व्याकुल होकर कहा—ये मेरी पुत्रियाँ तुम्हारी अपेक्षा श्रेष्ठ, विशिष्ट और पूज्य हैं। इनके जो पति हैं, वे भी मेरे लिये अत्यन्त माननीय हैं और वे सभी तुम्हारे पति त्रिनेत्र शिवसे गुणोंमें बहुत अधिक हैं। जिनकी तुम आश्रिता हो, वे शिव स्तब्ध और तमोगुणी हैं। मैंने तुम्हारा अपमान इसीलिये किया; क्योंकि शिव मेरे अनुकूल नहीं हैं॥ ४२—४४॥

इस तरह दक्षके कहनेपर यज्ञमें जो सदस्य स्थित थे, उन सभीको सुनाते हुए वे देवी अपने पिता दक्षसे कहने लगीं—हे दक्ष! आपने सर्वथा निर्दोष साक्षात् लोकमहेश्वर मेरे पतिको वचनोंद्वारा अकारण दूषित बताया है॥ ४५-४६॥

विद्याकी चोरी करनेवाला, गुरुद्रोही एवं वेद तथा ईश्वरकी निन्दा करनेवाला—ये सभी पापी दण्डके योग्य हैं, ऐसी वेदाज्ञा है। इसलिये दैवयोगसे आपको उसी महापापके समान ही दारुण दण्ड सहसा प्राप्त होगा। आपने देवाधिदेव सदाशिवकी पूजा नहीं की, अतः आपका दूषित कुल नष्ट हो गया—ऐसा समझिये॥ ४७—४९॥

इस तरह क्रोधित हुई सती देवीने निर्भय होकर अपने पितासे ऐसा कहकर उनसे सम्बन्धित शरीरको त्याग दिया और हिमालयपर्वतपर चली गयीं॥ ५०॥

पुण्य फलोंकी समृद्धिवाले श्रीमान् पर्वतश्रेष्ठ हिमालयने उन भगवतीकी प्राप्तिके लिये सुदीर्घकालपर्यन्त दुष्कर तप किया था। इसीलिये उन ईश्वरीने उन पर्वतराज हिमालयपर अनुग्रह किया और योगमायाके द्वारा अपनी इच्छासे उन्हें अपना पिता बनाया॥ ५१-५२॥

जिस समय सती भयसे व्याकुल दक्षकी निन्दा करके गयीं, उसी समय मन्त्र तिरोहित हो गये और वह यज्ञ विनष्ट हो गया। शिवजीने देवीके गमनका समाचार सुनकर दक्ष तथा ऋषियोंपर अत्यधिक क्रोध किया और उन्हें शाप दे दिया। हे दक्ष! आपने मेरे कारण दोषरहित सतीका अपमान किया और पतियोंसहित अपनी अन्य सभी पुत्रियोंका सत्कार किया, अतः आपके ये सभी अयोनिज जामाता वैवस्वत मन्वन्तरमें ब्रह्माजीके द्वारा प्रवर्तित यज्ञोंमें उत्पन्न होंगे और आप चाक्षुष मन्वन्तरमें प्राचीनबर्हिके पौत्र तथा प्रचेताओंके पुत्र होकर मनुष्योंके राजा बनेंगे। हे दुर्मते! मैं उस समय आपके धर्म, अर्थ, कामसे युक्त कार्योंमें बारंबार विघ्न डालूँगा॥ ५३—५८॥

जिस समय अमित तेजस्वी रुद्रने दक्षके प्रति ऐसा कहा, उसी समय दुखी दक्ष ब्रह्मदेवसे उत्पन्न अपने देहका त्यागकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इसके पश्चात् वही प्राचेतस दक्ष चाक्षुष मन्वन्तरमें प्राचेतस नामसे प्रचेताओंके पुत्र और प्राचीनबर्हिके पौत्रके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हुए॥ ५९-६०॥

वे भृगु आदि महर्षि भी वैवस्वत मन्वन्तरके ब्रह्माजीके यज्ञमें वरुणके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ ६१॥

तब वैवस्वत मन्वन्तरमें उन दुरात्मा दक्षके धर्मार्थ प्रवृत्त होनेपर महादेवने विघ्न किया॥ ६२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें सतीदेहत्याग नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

दक्षयज्ञका उपक्रम, दधीचिका दक्षको शाप देना, वीरभद्र और भद्रकालीका प्रादुर्भाव तथा उनका यज्ञध्वंसके लिये प्रस्थान

ऋषि बोले—धर्मकार्यमें प्रवृत्त हुए दुरात्मा दक्षके कर्ममें महेश्वरने किस प्रकार विघ्न किया, हमलोग यह जानना चाहते हैं?॥ १॥

वायु बोले—अपने तपके प्रभावसे सारे संसारकी माता भगवती देवीका पितृत्व प्राप्त करके हिमालय बहुत ही प्रसन्न हुए। जब शिवजीका उनसे विवाह हो गया और हिमालयके शिखरपर उनके साथ विहार करते हुए शिवजीका बहुत समय बीत गया। तब वैवस्वत मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर उन प्रचेताके पुत्र स्वयं दक्षने अश्वमेधयज्ञ करनेका विचार किया॥ २—४॥

दक्ष हिमालयके पृष्ठपर ऋषियों तथा सिद्धोंद्वारा सेवित गंगाद्वार नामक शुभस्थानपर यज्ञ करने लगे॥ ५॥

इसके बाद उनके उस यज्ञमें जानेके लिये इन्द्रादि समस्त देवता आपसमें विचार करने लगे॥ ६॥

आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, ऊष्मप, सोमप, आज्यप, धूमप, दोनों अश्विनीकुमार, पितृगण तथा अन्य महर्षिगण—विष्णुके सहित ये सभी लोग उस यज्ञमें भाग लेनेके लिये आये। [उस यज्ञमें] सदाशिवके अतिरिक्त सभी देवताओंको उपस्थित देखकर कोपाविष्ट दधीच दक्षसे इस प्रकार कहने लगे—॥ ७—९॥

दधीचि बोले—अपूज्यके पूजनसे तथा पूज्योंकी पूजा न करनेसे मनुष्यको बड़ा पाप लगता है, इसमें सन्देह नहीं है। जहाँ असज्जनोंका सम्मान तथा सत्पुरुषोंका अपमान होता है, वहाँ शीघ्र ही ईश्वरके द्वारा दिया गया कठोर दण्ड उपस्थित होता है॥ १०-११॥

दधीचिने इस प्रकार कहकर दक्षसे पुनः कहा—तुम पूज्य पशुपति महेश्वरका पूजन किसलिये नहीं करते हो?॥ १२॥

दक्ष बोले—जटाजूटसे समन्वित, हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए एकादश रुद्र तथा अन्य बहुत-से रुद्र मेरे यहाँ उपस्थित हैं, मैं और किसी अन्य महेश्वरको नहीं जानता हूँ॥ १३॥

दधीचि बोले—यदि तुम इस यज्ञके राजा महेश्वरका पूजन नहीं कर रहे हो, तो इस यज्ञमें इन अन्य देवताओंके पूजनसे क्या लाभ!॥ १४॥

जो अविनाशी प्रभु, ब्रह्मा, रुद्र और विष्णुको उत्पन्न करनेवाले हैं और ब्रह्मासे लेकर पिशाचपर्यन्त जिनके वशवर्ती हैं, जो प्रकृति और पुरुषसे परे हैं, जिनके ध्यानमें योगज्ञाता और तत्त्वदर्शी महर्षि तत्पर रहते हैं, जो अक्षर परम ब्रह्म तथा सदसत्स्वरूप हैं, आदि-मध्य-अन्तसे रहित, तर्कसे सर्वथा अज्ञेय, विशुद्ध तथा सनातन हैं, जो सृष्टि करनेवाले, पालन करनेवाले, संहार करनेवाले तथा महेश्वर हैं, मैं इस यज्ञमें उन शंकरात्माके अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं देखता हूँ॥ १५—१८॥

दक्ष बोले—[हे महर्षे!] इस सोनेके पात्रमें यज्ञेश्वर विष्णुके निमित्त विधिपूर्वक अभिमन्त्रित हवि रखी हुई है, उसे मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ, उस सम्पूर्ण हविको विभाजितकर उनके लिये अभी प्रदान कीजिये॥ १९॥

दधीचि बोले—हे दक्ष! आपने देवदेवेश्वर रुद्रकी आराधना नहीं की है, अतः आपका यह यज्ञ पूर्ण नहीं होगा। यह वचन कहकर मुनिश्रेष्ठ दधीचि क्रुद्ध हो उस यज्ञशालासे निकलकर अपने आश्रमको चले गये॥ २०-२१॥

उन मुनिके चले जानेपर तथा अवश्य होनेवाले अनिष्टको समझते हुए भी देवताओंने दक्षका त्याग नहीं किया। हे विप्रो! इसी समय ईश्वर शिवसे यह सब जानकर देवीने दक्षके यज्ञको जलानेके लिये शिवजीको प्रेरित किया॥ २२-२३॥

तब देवीके द्वारा प्रेरित किये गये शिवने दक्षके यज्ञको विनष्ट करनेकी इच्छासे पराक्रमी, हजार मुखोंवाले, कमलके समान हजार नेत्रोंवाले, हजारों मुद्गर, हजारों धनुष, हजारों शूल, टंक, गदा, तेजस्वी धनुष, चक्र

[आदि शस्त्रास्त्रोंसे युक्त] तथा भयंकर स्वरूपवाले, वज्र अपने हाथोंमें धारण किये हुए, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये हुए, वज्रसे चमकते हुए हाथवाले, विद्युत्‌की प्रभाके सदृश केशोंवाले, भयंकर दाढ़ोंसे युक्त, विशाल मुख तथा उदरवाले, बिजलीके समान जीभवाले, लटकते हुए लम्बे ओठवाले, समुद्र एवं मेघकी गर्जनाके समान शब्दवाले, अत्यधिक रक्त-स्रावसे युक्त, व्याघ्रके चर्मको धारण किये हुए, दोनों कपोलोंसे सटे हुए गोलाकार कुण्डल धारण किये हुए, देवताओंकी उत्तम शिरोमालावलीसे सुशोभित सिरवाले, उत्तम स्वर्णनिर्मित बजते हुए नूपुर तथा बाजूबन्दसे विभूषित, रत्नोंसे प्रकाशित, तारमय हारसे आवृत वक्षःस्थलवाले, महाशरभ, शार्दूल और सिंहके समान पराक्रमवाले, मदमत्त महान् हाथीके समान मन्थर गतिवाले, शंख-चामर-कुन्द, चन्द्रमा एवं मृणालके समान प्रभावाले, मानो बर्फसे ढका हुआ साक्षात् हिमालयपर्वत ही चलता-फिरता सुशोभित हो रहा हो—ऐसे प्रतीत होनेवाले, ज्वालासमूहसे देदीप्यमान, मोतियोंके आभूषणोंसे सुशोभित और अपने तेजके कारण प्रलयकालीन अग्निके समान प्रदीप्त होनेवाले गणाधिप वीरभद्रको सहसा उत्पन्न किया। घुटने टेककर हाथ जोड़कर शिवजीको प्रणाम करके वीरभद्र उनके समीप बैठ गये॥ २४—३४॥

इसके पश्चात् देवीने क्रोधसे अपने कर्मके साक्षित्वके लिये महेश्वरी भद्रा भद्रकालीको साथ जानेके लिये उत्पन्न किया। तब भद्रकालीसे समन्वित कालाग्निके सदृश स्थित उन वीरभद्रको देखकर शंकरजीने कहा—तुम्हारा कल्याण हो॥ ३५-३६॥

तत्पश्चात् वीरभद्रने देवीके साथ विराजमान महेश्वरसे कहा—हे महादेव! आज्ञा दीजिये, मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ? तब त्रिपुरका वध करनेवाले सदाशिवने पार्वतीका प्रिय करनेकी इच्छासे महागम्भीर वाणीमें महान् भुजाओंवाले वीरभद्रसे कहा—॥ ३७-३८॥

महादेव बोले—हे गणेश्वर! तुम प्रचेताके पुत्र दक्षके यज्ञको विनष्ट करो, तुम भद्रकालीके साथ इस कार्यको करो। हे गणेशान! मैं भी इन देवीके साथ रैभ्यके आश्रमके पास स्थित होकर तुम्हारा दुःसह पराक्रम देखता रहूँगा॥ ३९-४०॥

कनखलमें गंगाद्वारके समीप स्थित जो ऊँचे वृक्ष हैं, वे सोनेके शिखरवाले मेरुपर्वतपर मन्दरके समान दिखायी पड़ रहे हैं, उसी प्रदेशमें दक्षका यज्ञ हो रहा है। उस यज्ञको तुम विना विलम्ब किये सहसा विनष्ट कर दो॥ ४१-४२॥

सदाशिवके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर हिमवान्‌की कन्या पार्वती देवी वीरभद्र और भद्रकालीको इस तरह देखकर जैसे कोई गाय अपने बछड़ेको देखती हो, उनका आलिंगन करके पुनः कार्तिकेयके समान उनका मस्तक सूँघकर हँसती हुई अत्यन्त मधुर वचन बोलीं—॥ ४३-४४॥

देवी बोलीं—हे वत्स! हे महाभाग! महान् बल तथा पराक्रमवाले हे वीरभद्र! तुम मेरा हित करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो, अतः मेरे क्रोधका शमन करो॥ ४५॥

गणेश्वर! वैरके कारण यज्ञेश्वरको बिना बुलाये ही दक्षने यज्ञकर्म प्रारम्भ किया है, इसलिये तुम शीघ्र ही उस यज्ञको नष्ट कर दो। हे भद्र! हे वत्स! तुम इस भद्राके साथ मेरी आज्ञासे यज्ञलक्ष्मीको अलक्ष्मी बनाकर उस यज्ञकर्ता दक्षको विनष्ट कर दो॥ ४६-४७॥

तब विचित्र कार्य करनेवाले उन शिव तथा पार्वतीके सभी आदेशोंको सिरपर धारणकर उन्हें नमस्कार करके वीरभद्र जानेके लिये उद्यत हो गये॥ ४८॥

इसके पश्चात् श्मशानवासी भगवान् वीरभद्र महादेवने देवीके क्रोधको शान्त करनेकी इच्छासे अपने रोमकूपोंसे हजारों रोमज नामक गणेश्वरोंको उत्पन्न किया। इसी तरह उन्होंने अपनी दाहिनी भुजा, चरण, ऊरुप्रदेश, पीठ, पार्श्व, मुख, गला, गुह्य, गुल्फ, सिर, मध्यभाग, कण्ठ, जबड़े तथा पेटसे सौ करोड़ गणेश्वरोंको उत्पन्न किया। उस समय वीरभद्रके समान पराक्रमवाले गणेश्वरोंसे आकाशविवरसहित सारा जगत् ढँक गया॥ ४९—५२॥

उन सभीके हजार हाथ थे तथा हाथोंमें हजारों आयुध थे। वे सभी रुद्रके अनुचर थे तथा रुद्रके समान तेजस्वी थे॥ ५३॥

वे हाथोंमें शूल, शक्ति, गदा, टंक, उपल एवं शिला लिये हुए थे। वे कालाग्निरुद्रके समान, तीन नेत्रोंवाले तथा जटाजूटसे समन्वित थे॥ ५४॥

वीरभद्रद्वारा उत्पन्न वे करोड़ों गण सिंहोंपर विराजमान हो आकाशमें विचरने लगे और मेघके समान महाघोर गर्जना करने लगे॥ ५५॥

उन गणोंसे घिरे हुए भगवान् वीरभद्र इस तरह प्रतीत हो रहे थे, जैसे प्रलयकालमें सैकड़ों कालाग्नियोंसे घिरे हुए कालभैरव शोभित होते हैं॥ ५६॥

उन गणोंके बीच वृषभध्वज भगवान् वीरभद्र बैलपर आरूढ़ होकर गये। तब श्वेत चामर लिये हुए भसितप्रभ नामक गणने वृषभपर सवार उन वीरभद्रके सिरके ऊपर मुक्तामणिकी झालरवाला छत्र लगा दिया॥ ५७-५८॥

उस समय वीरभद्रके समीप वह भसितप्रभ इस तरह सुशोभित हो रहा था, जैसे समस्त जगत्के गुरु भगवान् शंकरके समीप ऐश्वर्यसम्पन्न हिमालय सुशोभित होते हैं। वे वीरभद्र भी श्वेत चामरको हाथमें धारण किये हुए उस भसितप्रभके साथ इस तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले भगवान् रुद्र सौम्य बालचन्द्रमासे शोभायमान होते हैं॥ ५९-६०॥

इसके बाद सुवर्ण-रत्नादिसे अलंकृत महातेजस्वी भानुकम्प नामक गणेश्वरने वीरभद्रके आगे अपना कल्याणमय, शुभ एवं श्वेत वर्णका शंख बजाया॥ ६१॥

सघन तथा दिव्य ध्वनिवाली देवदुन्दुभियाँ बजने लगीं और मेघ उनके सिरपर फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ६२॥

मकरन्दसे परिपूर्ण, खिले हुए फूलोंकी सुगन्धसे सुरभित तथा यात्राके अनुकूल हवाएँ मार्गमें बहने लगीं। इसके पश्चात् सभी गणेश्वर मत्त तथा युद्धबलसे गर्वित होकर नृत्य करने लगे, हर्षित हो उठे, नाद करने लगे, कुछ हँसने लगे, चिल्लाने लगे तथा कुछ गाने लगे॥ ६३-६४॥

उस समय अपने गणोंके मध्यमें वीरभद्र भद्रकालीके साथ उसी प्रकार शोभित हो रहे थे, जैसे रुद्रगणोंके मध्य शिवजी पार्वतीके साथ सुशोभित होते हैं॥ ६५॥

उसी समय अनुचरोंसहित महाबाहु वीरभद्रने दक्षकी सुवर्णमयी यज्ञशालामें प्रवेश किया॥ ६६॥

गणोंमें प्रधान वीरभद्र दक्षके द्वारा सम्पादित किये जा रहे उस महायज्ञकी प्रयोगभूमि अर्थात् मण्डपमें वैसे ही प्रविष्ट हुए जैसे प्रलयकालमें जगत्को भस्मीभूत करनेकी इच्छावाले रुद्र [ब्रह्माण्डमें] प्रवेश करते हैं॥ ६७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें वीरभद्रोत्पत्तिवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

गणोंके साथ वीरभद्रका दक्षकी यज्ञभूमिमें आगमन तथा उनके द्वारा दक्षके यज्ञका विध्वंस

वायु बोले— इसके पश्चात् वीरभद्रने विष्णुके नेतृत्ववाले तेजस्वी देवगणोंसे युक्त उस महायज्ञको देखा, जो चित्र-विचित्र ध्वजाओंसे सुशोभित था, जहाँ सीधे-सीधे श्रेष्ठ कुश बिछे हुए थे, भलीभाँति अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, जो चमकते हुए सुवर्णमय यज्ञपात्रोंसे अलंकृत था तथा जिसमें यथोचित कर्म करनेवाले यज्ञकुशल ऋषियोंके द्वारा वेदविहित रीतिसे भलीभाँति विविध यज्ञकृत्योंका संचालन हो रहा था, जो हजारों देवांगनाओं एवं अप्सराओंसे समन्वित था, वेणु-वीणाकी ध्वनियोंसे गुंजित था तथा वेदघोषोंसे मानो अभिवृद्धिको प्राप्त हो रहा था॥ १—४॥

दक्षके यज्ञको देखकर वीर तथा प्रतापी वीरभद्रने गम्भीर मेघके समान सिंहनाद किया। यज्ञभूमिमें गणेश्वरोंके द्वारा किया जाता हुआ किलकिलाहटभरा वह महानाद मानों आकाशको परिपूर्ण-सा कर रहा था और सागरके घोषको तिरस्कृत-सा कर रहा था॥ ५-६॥

उस महान् शब्दसे आक्रान्त हुए सभी देवगण भयसे व्याकुल हो चारों ओर भागने लगे, उनके वस्त्र एवं आभूषण खिसक गये। उस समय देवगण अत्यधिक संक्षुब्ध हो आपसमें बार-बार कहने लगे—क्या महामेरु टूट गया, अथवा पृथ्वी फट रही है! यह क्या हो गया, यह क्या हो गया?॥ ७-८॥

जिस प्रकार गहन वनमें सिंहोंका नाद सुनकर हाथी व्याकुल हो जाते हैं, उसी तरह उन शब्दोंको सुनकर कुछ

लोग भयसे प्राण त्यागने लगे। पर्वत फटने लगे, पृथ्वी कम्पित हो उठी, आँधियाँ चलने लगीं। समुद्र संक्षुब्ध हो उठे, आगका जलना बन्द हो गया, सूर्यकी प्रभा धूमिल हो गयी और नक्षत्रों, ग्रहों तथा तारागणोंका प्रकाश लुप्त हो गया। उसी समय भगवान् वीरभद्र अपने गणों एवं भद्रकालीके साथ उस समुज्ज्वल यज्ञस्थलमें पहुँचे॥ ९—१२॥

उन्हें देखकर दक्ष भयभीत होते हुए भी दृढ़की भाँति बैठे रहे और क्रोधित होकर यह वचन कहने लगे—आप कौन हैं और यहाँ क्या चाहते हैं?॥ १३॥

उस दुरात्मा दक्षके वचनको सुनकर मेघके समान गम्भीर गर्जना करनेवाले महातेजस्वी वीरभद्रने दक्ष, देवताओं तथा ऋत्विजोंकी ओर देखकर हँसते हुए अर्थपूर्ण, सर्वथा सुस्पष्ट एवं उचित वचन कहा—॥ १४-१५॥

वीरभद्र बोले—हम सब अमिततेजस्वी [भगवान्] रुद्रके अनुचर हैं और अपने भागकी कामनासे यहाँ आये हैं, अतः आप हमारा भाग दीजिये। यदि इस यज्ञमें हमारा भाग नहीं रखा गया है, तो उसका कारण बताइये अथवा इन देवताओंको साथ लेकर मुझसे युद्ध कीजिये। वीरभद्रके द्वारा इस तरह कहे जानेपर दक्षके सहित देवताओंने उनसे कहा—इस विषयमें तो मन्त्र ही प्रमाण हैं। हमलोग इसमें समर्थ नहीं हैं॥ १६—१८॥

मन्त्रोंने कहा—हे देवताओ! आपलोगोंकी बुद्धि मोहसे ग्रसित है, जिससे आपलोग प्रथम भाग पानेके योग्य महेश्वरका यजन नहीं कर रहे हैं॥ १९॥

मन्त्रोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भी मूढ़ बुद्धिवाले उन सभी देवताओंने वीरभद्रके बहिष्कारकी कामना करते हुए उनको भाग नहीं दिया। जब उनके अपने वे सत्य एवं हितकर वचन व्यर्थ हो गये, तब वे मन्त्र वहाँसे सनातन ब्रह्मलोकको चले गये॥ २०-२१॥

इसके पश्चात् गणेश्वरने विष्णु आदि देवगणोंसे कहा—बलसे गर्वित आपलोगोंने मन्त्रोंको भी प्रमाण नहीं माना और [तुम] देवताओंने इस यज्ञमें हमलोगोंका ऐसा तिरस्कार किया है, अतः मैं प्राणोंसहित आपलोगोंके घमण्डको विनष्ट कर दूँगा॥ २२-२३॥

इस प्रकार कहकर कुपित हुए भगवान् वीरभद्र पर्वतके समान यज्ञवाटको नेत्राग्निसे उसी प्रकार जलाने लगे, जिस प्रकार शंकरने त्रिपुरको जलाया था॥ २४॥

पर्वतोंके समान भयानक शरीरवाले गणेश्वरोंने यज्ञके स्तम्भोंको उखाड़कर हवनकर्ताओंके कण्ठोंमें रस्सियोंसे बाँध दिया और विचित्र रूपवाले यज्ञपात्रोंको तोड़-फोड़कर जलमें और यज्ञकी सभी सामग्री उठाकर गंगामें फेंक दी॥ २५-२६॥

वहाँपर जो दिव्य अन्न-पानकी पहाड़-जैसी राशियाँ थीं, अमृतके समान मधुर दूधकी नदियाँ, स्निग्ध दधिकी राशियाँ, अनेक प्रकारके फलोंके गूदे, सुगन्धित भोज्य पदार्थ, रसमय पानसामग्री, लेह्य पदार्थ एवं चोष्य पदार्थ थे, उन्हें वे वीर खाने लगे, मुखोंमें डालने लगे और फेंकने लगे। वीरभद्रके शरीरसे उत्पन्न बलवान् वीर वज्र, चक्र, महाशूल, शक्ति, पाश, पट्टिश, मूसल, खड्ग, टंक, भिन्दिपाल तथा फरसोंसे लोकपालादि सभी उद्धत देवताओंपर प्रहार करने लगे॥ २७—३०½॥

इस तरह गणेश्वरोंके 'छेदन करो, भेदन करो, फेंक दो, शीघ्र मारो-काटो, चूर्ण करो, छीन लो, प्रहार करो, उखाड़ दो, फाड़ दो आदि कानोंको शंकुकी भाँति पीड़ा देनेवाले युद्धोचित भयानक शब्द जहाँ-तहाँ होने लगे। कोई आँखोंसे घूर रहा था, तो किसीने अपने दाँतोंसे ओठ और तालुओंको काट लिया। वे श्रेष्ठ गण आश्रमोंमें स्थित तपस्वियोंको खींच-खींचकर पीटने लगे और स्रुवोंको छीनते हुए तथा अग्नियोंको जलराशिमें डालते हुए, कलशोंको फोड़ते हुए, मणिनिर्मित वेदियोंको नष्ट करते हुए, बारंबार गाते हुए, गरजते हुए, हँसते हुए तथा आसवकी भाँति रक्तको पीते हुए नाचने लगे॥ ३१—३६॥

श्रेष्ठ वृषभ, गजराज एवं सिंहके समान बलवाले और अप्रतिम प्रभाववाले गणेश्वरोंने इन्द्रसहित सभी देवताओंको रौंदकर रोमांचित कर देनेवाली अनेक भयानक चेष्टाएँ कीं॥ ३७॥

कोई प्रमथ आह्लादित हो रहे थे, कोई प्रहार करते, कोई दौड़ते, कोई प्रलाप करते, कोई नाचते, कोई हँसते और कोई बलपूर्वक उछलते-कूदते थे॥ ३८॥

कोई भयंकर प्रमथगण जलसे समन्वित बादलोंको पकड़नेकी इच्छा कर रहे थे, तो कोई सूर्यको पकड़नेके

लिये उछल रहे थे और कोई आकाशमें स्थित होकर पवनके साथ उड़नेकी इच्छा कर रहे थे॥ ३९॥

कोई प्रमथगण श्रेष्ठ आयुधोंको [कौतूहलवश] पकड़ ले रहे थे, जैसे बड़े-बड़े सर्पोंको गरुड़ पकड़ लेते हैं और कोई पर्वतशिखरके सदृश प्रमथगण देवताओंको दौड़ाते हुए आकाशमें विचरण कर रहे थे॥ ४०॥

कोई प्रमथगण जालयुक्त खिड़कियों तथा वेदियोंसे समन्वित घरोंको उखाड़-उखाड़कर उन्हें जलके बीचमें फेंक-फेंककर प्रलयकालीन मेघोंके समान गर्जन कर रहे थे। [उस समय विलाप करते हुए लोग कह रहे थे—] अहो! दुःखका विषय है कि किवाड़ों तथा दीवारोंवाला और ध्वस्त किये गये प्रकोष्ठों, खिड़कियों एवं कँगूरोंवाला यह यज्ञस्थल अप्रामाणिक तथा असत्य कथनकी भाँति विनष्ट हुआ जा रहा है॥ ४१-४२॥

उस समय विध्वस्त किये जा रहे घरोंमें स्थित स्त्रियाँ हा नाथ! हा तात! हा पिता! हा पुत्र! हा भ्रातः! हा मेरी माता! हा मातुल! आदि दैन्यसूचक शब्दोंको बार-बार बोल रही थीं॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें यज्ञविध्वंसन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

वीरभद्रका दक्षके यज्ञमें आये देवताओंको दण्ड देना तथा दक्षका सिर काटना

वायु बोले—[हे विप्रगण!] तब देवताओंमें प्रमुख वे विष्णु, इन्द्रादि उस भयंकर [वीरभद्र]-से संत्रस्त हो गये तथा भयसे व्याकुल हो पलायन करने लगे॥ १॥

देवताओंको उनके स्वस्थ अंगोंसे युक्त देखकर तथा दण्डयोग्य होनेपर भी बिना दण्ड पाये भागते हुए जानकर गणश्रेष्ठ वीरभद्र क्रोधित हो उठे॥ २॥

तत्पश्चात् सभी शक्तियोंको विनष्ट करनेवाले त्रिशूलको लेकर वे महाबाहु वीरभद्र ऊपरकी ओर दृष्टि किये हुए तथा मुखसे आग उगलते हुए उसी तरह देवताओंको दौड़ा लिये, जैसे सिंह हाथियोंको दौड़ाता है। उस समय उनको दौड़ाते हुए वीरभद्रकी अति मनोहर चाल मदसे परिपूर्ण हाथीकी चालके समान दिखायी पड़ने लगी। उन बलशालीने देवताओंकी महान् सेनाको उसी प्रकार क्षुब्ध कर दिया, जैसे मतवाला हाथी महासरोवरको मथकर उसे नील, पाण्डुर, लोहित आदि वर्णोंवाला कर देता है॥ ३—६॥

उस समय व्याघ्रचर्म पहने हुए और श्रेष्ठ चमकीले सुवर्णनिर्मित तारोंवाले वस्त्र धारण किये वीरभद्र छेदन करते हुए, भेदन करते हुए, फेंकते हुए, गीला करते हुए, फाड़ते हुए और मथते हुए देवताओंके मध्य वैसे ही विचरण करने लगे, जिस प्रकार सूखी घास के मध्यमें अग्नि प्रज्वलित होती है। सभी देवताओंने यहाँ-वहाँ अकेले विचरण करते हुए त्रिशूलधारी एक वीरभद्रको हजारोंकी संख्यामें माना॥ ७—८½॥

युद्धके कारण बढ़े हुए मदसे उन्मत्त भद्रकालीने अत्यधिक कुपित होकर अग्नि उगलते हुए अपने त्रिशूलसे देवताओंको युद्धमें मारना प्रारम्भ कर दिया। रुद्रके क्रोधसे उत्पन्न वीरभद्र उनके साथ उसी प्रकार सुशोभित होने लगे, जिस प्रकार प्रलयाग्नि चलायमान धुएँसे धूम्रवर्णवाली प्रभाके साथ सुशोभित होती है। उस समय युद्धमें देवताओंको भगाती हुई भद्रकाली वैसे ही शोभित हो रही थीं, मानो कल्पान्तमें समग्र विश्वको दग्ध करती हुई शेषके मुखसे निकली अग्निज्वाला हो॥ ९—११½॥

गणेश्वर वीरभद्रने [दक्षके द्वारा आहूत] रुद्रगणों तथा अश्वसहित सूर्यके सिरपर खेल ही खेलमें बड़ी शीघ्रतासे अपने बायें पैरसे प्रहार किया। उन वीरभद्रने अग्निपर तलवारसे, यम तथा यमीपर पट्टिशसे, रुद्रोंपर कठोर शूलसे, वरुणपर दृढ़ मुद्गरोंसे, परिघोंसे निर्ऋतिपर तथा टंकोंसे वायुपर प्रहार किया। इस तरह संग्राममें वीर गणेश्वर वीरभद्रने लीलापूर्वक शीघ्र ही समस्त देवताओं

तथा शिवविरोधी मुनियोंको मार गिराया। इसके अनन्तर वीरभद्रने सरस्वती तथा देवमाता अदितिकी अति सुन्दर नासिकाके अग्रभागको अपने नखसे विदीर्ण कर दिया, कुठारसे अग्निकी भुजा काट दी तथा हविष्यको ग्रहण करनेवाली दो अँगुल जीभ काट डाली॥ १२—१७॥

उन देवने अपने नखाग्रसे स्वाहा देवीकी नासिकाका दक्षिण भाग और उनका बायाँ स्तनाग्र काट लिया॥ १८॥

परम वेगशाली वीरभद्रने बलपूर्वक भगदेवताके कमलके समान बड़े-बड़े नेत्रोंको निकाल लिया॥ १९॥

उन्होंने पूषा देवताकी चमकती हुई मोतीकी मालाके सदृश दन्तपंक्तिको धनुषकी नोंकसे तोड़ दिया, जिससे वे स्पष्ट बोलनेमें असमर्थ हो गये॥ २०॥

तत्पश्चात् उन देवने चन्द्रदेवताको लीलापूर्वक कीड़ेके समान पृथ्वीपर पटककर अपने चरणके अँगूठेसे उन्हें पीस डाला। वीरभद्रने अत्यधिक क्रोधित हो दक्षका सिर काट लिया और वीरिणीके रोते-कलपते रहनेपर भी उसे भद्रकालीको दे दिया॥ २१-२२॥

ताड़के फलके समान उस सिरको लेकर वे देवी अत्यधिक हर्षित होकर रणभूमिमें कन्दुक-क्रीड़ा करने लगीं। इसके बाद गणेश्वर लोग दक्षकी यज्ञस्त्री (यजमानी)-को पैरों एवं हाथोंसे इस प्रकार मारने लगे, जिस प्रकार शीलविहीन नारीको उसके पति मारते हैं॥ २३-२४॥

इसके पश्चात् बलशाली तथा सिंहके समान पराक्रमवाले गणेश्वरोंने अरिष्टनेमि, सोम, धर्म, प्रजापति, बहुत-से पुत्रोंवाले अंगिरा, कृशाश्व तथा कश्यपका गला पकड़कर दुर्वचनोंसे उन्हें झिड़कते हुए घूँसोंसे उनके सिरोंपर प्रहार करना शुरू कर दिया॥ २५-२६॥

उस समय उन भूत-वेतालोंके द्वारा पुत्र एवं पतिसहित स्त्रियाँ इस तरह अपमानित की गयीं, जैसे कलियुगमें व्यभिचारियोंद्वारा बलपूर्वक कुलीन नारियाँ सतायी जाती हैं॥ २७॥

गणेश्वरोंके उपद्रवसे उस यज्ञस्थानके सारे कलश विनष्ट हो गये, यज्ञस्तम्भ टूट गया, वह स्थान आनन्दरहित हो गया, यज्ञशाला जलने लगी, द्वार-तोरण तोड़ दिये गये, देवताओंकी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी, तपस्वी मारे जाने लगे, वेदका घोष बन्द हो गया, जनसमूह तितर-बितर हो गया, आतुरों और स्त्रियोंका क्रन्दन होने लगा, सभी यज्ञसामग्री विनष्ट हो गयी; इस तरह [उन गणेश्वरोंसे] नष्ट-भ्रष्ट किया गया वह यज्ञस्थल अरण्यके समान शून्य प्रतीत होने लगा॥ २८—३०॥

शूलके तीव्र प्रहारसे कटे हुए भुजा, ऊरु, वक्षःस्थल तथा सिरवाले श्रेष्ठ देवता पृथ्वीपर गिरे हुए थे॥ ३१॥

इस प्रकार हजारों देवताओंके मारे जाने तथा पृथ्वीपर गिर जानेपर वे गणेश्वर (वीरभद्र) क्षणमात्रमें वहाँ पहुँचे, जहाँ आहवनीयाग्नि जल रही थी॥ ३२॥

कालाग्निके समान उन वीरभद्रको यज्ञस्थलमें प्रविष्ट हुआ देखकर मरणसे भयभीत यज्ञ मृगरूप धारणकर भागने लगा। उन वीरभद्रने कठोर प्रत्यंचाके भयानक शब्दवाला महाधनुष खींचकर बाणोंको छोड़ते हुए यज्ञका पीछा किया। जब यज्ञका वध करनेहेतु वीरभद्रने बादलके समान शब्द करनेवाला अपना धनुष कानतक खींचकर प्रत्यंचाकी टंकार की, उस समय उसके शब्दसे दिशाएँ, स्वर्ग तथा भूमि कम्पायमान हो उठे॥ ३३—३५॥

उस भयानक शब्दको सुनकर 'हाय! अब मैं मरा' इस प्रकार कहकर वह यज्ञ विह्वल हो गया। वीरभद्रने अत्यधिक भयके कारण लड़खड़ाते पैरोंवाले, काँपते हुए तथा कान्तिसे रहित उस दौड़ते हुए मृगरूपधारी यज्ञपुरुषको सिरविहीन कर दिया॥ ३६-३७॥

यज्ञाग्निसे उत्पन्न उस यज्ञका इस प्रकार अपमान होते देखकर विष्णु अति कुपित होकर युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए। पक्षियोंके राजा तथा सर्पभोजी गरुड़ बड़े वेगसे उन विष्णुको अपने झुके हुए सन्धि भागवाले कन्धोंपर बैठाकर चल दिये। उस समय मरनेसे बचे हुए जो इन्द्रादि देवता थे, वे अपने प्राणतक देनेके लिये तैयार होकर उनकी सहायता करने लगे॥ ३८—४०॥

विष्णुसहित देवताओंको देखकर वीरभद्र इस तरह हँसने लगे, जैसे सियारोंको देखकर सिंह निडर हो उनका उपहास करता है॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें देवदण्डवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

वीरभद्रके पराक्रमका वर्णन

वायु बोले—[हे ब्राह्मणो!] उसी समय आकाशमें एक रथ प्रकट हुआ, जो हजारों सूर्योंके समान, मनोहर वस्त्रमें वृषचिह्नवाली ध्वजासे युक्त, दो [वेगवान् तथा] श्रेष्ठ अश्वोंसे युक्त, चार पहियोंवाला, अनेक तरहके दिव्य अस्त्रों एवं शस्त्रोंसे परिपूर्ण और रत्नोंसे सुसज्जित था॥ १-२॥

उस उत्तम रथके सारथी वे ही [ब्रह्मा] बने, जो पहले त्रिपुरसंग्राममें शिवजीके रथमें स्थित हुए थे॥ ३॥

भगवान् सदाशिवके ही आदेशसे ब्रह्माजी उस श्रेष्ठ रथको लेकर विष्णुके समीप जा करके हाथ जोड़कर [वीरभद्रसे] कहने लगे—॥ ४॥

हे भगवन्! हे वीरभद्र! हे भद्रांग! वीर अविनाशी भगवान् चन्द्रभूषण सदाशिवने आपको रथपर आरूढ़ होनेकी आज्ञा दी है और हे महाबाहो! वे त्रिनेत्र शिव भवानी पार्वतीके साथ रैभ्याश्रमके समीप रहकर आपका दु:सह पराक्रम आज देखेंगे। उनका यह वचन सुनकर गणोंमें श्रेष्ठ वे वीरभद्र पितामहको अनुगृहीत करके दिव्य रथपर सवार हो गये। उस श्रेष्ठ रथपर सारथीके रूपमें ब्रह्माजीके विराजमान हो जानेपर वीरभद्र त्रिपुरको मारनेवाले सदाशिवके समान सुशोभित होने लगे॥ ५—८॥

उसी समय महाबलवान् भानुकम्प नामक गणने पूर्ण चन्द्रके समान प्रकाशित अपने देदीप्यमान शंखको मुखपर रखकर बजाया। उस शंखके क्षुभित सागरके घोषके सदृश नादको सुनकर भयके कारण देवताओंके जठरमें मानो अग्नि-सी जल उठी। उस समय संग्राम देखनेकी इच्छावाले यक्ष, विद्याधर, सर्पराज एवं सिद्धोंसे आकाशमण्डलसहित सभी दिशाएँ क्षणमात्रमें ही आच्छादित हो गयीं। तब शार्ङ्गधनुषरूप इन्द्रधनुषसे समन्वित उन नारायणरूप मेघने बाणोंकी वर्षासे गणोंके स्वामी वीरभद्रको व्याकुल कर दिया॥ ९—१२॥

सैकड़ों प्रकारसे बाणोंकी वर्षा करनेवाले नारायणको आते हुए देखकर उन वीरभद्रने भी अपने जैत्र नामक धनुषको उठा लिया, जो हजारों बाणोंकी वर्षा करनेमें समर्थ था। जिस प्रकार ईश्वरने मेरुको धनुष बनाकर चढ़ाया था, उसी प्रकार वीरभद्रने भी संग्रामभूमिमें भय उत्पन्न करनेवाले उस दिव्य धनुषको लेकर कानोंतक चढ़ाया। उस धनुषको चढ़ाते ही इस प्रकार बड़ी ही तीव्र ध्वनि हुई, उस महान् ध्वनिसे उन्होंने पृथ्वीको कम्पित कर दिया॥ १३—१५॥

इसके पश्चात् भयानक पराक्रमवाले श्रीमान् गणराज [वीरभद्र]-ने स्वयं भी सर्पकी-सी आकृतिवाला, देदीप्यमान तथा भयानक एक उत्तम बाण [तरकससे] ले लिया॥ १६॥

जिस समय वे अपने तूणीरसे बाण निकालने लगे, उस समय तरकसमें प्रविष्ट होती हुई उनकी भुजा बिलमें घुसनेकी इच्छावाले सर्पके समान प्रतीत होने लगी॥ १७॥

उस समय उनके हाथमें लिया हुआ बाण इस प्रकार सुशोभित होने लगा, मानो महान् सर्पने बालसर्पको जकड़ लिया हो। इसके पश्चात् रुद्रके समान पराक्रमी वीरभद्रने क्रोधित हो अपने तीखे सुदृढ़ बाणसे अविनाशी विष्णुके ललाटपर तीव्र प्रहार किया॥ १८-१९॥

ललाटपर प्रहार किये जानेसे संग्राममें सबसे पहले अपमानित हुए विष्णु वीरभद्रपर इस तरह क्रुद्ध हुए, मानो सिंहपर वृषभ क्रोधित हो गया हो॥ २०॥

इसके पश्चात् उन्होंने वज्रके समान कठोर और कराल मुखवाले महान् बाणसे वीरभद्रकी भुजंगसदृश भुजाओंपर आघात किया। तब उन महाबली वीरभद्रने भी दस हजार सूर्योंके समान प्रभावाले बाणको पुन: विष्णुकी भुजापर वेगपूर्वक छोड़ा॥ २१-२२॥

हे विप्रो! इस तरह वे विष्णु उन वीरभद्रपर और वे वीरभद्र उन विष्णुपर अपने-अपने बाणोंसे बार-बार प्रहार करने लगे। उस समय तीव्र वेगसे शीघ्रतापूर्वक एक-दूसरेपर बाण छोड़ते हुए उन दोनोंमें रोमांचकारी घोर युद्ध होने लगा॥ २३-२४॥

उन दोनोंके परस्पर घनघोर युद्धको देखकर आकाशगामी देवताओंमें महान् हाहाकार होने लगा॥ २५॥

इसके बाद वीरभद्रने सूर्यके समान तेजस्वी तथा उल्कायुक्त अग्रभागवाले बाणसे अत्यन्त दृढ़तापूर्वक विष्णुके चौड़े वक्ष:स्थलपर आघात किया॥ २६॥

उस बाणके तीव्र प्रहारसे अत्यधिक आहत हुए वे विष्णु महान् पीड़ा प्राप्त करके मूर्च्छित होकर

गिर पड़े। इसके बाद क्षणभरमें चेतनाको प्राप्तकर वे विष्णु उठ करके उनपर सभी दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगे। शिवजीके सेनापति वीरभद्रने भी विष्णुके धनुषसे छूटे हुए सभी बाणोंको अपने घोर बाणोंसे सरलतापूर्वक काट दिया॥ २७—२९॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले विष्णुने अपने नामसे अंकित और कहीं भी प्रतिरुद्ध न होनेवाले बाणको गणेश्वर वीरभद्रको लक्ष्य करके छोड़ा। भगवान् वीरभद्रने भी अपने भद्र नामक श्रेष्ठ बाणसे उस बाणको अपने पास बिना आये ही उसके मार्गमें सैकड़ों टुकड़े कर दिये। पुनः एक बाणसे विष्णुके शार्ङ्गधनुषको और दो बाणोंसे गरुड़के पंखोंको एक निमेषमें काट दिया, यह अद्भुत घटना हो गयी॥ ३०—३११/२॥

इसके बाद योगबलके द्वारा विष्णुने हाथोंमें शंख, चक्र और गदा धारण किये हुए हजारों भयंकर देवताओंको अपने शरीरसे उत्पन्न किया, किंतु महाबाहु वीरभद्रने अपने नेत्रसे निकली हुई अग्निसे उन सभीको क्षणमात्रमें इस तरह दग्ध कर दिया, जिस तरह शिवजीने तीनों पुरोंको भस्म कर दिया था॥ ३२—३३१/२॥

तब विष्णु अति क्रोधित हो शीघ्रतासे अपना चक्र उठाकर उसे वीरभद्रपर चलानेके लिये उद्यत हुए। उस समय अपने सामने चक्र उठाकर उन्हें खड़ा देखकर वीरभद्रने हँसते हुए बिना प्रयत्न किये ही उसे स्तम्भित कर दिया। तब वीरभद्रपर आघात करनेकी इच्छा रखते हुए भी विष्णु अपने उस अप्रतिम और कठोर चक्रको चलानेमें असमर्थ हो गये॥ ३४—३६१/२॥

उस समय एक हाथमें चक्र लिये विष्णु वहींपर दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए आलस्ययुक्त होकर पत्थरके समान निश्चल हो गये। विष्णु उसी तरह हो गये, जैसे शरीरसे रहित जीव, शृंगविहीन बैल तथा दाढ़से रहित सिंह [किंकर्तव्यविमूढ़] हो जाता है। तब उन्हें दुर्गतिमें पड़ा देखकर इन्द्रादि देवगण वीरभद्रसे लड़नेके लिये इस तरह सन्नद्ध हो गये, मानो वृष क्रुद्ध होकर सिंहसे संग्राम करना चाहते हों। वे कुपित होकर शस्त्र लेकर युद्ध करनेके लिये उपस्थित हो गये॥ ३७—३९१/२॥

तब महावीर गणोंसे घिरे हुए तथा साक्षात् रुद्रके सदृश शरीरवाले निष्कलंक वीरभद्रने उनकी तरफ उसी प्रकार देखा, जैसे सिंह क्षुद्र मृगोंको देखता है। [तदुपरान्त वीरभद्रने] अट्टहासके द्वारा अपना वज्र छोड़नेकी इच्छा रखनेवाले इन्द्रका वज्रयुक्त उठा हुआ दाहिना हाथ स्तम्भित कर दिया, जिससे वह चित्रलिखित-जैसा हो गया। उसी तरह अन्य समस्त देवगणोंकी शस्त्रोंके सहित उठी हुई भुजाएँ भी आलसी पुरुषोंके कार्योंके समान स्तम्भित हो गयीं॥ ४०—४३॥

इस प्रकार भगवान्‌के द्वारा अपना सम्पूर्ण ऐश्वर्य नष्ट कर दिये जानेके कारण सभी देवता संग्राममें उनके सम्मुख स्थित रहनेमें असमर्थ हो गये और स्तम्भित अंगोंसहित भयसे व्याकुल हो भागने लगे। वीरभद्रके तेजके भयसे व्याकुल वे युद्धस्थलमें टिक न सके॥ ४४-४५॥

तब महान् भुजाओंवाले वीरभद्र भागते हुए वीर देवगणोंको अपने तीखे बाणोंसे इस प्रकार बींधने लगे, मानो पर्वतोंपर मेघ वर्षा कर रहा हो॥ ४६॥

उस समय उन वीरभद्रकी देदीप्यमान शस्त्रोंसे युक्त, परिघके समान बहुत-सी भुजाएँ प्रकाशित हो उठीं, मानो वे अग्निज्वालासहित सर्प हों। अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको छोड़ते हुए वे वीरभद्र उसी प्रकार शोभित हुए, जैसे कल्पादिमें सभी प्राणियोंकी सृष्टि करते हुए ब्रह्माजी शोभित होते हैं॥ ४७-४८॥

जैसे सूर्य अपनी रश्मियोंसे पृथ्वीको आच्छादित कर देता है, उसी तरह वीरभद्रने थोड़ी ही देरमें बाणोंसे दिशाओंको आच्छन्न कर दिया। गणेश्वर वीरभद्रके सुवर्णमण्डित बाण आकाश-मण्डलमें उछलते हुए [अपनी त्वरित गति तथा द्युतिके कारण] स्वयं बिजलियोंके उपमान बन गये। जिस प्रकार डुण्डुभ मेढकका रुधिर पी जाता है तथा उसे प्राणविहीन कर देता है, उसी प्रकार वे बड़े-बड़े बाण देवताओंके रुधिररूपी आसवको पीने लगे और उन्हें प्राणहीन करने लगे॥ ४९—५१॥

[उस समय] किन्हींकी भुजाएँ कट गयीं, किन्हींके सुन्दर मुख छिन्न-भिन्न हो गये, किन्हींकी पसलियाँ टूट गयीं और कुछ देवता पृथ्वीपर गिर पड़े। बाणोंके द्वारा अंगोंके पीड़ित होनेसे तथा सन्धिभागके विच्छिन्न हो जानेसे कुछ देवता आँखें फाड़कर पृथ्वीपर गिरकर मर गये, कोई पृथ्वीमें प्रविष्ट होनेकी इच्छासे और कोई-कोई छिपनेके लिये स्थान न प्राप्तकर आपसमें एक-दूसरेके

शरीरमें छिप गये, कोई पृथ्वीमें प्रविष्ट हो गये और कोई पर्वतोंकी गुफाओंमें छिप गये, कोई आसमानमें चले गये तथा कोई देवता जलमें छिप गये ॥ ५२—५४½ ॥

छिन्न-भिन्न अंगोंवाले देवताओंके सहित वे वीरभद्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जिस प्रकार प्रजाका संहार करके भगवान् भैरव सुशोभित होते हैं अथवा जिस प्रकार त्रिपुरको दग्ध करके त्रिपुरारि शोभित हुए थे। इस प्रकार गणेश्वरके द्वारा उपद्रुत (भगाये गये) देवगणोंकी सारी सेना छिन्न-भिन्न हो दीन, अशरण एवं बीभत्स दिखायी देने लगी ॥ ५५—५७ ॥

उस समय उन देवगणोंके रक्तकी घोर नदी प्रवाहित होने लगी, जो प्राणियोंको भयभीत कर देनेवाली थी ॥ ५८ ॥

उस समय रुधिरसे पूर्णतः सिक्त यज्ञभूमि ऐसी प्रतीत होने लगी, मानो शुम्भका वधकर रक्तसे गीले वस्त्रोंवाली श्यामा कौशिकी देवी हों ॥ ५९ ॥

अत्यन्त भयानक उस महायुद्धके होनेपर पृथ्वी भयसन्त्रस्त होकर काँपने लगी, समुद्र भी व्याकुल हो उठा तथा उसमें महागम्भीर आवर्त एवं लहरें उठने लगीं, उत्पातसूचक उल्कापात होने लगे, वृक्षोंकी शाखाएँ टूटने लगीं, सभी दिशाएँ मलिन हो गयीं और अमंगलसूचक वायु बहने लगा। अहो! भाग्यकी कैसी विडम्बना है कि यह अश्वमेधयज्ञ है, जिसके यजमान स्वयं ब्रह्माके पुत्र प्रजापति दक्ष हैं, धर्म आदि सदस्य हैं, भगवान् विष्णु रक्षक हैं और साक्षात् इन्द्रादि देवता अपना-अपना भाग ग्रहण कर रहे हैं, फिर भी ऋत्विजोंके सहित यजमान तथा उस यज्ञपुरुषका सिर शीघ्र ही कट गया, यह तो बड़ा ही उत्तम फल प्राप्त हुआ! अतः वेदविरुद्ध होनेपर भी वेदसम्मत प्रतीत होनेवाला, ईश्वर [की महत्तासे विरुद्ध होनेके कारण]- बहिष्कृत तथा असज्जनोंके द्वारा परिगृहीत कर्म कभी नहीं करना चाहिये ॥ ६०—६५ ॥

महान् पुण्य करके तथा सैकड़ों यज्ञ करके भी महेश्वरके प्रति भक्तिसे रहित व्यक्ति उन [अनुष्ठानों]-का फल प्राप्त नहीं करता है। किंतु जो बहुत बड़ा पाप करके भी भक्तिपूर्वक शिवका यजन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। इस विषयमें बहुत कहना व्यर्थ है, शिवनिन्दा करनेवालेका दान, तप, यज्ञ तथा होम व्यर्थ है ॥ ६६—६८ ॥

तदनन्तर उस युद्धमें वीरभद्रके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे पीड़ित हुए नारायण, रुद्र एवं लोकपालोंसहित सभी देवता अत्यन्त दुःखित होकर पलायन करने लगे ॥ ६९ ॥

कुछ देवता बालोंके कट जानेसे युद्धसे भाग निकले, कोई शरीरके भारी होनेके कारण [भागनेमें असमर्थ हो दुःखसे] बैठ गये। कटे-फटे मुखोंवाले कुछ देवता गिर पड़े तथा कुछ देववीरोंकी मृत्यु हो गयी। कितने देवता इतने व्याकुल हो गये कि उनके वस्त्र, आभरण, अस्त्र एवं शस्त्र शिथिल होकर खिसक गये और वे मद, दर्प तथा बलका त्याग करके दीनभाव प्रदर्शित करते हुए गिर पड़े। इस प्रकार अप्रतिहत वे गणेश्वर वीरभद्र अपने दुर्भेद्य अस्त्रोंसे विधिहीन दक्षयज्ञको विनष्टकर अपने मुख्य गणोंके मध्य उसी प्रकार शोभायमान हुए, जिस प्रकार ऋषभों अर्थात् वन्य पशुओंके मध्य सिंह शोभित होता है ॥ ७०—७२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें दक्षयज्ञविध्वंसवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

पराजित देवोंके द्वारा की गयी स्तुतिसे प्रसन्न शिवका यज्ञकी सम्पूर्ति करना तथा देवताओंको सान्त्वना देकर अन्तर्धान होना

वायुदेव बोले—[हे विप्रवरो!] इस प्रकार अस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न अंगोंवाले विष्णु आदि देवता क्षणमात्रमें कष्टको प्राप्तकर युद्धमें शेष देवताओंके साथ व्याकुल हो गये ॥ १ ॥

वीरभद्रके द्वारा प्रेरित क्रोधी प्रमथगणोंने देवताओंके अपराधके अनुसार युद्धमें बचे हुए उन अन्य भयभीत देववीरोंको पकड़कर अत्यन्त दृढ़ लोहेकी जंजीरोंसे उनके हाथ, पैर, कन्धा तथा पेट बाँध दिये ॥ २-३ ॥

उस समय देवी पार्वतीके स्नेह-पात्र उन वीरभद्रके सारथी होनेके कारण अनुग्रहको प्राप्त हुए ब्रह्माजी प्रार्थना करते हुए विनयपूर्वक कहने लगे—हे भगवन्! अब क्रोधका शमन कीजिये; ये देवता विनष्ट हो चुके हैं। हे सुव्रत! प्रसन्न होइये और अपने रोमसे उत्पन्न गणोंके साथ आप इन सभीको क्षमा कीजिये॥ ४-५॥

उन परमेष्ठी ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर अति प्रसन्न हुए गणाधिप [वीरभद्र] उनके गौरवके कारण शान्त हो गये। देवता भी उचित समय जानकर सिरपर अंजलि धारणकर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे देवदेव शिवके मन्त्री वीरभद्रकी स्तुति करने लगे॥ ६-७॥

देवगण बोले—शिव, शान्तस्वरूप, यज्ञहन्ता, त्रिशूलधारी, रुद्रभद्र, रुद्रपति एवं रुद्रभूति, कालाग्नि-रुद्ररूप, काल तथा कामदेवके शरीरको विनष्ट करनेवाले देवताओं तथा दुरात्मा दक्षके सिरका छेदन करनेवाले आपको नमस्कार है। हे वीर! यद्यपि हमलोग निरपराध हैं, फिर भी इस पापी दक्षके संसर्गके कारण आपने हमलोगोंको संग्राममें दण्ड दिया है॥ ८—१०॥

हे प्रभो! आपने हमलोगोंको [अपनी कोपाग्निसे] जला-सा दिया है, इसलिये हम आपसे डरे हुए हैं, अब आप ही हमारे रक्षक हैं, हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ ११॥

वायु बोले—इस प्रकार स्तुतिसे प्रसन्न हुए प्रभु वीरभद्र देवताओंको लोहेकी जंजीरसे मुक्त करके उनको देवदेव [शिव]-के समीप ले आये। उस समय सर्वसमर्थ, सर्वलोकमहेश्वर, सर्वव्यापी भगवान् सदाशिव गणोंके साथ अन्तरिक्षमें विराजमान थे॥ १२-१३॥

उन परमेश्वरको देखकर विष्णु आदि देवताओंने डरे होनेपर भी प्रसन्नतापूर्वक महेश्वरको प्रणाम किया॥ १४॥

तब उन देवताओंको डरा हुआ देखकर दीनोंके दुःखको दूर करनेवाले महादेव पार्वतीकी ओर देखकर देवताओंसे हँसते हुए यह कहने लगे—॥ १५॥

महादेव बोले—हे देवताओ! डरिये मत, क्योंकि आप सभी लोग मेरी प्रजा हैं, कृपालु वीरभद्रने अनुग्रहके लिये ही आपलोगोंको दण्डित किया है। अब हमलोगोंने आप देवगणोंके अपराधको क्षमा कर दिया, हमलोगोंके क्रोधित हो जानेपर न आपलोगोंकी स्थिति रह सकती है और न जीवन रह सकता है॥ १६-१७॥

वायु बोले—अमिततेजस्वी सदाशिवने सभी देवताओंसे ऐसा कहा, तब वे देवता शीघ्र ही सन्देहरहित होकर प्रसन्नतापूर्वक नाचने लगे॥ १८॥

वे देवता प्रसन्नचित्त तथा आनन्दविह्वल मनवाले होकर शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ १९॥

देवगण बोले—हे देव! ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नामक स्वरूपभेदोंसे रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणको धारण करनेवाले आत्ममूर्ते! आप कर्ता, पालक तथा संहारक परमेश्वर हैं। हे सर्वमूर्ते! हे विश्वभावन! हे पावन! हे अमूर्ते! हे भक्तोंको सुख देनेके लिये स्वरूप धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है॥ २०-२१॥

हे देवेश! आपकी कृपासे ही चन्द्रमा [यक्ष्माके] रोगसे मुक्त हो गये। हे शंकर! मिहिरजाजलिने जलमें डूबकर मर जानेके बाद भी पुनः जीवित हो आपकी दयासे सुख प्राप्त किया॥ २२॥

हे प्रभो! सीमन्तिनीने सोमवारका व्रत करनेसे तथा आपके पूजनके प्रभावसे पतिके मर जानेपर भी पुनः अतुल सौभाग्य तथा अनेक पुत्रोंको प्राप्त किया॥ २३॥

हे देव! आपने श्रीकरको अपना उत्तम पद प्रदान किया और राजाओंके भयसे सुदर्शनकी रक्षा की॥ २४॥

आप कृपालुने स्त्रीसहित मेदुरका उद्धार किया और अपनी कृपासे विधवा शारदाको सधवा बना दिया॥ २५॥

आपने भद्रायुकी विपत्ति दूर करके उसे सुख प्रदान किया और आपकी सेवाके प्रभावसे सौमिनी संसारबन्धनसे मुक्त हो गयी॥ २६॥

विष्णु बोले—हे शिवजी! आप प्राणियोंपर अनुग्रह करनेकी कामनासे रज, सत्त्व और तमोगुणसे ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रमूर्ति धारणकर इस जगत्‌की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करते हैं॥ २७॥

आप सभीका घमण्ड दूर करनेवाले हैं, सभीको तेज प्रदान करनेवाले, सभी विद्याओंमें गुप्त रूपसे निवास करनेवाले एवं सबपर अनुग्रह करनेवाले हैं॥ २८॥

हे गिरीश्वर! आपसे सब कुछ है, आप ही सब कुछ हैं और सब कुछ आपमें ही स्थित है। मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, पुनः रक्षा कीजिये और मुझपर

दया कीजिये। इसके बाद उचित अवसर पाकर ब्रह्माजी हाथ जोड़कर प्रणाम करके शिवजीसे इस प्रकार कहने लगे— ॥ २९-३० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले! आपकी जय हो। इस प्रकारका अपराध करनेवालोंपर भी आपके अतिरिक्त और कौन प्रसन्न हो सकता है! जो देवता इस संग्रामभूमिमें पहले मारे गये हैं, वे फिर जीवित हो उठें। [आप] परमेश्वरके प्रसन्न हो जानेपर किसकी अभ्युन्नति नहीं हो सकती है अर्थात् सभीका अभ्युदय ही होगा। हे देव! देवताओंके शरीरोंमें जो ये घाव हो गये हैं, आपके अंगीकार करनेके गौरवसे उन्हें मैं भूषण ही मानता हूँ॥ ३१—३३ ॥

परमेष्ठी ब्रह्माके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर पार्वतीके मुखकी ओर देखकर मुसकराते हुए देवदेव प्रभुने पुत्रस्वरूप कमलयोनि ब्रह्माके वात्सल्यके कारण देवताओंके अंगोंको पहलेकी भाँति कर दिया॥ ३४-३५ ॥

इसी प्रकार प्रमथोंके द्वारा जो देवियाँ तथा देवमाताएँ दण्डित की गयी थीं, सदाशिवने उनके भी अंगोंको पूर्वके समान कर दिया। स्वयं पितामह भगवान् ब्रह्माने दक्षके पापके अनुसार वृद्ध बकरेके मुखके समान उनका मुख बना दिया। इसके पश्चात् जीवित हुए वे बुद्धिमान् दक्ष भी चेतना प्राप्त करके शिवजीको देखकर भयभीत हो हाथ जोड़कर बहुत प्रलाप करते हुए शिवकी स्तुति करने लगे— ॥ ३६—३८ ॥

दक्ष बोले—लोकपर अनुग्रह करनेवाले हे जगन्नाथ! हे देव! आपकी जय हो। हे महेशान! आप मुझपर कृपा कीजिये और मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। हे प्रभो! आप ही जगत्के कर्ता, भर्ता, हर्ता तथा प्रभु हैं, मैं विशेषरूपसे जान गया कि आप विष्णु आदि सभीके ईश्वर हैं। आपने ही सारे जगत्का विस्तार किया है, आप सर्वत्र व्याप्त हैं, आप ही इसकी सृष्टि और विनाश करते हैं। विष्णु आदि कोई भी देवता आपसे बढ़कर नहीं हैं॥ ३९—४१ ॥

वायु बोले—तब अपराध किये हुए, व्याकुल, भयभीत तथा गिड़गिड़ाते हुए उन दक्षको देखकर करुणानिधि शिवजीने मुसकराते हुए कहा—'[हे दक्ष!] भयभीत मत होइये।' ऐसा कहकर शिवजीने उनके पिता ब्रह्माजीका प्रिय करनेकी इच्छासे दक्षको अक्षय गाणपत्यपद प्रदान किया। तदनन्तर ब्रह्मादि देवता हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनम्र वाणीमें गिरिजापति शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ४२—४४ ॥

ब्रह्मा आदि [देवता] बोले—हे शंकर! हे देवेश! हे दीनानाथ! हे महाप्रभो! हे महेशान! कृपा कीजिये और हमारे अपराधको क्षमा कीजिये॥ ४५ ॥

हे यज्ञपालक! हे यज्ञाधीश! हे दक्षयज्ञविध्वंसकारक! हे महेशान! कृपा कीजिये और हमलोगोंके अपराधको क्षमा कीजिये। हे देवदेव! हे परेशान! हे भक्तप्राणपोषक! आप दुष्टोंको दण्ड देनेवाले हैं। हे दुष्टदण्डप्रद स्वामिन्! कृपा करें, आपको नमस्कार है॥ ४६-४७ ॥

हे प्रभो! जो आपको नहीं जानते—ऐसे दुष्टोंका आप गर्व दूर करते हैं और अपनेमें आसक्त चित्तवाले सत्पुरुषोंके आप रक्षक हैं॥ ४८ ॥

हे प्रभो! आपकी दयासे ही अब हमलोगोंने निश्चय किया है कि आपका चरित्र अद्भुत है। हे दीनवत्सल प्रभो! हमारे द्वारा जो भी अपराध किये गये हैं, उन्हें क्षमा कर दीजिये॥ ४९ ॥

वायु बोले—इस प्रकार ब्रह्मादि देवताओंद्वारा स्तुत वे करुणासागर, भक्तवत्सल प्रभु महादेव प्रसन्न हो गये। तब दीनवत्सल भगवान् शंकरने ब्रह्मा आदि देवगणोंपर अनुग्रह किया और अत्यन्त प्रेमपूर्वक उन्हें वर प्रदान किया। तत्पश्चात् सबके भयको दूर करनेवाले वे परम दयालु परमेश्वर शरणमें आये हुए देवताओंसे अनुगतोंके प्रति स्वाभाविक रूपसे मन्दहास्ययुक्त वाणीमें कहने लगे— ॥ ५०—५२ ॥

शिवजी बोले—देवताओंने यह जो अपराध किया है, वह दैवकी परवशतासे ही किया है। अब आपलोगोंको शरणागत देखकर हमने निश्चय ही वह समस्त अपराध भुला दिया॥ ५३ ॥

हे विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्रादि देवगणो! अब आपलोग भी इस संग्रामभूमिमें अपनी दुर्दशाका मनमें ध्यान न करके लज्जाका परित्यागकर सुखपूर्वक देवलोकको इस समय प्रस्थान करें। देवताओंसे ऐसा कहकर दक्ष-यज्ञका

विनाशकर पार्वती एवं गणोंके साथ शिवजी आकाशमें विराजमान हो अन्तर्धान हो गये॥ ५४-५५॥

इसके पश्चात् व्यथारहित वे इन्द्रादि देवगण भी वीरभद्रके कल्याणकारी पराक्रमका वर्णन करते हुए सुखपूर्वक आकाशमार्गसे शीघ्र ही अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ ५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें गिरिशानुनय नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

शिवका तपस्याके लिये मन्दराचलपर गमन, मन्दराचलका वर्णन, शुम्भ-निशुम्भ दैत्यकी उत्पत्ति, ब्रह्माकी प्रार्थनासे उनके वधके लिये शिव और शिवाके विचित्र लीला-प्रपंचका वर्णन

तदनन्तर ऋषियोंने पूछा—प्रभो ! अपने गणों तथा देवीके साथ अन्तर्धान होकर भगवान् शिव कहाँ गये, कहाँ रहे और क्या करके विरत हुए? ॥ १ ॥

वायुदेव बोले—महर्षियो! पर्वतोंमें श्रेष्ठ और विचित्र कन्दराओंसे सुशोभित जो परम सुन्दर मन्दराचल है, वही अपनी तपस्याके प्रभावसे देवाधिदेव महादेवजी-का प्रिय निवास-स्थान हुआ। उसने पार्वती और शिवको अपने सिरपर ढोनेके लिये बड़ा भारी तप किया था और दीर्घकालके बाद तब उसे उनके चरणारविन्दोंके स्पर्शका सुख प्राप्त हुआ॥ २-३॥

उस पर्वतके सौन्दर्यका विस्तारपूर्वक वर्णन सहस्रों मुखोंद्वारा सौ करोड़ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। उसके सामने समस्त पर्वतोंका सौन्दर्य तुच्छ हो जाता है। उसका सौन्दर्यवर्णन सम्भव ही नहीं है, अतएव मुझमें उसके सौन्दर्यवर्णनके प्रति उत्साह नहीं है॥ ४-५॥

इस सम्बन्धमें यही कहा जा सकता है कि इस सुन्दर पर्वतपर किसी अपूर्व समृद्धिके कारण इसमें शिवजीके निवासकी योग्यता है। इसीलिये महादेवजीने देवीका प्रिय करनेकी इच्छासे उस अत्यन्त रमणीय पर्वतको अपना अन्तःपुर बना लिया॥ ६-७॥

उस पर्वतकी मध्यवर्ती भूमियाँ, स्वच्छ पाषाण तथा वृक्ष शिव तथा पार्वतीके नित्य सान्निध्यके कारण समस्त संसार [के सौभाग्य]-को तिरस्कृत करते हैं॥ ८॥

संसारके माता-पिता देवी पार्वती तथा भगवान् शंकरके स्नान, पान आदिके लिये इधर-उधर बहते हुए झरनोंका शीतल, निर्मल तथा सुपेय जल नित्यप्रति अर्पित करके [यथेष्ट] पुण्य संस्कारोंको प्राप्त किये हुए उस हिमालयका मानो पर्वतोंके अधिपति पदपर [उन झरनोंके जलसे] अभिषेक-सा किया जा रहा है॥ ९-१०॥

रात्रिके समय [उदित हुआ] चन्द्रमा हिमालयके शिखरपर स्थित है, [जिससे प्रतीत होता है कि] मानो पर्वतोंके साम्राज्यपर अधिष्ठित उस गिरिराजके ऊपर चन्द्ररूपी राजछत्र शोभायमान हो रहा है॥ ११॥

[पर्वतीय भूमिपर विचरण करती हुई] चमरी गायोंके हिलते हुए बालोंसे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो समस्त पर्वतोंके साम्राज्यपर अधिष्ठित उस हिमालयके ऊपर चँवर डुलाये जा रहे हों। प्रभातकालमें उदित हुए सूर्यमें प्रतिबिम्बित-सा होता हुआ हिमालय ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो रत्नभूषित वह पर्वतराज अपने देहसौन्दर्यको दर्पणमें देखनेको उद्यत-सा हो गया हो॥ १२-१३॥

लताजालरूपी जटाओंको धारण किये हुए वे [पर्वतीय] वृक्ष वाचाल पक्षियोंके कलरव, लटकते हुए कोमल पल्लवों तथा वायुद्वारा कम्पित लताओंसे झरते हुए पुष्पोंके द्वारा मानो तपस्वियोंकी भाँति गिरिराज हिमालयका समर्चन तथा आशीर्वाचनके साथ विजयाभिनन्दन-सा करते हुए प्रतीत हो रहे हैं॥ १४-१५॥

ऊँचे, नीचे तथा तिरछे श्रृंगोंसे युक्त वह पर्वत मानो पृथ्वीसे पातालमें गिर-सा रहा है अथवा भूपृष्ठसे ऊपरकी ओर उछल-सा रहा है या सभी दिशाओंमें व्याप्त होकर आकाशमें घूम-सा रहा है अथवा सारे संसारको देखता

हुआ सदा नृत्य-सा कर रहा है। वह पर्वत विस्तृत उदरवाली विशाल कन्दराओंके द्वारा मानो अपना मुख फैलाकर सौन्दर्यातिशयको अपनेमें न पचाकर जँभाई-सा ले रहा हो या कि मानो सारे संसारको निगल-सा रहा हो, अथवा सागरको पी-सा रहा हो या अपने भीतर छिपे हुए अन्धकारका वमन-सा कर रहा हो अथवा बादलोंसे आकाशको मदमत्त-सा करता हुआ प्रतीत हो रहा है॥ १६—१९॥

दर्पणके समान [उज्ज्वल] अन्तर्देशवाली आवास-भूमियों तथा अपनी सघन तथा स्निग्ध छाया-से सूर्यके तापको दूर करनेवाले आश्रमके वृक्षों तथा नदियों, सरोवरों, तड़ागों आदिको छूकर बहनेवाली शीतल हवाओंको उन शिवा-शिवने जहाँ-तहाँ विश्राम करके कृतकृत्य किया। इस सर्वश्रेष्ठ पर्वतका स्मरण करके रैभ्य-आश्रमके समीप स्थित हुए अम्बिकासहित भगवान् त्रिलोचन वहाँसे अन्तर्धान होकर चले गये। मन्दराचलके उद्यानमें पहुँचकर देवी-सहित महेश्वर वहाँकी रमणीय तथा दिव्य अन्त:पुरकी भूमियोंमें रमण करने लगे॥ २०—२३॥

जब इस तरह कुछ समय बीत गया और [ब्रह्माजीकी मैथुनी सृष्टिके द्वारा] प्रजाएँ बढ़ गयीं, तब शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे परस्पर भाई थे। उनके तपोबलसे प्रभावित हो परमेष्ठी ब्रह्माने उन दोनों भाइयोंको यह वर दिया था कि 'इस जगत्के किसी भी पुरुषसे तुम मारे नहीं जा सकोगे।' उन दोनोंने ब्रह्माजीसे यह प्रार्थना की थी कि 'पार्वती देवीके अंशसे उत्पन्न जो अयोनिजा कन्या उत्पन्न हो, जिसे पुरुषका स्पर्श तथा रति नहीं प्राप्त हुई हो तथा जो अलंघ्य पराक्रमसे सम्पन्न हो, उसके प्रति कामभावसे पीड़ित होनेपर हम युद्धमें उसीके हाथों मारे जायँ।' उनकी इस प्रार्थनापर ब्रह्माजीने 'तथास्तु' कहकर स्वीकृति दे दी॥ २४—२७॥

तभीसे युद्धमें इन्द्र आदि देवताओंको जीतकर उन दोनोंने जगत्को अनीतिपूर्वक वेदोंके स्वाध्याय और वषट्कार आदिसे रहित कर दिया। तब ब्रह्माने उन दोनोंके वधके लिये देवेश्वर शिवसे प्रार्थना की—'प्रभो! आप एकान्तमें देवीकी निन्दा करके भी जैसे-तैसे उन्हें क्रोध दिलाइये और उनके रूप-रंगकी निन्दासे उत्पन्न हुई, कामभावसे रहित, कुमारीस्वरूपा शक्तिको निशुम्भ और शुम्भके वधके लिये देवताओंको अर्पित कीजिये।'॥ २८—३०॥

ब्रह्माजीके इस तरह प्रार्थना करनेपर भगवान् नीललोहित रुद्र एकान्तमें पार्वतीकी निन्दा-सी करते हुए मुसकराकर बोले—'तुम तो काली हो।' तब सुन्दर वर्णवाली देवी पार्वती अपने श्यामवर्णके कारण आक्षेप सुनकर कुपित हो उठीं और पतिदेवसे मुसकराकर समाधानरहित वाणीद्वारा बोलीं—॥ ३१-३२॥

देवीने कहा—प्रभो! यदि मेरे इस काले रंगपर आपका प्रेम नहीं है तो इतने दीर्घकालसे अपनी इच्छाका आप दमन क्यों करते रहे हैं?॥ ३३॥

जब आपको मेरे इस स्वरूपसे अरुचि थी, तो आप मेरे साथ रमण क्यों करते रहे? हे जगत्के ईश्वर! आपके लिये अशक्य तो कुछ भी नहीं है। आप स्वात्मारामके लिये रति सुखका साधन नहीं है, यही कारण है कि आपने बलपूर्वक कामदेवको भस्म कर दिया॥ ३४-३५॥

कोई स्त्री कितनी ही सर्वांगसुन्दरी क्यों न हो, यदि पतिका उसपर अनुराग नहीं हुआ तो अन्य समस्त गुणोंके साथ ही उसका जन्म लेना व्यर्थ हो जाता है। स्त्रियोंकी यह सृष्टि ही पतिके अनुरागका प्रधान अंग है। यदि वह उससे वंचित हो गयी तो इसका और कहाँ उपयोग हो सकता है? इसलिये आपने एकान्तमें जिसकी निन्दा की है, उस वर्णको त्यागकर अब मैं दूसरा वर्ण ग्रहण करूँगी अथवा स्वयं ही मिट जाऊँगी॥ ३६—३८॥

ऐसा कहकर देवी पार्वती शय्यासे उठकर खड़ी हो गयीं और तपस्याके लिये दृढ़ निश्चय करके गद्गद कण्ठसे जानेकी आज्ञा माँगने लगीं। इस प्रकार प्रेम भंग होनेसे भयभीत हो भूतनाथ भगवान् शिव स्वयं भवानीके चरणोंमें मानो [प्रणामहेतु] गिरते हुए-से बोले—॥ ३९-४०॥

भगवान् शिवने कहा—प्रिये! मैंने क्रीडा या मनोविनोदके लिये यह बात कही है। मेरे इस अभिप्रायको न जानकर तुम कुपित क्यों हो गयीं? यदि तुमपर मेरा प्रेम नहीं होगा तो और किसपर हो सकता है? तुम इस जगत्की माता हो और मैं पिता तथा अधिपति हूँ। फिर तुमपर मेरा प्रेम न होना कैसे सम्भव हो सकता है! हम दोनोंका वह प्रेम भी क्या कामदेवकी प्रेरणासे हुआ है, कदापि नहीं; क्योंकि कामदेवकी उत्पत्तिसे पहले ही जगत्की उत्पत्ति

हुई है। कामदेवकी सृष्टि तो मैंने साधारण लोगोंकी रतिके लिये की है। [ऐसी दशामें] तुम मुझे कामदाहका उलाहना क्यों दे रही हो? ॥ ४१—४४ ॥

कामदेव मुझे साधारण देवताके समान मानकर मेरा कुछ-कुछ तिरस्कार करने लगा था, अतः मैंने उसे भस्म कर दिया। हम दोनोंका यह लीलाविहार भी जगत्‌की रक्षाके लिये ही है, अतः उसीके लिये आज मैंने तुम्हारे प्रति यह परिहासयुक्त बात कही थी। मेरे इस कथनकी सत्यता तुमपर शीघ्र ही प्रकट हो जायगी। [तब भगवान् शिवके उस] क्रोधोत्पादक वचनको हृदयमें विचारकर देवीने कहना आरम्भ किया— ॥ ४५—४७ ॥

देवीने कहा—भगवन्! मैं पूर्वसे ही आपद्वारा कहे गये चाटुकारितापूर्ण वचनोंको सुनती आ रही हूँ, उन्हीं वचनोंके कारण धैर्यशालिनी [या कि अतीव बुद्धिमती] होकर भी मैं आपके द्वारा ठगी जाती रही। पतिके प्यारसे वंचित होनेपर जो नारी अपने प्राणोंका भी परित्याग नहीं कर देती, वह कुलांगना और शुभलक्षणा होनेपर भी सत्पुरुषोंद्वारा निन्दित ही समझी जाती है। मेरा शरीर गौर वर्णका नहीं है, इस बातको लेकर आपको बहुत खेद होता है, अन्यथा क्रीडा या परिहासमें भी आपके द्वारा मुझे 'काली-कलूटी' कहा जाना कैसे सम्भव हो सकता था। मेरा कालापन आपको प्रिय नहीं है, इसलिये वह सत्पुरुषोंद्वारा भी निन्दित है; अतः तपस्याद्वारा इसका त्याग किये बिना अब मैं यहाँ रह ही नहीं सकती ॥ ४८—५१ ॥

शिव बोले—यदि अपनी श्यामताको लेकर तुम्हें इस तरह संताप हो रहा है तो इसके लिये तपस्या करनेकी क्या आवश्यकता है? तुम मेरी या अपनी इच्छामात्रसे ही दूसरे वर्णसे युक्त हो जाओ ॥ ५२ ॥

देवीने कहा—मैं आपसे अपने रंगका परिवर्तन नहीं चाहती। स्वयं भी इसे बदलनेका संकल्प नहीं कर सकती। अब तो तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके ही मैं शीघ्र गौरी हो जाऊँगी ॥ ५३ ॥

शिव बोले—महादेवि ! पूर्वकालमें मेरी ही कृपासे ब्रह्माको ब्रह्मपदकी प्राप्ति हुई थी। अतः तपस्याद्वारा उन्हें बुलाकर तुम क्या करोगी? ॥ ५४ ॥

देवीने कहा—इसमें संदेह नहीं कि ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंको आपसे ही उत्तम पदोंकी प्राप्ति हुई है, तथापि आपकी आज्ञा पाकर मैं तपस्याद्वारा ब्रह्माजीकी आराधना करके ही अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहती हूँ। पूर्वकालमें जब मैं सतीके नामसे दक्षकी पुत्री हुई थी, तब तपस्याद्वारा ही मैंने आप जगदीश्वरको पतिके रूपमें प्राप्त किया था। इसी प्रकार आज भी तपस्याद्वारा ब्राह्मण ब्रह्माको संतुष्ट करके मैं गौरी होना चाहती हूँ। ऐसा करनेमें यहाँ क्या दोष है? यह बताइये ॥ ५५—५७ ॥

महादेवीके ऐसा कहनेपर वामदेव शिवजी मुसकराते हुए-से चुप रह गये। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे उन्होंने देवीको रोकनेके लिये हठ नहीं किया ॥ ५८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवमन्दरगिरिनिवास-क्रीडोक्तिवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २४ ॥

पच्चीसवाँ अध्याय

पार्वतीकी तपस्या, व्याघ्रपर उनकी कृपा, ब्रह्माजीका देवीके साथ वार्तालाप, देवीके द्वारा काली त्वचाका त्याग और उससे उत्पन्न कौशिकीके द्वारा शुम्भ-निशुम्भका वध

वायुदेव कहते हैं—महर्षियो ! तदनन्तर पतिव्रता माता पार्वती पतिकी परिक्रमा करके उनके वियोगसे होनेवाले दुःखको किसी तरह रोककर हिमालयपर्वतपर चली गयीं ॥ १ ॥

उन्होंने पहले सखियोंके साथ जिस स्थानपर तप किया था, उस स्थानसे उनका प्रेम हो गया था। अतः फिर उसीको उन्होंने तपस्याके लिये चुना। तदनन्तर माता-पिताके घर जा उनका दर्शन और प्रणाम करके उन्हें सब समाचार बताकर उनकी आज्ञा ले उन्होंने सारे आभूषण उतार दिये और फिर तपोवनमें जा स्नानके पश्चात्

तपस्वीका परमपावन वेष धारण करके अत्यन्त तीव्र एवं परम दुष्कर तपस्या करनेका संकल्प किया। वे मन-ही-मन सदा पतिके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई किसी क्षणिक लिंगमें उन्हींका ध्यान करके पूजनकी बाह्य विधिके अनुसार जंगलके फल-फूल आदि उपकरणोंद्वारा तीनों समय उनका पूजन करती थीं॥ २—६॥

'भगवान् शंकर ही ब्रह्माका रूप धारण करके मेरी तपस्याका फल मुझे देंगे।' ऐसा दृढ़ विश्वास रखकर वे प्रतिदिन तपस्यामें लगी रहती थीं। इस तरह तपस्या करते-करते जब बहुत समय बीत गया, तब एक दिन उनके पास कोई बहुत बड़ा व्याघ्र देखा गया। वह दुष्टभावसे वहाँ आया था। पार्वतीजीके निकट आते ही उस दुरात्माका शरीर जडवत् हो गया। वह उनके समीप चित्रलिखित-सा दिखायी देने लगा॥ ७—९॥

दुष्टभावसे पास आये हुए उस व्याघ्रको देखकर भी देवी पार्वती साधारण नारीकी भाँति स्वभावसे विचलित नहीं हुईं। उस व्याघ्रके सारे अंग अकड़ गये थे। वह भूखसे अत्यन्त पीड़ित हो रहा था और यह सोचकर कि 'यही मेरा भोजन है' निरन्तर देवीकी ओर ही देख रहा था। देवीके सामने खड़ा-खड़ा वह रातों-दिन उनकी उपासना-सी करने लगा॥ १०—१२॥

इधर देवीके हृदयमें सदा यही भाव आता था कि यह व्याघ्र मेरा ही उपासक है, दुष्ट वन-जन्तुओंसे मेरी रक्षा करनेवाला है। यह सोचकर वे उसपर कृपा करने लगीं। उन्हींकी कृपासे उसके तीनों प्रकारके मल तत्काल नष्ट हो गये। फिर तो उस व्याघ्रको सहसा देवीके स्वरूपका बोध हुआ, उसकी भूख मिट गयी और उसके अंगोंकी जडता भी दूर हो गयी। साथ ही उसकी जन्मसिद्ध दुष्टता नष्ट हो गयी और उसे निरन्तर तृप्ति बनी रहने लगी॥ १३—१५॥

उस समय उत्कृष्टरूपसे अपनी कृतार्थताका अनुभव करके वह तत्काल भक्त हो गया और उन परमेश्वरीकी सेवा करने लगा। अब वह अन्य दुष्ट जन्तुओंको खदेड़ता हुआ तपोवनमें विचरने लगा। इधर देवीकी तपस्या बढ़ी और तीव्रसे तीव्रतर होती गयी॥ १६—१७½॥

[उसी समय] देवता शुम्भ आदि दैत्योंके दुराग्रहसे दुखी हो ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उन्होंने शत्रुपीडनजनित अपने दुःखको उनसे निवेदन किया। शुम्भ और निशुम्भ वरदान पानेके घमंडसे देवताओंको जैसे-जैसे दुःख देते थे, वह सब सुनकर ब्रह्माजीको उनपर बड़ी दया आयी। उन्होंने दैत्यवधके लिये भगवान् शंकरके साथ हुई बातचीतका स्मरण करके और अपने प्रयत्नसे देवताओंके दुःखनाशके विषयमें मन-ही-मन सोचते हुए देवताओंके प्रार्थना करनेपर उनके साथ देवीके तपोवनको प्रस्थान किया॥ १८—२१॥

वहाँ सुरश्रेष्ठ ब्रह्माने उत्तम तपमें परिनिष्ठित परमेश्वरी पार्वतीको देखा। वे सम्पूर्ण जगत्‌की प्रतिष्ठा-सी जान पड़ती थीं। अपने, श्रीहरिके तथा रुद्रदेवके भी जन्मदाता पिता महामहेश्वरकी भार्या आर्या जगन्माता गिरिराजनन्दिनी पार्वतीजीको ब्रह्माजीने प्रणाम किया। देवगणोंके साथ ब्रह्माजीको आया देख देवीने उनके योग्य अर्घ्य देकर स्वागत आदिके द्वारा उनका सत्कार किया। बदलेमें उनका भी सत्कार और अभिनन्दन करके ब्रह्माजी अनजानकी भाँति देवीकी तपस्याका कारण पूछने लगे॥ २२—२५॥

ब्रह्माजी बोले—देवि! इस तीव्र तपस्याके द्वारा आप यहाँ किस अभीष्ट मनोरथकी सिद्धि करना चाहती हैं? तपस्याके सम्पूर्ण फलोंकी सिद्धि तो आपके ही अधीन है। जो समस्त लोकोंके स्वामी हैं, उन्हीं परमेश्वरको पतिके रूपमें पाकर आपने तपस्याका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लिया है अथवा यह सारा ही क्रियाकलाप आपका लीलाविलास है। परंतु आश्चर्यकी बात तो यह है कि आप इतने दिनोंसे महादेवजीके विरहका कष्ट कैसे सह रही हैं?॥ २६—२८॥

देवीने कहा—ब्रह्मन्! जब सृष्टिके आदिकालमें महादेवजीसे आपकी उत्पत्ति सुनी जाती है, तब समस्त प्रजाओंमें प्रथम होनेके कारण आप मेरे ज्येष्ठ पुत्र होते हैं। फिर जब प्रजाकी वृद्धिके लिये आपके ललाटसे भगवान् शिवका प्रादुर्भाव हुआ, तब आप मेरे पतिके पिता और मेरे श्वशुर होनेके कारण गुरुजनोंकी कोटिमें आ जाते हैं और जब मैं यह सोचती हूँ कि स्वयं मेरे पिता गिरिराज हिमालय आपके पुत्र हैं, तब आप मेरे साक्षात् पितामह लगते हैं। लोकपितामह! इस तरह आप लोकयात्राके विधाता हैं। अन्तः-पुरमें पतिके साथ जो वृत्तान्त घटित हुआ है, उसे मैं आपके सामने कैसे कह सकूँगी? अतः यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ? मेरे शरीरमें जो यह कालापन है, इसे सात्त्विक-विधिसे त्यागकर मैं गौरवर्णा होना चाहती हूँ॥ २९—३३॥

ब्रह्माजी बोले—देवि! इतने ही प्रयोजनके लिये आपने ऐसा कठोर तप क्यों किया? क्या इसके लिये आपकी इच्छामात्र ही पर्याप्त नहीं थी? अथवा यह भी आपकी एक लीला ही है। जगन्मातः! आपकी लीला भी लोकहितके लिये ही होती है। अतः आप इसके द्वारा मेरे एक अभीष्ट फलकी सिद्धि कीजिये॥ ३४-३५॥

निशुम्भ और शुम्भ नामक दो दैत्य हैं, उनको मैंने वर दे रखा है। इससे उनका घमंड बहुत बढ़ गया है और वे देवताओंको सता रहे हैं। उन दोनोंको आपके ही हाथसे मारे जानेका वरदान प्राप्त हुआ है। अतः अब विलम्ब करनेसे कोई लाभ नहीं। आप क्षणभरके लिये सुस्थिर हो जाइये। आपके द्वारा जो शक्ति रची या छोड़ी जायगी, वही उन दोनोंके लिये मृत्युरूपा हो जायगी॥ ३६-३७॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर गिरिराजकुमारी देवी पार्वती सहसा [अपनी काली] त्वचाके आवरणको उतारकर गौरवर्णा हो गयीं। त्वचाकोष (काली त्वचामय आवरण)-रूपसे त्यागी गयी जो उनकी शक्ति थी, उसका नाम 'कौशिकी' हुआ। वह काले मेघके समान कान्तिवाली कृष्णवर्णा कन्या हो गयी॥ ३८-३९॥

देवीकी वह मायामयी शक्ति ही योगनिद्रा और वैष्णवी कहलाती है। उसके आठ बड़ी-बड़ी भुजाएँ थीं। उसने उन हाथोंमें शंख, चक्र और त्रिशूल आदि आयुध धारण कर रखे थे। उस देवीके तीन रूप हैं—सौम्य, घोर और मिश्र। वह तीन नेत्रोंसे युक्त थी। उसने मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण कर रखा था। उसे पुरुषका स्पर्श तथा रतिका योग नहीं प्राप्त था और वह [दूसरोंसे] अजेय थी एवं अत्यन्त सुन्दरी थी॥ ४०-४१॥

देवीने अपनी इस सनातन शक्तिको ब्रह्माजीके हाथमें दे दिया। वही दैत्यप्रवर शुम्भ और निशुम्भका वध करनेवाली हुई। उस समय प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने उस पराशक्तिको सवारीके लिये एक प्रबल सिंह प्रदान किया, जो उनके साथ ही आया था॥ ४२-४३॥

उस देवीके रहनेके लिये ब्रह्माजीने विन्ध्य-गिरिपर वासस्थान दिया और वहाँ नाना प्रकारके उपचारोंसे उसका पूजन किया। विश्वकर्मा ब्रह्माके द्वारा सम्मानित हुई वह शक्ति अपनी माता गौरीको और ब्रह्माजीको क्रमशः प्रणाम करके अपने ही अंगोंसे उत्पन्न और अपने ही समान शक्तिशालिनी बहुसंख्यक शक्तियोंको साथ ले दैत्यराज शुम्भ-निशुम्भको मारनेके लिये उद्यत होकर विन्ध्यपर्वतको चली गयी॥ ४४—४६॥

उसने समरांगणमें शुम्भ-निशुम्भके मन तथा शरीरको अपने हाव-भावरूप बाणों तथा [वास्तविक] बाणोंसे छिन्न-भिन्नकर उन दोनों दैत्यराजोंको मार गिराया। उस युद्धका अन्यत्र वर्णन हो चुका है, इसलिये उसकी विस्तृत कथा यहाँ नहीं कही गयी। दूसरे स्थलोंसे उसकी ऊहा कर लेनी चाहिये। अब मैं प्रस्तुत प्रसंगका वर्णन करता हूँ॥ ४७-४८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें देवीगौरत्व-प्राप्ति नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजीद्वारा दुष्कर्मी बतानेपर भी गौरीदेवीका शरणागत व्याघ्रको त्यागनेसे इनकार करना और माता-पितासे मिलकर मन्दराचलको जाना

वायुदेवता कहते हैं—कौशिकीको उत्पन्न करके उसे ब्रह्माजीके हाथमें देनेके पश्चात् गौरी देवीने प्रत्युपकारके लिये पितामहसे कहा—॥ १॥

देवी बोलीं—क्या आपने मेरे आश्रयमें रहनेवाले इस व्याघ्रको देखा है? इसने दुष्ट जन्तुओंसे मेरे तपोवनकी रक्षा की है। यह मुझमें अपना मन लगाकर अनन्यभावसे मेरा भजन करता रहा है। अतः इसकी रक्षाके सिवा दूसरा कोई मेरा प्रिय कार्य नहीं है। यह मेरे अन्तःपुरमें विचरनेवाला होगा। भगवान् शंकर इसे प्रसन्नतापूर्वक गणेश्वरका पद प्रदान करेंगे। मैं इसे आगे करके सखियोंके साथ यहाँसे

जाना चाहती हूँ। इसके लिये आप मुझे आज्ञा दें; क्योंकि आप प्रजापति हैं॥ २—५॥

देवीके ऐसा कहनेपर उन्हें भोली-भाली जान हँसते और मुसकराते हुए ब्रह्माजी उस व्याघ्रकी पुरानी क्रूरतापूर्ण करतूतें बताते हुए उसकी दुष्टताका वर्णन करने लगे॥ ६॥

ब्रह्माजीने कहा—देवि ! कहाँ तो पशुओंमें क्रूर व्याघ्र और कहाँ यह आपकी मंगलमयी कृपा। आप विषधर सर्पके मुखमें साक्षात् अमृत क्यों सींच रही हैं? यह तो व्याघ्रके रूपमें रहनेवाला कोई दुष्ट निशाचर है। इसने बहुत-सी गौओं और तपस्वी ब्राह्मणोंको खा डाला है। यह उन सबको इच्छानुसार ताप देता हुआ मनमाना रूप धारण करके विचरता है। अत: इसे अपने पापकर्मका फल अवश्य भोगना चाहिये। ऐसे दुष्टोंपर आपको कृपा करनेकी क्या आवश्यकता है? स्वभावसे ही कलुषित चित्तवाले इस दुष्ट जीवसे देवीको क्या काम है?॥ ७—१०॥

देवी बोलीं—आपने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है। यह ऐसा ही सही, तथापि मेरी शरणमें आ गया है। अत: मुझे इसका त्याग नहीं करना चाहिये॥ ११॥

ब्रह्माजीने कहा—देवि! इसकी आपके प्रति भक्ति है, इस बातको जाने बिना ही मैंने आपके समक्ष इसके पूर्वचरित्रका वर्णन किया है। यदि इसके भीतर भक्ति है तो पहलेके पापोंसे इसका क्या बिगड़नेवाला है; क्योंकि आपके भक्तका कभी नाश नहीं होता। जो आपकी आज्ञाका पालन नहीं करता, वह पुण्यकर्मा होकर भी क्या करेगा? देवि! आप ही अजन्मा, बुद्धिमती, पुरातन शक्ति और परमेश्वरी हैं॥ १२-१३॥

सबके बन्ध और मोक्षकी व्यवस्था आपके ही अधीन है। आपके सिवा पराशक्ति कौन है? आपके बिना किसको कर्मजनित सिद्धि प्राप्त हो सकती है? आप ही स्वयमेव असंख्य रुद्रोंकी विविधरूपा शक्ति हैं। शक्तिरहित कर्ता काम करनेमें कौन-सी सफलता प्राप्त करेगा? भगवान् विष्णुको, मुझको तथा अन्य देवता, दानव और राक्षसोंको उन-उन ऐश्वर्योंकी प्राप्ति करानेके लिये आपकी आज्ञा ही कारण है। असंख्य ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र, जो आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं, बीत चुके हैं और भविष्यमें भी होंगे। देवेश्वरि! आपकी आराधना किये बिना हम सब श्रेष्ठ देवता भी धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति नहीं कर सकते॥ १४—१८॥

आपके संकल्पसे ब्रह्मत्व और स्थावरत्वका तत्काल व्यत्यास (फेर-बदल) भी हो जाता है अर्थात् ब्रह्मा स्थावर (वृक्ष आदि) हो जाता है और स्थावर ब्रह्मा; क्योंकि पुण्य और पापके फलोंकी व्यवस्था आपने ही की है। आप ही जगत्के स्वामी परमात्मा शिवकी अनादि, अमध्य और अनन्त सनातन आदिशक्ति हैं॥ १९-२०॥

आप सम्पूर्ण लोकयात्राका निर्वाह करनेके लिये किसी अद्भुत मूर्तिमें आविष्ट हो नाना प्रकारके भावोंसे क्रीड़ा करती हैं। भला, आपको ठीक-ठीक कौन जानता है। अत: यह पापाचारी व्याघ्र भी आज आपकी कृपासे परम सिद्धि प्राप्त करे, इसमें कौन बाधक हो सकता है॥ २१-२२॥

इस प्रकार [देवीको] उनके परम तत्त्वका स्मरण कराकर ब्रह्माजीने जब उचित प्रार्थना की, तब गौरीदेवी तपस्यासे निवृत्त हुईं। तदनन्तर देवीकी आज्ञा लेकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। फिर देवीने अपने वियोगको न सह सकनेवाले माता-पिता मेना और हिमवान्का दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया तथा उन्हें नाना प्रकारसे आश्वासन दिया। इसके बाद देवीने तपस्याके प्रेमी तपोवनके वृक्षोंको देखा। वे उनके सामने फूलोंकी वर्षा कर रहे थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो उनसे होनेवाले वियोगके शोकसे पीड़ित हो वे आँसू बरसा रहे हों। अपनी शाखाओंपर बैठे हुए विहंगमोंके कलरवोंके व्याजसे मानो वे व्याकुलतापूर्वक नाना प्रकारसे दीनतापूर्ण विलाप कर रहे थे॥ २३—२६$^1/_2$॥

तदनन्तर पतिके दर्शनके लिये उतावली हो उस व्याघ्रको औरस पुत्रकी भाँति स्नेहसे आगे करके सखियोंसे बातचीत करती और देहकी दिव्य प्रभासे दसों दिशाओंको उद्दीपित करती हुई गौरीदेवी मन्दराचलको चली गयीं, जहाँ सम्पूर्ण जगत्के आधार, स्रष्टा, पालक और संहारक पतिदेव महेश्वर विराजमान थे॥ २७—२९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें व्याघ्रगतिवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

मन्दराचलपर गौरीदेवीका स्वागत, महादेवजीके द्वारा उनके और अपने उत्कृष्ट स्वरूप एवं अविच्छेद्य सम्बन्धका प्रकाशन तथा देवीके साथ आये हुए व्याघ्रको उनका गणाध्यक्ष बनाकर अन्तःपुरके द्वारपर सोमनन्दी नामसे प्रतिष्ठित करना

ऋषियोंने पूछा—अपने शरीरको दिव्य गौरवर्णसे युक्त बनाकर गिरिराजकुमारी देवी पार्वतीने जब मन्दराचल प्रदेशमें प्रवेश किया, तब वे अपने पतिसे किस प्रकार मिलीं? प्रवेशकालमें उनके भवनद्वारपर रहनेवाले गणेश्वरोंने क्या किया तथा महादेवजीने भी उन्हें देखकर उस समय उनके साथ कैसा बर्ताव किया? ॥ १-२ ॥

वायुदेवताने कहा—जिस प्रेमगर्भित रसके द्वारा अनुरागी पुरुषोंके मनका हरण हो जाता है, उस परम रसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है। द्वारपाल बड़ी उतावलीसे राह देखते थे। उनके साथ ही महादेवजी भी देवीके आगमनके लिये उत्सुक थे। जब वे भवनमें प्रवेश करने लगीं, तब शंकित हो उन-उन प्रेमजनित भावोंसे वे उनकी ओर देखने लगे। देवी भी उनकी ओर उन्हीं भावोंसे देख रही थीं। उस समय उस भवनमें रहनेवाले श्रेष्ठ पार्षदोंने देवीकी वन्दना की। फिर देवीने विनययुक्त वाणीद्वारा भगवान् त्रिलोचनको प्रणाम किया॥ ३—५ ॥

वे प्रणाम करके अभी उठने भी नहीं पायी थीं कि परमेश्वरने उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर बड़े आनन्दके साथ हृदयसे लगा लिया॥ ६ ॥

उन्हें वे अपनी गोदमें ही बिठानेके लिये तत्पर हुए, पर तबतक पार्वती पलंगपर बैठ गयीं। फिर इसके बाद शिवजीने मधुर मुसकानसे समन्वित हुई देवीको बलपूर्वक पलंगसे उठाकर अपनी गोदमें बैठा लिया। फिर मुसकराते हुए वे एकटक नेत्रोंसे उनके मुखचन्द्रकी सुधाका पान-सा करने लगे। फिर उनसे बातचीत करनेके लिये उन्होंने पहले अपनी ओरसे वार्ता आरम्भ की॥ ७-८ ॥

देवाधिदेव महादेवजी बोले—सर्वांगसुन्दरि प्रिये! क्या तुम्हारी वह मनोदशा दूर हो गयी, जिसके रहते तुम्हारे क्रोधके कारण मुझे अनुनय-विनयका कोई भी उपाय नहीं सूझता था। मेरा मन स्वेच्छासे भी नहीं, तुम्हारे काले वर्णसे नहीं अथवा अन्य किसी वर्णसे अपहृत नहीं हुआ, जैसा कि तुम्हारे स्वभावसे अपहृत है। जिसके कारण हे सुभ्रु! मैं बहुत ही चिन्तित हो गया था॥ ९-१० ॥

जो भाव स्वेच्छापूर्वक परस्पर अंगके संयोगसे उत्पन्न नहीं होते, ऐसे परम [भावरूप] रसको तुमने कैसे भुला दिया? अंगसंयोगसे उत्पन्न भाव तो चित्तमें कालुष्यके हेतु बनते हैं। यदि साधारण लोगोंकी भाँति हम दोनोंमें भी एक-दूसरेके अप्रियका कारण विद्यमान है, तब तो इस चराचर जगत्का नाश हुआ ही समझना चाहिये॥ ११-१२ ॥

मैं अग्निके मस्तकपर स्थित हूँ और तुम सोमके। हम दोनोंसे ही यह अग्नि-सोमात्मक जगत् प्रतिष्ठित है। जगत्के हितके लिये स्वेच्छासे शरीर धारण करके विचरनेवाले हम दोनोंके वियोगमें यह जगत् निराधार हो जायगा। इसमें शास्त्र और युक्तिसे निश्चित किया हुआ दूसरा हेतु भी है। यह स्थावर-जंगमरूप जगत् वाणी और अर्थमय ही है। तुम साक्षात् वाणीमय अमृत हो और मैं अर्थमय परम उत्तम अमृत हूँ। ये दोनों अमृत एक-दूसरेसे विलग कैसे हो सकते हैं? ॥ १३—१६ ॥

तुम मेरे स्वरूपका बोध करानेवाली विद्या हो और मैं तुम्हारे दिये हुए विश्वासपूर्ण बोधसे जाननेयोग्य परमात्मा हूँ। हम दोनों क्रमशः विद्यात्मा और वेद्यात्मा हैं, फिर हममें वियोग होना कैसे सम्भव है? मैं अपने प्रयत्नसे जगत्की सृष्टि और संहार नहीं करता। एकमात्र आज्ञासे ही सबकी सृष्टि और संहार उपलब्ध होते हैं। वह अत्यन्त गौरवपूर्ण आज्ञा तुम्हीं हो॥ १७-१८ ॥

ऐश्वर्यका एकमात्र सार आज्ञा (शासन) है, क्योंकि वही स्वतन्त्रताका लक्षण है। आज्ञासे वियुक्त होनेपर मेरा ऐश्वर्य कैसा होगा। हमलोगोंका एक-दूसरेसे विलग होकर रहना कभी सम्भव नहीं है। देवताओंके कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे ही मैंने [उस दिन] लीलापूर्वक व्यंग्य वचन कहा था॥ १९-२० ॥

तुम्हें भी तो यह बात अज्ञात नहीं थी। फिर तुम कुपित कैसे हो गयीं! अत: यही कहना पड़ता है कि तुमने भी मुझपर जो क्रोध किया था, वह त्रिलोकीकी रक्षाके लिये ही था; क्योंकि तुममें ऐसी कोई बात नहीं है, जो जगत्‌के प्राणियोंका अनर्थ करनेवाली हो॥ २१$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार प्रिय वचन बोलनेवाले साक्षात् परमेश्वर शिवके प्रति शृंगाररसके सारभूत भावोंकी प्राकृतिक जन्मभूमि देवी पार्वती अपने पतिकी कही हुई यह मनोहर बात सुनकर तथा इसे सत्य जान मुसकराकर रह गयीं, लज्जावश कोई उत्तर न दे सकीं। केवल कौशिकी [के यश]-का वर्णन छोड़कर और कुछ उन्होंने नहीं कहा। देवीने कौशिकीके विषयमें जो कुछ कहा, उसका वर्णन करता हूँ॥ २२—२४॥

देवी बोलीं—'भगवन्! मैंने जिस कौशिकीकी सृष्टि की है, उसे क्या आपने नहीं देखा है? वैसी कन्या न तो इस लोकमें हुई है और न होगी।' यों कहकर देवीने उसके विन्ध्यपर्वतपर निवास करने तथा समरांगणमें शुम्भ और निशुम्भका वध करके उनपर विजय पानेका प्रसंग सुनाकर उसके बल-पराक्रमका वर्णन किया। साथ ही यह भी बताया कि वह उपासना करनेवाले लोगोंको सदा प्रत्यक्ष फल देती है तथा निरन्तर लोकोंकी रक्षा करती रहती है। इस विषयमें ब्रह्माजी आपको आवश्यक बातें बतायेंगे॥ २५—२७॥

उस समय इस प्रकार बातचीत करती हुई देवीकी आज्ञासे ही एक सखीने उस व्याघ्रको लाकर उनके सामने खड़ा कर दिया। उसे देखकर देवी कहने लगीं— 'देव! यह व्याघ्र मैं आपके लिये भेंट लायी हूँ। आप इसे देखिये। इसके समान मेरा उपासक दूसरा कोई नहीं है॥ २८-२९॥

इसने दुष्ट जन्तुओंके समूहसे मेरे तपोवनकी रक्षा की थी। यह मेरा अत्यन्त भक्त है और अपने रक्षणात्मक कार्यसे मेरा विश्वासपात्र बन गया है। मेरी प्रसन्नताके लिये यह अपना देश छोड़कर यहाँ आ गया है। महेश्वर! यदि मेरे आनेसे आपको प्रसन्नता हुई है और यदि आप मुझसे अत्यन्त प्रेम करते हैं तो मैं चाहती हूँ कि यह नन्दीकी आज्ञासे मेरे अन्त:पुरके द्वारपर अन्य रक्षकोंके साथ उन्हींके चिह्न धारण करके सदा स्थित रहे॥ ३०—३२॥

वायुदेव कहते हैं—देवीके इस मधुर और अन्ततोगत्वा प्रेम बढ़ानेवाले शुभ वचनको सुनकर महादेवजीने कहा— 'मैं बहुत प्रसन्न हूँ।' फिर तो वह व्याघ्र उसी क्षण लचकती हुई सुवर्णजटित बेंतकी छड़ी, रत्नोंसे जटित विचित्र कवच, सर्पकी-सी आकृतिवाली छुरी तथा रक्षकोचित वेष धारण किये गणाध्यक्षके पदपर प्रतिष्ठित दिखायी दिया॥ ३३-३४॥

उसने उमासहित महादेव [और नन्दी]-को आनन्दित किया था। इसलिये सोमनन्दी नामसे विख्यात हुआ। इस प्रकार देवीका प्रिय कार्य करके चन्द्रार्धभूषण महादेवजीने उन्हें रत्नभूषित दिव्य आभूषणोंसे भूषित किया॥ ३५-३६॥

चन्द्रभूषण भगवान् शिवने सर्वमनोहारिणी गिरिराजकुमारी गौरी देवीको पलंगपर बिठाकर उस समय सुन्दर अलंकारोंसे स्वयं ही उनका शृंगार किया॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें देवीशिव-मिलनवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

अग्नि और सोमके स्वरूपका विवेचन तथा जगत्‌की अग्नीषोमात्मकताका प्रतिपादन

ऋषियोंने पूछा—प्रभो! पार्वती देवीका समाधान करते हुए महादेवजीने यह बात क्यों कही कि 'सम्पूर्ण विश्व अग्नीषोमात्मक एवं वागर्थात्मक है। ऐश्वर्यका सार एकमात्र आज्ञा ही है और वह आज्ञा तुम हो।' अत: इस विषयमें हम क्रमश: यथार्थ बातें सुनना चाहते हैं॥ १-२॥

वायुदेव बोले—महर्षियो! रुद्रदेवका जो घोर तेजोमय शरीर है, उसे अग्नि कहते हैं और अमृतमय सोम शक्तिका स्वरूप है; क्योंकि शक्तिका शरीर शान्तिकारक है॥ ३॥

जो अमृत है, वह प्रतिष्ठा नामक कला है और जो तेज है, वह साक्षात् विद्या नामक कला है। सम्पूर्ण सूक्ष्म

भूतोंमें वे ही दोनों रस और तेज हैं। तेजकी वृत्ति दो प्रकारकी है। एक सूर्यरूपा है और दूसरी अग्निरूपा। इसी तरह रसवृत्ति भी दो प्रकारकी है—एक सोमरूपिणी और दूसरी जलरूपिणी॥ ४-५॥

तेज विद्युत् आदिके रूपमें उपलब्ध होता है तथा रस मधुर आदिके रूपमें। तेज और रसके भेदोंने ही इस चराचर जगत्को धारण कर रखा है॥ ६॥

अग्निसे अमृतकी उत्पत्ति होती है और अमृतस्वरूप घीसे अग्निकी वृद्धि होती है, अतएव अग्नि और सोमको दी हुई आहुति जगत्के लिये हितकारक होती है। शस्य-सम्पत्ति हविष्यका उत्पादन करती है। वर्षा शस्यको बढ़ाती है। इस प्रकार वर्षासे ही हविष्यका प्रादुर्भाव होता है, जिससे यह अग्नीषोमात्मक जगत् टिका हुआ है॥ ७-८॥

अग्नि वहाँतक ऊपरको प्रज्वलित होता है, जहाँतक सोम-सम्बन्धी परम अमृत विद्यमान है और जहाँतक अग्निका स्थान है, वहाँतक सोमसम्बन्धी अमृत नीचेको झरता है। इसीलिये कालाग्नि नीचे है और शक्ति ऊपर। जहाँतक अग्नि है, उसकी गति ऊपरकी ओर है और जो जलका आप्लावन है, उसकी गति नीचेकी ओर है॥ ९-१०॥

आधारशक्तिने ही इस ऊर्ध्वगामी कालाग्निको धारण कर रखा है तथा निम्नगामी सोम शिव-शक्तिके आधारपर प्रतिष्ठित है। शिव ऊपर हैं और शक्ति नीचे तथा शक्ति ऊपर है और शिव नीचे। इस प्रकार शिव और शक्तिने यहाँ सब कुछ व्याप्त कर रखा है॥ ११-१२॥

बारंबार अग्निद्वारा जलाया हुआ यह जगत् भस्मसात् हो जाता है। यह अग्निका वीर्य है। भस्मको ही अग्निका वीर्य कहते हैं। जो इस प्रकार भस्मके श्रेष्ठ स्वरूपको जानकर **'अग्निः'** इत्यादि मन्त्रोंद्वारा भस्मसे स्नान करता है, वह बँधा हुआ जीव पाशसे मुक्त हो जाता है॥ १३-१४॥

अग्निके वीर्यरूप भस्मको सोमने अयोगयुक्तिके द्वारा फिर आप्लावित किया; इसलिये वह प्रकृतिके अधिकारमें चला गया। यदि योगयुक्तिसे शाक्त अमृतवर्षाके द्वारा उस भस्मका सब ओर आप्लावन हो तो वह प्रकृतिके अधिकारोंको निवृत्त कर देता है॥ १५-१६॥

अतः इस तरहका अमृतप्लावन सदा मृत्युपर विजय पानेके लिये ही होता है। शिवाग्निके साथ शक्ति-सम्बन्धी अमृतका स्पर्श होनेपर जिसने अमृतका आप्लावन प्राप्त कर लिया, उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है? जो अग्निके इस गुह्य स्वरूपको तथा पूर्वोक्त अमृतप्लावनको ठीक-ठीक जानता है, वह अग्नीषोमात्मक जगत्को त्यागकर फिर यहाँ जन्म नहीं लेता॥ १७-१८॥

जो शिवाग्निसे शरीरको दग्ध करके शक्तिस्वरूप सोमामृतसे योगमार्गके द्वारा इसे आप्लावित करता है, वह अमृतस्वरूप हो जाता है। इसी अभिप्रायको हृदयमें धारण करके महादेवजीने इस सम्पूर्ण जगत्को अग्नीषोमात्मक कहा था। उनका वह कथन सर्वथा उचित है॥ १९-२०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें भस्मतत्त्ववर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

जगत् 'वाणी और अर्थरूप' है—इसका प्रतिपादन

वायुदेवता कहते हैं—महर्षियो! अब यह बता रहा हूँ कि जगत्की वागर्थात्मकताकी सिद्धि कैसे की गयी है। छः अध्वाओं (मार्गों)-का सम्यक् ज्ञान मैं संक्षेपसे ही करा रहा हूँ, विस्तारसे नहीं। कोई भी ऐसा अर्थ नहीं है, जो बिना शब्दका हो और कोई भी ऐसा शब्द नहीं है, जो बिना अर्थका हो। अतः समयानुसार सभी शब्द सम्पूर्ण अर्थोंके बोधक होते हैं॥ १-२॥

प्रकृतिका यह परिणाम शब्दभावना और अर्थभावनाके भेदसे दो प्रकारका है। उसे परमात्मा शिव तथा पार्वतीकी प्राकृत मूर्ति कहते हैं॥ ३॥

उनकी जो शब्दमयी विभूति है, उसे विद्वान् तीन प्रकारकी बताते हैं—स्थूला, सूक्ष्मा और परा। स्थूला वह है, जो कानोंको प्रत्यक्ष सुनायी देती है; जो केवल चिन्तनमें आती है, वह सूक्ष्मा कही गयी है और जो चिन्तनकी भी सीमासे परे है, उसे परा कहा गया है। वह शक्तिस्वरूपा है। वही शिवतत्त्वके आश्रित रहनेवाली पराशक्ति कही गयी है॥ ४-५॥

ज्ञानशक्तिके संयोगसे वही इच्छाकी उपोद्बलिका (उसे दृढ़ करनेवाली) होती है। वह सम्पूर्ण शक्तियोंकी समष्टिरूपा है। वही शक्तितत्त्वके नामसे विख्यात हो समस्त कार्यसमूहकी मूल प्रकृति मानी गयी है। उसीको कुण्डलिनी कहा गया है। वही विशुद्धाध्वपरा सत्तामयी माया है॥ ६-७॥

वह स्वरूपत: विभागरहित होती हुई भी छ: अध्वाओंके रूपमें विस्तारको प्राप्त होती है। उन छ: अध्वाओंमेंसे तीन तो शब्दरूप हैं और तीन अर्थरूप बताये गये हैं। सभी पुरुषोंको आत्मशुद्धिके अनुरूप सम्पूर्ण तत्त्वोंके विभागसे लय और भोगके अधिकार प्राप्त होते हैं॥ ८-९॥

वे सम्पूर्ण तत्त्व कलाओंद्वारा यथायोग्य व्याप्त हैं। परा प्रकृतिके जो आदिमें पाँच प्रकारके परिणाम होते हैं, वे ही निवृत्ति आदि कलाएँ हैं। मन्त्राध्वा, पदाध्वा और वर्णाध्वा—ये तीन अध्वा शब्दसे सम्बन्ध रखते हैं तथा भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा और कलाध्वा—ये तीन अर्थसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। इन सबमें भी परस्पर व्याप्य-व्यापक भाव बताया जाता है॥ १०—१२॥

सम्पूर्ण मन्त्र पदोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि वे वाक्यरूप हैं। सम्पूर्ण पद भी वर्णोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि विद्वान् पुरुष वर्णोंके समूहको ही पद कहते हैं। वे वर्ण भी भुवनोंसे व्याप्त हैं; क्योंकि उन्हींमें उनकी उपलब्धि होती है। भुवन भी तत्त्वोंके समूहद्वारा बाहर-भीतरसे व्याप्त हैं; क्योंकि उनकी उत्पत्ति ही तत्त्वोंसे हुई है॥ १३-१४॥

उन कारणभूत तत्त्वोंसे ही उनका आरम्भ हुआ है। अनेक भुवन उनके अन्दरसे ही प्रकट हुए हैं। उनमेंसे कुछ तो पुराणोंमें प्रसिद्ध हैं। अन्य भुवनोंका ज्ञान शिवसम्बन्धी आगमसे प्राप्त करना चाहिये। कुछ तत्त्व सांख्य और योगशास्त्रोंमें भी प्रसिद्ध हैं॥ १५-१६॥

शिवशास्त्रोंमें प्रसिद्ध तथा दूसरे-दूसरे भी जो तत्त्व हैं, वे सब-के-सब कलाओंद्वारा यथायोग्य व्याप्त हैं। परा प्रकृतिके जो आदिकालमें पाँच परिणाम हुए, वे ही निवृत्ति आदि कलाएँ हैं। वे पाँच कलाएँ उत्तरोत्तर तत्त्वोंसे व्याप्त हैं॥ १७-१८॥

अत: परा शक्ति सर्वत्र व्यापक है। वह विभागरहित होकर भी छ: अध्वाओंके रूपमें विभक्त है। परप्रकृतिका शिवतत्त्वसे सम्बन्ध होनेपर शक्तिसे लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त सम्पूर्ण तत्त्वोंका प्रादुर्भाव शिवतत्त्वसे हुआ है। अत: जैसे घड़े आदि मिट्टीसे व्याप्त हैं, उसी प्रकार वे सारे तत्त्व एकमात्र शिवसे ही व्याप्त हैं॥ १९-२०॥

जो छ: अध्वाओंसे प्राप्त होनेवाला है, वही शिवका परम धाम है। पाँच तत्त्वोंके शोधनसे व्यापिका और अव्यापिका शक्ति जानी जाती है। निवृत्तिकलाके द्वारा रुद्रलोकपर्यन्त ब्रह्माण्डकी स्थितिका शोधन होता है। प्रतिष्ठा-कलाद्वारा उससे भी ऊपर जहाँतक अव्यक्तकी सीमा है, वहाँतकका शोधन किया जाता है॥ २१-२२॥

मध्यवर्तिनी विद्या-कलाद्वारा उससे भी ऊपर विद्येश्वरपर्यन्त स्थानका शोधन होता है। शान्ति-कलाद्वारा उससे भी ऊपरके स्थानका तथा शान्त्यतीता-कलाके द्वारा अध्वाके अन्ततकका शोधन हो जाता है। उसीको परप्रकृतिके योगके कारण 'परम व्योम' कहा गया है॥ २३½॥

ये पाँच तत्त्व बताये गये, जिनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। वहीं साधकोंको यह सब कुछ देखना चाहिये; जो अध्वाकी व्याप्तिको न जानकर शोधन करना चाहता है, वह शुद्धिसे वंचित रह जाता है, उसके फलको नहीं पा सकता। उसका सारा परिश्रम व्यर्थ, केवल नरककी ही प्राप्ति करानेवाला होता है॥ २४—२६॥

शक्तिपातका संयोग हुए बिना तत्त्वोंका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सकता। उनकी व्याप्ति और वृद्धिका ज्ञान भी असम्भव है। शिवकी जो चित्स्वरूपा परमेश्वरी परा-

शक्ति है, वही आज्ञा है। उस कारणरूपा आज्ञाके सहयोगसे ही शिव सम्पूर्ण विश्वके अधिष्ठाता होते हैं॥ २७-२८॥

विचारदृष्टिसे देखा जाय तो आत्मामें कभी विकार नहीं होता। यह विकारकी प्रतीति मायामात्र है। न तो बन्धन है और न उस बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली कोई मुक्ति है। शिवकी जो अव्यभिचारिणी पराशक्ति है, वही सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा है। वह उन्हींके समान धर्मवाली है और विशेषतः उनके उन-उन विलक्षण भावोंसे युक्त है॥ २९-३०॥

उसी शक्तिके साथ शिव गृहस्थ बने हुए हैं और वह भी सदा उन शिवके ही साथ उनकी गृहिणी बनकर रहती है। जो पराप्रकृतिजन्य जगत्-रूप कार्य है, वही उन शिव-दम्पतीकी संतान है। शिव कर्ता हैं और शक्ति कारण। यही उन दोनोंका भेद है। वास्तवमें एकमात्र साक्षात् शिव ही दो रूपोंमें स्थित हैं॥ ३१-३२॥

कुछ लोगोंका कहना है कि स्त्री और पुरुषरूपमें ही उनका भेद है। अन्य लोग कहते हैं कि पराशक्ति शिवमें नित्य समवेत है। जैसे प्रभा सूर्यसे भिन्न नहीं है, उसी प्रकार चित्स्वरूपिणी पराशक्ति शिवसे अभिन्न ही है। यही सिद्धान्त है अतः शिव परम कारण हैं, उनकी आज्ञा ही परमेश्वरी है॥ ३३-३४॥

उसी कारणसे प्रेरित होकर शिवकी अविनाशी मूल प्रकृति कार्यभेदसे महामाया, माया और त्रिगुणात्मिका प्रकृति—इन तीन रूपोंमें स्थित हो छः अध्वाओंको प्रकट करती है। वह छः प्रकारका अध्वा वागर्थमय है, वही सम्पूर्ण जगत्के रूपमें स्थित है; सभी शास्त्रसमूह इसी भावका विस्तारसे प्रतिपादन करते हैं॥ ३५—३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें वागर्थात्मकतत्त्ववर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

ऋषियोंका शिवतत्त्वविषयक प्रश्न

ऋषिगण बोले—शिवजीके चरित्र अद्भुत, गोपनीय, गहन तथा देवताओंद्वारा भी दुर्विज्ञेय हैं, वे हम सभीके मनको मोहित कर देते हैं॥ १॥

शिव और शिवाके [विचित्र] चरित्रोंके आधारपर भले ही लौकिकताकी प्रतीति हो, पर वस्तुतः उनके नित्य सम्बन्धमें किसी भी दोषकी कल्पना नहीं की जा सकती॥ २॥

लोकोंके सृजन, पालन तथा संहारके कारणस्वरूप ब्रह्मा आदि भी निग्रह-अनुग्रहको प्राप्त करते हुए शिवके वशमें रहते हैं। शिवजी किसीके भी निग्रह तथा अनुग्रहपर आश्रित नहीं हैं, अतः उनका ऐश्वर्य भी किसीके द्वारा प्रदत्त या कहींसे आया हुआ नहीं है—यह सुनिश्चित है॥ ३-४॥

अगर शिवजीका ऐश्वर्य इस प्रकारका है तो उसे स्वाभाविक रूपसे नित्यसिद्ध स्वतन्त्रताका ज्ञापक समझना चाहिये, जबकि ऐसा नहीं है; क्योंकि नित्य स्वतन्त्र सत्ता आकारके अधीन कैसे हो सकती है?॥ ५॥

स्वतन्त्र सत्ताका मूर्तिपरतन्त्र होना सिद्ध नहीं होता, क्योंकि वह तो [सभीका] मूल कारण है, जबकि मूर्ति तो कार्य अथवा उत्पाद्य है, ऐसी स्थितिमें मूर्तिको भी हेतुरहित या नित्य मानना पड़ेगा॥ ६॥

परमभाव तथा उसे पृथक् अपरमभाव—इन दो भावोंकी सर्वत्र चर्चा की जाती है। [ये दोनों ही भाव परस्पर विरुद्ध होनेसे भिन्न-भिन्न आधारोंका आश्रय लेते हैं।] ऐसी दशामें परम तथा अपरम-भावकी स्थिति एक ही अधिकरण अर्थात् भगवान् शिवमें कैसे संगत हो सकती है?॥ ७॥

परमात्माका परम स्वभाव निष्कल कहा गया है तो फिर वह सकल किस प्रकार हो गया; क्योंकि स्वभावमें तो किसी भी प्रकार विपरीतता होती नहीं है॥ ८॥

यदि कदाचित् 'परमात्मा अपनी इच्छासे स्व-स्वभावसे विपरीत स्वभाववाला भी हो सकता है' ऐसा कहें तो वह ऐश्वर्यशाली परमात्मा नित्यानित्यविपर्यय क्यों नहीं कर देता अर्थात् नित्यको अनित्य तथा अनित्यको नित्य क्यों नहीं बना देता?॥ ९॥

यदि यह कहा जाय कि सकलस्वरूप मूर्त्यात्मा कोई और है तथा निष्कलस्वरूप शिव उससे भिन्न कोई अन्य तत्त्व है तो फिर निश्चयपूर्वक यह क्यों कहा जाता है कि सर्वत्र शिव ही अधिष्ठित हैं अर्थात् उनसे भिन्न किसी अन्य तत्त्वकी अधिष्ठान सत्ता नहीं है?॥ १०॥

यदि ये कहें कि मूर्त्यात्मा वस्तुतः उन शिवकी अभिव्यक्तिमात्र है तो फिर उस मूर्ति [के माध्यम]-से [शिवके अभिव्यक्त होनेके कारण] निश्चय ही उन मूर्तिमान् शिवकी परतन्त्रता सिद्ध हो जायगी॥ ११॥

यदि शिव [अभिव्यक्तिके लिये] मूर्तिके परतन्त्र न होते तो उन निरपेक्षके द्वारा मूर्तिको स्वीकार ही क्यों किया जाता? इससे यह सिद्ध होता है कि मूर्तिसे सिद्ध होनेवाले प्रयोजनकी ही कामनासे शिव मूर्तिको स्वीकार करते हैं॥ १२॥

स्वेच्छासे शरीर धारण करना [परमात्माके] स्वातन्त्र्यको सिद्ध करनेवाला हेतु भी नहीं माना जा सकता; क्योंकि अन्य पुरुषोंमें भी कर्मका अनुसरण करनेवाली वैसी ही स्वेच्छा देखी जाती है?॥ १३॥

अपनी इच्छासे [कर्मानुसार] देह धारण करने तथा उसका त्याग करनेमें ब्रह्मासे लेकर पिशाचपर्यन्त [सभी प्राणी] समर्थ हैं तो क्या उनको कर्मका अतिक्रमण करनेवाला मान लिया जाय?॥ १४॥

[अपनी] इच्छासे देहनिर्माण तो इन्द्रजालके समान कहा गया है, अणिमा आदि सिद्धियोंको वशमें करनेसे ही यह सम्भव है॥ १५॥

[महाराज क्षुपकी ओरसे] युद्ध करते हुए भगवान् विष्णुने जब विश्वरूप दिखाकर दधीचको स्तब्ध करना चाहा, तब महर्षि दधीचने स्वयं भी विष्णुका रूप धारणकर उनकी वंचना की॥ १६॥

हमलोगोंको तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि सबसे उत्कृष्ट होकर भी जब परमात्मा शिव शरीर धारण करते हैं तो वे [निश्चय ही] अन्य प्राणियोंके समान हैं॥ १७॥

परम कारण शिवको सबपर अनुग्रह करनेवाला कहा गया है। वे देवताओंका निग्रह भी करते हैं, तो फिर वे सबपर अनुग्रह करनेवाले कैसे हैं?॥ १८॥

दुर्बुद्धिवश शिवको पुत्र मानकर पुनः-पुनः निन्दामें तत्पर हुए ब्रह्माजीके पाँचवें सिरको शिवने काट डाला था। शरभरूपधारी शिवने शीघ्रतापूर्वक अपने पैरोंसे आक्रमण करके नृसिंहरूपवाले विष्णुके हृदयको तीक्ष्ण नाखूनोंसे विदीर्ण कर दिया था॥ १९-२०॥

दक्षके यज्ञमें भाग लेनेके कारण देवस्त्रियों तथा देवताओंमें ऐसा कोई नहीं था, जो पराक्रमी वीरभद्रके द्वारा दण्डित नहीं किया गया हो॥ २१॥

शिवजीने स्त्रियों, दैत्यों तथा बालकोंसहित त्रिपुरको एक क्षणमें अपने नेत्रकी अग्निसे जला दिया था॥ २२॥

प्रजाओंकी [उत्पत्ति तथा स्त्री-पुरुषोंकी पारस्परिक] रतिके हेतुस्वरूप रतिपति कामदेव देवताओंके चीखने-चिल्लानेपर भी शिवजीकी नेत्राग्निमें भस्म हो गये थे। उनके सिरपर दुग्धधारा गिराती हुई कुछ आकाशचारिणी गायोंको भी प्रभु शिवने क्रोधपूर्वक देखकर उसी क्षण भस्म कर दिया था॥ २३-२४॥

जिसने शेषनाग [-को रज्जु बनाकर उस]-से विष्णुको बाँधकर उन्हें सौ योजन दूर फेंक दिया था, उस जलन्धरासुरको [शिवजीने] अपने चरणसे जलको चक्राकृति बनाकर भयभीत कर दिया। जलमें स्थित हुए शिवजीने उस दैत्यको त्रिशूलसे मार डाला। तपस्या करके भगवान् शिवसे [उनके सुदर्शन नामक] चक्रको प्राप्तकर विष्णु भगवान् सदाके लिये [अपूर्व] पराक्रमी हो गये॥ २५-२६॥

शिवजीने हिंसाके लिये दयारहित देवशत्रुओंके कुल तथा अन्धक दैत्यके हृदयको त्रिशूलकी अग्निसे सन्तप्त कर दिया था॥ २७॥

कण्ठसे कृष्णवर्णा नारीको उत्पन्न करके उन्होंने

दारुकका संहार कराया और गौरीके त्वचाकोशमें [अव्यक्त रूपसे] विद्यमान कौशिकीका प्रादुर्भाव कराके युद्धमें निशुम्भसहित शुम्भका वध कराया॥ २८१/२ ॥

कार्तिकेयसे सम्बन्धित महान् आख्यान स्कन्दपुराणमें सुना गया है। इन्द्रके शत्रु तारक नामक दैत्यराजके वधके लिये ब्रह्माजीने मन्दराचलपर अन्त:पुरमें शिवजीसे प्रार्थना की थी॥ २९-३०॥

[उस समय] शिवजी सुदीर्घकालतक भगवती पार्वतीके साथ [मन्दराचलपर] लीलाविहार करते रहे। उनके असाधारण लीला-प्रसंगोंसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो पृथ्वी रसातलको ही चली जायगी। उन्होंने लीलावश भगवतीकी वंचनाकर उनमें अपने तेजका आधान न करके उस दुर्वह तेजको अग्निमें पवित्र आज्य हविके समान विसर्जित कर दिया॥ ३१-३२॥

अग्निदेवने उस [शैव] तेजको अनेक अंशोंमें विभक्त करके गंगा आदि नदियोंमें डाल दिया। तदुपरान्त भगवती स्वाहाने कृत्तिकाओंका रूप धारण करके जहाँ-तहाँ अंशरूपसे विकीर्ण उस तेजको ग्रहण कर लिया। तदुपरान्त सुमेरुपर्वतपर अग्निदेवके साथ विहार करती हुई स्वर्णवर्णा स्वाहा देवीने उस तेजको वहीं सरकण्डोंके वनमें किसी स्थानपर स्थापित कर दिया॥ ३३-३४॥

समय आनेपर वह तेज [अग्निके समान] प्रज्वलित हो उठा और उसने अपने प्रकाशसे दसों दिशाओंको मानो अनुरंजित-सा कर दिया तथा सुमेरुसहित [निकटवर्ती] सभी पर्वतोंको स्वर्णमय बना दिया। तत्पश्चात् दीर्घकालके बीतनेपर कुमारोंके सदृश सुकुमार देहवाला वह शिवपुत्र प्रादुर्भूत हुआ। उसके शैशवोचित मनोहर स्वरूपको देखकर देवताओं तथा असुर आदिके सहित सभी लोग आश्चर्यचकित एवं मुग्ध हो गये॥ ३५—३७॥

उस समय पुत्रको देखनेकी अभिलाषा लिये हुए देवी पार्वतीके साथ स्वयं भगवान् शिव भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने बालकको गोदमें बैठा लिया और उस मुसकराते हुए बालककी मुखमाधुरीको वे स्नेहविवश चित्तसे मानो अमृतके समान पीने लगे॥ ३८१/२ ॥

वीतराग तपस्वियोंके साथ वहाँ उपस्थित देवताओंके समक्ष ही शिवजीने अपने वक्ष:स्थलपर इच्छानुरूप बालकको नचाकर तथा उसकी बालकोचित क्रीडाओंके सुखका अनुभव करके देवी पार्वतीको दुग्धपान करानेके लिये संकेत किया, देवीने भी आदरसहित शिवजीकी आज्ञा मानकर उसे अमृतसदृश दुग्ध पिलाया। तदनन्तर उस बालकसे यह कहकर कि 'तुम्हारा आविर्भाव संसारके कल्याणके लिये हुआ है' भगवती पार्वती तथा स्वयं महादेव शंकर तृप्त नहीं हो सके॥ ३९—४११/२ ॥

तदुपरान्त तारकासुरसे भयभीत इन्द्रके साथ परामर्श करके त्रिपुरारि शिवने [अपने पुत्रका] देवसेनापतिके पदपर अभिषेक करवाया। इन्द्र आदि देवताओंसे संरक्षित कुमार स्कन्दको सेनाके मध्यमें भेजकर शिवजी अदृश्य होकर वहीं स्थित हो गये। उस युद्धमें कुमारने क्रौंच पर्वतको विदीर्ण करनेवाली प्रलयकालीन अग्निके समान [देदीप्यमान] उस शक्तिसे इन्द्रके भयके साथ-साथ तारकासुरका मस्तक भी काट डाला। तब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने कुमारका विशेष स्तवन किया॥ ४२—४५॥

ऐसे ही अपने बलसे गर्वित होकर अपनी विशाल भुजाओंसे कैलासपर्वतको उठानेमें लगा हुआ राक्षसराज साक्षात् रावण उस पापको सहन न करनेवाले देवदेव शिवके पैरके अँगूठेके स्पन्दनमात्रसे मसल दिया गया और भूमिमें चला गया॥ ४६-४७॥

समाप्त हुई आयुवाले किसी वटुकने प्रयोजनवश शिवजीका आश्रय ग्रहण किया था। जब यमराजने उसके प्राणोंको हरण करना चाहा तो भगवान् शिवने शीघ्रतासे आ करके यमराजको पैरोंतले दबा लिया। [एक बार शिवजी] बडवानलको ही अपना वाहन वृषभ समझकर उसे गला पकड़ करके ले आये, जिसके कारण सारा संसार जलमय हो गया॥ ४८-४९॥

लोक जिन्हें जाननेमें समर्थ नहीं है, ऐसे आंगिक

चेष्टाओंसे युक्त एवं आनन्द तथा सौन्दर्यसे परिपूर्ण नृत्ताभिनयोंके द्वारा अनेक बार शिवजीने जगत्‌को चलायमान कर दिया था॥ ५०॥

वायुदेव ! यदि शिव सदा शान्तभावसे रहकर ही सबपर अनुग्रह करते हैं तो सबकी अभिलाषाओंको एक साथ ही पूर्ण क्यों नहीं कर देते? जो सब कुछ करनेमें समर्थ होगा, वह सबको एक साथ ही बन्धन-मुक्त क्यों नहीं कर सकेगा? यदि कहें अनादिकालसे चले आनेवाले सबके विचित्र कर्म अलग-अलग हैं, अत: सबको एक समान फल नहीं मिल सकता तो यह ठीक नहीं है; क्योंकि कर्मोंकी विचित्रता भी यहाँ नियामक नहीं हो सकती। कारण कि वे कर्म भी ईश्वरके करानेसे ही होते हैं। इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ। उपर्युक्त-रूपसे विभिन्न युक्तियोंद्वारा फैलायी गयी नास्तिकता जिस प्रकारसे शीघ्र ही निवृत्त हो जाय, वैसा उपदेश दीजिये॥ ५१—५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें शिवतत्त्वविषयक प्रश्न नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

शिवजीकी सर्वेश्वरता, सर्वनियामकता तथा मोक्षप्रदताका निरूपण

वायुदेवताने कहा—ब्राह्मणो! आपलोगोंने युक्तियोंसे प्रेरित होकर जो संशय उपस्थित किया है, वह उचित ही है; क्योंकि किसी बातको जाननेकी इच्छा अथवा तत्त्वज्ञानके लिये उठाया गया प्रश्न साधु-बुद्धिवाले पुरुषोंमें नास्तिकताका उत्पादन नहीं कर सकता। मैं इस विषयमें ऐसा प्रमाण प्रस्तुत करूँगा, जो सत्पुरुषोंके मोहको दूर करनेवाला है। असत् पुरुषोंका जो अन्यथा भाव होता है, उसमें प्रभु शिवकी कृपाका अभाव ही कारण है॥ १-२॥

परिपूर्ण परमात्मा शिवके परम अनुग्रहके बिना कुछ भी कर्तव्य नहीं है, ऐसा निश्चय किया गया है। परानुग्रह कर्ममें स्वभाव ही पर्याप्त (पूर्णत: समर्थ) है, अन्यथा नि:स्वभाव पुरुष किसीपर भी अनुग्रह नहीं कर सकता। पशु और पाशरूप सारा जगत् ही पर कहा गया है। वह अनुग्रहका पात्र है। परको अनुगृहीत करनेके लिये पतिकी आज्ञाका समन्वय आवश्यक है। पति आज्ञा देनेवाला है, वही सदा सबपर अनुग्रह करता है। उस अनुग्रहके लिये ही आज्ञा-रूप अर्थको स्वीकार करनेपर शिव परतन्त्र कैसे कहे जा सकते हैं?॥ ३—६॥

अनुग्राहककी अपेक्षा न रखकर कोई भी अनुग्रह सिद्ध नहीं हो सकता। अत: स्वातन्त्र्य-शब्दके अर्थकी अपेक्षा न रखना ही अनुग्रहका लक्षण है। जो अनुग्राह्य है, वह परतन्त्र माना जाता है; क्योंकि पतिके अनुग्रहके बिना उसे भोग और मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती॥ ७-८॥

जो मूर्त्यात्मा हैं, वे भी अनुग्रहके पात्र हैं; क्योंकि उनसे भी शिवकी आज्ञाकी निवृत्ति नहीं होती—वे भी शिवकी आज्ञासे बाहर नहीं हैं। यहाँ कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो शिवकी आज्ञाके अधीन न हो। सकल (सगुण या साकार) होनेपर भी जिसके द्वारा हमें निष्कल (निर्गुण या निराकार) शिवकी प्राप्ति होती है, उस मूर्ति या लिंगके रूपमें साक्षात् शिव ही विराज रहे हैं। वह 'शिवकी मूर्ति है' यह बात तो उपचारसे कही जाती है॥ ९-१०॥

जो साक्षात् निष्कल तथा परम कारणरूप शिव हैं, वे किसीके द्वारा भी साकार अनुभावसे उपलक्षित नहीं होते, ऐसी बात नहीं है। यहाँ प्रमाणगम्य होना उनके स्वभावका उपपादक नहीं है, प्रमाण अथवा प्रतीकमात्रसे अपेक्षा-बुद्धिका उदय नहीं होता। वे परम तत्त्वके उपलक्षणमात्र हैं, इसके सिवा उनका और कोई अभिप्राय नहीं है॥ ११-१२॥

कोई-न-कोई मूर्ति ही आत्माका साक्षात् उपलक्षण होती है। 'शिवकी मूर्ति है' इस कथनका अभिप्राय यह है कि उस मूर्तिके रूपमें परम शिव विराजमान हैं। मूर्ति उनका उपलक्षण है। जैसे काष्ठ आदि आलम्बनका आश्रय लिये बिना केवल अग्नि कहीं उपलब्ध नहीं होती, उसी प्रकार शिव भी मूर्त्यात्मामें आरूढ़ हुए बिना

उपलब्ध नहीं होते। यही वस्तुस्थिति है॥ १३-१४॥

जैसे किसीसे यह कहनेपर कि 'तुम आग ले आओ' उसके द्वारा जलती हुई लकड़ी आदिके सिवा साक्षात् अग्नि नहीं लायी जाती, उसी प्रकार शिवका पूजन भी मूर्तिरूपमें ही हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसीलिये पूजा आदिमें 'मूर्त्यात्मा' की परिकल्पना होती है; क्योंकि मूर्त्यात्माके प्रति जो कुछ किया जाता है, वह साक्षात् शिवके प्रति किया गया ही माना गया है॥ १५-१६॥

लिंग आदिमें, विशेषतः अर्चाविग्रहमें जो पूजनकृत्य होता है, वह भगवान् शिवका ही पूजन है। उन-उन मूर्तियोंके रूपमें शिवकी भावना करके हमलोग शिवकी ही उपासना करते हैं। जैसे परमेष्ठी शिव मूर्त्यात्मापर अनुग्रह करते हैं, उसी प्रकार मूर्त्यात्मामें स्थित शिव हम पशुओंपर अनुग्रह करते हैं। परमेष्ठी शिवने लोकोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही सदाशिव आदि सम्पूर्ण मूर्त्यात्माओंको अधिष्ठित—अपनी आज्ञामें रखकर अनुगृहीत किया है॥ १७—१९॥

आत्माओं [जीवों]-के ही भोग तथा मोक्षके लिये विशेष रूपसे तात्त्विक तथा अतात्त्विक स्वरूपोंवाले मूर्त्यात्माओंमें शिवकी अवस्थिति देखी जाती है॥ २०॥

सुख-दुःखात्मक फलभोग तो किये गये कर्मोंका ही परिणाम माना जाता है तो फिर कर्मफलोंका भोग किस प्रकार हो सकेगा? भगवान् शिव सबपर अनुग्रह ही करते हैं, किसीका निग्रह नहीं करते, क्योंकि निग्रह करनेवाले लोगोंमें जो दोष होते हैं, वे शिवमें असम्भव हैं। ब्रह्मा आदिके प्रति जो निग्रह देखे गये हैं, वे भी श्रीकण्ठमूर्ति शिवके द्वारा लोकहितके लिये ही किये गये हैं॥ २१—२३॥

भगवान् शंकर [संसारके नियमन आदिकी] क्रीडामें निरत श्रीकण्ठ नामक स्वरूपमें अधिष्ठित हैं और वह श्रीकण्ठमूर्ति ही इस ब्रह्माण्डपर अधिकार करके स्थित है, इसमें सन्देह नहीं है। अपराधयुक्त होनेके कारण देवगण भी [शिवजीके द्वारा] उचित रीतिसे अनुशासित किये गये थे, इससे वे पापरहित हो गये और प्रजाजनोंका क्लेश भी दूर हो गया। विद्वानोंकी दृष्टिमें निग्रह भी स्वरूपसे दूषित नहीं है। (जब वह राग-द्वेषसे प्रेरित होकर किया जाता है, तभी निन्दनीय माना जाता है।) इसीलिये दण्डनीय अपराधियोंको राजाओंकी ओरसे मिले हुए दण्डकी प्रशंसा की जाती है॥ २४—२६॥

जिन्होंने अपने ऐश्वर्यके द्वारा समस्त कार्योंको पूर्ण किया था, वे यदि अपने ऐश्वर्यको प्रकट न करें तो उन्हें संसार ईश्वर कैसे मानेगा? भगवान् शिवकी इच्छा ही उनका विधानकर्तृत्व है और विधान उनकी सामर्थ्यशालिनी आज्ञा है। 'यह कर्तव्य है और यह कर्तव्य नहीं है' इस प्रकारके अनुशासनका नाम आज्ञा है॥ २७-२८॥

जो लोग उनके इस अनुशासनका पालन करते हैं, वे ही साधुजन हैं तथा [शिवानुशासनसे] विपरीत आचरण करनेवाला असाधु कहलाता है। अतएव सभी लोग साधु नहीं हो पाते। यदि साधुकी रक्षा करनी है तो असाधुका निवारण करना ही होगा। पहले साम आदि तीन उपायोंसे असाधुके निवारणका प्रयत्न किया जाता है। यदि यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ तो अन्तमें चौथे उपाय दण्डका ही आश्रय लिया जाता है। यह दण्डान्त अनुशासन लोकहितके लिये ही किया जाना चाहिये। यही उसके औचित्यको परिलक्षित कराता है। यदि अनुशासन इसके विपरीत हो तो उसे अहितकर कहते हैं॥ २९—३१॥

जो सदा हितमें ही लगे रहनेवाले हैं, उन्हें ईश्वरका दृष्टान्त अपने सामने रखना चाहिये। (ईश्वर केवल दुष्टोंको ही दण्ड देते हैं, इसीलिये निर्दोष कहे जाते हैं।) अतः जो दुष्टोंको ही दण्ड देता है, वह उस निग्रह-कर्मको लेकर सत्पुरुषोंद्वारा लांछित कैसे किया जा सकता है?॥ ३२॥

अयुक्त अर्थात् अनुचित कर्म करनेवाले लोग विवेकी पुरुषके द्वारा गर्हित माने जाते हैं और जो कर्म लोगोंको उद्विग्न करता है, वह कर्म अयुक्त कहलाता है। लोकमें जहाँ कहीं भी निग्रह होता है, वह यदि विद्वेषपूर्वक न हो, तभी श्रेष्ठ माना जाता है। जो पिता पुत्रको दण्ड देकर उसे अधिक शिक्षित बनाता है, वह उससे द्वेष नहीं करता। तटस्थ भावसे जो व्यक्ति दण्डनीय लोगोंको अनुशासित करता है, उसमें भी यत्किंचित् कठोरता देखी ही जाती है॥ ३३—३५॥

यदि उसमें कठोरता न हो तो वह अपराधी पुरुषोंको दण्डित ही कैसे करेगा, पर वह मध्यस्थ भावमें स्थित रहकर भी अज्ञ पुरुषोंको दण्डित करता है॥ ३६॥

इसलिये [भले ही वह मध्यस्थ भाववाला क्यों न

हो, पर] दण्डित करता हुआ व्यक्ति निर्दय होता ही है—ऐसा कुछ लोग कहते हैं और दूसरे लोग कहते हैं कि ऐसा कोई [निश्चित] नियम नहीं है॥ ३७॥

जिस प्रकार रोगके कारणको जाननेवाला वैद्य रोगीके प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार करता हुआ भी [वस्तुत:] तनिक भी निर्दयी नहीं होता, अपितु उसका यह व्यवहार दयासे ही प्रेरित होता है॥ ३८॥

हिंसाके लिये उद्यत शत्रुके प्रति की गयी दया उपकारिणी नहीं होती, यदि कदाचित् वैसे लोगोंके प्रति व्यक्ति भ्रमवश दयावान् हो भी जाय तो अन्ततोगत्वा उसे निर्दय होना ही पड़ता है। रक्षणीय व्यक्तिकी रक्षा न करना और दण्डनीय व्यक्तिको दण्ड न देना—यह दोनों ही प्रकारकी उपेक्षा दोषपूर्ण है। सामर्थ्यके होनेपर भी यदि रक्षणीय व्यक्तिकी रक्षा न की जाय तो शीघ्र ही रक्षणीय व्यक्तिका नाश हो जाता है। सर्पके मुखमें जाते हुए व्यक्तिको देखते हुए भी जो पुरुष दोषाभासोंका अनुमानकर उस रक्षणीय व्यक्तिकी उपेक्षा कर देता है, वस्तुतः वह भी निर्दय ही होता है॥ ३९—४१॥

इसलिये दया प्रत्येक समय कल्याणकारिणी ही होती है—ऐसा मानना उचित नहीं है। अतएव आवश्यकतानुरूप व्यवहार ही उचित है तथा उसके अतिरिक्त व्यवहार अनुचित कहा गया है॥ ४२॥

मूर्त्यात्माओंमें भी राग आदि दोष होते ही हैं, पर वे दोष वस्तुत: उनके ही समझने चाहिये, [सर्वव्यापक होनेपर भी] शिवमें दोषोंकी स्थिति सर्वथा नहीं है॥ ४३॥

मलसे युक्त ताम्रका अग्निमें प्रक्षेप होनेपर भी वह अग्नि [समल] ताम्रके संसर्गसे मलिन नहीं होती॥ ४४॥

अपवित्र वस्तुओंका संसर्ग होनेपर भी अग्निमें अपवित्रता नहीं देखी जाती, किंतु अग्निके संसर्गसे अपवित्र वस्तु पवित्र हो जाती है। इस प्रकार शुद्ध करनेयोग्य [मलावृत] जीवके संसर्गसे शिवजी अशुद्ध नहीं होते, अपितु उनके संसर्गसे अशुद्ध जीव शुद्ध हो जाता है॥ ४५-४६॥

जैसे अग्निमें गिरे हुए लोहेमें जो दाहकता है, वह लोहेकी नहीं अपितु अग्निकी ही है, उसी प्रकार मूर्त्यात्मामें स्थित जो ऐश्वर्य है, वह वस्तुत: शिवका ही है, आत्माओं [मूर्त्यात्मा]-का नहीं॥ ४७॥

काष्ठ कभी ऊपरकी ओर नहीं जलता अपितु अग्नि [-की शिखा] ही ऊपरकी ओर जलती है। इसी प्रकार काष्ठ ही अंगारके रूपमें देखा जाता है, न कि अग्नि—ऐसा ही इस विषयमें भी समझ लेना चाहिये। इसलिये इस संसारमें भी काष्ठ, पाषाण, मृत्तिका आदिमें शिवकी व्याप्ति होनेके कारण उनका शिवरूपसे व्यवहार किया जाता है। मैत्री आदि गुण चित्तवृत्तिरूप होनेके कारण गौण कहे गये हैं। उन्हीं गुणोंसे उपरत होनेके कारण [जीवोंके] कर्म दोषयुक्त तथा गुणयुक्त हो जाते हैं॥ ४८-४९॥

ये गुणात्मक वृत्तियाँ चाहे प्रधान हों या अप्रधान हों, पर इससे अनुग्रहकर्ता भगवान् शिवमें न दोषकी स्थिति होती है और न गुणकी ही स्थिति होती है। अनुग्रह शब्दके तात्पर्यको विद्वानोंने लाक्षणिक नहीं कहा है, उनके मतमें यह अर्थ संसारबन्धनसे छुड़ानेवाला तथा कल्याणकारी शिवादेश है॥ ५०-५१॥

शिवकी आज्ञाका पालन ही हित है और जो हित है, वही उनका अनुग्रह है। अतएव सबको हितमें नियुक्त करनेवाले शिव सबपर अनुग्रह करनेवाले कहे गये हैं। जो 'उपकार' शब्दका अर्थ है, उसे भी अनुग्रह ही कहा गया है; क्योंकि उपकार भी हितरूप ही होता है। अत: सबका उपकार करनेवाले शिव सर्वानुग्राहक हैं। शिवके द्वारा जड-चेतन सभी सदा हितमें ही नियुक्त होते हैं। परंतु सबको जो एक साथ और एक समान हितकी उपलब्धि नहीं होती, इसमें उनका स्वभाव ही प्रतिबन्धक है॥ ५२—५४॥

जैसे सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सभी कमलोंको विकासके लिये प्रेरित करते हैं, परंतु वे अपने-अपने स्वभावके अनुसार एक साथ और एक समान विकसित नहीं होते, स्वभाव भी पदार्थोंके भावी अर्थका कारण होता है, किंतु वह नष्ट होते हुए अर्थको कर्ताओंके लिये सिद्ध नहीं कर सकता। जैसे अग्निका संयोग सुवर्णको ही पिघलाता है, कोयले या अंगारको नहीं, उसी प्रकार भगवान् शिव परिपक्व मलवाले पशुओंको ही बन्धनमुक्त करते हैं, दूसरोंको नहीं॥ ५५—५७॥

जो वस्तु जैसी होनी चाहिये, वैसी वह स्वयं नहीं बनती। वैसी बननेके लिये कर्ताकी भावनाका सहयोग होना आवश्यक है। कर्ताकी भावनाके बिना ऐसा होना

सम्भव नहीं है, अतः कर्ता सदा स्वतन्त्र होता है॥ ५८॥

सबपर अनुग्रह करनेवाले शिव जिस तरह स्वभावसे ही निर्मल हैं, उसी तरह 'जीव' संज्ञा धारण करनेवाली आत्माएँ स्वभावतः मलिन होती हैं। यदि ऐसी बात न होती तो वे जीव क्यों नियमपूर्वक संसारमें भटकते और शिव क्यों संसार-बन्धनसे परे रहते? विद्वान् पुरुष कर्म और मायाके बन्धनको ही जीवका 'संसार' कहते हैं। यह बन्धन जीवको ही प्राप्त होता है, शिवको नहीं। इसमें कारण है, जीवका स्वाभाविक मल। वह कारणभूत मल जीवोंका अपना स्वभाव ही है, आगन्तुक नहीं है। यदि आगन्तुक होता तो किसीको भी किसी भी कारणसे बन्धन प्राप्त हो जाता। जो यह हेतु है, वह एक है; क्योंकि सब जीवोंका स्वभाव एक-सा है॥ ५९—६२॥

यद्यपि सबमें एक-सा आत्मभाव है, तो भी मलके परिपाक और अपरिपाकके कारण कुछ जीव बद्ध हैं और कुछ बन्धनसे मुक्त हैं। बद्ध जीवोंमें भी कुछ लोग लय और भोगके अधिकारके अनुसार उत्कृष्ट और निकृष्ट होकर ज्ञान और ऐश्वर्य आदिकी विषमताको प्राप्त होते हैं अर्थात् कुछ लोग अधिक ज्ञान और ऐश्वर्यसे युक्त होते हैं तथा कुछ लोग कम। कोई मूर्त्यात्मा होते हैं और कोई साक्षात् शिवके समीप विचरनेवाले होते हैं॥ ६३-६४॥

मूर्त्यात्माओंमें भी कोई तो शिवस्वरूप हो छहों अध्वाओंके ऊपर स्थित होते हैं, कोई अध्वाओंके मध्यमार्गमें महेश्वर होकर रहते हैं और कोई निम्नभागमें रुद्ररूपसे स्थित होते हैं॥ ६५॥

शिवके समीपवर्ती स्वरूपमें भी मायासे परे होनेके कारण उत्कृष्ट, मध्यम और निकृष्टके भेदसे तीन श्रेणियाँ होती हैं—वहाँ निम्न स्थानमें आत्माकी स्थिति है, मध्यम स्थानमें अन्तरात्माकी स्थिति है और जो सबसे उत्कृष्ट श्रेणीका स्थान है, उसमें परमात्माकी स्थिति है। ये ही क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कहलाते हैं। कोई पशु (जीव) परमात्मपदका आश्रय लेनेवाले होते हैं, कोई अन्तरात्मपदपर और आत्मपदपर प्रतिष्ठित होते हैं॥ ६६—६७१/२॥

शैव शान्त्यतीत पदका तथा माहेश्वरगण शान्तिपदका सेवन करते हैं। विद्यापदमें रौद्रगण एवं प्रतिष्ठापदमें वैष्णव स्थितिलाभ करते हैं। निवृत्तिपदमें ब्रह्माजी तथा उनके शरीरसे उत्पन्न दिव्यात्माएँ निवास करती हैं॥ ६८-६९॥

अष्टविध देवयोनियाँ प्रधान मानी गयी हैं, मनुष्ययोनि मध्यम हैं और पंचविध पशुयोनियाँ अधम कही गयी हैं। इस प्रकार ये चौदह योनियाँ कही गयी हैं॥ ७०॥

संसारी जीवका उत्कृष्ट तथा अपकृष्ट भाव ही वस्तुतः उसका स्वाभाविक मल कहा गया है, जिस प्रकार खायी गयी भोज्य वस्तुकी पूर्वावस्थाको आम कहते हैं और खानेके उपरान्त उसी वस्तुकी पक्व संज्ञा हो जाती है। उसी प्रकार मल भी पक्व और आमके भेदसे दो प्रकारका होता है, यह द्विविध मल ही [जन्म-मरणादिरूप] संसारका कारण होता है॥ ७११/२॥

अपक्व मल जीवगणोंकी अधोगतिका कारण होता है और पक्व मल उनकी क्रमशः ऊर्ध्वगतिका कारण बनता है। ये पशु जीवात्मा एक, दो तथा तीन मलोंसे युक्त होते हैं। एक मलसे युक्त जीव यहाँ श्रेष्ठ कहा गया है, दो मलोंवाला मध्यम तथा तीन मलवाला जीव अधम कहा गया है। ये मलावृत जीव उत्तरोत्तर अधिष्ठित हैं। तीन मलवालोंपर दो मलवाले तथा उनपर एक मलवाले अधिष्ठित होते हैं। इस प्रकार मलरूप उपाधिके कारण संसारी जीवोंका भेद परिकल्पित किया गया है॥ ७२—७४॥

एक, दो तथा तीन मलवाले सभी जीवोंपर एकमात्र भगवान् शिवका आधिपत्य है। यह जगत् जिस प्रकार अशिवात्मक अर्थात् अभद्र होकर भी शिवसे अधिष्ठित है, उसी प्रकार अरुद्रात्मक होकर भी रुद्रोंद्वारा अधिष्ठित होता है। [समस्त] ब्रह्माण्डात्मिका यह महाभूमि शतरुद्र आदिके द्वारा अधिष्ठित है तथा उनसे अधिष्ठित यह महाभूमि मायासे आवेष्टित और अन्तरिक्षसे निरन्तर आवृत तथा अंगुष्ठमात्र परिमाणवाले अमरेशादि देवगणोंसे अधिष्ठित है॥ ७५—७७॥

महामायापर्यन्त यह द्युलोक वाम आदि भुवनपतियोंके द्वारा अधिष्ठित है तथा साक्षात् सम्बन्ध न होनेपर भी [पूर्वोक्त] षडध्वाके अन्तर्वर्ती देवगणोंसे भी अधिष्ठित है। वामादि दिविषद्, अमरेशादि अन्तरिक्षसद् तथा शतरुद्रादि पृथिवीषद्—इन देवगणोंका देवोपासक [मुनिगण] सर्वदा स्तवन करते रहते हैं॥ ७८-७९॥

संसाररोगके कारणभूत, [अल्प पक्व,] पक्व तथा

अपक्व—इन तीनों मलोंके द्वारा मनुष्य [जन्म-मरणरूप] संसाररोगसे ग्रस्त होते हैं॥ ८०॥

इस संसाररोगकी औषधि ज्ञानके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। कल्याणस्वरूप, परमकारण भगवान् शिव ही आज्ञारूप औषधि प्रदान करनेवाले वैद्य हैं॥ ८१॥

भगवान् शिव तो अनायास ही समस्त पशुओंको बन्धनसे मुक्त करनेमें समर्थ हैं। फिर वे उन्हें बन्धनमें डाले रखकर क्यों दुःख देते हैं? यहाँ ऐसा विचार या संदेह नहीं करना चाहिये; क्योंकि सारा संसार दुःखरूप ही है, ऐसा विचारवानोंका निश्चित सिद्धान्त है। जो स्वभावतः दुःखमय है, वह दुःखरहित कैसे हो सकता है। स्वभावमें उलट-फेर नहीं हो सकता॥ ८२-८३॥

वैद्यकी दवासे रोग अरोग नहीं होता। वह रोगपीड़ित मनुष्यका अपनी दवासे सुखपूर्वक उद्धार कर देता है। इसी प्रकार जो स्वभावतः मलिन और स्वभावसे ही दुखी हैं, उन पशुओंको अपनी आज्ञारूपी ओषधि देकर शिव दुःखसे छुड़ा देते हैं। रोग होनेमें वैद्य कारण नहीं है, परंतु संसारकी उत्पत्तिमें शिव कारण हैं। अतः रोग और वैद्यके दृष्टान्तसे शिव और संसारके दार्ष्टान्तमें समानता नहीं है। इसलिये इसके द्वारा शिवपर दोषारोपण नहीं किया जा सकता। जब दुःख स्वभाव-सिद्ध है, तब शिव उसके कारण कैसे हो सकते हैं? जीवोंमें जो स्वाभाविक मल है, वही उन्हें संसारके चक्रमें डालता है॥ ८४—८७॥

विद्वानोंका कहना है कि संसारका कारणभूत जो मल—अचेतन माया आदि है, वह शिवका सांनिध्य प्राप्त किये बिना स्वयं चेष्टाशील नहीं हो सकता। जैसे चुम्बकमणि लोहेका सांनिध्य पाकर ही उपकारक होता है—लोहेको खींचता है, उसी प्रकार शिव भी जड माया आदिका सांनिध्य पाकर ही उसके उपकारक होते हैं, उसे सचेष्ट बनाते हैं॥ ८८-८९॥

उनके विद्यमान सांनिध्यको अकारण हटाया नहीं जा सकता। अतः जगत्‌के लिये जो सदा अज्ञात हैं, वे शिव ही इसके अधिष्ठाता हैं। शिवके बिना यहाँ कोई भी प्रवृत्त (चेष्टाशील) नहीं होता, उनकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। उनसे प्रेरित होकर ही यह सारा जगत् विभिन्न प्रकारकी चेष्टाएँ करता है, तथापि वे शिव कभी मोहित नहीं होते॥ ९०-९१॥

उनकी आज्ञारूपिणी जो शक्ति है, वही सबका नियन्त्रण करती है। उसका सब ओर मुख है। उसीने सदा इस सम्पूर्ण दृश्यप्रपंचका विस्तार किया है, तथापि उसके दोषसे शिव दूषित नहीं होते। यह समस्त जगत् शिवसे प्रेरित होता है, किंतु इससे शिवका स्वस्वरूप विकृत नहीं होता। प्रेरणा अथवा शासनका कार्य शिवकी आज्ञाके द्वारा सम्पन्न होता है॥ ९२-९३॥

जो दुर्बुद्धि मानव मोहवश इसके विपरीत मान्यता रखता है, वह नष्ट हो जाता है। शिवकी शक्तिके वैभवसे ही संसार चलता है, तथापि इससे शिव दूषित नहीं होते॥ ९४॥

इसी समय आकाशसे शरीररहित वाणी सुनायी दी—'**सत्यम् ओम् अमृतं सौम्यम्**'* इन पदोंका वहाँ स्पष्ट उच्चारण हुआ, उसे सुनकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। उनके समस्त संशयोंका निवारण हो गया तथा उन मुनियोंने विस्मित हो प्रभु पवनदेवको प्रणाम किया। इस प्रकार उन मुनियोंको संदेहरहित करके भी वायुदेवने यह नहीं माना कि इन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया। 'इनका ज्ञान अभी प्रतिष्ठित नहीं हुआ है' ऐसा समझकर ही वे इस प्रकार बोले—॥ ९५—९७॥

वायुदेवताने कहा—मुनियो! परोक्ष और अपरोक्षके भेदसे ज्ञान दो प्रकारका माना गया है। परोक्ष ज्ञानको अस्थिर कहा जाता है और अपरोक्ष ज्ञानको सुस्थिर। युक्तिपूर्ण उपदेशसे जो ज्ञान होता है, उसे विद्वान् पुरुष परोक्ष कहते हैं। वही श्रेष्ठ अनुष्ठानसे अपरोक्ष हो जायगा। अपरोक्ष ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं होता, ऐसा निश्चय करके तुमलोग आलस्यरहित हो श्रेष्ठ अनुष्ठानकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करो॥ ९८—१००॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें ज्ञानोपदेश नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

* इन पदोंका सम्मिलित अर्थ इस प्रकार है—हाँ, वह सत्य है, अमृतमय है और सौम्य है।

बत्तीसवाँ अध्याय

परम धर्मका प्रतिपादन, शैवागमके अनुसार पाशुपत ज्ञान तथा उसके साधनोंका वर्णन

ऋषियोंने पूछा—वायुदेव! वह कौन-सा श्रेष्ठ अनुष्ठान है, जो मोक्षस्वरूप ज्ञानको अपरोक्ष कर देता है? उसको और उसके साधनोंको आज आप हमें बतानेकी कृपा करें॥ १॥

वायुने कहा—भगवान् शिवका बताया हुआ जो परम धर्म है, उसीको श्रेष्ठ अनुष्ठान कहा गया है। उसके सिद्ध होनेपर साक्षात् मोक्षदायक शिव अपरोक्ष हो जाते हैं॥ २॥

वह परम धर्म पाँचों पर्वोंके कारण क्रमशः पाँच प्रकारका जानना चाहिये। उन पर्वोंके नाम हैं—क्रिया, तप, जप, ध्यान और ज्ञान। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं, उन उत्कृष्ट साधनोंसे सिद्ध हुआ धर्म परम धर्म माना गया है। जहाँ परोक्ष ज्ञान भी अपरोक्ष ज्ञान होकर मोक्षदायक होता है॥ ३-४॥

वैदिक धर्म दो प्रकारके बताये गये हैं—परम और अपरम। 'धर्म' शब्दसे प्रतिपाद्य अर्थमें हमारे लिये श्रुति ही प्रमाण है। योगपर्यन्त जो परम धर्म है, वह श्रुतियोंके शिरोभूत उपनिषद्‌में वर्णित है और जो अपरम धर्म है, वह उसकी अपेक्षा नीचे श्रुतिके मुख-भागसे अर्थात् संहिता-मन्त्रोंद्वारा प्रतिपादित हुआ है॥ ५-६॥

जिसमें पशु (बद्ध) जीवोंका अधिकार नहीं है, वह वेदान्तवर्णित धर्म 'परम धर्म' माना गया है। उससे भिन्न जो यज्ञ-यागादि हैं, उसमें सबका अधिकार होनेसे वह साधारण या 'अपरम धर्म' कहलाता है। जो अपरम धर्म है, वही परम धर्मका साधन है। धर्मशास्त्र आदिके द्वारा उसका सम्यक् रूपसे विस्तारपूर्वक सांगोपांग निरूपण हुआ है॥ ७-८॥

भगवान् शिवके द्वारा प्रतिपादित जो परम धर्म है, उसीका नाम श्रेष्ठ अनुष्ठान है। इतिहास और पुराणोंद्वारा उसका किसी प्रकार विस्तार हुआ है, परंतु शैव-शास्त्रोंद्वारा उसके विस्तारका सांगोपांग निरूपण किया गया है। वहीं उसके स्वरूपका सम्यक् रूपसे प्रतिपादन हुआ है। साथ ही उसके संस्कार और अधिकार भी सम्यक् रूपसे विस्तारपूर्वक बताये गये हैं॥ ९-१०॥

शैव-आगमके दो भेद हैं—श्रौत और अश्रौत। जो श्रुतिके सार तत्त्वसे सम्पन्न है, वह संस्कारसम्पन्न श्रौत है; और जो स्वतन्त्र है, वह अश्रौत माना गया है। स्वतन्त्र शैवागम पहले दस प्रकारका था, फिर अठारह प्रकारका हुआ। वह कामिका आदि संज्ञाओंसे सिद्ध होकर सिद्धान्त नाम धारण करता है॥ ११-१२॥

श्रुतिसारमय जो शैव-शास्त्र है, उसका विस्तार सौ करोड़ श्लोकोंमें किया गया है। उसीमें उत्कृष्ट 'पाशुपत व्रत' और 'पाशुपत ज्ञान' का वर्णन किया गया है। युग-युगमें होनेवाले शिष्योंको उसका उपदेश देनेके लिये भगवान् शिव स्वयं ही योगाचार्यरूपसे जहाँ-तहाँ अवतीर्ण हो उसका प्रचार करते हैं॥ १३-१४॥

इस शैव-शास्त्रको संक्षिप्त करके उसके सिद्धान्तका प्रवचन करनेवाले मुख्यतः चार महर्षि हैं—रुरु, दधीच, अगस्त्य और महायशस्वी उपमन्यु। उन्हें संहिताओंका प्रवर्तक 'पाशुपत' जानना चाहिये। उनकी संतान-परम्परामें सैकड़ों-हजारों गुरुजन हो चुके हैं॥ १५-१६॥

पाशुपत सिद्धान्तमें जो परम धर्म बताया गया है, वह चर्या* आदि चार पादोंके कारण चार प्रकारका माना गया है। उन चारोंमें जो पाशुपत योग है, वह दृढ़तापूर्वक शिवका साक्षात्कार करानेवाला है। इसलिये पाशुपत योग ही श्रेष्ठ अनुष्ठान माना गया है। उसमें भी ब्रह्माजीने जो उपाय बताया है, उसका वर्णन किया जाता है॥ १७-१८॥

भगवान् शिवके द्वारा परिकल्पित जो 'नामाष्टकमय योग' है, उसके द्वारा सहसा 'शैवी प्रज्ञा' का उदय होता है। उस प्रज्ञाद्वारा पुरुष शीघ्र ही सुस्थिर परम ज्ञान प्राप्त कर लेता है। जिसके हृदयमें वह ज्ञान प्रतिष्ठित हो जाता है, उसके ऊपर भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं॥ १९-२०॥

उनके कृपा-प्रसादसे वह परम योग सिद्ध होता है,

* चर्या, विद्या, क्रिया और योग—ये चार पाद हैं।

जो शिवका अपरोक्ष दर्शन कराता है। शिवके अपरोक्ष ज्ञानसे संसार-बन्धनका कारण दूर हो जाता है। इस प्रकार संसारसे मुक्त हुआ पुरुष शिवके समान हो जाता है। यह ब्रह्माजीका बताया हुआ उपाय है। उसीका पृथक् वर्णन करते हैं॥ २१-२२॥

शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह (ब्रह्मा), संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा—ये मुख्यत: आठ नाम हैं। ये आठों मुख्य नाम शिवके प्रतिपादक हैं॥ २३॥

इनमेंसे आदिके पाँच नाम क्रमश: शान्त्यतीता आदि पाँच कलाओंसे सम्बन्ध रखते हैं और उन पाँच उपाधियोंको ग्रहण करनेसे सदाशिव आदिके बोधक होते हैं। उपाधिकी निवृत्ति होनेपर इन भेदोंकी निवृत्ति हो जाती है। वह पद तो नित्य है। किंतु उस पदपर प्रतिष्ठित होनेवाले अनित्य कहे गये हैं। पदोंका परिवर्तन होनेपर पदवाले पुरुष मुक्त हो जाते हैं॥ २४—२६॥

परिवर्तनके अनन्तर पुन: दूसरे आत्माओंको उस पदकी प्राप्ति बतायी जाती है और उन्हींके वे आदिके पाँच नाम नियत होते हैं। उपादान आदिके योगसे अन्य तीन नाम (संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा) भी त्रिविध उपाधिका प्रतिपादन करते हुए शिवमें ही अनुगत होते हैं॥ २७-२८॥

अनादि मलका संसर्ग उनमें पहलेसे ही नहीं है तथा वे स्वभावत: अत्यन्त शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये 'शिव' कहलाते हैं अथवा वे ईश्वर समस्त कल्याणमय गुणोंके एकमात्र घनीभूत विग्रह हैं। इसलिये शिवतत्त्वके अर्थको जाननेवाले श्रेष्ठ महात्मा उन्हें शिव कहते हैं॥ २९-३०॥

तेईस तत्त्वोंसे परे जो प्रकृति बतायी गयी है, उससे भी परे पचीसवें तत्त्वके स्थानमें पुरुषको बताया गया है, जिसे वेदके आदिमें ओंकाररूप कहा गया है। ओंकार और पुरुषमें वाच्य-वाचक-भाव सम्बन्ध है॥ ३१½॥

उसके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान एकमात्र वेदसे ही होता है। वे ही वेदान्तमें प्रतिष्ठित हैं। किंतु वह प्रकृतिसे संयुक्त है; अत: उससे भी परे जो परम पुरुष है, उसका नाम 'महेश्वर' है; क्योंकि प्रकृति और पुरुष दोनोंकी प्रवृत्ति उसीके अधीन है अथवा यह जो अविनाशी त्रिगुणमय तत्त्व है, इसे प्रकृति समझना चाहिये। इस प्रकृतिको माया कहते हैं। यह माया जिनकी शक्ति है, उन मायापतिका नाम 'महेश्वर' है॥ ३२—३४॥

महेश्वरके सम्बन्धसे जो माया अथवा प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करते हैं, वे अनन्त [या 'विष्णु'] कहे गये हैं। वे ही कालात्मा और परमात्मा आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। उन्हींको स्थूल और सूक्ष्मरूप भी कहा गया है। दु:ख अथवा दु:खके हेतुका नाम 'रुत्' है। जो प्रभु उसका द्रावण करते हैं—उसे मार भगाते हैं, उन परम कारण शिवको साधु पुरुष 'रुद्र' कहते हैं॥ ३५-३६॥

कला, काल आदि तत्त्वोंसे लेकर भूतोंमें पृथ्वी-पर्यन्त जो छत्तीस* तत्त्व हैं, उन्हींसे शरीर बनता है। उस शरीर, इन्द्रिय आदिमें जो तन्द्रारहित हो व्यापकरूपसे स्थित हैं, वे भगवान् शिव 'रुद्र' कहे गये। जगत्‌के पितारूप जो मूर्त्यात्मा हैं, उन सबके पिताके रूपमें भगवान् शिव विराजमान हैं; इसलिये वे 'पितामह' कहे गये हैं॥ ३७-३८॥

जैसे रोगोंके निदानको जाननेवाला वैद्य तदनुकूल उपायों और दवाओंसे रोगको दूर कर देता है, उसी तरह ईश्वर लययोगाधिकारसे सदा जड-मूलसहित संसार-रोगकी निवृत्ति करते हैं; अत: सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता विद्वान् उन्हें 'संसारवैद्य' कहते हैं॥ ३९-४०॥

दस विषयोंके ज्ञानके लिये दसों इन्द्रियोंके होते हुए भी जीव तीनों कालोंमें होनेवाले स्थूल-सूक्ष्म पदार्थोंको पूर्णरूपसे नहीं जानते; क्योंकि मायाने ही उन्हें मलसे आवृत कर दिया है। परंतु भगवान् सदाशिव सम्पूर्ण विषयोंके ज्ञानके साधनभूत इन्द्रियादिके न होनेपर भी जो वस्तु जिस रूपमें स्थित है, उसे उसी रूपमें ठीक-ठीक जानते हैं; इसलिये वे 'सर्वज्ञ' कहलाते हैं। जो इन सभी उत्तम गुणोंसे नित्य संयुक्त होनेके कारण सबके आत्मा हैं, जिनके लिये अपनेसे अतिरिक्त किसी दूसरे आत्माकी सत्ता नहीं है, वे भगवान् शिव स्वयं ही 'परमात्मा' हैं॥ ४१—४४॥

* कला, काल, नियति, विद्या, राग प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पंचतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्त:करण, पाँच शब्द आदि विषय तथा आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी—ये छत्तीस तत्त्व हैं।

आचार्यकी कृपासे इन आठों नामोंका अर्थसहित उपदेश पाकर शिव आदि पाँच नामोंद्वारा निवृत्ति आदि पाँचों कलाओंकी ग्रन्थिका क्रमशः छेदन और गुणके अनुसार शोधन करके गुणित, उद्‌घातयुक्त और अनिरुद्ध प्राणोंद्वारा हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य और ब्रह्मरन्ध्रसे युक्त पुर्यष्टकका भेदन करके सुषुम्णा नाड़ीद्वारा अपने आत्माको सहस्रार चक्रके भीतर ले जाय। [उसका शुभ्रवर्ण है। वह तरुण सूर्यके सदृश रक्तवर्ण केसरके द्वारा रंजित और अधोमुख है। उसके पचास दलोंमें स्थित 'अ' से लेकर 'क्ष' तक सबिन्दु अक्षर-कर्णिकाके बीचमें गोलाकार चन्द्रमण्डल है। यह चन्द्रमण्डल छत्राकारमें स्थित है। उसने एक ऊर्ध्वमुख द्वादश-दल कमलको आवृत कर रखा है। उस कमलकी कर्णिकामें विद्युत्-सदृश अकथादि त्रिकोण यन्त्र है। उस यन्त्रके चारों ओर सुधासागर होनेके कारण वह मणिद्वीपके आकारका हो गया है। उस द्वीपके मध्यभागमें मणिपीठ है। उसके बीचमें नाद-बिन्दुके ऊपर हंसपीठ है। उसपर परम शिव विराजमान हैं।] उक्त चन्द्रमण्डलके ऊपर स्थित शिवके तेजमें अपने आत्माको संयुक्त करे॥४५—४८॥

इस प्रकार जीवको शिवमें लीन करके शाक्त अमृतवर्षाके द्वारा अपने शरीरके अभिषिक्त होनेकी भावना करे। तत्पश्चात् अमृतमय विग्रहवाले अपने आत्माको ब्रह्मरन्ध्रसे उतारकर हृदयमें द्वादश-दल कमलके भीतर स्थित चन्द्रमासे परे श्वेत कमलपर अर्धनारीश्वर रूपमें विराजमान मनोहर आकृतिवाले निर्मल देव भक्तवत्सल महादेव शंकरका चिन्तन करे। उनकी अंगकान्ति शुद्धस्फटिक मणिके समान उज्ज्वल है। वे शीतल प्रभासे युक्त और प्रसन्न हैं॥ ४९—५१॥

इस प्रकार मन-ही-मन ध्यान करके शान्तचित्त हुआ मनुष्य शिवके आठ नामोंद्वारा ही भावमय पुष्पोंसे उनकी पूजा करे। पूजनके अन्तमें पुनः प्राणायाम करके चित्तको भलीभाँति एकाग्र रखते हुए शिवनामाष्टकका जप करे। फिर भावनाद्वारा नाभिमें आठ आहुतियोंका हवन करके पूर्णाहुति एवं नमस्कारपूर्वक आठ फूल चढ़ाकर अन्तिम अर्चना पूरी करके चुल्लूमें लिये हुए जलको आत्मसमर्पणकी भावनासे शिवके चरणोंमें समर्पित कर दे॥ ५२—५४१/२॥

इस प्रकार करनेसे शीघ्र ही मंगलमय पाशुपत ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है और साधक उस ज्ञानकी सुस्थिरता पा लेता है। साथ ही वह परम उत्तम पाशुपत-व्रत एवं परम योगको पाकर मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें श्रेष्ठानुष्ठानवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

पाशुपत-व्रतकी विधि और महिमा तथा भस्मधारणकी महत्ता

ऋषि बोले—भगवन्! हम परम उत्तम पाशुपत-व्रतको सुनना चाहते हैं, जिसका अनुष्ठान करके ब्रह्मा आदि सब देवता पाशुपत माने गये हैं॥ १॥

वायुदेवने कहा—मैं तुम सब लोगोंको गोपनीय पाशुपत-व्रतका रहस्य बताता हूँ, जिसका अथर्ववेदके शीर्षभागमें वर्णन है तथा जो सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ २॥

चित्रासे युक्त पौर्णमासी इसके लिये उत्तम काल है। शिवके द्वारा अनुगृहीत स्थान ही इसके लिये उत्तम देश है अथवा क्षेत्र, बगीचे आदि तथा वनप्रान्त भी शुभ एवं प्रशस्त देश हैं। पहले त्रयोदशीको भलीभाँति स्नान करके नित्यकर्म सम्पन्न कर ले। फिर अपने आचार्यकी आज्ञा लेकर उनका पूजन और नमस्कार करके [व्रतके अंगरूपसे देवताओंकी] विशेष पूजा करे। उपासकको स्वयं श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत, श्वेत पुष्प और श्वेत चन्दन धारण करना चाहिये॥ ३—५॥

वह कुशके आसनपर बैठकर हाथमें मुट्ठीभर कुश ले पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके तीन प्राणायाम करनेके पश्चात् भगवान् शिव और देवी पार्वतीका ध्यान करे। फिर यह संकल्प करे कि मैं शिवशास्त्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार यह पाशुपत-व्रत करूँगा। वह जबतक शरीर गिर न जाय, तबतकके लिये अथवा बारह, छः या तीन वर्षोंके लिये अथवा बारह, छः, तीन या एक महीनेके लिये अथवा बारह, छः, तीन या एक दिनके लिये इस व्रतकी दीक्षा ले॥ ६—९॥

संकल्प करनेके बाद विरजा होमके लिये विधिवत् अग्निकी स्थापना करके क्रमशः घी, समिधा और चरुसे हवन करके पूर्णाहुति सम्पन्न करे। तत्पश्चात् तत्त्वोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे मूलमन्त्रद्वारा उन समिधा आदि सामग्रियोंकी ही फिर आहुतियाँ दे॥ १०-११॥

उस समय वह बारंबार यह चिन्तन करे कि 'मेरे शरीरमें जो ये तत्त्व हैं, सब शुद्ध हो जायँ।' उन तत्त्वोंके नाम इस प्रकार हैं—पाँचों भूत, उनकी पाँचों तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच विषय, त्वचा आदि सात धातुएँ, प्राण आदि पाँच वायु, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल, माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति-तत्त्व और शिव-तत्त्व—ये क्रमशः तत्त्व कहे गये हैं॥ १२—१५॥

विरजा मन्त्रोंसे आहुति करके होता रजोगुणरहित शुद्ध हो जाता है। फिर शिवका अनुग्रह पाकर वह ज्ञानवान् होता है॥ १६॥

तदनन्तर गोबर लाकर उसकी पिण्डी बनाये। फिर उसे मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रित करके अग्निमें डाल दे। इसके बाद इसका प्रोक्षण करके उस दिन व्रती केवल हविष्य खाकर रहे। जब रात बीतकर प्रातःकाल आये, तब चतुर्दशीमें पुनः पूर्वोक्त सब कृत्य करे। उस दिन शेष समय निराहार रहकर ही बिताये॥ १७-१८॥

फिर पूर्णिमाको प्रातःकाल इसी तरह होमपर्यन्त कर्म करके रुद्राग्निका उपसंहार करे। तदनन्तर यत्नपूर्वक उसमेंसे भस्म ग्रहण करे। इसके बाद साधक चाहे जटा रखा ले, चाहे सारा सिर मुड़ा ले या चाहे तो केवल सिरपर शिखा धारण करे। इसके बाद स्नान करके यदि वह लोकलज्जासे ऊपर उठ गया हो तो दिगम्बर हो जाय। अथवा गेरुआ वस्त्र, मृगचर्म या फटे-पुराने चीथड़ेको ही धारण कर ले। एक वस्त्र धारण करे या वल्कल पहनकर रहे। कटिमें मेखला धारण करके हाथमें दण्ड ले ले॥ १९—२१॥

तदनन्तर दोनों पैर धोकर आचमन करे। विरजाग्निसे प्रकट हुए भस्मको एकत्र करके **'अग्निरिति भस्म'** इत्यादि छः अथर्ववेदीय मन्त्रोंद्वारा उसे अपने शरीरमें लगाये। मस्तकसे लेकर पैरतक सभी अंगोंमें उसे अच्छी तरह मल ले॥ २२-२३॥

तत्पश्चात् इसी क्रमसे प्रणव या शिवमन्त्रद्वारा सर्वांगमें भस्म रमाकर **'त्र्यायुषम्'** इत्यादि मन्त्रोंसे ललाट आदि अंगोंमें त्रिपुण्ड्रकी रचना करे। इस प्रकार शिवभावको प्राप्त हो शिवयोगका आचरण करे॥ २४-२५॥

तीनों संध्याओंके समय ऐसा ही करना चाहिये। यही 'पाशुपत-व्रत' है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। यह जीवोंके पशुभावको निवृत्त कर देता है। इस प्रकार पाशुपत-व्रतके अनुष्ठानद्वारा पशुत्वका परित्याग करके लिंगमूर्ति सनातन महादेवजीका पूजन करना चाहिये॥ २६-२७॥

यदि वैभव हो तो सोनेका अष्टदल कमल बनवाये, जिसमें नौ प्रकारके रत्न जड़े गये हों। उसमें कर्णिका और केसर भी हों। ऐसे कमलको भगवान्‌का आसन बनाये। धनाभाव होनेपर लाल या सफेद कमलके फूलका आसन अर्पित करे। वह भी न मिले तो केवल भावनामय कमल समर्पित करे॥ २८-२९॥

उस कमलकी कर्णिकाके मध्यमें पीठिकासहित छोटेसे स्फटिकमणिमय लिंगकी स्थापना करके क्रमशः विधिपूर्वक उसका पूजन करे॥ ३०॥

उस लिंगका शोधन करके पहले शास्त्रीय विधिके अनुसार उसकी स्थापना कर लेनी चाहिये। फिर आसन दे पंचमुखके प्रकारसे मूर्तिकी कल्पना करके पंचगव्य आदिसे पूर्ण, अपने वैभवके अनुसार संगृहीत, भरे हुए सुवर्णनिर्मित कलशोंसे उस मूर्तिको स्नान कराये॥ ३१-३२॥

फिर सुगन्धित द्रव्य, कपूर, चन्दन और कुंकुम

आदिसे वेदीसहित भूषणभूषित शिवलिंगका अनुलेपन करके बिल्वपत्र, लाल कमल, श्वेत कमल, नील कमल, अन्यान्य सुगन्धित पुष्प, पवित्र एवं उत्तम पत्र तथा दूर्वा और अक्षत आदि विचित्र उपचार चढ़ाकर यथाप्राप्त सामग्रियोंद्वारा महापूजनकी विधिसे उसमें मूर्तिकी अभ्यर्चना करे॥ ३३—३५॥

फिर धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। वैभवसम्पन्न होनेपर इस तरह भगवान् शिवको उत्तम वस्तुएँ निवेदन करके अपना कल्याण करे॥ ३६॥

उस व्रतमें विशेषतः वे सभी वस्तुएँ देनी चाहिये, जो अपनेको अधिक प्रिय हों, श्रेष्ठ हों, और न्यायपूर्वक उपार्जित हुई हों। हे द्विजो! बिल्वपत्र, उत्पल और कमलोंकी संख्या एक-एक हजार होनी चाहिये। अन्य पत्रों और फूलोंमेंसे प्रत्येककी संख्या एक सौ आठ होनी चाहिये। इन सामग्रियोंमें भी बिल्वपत्रको विशेष यत्नपूर्वक जुटाये। उसे भूलकर भी न छोड़े॥ ३७—३८१/२॥

सोनेका बना हुआ एक ही कमल एक सहस्र कमलोंसे श्रेष्ठ बताया गया है। नील कमल आदिके विषयमें भी यही बात है। ये सब बिल्वपत्रोंके समान ही महत्त्व रखते हैं। अन्य पुष्पोंके लिये कोई नियम नहीं है। वे जितने मिलें, उतने ही चढ़ाने चाहिये। अष्टांग अर्घ्य उत्कृष्ट माना जाता है। धूप और आलेप (चन्दन)- के विषयमें विशेष बात यह है॥ ३९—४०१/२॥

'वामदेव' नामक मुखमें चन्दन, 'तत्पुरुष' नामक मुखमें हरिताल और 'ईशान' नामक मुखमें भस्म लगाना चाहिये। कोई-कोई भस्मकी जगह आलेपनका विधान करते हैं। दूसरे प्रकारके धूपका विधान होनेसे कुछ लोग प्रसिद्ध धूपका निषेध करते हैं। 'अघोर' नामक मुखके लिये श्वेत अगुरुका धूप देना चाहिये। 'तत्पुरुष' नामक मुखके लिये कृष्ण अगुरुके धूपका विधान है। 'वामदेव' के लिये सौगन्धिक, 'सद्योजात' मुखके लिये गुग्गुल तथा 'ईशान' के लिये भी उशीर आदि धूपको विशेषरूपसे देना चाहिये॥ ४१—४३॥

शर्करा, मधु, कपूर, कपिला गायका घी, चन्दनका चूरा तथा अगुरु नामक काष्ठ आदिका चूर्ण—इन सबको मिलाकर जो धूप तैयार किया जाता है, उसे सब [देवताओं]-के लिये सामान्यरूपसे उपयोगके योग्य बताया गया है॥ ४४॥

कपूरकी बत्ती और घीके दीपक जलाकर दीपमाला देनी चाहिये। तत्पश्चात् प्रत्येक मुखके लिये पृथक्-पृथक् अर्घ्य और आचमन देनेका विधान है॥ ४५॥

प्रथम आवरणमें गणेश और कार्तिकेयकी पूजा करनी चाहिये। उनके साथ ही बाह्य अंगोंकी भी पूजा आवश्यक है। प्रथमावरणकी पूजा हो जानेपर द्वितीयावरणमें चक्रवर्ती विघ्नेश्वरोंका पूजन करना चाहिये। तृतीयावरणमें भव आदि अष्टमूर्तियोंकी पूजाका विधान है॥ ४६-४७॥

वहीं महादेव आदि एकादश मूर्तियोंका भी पूजन आवश्यक है। चौथे आवरणमें सभी गणेश्वर पूजनीय हैं। पंचमावरणमें कमलके बाह्यभागमें दस दिक्पालों, उनके अस्त्रों और अनुचरोंकी क्रमशः पूजा करनी चाहिये॥ ४८-४९॥

वहीं ब्रह्माके मानस पुत्रोंकी, समस्त ज्योतिर्गणोंकी, सब देवी-देवताओंकी, सभी आकाशचारियोंकी, पातालवासियोंकी, अखिल मुनीश्वरोंकी, योगियोंकी, सब यज्ञोंकी, द्वादश सूर्योंकी, मातृकाओंकी, गणोंसहित क्षेत्रपालोंकी और इस समस्त चराचर जगत्‌की पूजा करनी चाहिये। इन सबको शंकरजीकी विभूति मानकर शिवकी प्रसन्नताके लिये ही इनका पूजन करना उचित है॥ ५०—५२॥

इस प्रकार आवरणपूजाके पश्चात् परमेश्वर शिवका पूजन करके उन्हें भक्तिपूर्वक घृत और व्यंजनसहित मनोहर हविष्य निवेदन करना चाहिये। मुखशुद्धिके लिये आवश्यक उपकरणोंसहित ताम्बूल देकर नाना प्रकारके फूलोंसे पुनः इष्टदेवका शृंगार करे। आरती उतारे। तत्पश्चात् पूजनका शेष कृत्य पूर्ण करे। पानचषक तथा उपकारक सामग्रियोंसहित शय्या समर्पित करे॥ ५३—५५॥

शय्यापर चन्द्रमाके समान चमकीला हार दे। राजोचित मनोहर वस्तुएँ सब प्रकारसे संचित करके दे। स्वयं पूजन करे, दूसरोंसे भी कराये तथा प्रत्येक पूजनमें आहुति दे। इसके बाद व्योमकेश भगवान् शिवकी स्तुति-प्रार्थना

करके पंचाक्षरी विद्याको जपे॥ ५६-५७॥

परिक्रमा और प्रणाम करके अपने-आपको समर्पित करे। तदनन्तर इष्टदेवके सामने ही गुरु और ब्राह्मणकी पूजा करे। इसके बाद अर्घ्य और आठ फूल देकर पूजित लिंग या मूर्तिसे देवताका विसर्जन करे। फिर अग्निदेवका भी विसर्जन करके पूजा समाप्त करे॥ ५८-५९॥

मनुष्यको चाहिये कि प्रतिदिन इसी प्रकार पूर्वोक्तरूपसे सेवा करे। पूजनके अन्तमें [सुवर्णमय] कमल तथा अन्य सब उपकरणोंसहित उस शिवलिंगको गुरुके हाथमें दे दे अथवा शिवालयमें स्थापित कर दे॥ ६०१/२॥

गुरुओं, ब्राह्मणों तथा विशेषत: व्रतधारियोंकी पूजा करके सामर्थ्य हो तो भक्त ब्राह्मणों तथा दीनों और अनाथोंको भी संतुष्ट करे। स्वयं उपवासमें असमर्थ होनेपर फल-मूल खाकर या दूध पीकर रहे अथवा भिक्षान्नभोजी हो या एक समय भोजन करे। रातको प्रतिदिन परिमित भोजन करे और पवित्रभावसे भूमिपर ही सोये॥ ६१—६३॥

भस्मपर, तृणपर अथवा चीर या मृगचर्मपर शयन करे। प्रतिदिन ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए इस व्रतका अनुष्ठान करे। यदि शक्ति हो तो रविवारके दिन, आर्द्रा नक्षत्रमें, दोनों पक्षोंकी पूर्णिमा और अमावास्याको, अष्टमीको तथा चतुर्दशीको उपवास करे॥ ६४-६५॥

मन, वाणी और क्रियाद्वारा सम्पूर्ण प्रयत्नसे पाखण्डी, पतित, रजस्वला स्त्री, सूतकमें पड़े हुए लोग तथा अन्त्यज आदिके सम्पर्कका त्याग करे। निरन्तर क्षमा, दान, दया, सत्यभाषण और अहिंसामें तत्पर रहे। संतुष्ट और शान्त रहकर जप और ध्यानमें लगा रहे॥ ६६-६७॥

तीनों काल स्नान करे अथवा भस्म-स्नान कर ले। मन, वाणी और क्रियाद्वारा विशेष पूजा किया करे। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ? व्रतधारी पुरुष कभी अशुभ आचरण न करे। प्रमादवश यदि वैसा आचरण बन जाय तो उसके गुरु-लाघवका विचार करके उसके दोषका निवारण करनेके लिये पूजा, होम और जप आदिके द्वारा उचित प्रायश्चित्त करे। व्रतकी समाप्तिपर्यन्त भूलकर भी अशुभ आचरण न करे॥ ६८—७०॥

सम्पत्ति हो तो उसके अनुसार गोदान, वृषोत्सर्ग और पूजन करे। भक्त पुरुष निष्कामभावसे शिवकी प्रीतिके लिये ही सब कुछ करे। यह संक्षेपसे इस व्रतकी सामान्य विधि कही गयी है॥ ७११/२॥

अब शास्त्रके अनुसार प्रत्येक मासमें जो विशेष कृत्य है, उसे बताता हूँ। वैशाखमासमें हीरेके बने हुए शिवलिंगका पूजन करना चाहिये। ज्येष्ठमासमें मरकत-मणिमय शिवलिंगकी पूजा उचित है। आषाढ़मासमें मोतीके बने हुए शिवलिंगको पूजनीय समझे। श्रावणमासमें नीलमका बना हुआ शिवलिंग पूजनके योग्य है। भाद्रपदमासमें पूजनके लिये पद्मरागमणिमय शिवलिंगको उत्तम माना गया है। आश्विनमासमें गोमेदमणिके बने हुए लिंगको उत्तम समझे॥ ७२—७४॥

कार्तिकमासमें मूँगेके और मार्गशीर्षमासमें वैदूर्यमणिके बने हुए लिंगकी पूजाका विधान है। पौषमासमें पुष्पराग (पुखराज)-मणिके तथा माघमासमें सूर्यकान्तमणिके लिंगका पूजन करना चाहिये। फाल्गुनमासमें चन्द्रकान्तमणिके और चैत्रमें सूर्यकान्तमणिके बने हुए लिंगके पूजनकी विधि है। अथवा रत्नोंके न मिलनेपर सभी मासोंमें सुवर्णमय लिंगका ही पूजन करना चाहिये॥ ७५-७६॥

सुवर्णके अभावमें चाँदी, ताँबे, पत्थर, मिट्टी, लाह या और किसी वस्तुका जो सुलभ हो, लिंग बना लेना चाहिये। अथवा अपनी रुचिके अनुसार सर्वगन्धमय लिंगका निर्माण करे॥ ७७१/२॥

व्रतकी समाप्तिके समय नित्यकर्म पूर्ण करके पूर्ववत् विशेष पूजा और हवन करनेके पश्चात् आचार्यका तथा विशेषत: व्रती ब्राह्मणका पूजन करे॥ ७८-७९॥

फिर आचार्यकी आज्ञा ले पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके कुशासनपर बैठे। हाथमें कुश ले, प्राणायाम करके, 'साम्बसदाशिव' का ध्यान करते हुए यथाशक्ति मूलमन्त्रका जप करे। फिर पूर्ववत् आज्ञा ले हाथ जोड़ नमस्कार करके कहे—'भगवन्! अब मैं आपकी आज्ञासे इस व्रतका उत्सर्ग करता हूँ।' ऐसा कहकर शिवलिंगके मूल भागमें उत्तरदिशाकी ओर कुशोंका त्याग करे। तदनन्तर दण्ड, चीर, जटा और मेखलाको भी त्याग दे। इसके बाद फिर विधिपूर्वक आचमन करके पंचाक्षरमन्त्रका जप करे॥ ८०—८३॥

जो आत्यन्तिक दीक्षा ग्रहण करके अपने शरीरका अन्त होनेतक शान्तभावसे इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह 'नैष्ठिक व्रती' कहा गया है। उसे सब आश्रमोंसे ऊपर उठा हुआ महापाशुपत जानना चाहिये। वही तपस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ है और वही महान् व्रतधारी है॥ ८४-८५ ॥

मोक्षकी कामना करनेवालोंमें उसके समान धन्य कोई नहीं है। जो यति नैष्ठिक हो गया है, उसे निष्ठासम्पन्न पुरुषोंमें उत्तम कहा गया है॥ ८६ ॥

जो बारह दिनोंतक प्रतिदिन विधिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी नैष्ठिकके ही तुल्य है; क्योंकि उसने तीव्र व्रतका आश्रय लिया है। जो अपने शरीरमें घी लगाकर व्रतके सभी नियमोंके पालनमें तत्पर हो दो-तीन दिन या एक दिन भी इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी कोई नैष्ठिक ही है॥ ८७-८८ ॥

जो निष्काम होकर अपना परम कर्तव्य मानकर अपने-आपको शिवके चरणोंमें समर्पित करके इस उत्तम व्रतका सदा अनुष्ठान करता है, उसके समान कहीं कोई नहीं है। विद्वान् ब्राह्मण भस्म लगाकर महापातक-जनित अत्यन्त दारुण पापोंसे भी तत्काल छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ८९-९० ॥

रुद्राग्निका जो सबसे उत्तम वीर्य (बल) है, वही भस्म कहा गया है। अतः जो सभी समयोंमें भस्म लगाये रहता है, वह वीर्यवान् माना गया है। भस्ममें निष्ठा रखनेवाले पुरुषके सारे दोष उस भस्माग्निके संयोगसे दग्ध होकर नष्ट हो जाते हैं। जिसका शरीर भस्मस्नानसे विशुद्ध है, वह भस्मनिष्ठ कहा गया है॥ ९१-९२ ॥

जिसके सारे अंगोंमें भस्म लगा हुआ है, जो भस्मसे प्रकाशमान है, जिसने भस्ममय त्रिपुण्ड्र लगा रखा है तथा जो भस्मसे स्नान करता है, वह भस्मनिष्ठ माना गया है। भूत, प्रेत, पिशाच तथा अत्यन्त दुःसह रोग भी भस्मनिष्ठके सान्निध्यसे दूर भागते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ९३-९४ ॥

वह शरीरको भासित करता है, इसलिये 'भसित' कहा गया है तथा पापोंका भक्षण करनेके कारण उसका नाम 'भस्म' है। भूति (ऐश्वर्य)-कारक होनेसे उसे 'भूति' या 'विभूति' भी कहते हैं। विभूति रक्षा करनेवाली है, अतः उसका एक नाम 'रक्षा' भी है। भस्मके माहात्म्यको लेकर यहाँ और क्या कहा जाय। भस्मसे स्नान करनेवाला व्रती पुरुष साक्षात् महेश्वरदेव कहा गया है। यह परमेश्वर (रुद्राग्नि)-सम्बन्धी भस्म शिव-भक्तोंके लिये बड़ा भारी अस्त्र है; क्योंकि उसने धौम्य मुनिके बड़े भाई उपमन्युके तपमें आयी हुई आपत्तियोंका निवारण किया था; इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान करनेके पश्चात् हवन-सम्बन्धी भस्मका धनके समान संग्रह करके सदा भस्मस्नानमें तत्पर रहना चाहिये॥ ९५—९८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहितामें पूर्वखण्डके पशुपतिव्रतविधानवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

उपमन्युका गोदुग्धके लिये हठ तथा माताकी आज्ञासे शिवोपासनामें संलग्न होना

ऋषियोंने पूछा—प्रभो! धौम्यके बड़े भाई उपमन्यु जब छोटे बालक थे, तब उन्होंने दूधके लिये तपस्या की थी और भगवान् शिवने प्रसन्न होकर उन्हें क्षीरसागर प्रदान किया था। परंतु शैशवावस्थामें उन्हें शिवशास्त्रके प्रवचनकी शक्ति कैसे प्राप्त हुई अथवा वे कैसे शिवके सत्स्वरूपको जानकर तपस्यामें निरत हुए? तपश्चरणके पर्वमें उन्हें भस्मके विज्ञानकी प्राप्ति कैसे हुई, जिससे जो रुद्राग्निका उत्तम वीर्य है, उस आत्मरक्षक भस्मको उन्होंने प्राप्त किया?॥ १—३ ॥

वायुदेवने कहा—महर्षियो! जिन्होंने वह तप किया था, वे उपमन्यु कोई साधारण बालक नहीं थे, परम बुद्धिमान् मुनिवर व्याघ्रपादके पुत्र थे। उन्हें जन्मान्तरमें ही सिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। परंतु किसी कारणवश वे अपने पदसे च्युत हो गये—योगभ्रष्ट हो गये। अतः

भाग्यवश जन्म लेकर वे मुनिकुमार हुए॥ ४-५॥

दुग्धकी कामनासे उपमन्युकी जो तपस्यामें प्रवृत्ति हुई, वह भविष्यमें प्राप्त होनेवाले महादेवजीके अनुग्रहमें मानो द्वार अर्थात् माध्यम बन गयी॥ ६॥

उसके फलस्वरूप भगवान् शंकरने उपमन्युको दुग्धका समुद्र देनेके साथ-साथ अपने भक्तोंमें वरिष्ठता और शाश्वत कुमारभाव भी प्रदान किया॥ ७॥

विद्वज्जन जिस शक्तिमय उत्कृष्ट ज्ञानको स्कन्दके द्वारा उपदिष्ट बतलाते हैं, उस ज्ञानको उपमन्युने साक्षात् भगवान् शिवके अनुग्रहसे प्राप्त किया था॥ ८॥

जिस प्रकार महासागरके सदृश ज्ञानराशिसे सम्पन्न कुमार कार्तिकेयके मुखसे नन्दीने शिवशास्त्रके प्रवचनका अधिकार प्राप्त किया था, वैसे ही उपमन्युने भी [भगवान् शिवसे] शिवशास्त्रके प्रवचनका अधिकार प्राप्त कर लिया॥ ९॥

उपमन्युके द्वारा दुग्धके लिये हठ करनेपर उनकी माताने शोकवश जो बात कही थी, वही उनकी शिवज्ञानप्राप्तिमें कारण प्रतीत होती है॥ १०॥

एक समयकी बात है, अपने मामाके आश्रममें उन्हें पीनेके लिये बहुत थोड़ा दूध मिला। उनके मामाका बेटा अपनी इच्छाके अनुसार गरम-गरम उत्तम दूध पीकर उनके सामने खड़ा था। मातुलपुत्रको इस अवस्थामें देखकर व्याघ्रपादकुमार उपमन्युके मनमें ईर्ष्या हुई और वे अपनी माँके पास जाकर बड़े प्रेमसे बोले—॥ ११-१२॥

उपमन्युने कहा—'मातः! महाभागे! तपस्विनि! मुझे अत्यन्त स्वादिष्ट गरम-गरम गायका दूध दो। मैं थोड़ा-सा नहीं पीऊँगा।'॥ १३॥

बेटेकी यह बात सुनकर व्याघ्रपादकी पत्नी तपस्विनी माताके मनमें उस समय बड़ा दुःख हुआ। उसने पुत्रको बड़े आदरके साथ छातीसे लगा लिया और प्रेमपूर्वक लाड़-प्यार करके अपनी निर्धनताका स्मरण हो आनेसे वह दुखी हो विलाप करने लगी॥ १४-१५॥

महातेजस्वी बालक उपमन्यु बारंबार दूधको याद करके रोते हुए मातासे कहने लगे—'माँ! दूध दो, दूध दो।' बालकके उस हठको जानकर उस तपस्विनी ब्राह्मण-पत्नीने उसके हठके निवारणके लिये एक सुन्दर उपाय किया॥ १६-१७॥

उसने स्वयं उञ्छ-वृत्तिसे कुछ बीजोंका संग्रह किया था। उन बीजोंको देखकर उस मधुरभाषिणीने तत्काल उठा लिया और पीसकर पानीमें घोल दिया। फिर मीठी वाणीमें बोली—'आओ, आओ मेरे लाल!' यों कह बालकको शान्त करके हृदयसे लगा लिया और दुःखसे पीड़ित हो उसने कृत्रिम दूध उसके हाथमें दे दिया॥ १८-१९॥

माताके दिये हुए उस बनावटी दूधको पीकर बालक अत्यन्त व्याकुल हो उठा और बोला—'माँ! यह दूध नहीं है।' तब वह बहुत दुखी हो गयी और बेटेका मस्तक सूँघकर अपने दोनों हाथोंसे उसके कमलसदृश नेत्रोंको पोंछती हुई कहने लगी॥ २०-२१॥

माता बोली—जो लोग भाग्यहीन तथा शिवजीके प्रति भक्तिरहित हैं, वे स्वर्ग-पातालमें गोचर होनेवाली रत्नोंसे परिपूर्ण नदियोंको नहीं देख पाते हैं। शिवजी जबतक लोगोंपर प्रसन्न नहीं होते हैं, वे तबतक राज्य, स्वर्ग, मोक्ष तथा दुग्धसे बना हुआ भोजन—इन प्रिय वस्तुओंको प्राप्त नहीं कर पाते हैं। सब कुछ शिवजीकी कृपासे प्राप्त होता है, वह किसी दूसरे देवताकी कृपासे प्राप्त नहीं होता है। अन्य देवताओंमें आसक्त लोग दुःखसे पीड़ित होकर भटकते रहते हैं॥ २२—२४॥

सदा वनमें निवास करनेवाले हमलोगोंको दूध कहाँसे मिलेगा? हे वत्स! कहाँ दुग्धकी उपलब्धि और कहाँ हम वनवासी!॥ २५॥

जननी बोली—'बेटा! अपने पास सभी वस्तुओंका अभाव होनेके कारण दरिद्रतावश मुझ अभागिनीने पीसे हुए बीजोंको पानीमें घोलकर यह तुम्हें कृत्रिम दूध दिया था॥ २६॥

तुमने मामाके घरमें पकाये हुए स्वादिष्ट थोड़ेसे दूधको पीकर [कृत्रिम दूधको भी] उसीके समान स्मरण करके स्वादिष्ट जानकर इसे भी पी लिया॥ २७॥

तुम 'दूध नहीं दिया' ऐसा कहकर रोते हुए मुझे बारंबार दुखी करते हो। किंतु भगवान् शिवकी कृपाके बिना तुम्हारे लिये कहीं दूध नहीं है॥ २८॥

भक्तिपूर्वक माता पार्वती और अनुचरोंसहित भगवान् शिवके चरणारविन्दोंमें जो कुछ समर्पित किया गया हो, वही सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका कारण होता है। महादेवजी ही धन देनेवाले हैं। इस समय हम लोगोंने उनकी आराधना नहीं की है। वे भगवान् ही सकाम पुरुषोंको उनकी इच्छाके अनुसार फल देनेवाले हैं॥ २९-३०॥

हम लोगोंने आजसे पहले कभी भी धनकी कामनासे भगवान् शिवकी पूजा नहीं की है। इसीलिये हम दरिद्र हो गये और यही कारण है कि तुम्हारे लिये दूध नहीं मिल रहा है। बेटा! पूर्वजन्ममें भगवान् शिव अथवा विष्णुके उद्देश्यसे जो कुछ दिया जाता है, वही वर्तमान जन्ममें मिलता है, दूसरा कुछ नहीं'*॥ ३१-३२॥

वायुदेव बोले—वह बालक इस प्रकार माताके शोकसूचक यथार्थ कथनको सुनकर मनमें सन्ताप करता हुआ यह गम्भीर वचन कहने लगा॥ ३३॥

उपमन्यु बोले—माँ! यदि माता पार्वतीसहित भगवान् शिव विद्यमान हैं, तब आजसे शोक करना व्यर्थ है। महाभागे! अब शोक छोड़ो, सब मंगलमय ही होगा। माँ! आज मेरी बात सुन लो। यदि कहीं महादेवजी हैं तो मैं देरसे या जल्दी ही उनसे क्षीरसागर माँग लाऊँगा॥ ३४-३५॥

वायुदेवता कहते हैं—उस महाबुद्धिमान् बालककी वह बात सुनकर उसकी मनस्विनी माता उस समय बहुत प्रसन्न हुई और यों बोली—॥ ३६॥

माताने कहा—बेटा ! तुमने बहुत अच्छा विचार किया है। तुम्हारा यह विचार मेरी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला है। अब तुम देर न लगाओ। साम्ब सदाशिवका भजन करो॥ ३७॥

परम कारण शिव सबसे बढ़कर हैं, सम्पूर्ण जगत् उन्हींका बनाया हुआ है और ब्रह्मा आदि [देवता] उन्हीं प्रभुके किंकर तथा उनसे प्राप्त ऐश्वर्यवाले हैं। हमलोग भी उन्हींके अनुचर हैं। संसारका कल्याण करनेवाले शंकरके अतिरिक्त अन्य किसीको हम नहीं जानते॥ ३८-३९॥

अन्य देवताओंको छोड़कर मन, वाणी और क्रियाद्वारा भक्तिभावके साथ पार्षदगणोंसहित उन्हीं साम्ब सदाशिवका भजन करो। '**नमः शिवाय**' यह मन्त्र उन देवाधिदेव वरदायक शिवका साक्षात् वाचक माना गया है। प्रणवसहित जो दूसरे सात करोड़ महामन्त्र हैं, वे सब इसीमें लीन होते हैं और फिर इसीसे प्रकट होते हैं॥ ४०—४२॥

वे सभी मन्त्र अपने-अपने अधिकारके अनुरूप ही फल प्रदान करनेमें समर्थ हैं, अर्थात् जो मन्त्र जिस कामनाकी सिद्धिके लिये अधिकृत हैं, वे उसीको फलीभूत कर पानेमें समर्थ होते हैं, परंतु यह एकमात्र मन्त्र भगवान् शिवकी आज्ञासे सर्वाधिकारसम्पन्न होनेके कारण सभी कामनाओंको फलीभूत करनेमें समर्थ है। जिस प्रकार भगवान् शिव पापी या पुण्यात्मा—किसीकी भी रक्षा या उद्धार करनेमें सक्षम हैं, उसी प्रकार यह मन्त्र भी प्रत्येक समय प्रत्येक व्यक्तिकी रक्षामें समर्थ है॥ ४३-४४॥

यह मन्त्र दूसरे सभी मन्त्रोंसे प्रबल है। यही सबकी रक्षा करनेमें समर्थ है; अत: दूसरेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। इसलिये तुम दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर केवल पंचाक्षरके जपमें लग जाओ। इस मन्त्रके जिह्वापर आते ही यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है॥ ४५-४६॥

यह शिवभक्तोंकी रक्षाका हेतुभूत सर्वश्रेष्ठ अघोरास्त्र ही है, इस [अस्त्र]-को उसी मन्त्रसे उत्पन्न हुआ मानकर तुम उस मन्त्रमें निरत हो जाओ, इसके विपरीत मत होओ॥ ४७॥

यह उत्तम भस्म जिसे मैंने तुम्हारे पिताजीसे ही प्राप्त किया है, यह विरजा होमकी अग्निसे सिद्ध हुआ है, अत: बड़ी-से-बड़ी आपत्तियोंका निवारण करनेवाला है। मैंने तुम्हें जो पंचाक्षरमन्त्र बताया है, उसको मेरी आज्ञासे ग्रहण करो। इसके जपसे ही शीघ्र तुम्हारी रक्षा होगी॥ ४८-४९॥

वायुदेवता कहते हैं—इस प्रकार आज्ञा देकर और 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा कहकर माताने पुत्रको बिदा किया। मुनि उपमन्युने उस आज्ञाको शिरोधार्य करके उसके चरणोंमें प्रणाम किया और ऐसा ही करूँगा—यह कहकर तपस्याके लिये जानेकी तैयारी की। उस समय माताने आशीर्वाद देते हुए कहा—'सब देवता तुम्हारा मंगल करें'॥ ५०-५१॥

* पूर्वजन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्दिश्य वै सुत। तदेव लभ्यते नान्यद् विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम्॥ (शि० पु० वा० सं० पू० खं० ३४। ३२)

माताकी आज्ञा पाकर उस बालकने दुष्कर तपस्या आरम्भ की। हिमालयपर्वतके एक शिखरपर जाकर उपमन्यु एकाग्रचित्त हो केवल वायु पीकर रहने लगे। उन्होंने आठ ईंटोंका एक मन्दिर बनाकर उसमें मिट्टीके शिवलिंगकी स्थापना की। उसमें माता पार्वती तथा गणोंसहित अविनाशी महादेवजीका आवाहन करके भक्तिभावसे पंचाक्षरमन्त्रद्वारा ही वनके पत्र-पुष्प आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करते हुए वे चिरकालतक उत्तम तपस्यामें लगे रहे॥ ५२—५४॥

उन एकाकी कृशकाय बालक द्विजवर उपमन्युको शिवमें मन लगाकर तपस्या करते देख पूर्वकालमें मरीचिके शापसे पिशाचभावको प्राप्त हुए कुछ मुनियोंने अपने राक्षसस्वभावसे उन्हें सताना और उनके तपमें विघ्न डालना आरम्भ किया॥ ५५-५६॥

उनके द्वारा सताये जानेपर भी उपमन्यु किसी प्रकार तपमें लगे रहे और सदा '**नमः शिवाय**'का आर्तनादकी भाँति जोर-जोरसे उच्चारण करते रहे। उस शब्दको सुनते ही उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेवाले वे मुनि उस बालकको सताना छोड़कर उसकी सेवा करने लगे। हे मुनियो! ब्राह्मणबालक महात्मा उपमन्युकी उस तपस्यासे सम्पूर्ण चराचर जगत् संतप्त हो उठा॥ ५७—५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहितामें पूर्वखण्डमें उपमन्युतपोवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

भगवान् शंकरका इन्द्ररूप धारण करके उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षा लेना, उन्हें क्षीरसागर आदि देकर बहुत-से वर देना और अपना पुत्र मानकर पार्वतीके हाथमें सौंपना, कृतार्थ हुए उपमन्युका अपनी माताके स्थानपर लौटना

वायुदेव बोले—तदनन्तर [उपमन्युके तपसे] सन्तप्त होते हुए शरीरवाले सभी श्रेष्ठ देवता शीघ्र ही वैकुण्ठ पहुँचे और उन्होंने प्रणाम करके विष्णुको वह सब बताया॥ १॥

तब उनकी बात सुनकर वे भगवान् पुरुषोत्तम 'यह क्या है'—ऐसा सोचकर और उसका कारण जानकर महेश्वरके दर्शनकी इच्छासे शीघ्र ही मन्दर पर्वतपर गये तथा [वहाँ] शिवजीको देखकर उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे—॥ २-३॥

विष्णु बोले—हे भगवन्! उपमन्यु—इस नामसे प्रसिद्ध कोई ब्राह्मण दूधके लिये [अपनी] तपस्यासे सबको जला रहा है, उसे रोकिये॥ ४॥

वायुदेव बोले—विष्णुका यह वचन सुनकर भगवान् महेश्वरने कहा—मैं उस बालकको रोकूँगा, आप अपने लोकको जाइये। शिवजीका यह वचन सुनकर देवताओंके प्रिय वे विष्णु उन सभी देवताओंको आश्वासन देकर अपने लोकको चले गये॥ ५-६॥

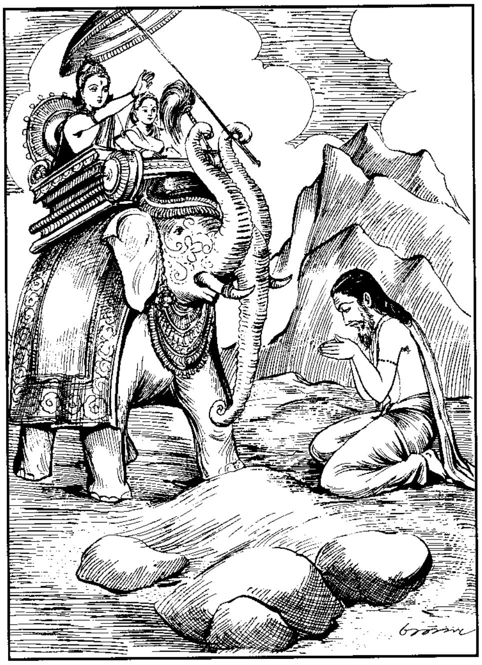
तदनन्तर [भगवान् विष्णुके अनुरोध करनेपर] श्रीशिवजीने [पहले] इन्द्रका रूप धारण करके उपमन्युके पास जानेका विचार किया। फिर श्वेत ऐरावतपर आरूढ़ हो स्वयं देवराज इन्द्रका शरीर ग्रहण करके भगवान् सदाशिव देवता, असुर, सिद्ध तथा बड़े-बड़े नागोंके साथ उपमन्यु मुनिके तपोवनकी ओर चले॥ ७-८॥

उस समय वह ऐरावत दायीं सूँड़में चँवर लेकर शचीसहित दिव्यरूपवाले देवराज इन्द्रको हवा कर रहा था और बायीं सूँड़में श्वेत छत्र लेकर उनपर लगाये चल रहा था। इन्द्रका रूप धारण किये उमासहित भगवान् सदाशिव उस श्वेत छत्रसे उसी तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे उदित हुए पूर्ण चन्द्रमण्डलसे मन्दराचल शोभायमान होता है॥ ९-१०॥

इस तरह इन्द्रके स्वरूपका आश्रय ले परमेश्वर शिव उपमन्युके उस आश्रमपर [अपने उस भक्तपर]

अनुग्रह करनेके लिये जा पहुँचे॥ ११॥

इन्द्ररूपधारी परमेश्वर शिवको आया देख मुनियोंमें



श्रेष्ठ उपमन्यु मुनिने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—॥ १२॥

उपमन्यु बोले—'देवेश्वर! जगन्नाथ! भगवन्! देवशिरोमणे! आप स्वयं यहाँ पधारे, इससे मेरा यह आश्रम पवित्र हो गया'॥ १३॥

वायुदेव बोले—ऐसा कहकर हाथ जोड़े हुए खड़े उन द्विजकी ओर देखकर इन्द्ररूपधारी शिवजी गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ १४॥

इन्द्ररूपधारी शिव बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले धौम्यके बड़े भैया महामुने उपमन्यो! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ। तुम वर माँगो, मैं तुम्हें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करूँगा॥ १५॥

वायुदेवता कहते हैं—उन इन्द्रदेवके ऐसा कहनेपर उस समय मुनिप्रवर उपमन्युने हाथ जोड़कर कहा—[भगवन्!] 'मैं भगवान् शिवकी भक्ति माँगता हूँ।' यह सुनकर इन्द्रने कहा—'क्या तुम मुझे नहीं जानते! मैं समस्त देवताओंका पालक और तीनों लोकोंका अधिपति इन्द्र हूँ। सब देवता मुझे नमस्कार करते हैं। ब्रह्मर्षे! मेरे भक्त हो जाओ। सदा मेरी ही पूजा करो, तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें सब कुछ दूँगा। निर्गुण रुद्रको त्याग दो। उस निर्गुण रुद्रसे तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध होगा, जो देवताओंकी पंक्तिसे बाहर होकर पिशाचभावको प्राप्त हो गया है।'॥ १६—१९॥

वायुदेवता कहते हैं—यह सुनकर पंचाक्षर-मन्त्रका जप करते हुए वे मुनि उपमन्यु इन्द्रको अपने धर्ममें विघ्न डालनेके लिये आया हुआ जानकर बोले—॥ २०॥

उपमन्युने कहा—यद्यपि तुम भगवान् शिवकी निन्दामें तत्पर हो, तथापि इसी प्रसंगमें परमात्मा महादेवजीकी निर्गुणता बताकर तुमने स्वयं ही उनका सम्पूर्ण महत्त्व स्पष्टरूपसे कह दिया॥ २१॥

तुम नहीं जानते कि भगवान् रुद्र सम्पूर्ण देवेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेशके भी जनक हैं तथा प्रकृतिसे परे हैं। ब्रह्मवादी लोग उन्हींको सत्-असत्, व्यक्त-अव्यक्त, नित्य, एक और अनेक कहते हैं। अतः मैं उन्हींसे वर माँगूँगा। जो युक्तिवादसे परे तथा सांख्य और योगके सारभूत अर्थका ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं, तत्त्वज्ञानी पुरुष उत्कृष्ट जानकर जिनकी उपासना करते हैं, उन भगवान् शिवसे ही मैं वर माँगूँगा॥ २२—२४॥

समस्त कारणोंके भी कारण, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंकी सृष्टि करनेवाले, गुणोंसे परे तथा सर्वव्यापी शम्भुसे बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन, आज मैं सोचता हूँ कि मैंने पूर्वजन्ममें महान् पाप किया था, जो कि शिवकी निन्दा सुनी है॥ २५-२६॥

जो शिवकी निन्दा सुनते ही उसी क्षण उसे मारकर शीघ्र ही अपने शरीरको त्याग देता है, वह शिवलोक जाता है। देवाधम! दूधके लिये जो मेरी इच्छा है, वह यों ही रह जाय; परंतु शिवास्त्रके द्वारा तुम्हारा वध करके मैं अपने इस शरीरको त्याग दूँगा॥ २७-२८॥

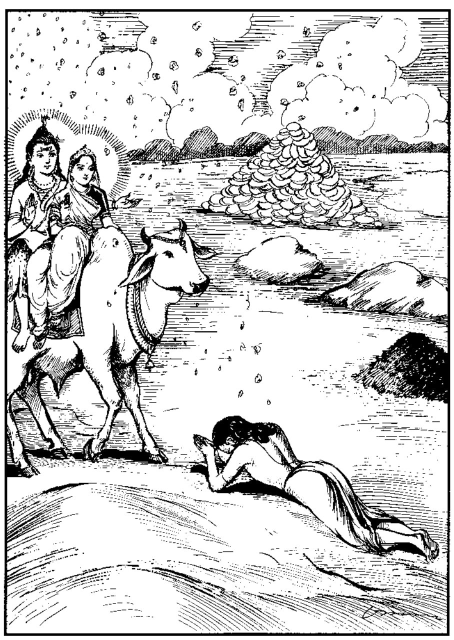
वायुदेवता कहते हैं—ऐसा कहकर स्वयं मर जानेका निश्चय करके उपमन्यु दूधकी भी इच्छा छोड़कर इन्द्रका वध करनेके लिये उद्यत हो गये। उस समय अघोर अस्त्रसे अभिमन्त्रित घोर भस्मको लेकर मुनिने इन्द्रके उद्देश्यसे छोड़ दिया और बड़े जोरसे सिंहनाद किया। फिर शम्भुके युगल चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए वे अपनी देहको दग्ध करनेके लिये उद्यत हो गये और आग्नेयी धारणा धारण करके स्थित हुए॥ २९—३१॥

ब्राह्मण उपमन्यु जब इस प्रकार स्थित हुए, तब भगदेवताके नेत्रका नाश करनेवाले भगवान् शिवने योगी उपमन्युकी उस धारणाको अपनी सौम्यदृष्टिसे रोक दिया। उनके छोड़े हुए उस अघोरास्त्रको नन्दीश्वर शिवजीकी आज्ञासे शिववल्लभ नन्दीने बीचमें ही पकड़ लिया॥ ३२-३३॥

तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् शिवने अपने बालेन्दु-शेखररूपको धारण कर लिया और ब्राह्मण उपमन्युको उसे दिखाया। इतना ही नहीं, उन प्रभुने उस मुनिको सहस्रों क्षीरसागर, सुधासागर, दधि आदिके सागर, घृतके समुद्र, फलसम्बन्धी रसके समुद्र तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके समुद्रका दर्शन कराया और पूओंका पहाड़ खड़ा करके दिखा दिया॥ ३४—३६॥

इसी तरह देवी पार्वतीके साथ महादेवजी वहाँ वृषभपर आरूढ़ दिखायी दिये। वे अपने गणाध्यक्षों तथा त्रिशूल आदि दिव्यास्त्रोंसे घिरे हुए थे। देवलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्र आदि देवताओंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं॥ ३७-३८॥

उस समय उपमन्यु आनन्दसागरकी लहरोंसे घिरे



हुए थे। वे भक्तिविनम्र चित्तसे पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। इसी समय वहाँ मुसकराते हुए भगवान् शिवने 'यहाँ आओ, यहाँ आओ' कहकर उन्हें बुलाया और उनका मस्तक सूँघकर अनेक वर दिये॥ ३९-४०॥

शिव बोले—वत्स! तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ सदा इच्छानुसार भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंका उपभोग करो। दुःखसे छूटकर सर्वदा सुखी रहो, तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति भक्ति सदा बनी रहे॥ ४१॥

महाभाग उपमन्यो! ये पार्वतीदेवी तुम्हारी माता हैं। आज मैंने तुम्हें अपना पुत्र बना लिया और तुम्हारे लिये क्षीरसागर प्रदान किया। केवल दूधका ही नहीं, मधु, दही, अन्न, घी, भात तथा फल आदिके रसका भी समुद्र तुम्हें दे दिया। ये पूओंके पहाड़ तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके सागर मैंने तुम्हें समर्पित किये। महामुने! ये सब ग्रहण करो॥ ४२—४४॥

आजसे मैं महादेव तुम्हारा पिता हूँ और जगदम्बा उमा तुम्हारी माता हैं। मैंने तुम्हें अमरत्व तथा गणपतिका सनातन पद प्रदान किया। अब तुम्हारे मनमें जो दूसरी-दूसरी अभिलाषाएँ हों, उन सबको तुम बड़ी प्रसन्नताके साथ वरके रूपमें माँगो। मैं संतुष्ट हूँ। इसलिये वह सब दूँगा। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ४५-४६॥

वायुदेव कहते हैं—ऐसा कहकर महादेवजीने उन्हें दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया और मस्तक सूँघकर यह कहते हुए देवीकी गोदमें दे दिया कि यह तुम्हारा पुत्र है॥ ४७॥

देवीने कार्तिकेयकी भाँति प्रेमपूर्वक उनके मस्तकपर अपना करकमल रखा और उन्हें अविनाशी कुमारपद प्रदान किया। क्षीरसागरने भी साकाररूप धारण करके उनके हाथमें अनश्वर पिण्डीभूत स्वादिष्ठ दूध समर्पित किया॥ ४८-४९॥

तत्पश्चात् पार्वतीदेवीने संतुष्टचित्त हो उन्हें योगजनित ऐश्वर्य, सदा संतोष, अविनाशिनी ब्रह्मविद्या और उत्तम समृद्धि प्रदान की॥ ५०॥

तदनन्तर उनके तपोमय तेजको देखकर प्रसन्नचित्त हुए शम्भुने उपमन्यु मुनिको पुनः दिव्य वरदान दिया। पाशुपत-व्रत, पाशुपतज्ञान, तात्त्विक व्रतयोग तथा चिरकालतक उसके प्रवचनकी परम पटुता उन्हें प्रदान

की॥ ५१-५२ ॥

भगवान् शिव और शिवासे दिव्य वर तथा नित्य कुमारत्व पाकर वे प्रमुदित हो उठे। इसके बाद प्रसन्नचित्त हो प्रणाम करके हाथ जोड़ उन ब्राह्मण उपमन्युने देवदेव महेश्वरसे यह वर माँगा॥ ५३-५४॥

उपमन्यु बोले—देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। परमेश्वर! प्रसन्न होइये और मुझे अपनी परम दिव्य एवं अव्यभिचारिणी भक्ति दीजिये। महादेव! अपने सम्बन्धियोंमें मेरी सदा श्रद्धा बनी रहनेका वर दीजिये! साथ ही, अपना दासत्व, उत्कृष्ट स्नेह और नित्य सामीप्य प्रदान कीजिये॥ ५५-५६ ॥

ऐसा कहकर प्रसन्नचित्त हुए द्विजश्रेष्ठ उपमन्युने हर्षगद्गद वाणीद्वारा महादेवजीका स्तवन किया॥ ५७॥

उपमन्यु बोले—देवदेव! महादेव! शरणागतवत्सल! करुणासिन्धो! साम्बसदाशिव ! आप सदा मुझपर प्रसन्न होइये॥ ५८ ॥

वायुदेव कहते हैं—उनके ऐसा कहनेपर सबको वर देनेवाले प्रसन्नात्मा महादेवने मुनिवर उपमन्युको इस प्रकार उत्तर दिया॥ ५९ ॥

शिव बोले—वत्स उपमन्यो ! मैं तुमपर संतुष्ट हूँ। इसलिये मैंने तुम्हें सब कुछ दे दिया। ब्रह्मर्षे! तुम मेरे सुदृढ़ भक्त हो; क्योंकि इस विषयमें मैंने तुम्हारी परीक्षा ले ली है। तुम अजर-अमर, दुःखरहित, यशस्वी, तेजस्वी और दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न होओ॥ ६०-६१ ॥

द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारे बन्धु-बान्धव, कुल तथा गोत्र सदा अक्षय रहेंगे। मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति सदा बनी रहेगी। विप्रवर! मैं तुम्हारे आश्रममें नित्य निवास करूँगा। तुम मेरे पास सानन्द विचरोगे॥ ६२-६३ ॥

ऐसा कहकर उपमन्युको अभीष्ट वर दे करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी भगवान् महेश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये। उन श्रेष्ठ परमेश्वरसे उत्तम वर पाकर उपमन्युका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्हें बहुत सुख मिला और वे अपनी जन्मदायिनी माताके स्थानपर चले गये॥ ६४-६५ ॥

॥ इस प्रकार व्यासविरचित चौबीस हजार श्लोकोंवाले श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके पूर्वखण्डमें उपमन्युचरितवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३५ ॥

॥ सातवीं वायवीयसंहिताका पूर्वखण्ड पूर्ण हुआ ॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

वायवीयसंहिता [उत्तरखण्ड]

पहला अध्याय

ऋषियोंके पूछनेपर वायुदेवका श्रीकृष्ण और उपमन्युके मिलनका प्रसंग सुनाना, श्रीकृष्णको उपमन्युसे ज्ञानका और भगवान् शंकरसे पुत्रका लाभ

नमः समस्तसंसारचक्रभ्रमणहेतवे।
गौरीकुचतटद्वन्द्वकुङ्कुमाङ्कितवक्षसे ॥

जो समस्त संसार-चक्रके परिभ्रमणमें कारणरूप हैं तथा गौरीके युगल उरोजोंमें लगे हुए केसरसे जिनका वक्ष:स्थल अंकित है, उन भगवान् उमावल्लभ शिवको नमस्कार है॥ १॥

सूतजी बोले—उपमन्युको भगवान् शंकरके कृपा-प्रसादके प्राप्त होनेका प्रसंग सुनाकर मध्याह्नकालमें नित्य-नियमके उद्देश्यसे वायुदेव कथा बन्द करके उठ गये। तब नैमिषारण्यनिवासी अन्य ऋषि भी 'अब अमुक बात पूछनी है' ऐसा निश्चय करके उठे और प्रतिदिनकी भाँति अपना तात्कालिक नित्यकर्म पूरा करके भगवान् वायुदेवको आया देख फिर आकर उनके पास बैठ गये॥ २—४॥

नियम समाप्त होनेपर जब आकाशजन्मा वायुदेव मुनियोंकी सभामें अपने लिये निश्चित उत्तम आसनपर विराजमान हो गये—सुखपूर्वक बैठ गये, तब वे लोकवन्दित पवनदेव परमेश्वरकी श्रीसम्पन्न विभूतिका मन-ही-मन चिन्तन करके इस प्रकार बोले—'मैं उन सर्वज्ञ और अपराजित महान् देव भगवान् शंकरकी शरण लेता हूँ, जिनकी विभूति इस समस्त चराचर जगत्के रूपमें फैली हुई है'॥ ५—७॥

उनकी शुभ वाणीको सुनकर वे निष्पाप ऋषि भगवान्की विभूतिका विस्तारपूर्वक वर्णन सुननेके लिये यह उत्तम वचन बोले—॥ ८॥

ऋषियोंने कहा—भगवन्! आपने महात्मा उपमन्युका चरित्र सुनाया, जिससे यह ज्ञात हुआ कि उन्होंने केवल दूधके लिये तपस्या करके भी परमेश्वर शिवसे सब कुछ पा लिया। हमने पहलेसे ही सुन रखा है कि अनायास ही महान् कर्म करनेवाले वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण किसी समय धौम्यके बड़े भाई उपमन्युसे मिले थे और उनकी प्रेरणासे पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान करके उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त कर लिया था; अत: आप यह बतायें कि भगवान् श्रीकृष्णने परम उत्तम पाशुपतज्ञान किस प्रकार प्राप्त किया?॥ ९—११॥



वायुदेव बोले—अपनी इच्छासे अवतीर्ण होनेपर

भी सनातन वासुदेवने मानव-शरीरकी निन्दा-सी करते हुए लोकसंग्रहके लिये शरीरकी शुद्धि की थी। वे पुत्र-प्राप्तिके निमित्त तप करनेके लिये उन महामुनिके आश्रमपर गये थे, जहाँ बहुत-से मुनि उपमन्युजीका दर्शन कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने भी वहाँ जाकर उनका दर्शन किया॥ १२-१३॥

उनके सारे अंग भस्मसे उज्ज्वल दिखायी देते थे। मस्तक त्रिपुण्ड्रसे अंकित था। रुद्राक्षकी माला ही उनका आभूषण थी। वे जटामण्डलसे मण्डित थे। शास्त्रोंसे वेदकी भाँति वे अपने शिष्यभूत महर्षियोंसे घिरे हुए थे और शिवजीके ध्यानमें तत्पर हो शान्तभावसे बैठे थे॥ १४-१५॥

उन महातेजस्वी उपमन्युका दर्शन करके श्रीकृष्णने उन्हें नमस्कार किया। उस समय उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो आया। श्रीकृष्णने बड़े आदरके साथ मुनिकी तीन बार परिक्रमा की। फिर अत्यन्त प्रसन्नताके साथ मस्तक झुका हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया॥ १६॥

उन मुनिको देखनेमात्रसे ही बुद्धिमान् श्रीकृष्णका मायाजनित तथा कर्मजनित समस्त मल (पाप) नष्ट हो गया॥ १७॥

तदनन्तर उपमन्युने विधिपूर्वक '**अग्निरिति भस्म**' इत्यादि मन्त्रोंसे श्रीकृष्णके शरीरमें भस्म लगाकर उनसे बारह महीनेका साक्षात् पाशुपत-व्रत करवाया। तत्पश्चात् मुनिने उन्हें उत्तम ज्ञान प्रदान किया॥ १८॥

उसी समयसे उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सम्पूर्ण दिव्य पाशुपत मुनि उन श्रीकृष्णको चारों ओरसे घेरकर उनके पास बैठे रहने लगे। फिर गुरुकी आज्ञासे परम शक्तिमान् श्रीकृष्णने पुत्रके लिये साम्ब शिवकी आराधनाका उद्देश्य मनमें लेकर तपस्या की॥ १९-२०॥

उस तपस्यासे सन्तुष्ट हो एक वर्षके पश्चात् पार्षदोंसहित, परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर साम्ब शिवने उन्हें दर्शन दिया। श्रीकृष्णने वर देनेके लिये प्रकट हुए सुन्दर अंगवाले महादेवजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनकी स्तुति भी की॥ २१—२३॥

गणोंसहित साम्ब सदाशिवका स्तवन करके श्रीकृष्णने अपने लिये एक पुत्र प्राप्त किया। वह पुत्र तपस्यासे संतुष्टचित्त हुए साक्षात् शिवने श्रीविष्णुको दिया था। चूँकि साम्ब शिवने उन्हें अपना पुत्र प्रदान किया, इसलिये श्रीकृष्णने जाम्बवती-कुमारका नाम साम्ब ही रखा॥ २४-२५॥

इस प्रकार अमितपराक्रमी श्रीकृष्णको महर्षि उपमन्युसे ज्ञान-लाभ और भगवान् शंकरसे पुत्र-लाभ हुआ। इस प्रकार यह सब प्रसंग मैंने पूरा-पूरा कह सुनाया। जो प्रतिदिन इसे कहता-सुनता या सुनाता है, वह भगवान् विष्णुका ज्ञान पाकर उन्हींके साथ आनन्दित होता है॥ २६-२७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें कृष्णपुत्रप्राप्तिवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपत ज्ञानका उपदेश

ऋषियोंने पूछा—पाशुपत ज्ञान क्या है? भगवान् शिव पशुपति कैसे हैं? और अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने उपमन्युसे किस प्रकार प्रश्न किया था? वायुदेव ! आप साक्षात् शंकरके स्वरूप हैं, इसलिये ये सब बातें बताइये। तीनों लोकोंमें आपके समान दूसरा कोई वक्ता इन बातोंको बतानेमें समर्थ नहीं है॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—उन महर्षियोंकी यह बात सुनकर वायुदेवने भगवान् शंकरका स्मरण करके इस प्रकार उत्तर देना आरम्भ किया॥ ३॥

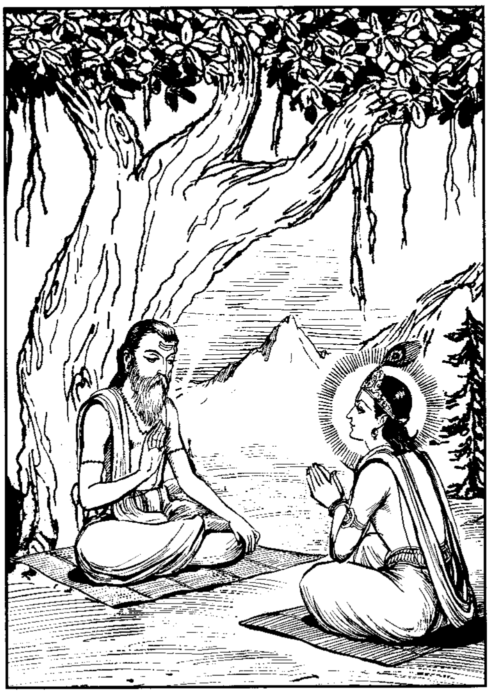
वायुदेव बोले—पूर्वकालमें साक्षात् श्रीकण्ठ भगवान् महेश्वरने देवी पार्वतीसे उत्तम पाशुपतज्ञान कहा था। विश्वयोनि विष्णुरूप श्रीकृष्णने उसीको [उपमन्युसे] पूछा था। तब मुनि उपमन्युने श्रीकृष्णको देवता आदिके

पशुत्व तथा शिवजीका उनके पति होनेके विषयमें जैसा उपदेश किया था, उसीको मैं संक्षेपमें बताऊँगा, आपलोग सावधान होकर सुनिये ॥ ४—६ ॥

[वायुदेव बोले—] महर्षियो! पूर्वकालमें श्रीकृष्ण-रूपधारी भगवान् विष्णुने अपने आसनपर बैठे हुए महर्षि उपमन्युसे उन्हें प्रणाम करके न्यायपूर्वक यों प्रश्न किया ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णने कहा—भगवन् ! महादेवजीने देवी पार्वतीको जिस दिव्य पाशुपत ज्ञान तथा अपनी सम्पूर्ण विभूतिका उपदेश दिया था, मैं उसीको सुनना चाहता हूँ। महादेवजी पशुपति कैसे हुए? पशु कौन कहलाते हैं? वे पशु किन पाशोंसे बाँधे जाते हैं और फिर किस प्रकार उनसे मुक्त होते हैं? ॥ ८-९ ॥

महात्मा श्रीकृष्णके इस प्रकार पूछनेपर श्रीमान् उपमन्युने महादेवजी तथा देवी पार्वतीको प्रणाम करके उनके प्रश्नके अनुसार उत्तर देना आरम्भ किया ॥ १० ॥



उपमन्यु बोले—देवकीनन्दन ! ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यन्त जो भी संसारके वशवर्ती चराचर प्राणी हैं, वे सब-के-सब भगवान् शिवके पशु कहलाते हैं और उनके पति होनेके कारण देवेश्वर शिवको पशुपति कहा गया है। वे पशुपति अपने पशुओंको मल और माया आदि पाशोंसे बाँधते हैं और भक्तिपूर्वक उनके द्वारा आराधित होनेपर वे स्वयं ही उन्हें उन पाशोंसे मुक्त करते हैं ॥ ११—१२१/२ ॥

जो चौबीस तत्त्व हैं, वे मायाके कार्य एवं गुण हैं। वे ही विषय कहलाते हैं, जीवों (पशुओं)-को बाँधनेवाले पाश वे ही हैं। इन पाशोंद्वारा ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त समस्त पशुओंको बाँधकर महेश्वर पशुपतिदेव उनसे अपना कार्य कराते हैं ॥ १३—१४१/२ ॥

उन महेश्वरकी ही आज्ञासे प्रकृति पुरुषोचित बुद्धिको जन्म देती है। बुद्धि अहंकारको प्रकट करती है तथा अहंकार कल्याणदायी देवाधिदेव शिवकी आज्ञासे ग्यारह इन्द्रियों और पाँच तन्मात्राओंको उत्पन्न करता है। तन्मात्राएँ भी उन्हीं महेश्वरके महान् शासनसे प्रेरित हो क्रमशः पाँच महाभूतोंको उत्पन्न करती हैं। वे सब महाभूत शिवकी आज्ञासे ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त देहधारियोंके लिये देहकी सृष्टि करते हैं, बुद्धि कर्तव्यका निश्चय करती है और अहंकार अभिमान करता है। चित्त चेतता है और मन संकल्प-विकल्प करता है, श्रवण आदि ज्ञानेन्द्रियाँ पृथक्-पृथक् शब्द आदि विषयोंको ग्रहण करती हैं ॥ १५—२० ॥

वे महादेवजीके आज्ञाबलसे केवल अपने ही विषयोंको ग्रहण करती हैं। वाक् आदि कर्मेन्द्रियाँ कहलाती हैं और शिवकी इच्छासे अपने लिये नियत कर्म ही करती हैं, दूसरा कुछ नहीं। शब्द आदि जाने जाते हैं और बोलना आदि कर्म किये जाते हैं ॥ २१-२२ ॥

इन सबके लिये भगवान् शंकरकी गुरुतर आज्ञाका उल्लंघन करना असम्भव है। परमेश्वर शिवके शासनसे ही आकाश सर्वव्यापी होकर समस्त प्राणियोंको अवकाश प्रदान करता है, वायुतत्त्व भगवान् शिवकी आज्ञासे प्राण आदि नामभेदोंद्वारा बाहर-भीतरके सम्पूर्ण जगत्को धारण करता है। अग्नितत्त्व देवताओंके लिये हव्य और कव्यभोजी पितरोंके लिये कव्य पहुँचाता है। साथ ही मनुष्योंके लिये पाक आदिका भी कार्य करता है। जल सबको जीवन देता है और पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को सदा धारण किये रहती है ॥ २३—२६१/२ ॥

शिवकी आज्ञा सम्पूर्ण देवताओंके लिये अलंघनीय है। उसीसे प्रेरित होकर देवराज इन्द्र देवताओंका पालन, दैत्योंका दमन और तीनों लोकोंका संरक्षण करते हैं। वरुणदेव सदा जलतत्त्वके पालन और संरक्षणका कार्य सँभालते हैं, साथ ही दण्डनीय प्राणियोंको अपने पाशोंद्वारा बाँध लेते हैं। धनके स्वामी यक्षराज कुबेर प्राणियोंको उनके पुण्यके अनुरूप सदा धन देते हैं और उत्तम बुद्धिवाले पुरुषोंको सम्पत्तिके साथ ज्ञान भी प्रदान करते हैं॥ २७—३० ॥

ईश्वर असाधु पुरुषोंका निग्रह करते हैं तथा शेष शिवकी ही आज्ञासे अपने मस्तकपर पृथ्वीको धारण करते हैं। उन शेषको श्रीहरिकी तामसी रौद्रमूर्ति कहा गया है, जो जगत्का प्रलय करनेवाली है। ब्रह्माजी शिवकी ही आज्ञासे सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करते हैं तथा अपनी अन्य मूर्तियोंद्वारा पालन और संहारका कार्य भी करते हैं॥ ३१—३२$^{१}/_{२}$ ॥

भगवान् विष्णु कालके भी काल शिवजीकी आज्ञासे अपनी त्रिविध मूर्तियोंद्वारा विश्वका पालन, सर्जन और संहार भी करते हैं। विश्वात्मा भगवान् हर भी तीन रूपोंमें विभक्त हो उन्हींकी आज्ञासे सम्पूर्ण जगत्का संहार, सृष्टि और रक्षा करते हैं। काल सबको उत्पन्न करता है। वही प्रजाओंका संहार करता है तथा वही विश्वका पालन करता है। यह सब वह महाकालकी आज्ञासे प्रेरित होकर ही करता है॥ ३३—३५$^{१}/_{२}$ ॥

भगवान् सूर्य उन्हीं देवाधिदेवकी आज्ञासे अपने तीन अंशोंद्वारा जगत्का पालन करते, अपनी किरणोंद्वारा वृष्टिके लिये आदेश देते और स्वयं ही आकाशमें मेघ बनकर बरसते हैं। चन्द्रभूषण शिवका शासन मानकर ही चन्द्रमा ओषधियोंको पोषित और प्राणियोंको आह्लादित करते हैं। साथ ही देवताओंको अपनी अमृतमयी कलाओंका पान करने देते हैं॥ ३६—३७$^{१}/_{२}$ ॥

आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, आकाशचारी ऋषि, सिद्ध, नागगण, मनुष्य, मृग, पशु, पक्षी, कीट आदि, स्थावर प्राणी, नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वन, सरोवर, अंगोंसहित वेद, शास्त्र, मन्त्र, वैदिकस्तोत्र और यज्ञ आदि, कालाग्निसे लेकर शिवपर्यन्त भुवन, उनके अधिपति, असंख्य ब्रह्माण्ड, उनके आवरण, वर्तमान, भूत और भविष्य, दिशा-विदिशाएँ, कला आदि कालके भिन्न-भिन्न भेद तथा जो कुछ भी इस जगत्में देखा और सुना जाता है, वह सब भगवान् शंकरकी आज्ञाके बलसे ही टिका हुआ है॥ ३८—४३ ॥

उनकी आज्ञाके ही बलसे यहाँ पृथ्वी, पर्वत, मेघ, समुद्र, नक्षत्रगण, इन्द्रादि देवता, स्थावर, जंगम अथवा जड और चेतन—सबकी स्थिति है॥ ४४॥

हे कृष्ण! अगणित लीलाकृत्य करनेवाले भगवान् शिवकी आज्ञाशक्तिसे सम्पन्न हुए कृत्य अतीव अद्भुत हैं। वेद-शास्त्रादिमें [वर्णित उन चरित्रोंको जैसा] मैंने सुना है, उसे आपलोग श्रवण कीजिये॥ ४५ ॥

पूर्वकालमें इन्द्रसहित सभी देवता युद्धमें असुरोंको जीतकर जब आपसमें यह विवाद करने लगे कि जीतनेवाला मैं हूँ, तब उनके मध्य शिवजी [अर्धचन्द्र, तृतीय नेत्र आदि] अपने चिह्नोंसे रहित हो, उत्तम वेषधारण किये हुए [किसी] यक्षकी भाँति [वहाँ उपस्थित] हो गये। उन्होंने पृथ्वीतलपर एक तृण रखकर उन देवताओंसे कहा—जो इसे विकृत करनेमें समर्थ हो सके, वही दैत्योंको जीतनेवाला है॥ ४६—४८ ॥

यक्षका वचन सुनकर हाथमें वज्र धारण करनेवाले शचीपति [इन्द्र] कुछ कुपित हो गये और हँस करके इस तृणको उठानेका उद्योग करने लगे॥ ४९ ॥

परंतु वे उस तृणको उठा पानेमें मनसे भी सक्षम नहीं हो सके। तब उन्होंने उस तृणको काटनेके लिये अपने वज्रसे [अन्य] वज्रको उत्पन्न करके जैसे-तैसे छोड़ा, पर तृणसे टकराकर वह वज्र तिरछा होकर उनके आगे गिर पड़ा॥ ५०-५१ ॥

तदनन्तर अन्य महाबली लोकपाल भी उस तृणको उद्देश्य करके अपने हजारों अस्त्र चलाने लगे। उस समय प्रलय उपस्थित होनेकी भाँति महान् अग्नि प्रज्वलित हो उठी, भयंकर हवा चलने लगी और समुद्र बढ़ने लगा॥ ५२-५३ ॥

हे कृष्ण! इस प्रकार देवताओंके द्वारा यत्नपूर्वक किये गये सभी उपाय यक्षके आत्मबलसे व्यर्थ हो गये। तदनन्तर देवेन्द्रने कुपित होकर यक्षसे कहा—आप कौन हैं? तब उन [देवताओं]-के देखते-देखते वह [यक्ष]

अन्तर्धान हो गया॥ ५४-५५॥

इसके बाद दिव्य आभूषणोंको धारण की हुई पवित्र मुसकानवाली देवी हैमवती आकाशमण्डलमें प्रकट हुईं। उन्हें देखकर इन्द्र आदि देवता विस्मयमें पड़ गये और उन्हें प्रणाम करके पूछने लगे कि यह विलक्षण यक्ष कौन था?॥ ५६-५७॥

तब उन देवीने मुसकराकर कहा—'वे आप लोगोंके लिये अगोचर हैं [अर्थात् आप लोगोंकी दृष्टिसे परे हैं] उन्हींके द्वारा यह चराचर संसार-चक्र चलाया जा रहा है। उन्हींके द्वारा प्रारम्भमें विश्वका सृजन किया जाता है और उन्हींके द्वारा पुनः संहार कर लिया जाता है। उनका नियन्ता [अन्य] कोई नहीं है; उन्हींके द्वारा सबपर नियन्त्रण किया जाता है॥ ५८-५९॥

ऐसा कहकर वे महादेवी वहींपर अन्तर्धान हो गयीं और विस्मित हुए सभी देवता उन्हें प्रणाम करके स्वर्गको चले गये॥ ६०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवमाहात्म्यवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

भगवान् शिवकी ब्रह्मा आदि पंचमूर्तियों, ईशानादि ब्रह्ममूर्तियों तथा पृथ्वी एवं शर्व आदि अष्टमूर्तियोंका परिचय और उनकी सर्वव्यापकताका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण ! महेश्वर परमात्मा शिवकी मूर्तियोंसे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् [किस प्रकार] व्याप्त है, यह सुनो॥ १॥

अप्रमेय स्वरूपवाले उन शिवने अपनी मूर्तियोंके द्वारा इस सम्पूर्ण संसारको अधिष्ठित कर रखा है, यह सब बातें तो [तुमको] स्मरण ही हैं॥ २॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेशान तथा सदाशिव— ये उन परमेश्वरकी पाँच मूर्तियाँ जाननी चाहिये, जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व विस्तारको प्राप्त हुआ है॥ ३॥

इनके सिवा और भी उनके पाँच शरीर हैं, जिन्हें पंच-ब्रह्म (सद्योजात आदि) कहते हैं। इस जगत्में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो उन मूर्तियोंसे व्याप्त न हो॥ ४॥

ईशान, पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—ये महादेवजीकी विख्यात पाँच ब्रह्ममूर्तियाँ हैं॥ ५॥

इनमें जो ईशान नामक उनकी आदि श्रेष्ठतम मूर्ति है, वह प्रकृतिके साक्षात् भोक्ता क्षेत्रज्ञको व्याप्त करके स्थित है। मूर्तिमान् प्रभु शिवकी जो तत्पुरुष नामक मूर्ति है, वह गुणोंके आश्रयरूप भोग्य अव्यक्त (प्रकृति)-में अधिष्ठित है॥ ६-७॥

पिनाकपाणि महेश्वरकी जो अत्यन्त पूजित अघोर नामक मूर्ति है, वह धर्म आदि आठ अंगोंसे युक्त बुद्धितत्त्वको अपना अधिष्ठान बनाती है॥ ८॥

विधाता महादेवकी वामदेव नामक मूर्तिको आगमवेत्ता विद्वान् अहंकारकी अधिष्ठात्री बताते हैं॥ ९॥

बुद्धिमान् पुरुष अमित तेजस्वी शिवकी सद्योजात नामक मूर्तिको मनकी अधिष्ठात्री कहते हैं॥ १०॥

विद्वान् पुरुष भगवान् शिवकी ईशान नामक मूर्तिको श्रवणेन्द्रिय, वाणी, शब्द और व्यापक आकाशतत्त्वकी स्वामिनी मानते हैं। पुराणोंके अर्थज्ञानमें निपुण समस्त विद्वानोंने महेश्वरके तत्पुरुष नामक विग्रहको त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायु-तत्त्वका स्वामी समझा है॥ ११-१२॥

मनीषी [मुनि] शिवकी अघोर नामक मूर्तिको नेत्र, पैर, रूप और अग्नि-तत्त्वकी अधिष्ठात्री बताते हैं॥ १३॥

भगवान् शिवके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले महात्मा पुरुष उनकी वामदेव नामक मूर्तिको रसना, पायु, रस और जलतत्त्वकी स्वामिनी समझते हैं तथा सद्योजात नामक मूर्तिको वे घ्राणेन्द्रिय, उपस्थ, गन्ध और पृथ्वी-तत्त्वकी अधिष्ठात्री कहते हैं॥ १४-१५॥

महादेवजीकी ये पाँचों मूर्तियाँ कल्याणकी एकमात्र हेतु हैं। कल्याणकामी पुरुषोंको इनकी सदा ही यत्नपूर्वक वन्दना करनी चाहिये। उन देवाधिदेव महादेवजीकी जो आठ मूर्तियाँ हैं, तत्स्वरूप ही यह जगत् है। उन आठ

मूर्तियोंमें यह विश्व उसी प्रकार ओतप्रोतभावसे स्थित है, जैसे सूतमें मनके पिरोये होते हैं॥ १६-१७॥

शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान तथा महादेव—ये शिवकी विख्यात आठ मूर्तियाँ हैं॥ १८॥

महेश्वरकी इन शर्व आदि आठ मूर्तियोंसे क्रमशः भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमा अधिष्ठित होते हैं। उनकी पृथ्वीमयी मूर्ति सम्पूर्ण चराचर जगत्को धारण करती है। उसके अधिष्ठाताका नाम शर्व है। इसलिये वह शिवकी 'शार्वी' मूर्ति कहलाती है। यही शास्त्रका निर्णय है॥ १९-२०॥

उनकी जलमयी मूर्ति समस्त जगत्के लिये जीवनदायिनी है। जल परमात्मा भवकी मूर्ति है, इसलिये उसे 'भावी' कहते हैं। शिवकी तेजोमयी शुभमूर्ति विश्वके बाहर-भीतर व्याप्त होकर स्थित है। उस घोररूपिणी मूर्तिका नाम रुद्र है, इसलिये वह 'रौद्री' कहलाती है॥ २१-२२॥

भगवान् शिव वायुरूपसे स्वयं गतिशील होते और इस जगत्को गतिशील बनाते हैं। साथ ही वे इसका भरण-पोषण भी करते हैं। वायु भगवान् उग्रकी मूर्ति है; इसलिये साधु पुरुष इसे 'औग्री' कहते हैं॥ २३॥

भगवान् भीमकी आकाशरूपिणी मूर्ति सबको अवकाश देनेवाली, सर्वव्यापिनी तथा भूतसमुदायकी भेदिका है। वह भीमा नामसे प्रसिद्ध है (अतः इसे 'भैमी' मूर्ति भी कहते हैं)। सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें निवास करनेवाली तथा सम्पूर्ण आत्माओंकी अधिष्ठात्री शिव-मूर्तिको 'पशुपति' मूर्ति समझना चाहिये। वह पशुओंके पाशोंका उच्छेद करनेवाली है॥ २४-२५॥

महेश्वरकी जो 'ईशान' नामक मूर्ति है, वही दिवाकर (सूर्य) नाम धारण करके सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करती हुई आकाशमें विचरती है॥ २६॥

जिनकी किरणोंमें अमृत भरा है और जो सम्पूर्ण विश्वको उस अमृतसे आप्यायित करते हैं, वे चन्द्रदेव भगवान् शिवके महादेव नामक विग्रह हैं; अतः उन्हें 'महादेव' मूर्ति कहते हैं। यह जो आठवीं मूर्ति है, वह परमात्मा शिवका साक्षात् स्वरूप है तथा अन्य सब मूर्तियोंमें व्यापक है। इसलिये यह सम्पूर्ण विश्व शिवरूप ही है॥ २७-२८॥

जैसे वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार भगवान् शिवकी पूजासे उनके स्वरूपभूत जगत्का पोषण होता है। इसलिये सबको अभय दान देना, सबपर अनुग्रह करना और सबका उपकार करना—यह शिवका आराधन माना गया है। जैसे इस जगत्में अपने पुत्र-पौत्र आदिके प्रसन्न रहनेसे पिता-पितामह आदिको प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत्की प्रसन्नतासे भगवान् शंकर प्रसन्न होते हैं। यदि किसी भी देहधारीको दण्ड दिया जाता है तो उसके द्वारा अष्टमूर्तिधारी शिवका ही अनिष्ट किया जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ २९—३२॥

आठ मूर्तियोंके रूपमें सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हुए भगवान् शिवका तुम सब प्रकारसे भजन करो; क्योंकि रुद्रदेव सबके परम कारण हैं॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें श्रीकृष्णको उपमन्युका उपदेशवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

शिव और शिवाकी विभूतियोंका वर्णन

श्रीकृष्णने पूछा—भगवन् ! अमित तेजस्वी भगवान् शिवकी मूर्तियोंने इस सम्पूर्ण जगत्को जिस प्रकार व्याप्त कर रखा है, वह सब मैंने सुना। अब मुझे यह जाननेकी इच्छा है कि परमेश्वरी शिवा और परमेश्वर शिवका यथार्थ स्वरूप क्या है, उन दोनोंने स्त्री और पुरुषरूप इस जगत्को किस प्रकार व्याप्त कर रखा है?॥ १-२॥

उपमन्यु बोले—देवकीनन्दन ! मैं शिवा और शिवके श्रीसम्पन्न ऐश्वर्यका और उन दोनोंके यथार्थ स्वरूपका संक्षेपसे वर्णन करूँगा। विस्तारपूर्वक इस विषयका वर्णन तो भगवान् शिव भी नहीं कर सकते॥ ३॥

साक्षात् महादेवी पार्वती शक्ति हैं और महादेवजी

शक्तिमान्। उन दोनोंकी विभूतिका लेशमात्र ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्के रूपमें स्थित है। यहाँ कोई वस्तु जडरूप है और कोई वस्तु चेतनरूप। वे दोनों क्रमशः शुद्ध, अशुद्ध तथा पर और अपर कहे गये हैं॥ ४-५॥

जो चिन्मण्डल जडमण्डलके साथ संयुक्त हो संसारमें भटक रहा है, वही अशुद्ध और अपर कहा गया है। उससे भिन्न जो जडके बन्धनसे मुक्त है, वह पर और शुद्ध कहा गया है। अपर और पर चिदचित्स्वरूप हैं, इनपर स्वभावतः शिव और शिवाका स्वामित्व है॥ ६-७॥

शिवा और शिवके ही वशमें यह विश्व है। विश्वके वशमें शिवा और शिव नहीं हैं। यह जगत् शिव और शिवाके शासनमें है, इसलिये वे दोनों इसके ईश्वर या विश्वेश्वर कहे गये हैं॥ ८॥

जैसे शिव हैं वैसी शिवादेवी हैं, तथा जैसी शिवादेवी हैं, वैसे ही शिव हैं। जिस तरह चन्द्रमा और उनकी चाँदनीमें कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार शिव और शिवामें कोई अन्तर न समझे। जैसे चन्द्रिकाके बिना ये चन्द्रमा सुशोभित नहीं होते, उसी प्रकार शिव विद्यमान होनेपर भी शक्तिके बिना सुशोभित नहीं होते॥ ९-१०॥

जैसे ये सूर्यदेव कभी प्रभाके बिना नहीं रहते और प्रभा भी उन सूर्यदेवके बिना नहीं रहती, निरन्तर उनके आश्रयमें ही रहती है, उसी प्रकार शक्ति और शक्तिमान्को सदा एक-दूसरेकी अपेक्षा होती है। न तो शिवके बिना शक्ति रह सकती है और न शक्तिके बिना शिव। जिसके द्वारा शिव सदा देहधारियोंको भोग और मोक्ष देनेमें समर्थ होते हैं, वह आद्या अद्वितीया चिन्मयी पराशक्ति शिवके ही आश्रित है॥ ११—१३॥

ज्ञानी पुरुष उसी शक्तिको सर्वेश्वर परमात्मा शिवके अनुरूप उन-उन अलौकिक गुणोंके कारण उनकी समधर्मिणी कहते हैं। वह एकमात्र चिन्मयी पराशक्ति सृष्टिधर्मिणी है। वही शिवकी इच्छासे विभागपूर्वक नाना प्रकारके विश्वकी रचना करती है॥ १४-१५॥

वह शक्ति मूलप्रकृति, माया और त्रिगुणा—तीन प्रकारकी बतायी गयी है, उस शक्तिरूपिणी शिवाने ही इस जगत्का विस्तार किया है। व्यवहारभेदसे शक्तियोंके एक-दो, सौ, हजार एवं बहुसंख्यक भेद हो जाते हैं। शिवकी इच्छासे पराशक्ति शिवतत्त्वके साथ एकताको प्राप्त होती है। तदुपरान्त कल्पके आदिमें उसी प्रकार सृष्टिके प्रसंगमें शक्तिका प्रादुर्भाव होता है, जैसे तिलसे तेलका॥ १६—१८॥

तदनन्तर शक्तिमान्से शक्तिमें क्रियामयी शक्ति प्रकट होती है। उसके विक्षुब्ध होनेपर आदिकालमें पहले नादकी उत्पत्ति हुई। फिर नादसे बिन्दुका प्राकट्य हुआ और बिन्दुसे सदाशिव देवका। उन सदाशिवसे महेश्वर प्रकट हुए और महेश्वरसे शुद्ध विद्या॥ १९-२०॥

वह वाणीकी ईश्वरी है। इस प्रकार त्रिशूलधारी महेश्वरसे वागीश्वरी नामक शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ, जो वर्णों (अक्षरों)-के रूपमें विस्तारको प्राप्त होती है और मातृका कहलाती है। तदनन्तर अनन्तके समावेशसे मायाने काल, नियति, कला और विद्याकी सृष्टि की। कलासे राग तथा पुरुष हुए। फिर मायासे ही त्रिगुणात्मिका अव्यक्त प्रकृति हुई। उस त्रिगुणात्मक अव्यक्तसे तीनों गुण पृथक्-पृथक् प्रकट हुए॥ २१—२३॥

उनके नाम हैं—सत्त्व, रज और तम; इनसे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है। गुणोंमें क्षोभ होनेपर उनसे गुणेश नामक तीन मूर्तियाँ प्रकट हुईं। साथ ही 'महत्' आदि तत्त्वोंका क्रमशः प्रादुर्भाव हुआ। उन्हींसे शिवकी आज्ञाके अनुसार असंख्य अण्ड-पिण्ड प्रकट होते हैं, जो अनन्त आदि विद्येश्वर चक्रवर्तियोंसे अधिष्ठित हैं॥ २४-२५॥

शरीरान्तरके भेदसे शक्तिके बहुत-से भेद कहे गये हैं। स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे उनके अनेक रूप जानने चाहिये। रुद्रकी शक्ति रौद्री, विष्णुकी वैष्णवी, ब्रह्माकी ब्रह्माणी और इन्द्रकी इन्द्राणी कहलाती है॥ २६-२७॥

यहाँ बहुत कहनेसे क्या लाभ—जिसे विश्व कहा गया है, वह उसी प्रकार शक्त्यात्मासे व्याप्त है, जैसे शरीर अन्तरात्मासे। अतः सम्पूर्ण स्थावर-जंगमरूप जगत् शक्तिमय है। यह पराशक्ति परमात्मा शिवकी कला कही गयी है। इस तरह यह पराशक्ति ईश्वरकी इच्छाके अनुसार चलकर चराचर जगत्की सृष्टि करती है, ऐसा विज्ञ पुरुषोंका निश्चय है॥ २८—३०॥

ज्ञान, क्रिया और इच्छा—अपनी इन तीन शक्तियोंद्वारा शक्तिमान् ईश्वर सदा सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके

स्थित होते हैं। यह इस प्रकार हो और यह इस प्रकार न हो—इस तरह कार्योंका नियमन करनेवाली महेश्वरकी इच्छाशक्ति नित्य है॥ ३१-३२॥

उनकी जो ज्ञानशक्ति है, वह बुद्धिरूप होकर कार्य, करण, कारण और प्रयोजनका ठीक-ठीक निश्चय करती है; तथा शिवकी जो क्रियाशक्ति है, वह संकल्परूपिणी होकर उनकी इच्छा और निश्चयके अनुसार कार्यरूप सम्पूर्ण जगत्की क्षणभरमें कल्पना कर देती है॥ ३३-३४॥

इस प्रकार तीनों शक्तियोंसे जगत्का उत्थान होता है। प्रसव-धर्मवाली जो शक्ति है, वह पराशक्तिसे प्रेरित होकर ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करती है। इस तरह शक्तियोंके संयोगसे शिव शक्तिमान् कहलाते हैं। शक्ति और शक्तिमान्से प्रकट होनेके कारण यह जगत् शाक्त और शैव कहा गया है। जैसे माता-पिताके बिना पुत्रका जन्म नहीं होता, उसी प्रकार भव और भवानीके बिना इस चराचर जगत्की उत्पत्ति नहीं होती॥ ३५—३७॥

स्त्री और पुरुषसे प्रकट हुआ जगत् स्त्री और पुरुष-रूप ही है; यह स्त्री और पुरुषकी विभूति है, अत: स्त्री और पुरुषसे अधिष्ठित है। इनमें शक्तिमान् पुरुषरूप शिव तो परमात्मा कहे गये हैं और स्त्रीरूपिणी शिवा उनकी पराशक्ति। शिव सदाशिव कहे गये हैं और शिवा मनोन्मनी। शिवको महेश्वर जानना चाहिये और शिवा माया कहलाती हैं॥ ३८-३९॥

परमेश्वर शिव पुरुष हैं और परमेश्वरी शिवा प्रकृति। महेश्वर शिव रुद्र हैं और उनकी वल्लभा शिवादेवी रुद्राणी। विश्वेश्वर देव विष्णु हैं और उनकी प्रिया लक्ष्मी। जब सृष्टिकर्ता शिव ब्रह्मा कहलाते हैं, तब उनकी प्रियाको ब्रह्माणी कहते हैं। भगवान् शिव भास्कर हैं और भगवती शिवा प्रभा। कामनाशन शिव महेन्द्र हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा शची। महादेवजी अग्नि हैं और उनकी अर्धांगिनी उमा स्वाहा। भगवान् त्रिलोचन यम हैं और गिरिराजनन्दिनी उमा यमप्रिया। भगवान् शंकर निर्ऋति हैं और पार्वती नैर्ऋती। भगवान् रुद्र वरुण हैं और पार्वती वारुणी। चन्द्रशेखर शिव वायु हैं और पार्वती वायुप्रिया। शिव यक्ष हैं और पार्वती ऋद्धि॥ ४०—४५॥

चन्द्रार्धशेखर शिव चन्द्रमा हैं और रुद्रवल्लभा उमा रोहिणी। परमेश्वर शिव ईशान हैं और परमेश्वरी शिवा उनकी पत्नी। नागराज अनन्तको वलयरूपमें धारण करनेवाले भगवान् शंकर अनन्त हैं और उनकी वल्लभा शिवा अनन्ता। कालशत्रु शिव कालाग्निरुद्र हैं और [उमा] कालान्तकप्रिया काली हैं। जिनका दूसरा नाम पुरुष है, ऐसे स्वायम्भुव मनुके रूपमें साक्षात् शम्भु ही हैं और शिवप्रिया उमा शतरूपा हैं। साक्षात् महादेव दक्ष हैं और परमेश्वरी पार्वती प्रसूति। भगवान् भव रुचि हैं और भवानीको ही विद्वान् पुरुष आकूति कहते हैं। महादेवजी भृगु हैं और पार्वती ख्याति। भगवान् रुद्र मरीचि हैं और शिववल्लभा सम्भूति। भगवान् गंगाधर अंगिरा हैं और साक्षात् उमा स्मृति। चन्द्रमौलि पुलस्त्य हैं और पार्वती प्रीति। त्रिपुरनाशक शिव पुलह हैं और पार्वती ही उनकी प्रिया [पुलहपत्नी] हैं॥ ४६—५१॥

यज्ञविध्वंसी शिव क्रतु कहे गये हैं और उनकी प्रिया पार्वती संनति। भगवान् शिव अत्रि हैं और साक्षात् उमा अनसूया। कालहन्ता शिव कश्यप हैं और महेश्वरी उमा देवमाता अदिति। कामनाशन शिव वसिष्ठ हैं और साक्षात् देवी पार्वती अरुन्धती। भगवान् शंकर ही संसारके सारे पुरुष हैं और महेश्वरी शिवा ही सम्पूर्ण स्त्रियाँ। अत: सभी स्त्री-पुरुष उन्हींकी विभूतियाँ हैं॥ ५२—५४॥

भगवान् शिव विषयी हैं और परमेश्वरी उमा विषय। जो कुछ सुननेमें आता है वह सब उमाका रूप है और श्रोता साक्षात् भगवान् शंकर हैं। जिसके विषयमें प्रश्न या जिज्ञासा होती है, उस समस्त वस्तु-समुदायका रूप शंकरवल्लभा शिवा स्वयं धारण करती हैं तथा पूछनेवाला जो पुरुष है, वह बालचन्द्रशेखर विश्वात्मा शिवरूप ही है॥ ५५-५६॥

भववल्लभा उमा ही द्रष्टव्य वस्तुओंका रूप धारण करती हैं और द्रष्टा पुरुषके रूपमें शशिखण्डमौलि भगवान् विश्वनाथ ही सब कुछ देखते हैं। सम्पूर्ण रसकी राशि महादेवी हैं और उस रसका आस्वादन करनेवाले मंगलमय महादेव हैं। प्रेमसमूह पार्वती हैं और प्रियतम विषभोजी शिव हैं। देवी महेश्वरी सदा मन्तव्य वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और विश्वात्मा महेश्वर महादेव

उन वस्तुओंके मन्ता (मनन करनेवाले) हैं। भववल्लभा पार्वती बोद्धव्य (जाननेयोग्य) वस्तुओंका स्वरूप धारण करती हैं और शिशु-शशिशेखर भगवान् महादेव ही उन वस्तुओंके ज्ञाता हैं॥ ५७—६०॥

सामर्थ्यशाली भगवान् पिनाकी सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण हैं और सबके प्राणोंकी स्थिति जलरूपिणी माता पार्वती हैं। त्रिपुरान्तक पशुपतिकी प्राणवल्लभा पार्वती-देवी जब क्षेत्रका स्वरूप धारण करती हैं, तब कालके भी काल भगवान् महाकाल क्षेत्रज्ञरूपमें स्थित होते हैं। शूलधारी महादेवजी दिन हैं तो शूलपाणिप्रिया पार्वती रात्रि। कल्याणकारी महादेवजी आकाश हैं और शंकरप्रिया पार्वती पृथिवी। भगवान् महेश्वर समुद्र हैं तो गिरिराज-कन्या शिवा उसकी तटभूमि हैं। वृषभध्वज महादेव वृक्ष हैं, तो विश्वेश्वरप्रिया उमा उसपर फैलनेवाली लता हैं॥ ६१—६४॥

भगवान् त्रिपुरनाशक महादेव सम्पूर्ण पुँल्लिंगरूपको स्वयं धारण करते हैं और महादेवमनोरमा देवी शिवा सारा स्त्रीलिंगरूप धारण करती हैं। शिववल्लभा शिवा समस्त शब्दजालका रूप धारण करती हैं और बालेन्दुशेखर शिव सम्पूर्ण अर्थका। जिस-जिस पदार्थकी जो-जो शक्ति कही गयी है, वह-वह शक्ति तो विश्वेश्वरी देवी शिवा हैं और वह-वह सारा पदार्थ साक्षात् महेश्वर हैं। जो सबसे परे है, जो पवित्र है, जो पुण्यमय है तथा जो मंगलरूप है, उस-उस वस्तुको महाभाग महात्माओंने उन्हीं दोनों शिव-पार्वतीके तेजसे विस्तारको प्राप्त हुई बताया है॥ ६५—६८॥

जैसे जलते हुए दीपककी शिखा समूचे घरको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार शिव-पार्वतीका ही यह तेज व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत्‌को प्रकाश दे रहा है। तृणसे लेकर शिवकी मूर्तिपर्यन्त इस विश्वका व्यवहार उन्हीं दोनोंके सन्निकर्षके कारण चल रहा है—ऐसा परा श्रुति कहती है॥ ६९-७०॥

ये दोनों शिवा और शिव सर्वरूप हैं, सबका कल्याण करनेवाले हैं; अतः सदा ही इन दोनोंका पूजन, नमन एवं चिन्तन करना चाहिये॥ ७१॥

श्रीकृष्ण! आज मैंने तुम्हारे समक्ष अपनी बुद्धिके अनुसार परमेश्वर शिव और शिवाके यथार्थ स्वरूपका वर्णन किया है, परंतु इयत्तापूर्वक नहीं; अर्थात् इस वर्णनसे यह नहीं मान लेना चाहिये कि इन दोनोंके यथार्थरूपका पूर्णतः वर्णन हो गया; क्योंकि इनके स्वरूपकी इयत्ता (सीमा) नहीं है॥ ७२॥

जो समस्त महापुरुषोंके भी मनकी सीमासे परे है, परमेश्वर शिव और शिवाके उस यथार्थ स्वरूपका वर्णन कैसे किया जा सकता है!॥ ७३॥

जिन्होंने अपने चित्तको महेश्वरके चरणोंमें अर्पित कर दिया है तथा जो उनके अनन्यभक्त हैं, उनके ही मनमें वे आते हैं और उन्हींकी बुद्धिमें आरूढ़ होते हैं। दूसरोंकी बुद्धिमें वे आरूढ़ नहीं होते॥ ७४॥

यहाँ मैंने जिस विभूतिका वर्णन किया है, वह प्राकृत है, इसलिये अपरा मानी गयी है। इससे भिन्न जो अप्राकृत एवं परा विभूति है, वह गुह्य है। उनके गुह्य रहस्यको जाननेवाले पुरुष ही उन्हें जानते हैं॥ ७५॥

परमेश्वरकी यह अप्राकृत परा विभूति वह है, जहाँसे मन और इन्द्रियोंसहित वाणी लौट आती है। परमेश्वरकी वही विभूति यहाँ परम धाम है, वही यहाँ परमगति है और वही यहाँ पराकाष्ठा है॥ ७६-७७॥

जिस प्रकार गर्भाशयरूप निश्छिद्र कारागारमें शिशु श्वासको अवरुद्धकर स्थित होता है, वैसे ही जो अपने श्वास और इन्द्रियोंपर विजय पा चुके हैं, वे योगीजन ही उन्हें पानेका प्रयत्न करते हैं। शिवा और शिवकी यह विभूति संसाररूपी विषधर सर्पके डसनेसे मृत्युके अधीन हुए मानवोंके लिये संजीवनी ओषधि है। इसे जाननेवाला पुरुष किसीसे भी भयभीत नहीं होता॥ ७८-७९॥

जो इस परा और अपरा विभूतिको ठीक-ठीक जान लेता है, वह अपरा विभूतिको लाँघकर परा विभूतिका अनुभव करने लगता है॥ ८०॥

श्रीकृष्ण! यह तुमसे परमात्मा शिव और पार्वतीके यथार्थ स्वरूपका गोपनीय होनेपर भी वर्णन किया गया है; क्योंकि तुम भगवान् शिवकी भक्तिके योग्य हो। जो शिष्य न हों, शिवके उपासक न हों और भक्त भी न हों, ऐसे लोगोंको कभी शिव-पार्वतीकी इस विभूतिका उपदेश नहीं देना चाहिये। यह वेदकी आज्ञा है॥ ८१-८२॥

अतः अत्यन्त कल्याणमय श्रीकृष्ण! तुम दूसरोंको इसका उपदेश न देना। जो तुम्हारे जैसे योग्य पुरुष हों, उन्हींसे कहना; अन्यथा मौन ही रहना॥ ८३॥

जो शिवा-शिवकी इस विभूतिको योग्य भक्तोंको प्रदान करता है, वह संसार-सागरसे मुक्त होकर शिवसायुज्य प्राप्त करता है। इसके कीर्तनसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं; तीन-चार बार इसका अभ्यास करनेसे उससे भी अधिक पाप नष्ट हो जाते हैं। इसके द्वारा विनाशकारी शत्रु नष्ट हो जाते हैं, सुहृदोंकी वृद्धि होती है, शैवी विद्या बढ़ती है, बुद्धि सत्यमें प्रवृत्त होती है और शिव-पार्वती-गणों तथा उनके अनुचरोंके प्रति श्रेष्ठ भक्ति उत्पन्न होती है। व्यक्तिका जो-जो अन्य परम अभीष्ट होता है, उसे वह निःसन्देह प्राप्त कर लेता है॥ ८४—८७॥

जो भीतरसे पवित्र, शिवका भक्त और विश्वासी हो, वह यदि इसका कीर्तन करे तो मनोवांछित फलका भागी होता है। यदि पहलेके प्रबल प्रतिबन्धक कर्मोंद्वारा प्रथम बार फलकी प्राप्तिमें बाधा पड़ जाय, तो भी बारंबार साधनका अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करनेवाले पुरुषके लिये यहाँ कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ ८८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें गौरीशंकर-विभूतियोग नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

परमेश्वर शिवके यथार्थ स्वरूपका विवेचन तथा उनकी शरणमें जानेसे जीवके कल्याणका कथन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! यह चराचर जगत् देवाधिदेव महादेवजीका स्वरूप है। परंतु पशु (जीव) भारी पाशसे बँधे होनेके कारण जगत्‌को इस रूपमें नहीं जानते॥ १॥

महर्षिगण उन परमेश्वर शिवके निर्विकल्प परम भावको न जाननेके कारण उन एकका ही अनेक रूपोंमें वर्णन करते हैं—कोई उस परमतत्त्वको अपर ब्रह्मरूप कहते हैं, कोई परब्रह्मरूप बताते हैं और कोई आदि-अन्तसे रहित उत्कृष्ट महादेवस्वरूप कहते हैं॥ २-३॥

पंच महाभूत, इन्द्रिय, अन्तःकरण तथा प्राकृत विषयरूप जड तत्त्वको अपरब्रह्म कहा गया है। इससे भिन्न समष्टि चैतन्यका नाम परब्रह्म है॥ ४॥

बृहत् और व्यापक होनेके कारण उसे ब्रह्म कहते हैं। प्रभो! वेदों एवं ब्रह्माजीके अधिपति परब्रह्म परमात्मा शिवके वे पर और अपर दो रूप हैं। कुछ लोग महेश्वर शिवको विद्याविद्यास्वरूपी कहते हैं॥ ५॥

इनमें विद्या चेतना है और अविद्या अचेतना। यह विद्याविद्यारूप विश्व जगद्गुरु भगवान् शिवका रूप ही है, इसमें संदेह नहीं है; क्योंकि विश्व उनके वशमें है। भ्रान्ति, विद्या तथा पराविद्या या परम तत्त्व—ये शिवके तीन उत्कृष्ट रूप माने गये हैं॥ ६-७॥

पदार्थोंके विषयमें जो अनेक प्रकारकी असत्य धारणाएँ हैं, उन्हें भ्रान्ति कहते हैं। यथार्थ धारणा या ज्ञानका नाम विद्या है तथा जो विकल्परहित परम ज्ञान है, उसे परम तत्त्व कहते हैं। वेदवादियोंके द्वारा [परम तत्त्व ही सत् तथा] इससे विपरीत असत् कहा गया है॥ ८-९॥

सत् और असत् दोनोंका पति होनेके कारण शिव सदसत्पति कहलाते हैं। अन्य महर्षियोंने क्षर, अक्षर और उन दोनोंसे परे परम तत्त्वका प्रतिपादन किया है॥ १०॥

सम्पूर्ण भूत क्षर हैं और जीवात्मा अक्षर कहलाता है। वे दोनों परमेश्वरके रूप हैं; क्योंकि उन्हींके अधीन हैं। शान्तस्वरूप शिव उन दोनोंसे परे हैं, इसलिये क्षराक्षरपर कहे गये हैं। कुछ महर्षि परम कारणरूप शिवको समष्टि-व्यष्टिस्वरूप तथा समष्टि और व्यष्टिका कारण कहते हैं। अव्यक्तको समष्टि कहते हैं और व्यक्तको व्यष्टि॥ ११—१३॥

वे दोनों परमेश्वर शिवके रूप हैं, क्योंकि उन्हींकी इच्छासे प्रवृत्त होते हैं। उन दोनोंके कारणरूपसे स्थित

भगवान् शिव परम कारण हैं। अत: कारणार्थवेत्ता ज्ञानी पुरुष उन्हें समष्टि-व्यष्टिका कारण बताते हैं। कुछ लोग परमेश्वरको जाति-व्यक्ति-स्वरूप कहते हैं॥ १४-१५॥

जिसका शरीरमें भी अनुवर्तन हो, वह जाति कही गयी है। शरीरकी जातिके आश्रित रहनेवाली जो व्यावृत्ति है, जिसके द्वारा जातिभावनाका आच्छादन और वैयक्तिक भावनाका प्रकाशन होता है, उसका नाम व्यक्ति है। जाति और व्यक्ति दोनों ही भगवान् शिवकी आज्ञासे परिपालित हैं, अत: उन महादेवजीको जाति-व्यक्तिस्वरूप कहा गया है॥ १६-१७॥

कोई-कोई शिवको प्रधान, पुरुष, व्यक्त और कालरूप कहते हैं। प्रकृतिका ही नाम प्रधान है। जीवात्माको ही क्षेत्रज्ञ कहते हैं। तेईस तत्त्वोंको मनीषी पुरुषोंने व्यक्त कहा है और जो कार्य-प्रपंचके परिणामका एकमात्र कारण है, उसका नाम काल है॥ १८-१९॥

भगवान् शिव इन सबके ईश्वर, पालक, धारणकर्ता, प्रवर्तक, निवर्तक तथा आविर्भाव और तिरोभावके एकमात्र हेतु हैं। वे स्वयंप्रकाश एवं अजन्मा हैं। इसीलिये उन महेश्वरको प्रधान, पुरुष, व्यक्त और कालरूप कहा गया है॥ २०१/२॥

उन्हें ही कारण, नेता, अधिपति और धाता बताया गया है। कुछ लोग महेश्वरको विराट् और हिरण्यगर्भरूप बताते हैं। जो सम्पूर्ण लोकोंकी सृष्टिके हेतु हैं, उनका नाम हिरण्यगर्भ है और विश्वरूपको विराट् कहते हैं॥ २१-२२॥

ज्ञानी पुरुष भगवान् शिवको अन्तर्यामी और परम पुरुष कहते हैं। दूसरे लोग उन्हें प्राज्ञ, तैजस और विश्वरूप बताते हैं। कोई उन्हें तुरीयरूप मानते हैं और कोई सौम्यरूप। कितने ही विद्वानोंका कथन है कि वे ही माता, मान, मेय और मितिरूप हैं। अन्य लोग कर्ता, क्रिया, कार्य, करण और कारणरूप कहते हैं। दूसरे ज्ञानी उन्हें जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिरूप बताते हैं॥ २३—२५॥

कोई भगवान् शिवको तुरीयरूप कहते हैं तो कोई तुरीयातीत। कोई निर्गुण बताते हैं, कोई सगुण। कोई संसारी कहते हैं, कोई उन्हें असंसारी। कोई स्वतन्त्र मानते हैं, कोई अस्वतन्त्र। कोई उन्हें घोर समझते हैं, कोई सौम्य। कोई रागवान् कहते हैं, कोई वीतराग; कोई निष्क्रिय बताते हैं, कोई सक्रिय। किन्हींके कथनानुसार वे निरिन्द्रिय हैं तो किन्हींके मतमें सेन्द्रिय हैं॥ २६—२९॥

एक उन्हें ध्रुव कहता है तो दूसरा अध्रुव; कोई उन्हें साकार बताते हैं तो कोई निराकार। किन्हींके मतमें वे अदृश्य हैं तो किन्हींके मतमें दृश्य; कोई उन्हें वर्णनीय मानते हैं तो कोई अनिर्वचनीय। किन्हींके मतमें वे शब्दस्वरूप हैं तो किन्हींके मतमें शब्दातीत; कोई उन्हें चिन्तनका विषय मानते हैं तो कोई अचिन्त्य समझते हैं। दूसरे लोगोंका कहना है कि वे ज्ञानस्वरूप हैं, कोई उन्हें विज्ञानकी संज्ञा देते हैं। किन्हींके मतमें वे ज्ञेय हैं और किन्हींके मतमें अज्ञेय। कोई उन्हें पर बताता है तो कोई अपर॥ ३०—३३॥

इस तरह उनके विषयमें नाना प्रकारकी कल्पनाएँ होती हैं। इन नाना प्रतीतियोंके कारण मुनिजन उन परमेश्वरके यथार्थ स्वरूपका निश्चय नहीं कर पाते। जो सर्वभावसे उन परमेश्वरकी शरणमें आ गये हैं, वे ही उन परम कारण शिवको बिना यत्नके ही जान पाते हैं॥ ३४-३५॥

जबतक पशु (जीव), जिनका दूसरा कोई ईश्वर नहीं है, उन सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, पुराणपुरुष तथा तीनों लोकोंके शासक शिवको नहीं देखता, तबतक वह पाशोंसे बद्ध हो इस दु:खमय संसार-चक्रमें गाड़ीके पहियेकी नेमिके समान घूमता रहता है॥ ३६॥

जब यह द्रष्टा जीवात्मा सबके शासक, ब्रह्माके भी आदिकारण, सम्पूर्ण जगत्के रचयिता, सुवर्णोपम, दिव्य प्रकाशस्वरूप परम पुरुषका साक्षात्कार कर लेता है, तब पुण्य और पाप दोनोंको भलीभाँति हटाकर निर्मल हुआ वह ज्ञानी महात्मा सर्वोत्तम समताको प्राप्त कर लेता है॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पशुपतित्वज्ञानयोग नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठवाँ अध्याय

शिवके शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वमय, सर्वव्यापक एवं सर्वातीत स्वरूपका तथा उनकी प्रणवरूपताका प्रतिपादन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! शिवको न तो आणव मलका ही बन्धन प्राप्त है, न कर्मका और न मायाका ही। प्राकृत, बौद्ध, अहंकार, मन, चित्त, इन्द्रिय, तन्मात्रा और पंचभूतसम्बन्धी भी कोई बन्धन उन्हें नहीं छू सका है॥ १-२॥

अमित तेजस्वी शम्भुको न काल, न कला, न अविद्या, न नियति, न राग और न द्वेषरूप ही बन्धन प्राप्त है। उनमें न तो सदसत्कर्मोंका अभिनिवेश है,न उन कर्मोंका परिपाक है, न उनके फलस्वरूप सुख और दुःख हैं, न उनका वासनाओंसे सम्बन्ध है, न कर्मोंके संस्कारोंसे। भूत, भविष्य और वर्तमान भोगों तथा उनके संस्कारोंसे भी उनका सम्पर्क नहीं है॥ ३—५॥

न उनका कोई कारण है, न कर्ता। न आदि है, न अन्त और न मध्य है; न कर्म और करण है; न अकर्तव्य है और न कर्तव्य ही है। उनका न कोई बन्धु है और न अबन्धु; न नियन्ता है, न प्रेरक; न पति है, न गुरु है और न त्राता ही है। उनसे अधिककी चर्चा कौन करे, उनके समान भी कोई नहीं है॥ ६-७॥

उनका न जन्म होता है, न मरण। उनके लिये कोई वस्तु न तो वांछित है और न अवांछित ही। उनके लिये न विधि है न निषेध। न बन्धन है न मुक्ति। जो-जो अकल्याणकारी दोष हैं, वे उनमें कभी नहीं रहते। परंतु सम्पूर्ण कल्याणकारी गुण उनमें सदा ही रहते हैं; क्योंकि शिव साक्षात् परमात्मा हैं॥ ८-९॥

वे शिव अपनी शक्तियोंद्वारा इस सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त होकर अपने स्वभावसे च्युत न होते हुए सदा ही स्थित रहते हैं; इसलिये उन्हें स्थाणु कहते हैं। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् शिवसे अधिष्ठित है; अतः भगवान् शिव सर्वरूप माने गये हैं। जो ऐसा जानता है, वह कभी मोहमें नहीं पड़ता। रुद्र सर्वरूप हैं। उन्हें नमस्कार है। वे सत्स्वरूप, परम महान् पुरुष, हिरण्यबाहु भगवान्, हिरण्यपति, ईश्वर, अम्बिकापति, ईशान, पिनाकपाणि तथा वृषभवाहन हैं। एकमात्र रुद्र ही परब्रह्म परमात्मा हैं। वे ही कृष्ण-पिंगलवर्णवाले पुरुष हैं॥ १०—१३॥

वे हृदयके भीतर कमलके मध्यभागमें केशके अग्रभागकी भाँति सूक्ष्मरूपसे चिन्तन करनेयोग्य हैं। उनके केश सुनहरे रंगके हैं। नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। अंगकान्ति अरुण और ताम्रवर्णकी है। वे सुवर्णमय नीलकण्ठ देव सदा विचरते रहते हैं। उन्हें सौम्य, घोर, मिश्र, अक्षर, अमृत और अव्यय कहा गया है। वे पुरुषविशेष परमेश्वर भगवान् शिव कालके भी काल हैं। चेतन और अचेतनसे परे हैं। इस प्रपंचसे भी परात्पर हैं॥ १४—१६॥

शिवमें ऐसे ज्ञान और ऐश्वर्य देखे गये हैं, जिनसे बढ़कर ज्ञान और ऐश्वर्य अन्यत्र नहीं हैं। मनीषी पुरुषोंने भगवान् शिवको लोकमें सबसे अधिक ऐश्वर्यशाली पदपर प्रतिष्ठित बताया है। प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न होकर एक सीमित कालतक रहनेवाले ब्रह्माओंको आदिकालमें विस्तारपूर्वक शास्त्रका उपदेश देनेवाले भगवान् शिव ही हैं॥ १७-१८॥

एक सीमित कालतक रहनेवाले गुरुओंके भी वे गुरु हैं। वे सर्वेश्वर सदा सभीके गुरु हैं। कालकी सीमा उन्हें छू नहीं सकती। उनकी शुद्ध स्वाभाविक शक्ति सबसे बढ़कर है। उन्हें अनुपम ज्ञान और नित्य अक्षय शरीर प्राप्त है॥ १९-२०॥

उनके ऐश्वर्यकी कहीं तुलना नहीं है। उनका सुख अक्षय और बल अनन्त है। उनमें असीम तेज, प्रभाव, पराक्रम, क्षमा और करुणा भरी है। वे नित्य परिपूर्ण हैं। उन्हें सृष्टि आदिसे अपने लिये कोई प्रयोजन नहीं है। दूसरोंपर परम अनुग्रह ही उनके समस्त कर्मोंका फल है॥ २१-२२॥

प्रणव उन परमात्मा शिवका वाचक है। शिव, रुद्र आदि नामोंमें प्रणव ही सबसे उत्कृष्ट माना गया है। प्रणववाच्य शम्भुके चिन्तन और जपसे जो सिद्धि प्राप्त होती है, वही परा सिद्धि है, इसमें संशय नहीं है॥ २३-२४॥

इसीलिये शास्त्रोंके पारंगत मनस्वी विद्वान् वाच्य और वाचककी एकता स्वीकार करते हुए महादेवजीको एकाक्षरात्मक प्रणवरूप कहते हैं। माण्डूक्य-उपनिषद्‌में प्रणवकी चार मात्राएँ बतायी गयी हैं—अकार, उकार,

मकार और नाद। अकारको ऋग्वेद कहते हैं। उकार यजुर्वेदरूप कहा गया है। मकार सामवेद है और नाद अथर्ववेदकी श्रुति है॥ २५—२७॥

अकार महाबीज है, वह रजोगुण तथा सृष्टिकर्ता ब्रह्मा है। उकार प्रकृतिरूपा योनि है, वह सत्त्वगुण तथा पालनकर्ता श्रीहरि है। मकार जीवात्मा एवं बीज है, वह तमोगुण तथा संहारकर्ता रुद्र है। नाद परम पुरुष परमेश्वर है, वह निर्गुण एवं निष्क्रिय शिव है॥ २८-२९॥

इस प्रकार प्रणव अपनी तीन मात्राओंके द्वारा ही तीन रूपोंमें इस जगत्‌का प्रतिपादन करके अपनी अर्धमात्रा (नाद)- के द्वारा शिवस्वरूपका बोध कराता है॥ ३०॥

जिनसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, जिनसे बढ़कर कोई न तो अधिक सूक्ष्म है और न महान् ही है तथा जो अकेले ही वृक्षकी भाँति निश्चलभावसे प्रकाशमय आकाशमें स्थित हैं, उन परम पुरुष परमेश्वर शिवसे यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवतत्त्ववर्णन नामक छठाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

परमेश्वरकी शक्तिका ऋषियोंद्वारा साक्षात्कार, शिवके प्रसादसे प्राणियोंकी मुक्ति, शिवकी सेवा-भक्ति तथा पाँच प्रकारके शिवधर्मका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं— परमेश्वर शिवकी स्वाभाविक शक्ति विद्या है, जो सबसे विलक्षण है। वह एक होकर भी अनेक रूपसे भासित होती है। जैसे सूर्यकी प्रभा एक होकर भी अनेक रूपमें प्रकाशित होती है॥ १॥

उस विद्याशक्तिसे इच्छा, ज्ञान, क्रिया और माया आदि अनेक शक्तियाँ उत्पन्न हुई हैं, ठीक उसी तरह जैसे अग्निसे बहुत-सी चिनगारियाँ प्रकट होती हैं। उसीसे सदाशिव और ईश्वर आदि तथा विद्या और विद्येश्वर आदि पुरुष भी प्रकट हुए हैं। परात्पर प्रकृति भी उसीसे उत्पन्न हुई है॥ २-३॥

महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सारे विकार तथा अज (ब्रह्मा) आदि मूर्तियाँ भी उसीसे प्रकट हुई हैं। इनके सिवा जो अन्य वस्तुएँ हैं, वे सब भी उसी शक्तिके कार्य हैं, इसमें संशय नहीं है। वह शक्ति सर्वव्यापिनी, सूक्ष्मा तथा ज्ञानानन्दरूपिणी है। उसीसे शीतांशुभूषण भगवान् शिव शक्तिमान् कहलाते हैं॥ ४-५॥

शक्तिमान्—शिव वेद्य हैं और शक्तिरूपिणी—शिवा विद्या हैं। वे शक्तिरूपा शिवा ही प्रज्ञा, श्रुति, स्मृति, धृति, स्थिति, निष्ठा, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, कर्मशक्ति, आज्ञाशक्ति, परब्रह्म, परा और अपरा नामकी दो विद्याएँ, शुद्ध विद्या और शुद्ध कला हैं; क्योंकि सब कुछ शक्तिका ही कार्य है। माया, प्रकृति, जीव, विकार, विकृति, असत् और सत् आदि जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह सब उस शक्तिसे ही व्याप्त है॥ ६—८॥

वे शक्तिरूपिणी शिवादेवी मायाद्वारा समस्त चराचर ब्रह्माण्डको अनायास ही मोहमें डाल देती और लीलापूर्वक उसे मोहके बन्धनसे मुक्त भी कर देती हैं। इस शक्तिके सत्ताईस प्रकार हैं, सत्ताईस प्रकारवाली इस शक्तिके साथ सर्वेश्वर शिव सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं। इन्हींके चरणोंमें मुक्ति विराजती है॥ ९-१०॥

पूर्वकालकी बात है, संसारबन्धनसे छूटनेकी इच्छावाले कुछ ब्रह्मवादी मुनियोंके मनमें यह संशय हुआ। वे परस्पर मिलकर यथार्थरूपसे विचार करने लगे—इस जगत्‌का कारण क्या है? हम किससे उत्पन्न हुए हैं और किससे जीवन धारण करते हैं? हमारी प्रतिष्ठा कहाँ है? हमारा अधिष्ठाता कौन है? हम किसके सहयोगसे सदा सुखमें और दुःखमें रहते हैं? किसने इस विश्वकी अलंघनीय व्यस्था की है? यदि कहें काल, स्वभाव, नियति (निश्चित फल देनेवाला कर्म) और यदृच्छा (आकस्मिक घटना) इसमें कारण

हों तो यह कथन युक्तिसंगत नहीं जान पड़ता। पाँचों महाभूत तथा जीवात्मा भी कारण नहीं हैं। इन सबका संयोग तथा अन्य कोई भी कारण नहीं है; क्योंकि ये काल आदि अचेतन हैं। जीवात्माके चेतन होनेपर भी वह सुख-दुःखसे अभिभूत तथा असमर्थ होनेसे इस जगत्‌का कारण नहीं हो सकता। अतः कौन कारण है, इसका विचार करना चाहिये॥ ११—१५॥

[इस प्रकार आपसमें विचार करनेपर जब वे युक्तियोंद्वारा किसी निर्णयतक न पहुँच सके,] तब उन्होंने ध्यानयोगमें स्थित होकर परमेश्वरकी स्वरूपभूता अचिन्त्य शक्तिका साक्षात्कार किया, जो अपने ही गुणोंसे— सत्त्व, रज और तमसे ढकी है तथा उन तीनों गुणोंसे परे है। परमेश्वरकी वह साक्षात् शक्ति समस्त पाशोंका विच्छेद करनेवाली है। उसके द्वारा बन्धन काट दिये जानेपर जीव अपनी दिव्य दृष्टिसे उन सर्वकारण-कारण शक्तिमान् महादेवजीका दर्शन करने लगते हैं, जो कालसे लेकर जीवात्मातक पूर्वोक्त समस्त कारणोंपर तथा सम्पूर्ण विश्वपर अपनी इस शक्तिके द्वारा ही शासन करते हैं। वे परमात्मा अप्रमेय हैं॥ १६—१८॥

तदनन्तर परमेश्वरके प्रसादयोग, परमयोग तथा सुदृढ़ भक्तियोगके द्वारा उन मुनियोंने दिव्य गति प्राप्त कर ली। श्रीकृष्ण! जो अपने हृदयमें शक्तिसहित भगवान् शिवका दर्शन करते हैं, उन्हींको सनातन शान्ति प्राप्त होती है, दूसरोंको नहीं, यह श्रुतिका कथन है। शक्तिमान्‌का शक्तिसे कभी वियोग नहीं होता। अतः शक्ति और शक्तिमान् दोनोंके तादात्म्यसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है॥ १९—२१॥

मुक्तिकी प्राप्तिमें निश्चय ही ज्ञान और कर्मका कोई क्रम विवक्षित नहीं है, जब [शिव और शक्तिकी] कृपा हो जाती है, तब वह मुक्ति हाथमें आ जाती है। देवता, दानव, पशु, पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े भी उनकी कृपासे मुक्त हो जाते हैं॥ २२-२३॥

गर्भका बच्चा, जन्मता हुआ बालक, शिशु, तरुण, वृद्ध, मुमूर्षु, स्वर्गवासी, नारकी, पतित, धर्मात्मा, पण्डित अथवा मूर्ख साम्बशिवकी कृपा होनेपर तत्काल मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ २४-२५॥

परमेश्वर अपनी स्वाभाविक करुणासे अयोग्य भक्तोंके भी विविध मलोंको दूर करके उनपर कृपा करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। भगवान्‌की कृपासे ही भक्ति होती है और भक्तिसे ही उनकी कृपा होती है। अवस्थाभेदका विचार करके विद्वान् पुरुष इस विषयमें मोहित नहीं होता है॥ २६-२७॥

कृपाप्रसादपूर्वक जो यह भक्ति होती है, वह भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करानेवाली है। उसे मनुष्य एक जन्ममें नहीं प्राप्त कर सकता। अनेक जन्मोंतक श्रौत-स्मार्त कर्मोंका अनुष्ठान करके सिद्ध हुए विरक्त एवं ज्ञानसम्पन्न पुरुषोंपर महेश्वर प्रसन्न होते और कृपा करते हैं। देवेश्वर शिवके प्रसन्न होनेपर उस पशु (जीव)-में बुद्धिपूर्वक थोड़ी-सी भक्तिका उदय होता है। तब वह यह अनुभव करने लगता है कि भगवान् शिव मेरे स्वामी हैं। फिर तपस्यापूर्वक वह नाना प्रकारके शैवधर्मोंके पालनमें संलग्न होता है। उन धर्मोंके पालनमें बारंबार लगे रहनेसे उसके हृदयमें पराभक्तिका प्रादुर्भाव होता है॥ २८—३१॥

उस पराभक्तिसे परमेश्वरका परम प्रसाद उपलब्ध होता है। प्रसादसे सम्पूर्ण पाशोंसे छुटकारा मिलता है और छुटकारा मिल जानेपर परमानन्दकी प्राप्ति होती है, जिस मनुष्यका भगवान् शिवमें थोड़ा-सा भी भक्तिभाव है, वह तीन जन्मोंके बाद अवश्य मुक्त हो जाता है। उसे इस संसारमें योनियन्त्रकी पीड़ा नहीं सहनी पड़ती॥ ३२-३३॥

सांगा (अंगसहित) और अनंगा (अंगरहित) जो सेवा है, उसीको भक्ति कहते हैं। उसके फिर तीन भेद होते हैं—मानसिक, वाचिक और शारीरिक। शिवके रूप आदिका जो चिन्तन है, उसे मानसिक सेवा कहते हैं। जप आदि वाचिक सेवा है और पूजन आदि कर्म शारीरिक सेवा है॥ ३४-३५॥

इन त्रिविध साधनोंसे सम्पन्न होनेवाली जो यह सेवा है, इसे 'शिवधर्म' भी कहते हैं। परमात्मा शिवने पाँच प्रकारका शिवधर्म बताया है—तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान। लिंगपूजन आदिको 'कर्म' कहते हैं। चान्द्रायण आदि व्रतोंका नाम 'तप' है। [वाचिक, उपांशु और मानस—] तीन प्रकारका जो शिव-मन्त्रका अभ्यास (आवृत्ति) है, उसीको 'जप' कहते हैं। शिवका चिन्तन

ही 'ध्यान' कहलाता है तथा शिवसम्बन्धी आगमोंमें जिस ज्ञानका वर्णन है, उसीको यहाँ 'ज्ञान' शब्दसे कहा गया है॥ ३६—३८॥

श्रीकण्ठ शिवने शिवाके प्रति जिस ज्ञानका उपदेश किया है, वही शिवागम है। शिवके आश्रित जो भक्तजन हैं, उनपर कृपा करके कल्याणके एकमात्र साधक इस ज्ञानका उपदेश किया गया है। अत: कल्याणकामी बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह परम कारण शिवमें भक्तिको बढ़ाये तथा विषयासक्तिका त्याग करे॥ ३९-४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवतत्त्वकथन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

शिव-ज्ञान, शिवकी उपासनासे देवताओंको उनका दर्शन, सूर्यदेवमें शिवकी पूजा करके अर्घ्यदानकी विधि तथा व्यासावतारोंका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! अब मैं उस शिव-ज्ञानको सुनना चाहता हूँ, जो वेदोंका सारतत्त्व है तथा जिसे भगवान् शिवने अपने शरणागत भक्तोंकी मुक्तिके लिये कहा है॥ १॥

वह भक्तिहीन, [निर्मल] बुद्धिसे रहित तथा चंचल चित्तवाले लोगोंके लिये अज्ञेय है; वह [शिवके सर्गादि पंचकृत्यरूप] पाँच प्रयोजनोंसे युक्त, अतिगम्भीर तथा बुद्धिमानोंके द्वारा समादृत है, वर्णाश्रम धर्मोंसे कहीं विपरीत तथा कहीं उनके अनुकूल है और अंगोंसहित वेदोंसे एवं सांख्य तथा योगसे पूर्णत: ग्रहण करके सौ करोड़ श्लोकसंख्यामें विस्तारसे शिवजीके द्वारा कहा गया है। उसमें प्रभु शिवकी पूजा किस प्रकार बतायी गयी है?॥ २—४॥

पूजा आदिमें किसका अधिकार है तथा ज्ञानयोग आदि कैसे सिद्ध होते हैं? उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनीश्वर! ये सब बातें विस्तारपूर्वक बताइये॥ ५॥

उपमन्युने कहा—भगवान् शिवने जिस वेदोक्त ज्ञानको संक्षिप्त करके कहा है, वही शैव-ज्ञान है। वह निन्दा-स्तुति आदिसे रहित तथा श्रवणमात्रसे ही अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करनेवाला है॥ ६॥

यह दिव्य ज्ञान गुरुकी कृपासे प्राप्त होता है और अनायास ही मोक्ष देनेवाला है। मैं उसे संक्षेपमें ही बताऊँगा; क्योंकि उसका विस्तारपूर्वक वर्णन कोई कर ही नहीं सकता है॥ ७॥

पूर्वकालमें महेश्वर शिव सृष्टिकी इच्छा करके सत्कार्य-कारणोंसे नियुक्त हो स्वयं ही अव्यक्तसे व्यक्तरूपमें प्रकट हुए॥ ८॥

उस समय ज्ञानस्वरूप भगवान् विश्वनाथने देवताओंमें सबसे प्रथम देवता वेदपति ब्रह्माजीको उत्पन्न किया॥ ९॥

ब्रह्माने उत्पन्न होकर अपने पिता महादेवको देखा तथा ब्रह्माजीके जनक महादेवजीने भी उत्पन्न हुए ब्रह्माकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टिसे देखा और उन्हें सृष्टि रचनेकी आज्ञा दी। रुद्रदेवकी कृपादृष्टिसे देखे जानेपर सृष्टिके सामर्थ्यसे युक्त हो उन ब्रह्मदेवने समस्त संसारकी रचना की और पृथक्-पृथक् वर्णों तथा आश्रमोंकी व्यवस्था की॥ १०-११॥

उन्होंने यज्ञके लिये सोमकी सृष्टि की। सोमसे द्युलोकका प्रादुर्भाव हुआ। फिर पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, यज्ञमय विष्णु और शचीपति इन्द्र प्रकट हुए। वे सब तथा अन्य देवता रुद्राध्याय पढ़कर रुद्रदेवकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् महेश्वर अपनी लीला प्रकट करनेके लिये उन सबका ज्ञान हरणकर प्रसन्नमुखसे उन देवताओंके आगे खड़े हो गये॥ १२-१३॥

उस समय लीलावश भगवान् महेश्वरने उनके ज्ञानका अपहरण कर लिया, तब देवताओंने मोहित होकर उनसे पूछा—'आप कौन हैं?' वे भगवान् रुद्र बोले—'श्रेष्ठ देवताओ! सबसे पहले मैं ही था। इस समय भी सर्वत्र मैं ही हूँ और भविष्यमें भी मैं ही रहूँगा।

मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है। मैं ही अपने तेजसे सम्पूर्ण जगत्‌को तृप्त करता हूँ॥ १४—१६॥

मुझसे अधिक और मेरे समान कोई नहीं है। जो मुझे जानता है, वह मुक्त हो जाता है।' ऐसा कहकर भगवान् रुद्र वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १७॥

जब देवताओंने उन महेश्वरको नहीं देखा, तब वे सामवेदके मन्त्रोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे। अथर्वशीर्षमें वर्णित पाशुपत-व्रतको ग्रहण करके उन अमरगणोंने अपने सम्पूर्ण अंगोंमें भस्म लगा लिया। यह देख उनपर कृपा करनेके लिये पशुपति महादेव अपने गणों और उमाके साथ उनके निकट आये॥ १८—१९१/२॥

प्राणायामके द्वारा श्वासको जीतकर निद्रारहित एवं निष्पाप हुए योगीजन अपने हृदयमें जिनका दर्शन करते हैं, उन्हीं महादेवको उन देवेश्वरोंने वहाँ देखा। जिन्हें ईश्वरकी इच्छाका अनुसरण करनेवाली पराशक्ति कहते हैं, उन वामलोचना भवानीको भी उन्होंने वामदेव महेश्वरके वामभागमें विराजमान देखा॥ २०—२११/२॥

जो संसारको त्यागकर शिवके परमपदको प्राप्त हो चुके हैं तथा जो नित्य सिद्ध हैं, उन गणेश्वरोंका भी देवताओंने दर्शन किया। तत्पश्चात् देवता महेश्वरसम्बन्धी वैदिक और पौराणिक दिव्य स्तोत्रोंद्वारा देवीसहित महेश्वरकी स्तुति करने लगे। तब वृषभध्वज महादेवजी भी उन देवताओंकी ओर कृपापूर्वक देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो स्वभावतः मधुर वाणीमें बोले—'मैं तुमलोगोंपर बहुत संतुष्ट हूँ।' उन प्रार्थनीय एवं पूज्यतम भगवान् वृषभध्वजको अत्यन्त प्रसन्नचित्त जान देवताओंने प्रणाम करके आदरपूर्वक उनसे अतीव महत्त्वपूर्ण विषय पूछा॥ २२—२५॥

देवता बोले—भगवन्! इस भूतलपर किस मार्गसे आपकी पूजा होनी चाहिये और उस पूजामें किसका अधिकार है? यह ठीक-ठीक बतानेकी कृपा करें॥ २६॥

तब देवेश्वर शिवने देवीकी ओर मुसकराते हुए देखा और अपने परम घोर सूर्यमय स्वरूपको दिखाया॥ २७॥

उनका वह स्वरूप सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणोंसे सम्पन्न, सर्वतेजोमय, सर्वोत्कृष्ट तथा शक्तियों, मूर्तियों, अंगों, ग्रहों और देवताओंसे घिरा हुआ था। उसके आठ भुजाएँ और चार मुख थे। उसका आधा भाग नारीके रूपमें था। उस अद्भुत आकृतिवाले आश्चर्यजनक स्वरूपको देखते ही सब देवता यह जान गये कि सूर्यदेव, पार्वतीदेवी, चन्द्रमा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी तथा शेष पदार्थ भी शिवके ही स्वरूप हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् शिवमय ही है॥ २८—३०॥

परस्पर ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् सूर्यको अर्घ्य दिया और नमस्कार किया॥ ३१॥

अर्घ्य देते समय वे इस प्रकार बोले—'जिनका वर्ण सिन्दूरके समान है और मण्डल सुन्दर है, जो सुवर्णके समान कान्तिमान् आभूषणोंसे विभूषित हैं, जिनके नेत्र कमलके समान हैं, जिनके हाथमें भी कमल हैं, जो ब्रह्मा, इन्द्र और नारायणके भी कारण हैं, उन भगवान्‌को नमस्कार है।'॥ ३२॥

[यों कह] उत्तम रत्नोंसे पूर्ण, सुवर्ण, कुंकुम, कुश और पुष्पसे युक्त जल सोनेके पात्रमें लेकर उन देवेश्वरको उत्कृष्ट अर्घ्य दे [और कहे—] 'भगवन्! आप प्रसन्न हों। आप सबके आदिकारण हैं। आप ही रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और सूर्यरूप हैं। गणोंसहित आप शान्त शिवको नमस्कार है।'॥ ३३-३४॥

जो एकाग्रचित्त हो सूर्यमण्डलमें शिवका पूजन करके प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें उनके लिये उत्तम अर्घ्य देता है, प्रणाम करता है और इन श्रवणसुखद श्लोकोंको पढ़ता है, उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यदि वह भक्त है तो अवश्य ही मुक्त हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन शिवरूपी सूर्यका पूजन करना चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके लिये मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा उनकी आराधना करनी चाहिये॥ ३५—३७॥

तत्पश्चात् मण्डलमें विराजमान महेश्वर देवताओंकी ओर देखकर और उन्हें सम्पूर्ण शास्त्रोंमें श्रेष्ठ शिवशास्त्र देकर वहीं अन्तर्धान हो गये। उस शास्त्रमें शिवपूजाका अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंको दिया गया है। यह जानकर देवेश्वर शिवको प्रणाम करके देवता जैसे आये थे, वैसे चले गये॥ ३८-३९॥

तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब वह शास्त्र लुप्त हो गया, तब भगवान् शंकरके अंकमें बैठी हुई महेश्वरी

शिवाने पतिदेवसे उसके विषयमें पूछा॥ ४०॥

तब देवीसे प्रेरित हो चन्द्रभूषण महादेवने वेदोंका सार निकालकर सम्पूर्ण आगमोंमें श्रेष्ठ शास्त्रका उपदेश किया, फिर उन परमेश्वरकी आज्ञासे मैंने, गुरुदेव अगस्त्यने और महर्षि दधीचिने भी लोकमें उस शास्त्रका प्रचार किया। शूलपाणि महादेव स्वयं भी युग-युगमें भूतलपर अवतार ले अपने आश्रितजनोंकी मुक्तिके लिये ज्ञानका प्रसार करते हैं॥ ४१—४३॥

ऋभु, सत्य, भार्गव, अंगिरा, सविता, मृत्यु, बुद्धिशील, इन्द्र, मुनिवर वसिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामा, मुनिश्रेष्ठ त्रिवृत्, शततेजा, साक्षात् धर्मस्वरूप नारायण, स्वरक्ष, बुद्धिमान् आरुणि, कृतंजय, भरद्वाज, श्रेष्ठ विद्वान् गौतम, वाच:श्रवा मुनि, पवित्र सूक्ष्मायणि, तृणविन्दु मुनि, कृष्ण, शक्ति, शाक्तेय (पाराशर), उत्तर, जातूकर्ण्य और साक्षात् नारायणस्वरूप कृष्णद्वैपायन मुनि—ये सब व्यासावतार हैं। अब क्रमशः कल्प-योगेश्वरोंका वर्णन सुनो॥ ४४—४८॥

लिंगपुराणमें द्वापरके अन्तमें होनेवाले उत्तम व्रतधारी व्यासावतार तथा योगाचार्यावतारोंका वर्णन है। भगवान् शिवके शिष्योंमें भी जो प्रसिद्ध हैं, उनका वर्णन है। उन अवतारोंमें भगवान्‌के मुख्यरूपसे चार महातेजस्वी शिष्य होते हैं। फिर उनके सैकड़ों, हजारों शिष्य-प्रशिष्य हो जाते हैं॥ ४९-५०॥

लोकमें उनके उपदेशके अनुसार भगवान् शिवकी आज्ञा पालन करने आदिके द्वारा भक्तिसे अत्यन्त भावित हो भाग्यवान् पुरुष मुक्त हो जाते हैं॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवतत्त्वज्ञानके प्रसंगमें व्यासावतारवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

शिवके अवतार योगाचार्यों तथा उनके शिष्योंकी नामावली

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! समस्त युगावर्तोंमें योगाचार्यके व्याजसे भगवान् शंकरके जो अवतार होते हैं और उन अवतारोंके जो शिष्य होते हैं, उन सबका वर्णन कीजिये॥ १॥

उपमन्युने कहा—श्वेत, सुतार, मदन, सुहोत्र, कंक, लौगाक्षि, महामायावी जैगीषव्य, दधिवाह, ऋषभ मुनि, उग्र, अत्रि, सुपालक, गौतम, वेदशिरा मुनि, गोकर्ण, गुहावासी, शिखण्डी, जटामाली, अट्टहास, दारुक, लांगुली, महाकाल, शूली, दण्डी, मुण्डीश, सहिष्णु, सोमशर्मा और नकुलीश्वर—ये वाराह कल्पके इस सातवें मन्वन्तरमें युगक्रमसे अट्ठाईस योगाचार्य प्रकट हुए हैं॥ २—६॥

इनमेंसे प्रत्येकके शान्तचित्तवाले चार-चार शिष्य हुए हैं, जो श्वेतसे लेकर रुष्यपर्यन्त बताये गये हैं। मैं उनका क्रमशः वर्णन करता हूँ, सुनो। श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित, दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान्, विकोश, विकेश, विपाश, पाशनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्गम, दुरतिक्रम, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, सुधामा, विरजा, शंख, अण्डज, सारस्वत, मेघ, मेघवाह, सुवाहक, कपिल, आसुरि, पंचशिख, वाष्कल, पराशर, गर्ग, भार्गव, अंगिरा, बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृंग, तपोधन, लम्बोदर, लम्ब, लम्बात्मा, लम्बकेशक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्यबुद्धि, सुधामा, कश्यप, वसिष्ठ, विरजा, अत्रि, उग्र, गुरुश्रेष्ठ, श्रवण, श्रविष्ठक, कुणि, कुणबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, काश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, उतथ्य, वामदेव, महाकाल, महानिल, वाच:श्रवा, सुवीर, श्यावक, यतीश्वर, हिरण्यनाभ, कौशल्य, लोकाक्षि, कुथुमि, सुमन्तु, जैमिनी, कुबन्ध, कुशकन्धर, प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमान्, गौतम, भल्लवी, मधुपिंग, श्वेतकेतु, उशिज, बृहदश्व, देवल, कवि, शालिहोत्र, सुवेष, युवनाश्व, शरद्वसु, [छगल, कुम्भकर्ण, कुम्भ, प्रबाहुक, उलूक, विद्युत्, शम्बूक, आश्वलायन,] अक्षपाद, कणाद, उलूक, वत्स, कुशिक, गर्ग, मित्रक और रुष्य—ये योगाचार्यरूपी महेश्वरके शिष्य हैं। इनकी संख्या एक

सौ बारह है॥ ७—२१॥

ये सब-के-सब सिद्ध पाशुपत हैं। इनका शरीर भस्मसे विभूषित रहता है। ये सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ, वेद और वेदांगोंके पारंगत विद्वान्, शिवाश्रममें अनुरक्त, शिवज्ञानपरायण, सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त, एकमात्र भगवान् शिवमें ही मनको लगाये रखनेवाले, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंको सहनेवाले, धीर, सर्वभूतहितकारी, सरल, कोमल, स्वस्थ, क्रोधशून्य और जितेन्द्रिय होते हैं, रुद्राक्षकी माला ही इनका आभूषण है। उनके मस्तक त्रिपुण्ड्रसे अंकित होते हैं। उनमेंसे कोई तो शिखाके रूपमें ही जटा धारण करते हैं। किन्हींके सारे केश ही जटारूप होते हैं। कोई-कोई ऐसे हैं, जो जटा नहीं रखते हैं और कितने ही सदा माथा मुड़ाये रहते हैं॥ २२—२५॥

वे प्रायः फल-मूलका आहार करते हैं। प्राणायाम-साधनमें तत्पर होते हैं। 'मैं शिवका हूँ' इस अभिमानसे युक्त होते हैं। सदा शिवके ही चिन्तनमें लगे रहते हैं। उन्होंने संसाररूपी विषवृक्षके अंकुरको मथ डाला है। वे सदा परमधाममें जानेके लिये ही कटिबद्ध होते हैं। जो योगाचार्योंसहित इन शिष्योंको जान-मानकर सदा शिवकी आराधना करता है, वह शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ २६—२८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवका योगावतारवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके प्रति श्रद्धा-भक्तिकी आवश्यकताका प्रतिपादन, शिवधर्मके चार पादोंका वर्णन एवं ज्ञानयोगके साधनों तथा शिवधर्मके अधिकारियोंका निरूपण, शिवपूजनके अनेक प्रकार एवं अनन्यचित्तसे भजनकी महिमा

श्रीकृष्ण बोले—हे भगवन्! हे सर्वयोगीन्द्र! हे गणेश्वर! हे मुनीश्वर! हे कार्तिकेयतुल्य बुद्धिमान्! हे सर्वज्ञाननिधे! हे गुरो! हे परमेश्वर! मनुष्योंके बन्धनको काटनेके लिये पृथ्वीपर अवतार लेकर महर्षिदेह धारण करके आप स्थित हैं, अन्यथा इस संसारमें आपके अतिरिक्त कौन-सा देवता अथवा दानव शिवात्मक परम भावको जान सकता था। अतः साक्षात् पिनाकी [शिव]-के समान आपके मुखसे निकले हुए शिवज्ञानरूपी अमृतका पान करके मेरा मन तृप्त नहीं हुआ। हे भगवन्! सम्पूर्ण जगत्‌के कर्ता अपने पति साक्षात् शिवके अंकदेशमें विराजमान परमेश्वरीने उनसे क्या पूछा था?॥ १—५॥

उपमन्यु बोले—हे कृष्ण! आपने उचित प्रश्न किया है, मैं शिवभक्त, योगी तथा कल्याणमय चित्तवाले आपको यथार्थरूपमें उसे बताऊँगा॥ ६॥

दिव्य स्वरूपवाले महादेव देवी पार्वतीके साथ सुन्दर कन्दराओंवाले दिव्य मन्दरपर्वतपर ध्यानमग्न थे॥ ७॥

उस समय देवी पार्वतीकी मुसकानयुक्त मुखवाली प्रिय सखी शुभावती खिले हुए तथा अत्यन्त मनोहर पुष्पोंको ले आयी। तत्पश्चात् देवश्रेष्ठ शिवजी स्वयं देवी पार्वतीको अपने अंकमें बिठाकर उन पुष्पोंसे उन्हें अलंकृत करके अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ८-९॥

इसके बाद अन्तःपुरमें रहनेवाली दिव्य आभूषण धारण की हुई देवियाँ तथा अन्तरंग गणेश्वर हाथोंमें चँवर धारण करके सभी लोकोंकी महेश्वरी पार्वती एवं सभी लोकोंके स्वामी परिपूर्ण भगवान् शिवकी सेवा करने लगे। तदनन्तर शिवा-शिवके विनोदके लिये तथा लोकमें जो शिवके शरणागत हैं, उन मनुष्योंके कल्याणके लिये प्रिय कथाएँ प्रारम्भ हुईं॥ १०—१२॥

उस समय अवसर देखकर सभी लोकोंकी स्वामिनी [पार्वती]-ने अपने पति सर्वलोकमहेश्वरसे पूछा॥ १३॥

देवीने कहा—'महादेव! जो आत्मतत्त्व आदिके साधनमें नहीं लगे हैं तथा जिनका अन्तःकरण पवित्र एवं वशीभूत नहीं है, ऐसे मन्दमति, मर्त्यलोकवासी जीवात्माओंके

वशमें आप किस उपायसे हो सकते हैं?'॥ १४॥

महादेवजी बोले—देवि ! यदि साधकके मनमें श्रद्धा-भक्ति न हो तो पूजनकर्म, तपस्या, जप, आसन आदि, ज्ञान तथा अन्य साधनसे भी मैं उसके वशीभूत नहीं होता हूँ। यदि मनुष्योंकी मुझमें श्रद्धा हो तो जिस किसी भी हेतुसे मैं उसके वशमें हो जाता हूँ। फिर तो वह मेरा दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं मेरे साथ सम्भाषण भी कर सकता है॥ १५-१६॥

अत: जो मुझे वशमें करना चाहे, उसे पहले मेरे प्रति श्रद्धा करनी चाहिये। श्रद्धा ही स्वधर्मका हेतु है और वही इस लोकमें वर्णाश्रमी पुरुषोंकी रक्षा करनेवाली है। जो मानव अपने वर्णाश्रम-धर्मके पालनमें लगा रहता है, उसीकी मुझमें श्रद्धा होती है, दूसरेकी नहीं॥ १७-१८॥

वर्णाश्रमी पुरुषोंके सम्पूर्ण धर्म वेदोंसे सिद्ध हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मेरी ही आज्ञा लेकर उनका वर्णन किया था। ब्रह्माजीका बताया हुआ वह धर्म अधिक धनके द्वारा साध्य है तथा अनेक प्रकारके क्रियाकलापसे युक्त होता है। उससे मिलनेवाला अधिकांश फल अक्षय नहीं है तथा उस धर्मके अनुष्ठानमें अनेक प्रकारके क्लेश और आयास उठाने पड़ते हैं। उस महान् धर्मसे परम दुर्लभ श्रद्धाको पाकर जो वर्णाश्रमी मनुष्य अनन्यभावसे मेरी शरणमें आ जाते हैं, उन्हें सुखद मार्गसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं॥ १९—२१॥

वर्णाश्रम-सम्बन्धी आचारकी सृष्टि मैंने ही बारंबार की है। उसमें भक्तिभाव रखकर जो मेरे हो गये हैं, उन्हीं वर्णाश्रमियोंका मेरी उपासनामें अधिकार है, दूसरोंका नहीं, यह मेरी निश्चित आज्ञा है। मेरी आज्ञाके अनुसार धर्ममार्गसे चलनेवाले वर्णाश्रमी पुरुष मेरी शरणमें आ मेरे कृपाप्रसादसे मल और माया आदि पाशोंसे मुक्त हो जाते हैं तथा मेरे पुनरावृत्तिरहित धाममें पहुँचकर मेरा उत्तम साधर्म्य प्राप्त करके परमानन्दमें निमग्न हो जाते हैं॥ २२—२४॥

इसलिये मेरे बताये हुए वर्णधर्मको पाकर अथवा न पाकर भी जो मेरी शरण ले मेरा भक्त बन जाता है, वह स्वयं ही अपनी आत्माका उद्धार कर लेता है। यह कोटि-कोटि गुना अधिक अलब्ध-लाभ है। अत: मेरे मुखसे प्रतिपादित वर्णधर्मका पालन अवश्य करना चाहिये॥ २५-२६॥

हे शुभे! हे आर्ये! योगाचार्योंके बहानेसे मेरे हजारों अवतार तथा सन्ततियाँ सभी मन्वन्तरोंमें होते हैं। हे सुरेश्वरि! योगनिष्ठाशून्य, असद् बुद्धिवाले तथा भक्तिरहित लोगोंको मेरी अवतार-परम्पराका ज्ञान दुर्लभ होता है, अत: प्रयत्नपूर्वक [वर्णाश्रमोचित आचारका] आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ २७-२८॥

जो मोक्षमार्गसे विलग होकर दूसरी किसी वस्तुके लिये श्रम करता है, उसके लिये वही सबसे बड़ी हानि है, वही बड़ी भारी त्रुटि है, वही मोह है और वही अन्धता एवं मूकता है। देवेश्वरि! मेरा जो सनातनधर्म है, वह चार चरणोंसे युक्त बताया गया है। उन चरणोंके नाम हैं—ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग॥ २९-३०॥

पशु, पाश और पतिका ज्ञान ही ज्ञान कहलाता है। गुरुके अधीन जो विधिपूर्वक षडध्वशोधनका कार्य होता है, उसे क्रिया कहते हैं। मेरे द्वारा विहित वर्णाश्रमप्रयुक्त जो मेरे पूजन आदि धर्म हैं, उनके आचरणका नाम चर्या है॥ ३१-३२॥

मेरे बताये हुए मार्गसे ही मुझमें सुस्थिरभावसे चित्त लगानेवाले साधकके द्वारा जो अन्त:करणकी अन्य वृत्तियोंका निरोध किया जाता है, उसीको योग कहते हैं। देवि! चित्तको निर्मल एवं प्रसन्न बनाना अश्वमेध यज्ञोंके समूहसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि वह मुक्ति देनेवाला है। विषयभोगकी इच्छा रखनेवाले लोगोंके लिये यह 'मन: प्रसाद' दुर्लभ है। जिसने यम और नियमके द्वारा इन्द्रियसमुदायपर विजय प्राप्त कर लिया है, उस विरक्त पुरुषके लिये ही योगको सुलभ बताया गया है। योग पूर्वपापोंको हर लेनेवाला है। वैराग्यसे ज्ञान होता है और ज्ञानसे योग। योगज्ञ पुरुष पतित हो तो भी मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ३३—३६½॥

सब प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। सदा अहिंसाधर्मका पालन सबके लिये उचित है। ज्ञानका संग्रह भी आवश्यक है। सत्य बोलना, चोरीसे दूर रहना, ईश्वर और परलोकपर विश्वास रखना, मुझमें श्रद्धा करना, इन्द्रियोंको संयममें रखना, वेद-शास्त्रोंका पढ़ना-

पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, मेरा चिन्तन करना, ईश्वरके प्रति अनुराग रखना और सदा ज्ञानशील होना ब्राह्मणके लिये नितान्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण ज्ञानयोगकी सिद्धिके लिये सदा इस प्रकार उपर्युक्त धर्मोंका पालन करता है, वह शीघ्र ही विज्ञान पाकर योगको भी सिद्ध कर लेता है॥ ३७—३९१/२ ॥

प्रिये ! ज्ञानी पुरुष ज्ञानाग्निके द्वारा इस [कर्ममय] शरीरको क्षणभरमें दग्ध करके मेरे प्रसादसे योगका ज्ञाता होकर कर्म-बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। पुण्य-पापमय जो कर्म है, उसे मोक्षका प्रतिबन्धक बताया गया है; इसलिये योगी पुरुष योगके द्वारा पुण्यापुण्यका परित्याग कर दे। फलकी कामनासे प्रेरित होकर कर्म करनेसे ही मनुष्य बन्धनमें पड़ता है, केवल कर्म करनेमात्रसे नहीं; अतः कर्मके फलको त्याग देना चाहिये॥ ४०—४२ ॥

प्रिये! पहले कर्ममय यज्ञद्वारा बाहर मेरी पूजा करके फिर ज्ञानयोगमें तत्पर हो साधक योगका अभ्यास करे। कर्मयज्ञसे मेरे यथार्थ स्वरूपका बोध प्राप्त हो जानेपर जीव योगयुक्त हो मेरे यजनसे विरत हो जाते हैं। उस समय वे मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें भी समभाव रखते हैं॥ ४३-४४ ॥

जो मेरा भक्त नित्ययुक्त एवं एकाग्रचित्त हो ज्ञानयोगमें तत्पर रहता है, वह मुनियोंमें श्रेष्ठ एवं योगी होकर मेरा सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो वर्णाश्रमी पुरुष मनसे विरक्त नहीं हैं, वे मेरा आश्रय ले ज्ञान, चर्या और क्रिया—इन तीनमें ही प्रवृत्त होनेके अधिकारी हैं, वे केवल उन्हींके अनुष्ठानकी योग्यता रखते हैं॥ ४५-४६ ॥

मेरा पूजन दो प्रकारका है—बाह्य और आभ्यन्तर। इसी तरह मन, वाणी और शरीर—इन त्रिविध साधनोंके भेदसे मेरा भजन तीन प्रकारका माना गया है। तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान—ये मेरे भजनके पाँच स्वरूप हैं; अतः साधुपुरुष उसे पाँच प्रकारका भी कहते हैं॥ ४७-४८ ॥

[मूर्ति आदिमें] जो मेरा पूजन आदि होता है, जिसे दूसरे लोग जान लेते हैं, वह 'बाह्य' पूजन या भजन कहा गया है तथा वही भजन-पूजन जब मनके द्वारा होनेसे केवल अपने ही अनुभवका विषय होता है, तब 'आभ्यन्तर' कहलाता है॥ ४९ ॥

मुझमें लगा हुआ चित्त ही 'मन' कहलाता है। सामान्यतः मनमात्रको यहाँ मन नहीं कहा गया है। इसी तरह जो वाणी मेरे नामके जप और कीर्तनमें लगी हुई है, वही 'वाणी' कहलानेयोग्य है, दूसरी नहीं तथा जो मेरे शास्त्रमें बताये हुए त्रिपुण्ड्र आदि चिह्नोंसे अंकित है और निरन्तर मेरी सेवा-पूजामें लगा हुआ है, वही शरीर 'शरीर' है, दूसरा नहीं॥ ५०-५१ ॥

मेरी पूजाको ही 'कर्म' जानना चाहिये। बाहर जो यज्ञ आदि किये जाते हैं, उन्हें 'कर्म' नहीं कहा गया है। मेरे लिये शरीरको सुखाना ही 'तप' है, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदिका अनुष्ठान नहीं। पंचाक्षर-मन्त्रकी आवृत्ति, प्रणवका अभ्यास तथा रुद्राध्याय आदिका बारंबार पाठ ही यहाँ 'जप' कहा गया है, वेदाध्ययन आदि नहीं॥ ५२-५३ ॥

मेरे स्वरूपका चिन्तन-स्मरण ही 'ध्यान' है। आत्मा आदिके लिये की हुई समाधि नहीं। मेरे आगमोंके अर्थको भलीभाँति जानना ही 'ज्ञान' है, दूसरी किसी वस्तुके अर्थको समझना नहीं॥ ५४ ॥

देवि! पूर्ववासनावश बाह्य अथवा आभ्यन्तर जिस पूजनमें मनका अनुराग हो, उसीमें दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिये। बाह्य पूजनसे आभ्यन्तर पूजन सौ गुना अधिक श्रेष्ठ है; क्योंकि उसमें दोषोंका मिश्रण नहीं होगा तथा प्रत्यक्ष दीखनेवाले दोषोंकी भी वहाँ सम्भावना नहीं रहती है॥ ५५-५६ ॥

भीतरकी शुद्धिको ही शुद्धि समझनी चाहिये। बाहरी शुद्धिको शुद्धि नहीं कहते हैं। जो आन्तरिक शुद्धिसे रहित है, वह बाहरसे शुद्ध होनेपर भी अशुद्ध ही है। देवि! बाह्य और आभ्यन्तर दोनों ही प्रकारका भजन भाव (अनुराग)-पूर्वक ही होना चाहिये, बिना भावके नहीं। भावरहित भजन तो एकमात्र विप्रलम्भ (छलना)-का ही कारण होता है॥ ५७-५८ ॥

मैं तो सदा ही कृतकृत्य एवं पवित्र हूँ, मनुष्य मेरा क्या करेंगे? उनके द्वारा किये गये बाह्य अथवा

आभ्यन्तर पूजनमें उनका जो भाव (प्रेम) है, उसीको मैं ग्रहण करता हूँ। देवि! क्रियाका एकमात्र आत्मा भाव ही है। वही मेरा सनातनधर्म है। मन, वाणी और कर्मद्वारा कहीं भी किंचिन्मात्र फलकी इच्छा न रखकर ही क्रिया करनी चाहिये। देवेश्वरि! फलका उद्देश्य रखनेसे मेरा आश्रय लघु हो जाता है; क्योंकि फलार्थीको यदि फल न मिला तो वह मुझे छोड़ सकता है॥ ५९—६१॥

सती साध्वी देवि! फलार्थी होनेपर भी जिस साधकका चित्त मुझमें ही प्रतिष्ठित है, उसे उसके भावके अनुसार फल मैं अवश्य देता हूँ। जिनका मन फलकी इच्छा न रखकर ही मुझमें लगा हो, परंतु पीछे वे फल चाहने लगे हों, वे भक्त भी मुझे प्रिय हैं॥ ६२-६३॥

जो पूर्वसंस्कारवश ही फलाफलकी चिन्ता न करके विवश हो मेरी शरण लेते हैं, वे भक्त मुझे अधिक प्रिय हैं। परमेश्वरि ! उन भक्तोंके लिये मेरी प्राप्तिसे बढ़कर दूसरा कोई वास्तविक लाभ नहीं है तथा मेरे लिये भी वैसे भक्तोंकी प्राप्तिसे बढ़कर और कोई लाभ नहीं है॥ ६४-६५॥

मुझमें समर्पित हुआ उनका भाव मेरे अनुग्रहसे ही उनको मानो बलपूर्वक परम निर्वाणरूप फल प्रदान करता है। जिन्होंने अपने चित्तको मुझे समर्पित कर दिया है, अतएव जो मेरे अनन्य भक्त हैं, वे महात्मा पुरुष ही मेरे धर्मके अधिकारी हैं। उनके आठ लक्षण बताये गये हैं॥ ६६-६७॥

मेरे भक्तजनोंके प्रति स्नेह, मेरी पूजाका अनुमोदन, स्वयंकी भी मेरे पूजनमें प्रवृत्ति, मेरे लिये ही शारीरिक चेष्टाओंका होना, मेरी कथा सुननेमें भक्तिभाव, कथा सुनते समय स्वर, नेत्र और अंगोंमें विकारका होना, बारंबार मेरी स्मृति और सदा मेरे आश्रित रहकर ही जीवन-निर्वाह करना—ये आठ प्रकारके चिह्न यदि किसी म्लेच्छमें भी हों तो वह विप्रशिरोमणि श्रीमान् मुनि है। वह संन्यासी है और वही पण्डित है॥ ६८—७०॥

जो मेरा भक्त नहीं है, वह चारों वेदोंका विद्वान् हो तो भी मुझे प्रिय नहीं है। परंतु जो मेरा भक्त है, वह चाण्डाल हो तो भी प्रिय है। उसे उपहार देना चाहिये, उससे प्रसाद ग्रहण करना चाहिये तथा वह मेरे समान ही पूजनीय है। जो भक्ति-भावसे मुझे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल समर्पित करता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरी भी दृष्टिसे कभी ओझल नहीं होता है॥ ७१-७२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवभक्तिवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

वर्णाश्रम-धर्म तथा नारी-धर्मका वर्णन; शिवके भजन, चिन्तन एवं ज्ञानकी महत्ताका प्रतिपादन

महादेवजी कहते हैं—देवेश्वरि! अब मैं अधिकारी, विद्वान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण-भक्तोंके लिये संक्षेपसे वर्ण-धर्मका वर्णन करता हूँ॥ १॥

तीनों काल स्नान, अग्निहोत्र, विधिवत् शिवलिंग-पूजन, दान, ईश्वर-प्रेम, सदा और सर्वत्र दया, सत्य-भाषण, संतोष, आस्तिकता, किसी भी जीवकी हिंसा न करना, लज्जा, श्रद्धा, अध्ययन, योग, निरन्तर अध्यापन, व्याख्यान, ब्रह्मचर्य, उपदेश-श्रवण, तपस्या, क्षमा, शौच, शिखा-धारण, यज्ञोपवीत-धारण, पगड़ी धारण करना, दुपट्टा लगाना, निषिद्ध वस्तुका सेवन न करना, भस्म धारण करना तथा रुद्राक्षकी माला पहनना, प्रत्येक पर्वमें विशेषतः चतुर्दशीको शिवकी पूजा करना, ब्रह्मकूर्चका पान, प्रत्येक मासमें ब्रह्मकूर्चसे विधिपूर्वक मुझे नहलाकर मेरा विशेषरूपसे पूजन करना, सम्पूर्ण क्रियान्नका त्याग, श्राद्धान्नका परित्याग, बासी अन्न तथा विशेषतः यावक (कुल्थी या बोरो धान)-का त्याग, मद्य और मद्यकी गन्धका त्याग, शिवको निवेदित (चण्डेश्वरके भाग) नैवेद्यका त्याग—ये सभी वर्णोंके सामान्य धर्म हैं।

ब्राह्मणोंके लिये विशेष धर्म ये हैं—क्षमा, शान्ति, संतोष, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, शिवज्ञान, वैराग्य, भस्म-सेवन और सब प्रकारकी आसक्तियोंसे निवृत्ति— इन दस धर्मोंको ब्राह्मणोंका विशेष धर्म कहा गया है॥ २—९१/२ ॥

अब योगियों (यतियों)-के लक्षण बताये जाते हैं। दिनमें भिक्षान्न भोजन उनका विशेष धर्म है। यह वानप्रस्थ आश्रमवालोंके लिये भी उनके समान ही अभीष्ट है। इन सबको और ब्रह्मचारियोंको भी रातमें भोजन नहीं करना चाहिये। पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान लेना—इनका विधान मैंने विशेषत: क्षत्रिय और वैश्यके लिये नहीं किया है॥ १०—१२ ॥

मेरे आश्रयमें रहनेवाले राजाओं या क्षत्रियोंके लिये थोड़ेमें धर्मका संग्रह इस प्रकार है। सब वर्णोंकी रक्षा, युद्धमें शत्रुओंका वध, दुष्ट पक्षियों, मृगों तथा दुराचारी मनुष्योंका दमन करना, सब लोगोंपर विश्वास न करना, केवल शिव-योगियोंपर ही विश्वास रखना, ऋतुकालमें ही स्त्रीसंसर्ग करना, सेनाका संरक्षण, गुप्तचर भेजकर लोकमें घटित होनेवाले समाचारोंको जानना, सदा अस्त्र धारण करना तथा भस्ममय कंचुक धारण करना॥ १३—१५१/२ ॥

गोरक्षा, वाणिज्य और कृषि—ये वैश्यके धर्म बताये गये हैं। शूद्रेतर वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवा शूद्रका धर्म कहा गया है॥ १६१/२ ॥

बाग लगाना, मेरे तीर्थोंकी यात्रा करना तथा अपनी धर्मपत्नीके साथ ही समागम करना गृहस्थके लिये विहित धर्म है। वनवासियों, यतियों और ब्रह्मचारियोंके लिये ब्रह्मचर्यका पालन मुख्य धर्म है। स्त्रियोंके लिये पतिकी सेवा ही सनातनधर्म है, दूसरा नहीं। कल्याणि! यदि पतिकी आज्ञा हो तो नारी मेरा पूजन भी कर सकती है। जो स्त्री पतिकी सेवा छोड़कर व्रतमें तत्पर होती है, वह नरकमें जाती है। इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ १७—२० ॥

अब मैं विधवा स्त्रियोंके सनातन-धर्मका वर्णन करूँगा। व्रत, दान, तप, शौच, भूमि-शयन, केवल रातमें ही भोजन, सदा ब्रह्मचर्यका पालन, भस्म अथवा जलसे स्नान, शान्ति, मौन, क्षमा, विधिपूर्वक सब जीवोंको अन्नका वितरण, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा विशेषत: एकादशीको विधिवत् उपवास और मेरा पूजन [—ये विधवा स्त्रियोंके धर्म हैं।] ॥ २१—२३ ॥

देवि! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे अपने आश्रमका सेवन करनेवाले ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, संन्यासियों, ब्रह्मचारियों तथा वानप्रस्थों और गृहस्थोंके धर्मका वर्णन किया। साथ ही शूद्रों और नारियोंके लिये भी इस सनातनधर्मका उपदेश दिया। देवेश्वरि! तुम्हें सदा मेरा ध्यान और मेरे षडक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये। यही सम्पूर्ण वेदोक्त धर्म है और यही धर्म तथा अर्थका संग्रह है॥ २४—२६ ॥

लोकमें जो मनुष्य अपनी इच्छासे मेरे विग्रहकी सेवाका व्रत धारण किये हुए हैं, पूर्वजन्मकी सेवाके संस्कारसे युक्त होनेके कारण भावातिरेकसे सम्पन्न हैं, वे स्त्री आदि विषयोंमें अनुरक्त हों या विरक्त, पापोंसे उसी प्रकार लिप्त नहीं होते, जैसे जलसे कमलका पत्ता॥ २७-२८ ॥

मेरे प्रसादसे विशुद्ध हुए उन विवेकी पुरुषोंको मेरे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। फिर उनके लिये कर्तव्याकर्तव्यका विधि-निषेध नहीं रह जाता, ऐसी दशामें आश्रमोचित धर्मोंका अनुपालन भी उनके लिये प्रपंचवत् दु:खरूप ही होता है। समाधि तथा शरणागति भी आवश्यक नहीं रहती। जैसे मेरे लिये कोई विधि-निषेध नहीं है, वैसे ही उनके लिये भी नहीं है॥ २९-३० ॥

परिपूर्ण होनेके कारण जैसे मेरे लिये कुछ साध्य नहीं है, निश्चय ही उसी प्रकार उन कृतकृत्य ज्ञानयोगियोंके लिये भी कोई कर्तव्य नहीं रह जाता है। वे मेरे भक्तोंके हितके लिये मानवभावका आश्रय लेकर भूतलपर स्थित हैं। उन्हें रुद्रलोकसे परिभ्रष्ट अर्थात् अवतीर्ण रुद्र ही समझना चाहिये; इसमें संशय नहीं है॥ ३१-३२ ॥

जैसे मेरी आज्ञा ब्रह्मा आदि देवताओंको कार्यमें प्रवृत्त करनेवाली है, उसी प्रकार उन शिवयोगियोंकी आज्ञा भी अन्य मनुष्योंको कर्तव्यकर्ममें लगानेवाली है। वे मेरी आज्ञाके आधार हैं। उनमें अतिशय सद्भाव भी है। इसलिये उनका दर्शन करनेमात्रसे सब पापोंका नाश हो जाता है तथा प्रशस्त फलकी प्राप्तिको सूचित

करनेवाले विश्वासकी भी वृद्धि होती है॥ ३३—३४½ ॥

जिन पुरुषोंका मुझमें अनुराग है, उन्हें उन बातोंका भी ज्ञान हो जाता है, जो पहले कभी उनके देखने, सुनने या अनुभवमें नहीं आयी होती हैं। उनमें अकस्मात् कम्प, स्वेद, अश्रुपात, कण्ठमें स्वरविकार तथा आनन्द आदि भावोंका बारंबार उदय होने लगता है। ये सब लक्षण उनमें कभी एक-एक करके अलग-अलग प्रकट होते हैं और कभी सम्पूर्ण भावोंका एक साथ उदय होने लगता है। कभी विलग न होनेवाले इन मन्द, मध्यम और उत्तम भावोंद्वारा उन श्रेष्ठ सत्पुरुषोंकी पहचान करनी चाहिये॥ ३५—३७॥

जैसे जब लोहा आगमें तपकर लाल हो जाता है, तब केवल लोहा नहीं रह जाता, उसी तरह मेरा सांनिध्य प्राप्त होनेसे वे केवल मनुष्य नहीं रह जाते—मेरा स्वरूप हो जाते हैं। हाथ, पैर आदिके साधर्म्यसे मानव-शरीर धारण करनेपर भी वे वास्तवमें रुद्र हैं। उन्हें प्राकृत मनुष्य समझकर विद्वान् पुरुष उनकी अवहेलना न करे॥ ३८-३९॥

जो मूढ़चित्त मानव उनके प्रति अवहेलना करते हैं, वे अपनी आयु, लक्ष्मी, कुल और शीलको त्यागकर नरकमें गिरते हैं। मुझसे अतिरिक्त किसी अन्यकी चाह न रखनेवाले, जीवन्मुक्त महामना शिवयोगियोंके लिये ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रका पद भी तुच्छ होता है॥ ४०-४१॥

[गुणोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले] बुद्धिलब्ध, प्राकृत तथा जीवात्मसम्बन्धी ऐश्वर्य अशुद्ध हैं, अतएव गुणातीतपदकी प्राप्तिकी इच्छावाले गुणेश्वरोंको इनको त्याग देना चाहिये। अथवा बहुत कहनेसे क्या लाभ? जिस किसी भी उपायसे मुझमें चित्त लगाना कल्याणकी प्राप्तिका एकमात्र साधन है॥ ४२-४३॥

उपमन्यु कहते हैं—इस प्रकार परमात्मा श्रीकण्ठनाथ शिवने तीनों लोकोंके हितके लिये ज्ञानके सारभूत अर्थका संग्रह प्रकट किया है॥ ४४॥

सम्पूर्ण वेद-शास्त्र, इतिहास, पुराण और विद्याएँ इस विज्ञान-संग्रहकी ही विस्तृत व्याख्याएँ हैं॥ ४५॥

ज्ञान, ज्ञेय, अनुष्ठेय, अधिकार, साधन और साध्य—इन छः अर्थोंका ही यह संक्षिप्त संग्रह बताया गया है। गुरुके माध्यमसे प्राप्त हुआ ज्ञान ही [वस्तुतः] ज्ञान है, पाश, पशु तथा पति—ये जाननेयोग्य विषय हैं, लिंगार्चन आदि अनुष्ठेय कर्म हैं तथा जो शिवभक्त है, वही यहाँ अधिकारी कहा गया है॥ ४६-४७॥

[इस शास्त्रमें] शिवमन्त्र आदि साधन कहे गये हैं तथा शिवके साथ अभिन्नता साध्य है। ज्ञान, ज्ञेयादि इन छः विषयोंके ज्ञानसे सर्वज्ञताकी प्राप्ति हो जाती है, ऐसा [शास्त्रोंमें] कहा जाता है॥ ४८॥

अपने वैभवके अनुसार भक्तिपूर्वक कर्मयज्ञ आदिके द्वारा भगवान् शिवकी बाह्यपूजा करनेके पश्चात् अन्तर्यागमें निरत होना चाहिये। [पूर्वमें किये गये] महान् पुण्योंके कारण जिस महात्माकी बहिर्यागमें विशेष अनुरक्ति हो चुकी है, उसके लिये [कोई भी] बाह्य कर्तव्य शेष नहीं रहता॥ ४९-५०॥

श्रीकृष्ण! जो शिव और शिवासम्बन्धी ज्ञानामृतसे तृप्त है और उनकी भक्तिसे सम्पन्न है, उसके लिये बाहर-भीतर कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है। इसलिये क्रमशः बाह्य और आभ्यन्तर कर्मको त्यागकर ज्ञानसे ज्ञेयका साक्षात्कार करके फिर उस साधनभूत ज्ञानको भी त्याग दे॥ ५१-५२॥

यदि चित्त शिवमें एकाग्र नहीं है तो कर्म करनेसे भी क्या लाभ? और यदि चित्त एकाग्र ही है तो कर्म करनेकी भी क्या आवश्यकता है? अतः बाहर और भीतरके कर्म करके या न करके जिस-किसी भी उपायसे भगवान् शिवमें चित्त लगाये॥ ५३-५४॥

जिनका चित्त भगवान् शिवमें लगा है और जिनकी बुद्धि सुस्थिर है, ऐसे सत्पुरुषोंको इहलोक और परलोकमें भी सर्वत्र परमानन्दकी प्राप्ति होती है। यहाँ '**ॐ नमः शिवाय**' इस मन्त्रसे सब सिद्धियाँ सुलभ होती हैं; अतः परावर विभूति (उत्तम-मध्यम ऐश्वर्य)-की प्राप्तिके लिये इस मन्त्रका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवज्ञानवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—सर्वज्ञ महर्षिप्रवर! आप सम्पूर्ण ज्ञानके महासागर हैं। अब मैं [आपके मुखसे] पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका तत्त्वतः वर्णन सुनना चाहता हूँ॥ १॥

उपमन्युने कहा—देवकीनन्दन ! पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन तो सौ करोड़ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता; अतः संक्षेपसे इसकी महिमा सुनो—वेदमें तथा शैवागममें दोनों जगह यह षडक्षर (प्रणवसहित पंचाक्षर)-मन्त्र समस्त शिवभक्तोंके सम्पूर्ण अर्थका साधक कहा गया है॥ २-३॥

इस मन्त्रमें अक्षर तो थोड़े ही हैं, परंतु यह महान् अर्थसे सम्पन्न है। यह वेदका सारतत्त्व है। मोक्ष देनेवाला है, शिवकी आज्ञासे सिद्ध है, संदेहशून्य है तथा शिवस्वरूप वाक्य है। यह नाना प्रकारकी सिद्धियोंसे युक्त, दिव्य, लोगोंके मनको प्रसन्न एवं निर्मल करनेवाला, सुनिश्चित अर्थवाला (अथवा निश्चय ही मनोरथको पूर्ण करनेवाला) तथा परमेश्वरका गम्भीर वचन है॥ ४-५॥

इस मन्त्रका मुखसे सुखपूर्वक उच्चारण होता है। सर्वज्ञ शिवने सम्पूर्ण देहधारियोंके सारे मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस '**ॐ नमः शिवाय**' मन्त्रका प्रतिपादन किया है॥ ६॥

यह आदि षडक्षर-मन्त्र सम्पूर्ण विद्याओं (मन्त्रों)-का बीज (मूल) है। जैसे वटके बीजमें महान् वृक्ष छिपा हुआ है, उसी प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म होनेपर भी इस मन्त्रको महान् अर्थसे परिपूर्ण समझना चाहिये। '**ॐ**' इस एकाक्षर-मन्त्रमें तीनों गुणोंसे अतीत, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, द्युतिमान्, सर्वव्यापी प्रभु शिव प्रतिष्ठित हैं॥ ७-८॥

ईशान आदि जो सूक्ष्म एकाक्षररूप ब्रह्म हैं, वे सब '**नमः शिवाय**' इस मन्त्रमें क्रमशः स्थित हैं। सूक्ष्म षडक्षर-मन्त्रमें पंचब्रह्मरूपधारी साक्षात् भगवान् शिव स्वभावतः वाच्यवाचक-भावसे विराजमान हैं। अप्रमेय होनेके कारण शिव वाच्य हैं और मन्त्र उनका वाचक माना गया है॥ ९-१०॥

शिव और मन्त्रका यह वाच्य-वाचकभाव अनादिकालसे चला आ रहा है। जैसे यह घोर संसारसागर अनादिकालसे प्रवृत्त है, उसी प्रकार संसारसे छुड़ानेवाले भगवान् शिव भी अनादिकालसे ही नित्य विराजमान हैं। जैसे औषध रोगोंका स्वभावतः शत्रु है, उसी प्रकार भगवान् शिव संसार-दोषोंके स्वाभाविक शत्रु माने गये हैं॥ ११—१२१/२॥

यदि ये भगवान् विश्वनाथ न होते तो यह जगत् अन्धकारमय हो जाता; क्योंकि प्रकृति जड है और जीवात्मा अज्ञानी। [अतः इन्हें प्रकाश देनेवाले परमात्मा ही हैं]॥ १३१/२॥

प्रकृतिसे लेकर परमाणुपर्यन्त जो कुछ भी जडरूप तत्त्व है, वह किसी बुद्धिमान् (चेतन) कारणके बिना स्वयं 'कर्ता' नहीं देखा गया है। जीवोंके लिये धर्म करने और अधर्मसे बचनेका उपदेश दिया जाता है। उनके बन्धन और मोक्ष भी देखे जाते हैं। अतः विचार करनेसे सर्वज्ञ परमात्मा शिवके बिना प्राणियोंके आदिसर्गकी सिद्धि नहीं होती। जैसे रोगी वैद्यके बिना सुखसे रहित हो क्लेश उठाते हैं, [उसी प्रकार सर्वज्ञ शिवका आश्रय न लेनेसे संसारी जीव नाना प्रकारके क्लेश भोगते हैं]॥ १४—१६॥

अतः यह सिद्ध हुआ कि जीवोंका संसारसागरसे उद्धार करनेवाले स्वामी अनादि सर्वज्ञ परिपूर्ण सदाशिव विद्यमान हैं। वे प्रभु आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। स्वभावसे ही निर्मल हैं तथा सर्वज्ञ एवं परिपूर्ण हैं। उन्हें 'शिव' नामसे जानना चाहिये। शिवागममें उनके स्वरूपका विशदरूपसे वर्णन है। यह पंचाक्षर-मन्त्र उनका अभिधान (वाचक) है और वे शिव अभिधेय (वाच्य) हैं। अभिधान और अभिधेय (वाचक और वाच्य)-रूप

होनेके कारण परमशिव-स्वरूप यह मन्त्र 'सिद्ध' माना गया है॥ १७—१९॥

'**ॐ नमः शिवाय**' यह जो षडक्षर शिववाक्य है, इतना ही शिवज्ञान है और इतना ही परमपद है। यह शिवका विधि-वाक्य है, अर्थवाद नहीं है। यह उन्हीं शिवका स्वरूप है, जो सर्वज्ञ, परिपूर्ण और स्वभावतः निर्मल हैं॥ २०-२१॥

जो समस्त लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं, वे भगवान् शिव झूठी बात कैसे कह सकते हैं? जो सर्वज्ञ हैं, वे तो मन्त्रसे जितना फल मिल सकता है, उतना पूरा-का-पूरा बतायेंगे। परंतु जो राग और अज्ञान आदि दोषोंसे ग्रस्त हैं, वे झूठी ही बात कह सकते हैं। वे राग और अज्ञान आदि दोष ईश्वरमें नहीं हैं; अतः ईश्वर कैसे झूठ बोल सकते हैं? जिनका सम्पूर्ण दोषोंसे कभी परिचय ही नहीं हुआ, उन सर्वज्ञ शिवने जिस निर्मल वाक्य—पंचाक्षर-मन्त्रका प्रणयन किया है, वह प्रमाणभूत ही है, इसमें संशय नहीं है॥ २२—२४॥

इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह ईश्वरके वचनोंपर श्रद्धा करे। यथार्थ पुण्य-पापके विषयमें ईश्वरके वचनोंपर श्रद्धा न करनेवाला पुरुष नरकमें जाता है॥ २५॥

शान्त स्वभाववाले श्रेष्ठ मुनियोंने स्वर्ग और मोक्षकी सिद्धिके लिये जो सुन्दर बात कही है, उसे सुभाषित समझना चाहिये[१]॥ २६॥

जो वाक्य राग, द्वेष, असत्य, काम, क्रोध और तृष्णाका अनुसरण करनेवाला हो, वह नरकका हेतु होनेके कारण दुर्भाषित कहलाता है[२]॥ २७॥

अविद्या एवं रागसे युक्त वाक्य जन्म-मरणरूप संसार-क्लेशकी प्राप्तिमें कारण होता है। अतः वह कोमल, ललित अथवा संस्कृत (संस्कारयुक्त) हो तो भी उससे क्या लाभ? जिसे सुनकर कल्याणकी प्राप्ति हो तथा राग आदि दोषोंका नाश हो जाय, वह वाक्य सुन्दर शब्दावलीसे युक्त न हो तो भी शोभन तथा समझनेयोग्य है॥ २८-२९॥

मन्त्रोंकी संख्या बहुत होनेपर भी जिस विमल षडक्षर-मन्त्रका निर्माण सर्वज्ञ शिवने किया है, उसके समान कहीं कोई दूसरा मन्त्र नहीं है॥ ३०॥

षडक्षर-मन्त्रमें छहों अंगोंसहित सम्पूर्ण वेद और शास्त्र विद्यमान हैं; अतः उसके समान दूसरा कोई मन्त्र कहीं नहीं है। सात करोड़ महामन्त्रों और अनेकानेक उपमन्त्रोंसे यह षडक्षर-मन्त्र उसी प्रकार भिन्न है, जैसे वृत्तिसे सूत्र॥ ३१-३२॥

जितने शिवज्ञान हैं और जो-जो विद्यास्थान हैं, वे सब षडक्षर-मन्त्ररूपी सूत्रके संक्षिप्त भाष्य हैं॥ ३३॥

जिसके हृदयमें '**ॐ नमः शिवाय**' यह षडक्षर-मन्त्र प्रतिष्ठित है, उसे दूसरे बहुसंख्यक मन्त्रों और अनेक विस्तृत शास्त्रोंसे क्या प्रयोजन है? जिसने '**ॐ नमः शिवाय**' इस मन्त्रका जप दृढ़तापूर्वक अपना लिया है, उसने सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ लिया और समस्त शुभ कृत्योंका अनुष्ठान पूरा कर लिया। आदिमें '**नमः**' पदसे युक्त '**शिवाय**'—ये तीन अक्षर जिसकी जिह्वाके अग्रभागमें विद्यमान हैं, उसका जीवन सफल हो गया। पंचाक्षर-मन्त्रके जपमें लगा हुआ पुरुष यदि पण्डित, मूर्ख, अन्त्यज अथवा अधम भी हो तो वह पापपंजरसे मुक्त हो जाता है॥ ३४—३७॥

देवी [पार्वती]-के द्वारा पूछे जानेपर शूलधारी परमेश [शिव]-ने सभी मनुष्यों और विशेष रूपसे द्विजोंके हित‌के लिये इसे कहा था॥ ३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

---

१. स्वर्गापवर्गसिद्ध्यर्थं भाषितं यत्सुशोभनम्। वाक्यं मुनिवरैः शान्तैस्तद्विज्ञेयं सुभाषितम्॥

२. रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णानुसारि यत्। वाक्यं निरयहेतुत्वात्तद् दुर्भाषितमुच्यते॥ (शि० पु० वा० सं० उ० ख० १२। २६-२७)

तेरहवाँ अध्याय

पंचाक्षर-मन्त्रकी महिमा, उसमें समस्त वाङ्मयकी स्थिति, उसकी उपदेशपरम्परा, देवीरूपा पंचाक्षरीविद्याका ध्यान, उसके समस्त और व्यस्त अक्षरोंके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा अंगन्यास आदिका विचार

देवी बोलीं—महेश्वर! दुर्जय, दुर्लङ्घ्य एवं कलुषित कलिकालमें जब सारा संसार धर्मसे विमुख हो पापमय अन्धकारसे आच्छादित हो जायगा, वर्ण और आश्रम-सम्बन्धी आचार नष्ट हो जायँगे, धर्मसंकट उपस्थित हो जायगा, सबका अधिकार संदिग्ध, अनिश्चित और विपरीत हो जायगा, उस समय उपदेशकी प्रणाली नष्ट हो जायगी और गुरु-शिष्यकी परम्परा भी जाती रहेगी, ऐसी परिस्थितिमें आपके भक्त किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं?॥ १—३॥

महादेवजीने कहा—देवि ! कलिकालके मनुष्य मेरी परम मनोरम पंचाक्षरी विद्याका आश्रय ले भक्तिसे भावितचित्त होकर संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं॥ ४॥

जो अकथनीय और अचिन्तनीय हैं—उन मानसिक, वाचिक और शारीरिक दोषोंसे जो दूषित, कृतघ्न, निर्दय, छली, लोभी और कुटिलचित्त हैं, वे मनुष्य भी यदि मुझमें मन लगाकर मेरी पंचाक्षरी विद्याका जप करेंगे, उनके लिये वह विद्या ही संसारभयसे तारनेवाली होगी। देवि! मैंने बारंबार प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही है कि भूतलपर मेरा पतित हुआ भक्त भी इस पंचाक्षरी विद्याके द्वारा बन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ५—७॥

देवी बोलीं—यदि मनुष्य पतित होकर सर्वथा कर्म करनेके योग्य न रह जाय तो उसके द्वारा किया गया कर्म नरकको ही प्राप्ति करानेवाला होता है। ऐसी दशामें पतित मानव इस विद्याद्वारा कैसे मुक्त हो सकता है?॥ ८॥

महादेवजीने कहा—सुन्दरि! तुमने यह बहुत ठीक बात पूछी है। अब इसका उत्तर सुनो, पहले मैंने इस विषयको गोपनीय समझकर अबतक प्रकट नहीं किया था॥ ९॥

यदि पतित मनुष्य मोहवश (अन्य) मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक मेरा पूजन करे तो वह निःसंदेह नरकगामी हो सकता है। किंतु पंचाक्षर-मन्त्रके लिये ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है। जो केवल जल पीकर और हवा खाकर तप करते हैं तथा दूसरे लोग जो नाना प्रकारके व्रतोंद्वारा अपने शरीरको सुखाते हैं, उन्हें इन व्रतोंद्वारा मेरे लोककी प्राप्ति नहीं होती। परंतु जो भक्तिपूर्वक पंचाक्षर-मन्त्रसे ही एक बार मेरा पूजन कर लेता है, वह भी इस मन्त्रके ही प्रतापसे मेरे धाममें पहुँच जाता है॥ १०—१२॥

इसलिये तप, यज्ञ, व्रत और नियम पंचाक्षरद्वारा मेरे पूजनकी करोड़वीं कलाके समान भी नहीं हैं। कोई बद्ध हो या मुक्त, जो पंचाक्षर-मन्त्रके द्वारा मेरा पूजन करता है, वह अवश्य ही संसारपाशसे छुटकारा पा जाता है॥ १३-१४॥

रुद्रभक्तिसे रहित अथवा रुद्रभक्तिसे युक्त जो पतित अथवा मूर्ख मनुष्य भी पंचाक्षरसे एक बार मेरा पूजन कर लेता है, वह मुक्त हो जाता है॥ १५॥

देवि! [ईशान आदि पाँच] ब्रह्म जिसके अंग हैं, उस षडक्षर या पंचाक्षर-मन्त्रके द्वारा जो भक्तिभावसे मेरा पूजन करता है, वह मुक्त हो जाता है॥ १६॥

कोई पतित हो या अपतित, वह इस पंचाक्षर-मन्त्रके द्वारा मेरा पूजन करे। मेरा भक्त पंचाक्षर-मन्त्रका उपदेश गुरुसे ले चुका हो या नहीं, वह क्रोधको जीतकर इस मन्त्रके द्वारा मेरी पूजा किया करे। जिसने मन्त्रकी दीक्षा नहीं ली है, उसकी अपेक्षा दीक्षा लेनेवाला पुरुष कोटि-कोटि गुणा अधिक माना गया है। अतः देवि! दीक्षा लेकर ही इस मन्त्रसे मेरा पूजन करना चाहिये॥ १७-१८॥

जो इस मन्त्रकी दीक्षा लेकर मैत्री, मुदिता [करुणा, उपेक्षा] आदि गुणोंसे युक्त तथा ब्रह्मचर्यपरायण हो भक्तिभावसे मेरा पूजन करता है, वह मेरी समता प्राप्त कर लेता है। इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ? मेरे पंचाक्षर-मन्त्रमें सभी भक्तोंका अधिकार है। इसलिये

वह श्रेष्ठतर मन्त्र है। पंचाक्षरके प्रभावसे ही लोक, वेद, महर्षि, सनातनधर्म, देवता तथा यह सम्पूर्ण जगत् टिके हुए हैं॥ १९—२१॥

देवि ! प्रलयकाल आनेपर जब चराचर जगत् नष्ट हो जाता है और सारा प्रपंच प्रकृतिमें मिलकर वहीं लीन हो जाता है, तब मैं अकेला ही स्थित रहता हूँ, दूसरा कोई कहीं नहीं रहता। उस समय समस्त देवता और शास्त्र पंचाक्षर-मन्त्रमें स्थित होते हैं। अत: मेरी शक्तिसे पालित होनेके कारण वे नष्ट नहीं होते हैं। तदनन्तर मुझसे प्रकृति और पुरुषके भेदसे युक्त सृष्टि होती है॥ २२—२४॥

तत्पश्चात् त्रिगुणात्मक मूर्तियोंका संहार करनेवाला अवान्तर प्रलय होता है। उस प्रलयकालमें भगवान् नारायणदेव मायामय शरीरका आश्रय ले जलके भीतर शेष-शय्यापर शयन करते हैं। उनके नाभि-कमलसे पंचमुख ब्रह्माजीका जन्म होता है॥ २५-२६॥

ब्रह्माजी तीनों लोकोंकी सृष्टि करना चाहते थे; किन्तु कोई सहायक न होनेसे उसे कर नहीं पाते थे। तब उन्होंने पहले अमित तेजस्वी दस महर्षियोंकी सृष्टि की, जो उनके मानसपुत्र कहे गये हैं। उन पुत्रोंकी सिद्धि बढ़ानेके लिये पितामह ब्रह्माने मुझसे कहा—महादेव! महेश्वर! मेरे पुत्रोंको शक्ति प्रदान कीजिये॥ २७-२८॥

उनके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर पाँच मुख धारण करनेवाले मैंने ब्रह्माजीके प्रति प्रत्येक मुखसे एक-एक अक्षरके क्रमसे पाँच अक्षरोंका उपदेश किया॥ २९॥

लोकपितामह ब्रह्माजीने भी अपने पाँच मुखोंद्वारा क्रमश: उन पाँचों अक्षरोंको ग्रहण किया और वाच्यवाचक-भावसे मुझ महेश्वरको जाना। मन्त्रके प्रयोगको जानकर प्रजापतिने विधिवत् उसे सिद्ध किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पुत्रोंको यथावत् रूपसे उस मन्त्रका और उसके अर्थका भी उपदेश दिया॥ ३०-३१॥

साक्षात् लोकपितामह ब्रह्मासे उस मन्त्ररत्नको पाकर मेरी आराधनाकी इच्छा रखनेवाले उन मुनियोंने उनकी बतायी हुई पद्धतिसे उस मन्त्रका जप करते हुए मेरुके रमणीय शिखरपर मुंजवान् पर्वतके निकट एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक तीव्र तपस्या की। वे लोकसृष्टिके लिये अत्यन्त उत्सुक थे। इसलिये वायु पीकर कठोर तपस्यामें लग गये। जहाँ उनकी तपस्या चल रही थी, वह श्रीमान् मुंजवान् पर्वत सदा ही मुझे प्रिय है और मेरे भक्तोंने निरन्तर उसकी रक्षा की है॥ ३२—३४॥

उन ऋषियोंकी भक्ति देखकर मैंने तत्काल उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया और उन आर्य ऋषियोंको पंचाक्षर-मन्त्रके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति, कीलक, षडंगन्यास, दिग्बन्ध और विनियोग—इन सब बातोंका पूर्णरूपसे ज्ञान कराया। संसारकी सृष्टि बढ़े—इसके लिये मैंने उन्हें मन्त्रकी सारी विधियाँ बतायीं। तब वे उस मन्त्रके माहात्म्यसे तपस्यामें बहुत बढ़ गये और देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंकी सृष्टिका भलीभाँति विस्तार करने लगे॥ ३५—३७॥

अब इस उत्तम विद्या पंचाक्षरीके स्वरूपका वर्णन किया जाता है। आदिमें **'नमः'** पदका प्रयोग करना चाहिये। उसके बाद **'शिवाय'** पदका। यही वह पंचाक्षरी विद्या है, जो समस्त श्रुतियोंकी सिरमौर है तथा सम्पूर्ण शब्दसमुदायकी सनातन बीजरूपिणी है। यह विद्या पहले-पहल मेरे मुखसे निकली; इसलिये मेरे ही स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाली है। [इसका एक देवीके रूपमें ध्यान करना चाहिये]॥ ३८—३९$^1/_2$॥

इस देवीकी अंग-कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है। इसके पीन पयोधर ऊपरको उठे हुए हैं। यह चार भुजाओं और तीन नेत्रोंसे सुशोभित है। इसके मस्तकपर बालचन्द्रमाका मुकुट है। दो हाथोंमें पद्म और उत्पल हैं। अन्य दो हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्रा है। मुखाकृति सौम्य है॥ ४०-४१॥

यह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित है। श्वेत कमलके आसनपर विराजमान है। इसके काले-काले घुँघराले केश बड़ी शोभा पा रहे हैं। इसके अंगोंमें पाँच प्रकारके वर्ण हैं, जिनकी रश्मियाँ प्रकाशित हो रही हैं। वे वर्ण हैं—पीत, कृष्ण, धूम्र,

स्वर्णिम तथा रक्त। इन वर्णोंका यदि पृथक्-पृथक् प्रयोग हो तो इन्हें विन्दु और नादसे विभूषित करना चाहिये। विन्दुकी आकृति अर्द्धचन्द्रके समान है और नादकी आकृति दीपशिखाके समान॥ ४२—४४॥

सुमुखि! यों तो इस मन्त्रके सभी अक्षर बीजरूप हैं, तथापि उनमें दूसरे अक्षरको इस मन्त्रका बीज समझना चाहिये। दीर्घ-स्वरपूर्वक जो चौथा वर्ण है, उसे कीलक और पाँचवें वर्णको शक्ति समझना चाहिये। इस मन्त्रके वामदेव ऋषि हैं और पंक्ति छन्द है। वरानने! मैं शिव ही इस मन्त्रका देवता हूँ[१]॥ ४५-४६॥

वरारोहे! गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, अंगिरा और भरद्वाज—ये नकारादि वर्णोंके क्रमशः ऋषि माने गये हैं। गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, बृहती और विराट्—ये क्रमशः पाँचों अक्षरोंके छन्द हैं। इन्द्र, रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा और स्कन्द—ये क्रमशः उन अक्षरोंके देवता हैं। वरानने! मेरे पूर्व आदि चारों दिशाओंके तथा ऊपरके—पाँचों मुख इन नकारादि अक्षरोंके क्रमशः स्थान हैं॥ ४७—४९॥

पंचाक्षर-मन्त्रका पहला अक्षर उदात्त है। दूसरा और चौथा भी उदात्त ही है। पाँचवाँ स्वरित है और तीसरा अक्षर अनुदात्त माना गया है। इस पंचाक्षर-मन्त्रके—मूल विद्या शिव, शैव, सूत्र तथा पंचाक्षर नाम जाने। शैव (शिवसम्बन्धी) बीज प्रणव मेरा विशाल हृदय है॥ ५०-५१॥

नकार सिर कहा गया है, मकार शिखा है, 'शि' कवच है, 'वा' नेत्र है और यकार अस्त्र है। इन वर्णोंके अन्तमें अंगोंके चतुर्थ्यन्तरूपके साथ क्रमशः नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और फट् जोड़नेसे अंगन्यास होता है[२]॥ ५२-५३॥

देवि! थोड़ेसे भेदके साथ यह तुम्हारा भी मूलमन्त्र है। उस पंचाक्षर-मन्त्रमें जो पाँचवाँ वर्ण 'य' है, उसे बारहवें स्वरसे विभूषित किया जाता है, अर्थात् **'नमः शिवाय'** के स्थानमें **'नमः शिवायै'** कहनेसे यह देवीका मूलमन्त्र हो जाता है। अतः साधकको चाहिये कि वह इस मन्त्रसे मन, वाणी और शरीरके भेदसे हम दोनोंका पूजन, जप और होम आदि करे। (मन आदिके भेदसे यह पूजन तीन प्रकारका होता है—मानसिक, वाचिक और शारीरिक।)॥ ५४-५५॥

देवि! जिसकी जैसी समझ हो, जिसे जितना समय मिल सके, जिसकी जैसी बुद्धि, शक्ति, सम्पत्ति, उत्साह एवं योग्यता और प्रीति हो, उसके अनुसार वह शास्त्रविधिसे जब कभी, जहाँ कहीं अथवा जिस किसी भी साधनद्वारा मेरी पूजा कर सकता है। उसकी की हुई वह पूजा उसे अवश्य मोक्षकी प्राप्ति करा देगी॥ ५६-५७॥

सुन्दरि! मुझमें मन लगाकर जो कुछ क्रम या व्युत्क्रमसे किया गया हो, वह कल्याणकारी तथा मुझे प्रिय होता है। तथापि जो मेरे भक्त हैं और कर्म करनेमें अत्यन्त विवश (असमर्थ) नहीं हो गये हैं, उनके लिये सब शास्त्रोंमें मैंने ही नियम बनाया है, उस नियमका उन्हें पालन करना चाहिये। अब मैं पहले मन्त्रकी दीक्षा लेनेका शुभ विधान बता रहा हूँ, जिसके बिना मन्त्र-जप निष्फल होता है और जिसके होनेसे जप-कर्म अवश्य सफल होता है॥ ५८—६०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पंचाक्षर-माहात्म्यवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

१-'ॐ अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरीमन्त्रस्य वामदेव ऋषिः, पंक्तिश्छन्दः, शिवो देवता, मं बीजम्, यं शक्तिः, वां कीलकं सदाशिवकृपाप्रसादोपलब्धिपूर्वकमखिलपुरुषार्थसिद्धये जपे विनियोगः।' शिवपुराणके इस वर्णनके अनुसार यही विनियोगवाक्य है। मन्त्र-महार्णव आदिमें जो विनियोग दिया गया है, उसमें 'ॐ' बीजम्, 'नमः' शक्तिः, 'शिवाय' इति कीलकम् इतना अन्तर है।

२-अंगन्यासवाक्यका प्रयोग यों समझना चाहिये—ॐ ॐ हृदयाय नमः, ॐ नं शिरसे स्वाहा, ॐ मं शिखायै वषट्, ॐ शिं कवचाय हुम्, ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ यं अस्त्राय फट् इति हृदयादिषडङ्गन्यासः। इसी तरह करन्यासका प्रयोग है—यथा— ॐ ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ नं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ शिं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ वां कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ यं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। विनियोगमें जो ऋषि आदि आये हैं, उनका न्यास इस प्रकार समझना चाहिये—ॐ वामदेवर्षये नमः शिरसि, पंक्तिच्छन्दसे नमः मुखे, शिवदेवतायै नमः हृदये, मं बीजाय नमः गुह्ये, यं शक्तये नमः पादयोः, वां कीलकाय नमः नाभौ, विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

चौदहवाँ अध्याय

गुरुसे मन्त्र लेने तथा उसके जप करनेकी विधि, पाँच प्रकारके जप तथा उनकी महिमा, मन्त्रगणनाके लिये विभिन्न प्रकारकी मालाओंका महत्त्व तथा अंगुलियोंके उपयोगका वर्णन, जपके लिये उपयोगी स्थान तथा दिशा, जपमें वर्जनीय बातें, सदाचारका महत्त्व, आस्तिकताकी प्रशंसा तथा पंचाक्षर-मन्त्रकी विशेषताका वर्णन

ईश्वर (महादेवजी) कहते हैं— वरानने! आज्ञाहीन, क्रियाहीन, श्रद्धाहीन तथा विधिके पालनार्थ आवश्यक दक्षिणासे हीन जो जप किया जाता है, वह सदा निष्फल होता है॥ १॥

मेरा स्वरूपभूत मन्त्र यदि आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध और श्रद्धासिद्ध होनेके साथ ही दक्षिणासे भी युक्त हो तो उसकी सिद्धि होती है और उससे महान् फल प्राप्त होता है॥ २॥

शिष्यको चाहिये कि वह पहले तत्त्ववेत्ता आचार्य, जपशील, सद्गुणसम्पन्न, ध्यान-योगपरायण एवं ब्राह्मण गुरुकी सेवामें उपस्थित हो, मनमें शुद्धभाव रखते हुए प्रयत्नपूर्वक उन्हें संतुष्ट करे॥ ३½॥

ब्राह्मण साधक अपने मन, वाणी, शरीर और धनसे आचार्यका पूजन करे। वह वैभव हो तो गुरुको भक्तिभावसे हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, क्षेत्र, वस्त्राभूषण, धान्य, धन और गृह आदि अर्पित करे। जो अपने लिये सिद्धि चाहता हो, वह धनके दानमें कृपणता न करे। तदनन्तर सब सामग्रियोंसहित अपने-आपको गुरुकी सेवामें अर्पित कर दे॥ ४—७॥

इस प्रकार यथाशक्ति निश्छलभावसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके गुरुसे मन्त्र एवं ज्ञानका उपदेश क्रमशः ग्रहण करे। इस तरह संतुष्ट हुए गुरु अपने पूजक शिष्यको, जो एक वर्षतक उनकी सेवामें रह चुका हो, गुरुकी सेवामें उत्साह रखनेवाला हो, अहंकाररहित हो और उपवासपूर्वक स्नान करके शुद्ध हो गया हो, पुनः विशेष शुद्धिके लिये पूर्ण कलशमें रखे हुए घृतसे तथा पवित्र द्रव्ययुक्त मन्त्रशुद्ध जलसे नहलाकर चन्दन, पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषणोंद्वारा अलंकृत करके उसे सुन्दर वेश-भूषासे विभूषित करे॥ ८—१०½॥

तत्पश्चात् शिष्यसे ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन करवाकर और ब्राह्मणोंकी पूजा करके समुद्रतटपर, नदीके किनारे, गोशालामें, देवालयमें, किसी भी पवित्र स्थानमें अथवा घरमें सिद्धिदायक काल आनेपर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र एवं सर्वदोषरहित शुभ योगमें गुरु अपने उस शिष्यको अनुग्रहपूर्वक विधिके अनुसार मेरा ज्ञान दे॥ ११—१३॥

एकान्त स्थानमें अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो उच्चस्वरसे हम दोनोंके उस उत्तम मन्त्रका शिष्यसे भलीभाँति उच्चारण कराये। बारंबार उच्चारण कराकर शिष्यको इस प्रकार आशीर्वाद दे—'तुम्हारा कल्याण हो, मंगल हो, शोभन हो, प्रिय हो' इस तरह गुरु शिष्यको मन्त्र और तदुपरान्त आज्ञा प्रदान करे*॥ १४-१५॥

इस प्रकार गुरुसे मन्त्र और आज्ञा पाकर शिष्य एकाग्रचित्त हो संकल्प करके पुरश्चरणपूर्वक प्रतिदिन उस मन्त्रका जप करता रहे। वह जबतक जीये, तबतक अनन्यभावसे तत्परतापूर्वक नित्य एक हजार आठ मन्त्रोंका जप किया करे। जो ऐसा करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है॥ १६-१७॥

जो प्रतिदिन संयमसे रहकर केवल रातमें भोजन करता है और मन्त्रके जितने अक्षर हैं, उतने लाखका चौगुना जप आदरपूर्वक पूरा कर देता है, वह 'पौरश्चरणिक' कहलाता है। जो पुरश्चरण करके प्रतिदिन जप करता रहता है, उसके समान इस लोकमें दूसरा कोई नहीं है। वह सिद्धिदायक सिद्ध हो जाता है॥ १८-१९॥

साधकको चाहिये कि वह शुद्ध देशमें स्नान करके

* शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति। एवं दद्याद् गुरुर्मन्त्रमाज्ञां चैव ततः पराम्॥ (शि० पु० वा० सं० उ० ख० १४। १५)

सुन्दर आसन बाँधकर अपने हृदयमें तुम्हारे साथ मुझ शिवका और अपने गुरुका चिन्तन करते हुए उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह किये मौनभावसे बैठे, चित्तको एकाग्र करे तथा दहन-प्लावन आदिके द्वारा पाँचों तत्त्वोंका शोधन करके मन्त्रका न्यास आदि करे। इसके बाद सकलीकरणकी क्रिया सम्पन्न करके प्राण और अपानका नियमन करते हुए हम दोनोंके स्वरूपका ध्यान करे और विद्यास्थान, अपने रूप, ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा मन्त्रके वाच्यार्थरूप मुझ परमेश्वरका स्मरण करके पंचाक्षरीका जप करे॥ २०—२३॥

मानस जप उत्तम है, उपांशु जप मध्यम है तथा वाचिक जप उससे निम्नकोटिका माना गया है—ऐसा आगमार्थविशारद विद्वानोंका कथन है॥ २४॥

रुद्रसे अधिष्ठित [मानस] जप उत्तम कहा गया है, विष्णुसे अधिष्ठित [उपांशु] जप मध्यम कहा जाता है तथा ब्रह्मासे अधिष्ठित [वाचिक] जप अधम कहलाता है—ऐसा क्रमशः समझना चाहिये॥ २५॥

जो ऊँचे-नीचे स्वरसे युक्त तथा स्पष्ट और अस्पष्ट पदों एवं अक्षरोंके साथ मन्त्रका वाणीद्वारा उच्चारण करता है, उसका यह जप 'वाचिक' कहलाता है॥ २६॥

जिस जपमें केवल जिह्वामात्र हिलती है अथवा बहुत धीमे स्वरसे अक्षरोंका उच्चारण होता है तथा जो दूसरोंके कानमें पड़नेपर भी उन्हें कुछ सुनायी नहीं देता, ऐसे जपको 'उपांशु' कहते हैं॥ २७॥

जिस जपमें अक्षर-पङ्क्तिका एक वर्णसे दूसरे वर्णका, एक पदसे दूसरे पदका तथा शब्द और अर्थका मनके द्वारा बारंबार चिन्तनमात्र होता है, वह 'मानस' जप कहलाता है॥ २८॥

वाचिक जप एकगुना ही फल देता है, उपांशु जप सौगुना फल देनेवाला बताया जाता है, मानस जपका फल सहस्रगुना कहा गया है तथा सगर्भ जप उससे सौगुना अधिक फल देनेवाला है॥ २९॥

प्राणायामपूर्वक जो जप होता है, उसे 'सगर्भ' जप कहते हैं। अगर्भ जपमें भी आदि और अन्तमें प्राणायाम कर लेना श्रेष्ठ बताया गया है॥ ३०॥

मन्त्रार्थवेत्ता बुद्धिमान् साधक प्राणायाम करते समय चालीस बार मन्त्रका स्मरण कर ले। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह अपनी शक्तिके अनुसार जितना हो सके, उतने ही मन्त्रोंका मानसिक जप कर ले॥ ३१॥

पाँच, तीन अथवा एक बार अगर्भ या सगर्भ प्राणायाम करे। इन दोनोंमें सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ माना गया है॥ ३२॥

सगर्भकी अपेक्षा भी ध्यानसहित जप सहस्रगुना फल देनेवाला कहा जाता है। इन पाँच प्रकारके जपोंमेंसे कोई एक जप अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये॥ ३३॥

अँगुलीसे जपकी गणना करना एकगुना बताया गया है। रेखासे गणना करना आठगुना उत्तम समझना चाहिये। पुत्रजीव (जियापोता)-के बीजोंकी मालासे गणना करनेपर जपका दसगुना अधिक फल होता है। शंखके मनकोंसे सौ गुना, मूँगोंसे हजारगुना, स्फटिकमणिकी मालासे दस हजारगुना, मोतियोंकी मालासे लाखगुना, पद्माक्षसे दस लाखगुना और सुवर्णके बने हुए मनकोंसे गणना करनेपर कोटिगुना अधिक फल बताया गया है। कुशकी गाँठसे तथा रुद्राक्षसे गणना करनेपर अनन्तगुने फलकी प्राप्ति होती है॥ ३४—३६॥

तीस रुद्राक्षके दानोंसे बनायी गयी माला जप-कर्ममें धन देनेवाली होती है। सत्ताईस दानोंकी माला पुष्टिदायिनी और पचीस दानोंकी माला मुक्तिदायिनी होती है, पंद्रह रुद्राक्षोंकी बनी हुई माला अभिचारकर्ममें फलदायक होती है॥ ३७-३८॥

जपकर्ममें अँगूठेको मोक्षदायक समझना चाहिये और तर्जनीको शत्रुनाशक। मध्यमा धन देती है और अनामिका शान्ति प्रदान करती है। एक सौ आठ दानोंकी माला उत्तमोत्तम मानी गयी है। सौ दानोंकी माला उत्तम और पचास दानोंकी माला मध्यम होती है। चौवन दानोंकी माला मनोहारिणी एवं श्रेष्ठ कही गयी है। इस तरहकी मालासे जप करे। वह जप किसीको दिखाये नहीं॥ ३९—४१॥

कनिष्ठिका अंगुलि अक्षरणी (जपके फलको क्षरित—

नष्ट न करनेवाली) मानी गयी है; इसलिये जपकर्ममें शुभ है। दूसरी अंगुलियोंके साथ अंगुष्ठद्वारा जप करना चाहिये; क्योंकि अंगुष्ठके बिना किया हुआ जप निष्फल होता है॥ ४२१/२ ॥

घरमें किये हुए जपको समान या एकगुना समझना चाहिये। गोशालामें उसका फल सौगुना हो जाता है, पवित्र वन या उद्यानमें किये हुए जपका फल सहस्रगुना बताया जाता है। पवित्र पर्वतपर दस हजारगुना, नदीके तटपर लाखगुना, देवालयमें कोटिगुना और मेरे निकट किये हुए जपको अनन्तगुना कहा गया है॥ ४३—४४१/२ ॥

सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओंके समीप किया हुआ जप श्रेष्ठ होता है॥ ४५१/२ ॥

पूर्वाभिमुख किया हुआ जप वशीकरणमें और दक्षिणाभिमुख जप अभिचारकर्ममें सफलता प्रदान करनेवाला है। पश्चिमाभिमुख जपको धनदायक जानना चाहिये और उत्तराभिमुख जप शान्तिदायक होता है॥ ४६१/२ ॥

सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, देवता तथा अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंके समीप उनकी ओर पीठ करके जप नहीं करना चाहिये, सिरपर पगड़ी रखकर, कुर्ता पहनकर, नंगा होकर, बाल खोलकर, गलेमें कपड़ा लपेटकर, अशुद्ध हाथ लेकर, सम्पूर्ण शरीरसे अशुद्ध रहकर तथा विलापपूर्वक कभी जप नहीं करना चाहिये॥ ४७—४८१/२ ॥

जप करते समय क्रोध, मद, छींकना, थूकना, जँभाई लेना तथा कुत्तों और नीच पुरुषोंकी ओर देखना वर्जित है। यदि कभी वैसा सम्भव हो जाय तो आचमन करे अथवा तुम्हारे साथ मेरा (पार्वतीसहित शिवका) स्मरण करे या ग्रह-नक्षत्रोंका दर्शन करे अथवा प्राणायाम कर ले॥ ४९-५०१/२ ॥

बिना आसनके बैठकर, सोकर, चलते-चलते अथवा खड़ा होकर जप न करे। गलीमें या सड़कपर, अपवित्र स्थानमें तथा अँधेरेमें भी जप न करे। दोनों पाँव फैलाकर, कुक्कुट आसनसे बैठकर, सवारी या खाटपर चढ़कर अथवा चिन्तासे व्याकुल होकर जप न करे। यदि शक्ति हो तो इन सब नियमोंका पालन करते हुए जप करे और अशक्त पुरुष यथाशक्ति जप करे॥ ५१—५३ ॥

इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ? संक्षेपसे मेरी यह बात सुनो। सदाचारी मनुष्य शुद्धभावसे जप और ध्यान करके कल्याणका भागी होता है। आचार परम धर्म है, आचार उत्तम धन है, आचार श्रेष्ठ विद्या है और आचार ही परम गति है। आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित होता है और परलोकमें भी सुख नहीं पाता। इसलिये सबको आचारवान् होना चाहिये*॥ ५४—५६ ॥

वेदज्ञ विद्वानोंने वेद-शास्त्रके कथनानुसार जिस वर्णके लिये जो कर्म विहित बताया है, उस वर्णके पुरुषको उसी कर्मका सम्यक् आचरण करना चाहिये। वही उसका सदाचार है, दूसरा नहीं। सत्पुरुषोंने उसका आचरण किया है; इसीलिये वह सदाचार कहलाता है। उस सदाचारका भी मूल कारण आस्तिकता है॥ ५७-५८ ॥

यदि मनुष्य आस्तिक हो तो प्रमाद आदिके कारण सदाचारसे कभी भ्रष्ट हो जानेपर भी दूषित नहीं होता। अत: सदा आस्तिकताका आश्रय लेना चाहिये। जैसे इहलोकमें सत्कर्म करनेसे सुख और दुष्कर्म करनेसे दु:ख होता है, उसी तरह परलोकमें भी होता है—इस विश्वासको आस्तिकता कहते हैं॥ ५९-६० ॥

हे प्रिये! मैं तुमसे एक और रहस्यमय बात कहता हूँ, इसे [सदा] गुप्त रखना चाहिये। जिस किसी भी नास्तिक अथवा पशुतुल्य प्राणीको इसे नहीं बताना॥ ६१ ॥

सदाचारसे हीन, पतित और अन्त्यजका उद्धार करनेके लिये कलियुगमें पंचाक्षर-मन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। चलते-फिरते, खड़े होते अथवा स्वेच्छानुसार कर्म करते हुए अपवित्र या पवित्र पुरुषके जप करनेपर भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता॥ ६२-६३ ॥

आचारहीन तथा षडध्वशोधनसे रहित पुरुषोंके

---

* आचार: परमो धर्म आचार: परमं धनम्। आचार: परमा विद्या आचार: परमा गति:॥
आचारहीन: पुरुषो लोके भवति निन्दित:। परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान् भवेत्॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० १४। ५५-५६)

लिये और जिसे गुरुसे मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त नहीं हुई उनके लिये भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता है॥ ६४॥

अन्त्यज, मूर्ख, मूढ़, पतित, मर्यादारहित और नीचके लिये भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता। किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ मनुष्य भी, यदि मुझमें उत्तम भक्तिभाव रखता है, तो उसके लिये यह मन्त्र निःसंदेह सिद्ध होगा ही, किंतु दूसरे किसीके लिये वह सिद्ध नहीं हो सकता॥ ६५-६६॥

प्रिये! इस मन्त्रके लिये लग्न, तिथि, नक्षत्र, वार और योग आदिका अधिक विचार अपेक्षित नहीं है। यह मन्त्र कभी सुप्त नहीं होता, सदा जाग्रत् ही रहता है। यह महामन्त्र कभी किसीका शत्रु नहीं होता। यह सदा सुसिद्ध, सिद्ध अथवा साध्य ही रहता है॥ ६७-६८॥

सिद्ध गुरुके उपदेशसे प्राप्त हुआ मन्त्र सुसिद्ध कहलाता है। असिद्ध गुरुका भी दिया हुआ मन्त्र सिद्ध कहा गया है। जो केवल परम्परासे प्राप्त हुआ है, किसी गुरुके उपदेशसे नहीं मिला है, वह मन्त्र साध्य होता है। जो मुझमें, मन्त्रमें तथा गुरुमें अतिशय श्रद्धा रखनेवाला है, उसको मिला हुआ मन्त्र किसी गुरुके द्वारा साधित हो या असाधित, सिद्ध होकर ही रहता है, इसमें संशय नहीं है॥ ६९-७०॥

इसलिये अधिकारकी दृष्टिसे विघ्नयुक्त होनेवाले दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर विद्वान् पुरुष साक्षात् परमा विद्या पंचाक्षरीका आश्रय ले। दूसरे मन्त्रोंके सिद्ध हो जानेसे ही यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता। परंतु इस महामन्त्रके सिद्ध होनेपर वे दूसरे मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाते हैं॥ ७१-७२॥

महेश्वरि! जैसे अन्य देवताओंके प्राप्त होनेपर भी मैं नहीं प्राप्त होता; परंतु मेरे प्राप्त होनेपर वे सब देवता प्राप्त हो जाते हैं, यही न्याय इन सब मन्त्रोंके लिये भी है। सब मन्त्रोंके जो दोष हैं, वे इस मन्त्रमें सम्भव नहीं हैं; क्योंकि यह मन्त्र जाति आदिकी अपेक्षा न रखकर प्रवृत्त होता है। तथापि छोटे-छोटे तुच्छ फलोंके लिये सहसा इस मन्त्रका विनियोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र महान् फल देनेवाला है॥ ७३—७५॥

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! इस प्रकार त्रिशूलधारी महादेवजीने तीनों लोकोंके हितके लिये साक्षात् महादेवी पार्वतीसे इस पंचाक्षर-मन्त्रकी विधि कही थी, जो एकाग्रचित्त हो भक्ति-भावसे इस प्रसंगको सुनता या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होता है॥ ७६-७७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पंचाक्षर-महिमवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

त्रिविध दीक्षाका निरूपण, शक्तिपातकी आवश्यकता तथा उसके लक्षणोंका वर्णन, गुरुका महत्त्व, ज्ञानी गुरुसे ही मोक्षकी प्राप्ति तथा गुरुके द्वारा शिष्यकी परीक्षा

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! आपने मन्त्रका माहात्म्य तथा उसके प्रयोगका विधान बताया, जो साक्षात् वेदके तुल्य है। अब मैं उत्तम शिव-संस्कारकी विधि सुनना चाहता हूँ, जिसे मन्त्र-ग्रहणके प्रकरणमें आपने कुछ सूचित किया था, पर उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया था॥ १-२॥

उपमन्युने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें शिवद्वारा कथित परम पवित्र संस्कारका विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापोंका शोधन करनेवाला है॥ ३॥

मनुष्य जिसके प्रभावसे पूजा आदिमें उत्तम अधिकार प्राप्त कर लेता है, उस षडध्वशोधन कर्मको संस्कार कहते हैं। संस्कार अर्थात् शुद्धि करनेसे ही उसका नाम संस्कार है॥ ४॥

यह विज्ञान देता है और पाशबन्धनको क्षीण करता है। इसलिये इस संस्कारको ही दीक्षा भी कहते हैं॥ ५॥

शिव-शास्त्रमें परमात्मा शिवने 'शाम्भवी', 'शाक्ती'

और 'मान्त्री' तीन प्रकारकी दीक्षाका उपदेश किया है॥ ६॥

गुरुके दृष्टिपातमात्रसे, स्पर्शसे तथा सम्भाषणसे भी जीवको जो तत्काल पाशोंका नाश करनेवाली संज्ञा अर्थात् सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है, वह शाम्भवी दीक्षा कहलाती है। उस दीक्षाके भी दो भेद हैं—तीव्रा और तीव्रतरा। पाशोंके क्षीण होनेमें जो शीघ्रता या मन्दता होती है, उसीके भेदसे ये दो भेद हुए हैं। जिस दीक्षासे तत्काल सिद्धि या शान्ति प्राप्त होती है, वही तीव्रतरा मानी गयी है। जीवित पुरुषके पापका अत्यन्त शोधन करनेवाली जो दीक्षा है, उसे तीव्रा कहा गया है॥ ७—९॥

गुरु योगमार्गसे शिष्यके शरीरमें प्रवेश करके ज्ञानदृष्टिसे जो ज्ञानवती दीक्षा देते हैं, वह शाक्ती कही गयी है॥ १०॥

क्रियावती दीक्षाको मान्त्री दीक्षा कहते हैं। इसमें पहले होमकुण्ड और यज्ञमण्डपका निर्माण किया जाता है। फिर गुरु बाहरसे मन्द या मन्दतर उद्देश्यको लेकर शिष्यका संस्कार करते हैं। शक्तिपातके अनुसार शिष्य गुरुके अनुग्रहका भाजन होता है। शैव-धर्मका अनुसरण शक्तिपात-मूलक है; अत: संक्षेपसे उसके विषयमें निवेदन किया जाता है॥ ११-१२॥

जिस शिष्यमें गुरुकी शक्तिका पात नहीं हुआ, उसमें शुद्धि नहीं आती तथा उसमें न तो विद्या, न शिवाचार, न मुक्ति और न सिद्धियाँ ही होती हैं; अत: प्रचुर शक्तिपातके लक्षणोंको देखकर गुरु ज्ञान अथवा क्रियाके द्वारा शिष्यका शोधन करे॥ १३-१४॥

जो मोहवश इसके विपरीत आचरण करता है, वह दुर्बुद्धि नष्ट हो जाता है; अत: गुरु सब प्रकारसे शिष्यका परीक्षण करे। उत्कृष्ट बोध और आनन्दकी प्राप्ति ही शक्तिपातका लक्षण है; क्योंकि वह परमाशक्ति प्रबोधानन्दरूपिणी ही है। आनन्द और बोधका लक्षण है अन्त:करणमें (सात्त्विक) विकार। जब अन्त:करण द्रवित होता है, तब बाह्य शरीरमें कम्प, रोमांच, स्वरविकार,[१] नेत्रविकार[२] और अंगविकार[३] प्रकट होते हैं॥ १५—१७॥

शिष्य भी शिवपूजन आदिमें गुरुका सम्पर्क प्राप्त करके अथवा उनके साथ रह करके उनमें प्रकट होनेवाले इन लक्षणोंसे गुरुकी परीक्षा करे। शिष्य गुरुका शिक्षणीय होता है और उसका गुरुके प्रति गौरव होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके शिष्य ऐसा आचरण करे, जो गुरुके गौरवके अनुरूप हो॥ १८-१९॥

जो गुरु है, वह शिव कहा गया है और जो शिव है, वह गुरु माना गया है। विद्याके आकारमें शिव ही गुरु बनकर विराजमान हैं। जैसे शिव हैं, वैसी विद्या है। जैसी विद्या है, वैसे गुरु हैं। शिव, विद्या और गुरुके पूजनसे समान फल मिलता है॥ २०-२१॥

शिव सर्वदेवात्मक हैं और गुरु सर्वमन्त्रमय। अत: सम्पूर्ण यत्नसे गुरुकी आज्ञाको शिरोधार्य करना चाहिये॥ २२॥

यदि शिष्य [अपने] कल्याणका इच्छुक है, तो वह मनसे भी गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन न करे; क्योंकि गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला ज्ञानरूपी सम्पदा प्राप्त करता है॥ २३॥

चलते, बैठते, सोते तथा भोजन करते समय अन्य कर्म नहीं करना चाहिये। यदि गुरुके सामने कर्म करे तो सब कुछ उनकी आज्ञासे करे। गुरुके घरमें अथवा उनके सामने अपनी इच्छाके अनुरूप आसनपर न बैठे, क्योंकि गुरु साक्षात् देवता होते हैं और उनका घर देवमन्दिर है॥ २४-२५॥

जैसे पापियोंके संगके कारण उनके पापसे मनुष्य पतित हो जाता है, जैसे अग्निके सम्पर्कसे सोना मल (गन्दगी) छोड़ देता है, वैसे ही गुरुके सम्पर्कसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है। जैसे अग्निके पास स्थित घड़ेमें रखा हुआ घृत पिघल जाता है, वैसे ही आचार्यके सम्पर्कसे शिष्यका पाप गल जाता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे तथा गीले पदार्थको जला डालती है, वैसे ही प्रसन्न हुए ये गुरु भी क्षणभरमें पापको जला देते हैं॥ २६—२८$^{1}/_{2}$॥

मन, वचन तथा कर्मसे गुरुको कुपित नहीं करना चाहिये, उनके क्रोधसे आयु, श्री, ज्ञान तथा सत्कर्म दग्ध हो जाते हैं, जो उन्हें कुपित करते हैं, उनके यज्ञ, यम तथा नियम निष्फल हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २९-३०॥

१. कण्ठसे गद्गदवाणीका प्रकट होना। २. नेत्रोंसे अश्रुपात होना। ३. शरीरमें स्तम्भ (जड़ता) तथा स्वेद आदिका उदय होना।

मनुष्यको चाहिये कि जो वचन गुरुके विरुद्ध हो, उसे कभी न बोले। यदि वह महामोहके कारण बोलता है, तो रौरव नरकमें पड़ता है॥ ३११/२॥

यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहनेवाला और बुद्धिमान् है तो वह गुरुके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी मिथ्याचार—कपटपूर्ण बर्ताव न करे। गुरु आज्ञा दें या न दें, शिष्य सदा उनका हित और प्रिय करे॥ ३२-३३॥

उनके सामने और पीठ-पीछे भी उनका कार्य करता रहे। ऐसे आचारसे युक्त गुरुभक्त और सदा मनमें उत्साह रखनेवाला जो गुरुका प्रिय कार्य करनेवाला शिष्य है, वही शैव धर्मोंके उपदेशका अधिकारी है॥ ३४१/२॥

यदि गुरु गुणवान्, विद्वान्, परमानन्दका प्रकाशक, तत्त्ववेत्ता और शिवभक्त है तो वही मुक्ति देनेवाला है, दूसरा नहीं। ज्ञान उत्पन्न करनेवाला जो परमानन्दजनित तत्त्व है, उसे जिसने जान लिया है, वही आनन्दका साक्षात्कार करा सकता है। ज्ञानरहित नाममात्रका गुरु ऐसा नहीं कर सकता॥ ३५—३७॥

नौकाएँ एक-दूसरीको पार लगा सकती हैं, किंतु क्या कोई शिला दूसरी शिलाको तार सकती है? नाममात्रके गुरुसे नाममात्रकी ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। जिन्हें तत्त्वका ज्ञान है, वे ही स्वयं मुक्त होकर दूसरोंको भी मुक्त करते हैं। तत्त्वहीनको कैसे बोध होगा और बोधके बिना कैसे 'आत्मा' का अनुभव होगा?*॥ ३८-३९॥

जो आत्मानुभवसे शून्य है, वह 'पशु' कहलाता है। पशुकी प्रेरणासे कोई पशुत्वको नहीं लाँघ सकता; अतः तत्त्वज्ञ पुरुष ही 'मुक्त' और 'मोचक' हो सकता है, अज्ञ नहीं॥ ४०१/२॥

समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सब प्रकारके उपाय-विधानका जानकार होनेपर भी जो तत्त्वज्ञानसे हीन है, उसका जीवन निष्फल है॥ ४११/२॥

जिस पुरुषकी अनुभवपर्यन्त बुद्धि तत्त्वके अनुसंधानमें प्रवृत्त होती है, उसके दर्शन, स्पर्श आदिसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। अतः जिसके सम्पर्कसे ही उत्कृष्ट बोधस्वरूप आनन्दकी प्राप्ति सम्भव हो, बुद्धिमान् पुरुष उसीको अपना गुरु चुने, दूसरेको नहीं॥ ४२—४३१/२॥

योग्य गुरुका जबतक अच्छी तरह ज्ञान न हो जाय, तबतक विनयाचार-चतुर मुमुक्षु शिष्योंको उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये। उनका अच्छी तरह ज्ञान—सम्यक् परिचय हो जानेपर उनमें सुस्थिर भक्ति करे। जबतक तत्त्वका बोध न प्राप्त हो जाय, तबतक निरन्तर गुरुसेवनमें लगा रहे॥ ४४-४५॥

तत्त्वको न तो कभी छोड़े और न किसी तरह भी उसकी उपेक्षा ही करे। जिसके पास एक वर्षतक रहनेपर भी शिष्यको थोड़ेसे भी आनन्द और प्रबोधकी उपलब्धि न हो, वह शिष्य उसे छोड़कर दूसरे गुरुका आश्रय ले॥ ४६१/२॥

दूसरे गुरुके शरणागत होनेपर भी पूर्वगुरुका, गुरुके भाइयोंका, उनके पुत्रोंका, उपदेशकोंका तथा प्रेरकोंका अपमान न करे॥ ४७॥

सर्वप्रथम ब्राह्मण, वेदमें पारंगत, प्रज्ञासम्पन्न, सुन्दर, प्रियदर्शन, सब प्रकारसे अभय प्रदान करनेवाले तथा करुणामय चित्तवाले गुरुके पास जाकर उनकी आराधना करनी चाहिये और मन-वचन-कर्मसे प्रयत्नपूर्वक उन्हें प्रसन्न करना चाहिये॥ ४८-४९॥

शिष्यको चाहिये कि तबतक उनकी आराधना करे, जबतक वे प्रसन्न न हो जायँ। उनके प्रसन्न हो जानेपर शीघ्र ही शिष्यके पापका नाश हो जाता है, अतः धन, रत्न, क्षेत्र, गृह, आभूषण, वस्त्र, वाहन, शय्या, आसन—यह सब भक्तिपूर्वक अपने धन-सामर्थ्यके अनुसार गुरुको प्रदान करना चाहिये। यदि शिष्य परमगति चाहता है, तो उसे धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये॥ ५०—५२॥

वे ही पिता, माता, पति, बन्धु, धन, सुख, सखा तथा मित्र हैं, इसलिये उन्हें सब कुछ अर्पित कर देना चाहिये। इस प्रकार निवेदित करके बादमें परिवार तथा

* अन्योन्यं तारयेन्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम्। एतस्य नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका॥
यैः पुनर्विदितं तत्त्वं ते मुक्त्वा मोचयन्त्यपि। तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः॥
(शि० पु० वा० सं० उ० ख० १५। ३८-३९)

बन्धुजनोंसहित अपनेको भी संकल्पपूर्वक उन्हें समर्पित करके सदाके लिये उनके अधीन हो जाना चाहिये। जब मनुष्य शिवस्वरूप गुरुके निमित्त अपनेको समर्पित कर देता है, तब वह शैव हो जाता है और उसके बाद उसका पुनर्जन्म नहीं होता है॥ ५३—५५॥

गुरुको भी चाहिये कि वह अपने आश्रित ब्राह्मणजातीय शिष्यकी एक वर्षतक परीक्षा करे। क्षत्रिय शिष्यकी दो वर्ष और वैश्यकी तीन वर्षतक परीक्षा करे॥ ५६॥

प्राणोंको संकटमें डालकर सेवा करने और अधिक धन देने आदिका अनुकूल-प्रतिकूल आदेश देकर, उत्तम जातिवालोंको छोटे काममें लगाकर और छोटोंको उत्तम काममें नियुक्त करके उनके धैर्य और सहनशीलताकी परीक्षा करे॥ ५७॥

गुरुके तिरस्कार आदि करनेपर भी जो विषादको नहीं प्राप्त होते, वे ही संयमी, शुद्ध तथा शिव-संस्कार कर्मके योग्य हैं। जो किसीकी हिंसा नहीं करते, सबके प्रति दयालु होते हैं, सदा हृदयमें उत्साह रखकर सब कार्य करनेको उद्यत रहते हैं; अभिमानशून्य, बुद्धिमान् और स्पर्धारहित होकर प्रिय वचन बोलते हैं; सरल, कोमल, स्वच्छ, विनयशील, सुस्थिरचित्त, शौचाचारसे संयुक्त और शिवभक्त होते हैं, ऐसे आचार-व्यवहारवाले द्विजातियोंको मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा यथोचित रीतिसे शुद्ध करके तत्त्वका बोध कराना चाहिये, यह शास्त्रोंका निर्णय है॥ ५८—६१॥

शिव-संस्कार कर्ममें नारीका स्वतः अधिकार नहीं है। यदि वह शिवभक्त हो तो पतिकी आज्ञासे ही उक्त संस्कारकी अधिकारिणी होती है॥ ६२॥

विधवा स्त्रीका पुत्र आदिकी अनुमतिसे और कन्याका पिताकी आज्ञासे शिव-संस्कारमें अधिकार होता है। शूद्रों, पतितों और वर्णसंकरोंके लिये षडध्वशोधन (शिव-संस्कार)-का विधान नहीं है। वे भी यदि परमकारण शिवमें स्वाभाविक अनुराग रखते हों तो शिवका चरणोदक लेकर अपने पापोंकी शुद्धि करें॥ ६३—६४१/२॥

द्विजातियोंमें जो वर्णसंकर उत्पन्न हुए हैं, उनकी अध्व-शुद्धि माताके कुलके अनुसार करना चाहिये॥ ६५१/२॥

जो कन्या पिता आदिके द्वारा शिवधर्ममें नियुक्त की गयी हो, [पिता आदिको चाहिये कि वे] उसे शिवभक्त वरको ही प्रदान करें, किसी शिवविरोधीको नहीं। यदि असावधानीवश किसी प्रतिकूलको दे दी जाय, तो वह कन्या पतिको समझाये; यदि वह असमर्थ हो, तो उसे छोड़कर मनोयोगसे [एकाकिनी ही रहकर] शिवधर्मका आचरण करे; जैसे कि अपने पति मुनिवर अत्रिको छोड़कर पतिव्रता अनसूया तपस्यासे शंकरकी आराधना करके कृतकृत्य हुईं और जैसे तपस्याके द्वारा भगवान् नारायणकी आराधना करके द्रौपदीने गुरुजनोंके द्वारा धर्मानुशासित होकर पतिरूपमें पाण्डवोंका वरण किया। शिवधर्मके आधारपर [इस प्रकारका] व्यवहार करनेवाली द्रौपदीको शिवजीके धर्मानुशासनके गौरववश वस्तुतः इस प्रसंगसे यथेच्छाचाररूप पाप भी नहीं लगा॥ ६६—७०१/२॥

इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय! जो कोई भी शिवजीका आश्रय ले ले और गुरुका अनुगत हो जाय [तो गुरुको चाहिये कि वे] उसको दीक्षा आदिसे संस्कारसम्पन्न करें, [यह अवश्य है कि अधिकारी-भेदसे] संस्कारकी प्रक्रिया भिन्न हो जाती है॥ ७११/२॥

गुरुके द्वारा [कृपापूर्वक] देखने, छूने अथवा वार्तालाप करनेमात्रसे उस [साधक]-में निर्मल बुद्धिका उदय होता है और तब वह [नानाविध दोषोंसे] पराजित नहीं होता। यौगिक रीतिसे [शिष्यको] जो मानसी दीक्षा प्रदान की जाती है, वह विषय अतीव गोपनीय होनेके कारण गुरुमुखसे ही जाननेयोग्य है, अतएव यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया। कुण्ड-मण्डप आदिका निर्माण करके जिस दीक्षाप्रक्रियाका सम्पादन किया जाता है, उसीको यहाँ संक्षेपमें बताया जा रहा है, क्योंकि उसका विस्तृत वर्णन करना सम्भव नहीं है॥ ७२—७४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें दीक्षाविधानमें गुरुमाहात्म्यवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

समय-संस्कार या समयाचारकी दीक्षाकी विधि

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! नाना प्रकारके दोषोंसे रहित शुद्ध स्थान और पवित्र दिनमें गुरु पहले शिष्यका 'समय' नामक संस्कार करे॥ १॥

गन्ध, वर्ण और रस आदिसे विधिपूर्वक भूमिकी परीक्षा करके वास्तु-शास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिसे वहाँ मण्डपका निर्माण करे॥ २॥

मण्डपके बीचमें वेदी बनाकर आठों दिशाओंमें छोटे-छोटे कुण्ड बनाये। फिर ईशानकोणमें या पश्चिम-दिशामें प्रधानकुण्डका निर्माण करे। एक ही प्रधान कुण्ड बनाकर चँदोवा, ध्वज तथा अनेक प्रकारकी बहुसंख्यक मालाओंसे उसको सजाये। तत्पश्चात् वेदीके मध्यभागमें शुभ लक्षणोंसे युक्त मण्डल बनाये॥ ३—५॥

लालरंगके सुवर्ण आदिके चूर्णसे वह मण्डल बनाना चाहिये। मण्डल ऐसा हो कि उसमें ईश्वरका आवाहन किया जा सके। निर्धन मनुष्य सिन्दूर तथा अगहनी या तिन्नीके चावलके चूर्णसे मण्डल बनाये॥ ६॥

उस मण्डपमें एक या दो हाथका श्वेत या लाल कमल बनाये। एक हाथके कमलकी कर्णिका आठ अंगुलकी होनी चाहिये॥ ७॥

उसके केसर चार अंगुलमें हों और शेष भागमें अष्टदल आदिकी कल्पना करे। दो हाथके कमलकी कर्णिका आदि एक हाथवालेसे दुगुनी होनी चाहिये। उक्त वेदी या मण्डपके ईशानकोणमें पुनः एक वेदीपर एक हाथ या आधे हाथका मण्डल बनाये और उसे शोभाजनक सामग्रियोंसे सुशोभित करे॥ ८-९॥

तत्पश्चात् धान, चावल, सरसों, तिल, फूल और कुशासे उस मण्डलको आच्छादित करके उसके ऊपर शुभ लक्षणसे युक्त शिवकलशकी स्थापना करे॥ १०॥

वह कलश सोना, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीका होना चाहिये। उसपर गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुश और दूर्वांकुर रखे जायँ, उसके कण्ठमें सफेद सूत लपेटा जाय और उसे दो नूतन वस्त्रोंसे आच्छादित किया जाय। उसमें शुद्ध जल भर दिया जाय। कलशमें एक मुट्ठा कुश अग्रभाग ऊपरकी ओर करके डाला जाय। सुवर्ण आदि द्रव्य छोड़ा जाय और उस कलशको ऊपरसे ढक दिया जाय॥ ११-१२॥

उस आसनरूप कमलके उत्तर दलमें सूत्र आदिके बिना झारी या गड़ुआ, वर्धनी (विशिष्ट जलपात्र), शंख, चक्र और कमलदल आदि सब सामग्री संग्रह करके रखे। उक्त आसन-मण्डलके अग्रभागमें चन्दनमिश्रित जलसे भरी हुई वर्धनी अस्त्रराजके लिये रखे॥ १३-१४॥

फिर मण्डलके पूर्वभागमें पूर्ववत् मन्त्रयुक्त कलशकी स्थापना करके शिवकी विधि-पूर्वक महापूजा आरम्भ करे॥ १५॥

समुद्र या नदीके किनारे, गोशालामें, पर्वतके शिखरपर, देवालयमें अथवा घरमें या किसी भी मनोहर स्थानमें मण्डपादि रचनाके बिना पूर्वोक्त सब कार्य करे॥ १६१/२॥

फिर पूर्ववत् मण्डल और अग्निकी वेदी बनाकर गुरु प्रसन्नमुखसे पूजा-भवनमें प्रवेश करे। वहाँ सब प्रकारके मंगल-कृत्यका सम्पादन करके नित्यकर्मके अनुष्ठानपूर्वक मण्डलके मध्यभागमें महेश्वरकी महापूजा करनेके अनन्तर पुनः शिवकलशपर शिवका आवाहन-पूजन करे॥ १७—१९॥

पश्चिमाभिमुख यज्ञरक्षक ईश्वरका ध्यान करके अस्त्रराजकी वर्धनीमें दक्षिणकी ओर ईश्वरके अस्त्रकी पूजा करे। फिर मन्त्रयुक्त कलशमें मन्त्र तथा मुद्रा आदिका न्यास करके मन्त्रविशारद गुरु मन्त्र-याग करे॥ २०-२१॥

इसके बाद देशिकशिरोमणि गुरु प्रधान कुण्डमें शिवाग्निकी स्थापना करके उसमें होम करे। साथ ही दूसरे ब्राह्मण भी चारों ओरसे उसमें आहुति डालें। आचार्यसे आधे या चौथाई होमका उनके लिये विधान है। आचार्यशिरोमणिको प्रधान कुण्डमें ही हवन करना चाहिये॥ २२-२३॥

दूसरे लोगोंको स्वाध्याय, स्तोत्र एवं मंगलपाठ करना चाहिये। अन्य शिवभक्त भी वहाँ विधिवत् जप करें॥ २४॥

नृत्य, गीत, वाद्य एवं अन्य मंगल-कृत्य भी होने चाहिये। सदस्योंका विधिवत् पूजन, पुण्याहवाचन तथा पुन: भगवान् शंकरका पूजन सम्पन्न करके शिष्यपर अनुग्रह करनेकी इच्छा मनमें ले आचार्य महादेवजीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम्।
विमोचयैनं विश्वेश घृणया च घृणानिधे॥

'देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। विश्वनाथ! दयानिधे! मेरे शरीरमें प्रवेश करके आप कृपापूर्वक इस शिष्यको बन्धनमुक्त कराइये।'॥ २५—२७॥

तदनन्तर 'मैं ऐसा ही करूँगा' इस प्रकार इष्टदेवकी अनुमति पाकर गुरु उस शिष्यको, जिसने उपवास किया हो या हविष्य भोजन किया हो, अपने निकट बुलाये। वह शिष्य एक समय भोजन करनेवाला और विरक्त हो। स्नान करके प्रात:कालका कृत्य पूरा कर चुका हो। मंगल-कृत्यका सम्पादन करके प्रणवका जप और महादेवजीका ध्यान कर रहा हो॥ २८-२९॥

उसे पश्चिम या दक्षिण द्वारके सामने मण्डलमें कुशके आसनपर उत्तरकी ओर मुँह करके बिठाये और गुरु स्वयं पूर्वकी ओर मुँह करके खड़ा रहे। शिष्य ऊपरकी ओर मुँह करके हाथ जोड़ ले। गुरु प्रोक्षणीके जलसे शिष्यका प्रोक्षण करके उसके मस्तकपर अस्त्रमुद्राद्वारा फूल फेंककर मारे। फिर अभिमन्त्रित नूतन वस्त्र—आधे दुपट्टेसे उसकी आँखोंको बाँध दे॥ ३०—३२॥

इसके बाद शिष्यको दरवाजेसे मण्डलके भीतर प्रवेश कराये। शिष्य भी गुरुसे प्रेरित हो शंकरजीकी तीन बार प्रदक्षिणा करे। इसके बाद प्रभुको सुवर्णमिश्रित पुष्पांजलि चढ़ाकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर साष्टांग प्रणाम करे॥ ३३-३४॥

तदनन्तर मूलमन्त्रसे गुरु शिष्यका प्रोक्षण करके पूर्ववत् अस्त्रमन्त्रके द्वारा उसके मस्तकपर फूलसे ताड़न करनेके पश्चात् नेत्र-बन्धन खोल दे॥ ३५॥

शिष्य पुन: मण्डलकी ओर देखकर हाथ जोड़ प्रभुको प्रणाम करे। इसके बाद शिवस्वरूप आचार्य शिष्यको मण्डलके दक्षिण अपने बायें भागमें कुशके आसनपर बिठाये और महादेवजीकी आराधना करके उसके मस्तकपर शिवका वरद हाथ रखे॥ ३६-३७॥

'मैं शिव हूँ' इस अभिमानसे युक्त गुरु शिवके तेजसे सम्पन्न अपने हाथको शिष्यके मस्तकपर रखे और शिवमन्त्रका उच्चारण करे। उसी हाथसे वह शिष्यके सम्पूर्ण अंगोंका स्पर्श करे। शिष्य भी आचार्यरूपमें उपस्थित हुए ईश्वरको पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग प्रणाम करे॥ ३८-३९॥

तदनन्तर जब शिष्य शिवाग्निमें महादेवजीकी विधिवत् पूजा करके तीन आहुति दे ले, तब गुरु पुन: पूर्ववत् शिष्यको अपने पास बिठा ले। कुशोंके अग्रभागसे उसका स्पर्श करते हुए विद्या या मन्त्रद्वारा अपने-आपको उसके भीतर आविष्ट करे॥ ४०१/२॥

तत्पश्चात् महादेवजीको प्रणाम करके नाड़ी-संधान करे। फिर शिव-शास्त्रमें बताये हुए मार्गसे प्राणका निष्क्रमण करके शिष्यके शरीरमें प्रवेशकी भावना करे, साथ ही मन्त्रोंका तर्पण भी करे॥ ४१-४२॥

मूलमन्त्रके तर्पणके लिये उसीके उच्चारणपूर्वक दस आहुतियाँ देनी चाहिये। फिर अंगोंके तर्पणके लिये अंग-मन्त्रोंद्वारा ही क्रमश: तीन आहुतियाँ दे। इसके बाद पूर्णाहुति देकर मन्त्रवेत्ता गुरु प्रायश्चित्तके निमित्त मूलमन्त्रसे पुन: दस आहुतियाँ अग्निमें डाले॥ ४३-४४॥

फिर देवेश्वर शिवका पूजन करके सम्यक् आचमन और हवन करनेके पश्चात् यथोचित रीतिसे जातित: वैश्यका उद्धार करे। भावनाद्वारा उसके वैश्यत्वको निकालकर उसमें क्षत्रियत्वकी उत्पत्ति करे। फिर इसी तरह क्षत्रियत्वका भी उद्धार करके गुरु उसमें ब्राह्मणत्वकी उद्भावना करे॥ ४५-४६॥

इसी प्रणालीसे जातित: क्षत्रियका भी उद्धार करके ब्राह्मण बनाये। फिर उन दोनों शिष्योंमें रुद्रत्वकी उत्पत्ति करे। जो जातिसे ही ब्राह्मण है, उस शिष्यमें केवल

रुद्रत्वकी ही स्थापना करे। फिर शिष्यका प्रोक्षण और ताड़न करके आगकी चिनगारियोंके समान प्रकाशमान शिवस्वरूप उसकी आत्माको अपने आत्मामें स्थित होनेकी भावना करे॥ ४७-४८॥

तदनन्तर पूर्वोक्त नाड़ीसे गुरु मन्त्रोच्चारणपूर्वक वायुका रेचन (निःसारण) करे। वायुका निःसारण करके उस नाड़ीके द्वारा ही शिष्यके हृदयमें वह स्वयं प्रवेश करे। प्रवेश करके उसके चैतन्यका नील बिन्दुके समान चिन्तन करे। साथ ही यह भावना करे कि मेरे तेजसे इसका सारा मल नष्ट हो गया और यह पूर्णतः प्रकाशित हो रहा है॥ ४९-५०॥

इसके बाद उस जीव-चैतन्यको लेकर नाड़ीसे संहारमुद्रा एवं पूरक प्राणायामद्वारा अपने आत्मासे एकीभूत करनेके लिये उसमें निविष्ट करे। फिर रेचककी ही भाँति कुम्भकद्वारा उसी नाड़ीसे उस जीव-चैतन्यको वहाँसे लेकर शिष्यके हृदयमें स्थापित कर दे॥ ५१-५२॥

तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके शिवसे उपलब्ध हुए यज्ञोपवीतको उसे देकर गुरु तीन बार आहुति दे पूर्णाहुति होम करे॥ ५३॥

इसके बाद आराध्यदेवके दक्षिणभागमें शिष्यको कुश तथा फूलसे आच्छादित करके श्रेष्ठ आसनपर बिठाकर उसका मुँह उत्तरकी ओर करके उसे स्वस्तिकासनमें स्थित करे। शिष्य गुरुकी ओर हाथ जोड़े रहे। गुरु स्वयं पूर्वाभिमुख हो एक श्रेष्ठ आसनपर खड़ा रहे और पहलेसे ही स्थापनपूर्वक सिद्ध किये हुए पूर्ण घटको लेकर शिवका ध्यान करते हुए मन्त्रपाठ तथा मांगलिक वाद्योंकी ध्वनिके साथ शिष्यका अभिषेक करे॥ ५४—५६॥

तदनन्तर शिष्य उस अभिषेकके जलको पोंछकर श्वेत वस्त्र धारण करे, आचमन करके अलंकृत हो हाथ जोड़ मण्डपमें जाय। तब गुरु पहलेकी भाँति उसे कुशासनपर बिठाकर मण्डलमें महादेवजीकी पूजा करके करन्यास करे। इसके बाद मन-ही-मन महादेवजीका ध्यान करते हुए दोनों हाथोंमें भस्म ले शिष्यके अंगोंमें लगाये और शिव-मन्त्रका उच्चारण करे॥ ५७—५९॥

तदनन्तर शिवाचार्य मातृकान्यासके मार्गसे शिष्यका दहन-प्लावनादि सकलीकरण करके उसके मस्तक-पर शिवके आसनका ध्यान करे और वहाँ शिवका आवाहन करके यथोचित रीतिसे उनकी मानसिक पूजा करे॥ ६०-६१॥

तत्पश्चात् हाथ जोड़ महादेवजीकी प्रार्थना करे—'प्रभो! आप नित्य यहाँ विराजमान हों।' इस तरह प्रार्थना करके मन-ही-मन यह भावना करे कि शिष्य भगवान् शंकरके तेजसे प्रकाशित हो रहा है। इसके बाद पुनः शिवकी पूजा करके शिवारूपिणी शैवी आज्ञा प्राप्त करके गुरु शिष्यके कानमें धीरे-धीरे शिवमन्त्रका उच्चारण करे॥ ६२-६३॥

शिष्य हाथ जोड़े हुए उस मन्त्रको सुनकर उसीमें मन लगा शिवाचार्यकी आज्ञाके अनुसार धीरे-धीरे उसकी आवृत्ति करे। फिर मन्त्र-ज्ञानकुशल आचार्य शाक्त-मन्त्रका उपदेश दे, उसका सुखपूर्वक उच्चारण करवाकर शिष्यके प्रति मंगलाशंसा करे॥ ६४-६५॥

तत्पश्चात् संक्षेपसे वाच्य-वाचक योगके अनुसार ईश्वररूप मन्त्रका उपदेश देकर योगासनकी शिक्षा दे॥ ६६॥

तदनन्तर शिष्य गुरुकी आज्ञासे शिव, अग्नि तथा गुरुके समीप भक्तिभावसे प्रतिज्ञापूर्वक निम्नांकितरूपसे दीक्षावाक्यका उच्चारण करे—

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा।
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीय भगवन्तं त्रिलोचनम्॥

'मेरे लिये प्राणोंका परित्याग कर देना अच्छा होगा अथवा सिर कटा देना भी अच्छा होगा; किंतु मैं भगवान् त्रिलोचनकी पूजा किये बिना कभी भोजन नहीं कर सकता।'॥ ६७-६८॥

जबतक मोह दूर न हो, तबतक वह भगवान् शिवमें ही निष्ठा रखकर उन्हींके आश्रित हो नियमपूर्वक उन्हींकी आराधना करता रहे। फिर भगवान् शिव ही उसे योगक्षेम प्रदान करते हैं। ऐसा करनेसे उस शिष्यका नाम 'समय' होगा। उसे शिवाश्रममें रहनेका अधिकार प्राप्त होगा। वहाँ रहनेवाले शिष्यको गुरुकी आज्ञाका पालन करते हुए सदा उनके वशमें रहना चाहिये॥ ६९-७०॥

इसके बाद गुरु करन्यास करके अपने हाथसे भस्म

लेकर मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस भस्म तथा रुद्राक्षको अभिमन्त्रित करके शिष्यके हाथमें दे दे। साथ ही महादेवजीकी प्रतिमा अथवा उनका गूढ़ शरीर (लिंग) और यथासम्भव पूजा, होम, जप एवं ध्यानके साधन भी दे॥ ७१-७२॥

फिर वह शिष्य भी शिवाचार्यसे प्राप्त हुई उन वस्तुओंको उन्हींकी आज्ञासे बड़े आदरके साथ ग्रहण करे। उनकी आज्ञाका उल्लंघन न करे, आचार्यसे प्राप्त हुई सारी वस्तुओंको भक्तिभावसे सिरपर रखकर ले जाय और उनकी रक्षा करे। अपनी रुचिके अनुसार मठमें या घरमें शंकरजीकी पूजा करता रहे॥ ७३-७४॥

इसके बाद गुरु भक्ति, श्रद्धा और बुद्धिके अनुसार शिष्यको शिवाचारकी शिक्षा दे। शिवाचार्यने समयाचारके विषयमें जो कुछ कहा हो, जो आज्ञा दी हो तथा और भी जो कुछ बातें बतायी हों, उन सबको शिष्य शिरोधार्य करे॥ ७५-७६॥

गुरुके आदेशसे ही वह शिवागमका ग्रहण, पठन और श्रवण करे। न तो अपनी इच्छासे करे और न दूसरेकी प्रेरणासे ही। इस प्रकार मैंने संक्षेपसे समयाख्य-संस्कार—समयाचारकी दीक्षाका वर्णन किया है। यह मनुष्योंको साक्षात् शिवधामकी प्राप्ति करानेके लिये सबसे उत्तम साधन है॥ ७७-७८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिष्य-संस्कारवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

षडध्वशोधनका निरूपण

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! इसके बाद गुरु शिष्यकी योग्यताको देखकर उसके सम्पूर्ण बन्धनोंकी निवृत्तिके लिये षडध्वशोधन करे॥ १॥

कला, तत्त्व, भुवन, वर्ण, पद और मन्त्र—ये ही संक्षेपसे छः अध्वा कहे गये हैं॥ २॥

निवृत्ति* आदि जो पाँच कलाएँ हैं, उन्हें विद्वान् पुरुष कलाध्वा कहते हैं। अन्य पाँच अध्वा इन पाँचों कलाओंसे व्याप्त हैं॥ ३॥

शिवतत्त्वसे लेकर भूमिपर्यन्त जो छब्बीस तत्त्व हैं, उनको 'तत्त्वाध्वा' कहा गया है। यह अध्वा शुद्ध और अशुद्धके भेदसे दो प्रकारका है॥ ४॥

आधारसे लेकर उन्मनातक 'भुवनाध्वा' कहा गया है। यह भेद और उपभेदोंको छोड़कर साठ है॥ ५॥

रुद्रस्वरूप जो पचास वर्ण हैं, उन्हें 'वर्णाध्वा' की संज्ञा दी गयी है। पदोंको 'पदाध्वा' कहा गया है, जिसके अनेक भेद हैं॥ ६॥

सब प्रकारके उपमन्त्रोंसे 'मन्त्राध्वा' होता है, जो परम विद्यासे व्याप्त है। जैसे तत्त्वनायक शिवकी तत्त्वोंमें गणना नहीं होती, उसी प्रकार उस मन्त्रनायक महेश्वरकी मन्त्राध्वामें गणना नहीं होती। कलाध्वा व्यापक है और अन्य अध्वा व्याप्य हैं॥ ७-८॥

जो इस बातको ठीक-ठीक नहीं जानता है, वह अध्वशोधनका अधिकारी नहीं है। जिसने छः प्रकारके अध्वाका रूप नहीं जाना, वह उनके व्याप्य-व्यापक भावको समझ ही नहीं सकता है। इसलिये अध्वाओंके स्वरूप तथा उनके व्याप्य-व्यापक भावको ठीक-ठीक जानकर ही अध्व-शोधन करना चाहिये॥ ९—१०$^1/_2$॥

पूर्ववत् कुण्ड और मण्डल-निर्माणका कार्य वहाँ करके पूर्वदिशामें दो हाथ लम्बा-चौड़ा कलशमण्डल बनावे। तत्पश्चात् शिवाचार्य शिष्यसहित स्नान और नित्यकर्म करके मण्डलमें प्रविष्ट हो पहलेकी ही भाँति शिवजीकी पूजा करे॥ ११—१२$^1/_2$॥

फिर वहाँ लगभग चार सेर चावलसे तैयार की गयी खीरमेंसे आधा प्रभुको नैवेद्य लगा दे और शेष खीरको होमके लिये रख दे। पूर्वदिशाकी ओर बने हुए अनेक रंगोंसे अलंकृत मण्डलमें गुरु पाँच कलशोंकी स्थापना

* निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता—ये पाँच कलाएँ हैं।

करे। चारको तो चारों दिशाओंमें रखे और एकको मध्यभागमें॥ १३—१४१/२ ॥

उन कलशोंपर मूलमन्त्रके **'नमः शिवाय'** इन पाँचों अक्षरोंको विन्दु और नादसे युक्त करके उनके द्वारा कल्पविधिका ज्ञाता गुरु ईशान आदि ब्रह्मोंकी स्थापना करे॥ १५१/२ ॥

मध्यवर्ती कलशपर **'ॐ नं ईशानाय नमः, ईशानं स्थापयामि'** कहकर ईशानकी स्थापना करे। पूर्ववर्ती कलशपर **'ॐ मं तत्पुरुषाय नमः, तत्पुरुषं स्थापयामि'** कहकर तत्पुरुषकी, दक्षिण कलशपर **'ॐ शिं अघोराय नमः, अघोरं स्थापयामि'** कहकर अघोरकी, वाम या उत्तरभागमें रखे हुए कलशपर **'ॐ वां वामदेवाय नमः, वामदेवं स्थापयामि'** कहकर वामदेवकी तथा पश्चिमके कलशपर **'ॐ यं सद्योजाताय नमः, सद्योजातं स्थापयामि'** कहकर सद्योजातकी स्थापना करे। तदनन्तर रक्षाविधान करके मुद्रा बाँधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करे। इसके बाद पूर्ववत् शिवाग्निमें होम आरम्भ करे॥ १६—१७१/२ ॥

पहले होमके लिये जो आधी खीर रखी गयी थी, उसका हवन करके शेषभाग शिष्यको खानेके लिये दे। पहलेकी भाँति मन्त्रोंका तर्पणान्त कर्म करके पूर्णाहुति होम करनेके पश्चात् प्रदीपन कर्म करे। प्रदीपन कर्ममें **'ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा'** का उच्चारण करके क्रमशः हृदय आदि अंगोंको तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। अंगोंमें हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र— इन छःकी गणना है॥ १८—२१ ॥

इनमेंसे एक-एक अंगको तीन-तीन बार मन्त्र पढ़कर तीन-तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। इन सबके स्वरूपका तेजस्वीरूपमें चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणकी कुमारी कन्याके द्वारा काते हुए सफेद सूतको एक बार त्रिगुण करके पुनः त्रिगुण करे। फिर उस सूत्रको अभिमन्त्रित करके उसका एक छोर शिष्यकी शिखाके अग्रभागमें बाँध दे॥ २२१/२ ॥

शिष्य सिर ऊँचा करके खड़ा हो जाय, उस अवस्थामें वह सूत उसके पैरके अँगूठेतक लटकता रहे। सूतको इस तरह लटकाकर उसमें सुषुम्णा नाड़ीकी संयोजना करे। फिर मन्त्रज्ञ गुरु शान्त मुद्राके साथ मूलमन्त्रसे तीन आहुतिका होम करके उस नाड़ीको लेकर उस सूत्रमें स्थापित करे। फिर पूर्ववत् फूल फेंककर शिष्यके हृदयमें ताड़न करे और उससे चैतन्यको लेकर बारह आहुतियोंके पश्चात् शिवको निवेदितकर उस लटकते हुए सूत्रको एक सूतसे जोड़े और **'हुं फट्'** मन्त्रसे रक्षा करके उस सूतको शिष्यके शरीरमें लपेट दे। फिर यह भावना करे कि शिष्यका शरीर मूलत्रयमय पाश है, भोग और भोग्यत्व ही इसका लक्षण है, यह विषय, इन्द्रिय और देह आदिका जनक है॥ २३—२७१/२ ॥

तदनन्तर शान्त्यतीता आदि पाँच कलाओंको, जो आकाशादि तत्त्वरूपिणी हैं, उस सूत्रमें उनके नाम ले-लेकर जोड़ना चाहिये। यथा—

'व्योमरूपिणीं शान्त्यतीतकलां योजयामि, वायुरूपिणीं शान्तिकलां योजयामि, तेजोरूपिणीं विद्याकलां योजयामि, जलरूपिणीं प्रतिष्ठाकलां योजयामि, पृथ्वीरूपिणीं निवृत्तिकलां योजयामि।' इति।

इस तरह इन कलाओंका योजन करके उनके नामके अन्तमें **'नमः'** जोड़कर इनकी पूजा करे। यथा— **'शान्त्यतीतकलायै नमः, शान्तिकलायै नमः।'** इत्यादि। अथवा आकाशादिके बीजभूत **(हं यं रं वं लं)** मन्त्रोंद्वारा या पंचाक्षरके पाँच अक्षरोंमें नाद-विन्दुका योग करके बीजरूप हुए उन मन्त्राक्षरोंद्वारा क्रमशः पूर्वोक्त कार्य करके तत्त्व आदिमें मलादि पाशोंकी व्याप्तिका चिन्तन करे। इसी तरह मलादि पाशोंमें भी कलाओंकी व्याप्ति देखे। फिर आहुति करके उन कलाओंको संदीपित करे॥ २८—३० ॥

तदनन्तर शिष्यके मस्तकपर [पुष्पसे] ताड़न करके उसके शरीरमें लिपटे हुए सूत्रको मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक शान्त्यतीत पदमें अंकित करे॥ ३१ ॥

इस प्रकार क्रमशः शान्त्यतीतसे आरम्भ करके निवृत्तिकलापर्यन्त पूर्वोक्त कार्य करके तीन आहुतियाँ देकर मण्डलमें पुनः शिवका पूजन करे॥ ३२ ॥

इसके बाद देवताके दक्षिणभागमें शिष्यको कुशयुक्त आसनपर मण्डलमें उत्तराभिमुख बिठाकर गुरु होमावशिष्ट चरु उसे दे॥ ३३॥

गुरुके दिये हुए उस चरुको शिष्य आदरपूर्वक ग्रहण करके शिवका नाम ले उसे खा जाय। फिर दो बार आचमन करके शिवमन्त्रका उच्चारण करे॥ ३४॥

इसके बाद गुरु दूसरे मण्डलमें शिष्यको पंचगव्य दे। शिष्य भी अपनी शक्तिके अनुसार उसे पीकर दो बार आचमन करके शिवका स्मरण करे॥ ३५॥

इसके बाद गुरु शिष्यको मण्डलमें पूर्ववत् बिठाकर उसे शास्त्रोक्त लक्षणसे युक्त दन्तधावन दे। शिष्य पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन हो उस दातौनके कोमल अग्रभागद्वारा अपने दाँतोंकी शुद्धि करे॥ ३६-३७॥

फिर उस दातौनको धोकर फेंक दे और [कुल्ला करके मुँह-हाथ धोकर] आचमन करे तथा शिवका स्मरण करे। फिर गुरुकी आज्ञा पाकर शिष्य हाथ जोड़े हुए शिवमण्डलमें प्रवेश करे॥ ३८॥

उस फेंके हुए दातौनको यदि गुरुने पूर्व, उत्तर या पश्चिम दिशामें अपने सामने देख लिया तब तो मंगल है; अन्यथा अन्य दिशाओंमें देखनेपर अमंगल होता है॥ ३९॥

यदि निन्दित दिशाकी ओर वह दीख जाय तो उसके दोषकी शान्तिके लिये गुरु मूलमन्त्रसे एक सौ आठ या चौवन आहुतियोंका होम करे॥ ४०॥

तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके उसके कानमें 'शिव' नामका जप करके महादेवजीके दक्षिणभागमें शिष्यको बिठाये॥ ४१॥

वहाँ नूतन वस्त्रपर बिछे हुए कुशके अभिमन्त्रित आसनपर पवित्र हुआ शिष्य मन-ही-मन शिवका ध्यान करते हुए पूर्वकी ओर सिरहाना करके रातमें सोये॥ ४२॥

शिखामें सूत बँधे हुए उस शिष्यकी शिखाको शिखासे ही बाँधकर गुरु नूतन वस्त्रद्वारा हुंकार-उच्चारण करके उसे ढक दे॥ ४३॥

फिर शिष्यके चारों ओर भस्म, तिल और सरसोंसे तीन रेखा खींचकर फट्-मन्त्रका जप करके रेखाके बाह्यभागमें दिक्पालोंके लिये बलि दे। शिष्य भी उपवासपूर्वक वहाँ रातमें सोया रहे और सबेरा होनेपर उठकर अपने देखे हुए स्वप्नकी बातें गुरुको बताये॥ ४४-४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवदीक्षा-विधानवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

षडध्वशोधनकी विधि

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! तदनन्तर गुरुकी आज्ञा ले शिष्य स्नान आदि सम्पूर्ण कर्मको समाप्त करके शिवका चिन्तन करता हुआ हाथ जोड़ शिवमण्डलके समीप जाय॥ १॥

इसके बाद पूजाके सिवा पहले दिनका शेष सारा कृत्य नेत्रबन्धनपर्यन्त कर लेनेके अनन्तर गुरु उसे मण्डलका दर्शन कराये॥ २॥

आँखमें पट्टी बँधे रहनेपर शिष्य कुछ फूल बिखेरे। जहाँ भी फूल गिरें, वहीं उसको उपदेश दे। फिर पूर्ववत् उसे निर्माल्य मण्डलमें ले जाकर ईशानदेवकी पूजा कराये और शिवाग्निमें हवन करे॥ ३-४॥

यदि शिष्यने दु:स्वप्न देखा हो तो उसके दोषकी शान्तिके लिये सौ या पचास बार मूलमन्त्रसे अग्निमें आहुति दे। तदनन्तर शिखामें बँधे हुए सूतको पूर्ववत् लटकाकर आधार-शक्तिकी पूजासे लेकर निवृत्तिकला-सम्बन्धी वागीश्वरीपूजनपर्यन्त सब कार्य होमपूर्वक करे॥ ५—६१/२॥

इसके बाद निवृत्तिकलामें व्यापक सती वागीश्वरीको प्रणाम करके मण्डलमें महादेवजीके पूजनपूर्वक तीन आहुतियाँ दे। शिष्यको एक ही समय सम्पूर्ण योनियोंमें

प्राप्त करानेकी भावना करे॥ ७-८॥

फिर शिष्यके सूत्रमय शरीरमें ताड़न-प्रोक्षण आदि करके उसके आत्मचैतन्यको लेकर द्वादशान्तमें निवेदन करे। फिर वहाँसे भी उसे लेकर आचार्य मूलमन्त्रसे शास्त्रोक्त मुद्राद्वारा मानसिक भावनासे एक ही साथ सम्पूर्ण योनियोंमें संयुक्त करे॥ ९-१०॥

देवताओंकी आठ जातियाँ हैं, तिर्यक्-योनियों (पशु-पक्षियों)-की पाँच और मनुष्योंकी एक जाति। इस प्रकार कुल चौदह योनियाँ हैं। उन सबमें शिष्यको एक साथ प्रवेश करानेके लिये गुरु मन-ही-मन भावनाद्वारा शिष्यकी आत्माको यथोचित रीतिसे वागीश्वरीके गर्भमें निविष्ट करे॥ ११-१२॥

वागीश्वरीमें गर्भकी सिद्धिके लिये महादेवजीका पूजन, प्रणाम और उनके निमित्त हवन करके यह चिन्तन करे कि यथावत्‌रूपसे वह गर्भ सिद्ध हो गया। सिद्ध हुए गर्भकी उत्पत्ति, कर्मानुवृत्ति, सरलता, भोगप्राप्ति और परा प्रीतिका चिन्तन करे॥ १३-१४॥

तत्पश्चात् उस जीवके उद्धार तथा जाति, आयु एवं भोगके संस्कारकी सिद्धिके लिये तीन आहुतिका हवन करके श्रेष्ठ गुरु महादेवजीसे प्रार्थना करे॥ १५॥

भोक्तृत्वविषयक आसक्ति (अथवा भोक्तृता और विषयासक्ति)-रूप मलके निवारणपूर्वक शिष्यके शरीरका शोधन करके उसके त्रिविध पाशका उच्छेद कर डाले। कपट या मायासे बँधे हुए शिष्यके पाशका अत्यन्त भेदन करके उसके चैतन्यको केवल स्वच्छ माने॥ १६-१७॥

फिर अग्निमें पूर्णाहुति देकर ब्रह्माका पूजन करे। ब्रह्माके लिये तीन आहुति देकर उन्हें शिवकी आज्ञा सुनाये—

पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पदम्।
प्रतिबन्धो विधातव्यः शैवाज्ञैषा गरीयसी॥

'पितामह! यह जीव शिवके परम-पदको जानेवाला है। तुम्हें इसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। यह भगवान् शिवकी गुरुतर आज्ञा है।'॥ १८-१९॥

ब्रह्माजीको शिवका यह आदेश सुनाकर उनकी विधिवत् पूजा और विसर्जन करके महादेवजीकी अर्चना करे और उनके लिये तीन आहुति दे। तत्पश्चात् निवृत्तिद्वारा शुद्ध हुए शिष्यके आत्माका पूर्ववत् उद्धार करके अपनी आत्मा एवं सूत्रमें स्थापितकर वागीश्वरीका पूजन करे॥ २०-२१॥

उनके लिये तीन आहुति दे और प्रणाम करके विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् निवृत्त पुरुष प्रतिष्ठाकलाके साथ सांनिध्य स्थापित करे॥ २२॥

उस समय एक बार पूजा करके तीन आहुति दे और शिष्यके आत्माके प्रतिष्ठाकलामें प्रवेशकी भावना करे। इसके बाद प्रतिष्ठाका आवाहन करके पूर्वोक्त सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् उसमें सर्वत्र व्यापक वागीश्वरीदेवीका ध्यान करे। उनकी कान्ति पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान है। ध्यानके पश्चात् शेष कार्य पूर्ववत् करे॥ २३—२४१/२॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुको परमात्मा शिवकी आज्ञा सुनाये। फिर उनका भी विसर्जन आदि शेष कृत्य पूर्ण करके प्रतिष्ठाका विद्यासे संयोग करे। उसमें भी पूर्ववत् सब कार्य करे॥ २५-२६॥

साथ ही उसमें व्याप्त वागीश्वरीदेवीका चिन्तन-पूजन तथा प्रज्वलित अग्निमें पूर्णहोमान्त सब कर्म क्रमशः सम्पन्न करके पूर्ववत् नीलरुद्रका आवाहन एवं पूजन आदि करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे उन्हें भी शिवकी आज्ञा सुना दे॥ २७-२८॥

तदनन्तर उनका भी विसर्जन करके शिष्यकी दोषशान्तिके लिये विद्याकलाको लेकर उसकी व्याप्तिका अवलोकन करे और उसमें व्यापिका वागीश्वरीदेवीका पूर्ववत् ध्यान करे। उनकी आकृति प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण रंगकी है और वे दसों दिशाओंको उद्भासित कर रही हैं॥ २९-३०॥

इस प्रकार ध्यान करके शेष कार्य पूर्ववत् करे। फिर महेश्वरदेवका आवाहन, पूजन और उनके उद्देश्यसे हवन करके उन्हें मन-ही-मन शिवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनाये। तत्पश्चात् महेश्वरका विसर्जन करके अन्य शान्तिकलाको शान्त्यतीताकलातक पहुँचाकर उसकी व्यापकताका अवलोकन करे॥ ३१-३२॥

उसके स्वरूपमें व्यापक वागीश्वरीदेवीका चिन्तन करे। उनका स्वरूप आकाशमण्डलके समान व्यापक है। इस प्रकार ध्यान करके पूर्णाहुति-होमपर्यन्त सारा कार्य पूर्ववत् करे। शेष कार्यकी पूर्ति करके सदाशिवकी विधिवत् पूजा करे और उन्हें भी अमित पराक्रमी शम्भुकी आज्ञा सुना दे। फिर वहाँ भी पूर्ववत् शिष्यके मस्तकपर शिवकी पूजा करके उन वागीश्वरदेवको प्रणाम करे और उनका विसर्जन कर दे॥ ३३—३५॥

तदनन्तर शिव-मन्त्रसे पूर्ववत् शिष्यके मस्तकका प्रोक्षण करके यह चिन्तन करे कि शान्त्यतीताकलाका शक्तितत्त्वमें विलय हो गया। छहों अध्वाओंसे परे जो शिवकी सर्वाध्वव्यापिनी पराशक्ति है, वह करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्विनी है, ऐसा उसके स्वरूपका ध्यान करे॥ ३६-३७॥

फिर उस शक्तिके आगे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल हुए शिष्यको ले आकर बिठा दे और आचार्य कैंचीको धोकर शिव-शास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार सूत्रसहित उसकी शिखाका छेदन करे। उस शिखाको पहले गोबरमें रखकर फिर '**ॐ नमः शिवाय वौषट्**' का उच्चारण करके उसका शिवाग्निमें हवन कर दे। फिर कैंची और दोनों हाथ धोकर शिष्यकी चेतनाको उसके शरीरमें लौटा दे॥ ३८—४०॥

इसके बाद जब शिष्य स्नान, आचमन और स्वस्तिवाचन कर ले, तब उसे मण्डलके निकट ले जाय और शिवको दण्डवत् प्रणाम करके क्रियालोपजनित दोषकी शुद्धिके लिये यथोचित रीतिसे पूजा करे। तदनन्तर वाचक मन्त्रका धीरे-धीरे उच्चारण करके अग्निमें तीन आहुतियाँ दे॥ ४१-४२॥

तदुपरान्त उपांशुरीतिसे भी मन्त्र पढ़कर तीन आहुतियाँ प्रदान करे। फिर मन्त्र-वैकल्यजनित दोषकी शुद्धिके लिये देवेश्वर शिवका पूजन करके मन्त्रका मानसिक उच्चारण करते हुए अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। वहाँ मण्डलमें विराजमान अम्बा पार्वतीसहित शम्भुकी समाराधना करके तीन आहुतियोंका हवन करनेके पश्चात् गुरु हाथ जोड़ इस प्रकार प्रार्थना करे—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन शुद्धिरस्य षडध्वनः।
कृता तस्मात्परं धाम गमयैनं तवाव्ययम्॥

'भगवन्! आपकी कृपासे इस शिष्यकी षडध्वशुद्धि की गयी; अतः अब आप इसे अपने अविनाशी परमधाममें पहुँचाइये।'॥ ४३—४५॥

इस तरह भगवान्‌से प्रार्थनाकर नाड़ी- संधानपूर्वक पूर्ववत् पूर्णाहुति-होमपर्यन्त कर्मका सम्पादन करके भूतशुद्धि करे। स्थिर-तत्त्व (पृथ्वी), अस्थिर-तत्त्व (वायु), शीत-तत्त्व (जल), उष्ण-तत्त्व (अग्नि) तथा व्यापकता एवं एकतारूप आकाश-तत्त्वका भूतशुद्धि कर्ममें चिन्तन करे॥ ४६-४७॥

यह चिन्तन उन भूतोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे ही करना चाहिये। भूतोंकी ग्रन्थियोंका छेदन करके उनके अधिपतियों या अधिष्ठाता देवताओं-सहित उनके त्यागपूर्वक स्थितियोगके द्वारा उन्हें परम शिवमें नियोजित करे॥ ४८॥

इस प्रकार शिष्यके शरीरका शोधन करके भावनाद्वारा उसे दग्ध करे। फिर उसकी राखको भावनाद्वारा ही अमृतकणोंसे आप्लावित करे। तदनन्तर उसमें आत्माकी स्थापना करके उसके विशुद्ध अध्वमय शरीरका निर्माण करे॥ ४९॥

उसमें पहले सम्पूर्ण अध्वोंमें व्यापक शुद्ध शान्त्यतीता-कलाका शिष्यके मस्तकपर न्यास करे। फिर शान्तिकलाका मुखमें, विद्याकलाका गलेसे लेकर नाभिपर्यन्त-भागमें, प्रतिष्ठा-कलाका उससे नीचेके जानुपर्यन्त अंगोंमें न्यास करके उससे भी नीचेके अंगोंमें निवृत्तिकलाका न्यासकर चिन्तन करे॥ ५०-५१॥

तदनन्तर अपने बीजोंसहित सूत्रमन्त्रका न्यास करके सम्पूर्ण अंगोंसहित शिष्यको शिवस्वरूप समझे। फिर उसके हृदयकमलमें महादेवजीका आवाहन करके पूजन करे॥ ५२॥

गुरुको चाहिये कि शिष्यमें भगवान् शिवके स्वरूपकी नित्य उपस्थिति मानकर शिवके तेजसे तेजस्वी हुए उस शिष्यके अणिमा आदि गुणोंका भी चिन्तन करे। फिर भगवान् शिवसे 'आप प्रसन्न हों' ऐसा कहकर अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। इसी प्रकार पुनः शिष्यके लिये निम्नांकित

गुणोंका ही उपपादन करे। सर्वज्ञता, तृप्ति, आदि-अन्तरहित बोध, अलुप्तशक्तिमत्ता, स्वतन्त्रता और अनन्त-शक्ति—इन गुणोंकी उसमें भावना करे॥ ५३—५५॥

इसके बाद महादेवजीसे आज्ञा लेकर उन देवेश्वरका मन-ही-मन चिन्तन करते हुए सद्योजात आदि कलशोंद्वारा क्रमशः शिष्यका अभिषेक करे॥ ५६॥

तदनन्तर शिष्यको अपने पास बिठाकर पूर्ववत् शिवकी अर्चना करके उनकी आज्ञा ले। उस शिष्यको शैवी विद्याका उपदेश करे॥ ५७॥

उस शैवी विद्याके आदिमें ओंकार हो। वह उस ओंकारसे ही सम्पुटित हो और उसके अन्तमें **नमः** लगा हुआ हो। वह विद्या शिव और शक्ति दोनोंसे संयुक्त हो। यथा **ॐ ॐ नमः शिवाय ॐ नमः**। इसी तरह शक्ति विद्याका भी उपदेश करे। यथा—**ॐ ॐ नमः शिवायै ॐ नमः**। इन विद्याओंके साथ ऋषि, छन्द, देवता, शिवा और शिवकी शिवरूपता, आवरण-पूजा तथा शिवसम्बन्धी आसनोंका भी उपदेश दे॥ ५८-५९॥

तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका पुनः पूजन करके कहे—'भगवन्! मैंने जो कुछ किया है, वह सब आप सुकृतरूप कर दें।' इस तरह भगवान् शिवसे निवेदन करना चाहिये॥ ६०॥

तदनन्तर शिष्यसहित गुरु पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर महादेवजीको प्रणाम करे। प्रणामके अनन्तर उस मण्डलसे और अग्निसे भी उनका विसर्जन कर दे॥ ६१॥

इसके बाद समस्त पूजनीय सदस्योंका क्रमशः पूजन करना चाहिये। सदस्यों और ऋत्विजोंकी अपने वैभवके अनुसार सेवा करनी चाहिये। साधक यदि अपना कल्याण चाहे तो धन खर्च करनेमें कंजूसी न करे॥ ६२-६३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें षडध्व-शुद्धि आदिका कथन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—[यदुनन्दन!] अब मैं साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन करूँगा। इस बातकी सूचना मैं पहले दे चुका हूँ॥ १॥

पूर्ववत् मण्डलमें कलशपर स्थापित महादेवजीकी पूजा करनेके पश्चात् हवन करे। फिर नंगे सिर शिष्यको उस मण्डलके पास भूमिपर बिठावे॥ २॥

पूर्णाहुति-होमपर्यन्त सब कार्य पूर्ववत् करके मूल-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। श्रेष्ठ गुरु कलशोंसे मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक तर्पण करके संदीपन कर्म करे। फिर क्रमशः पूर्वोक्त कर्मोंका सम्पादन करके अभिषेक करे। तत्पश्चात् गुरु शिष्यको उत्तम मन्त्र दे॥ ३-४॥

वहाँ विद्योपदेशान्त सब कार्य विस्तारपूर्वक सम्पादित करके पुष्पयुक्त जलसे शिष्यके हाथपर शैवी विद्याको समर्पित करे और इस प्रकार कहे—

तवैहिकामुष्मिकयोः सर्वसिद्धिफलप्रदः।
भवत्वेष महामन्त्रः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥

'सौम्य! यह महामन्त्र परमेश्वर शिवके कृपा-प्रसादसे तुम्हारे लिये ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सम्पूर्ण सिद्धियोंके फलको देनेवाला हो।'॥ ५-६॥

ऐसा कह महादेवजीकी पूजा करके उनकी आज्ञा ले गुरु साधकको साधन और शिवयोगका उपदेश दे। गुरुके उस उपदेशको सुनकर मन्त्रसाधक शिष्य उनके सामने ही विनियोग करके मन्त्र-साधन आरम्भ करे॥ ७-८॥

मूलमन्त्रके साधनको पुरश्चरण कहते हैं; क्योंकि विनियोग नामक कर्म सबसे पहले आचरणमें लानेयोग्य है। यही पुरश्चरण शब्दकी व्युत्पत्ति है। मुमुक्षुके लिये मन्त्र-साधन अत्यन्त कर्तव्य है; क्योंकि किया हुआ मन्त्रसाधन इहलोक और परलोकमें साधकके लिये कल्याणदायक होता है॥ ९-१०॥

शुभ दिन और शुभ देशमें निर्दोष समयमें दाँत और नख साफ करके अच्छी तरह स्नान करे और पूर्वाह्नकालिक कृत्य पूर्ण करके यथाप्राप्त गन्ध, पुष्पमाला तथा आभूषणोंसे

अलंकृत हो, सिरपर पगड़ी रख, दुपट्टा ओढ़ पूर्णत: श्वेत वस्त्र धारणकर देवालयमें, घरमें या और किसी पवित्र तथा मनोहर देशमें पहलेसे अभ्यासमें लाये गये सुखासनसे बैठकर शिवशास्त्रोक्त पद्धतिके अनुसार अपने शरीरको शिवरूप बनाये॥ ११—१३१/२ ॥

फिर देवदेवेश्वर नकुलीश्वर शिवका पूजन करके उन्हें खीरका नैवेद्य अर्पित करे। क्रमशः उनकी पूजा पूरी करके उन प्रभुको प्रणाम करे और उनके मुखसे आज्ञा पाकर एक करोड़, आधा करोड़ अथवा चौथाई करोड़ शिवमन्त्रका जप करे अथवा बीस लाख या दस लाख जप करे॥ १४—१६ ॥

उसके बादसे सदा पायस एवं क्षार-नमक-रहित अन्य पदार्थका दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करे। अहिंसा, क्षमा, शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रियसंयम)-का पालन करता रहे। खीर न मिले तो फल, मूल आदिका भोजन करे। भगवान् शिवने निम्नांकित भोज्य पदार्थोंका विधान किया है, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं॥ १७-१८ ॥

पहले तो चरु भक्षण करनेयोग्य है। उसके बाद सत्तूके कण, जौके आटेका हलुआ, साग, दूध, दही, घी, मूल, फल और जल—ये आहारके लिये विहित हैं॥ १९ ॥

इन भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंको मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके प्रतिदिन मौनभावसे भोजन करे। इस साधनमें विशेषरूपसे ऐसा करनेका विधान है॥ २० ॥

व्रतीको चाहिये कि एक सौ आठ मन्त्रसे अभिमन्त्रित किये हुए पवित्र जलसे स्नान करे अथवा नदी-नदके जलको यथाशक्ति मन्त्र-जपके द्वारा अभिमन्त्रित करके अपने शरीरका प्रोक्षण कर ले, प्रतिदिन तर्पण करे और शिवाग्निमें आहुति दे। हवनीय पदार्थ सात, पाँच या तीन द्रव्योंके मिश्रणसे तैयार करे अथवा केवल घृतसे ही आहुति दे॥ २१-२२ ॥

जो शिवभक्त साधक इस प्रकार भक्ति-भावसे शिवकी साधना या आराधना करता है, उसके लिये इहलोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ २३ ॥

अथवा प्रतिदिन बिना भोजन किये ही एकाग्रचित्त हो एक सहस्र मन्त्रका जप किया करे। मन्त्र-साधनाके बिना भी जो ऐसा करता है, उसके लिये न तो कुछ दुर्लभ है और न कहीं उसका अमंगल ही होता है। वह इस लोकमें विद्या, लक्ष्मी तथा सुख पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २४-२५ ॥

साधन, विनियोग तथा नित्य-नैमित्तिक कर्ममें क्रमशः जलसे, मन्त्रसे और भस्मसे भी स्नान करके पवित्र हो, शिखा बाँधकर यज्ञोपवीत धारणकर कुशकी पवित्री हाथमें ले ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाकर रुद्राक्षकी माला लिये पंचाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये॥ २६-२७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें साधक-संस्कार मन्त्र-माहात्म्य नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

योग्य शिष्यके आचार्यपदपर अभिषेकका वर्णन तथा संस्कारके विविध प्रकारोंका निर्देश

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! जिसका इस प्रकार संस्कार किया गया हो और जिसने पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान पूरा कर लिया हो, वह शिष्य यदि योग्य हो तो गुरु उसका आचार्यपदपर अभिषेक करे, योग्यता न होनेपर न करे॥ १ ॥

[इस अभिषेकके लिये] पूर्ववत् मण्डल बनाकर परमेश्वर शिवकी पूजा करे। फिर पूर्ववत् पाँच कलशोंकी स्थापना करे। इनमें चार तो चारों दिशाओंमें हों और पाँचवाँ मध्यमें हो॥ २ ॥

पूर्ववाले कलशपर निवृत्तिकलाका, पश्चिमवाले कलशपर प्रतिष्ठाकलाका, दक्षिण कलशपर विद्याकलाका, उत्तर कलशपर शान्तिकलाका और मध्यवर्ती कलशपर

शान्त्यतीताकलाका न्यास करके उनमें रक्षा आदिका विधान करके धेनुमुद्रा बाँधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करके पूर्ववत् पूर्णाहुतिपर्यन्त होम करे॥ ३-४॥

फिर नंगे सिर शिष्यको मण्डलमें ले आकर गुरु-मन्त्रोंका तर्पण आदि करे और पूर्णाहुति-पर्यन्त हवन एवं पूजन करके पूर्ववत् देवेश्वरकी आज्ञा ले शिष्यको अभिषेकके लिये ऊँचे आसनपर बिठाये॥ ५-६॥

पहले सकलीकरणकी क्रिया करके पंचकला-रूपी शिष्यके शरीरमें मन्त्रका न्यास करे। फिर उस शिष्यको बाँधकर शिवको सौंप दे। तदनन्तर निवृत्तिकला आदिसे युक्त कलशोंको क्रमशः उठाकर शिष्यका शिवमन्त्रसे अभिषेक करे। अन्तमें मध्यवर्ती कलशके जलसे अभिषेक करना चाहिये॥ ७-८॥

इसके बाद शिवभावको प्राप्त हुआ आचार्य शिष्यके मस्तकपर शिवहस्त* रखे और उसे शिवाचार्यकी संज्ञा दे। तदनन्तर उसको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके शिवमण्डलमें महादेवजीकी आराधना करके एक सौ आठ आहुति एवं पूर्णाहुति दे॥ ९-१०॥

फिर देवेश्वरकी पूजा एवं भूतलपर साष्टांग प्रणाम करके गुरु मस्तकपर हाथ जोड़ भगवान् शिवसे यह निवेदन करे—

भगवंस्त्वत्प्रसादेन देशिकोऽयं मया कृतः।
अनुगृह्य त्वया देव दिव्याज्ञास्मै प्रदीयताम्॥

'भगवन्! आपकी कृपासे मैंने इस योग्य शिष्यको आचार्य बना दिया है। देव! अब आप अनुग्रह करके इसे दिव्य आज्ञा प्रदान करें।'॥ ११-१२॥

इस प्रकार कहकर गुरु शिष्यके साथ पुनः शिवको प्रणाम करे और दिव्य शिवशास्त्रका शिवकी ही भाँति पूजन करे। इसके बाद शिवकी आज्ञा लेकर आचार्य अपने उस शिष्यको अपने दोनों हाथोंसे शिवसम्बन्धी ज्ञानकी पुस्तक दे॥ १३-१४॥

वह उस शिवागम विद्याको मस्तकपर रखकर फिर उसे विद्यासनपर रखे और यथोचित रीतिसे प्रणामकर उसकी पूजा करे। तदनन्तर गुरु उसे राजोचित चिह्न प्रदान करे; क्योंकि आचार्य-पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष राज्य पानेके भी योग्य है॥ १५-१६॥

तत्पश्चात् गुरु उसे पूर्वाचार्योंद्वारा आचरित तथा शिवशास्त्रोक्त आचारका अनुशासन करे, जिससे सब लोकोंमें सम्मान होता है। 'आचार्य' पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष शिवशास्त्रोक्त लक्षणोंके अनुसार यत्नपूर्वक शिष्योंकी परीक्षा करके उनका संस्कार करनेके अनन्तर उन्हें शिवज्ञानका उपदेश दे॥ १७-१८॥

इस प्रकार वह बिना किसी आयासके शौच, क्षमा, दया, अस्पृहा (कामना-त्याग) तथा अनसूया (ईर्ष्या-त्याग) आदि गुणोंका यत्नपूर्वक अपने भीतर संग्रह करे। इस तरह उस शिष्यको आदेश देकर मण्डलसे शिवका, शिव-कलशोंका तथा अग्नि आदिका विसर्जन करके वह सदस्योंका भी पूजन (दक्षिणा आदिसे सत्कार) करे॥ १९-२०॥

अथवा, अपने गणोंसहित गुरु एक साथ ही सब संस्कार करे। जहाँ दो या तीन संस्कारोंका प्रयोग करना हो, वहाँके लिये विधिका उपदेश किया जाता है—वहाँ आदिमें ही अध्वशुद्धि-प्रकरणमें कहे अनुसार कलशोंकी स्थापना करे। अभिषेकके सिवा समयाचार दीक्षाके सब कर्म करके शिवका पूजन और अध्वशोधन करे। अध्वशुद्धि हो जानेपर फिर महादेवजीकी पूजा करे॥ २१—२३॥

इसके बाद हवन और मन्त्र-तर्पण करके दीपन-कर्म करे तथा महेश्वरकी आज्ञा ले शिष्यके हाथमें मन्त्रसमर्पणपूर्वक शेष कार्य पूर्ण करे॥ २४॥

अथवा सम्पूर्ण मन्त्र-संस्कारका क्रमशः अनुचिन्तन करके गुरु अभिषेकपर्यन्त अध्वशुद्धिका कार्य सम्पन्न करे॥ २५॥

वहाँ शान्त्यतीता आदि कलाओंके लिये जिस विधिका अनुष्ठान किया गया है। वह सारा विधान तीन

* गुरु पहले अपने दाहिने हाथपर सुगन्ध-द्रव्यद्वारा मण्डलका निर्माण करे, तत्पश्चात् वह उसपर विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इस प्रकार वह 'शिवहस्त' हो जाता है। 'मैं स्वयं परम शिव हूँ' यह निश्चय करके श्रीगुरुदेव असंदिग्धचित्तसे शिष्यके सिरका स्पर्श करते हैं। उस 'शिवहस्त' के स्पर्शमात्रसे शिष्यका शिवत्व अभिव्यक्त हो जाता है।

तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये भी कर्तव्य है। शिव-तत्त्व, विद्या-तत्त्व और आत्म-तत्त्व—ये तीन तत्त्व कहे गये हैं। शक्तिमें पहले शिवका, फिर विद्याका और उसके बाद उसकी आत्माका आविर्भाव हुआ है॥ २६-२७॥

शिवसे 'शान्त्यतीताध्वा' व्याप्त है, उससे 'शान्तिकलाध्वा' उससे 'विद्या-कलाध्वा' विद्यासे परिशिष्ट 'प्रतिष्ठा-कलाध्वा' और उससे 'निवृत्ति-कलाध्वा' व्याप्त है। शिवशास्त्रके पारंगत मनीषी पुरुष मन्त्रमूलक शाम्भव (शैव)-संस्कारको दुर्लभ मानकर शाक्तसंस्कारका प्रतिपादन करते हैं। श्रीकृष्ण ! इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण यह चतुर्विध संस्कार-कर्मका वर्णन किया। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २८—३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें विशेषादिसंस्कृति नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

शिवशास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक कर्मका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—मैं शिवके आश्रमका सेवन करनेवालोंके शिवशास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक कर्मको सुनना चाहता हूँ॥ १॥

उपमन्यु बोले—प्रात:काल शयनसे उठकर पार्वतीसहित शिवका ध्यान करके अपने [दैनन्दिन] कर्तव्यका भलीभाँति चिन्तन करके अरुणोदयकालमें घरसे निकल जाय। बाधारहित एकान्त स्थानमें आवश्यक कार्य करनेके अनन्तर शौच करके विधिपूर्वक दन्तधावन करना चाहिये। दातौनके उपलब्ध न होनेपर तथा अष्टमी आदि (प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, एकादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा) दिनोंमें [दातौनका निषेध होनेके कारण] बारह बार जलसे कुल्ला करके मुख शुद्ध करना चाहिये॥ २—४॥

इसके बाद आचमन करके विधिवत् नदी अथवा देवखात (देवालयके समीप निर्मित कुण्ड आदि) अथवा सरोवर अथवा घरमें ही [प्रात:कालीन] स्नान करना चाहिये॥ ५॥

स्नान-द्रव्योंको तटपर रखकर उस [सरोवर आदि]-के बाहर [मर्दन आदिके द्वारा दैहिक] मलको दूर करके मिट्टीका लेप करके स्नान करे तथा अनन्तर गोमयका लेप करना चाहिये। इसके बाद पुन: स्नान करके वस्त्रका त्यागकर अथवा उसे धोकर पुन: स्नान करके राजाकी भाँति शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये॥ ६-७॥

ब्रह्मचारी, तपस्वी तथा विधवा स्त्रीको [देहमर्दन आदि क्रियाओंवाला] मलस्नान, सुगन्धित पदार्थोंसे स्नान तथा दातौन नहीं करना चाहिये। उपवीत धारण करके शिखाबन्धनकर जलमें प्रविष्ट होकर डुबकी लगाकर सम्यक् आचमन करके जलमें तीन मण्डल बनाने चाहिये॥ ८-९॥

पुन: जलमें डुबकी लगाये हुए अपनी शक्तिके अनुसार मन्त्र जपे और शिवका स्मरण करे। फिर बाहर निकलकर आचमन करके उसीसे अपना अभिषेक करे॥ १०॥

दर्भके साथ गायके सींगसे, पलाशके पत्तेसे, कमलदलसे अथवा दोनों हाथोंसे पाँच या तीन बार अभिषेक करे। उद्यान आदि तथा घरमें वर्धनी अथवा कलशसे स्नानके समय अभिमन्त्रित जलसे स्नान करना चाहिये॥ ११-१२॥

यदि जलस्नान करनेमें [व्यक्ति] असमर्थ हो, तो भींगे हुए शुद्ध वस्त्रसे पैरोंसे लेकर मस्तकतक शरीरको पोंछना चाहिये। भस्मस्नान अथवा मन्त्रस्नान शिवमन्त्रसे करना चाहिये। शिवचिन्तनसे युक्त होकर किया गया स्नान उस योगपरायण व्यक्तिका आत्मीय कहा जाता है॥ १३-१४॥

अपने सूत्रमें कथित विधानके अनुसार मन्त्राचमनपूर्वक देवता आदिका तर्पण करके ब्रह्मयज्ञपर्यन्त सभी कर्म करना चाहिये॥ १५॥

इसके बाद मण्डलमें विराजमान महादेवका ध्यान

तथा यथाविधि पूजन करके उन आदित्यस्वरूप शिवको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। अथवा अपने सूत्रमें कथित इस कर्मको करके दोनों हाथोंको धो लेना चाहिये। तत्पश्चात् करन्यास और शरीरका सकलीकरण करके बायें हाथमें लिये हुए गन्ध-सरसोंमिश्रित जलसे कुशपुंजके द्वारा मूलमन्त्रसहित **'आपो हि ष्ठा'** आदि मन्त्रोंसे प्रोक्षण करके शेष जलको सूँघकर बायें नासापुटसे श्वेतवर्णवाले महादेवकी भावना करनी चाहिये॥ १६—१९॥

पुनः अर्घ लेकर दाहिने नासापुटसे देहके बाहर स्थित कृष्णवर्णवाले महादेवकी भावना करनी चाहिये। इसके बाद विशेषकर देवताओं, ऋषियों, पितरों एवं भूतोंका तर्पण करना चाहिये तथा उन्हें विधिपूर्वक अर्घ्य प्रदान करना चाहिये॥ २०-२१॥

रक्तचन्दनमिश्रित जलसे एक हाथ प्रमाणका पूर्ण गोलाकार मण्डल भूमिपर बनाये, जो रक्तचूर्ण आदिसे अलंकृत हो। उसमें सुखप्राप्तिके लिये **'खखोल्काय'**—इस मन्त्रसे आवरणोंसहित सूर्यकी सांगोपांग पूजा करे॥ २२-२३॥

पुनः मण्डल बनाकर अंगपूजन करके मागधप्रस्थ प्रमाणवाला सुवर्णपात्र स्थापितकर उसे गन्ध तथा रक्तचन्दनयुक्त जलसे और रक्तपुष्प, तिल, कुश, अक्षत, दूर्वा, अपामार्ग तथा दुग्ध, गोमूत्रादि गव्य पदार्थोंसे अथवा केवल जलसे भर दे। तत्पश्चात् घुटनोंके बल पृथ्वीपर विनत होकर मण्डलमें महादेवको प्रणाम करके उस पात्रको सिरसे लगाकर शिवको वह अर्घ्य प्रदान करे; अथवा मूलविद्या (मन्त्र)-के द्वारा आकाशस्थित आदित्यरूप शिवको अंजलिसे दर्भयुक्त जल समर्पित करे॥ २४—२७½॥

तत्पश्चात् हस्तप्रक्षालन करके पुनः करन्यास करके ईशानसे लेकर सद्योजातपर्यन्त पंच ब्रह्ममय शिवका ध्यान करके भस्म लेकर यकारादि नकारान्त वर्णात्मक मन्त्रोंसे अर्थात् पंचाक्षरके वर्णोंका विलोम क्रमसे उच्चारण करते हुए उसे लगाकर अंगोंका स्पर्श करे॥ २८-२९॥

मूलमन्त्रसे सिर, मुख, हृदय, गुह्यदेश तथा चरण-क्रमसे सम्पूर्ण देहका स्पर्शकर पुनः दूसरा वस्त्र धारण करके दो बार आचमनकर ग्यारह मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलसे प्रोक्षण करके दूसरा वस्त्र ओढ़कर दो बार आचमन करके शिवका स्मरण करे॥ ३०-३१॥

इसके बाद मन्त्रसाधक पुनः करन्यास करके सुगन्धित जलयुक्त भस्मसे ललाटपर स्पष्ट त्रिपुण्ड्र लगाये, जो टेढ़ा-मेढ़ा न हो तथा आयताकार हो या गोल, चौकोर, विन्दुमात्र अथवा अर्धचन्द्राकार हो। भस्मसे जैसा त्रिपुण्ड्र ललाटपर लगाया गया हो, वैसा ही [त्रिपुण्ड्र] दोनों भुजाओंमें, सिरपर तथा स्तनोंके बीच लगाये। सभी अंगोंमें भस्मसे उद्धूलन भी त्रिपुण्ड्रकी समता नहीं कर सकता है, अतः उद्धूलनके बिना भी एक त्रिपुण्ड्र अवश्य ही लगाना चाहिये॥ ३२—३४½॥

सिरपर, कण्ठमें, कानमें तथा हाथमें रुद्राक्षोंको धारण करे। सुवर्णके समान वर्णवाले, अच्छिन्न, सुन्दर तथा दूसरोंके द्वारा धारण न किये गये रुद्राक्षको धारण करे। श्वेत, पीला, लाल तथा काला रुद्राक्ष क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्णोंके लिये विहित होता है। वैसा न मिलनेपर जो भी [रुद्राक्ष] प्राप्त हो जाय, उसे धारण करे, किंतु वह दोषयुक्त न हो। उसमें भी निम्न वर्णवालोंको उत्तमवर्णका तथा उत्तम वर्णवालोंको निम्नवर्णका रुद्राक्ष नहीं धारण करना चाहिये॥ ३५—३७॥

अपवित्र-अवस्थामें रुद्राक्ष धारण नहीं करना चाहिये, अपितु उचित अवसरोंमें ही धारण करना प्रशस्त है। इस प्रकार तीनों सन्ध्याकालोंमें अथवा दो सन्ध्याकालोंमें अथवा एक सन्ध्याके समय स्नान आदि [कृत्य] करके सामर्थ्यानुसार परमेश्वरकी पूजा करनी चाहिये। पूजास्थानमें आकर उत्तम आसन लगाकर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर शिव तथा पार्वतीका ध्यान करना चाहिये और श्वेतसे लेकर नकुलीशपर्यन्त शिवावतारोंको उनके शिष्योंसहित तथा [अपने] गुरुको प्रणाम करना चाहिये॥ ३८—४०॥

इसके बाद भगवान् शिवको पुनः नमस्कार करके उनके आठ नामोंका जप करना चाहिये; शिव, महेश्वर,

रुद्र, विष्णु, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञ तथा परमात्मा—इन आठ नामोंका अथवा एक ही 'शिव' नामका ग्यारहसे अधिक बार जप करके व्याधि आदिकी शान्तिके लिये जिह्वाके अग्रभागपर तेजकी राशि [शिव]-का ध्यान करके पैरोंको धोकर हस्तप्रक्षालन करके दोनों हाथोंको चन्दनलिप्त करके करन्यास करना चाहिये॥ ४१—४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें नित्यनैमित्तिक-कर्मवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

शिवशास्त्रोक्त न्यास आदि कर्मोंका वर्णन

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] स्थिति, उत्पत्ति तथा लयके क्रमसे न्यास तीन प्रकारका कहा गया है। स्थिति [नामक] न्यास गृहस्थोंके लिये और उत्पत्तिन्यास ब्रह्मचारियोंको विहित बताया गया है। यतियोंके लिये संहारन्यासकी विधि है और वही वानप्रस्थियोंके लिये भी विहित है। पतिविहीन कुटुम्बिनी स्त्रीके लिये भी स्थिति नामक न्यास विहित है। कन्याके लिये उत्पत्तिन्यास विहित है। अब न्यासका लक्षण बताऊँगा। अँगूठेसे कनिष्ठिकातक स्थितिन्यास कहा गया है। दाहिने अँगूठेसे आरम्भ करके बाँयें अँगूठेतक उत्पत्तिन्यास कहा गया है; उसके विपरीत संहृतिन्यास होता है॥ १—४॥

बिन्दुसहित नकार आदि वर्णोंका क्रमसे अँगुलियोंमें न्यास करे और दोनों करतल तथा अनामिकाओंमें शिवका अर्थात् मूलमन्त्रका न्यास करे। इसके बाद अस्त्रमन्त्रसे दसों दिशाओंमें अस्त्रन्यास करे तदुपरान्त पंचभूतस्वरूपवाली तथा पंचभूताधिपोंके चिह्नोंसे युक्त एवं हृदय, कण्ठ, तालु, भ्रूमध्य तथा ब्रह्मरन्ध्रके आश्रित रहनेवाली, पंचभूताधिपों और उनके अपने बीजोंसे संश्लिष्ट निवृत्ति आदि पाँच कलाओंकी उन-उन बीजमन्त्रोंमें भावना करे। उन [कलाओं]-के शोधनके लिये पंचाक्षरीविद्या [मन्त्र]-का जप करे॥ ५—७॥

तीन बार प्राणायाम करके अस्त्रमन्त्र तथा अस्त्रमुद्रासे भूतग्रन्थिको काटे। सुषुम्नानाड़ीसे प्राणवायुद्वारा आत्माको प्रेरितकर ब्रह्मरन्ध्रसे निर्गत उस आत्माको शिवतेजसे युक्त करे, इसके बाद वायुसे देहको सुखाकर उसे कालाग्निसे दग्ध कर दे। तत्पश्चात् ऊपरी भावसे वायुद्वारा कलाओंको संहृत करके दग्ध देहको संहृत करके अब्धिके साथ कलाओंका स्पर्श करके अमृतसे देहको प्लावित कर उसे यथास्थान निविष्ट कराये। इसके बाद कलासृष्टिके बिना उसका संहार करके भस्मीभूत उस देहका अमृतप्लावन करे॥ ८—१३॥

तत्पश्चात् उस विद्यामय देहमें दीपशिखाके [सदृश] आकारवाले शिवनिर्गत आत्माको ब्रह्मरन्ध्रसे संयुक्त करे। पुनः देहके भीतर प्रविष्ट उस आत्माका हृदयकमलमें ध्यान करके अमृतवर्षासे पुनः विद्यामय शरीरका सेचन करे॥ १४-१५॥

इसके बाद हाथोंको शुद्ध करके करन्यास करे। तत्पश्चात् महती मुद्रासे देहन्यास करे। तदनन्तर शिवोक्त मार्गसे अंगन्यास करनेके पश्चात् हाथ-पैरकी सन्धियोंमें वर्णन्यास करे। इसके बाद छः जातियोंसे युक्त षडंगन्यास करके क्रमानुसार अग्निकोण आदि दिशाओंमें दिग्बन्ध करे। अथवा सिर आदिमें पंचांगन्यास करे तथा भूतशुद्धि आदिके बिना षडंगन्यास करे॥ १६—१९॥

इस प्रकार संक्षिप्तरूपसे देह तथा आत्माका शोधन करके शिवभावको प्राप्त होकर परमेश्वरका पूजन करे। जिसे समय हो तथा बुद्धिभ्रम न हो, वह विस्तृतविधिसे न्यासकर्म करे॥ २०-२१॥

उसमें पहला मातृकान्यास, दूसरा ब्रह्मन्यास, तीसरा प्रणवन्यास, चौथा हंसन्यास और पाँचवाँ पंचाक्षरात्मकन्यास सज्जनोंद्वारा कहा जाता है। इनमें एक या अनेक न्यासोंका पूजा आदि कर्मोंमें उपयोग करे॥ २२-२३॥

मूर्धामें अंकारका न्यास करके ललाटमें 'आं' का, नेत्रोंमें 'इं-ईं' का, कानोंमें 'उं-ऊं' का, कपोलोंमें 'ऋं-ॠं' का, दोनों नासापुटोंमें 'लृं-लॄं' का, दोनों ओठोंमें

'एं-ऐं' का, दोनों दन्तपंक्तियोंमें 'ओं-औं' का, जीभमें 'अं' का और तालुमें 'अः' का क्रमसे न्यास करे। दाहिने हाथकी पाँचों सन्धियोंमें कवर्ग (क,ख,ग,घ,ङ)-का न्यास करे और बायें हाथकी पाँचों सन्धियोंमें चवर्ग (च,छ,ज,झ,ञ)-का न्यास करे। दोनों पैरोंमें टवर्ग तथा तवर्गका, दोनों पार्श्वोंमें 'प-फ' का, पृष्ठ तथा नाभिमें 'ब-भ' का और हृदयमें मकारका न्यास करे। 'य' से लेकर 'स' तकके वर्णोंका न्यास त्वचा आदि सातों धातुओंमें क्रमसे करे। हृदयके भीतर हकारका और दोनों भौहोंके मध्य क्षकारका न्यास करे। इस प्रकार शिवशास्त्रके अनुसार पचास वर्णोंका न्यास करके अंग-वक्त्र-कलाभेदसे पंचब्रह्मोंका न्यास करे॥ २४—३०॥

तदुपरान्त उन्हींसे करन्यास आदि भी करे अथवा बिना किये भी क्रमपूर्वक सिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा पैरोंमें इनकी कल्पना करे। इसके बाद ऊर्ध्व आदि मुखोंके क्रमसे पश्चिमतकके शिवके मुखोंकी कल्पना करे। इन पाँचों मुखोंमें क्रमसे ईशानकी पाँच कलाओंका न्यास करे॥ ३१-३२॥

इसके बाद पूर्व आदिके क्रमसे चार मुखोंमें तत्पुरुषकी चार कलाओंकी कल्पना करे। पुनः हृदय, कण्ठ, कंधा, नाभि, कुक्षि, पीठ, वक्ष, दोनों पैरों तथा हाथोंमें अघोरकी आठ कलाओंका न्यास करे॥ ३३-३४॥

इसके बाद गुदा, लिंग, जानु, जंघा, नितम्ब, कटि तथा पार्श्वभागोंमें वामदेवकी तेरह कलाओंकी भावना करे। इसके बाद मन्त्रवेत्ताको चाहिये कि दोनों पैरों, दोनों हाथों, नासिका, सिर तथा दोनों बाहुओंमें सद्योजातकी आठ कलाओंकी भावना करे। इस प्रकार क्रमानुसार अड़तीस कलाओंका न्यास करके प्रणववेत्ता विद्वान्‌को बादमें दोनों बाहुओं, दोनों कुहनियों, दोनों मणिबन्धों, पार्श्वभागों, उदर, ऊरु, जंघाओं, पैरों तथा पीठमें प्रणवन्यास करना चाहिये॥ ३५—३७१/२॥

इस प्रकार प्रणवन्यास करके न्यासविद्‌को चाहिये कि जैसा शिवशास्त्रमें कहा गया है, उसके अनुसार हंसन्यास करे। हंसबीजका विभाजन करके नेत्रोंमें, नासिकाछिद्रोंमें, भुजाओंमें, नेत्रोंमें, मुखमें, ललाटमें, कानोंमें, काँखोंमें, स्कन्धोंमें, पार्श्वोंमें, स्तनोंमें, कटिमें, हाथोंमें तथा टखनोंमें हंसन्यास करे अथवा पंचांगविधिसे इस हंसन्यासको करके पंचाक्षरीविद्याका न्यास करे॥ ३८—४१॥

इस प्रकार पूर्वमें बतायी गयी रीतिसे न्यासद्वारा अपनेमें शिवत्वका आधान करे। अशिव होकर शिवका अभ्यास न करे, अशिव होकर शिवका पूजन न करे तथा अशिव होकर शिवका ध्यान न करे, अशिव मनुष्य शिवको नहीं प्राप्त कर सकता है। अतः शरीरको शैवीधारणासे युक्त करके तथा पशुभावनाका त्याग करके 'मैं शिव हूँ'—ऐसा विचार करके शिवकर्म करे॥ ४२—४३१/२॥

कर्मयज्ञ, तपयज्ञ, जपयज्ञ, ध्यानयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ—ये पाँच यज्ञ कहे गये हैं। कुछ लोग कर्मयज्ञमें संलग्न रहते हैं, कुछ लोग तपयज्ञमें रत रहते हैं, कुछ लोग जपयज्ञमें लगे रहते हैं, कुछ लोग ध्यानयज्ञमें लीन रहते हैं और कुछ लोग ज्ञानयज्ञपरायण रहते हैं। ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होते हैं। सकाम तथा अकामके भेदसे कर्मयज्ञ दो प्रकारका कहा गया है॥ ४४—४६॥

सकाम मनुष्य कामनाओंका भोग करके पुनः-पुनः उन्हीं कामनाओंमें फँसता रहता है। निष्काम रुद्रभवनमें भोगोंको भोगकर फिर वहाँसे लौटकर पृथ्वीलोकमें तपयज्ञपरायण होकर उत्पन्न होता है, इसमें सन्देह नहीं है। वह तपस्वी पुनः इस लोकमें भोगोंको भोगकर वहाँसे फिर लौटकर जपध्यानपरायण होकर पृथ्वीलोकमें मनुष्य होता है। जपध्यानमें संलग्न मनुष्य उसकी विशिष्टताके कारण इस लोकमें अविलम्ब ज्ञान प्राप्त करके शिवसायुज्यको प्राप्त होता है॥ ४७—४९१/२॥

अतः कर्मयज्ञ भी शिवाज्ञासे देहधारियोंको मुक्ति प्राप्त कराता है। निष्कामकर्म मनुष्यके कामयुक्त होनेपर उसके बन्धनका कारण बनता है। अतः पाँचों यज्ञोंमें ध्यानयज्ञ तथा ज्ञानयज्ञमें परायण होना चाहिये। जिसने ध्यान तथा ज्ञान प्राप्त कर लिया, उसने मानो भवसागर पार कर लिया। हिंसा आदि दोषोंसे रहित होनेसे विशुद्धताको प्राप्त यह ध्यानयज्ञ चित्तको अभ्युन्नत

करनेवाला, श्रेष्ठ तथा मोक्षदायक कहा गया है। जिस प्रकार राजाके अन्तरंग सेवक विशिष्ट लाभोंको प्राप्त कर लेते हैं, जो बहिरंग सेवकोंके लिये दुर्लभ हैं, वैसे ही ध्यानयोगी भी उत्कृष्ट फलोंको प्राप्त करते हैं। ध्यानियोंको शिवका सूक्ष्म विग्रह वैसे ही प्रत्यक्ष हो जाता है, जैसे कि कर्मयज्ञ करनेवालोंको मिट्टी, काष्ठ आदिसे बना हुआ स्थूलरूप प्रत्यक्ष होता है। अतः ध्यानयज्ञपरायण भक्त शिवको भलीभाँति जाननेके कारण मिट्टी, पत्थर आदिसे निर्मित देवताओंपर अधिक श्रद्धा नहीं करते हैं। अपने हृदयमें स्थित शिवको छोड़कर जो मनुष्य बाह्य पूजन करता है, वह हस्तगत फलको छोड़कर मानो अपनी कुहनी चाटता है ॥ ५०—५६१/२ ॥

ज्ञानसे ध्यानयोग सिद्ध होता है और पुनः ध्यानसे ज्ञानोपलब्धि होती है, उन दोनोंसे मुक्ति हो जाती है। अतः ध्यानपरायण होना चाहिये। द्वादशान्त, सिर, ललाट, भ्रूमध्य, नासाग्र, मुख, कन्धा, हृदय (वक्ष), नाभि तथा शाश्वतस्थानमें श्रद्धायुक्त मनसे बाहरी पूजोपचारोंसे शिव तथा पार्वतीका पूजन करना चाहिये अथवा [प्रतिष्ठित] लिंगमें या बनाये गये पार्थिवलिंगमें अथवा अग्निमें अथवा स्थण्डिलमें भक्तिपूर्वक अपने धनसामर्थ्यके अनुसार पूजन करना चाहिये। अथवा बाहर तथा भीतर परमेश्वरकी पूजा करे। अन्तर्यागमें निरत व्यक्ति बहिर्याग करे अथवा न करे ॥ ५७—६१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवशास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिककर्मवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

अन्तर्याग अथवा मानसिक पूजाविधिका वर्णन

तदनन्तर श्रीकृष्णके पूछनेपर नित्यनैमित्तिक कर्म तथा न्यासका वर्णन करनेके पश्चात् उपमन्यु बोले—अब मैं पूजाके विधानका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ। इसे शिवशास्त्रमें शिवने शिवाके प्रति कहा है ॥ १ ॥

मनुष्य अग्निहोत्रपर्यन्त अन्तर्यागका अनुष्ठान करके पीछे बहिर्याग (बाह्यपूजन) करे। (उसकी विधि इस प्रकार है—) अन्तर्यागमें पहले पूजाद्रव्योंको मनसे कल्पित और शुद्ध करके गणेशजीका विधिपूर्वक चिन्तन एवं पूजन करे ॥ २-३ ॥

तत्पश्चात् दक्षिण और उत्तरभागमें क्रमशः नन्दीश्वर और सुयशाकी आराधना करके विद्वान् पुरुष मनसे उत्तम आसनकी कल्पना करे ॥ ४ ॥

सिंहासन, योगासन अथवा तीनों तत्त्वोंसे युक्त निर्मल पद्मासनकी भावना करे। उसके ऊपर सर्वमनोहर साम्ब-शिवका ध्यान करे ॥ ५१/२ ॥

वे शिव समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त और सम्पूर्ण अवयवोंसे शोभायमान हैं। वे सबसे बढ़कर हैं और समस्त आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। उनके हाथ-पैर लाल हैं। उनका मुसकराता हुआ मुख कुन्द और चन्द्रमाके समान शोभा पाता है। उनकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल है। तीन नेत्र प्रफुल्ल कमलकी भाँति सुन्दर हैं। चार भुजाएँ, उत्तम अंग और मनोहर चन्द्रकलाका मुकुट धारण किये भगवान् हर अपने दो हाथोंमें वर तथा अभयकी मुद्रा धारण करते हैं और शेष दो हाथोंमें मृगमुद्रा एवं टंक लिये हुए हैं। उनकी कलाईमें सर्पोंकी माला कड़ेका काम देती है। गलेके भीतर मनोहर नील चिह्न शोभित होता है, उनकी कहीं कोई उपमा नहीं है। वे अपने अनुगामी सेवकों तथा आवश्यक उपकरणोंके साथ विराजमान हैं ॥ ६—९१/२ ॥

इस तरह ध्यान करके उनके वाम-भागमें महेश्वरी शिवाका चिन्तन करे। शिवाकी अंगकान्ति प्रफुल्ल कमलदलके समान परम सुन्दर है। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित है। मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश शोभा पाते हैं। वे नील उत्पलदलके समान कान्तिमती हैं। मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण करती हैं। उनके पीन पयोधर अत्यन्त गोल, घनीभूत, ऊँचे और स्निग्ध हैं। शरीरका मध्यभाग कृश है। नितम्बभाग स्थूल है। वे महीन

पीले वस्त्र धारण किये हुए हैं। सम्पूर्ण आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। ललाटपर लगे हुए सुन्दर तिलकसे उनका सौन्दर्य और खिल उठा है। विचित्र फूलोंकी मालासे गुम्फित केशपाश उनकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी आकृति सब ओरसे सुन्दर और सुडौल है। मुख लज्जासे कुछ-कुछ झुका है। वे दाहिने हाथमें शोभाशाली सुवर्णमय कमल धारण किये हुए हैं और दूसरे हाथको दण्डकी भाँति सिंहासनपर रखकर उसका सहारा ले उस महान् आसनपर बैठी हुई हैं। शिवादेवी समस्त पाशोंका छेदन करनेवाली साक्षात् सच्चिदानन्दस्वरूपिणी हैं॥ १०—१५१/२ ॥

इस प्रकार महादेव और महादेवीका ध्यान करके शुभ एवं श्रेष्ठ आसनपर सम्पूर्ण उपचारोंसे युक्त भावमय पुष्पोंद्वारा उनका पूजन करे॥ १६१/२ ॥

अथवा उपर्युक्त वर्णनके अनुसार प्रभु शिवकी एक मूर्ति बनवा ले, उसका नाम शिव या सदाशिव हो। दूसरी मूर्ति शिवाकी होनी चाहिये; उसका नाम माहेश्वरी षड्विंशका अथवा 'श्रीकण्ठ' हो॥ १७-१८ ॥

फिर अपने ही शरीरकी भाँति मूर्तिमें मन्त्रन्यास आदि करके उस मूर्तिमें सत्-असत्से परे मूर्तिमान् परम शिवका ध्यान करे। इसके बाद बाह्य पूजनके ही क्रमसे मनसे पूजा सम्पादित करे। तत्पश्चात् समिधा और घी आदिसे नाभिमें होमकी भावना करे॥ १९-२० ॥

तदनन्तर भ्रूमध्यमें शुद्ध दीपशिखाके समान आकारवाले ज्योतिर्मय शिवका ध्यान करे। इस प्रकार अपने अंगमें अथवा स्वतन्त्र विग्रहमें शुभ ध्यानयोगके द्वारा अग्निमें होम-पर्यन्त सारा पूजन करना चाहिये। यह विधि सर्वत्र ही समान है। इस तरह ध्यानमय आराधनाका सारा क्रम समाप्त करके महादेवजीका शिवलिंगमें, वेदीपर अथवा अग्निमें पूजन करे॥ २१—२३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पूजाविधानव्याख्यानवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

शिवपूजनकी विधि

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! विशुद्धिके लिये मूलमन्त्रसे गन्ध, चन्दनमिश्रित जलके द्वारा पूजास्थानका प्रोक्षण करना चाहिये। इसके बाद वहाँ फूल बिखेरे॥ १ ॥

अस्त्र-मन्त्र (**फट्**)-का उच्चारण करके विघ्नोंको भगाये। फिर कवच-मन्त्र (**हुम्**)-से पूजास्थानको सब ओरसे अवगुण्ठित करे। अस्त्र-मन्त्रका सम्पूर्ण दिशाओंमें न्यास करके पूजाभूमिकी कल्पना करे। वहाँ सब ओर कुश बिछा दे और प्रोक्षण आदिके द्वारा उस भूमिका प्रक्षालन करे। पूजासम्बन्धी समस्त पात्रोंका शोधन करके द्रव्यशुद्धि करे॥ २-३ ॥

प्रोक्षणीपात्र, अर्घ्यपात्र, पाद्यपात्र और आचमनीयपात्र—इन चारोंका प्रक्षालन, प्रोक्षण और वीक्षण करके इनमें शुभ जल डाले और जितने मिल सकें, उन सभी पवित्र द्रव्योंको उनमें डाले॥ ४-५ ॥

पंचरत्न, चाँदी, सोना, गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि तथा फल, पल्लव और कुश—ये सब अनेक प्रकारके पुण्य द्रव्य हैं। स्नान और पीनेके जलमें विशेषरूपसे सुगन्ध आदि एवं शीतल मनोज्ञ पुष्प आदि छोड़े॥ ६-७ ॥

पाद्यपात्रमें खश और चन्दन छोड़ना चाहिये। आचमनीयपात्रमें विशेषतः जायफल, कंकोल, कपूर, सहिजन और तमालका चूर्ण करके डालना चाहिये। इलायची सभी पात्रोंमें डालनेकी वस्तु है। कपूर, चन्दन, कुशाग्रभाग, अक्षत, जौ, धान, तिल, घी, सरसों, फूल और भस्म—इन सबको अर्घ्यपात्रमें छोड़ना चाहिये॥ ८—१० ॥

कुश, फूल, जौ, धान, सहिजन, तमाल और भस्म—इन सबका प्रोक्षणीपात्रमें प्रक्षेपण करना चाहिये॥ ११ ॥

सर्वत्र मन्त्र-न्यास करके कवच-मन्त्रसे प्रत्येक पात्रको बाहरसे आवेष्टित करे। तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रसे उसकी रक्षा करके धेनुमुद्रा दिखाये। पूजाके सभी

द्रव्योंका प्रोक्षणीपात्रके जलसे मूलमन्त्रद्वारा प्रोक्षण करके विधिवत् शोधन करे॥ १२-१३॥

श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि अधिक पात्रोंके न मिलनेपर सब कर्मोंमें एकमात्र प्रोक्षणीपात्रको ही सम्पादित करके रखे और उसीके जलसे सामान्यत: अर्घ्य आदि दे। तत्पश्चात् मण्डपके दक्षिण द्वारभागमें भक्ष्य-भोज्य आदिके क्रमसे विधिपूर्वक विनायकदेवकी पूजा करके अन्त:पुरके स्वामी साक्षात् नन्दीकी भलीभाँति पूजा करे॥ १४—१५१/२॥

उनकी अंगकान्ति सुवर्णमय पर्वतके समान है। समस्त आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। मस्तकपर बालचन्द्रका मुकुट सुशोभित होता है। उनकी मूर्ति सौम्य है। वे तीन नेत्र और चार भुजाओंसे युक्त हैं। उन प्रभुके एक हाथमें चमचमाता हुआ त्रिशूल, दूसरेमें मृगी, तीसरेमें टंक और चौथेमें तीखा बेंत है। उनके मुखकी कान्ति चन्द्रमण्डलके समान उज्ज्वल है। मुख वानरके सदृश है॥ १६—१७१/२॥

द्वारके उत्तर पार्श्वमें उनकी पत्नी सुयशा हैं, जो मरुद्गणोंकी कन्या हैं। वे उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हैं और पार्वतीजीके चरणोंका श्रृंगार करनेमें लगी रहती हैं॥ १८१/२॥

उनका पूजन करके परमेश्वर शिवके भवनके भीतर प्रवेश करे और उन द्रव्योंसे शिवलिंगका पूजन करके निर्माल्यको वहाँसे हटा ले। तदनन्तर फूल धोकर शिवलिंगके मस्तकपर उसकी शुद्धिके लिये रखे॥ १९-२०॥

फिर हाथमें फूल ले यथाशक्ति मन्त्रका जप करे। इससे मन्त्रकी शुद्धि होती है। ईशानकोणमें चण्डकी आराधना करके उन्हें पूर्वोक्त निर्माल्य अर्पित करे॥ २१॥

तत्पश्चात् इष्टदेवके लिये आसनकी कल्पना करे। क्रमश: आधार आदिका ध्यान करे—कल्याणमयी आधार-शक्ति भूतलपर विराजमान हैं और उनकी अंगकान्ति श्याम है। इस प्रकार उनके स्वरूपका चिन्तन करे। उनके ऊपर फन उठाये सर्पाकार अनन्त बैठे हैं, जिनकी अंगकान्ति उज्ज्वल है। वे पाँच फनोंसे युक्त हैं और आकाशको चाटते हुए-से जान पड़ते हैं। अनन्तके ऊपर भद्रासन है, जिसके चारों पायोंमें सिंहकी आकृति बनी हुई है। वे चारों पाये क्रमश: धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यरूप हैं॥ २२—२४॥

धर्म नामवाला पाया आग्नेयकोणमें है और उसका रंग सफेद है। ज्ञान नामक पाया नैर्ऋत्यकोणमें है और उसका रंग लाल है। वैराग्य वायव्यकोणमें है और उसका रंग पीला है तथा ऐश्वर्य ईशानकोणमें है और उसका वर्ण श्याम है। अधर्म आदि उस आसनके पूर्वादि भागोंमें क्रमश: स्थित हैं अर्थात् अधर्म पूर्वमें, अज्ञान दक्षिणमें, अवैराग्य पश्चिममें और अनैश्वर्य उत्तरमें हैं। इनके अंग राजावर्त मणिके समान हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। इस भद्रासनको ऊपरसे आच्छादित करनेवाला श्वेत निर्मल पद्ममय आसन है॥ २५-२६॥

अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य—गुण ही उस कमलके आठ दल हैं; वामदेव आदि रुद्र अपनी वामा आदि शक्तियोंके साथ उस कमलके केसर हैं। वे मनोन्मनी आदि अन्त:शक्तियाँ ही बीज हैं, अपर वैराग्य कर्णिका है, शिवस्वरूप ज्ञान नाल है, शिवधर्म कन्द है, कर्णिकाके ऊपर तीन मण्डल (चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल और वह्निमण्डल) हैं और उन मण्डलोंके ऊपर आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्वरूप त्रिविध आसन हैं॥ २७—२९॥

इन सब आसनोंके ऊपर विचित्र बिछौनोंसे आच्छादित एक सुखद दिव्य आसनकी कल्पना करे, जो शुद्ध विद्यासे अत्यन्त प्रकाशमान हो॥ ३०॥

आसनके अनन्तर आवाहन, स्थापन, संनिरोधन, निरीक्षण एवं नमस्कार करे। इन सबकी पृथक्-पृथक् मुद्राएँ बाँधकर दिखाये*॥ ३१॥

* दोनों हाथोंकी अंजलि बनाकर अनामिका अंगुलिके मूलपर्वपर अँगूठेको लगा देना 'आवाहन' मुद्रा है। इसी आवाहन मुद्राको अधोमुख कर दिया जाय तो वह 'स्थापन' मुद्रा हो जाती है। यदि मुट्ठीके भीतर अँगूठेको डाल दिया जाय और दोनों हाथोंकी मुट्ठी संयुक्त कर दी जाय तो वह 'संनिरोधन' मुद्रा कही गयी है। दोनों मुट्ठियोंको उत्तान कर देनेपर 'सम्मुखीकरण' नामक मुद्रा होती है। इसीको यहाँ 'निरीक्षण' नामसे कहा गया है। शरीरको दण्डकी भाँति देवताके सामने डाल देना, मुखको नीचेकी ओर रखना और दोनों हाथोंको देवताकी ओर फैला देना—साष्टांग प्रणामकी इस क्रियाको ही यहाँ 'नमस्कार' मुद्रा कहा गया है।

तदनन्तर पाद्य, आचमन, अर्घ्य, [आदि देकर स्नान कराये, तदुपरान्त वस्त्र, यज्ञोपवीत,] गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, [नैवेद्य] और ताम्बूल देकर शिवा और शिवको समर्पित करे। अथवा उपर्युक्त रूपसे आसन और मूर्तिकी कल्पना करके मूलमन्त्र एवं अन्य ईशानादि ब्रह्ममन्त्रोंद्वारा सकलीकरणकी क्रिया करके देवी पार्वतीसहित परम कारण शिवका आवाहन करे॥ ३२—३३१/२ ॥

भगवान् शिवकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे निश्चल, अविनाशी, समस्त लोकोंके परम कारण, सर्वलोकस्वरूप, सबके बाहर-भीतर विद्यमान, सर्वव्यापी, अणु-से-अणु और महान्से भी महान् हैं॥ ३४-३५ ॥

भक्तोंको अनायास ही दर्शन देते हैं। सबके ईश्वर एवं अव्यय हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु तथा रुद्र आदि देवताओंके लिये भी अगोचर हैं। सम्पूर्ण वेदोंके सारतत्त्व हैं। विद्वानोंके भी दृष्टिपथमें नहीं आते हैं। आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। भवरोगसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये औषधरूप हैं। शिवतत्त्वके रूपमें विख्यात हैं और सबका कल्याण करनेके लिये जगत्‌में सुस्थिर शिवलिंगके रूपमें विद्यमान हैं॥ ३६—३७१/२ ॥

ऐसी भावना करके भक्तिभावसे गन्ध, धूप, दीप, पुष्प और नैवेद्य—इन पाँच उपचारोंद्वारा उत्तम शिवलिंगका पूजन करे। परमात्मा महेश्वर शिवकी लिंगमयी मूर्तिके स्नानकालमें जय-जयकार आदि शब्द और मंगलपाठ करे॥ ३८-३९ ॥

पंचगव्य, घी, दूध, दही, मधु [और शर्करा]-के साथ फल-मूलके सारतत्त्वसे, तिल, सरसों, सत्तूके उबटनसे, जौ आदिके उत्तम बीजोंसे, उड़द आदिके चूर्णोंसे तथा आटा आदिसे आलेपन करके मन्दोष्ण जलसे शिवलिंगको नहलाये॥ ४०-४१ ॥

लेप और गन्धके निवारणके लिये बिल्वपत्र आदिसे रगड़े। फिर जलसे नहलाकर चक्रवर्ती सम्राट्के लिये उपयोगी उपचारोंसे (अर्थात् सुगन्धित तेल-फुलेल आदिके द्वारा) सेवा करे। सुगन्धयुक्त आँवला और हल्दी भी क्रमशः अर्पित करे। इन सब वस्तुओंसे शिवलिंग अथवा शिवमूर्तिका भलीभाँति शोधन करके चन्दनमिश्रित जल, कुश-पुष्पयुक्त जल, सुवर्ण एवं रत्नयुक्त जल तथा मन्त्रसिद्ध जलसे क्रमशः स्नान कराये॥ ४२—४४ ॥

इन सब द्रव्योंका मिलना सम्भव न होनेपर यथासम्भव संगृहीत वस्तुओंसे युक्त जलद्वारा अथवा केवल मन्त्राभिमन्त्रित जलद्वारा श्रद्धापूर्वक शिवको स्नान कराये॥ ४५ ॥

कलश, शंख और वर्धनीसे तथा कुश और पुष्पसे युक्त हाथके जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक इष्टदेवताको नहलाना चाहिये। पवमानसूक्त, रुद्रसूक्त, नीलरुद्रसूक्त, त्वरितमन्त्र, लिंगसूक्त आदिसूक्तोंसे, अथर्वशीर्ष, ऋग्वेद, सामवेद तथा शिवसम्बन्धी ईशानादि पंच-ब्रह्ममन्त्र, शिवमन्त्र तथा प्रणवसे देवदेवेश्वर शिवको स्नान कराये॥ ४६—४८ ॥

जैसे महादेवजीको स्नान कराये, उसी तरह महादेवी पार्वतीको भी स्नान आदि कराना चाहिये। उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि वे दोनों सर्वथा समान हैं। पहले महादेवजीके उद्देश्यसे स्नान आदि क्रिया करके फिर देवीके लिये उन्हीं देवाधिदेवके आदेशसे सब कुछ करे॥ ४९-५० ॥

अर्धनारीश्वरकी पूजा करनी हो तो उसमें पूर्वापरका विचार नहीं है। अतः उसमें महादेव और महादेवीकी साथ-साथ पूजा होती रहती है। शिवलिंगमें या अन्यत्र मूर्ति आदिमें अर्द्धनारीश्वरकी भावनासे सभी उपचारोंका शिव और शिवाके लिये एक साथ ही उपयोग होता है॥ ५१ ॥

पवित्र सुगन्धित जलसे शिवलिंगका अभिषेक करके उसे वस्त्रसे पोंछे। फिर नूतन वस्त्र एवं यज्ञोपवीत चढ़ाये। तत्पश्चात् पाद्य, आचमन, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, आभूषण, धूप, दीप, नैवेद्य, पीनेयोग्य जल, मुखशुद्धि, पुनराचमन, मुखवास तथा सम्पूर्ण रत्नोंसे जटित सुन्दर मुकुट, आभूषण, नाना प्रकारकी पवित्र पुष्पमालाएँ, छत्र, चँवर, व्यजन, ताड़का पंखा और दर्पण देकर सब प्रकारकी मंगलमयी वाद्यध्वनियोंके साथ इष्टदेवकी नीराजना करे (आरती उतारे)। उस समय गीत और नृत्य आदिके साथ जय-जयकार भी होनी चाहिये॥ ५२—५६ ॥

सोना, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीके सुन्दर पात्रमें कमल आदिके शोभायमान फूल रखे। कमलके बीज

तथा दही, अक्षत आदि भी डाल दे। त्रिशूल, शंख, दो कमल, नन्द्यावर्त नामक शंखविशेष, सूखे गोबरकी आग, श्रीवत्स, स्वस्तिक, दर्पण, वज्र तथा अग्नि आदिसे चिह्नित पात्रमें आठ दीपक रखे। वे आठों आठ दिशाओंमें रहें और एक नौवाँ दीपक मध्यभागमें रहे। इन नवों दीपकोंमें वामा आदि नव शक्तियोंका ध्यान तथा पूजन करे॥ ५७—५९॥

फिर कवचमन्त्रसे आच्छादन और अस्त्रमन्त्रद्वारा सब ओरसे संरक्षण करके धेनुमुद्रा दिखाकर दोनों हाथोंसे पात्रको ऊपर उठाये अथवा पात्रमें क्रमशः पाँच दीप रखे। चारको चारों कोनोंमें और एकको बीचमें स्थापित करे॥ ६०-६१॥

तत्पश्चात् उस पात्रको उठाकर शिवलिंग या शिवमूर्ति आदिके ऊपर क्रमशः तीन बार प्रदक्षिण क्रमसे घुमाये और मूलमन्त्रका उच्चारण करता रहे। तदनन्तर मस्तकपर अर्घ्य और सुगन्धित भस्म चढ़ाये। फिर पुष्पांजलि देकर उपहार निवेदन करे। इसके बाद जल देकर आचमन कराये। फिर पाँच सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त ताम्बूल भेंट करे॥ ६२—६४॥

तत्पश्चात् प्रोक्षणीय पदार्थोंका प्रोक्षण करके नृत्य और गीतका आयोजन करे। लिंग या मूर्ति आदिमें शिव तथा पार्वतीका चिन्तन करते हुए यथाशक्ति शिव-मन्त्रका जप करे। जपके पश्चात् प्रदक्षिणा, नमस्कार, स्तुतिपाठ, आत्मसमर्पण तथा कार्यका विनयपूर्वक विज्ञापन करे॥ ६५-६६॥

फिर अर्घ्य और पुष्पांजलि दे विधिवत् मुद्रा बाँधकर इष्टदेवसे त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। तत्पश्चात् मूर्तिसहित देवताका विसर्जन करके अपने हृदयमें उसका चिन्तन करे। पाद्यसे लेकर मुखवासपर्यन्त पूजन करना चाहिये अथवा अर्घ्य आदिसे पूजन आरम्भ करना चाहिये या अधिक संकटकी स्थितिमें प्रेमपूर्वक केवल फूलमात्र चढ़ा देना चाहिये॥ ६७-६८॥

प्रेमपूर्वक उतनेसे ही अर्थात् फूलमात्र चढ़ा देनेसे ही परम धर्मका सम्पादन हो जाता है। जबतक प्राण रहे शिवका पूजन किये बिना भोजन न करे॥ ६९॥

यदि कोई पापी स्वेच्छासे भोजन ग्रहण करता है, तो उसके पापका प्रतिकार नहीं हो सकता। यदि भूलसे खा ले तो उसे प्रयत्नपूर्वक उगल दे। स्नान करके शिव तथा पार्वतीका दोगुना पूजनकर निराहार रहकर ब्रह्मचर्यपूर्वक शिवका दस हजार जप करे और दूसरे दिन यथाशक्ति शिवको अथवा शिवभक्तको सुवर्ण आदि प्रदानकर महापूजा करके वह पवित्र हो जाता है॥ ७०—७२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शास्त्रोक्त शिवपूजनवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

शिवपूजाकी विशेष विधि तथा शिव-भक्तिकी महिमा

[उपमन्यु बोले—हे कृष्ण! **]** इस विषयमें जो कुछ नहीं कह पाया हूँ, उसे पूजाके क्रमके लोप होनेके भयसे विस्तारपूर्वक तो नहीं, अपितु संक्षेपमें ही कहूँगा॥ १॥

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! दीपदानके बाद और नैवेद्य-निवेदनसे पहले आवरण-पूजा करनी चाहिये अथवा आरतीका समय आनेपर आवरणपूजा करे॥ २॥

वहाँ शिव या शिवाके प्रथम आवरणमें ईशानसे लेकर 'सद्योजातपर्यन्त' तथा हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्तका पूजन करे*॥ ३॥

ईशानमें, पूर्वभागमें, दक्षिणमें, उत्तरमें, पश्चिममें, आग्नेयकोणमें, ईशानकोणमें, नैर्ऋत्यकोणमें, वायव्यकोणमें, फिर ईशानकोणमें तत्पश्चात् चारों दिशाओंमें गर्भावरण

* अर्थात्—ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात—इन पाँच मूर्तियोंका तथा हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र—इन अंगोंका पूजन करना चाहिये।

अथवा मन्त्र-संघातकी पूजा बतायी गयी है या हृदयसे लेकर अस्त्रपर्यन्त अंगोंकी पूजा करे॥ ४—५१/२ ॥

इनके बाह्यभागमें पूर्वदिशामें इन्द्रका, दक्षिणदिशामें यमका, पश्चिम दिशामें वरुणका, उत्तर दिशामें कुबेरका, ईशानकोणमें ईशानका, अग्निकोणमें अग्निका, नैर्ऋत्यकोणमें निर्ऋतिका, वायव्यकोणमें वायुका, नैर्ऋत्य और पश्चिमके बीचमें अनन्त या विष्णुका तथा ईशान और पूर्वके बीचमें ब्रह्माका पूजन करे॥ ६—७१/२ ॥

कमलके बाह्यभागमें वज्रसे लेकर कमलपर्यन्त लोकेश्वरोंके सुप्रसिद्ध आयुधोंका पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे। यह ध्यान करना चाहिये कि समस्त आवरणदेवता सुखपूर्वक बैठकर महादेव और महादेवीकी ओर दोनों हाथ जोड़े देख रहे हैं। फिर सभी आवरण देवताओंको प्रणाम करके '**नमः**' पदयुक्त अपने-अपने नामसे पुष्पोपचार समर्पणपूर्वक उनका क्रमशः पूजन करे। (यथा **इन्द्राय नमः पुष्पं समर्पयामि** इत्यादि।) इसी तरह गर्भावरणका भी अपने आवरण-सम्बन्धी मन्त्रसे यजन करे॥ ८—११ ॥

योग, ध्यान, होम, जप और बाह्य अथवा आभ्यन्तरमें भी देवताका पूजन करना चाहिये। इसी तरह उनके लिये छः प्रकारकी हवि भी देनी चाहिये—किसी एक शुद्ध अन्नका बना हुआ, मूँगमिश्रित अन्न या मूँगकी खिचड़ी, खीर, दधिमिश्रित अन्न, गुड़का बना हुआ पकवान तथा मधुसे तर किया हुआ भोज्य पदार्थ—इनमेंसे एक या अनेक हविष्यको नाना प्रकारके व्यंजनोंसे संयुक्त तथा गुड़ और खाँड़से सम्पन्न करके नैवेद्यके रूपमें अर्पित करना चाहिये। साथ ही मक्खन और उत्तम दही परोसना चाहिये। पूआ आदि अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ और स्वादिष्ट फल देने चाहिये॥ १२—१४ ॥

लाल चन्दन और पुष्पवासित अत्यन्त शीतल जल अर्पित करना चाहिये। मुख-शुद्धिके लिये मधुर इलायचीके रससे युक्त सुपारीके कोमल टुकड़े, खैर आदिसे युक्त सुनहरे रंगके पीले पानके पत्तोंके बने हुए बीड़े, शिलाजीतका चूर्ण, सफेद चूना, जो अधिक रूखा या दूषित न हो, कपूर, कंकोल, नूतन एवं सुन्दर जायफल आदि अर्पित करने चाहिये। आलेपनके लिये चन्दनका मूलकाष्ठ अथवा उसका चूरा, कस्तूरी, कुंकुम, मृगमदात्मक रस होने चाहिये। फूल वे ही चढ़ाने चाहिये, जो सुगन्धित, पवित्र और सुन्दर हों॥ १५—१८ ॥

गन्धरहित, उत्कट गन्धवाले, दूषित, बासी तथा स्वयं ही टूटकर गिरे हुए फूल शिवके पूजनमें नहीं देने चाहिये। कोमल वस्त्र ही चढ़ाने चाहिये। भूषणोंमें विशेषतः वे ही अर्पित करने चाहिये, जो सोनेके बने हुए तथा विद्युन्मण्डलके समान चमकीले हों, ये सब वस्तुएँ कपूर, गुग्गुल, अगुरु और चन्दनसे आधूपित तथा पुष्पसमूहोंसे सुवासित होनी चाहिये। चन्दन, अगुरु, कपूर, सुगन्धित काष्ठ तथा गुग्गुलके चूर्ण, घी और मधुसे बना हुआ धूप उत्तम माना गया है॥ १९—२२ ॥

कपिला गायके अत्यन्त सुगन्धित घीसे प्रतिदिन जलाये गये कर्पूरयुक्त दीप श्रेष्ठ माने गये हैं। पंचगव्य, मीठे पदार्थ और कपिला गायका दूध, दही एवं घी—ये सब भगवान् शंकरके स्नान और पानके लिये अभीष्ट हैं॥ २३-२४ ॥

हाथीके दाँतके बने हुए भद्रासन, जो सुवर्ण एवं रत्नोंसे जटित हैं, शिवके लिये श्रेष्ठ बताये गये हैं। उन आसनोंपर विचित्र बिछावन, कोमल गद्दे और तकिये होने चाहिये। इनके सिवा और भी बहुत-सी छोटी-बड़ी सुन्दर एवं सुखद शय्याएँ होनी चाहिये॥ २५-२६ ॥

समुद्रगामिनी नदी एवं नदसे लाया तथा कपड़ेसे छानकर रखा हुआ शीतल जल भगवान् शंकरके स्नान और पानके लिये श्रेष्ठ कहा गया है। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल छत्र, जो मोतियोंकी लड़ियोंसे सुशोभित, नवरत्नजटित, दिव्य एवं सुवर्णमय दण्डसे मनोहर हो, भगवान् शिवकी सेवामें अर्पित करनेयोग्य हैं॥ २७-२८ ॥

सुवर्णभूषित दो श्वेत चँवर, जो रत्नमय दण्डोंसे शोभायमान तथा दो राजहंसोंके समान आकारवाले हों, शिवकी सेवामें देनेयोग्य हैं। सुन्दर एवं स्निग्ध दर्पण, जो दिव्य गन्धसे अनुलिप्त, सब ओरसे रत्नोंद्वारा आच्छादित तथा सुन्दर हारोंसे विभूषित हो, भगवान् शंकरको अर्पित करना चाहिये॥ २९-३० ॥

उनके पूजनमें हंस, कुन्द एवं चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा गम्भीर ध्वनि करनेवाले शंखका उपयोग करना चाहिये, जिसके मुख और पृष्ठ आदि भागोंमें रत्न एवं सुवर्ण जड़े गये हों। शंखके सिवा नाना प्रकारकी ध्वनि करनेवाले सुन्दर काहल (वाद्यविशेष), जो सुवर्णनिर्मित तथा मोतियोंसे अलंकृत हों, बजाने चाहिये॥ ३१-३२॥

इनके अतिरिक्त भेरी, मृदंग, मुरज, तिमिच्छ और पटह आदि बाजे भी, जो समुद्रकी गर्जनाके समान ध्वनि करनेवाले हों, यत्नपूर्वक जुटाकर रखने चाहिये। पूजाके सभी पात्र, भाण्ड और उनके आधार भी सुवर्णके ही बनवाये॥ ३३-३४॥

परमात्मा महेश्वर शिवका मन्दिर राजमहलके समान बनवाना चाहिये, जो शिल्पशास्त्रमें बताये हुए लक्षणोंसे युक्त हो। वह ऊँची चहारदीवारीसे घिरा हो। उसका गोपुर इतना ऊँचा हो कि पर्वताकार दिखायी दे। वह अनेक प्रकारके रत्नोंसे आच्छादित हो। उसके दरवाजेके फाटक सोनेके बने हुए हों॥ ३५-३६॥

उस मन्दिरके मण्डपमें तपाये हुए सोने तथा रत्नोंके सैकड़ों खम्भे लगे हों। चँदोवेमें मोतियोंकी लड़ियाँ लगी हुई हों। दरवाजेके फाटकमें मूँगे जड़े गये हों। मन्दिरका शिखर सोनेके बने हुए दिव्य कलशाकार मुकुटोंसे अलंकृत एवं अस्त्रराज त्रिशूलसे चिह्नित हो॥ ३७-३८॥

वह मन्दिर राजमार्गोंसे शोभायमान तथा चारों ओरसे अत्यधिक ऊँचे शिखरोंवाले राजोचित भवनोंसे युक्त होना चाहिये। उसमें दिशाओं और विदिशाओंमें उत्तम सभाभवन, विश्रामभूमियाँ आदि हों तथा उसका अन्तर्भाग सभी प्रकारसे अलंकृत होना चाहिये। नृत्य तथा गायनमें पारंगत हजारों स्त्रियों तथा वीणा, वेणु आदिके वादनमें निपुण पुरुषोंसे उसे युक्त होना चाहिये। गज, अश्व तथा रथोंसे युक्त वीर रक्षकोंसे वह रक्षित हो तथा उसमें सभी दिशाओं-विदिशाओंमें अनेक पुष्पोद्यान और सरोवर हों॥ ३९—४२॥

उस भवनके सभी ओर बहुत-सी बावलियाँ बनायी गयी हों। वेद तथा वेदान्त विद्याके मर्मको समझनेवाले, शिवशास्त्रपरायण, शैवधर्मके अनुपालक, शिवशास्त्रमें बताये गये लक्षणोंसे सम्पन्न, शान्त, प्रसन्नमुख, भक्तिनिष्ठ, सदाचारनिरत तथा सौभाग्यसम्पन्न शैव और माहेश्वर द्विजोंसे वह सेवित हो रहा हो॥ ४३—४४½॥

अपने सामर्थ्यके अनुरूप इस प्रकारकी आन्तरिक तथा बाह्य संरचनावाले स्थानपर या कि शिलानिर्मित, हाथीदाँतसे निर्मित, काष्ठनिर्मित, ईंटोंसे बने या केवल मृत्तिकासे निर्मित भवनमें अथवा किसी पावन वन, पर्वत, नदीतट, देवमन्दिर, किसी पवित्र क्षेत्रमें या शुभ गृहमें समृद्ध अथवा विपन्न साधकको अपने सामर्थ्यके अनुरूप न्यायोपार्जित द्रव्योंसे भक्तिपूर्वक महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४५—४७॥

यदि कोई अन्यायोपार्जित द्रव्यसे भी भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा करता है तो उसे भी कोई पाप नहीं लगता; क्योंकि भगवान् भावके वशीभूत हैं। न्यायोपार्जित धनसे भी यदि कोई बिना भक्तिके पूजन करता है तो उसे उसका फल नहीं मिलता; क्योंकि पूजाकी सफलतामें भक्ति ही कारण है॥ ४८-४९॥

भक्तिसे अपने वैभवके अनुसार भगवान् शिवके उद्देश्यसे जो कुछ किया जाय वह थोड़ा हो या बहुत, करनेवाला धनी हो या दरिद्र, दोनोंका समान फल है। जिसके पास बहुत थोड़ा धन है, वह मानव भी भक्तिभावसे प्रेरित होकर भगवान् शिवका पूजन कर सकता है, किंतु महान् वैभवशाली भी यदि भक्तिहीन है तो उसे शिवका पूजन नहीं करना चाहिये॥ ५०-५१॥

शिवके प्रति भक्तिहीन पुरुष यदि अपना सर्वस्व भी दे डाले तो उससे वह शिवाराधनाके फलका भागी नहीं होता; क्योंकि आराधनामें भक्ति ही कारण है।* शिवके प्रति भक्तिको छोड़कर कोई अत्यन्त उग्र तपस्याओं और

* भक्त्या प्रचोदितः कुर्यादल्पवित्तोऽपि मानवः। महाविभवसारोऽपि न कुर्याद् भक्तिवर्जितः॥
सर्वस्वमपि यो दद्याच्छिवे भक्तिविवर्जितः। न तेन फलभाक् स स्याद् भक्तिरेवात्र कारणम्॥
(शि० पु० वा० सं० उ० खं० २५। ५१-५२)

सम्पूर्ण महायज्ञोंसे भी दिव्य शिवधाममें नहीं जा सकता। अतः श्रीकृष्ण! सर्वत्र परमेश्वर शिवके आराधनमें भक्तिका ही महत्त्व है। यह गुह्यसे भी गुह्यतर बात है। इसमें संदेह नहीं है॥ ५२—५४॥

शिवमन्त्रका जप, ध्यान, होम, यज्ञ, तप, वेदाभ्यास, दान तथा अध्ययन—ये सब भाव (भक्ति)-के लिये ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है। भावरहित मनुष्य इन सबका अनुष्ठान करके भी मुक्त नहीं होता है, किंतु भावयुक्त मनुष्य ये सब बिना किये भी मुक्त हो जाता है॥ ५५-५६॥

हजारों चान्द्रायण व्रतों, सैकड़ों प्राजापत्य व्रतों, महीनेभरके उपवासों तथा अन्य [सत्कर्मों]-से शिवभक्तको क्या प्रयोजन! इस लोकमें भक्तिहीन मनुष्य अल्प भोगोंके लिये पर्वतकी कन्दराओंमें तप करते हैं, पर भक्त तो भावसे ही मुक्त भी हो जाता है॥ ५७-५८॥

सात्त्विक कर्म मुक्ति देनेवाला होता है, अतः योगी सत्त्वमें ही स्थित रहते हैं। कर्मपरायण रजोगुणी लोग सिद्धि प्रदान करनेवाले राजस कर्म करते हैं। तमोगुणसे युक्त असुर, राक्षस तथा वैसे ही दूसरे मनुष्य लौकिक कामनाओंकी प्राप्तिके लिये शिवका यजन करते हैं॥ ५९-६०॥

तामस, राजस अथवा सात्त्विक—किसी भी भावका आश्रय लेकर भक्तिपूर्वक पूजा आदि करनेवाला कल्याण प्राप्त करता है॥ ६१॥

पापके महासागरको पार करनेके लिये भगवान् शिवकी भक्ति नौकाके समान है। इसलिये जो भक्तिभावसे युक्त है, उसे रजोगुण और तमोगुणसे क्या हानि हो सकती है? श्रीकृष्ण! अन्त्यज, अधम, मूर्ख अथवा पतित मनुष्य भी यदि भगवान् शिवकी शरणमें चला जाय तो वह समस्त देवताओं एवं असुरोंके लिये भी पूजनीय हो जाता है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके भक्तिभावसे ही शिवकी पूजा करे; क्योंकि अभक्तोंको कहीं भी फल नहीं मिलता॥ ६२—६४॥

हे कृष्ण! अब मैं आपको एक परम रहस्य बताऊँगा, आप मेरा वचन सुनिये, वेदोंके विद्वानोंने वेदों तथा शास्त्रोंके द्वारा विचार करके इसे सुनिश्चित किया है॥ ६५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवशास्त्रोक्त पूजनवर्णन नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

सांगोपांगपूजाविधानका वर्णन

उपमन्यु बोले— ब्राह्मणहन्ता, सुरापान करनेवाला, चोरी करनेवाला, गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला, माता-पिताका वध करनेवाला, राजहन्ता तथा भ्रूणहत्या करनेवाला भी बिना मन्त्रके ही भक्तिपूर्वक परम कारण शिवका पूजन करके उन-उन पापोंसे क्रमसे बारह वर्षोंमें मुक्त हो जाता है। अतः पतितको भी सभी प्रयत्नोंसे शिवकी पूजा करनी चाहिये। भक्त ही मुक्त होता है, दूसरा कोई नहीं, चाहे वह भिक्षाहारी और जितेन्द्रिय ही हो॥ १—३॥

उपमन्यु कहते हैं— [यदुनन्दन!] कोई बड़ा भारी पाप करके भी भक्तिभावसे पंचाक्षर-मन्त्रद्वारा यदि देवेश्वर शिवका पूजन करे तो वह उस पापसे मुक्त हो जाता है॥ ४॥

जो जल तथा वायुका आहार ग्रहण करनेवाले और व्रतोंके द्वारा शरीरको कृश करनेवाले अन्य लोग हैं, [वे भले ही इनका आचरण करते रहें, पर बिना शिवभक्तिके] उनका इन व्रतोंके द्वारा शिवलोकसान्निध्य नहीं हो सकता है॥ ५॥

जो भक्तिभावसे पंचाक्षर-मन्त्रद्वारा एक ही बार शिवका पूजन कर लेता है, वह भी शिवमन्त्रके गौरववश शिवधामको चला जाता है॥ ६॥

अतः सभी तप, यज्ञ तथा सर्वस्व दक्षिणाएँ—ये सब शिवमूर्तिके पूजनके करोड़वें अंशके भी बराबर नहीं हैं॥ ७॥

कोई बद्ध हो अथवा मुक्त हो, पंचाक्षरमन्त्रसे पूजा करनेवाला भक्त मुक्त हो जाता है, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये। कोई सरुद्र अर्थात् रुद्रोपासक हो या अरुद्र अर्थात् परम्परासे उपासक न हो, अथवा पतित या मोहग्रस्त ही क्यों न हो, किंतु [शास्त्रोंमें] भलीभाँति कहे गये [पंचाक्षरमन्त्र]-के द्वारा यदि एक बार भी शिवपूजन करता है तो उसे मोक्ष प्राप्त होता है॥ ८-९॥

दीक्षित अथवा अदीक्षित शिवभक्तको चाहिये कि वह क्रोधादि विकारोंको जीतकर [शास्त्रोंमें] भलीभाँति प्रतिपादित इस षडक्षरमन्त्रके द्वारा भगवान् शिवका पूजन करे॥ १०॥

दीक्षाविहीनकी अपेक्षा शिवोपासनामें दीक्षित साधकका विशेष अधिकार निश्चय ही बताया गया है। पंच ब्रह्ममन्त्रों तथा हंस मन्त्रके [पारायण-जप आदिके] द्वारा मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ११॥

अतः प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस प्रशंसित मन्त्रसे शिवका पूजन करना चाहिये। जो लोग प्रतिदिन एक समय, दो समय अथवा तीन समय महादेवकी पूजा करते हैं, उन्हें [साक्षात्] शिवका प्रमुख गण समझना चाहिये। जिसने आत्मसहायक ज्ञानसे भगवान् शिवका अर्चन नहीं किया, वह इस दुःखसागररूपी संसारमें दीर्घकालतक भ्रमण करता रहता है॥ १२—१३१/२॥

जो मूढ़ दुर्लभ मानव-जन्म पाकर भगवान् शिवकी अर्चना नहीं करता, उसका वह जन्म निष्फल है; क्योंकि वह मोक्षका साधक नहीं होता॥ १४१/२॥

जो दुर्लभ मानव-जन्म पाकर पिनाकपाणि महादेवजीकी आराधना करते हैं, उन्हींका जन्म सफल है और वे ही कृतार्थ एवं श्रेष्ठ मनुष्य हैं। जो भगवान् शिवकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं, जिनका चित्त भगवान् शिवके सामने प्रणत होता है तथा जो सदा ही भगवान् शिवके चिन्तनमें लगे रहते हैं, वे कभी दुःखके भागी नहीं होते[1]॥ १५—१६१/२॥

मनोहर भवन, हाव, भाव, विलाससे विभूषित [तरुणी] स्त्रियाँ और जिससे पूर्ण तृप्ति हो जाय, इतना धन—ये सब भगवान् शिवकी आराधनाके फल हैं। जो देवलोकमें महान् भोग और राज्य चाहते हैं, वे सदा भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हैं। सौभाग्य, कान्तिमान् रूप, बल, त्याग, दयाभाव, शूरता और विश्वमें विख्याति—ये सब बातें भगवान् शिवकी पूजा करनेवाले लोगोंको ही सुलभ होती हैं॥ १७—१९१/२॥

इसलिये जो अपना कल्याण चाहता हो, उसे सब कुछ छोड़कर केवल भगवान् शिवमें मन लगा उनकी आराधना करनी चाहिये। जीवन बड़ी तेजीसे जा रहा है, यौवन शीघ्रतासे बीता जा रहा है और रोग तीव्रगतिसे निकट आ रहा है, इसलिये सबको पिनाकपाणि महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये, जबतक मृत्यु नहीं आती है, जबतक वृद्धावस्थाका आक्रमण नहीं होता और जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण नहीं हो जाती है, तबतक ही भगवान् शंकरकी आराधना कर लो। भगवान् शिवकी आराधनाके समान दूसरा कोई धर्म तीनों लोकोंमें नहीं है[2]॥ २०—२३॥

इस बातको समझकर प्रयत्नपूर्वक भगवान् सदाशिवकी अर्चना करनी चाहिये। यदि शिवजीकी पूजा प्रासादमें की जाय, उस अवसरपर द्वारयाग, वृक्षारोपण, परिवार देवताओंके लिये बलि-निवेदन तथा

१- दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं येऽर्चयन्ति पिनाकिनम्॥
तेषां हि सफलं जन्म कृतार्थास्ते नरोत्तमाः। भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः॥
भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भागिनः॥
(शि० पु० वा० सं० उ० खं० २६। १५—१६१/२)

२-त्वरितं जीवितं याति त्वरितं याति यौवनम्॥
त्वरितं व्याधिरभ्येति तस्मात्पूज्यः पिनाकधृक्। यावन्नायाति मरणं यावन्नाक्रमते जरा॥
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावत्पूजय शङ्करम्। न शिवार्चनतुल्योऽस्ति धर्मोऽन्यो भुवनत्रये॥
(शि० पु० वा० सं० उ० खं० २६। २१—२३)

नित्योत्सव करना चाहिये। हविको निवेदित करनेसे पहले स्वयं (आचार्य) अथवा अनुचर (शिष्य) प्रासादमें स्थित परिवार-देवताओंको बतायी गयी रीतिसे बलि प्रदान करे। उस समय प्रासादसे बाहर जाकर उन-उन देवताओंके समक्ष स्थित होकर मंगलवाद्य भी बजवाने चाहिये। बलि देनेसे पूर्व पुष्प, धूप, दीप आदि अन्य उपचार समर्पितकर उस महापीठमें उत्तराभिमुख स्थित होकर साधक अन्न, जलादिके सहित बलि प्रदान करे। पहले जो अन्न आदि शिवजीको निवेदन किया जा चुका है और उससे जो बच गया है, यह सब चण्डको निवेदित कर दे॥ २४—२८॥

तदुपरान्त सविधि हवन करके अवशिष्ट पूजनको सम्पन्न करे, इस अनुष्ठानको पूर्णकर यथा सामर्थ्य मन्त्र-जप भी करे। इस प्रकार शिवशास्त्रमें बतायी गयी विधिसे नित्योत्सव करना चाहिये॥ २९१/२॥

रक्तवर्णके [अष्टदल] कमलसे सुशोभित एक बड़े [सुवर्ण] धातुपात्रमें [भगवान् शिवके] दिव्य पाशुपत अस्त्रका आवाहनकर उसकी पूजा करे। यजमान अस्त्रमन्त्रसे न्यास करके उस पात्रको [वस्त्र-माल्यादिसे] अलंकृत तथा चमकती हुई छड़ी लेकर स्थित ब्राह्मणके सिरपर रखकर उसके साथ शिवप्रासादके परिवार-देवताओंको [पूजा-बलि आदि प्रदान करके] न अधिक वेगसे न ही मन्द गतिसे अर्थात् मध्यम गतिसे उस महापीठकी तीन बार प्रदक्षिणा करे। उस समय प्रासादसे बाहर मांगलिक ध्वनि (शंख, मृदंग आदि) तथा नृत्य-गीतादि भी होने चाहिये। साधक [पूजाके अंगके रूपमें] दीपदान तथा ध्वजदान भी करे। महापीठकी तीन बार प्रदक्षिणा करके अंजलि बाँधे हुए यजमान मन्दिरके द्वारपर आये और अस्त्रके सहित मन्दिरके अन्दर प्रविष्ट हो उस अस्त्रराजका विसर्जन कर दे। तदुपरान्त पूर्वमें बतायी गयी विधिसे क्रमपूर्वक प्रदक्षिणा आदि सम्पन्न करके आठ पुष्प लेकर पूजाका समापन करे॥ ३०—३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें सांगोपांगपूजा-विधानवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

शिवपूजनमें अग्निकर्मका वर्णन

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] अब मैं अग्निकार्यका वर्णन करूँगा। कुण्डमें, स्थण्डिलपर, वेदीमें, लोहेके हवनपात्रमें या नूतन सुन्दर मिट्टीके पात्रमें विधिपूर्वक अग्निकी स्थापना करके उसका संस्कार करे। तत्पश्चात् वहाँ महादेवजीकी आराधना करके होमकर्म आरम्भ करे॥ १-२॥

कुण्ड दो या एक हाथ लम्बा-चौड़ा होना चाहिये। वेदीको गोल या चौकोर बनाना चाहिये। साथ ही मण्डल भी बनाना आवश्यक है। कुण्ड विस्तृत और गहरा होना चाहिये। उसके मध्यभागमें अष्टदल-कमल अंकित करे। वह दो या चार अंगुल ऊँचा हो। कुण्डके भीतर दो बित्तेकी ऊँचाईपर नाभिकी स्थिति बतायी गयी है। मध्यमा अंगुलिके मध्यम और उत्तम पर्वोंके बराबर मध्यभाग या कटिभाग जानना चाहिये॥ ३—५॥

साधु पुरुष चौबीस अंगुलके बराबर एक हाथका परिमाण बताते हैं। कुण्डकी तीन, दो या एक मेखला होनी चाहिये। इन मेखलाओंका इस तरह निर्माण करे, जिससे कुण्डकी शोभा बढ़े। सुन्दर और चिकनी योनि बनाये, जिसकी आकृति पीपलके पत्तेकी भाँति अथवा हाथीके अधरोष्ठके समान हो॥ ६-७॥

कुण्डके दक्षिण या पश्चिम भागमें मेखलाके बीचोबीच सुन्दर योनिका निर्माण करना चाहिये, जो मेखलासे कुछ नीची हो। उसका अग्रभाग कुण्डकी ओर हो तथा वह मेखलाको कुछ छोड़कर बनायी गयी हो। वेदीके लिये ऊँचाईका कोई नियम नहीं है। वह मिट्टी या बालूकी होनी चाहिये॥ ८-९॥

गायके गोबर या जलसे मण्डल बनाना चाहिये। पात्रका परिमाण नहीं बताया गया है। कुण्ड और मिट्टीकी

वेदीको गोबर और जलसे लीपना चाहिये॥ १०॥

पात्रको धोकर तपाये तथा अन्य वस्तुओंका जलसे प्रोक्षण करे। अपने-अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार कुण्डमें और वेदीपर उल्लेखन (रेखा) करे। [रेखाओंपरसे मृत्तिका लेकर ईशानकोणमें फेंक दे।] फिर अग्निके उस आसनका कुशों अथवा पुष्पोंद्वारा जलसे प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् पूजन और हवनके लिये सब प्रकारके द्रव्योंका संग्रह करे॥ ११-१२॥

धोनेयोग्य वस्तुओंको धोकर प्रोक्षणीके जलसे उनका प्रोक्षण करके उन्हें शुद्ध करे। इसके बाद सूर्यकान्तमणिसे प्रकट, काष्ठसे उत्पन्न, श्रोत्रियकी अग्निशालामें संचित अथवा दूसरी किसी उत्तम अग्निको आधारसहित ले आये। उसे कुण्ड अथवा वेदीके ऊपर तीन बार प्रदक्षिणक्रमसे घुमाकर अग्निबीज (रं)-का उच्चारण करके उस अग्निको उक्त कुण्ड या वेदीके आसनपर स्थापित कर दे। कुण्डमें स्थापित करना हो तो योनिमार्गसे अग्निका आधान करे और वेदीपर अपने सामनेकी ओर अग्निकी स्थापना करे॥ १३—१५॥

योनिप्रदेशके पास स्थित विद्वान् पुरुष समस्त कुण्डको अग्निसे संयुक्त करे। साथ ही यह भावना करे कि अपनी नाभिके भीतर जो अग्निदेव विराजमान हैं, वे ही नाभिरन्ध्रसे चिनगारीके रूपमें निकलकर बाह्य अग्निमें मण्डलाकार होकर लीन हुए हैं॥ १६½॥

अग्निपर समिधा रखनेसे लेकर घीके संस्कारपर्यन्त सारा कार्य मन्त्रज्ञ पुरुष अपने गृह्यसूत्रमें बताये हुए क्रमसे मूलमन्त्रद्वारा सम्पन्न करे। तदनन्तर शिवमूर्तिकी पूजा करके दक्षिण पार्श्वमें मन्त्र-न्यास करे और घृतमें धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे॥ १७—१८½॥

स्रुक् और स्रुवा—ये दोनों धातुके बने हुए हों तो ग्रहण करनेयोग्य हैं। परंतु काँसे, लोहे और शीशेके बने हुए स्रुक्, स्रुवाको नहीं ग्रहण करना चाहिये अथवा यज्ञसम्बन्धी काष्ठके बने हुए स्रुक्, स्रुवा भी ग्राह्य हैं। स्मृति या शिल्पशास्त्रमें जो विहित हों, वे भी ग्राह्य हैं अथवा ब्रह्मवृक्ष (पलास या गूलर) आदिके छिद्ररहित तथा ऊपरकी ओर उभारवाले बिचले दो पत्ते लेकर उन्हें कुशसे पोंछे और अग्निमें तपाकर फिर उनका प्रोक्षण करे। [उन्हीं पत्तोंको स्रुक् और स्रुवाका रूप दे] उनमें घी उठाये और अपने गृह्यसूत्रमें बताये हुए क्रमसे शिवबीज (ॐ)-सहित आठ बीजाक्षरोंद्वारा अग्निमें आहुति दे। इससे अग्निका संस्कार सम्पन्न होता है॥ १९—२१½॥

वे बीज इस प्रकार हैं—**भ्रुं स्तुं ब्रुं श्रुं पुं ड्रुं द्रुं।** ये सात हैं, इनमें शिवबीज **(ॐ)**-को सम्मिलित कर लेनेपर आठ बीजाक्षर होते हैं। उपर्युक्त सात बीज क्रमशः अग्निकी सात जिह्वाओंके हैं। उनकी मध्यमा जिह्वाका नाम बहुरूपा है। उसकी तीन शिखाएँ हैं। उनमेंसे एक शिखा दक्षिणमें और दूसरी वाम दिशा (उत्तर)-में प्रज्वलित होती है और बीचवाली शिखा बीचमें ही प्रकाशित होती है। ईशानकोणमें जो जिह्वा है, उसका नाम हिरण्या है। पूर्वदिशामें विद्यमान जिह्वा कनका नामसे प्रसिद्ध है। अग्निकोणमें रक्ता, नैर्ऋत्यकोणमें कृष्णा और वायव्यकोणमें सुप्रभा नामकी जिह्वा प्रकाशित होती है। इनके अतिरिक्त पश्चिममें जो जिह्वा प्रज्वलित होती है, उसका नाम मरुत् है। इन सबकी प्रभा अपने-अपने नामके अनुरूप है॥ २२—२५॥

अपने-अपने बीजके अनन्तर क्रमशः इनका नाम लेना चाहिये और नामके अन्तमें स्वाहाका प्रयोग करना चाहिये। इस तरह जो जिह्वामन्त्र* बनते हैं, उनके द्वारा क्रमशः प्रत्येक जिह्वाके लिये एक-एक घीकी आहुति दे, परंतु मध्यमाकी तीन जिह्वाओंके लिये तीन आहुतियाँ दे। कुण्डके मध्यभागमें **'रं वह्नये स्वाहा'** बोलकर तीन आहुतियाँ दे। ये आहुतियाँ घी अथवा समिधासे देनी चाहिये। आहुति देनेके पश्चात् अग्निमें जलका सेचन करे॥ २६-२७॥

* ओं भ्रुं त्रिशिखायै बहुरूपायै स्वाहा (दक्षिणे मध्ये उत्तरे च) ३। ओं स्तुं हिरण्यायै स्वाहा (ऐशान्याम्) १। ओं ब्रुं कनकायै स्वाहा (पूर्वस्याम्) १। ओं श्रुं रक्तायै स्वाहा (आग्नेय्याम्) १। ओं पुं कृष्णायै स्वाहा (नैर्ऋत्याम्) १। ओं ड्रुं सुप्रभायै स्वाहा (पश्चिमायाम्) १। ओं द्रुं मरुज्जिह्वायै स्वाहा (वायव्ये) १।

ऐसा करनेपर वह अग्नि भगवान् शिवकी हो जाती है। फिर उसमें शिवके आसनका चिन्तन करे और वहाँ अर्धनारीश्वर भगवान् शिवका आवाहन करके पूजन करे। पाद्य-अर्घ्य आदिसे लेकर दीपदानपर्यन्त पूजन करके अग्निका जलसे प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् समिधाओंकी आहुति दे। वे समिधाएँ पलासकी या गूलर आदि दूसरे यज्ञिय वृक्षकी होनी चाहिये। उनकी लम्बाई बारह अंगुलकी हो। समिधाएँ टेढ़ी न हों। स्वतः सूखी हुई भी न हों। उनके छिलके न उतरे हों तथा उनपर किसी प्रकारकी चोट न हो। सब समिधाएँ एक-सी होनी चाहिये। दस अंगुल लम्बी समिधाएँ भी हवनके लिये विहित हैं। उनकी मोटाई कनिष्ठिका अंगुलिके समान होनी चाहिये अथवा प्रादेशमात्र (अँगूठेसे लेकर तर्जनीपर्यन्त) लम्बी समिधाएँ उपयोगमें लानी चाहिये। यदि उपयुक्त समिधाएँ न मिलें तो जो मिल सकें, उन सबका ही हवन करना चाहिये॥ २८—३०॥

समिधा-हवनके बाद घीकी आहुति दे। घीकी धारा दूर्वादलके समान पतली और चार अंगुल लम्बी हो। उसके बाद अन्नकी आहुति देनी चाहिये, जिसका प्रत्येक ग्रास सोलह-सोलह माशेके बराबर हो। लावा, सरसों, जौ और तिल—इन सबमें घी मिलाकर यथासम्भव भक्ष्य, लेह्य और चोष्यका भी मिश्रण करे तथा इन सबकी यथाशक्ति दस, पाँच या तीन आहुतियाँ दे अथवा एक ही आहुति दे॥ ३१—३३॥

स्रुवासे, समिधासे, स्रुक्से अथवा हाथसे आहुति देनी चाहिये। उसमें भी दिव्य तीर्थसे अथवा ऋषितीर्थसे आहुति देनेका विधान है; यदि उपर्युक्त सभी द्रव्य न मिलें तो किसी एक ही द्रव्यसे श्रद्धापूर्वक आहुति देनी चाहिये। प्रायश्चित्तके लिये मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तीन आहुतियाँ दे॥ ३४-३५॥

फिर होमावशिष्ट घृतसे स्रुक्को भरकर उसके अग्रभागमें फूल रखकर उसे दर्भसहित अधोमुख स्रुवासे ढक दे। इसके बाद खड़ा हो उसे अंजलिमें लेकर **'ओं नमः शिवाय वौषट्'** का उच्चारण करके जौके तुल्य घीकी धाराकी आहुति दे॥ ३६-३७॥

इस प्रकार पूर्णाहुति करके अग्निमें पूर्ववत् जलका छींटा दे। तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका विसर्जन करके अग्निकी रक्षा करे। फिर अग्निका भी विसर्जन करके भावनाद्वारा नाभिमें स्थापित करके नित्य यजन करे॥ ३८½॥

अथवा शिवशास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार वागीश्वरीके गर्भसे प्रकट हुए अग्निदेवको लाकर विधिवत् संस्कार करके उनका पूजन करे। फिर समिधाका आधान करके सब ओरसे परिधियोंका निर्माण करे। इसके बाद वहाँ दो-दो पात्र रखकर शिवका यजन करके प्रोक्षणीपात्रका शोधन करे। उस पात्रके जलसे पूर्वोक्त वस्तुओंका प्रोक्षण करके जलसे भरे हुए प्रणीतापात्रको ईशानकोणमें रखे। घीके संस्कार-तकका सारा कार्य करके स्रुक् और स्रुवाका संशोधन करे॥ ३९—४२॥

तदनन्तर पिता शिवद्वारा माता वागीश्वरीके गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन-संस्कार [की भावना] करके प्रत्येक संस्कारके निमित्त पृथक्-पृथक् आहुति दे और गर्भसे अग्निके उत्पन्न होनेकी भावना करे। उनके तीन पैर, सात हाथ, चार सींग और दो मस्तक हैं। मधुके समान पिंगल-वर्णवाले तीन नेत्र हैं। सिरपर जटाजूट और चन्द्रमाका मुकुट है॥ ४३-४४॥

उनकी अंगकान्ति लाल है। लाल रंगके ही वस्त्र, चन्दन, माला और आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते हैं। सब लक्षणोंसे सम्पन्न, यज्ञोपवीतधारी तथा त्रिगुण मेखलासे युक्त हैं। उनके दायें हाथोंमें शक्ति, स्रुक् और स्रुवा है तथा बायें हाथोंमें तोमर, ताड़का पंखा और घीसे भरा हुआ पात्र है॥ ४५-४६॥

इस आकृतिमें उत्पन्न हुए अग्निदेवका ध्यान करके उनका 'जातकर्म' संस्कार करे। तत्पश्चात् नालच्छेदन करके सूतककी शुद्धि करे। फिर आहुति देकर उस शिवसम्बन्धी अग्निका रुचि नाम रखे। इसके बाद माता-पिताका विसर्जन करके चूडाकर्म और उपनयन आदिसे लेकर आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कार

करे।* तत्पश्चात् घृतधारा आदिका होम करके स्विष्टकृत् होम करे॥ ४७—४९॥

इसके बाद 'रं' बीजका उच्चारण करके अग्निपर जलका छींटा डाले। फिर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, ईश, लोकेश्वरगण और उनके अस्त्रोंका सब ओर क्रमशः पूजन करके धूप, दीप आदिकी सिद्धिके लिये अग्निको अलग निकालकर कर्मविधिका ज्ञाता पुरुष पुनः घृतयुक्त पूर्वोक्त होम-द्रव्य तैयार करके अग्निमें आसनकी कल्पना (भावना) करे और उसपर पूर्ववत् महादेव और महादेवीका आवाहन, पूजन करके पूर्णाहुतिपर्यन्त सब कार्य सम्पन्न करे॥ ५०—५२१/२॥

अथवा अपने आश्रमके लिये शास्त्र-विहित अग्निहोत्रकर्म करके उसे भगवान् शिवको समर्पित करे। शिवाश्रमी पुरुष इन सब बातोंको समझकर होमकर्म करे। इसके लिये दूसरी कोई विधि नहीं है। शिवाग्निका भस्म संग्रहणीय है। अग्निहोत्रकर्मका भस्म भी संग्रह करनेके योग्य है॥ ५३-५४॥

वैवाहिक अग्निका भस्म भी जो परिपक्व, पवित्र एवं सुगन्धित हो, संग्रह करके रखना चाहिये। कपिला गायका वह गोबर, जो गिरते समय आकाशमें ही दोनों हाथोंपर रोक लिया गया हो, उत्तम माना गया है। वह यदि अधिक गीला वा अधिक कड़ा न हो, दुर्गन्धयुक्त और सूखा हुआ न हो तो अच्छा माना गया है। यदि वह पृथ्वीपर गिर गया हो तो उसमेंसे ऊपर और नीचेके हिस्सेको त्यागकर बीचका भाग ले ले॥ ५५-५६॥

उस गोबरका पिण्ड बनाकर उसे शिवाग्नि आदिमें मूल-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक छोड़ दे। जब वह पक जाय, तब उसे निकाल ले। उसमें जितना अधपका हो, उसको और जो भाग बहुत अधिक पक गया हो, उसको भी त्यागकर श्वेत भस्म ले ले और उसे घोटकर चूर्ण बना दे। इसके बाद उसे भस्म रखनेके पात्रमें रख दे। भस्मपात्र धातुका, लकड़ीका, मिट्टीका, पत्थरका अथवा और किसी वस्तुका बनवा ले। वह देखनेमें सुन्दर होना चाहिये। उसमें रखे हुए भस्मको धनकी भाँति किसी शुभ, शुद्ध एवं समतल स्थानमें रखे॥ ५७—५९॥

प्रस्थानकालमें स्वयं या सेव्यके द्वारा भस्म ग्रहण करे। किसी अयोग्य या अपवित्रके हाथमें भस्म न दे। नीचे अपवित्र स्थानमें भी न डाले। नीचेके अंगोंसे उसका स्पर्श न करे। भस्मकी न तो उपेक्षा करे और न उसे लाँघे ही। शास्त्रोक्त समयपर उस पात्रसे भस्म लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक अपने ललाट आदिमें लगाये। दूसरे समयमें उसका उपयोग न करे और न अयोग्य व्यक्तियोंके हाथमें उसे दे॥ ६०-६१॥

भगवान् शिवका विसर्जन न हुआ हो, तभी भस्म-संग्रह कर ले; क्योंकि विसर्जनके बाद उसपर चण्डका अधिकार हो जाता है॥ ६२॥

जब अग्निकार्य सम्पन्न कर लिया जाय, तब शिवशास्त्रोक्त मार्गसे अथवा अपने गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिसे बलिकर्म करे। तदनन्तर अच्छी तरह लिपे-पुते मण्डलमें विद्यासनको बिछाकर विद्याकोशकी स्थापना करके क्रमशः पुष्प आदिके द्वारा यजन करे॥ ६३-६४॥

विद्याके सामने गुरुका भी मण्डल बनाकर वहाँ श्रेष्ठ आसन रखे और उसपर पुष्प आदिके द्वारा गुरुकी पूजा करे। तदनन्तर पूजनीय पुरुषोंकी पूजा करे और भूखोंको भोजन कराये। इसके बाद स्वयं सुखपूर्वक शुद्ध अन्न भोजन करे॥ ६५-६६॥

वह अन्न तत्काल भगवान् शिवको निवेदित किया गया हो अथवा उनका प्रसाद हो। उसे आत्मशुद्धिके लिये श्रद्धापूर्वक भोजन करे। जो अन्न चण्डको समर्पित हो, उसे लोभवश ग्रहण न करे। गन्ध और पुष्पमाला आदि जो अन्य वस्तुएँ हैं, उनके लिये भी यह विधि समान ही है अर्थात् चण्डका भाग होनेपर उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिये। वहाँ विद्वान् पुरुष 'मैं ही शिव हूँ' ऐसी बुद्धि न करे॥ ६७-६८॥

* उपनयनसे आप्तोर्यामपर्यन्त संस्कारोंकी नामावली इस प्रकार है—उपनयन, व्रतबन्ध, समावर्तन, विवाह, उपाकर्म, उत्सर्जन, (सात पाक-यज्ञ—) हुत, प्रहुत, आहुत, शूलगव, बलिहरण, प्रत्यवरोहण, अष्टकाहोम, (सात हविर्यज्ञ-संस्था—) अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, आग्रयणेष्टि, निरूढपशुबन्ध, सौत्रामणि, (सात सोमयज्ञ-संस्था—) अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम।

भोजन और आचमन करके शिवका मन-ही-मन चिन्तन करते हुए मूलमन्त्रका उच्चारण करे। शेष समय शिवशास्त्रकी कथाके श्रवण आदि योग्य कार्योंमें बिताये। रातका प्रथम प्रहर बीत जानेपर मनोहर पूजा करके शिव और शिवाके लिये एक परम सुन्दर शय्या प्रस्तुत करे॥ ६९-७०॥

उसके साथ ही भक्ष्य, भोज्य, वस्त्र, चन्दन और पुष्पमाला आदि भी रख दे। मनसे और क्रियाद्वारा भी सब सुन्दर व्यवस्था करके पवित्र हो महादेवजी और महादेवीके चरणोंके निकट शयन करे। यदि उपासक गृहस्थ हो तो वह वहाँ अपनी पत्नीके साथ शयन करे। जो गृहस्थ न हों, वे अकेले ही सोयें॥ ७१-७२॥

उषःकाल आया जान सर्वप्रथम मूलमन्त्रका आवर्तन करे और मन-ही-मन पार्वतीदेवी तथा पार्षदोंसहित अविनाशी भगवान् शिवको प्रणाम करके देशकालोचित कार्य तथा शौच आदि कृत्य पूर्ण करे। फिर यथाशक्ति शंख आदि वाद्योंकी दिव्य ध्वनियोंसे महादेव और महादेवीको जगाये। इसके बाद उस समय खिले हुए परम सुगन्धित पुष्पोंद्वारा शिवा और शिवकी पूजा करके पूर्वोक्त कार्य आरम्भ करे॥ ७३—७५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें अग्निकार्यवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

शिवाश्रमसेवियोंके लिये नित्य-नैमित्तिक कर्मकी विधिका वर्णन

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] अब मैं शिवाश्रमका सेवन करनेवालोंके लिये शिवशास्त्रमें कथित मार्गसे नैमित्तिकविधिक्रमका वर्णन करूँगा॥ १॥

सभी मासोंमें दोनों ही पक्षोंकी अष्टमी, चतुर्दशी तिथियों तथा पर्वके अवसरपर, अयनमें, विषुवकालमें तथा विशेषकर ग्रहणोंमें अधिक रूपमें अथवा अपने सामर्थ्यके अनुसार शिवकी महापूजा करनी चाहिये॥ २-३॥

व्रतीको चाहिये कि प्रत्येक मासमें विधिके अनुसार ब्रह्मकूर्च बनाकर उससे शिवजीको स्नान कराकर शेष [ब्रह्मकूर्च]-का पान करे। बहुत बड़े ब्रह्महत्या आदि पापोंकी भी निष्कृति ब्रह्मकूर्चके पानसे हो जाती है, कुछ भी निष्कृति शेष नहीं रह जाती है॥ ४-५॥

पौष महीनेमें पुष्य नक्षत्रमें शिवजीका नीराजन करे और माघ महीनेमें मघा नामक नक्षत्रमें घृत तथा कम्बलका दान करे। फाल्गुनमासमें उत्तराफाल्गुनीयुक्त पूर्णिमाके दिन महोत्सवका प्रारम्भ करे और चैत्रमासमें चित्रानक्षत्रयुक्त पूर्णिमाको यथाविधि दोलनोत्सव करे॥ ६-७॥

वैशाखमासमें विशाखानक्षत्रमें पुष्पमहालय करना चाहिये। ज्येष्ठमासमें मूल [ज्येष्ठा]-संज्ञक नक्षत्रमें शीतलजलयुक्त कुम्भका दान करना चाहिये। आषाढ़मासमें उत्तराषाढ़ानक्षत्रमें पवित्रारोपण करना चाहिये और सावन महीनेमें श्रविष्ठा (श्रवण) नामक नक्षत्रमें अन्य प्राकृत मण्डल बनाने चाहिये। उसके बाद भाद्रपदमासकी पूर्णिमाको पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रयुक्त दिनमें [मन्त्रोंसे प्रोक्षण एवं] जलविहार करवाना चाहिये। तदनन्तर आश्विनमासकी पूर्णिमाको खीर तथा नये चावलका भात निवेदित करे, पुनः उसीसे शतभिषानक्षत्रमें हवन करे॥ ८—११॥

कृत्तिकानक्षत्रयुक्त कार्तिकमासमें हजार दीपोंका दान करना चाहिये। मार्गशीर्ष (अगहन)-मासमें आर्द्रानक्षत्रमें घृतसे शिवजीको स्नान कराना चाहिये॥ १२॥

यदि उन समयोंमें यह सब करनेमें असमर्थ हो, तो उत्सव, सभा, महापूजा अथवा अधिक अर्चन करे। घरमें [विवाहादि] मांगलिक कृत्य होनेपर, प्रशस्त कर्मोंमें, मनके दुखी होनेपर, दुराचारमें, दुःस्वप्नमें, दुष्टोंका दर्शन होनेपर, उपद्रव उपस्थित होनेपर, अन्य अशुभ निमित्त होनेपर अथवा प्रबल रोग होनेपर स्नान-पूजा-जप-ध्यान-होम-दान आदि क्रियाएँ उद्देश्यके अनुसार पुरश्चरणपूर्वक करे। संस्कृत शिवाग्निमें पुनः सन्धान

[होमादि] करे॥ १३—१६॥

जो मनुष्य इस प्रकार सावधान होकर नित्य शिवधर्मपरायण रहता है, उसे महेश्वर एक ही जन्ममें मुक्ति प्रदान कर देते हैं। जो नित्यनैमित्तिक कर्मोंमें इसे यथोचित रूपसे करता है, वह श्रीकण्ठनाथके दिव्य आदिलोकको जाता है। मनुष्य वहाँपर सौ करोड़ कल्पोंतक महान् सुखोंको भोगकर कुछ समय बाद वहाँसे लौटकर उमा, कुमार (कार्तिकेय), विष्णु, ब्रह्मा तथा विशेष रूपसे रुद्रके लोकोंको प्राप्त करता है और वहाँपर दीर्घकालतक निवास करके यथोक्त भोगोंको भोगकर पुनः उन पाँचों स्थानोंको पार करके उससे भी ऊपर चला जाता है और वहाँ श्रीकण्ठसे ज्ञान प्राप्तकर वहाँसे शिवलोक चला जाता है॥ १७—२१॥

इन अनुष्ठानोंका आधा करनेवाला भी इसकी दो आवृत्तिसे ही बादमें ज्ञान प्राप्तकर शिवसायुज्य पा जाता है। जो मनुष्य उसके आधेका भी आधा अनुष्ठान करता है, वह शरीरक्षय [के अनन्तर] ब्रह्माण्ड अथवा ऊपरके दो अव्यक्त भुवनोंको पारकर पार्वतीपतिके पौरुष रौद्रस्थानको प्राप्त करके (वहाँ) अनेक हजार युगोंतक अनेक प्रकारके सुखोंका उपभोग कर पुनः पुण्यके क्षीण होनेपर पृथ्वीलोकमें आकर उच्च कुलमें जन्म लेता है॥ २२—२४½॥

वहाँपर भी महातेजस्वी वह पूर्व संस्कारके कारण पशुधर्मोंका त्याग करके शिवधर्ममें संलग्न रहता है और उस धर्मके प्रभावसे ही शिवका ध्यान करके शिवलोकको जाता है। वहाँ विविध सुखोंको भोगकर विद्येश्वरलोकको जाता है और वहाँ विद्येश्वरोंके साथ क्रमसे अनेक भोगोंको भोगकर ब्रह्माण्डके भीतर अथवा बाहर एक बार फिर लौटता है। तदनन्तर उत्तम भक्ति प्राप्त करके उसीसे शिवज्ञानको सिद्धकर शिवसाधर्म्यकी प्राप्ति करके पुनः संसारमें नहीं आता है॥ २५—२८½॥

जो विषयमें आसक्त चित्तवालोंकी भाँति शिवके प्रति अत्यधिक भक्तिपरायण है, वह शिवधर्मोंको करता हुआ अथवा न करता हुआ भी मुक्त हो जाता है, वह एक बार, दो बार अथवा तीन बार जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ २९-३०॥

शिवधर्मका अधिकारी चक्रकी भाँति बार-बार विभिन्न योनियोंमें भ्रमण नहीं करता है। अतः यदि कोई [अपने] कल्याणके लिये प्रयत्नशील हो, तो उसे शिवका आश्रय लेकर जिस किसी भी उपायसे शिवधर्ममें बुद्धि लगानी चाहिये। [गुरु कहे कि] हम किसीको अपनी इच्छासे किसी बन्धनमें आबद्ध नहीं करते हैं, दीक्षाविहीन तथा विवाद करनेवालोंको स्वभावतः यह शिवधर्म रुचिकर नहीं लगता, जो पूर्वजन्मकृत पुण्यसंस्कारके गौरवसे युक्त हैं, उन्हें ही [इस शिवधर्ममें] रुचि होती है। जो जगत्‌को सृष्टि आदिका मूल कारण माननेवाले हैं, उनमें यह शिवधर्म आरूढ़ होनेमें समर्थ नहीं हो पाता, अतएव यदि अपना कल्याण अभीष्ट हो तो ऐसे व्यक्तिको उसके स्वभावके अनुरूप गुरु शिवधर्ममें दीक्षित करे॥ ३१—३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें नित्यनैमित्तिकविधिवर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

काम्यकर्मका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—हे भगवन्! मैंने आपके मुखसे शिवभक्तोंके लिये शिवद्वारा कही गयी वेदतुल्य प्रामाणिक नित्यनैमित्तिक विधिका श्रवण किया, अब मैं शिवधर्मके अधिकारियोंका जो भी काम्य कर्म है, उसे सुनना चाहता हूँ, आप इस समय उसे बतानेकी कृपा करें॥ १-२॥

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] कुछ कर्म ऐहिक फलात्मक अर्थात् इस लोकमें फल देनेवाले हैं और कुछ आमुष्मिक फलात्मक अर्थात् परलोकमें फल देनेवाले हैं तथा कुछ ऐसे भी हैं, जो इस लोकमें और परलोकमें—दोनों ही स्थानोंपर फल देनेवाले हैं। ये कर्म पाँच प्रकारके

बताये गये हैं। कुछ क्रियामय कर्म हैं, कुछ तपोमय कर्म हैं, कुछ जपमय कर्म हैं, कुछ ध्यानमय कर्म हैं तथा कुछ सर्वमय कर्म हैं। होम, दान तथा अर्चनके भेदसे क्रियामय कर्म क्रमशः [तीन प्रकारके कहे गये] हैं, ये सब शक्तिमानोंके ही सफल होते हैं, दूसरोंके नहीं। परमात्मा महेश शिवकी आज्ञा ही शक्ति है, अतः शिवकी आज्ञासे युक्त होकर द्विजको काम्यकर्म करना चाहिये॥ ३—६१/२॥

[तदनन्तर शिवाश्रमसेवियोंके लिये नैमित्तिक कर्मकी विधि बताकर उपमन्युजीने कहा—यदुनन्दन!] अब मैं काम्य कर्मका वर्णन करूँगा, जो इहलोक और परलोकमें भी फल देनेवाला है। शैवों तथा माहेश्वरोंको क्रमशः भीतर और बाहर इसे करना चाहिये। जैसे शिव और महेश्वरमें यहाँ अत्यन्त भेद नहीं है, उसी प्रकार शैवों और माहेश्वरोंमें भी अधिक भेद नहीं है। जो मनुष्य शिवके आश्रित रहकर ज्ञानयज्ञमें तत्पर होते हैं, वे शैव कहलाते हैं और जो शिवाश्रित भक्त भूतलपर कर्मयज्ञमें संलग्न रहते हैं, वे महान् ईश्वरका यजन करनेके कारण माहेश्वर कहे गये हैं। इसलिये ज्ञानयोगी शैवोंको अपने भीतर [भावनाद्वारा] कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये और कर्मपरायण माहेश्वरोंको बाहर [विहित द्रव्यों तथा उपकरणोंद्वारा] उस [कर्मयज्ञ]-का सम्पादन करना चाहिये। आगे बताये जानेवाले कर्मके प्रयोगमें उनके लिये कोई भेद नहीं है॥ ७—१०१/२॥

गन्ध, वर्ण और रस आदिके द्वारा विधिपूर्वक भूमिकी परीक्षा करके मनोभिलषित स्थानपर आकाशमें चँदोवा तान दे और उस स्थानको भलीभाँति लीप-पोतकर दर्पणके समान स्वच्छ बना दे। तत्पश्चात् शास्त्रोक्त मार्गसे वहाँ पहले पूर्वदिशाकी कल्पना करे। उस दिशामें एक या दो हाथका मण्डल बनाये॥ ११—१३॥

उस मण्डलमें सुन्दर अष्टदल कमल अंकित करे। कमलमें कर्णिका भी होनी चाहिये। यथासम्भव संचित रत्न और सुवर्ण आदिके चूर्णसे उसका निर्माण करे। वह अत्यन्त शोभायमान और पाँच आवरणोंसे युक्त हो। कमलके आठ दलोंमें पूर्वादि क्रमसे अणिमा आदि आठ सिद्धियोंकी कल्पना करे तथा उनके केसरोंमें शक्तिसहित वामदेव आदि आठ रुद्रोंको पूर्वादि दलके क्रमसे स्थापित करे। कमलकी कर्णिकामें वैराग्यको स्थान दे और बीजोंमें नवशक्तियोंकी स्थापना करे॥ १४—१६॥

कमलके कन्दमें शिवसम्बन्धी धर्म और नालमें शिवसम्बन्धी ज्ञानकी भावना करे। कर्णिकाके ऊपर अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलकी भावना करे॥ १७॥

इन मण्डलोंके ऊपर शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व और आत्मतत्त्वका चिन्तन करे। सम्पूर्ण कमलासनके ऊपर सुखपूर्वक विराजमान और नाना प्रकारके विचित्र पुष्पोंसे अलंकृत, पाँच आवरणोंसहित भगवान् शिवका माता पार्वतीके साथ पूजन करे॥ १८१/२॥

उनकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल है। वे सतत प्रसन्न रहते हैं। उनकी प्रभा शीतल है। मस्तकपर विद्युन्मण्डलके समान चमकीला जटारूप मुकुट उनकी शोभा बढ़ाता है। वे व्याघ्रचर्म धारण किये हुए हैं। उनके मुखारविन्दपर कुछ-कुछ मन्द मुसकानकी छटा छा रही है॥ १९-२०॥

उनके हाथकी हथेलियाँ और पैरोंके तलवे लाल कमलके समान अरुण प्रभासे उद्भासित हैं। वे भगवान् शिव समस्त शुभलक्षणोंसे सम्पन्न और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके हाथोंमें उत्तमोत्तम दिव्य आयुध शोभा पा रहे हैं और अंगोंमें दिव्य चन्दनका लेप लगा हुआ है। उनके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। अर्धचन्द्र उनकी शिखाके मणि हैं॥ २१-२२॥

उनका पूर्ववर्ती मुख प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण प्रभासे उद्भासित एवं सौम्य है। उसमें तीन नेत्ररूपी कमल खिले हुए हैं तथा सिरपर बालचन्द्रमाका मुकुट शोभा पाता है॥ २३॥

दक्षिणमुख नील जलधरके समान श्याम प्रभासे भासित होता है। उसकी भौंहें टेढ़ी हैं। वह देखनेमें भयानक है। उसमें गोलाकार लाल-लाल आँखें दृष्टिगोचर होती हैं। दाढ़ोंके कारण वह मुख विकराल जान पड़ता है। उसका पराभव करना किसीके लिये भी कठिन है। उसके अधरपल्लव फड़कते रहते हैं। उत्तरवर्ती मुख मूँगेकी भाँति लाल है। काले-काले केशपाश उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उसमें विभ्रमविलाससे युक्त तीन नेत्र हैं और उसका मस्तक

अर्द्धचन्द्रमय मुकुटसे विभूषित है। भगवान् शिवका पश्चिम मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल तथा तीन नेत्रोंसे प्रकाशमान है। उसका मस्तक चन्द्रलेखाकी शोभा धारण करता है। वह मुख देखनेमें सौम्य है और मन्द मुसकानकी शोभासे उपासकोंके मनको मोहे लेता है। उनका पाँचवाँ मुख स्फटिकमणिके समान निर्मल, चन्द्रलेखासे समुज्ज्वल, अत्यन्त सौम्य तथा तीन प्रफुल्ल नेत्रकमलोंसे प्रकाशमान है॥ २४—२७१/२ ॥

भगवान् शिव अपने दाहिने हाथोंमें शूल, परशु, वज्र, खड्ग और अग्नि धारण करके उन सबकी प्रभासे प्रकाशित होते हैं तथा बायें हाथोंमें नाग, बाण, घण्टा, पाश तथा अंकुश उनकी शोभा बढ़ाते हैं॥ २८१/२ ॥

पैरोंसे लेकर घुटनोंतकका भाग निवृत्तिकलासे सम्बद्ध है। उससे ऊपर नाभितकका भाग प्रतिष्ठाकलासे, कण्ठतकका भाग विद्याकलासे, ललाटतकका भाग शान्तिकलासे और उसके ऊपरका भाग शान्त्यतीताकलासे संयुक्त है॥ २९-३० ॥

इस प्रकार वे पंचाध्वव्यापी तथा साक्षात् पंचकलामय शरीरधारी हैं। ईशानमन्त्र उनका मुकुट है। तत्पुरुषमन्त्र उन पुरातनदेवका मुख है। अघोरमन्त्र हृदय है। वामदेवमन्त्र उन महेश्वरका गुह्यभाग है और सद्योजातमन्त्र उनका युगल चरण है। उनकी मूर्ति अड़तीस कलामयी* है॥ ३१-३२ ॥

परमेश्वर शिवका विग्रह मातृका-(वर्णमाला-) मय, पंचब्रह्म (**'ईशानः सर्वविद्यानाम्'** इत्यादि पाँच मन्त्र)-मय, प्रणवमय तथा हंसशक्तिसे सम्पन्न है। इच्छाशक्ति उनके अंकमें आरूढ़ है, ज्ञानशक्ति दक्षिण-भागमें है तथा क्रियाशक्ति वामभागमें विराजमान है। वे त्रितत्त्वमय हैं। अर्थात् आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व उनके स्वरूप हैं। वे सदाशिव साक्षात् विद्यामूर्ति हैं। इस प्रकार उनका ध्यान करना चाहिये॥ ३३—३४१/२ ॥

मूलमन्त्रसे मूर्तिकी कल्पना और सकलीकरणकी क्रिया करके मूलमन्त्रसे ही यथोचित रीतिसे [क्रमशः पाद्य आदि] विशेषार्घ्यपर्यन्त पूजन करे। फिर पराशक्तिके साथ साक्षात् मूर्तिमान् शिवका पूर्वोक्त मूर्तिमें आवाहन करके सदसद्व्यक्तिरहित परमेश्वर महादेवका गन्धादि पंचोपचारोंसे पूजन करे॥ ३५—३७ ॥

पाँच ब्रह्ममन्त्रोंसे, छः अंगमन्त्रोंसे, मातृकामन्त्रसे, प्रणवसे, शक्तियुक्त शिव-मन्त्रसे, शान्त तथा अन्य वेदमन्त्रोंसे अथवा केवल शिवमन्त्रसे उन परम देवका पूजन करे। पाद्यसे लेकर मुखशुद्धिपर्यन्त पूजन सम्पन्न करके इष्टदेवका विसर्जन किये बिना ही क्रमशः पाँच आवरणोंकी पूजा आरम्भ करे॥ ३८—४० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें काम्यकर्मवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

आवरणपूजाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महिमाका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं— [यदुनन्दन!] पहले शिवा और शिवके दायें और बायें भागमें क्रमशः गणेश और कार्तिकेयका गन्ध आदि पाँच [उपचारों]-द्वारा पूजन करे॥ १ ॥

फिर इन सबके चारों ओर ईशानसे लेकर सद्योजातपर्यन्त पाँच ब्रह्ममूर्तियोंका शक्तिसहित क्रमशः पूजन करे। यह प्रथम आवरणमें किया जानेवाला पूजन है। उसी आवरणमें हृदय आदि छः अंगों तथा शिव और शिवाका अग्निकोणसे लेकर पूर्वदिशापर्यन्त आठ दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे॥ २-३ ॥

वहीं वामा आदि शक्तियोंके साथ वाम आदि आठ

* कला, काल, नियति, विद्या, राग, प्रकृति और गुण—ये सात तत्त्व, पंचभूत, पंचतन्मात्रा, दस इन्द्रियाँ, चार अन्तःकरण और पाँच शब्द आदि विषय—ये छत्तीस तत्त्व हैं। ये सब तत्त्व जीवके शरीरमें होते हैं। परमेश्वरके शरीरको शाक्त (शक्तिस्वरूप एवं चिन्मय) तथा मन्त्रमय बताया गया है। इन दो तत्त्वोंको जोड़ लेनेसे अड़तीस कलाएँ होती हैं। समस्त जड-चेतन परमेश्वरका स्वरूप होनेसे उनकी मूर्तिको अड़तीस कलामयी बताया गया है। अथवा पाँच स्वर और तैंतीस व्यंजनरूप होनेसे उनके शरीरको अड़तीस कलामय कहा गया है।

रुद्रोंकी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः पूजा करे। यह पूजन वैकल्पिक है॥ ४॥

यदुनन्दन! यह मैंने तुमसे प्रथम आवरणका वर्णन किया है। अब प्रेमपूर्वक दूसरे आवरणका वर्णन किया जाता है, श्रद्धापूर्वक सुनो। पूर्व-दिशावाले दलमें अनन्तका और उनके वामभागमें उनकी शक्तिका पूजन करे। दक्षिणदिशावाले दलमें शक्तिसहित सूक्ष्मदेवकी पूजा करे॥ ५-६ ॥

पश्चिमदिशाके दलमें शक्तिसहित शिवोत्तमका, उत्तरदिशावाले दलमें शक्तियुक्त एकनेत्रका, ईशानकोणवाले दलमें एकरुद्र और उनकी शक्तिका, अग्निकोणवाले दलमें त्रिमूर्ति और उनकी शक्तिका, नैर्ऋत्यकोणके दलमें श्रीकण्ठ और उनकी शक्तिका तथा वायव्यकोणवाले दलमें शक्तिसहित शिखण्डीशका पूजन करे॥ ७—९ ॥

समस्त चक्रवर्तियोंकी भी द्वितीय आवरणमें ही पूजा करनी चाहिये। तृतीय आवरणमें शक्तियोंसहित अष्टमूर्तियोंका पूर्वादि आठों दिशाओंमें क्रमशः पूजन करे। भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम और महादेव—ये क्रमशः आठ मूर्तियाँ हैं। इसके बाद उसी आवरणमें शक्तियोंसहित महादेव आदि ग्यारह मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ १०—१२ ॥

महादेव, शिव, रुद्र, शंकर, नीललोहित, ईशान, विजय, भीम, देवदेव, भवोद्भव तथा कपर्दीश (या कपालीश)—ये ग्यारह मूर्तियाँ हैं। इनमेंसे जो प्रथम आठ मूर्तियाँ हैं, उनका अग्निकोणवाले दलसे लेकर पूर्वदिशापर्यन्त आठ दिशाओंमें पूजन करना चाहिये॥ १३-१४॥

देवदेवको पूर्वदिशाके दलमें स्थापित एवं पूजित करे और ईशानका पुनः अग्निकोणमें स्थापन-पूजन करे। फिर इन दोनोंके बीचमें भवोद्भवकी पूजा करे और उन्हींके बाद कपालीश या कपर्दीशका स्थापन-पूजन करना चाहिये। उस तृतीय आवरणमें फिर वृषभराजका पूर्वमें, नन्दीका दक्षिणमें, महाकालका उत्तरमें, शास्ताका अग्निकोणके दलमें, मातृकाओंका दक्षिणदिशाके दलमें, गणेशजीका नैर्ऋत्यकोणके दलमें, कार्तिकेयका पश्चिमदलमें, ज्येष्ठाका वायव्यकोणके दलमें, गौरीका उत्तरदलमें, चण्डका ईशानकोणमें तथा शास्ता एवं नन्दीश्वरके बीचमें मुनीन्द्र वृषभका यजन करे॥ १५—१८॥

महाकालके उत्तरभागमें पिंगलका, शास्ता और मातृकाओंके बीचमें भृंगीश्वरका, मातृकाओं तथा गणेशजीके बीचमें वीरभद्रका, स्कन्द और गणेशजीके बीचमें सरस्वतीदेवीका, ज्येष्ठा और कार्तिकेयके बीचमें शिवचरणोंकी अर्चना करनेवाली श्रीदेवीका, ज्येष्ठा और गणाम्बा (गौरी)-के बीचमें महामोटीकी पूजा करे॥ १९—२१॥

गणाम्बा और चण्डके बीचमें दुर्गादेवीकी पूजा करे। इसी आवरणमें पुनः शिवके अनुचरवर्गकी पूजा करे। इस अनुचरवर्गमें रुद्रगण, प्रमथगण और भूतगण आते हैं। इन सबके विविध रूप हैं और ये सब-के-सब अपनी शक्तियोंके साथ हैं। इनके बाद एकाग्रचित्त हो शिवाके सखीवर्गका भी ध्यान एवं पूजन करना चाहिये॥ २२-२३॥

इस प्रकार तृतीय आवरणके देवताओंका विस्तारपूर्वक पूजन हो जानेपर उसके बाह्यभागमें चतुर्थ आवरणका चिन्तन एवं पूजन करे॥ २४॥

पूर्वदलमें सूर्यका, दक्षिणदलमें चतुर्मुख ब्रह्माका, पश्चिमदलमें रुद्रका और उत्तर दिशाके दलमें भगवान् विष्णुका पूजन करे। इन चारों देवताओंके भी पृथक्-पृथक् आवरण हैं। इनके प्रथम आवरणमें छहों अंगों तथा दीप्ता आदि शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ २५-२६॥

दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा और विद्युता—इनकी क्रमशः पूर्व आदि आठ दिशाओंमें स्थिति है। द्वितीय आवरणमें पूर्वसे लेकर उत्तरतक क्रमशः चार मूर्तियोंकी और उनके बाद उनकी शक्तियोंकी पूजा करे॥ २७-२८॥

आदित्य, भास्कर, भानु और रवि—ये चार मूर्तियाँ क्रमशः पूर्वादि चारों दिशाओंमें पूजनीय हैं। तत्पश्चात् अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु—ये चार मूर्तियाँ भी पूर्वादि दिशाओंमें पूजनीय हैं। पूर्वदिशामें विस्तरा, दक्षिणदिशामें सुतरा, पश्चिमदिशामें बोधिनी और उत्तरदिशामें आप्यायिनीकी पूजा करे। ईशानकोणमें उषाकी, अग्निकोणमें

प्रभाकी, नैर्ऋत्यकोणमें प्राज्ञाकी और वायव्यकोणमें संध्याकी पूजा करे। इस तरह द्वितीय आवरणमें इन सबकी स्थापना करके विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ २९—३१॥

तृतीय आवरणमें सोम, मंगल, बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बुध, विशालबुद्धि बृहस्पति, तेजोनिधि शुक्र, शनैश्चर तथा धूम्रवर्णवाले भयंकर राहु-केतुका पूर्वादि दिशाओंमें पूजन करे अथवा द्वितीय आवरणमें द्वादश आदित्योंकी पूजा करनी चाहिये और तृतीय आवरणमें द्वादश राशियोंकी॥ ३२—३४॥

उसके बाह्य भागमें सात-सात गणोंकी सब ओर पूजा करनी चाहिये। ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों, नागों, अप्सराओं, ग्रामणियों, यक्षों, यातुधानों, सात छन्दोमय अश्वों तथा वालखिल्योंका पूजन करे। इस तरह तृतीय आवरणमें सूर्यदेवका पूजन करनेके पश्चात् तीन आवरणोंसहित ब्रह्माजीका पूजन करे॥ ३५—३७॥

पूर्वदिशामें हिरण्यगर्भका, दक्षिणमें विराट्का, पश्चिमदिशामें कालका और उत्तरदिशामें पुरुषका पूजन करे। हिरण्यगर्भ नामक जो पहले ब्रह्मा हैं, उनकी अंगकान्ति कमलके समान है। काल जन्मसे ही अंजनके समान काले हैं और पुरुष स्फटिकमणिके समान निर्मल हैं। त्रिगुण, राजस, तामस तथा सात्त्विक स्वरूपवाले ये चारों पूर्वादि दिशाके क्रमसे प्रथम आवरणमें ही स्थित हैं॥ ३८—४०॥

द्वितीय आवरणमें पूर्वादि दिशाओंके दलोंमें क्रमशः सनत्कुमार, सनक, सनन्दन और सनातनका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् तीसरे आवरणमें ग्यारह प्रजापतियोंकी पूजा करे। उनमेंसे प्रथम आठका तो पूर्व आदि आठ दिशाओंमें पूजन करे, फिर शेष तीनका पूर्व आदिके क्रमसे अर्थात् पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिममें स्थापन-पूजन करे॥ ४१-४२॥

दक्ष, रुचि, भृगु, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, कश्यप और वसिष्ठ—ये ग्यारह विख्यात प्रजापति हैं। इनके साथ इनकी पत्नियोंका भी क्रमशः पूजन करना चाहिये। प्रसूति, आकूति, ख्याति, सम्भूति, धृति, स्मृति, क्षमा, संनति, अनसूया, देवमाता अदिति तथा अरुन्धती—ये सभी ऋषिपत्नियाँ पतिव्रता, सदा शिव-पूजनपरायणा, कान्तिमती और प्रियदर्शना (परम सुन्दरी) हैं॥ ४३—४६॥

अथवा प्रथम आवरणमें चारों वेदोंका पूजन करे, फिर द्वितीय आवरणमें इतिहास-पुराणोंकी अर्चना करे तथा तृतीय आवरणमें धर्मशास्त्रसहित सम्पूर्ण वैदिक विद्याओंका सब ओर पूजन करना चाहिये॥ ४७-४८॥

चार वेदोंको पूर्वादि चार दिशाओंमें पूजना चाहिये, अन्य ग्रन्थोंको अपनी रुचिके अनुसार आठ या चार भागोंमें बाँटकर सब ओर उनकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार दक्षिणमें तीन आवरणोंसे युक्त ब्रह्माजीकी पूजा करके पश्चिममें आवरणसहित रुद्रका पूजन करे॥ ४९-५०॥

ईशान आदि पाँच ब्रह्म और हृदय आदि छः अंगोंको रुद्रदेवका प्रथम आवरण कहा गया है। द्वितीय आवरण विद्येश्वरमय* है। तृतीय आवरणमें भेद है। अतः उसका वर्णन किया जाता है। उस आवरणमें पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे [त्रिगुणादि] चार मूर्तियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ ५१-५२॥

पूर्वदिशामें पूर्णरूप शिव नामक महादेव पूजित होते हैं, इनकी 'त्रिगुण' संज्ञा है [क्योंकि ये त्रिगुणात्मक जगत्के आश्रय हैं]। दक्षिणदिशामें 'राजस' पुरुषके नामसे प्रसिद्ध सृष्टिकर्ता ब्रह्माका पूजन किया जाता है, ये 'भव' कहलाते हैं। पश्चिम-दिशामें 'तामस' पुरुष अग्निकी पूजा की जाती है, इन्हींको संहारकारी 'हर' कहा गया है। उत्तरदिशामें 'सात्त्विक' पुरुष सुखदायक विष्णुका पूजन किया जाता है। ये ही विश्वपालक 'मृड' हैं॥ ५३-५४॥

इस प्रकार पश्चिमभागमें शम्भुके शिवरूपका, जो

* पाशुपत-दर्शनमें विद्येश्वरोंकी संख्या आठ बतायी गयी है। उनके नाम इस प्रकार हैं—अनन्त, सूक्ष्म, शिवोत्तम, एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी। इनको क्रमशः पूर्व आदि दिशाओंमें स्थापित करके इनकी पूजा करे। द्वितीय आवरणमें इन्हींकी पूजा बतायी गयी है।

[पचीस तत्त्वोंका साक्षी] छब्बीसवाँ* तत्त्व-रूप है, पूजन करके उत्तरदिशामें भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये॥ ५५॥

इनके प्रथम आवरणमें वासुदेवको पूर्वमें, अनिरुद्धको दक्षिणमें, प्रद्युम्नको पश्चिममें और संकर्षणको उत्तरमें स्थापित करके इनकी पूजा करनी चाहिये। यह प्रथम आवरण बताया गया। अब द्वितीय शुभ आवरण बताया जाता है॥ ५६-५७॥

मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, श्रीराम या तीनों राम, आप श्रीकृष्ण और हयग्रीव—ये द्वितीय आवरणमें पूजित होते हैं। तृतीय आवरणमें पूर्वभागमें चक्रकी पूजा करे, दक्षिणभागमें कहीं भी प्रतिहत न होनेवाले नारायणास्त्रका यजन करे, पश्चिममें पांचजन्यका और उत्तरमें शार्ङ्गधनुषकी पूजा करे। इस प्रकार तीन आवरणोंसे युक्त साक्षात् विश्व नामक परम हरि महाविष्णुकी, जो सदा सर्वत्र व्यापक हैं, मूर्तिमें भावना करके पूजा करे। इस तरह विष्णुके चतुर्व्यूहक्रमसे चार मूर्तियोंका पूजन करके क्रमशः उनकी चार शक्तियोंका पूजन करे॥ ५८—६१॥

प्रभाका अग्निकोणमें, सरस्वतीका नैर्ऋत्यकोणमें, गणाम्बिकाका वायव्यकोणमें तथा लक्ष्मीका ईशानकोणमें पूजन करे। इसी प्रकार भानु आदि मूर्तियों और उनकी शक्तियोंका पूजन करके उसी आवरणमें लोकेश्वरोंकी पूजा करे॥ ६२-६३॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, कुबेर तथा ईशान। इस प्रकार चौथे आवरणकी विधिपूर्वक पूजा सम्पन्न करके बाह्यभागमें महेश्वरके आयुधोंकी अर्चना करे॥ ६४-६५॥

ईशानकोणमें तेजस्वी त्रिशूलकी, पूर्वदिशामें वज्रकी, अग्निकोणमें परशुकी, दक्षिणमें बाणकी, नैर्ऋत्यकोणमें खड्गकी, पश्चिममें पाशकी, वायव्यकोणमें अंकुशकी और उत्तरदिशामें पिनाककी पूजा करे। तत्पश्चात् पश्चिमाभिमुख रौद्ररूपधारी क्षेत्रपालका अर्चन करे॥ ६६—६७½॥

इस तरह पंचम आवरणकी पूजाका सम्पादन करके समस्त आवरण देवताओंके बाह्यभागमें अथवा पाँचवें आवरणमें ही मातृकाओंसहित महावृषभ नन्दिकेश्वरका पूर्वदिशामें पूजन करे॥ ६८-६९॥

तदनन्तर समस्त देवयोनियोंकी चारों ओर अर्चना करे। इसके सिवा जो आकाशमें विचरनेवाले ऋषि, सिद्ध, दैत्य, यक्ष, राक्षस, अनन्त आदि नागराज, उन-उन नागेश्वरोंके कुलमें उत्पन्न हुए अन्य नाग, डाकिनी, भूत, वेताल, प्रेत और भैरवोंके नायक, नाना योनियोंमें उत्पन्न हुए अन्य पातालवासी जीव, नदी, समुद्र, पर्वत, वन, सरोवर, पशु, पक्षी, वृक्ष, कीट आदि क्षुद्र योनिके जीव, मनुष्य, नाना प्रकारके आकारवाले मृग, क्षुद्र जन्तु, ब्रह्माण्डके भीतरके लोक, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड, ब्रह्माण्डके बाहरके असंख्य भुवन और उनके अधीश्वर तथा दसों दिशाओंमें स्थित ब्रह्माण्डके आधारभूत रुद्र और गुणजनित, मायाजनित, शक्तिजनित तथा उससे भी परे जो कुछ भी शब्दवाच्य जड-चेतनात्मक प्रपंच है, उन सबको शिवा और शिवके पार्श्वभागमें स्थित जानकर उनका सामान्यरूपसे यजन करे॥ ७०—७६॥

वे सब लोग हाथ जोड़कर मन्द मुसकानयुक्त मुखसे सुशोभित होते हुए प्रेमपूर्वक महादेव और महादेवीका दर्शन कर रहे हैं, ऐसा चिन्तन करना चाहिये। इस तरह आवरण-पूजा सम्पन्न करके विक्षेपकी शान्तिके लिये पुनः देवेश्वर शिवकी अर्चना करनेके पश्चात् पंचाक्षर-मन्त्रका जप करे॥ ७७-७८॥

तदनन्तर शिव और पार्वतीके सम्मुख उत्तम व्यंजनोंसे युक्त तथा अमृतके समान मधुर, शुद्ध एवं मनोहर महाचरुका नैवेद्य निवेदन करे। यह महाचरु बत्तीस आढक (लगभग तीन मन आठ सेर)-का हो तो उत्तम है और कम-से-कम एक आढक (चार सेर)-का हो तो निम्न श्रेणीका माना गया है। अपने वैभवके अनुसार जितना हो सके, महाचरु तैयार करके उसे श्रद्धापूर्वक निवेदित करे॥ ७९-८०॥

* सांख्योक्त २४ प्राकृत तत्त्वोंके साक्षी जीवको पचीसवाँ तत्त्व कहा गया है; जो इससे भी परे हैं, वे सर्वसाक्षी परमात्मा शिव छब्बीसवें तत्त्वरूप हैं।

तदनन्तर जल और ताम्बूल-इलायची आदि निवेदन करके आरती उतारकर शेष पूजा समाप्त करे। यागके उपयोगमें आनेवाले द्रव्य, भोजन, वस्त्र आदिको उत्तम श्रेणीका ही तैयार कराकर दे। भक्तिमान् पुरुष वैभव होते हुए धनव्यय करनेमें कंजूसी न करे॥ ८१-८२॥

जो शठ या कंजूस है और पूजाके प्रति उपेक्षाकी भावना रखता है, वह यदि कृपणतावश कर्मको किसी अंगसे हीन कर दे तो उसके वे काम्य कर्म सफल नहीं होते, ऐसा सत्पुरुषोंका कथन है॥ ८३॥

इसलिये मनुष्य यदि फलसिद्धिका इच्छुक हो तो उपेक्षाभावको त्यागकर सम्पूर्ण अंगोंके योगसे काम्य कर्मोंका सम्पादन करे। इस तरह पूजा समाप्त करके महादेव और महादेवीको प्रणाम करे। फिर भक्तिभावसे मनको एकाग्र करके स्तुतिपाठ करे॥ ८४-८५॥

स्तुतिके पश्चात् साधक उत्सुकतापूर्वक कम-से-कम एक सौ आठ बार और सम्भव हो तो एक हजारसे अधिक बार पंचाक्षरी विद्याका जप करे। तत्पश्चात् क्रमशः विद्या और गुरुकी पूजा करके अपने अभ्युदय और श्रद्धाके अनुसार यज्ञमण्डपके सदस्योंका भी पूजन करे॥ ८६-८७॥

फिर आवरणोंसहित देवेश्वर शिवका विसर्जन करके यज्ञके उपकरणोंसहित वह सारा मण्डल गुरुको अथवा शिवचरणाश्रित भक्तोंको दे दे। अथवा उसे शिवके ही उद्देश्यसे शिवके क्षेत्रमें समर्पित कर दे। अथवा समस्त आवरण-देवताओंका यथोचित रीतिसे पूजन करके सात प्रकारके होमद्रव्योंद्वारा शिवाग्निमें इष्टदेवताका यजन करे॥ ८८—९०॥

यह तीनों लोकोंमें विख्यात योगेश्वर नामक योग है। इससे बढ़कर कोई योग त्रिभुवनमें कहीं नहीं है। संसारमें कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो इससे साध्य न हो। इस लोकमें मिलनेवाला कोई फल हो या परलोकमें, इसके द्वारा सब सुलभ है। यह इसका फल नहीं है, ऐसा कोई नियन्त्रण नहीं किया जा सकता; क्योंकि सम्पूर्ण श्रेयोरूप साध्यका यह श्रेष्ठ साधन है॥ ९१—९३॥

यह निश्चितरूपसे कहा जा सकता है कि पुरुष जो कुछ फल चाहता है, वह सब चिन्तामणिके समान इससे प्राप्त हो सकता है। तथापि किसी क्षुद्र फलके उद्देश्यसे इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि किसी महान्से लघु फलकी इच्छा रखनेवाला पुरुष स्वयं लघुतर हो जाता है॥ ९४-९५॥

महादेवजीके उद्देश्यसे महान् या अल्प जो भी कर्म किया जाय, वह सब सिद्ध होता है। अतः उन्हींके उद्देश्यसे कर्मका प्रयोग करना चाहिये। शत्रु तथा मृत्युपर विजय पाना आदि जो फल दूसरोंसे सिद्ध होनेवाले नहीं हैं, उन्हीं लौकिक या पारलौकिक फलोंके लिये विद्वान् पुरुष इसका प्रयोग करे॥ ९६-९७॥

महापातकोंमें, महान् रोगसे भय आदिमें तथा दुर्भिक्ष आदिमें यदि शान्ति करनेकी आवश्यकता हो तो इसीसे शान्ति करे। अधिक बढ़-बढ़कर बातें बनानेसे क्या लाभ? इस योगको महेश्वर शिवने शैवोंके लिये बड़ी भारी आपत्तिका निवारण करनेवाला अपना निजी अस्त्र बताया है॥ ९८-९९॥

अतः इससे बढ़कर यहाँ अपना कोई रक्षक नहीं है, ऐसा समझकर इस कर्मका प्रयोग करनेवाला पुरुष शुभ फलका भागी होता है। जो प्रतिदिन पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर स्तोत्रमात्रका पाठ करता है, वह भी अभीष्ट प्रयोजनका अष्टमांश फल पा लेता है। जो अर्थका अनुसंधान करते हुए पूर्णिमा, अष्टमी अथवा चतुर्दशीको उपवासपूर्वक स्तोत्रका पाठ करता है, उसे आधा अभीष्ट फल प्राप्त हो जाता है। जो अर्थका अनुसंधान करते हुए लगातार एक मासतक स्तोत्रका पाठ करता है और पूर्णिमा, अष्टमी एवं चतुर्दशीको व्रत रखता है, वह सम्पूर्ण अभीष्ट फलका भागी होता है॥ १००—१०३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शैवोंका काम्यकर्मवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

शिवके पाँच आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्टपूर्ति एवं मंगलकी कामना

उपमन्युरुवाच

स्तोत्रं वक्ष्यामि ते कृष्ण पञ्चावरणमार्गतः।
योगेश्वरमिदं पुण्यं कर्म येन समाप्यते॥

उपमन्यु कहते हैं—हे श्रीकृष्ण! अब मैं तुम्हारे समक्ष पंचावरण-मार्गसे किये जानेवाले [पूजनके अंगभूत] स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिससे यह योगेश्वर नामक पुण्यकर्म पूर्णरूपसे सम्पन्न होता है॥ १॥

जय जय जगदेकनाथ शम्भो
प्रकृतिमनोहर नित्यचित्स्वभाव।
अतिगतकलुषप्रपञ्चवाचा-
मपि मनसां पदवीमतीततत्त्वम्॥

जगत्के एकमात्र रक्षक! नित्य चिन्मयस्वभाव! प्रकृतिमनोहर शम्भो! आपका तत्त्व कलुषराशिसे रहित निर्मल, वाणी तथा मनकी पहुँचसे भी परे है। आपकी जय हो, जय हो॥ २॥

स्वभावनिर्मलाभोग जय सुन्दरचेष्टित।
स्वात्मतुल्यमहाशक्ते जय शुद्धगुणार्णव॥

आपका श्रीविग्रह स्वभावसे ही निर्मल है, आपकी चेष्टा परम सुन्दर है, आपकी जय हो। आपकी महाशक्ति आपके ही तुल्य है। आप विशुद्ध कल्याणमय गुणोंके महासागर हैं, आपकी जय हो॥ ३॥

अनन्तकान्तिसम्पन्न जयासदृशविग्रह।
अतर्क्यमहिमाधार जयानाकुलमङ्गल॥

आप अनन्त कान्तिसे सम्पन्न हैं। आपके श्रीविग्रहकी कहीं तुलना नहीं है, आपकी जय हो। आप अतर्क्य महिमाके आधार हैं तथा शान्तिमय मंगलके निकेतन हैं। आपकी जय हो॥ ४॥

निरञ्जन निराधार जय निष्कारणोदय।
निरन्तरपरानन्द जय निर्वृतिकारण॥

निरंजन (निर्मल), आधाररहित तथा बिना कारणके प्रकट होनेवाले शिव! आपकी जय हो। निरन्तर परमानन्दमय! शान्ति और सुखके कारण! आपकी जय हो॥ ५॥

जयातिपरमैश्वर्य जयातिकरुणास्पद।
जय स्वतन्त्रसर्वस्व जयासदृशवैभव॥

अतिशय उत्कृष्ट ऐश्वर्यसे सुशोभित तथा अत्यन्त करुणाके आधार! आपकी जय हो। प्रभो! आपका सब कुछ स्वतन्त्र है तथा आपके वैभवकी कहीं समता नहीं है; आपकी जय हो, जय हो॥ ६॥

जयावृतमहाविश्व जयानावृत केनचित्।
जयोत्तर समस्तस्य जयात्यन्तनिरुत्तर॥

आपने विराट् विश्वको व्याप्त कर रखा है, किंतु आप किसीसे भी व्याप्त नहीं हैं। आपकी जय हो, जय हो। आप सबसे उत्कृष्ट हैं, किंतु आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। आपकी जय हो, जय हो॥ ७॥

जयाद्भुत जयाक्षुद्र जयाक्षत जयाव्यय।
जयामेय जयामाय जयाभव जयामल॥

आप अद्भुत हैं, आपकी जय हो। आप अक्षुद्र (महान्) हैं, आपकी जय हो। आप अक्षत (निर्विकार) हैं, आपकी जय हो। आप अविनाशी हैं, आपकी जय हो। अप्रमेय परमात्मन्! आपकी जय हो। मायारहित महेश्वर! आपकी जय हो। अजन्मा शिव! आपकी जय हो। निर्मल शंकर! आपकी जय हो॥ ८॥

महाभुज महासार महागुण महाकथ।
महाबल महामाय महारस महारथ॥

महाबाहो! महासार! महागुण! महती कीर्तिकथासे युक्त! महाबली! महामायावी! महान् रसिक तथा महारथ! आपकी जय हो॥ ९॥

नमः परमदेवाय नमः परमहेतवे।
नमः शिवाय शान्ताय नमः शिवतराय ते॥

आप परम आराध्यको नमस्कार है। आप परम कारणको नमस्कार है। शान्त शिवको नमस्कार है और आप परम कल्याणमय प्रभुको नमस्कार है॥ १०॥

त्वदधीनमिदं कृत्स्नं जगद्धि ससुरासुरम्॥
अतस्त्वद्विहितामाज्ञां क्षमते कोऽतिवर्तितुम्॥

देवताओं और असुरोंसहित यह सम्पूर्ण जगत् आपके अधीन है। अत: आपकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है॥ ११-१२॥

अयं पुनर्जनो नित्य भवदेकसमाश्रयः।
भवानतोऽनुगृह्यास्मै प्रार्थितं सम्प्रयच्छतु॥

हे सनातनदेव! यह सेवक एकमात्र आपके ही आश्रित है; अत: आप इसपर अनुग्रह करके इसे इसकी प्रार्थित वस्तु प्रदान करें॥ १३॥

जयाम्बिके जगन्मातर्जय सर्वजगन्मयि।
जयानवधिकैश्वर्ये जयानुपमविग्रहे॥

अम्बिके! जगन्मात:! आपकी जय हो। सर्वजगन्मयि! आपकी जय हो। असीम ऐश्वर्यशालिनि! आपकी जय हो। आपके श्रीविग्रहकी कहीं उपमा नहीं है, आपकी जय हो॥ १४॥

जय वाङ्मनसातीते जयाचिद्ध्वान्तभञ्जिके।
जय जन्मजराहीने जय कालोत्तरोत्तरे॥

मन, वाणीसे अतीत शिवे! आपकी जय हो। अज्ञानान्धकारका भंजन करनेवाली देवि! आपकी जय हो। जन्म और जरासे रहित उमे! आपकी जय हो। कालसे भी अतिशय उत्कृष्ट शक्तिवाली दुर्गे! आपकी जय हो॥ १५॥

जयानेकविधानस्थे जय विश्वेश्वरप्रिये।
जय विश्वसुराराध्ये जय विश्वविजृम्भिणि॥

अनेक प्रकारके विधानोंमें स्थित परमेश्वरि! आपकी जय हो। विश्वनाथप्रिये! आपकी जय हो। समस्त देवताओंकी आराधनीया देवि! आपकी जय हो। सम्पूर्ण विश्वका विस्तार करनेवाली जगदम्बिके! आपकी जय हो॥ १६॥

जय मङ्गलदिव्याङ्गि जय मङ्गलदीपिके।
जय मङ्गलचारित्रे जय मङ्गलदायिनि॥

मंगलमय दिव्य अंगोंवाली देवि! आपकी जय हो। मंगलको प्रकाशित करनेवाली! आपकी जय हो। मंगलमय चरित्रवाली सर्वमंगले! आपकी जय हो। मंगलदायिनि! आपकी जय हो॥ १७॥

नमः परमकल्याणगुणसंचयमूर्तये।
त्वत्तः खलु समुत्पन्नं जगत्त्वय्येव लीयते॥

परम कल्याणमय गुणोंकी आप मूर्ति हैं, आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है, अत: आपमें ही लीन होगा॥ १८॥

त्वद्विनातः फलं दातुमीश्वरोऽपि न शक्नुयात्।
जन्मप्रभृति देवेशि जनोऽयं त्वदुपाश्रितः॥
अतोऽस्य तव भक्तस्य निर्वर्तय मनोरथम्।

देवेश्वरि! अत: आपके बिना ईश्वर भी फल देनेमें समर्थ नहीं हो सकते। यह जन जन्मकालसे ही आपकी शरणमें आया हुआ है। अत: देवि! आप अपने इस भक्तका मनोरथ सिद्ध कीजिये॥ १९½॥

पञ्चवक्त्रो दशभुजः शुद्धस्फटिकसंनिभः॥
वर्णब्रह्मकलादेहो देवः सकलनिष्कलः।
शिवमूर्तिसमारूढः शान्त्यतीतः सदाशिवः।
भक्त्या मयार्चितो मह्यं प्रार्थितं शं प्रयच्छतु॥

प्रभो! आपके पाँच मुख और दस भुजाएँ हैं। आपकी अंगकान्ति शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल है। वर्ण, ब्रह्म और कला आपके विग्रहरूप हैं। आप सकल और निष्कल देवता हैं। शिव-मूर्तिमें सदा व्याप्त रहनेवाले हैं। शान्त्यतीत पदमें विराजमान सदाशिव आप ही हैं। मैंने भक्तिभावसे आपकी अर्चना की है। आप मुझे प्रार्थित कल्याण प्रदान करें॥ २०-२१॥

सदाशिवाङ्कमारूढा शक्तिरिच्छा शिवाह्वया।
जननी सर्वलोकानां प्रयच्छतु मनोरथम्॥

सदाशिवके अंकमें आरूढ़, इच्छाशक्तिस्वरूपा, सर्वलोकजननी शिवा मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ २२॥

शिवयोर्दयितौ पुत्रौ देवौ हेरम्बषण्मुखौ।
शिवानुभावौ सर्वज्ञौ शिवज्ञानामृताशिनौ॥
तृप्तौ परस्परं स्निग्धौ शिवाभ्यां नित्यसत्कृतौ।
सत्कृतौ च सदा देवौ ब्रह्माद्यैस्त्रिदशैरपि॥
सर्वलोकपरित्राणं कर्तुमभ्युदितौ सदा।
स्वेच्छावतारं कुर्वन्तौ स्वांशभेदैरनेकशः॥
ताविमौ शिवयोः पार्श्वे नित्यमित्थं मयार्चितौ।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य प्रार्थितं मे प्रयच्छताम्॥

शिव और पार्वतीके प्रिय पुत्र, शिवके समान प्रभावशाली सर्वज्ञ तथा शिवज्ञानामृतका पान करके तृप्त रहनेवाले देवता गणेश और कार्तिकेय परस्पर स्नेह रखते हैं। शिवा और शिव दोनोंसे सत्कृत हैं तथा ब्रह्मा आदि देवता भी इन दोनों देवोंका सर्वथा सत्कार करते हैं। ये दोनों भाई निरन्तर सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेके लिये उद्यत रहते हैं और अपने विभिन्न अंशोंद्वारा अनेक बार स्वेच्छापूर्वक अवतार धारण करते हैं। वे ही ये दोनों बन्धु शिव और शिवाके पार्श्वभागमें मेरे द्वारा इस प्रकार पूजित हो उन दोनोंकी आज्ञा ले प्रतिदिन मुझे प्रार्थित वस्तु प्रदान करें॥ २३—२६ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशमीशानाख्यं सदाशिवम्।
मूर्द्धाभिमानिनी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः॥
शिवार्चनरतं शान्तं शान्त्यतीतं खमास्थितम्।
पञ्चाक्षरान्तिमं बीजं कलाभिः पञ्चभिर्युतम्॥
प्रथमावरणे पूर्वं शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥

जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल, ईशान नामसे प्रसिद्ध और सदा कल्याणस्वरूप है, परमात्मा शिवकी मूर्धाभिमानिनी मूर्ति है; शिवार्चनमें रत, शान्त, शान्त्यतीतकलामें प्रतिष्ठित, आकाशमण्डलमें स्थित, शिव-पंचाक्षरका अन्तिम बीजस्वरूप, पाँच कलाओंसे युक्त और प्रथम आवरणमें सबसे पहले शक्तिके साथ पूजित है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करे॥ २७—२९ ॥

बालसूर्यप्रतीकाशं पुरुषाख्यं पुरातनम्।
पूर्ववक्त्राभिमानं च शिवस्य परमेष्ठिनः॥
शान्त्यात्मकं मरुत्संस्थं शम्भोः पादार्चने रतम्।
प्रथमं शिवबीजेषु कलासु च चतुष्कलम्॥
पूर्वभागे मया भक्त्या शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥

जो प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुणप्रभासे युक्त, पुरातन, तत्पुरुष नामसे विख्यात, परमेष्ठी शिवके पूर्ववर्ती मुखका अभिमानी, शान्तिकलास्वरूप या शान्ति-कलामें प्रतिष्ठित, वायुमण्डलमें स्थित, शिवचरणार्चनपरायण, शिवके बीजोंमें प्रथम और कलाओंमें चार कलाओंसे युक्त है, मैंने पूर्वदिशामें भक्तिभावसे शक्तिसहित जिसका पूजन किया है, वह पवित्र परब्रह्म शिव मेरी प्रार्थना सफल करे॥ ३०—३२ ॥

अञ्जनाद्रिप्रतीकाशमघोरं घोरविग्रहम्।
देवस्य दक्षिणं वक्त्रं देवदेवपदार्चकम्॥
विद्यापदं समारूढं वह्निमण्डलमध्यगम्।
द्वितीयं शिवबीजेषु कलास्वष्टकलान्वितम्॥
शम्भोर्दक्षिणदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥

जो कज्जलपर्वतके समान श्याम, घोर शरीरवाला एवं अघोर नामसे प्रसिद्ध है, महादेवजीके दक्षिण मुखका अभिमानी तथा देवाधिदेव शिवके चरणोंका पूजक है, विद्याकलापर आरूढ़ और अग्निमण्डलके मध्य विराजमान है, शिवबीजोंमें द्वितीय तथा कलाओंमें अष्टकलायुक्त एवं भगवान् शिवके दक्षिणभागमें शक्तिके साथ पूजित है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करे॥ ३३—३५ ॥

कुङ्कुमक्षोदसंकाशं वामाख्यं वरवेषधृक्।
वक्त्रमुत्तरमीशस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितम्॥
वारिमण्डलमध्यस्थं महादेवार्चने रतम्।
तुरीयं शिवबीजेषु त्रयोदशकलान्वितम्॥
देवस्योत्तरदिग्भागे शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥

जो कुंकुमचूर्ण अथवा केसरयुक्त चन्दनके समान रक्त-पीतवर्णवाला, सुन्दर वेषधारी और वामदेव नामसे प्रसिद्ध है, भगवान् शिवके उत्तरवर्ती मुखका अभिमानी है, प्रतिष्ठाकलामें प्रतिष्ठित है, जलके मण्डलमें विराजमान तथा महादेवजीकी अर्चनामें तत्पर है, शिवबीजोंमें चतुर्थ तथा तेरह कलाओंसे युक्त है और महादेवजीके उत्तरभागमें शक्तिके साथ पूजित हुआ है, वह पवित्र परब्रह्म मेरी प्रार्थना पूर्ण करे॥ ३६—३८ ॥

शङ्खकुन्देन्दुधवलं सद्याख्यं सौम्यलक्षणम्।
शिवस्य पश्चिमं वक्त्रं शिवपादार्चने रतम्॥

निवृत्तिपदनिष्ठं च पृथिव्यां समवस्थितम्।
तृतीयं शिवबीजेषु कलाभिश्चाष्टभिर्युतम्॥
देवस्य पश्चिमे भागे शक्त्या सह समर्चितम्।
पवित्रं परमं ब्रह्म प्रार्थितं मे प्रयच्छतु॥

जो शंख, कुन्द और चन्द्रमाके समान धवल, सौम्य तथा सद्योजात नामसे विख्यात है, भगवान् शिवके पश्चिम मुखका अभिमानी एवं शिवचरणोंकी अर्चनामें रत है, निवृत्तिकलामें प्रतिष्ठित तथा पृथ्वी-मण्डलमें स्थित है, शिवबीजोंमें तृतीय, आठ कलाओंसे युक्त और महादेवजीके पश्चिमभागमें शक्तिके साथ पूजित हुआ है, वह पवित्र परब्रह्म मुझे मेरी प्रार्थित वस्तु दे॥ ३९—४१ ॥

शिवस्य तु शिवायाश्च हृन्मूर्त्ती शिवभाविते।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य ते मे कामं प्रयच्छताम्॥

शिव और शिवाकी हृदयरूपिणी मूर्तियाँ शिवभावसे भावित हो उन्हीं दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मनोरथ पूर्ण करें॥ ४२ ॥

शिवस्य च शिवायाश्च शिखामूर्त्ती शिवाश्रिते।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥

शिव और शिवाकी शिखारूपा मूर्तियाँ शिवके ही आश्रित रहकर उन दोनोंकी आज्ञाका आदर करके मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें॥ ४३ ॥

शिवस्य च शिवायाश्च वर्मणा शिवभाविते।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥

शिव और शिवाकी कवचरूपा मूर्तियाँ शिवभावसे भावित हो शिव-पार्वतीकी आज्ञाका सत्कार करके मेरी कामना सफल करें॥४४॥

शिवस्य च शिवायाश्च नेत्रमूर्त्ती शिवाश्रिते।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥

शिव और शिवाकी नेत्ररूपा मूर्तियाँ शिवके आश्रित रह उन्हीं दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मेरा मनोरथ प्रदान करें॥ ४५ ॥

अस्त्रमूर्त्ती च शिवयोर्नित्यमर्चनतत्परे।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं प्रयच्छताम्॥

शिव और शिवाकी अस्त्ररूपा मूर्तियाँ नित्य उन्हीं दोनोंके अर्चनमें तत्पर रह उनकी आज्ञाका सत्कार करती हुई मुझे मेरी अभीष्ट वस्तु प्रदान करें ॥ ४६ ॥

वामो ज्येष्ठस्तथा रुद्रः कालो विकरणस्तथा।
बलो विकरणश्चैव बलप्रमथनः परः॥
सर्वभूतस्य दमनस्तादृशाश्चाष्टशक्तयः।
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात्॥

वाम, ज्येष्ठ, रुद्र, काल, विकरण, बलविकरण, बलप्रमथन तथा सर्वभूत-दमन—ये आठ शिवमूर्तियाँ तथा इनकी वैसी ही आठ शक्तियाँ—वामा, ज्येष्ठा, रुद्राणी, काली, विकरणी, बलविकरणी, बलप्रमथनी तथा सर्वभूतदमनी—ये सब शिव और शिवाके ही शासनसे मुझे प्रार्थित वस्तु प्रदान करें॥ ४७-४८ ॥

अथानन्तश्च सूक्ष्मश्च शिवश्चाप्येकनेत्रकः।
एकरुद्रस्त्रिमूर्तिश्च श्रीकण्ठश्च शिखण्डिकः॥
तथाष्टौ शक्तयस्तेषां द्वितीयावरणेऽर्चिताः।
ते मे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात्॥

अनन्त, सूक्ष्म, शिव (अथवा शिवोत्तम), एकनेत्र, एकरुद्र, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठ और शिखण्डी—ये आठ विद्येश्वर तथा इनकी वैसी ही आठ शक्तियाँ—अनन्ता, सूक्ष्मा, शिवा (अथवा शिवोत्तमा), एकनेत्रा, एकरुद्रा, त्रिमूर्ति, श्रीकण्ठी और शिखण्डिनी, जिनकी द्वितीय आवरणमें पूजा हुई है, शिवा और शिवके ही शासनसे मेरी मन:कामना पूर्ण करें॥४९-५०॥

भवाद्या मूर्तयश्चाष्टौ तासामपि च शक्तयः।
महादेवादयश्चान्ये तथैकादशमूर्तयः॥
शक्तिभिः सहिताः सर्वे तृतीयावरणे स्थिताः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां दिशन्तु फलमीप्सितम्॥

भव आदि आठ मूर्तियाँ और उनकी शक्तियाँ तथा शक्तियोंसहित महादेव आदि ग्यारह मूर्तियाँ, जिनकी स्थिति तीसरे आवरणमें है, शिव और पार्वतीकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे अभीष्ट फल प्रदान करें॥ ५१-५२ ॥

वृषराजो महातेजा महामेघसमस्वनः।
मेरुमन्दरकैलासहिमाद्रिशिखरोपमः॥
सिताभ्रशिखराकारककुदा परिशोभितः।
महाभोगीन्द्रकल्पेन वालेन च विराजितः॥

रक्तास्यशृङ्गचरणो रक्तप्रायविलोचनः।
पीवरोन्नतसर्वाङ्गः सुचारुगमनोज्ज्वलः॥
प्रशस्तलक्षणः श्रीमान् प्रज्वलन्मणिभूषणः।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोर्ध्वजवाहनः॥
तथा तच्चरणन्यासपावितापरविग्रहः।
गोराजपुरुषः श्रीमाञ् श्रीमच्छूलवरायुधः।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु॥

जो वृषभोंके राजा महातेजस्वी, महान् मेघके समान शब्द करनेवाले, मेरु, मन्दराचल, कैलास और हिमालयके शिखरकी भाँति ऊँचे एवं उज्ज्वल वर्णवाले हैं, श्वेत बादलोंके शिखरकी भाँति ऊँचे ककुद्से शोभित हैं, महानागराज (शेष)-के शरीरकी भाँति पूँछ जिनकी शोभा बढ़ाती है, जिनके मुख, सींग और पैर भी लाल हैं, नेत्र भी प्रायः लाल ही हैं, जिनके सारे अंग मोटे और उन्नत हैं, जो अपनी मनोहर चालसे बड़ी शोभा पाते हैं, जिनमें उत्तम लक्षण विद्यमान हैं, जो चमचमाते हुए मणिमय आभूषणोंसे विभूषित हो अत्यन्त दीप्तिमान् दिखायी देते हैं, जो भगवान् शिवको प्रिय हैं और शिवमें ही अनुरक्त रहते हैं, शिव और शिवा दोनोंके ही जो ध्वज और वाहन हैं तथा उनके चरणोंके स्पर्शसे जिनका पृष्ठभाग परम पवित्र हो गया है, जो गौओंके राजपुरुष हैं, वे श्रेष्ठ और चमकीला त्रिशूल धारण करनेवाले नन्दिकेश्वर वृषभ शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें॥ ५३—५७॥

नन्दीश्वरो महातेजा नगेन्द्रतनयात्मजः।
सनारायणकैर्देवैर्नित्यमभ्यर्च्य वन्दितः॥
शर्वस्यान्तःपुरद्वारि सार्धं परिजनैः स्थितः।
सर्वेश्वरसमप्रख्यः सर्वासुरविमर्दनः॥
सर्वेषां शिवधर्माणामध्यक्षत्वेऽभिषेचितः।
शिवप्रियः शिवासक्तः श्रीमच्छूलवरायुधः॥
शिवाश्रितेषु संसक्तस्त्वनुरक्तश्च तैरपि।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे कामं प्रयच्छतु॥

जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके लिये पुत्रके तुल्य प्रिय हैं, श्रीविष्णु आदि देवताओंद्वारा नित्य पूजित एवं वन्दित हैं, भगवान् शंकरके अन्तःपुरके द्वारपर परिजनोंके साथ खड़े रहते हैं, सर्वेश्वर शिवके समान ही तेजस्वी हैं तथा समस्त असुरोंको कुचल देनेकी शक्ति रखते हैं, शिवधर्मका पालन करनेवाले सम्पूर्ण शिवभक्तोंके अध्यक्षपदपर जिनका अभिषेक हुआ है, जो भगवान् शिवके प्रिय, शिवमें ही अनुरक्त तथा तेजस्वी त्रिशूल नामक श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले हैं, भगवान् शिवके शरणागत भक्तोंपर जिनका स्नेह है तथा शिवभक्तोंका भी जिनमें अनुराग है, वे महातेजस्वी नन्दीश्वर शिव और पार्वतीकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ५८—६१॥

महाकालो महाबाहुर्महादेव इवापरः।
महादेवाश्रितानां तु नित्यमेवाभिरक्षतु॥

दूसरे महादेवके समान महातेजस्वी महाबाहु महाकाल महादेवजीके शरणागत भक्तोंकी नित्य ही रक्षा करें॥ ६२॥

शिवप्रियः शिवासक्तः शिवयोरर्चकः सदा।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

वे भगवान् शिवके प्रिय हैं, भगवान् शिवमें उनकी आसक्ति है तथा वे सदा ही शिव तथा पार्वतीके पूजक हैं, इसलिये शिवा और शिवकी आज्ञाका आदर करके मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ६३॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः शास्ता विष्णोः परा तनुः।
महामोहात्मतनयो मधुमांसासवप्रियः।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु॥

जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके तात्त्विक अर्थके ज्ञाता, भगवान् विष्णुके द्वितीय स्वरूप, सबके शासक तथा महामोहात्मा [कद्रू]-के पुत्र हैं, मधु, फलका गूदा और आसव जिन्हें प्रिय हैं, वे नागराज भगवान् शेष शिव और पार्वतीकी आज्ञाको सामने रखते हुए मेरी इच्छाको पूर्ण करें॥६४॥

ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा।
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डविक्रमा॥
एता वै मातरः सप्त सर्वलोकस्य मातरः।
प्रार्थितं मे प्रयच्छन्तु परमेश्वरशासनात्॥

ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री तथा प्रचण्ड पराक्रमशालिनी चामुण्डादेवी—ये सर्वलोकजननी सात माताएँ परमेश्वर शिवके आदेशसे मुझे मेरी प्रार्थित वस्तु प्रदान करें॥६५-६६॥

मत्तमातङ्गवदनो गङ्गोमाशङ्करात्मजः।
आकाशदेहो दिग्बाहुः सोमसूर्याग्निलोचनः॥
ऐरावतादिभिर्दिव्यैर्दिग्गजैर्नित्यमर्चितः।
शिवज्ञानमदोद्भिन्नस्त्रिदशानामविघ्नकृत्॥
विघ्नकृच्चासुरादीनां विघ्नेशः शिवभावितः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

जिनका मतवाले हाथीका-सा मुख है; जो गंगा, उमा और शिवके पुत्र हैं; आकाश जिनका शरीर है, दिशाएँ भुजाएँ हैं तथा चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके तीन नेत्र हैं; ऐरावत आदि दिव्य दिग्गज जिनकी नित्य पूजा करते हैं, जिनके मस्तकसे शिवज्ञानमय मदकी धारा बहती रहती है, जो देवताओंके विघ्नका निवारण करते और असुर आदिके कार्योंमें विघ्न डालते रहते हैं, वे विघ्नराज गणेश शिवसे भावित हो शिवा और शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मनोरथ प्रदान करें॥ ६७—६९॥

षण्मुखः शिवसम्भूतः शक्तिवज्रधरः प्रभुः।
अग्नेश्च तनयो देवो ह्यपर्णातनयः पुनः॥
गङ्गायाश्च गणाम्बायाः कृत्तिकानां तथैव च।
विशाखेन च शाखेन नैगमेयेन चावृतः॥
इन्द्रजिच्चेन्द्रसेनानीस्तारकासुरजित्तथा।
शैलानां मेरुमुख्यानां वेधकश्च स्वतेजसा॥
तप्तचामीकरप्रख्यः शतपत्रदलेक्षणः।
कुमारः सुकुमाराणां रूपोदाहरणं महत्॥
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चकः सदा।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

जिनके छः मुख हैं, भगवान् शिवसे जिनकी उत्पत्ति हुई है, जो शक्ति और वज्र धारण करनेवाले प्रभु हैं, अग्निके पुत्र तथा अपर्णा (शिवा)-के बालक हैं; गंगा, गणाम्बा तथा कृत्तिकाओंके भी पुत्र हैं; विशाख, शाख और नैगमेय—इन तीनों भाइयोंसे जो सदा घिरे रहते हैं; जो इन्द्र-विजयी, इन्द्रके सेनापति तथा तारकासुरको परास्त करनेवाले हैं; जिन्होंने अपनी शक्तिसे मेरु आदि पर्वतोंको छेद डाला है, जिनकी अंगकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है, नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर हैं, कुमार नामसे जिनकी प्रसिद्धि है, जो सुकुमारोंके रूपके सबसे बड़े उदाहरण हैं; शिवके प्रिय, शिवमें अनुरक्त तथा शिव-चरणोंकी नित्य अर्चना करनेवाले हैं; वे स्कन्द शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मनोवांछित वस्तु दें॥ ७०—७४॥

ज्येष्ठा वरिष्ठा वरदा शिवयोर्यजने रता।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य सा मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

सर्वश्रेष्ठ और वरदायिनी ज्येष्ठादेवी, जो सदा भगवान् शिव और पार्वतीके पूजनमें लगी रहती हैं, उन दोनोंकी आज्ञा मानकर मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ७५॥

त्रैलोक्यवन्दिता साक्षादुल्काकारा गणाम्बिका।
जगत्सृष्टिविवृद्ध्यर्थं ब्रह्मणाभ्यर्थिता शिवात्॥
शिवायाः प्रविभक्ताया भ्रुवोरन्तरनिस्सृता।
दाक्षायणी सती मेना तथा हैमवती ह्युमा॥
कौशिक्याश्चैव जननी भद्रकाल्यास्तथैव च।
अपर्णायाश्च जननी पाटलायास्तथैव च॥
शिवार्चनरता नित्यं रुद्राणी रुद्रवल्लभा।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां सा मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

त्रैलोक्यवन्दिता, साक्षात् उल्का (लुकाठी)-जैसी आकृतिवाली गणाम्बिका, जो जगत्‌की सृष्टि बढ़ानेके लिये ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर शिवके शरीरसे पृथक् हुई शिवाके दोनों भौंहोंके बीचसे निकली थीं, जो दाक्षायणी, सती, मेना तथा हिमवान्‌कुमारी उमा आदिके रूपमें प्रसिद्ध हैं; कौशिकी, भद्रकाली, अपर्णा और पाटलाकी जननी हैं; नित्य शिवार्चनमें तत्पर रहती हैं एवं रुद्रवल्लभा रुद्राणी कहलाती हैं, वे शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मनोवांछित वस्तु दें॥ ७६—७९॥

चण्डः सर्वगणेशानः शम्भोर्वदनसम्भवः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

समस्त शिवगणोंके स्वामी चण्ड, जो भगवान् शंकरके मुखसे प्रकट हुए हैं, शिवा और शिवकी आज्ञाका आदर करके मुझे अभीष्ट वस्तु प्रदान करें॥ ८०॥

पिङ्गलो गणपः श्रीमाञ् शिवासक्तः शिवप्रियः।
आज्ञया शिवयोरेव स मे कामं प्रयच्छतु॥

भगवान् शिवमें आसक्त और शिवके प्रिय गणपाल श्रीमान् पिंगल शिव और शिवाकी आज्ञासे ही मेरी मन:कामना पूर्ण करें॥ ८१॥

भृङ्गीशो नाम गणपः शिवाराधनतत्परः।
प्रयच्छतु स मे कामं पत्युराज्ञापुरस्सरम्॥

शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले भृंगीश्वर नामक गणपाल अपने स्वामीकी आज्ञा ले मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ८२॥

वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसंनिभः।
भद्रकालीप्रियो नित्यं मातॄणां चाभिरक्षिता॥
यज्ञस्य च शिरोहर्ता दक्षस्य च दुरात्मनः।
उपेन्द्रेन्द्रयमादीनां देवानामङ्गतक्षकः॥
शिवस्यानुचरः श्रीमाञ् शिवशासनपालकः।
शिवयोः शासनादेव स मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

हिम, कुन्द और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, भद्रकालीके प्रिय, सदा ही मातृगणोंकी रक्षा करनेवाले; दुरात्मा दक्ष और उसके यज्ञका सिर काटनेवाले; उपेन्द्र, इन्द्र और यम आदि देवताओंके अंगोंमें घाव कर देनेवाले, शिवके अनुचर तथा शिवकी आज्ञाके पालक, महातेजस्वी श्रीमान् वीरभद्र शिव और शिवाके आदेशसे ही मुझे मेरी मनचाही वस्तु दें॥ ८३—८५॥

सरस्वती महेशस्य वाक्सरोजसमुद्भवा।
शिवयोः पूजने सक्ता सा मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

महेश्वरके मुखकमलसे प्रकट हुई तथा शिव-पार्वतीके पूजनमें आसक्त रहनेवाली वे सरस्वतीदेवी मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ८६॥

विष्णोर्वक्षःस्थिता लक्ष्मीः शिवयोः पूजने रता।
शिवयोः शासनादेव सा मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

भगवान् विष्णुके वक्ष:स्थलमें विराजमान लक्ष्मीदेवी, जो सदा शिव और शिवाके पूजनमें लगी रहती हैं, उन शिवदम्पतीके आदेशसे ही मेरी अभिलाषा पूर्ण करें॥ ८७॥

महामोटी महादेव्याः पादपूजापरायणा।
तस्या एव नियोगेन सा मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

महादेवी पार्वतीके पादपद्मोंकी पूजामें परायण महामोटी उन्हींकी आज्ञासे मेरी मनचाही वस्तु मुझे दें॥ ८८॥

कौशिकी सिंहमारूढा पार्वत्याः परमा सुता।
विष्णोर्निद्रा महामाया महामहिषमर्दिनी॥
निशुम्भशुम्भसंहर्त्री मधुमांसासवप्रिया।
सत्कृत्य शासनं मातुः सा मे दिशतु काङ्क्षितम्॥

पार्वतीकी सबसे श्रेष्ठ पुत्री सिंहवाहिनी कौशिकी, भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा महामाया, महामहिषमर्दिनी, महालक्ष्मी तथा मधु और फलोंके गूदे तथा रसको प्रेमपूर्वक भोग लगानेवाली निशुम्भ-शुम्भसंहारिणी महासरस्वती माता पार्वतीकी आज्ञासे मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ ८९-९०॥

रुद्रा रुद्रसमप्रख्याः प्रमथाः प्रथितौजसः।
भूताख्याश्च महावीर्या महादेवसमप्रभाः॥
नित्यमुक्ता निरुपमा निर्द्वन्द्वा निरुपप्लवाः।
सशक्तयः सानुचराः सर्वलोकनमस्कृताः॥
सर्वेषामेव लोकानां सृष्टिसंहरणक्षमाः।
परस्परानुरक्ताश्च परस्परमनुव्रताः॥
परस्परमतिस्निग्धाः परस्परनमस्कृताः।
शिवप्रियतमा नित्यं शिवलक्षणलक्षिताः॥
सौम्या घोरास्तथा मिश्राश्चान्तरालद्वयात्मिकाः।
विरूपाश्च सुरूपाश्च नानारूपधरास्तथा॥ ॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां ते मे कामं दिशन्तु वै।

रुद्रदेवके समान तेजस्वी रुद्रगण, प्रख्यातपराक्रमी प्रमथगण तथा महादेवजीके समान तेजस्वी, महाबली भूतगण, जो नित्यमुक्त, उपमारहित, निर्द्वन्द्व, उपद्रवशून्य, शक्तियों और अनुचरोंके साथ रहनेवाले, सर्वलोकवन्दित, समस्त लोकोंकी सृष्टि और संहारमें समर्थ, परस्पर एक-दूसरेके अनुरक्त और भक्त, आपसमें अत्यन्त स्नेह रखनेवाले, एक-दूसरेको नमस्कार करनेवाले, शिवके नित्य प्रियतम, शिवके ही चिह्नोंसे लक्षित, सौम्य, घोर, उभय भावयुक्त, दोनोंके बीचमें रहनेवाले द्विरूप, कुरूप, सुरूप और नानारूपधारी हैं, वे शिव और शिवाकी आज्ञाका सत्कार करते हुए मेरा मनोरथ सिद्ध करें॥ ९१—९५१/२॥

देव्याः प्रियसखीवर्गो देवीलक्षणलक्षितः॥
सहितो रुद्रकन्याभिः शक्तिभिश्चाप्यनेकशः।

तृतीयावरणे शम्भोर्भक्त्या नित्यं समर्चितः॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम्।

देवीकी प्रिय सखियोंका समुदाय, जो देवीके ही लक्षणोंसे लक्षित है और भगवान् शिवके तीसरे आवरणमें रुद्रकन्याओं तथा अनेक शक्तियोंसहित नित्य भक्तिभावसे पूजित हुआ है, वह शिव-पार्वतीकी आज्ञाका सत्कार करके मुझे मंगल प्रदान करे॥ ९६-९७१/२॥

दिवाकरो महेशस्य मूर्तिर्दीप्तसुमण्डलः॥
निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः।
अविकारात्मकश्चाद्य एकः सामान्यविक्रियः॥
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात्।
एवं त्रिधा चतुर्धा च विभक्तः पञ्चधा पुनः॥
चतुर्थावरणे शम्भोः पूजितश्चानुगैः सह।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम्।

भगवान् सूर्य महेश्वरकी मूर्ति हैं, उनका सुन्दर मण्डल दीप्तिमान् है, वे निर्गुण होते हुए भी कल्याणमय गुणोंसे युक्त हैं, केवल सद्‌गुणरूप हैं; निर्विकार, सबके आदि कारण और एकमात्र (अद्वितीय) हैं; यह सामान्य जगत् उन्हींकी सृष्टि है; सृष्टि, पालन और संहारके क्रमसे उनके कर्म असाधारण हैं; इस तरह वे तीन, चार और पाँच रूपोंमें विभक्त हैं; भगवान् शिवके चौथे आवरणमें अनुचरोंसहित उनकी पूजा हुई है; वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं; ऐसे सूर्यदेव शिवा और शिवकी आज्ञाका सत्कार करके मुझे मंगल प्रदान करें॥ ९८—१०११/२॥

दिवाकरषडङ्गानि दीप्ताद्याश्चाष्टशक्तयः॥
आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः।
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चादित्यमूर्तयः॥
विस्तरा सुतरा बोधिन्याप्यायिन्यपराः पुनः।
उषा प्रभा तथा प्राज्ञा संध्या चेत्यपि शक्तयः॥
सोमादिकेतुपर्यन्ता ग्रहाश्च शिवभाविताः।
शिवयोराज्ञया नुन्ना मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥
अथ वा द्वादशादित्यास्तथा द्वादश शक्तयः।
ऋषयो देवगन्धर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः॥
ग्रामण्यश्च तथा यक्षा राक्षसाश्च सुरास्तथा।
सप्त सप्तगणाश्चैते सप्तच्छन्दोमया हयाः॥
वालखिल्यादयश्चैव सर्वे शिवपदार्चकाः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥

सूर्यदेवसे सम्बन्ध रखनेवाले छहों अंग, उनकी दीप्ता आदि आठ शक्तियाँ; आदित्य, भास्कर, भानु, रवि, अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु—ये आठ आदित्यमूर्तियाँ और उनकी विस्तरा, सुतरा, बोधिनी, आप्यायिनी तथा उनके अतिरिक्त उषा, प्रभा, प्राज्ञा और संध्या—ये शक्तियाँ; चन्द्रमासे लेकर केतुपर्यन्त शिवभावित ग्रह, बारह आदित्य, उनकी बारह शक्तियाँ तथा ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, अप्सराओंके समूह, ग्रामणी (अगुवा), यक्ष, राक्षस—ये सात-सात संख्यावाले गण, सात छन्दोमय अश्व, वालखिल्य आदि मुनि—ये सब-के-सब भगवान् शिवके चरणारविन्दोंकी अर्चना करनेवाले हैं। ये लोग शिव और पार्वतीकी आज्ञाका आदर करते हुए मुझे मंगल प्रदान करें॥ १०२—१०८॥

ब्रह्माथ देवदेवस्य मूर्तिर्भूमण्डलाधिपः।
चतुःषष्टिगुणैश्वर्यो बुद्धितत्त्वे प्रतिष्ठितः॥
निर्गुणो गुणसंकीर्णस्तथैव गुणकेवलः।
अविकारात्मको देवस्ततः साधारणः पुरः॥
असाधारणकर्मा च सृष्टिस्थितिलयक्रमात्।
एवं त्रिधा चतुर्धा च विभक्तः पञ्चधा पुनः॥
चतुर्थावरणे शम्भोः पूजितश्च सहानुगैः।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम्।

ब्रह्माजी देवाधिदेव महादेवजीकी मूर्ति हैं। भूमण्डलके अधिपति हैं। चौंसठ गुणोंके ऐश्वर्यसे युक्त हैं और बुद्धितत्त्वमें प्रतिष्ठित हैं। वे निर्गुण होते हुए भी अनेक कल्याणमय गुणोंसे सम्पन्न हैं, सद्‌गुणसमूहरूप हैं, निर्विकार देवता हैं, उनके सामने दूसरे सब लोग साधारण हैं। सृष्टि, पालन और संहारके क्रमसे उनके सब कर्म असाधारण हैं। इस तरह वे तीन, चार एवं पाँच आवरणों या स्वरूपोंमें विभक्त हैं। भगवान् शिवके चौथे आवरणमें अनुचरोंसहित उनकी पूजा हुई है; वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके

चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं; ऐसे ब्रह्मदेव शिवा और शिवकी आज्ञाका सत्कार करके मुझे मंगल प्रदान करें॥ १०९—११२ १/२॥

हिरण्यगर्भो लोकेशो विराट् कालश्च पूरुषः॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दश्च सनातनः।
प्रजानां पतयश्चैव दक्षाद्या ब्रह्मसूनवः॥
एकादश सपत्नीका धर्मः संकल्प एव च।
शिवार्चनरताश्चैते शिवभक्तिपरायणाः॥
शिवाज्ञावशगाः सर्वे दिशन्तु मम मङ्गलम्।

हिरण्यगर्भ, लोकेश, विराट्, कालपुरुष, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष आदि ब्रह्मपुत्र, ग्यारह प्रजापति और उनकी पत्नियाँ, धर्म तथा संकल्प—ये सब-के-सब शिवकी अर्चनामें तत्पर रहनेवाले और शिवभक्तिपरायण हैं, अतः शिवकी आज्ञाके अधीन हो मुझे मंगल प्रदान करें॥११३—११५ १/२॥

चत्वारश्च तथा वेदाः सेतिहासपुराणकाः॥
धर्मशास्त्राणि विद्याभिर्वैदिकीभिः समन्विताः।
परस्पराविरुद्धार्थाः शिवप्रकृतिपादकाः॥
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे।

चार वेद, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और वैदिक विद्याएँ—ये सब-के-सब एकमात्र शिवके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाले हैं; अतः इनका तात्पर्य एक-दूसरेके विरुद्ध नहीं है। ये सब शिव और शिवाकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरा मंगल करें॥ ११६—११७ १/२॥

अथ रुद्रो महादेवः शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी॥
वाह्नेयमण्डलाधीशः पौरुषैश्वर्यवान् प्रभुः।
शिवाभिमानसम्पन्नो निर्गुणस्त्रिगुणात्मकः॥
केवलं सात्त्विकश्चापि राजसश्चैव तामसः।
अविकाररतः पूर्वं ततस्तु समविक्रियः॥
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक्।
ब्रह्मणोऽपि शिरश्छेत्ता जनकस्तस्य तत्सुतः॥
जनकस्तनयश्चापि विष्णोरपि नियामकः।
बोधकश्च तयोर्नित्यमनुग्रहकरः प्रभुः॥
अण्डस्यान्तर्बहिर्वर्ती रुद्रो लोकद्वयाधिपः।
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः॥
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मङ्गलम्।

महादेव रुद्र शम्भुकी सबसे गरिष्ठ मूर्ति हैं। ये अग्निमण्डलके अधीश्वर हैं। समस्त पुरुषार्थों और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हैं, सर्वसमर्थ हैं। इनमें शिवत्वका अभिमान जाग्रत् है। ये निर्गुण होते हुए भी त्रिगुणरूप हैं। केवल सात्त्विक, राजस और तामस भी हैं। ये पहलेसे ही निर्विकार हैं। सब कुछ इन्हींकी सृष्टि है। सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण इनका कर्म असाधारण माना जाता है। ये ब्रह्माजीके भी मस्तकका छेदन करनेवाले हैं। ब्रह्माजीके पिता और पुत्र भी हैं। इसी तरह विष्णुके भी जनक और पुत्र हैं तथा उन्हें नियन्त्रणमें रखनेवाले हैं। ये उन दोनों—ब्रह्मा और विष्णुको ज्ञान देनेवाले तथा नित्य उनपर अनुग्रह रखनेवाले हैं। ये प्रभु ब्रह्माण्डके भीतर और बाहर भी व्याप्त हैं तथा इहलोक और परलोक—दोनों लोकोंके अधिपति रुद्र हैं। ये शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके ही चरणारविन्दोंकी अर्चनामें तत्पर हैं, अतः शिवकी आज्ञाको सामने रखते हुए मेरा मंगल करें॥ ११८—१२३ १/२॥

तस्य ब्रह्म षडङ्गानि विद्येशानां तथाष्टकम्॥ ॥
चत्वारो मूर्तिभेदाश्च शिवपूर्वाः शिवार्चकाः।
शिवो भवो हरश्चैव मृडश्चैव तथापरः।
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥

भगवान् शंकरके स्वरूपभूत ईशानादि ब्रह्म, हृदयादि छः अंग, आठ विद्येश्वर, शिव आदि चार मूर्तिभेद—शिव, भव, हर और मृड—ये सब-के-सब शिवके पूजक हैं। ये लोग शिवकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मुझे मंगल प्रदान करें॥ १२४-१२५॥

अथ विष्णुर्महेशस्य शिवस्यैव परा तनुः।
वारितत्त्वाधिपः साक्षादव्यक्तपदसंस्थितः॥
निर्गुणः सत्त्वबहुलस्तथैव गुणकेवलः।
अविकाराभिमानी च त्रिसाधारणविक्रियः॥
असाधारणकर्मा च सृष्ट्यादिकरणात्पृथक्।
दक्षिणाङ्गभवेनापि स्पर्धमानः स्वयम्भुवा॥
आद्येन ब्रह्मणा साक्षात्सृष्टः स्त्रष्टा च तस्य तु।
अण्डस्यान्तर्बहिर्वर्ती विष्णुर्लोकद्वयाधिपः॥

असुरान्तकरश्चक्री शक्रस्यापि तथानुजः।
प्रादुर्भूतश्च दशधा भृगुशापच्छलादिह॥
भूभारनिग्रहार्थाय स्वेच्छयावातरत् क्षितौ।
अप्रमेयबलो मायी मायया मोहयञ्जगत्॥
मूर्तिं कृत्वा महाविष्णुं सदाविष्णुमथापि वा।
वैष्णवैः पूजितो नित्यं मूर्तित्रयमयासने॥
शिवप्रियः शिवासक्तः शिवपादार्चने रतः।
शिवस्याज्ञां पुरस्कृत्य स मे दिशतु मङ्गलम्॥

भगवान् विष्णु महेश्वर शिवके ही उत्कृष्ट स्वरूप हैं। वे जलतत्त्वके अधिपति और साक्षात् अव्यक्त पदपर प्रतिष्ठित हैं। प्राकृत गुणोंसे रहित हैं। उनमें दिव्य सत्त्वगुणकी प्रधानता है तथा वे विशुद्ध गुणस्वरूप हैं। उनमें निर्विकाररूपताका अभिमान है। साधारणतया तीनों लोक उनकी कृति हैं। सृष्टि, पालन आदि करनेके कारण उनके कर्म असाधारण हैं। वे रुद्रके दक्षिणांगसे प्रकट हुए स्वयम्भूके साथ एक समय स्पर्धा कर चुके हैं। साक्षात् आदिब्रह्माद्वारा उत्पादित होकर भी वे उनके भी उत्पादक हैं। ब्रह्माण्डके भीतर और बाहर व्याप्त हैं। इसलिये विष्णु कहलाते हैं। दोनों लोकोंके अधिपति हैं। असुरोंका अन्त करनेवाले, चक्रधारी तथा इन्द्रके भी छोटे भाई हैं। दस अवतारविग्रहोंके रूपमें यहाँ प्रकट हुए हैं। भृगुके शापके बहाने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये उन्होंने स्वेच्छासे इस भूतलपर अवतार लिया है। उनका बल अप्रमेय है। वे मायावी हैं और अपनी मायाद्वारा जगत्को मोहित करते हैं। उन्होंने महाविष्णु अथवा सदाविष्णुका रूप धारण करके त्रिमूर्तिमय आसनपर वैष्णवोंद्वारा नित्य पूजा प्राप्त की है। वे शिवके प्रिय, शिवमें ही आसक्त तथा शिवके चरणोंकी अर्चनामें तत्पर हैं। वे शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके मुझे मंगल प्रदान करें १२६—१३३॥

वासुदेवोऽनिरुद्धश्च प्रद्युम्नश्च ततः परः।
संकर्षणः समाख्याताश्चतस्रो मूर्तयो हरेः॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः।
रामत्रयं तथा कृष्णो विष्णुस्तुरगवक्त्रकः॥
चक्रं नारायणस्यास्त्रं पाञ्चजन्यं च शार्ङ्गकम्।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥

वासुदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा संकर्षण—ये श्रीहरिकी चार विख्यात मूर्तियाँ (व्यूह) हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, श्रीकृष्ण, विष्णु, हयग्रीव, चक्र, नारायणास्त्र, पांचजन्य तथा शार्ङ्गधनुष—ये सब-के-सब शिव और शिवाकी आज्ञाका सत्कार करते हुए मुझे मंगल प्रदान करें॥ १३४—१३६॥

प्रभा सरस्वती गौरी लक्ष्मीश्च शिवभाविता।
शिवयोः शासनादेता मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥

प्रभा, सरस्वती, गौरी तथा शिवके प्रति भक्तिभाव रखनेवाली लक्ष्मी—ये शिव और शिवाके आदेशसे मेरा मंगल करें॥ १३७॥

इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव निर्ऋतिर्वरुणस्तथा।
वायुः सोमः कुबेरश्च तथेशानस्त्रिशूलधृक्॥
सर्वे शिवार्चनरताः शिवसद्भावभाविताः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां मङ्गलं प्रदिशन्तु मे॥

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम, कुबेर तथा त्रिशूलधारी ईशान—ये सब-के-सब शिवसद्भावसे भावित होकर शिवार्चनमें तत्पर रहते हैं। ये शिव और शिवाकी आज्ञाका आदर मानकर मुझे मंगल प्रदान करें॥ १३८-१३९॥

त्रिशूलमथ वज्रं च तथा परशुसायकौ।
खड्गपाशाङ्कुशाश्चैव पिनाकश्चायुधोत्तमः॥
दिव्यायुधानि देवस्य देव्याश्चैतानि नित्यशः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां रक्षां कुर्वन्तु मे सदा॥

त्रिशूल, वज्र, परशु, बाण, खड्ग, पाश, अंकुश और श्रेष्ठ आयुध पिनाक—ये महादेव तथा महादेवीके दिव्य आयुध शिव और शिवाकी आज्ञाका नित्य सत्कार करते हुए सदा मेरी रक्षा करें॥ १४०-१४१॥

वृषरूपधरो देवः सौरभेयो महाबलः।
वडवाख्यानलस्पर्धी पञ्चगोमातृभिर्वृतः॥
वाहनत्वमनुप्राप्तस्तपसा परमेशयोः।
तयोराज्ञां पुरस्कृत्य स मे कामं प्रयच्छतु॥

वृषभरूपधारी देव, जो सुरभिके महाबली पुत्र हैं,

वड़वानलसे भी होड़ लगाते हैं, पाँच गोमाताओंसे घिरे रहते हैं और अपनी तपस्याके प्रभावसे परमेश्वर शिव तथा परमेश्वरी शिवाके वाहन हुए हैं, उन दोनोंकी आज्ञा शिरोधार्य करके मेरी इच्छा पूर्ण करें॥ १४२-१४३॥

नन्दा सुनन्दा सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा।
पञ्च गोमातरस्त्वेताः शिवलोके व्यवस्थिताः॥
शिवभक्तिपरा नित्यं शिवार्चनपरायणाः।
शिवयोः शासनादेव दिशन्तु मम वाञ्छितम्॥

नन्दा, सुनन्दा, सुरभि, सुशीला और सुमना—ये पाँच गोमाताएँ सदा शिवलोकमें निवास करती हैं। ये सब-की-सब नित्य शिवार्चनमें लगी रहती हैं और शिवभक्ति-परायणा हैं, अतः शिव तथा शिवाके आदेशसे ही मेरी इच्छाकी पूर्ति करें॥ १४४-१४५॥

क्षेत्रपालो महातेजा नीलजीमूतसंनिभः।
दंष्ट्राकरालवदनः स्फुरद्रक्ताधरोज्ज्वलः॥
रक्तोर्ध्वमूर्द्धजः श्रीमान् भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः।
रक्तवृत्तत्रिनयनः शशिपन्नगभूषणः॥
नग्नस्त्रिशूलपाशासिकपालोद्यतपाणिकः।
भैरवो भैरवैः सिद्धैर्योगिनीभिश्च संवृतः॥
क्षेत्रे क्षेत्रसमासीनः स्थितो यो रक्षकः सताम्।
शिवप्रणामपरमः शिवसद्भावभावितः॥
शिवाश्रितान् विशेषेण रक्षन् पुत्रानिवौरसान्।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां स मे दिशतु मङ्गलम्॥

क्षेत्रपाल महान् तेजस्वी हैं, उनकी अंगकान्ति नील मेघके समान है और मुख दाढ़ोंके कारण विकराल जान पड़ता है। उनके लाल-लाल ओठ फड़कते रहते हैं, जिससे उनकी शोभा बढ़ जाती है, उनके सिरके बाल भी लाल और ऊपरको उठे हुए हैं। वे तेजस्वी हैं, उनकी भौंहें तथा आँखें भी टेढ़ी ही हैं। वे लाल और गोलाकार तीन नेत्र धारण करते हैं। चन्द्रमा और सर्प उनके आभूषण हैं। वे सदा नंगे ही रहते हैं तथा उनके हाथोंमें त्रिशूल, पाश, खड्ग और कपाल उठे रहते हैं। वे भैरव हैं और भैरवों, सिद्धों तथा योगिनियोंसे घिरे रहते हैं। प्रत्येक क्षेत्रमें उनकी स्थिति है। वे वहाँ सत्पुरुषोंके रक्षक होकर रहते हैं। उनका मस्तक सदा शिवके चरणोंमें झुका रहता है, वे सदा शिवके सद्भावसे भावित हैं तथा शिवके शरणागत भक्तोंकी औरस पुत्रोंकी भाँति विशेष रक्षा करते हैं। ऐसे प्रभावशाली क्षेत्रपाल शिव और शिवाकी आज्ञाका सत्कार करते हुए मुझे मंगल प्रदान करें॥ १४६—१५०॥

तालजङ्घादयस्तस्य प्रथमावरणेऽर्चिताः।
सत्कृत्य शिवयोराज्ञां चत्वारः समवन्तु माम्॥ ॥

तालजंघ आदि शिवके प्रथम आवरणमें पूजित हुए हैं, वे चारों देवता शिवकी आज्ञाका आदर करके मेरी रक्षा करें॥ १५१॥

भैरवाद्याश्च ये चान्ये समन्तात्तस्य वेष्टिताः।
तेऽपि मामनुगृह्णन्तु शिवशासनगौरवात्॥

जो भैरव आदि तथा दूसरे लोग शिवको सब ओरसे घेरकर स्थित हैं, वे भी शिवके आदेशका गौरव मानकर मुझपर अनुग्रह करें॥ १५२॥

नारदाद्याश्च मुनयो दिव्या देवैश्च पूजिताः।
साध्या नागाश्च ये देवा जनलोकनिवासिनः॥
विनिर्वृत्ताधिकाराश्च महर्लोकनिवासिनः।
सप्तर्षयस्तथान्ये वै वैमानिकगणैः सह॥
सर्वे शिवार्चनरताः शिवाज्ञावशवर्तिनः।
शिवयोराज्ञया मह्यं दिशन्तु समकाङ्क्षितम्॥

नारद आदि देवपूजित दिव्य मुनि, साध्य, नाग, जनलोकनिवासी देवता, विशेषाधिकारसे सम्पन्न महर्लोक-निवासी, सप्तर्षि तथा अन्य वैमानिकगण सदाशिवकी अर्चनामें तत्पर रहते हैं। ये सब शिवकी आज्ञाके अधीन हैं, अतः शिवा और शिवकी आज्ञासे मुझे मनोवांछित वस्तु प्रदान करें॥ १५३—१५५॥

गन्धर्वाद्याः पिशाचान्ताश्चतस्रो देवयोनयः।
सिद्धा विद्याधराद्याश्च येऽपि चान्ये नभश्चराः॥
असुरा राक्षसाश्चैव पातालतलवासिनः।
अनन्ताद्याश्च नागेन्द्रा वैनतेयादयो द्विजाः॥
कूष्माण्डाः प्रेतवेताला ग्रहा भूतगणाः परे।
डाकिन्यश्चापि योगिन्यः शाकिन्यश्चापि तादृशाः॥
क्षेत्रारामगृहादीनि तीर्थान्यायतनानि च।
द्वीपाः समुद्रा नद्यश्च नदाश्चान्ये सरांसि च॥

गिरयश्च सुमेर्वाद्याः काननानि समन्ततः।
पशवः पक्षिणो वृक्षाः कृमिकीटादयो मृगाः॥
भुवनान्यपि सर्वाणि भुवनानामधीश्वराः।
अण्डान्यावरणैः सार्धं मासाश्च दश दिग्गजाः॥
वर्णाः पदानि मन्त्राश्च तत्त्वान्यपि सहाधिपैः।
ब्रह्माण्डधारका रुद्रा रुद्राश्चान्ये सशक्तिकाः॥
यच्च किंचिज्जगत्यस्मिन्दृष्टं चानुमितं श्रुतम्।
सर्वे कामं प्रयच्छन्तु शिवयोरेव शासनात्॥

गन्धर्वोंसे लेकर पिशाचपर्यन्त जो चार देवयोनियाँ हैं, जो सिद्ध, विद्याधर, अन्य आकाशचारी, असुर, राक्षस, पातालतलवासी अनन्त आदि नागराज, गरुड आदि दिव्य पक्षी, कूष्माण्ड, प्रेत, वेताल, ग्रह, भूतगण, डाकिनियाँ, योगिनियाँ, शाकिनियाँ तथा वैसी ही और स्त्रियाँ, क्षेत्र, आराम (बगीचे), गृह आदि तीर्थ, देवमन्दिर, द्वीप, समुद्र, नदियाँ, नद, सरोवर, सुमेरु आदि पर्वत, सब ओर फैले हुए वन, पशु, पक्षी, वृक्ष, कृमि, कीट आदि, मृग, समस्त भुवन, भुवनेश्वर, आवरणोंसहित ब्रह्माण्ड, बारह मास, दस दिग्गज, वर्ण, पद, मन्त्र, तत्त्व, उनके अधिपति, ब्रह्माण्डधारक रुद्र, अन्य रुद्र और उनकी शक्तियाँ तथा इस जगत्‌में जो कुछ भी देखा, सुना और अनुमान किया हुआ है—ये सब-के-सब शिवा और शिवकी आज्ञासे मेरा मनोरथ पूर्ण करें॥ १५६—१६३॥

अथ विद्या परा शैवी पशुपाशविमोचिनी।
पञ्चार्थसंहिता दिव्या पशुविद्याबहिष्कृता॥
शास्त्रं च शिवधर्माख्यं धर्माख्यं च तदुत्तरम्।
शैवाख्यं शिवधर्माख्यं पुराणं श्रुतिसम्मितम्॥
शैवागमाश्च ये चान्ये कामिकाद्याश्चतुर्विधाः।
शिवाभ्यामविशेषेण उत्कृत्येह समर्चिताः॥
ताभ्यामेव समाज्ञाता ममाभिप्रेतसिद्धये।
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्ठितम्॥

जो पंच-पुरुषार्थस्वरूपा होनेसे पंचार्था कही गयी है, जिसका स्वरूप दिव्य है तथा जो पशुविद्याकी कोटिसे बाहर है, वह पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाली शैवी परा विद्या, शिवधर्मशास्त्र, शैवधर्म, श्रुतिसम्मत शिवसंज्ञकपुराण, शैवागम तथा धर्मकामादि चतुर्विध पुरुषार्थ, जिन्हें शिव और शिवाके समान ही मानकर उन्हींके समान पूजा दी गयी है, उन्हीं दोनोंकी आज्ञा लेकर मेरे अभीष्टकी सिद्धिके लिये इस कर्मका अनुमोदन करें, इसे सफल और सुसम्पन्न घोषित करें॥ १६४—१६७॥

श्वेताद्या नकुलीशान्ताः सशिष्याश्चापि देशिकाः।
तत्संततीया गुरवो विशेषाद् गुरवो मम॥ ॥
शैवा माहेश्वराश्चैव ज्ञानकर्मपरायणाः।
कर्मेदमनुमन्यन्तां सफलं साध्वनुष्ठितम्॥ ॥

श्वेतसे लेकर नकुलीशपर्यन्त, शिष्य-सहित आचार्यगण, उनकी संतानपरम्परामें उत्पन्न गुरुजन, विशेषतः मेरे गुरु, शैव, माहेश्वर, जो ज्ञान और कर्ममें तत्पर रहनेवाले हैं, मेरे इस कर्मको सफल और सुसम्पन्न मानें॥ १६८-१६९॥

लौकिका ब्राह्मणाः सर्वे क्षत्रियाश्च विशः क्रमात्।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञाः सर्वशास्त्रविशारदाः॥
सांख्या वैशेषिकाश्चैव यौगा नैयायिका नराः।
सौरा ब्राह्मास्तथा रौद्रा वैष्णवाश्चापरे नराः॥
शिष्टाः सर्वे विशिष्टाश्च शिवशासनयन्त्रिताः।
कर्मेदमनुमन्यन्तां ममाभिप्रेतसाधकम्॥

लौकिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वेदवेदांगोंके तत्त्वज्ञ विद्वान्, सर्वशास्त्रकुशल, सांख्यवेत्ता, वैशेषिक, योगशास्त्रके आचार्य, नैयायिक, सूर्योपासक, ब्रह्मोपासक, शैव, वैष्णव तथा अन्य सब शिष्ट और विशिष्ट पुरुष शिवकी आज्ञाके अधीन हो मेरे इस कर्मको अभीष्टसाधक मानें॥ १७०—१७२॥

शैवाः सिद्धान्तमार्गस्थाः शैवाः पाशुपतास्तथा।
शैवा महाव्रतधराः शैवाः कापालिकाः परे॥
शिवाज्ञापालकाः पूज्या ममापि शिवशासनात्।
सर्वे मामनुगृह्णन्तु शंसन्तु सफलक्रियाम्॥

सिद्धान्तमार्गी शैव, पाशुपत शैव, महाव्रतधारी शैव तथा अन्य कापालिक शैव—ये सब-के-सब शिवकी आज्ञाके पालक तथा मेरे भी पूज्य हैं। अतः शिवकी आज्ञासे इन सबका मुझपर अनुग्रह हो और वे इस कार्यको सफल घोषित करें॥ १७३-१७४॥

दक्षिणज्ञाननिष्ठाश्च दक्षिणोत्तरमार्गगाः।
अविरोधेन वर्तन्तां मन्त्रं श्रेयोऽर्थिनो मम॥

जो दक्षिणाचारके ज्ञानमें परिनिष्ठ तथा दक्षिणाचारके उत्कृष्ट मार्गपर चलनेवाले हैं, वे परस्पर विरोध न रखते हुए मन्त्रका जप करें और मेरे कल्याणकामी हों॥ १७५॥

नास्तिकाश्च शठाश्चैव कृतघ्नाश्चैव तामसाः।
पाषण्डाश्चातिपापाश्च वर्तन्तां दूरतो मम॥
बहुभिः किं स्तुतैरत्र येऽपि केऽपि चिदास्तिकाः।
सर्वे मामनुगृह्णन्तु सन्तः शंसन्तु मङ्गलम्॥

नास्तिक, शठ, कृतघ्न, तामस, पाखण्डी और अति पापी प्राणी मुझसे दूर ही रहें। यहाँ बहुतोंकी स्तुतिसे क्या लाभ? जो कोई भी आस्तिक संत हैं, वे सब मुझपर अनुग्रह करें और मेरे मंगल होनेका आशीर्वाद दें॥ १७६-१७७॥

नमः शिवाय साम्बाय ससुतायादिहेतवे।
पञ्चावरणरूपेण प्रपञ्चेनावृताय ते॥

जो पंचावरणरूपी प्रपंचसे घिरे हुए हैं और सबके आदि कारण हैं, उन आप पुत्रसहित साम्ब सदाशिवको मेरा नमस्कार है॥ १७८॥

इत्युक्त्वा दण्डवद् भूमौ प्रणिपत्य शिवं शिवाम्।
जपेत्पञ्चाक्षरीं विद्यामष्टोत्तरशतावराम्॥
तथैव शक्तिविद्यां च जपित्वा तत्समर्पणम्।
कृत्वा तं क्षमयित्वेशं पूजाशेषं समापयेत्॥

ऐसा कहकर शिव और शिवाके उद्देश्यसे भूमिपर दण्डकी भाँति गिरकर प्रणाम करे और कम-से-कम एक सौ आठ बार पंचाक्षरी विद्याका जप करे। इसी प्रकार शक्तिविद्या (**ॐ नमः शिवायै**)-का जप करके उसका समर्पण करे और महादेवजीसे क्षमा माँगकर शेष पूजाकी समाप्ति करे॥ १७९-१८०॥

एतत्पुण्यतमं स्तोत्रं शिवयोर्हृदयंगमम्।
सर्वाभीष्टप्रदं साक्षाद्भुक्तिमुक्त्येकसाधनम्॥

यह परम पुण्यमय स्तोत्र शिव और शिवाके हृदयको अत्यन्त प्रिय है, सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है और भोग तथा मोक्षका एकमात्र साक्षात् साधन है॥ १८१॥

य इदं कीर्तयेन्नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः।
स विधूयाशु पापानि शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥

जो एकाग्रचित्त हो प्रतिदिन इसका कीर्तन अथवा श्रवण करता है, वह सारे पापोंको शीघ्र ही धो-बहाकर भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ १८२॥

गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च वीरहा भ्रूणहापि वा।
शरणागतघाती च मित्रविश्रम्भघातकः॥
दुष्टपापसमाचारो मातृहा पितृहापि वा।
स्तवेनानेन जप्तेन तत्तत्पापात् प्रमुच्यते॥

जो गोहत्यारा, कृतघ्न, वीरघाती, गर्भस्थ शिशुकी हत्या करनेवाला, शरणागतका वध करनेवाला और मित्रके प्रति विश्वासघाती है, दुराचार और पापाचारमें ही लगा रहता है तथा माता और पिताका भी घातक है, वह भी इस स्तोत्रके जपसे तत्काल पाप-मुक्त हो जाता है॥ १८३-१८४॥

दुःस्वप्नादिमहानर्थसूचकेषु भयेषु च।
यदि संकीर्तयेदेतन्न ततोऽनर्थभाग्भवेत्॥

दुःस्वप्न आदि महान् अनर्थसूचक भयोंके उपस्थित होनेपर यदि मनुष्य इस स्तोत्रका कीर्तन करे तो वह कदापि अनर्थका भागी नहीं हो सकता॥ १८५॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं यच्चान्यदपि वाञ्छितम्।
स्तोत्रस्यास्य जपे तिष्ठंस्तत्सर्वं लभते नरः॥

आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा और जो भी मनोवांछित वस्तु है, उन सबको इस स्तोत्रके जपमें संलग्न रहनेवाला पुरुष प्राप्त कर लेता है॥ १८६॥

असम्पूज्य शिवं स्तोत्रजपात्फलमुदाहृतम्।
सम्पूज्य च जपे तस्य फलं वक्तुं न शक्यते॥

शिवकी पूर्वोक्त पूजा न करके केवल स्तोत्रका पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसको यहाँ बताया गया है; परंतु शिवकी पूजा करके इस स्तोत्रका पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता॥ १८७॥

आस्तामियं फलावाप्तिरस्मिन् संकीर्तिते सति।
सार्धमम्बिकया देवः श्रुत्वैव दिवि तिष्ठति॥
तस्मान्नभसि सम्पूज्य देवदेवं सहोमया।
कृताञ्जलिपुटस्तिष्ठन् स्तोत्रमेतदुदीरयेत्॥

यह फलकी प्राप्ति अलग रहे, इस स्तोत्रका कीर्तन करनेपर इसे सुनते ही माता पार्वतीसहित महादेवजी आकाशमें आकर खड़े हो जाते हैं। अत: उस समय उमासहित देवदेव महादेवकी आकाशमें पूजा करके दोनों हाथ जोड़ खड़ा हो जाय और इस स्तोत्रका पाठ करे॥ १८८-१८९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिवमहास्तोत्रवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

ऐहिक फल देनेवाले कर्मों और उनकी विधिका वर्णन, शिव-पूजनकी विधि, शान्ति-पुष्टि आदि विविध काम्य कर्मोंमें विभिन्न हवनीय पदार्थोंके उपयोगका विधान

उपमन्यु कहते हैं—हे श्रीकृष्ण! यह मैंने तुमसे इहलोक और परलोकमें सिद्धि प्रदान करनेवाला क्रम बताया है, जो उत्तम तो है ही, इसमें क्रिया, जप, तप और ध्यानका समुच्चय भी है॥ १॥

अब मैं शिव-भक्तोंके लिये यहीं फल देनेवाले पूजन, होम, जप, ध्यान, तप और दानमय महान् कर्मका वर्णन करता हूँ। मन्त्रार्थके श्रेष्ठ ज्ञाताको चाहिये कि वह पहले मन्त्रको सिद्ध करे, अन्यथा इष्टसिद्धिकारक कर्म भी फलद नहीं होता॥ २-३॥

मन्त्र सिद्ध कर लेनेपर भी, जिस कर्मका फल किसी प्रबल अदृष्टके कारण प्रतिबद्ध हो, उसे विद्वान् पुरुष सहसा न करे। उस प्रतिबन्धकका यहाँ निवारण किया जा सकता है। कर्म करनेके पहले ही शकुन आदि करके उसकी परीक्षा कर ले और प्रतिबन्धकका पता लगनेपर उसे दूर करनेका प्रयत्न करे॥ ४-५॥

जो मनुष्य ऐसा न करके मोहवश ऐहिक फल देनेवाले कर्मका अनुष्ठान करता है, वह उससे फलका भागी नहीं होता और जगत्‌में उपहासका पात्र बनता है। जिस पुरुषको विश्वास न हो, वह ऐहिक फल देनेवाले कर्मका अनुष्ठान कभी न करे; क्योंकि उसके मनमें श्रद्धा नहीं रहती और श्रद्धाहीन पुरुषको उस कर्मका फल नहीं मिलता॥ ६-७॥

किया कर्म निष्फल हो जाय, तो भी उसमें देवताका कोई अपराध नहीं है; क्योंकि शास्त्रोक्त विधिसे ठीक-ठीक कर्म करनेवाले पुरुषोंको यहीं फलकी प्राप्ति देखी जाती है॥ ८॥

जिसने मन्त्रको सिद्ध कर लिया है, प्रतिबन्धकको दूर कर दिया है, मन्त्रपर विश्वास रखता है और मनमें श्रद्धासे युक्त है, वह साधक कर्म करनेपर उसके फलको अवश्य पाता है॥ ९॥

उस कर्मके फलकी प्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यपरायण होना चाहिये। रातमें हविष्य भोजन करे, खीर या फल खाकर रहे, हिंसा आदि जो निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें मनसे भी न करे, सदा अपने शरीरमें भस्म लगाये, सुन्दर एवं पवित्र वेषभूषा धारण करे और पवित्र रहे॥ १०-११॥

इस प्रकार आचारवान् होकर अपने अनुकूल शुभ दिनमें पुष्पमाला आदिसे अलंकृत पूर्वोक्त लक्षणवाले स्थानमें एक हाथ भूमिको गोबरसे लीपकर वहाँ बिछे हुए भद्रासनपर कमल अंकित करे, जो अपने तेजसे प्रकाशमान हो॥ १२-१३॥

वह तपाये हुए सुवर्णके समान रंगवाला हो। उसमें आठ दल हों और केसर भी बना हो। मध्यभागमें वह कर्णिकासे युक्त और सम्पूर्ण रत्नोंसे अलंकृत हो। उसमें अपने आकारके समान ही नाल होनी चाहिये। वैसे स्वर्णनिर्मित कमलपर सम्यग्विधिसे मन-ही-मन अणिमा आदि सब सिद्धियोंकी भावना करे। फिर उसपर रत्नका, सोनेका अथवा स्फटिक मणिका उत्तम लक्षणोंसे युक्त वेदीसहित शिवलिंग स्थापित करे॥ १४—१६॥

उसमें विधि-पूर्वक पार्षदोंसहित अविनाशी साम्ब सदाशिवका आवाहन और पूजन करे। फिर वहाँ साकार

भगवान् महेश्वरकी भावनामयी मूर्तिका निर्माण करे, जिसके चार भुजाएँ और चार मुख हों। वह सब आभूषणोंसे विभूषित हो, उसे व्याघ्रचर्म पहनाया गया हो। उसके मुखपर कुछ-कुछ हास्यकी छटा छा रही हो। उसने अपने दो हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्रा धारण की हो और शेष दो हाथोंमें मृग-मुद्रा और टंक ले रखे हों। अथवा उपासककी रुचिके अनुसार अष्टभुजा मूर्तिकी भावना करनी चाहिये॥ १७—१९॥

उस दशामें वह मूर्ति अपने दाहिने चार हाथोंमें त्रिशूल, परशु, खड्ग और वज्र लिये हो और बायें चार हाथोंमें पाश, अंकुश, खेट और नाग धारण करती हो। उसकी अंगकान्ति प्रातःकालके सूर्यकी भाँति लाल हो और वह अपने प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र धारण करती हो। उस मूर्तिका पूर्ववर्ती मुख सौम्य तथा अपनी आकृतिके अनुरूप ही कान्तिमान् है। दक्षिणवर्ती मुख नील मेघके समान श्याम और देखनेमें भयंकर है। उत्तरवर्ती मुख मूँगेके समान लाल है और सिरकी नीली अलकें उसकी शोभा बढ़ाती हैं॥ २०—२२॥

पश्चिमवर्ती मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, सौम्य तथा चन्द्रकलाधारी है। उस शिवमूर्तिके अंकमें पराशक्ति माहेश्वरी शिवा आरूढ़ हैं। उनकी अवस्था सोलह वर्षकी-सी है। वे सबका मन मोहनेवाली हैं और महालक्ष्मीके नामसे विख्यात हैं॥ २३१/२॥

इस प्रकार भावनामयी मूर्तिका निर्माण और पद्धति क्रमसे सकलीकरण करके उनमें मूर्तिमान् परम कारण शिवका आवाहन और पूजन करे। वहाँ स्नान करानेके लिये कपिला गायके पंचगव्य और पंचामृतका संग्रह करे। विशेषतः चूर्ण और बीजको भी एकत्र करे। फिर पूर्वदिशामें मण्डल बनाकर उसे रत्नचूर्ण आदिसे अलंकृत करके कमलकी कर्णिकामें ईशान-कलशकी स्थापना करे। तत्पश्चात् उसके चारों ओर सद्योजात आदि मूर्तियोंके कलशोंकी स्थापना करे॥ २४—२७॥

इसके बाद पूर्व आदि आठ दिशाओंमें क्रमशः विद्येश्वरके आठ कलशोंकी स्थापना करके उन सबको तीर्थके जलसे भर दे और कण्ठमें सूत लपेट दे। फिर उनके भीतर पवित्र द्रव्य छोड़कर मन्त्र और विधिके साथ साड़ी या धोती आदि वस्त्रसे उन सब कलशोंको चारों ओरसे आच्छादित कर दे॥ २८-२९॥

तदनन्तर मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन सबमें मन्त्रन्यास करके स्नानका समय आनेपर सब प्रकारके मांगलिक शब्दों और वाद्योंके साथ पंचगव्य आदिके द्वारा परमेश्वर शिवको स्नान कराये। कुशोदक, स्वर्णोदक और रत्नोदक आदिको—जो गन्ध, पुष्प आदिसे वासित और मन्त्रसिद्ध हों—क्रमशः ले-लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक उन-उनके द्वारा महेश्वरको नहलाये॥ ३०—३२॥

फिर गन्ध, पुष्प और दीप आदि निवेदन करके पूजा-कर्म सम्पन्न करे। आलेपन या उबटन कम-से-कम एक पल और अधिक-से-अधिक ग्यारह पल हो। सुन्दर, सुवर्णमय और रत्नमय पुष्प अर्पित करे। सुगन्धित नील कमल, नील कुमुद, अनेकशः बिल्वपत्र, लाल कमल और श्वेत कमल भी शम्भुको चढ़ाये। कालागुरुके धूपको कपूर, घी और गुग्गुलसे युक्त करके निवेदन करे॥ ३३—३५॥

कपिला गायके घीसे युक्त दीपकमें कपूरकी बत्ती बनाकर रखे और उसे जलाकर देवताके सम्मुख दिखाये। ईशानादि पाँच ब्रह्मकी, छहों अंगोंकी और पाँच आवरणोंकी पूजा करनी चाहिये॥ ३६॥

दूधमें तैयार किया हुआ पदार्थ नैवेद्यके रूपमें निवेदनीय है। गुड़ और घीसे युक्त महाचरुका भी भोग लगाना चाहिये। पाटल, उत्पल और कमल आदिसे सुवासित जल पीनेके लिये देना चाहिये। पाँच प्रकारकी सुगन्धोंसे युक्त तथा अच्छी तरह लगाया हुआ ताम्बूल मुखशुद्धिके लिये अर्पित करना चाहिये। सुवर्ण और रत्नोंके बने हुए आभूषण, नाना प्रकारके रंगवाले नूतन महीन वस्त्र, जो दर्शनीय हों, इष्टदेवको देने चाहिये। उस समय गीत, वाद्य और कीर्तन आदि भी करने चाहिये॥ ३७—३९॥

मूलमन्त्रका एक लाख जप करना चाहिये। पूजा कम-से-कम एक बार, नहीं तो दो या तीन बार करनी चाहिये; क्योंकि अधिकका अधिक फल होता है। होम-

सामग्रीके लिये जितने द्रव्य हों, उनमेंसे प्रत्येक द्रव्यकी कम-से-कम दस और अधिक-से-अधिक सौ आहुतियाँ देनी चाहिये। अभिचार आदि कर्ममें शिवके घोररूपका चिन्तन करना चाहिये। शान्तिकर्म या पौष्टिककर्म करते समय शिवलिंगमें, शिवाग्निमें तथा अन्य प्रतिमाओंमें शिवके सौम्यरूपका ध्यान करना चाहिये॥ ४०-४२॥

अभिचार आदि कर्मोंमें लोहेके बने हुए स्रुक् और स्रुवाका उपयोग करना चाहिये। अन्य शान्ति आदि कर्मोंमें सुवर्णके [अथवा यज्ञिय काष्ठके] स्रुक् और स्रुवा बनवाने चाहिये। मृत्युपर विजय पानेके लिये घी, दूधमें मिलायी हुई दूर्वासे, मधुसे, घृतयुक्त चरुसे अथवा केवल दूधसे भी हवन करना चाहिये तथा रोगोंकी शान्तिके लिये तिलोंकी आहुति देनी चाहिये। समृद्धिकी इच्छा रखनेवाला पुरुष महान् दारिद्र्यकी शान्तिके लिये घी, दूध अथवा केवल कमलके फूलोंसे होम करे। अभिचार कर्मका इच्छुक पुरुष घृतयुक्त जातीपुष्प (चमेली या मालतीके फूल)-से हवन करे॥ ४३—४६॥

द्विजको चाहिये कि वह घृत और करवीर-पुष्पोंकी आहुति, तेलकी आहुति और मधुकी आहुतिसे इन कर्मोंको करे॥ ४७॥

तन्त्रशास्त्रीय अभिचार कर्मोंमें सार्षप, लशुन, तिलमिश्रित रोहिबीज, लांगलक तैल, शोणित आदिका प्रयोग होता है॥ ४८—५०॥

अभिचार-कर्ममें हस्तचालित यन्त्रसे तैयार किये गये तेलकी आहुति देनी चाहिये। कुटकीकी भूसी, कपासकी ढोढ़ तथा तैलमिश्रित सरसोंकी भी आहुति दी जा सकती है। दूधकी आहुति ज्वरकी शान्ति करनेवाली तथा सौभाग्यरूप फल प्रदान करनेवाली होती है॥ ५१-५२॥

मधु, घी और दहीको परस्पर मिलाकर इनसे, दूध और चावलसे अथवा केवल चरुसे किया गया होम सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला होता है। सात प्रकारकी समिधा आदिसे शान्तिक अथवा पौष्टिक कर्म भी करे। विशेषतः द्रव्योंद्वारा होम करनेपर वश्य और आकर्षणकी सिद्धि होती है। बिल्वपत्रोंका हवन वशीकरण तथा आकर्षणका साधक और लक्ष्मीकी प्राप्ति करानेवाला है, साथ ही वह शत्रुपर विजय प्रदान कराता है॥ ५३—५५॥

शान्तिकार्यमें पलाश और खैर आदिकी समिधाओंका होम करना चाहिये। क्रूरतापूर्ण कर्ममें कनेर और आककी समिधाएँ होनी चाहिये। लड़ाई-झगड़ेमें कटीले पेड़ोंकी समिधाओंका हवन करना चाहिये। शान्ति और पुष्टिकर्मको विशेषतः शान्तचित्त पुरुष ही करे। जो निर्दय और क्रोधी हो, उसीको आभिचारिक कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये। वह भी उस दशामें, जबकि दुरवस्था चरम सीमाको पहुँच गयी हो और उसके निवारणका दूसरा कोई उपाय न रह गया हो, आततायीको नष्ट करनेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्म करना चाहिये॥ ५६—५८॥

अपने राष्ट्रके स्वामीको हानि पहुँचानेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्म कदापि नहीं करना चाहिये। यदि कोई आस्तिक, परम धर्मात्मा और माननीय पुरुष हो, उससे यदि कभी आततायीपनका कार्य हो जाय, तो भी उसको नष्ट करनेके उद्देश्यसे आभिचारिक कर्मका प्रयोग नहीं करना चाहिये। जो कोई भी मन, वाणी और क्रियाद्वारा भगवान् शिवके आश्रित हो, उसके तथा राष्ट्रस्वामीके उद्देश्यसे भी आभिचारिक कर्म करके मनुष्य शीघ्र ही पतित हो जाता है। इसलिये कोई भी पुरुष जो अपने लिये सुख चाहता हो, अपने राष्ट्रपालक राजाकी तथा शिवभक्तकी अभिचार आदिके द्वारा हिंसा न करे। दूसरे किसीके उद्देश्यसे भी अभिचार आदिका प्रयोग करनेपर पश्चात्तापसे युक्त हो प्रायश्चित्त करना चाहिये॥ ५९—६३॥

निर्धन या धनवान् पुरुष भी बाणलिंग (नर्मदासे प्रकट हुए शिवलिंग), स्वयम्भूलिंग, ऋषियोंद्वारा स्थापित लिंग या वैदिक लिंगमें भगवान् शंकरकी पूजा करे। जहाँ ऐसे लिंगका अभाव हो वहाँ सुवर्ण और रत्नके बने हुए शिवलिंगमें पूजा करनी चाहिये। यदि सुवर्ण और रत्नोंके उपार्जनकी शक्ति न हो तो मनसे ही भावनामयी मूर्तिका निर्माण करके मानसिक पूजन करना चाहिये। अथवा प्रतिनिधि द्रव्योंद्वारा शिवलिंगकी कल्पना करनी चाहिये॥ ६४-६५॥

जो किसी अंशमें समर्थ और किसी अंशमें असमर्थ

है, वह भी यदि अपनी शक्तिके अनुसार पूजन-कर्म करता है तो अवश्य फलका भागी होता है। जहाँ इस कर्मका अनुष्ठान करनेपर भी फल नहीं दिखायी देता, वहाँ दो या तीन बार उसकी आवृत्ति करे। ऐसा करनेसे सर्वथा फलका दर्शन होगा। पूजाके उपयोगमें आया हुआ जो सुवर्ण, रत्न आदि उत्तम द्रव्य हो, वह सब गुरुको दे देना चाहिये तथा उसके अतिरिक्त दक्षिणा भी देनी चाहिये॥ ६६—६८॥

यदि गुरु नहीं लेना चाहते हों तो वह सब वस्तु भगवान् शिवको ही समर्पित कर दे अथवा शिवभक्तोंको दे दे। इनके सिवा दूसरोंको देनेका विधान नहीं है। जो पुरुष गुरु आदिकी अपेक्षा न रखकर स्वयं यथाशक्ति पूजा सम्पन्न करता है, वह भी ऐसा ही आचरण करे। पूजामें चढ़ायी हुई वस्तु स्वयं न ले ले। जो मूढ़ लोभवश पूजाके अंगभूत उत्तम द्रव्यको स्वयं ग्रहण कर लेता है, वह अभीष्ट फलको नहीं पाता। इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये॥ ६९—७१॥

किसीके द्वारा पूजित शिवलिंगको मनुष्य ग्रहण करे या न करे, यह उसकी इच्छापर निर्भर है। यदि ले ले तो स्वयं नित्य उसकी पूजा करे अथवा उसकी प्रेरणासे दूसरा कोई पूजा करे। जो पुरुष इस कर्मका शास्त्रीय विधिके अनुसार ही निरन्तर अनुष्ठान करता है, वह फल पानेसे कभी वंचित नहीं रहता। इससे बढ़कर प्रशंसाकी बात और क्या हो सकती है?॥ ७२-७३॥

तथापि मैं संक्षेपसे कर्मजनित उत्तम सिद्धिकी महिमाका वर्णन करता हूँ। इससे शत्रुओं अथवा अनेक प्रकारकी व्याधियोंका शिकार होकर और मौतके मुँहमें पड़कर भी मनुष्य बिना किसी विघ्न-बाधाके मुक्त हो जाता है। अत्यन्त कृपण भी उदार और निर्धन भी कुबेरके समान हो जाता है। कुरूप भी कामदेवके समान सुन्दर और बूढ़ा भी जवान हो जाता है। शत्रु क्षणभरमें मित्र और विरोधी भी किंकर हो जाता है॥ ७४—७६॥

अमृत विषके समान और विष भी अमृतके समान हो जाता है। समुद्र भी स्थल और स्थल भी समुद्रवत् हो जाता है। गड्ढा पहाड़-जैसा ऊँचा और पर्वत भी गड्ढेके समान हो जाता है। अग्नि सरोवरके समान शीतल और सरोवर भी अग्निके समान दाहक बन जाता है। उद्यान जंगल और जंगल उद्यान हो जाता है। क्षुद्र मृग सिंहके समान शौर्यशाली और सिंह भी क्रीडामृगके समान आज्ञापालक हो जाता है॥ ७७—७९॥

स्त्रियाँ अभिसारिका बन जाती हैं—अधिक प्रेम करने लगती हैं और लक्ष्मी सुस्थिर हो जाती है। वाणी इच्छानुसार दासी बन जाती है और कीर्ति गणिकाके समान सर्वत्रगामिनी हो जाती है। बुद्धि स्वेच्छानुसार विचरनेवाली और मन हीरेको छेदनेवाली सूईके समान सूक्ष्म हो जाता है। शक्ति आँधीके समान प्रबल हो जाती है और बल मत्त गजराजके समान पराक्रमशाली हो जाता है। शत्रु-पक्षके उद्योग और कार्य स्तब्ध हो जाते हैं तथा शत्रुओंके समस्त सुहृद्गण उनके लिये शत्रुपक्षके समान हो जाते हैं॥ ८०—८२॥

शत्रु बन्धु-बान्धवोंसहित जीते-जी मुर्देके समान हो जाते हैं और सिद्धपुरुष स्वयं आपत्तिमें पड़कर भी अरिष्टरहित (संकटमुक्त) हो जाता है। अमरत्व-सा प्राप्त कर लेता है। उसका खाया हुआ अपथ्य भी उसके लिये सदा रसायनका काम देता है। निरन्तर रतिका सेवन करनेपर भी वह नया-सा ही बना रहता है। भविष्य आदिकी सारी बातें उसे हाथपर रखे हुए आँवलेके समान प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं। अणिमा आदि सिद्धियाँ भी इच्छा करते ही फल देने लगती हैं। इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ? इस कर्मका सम्पादन कर लेनेपर सम्पूर्ण अभिलषित सिद्धियोंमें कोई भी ऐसी सिद्धि नहीं रहती, जो अलभ्य हो॥ ८३—८६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें ऐहिक सिद्धिकर्मवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

पारलौकिक फल देनेवाले कर्म—शिवलिंग-महाव्रतकी विधि और महिमाका वर्णन

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन ! अब मैं केवल परलोकमें फल देनेवाले कर्मकी विधि बतलाऊँगा। तीनों लोकोंमें इसके समान दूसरा कोई कर्म नहीं है॥ १॥

यह विधि अतिशय पुण्यसे युक्त है और सम्पूर्ण देवताओंने इसका अनुष्ठान किया है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्रादि लोकपाल, सूर्यादि नवग्रह, विश्वामित्र और वसिष्ठ आदि ब्रह्मवेत्ता महर्षि, श्वेत, अगस्त्य, दधीचि तथा हम-सरीखे शिवभक्त, नन्दीश्वर, महाकाल और भृंगीश आदि गणेश्वर, पातालवासी दैत्य, शेष आदि महानाग, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, भूत और पिशाच—इन सबने अपना-अपना पद प्राप्त करनेके लिये इस विधिका अनुष्ठान किया है। इस विधिसे ही सब देवता देवत्वको प्राप्त हुए हैं॥ २—६॥

इसी विधिसे ब्रह्माको ब्रह्मत्वकी, विष्णुको विष्णुत्वकी, रुद्रको रुद्रत्वकी, इन्द्रको इन्द्रत्वकी और गणेशको गणेशत्वकी प्राप्ति हुई है। श्वेतचन्दनयुक्त जलसे लिंगस्वरूप शिव और शिवाको स्नान कराकर प्रफुल्ल श्वेत कमलोंद्वारा उनका पूजन करे। फिर उनके चरणोंमें प्रणाम करके वहीं [लिपी-पुती भूमिपर] सुन्दर शुभलक्षण पद्मासन बनवाकर रखे। धन हो तो अपनी शक्तिके अनुसार सोने या रत्न आदिका पद्मासन बनवाना चाहिये॥ ७—९॥

कमलके केसरोंके मध्यभागमें अंगुष्ठके बराबर छोटे-से सुन्दर शिवलिंगकी स्थापना करे। वह सर्वगन्धमय और सुन्दर होना चाहिये। उसे दक्षिणभागमें स्थापित करके बिल्वपत्रोंद्वारा उसकी पूजा करे। फिर उसके दक्षिणभागमें अगुरु, पश्चिम भागमें मैनसिल, उत्तरभागमें चन्दन और पूर्वभागमें हरिताल चढ़ाये। फिर सुन्दर सुगन्धित विचित्र पुष्पोंद्वारा पूजा करे॥ १०—१२॥

सब ओर काले अगुरु और गुग्गुलकी धूप दे। अत्यन्त महीन और निर्मल वस्त्र निवेदन करे। घृतमिश्रित खीरका भोग लगाये। घीके दीपक जलाकर रखे। मन्त्रोच्चारणपूर्वक सब कुछ चढ़ाकर परिक्रमा करे॥ १३-१४॥

भक्तिभावसे देवेश्वर शिवको प्रणाम करके उनकी स्तुति करे और अन्तमें त्रुटियोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। तत्पश्चात् शिवपंचाक्षरमन्त्रसे सम्पूर्ण उपहारोंसहित वह शिवलिंग शिवको समर्पित करे और स्वयं दक्षिणामूर्तिका आश्रय ले। जो इस प्रकार पंच गन्धमय शुभ लिंगकी नित्य अर्चना करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह शिवलिंग-महाव्रत सब व्रतोंमें उत्तम और गोपनीय है। तुम भगवान् शंकरके भक्त हो; इसलिये तुमसे इसका वर्णन किया है। जिस किसीको इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। केवल शिवभक्तोंको ही इसका उपदेश देना चाहिये। प्राचीनकालमें भगवान् शिवने ही इस व्रतका उपदेश दिया था॥ १५—१८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें आमुष्मिक कर्मविधिवर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

मोहवश ब्रह्मा तथा विष्णुके द्वारा लिंगके आदि और अन्तको जाननेके लिये किये गये प्रयत्नका वर्णन

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] नित्य-नैमित्तिक तथा काम्यव्रतसे जो सिद्धि यहाँ कही गयी है, वह सब लिंग अथवा मूर्तिकी प्रतिष्ठासे शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है। समग्र जगत् लिंगमय है और सब कुछ लिंगमें प्रतिष्ठित है, अत: लिंगकी प्रतिष्ठा कर लेनेपर सबकी प्रतिष्ठा हो जाती है॥ १-२॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र अथवा अन्य किसने लिंगप्रतिष्ठाको छोड़कर अपना पद प्राप्त किया है अर्थात् किसीने भी नहीं। इस प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें और अधिक क्या कहा भी जाय, क्योंकि [स्वयं] शिवने भी विश्वेश्वरलिंगकी

प्रतिष्ठा की है। अतः इस लोक तथा परलोकमें कल्याणके लिये प्रयत्नपूर्वक परमेश्वरके लिंग अथवा मूर्तिकी स्थापना करनी चाहिये॥ ३—५॥

श्रीकृष्ण बोले—यह लिंग क्यों कहा गया, महेश्वर लिंगी कैसे हैं, वे महेश्वर लिंगस्वरूप कैसे हुए और इस [लिंग]-में शिव किस कारणसे पूजे जाते हैं?॥ ६॥

उपमन्यु बोले—यह लिंग अव्यक्त, तीनों गुणोंको उत्पन्न तथा विलीन करनेवाला, आदि-अन्तसे रहित और संसारके प्रादुर्भावका उपादान कारण है॥ ७॥

वह लिंग ही मूल प्रकृति तथा आकाशरूपा माया है, यह चराचर जगत् उसीसे उत्पन्न हुआ है। वह [लिंग] अशुद्ध, शुद्ध तथा शुद्धाशुद्ध—इन तीन भेदोंवाला है। उसीसे शिव, महेश, रुद्र, विष्णु, पितामह (ब्रह्मा) और इन्द्रियोंसहित [पंच] महाभूत—ये सब उत्पन्न होते हैं और शिवकी आज्ञासे इसीमें विलीन हो जाते हैं। भगवान् शिवको भलीभाँति शिवलिंग ज्ञापित करता है, अतः वे लिंगी हैं। उनकी आज्ञाके बिना कोई भी स्वयं कार्य नहीं कर सकता है और उनसे उत्पन्न हुए विश्वका विलय भी उन्हींमें हो जाता है। इसीसे उनकी लिंगात्मकता सिद्ध होती है, अन्य किसी [भी माध्यम]-से नहीं॥ ८—११½॥

शिव तथा शिवाका [नित्य] अधिष्ठान होनेके कारण यह लिंग उनका [स्थूल] विग्रह कहा जाता है। अतः उसीमें नित्य अम्बासहित शिवकी पूजा की जाती है। लिंगकी आधारवेदिका साक्षात् महादेवी पार्वती हैं और उसपर अधिष्ठित लिंग स्वयं महेश्वर हैं। उन दोनोंके पूजनसे ही वे [शिव] तथा वे [पार्वती] पूजित हो जाते हैं। पारमार्थिक रूपसे तो उन [शिव और शिवाके उपाधिविनिर्मुक्त] विशुद्धरूप होनेसे देहभाव है ही नहीं, अतः उनके लिंगात्मक देहकी कल्पना वस्तुतः औपचारिक है॥ १२—१४॥

वही परमात्मा शिवकी परमा शक्ति है। वह शक्ति परमात्माकी आज्ञाको प्राप्त करके चराचर जगत्की सृष्टि करती है। सैकड़ों वर्षोंमें भी उसकी महिमाका वर्णन नहीं किया जा सकता है, जिसने पूर्वकालमें ब्रह्मा तथा विष्णुको भी मोहित कर दिया था॥ १५—१६½॥

पूर्वकालमें इस त्रिलोकीका प्रलय हो जानेपर जब [भगवान्] विष्णु जलशय्यापर विराजमान होकर निश्चिन्त हो सुखपूर्वक शयन कर रहे थे, तब लोकपितामह ब्रह्मा अपनी इच्छासे वहाँ जा पहुँचे। उन पितामहने सुखपूर्वक सोते हुए विष्णुको देखा और शम्भुकी मायासे मोहित होकर उन लक्ष्मीपति विष्णुको क्रोधपूर्वक मारकर उन्हें उठाया और कहा—तुम कौन हो, बताओ॥ १७—१९½॥

हाथके तीव्र प्रहारसे आहत हुए वे विष्णु क्षणभरमें जग गये तथा उन्होंने शयनसे उठकर ब्रह्माजीको देखा और मनमें क्रुद्ध होकर भी स्वयं क्रोधरहितकी भाँति उनसे कहा—हे वत्स! तुम कहाँसे आये हो और [इतना] व्याकुल किसलिये हो, इसे बताओ॥ २०—२१½॥

विष्णुका यह प्रभुत्वगुणसूचक वचन सुनकर रजोगुणसे [चित्तके आक्रान्त होनेके कारण विष्णुके प्रति] शत्रुताकी भावनावाले ब्रह्माने पुनः उनसे कहा—जैसे गुरु अपने शिष्यसे कहता है, वैसे ही तुम मुझे 'वत्स'—ऐसा क्यों कह रहे हो? क्या तुम मुझ स्वामीको नहीं जानते हो, यह सम्पूर्ण जगत्-प्रपंच जिसकी अपनी रचना है? अपनेको तीन रूपोंमें विभक्त करके मैं इस जगत्का सृजन करके पुनः इसका पालन करता हूँ और [अन्तमें] संहार भी कर देता हूँ, संसारमें मेरी सृष्टि करनेवाला कोई नहीं है॥ २२—२४½॥

उनके ऐसा कहनेपर उन अविनाशी विष्णुने भी ब्रह्मासे कहा—मैं ही इस जगत्का आदिकर्ता, परिपालक तथा संहारक हूँ। आप भी पूर्वकालमें मेरे ही अव्ययस्वरूपसे अवतीर्ण हुए थे। मेरी ही आज्ञासे तुम अपनेको तीन रूपोंमें विभक्त करके तीनों लोकोंका सृजन करते हो, पालन करते हो और फिर अन्तमें संहार भी करते हो॥ २५—२७॥

क्या तुम मुझ जगत्पति, निर्विकार नारायणको भूल गये हो और अपने ही पिताका ऐसा अपमान कर रहे हो, इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है, तुम मेरी मायाके कारण भ्रमित हो गये हो, तुम्हारी यह भ्रान्ति मेरी कृपासे

शीघ्र ही दूर हो जायगी॥ २८-२९॥

हे चतुर्मुख! सत्य बात सुनो, मैं निश्चय ही सभी देवताओंका स्वामी हूँ और [जगत्‌का] सृजन करनेवाला, पालन करनेवाला तथा संहार करनेवाला हूँ, मेरे समान ऐश्वर्यशाली कोई नहीं है॥ ३०॥

ब्रह्मा तथा विष्णुका आपसमें इस प्रकारका विवाद हुआ और रजोगुणके कारण बद्धवैरवाले उन दोनोंके बीच घूँसोंसे एक-दूसरेपर तीव्र प्रहार करते हुए भयानक तथा रोमांचकारी युद्ध होने लगा। तब उन दोनों देवताओंके अभिमानको नष्ट करनेके लिये तथा उनके प्रबोधनके लिये उनके बीच अद्भुत शिवलिंग प्रकट हुआ, जो हजारों ज्वालासमूहोंसे युक्त, असीम, अनुपम, क्षय-वृद्धिसे रहित और आदि-मध्य तथा अन्तसे रहित था॥ ३१—३३½॥

तब उसके हजारों ज्वालासमूहोंसे ब्रह्मा तथा विष्णु मोहित हो गये और युद्ध छोड़कर 'यह क्या है'—ऐसा सोचने लगे। जब उन दोनोंको उसकी यथार्थता समझमें नहीं आयी, तब वे उसके आरम्भ तथा अन्तकी परीक्षा करनेके लिये उद्यत हुए॥ ३४—३६॥

उस समय ब्रह्माजी पंख धारण किये हुए हंसरूप होकर सभी ओर मन तथा वायुके सदृश वेगवान् होकर प्रयत्नपूर्वक ऊपरकी ओर गये और विश्वात्मा विष्णु भी नील अंजनपर्वतके समान वाराहका रूप धारणकर नीचेकी ओर गये॥ ३७-३८॥

इस प्रकार वराहरूपधारी विष्णुजी शीघ्रता करते हुए एक हजार वर्षोंतक नीचे जाते रहे, किंतु वे इस लिंगके मूलदेशको अल्पमात्र भी देख पानेमें समर्थ नहीं हो सके। उसका अन्त जाननेकी इच्छासे उतने ही समयतक ऊपरकी ओर गये हुए ब्रह्मा भी अत्यधिक थक गये और उसका अन्त न देखकर नीचे गिर पड़े॥ ३९-४०॥

उसी प्रकार आकुल नेत्रोंवाले भगवान् विष्णु भी थककर बड़े कष्टसे शीघ्रतापूर्वक नीचेसे ऊपर आ गये॥ ४१॥

वे दोनों आकर आश्चर्य तथा मुसकानसे युक्त होकर एक-दूसरेको देखने लगे और शिवकी मायासे मोहित होकर अपने कृत्य तथा अकृत्यको नहीं जान सके। उस समय वे दोनों उस [लिंग]-के पीछे, बगलमें तथा आगे खड़े होकर उसे प्रणाम करके 'यह क्या है'—ऐसा सोचने लगे॥ ४२-४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें हरिविधिमोहवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

लिंगमें शिवका प्राकट्य तथा उनके द्वारा ब्रह्मा-विष्णुको दिये गये ज्ञानोपदेशका वर्णन

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] तदुपरान्त वहाँपर ब्रह्मतत्त्वका प्रतिपादक, नादमय, एकाक्षरात्मक शब्द-ब्रह्म ओंकार प्रकट हुआ॥ १॥

उस समय ब्रह्मा तथा विष्णु उसे भी नहीं जान सके; क्योंकि उन दोनोंका चित्त रजोगुण तथा तमोगुणसे आच्छन्न था॥ २॥

तब वह एक अक्षर [ओम्] अ, उ, म्—इन तीन मात्राओं तथा आगे आधी मात्राके द्वारा चार भागोंमें विभक्त हो गया॥ ३॥

उस जाज्वल्यमान लिंगके दक्षिण भागमें अकार, उत्तरमें उकार और उसी तरह मध्यमें मकार सुना गया। लिंगके शीर्षभागमें अर्धमात्रात्मक नाद सुना गया॥ ४½॥

तब उस परम अक्षर प्रणव (ओम्)-के विभक्त होनेपर भी वे दोनों देवता उस विभाजनके अर्थको कुछ भी नहीं समझ सके। इसके वह बाद अव्यक्त प्रणव वेदोंके रूपमें परिणमित हो गया। उसका अकार ऋग्वेद, उकार यजुर्वेद, मकार सामवेद और [अर्धमात्रात्मक] नाद अथर्ववेद हुआ॥ ५—७॥

[सर्वप्रथम] उस ऋग्वेदने संक्षेपमें अपने [दशविध] तात्पर्यको प्रस्तुत किया—गुणोंमें रजोगुण, मूर्तियोंमें आदिमूर्ति ब्रह्मा, क्रियाओंमें सृष्टि-क्रिया, लोकोंमें भूर्लोक, तत्त्वोंमें अविनाशी आत्मतत्त्व, कलाध्वोंमें निवृत्तिकला, पंचब्रह्मोंमें सद्योजात, लिंगके विभागोंमें अधोदेश, तीनों कारणोंमें बीज नामक कारण तथा अणिमादि सिद्धियोंमें स्थित चतुष्षष्टिगुणात्मक ऐश्वर्योंमें बौद्ध ऐश्वर्य—इस प्रकार दस अर्थोंसे समन्वित ऋग्वेदके द्वारा समस्त विश्व व्याप्त है॥ ८—१०१/२॥

तदुपरान्त यजुर्वेदने अपने दशविध तात्पर्योंको प्रतिपादित किया—गुणोंमें सत्त्वगुण, मूर्तियोंमें आदिमूर्ति विष्णु, क्रियाओंमें स्थिति नामक क्रिया, लोकोंमें अन्तरिक्ष, तत्त्वोंमें विद्यातत्त्व, कलाध्वोंमें प्रतिष्ठा नामक कला, पंचब्रह्मोंमें वामदेव, लिंगविभागोंमें मध्यभाग, तीनों कारणोंमें योनि नामक कारण तथा ऐश्वर्योंमें प्राकृत ऐश्वर्य—इस प्रकार यह विश्व यजुर्वेदमय है॥ ११—१३१/२॥

इसके पश्चात् सामवेदने अपने दशविध अर्थका प्रतिपादन किया—गुणोंमें तमोगुण, मूर्तियोंमें आदिमूर्ति रुद्र, क्रियाओंमें संहार क्रिया, तीनों लोकोंमें [स्वर्ग] लोक, तत्त्वोंमें उत्तम शिवतत्त्व, कलाध्वोंमें विद्याकला, पंचब्रह्मोंमें अघोर ब्रह्म, लिंगविभागोंमें पीठोर्ध्वभाग, तीनों कारणोंमें बीजी नामक कारण तथा ऐश्वर्योंमें पौरुष ऐश्वर्य—इस प्रकार यह विश्व सामवेदसे अभिव्याप्त है॥ १४—१६१/२॥

इसके उपरान्त अथर्ववेदने अपने निर्गुणात्मक उत्कृष्ट तात्पर्यका प्रतिपादन किया—मूर्तियोंमें सदाशिवकी महेश्वर नामवाली मूर्ति, क्रियारहित परमात्मा शिवकी [उपचारतः] होनेवाली क्रियाओंमें प्राणिमात्रके प्रति अनुग्रहरूपा क्रिया, जिसके कारण ही प्राणियोंको मोक्षलाभ होता है; लोकोंमें वह अलौकिक सोमलोक, जिसे अधिगत करनेमें वागादि इन्द्रियोंसहित मन भी असमर्थ हो लौट आता है, वह अलौकिक सोमलोक तो उन्मनालोकसे भी ऊपर है, जहाँ उमाके साथ साम्बसदाशिव भगवान् ईशान नित्य विराजते हैं। उन्मनालोकके ऊपर विद्यमान उस लोकको प्राप्त हुआ जीव पुनः जन्म नहीं लेता॥ १७—२०१/२॥

कलाओंमें शान्तिकला तथा सभी कलाओंमें अभिव्याप्त शान्त्यतीता कला, पंचब्रह्मोंमें तत्पुरुष तथा ईशानसंज्ञक ब्रह्म, लिंगके विभागोंमें मूर्धा नामक विभाग, [प्रणवके कल्पित] अवयवोंमें नाद नामक वह अवयव, जिसमें आवाहनपूर्वक एकमात्र निष्कल शिवकी ही आराधना की जाती है। तत्त्वोंमें वह तत्त्व, जो बिन्दुसे लेकर नाद तथा शक्तिसे भी परे है। उस तत्त्वसे भी परे जो परमार्थतः परतत्त्व है और जो अतत्त्व भी कहा जाता है। मायाके विक्षोभसे जो कार्यके जनक होते हैं, उन तीनों कारणोंसे भी वह अतीत है॥ २१—२४॥

शुद्धविद्यासे परे जो महान् ऐश्वर्यवाला अनन्ततत्त्व है, उससे भी परे जो सर्वविद्येश्वरेश्वर तत्त्व है, उससे भी परे वह तत्त्व है, किंतु वह सदाशिवसे परे नहीं है॥ २५॥

सकलमन्त्रमय देहवाले, तीनों शक्तियोंसे समन्वित पंचमुख, दशभुज, सकल एवं निष्कल स्वरूपवाले साक्षात् परमदेवसे भी परे है। उनसे भी परे जो बिन्दु तथा अर्धेन्दुतत्त्व हैं और उनसे भी परे नाद नामक निशाधीश (सोम) तत्त्व है। नादसे परे सुषुम्णेश तथा उनसे परे ब्रह्मरन्ध्रेश तत्त्व है, ब्रह्मरन्ध्रेश्वरसे परे शक्तितत्त्व (कुण्डलिनी) तथा शक्तिसे परे स्थित जो शिवतत्त्व है, वह उससे भी परे है॥ २६—२८॥

[वे सर्वतत्त्वातीत परमतत्त्व] भगवान् शिव जगत्‌के साक्षात् कारण न होते हुए भी वस्तुतः परमकारण हैं। उन्हींको कारणोंका आश्रय, ध्याता, ध्येय, अविनाशी, परमव्योमके मध्यमें अवस्थित, परमात्मतत्त्वसे भी ऊपर स्थित, सर्वैश्वर्यसम्पन्न, सर्वेश्वर, एकमात्र स्वयं ईश्वररूप [माना गया है।] मायासे जायमान अशुद्ध मानुषादि ऐश्वर्यसे परे, अपरसे भी परे जो षडध्वगोचर तत्त्व है, उससे भी परे, जो शुद्ध विद्यासे लेकर उन्मनापर्यन्त व्यापक परात्पर तत्त्व है, जो परमोत्कृष्ट है, परमैश्वर्यमय है, उन्मनाका भी आदि कारण तथा अनादि है। जो अनुल्लंघ्य, नित्य स्वतन्त्र, समस्त विशेषोंसे विशिष्ट है तथा स्थिर है—वही परमशिव है॥ २९—३२१/२॥

इस प्रकार इन दशविध अर्थोंसे समन्वित यह अथर्ववेद अत्यन्त महनीय है तथा यह समस्त विश्व अथर्ववेदके द्वारा व्याप्त है॥ ३३१/२॥

ऋग्वेदने पुनः यह कहा कि [जीवात्मा या जगत्‌की] जाग्रदवस्थाका निरूपण मेरे द्वारा किया जाता है; क्योंकि मैं ही आत्मतत्त्वका सतत प्रतिपादन करनेवाला हूँ। उसी प्रकार यजुर्वेदने कहा कि [जीवात्मा या जगत्‌की] स्वप्नदशाका प्रतिपादन मेरे द्वारा किया जाता है; क्योंकि मुझमें या कि मुझसे ही भोग्यरूपमें परिणत हुई विद्याका अधिगम होता है। तदुपरान्त सामवेदने कहा कि सुषुप्ति नामक अवस्थाका समग्रतया प्रतिपादन मेरे द्वारा होता है तथा तमोगुणाश्रयी रुद्रके द्वारा प्रतिपादित समस्त अर्थ मेरा ही कथन है॥ ३४—३६१/२॥

तत्पश्चात् अथर्ववेदने कहा कि 'तुरीय' नामक तत्त्व तथा तुरीयातीत तत्त्व भी मेरे द्वारा ही निरूपित होता है, इसलिये मुझे अध्वातीतपद अर्थात् अध्वातीत तत्त्वका प्रतिपादक भी कहा जाता है। अध्वात्मक तत्त्व तीन हैं— शिवतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा आत्मतत्त्व। ये तीनों ही त्रिगुणात्मक तथा वेदोंके द्वारा ज्ञात होनेयोग्य हैं। परमपदकी अभिलाषावाले साधकको अध्वातीत तुरीयनामक तत्त्वका अनुसन्धान करना चाहिये। यह तुरीयतत्त्व [निर्विशेष ब्रह्म] ही निर्वाण तथा परमपद कहा जाता है। गुणरहित होनेके कारण यह तुरीयतत्त्व अध्वातीत भी कहा गया है तथा अध्वात्मक शिवादि तत्त्वोंका यह विशोधक भी है। तुरीय तथा अध्वत्रितय शिवादि—इन दोनोंके आविर्भावका हेतु नाद है तथा नादतत्त्वकी चरम अवस्था ही मेरा स्वरूप है। इसलिये मेरे अनुसार [सर्वतोभावेन] स्वतन्त्र होनेसे परमेश्वर शिव ही प्रधान तत्त्व हैं॥ ३७—४०१/२॥

[इस जगत्‌में] जो कोई भी वस्तु है, वह सब गुणोंकी प्रधानताके योगसे समष्टि अथवा व्यष्टिरूपमें प्रणवार्थ कही जाती है। इसीलिये यह ब्रह्मरूप, एकाक्षरात्मक प्रणव [व्यष्टि अथवा समष्टिरूप] प्रत्येक वस्तुका अभिधायक कहा गया है। यही कारण है कि इस समग्र विश्वकी रचना ओंकारके द्वारा सर्वप्रथम भगवान् शिव करते हैं। शिवजी प्रणवसे अभिन्न हैं तथा यह प्रणव भी साक्षात् शिव ही है। [प्रणव वाचक है तथा शिव वाच्य है;] क्योंकि वाच्य और वाचकमें परमार्थतः भेद नहीं होता॥ ४१—४३१/२॥

भगवान् रुद्र [सर्वथा] अचिन्त्य हैं, क्योंकि वागादि इन्द्रियाँ भी मनके साथ उनका अनुसन्धान करनेमें असमर्थ होकर लौट आती हैं। वे [रुद्रदेव तो केवल] एकाक्षरात्मक प्रणवके द्वारा ही प्रतिपादित किये जा सकते हैं। [प्रणवके अन्तर्वर्ती] अकार नामक एकाक्षरसे आत्मस्वरूप ब्रह्माका निरूपण किया जाता है, उकार नामक एकाक्षरसे विद्यास्वरूप विष्णुका निरूपण किया जाता है तथा मकार नामक एकाक्षरसे शिवस्वरूप रुद्रका प्रतिपादन किया जाता है॥ ४४—४६॥

महेश्वरके दक्षिणांगसे आत्मसंज्ञक ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ तथा उनके वामांगसे विद्यासंज्ञक विष्णु प्रकट हुए। उन सदाशिवके हृदयदेशसे शिवसंज्ञक नीलरुद्रका प्राकट्य हुआ। ब्रह्माके द्वारा सृष्टिका प्रवर्तन हुआ और विमोहक विष्णुके द्वारा स्थितिकार्य सम्पन्न किया गया। रुद्रदेवने सृष्टिका संहार तथा ब्रह्मा और विष्णुका नियमन कार्य किया॥ ४७—४९॥

यही कारण है कि ये तीनों देवता जगत्‌के कारण कहे गये हैं और इन तीनों कारणोंके भी कारण शिव परमकारण कहे गये हैं। इस बातको बिना भलीभाँति समझे रजोगुणसे प्रेरित होकर तुम दोनोंने आपसमें वैर बाँध लिया, अतः तुमलोगोंको प्रतिबोधित करनेके लिये मध्यमें यह लिंग उपस्थित हुआ॥ ५०-५१॥

इस प्रकार अथर्ववेदके द्वारा प्रतिपादित मतका समर्थन 'ओम्' [ऐसा ही है] कहकर सैकड़ों, हजारों शाखाओंवाले ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदने भी किया। स्वयं वेदोंके द्वारा अपने श्रीमुखसे इस प्रकार सुस्पष्ट रूपसे कहे जानेपर भी उन दोनों [देवताओं]-को स्वप्नकालिक अनुभूतिके समान [परमतत्त्वका] निश्चय न हो सका, तब वहाँपर उनके अज्ञानका हरणकर उन्हें प्रबोधित करनेके लिये वह वेदोक्त मत उसी लिंगमें वैसे ही मुद्रित अर्थात् अंकित हो गया। तब उन लिंगी भगवान् शिवके अनुग्रहसे लिंगमें अंकित उस अभिप्रायका अवलोकनकर वे दोनों देवता शान्तचित्त तथा ज्ञानवान् हो गये॥ ५२—५५॥

उस समय उत्पत्ति, प्रलय, षडध्वाओंका वास्तविक स्वरूप, अध्वातीत श्रेष्ठतम परमपद, परमपदमें अधिष्ठित परमपुरुष, निरुत्तरतर अर्थात् सर्वातिशायि निष्कल ब्रह्मस्वरूप महेश्वर शिव, जो कि पशुपाशमय इस जगत्प्रपंचके नित्य अधिपति हैं, जो सर्वतोभावेन भयरहित हैं, जिनके स्वस्वरूपमें वृद्धि अथवा ह्रासरूप विकार नहीं होते, ऐसे बाह्य-आभ्यन्तरदेशमें व्याप्त, बाह्य तथा आभ्यन्तरके भेदसे रहित, सर्वथा समस्त अतिशयोंका अतिक्रमण करनेवाले, समस्त लोकसे विलक्षण, लक्षणोंसे रहित, अनिर्देश्य, वागादि इन्द्रियों तथा मनसे ज्ञात न होनेवाले, ज्योतिःस्वरूप, एकरस, शान्त, प्रसन्न, सर्वदा भासमान, समस्त मंगलोंके अधिष्ठान तथा अपने सदृश महिमामयी परमशक्तिसे समन्वित विरूपाक्ष भगवान् शंकरको [तत्त्वतः] जानकर ब्रह्मा तथा विष्णु तब सिरपर अंजलि बाँधकर भयभीत हो इस प्रकार कहने लगे— ॥ ५६—६१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! मैं अज्ञानी हूँ अथवा आपको भलीभाँति जाननेवाला हूँ [चाहे जो कुछ भी हूँ, पर] प्रारम्भमें आपके द्वारा ही उत्पन्न किया गया हूँ। [यदि मैं] इस प्रकारके भ्रमसे ग्रस्त हुआ तो इसमें किसका अपराध कहा जाय! आपके समीप होनेपर भी यदि मेरा अज्ञान रहता है, तो रहे (इससे क्या हानि हो सकती है!) ऐसा कौन है, जो निर्भय होकर अपना अथवा पराया कृत्य बता सके। [हे प्रभो!] हमलोगोंका विवाद भी मंगलमय ही है; क्योंकि देवाधिदेव आप स्वामीका चरणवन्दनरूप फल इसीसे मिला है ॥ ६२—६४ ॥

विष्णु बोले—हे देव! [यद्यपि] आपकी महिमाके अनुरूप स्तुति करनेमें वाणी समर्थ नहीं है, [तथापि] स्वामीके समक्ष सेवकोंका मौन रहना भी तो अपराध ही है। इस अवसरपर क्या करना उचित रहेगा, यह तो मैं नहीं जानता तथापि जैसे-तैसे प्रलाप करते हुए मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आपने ही हमें जगत्कारणता प्रदान की थी, परंतु आपकी मायासे मोहित होनेके कारण मैं [आपको] भूल गया। जब मैं अभिमानग्रस्त हो उठा तब आपने ही मुझे [इस समय] पुनः अनुशासित किया है। बहुत कुछ कहनेसे क्या लाभ? हे ईश्वर! मैं अत्यधिक भयभीत हो गया हूँ; क्योंकि मैंने अपरिच्छिन्न स्वरूपवाले आपको परिच्छिन्न बतानेका दुःसाहस किया है ॥ ६५—६८ ॥

आप महादेवको भयभीत लोगोंके दुःखका नाशक कहा जाता है, इसलिये हे शंकर! मेरे इस अपराधको आज आप क्षमा कर दीजिये। इस प्रकार उन दोनों लोकेश्वरोंके द्वारा निवेदन किये जानेपर प्रसन्न हुए भगवान् उन देवताओंपर कृपा करके मुसकराते हुए कहने लगे— ॥ ६९-७० ॥

ईश्वर बोले—हे वत्स विधे! हे वत्स विष्णो! तुम दोनों मेरी मायासे मोहित होकर अपनी प्रभुताका अहंकार करने लगे और तुमने आपसमें शत्रुता मान ली। तुम लोगोंके वाद-विवादका पर्यवसान युद्धमें हुआ तथापि उससे निवृत्त नहीं हो सके। जगत्के कारणस्वरूप तुम दोनोंके अज्ञान तथा अहंकारसे उत्पन्न हुई असहमतिके कारण यह प्रजासृष्टि विच्छिन्न हो रही थी, तब [प्रजाओंके उच्छेदको] रोकनेके लिये इस समय मैंने लिंगरूपसे लीलापूर्वक आविर्भूत होकर तुम्हारे अभिमान तथा मोहको निवृत्त किया है। इसलिये बार-बारके विवाद तथा लज्जाका पूर्णरूपसे परित्याग करके आपलोगोंको ईर्ष्यासे मुक्त होकर अपने-अपने कर्तव्यका अनुपालन करना चाहिये ॥ ७१—७४ ॥

तुमलोगोंकी कारणत्वप्रसिद्धि अर्थात् जगन्निर्माण आदि सामर्थ्यकी सिद्धिके लिये मैंने अपनी आज्ञाशक्तिके साथ पूर्वकालमें समस्त ज्ञानराशि तुम्हें प्रदान की थी। [उसके साथ ही] पंचाक्षरात्मक सूत्रनामसे प्रसिद्ध अत्यन्त उत्कृष्ट मन्त्ररत्नका भी मैंने आप लोगोंको उपदेश किया था, आज वह सब कुछ तुमलोग भूल चुके हो। अब मैं फिरसे अपनी आज्ञाशक्तिके साथ पूर्वकी भाँति वह सब प्रदान कर रहा हूँ, क्योंकि बिना उसके तुम दोनों सृष्टिरचना तथा उसके पालनमें समर्थ नहीं हो सकोगे ॥ ७५—७७$^{1}/_{2}$ ॥

भगवान् नारायण तथा ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहकर भगवान् महादेवने उन दोनोंको ज्ञानराशिके साथ [पंचाक्षर] मन्त्रराज प्रदान किया। वे दोनों दिव्य, परा, महिमामयी, माहेश्वरी आज्ञाशक्ति, परमार्थरूप मन्त्ररत्न तथा समस्त

कलाओंको प्राप्त करनेके उपरान्त देवाधिदेवके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करके निर्भय तथा आनन्दमग्न होकर स्थित हो गये। इस बीचमें आश्चर्यजनक इन्द्रजालकी भाँति वह भगवल्लिंग अन्तर्धान हो गया। जब वे उसे देख नहीं पाये तो भावनाके आहत-सी हो जानेके कारण उस समय हाहाकारपूर्वक विलाप करने लगे॥ ७८—८२॥

घटित हुआ यह वृत्तान्त सत्य है या असत्य है, इस प्रकार परस्पर कहते हुए वे भगवान् शंकरके अचिन्तनीय ऐश्वर्यका स्मरणकर व्यथारहित हो गये। उन्होंने उत्तम मित्रभावसे युक्त हो एक-दूसरेका आलिंगन किया और संसारके कृत्यों [को सम्पन्न करने]-के उद्देश्यसे वे दोनों देवश्रेष्ठ [अपने-अपने धामको] चले गये। उसी समयसे इन्द्र आदि देवगण, असुरगण, ऋषिगण, मनुष्य, नाग तथा स्त्रियाँ—[ये सभी] विधानपूर्वक शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करके लिंगमूर्तिमें उन भगवान् शिवकी अर्चना करने लगे॥ ८३—८५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें हरिविधिमोहनिवारण नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

शिवलिंग एवं शिवमूर्तिकी प्रतिष्ठाविधिका वर्णन

श्रीकृष्ण बोले—[हे भगवन्!] मैं लिंग तथा मूर्तिकी उत्तम प्रतिष्ठाविधिको सुनना चाहता हूँ, जिसे शिवजीने कहा था॥ १॥

उपमन्यु बोले—[हे कृष्ण!] शुक्लपक्षमें अपने [चन्द्र-तारा आदिके विचारसे] अनुकूल दिनमें शिवशास्त्रमें बतायी गयी रीतिसे प्रमाणके अनुसार लिंग बनाये। शुभ स्थानका चयन करके भूपरीक्षाकर लक्षणोंके प्रतिकूल दोषोंका निराकरण करके दसों उपचार करे। उन दस उपचारोंके अन्तर्गत सर्वप्रथम विनायक (श्रीगणेश)-का पूजन करके स्थानशुद्धि आदि करे और लिंगको स्नानगृहमें ले जाय॥ २—४॥

कुंकुम आदिके रससे रंजित सोनेकी शलाकासे उसपर लक्षणांकन करे और शिल्पशास्त्रके द्वारा लक्षणोंको उत्कीर्ण करे। उसके बाद आठ प्रकारकी मिट्टियोंसे युक्त जलसे अथवा पाँच प्रकारकी मिट्टियोंसे युक्त जलसे और पंचगव्यसे पिण्डिकासहित लिंगका शोधन करे॥ ५-६॥

इसके बाद वेदीसहित लिंगका पूजन करके जलाशयमें ले जाकर वहाँ पिण्डिकाके साथ लिंगका अधिवासन करे। सभी शोभाओंसे समन्वित, तोरण (बन्दनवार)-से सुशोभित, आवरण (चन्दोवा आदि)-से युक्त, कुशकी मालाओंसे आवेष्टित, आठों दिग्गजोंसे युक्त, आठों दिक्पालोंके घटोंसे समन्वित, आठों मंगलद्रव्योंसे युक्त और पूजित, दिक्पालोंसे सुशोभित, पवित्र अधिवासगृहमें पद्मासनसे अंकित एक धातु अथवा काष्ठकी विशाल चौकी बनाकर वहाँपर बीचमें रखे॥ ७—१०॥

तत्पश्चात् सुभद्र, विभद्र, सुनन्द तथा विनन्द—इन चार द्वारपालोंका पूजन करके वेदीसहित लिंगको स्नान कराकर पूजन करके उसे कूर्चसहित दो वस्त्रोंसे चारों ओरसे लपेटकर जलको धीरे-धीरे पोंछकर पीठिकाके ऊपर शयन कराये, लिंगका सिर पूर्वकी ओर, सूत्रको नीचेकी ओर तथा पिण्डिकाको इसके पीछे पश्चिमकी ओर रखे॥ ११—१३॥

सभी मंगल द्रव्योंसे युक्त लिंगका वहाँ पाँच रात, तीन रात अथवा एक राततक अधिवासन कराये॥ १४॥

उस स्थानपर पूर्वमें पूजित देवताओंका विसर्जन करके लिंगका पूर्वकी भाँति शोधनकर पुनः पूजन करे और उत्सव करते हुए उसे शयनस्थानपर ले जाय॥ १५॥

वहाँ भी मण्डलके मध्यमें शयनस्थान बनाये और शुद्ध जलसे लिंगको स्नान कराकर क्रमसे पूजन करे॥ १६॥

ईशानकोणमें [गोमयसे] लिपे हुए शुद्ध भूमितलपर कमलकी रचना करके शिवकुम्भका स्थापन कर उसमें शिवका आवाहन करके पूजन करे। वेदीके मध्यमें

विधानपूर्वक श्वेत कमल बनाकर उसके पश्चिममें भी पिण्डिकाके लिये कमलकी रचना करे। रेशमी आदि नवीन वस्त्रों अथवा पुष्पों अथवा दर्भोंसे शयन तैयार करके उसपर स्वर्णपुष्प बिखेरे॥ १७—१९॥

सभी मंगल ध्वनियोंके साथ वहाँ लिंगको लाकर कूर्चसहित दो लाल वस्त्रोंसे चारों ओरसे पिण्डिकाके साथ उसे लपेटकर पूर्वकी भाँति शयन कराये। इसके बाद उसके आगे कमलकी रचना करके उसके दलोंमें क्रमानुसार विद्येश्वरके कलशोंको रखकर बीचमें शैवी वर्धनी स्थापित करे और [वरण] किये गये श्रेष्ठ ब्राह्मण तीनों पद्मांकित मण्डलोंकी परिक्रमा करते हुए आहुति डालें॥ २०—२२॥

[यजनकर्ममें वरण किये गये] उन आठ ब्राह्मणोंके प्रति 'ये भगवान् शिवकी आठ मूर्तियाँ हैं' ऐसी भावना करे, वे पूर्व आदिके क्रमसे स्थित होकर कर्म सम्पन्न करें अथवा चार दिशाओंमें पाठ तथा जप करनेवाले ब्रह्मा आदि चार ब्राह्मण स्थित हों। वे हवन करें। उनसे पहले आचार्य ईशानकोणमें अथवा पश्चिममें सात द्रव्योंसे यथाक्रम प्रधान होम करे। अन्य ब्राह्मण आचार्यसे आधा अथवा चौथाई हवन करें॥ २३—२५॥

प्रधान होम आचार्य अथवा गुरु कोई एक ही करे, पहले घृतसे एक सौ आठ आहुति देकर पुनः पूर्णाहुति प्रदान करे। मूल मन्त्रसे शिवलिंगके शीर्षदेशपर शिवहस्त रखे। इसके बाद क्रमसे सात द्रव्योंसे सौ, पचास अथवा पचीस आहुतियाँ देते हुए बार-बार लिंग तथा वेदिकाका स्पर्श करे। इसके बाद पूर्णाहुति प्रदान करके क्रमसे दक्षिणा दे। आचार्यसे आधी अथवा चौथाई दक्षिणा हवनकर्ताओंको, उसकी आधी दक्षिणा शिल्पीको और अन्य सदस्योंको अपने सामर्थ्यके अनुसार दक्षिणा दे॥ २६—२९॥

तत्पश्चात् गड्ढेमें स्वर्ण-वृषभ अथवा कूर्च रखकर मिट्टीयुक्त जलसे, पंचगव्योंसे तथा पुनः शुद्ध जलसे शुद्ध की हुई तथा चन्दनसे लिप्त ब्रह्मशिलाको गड्ढेमें स्थापित करे। इसके बाद शक्तिके नौ नामोंसे करन्यास करके शिवशास्त्रमें कथित विधिके अनुसार बीज, गन्ध तथा औषधियोंके साथ हरिताल आदि धातुओंको ब्रह्मशिलाके ऊपर छोड़े॥ ३०—३२॥

क्षीरवृक्ष [दूधवाले]-के काष्ठसे निर्मित प्रत्येक लिंगको समीप रखकर, मूलमन्त्र पढ़ते हुए उसे ईशानाभिमुख स्थापित करे। उस समय शक्तिबीजका उच्चारण करते हुए स्थानशोधनकर बन्धक द्रव्योंसे पिण्डिकाको स्थिर करे। इसके बाद अर्घ्य-पुष्पादि अर्पित करके परदा डाल दे। तत्पश्चात् यथोचित रीतिसे निषेक आदि कृत्य करके शयनस्थानमें रखे कलशोंको लाकर लिंगके समक्ष उन्हें क्रमशः स्थापित कर दे॥ ३३—३६॥

तत्पश्चात् उन कलशोंका पूजन करके महापूजाका आरम्भ करे। शिवमन्त्रका स्मरण करते हुए शिवकुम्भस्थ जलको अंगुष्ठ-अनामिकाके योगसे ग्रहण करते हुए मूल मन्त्रका उच्चारण करे। मन्त्रज्ञ साधक लिंगके ईशान भागके मध्यमें शक्तिकलश तथा ब्रह्मकलशादिकी स्थापना करे। तदुपरान्त शिवकुम्भके जलसे लिंगमूलका अभिषेक करे। तत्पश्चात् वर्धनीके जलसे पिण्डिकाका तथा विद्येशकलशोंके द्वारा लिंगका अभिषेक करके आधार आदि आसनकी परिकल्पना करे॥ ३७—४०॥

तदनन्तर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके हाथ जोड़कर साक्षात् शिव-शिवाका आवाहन करे। वृषभराज अथवा अलंकृत विमानपर आरूढ़ होकर देवी [पार्वती]-के साथ आकाशमार्गसे आते हुए, समस्त आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न और सभी प्रकारकी मंगलध्वनि करनेवाले, आनन्दसे विह्वल समस्त अंगोंवाले, [अपनी] अंजलियोंको मस्तकपर रखे हुए, स्तुति, नृत्य तथा नमस्कार करते हुए ब्रह्मा-विष्णु-महेश-सूर्य-शक्र आदि देवताओं तथा दानवोंसे घिरे हुए भगवान् शिवका स्मरण करते हुए पंचोपचारसे पूजन करके इसका समापन करे॥ ४१—४४॥

पंचोपचारसे बढ़कर पूजाकी कोई भी विधि नहीं है। लिंगकी भाँति प्रतिमाओंमें भी भलीभाँति प्रतिष्ठा करे। लक्षणके उद्धारके समय नेत्रोंको उन्मीलित कर दे, जलाधिवासमें शयन कराते समय प्रतिमाको अधोमुख करके शयन कराये॥ ४५-४६॥

मन्त्रोंसे कुम्भजलमें सुलायी गयी उस मूर्तिका हृदयमें

ध्यान करे। आलय (स्थान)-रहितसे आलययुक्त प्रतिष्ठाको श्रेष्ठ कहा गया है। यदि समर्थ हो, तो मन्दिर बनवाकर बादमें प्रतिष्ठाविधि करे और यदि असमर्थ हो, तो लिंग अथवा मूर्तिकी प्रतिष्ठा करके बादमें अपने सामर्थ्यके अनुसार शिवालयका निर्माण करे॥ ४७—४८१/२॥

अब मैं गृहमें पूजाके योग्य मूर्ति अथवा लिंगकी उत्तम प्रतिष्ठाविधिका वर्णन करूँगा। एक छोटी तथा लक्षणयुक्त मूर्ति अथवा [वैसा ही] लिंग बनाकर उत्तरायण उपस्थित होनेपर शुक्लपक्षमें शुभ दिनमें शुभ स्थानमें वेदीका निर्माण करके वहाँ पूर्वकी भाँति कमलकी रचना करे। वहाँ पत्र-पुष्प आदि बिखेरकर मध्यमें कलश रखकर उसके चारों दिशाओंमें चार कलश स्थापित करे॥ ४९—५११/२॥

इसके बाद पाँच ब्रह्मोंका उनके पाँच बीजमन्त्रोंसे उन पाँच कलशोंमें न्यास करके उनका पूजन करके, मुद्रा आदि दिखाकर, रक्षाविधान करके और पुनः पूर्वकी भाँति मिट्टी-जल आदिके द्वारा लिंग अथवा मूर्तिका शोधन करके पुष्पसे आच्छादितकर उसे उत्तर दिशामें स्थित उत्तम आसनपर स्थापित करे। तत्पश्चात् उसके सिरपर पुष्प रखकर प्रोक्षणी-जलसे प्रोक्षण करे॥ ५२—५४॥

इसके बाद पुष्पोंसे पूजन करके जयध्वनिके साथ ईशानसे लेकर विद्येश्वरतकके कुम्भोंसे मूलमन्त्रके द्वारा स्नान कराये। पुनः पाँच कलाओंका न्यास तथा पूर्वकी भाँति पूजन करके वहाँ देवीके साथ भगवान् त्रिलोचनकी नित्य आराधना करे। अथवा मूर्तिसे युक्त तथा मन्त्राभिमन्त्रित एक कुम्भको कमलके बीचमें रखकर शेष सब कुछ पूर्वकी भाँति करे॥ ५५—५७॥

अत्यधिक दोषयुक्त लिंगका शोधन करके उसे पुनः स्थापित करे, दोषयुक्त लिंगका प्रोक्षण करे और थोड़ा दोषयुक्त लिंगका पूजन करे। बाणसंज्ञक लिंगोंकी प्रतिष्ठा करे अथवा न करे; क्योंकि वे तो शिवजीके द्वारा पहले ही संस्कार-सम्पन्न किये गये हैं। अन्य लिंग जो बाणसदृश दिखायी देते हैं, उनकी स्थापना कर लेनी चाहिये। स्वयंभू लिंग, देवताओंद्वारा स्थापित लिंग तथा ऋषियोंद्वारा स्थापित लिंगके पीठरहित होनेपर उन्हें पीठमें बैठाकर सम्प्रोक्षणविधान करके उनमें शिवका पूजन करे, उनकी प्रतिष्ठा नहीं की जाती है॥ ५८—६१॥

जले हुए, क्षतिग्रस्त तथा विशीर्ण अंगवाले लिंगको जलाशयमें डाल देना चाहिये, किंतु जोड़े जा सकनेवाले लिंगको जोड़कर उसकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। विशीर्ण हुए लिंग अथवा मूर्तिमें देवताकी पूजाके उपरान्त हृदयमें उद्वासन करके उस [लिंग आदि]-का सन्धान या त्याग जो उचित हो, उसे करना चाहिये॥ ६२-६३॥

एक दिन पूजा छूट जानेपर दूसरे दिन दुगुना पूजन करे और दो रात पूजाके छूट जानेपर महापूजा करे तथा इससे भी अधिक समयतक यदि पूजा न हुई हो तो सम्प्रोक्षण करे। यदि एक माससे अधिक अनेक दिनों तक पूजा बाधित हो गयी हो, तो कुछ लोग पुनः प्रतिष्ठाका और कुछ लोग सम्प्रोक्षणका विधान बताते हैं॥ ६४-६५॥

लिंग आदिके सम्प्रोक्षणमें पूर्वकी भाँति शिवजीका उद्वासन करके पाँच अथवा आठ बार मिट्टीयुक्त जलसे स्नान कराकर पुनः गायके दूध आदिसे स्नान कराये और कुशोदकसे शोधन करके एक सौ आठ बार मूलमन्त्रके द्वारा प्रोक्षणीके जलसे प्रोक्षण करे॥ ६६-६७॥

लिंगके मस्तकपर पुष्प-कुशसहित हाथ रखकर कम-से-कम पाँच बार या एक सौ आठ बार जप करे और इसके बाद मूलमन्त्रसे सिरसे लेकर पीठतकका स्पर्श करे। शिवजीका आवाहन करके पूर्वकी भाँति महापूजा करे। स्थापित लिंगके उपलब्ध न होनेपर शिवस्थानमें, जलमें, अग्निमें, सूर्यमें अथवा आकाशमें भगवान् शिवकी पूजा करे॥ ६८—७०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें प्रतिष्ठाविधिवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

योगके अनेक भेद, उसके आठ और छः अंगोंका विवेचन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, दशविध प्राणोंको जीतनेकी महिमा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिका निरूपण

श्रीकृष्णने कहा—भगवन्! आपने ज्ञान, क्रिया और चर्याका संक्षिप्त सार उद्धृत करके मुझे सुनाया है। यह सब श्रुतिके समान आदरणीय है और इसे मैंने ध्यानपूर्वक सुना है॥ १॥

अब मैं अधिकार, अंग, विधि और प्रयोजनसहित परम दुर्लभ योगका वर्णन सुनना चाहता हूँ॥ २॥

यदि योग आदिका अभ्यास करनेसे पहले ही मृत्यु हो जाय तो मनुष्य आत्मघाती होता है; अतः आप योगका ऐसा कोई साधन बताइये, जिसे शीघ्र सिद्ध किया जा सके, जिससे कि मनुष्यको आत्मघाती न होना पड़े। योगका वह अनुष्ठान, उसका कारण, उसके लिये उपयुक्त समय, साधन तथा उसके भेदोंका तारतम्य क्या है?॥ ३-४॥

उपमन्यु बोले—श्रीकृष्ण! तुम सब प्रश्नोंके तारतम्यके ज्ञाता हो। तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही उचित है, इसलिये मैं इन सब बातोंपर क्रमशः प्रकाश डालूँगा। तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ ५॥

जिसकी दूसरी वृत्तियोंका निरोध हो गया है, ऐसे चित्तकी भगवान् शिवमें जो निश्चल वृत्ति है, उसीको संक्षेपसे 'योग' कहा गया है। यह योग पाँच प्रकारका है—मन्त्रयोग, स्पर्शयोग, भावयोग, अभावयोग और महायोग॥ ६-७॥

मन्त्र-जपके अभ्यासवश मन्त्रके वाच्यार्थमें स्थित हुई विक्षेपरहित जो मनकी वृत्ति है, उसका नाम 'मन्त्रयोग' है। मनकी वही वृत्ति जब प्राणायामको प्रधानता दे तो उसका नाम 'स्पर्शयोग' होता है। वही स्पर्शयोग जब मन्त्रके स्पर्शसे रहित हो तो 'भावयोग' कहलाता है॥ ८-९॥

जिससे सम्पूर्ण विश्वके रूपमात्रका अवयव विलीन (तिरोहित) हो जाता है, उसे 'अभावयोग' कहा गया है; क्योंकि उस समय सद्वस्तुका भी भान नहीं होता॥ १०॥

जिससे एकमात्र उपाधिशून्य शिवस्वभावका चिन्तन किया जाता है और मनकी वृत्ति शिवमयी हो जाती है, उसे 'महायोग' कहते हैं॥ ११॥

देखे और सुने गये लौकिक और पारलौकिक विषयोंकी ओरसे जिसका मन विरक्त हो गया हो, उसीका योगमें अधिकार है, दूसरे किसीका नहीं है। लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयोंके दोषोंका और ईश्वरके गुणोंका सदा ही दर्शन करनेसे मन विरक्त होता है॥ १२-१३॥

प्रायः सभी योग आठ या छः अंगोंसे युक्त होते हैं। यम, नियम, स्वस्तिक आदि आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये विद्वानोंने योगके आठ अंग बताये हैं। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये थोड़ेमें योगके छः लक्षण हैं॥ १४—१६॥

शिव-शास्त्रमें इनके पृथक्-पृथक् लक्षण बताये गये हैं। अन्य शिवागमोंमें, विशेषतः कामिक आदिमें, योगशास्त्रोंमें और किन्हीं-किन्हीं पुराणोंमें भी इनके लक्षणोंका वर्णन है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन्हें सत्पुरुषोंने यम कहा है। इस प्रकार यम पाँच अवयवोंके योगसे युक्त है॥ १७-१८॥

शौच, सन्तोष, तप, जप (स्वाध्याय) और प्रणिधान—इन पाँच भेदोंसे युक्त दूसरे योगांगको नियम कहा गया है। तात्पर्य यह कि नियम अपने अंशोंके भेदसे पाँच प्रकारका है। आसनके आठ भेद कहे गये हैं—स्वस्तिक आसन, पद्मासन, अर्धचन्द्रासन, वीरासन, योगासन, प्रसाधितासन, पर्यंकासन और अपनी रुचिके अनुसार आसन॥ १९-२०॥

अपने शरीरमें प्रकट हुई जो वायु है, उसको प्राण कहते हैं। उसे रोकना ही उसका आयाम है। उस प्राणायामके तीन भेद कहे गये हैं—रेचक, पूरक और कुम्भक॥ २१॥

नासिकाके एक छिद्रको दबाकर या बन्द करके दूसरेसे उदरस्थित वायुको बाहर निकाले। इस क्रियाको रेचक कहा गया है। फिर दूसरे नासिका-छिद्रके द्वारा बाह्य वायुसे शरीरको धौंकनीकी भाँति भर ले। इसमें वायुके पूरणकी क्रिया होनेके कारण इसे 'पूरक' कहा गया है। जब साधक भीतरकी वायुको न तो छोड़ता है और न बाहरकी वायुको ग्रहण करता है, केवल भरे हुए घड़ेकी भाँति अविचलभावसे स्थित रहता है, तब उस प्राणायामको 'कुम्भक' नाम दिया जाता है। योगके साधकको चाहिये कि वह रेचक आदि तीनों प्राणायामोंको न तो बहुत जल्दी-जल्दी करे और न बहुत देरसे करे। साधनाके लिये उद्यत हो क्रमयोगसे उसका अभ्यास करे॥ २२—२५॥

रेचक आदिमें नाड़ीशोधनपूर्वक जो प्राणायामका अभ्यास किया जाता है, उसे स्वेच्छासे उत्क्रमणपर्यन्त करते रहना चाहिये—यह बात योगशास्त्रमें बतायी गयी है। कनिष्ठ आदिके क्रमसे प्राणायाम चार प्रकारका कहा गया है। मात्रा और गुणोंके विभाग—तारतम्यसे ये भेद बनते हैं॥ २६-२७॥

चार भेदोंमेंसे जो कन्यक या कनिष्ठ प्राणायाम है, यह प्रथम उद्घात[१] कहा गया है; इसमें बारह मात्राएँ होती हैं। मध्यम प्राणायाम द्वितीय उद्घात है, उसमें चौबीस मात्राएँ होती हैं। उत्तम श्रेणीका प्राणायाम तृतीय उद्घात है, उसमें छत्तीस मात्राएँ होती हैं। उससे भी श्रेष्ठ जो सर्वोत्कृष्ट चतुर्थ[२] प्राणायाम है, वह शरीरमें स्वेद और कम्प आदिका जनक होता है॥ २८-२९॥

योगीके अन्दर आनन्दजनित रोमांच, नेत्रोंसे अश्रुपात, जल्प, भ्रान्ति और मूर्च्छा आदि भाव प्रकट होते हैं। घुटनेके चारों ओर प्रदक्षिण-क्रमसे न बहुत जल्दी और न बहुत धीरे-धीरे चुटकी बजाये। घुटनेकी एक परिक्रमामें जितनी देरतक चुटकी बजती है, उस समयका मान एक मात्रा है। मात्राओंको क्रमशः जानना चाहिये। उद्घात क्रम-योगसे नाड़ीशोधनपूर्वक प्राणायाम करना चाहिये॥ ३०—३२॥

प्राणायामके दो भेद बताये गये हैं—अगर्भ और सगर्भ। जप और ध्यानके बिना किया गया प्राणायाम 'अगर्भ' कहलाता है और जप तथा ध्यानके सहयोग-पूर्वक किये जानेवाले प्राणायामको 'सगर्भ' कहते हैं। अगर्भसे सगर्भ प्राणायाम सौ गुना अधिक उत्तम है। इसलिये योगीजन प्रायः सगर्भ प्राणायाम किया करते हैं। प्राणविजयसे ही शरीरकी वायुओंपर विजय पायी जाती है॥ ३३—३४½॥

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय—ये दस प्राणवायु हैं। प्राण प्रयाण करता है, इसीलिये उसे 'प्राण' कहते हैं। जो कुछ भोजन किया जाता है, उसे जो वायु नीचे ले जाती है, उसको 'अपान' कहते हैं। जो वायु सम्पूर्ण अंगोंको बढ़ाती हुई उनमें व्याप्त रहती है, उसका नाम 'व्यान' है। जो वायु मर्मस्थानोंको उद्वेजित करती है, उसकी 'उदान' संज्ञा है। जो वायु सब अंगोंको समभावसे ले चलती है, वह अपने उस समनयनरूप कर्मसे 'समान' कहलाती है॥ ३५—३८॥

मुखसे कुछ उगलनेमें कारणभूत वायुको 'नाग' कहा गया है। आँख खोलनेके व्यापारमें 'कूर्म' नामक वायुकी स्थिति है। छींकमें 'कृकल' और जँभाईमें 'देवदत्त' नामक वायुकी स्थिति है। 'धनंजय' नामक वायु सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त रहती है। वह मृतक शरीरको भी नहीं छोड़ती। क्रमसे अभ्यासमें लाया हुआ यह प्राणायाम जब उचित प्रमाण या मात्रासे युक्त हो जाता है, तब वह कर्ताके सारे दोषोंको दग्ध कर देता है और उसके शरीरकी रक्षा करता है॥ ३९—४०½॥

प्राणपर विजय प्राप्त हो जाय तो उससे प्रकट होनेवाले चिह्नोंको अच्छी तरह देखे। पहली बात यह होती है कि विष्ठा, मूत्र और कफकी मात्रा घटने लगती है, अधिक भोजन करनेकी शक्ति हो जाती है और विलम्बसे साँस चलती है। शरीरमें हलकापन आता है।

१-उद्घातका अर्थ नाभिमूलसे प्रेरणा की हुई वायुका सिरमें टक्कर खाना है। यह प्राणायाममें देश, काल और संख्याका परिमाण है।

२-योगसूत्रमें चतुर्थ प्राणायामका परिचय इस प्रकार दिया गया है—'बाह्यान्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः' अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तर विषयोंको फेंकनेवाला प्राणायाम चौथा है।

शीघ्र चलनेकी शक्ति प्रकट होती है। हृदयमें उत्साह बढ़ता है। स्वरमें मिठास आती है। समस्त रोगोंका नाश हो जाता है। बल, तेज और सौन्दर्यकी वृद्धि होती है॥ ४१—४३ ॥

धृति, मेधा, युवापन, स्थिरता और प्रसन्नता आती है। तप, प्रायश्चित्त, यज्ञ, दान और व्रत आदि जितने भी साधन हैं—ये प्राणायामकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ ४४१/२ ॥

अपने-अपने विषयमें आसक्त हुई इन्द्रियोंको वहाँसे हटाकर जो अपने भीतर निगृहीत करता है, उस साधनको 'प्रत्याहार' कहते हैं। मन और इन्द्रियाँ ही मनुष्यको स्वर्ग तथा नरकमें ले जानेवाली हैं। [यदि उन्हें वशमें रखा जाय तो वे स्वर्गकी प्राप्ति कराती हैं और विषयोंकी ओर खुली छोड़ दिया जाय तो वे नरकमें डालनेवाली होती हैं।] इसलिये सुखकी इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह ज्ञान-वैराग्यका आश्रय ले इन्द्रियरूपी अश्वोंको शीघ्र ही काबूमें करके स्वयं ही आत्माका उद्धार करे॥ ४५—४७१/२ ॥

चित्तको किसी स्थान-विशेषमें बाँधना—किसी ध्येय-विशेषमें स्थिर करना—यही संक्षेपसे 'धारणा' का स्वरूप है। एकमात्र शिव ही स्थान हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि दूसरे स्थानोंमें त्रिविध दोष विद्यमान हैं। किसी नियमित कालतक स्थानस्वरूप शिवमें स्थापित हुआ मन जब लक्ष्यसे च्युत न हो तो धारणाकी सिद्धि समझना चाहिये, अन्यथा नहीं। मन पहले धारणासे ही स्थिर होता है, इसलिये धारणाके अभ्याससे मनको धीर बनाये॥ ४८—५०१/२ ॥

[अब ध्यानकी व्याख्या करते हैं।] ध्यानमें '**ध्यै चिन्तायाम्**' यह धातु मानी गयी है। [इसी धातुसे ल्युट् प्रत्यय करनेपर 'ध्यान' की सिद्धि होती है;] अतः विक्षेपरहित चित्तसे जो शिवका बारंबार चिन्तन किया जाता है, उसीका नाम 'ध्यान' है। ध्येयमें स्थित हुए चित्तकी जो ध्येयाकार वृत्ति होती है और बीचमें दूसरी वृत्ति अन्तर नहीं डालती; उस ध्येयाकार वृत्तिका प्रवाहरूपसे बना रहना 'ध्यान' कहलाता है। दूसरी सब वस्तुओंको छोड़कर केवल कल्याणकारी परमदेव देवेश्वर शिवका ही ध्यान करना चाहिये। वे ही सबके परम ध्येय हैं। यह अथर्ववेदकी श्रुतिका अन्तिम निर्णय है॥ ५१—५३१/२ ॥

इसी प्रकार शिवादेवी भी परम ध्येय हैं। ये दोनों शिवा और शिव सम्पूर्ण भूतोंमें व्याप्त हैं। श्रुति, स्मृति एवं शास्त्रोंसे यह सुना गया है कि शिवा और शिव सर्वव्यापक, सर्वदा उदित, सर्वज्ञ एवं नाना रूपोंमें निरन्तर ध्यान करनेयोग्य हैं॥ ५४-५५ ॥

इस ध्यानके दो प्रयोजन जानने चाहिये। पहला है मोक्ष और दूसरा प्रयोजन है अणिमा आदि सिद्धियोंकी उपलब्धि। ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान-प्रयोजन—इन चारोंको अच्छी तरह जानकर योगवेत्ता पुरुष योगका अभ्यास करे। जो ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न, श्रद्धालु, क्षमाशील, ममतारहित तथा सदा उत्साह रखनेवाला है, ऐसा ही पुरुष ध्याता कहा गया है अर्थात् वही ध्यान करनेमें सफल हो सकता है॥ ५६—५८ ॥

साधकको चाहिये कि वह जपसे थकनेपर फिर ध्यान करे और ध्यानसे थक जानेपर पुनः जप करे। इस तरह जप और ध्यानमें लगे हुए पुरुषका योग जल्दी सिद्ध होता है। बारह प्राणायामोंकी एक धारणा होती है, बारह धारणाओंका ध्यान होता है और बारह ध्यानकी एक समाधि कही गयी है। समाधिको योगका अन्तिम अंग कहा गया है। समाधिसे सर्वत्र बुद्धिका प्रकाश फैलता है॥ ५९—६१ ॥

जिस ध्यानमें केवल ध्येय ही अर्थरूपसे भासता है, ध्याता निश्चल महासागरके समान स्थिरभावसे स्थित रहता है और ध्यानस्वरूपसे शून्य-सा हो जाता है, उसे 'समाधि' कहते हैं। जो योगी ध्येयमें चित्तको लगाकर सुस्थिरभावसे उसे देखता है और बुझी हुई आगके समान शान्त रहता है, वह 'समाधिस्थ' कहलाता है॥ ६२-६३ ॥

वह न सुनता है, न सूँघता है, न बोलता है, न देखता है, न स्पर्शका अनुभव करता है, न मनसे संकल्प-विकल्प करता है, न उसमें अभिमानकी वृत्तिका उदय होता है और न वह बुद्धिके द्वारा ही कुछ समझता है। केवल काष्ठकी भाँति स्थित रहता है। इस तरह शिवमें लीनचित्त हुए योगीको यहाँ समाधिस्थ कहा जाता

है॥ ६४-६५॥

जैसे वायुरहित स्थानमें रखा हुआ दीपक कभी हिलता नहीं है—निःस्पन्द बना रहता है, उसी तरह समाधिनिष्ठ शुद्ध चित्त योगी भी उस समाधिसे कभी विचलित नहीं होता—सुस्थिरभावसे स्थिर रहता है। इस प्रकार उत्तम योगका अभ्यास करनेवाले योगीके सारे अन्तराय शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण विघ्न भी धीरे-धीरे दूर हो जाते हैं॥ ६६-६७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें वायु और नैमिषीय ऋषियोंके संवादमें योगगतिवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

योगमार्गके विघ्न, सिद्धि-सूचक उपसर्ग तथा पृथ्वीसे लेकर बुद्धितत्त्वपर्यन्त ऐश्वर्यगुणोंका वर्णन, शिव-शिवाके ध्यानकी महिमा

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण ! आलस्य, तीक्ष्ण व्याधियाँ, प्रमाद, स्थान-संशय, अनवस्थितचित्तता, अश्रद्धा, भ्रान्ति-दर्शन, दुःख, दौर्मनस्य और विषय-लोलुपता—ये दस योगसाधनमें लगे हुए पुरुषोंके लिये योगमार्गके विघ्न कहे गये हैं*॥ १-२॥

योगियोंके शरीर और चित्तमें जो अलसताका भाव आता है, उसीको यहाँ 'आलस्य' कहा गया है। वात, पित्त और कफ—इन धातुओंकी विषमतासे जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हींको 'व्याधि' कहते हैं। कर्मदोषसे इन व्याधियोंकी उत्पत्ति होती है। असावधानीके कारण योगके साधनोंका न हो पाना 'प्रमाद' है। 'यह है या नहीं है' इस प्रकार उभयकोटिसे आक्रान्त हुए ज्ञानका नाम 'स्थान-संशय' है। मनका कहीं स्थिर न होना ही अनवस्थितचित्तता (चित्तकी अस्थिरता) है। योगमार्गमें भावरहित (अनुरागशून्य) जो मनकी वृत्ति है, उसीको 'अश्रद्धा' कहा गया है॥ ३—५॥

विपरीतभावनासे युक्त बुद्धिको 'भ्रान्ति' कहते हैं। ['दुःख' कहते हैं कष्टको, उसके तीन भेद हैं—आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।] मनुष्योंके चित्तका जो अज्ञानजनित दुःख है, उसे आध्यात्मिक दुःख समझना चाहिये। पूर्वकृत कर्मोंके परिणामसे शरीरमें जो रोग आदि उत्पन्न होते हैं, उन्हें आधिभौतिक दुःख कहा गया है। विद्युत्पात, अस्त्र-शस्त्र और विष आदिसे जो कष्ट प्राप्त होता है, उसे आधिदैविक दुःख कहते हैं। इच्छापर आघात पहुँचनेसे मनमें जो क्षोभ होता है, उसीका नाम है 'दौर्मनस्य'। विचित्र विषयोंमें जो सुखका भ्रम है, वही 'विषयलोलुपता' है॥ ६—८॥

योगपरायण योगीके इन विघ्नोंके शान्त हो जानेपर जो 'दिव्य उपसर्ग' (विघ्न) प्राप्त होते हैं, वे सिद्धिके सूचक हैं। प्रतिभा, श्रवण, वार्ता, दर्शन, आस्वाद और वेदना—ये छः प्रकारकी सिद्धियाँ ही 'उपसर्ग' कहलाती हैं, जो योगशक्तिके अपव्ययमें कारण होती हैं॥ ९-१०॥

जो पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म हो, किसीकी ओटमें हो, भूतकालमें रहा हो, बहुत दूर हो अथवा भविष्यमें होनेवाला हो, उसका ठीक-ठीक प्रतिभास (ज्ञान) हो जाना 'प्रतिभा' कहलाता है। सुननेका प्रयत्न न करनेपर भी सम्पूर्ण शब्दोंका सुनायी देना 'श्रवण' कहा गया है। समस्त देहधारियोंकी बातोंको समझ लेना 'वार्ता' है। दिव्य पदार्थोंका बिना किसी प्रयत्नके दिखायी देना 'दर्शन' कहा गया है, दिव्य रसोंका स्वाद प्राप्त होना

* योगदर्शन, समाधिपादके ३०वें सूत्रमें नौ प्रकारके चित्तविक्षेपोंको योगका अन्तराय बताया गया है और ३१ वें सूत्रमें पाँच 'विक्षेपसहभू' संज्ञक विघ्न अथवा प्रतिबन्धक कहे गये हैं। किंतु यहाँ शिवपुराणमें दस प्रकारके अन्तराय बताये गये हैं। इनमें योगदर्शनकथित 'अलब्धभूमिकत्व' को छोड़ दिया गया है और 'विक्षेपसहभू' में परिगणित दुःख और दौर्मनस्यको सम्मिलित कर लिया गया है। योगसूत्रमें 'स्त्यान और संशय—ये दो पृथक्-पृथक् अन्तराय' हैं और यहाँ 'स्थान-संशय' नामसे एक ही अन्तराय माना गया है; साथ ही इस पुराणमें 'अश्रद्धा' को भी एक अन्तरायके रूपमें गिना गया है।

'आस्वाद' कहलाता है, अन्त:करणके द्वारा दिव्य स्पर्शोंका तथा ब्रह्मलोकतकके गन्धादि दिव्य भोगोंका अनुभव 'वेदना' नामसे विख्यात है॥ ११—१४॥

सिद्ध योगीके पास स्वयं ही रत्न उपस्थित हो जाते हैं और बहुत-सी वस्तुएँ प्रदान करते हैं। मुखसे इच्छानुसार नाना प्रकारकी मधुर वाणी निकलती है। सब प्रकारके रसायन और दिव्य ओषधियाँ सिद्ध हो जाती हैं। देवांगनाएँ इस योगीको प्रणाम करके [मनोवांछित वस्तुएँ] देती हैं। यह मैंने जैसे देखा या अनुभव किया है, तदनुसार योगसिद्धिके एकदेशका भी साक्षात्कार हो जाय तो मोक्षमें मन लग जाता है अर्थात् मोक्ष भी हो सकता है॥ १५—१७॥

कृशता, स्थूलता, बाल्यावस्था, वृद्धावस्था, युवावस्था, नाना जातिका स्वरूप; पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु—इन चार तत्त्वोंके शरीरको धारण करना, नित्य अपार्थिव एवं मनोहर गन्धको ग्रहण करना—ये पार्थिव ऐश्वर्यके आठ गुण बताये गये हैं॥ १८-१९॥

जलमें निवास करना, पृथ्वीपर ही जलका निकल आना, इच्छा करते ही बिना किसी आतुरताके स्वयं समुद्रको भी पी जानेमें समर्थ होना, इस संसारमें जहाँ चाहे वहीं जलका दर्शन होना, घड़ा आदिके बिना हाथमें ही जलराशिको धारण करना, जिस विरस वस्तुको भी खानेकी इच्छा हो, उसका तत्काल सरस हो जाना, जल, तेज और वायु—इन तीन तत्त्वोंके शरीरको धारण करना तथा देहका फोड़े, फुंसी और घाव आदिसे रहित होना—पार्थिव ऐश्वर्यके आठ गुणोंको मिलाकर ये सोलह जलीय ऐश्वर्यके अद्भुत गुण हैं॥ २०—२३॥

शरीरसे अग्निको प्रकट करना, अग्निके तापसे जलनेका भय दूर हो जाना, यदि इच्छा हो तो बिना किसी प्रयत्नके इस जगत्को जलाकर भस्म कर देनेकी शक्तिका होना, पानीके ऊपर अग्निको स्थापित कर देना, हाथमें आग धारण करना, सृष्टिको जलाकर फिर उसे ज्यों-का-त्यों कर देनेकी क्षमताका होना, मुखमें ही अन्न आदिको पचा लेना तथा तेज और वायु—दो ही तत्त्वोंसे शरीरको रच लेना—ये आठ गुण जलीय ऐश्वर्यके उपर्युक्त सोलह गुणोंके साथ चौबीस होते हैं। ये चौबीस तैजस ऐश्वर्यके गुण कहे गये हैं॥ २४—२५½॥

मनके समान वेगशाली होना, प्राणियोंके भीतर क्षणभरमें प्रवेश कर जाना, बिना प्रयत्नके ही पर्वत आदिके महान् भारको उठा लेना, भारी हो जाना, हलका होना, हाथमें वायुको पकड़ लेना, अंगुलिके अग्रभागकी चोटसे भूमिको भी कम्पित कर देना, एकमात्र वायुतत्त्वसे ही शरीरका निर्माण कर लेना—ये आठ गुण तैजस ऐश्वर्यके चौबीस गुणोंके साथ बत्तीस हो जाते हैं। विद्वानोंने वायुसम्बन्धी ऐश्वर्यके ये ही बत्तीस गुण स्वीकार किये हैं॥ २६—२८½॥

शरीरकी छायाका न होना, इन्द्रियोंका दिखायी न देना, आकाशमें इच्छानुसार विचरण करना, इन्द्रियोंके सम्पूर्ण विषयोंका समन्वय होना—आकाशको लाँघना, अपने शरीरमें उसका निवेश करना, आकाशको पिण्डकी भाँति ठोस बना देना और निराकार होना—ये आठ गुण अग्निके बत्तीस गुणोंसे मिलकर चालीस होते हैं। ये चालीस ही वायुसम्बन्धी ऐश्वर्यके गुण हैं। यही सम्पूर्ण इन्द्रियोंका ऐश्वर्य है, इसीको 'ऐन्द्र' एवं 'आम्बर' (आकाशसम्बन्धी) ऐश्वर्य भी कहते हैं॥ २९—३१½॥

इच्छानुसार सभी वस्तुओंकी उपलब्धि, जहाँ चाहे वहाँ निकल जाना, सबको अभिभूत कर लेना, सम्पूर्ण गुह्य अर्थका दर्शन होना, कर्मके अनुरूप निर्माण करना, सबको वशमें कर लेना, सदा प्रिय वस्तुका ही दर्शन होना और एक ही स्थानसे सम्पूर्ण संसारका दिखायी देना—ये आठ गुण पूर्वोक्त इन्द्रियसम्बन्धी ऐश्वर्य-गुणोंसे मिलकर अड़तालीस होते हैं। चान्द्रमस ऐश्वर्य इन अड़तालीस गुणोंसे युक्त कहा गया है। यह पहलेके ऐश्वर्योंसे अधिक गुणवाला है। इसे 'मानस ऐश्वर्य' भी कहते हैं॥ ३२—३४॥

छेदना, पीटना, बाँधना, खोलना, संसारके वशमें रहनेवाले समस्त प्राणियोंको ग्रहण करना, सबको प्रसन्न रखना, पाना, मृत्युको जीतना तथा कालपर विजय पाना—ये सब अहंकारसम्बन्धी ऐश्वर्यके अन्तर्गत हैं। आहंकारिक ऐश्वर्यको ही 'प्राजापत्य' भी कहते हैं॥ ३५-३६॥

चान्द्रमस ऐश्वर्यके गुणोंके साथ इसके आठ गुण

मिलकर छप्पन होते हैं। महान् आभिमानिक ऐश्वर्यके ये ही छप्पन गुण हैं। संकल्पमात्रसे सृष्टि-रचना करना, पालन करना, संहार करना, सबके ऊपर अपना अधिकार स्थापित करना, प्राणियोंके चित्तको प्रेरित करना, सबसे अनुपम होना, इस जगत्से पृथक् नये संसारकी रचना कर लेना तथा शुभको अशुभ और अशुभको शुभ कर देना—यह 'बौद्ध ऐश्वर्य' है। प्राजापत्य ऐश्वर्यके गुणोंको मिलाकर इसके चौंसठ गुण होते हैं। इस बौद्ध ऐश्वर्यको ही 'ब्राह्म ऐश्वर्य' भी कहते हैं॥ ३७—३९ ॥

इससे उत्कृष्ट है गौण ऐश्वर्य, जिसे प्राकृत भी कहते हैं। उसीका नाम 'वैष्णव ऐश्वर्य' है। तीनों लोकोंका पालन उसीके अन्तर्गत है। उस सम्पूर्ण वैष्णव-पदको न तो ब्रह्मा कह सकते हैं और न दूसरे ही उसका पूर्णतया वर्णन कर सकते हैं। उसीको पौरुषपद भी कहते हैं। गौण और पौरुषपदसे उत्कृष्ट गणपतिपद है। उसीको ईश्वरपद भी कहते हैं। उस पदका किंचित् ज्ञान श्रीविष्णुको है। दूसरे लोग उसे नहीं जान सकते॥ ४०-४१ ॥

ये सारी विज्ञान-सिद्धियाँ औपसर्गिक हैं। इन्हें परम वैराग्यद्वारा प्रयत्नपूर्वक रोकना चाहिये। इन अशुद्ध प्रातिभासिक गुणोंमें जिसका चित्त आसक्त है, उसे सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला निर्भय परम ऐश्वर्य नहीं सिद्ध होता॥ ४२-४३ ॥

इसलिये देवता, असुर और राजाओंके गुणों तथा भोगोंको जो तृणके समान त्याग देता है, उसे ही उत्कृष्ट योगसिद्धि प्राप्त होती है। अथवा यदि जगत्पर अनुग्रह करनेकी इच्छा हो तो वह योगसिद्ध मुनि इच्छानुसार विचरे। इस जीवनमें गुणों और भोगोंका उपभोग करके अन्तमें उसे मोक्षकी प्राप्ति होगी॥ ४४-४५ ॥

अब मैं योगके प्रयोगका वर्णन करूँगा। एकाग्रचित्त होकर सुनो। शुभ काल हो, शुभ देश हो, भगवान् शिवका क्षेत्र आदि हो, एकान्त स्थान हो, जीव-जन्तु न रहते हों, कोलाहल न होता हो और किसी बाधाकी सम्भावना न हो—ऐसे स्थानमें लिपी-पुती सुन्दर भूमिको गन्ध और धूप आदिसे सुवासित करके वहाँ फूल बिखेर दे, चँदोवा आदि तानकर उसे विचित्र रीतिसे सजा दे तथा वहाँ कुश, पुष्प, समिधा, जल, फल और मूलकी सुविधा हो। [फिर वहाँ योगका अभ्यास करे।] अग्निके निकट, जलके समीप और सूखे पत्तोंके ढेरपर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये॥ ४६—४८ ॥

जहाँ डाँस और मच्छर भरे हों, साँप और हिंसक जन्तुओंकी अधिकता हो, दुष्ट पशु निवास करते हों, भयकी सम्भावना हो तथा जो दुष्टोंसे घिरा हुआ हो—ऐसे स्थानमें भी योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। श्मशानमें, चैत्यवृक्षके नीचे, बाँबीके निकट, जीर्ण-शीर्ण घरमें, चौराहेपर, नदी-नद और समुद्रके तटपर, गली या सड़कके बीचमें, उजड़े हुए उद्यानमें, गोष्ठ आदिमें अनिष्टकारी और निन्दित स्थानमें भी योगाभ्यास न करे॥ ४९—५०½ ॥

जब शरीरमें अजीर्णका कष्ट हो, खट्टी डकार आती हो, विष्ठा और मूत्रसे शरीर दूषित हो, सर्दी हुई हो या अतिसार रोगका प्रकोप हो, अधिक भोजन कर लिया गया हो या अधिक परिश्रमके कारण थकावट हुई हो, जब मनुष्य अत्यन्त चिन्तासे व्याकुल हो, अधिक भूख-प्यास सता रही हो तथा जब वह अपने गुरुजनोंके कार्य आदिमें लगा हुआ हो, उस अवस्थामें भी उसे योगाभ्यास नहीं करना चाहिये॥ ५१—५२½ ॥

जिसके आहार-विहार उचित एवं परिमित हों, जो कर्मोंमें यथायोग्य समुचित चेष्टा करता हो तथा जो उचित समयसे सोता और जागता हो एवं सर्वथा आयासरहित हो, उसीको योगाभ्यासमें तत्पर होना चाहिये। आसन मुलायम, सुन्दर, विस्तृत, सब ओरसे बराबर और पवित्र होना चाहिये। पद्मासन और स्वस्तिकासन आदि जो यौगिक आसन हैं, उनपर भी अभ्यास करना चाहिये। अपने आचार्यपर्यन्त गुरुजनोंकी परम्पराको क्रमशः प्रणाम करके अपनी गर्दन, मस्तक और छातीको सीधी रखे। ओठ और नेत्र अधिक सटे हुए न हों। सिर कुछ-कुछ ऊँचा हो। दाँतोंसे दाँतोंका स्पर्श न करे॥ ५३—५६ ॥

दाँतोंके अग्रभागमें स्थित हुई जिह्वाको अविचलभावसे रखते हुए, एड़ियोंसे दोनों अण्डकोशों और प्रजननेन्द्रियकी

रक्षापूर्वक दोनों जाँघोंके ऊपर बिना किसी यत्नके अपनी दोनों भुजाओंको रखे। फिर दाहिने हाथके पृष्ठभागको बायें हाथकी हथेलीपर रखकर धीरेसे पीठको ऊँची करे और छातीको आगेकी ओरसे सुस्थिर रखते हुए नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये। अन्य दिशाओंकी ओर दृष्टिपात न करे॥ ५७—५९ ॥

प्राणका संचार रोककर पाषाणके समान निश्चल हो जाय। अपने शरीरके भीतर मानस-मन्दिरमें हृदय-कमलके आसनपर पार्वतीसहित भगवान् शिवका चिन्तन करके ध्यान-यज्ञके द्वारा उनका पूजन करे॥ ६०१/२ ॥

मूलाधार चक्रमें, नासिकाके अग्रभागमें, नाभिमें, कण्ठमें, तालुके दोनों छिद्रोंमें, भौंहोंके मध्यभागमें, द्वारदेशमें, ललाटमें या मस्तकमें शिवका चिन्तन करे। शिवा और शिवके लिये यथोचित रीतिसे उत्तम आसनकी कल्पना करके वहाँ सावरण या निरावरण शिवका स्मरण करे। द्विदल, चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल अथवा षोडशदल कमलके आसनपर विराजमान शिवका विधिवत् स्मरण करना चाहिये। दोनों भौंहोंके मध्यभागमें द्विदल कमल है, जो विद्युत्के समान प्रकाशमान है॥ ६१—६४ ॥

भ्रूमध्यमें स्थित जो कमल है, उसके क्रमशः दक्षिण और उत्तर भागमें दो पत्ते हैं, जो विद्युत्के समान दीप्तिमान् हैं। उनमें दो अन्तिम वर्ण 'ह' और 'क्ष' अंकित हैं। षोडशदल कमलके पत्ते सोलह स्वररूप हैं, [जिनमें 'अ' से लेकर 'अः' तकके अक्षर क्रमशः अंकित हैं।] यह जो कमल है, उसकी नालके मूलभागसे बारह दल प्रस्फुटित हुए हैं, जिनमें 'क' से लेकर 'ठ' तकके बारह अक्षर क्रमशः अंकित हैं। सूर्यके समान प्रकाशमान इस कमलके उन द्वादश दलोंका अपने हृदयके भीतर ध्यान करना चाहिये॥ ६५—६७ ॥

तत्पश्चात् गो-दुग्धके समान उज्ज्वल कमलके दस दलोंका चिन्तन करे। उनमें क्रमशः'ड' से लेकर 'फ' तकके अक्षर अंकित हैं। इसके बाद नीचेकी ओर दलवाले कमलके छः दल हैं, जिनमें 'ब' से लेकर 'ल' तकके अक्षर अंकित हैं। इस कमलकी कान्ति धूमरहित अंगारके समान है॥ ६८१/२ ॥

मूलाधारमें स्थित जो कमल है, उसकी कान्ति सुवर्णके समान है। उसमें क्रमशः 'व' से लेकर 'स' तकके चार अक्षर चार दलोंके रूपमें स्थित हैं। इन कमलोंमेंसे जिसमें ही अपना मन रमे, उसीमें महादेव और महादेवीका अपनी धीर बुद्धिसे चिन्तन करे॥ ६९-७० ॥

उनका स्वरूप अँगूठेके बराबर, निर्मल और सब ओरसे दीप्तिमान् है। अथवा वह शुद्ध दीपशिखाके समान आकारवाला है और अपनी शक्तिसे पूर्णतः मण्डित है। अथवा चन्द्रलेखा या ताराके समान रूपवाला है अथवा वह नीवारके सींक या कमलनालसे निकलेवाले सूतके समान है। कदम्बके गोलक या ओसके कणसे भी उसकी उपमा दी जा सकती है। वह रूप पृथिवी आदि तत्त्वोंपर विजय प्राप्त करनेवाला है। ध्यान करनेवाला पुरुष जिस तत्त्वपर विजय पानेकी इच्छा रखता हो, उसी तत्त्वके अधिपतिकी स्थूल मूर्तिका चिन्तन करे॥ ७१—७३१/२ ॥

ब्रह्मासे लेकर सदाशिवपर्यन्त तथा भव आदि आठ मूर्तियाँ ही शिवशास्त्रमें शिवकी स्थूल मूर्तियाँ निश्चित की गयी हैं। मुनीश्वरोंने उन्हें 'घोर', 'शान्त' और 'मिश्र' तीन प्रकारकी बताया है। फलकी आशा न रखनेवाले ध्यानकुशल पुरुषोंको इनका चिन्तन करना चाहिये। यदि घोर मूर्तियोंका चिन्तन किया जाय तो वे शीघ्र ही पाप और रोगका नाश करती हैं॥ ७४—७६ ॥

मिश्र मूर्तियोंमें शिवका चिन्तन करनेपर चिरकालमें सिद्धि प्राप्त होती है और सौम्यमूर्तिमें शिवका ध्यान किया जाय तो सिद्धि प्राप्त होनेमें न तो अधिक शीघ्रता होती है और न अधिक विलम्ब ही। सौम्यमूर्तिमें ध्यान करनेसे विशेषतः मुक्ति, शान्ति एवं शुद्ध बुद्धि प्राप्त होती है। क्रमशः सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ७७-७८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें योगगतिमें विघ्नोत्पत्तिवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८ ॥

उनतालीसवाँ अध्याय

ध्यान और उसकी महिमा, योगधर्म तथा शिवयोगीका महत्त्व, शिवभक्त या शिवके लिये प्राण देने अथवा शिवक्षेत्रमें मरणसे तत्काल मोक्ष-लाभका कथन

उपमन्यु कहते हैं—श्रीकृष्ण! श्रीकण्ठनाथका स्मरण करनेवाले लोगोंके सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि तत्काल हो जाती है, ऐसा जानकर कुछ योगी उनका ध्यान अवश्य करते हैं॥ १॥

कुछ लोग मनकी स्थिरताके लिये स्थूलरूपका ध्यान करते हैं। स्थूल-रूपके चिन्तनमें लगकर जब चित्त निश्चल हो जाता है, तब सूक्ष्मरूपमें वह स्थिर होता है। भगवान् शिवका चिन्तन करनेपर सब सिद्धियाँ प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाती हैं। अन्य मूर्तियोंका ध्यान करनेपर भी शिवरूपका अवश्य चिन्तन करना चाहिये॥ २-३॥

जिस-जिस रूपमें मनकी स्थिरता लक्षित हो, उस-उसका बारंबार ध्यान करना चाहिये। ध्यान पहले सविषय होता है, फिर निर्विषय होता है—ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है। इस विषयमें कुछ सत्पुरुषोंका मत है कि कोई भी ध्यान निर्विषय होता ही नहीं। बुद्धिकी ही कोई प्रवाहरूपा संतति 'ध्यान' कहलाती है॥ ४-५॥

इसलिये निर्विषय बुद्धि केवल—निर्गुण-निराकार ब्रह्ममें ही प्रवृत्त होती है। अत: सविषय ध्यान प्रात:कालके सूर्यकी किरणोंके समान ज्योतिका आश्रय लेनेवाला है। तथा निर्विषय ध्यान सूक्ष्मतत्त्वका अवलम्बन करनेवाला है। इन दोके सिवा और कोई ध्यान वास्तवमें नहीं है। अथवा सविषय ध्यान साकार स्वरूपका अवलम्बन करनेवाला है तथा निराकार स्वरूपका जो बोध या अनुभव है, वही निर्विषय ध्यान माना गया है। वह सविषय और निर्विषय ध्यान ही क्रमश: सबीज और निर्बीज कहा जाता है॥ ६—८॥

निराकारका आश्रय लेनेसे उसे निर्बीज और साकारका आश्रय लेनेसे सबीजकी संज्ञा दी गयी है। अत: पहले सविषय या सबीज ध्यान करके अन्तमें सब प्रकारकी सिद्धिके लिये निर्विषय अथवा निर्बीज ध्यान करना चाहिये। प्राणायाम करनेसे क्रमश: शान्ति आदि दिव्य सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं॥ ९-१०॥

उनके नाम हैं—शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद। समस्त आपदाओंके शमनको ही शान्ति कहा गया है। तम (अज्ञान)-का बाहर और भीतरसे नाश ही प्रशान्ति है। बाहर और भीतर जो ज्ञानका प्रकाश होता है, उसका नाम दीप्ति है तथा बुद्धिकी जो स्वस्थता (आत्मनिष्ठता) है, उसीको प्रसाद कहा गया है। बाह्य और आभ्यन्तरसहित जो समस्त करण हैं, वे बुद्धिके प्रसादसे शीघ्र ही प्रसन्न (निर्मल) हो जाते हैं॥ ११—१३ $^{1}/_{2}$॥

ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान-प्रयोजन—इन चारको जानकर ध्यान करनेवाला पुरुष ध्यान करे। जो ज्ञान और वैराग्यसे सम्पन्न हो, सदा शान्तचित्त रहता हो, श्रद्धालु हो और जिसकी बुद्धि प्रसादगुणसे युक्त हो, ऐसे साधकको ही सत्पुरुषोंने ध्याता कहा है॥ १४-१५॥

'**ध्यै चिन्तायाम्**' यह धातु है। इसका अर्थ है चिन्तन। भगवान् शिवका बारंबार चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। जैसे थोड़ा-सा भी योगाभ्यास पापका नाश कर देता है, उसी तरह क्षणमात्र भी ध्यान करनेवाले पुरुषके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक, विक्षेपरहित चित्तसे परमेश्वरका जो चिन्तन है, उसीका नाम 'ध्यान' है॥ १६—१८॥

बुद्धिके प्रवाहरूप ध्यानका जो आलम्बन या आश्रय है, उसीको साधु पुरुष 'ध्येय' कहते हैं। स्वयं साम्ब सदाशिव ही वह ध्येय हैं। मोक्ष-सुखका पूर्ण अनुभव और अणिमा आदि ऐश्वर्यकी उपलब्धि— ये पूर्ण शिवध्यानके साक्षात् प्रयोजन कहे गये हैं। ध्यानसे सौख्य और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होती है, इसलिये मनुष्यको सब कुछ छोड़कर ध्यानमें लग जाना चाहिये॥ १९—२१॥

बिना ध्यानके ज्ञान नहीं होता और जिसने योगका साधन नहीं किया है, उसका ध्यान नहीं सिद्ध होता। जिसे ध्यान और ज्ञान दोनों प्राप्त हैं, उसने भवसागरको पार कर लिया। समस्त उपाधियोंसे रहित, निर्मल ज्ञान और एकाग्रतापूर्ण ध्यान—ये योगाभ्याससे युक्त योगीको ही सिद्ध होते हैं॥ २२-२३॥

जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हैं, उन्हींकी बुद्धि ज्ञान और ध्यानमें लगती है। जिनकी बुद्धि पापसे दूषित है, उनके लिये ज्ञान और ध्यानकी बात भी अत्यन्त दुर्लभ है। जैसे प्रज्वलित हुई आग सूखी और गीली लकड़ीको भी जला देती है, उसी प्रकार ध्यानाग्नि शुभ और अशुभ कर्मको भी क्षणभरमें दग्ध कर देती है॥ २४-२५॥

जैसे बहुत छोटा दीपक भी महान् अन्धकारका नाश कर देता है, इसी तरह थोड़ा-सा योगाभ्यास भी महान् पापका विनाश कर डालता है। श्रद्धापूर्वक क्षणभर भी परमेश्वरका ध्यान करनेवाले पुरुषको जो महान् श्रेय प्राप्त होता है, उसका कहीं अन्त नहीं है[1]॥ २६-२७॥

ध्यानके समान कोई तीर्थ नहीं है, ध्यानके समान कोई तप नहीं है और ध्यानके समान कोई यज्ञ नहीं है; इसलिये ध्यान अवश्य करे।[2] अपने आत्मा एवं परमात्माका बोध प्राप्त करनेके कारण योगीजन केवल जलसे भरे हुए तीर्थों और पत्थर एवं मिट्टीकी बनी हुई देवमूर्तियोंका आश्रय नहीं लेते [वे आत्मतीर्थमें अवगाहन करते और आत्मदेवके ही भजनमें लगे रहते हैं]॥ २८-२९॥

जैसे अयोगी पुरुषोंको मिट्टी और काठ आदिकी बनी हुई स्थूल मूर्तियोंका प्रत्यक्ष होता है, उसी तरह योगियोंको ईश्वरके सूक्ष्म स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन होता है। जैसे राजाको अपने अन्तःपुरमें विचरनेवाले स्वजन एवं परिजन प्रिय होते हैं और बाहरके लोग उतने प्रिय नहीं होते, उसी प्रकार भगवान् शंकरको अन्तःकरणमें ध्यान लगानेवाले भक्त ही अधिक प्रिय हैं, बाह्य उपचारोंका आश्रय लेनेवाले कर्मकाण्डी नहीं॥ ३०-३१॥

जैसे लोकमें यह देखा गया है कि बाहरी लोग राजाके भवनमें राजकीय पुरुषोचित फलका उपभोग नहीं कर पाते, केवल अन्तःपुरके लोग ही उस फलके भागी होते हैं, उसी प्रकार यहाँ बाह्यकर्मी पुरुष उस फलको नहीं पाते, जो ध्यानयोगियोंको सुलभ होता है॥ ३२॥

ज्ञानयोगकी साधनाके लिये उद्यत हुआ पुरुष यदि बीचमें ही मर जाय तो भी वह योगके लिये उद्योग करनेमात्रसे रुद्रलोकमें जायगा। वहाँ दिव्य सुखका उपभोग करके वह फिर योगियोंके कुलमें जन्म लेगा और पुनः ज्ञानयोगको पाकर संसारसागरको लाँघ जायगा॥ ३३-३४॥

योगका जिज्ञासु पुरुष भी जिस गतिको पाता है, उसे यज्ञकर्ता सम्पूर्ण महायज्ञोंका अनुष्ठान करके भी नहीं पाता। करोड़ों वेदवेत्ता द्विजोंकी पूजा करनेसे जो फल मिलता है, वह एक शिवयोगीको भिक्षा देनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है। यज्ञ, अग्निहोत्र, दान, तीर्थसेवन और होम—इन सभी पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानसे जो फल मिलता है, वह सारा फल शिवयोगियोंको अन्न देनेमात्रसे प्राप्त हो जाता है॥ ३५—३७॥

जो मूढ़ मानव शिवयोगियोंकी निन्दा करते हैं, वे श्रोताओंसहित नरकमें पड़ते हैं और प्रलयकालतक वहीं रहते हैं। श्रोताके होनेपर ही कोई शिवयोगियोंकी निन्दाका वक्ता हो सकता है, इसलिये महापुरुषोंके मतमें उस निन्दाको सुननेवाला भी महान् पापी और दण्डनीय है। जो लोग सदा भक्तिभावसे शिवयोगियोंकी सेवा करते हैं, वे महान् भोग पाते और अन्तमें शिवयोगकी भी उपलब्धि कर लेते हैं। इसलिये भोगार्थी मनुष्योंको चाहिये कि वे रहनेको स्थान, खान-पान, शय्या तथा ओढ़ने-बिछानेकी सामग्री आदि देकर सदा शिवयोगियोंका सत्कार करें॥ ३८—४०१/२॥

योगधर्म सुदृढ़—अत्यन्त प्रबल है, अतः पापरूपी मुद्गरोंसे उसका भेदन नहीं हो सकता। योगधर्म और पाप-मुद्गरमें उतना ही अन्तर समझना चाहिये, जितना वज्र और तन्दुलमें; अतः योगीजन पापों और तापसमूहोंसे उसी तरह लिप्त नहीं होते, जैसे कमलका पत्ता पानीसे॥ ४१-४२॥

शिवयोगपरायण मुनि जिस देशमें नित्य निवास करता है, वह देश भी पवित्र हो जाता है। फिर उसकी पवित्रताके विषयमें तो कहना ही क्या? अतः चतुर एवं विद्वान् पुरुष सब कृत्योंको छोड़कर सम्पूर्ण दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिये शिवयोगका अभ्यास करे॥ ४३-४४॥

जिसका योगफल सिद्ध हो गया है, वह योगी यथेष्ट भोगोंको भोगकर समस्त लोकोंकी हित-कामनासे संसारमें विचरे अथवा अपने स्थानपर ही रहे या विषयसुखको

१-यथा वह्निर्महादीप्तः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत्। तथा शुभाशुभं कर्म ध्यानाग्निर्दहते क्षणात्॥
ध्यायतः क्षणमात्रं वा श्रद्धया परमेश्वरम्। यद्भवेत् सुमहच्छ्रेयस्तस्यान्तो नैव विद्यते॥ (शि०पु०, वा०सं०, उ०ख० ३९। २५,२७)
२-नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः। नास्ति ध्यानसमो यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत्॥ (शि०पु०, वा०सं०, उ०ख० ३९। २८)

अत्यन्त तुच्छ समझकर छोड़ दे और वैराग्ययोगसे स्वेच्छापूर्वक कर्मोंका परित्याग कर दे॥ ४५-४६॥

जो मनुष्य बहुत-से अरिष्ट देखकर अपनी मृत्युको निकट जान ले, उसे योगानुष्ठानमें संलग्न हो शिवक्षेत्रका आश्रय लेना चाहिये। वह मनुष्य यदि धीरचित्त होकर वहीं निवास करता रहे तो रोग आदिके बिना भी स्वयं ही प्राणोंका परित्याग कर सकता है। अनशन करके, शिवाग्निमें शरीरकी आहुति देकर अथवा शिवतीर्थोंमें अवगाहन करते हुए अपने शरीरको उन्हींके जलमें डालकर शिवशास्त्रोक्त विधिसे जो अपने प्राणोंका त्याग करता है, वह तत्काल मुक्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है अथवा जो रोग आदिसे विवश होकर शिवक्षेत्रकी शरण लेता है, उसकी भी यदि वहाँ मृत्यु हो जाय तो वह इसी प्रकार मुक्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है॥ ४७—५१॥

इसलिये लोग अनशन आदिसे शिवक्षेत्रमें श्रेष्ठ मरणकी कामना करते हैं; क्योंकि शास्त्रपर विश्वास करके धीर हुए मनसे उनके द्वारा इस तरहकी मृत्यु स्वीकार की जाती है॥ ५२॥

शिवकी निन्दा करनेवालेको आक्रान्त करके अथवा स्वयं निन्दासे व्यथित होकर जो कठिनाईसे त्याग किये जानेयोग्य [अपने] प्राणोंका त्याग कर देता है, वह पुनः जन्म नहीं लेता है॥ ५३॥

शिवनिन्दा करनेवालेको आक्रान्त करनेमें असमर्थ जो [व्यक्ति] स्वयं मर जाता है, वह [अपनी] इक्कीस पीढ़ियोंके साथ स्वयं मुक्त हो जाता है। जो शिवके लिये अथवा शिवभक्तोंके लिये प्राणत्याग करता है, उसके समान दूसरा कोई मनुष्य मुक्ति-मार्गपर स्थित नहीं है॥ ५४-५५॥

इस कारण इस संसार-मण्डलसे उसकी शीघ्र मुक्ति हो जाती है। इनमेंसे किसी एक उपायका किसी तरह भी अवलम्बन करके अथवा विधिवत् षडध्वशुद्धिको प्राप्त होकर यदि कोई मनुष्य मरता है तो उसका अन्य पशुओं—प्राणियोंके समान यहाँ और्ध्वदैहिक संस्कार नहीं करना चाहिये॥ ५६-५७॥

विशेषतः उसके पुत्र आदिको उसके मरनेसे अशौचकी प्राप्ति नहीं होती। ऐसे पुरुषके मृत शरीरको धरतीमें गाड़ दे या पवित्र अग्निसे जला दे या शिवस्वरूपजलमें डाल दे अथवा काठ या मिट्टीके ढेलेकी भाँति कहीं भी फेंक दे, सब उसके लिये बराबर है। यदि ऐसे पुरुषके उद्देश्यसे भी कोई कर्म करनेकी इच्छा हो तो दूसरोंका कल्याण ही करे और अपनी शक्तिके अनुसार शिवभक्तोंको तृप्त करे। उसके धनको शिवभक्त ही ग्रहण करे। यदि उसकी संतति शिवभक्त हो तो वह भी ग्रहण कर सकती है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसका धन भगवान् शिवको समर्पित कर दे। परंतु उसकी पशुसंतति (शिवभक्तिहीन संतान) उस धनको ग्रहण न करे॥ ५८—६०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शैवयोगवर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

वायुदेवका अन्तर्धान होना, ऋषियोंका सरस्वतीमें अवभृथ-स्नान और काशीमें दिव्य तेजका दर्शन करके ब्रह्माजीके पास जाना, ब्रह्माजीका उन्हें सिद्धि-प्राप्तिकी सूचना देकर मेरुके कुमारशिखरपर भेजना

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार क्रोधको जीतनेवाले उपमन्युसे यदुकुलनन्दन श्रीकृष्णने जो ज्ञानयोग प्राप्त किया था, उसका प्रणतभावसे बैठे हुए उन मुनियोंको उपदेश देकर आत्मदर्शी वायुदेव उसी समय सायंकाल आकाशमें अन्तर्धान हो गये॥ १॥

तदनन्तर प्रातःकाल नैमिषारण्यके समस्त तपस्वी मुनि सत्रके अन्तमें अवभृथ-स्नान करनेको उद्यत हुए। उस समय ब्रह्माजीके आदेशसे साक्षात् सरस्वतीदेवी स्वादिष्ठ जलसे भरी हुई स्वच्छ सुन्दर नदीके रूपमें वहाँ बहने लगीं॥ २-३॥

सरस्वती नदीको उपस्थित देख मुनि मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्र समाप्त करके उसमें अवगाहन (स्नान) आरम्भ किया। उस नदीके मंगलमय जलसे देवता आदिका तर्पण करके पूर्व-वृत्तान्तका स्मरण करते हुए वे सब-के-सब वाराणसीपुरीकी ओर चल दिये॥ ४-५॥

उस समय हिमालयके चरणोंसे निकलकर दक्षिणकी ओर बहनेवाली भागीरथीका दर्शन करके उन ऋषियोंने उसमें स्नान किया और भागीरथीके ही किनारेका मार्ग पकड़कर वे आगे बढ़े॥ ६॥

तदनन्तर वाराणसीमें पहुँचकर उन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। वहाँ उत्तरवाहिनी गंगामें स्नान करके उन्होंने अविमुक्तेश्वर-लिंगका दर्शन और विधिपूर्वक पूजन किया। पूजन करके जब वे चलनेको उद्यत हुए तब उन्होंने आकाशमें एक दिव्य और परम अद्भुत प्रकाशमान तेज देखा, जो करोड़ों सूर्योंके समान जान पड़ता था। उसने अपनी प्रभाके प्रसारसे सम्पूर्ण दिगन्तको व्याप्त कर लिया था॥ ७—९॥

तदनन्तर जिन्होंने अपने शरीरमें भस्म लगा रखा था, वे सैकड़ों सिद्ध पाशुपत मुनि निकट जाकर उस तेजमें लीन हो गये। उन तपस्वी महात्माओंके इस प्रकार लीन हो जानेपर वह तेज तत्काल अदृश्य हो गया। वह एक अद्भुत-सी घटना घटित हुई! उस महान् आश्चर्यको देखकर वे नैमिषारण्यके निवासी महर्षि 'यह क्या है' इस बातको न जानते हुए ब्रह्मवनको चले गये॥ १०—१२॥

इनके जानेसे पहले ही लोकपावन पवनदेव वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने नैमिषारण्यवासी ऋषियोंका जिस प्रकार साक्षात्कार हुआ, जिस तरह उनसे उनकी बातचीत हुई, उन ऋषियोंकी शुद्ध बुद्धि जिस प्रकार पार्षदोंसहित साम्ब सदाशिवमें लगी थी और जिस प्रकार उन यज्ञपरायण ऋषियोंका वह दीर्घकालिक यज्ञ पूरा हुआ था, ये सारी बातें जगत्स्रष्टा ब्रह्मयोनि ब्रह्माजीको बतायीं। फिर अपने कार्यके लिये उनसे आज्ञा ले वे अपने नगरको चले गये॥ १३—१५॥

तदनन्तर अपने स्थानपर बैठे हुए ब्रह्माजी गानकी कलामें परस्पर स्पर्धा रखने और विवाद करनेवाले तुम्बुरु और नारदके गानजनित रसका आस्वादन करते हुए वहाँ मध्यस्थता करने लगे। उस समय वे गन्धर्वों और अप्सराओंसे सेवित हो सुखपूर्वक बैठे थे॥ १६-१७॥

उस वेलामें किसी बाहरी व्यक्तिको वहाँ जानेका अवसर नहीं दिया जाता था। इसीलिये जब नैमिषारण्यनिवासी मुनि वहाँ पहुँचे, तब द्वारपालोंने उन्हें द्वारपर ही रोक दिया। वे मुनि ब्रह्मभवनसे बाहर ही पार्श्वभागमें बैठ गये। इधर संगीत-गोष्ठीमें नारदने तुम्बुरुकी समानता प्राप्त की। तब परमेष्ठी ब्रह्माने उन्हें तुम्बुरुके साथ रहनेकी आज्ञा दी और वे पारस्परिक स्पर्धाको त्यागकर तुम्बुरुके परम मित्र हो गये॥ १८-१९॥

तत्पश्चात् गन्धर्वों और अप्सराओंसे घिरे हुए नारद नकुलेश्वर महादेवको वीणागान सुनाकर संतुष्ट करनेके लिये तुम्बुरुके साथ ब्रह्मभवनसे उसी प्रकार निकले, जैसे मेघोंकी घटासे सूर्यदेव बाहर निकलते हैं॥ २०-२१॥

उस समय मुनिवर नारदको देखकर उन छः कुलोंमें उत्पन्न हुए ऋषियोंने प्रणाम किया और बड़े आदरके साथ ब्रह्माजीसे मिलनेका अवसर पूछा। नारदजीका चित्त दूसरी ओर लगा था और वे बड़ी उतावलीमें थे। अतः उनके पूछनेपर बोले—'यही अवसर है। आपलोग भीतर जाइये।' यह कहते हुए वे चले गये॥ २२-२३॥

तदनन्तर द्वारपालोंने ब्रह्माजीको उन ऋषियोंके आगमनकी सूचना दी। उनकी आज्ञा पाकर वे सब एक साथ ब्रह्माजीके भवनमें प्रविष्ट हुए। भीतर जाकर उन्होंने दूरसे ही दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया। फिर उनका आदेश पाकर वे ऋषि उनके पास गये और चारों ओरसे उन्हें घेरकर बैठे॥ २४-२५॥

उन्हें वहाँ बैठा देख कमलासन ब्रह्माने उनका कुशल-समाचार पूछा और बताया कि मुझे तुमलोगोंका सारा वृत्तान्त ज्ञात हो चुका है; क्योंकि वायुदेवने ही यहाँ सब कुछ कहा है। अब तुम बताओ, जब वायुदेव तुम्हें

कथा सुनाकर अदृश्य हो गये, तब तुमने क्या किया ?॥ २६१/२ ॥

देवेश्वर ब्रह्माके इस प्रकार पूछनेपर उन मुनियोंने अवभृथ-स्नानके पश्चात् गंगातीर्थमें जाने, वाराणसीकी यात्रा करने, वहाँ देवेश्वरोंद्वारा स्थापित शिवलिंगों और अविमुक्तेश्वरलिंगके भी दर्शन-पूजन करने, आकाशमें महान् तेज:पुंजके दिखायी देने, कतिपय महर्षियोंके उसमें लीन होने तथा फिर उस तेजके अदृश्य हो जानेकी सब बातें ब्रह्माजीसे विस्तारपूर्वक उन्हें बारंबार प्रणाम करके कहीं। साथ ही यह भी बताया कि 'हम अपने मनमें बहुत विचार करनेपर भी उस तेजको ठीक-ठीक जान न सके'॥ २७—३०१/२ ॥

मुनियोंका कथन सुनकर विश्वस्रष्टा चतुर्मुख ब्रह्माने किंचित् सिर हिलाकर गम्भीर वाणीमें कहा—'महर्षियो! तुम्हें परम उत्तम पारलौकिक सिद्धि प्राप्त होनेका अवसर आ रहा है। तुमने दीर्घकालिक सत्रद्वारा चिरकालतक प्रभुकी आराधना की है। इसलिये वे प्रसन्न होकर तुमलोगोंपर कृपा करनेको उत्सुक हैं। उस तेज:पुंजके दर्शनकी जो घटना घटित हुई है, उससे यही बात सूचित होती है। तुमने वाराणसीमें आकाशके भीतर जो दीप्तिमान् दिव्य तेज देखा था, वह साक्षात् ज्योतिर्मय लिंग ही था, उसे महेश्वरका उत्कृष्ट तेज समझो॥ ३१—३४॥

उस तेजमें श्रौत और पाशुपत-व्रतका पालन करनेवाले मुनि, जो स्वधर्ममें पूर्णत: निष्ठा रखनेवाले थे और अपने पापको दग्ध कर चुके थे, लीन हुए हैं। लीन होकर वे स्वस्थ एवं मुक्त हो गये हैं। इसी मार्गसे तुम्हें भी शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त होनेवाली है। तुम्हारे देखे हुए उस तेजसे यही बात सूचित होती है। तुम्हारे लिये यह वही समय दैववश स्वयं उपस्थित हो गया है। तुम मेरुपर्वतके दक्षिण शिखरपर, जहाँ देवता रहते हैं, जाओ, वहीं मेरे पुत्र सनत्कुमार, जो उत्कृष्ट मुनि हैं, निवास करते हैं। वे वहाँ साक्षात् भूतनाथ नन्दीके आगमनकी प्रतीक्षामें हैं॥ ३५—३८॥

पूर्वकालकी बात है, सनत्कुमार अज्ञानवश अपनेको सब योगियोंका शिरोमणि मानने लगे थे। इसीलिये दुर्विनीत हो गये थे। यही कारण है कि उन्होंने किसी समय परमेश्वर शिवको सामने देखकर भी उनके लिये उचित अभ्युत्थान आदि सत्कार नहीं किया। वे अपने स्थानपर निर्भय बैठे रहे। उनके इस अपराधसे कुपित हो नन्दीने उन्हें बहुत बड़ा ऊँट बना दिया॥ ३९-४०॥

तब उनके लिये मुझे बड़ा शोक हुआ और मैंने दीर्घकालतक महादेव और महादेवीकी उपासना करके नन्दीसे भी बड़ी अनुनय-विनय की। इस प्रकार प्रयत्न करके किसी तरह उनको ऊँटकी योनिसे छुटकारा दिलाया और उन्हें पूर्ववत् सनत्कुमाररूपकी प्राप्ति करायी॥ ४१-४२॥

उस समय महादेवजीने मुसकराते हुए-से अपने गणाध्यक्ष नन्दीसे कहा— 'अनघ! सनत्कुमार मुनिने मेरी ही अवहेलना करके अपना वैसा अहंकार प्रकट किया था, अत: तुम्हीं उनको मेरे यथार्थ स्वरूपका उपदेश दो। ब्रह्माका ज्येष्ठ पुत्र मूढ़की भाँति मेरा स्मरण कर रहा है, अत: मैंने ही उसको तुम्हें शिष्यके रूपमें दिया है; तुमसे उपदेश पाकर वह मेरे ज्ञानका प्रवर्तक होगा और वही तुम्हारा धर्माध्यक्षके पदपर अभिषेक करेगा।'॥ ४३—४५॥

महादेवजीके ऐसा कहनेपर समस्त भूतगणोंके अध्यक्ष नन्दीने [प्रात:काल] मस्तक झुकाकर स्वामीकी वह आज्ञा शिरोधार्य की तथा सनत्कुमार भी मेरी आज्ञासे इस गणराज नन्दीको प्रसन्न करनेके लिये मेरुपर दुष्कर तपस्या कर रहे हैं। गणाध्यक्ष नन्दीके समागमसे पहले ही तुमलोग सनत्कुमारसे मिलो; क्योंकि उनपर कृपा करनेके लिये नन्दी शीघ्र ही वहाँ आयेंगे॥ ४६—४८॥

विश्वयोनि ब्रह्माके इस प्रकार आदेश देकर भेजनेपर वे मुनि मेरुपर्वतके दक्षिणवर्ती कुमार-शिखरपर शीघ्र गये॥ ४९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें नैमिषर्षियात्रावर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

मेरुगिरिके स्कन्द-सरोवरके तटपर मुनियोंका सनत्कुमारजीसे मिलना, भगवान् नन्दीका वहाँ आना और दृष्टिपातमात्रसे पाशछेदन एवं ज्ञानयोगका उपदेश करके चला जाना, शिवपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार

सूतजी कहते हैं—वहाँ [मेरुपर्वतपर] सागरके समान एक विशाल सरोवर है, जिसका नाम स्कन्द-सर है। उसका जल अमृतके समान स्वादिष्ठ, शीतल, स्वच्छ, अगाध और हलका है। वह सरोवर सब ओरसे स्फटिकमणिके शिलाखण्डोंद्वारा संघटित हुआ है। उसके चारों ओर सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले फूलोंसे भरे हुए वृक्ष उसे आच्छादित किये रहते हैं॥ १-२॥

उस सरोवरमें सेवार, उत्पल, कमल और कुमुदके पुष्प तारोंके समान शोभा पाते हैं और तरंगें बादलोंके समान उठती रहती हैं, जिससे जान पड़ता है कि आकाश ही भूमिपर उतर आया है। वहाँ सुखपूर्वक उतरने-चढ़नेके लिये सुन्दर घाट और सीढ़ियाँ हैं। वहाँकी भूमि नीली शिलाओंसे आबद्ध है। आठों दिशाओंकी ओरसे वह सरोवर बड़ी शोभा पाता है॥ ३-४॥

वहाँ बहुत-से लोग नहानेके लिये उतरते हैं और कितने ही नहाकर निकलते रहते हैं। स्नान करके श्वेत यज्ञोपवीत और उज्ज्वल कौपीन धारण किये, वल्कल पहने, सिरपर जटा अथवा शिखा रखाये या मूँड़ मुड़ाये, ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये, वैराग्यसे विमल एवं मुसकराते मुखवाले बहुत-से मुनिकुमार घड़ोंमें, कमलिनीके पत्तोंके दोनोंमें, सुन्दर कलशोंमें, कमण्डलुओंमें तथा वैसे ही करकों (करवों) आदिमें अपने लिये, दूसरोंके लिये, विशेषतः देवपूजाके लिये वहाँसे नित्य जल और फूल ले जाते हैं॥ ५—८॥

आचारसम्पन्न, भस्मोद्धूलित शरीरवाले, सम्मान्य शिष्ट मुनिजन अपवित्र पुरुष आदिके स्पर्शसे शंकित रहते हुए उस सरोवरमें जहाँ-तहाँ जलमें डूबी हुई शिलाओंपर स्थित हो स्नानकृत्य सम्पन्न करते हैं। देवर्षि-मनुष्य-पितृतर्पण करनेके उपरान्त छोड़े गये कुश, तिल, अक्षत, पुष्प तथा पवित्रक आदिसे युक्त वह सरोवर स्नानादि धर्मकृत्योंके सम्पादनार्थ आये हुए द्विजोंका मानो परिचय-सा देता रहता है॥ ९—११॥

स्थान-स्थानपर अनेक प्रकारकी पुष्पबलि आदि [मन्त्रोंके] उच्चारणपूर्वक दी जाती है, कुछ लोग सूर्यदेवको अर्घ्य देते हैं और कुछ लोग वेदिकाओंपर देवताओंकी अर्चनामें निरत रहते हैं। उस सरोवरमें कहीं [श्रमके कारण] शिथिल शरीरवाले श्रेष्ठ गज डूबते-उतराते हुए जलक्रीडा करते हैं तो कहीं प्यास बुझानेके लिये हरिण, हरिणियाँ और घोड़े आते दीखते हैं। वहाँपर कहीं तो जल पीकर उड़ते हुए मयूर परस्पर स्पर्धा-सी करते हैं तो कहींपर तटोंको आहत करते हुए वृषभ अपने प्रतिद्वन्द्वी वृषभोंसे लड़ते हुए शोभित होते हैं॥ १२—१४॥

कहीं कारण्डव पक्षियोंकी ध्वनि हो रही है, कहीं सारसोंका कूजन सुनायी दे रहा है, कहीं कोकपक्षी (चक्रवाक) शब्द कर रहे हैं और कहीं भौंरे गुंजन करते हुए मानो गीत-सा गा रहे हैं। वह सरोवर जलमें स्नान-पानादि करते हुए अपने समीपवर्ती वृक्षोंका आश्रय लेकर रहनेवाले जीव-जन्तुओंसे मानो प्रेमपूर्वक बार-बार वार्तालाप कर रहा है। वह सरोवर अपने तटवर्ती वृक्षोंकी चोटियोंपर बैठकर कूजन करती हुई कोयलोंकी [कुहू-कुहू] ध्वनिके बहानेसे मानो आतपसे सन्तप्त सभी जीवोंको निरन्तर आमन्त्रित-सा करता है॥ १५—१७॥

उस सरोवरके उत्तर तटपर एक कल्पवृक्षके नीचे हीरेकी शिलासे बनी हुई वेदीपर कोमल मृगचर्म बिछाकर सदा बालरूपधारी सनत्कुमारजी बैठे थे। वे अपनी अविचल समाधिसे उसी समय उपरत हुए थे। उस समय बहुत-से ऋषि-मुनि उनकी सेवामें बैठे थे और योगीश्वर भी उनकी पूजा कर रहे थे। नैमिषारण्यके मुनियोंने वहाँ सनत्कुमारजीका दर्शन किया। उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उनके आस-पास बैठ गये॥ १८—२०॥

सनत्कुमारजीके पूछनेपर उन ऋषियोंने उनसे ज्यों ही अपने आगमनका कारण बताना आरम्भ किया, त्यों ही आकाशमें दुन्दुभियोंका तुमुल नाद सुनायी दिया। उसी समय सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान दृष्टिगोचर हुआ, जो असंख्य गणेश्वरोंद्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ था। उसमें अप्सराएँ तथा रुद्रकन्याएँ भी थीं। वहाँ मृदंग, ढोल और वीणाकी ध्वनि गूँज रही थी॥ २१—२३॥

उस विमानमें विचित्र रत्नजटित चँदोवा तना था और मोतियोंकी लड़ियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। बहुत-से मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, चारण और किन्नर नाचते, गाते और बाजे बजाते हुए उस विमानको सब ओरसे घेरकर चल रहे थे, उसमें वृषभचिह्नसे युक्त और मूँगेके दण्डसे विभूषित ध्वजा-पताका फहरा रही थी, जो उसके गोपुरकी शोभा बढ़ाती थी। उस विमानके मध्यभागमें दो चँवरोंके बीच चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मणिमय दण्डवाले शुभ्र छत्रके नीचे दिव्य सिंहासनपर शिलादपुत्र नन्दी देवी सुयशाके साथ बैठे थे। वे अपनी कान्तिसे, शरीरसे तथा तीनों नेत्रोंसे बड़ी शोभा पा रहे थे। भगवान् शंकरको आवश्यक कार्योंकी सूचना देनेवाले वे नन्दी मानो जगत्स्रष्टा शिवके अलंघनीय आदेशका मूर्तिमान् स्वरूप होकर वहाँ आये थे, अथवा उनके रूपमें मानो साक्षात् शम्भुका सम्पूर्ण अनुग्रह ही साकाररूप धारण करके वहाँ सबके सामने उपस्थित हुआ था॥ २४—२९॥

शोभाशाली श्रेष्ठ त्रिशूल ही उनका आयुध है। वे विश्वेश्वरके गणोंके अध्यक्ष हैं और दूसरे विश्वनाथकी भाँति शक्तिशाली हैं। उनमें विश्व-स्रष्टा विधाताओंका भी निग्रह और अनुग्रह करनेकी शक्ति है। उनके चार भुजाएँ हैं। अंग-अंगसे उदारता सूचित होती है, वे चन्द्रलेखासे विभूषित हैं। कण्ठमें नाग और मस्तकपर चन्द्रमा उनके अलंकार हैं। वे साकार ऐश्वर्य और सक्रिय सामर्थ्यके स्वरूप-से जान पड़ते हैं॥ ३०—३२॥

भलीभाँति प्राप्त हुए मोक्ष अथवा निकट उपस्थित हुए सर्वज्ञ परमात्माके समान प्रतीत होनेवाले उन्हें देखकर ऋषियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वे दोनों हाथ जोड़कर उठे और उन्हें आत्मसमर्पण-सा करते हुए खड़े हो गये। इतनेमें ही वह विमान धरतीपर आ गया, सनत्कुमारने देव नन्दीको साष्टांग प्रणाम करके उनकी स्तुति की और मुनियोंका परिचय देते हुए कहा—'ये छः कुलोंमें उत्पन्न ऋषि हैं, जो नैमिषारण्यमें दीर्घकालसे सत्रका अनुष्ठान करते थे। ब्रह्माजीके आदेशसे आपका दर्शन करनेके लिये ये लोग पहलेसे ही यहाँ आये हुए हैं'॥ ३३—३५॥

ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका यह कथन सुनकर नन्दीने दृष्टिपातमात्रसे उन सबके पाशोंको तत्काल काट डाला और ईश्वरीय शैवधर्म एवं ज्ञानयोगका उपदेश देकर वे फिर महादेवजीके पास चले गये॥ ३६॥

सनत्कुमारने वह समस्त ज्ञान साक्षात् मेरे गुरु व्यासको दिया, पूजनीय व्यासजीने मुझे संक्षेपसे वह सब कुछ बताया और उस ज्ञानको मैंने संक्षेपमें आप लोगोंको बताया॥ ३७॥

त्रिपुरारि शिवके इस पुराणरत्नका उपदेश वेदके न जाननेवाले लोगोंको नहीं देना चाहिये। जिस शिष्यकी गुरुमें भक्ति न हो, उसको तथा नास्तिकोंको भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। यदि मोहवश इन अनधिकारियोंको इसका उपदेश दिया गया तो यह नरक प्रदान करता है॥ ३८॥

जिन लोगोंने सेवानुगत-मार्गसे इस पुराणका उपदेश दिया, लिया, पढ़ा अथवा सुना है, उनको यह सुख तथा धर्म आदि त्रिवर्ग प्रदान करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष देता है॥ ३९॥

इस पौराणिक मार्गके सम्बन्धसे आपलोगोंने और मैंने एक-दूसरेका उपकार किया है; अतः मैं सफल-मनोरथ होकर जा रहा हूँ। हमलोगोंका सदा सब प्रकारसे मंगल ही हो॥ ४०॥

सूतजीके आशीर्वाद देकर चले जाने और [नैमिषारण्यके अन्तर्गत स्थित] प्रयागतीर्थमें उस महायज्ञके पूर्ण हो जानेपर वे सदाचारी मुनि विषय-कलुषित

कलिकालके आनेसे काशीके आसपास निवास करने लगे। तदनन्तर पशु-पाशसे छूटनेकी इच्छासे उन सबने पूर्णतया पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान किया और सम्पूर्ण बोध एवं समाधिपर अधिकार करके वे अनिन्द्य महर्षि परमानन्दको प्राप्त हो गये॥ ४१-४२॥

व्यास उवाच

एतच्छिवपुराणं हि समाप्तं हितमादरात्।
पठितव्यं प्रयत्नेन श्रोतव्यं च तथैव हि॥
नास्तिकाय न वक्तव्यमश्रद्धाय शठाय च।
अभक्ताय महेशस्य तथा धर्मध्वजाय च॥
एतच्छ्रुत्वा ह्येकवारं भवेत् पापं हि भस्मसात्।
अभक्तो भक्तिमाप्नोति भक्तो भक्तिसमृद्धिभाक्॥
पुनः श्रुते च सद्भक्तिर्मुक्तिः स्याच्च श्रुते पुनः।
तस्मात् पुनः पुनश्चैव श्रोतव्यं हि मुमुक्षुभिः॥
पञ्चावृतिः प्रकर्तव्या पुराणस्यास्य सद्धिया।
परं फलं समुद्दिश्य तत्प्राप्नोति न संशयः॥
पुरातनाश्च राजानो विप्रा वैश्याश्च सत्तमाः।
सप्तकृत्वस्तदावृत्यालभन्त शिवदर्शनम्॥
श्रोष्यत्यथापि यश्चेदं मानवो भक्तितत्परः।
इह भुक्त्वाखिलान् भोगानन्ते मुक्तिं लभेच्च सः॥
एतच्छिवपुराणं हि शिवस्यातिप्रियं परम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं ब्रह्मसम्मितं भक्तिवर्धनम्॥
एतच्छिवपुराणस्य वक्तुः श्रोतुश्च सर्वदा।
सगणः ससुतः साम्बः शं करोतु स शङ्करः॥

(शि० पु०, वा० सं०, उ०ख० ४१। ४३—५१)

व्यासजी कहते हैं—यह शिवपुराण पूरा हुआ, इस हितकर पुराणको बड़े आदर एवं प्रयत्नसे पढ़ना तथा सुनना चाहिये। नास्तिक, श्रद्धाहीन, शठ, महेश्वरके प्रति भक्तिसे रहित तथा धर्मध्वजी (पाखण्डी)-को इसका उपदेश नहीं देना चाहिये॥ ४३-४४॥

इसका एक बार श्रवण करनेसे ही सारा पाप भस्म हो जाता है। भक्तिहीन भक्ति पाता है और भक्त भक्तिकी समृद्धिका भागी होता है। दोबारा श्रवण करनेपर उत्तम भक्ति और तीसरी बार सुननेपर मुक्ति सुलभ हो जाती है, इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको बारंबार इसका श्रवण करना चाहिये॥ ४५-४६॥

किसी भी उत्तम फलको पानेके लिये शुद्ध-बुद्धिसे इस पुराणकी पाँच आवृत्ति करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य उस फलको प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। प्राचीन कालके राजाओं, ब्राह्मणों तथा श्रेष्ठ वैश्योंने इसकी सात आवृत्ति करके शिवका साक्षात् दर्शन प्राप्त किया है॥ ४७-४८॥

जो मनुष्य भक्तिपरायण हो इसका श्रवण करेगा, वह भी इहलोकमें सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेगा। यह श्रेष्ठ शिवपुराण भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह वेदके तुल्य माननीय, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा भक्तिभावको बढ़ानेवाला है। अपने प्रमथगणों, दोनों पुत्रों तथा देवी पार्वतीजीके साथ भगवान् शंकर इस पुराणके वक्ता और श्रोताका सदा कल्याण करें॥ ४९—५१॥

इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें व्यासोपदेश एवं श्रीशिवमहापुराणमाहात्म्यवर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

॥ सातवीं वायवीयसंहिताका उत्तरखण्ड सम्पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीशिवमहापुराणका भाषानुवाद सम्पूर्ण॥

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

पिछले वर्ष श्रीशिवमहापुराण (पूर्वार्ध—विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता)-का हिन्दी अनुवाद कल्याणके विशेषांकके रूपमें प्रकाशित हुआ था। भूतभावन भगवान् विश्वनाथकी असीम कृपासे इस वर्ष कल्याणका विशेषांक श्रीशिवमहापुराण (उत्तरार्ध—शतरुद्र, कोटिरुद्र, उमा, कैलास एवं वायवीय-संहिता)-का हिन्दी अनुवाद पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। कल्याणके प्रेमी पाठकोंकी यह भावना थी कि सम्पूर्ण शिवमहापुराणका सानुवाद प्रकाशन विशेषांकके रूपमें किया जाय, परंतु विशेषांककी पृष्ठ-संख्या सीमित होनेके कारण चौबीस हजार श्लोकोंके इस बृहत्पुराणका श्लोकांक-सहित केवल हिन्दी अनुवादका भी दो वर्षोंमें प्रकाशित होना सम्भव नहीं था। इस कार्यको सम्पन्न करनेकी दृष्टिसे इन दो वर्षोंमें विशेषांककी पृष्ठ-संख्यामें विशेष वृद्धि करनेका निर्णय लिया गया। इसी क्रममें गत वर्ष विशेषांकमें **११२** पृष्ठ बढ़ाये गये थे, इस वर्ष **१२८** पृष्ठ अधिक दिये जा रहे हैं, इसके साथ ही कल्याणका विशेषांक ग्राहकोंको सजिल्द रूपमें ही भेजनेका निर्णय लिया गया, जिससे यह महापुराण सबके पास सुरक्षित रखा जा सके।

इन दिनों नई कर-प्रणाली जी०एस०टी० तथा अन्य कई कारणोंसे कागज आदिके मूल्योंमें वृद्धि होनेसे तथा महँगाईके उत्तरोत्तर बढ़नेके कारण कल्याणके वार्षिक शुल्कमें भी किंचित् वृद्धि करनी पड़ी है, आशा है पाठकगण इसे सहर्ष स्वीकार करेंगे।

पुराण वाङ्मयमें श्रीशिवमहापुराणका अत्यन्त महिमामय स्थान है। पुराणोंकी परिगणनामें वेदतुल्य, पवित्र और सभी लक्षणोंसे युक्त यह पुराण चौथा है। शिवके उपासक इस पुराणको शैवभागवत मानते हैं। इस ग्रन्थके आदि, मध्य तथा अन्तमें सर्वत्र भूतभावन भगवान् सदाशिवकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। वेद-वेदान्तमें विलसित परमतत्त्व—परमात्माका इस पुराणमें शिव नामसे गान किया गया है। भगवान् सदाशिवकी लीलाएँ अनन्त हैं। उन लीलाकथाओंका प्रतिपादन और शिवोपासना इस ग्रन्थका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, जिसके सम्यक् अवगाहनसे साधकों-भक्तोंका मन भगवान् सदाशिवके चरण-कमलोंका भ्रमर बनकर मुक्तिमार्गका सहज ही पथिक बन जाता है।

वास्तवमें 'श्रीशिवमहापुराण' की समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यह है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र भूतभावन भगवान् विश्वनाथकी शरणमें जाना चाहिये।

श्रीशिवमहापुराणके श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्यलाभ तथा अन्त:करणकी परिशुद्धि, भगवान् साम्ब-सदाशिवमें रति और विषयोंसे विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्योंको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें कर्तव्य निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है। साथ ही जो जिज्ञासु शास्त्रमर्यादाके अनुसार अपना जीवनयापन करना चाहते हैं, उन्हें इस पुराणसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन, सुन्दर एवं पवित्र जीवनयापनकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। इस प्रकार यह पुराण जिज्ञासुजनोंके लिये अत्यधिक उपादेय, ज्ञानवर्द्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदयमें पूर्णत: सहायक है।

शिवमहापुराण (उत्तरार्ध)-के अन्तर्गत **शतरुद्रसंहिता**-में भगवान् शिवके विभिन्न अवतारोंकी कथाओंका वर्णन है, साथ ही नन्दीश्वरके जन्मकी कथा तथा कालभैरवके माहात्म्यका भी वर्णन है। **कोटिरुद्रसंहिता**-में भगवान् शंकरके द्वादश ज्योतिर्लिंगों तथा उनके उपलिंगोंके प्राकट्यकी कथा एवं उनके दर्शन-पूजनकी महिमाका वर्णन है। तदनन्तर इसी संहितामें भगवान् शंकरद्वारा विष्णुको सुदर्शन चक्र प्रदान करनेकी कथा तथा परम कल्याणकारी शिवसहस्रनाम एवं शिवरात्रिव्रतकी कथा, विधि एवं महिमाका वर्णन है। **उमासंहिता**-के प्रारम्भमें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा तप करने और शिव-पार्वतीसे वरदान-प्राप्तिकी कथा है। तत्पश्चात् भगवती उमाद्वारा विभिन्न अवतार लेकर मधु-कैटभ, धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, शुम्भ-निशुम्भ, दुर्गमासुर आदिके वधकी कथा है। **कैलाससंहिता**-में प्रणवके वाच्यार्थ, संन्यास-ग्रहणकी शास्त्रीय विधि, शैव दर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, जगत्-प्रपंच, जीव-तत्त्वका विशद वर्णन तथा संन्यासीके अन्त्येष्टि कर्मका वर्णन है। **वायवीय-संहिता** पूर्व तथा उत्तर दो खण्डोंमें विभक्त है। इसके पूर्वभागमें पुराणोंका परिचय, ब्रह्माजीद्वारा परम पुरुष रुद्रकी महिमाका प्रतिपादन,

अर्द्धनारीश्वर स्तोत्र, शैवागम, पाशुपत व्रत और उपमन्युपर शिवकृपाका वर्णन है। इसके उत्तरखण्डमें उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको शिव और शिवाकी विभूतियों, शिवके यथार्थ स्वरूप, शिवज्ञान, पंचाक्षर मन्त्रके माहात्म्य, शैवीय दीक्षा, पंचमुख महादेवकी आवरणपूजा एवं महास्तोत्र तथा शिवयोगीके महत्त्व आदिका उपदेश दिया गया है।

जैसे श्रीमद्भागवतका दशम स्कन्ध भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंसे ओतप्रोत है, ऐसे ही शिवपुराणका उत्तरार्ध भाग भगवान् शिवकी लीलाओं और उनके भक्तोंकी लीला-कथाओंसे भरा पड़ा है। इसी प्रकार उमासंहितामें भी भगवती जगदम्बाका कृपामय चरित वर्णित है। पाठकोंकी सुविधाके लिये **श्रीशिवमहापुराण (उत्तरार्ध)**-के भावोंका सार-संक्षेप इस विशेषांकके प्रारम्भमें **सिंहावलोकन**-के रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकनसे श्रीशिवमहापुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय और उनकी कथाएँ पाठकोंके ध्यानमें आ सकेंगी। आशा है, पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

परम करुणामय, जगन्नियन्ता, साम्बसदाशिवकी अनुकम्पासे इस वर्ष विशेषांकका सब कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। इस पुराणका अनुवाद करनेमें मूल श्लोकोंके भावोंको स्पष्ट करनेका विशेष ध्यान रखा गया है। इस पुराणमें कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जिनके भावोंको पूर्ण रूपसे समझनेमें कठिनाईका अनुभव होता है, पर विद्वत्-गणोंके सहयोगसे मूल श्लोकोंके भावोंको स्पष्ट करनेका विशेष प्रयास किया गया है।

अभी कुछ दिनों पूर्व प्रयागराजके श्रीहरीराम गोपालकृष्ण सनातनधर्म संस्कृत महाविद्यालयके पूर्व प्राचार्य पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्री, जिनका गीताप्रेस और कल्याणसे अटूट सम्बन्ध था, काशीमें दिवंगत हो गये। आप सनातन धर्मकी परम्परामें शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान् थे। आपकी स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि सिद्धान्तके विपरीत किसी बातका शास्त्रानुसार प्रत्युत्तर देनेमें आप पूर्ण सक्षम थे। गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित 'अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश' 'गरुडपुराण-सारोद्धार' एवं 'संस्कार-प्रकाश' आदि ग्रन्थोंके प्रणयनमें आपका अत्यधिक योगदान था। 'जीवच्छ्राद्धपद्धति', 'गयाश्राद्धपद्धति' एवं 'त्रिपिण्डीश्राद्धपद्धति' आदि ग्रन्थोंका प्रणयन आपद्वारा सम्पन्न हुआ। आप एक नामनिष्ठ साधक थे, काशीमें आप निरन्तर नामजप-साधनमें संलग्न रहते थे। काशीमें आपकी अनन्य आस्था थी। आपकी यह हार्दिक भावना थी कि आपका प्राणान्त काशीमें हो। भगवान् विश्वनाथकी कृपासे उन्हें काशीमें शिवसायुज्यकी प्राप्ति हुई। सत्पुरुषोंके अभावकी पूर्ति तो आजकलके समयमें हो नहीं पा रही है। भगवान्की कृपाका ही सम्बल है। वास्तवमें कल्याणका कार्य भगवान्का कार्य है, अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं। अपने लोग तो केवल निमित्तमात्र हैं।

इस विशेषांकके अनुवाद तथा उसकी आवृत्ति, प्रूफ-संशोधन तथा सम्पादनके कार्योंमें सम्पादकीय विभागके मेरे सहयोगी विद्वानोंने तथा अन्य सभी लोगोंने मनोयोगपूर्वक सहयोग प्रदान किया है, फिर भी अनुवाद, संशोधन तथा छपाई आदिमें कोई भूल हो तो इसके लिये हमारा अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है, अतः इसके लिये अपने पाठकोंसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

इस शिवमहापुराणके समस्त उपदेशों और कथानकोंका सार यही है कि हमें सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये साम्बसदाशिवकी शरण ग्रहण करते हुए उनकी उपासनामें संलग्न होना चाहिये। इस लक्ष्यकी प्राप्ति भगवान् सदाशिवकी भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है, इसकी विशद व्याख्या भी इस पुराणमें वर्णित है। यदि इस विशेषांकके अध्ययनसे जनता-जनार्दनको आत्मकल्याणकी प्रेरणा किसी भी रूपमें प्राप्त हुई तो यह भगवान्की बड़ी कृपा होगी, श्रम सार्थक होगा।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे क्षमा प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल, अकारणकरुणावरुणालय प्रभुके श्रीचरणोंमें यह प्रार्थना करते हैं—

हे प्रभो! आप मेरी आत्मा हैं, पराम्बा भगवती मेरी मति (बुद्धि) हैं तथा मेरे प्राण आपके सहचर हैं और यह शरीर आपका मन्दिर है, जिसमें आपका नित्य निवास है। मेरे विषय-भोगकी रचना ही आपकी पूजा-सामग्री है। निद्राकी अवस्था ही समाधि है और मेरा संचरण (चलना-फिरना) ही आपकी प्रदक्षिणा तथा मेरी सम्पूर्ण वाणी आपकी स्तुति-प्रार्थना है। हे शम्भो! मेरे द्वारा जो सम्पूर्ण कर्म सम्पन्न हो रहे हैं। वे सब आपकी आराधना हैं—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥

—राधेश्याम खेमका
(सम्पादक)